मनु, वृद्धमनु, याज्ञवल्क्य, वृद्धयाज्ञवल्क्य, अत्रि, विष्णु, वृहद्विष्णु, हारीत, लघुहारीत, उशना, औशनस, वृद्धौशनस, अङ्गिरा, वृद्धाङ्गिरा, यम, वृहद्यम, आपस्तम्ब, संवत, कात्यायन, वृहस्पति, पराशर, वृहत्पराशर, व्यास, शंख, लघुशंख, लिखित, शंखलिखित, दक्ष, गौतम, शातातप, वृहच्छातातप, वृद्धशातातप, वसिष्ठ, वृद्धवसिष्ठ, प्रजापति, देवल, वृद्धदेवल, गोभिल, लघुआश्वलायन, बौधायन, नारद, सुमन्तु, मार्कण्डेय, प्रचेता, पितामह, मरीचि, जाबालि, पैठीनसि, शौनक, कण्व, षट्त्रिंशन्मत, चतुर्विंशतिमत, उपमन्यु, कश्यप, लौगाक्षि, क्रतु, पुलस्त्य, शाण्डिल्य और मानव गृह्यसूत्र इन उनसठोंके प्रमाणवचनोंका संग्रह और एकता करके

निर्माण किया,

सरल सुबोध भाषाटीका तथा प्रामाणिक टिप्पणियोंसे

खेमराज श्रीकृष्णदासने

खेतवाडी ७ वीं गली खंबाटा-लेन

प्रथमावृत्ति,

संवत् १९७०, सन १९१३ ई.

अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं संनिहितोमृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥ १२ ॥

वैकुण्ठवासी बाबू साधुचरणप्रसादजी.
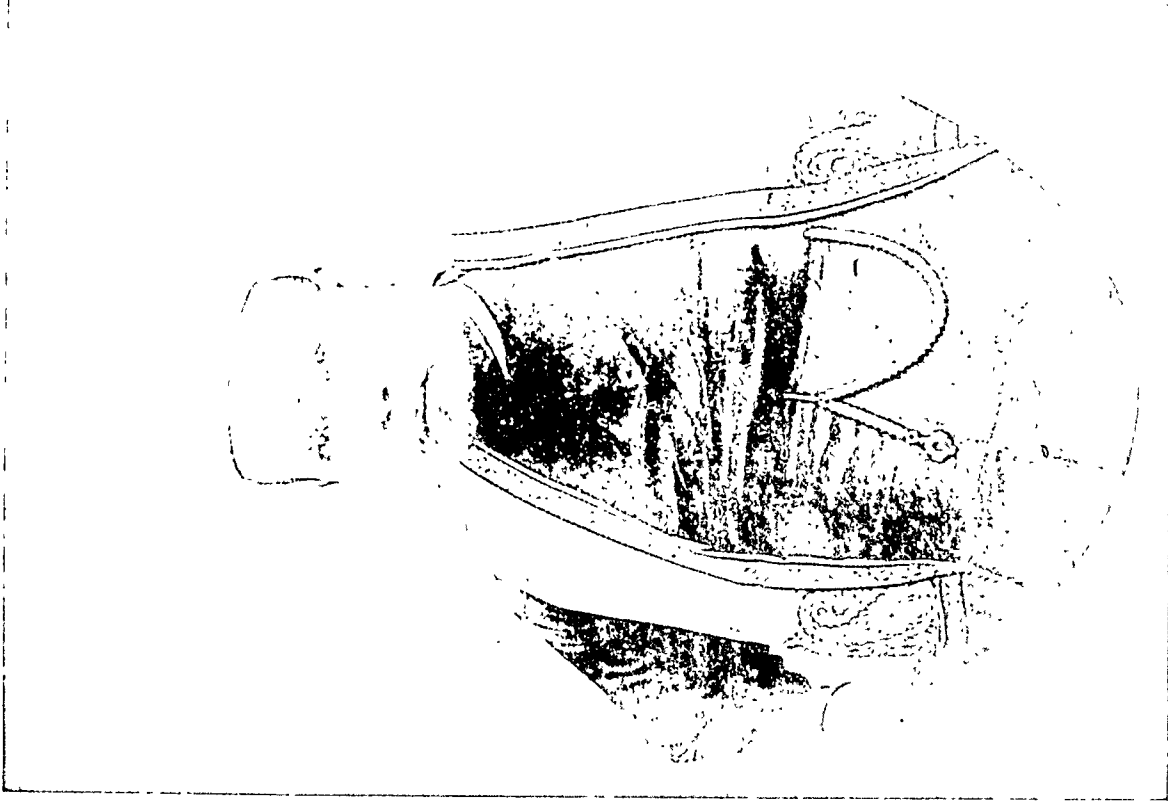
ग्रन्थकर्त्ता.

कैलाशवासी-बाबू साधुचरणप्रसादजी-ग्रन्थकर्ता.
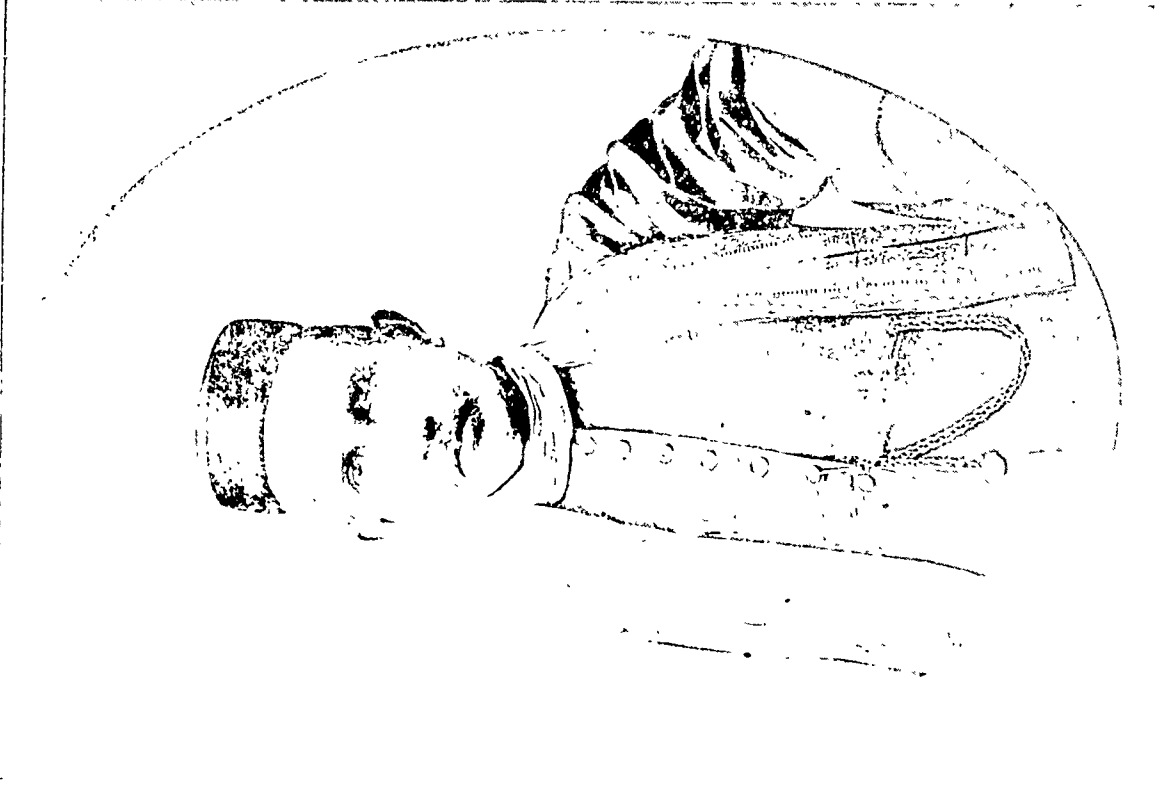
ग्रन्थकर्ताके लघुभ्राता-बाबू तपसीनारायणजी.

श्रीः ।

प्रस्तावना.

अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥ १२ ॥ व्यासस्मृति. अध्याय ४

शरीर निरंतर रहनेवाले नहीं हैं, धनआदि वैभव सदैव रहनेवाला नहीं है; और मृत्यु नित्य समीपमें रहता है. इसलिये धर्मका संग्रह करना यही उचित है।

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ २३९ ॥ मनुस्मृति. अध्याय ४

परलोकमें सहायके लिये पिता, माता, पुत्र, भार्या और जातिके लोग उपस्थित नहीं रहतेहैं; केवल धर्मही वहां सहायक रहताहै.

आज बडे आनंदके साथ समस्त सज्जनोंको अत्यंत श्रेयस्कर वर्तमान निवेदन करनेका सुअवसर प्राप्त हुआहै. शास्त्रके रहस्य तात्पर्योंका विचार करनेसे यह सिद्ध होताहै कि,–एक समय यह संसार घोर अंधकारसे छपाहुआ, अप्रत्यक्ष, चिह्नरहित, अनुमान करनेके अयोग्य, अविज्ञात और घोर निद्रासे निद्रितके समान था. उसके उपरांत अप्रकट स्वयंभू भगवान् अप्रतिहतसामर्थ्य-वाले और प्रकृतिके प्रेरणा करनेवाले महाभूतआदि तत्त्वोंको प्रकट करतेहुए स्वयं प्रकट हुए. जो इंद्रियोंके ज्ञानसे बाहर, सूक्ष्म, अव्यक्त, सनातन, सर्वभूतमय और अचिंतनीय हैं, वही स्वयं प्रकट होतेभये. उन्हीं भगवानने इस अनादि अनंत प्रवाहरूप संसारमें स्वेदज, अंडज, उद्भिज्ज और जरा-युज इस भेदसे अवांतर चौराशीलक्ष प्रकारके जीवजात उत्पन्न किये. और उनके योगक्षेमार्थ भूतभौतिकसृष्टिमें अनंत प्रकारके साधनोंका निर्माण किया. उनही भगवानने उन अनंत जीवोंके अनादिकालसंपादित अनेक उत्तम, मध्यम और अधम कर्मोंके अनुसार देव, मनुष्य और तिर्यच रूप गति लगादीं. जिसके अनुसार स्वर्ग, मृत्यु और पाताल इन लोकोंके उत्कृष्ट, निकृष्ट, सम सुख दुःखोंका अनुभव सर्व जीव अपने अपने कर्मानुसार उपभोग करतेहुए इस संसारचक्रमें भ्रमण कररहेहैं. उनही भगवानको सर्व प्राणिमात्रोंकी सृष्टि निर्माण करनेपरभी जब संसारमंडलकी कक्षाओंमें पूर्णता दीखनेमें नहीं आई, और उन अनंत प्राणियोंके सृष्टिसे उनके अंतःकरणको प्रस-न्नता प्राप्त नहीं हुई; तब अंतमें उनने मनुष्यसृष्टिको निर्माण किया; और इस मनुष्य देहको देखकर उन भगवानको अत्यंतही संतोष उत्पन्न हुआ यह विषय श्रीमद्भागवतमें कहाहै.

उन मनुष्योंको भगवानने अपने शरीरके अवयव विशेषोंसे उत्पन्न किया. इस विषयमें मनुस्मृतिमें कहा है कि–

"लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥"

लोकोंके वृद्धिके लिये अपने मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, ऊरूसे वैश्य और पदसे शूद्रको उत्पन्न किया

उनमेंभी स्त्री और पुरुषोंकी सृष्टि करके इस सृष्टिकार्यको मन्वादि प्रजापतियोंके सन्तान-द्वारा वृद्धिगत करते भये. और उनके व्यवहार नित्यचर्याआदिके नियमनार्थ वेद शास्त्रद्वारा अचल धर्मशास्त्रकी प्रथाको प्रसिद्ध करके प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्गको स्थापित करतेभये.

अपने अपने प्रतिनियत कर्मोंके करनेवाले तो सभी जीव हैं. उनमेंभी वेदानुशासनरूप वाचनिक शास्त्रके अधिकारी तो मनुष्यदेहान्तर्गत जीवात्माही है. कारण, शास्त्रका अधिकार तो केवल मनुष्यजीवकोही है. अतएव श्रीशंकराचार्यजीने ब्रह्मसूत्रभाष्यमें कहाभी है कि–"**मनुष्याधि-कारित्वाच्छास्त्रस्य**" "**शास्त्रमधिकरोति हि मनुष्यः**" विधिनिषेधात्मक शास्त्र होताहै. "**अहरहः सन्ध्यामुपासीत**" और "**न कलञ्जं भक्षयेत्**" इत्यादि विधिनिषेध केवल मनुष्य-मात्रकेही लिये नियत हैं. पशु या पक्षीआदिकोंके लिये नहीं. थोडासा दृष्टांत है. जैसे कि, किसी बगीचेमें अनेक वृक्ष रहते हैं. उनके संरक्षणार्थ बगीचाके मालिकने प्रत्येक वृक्षके पेडमें एक कागद

पर जाहिरात लिखके चिपकाय दी और उसमें लिखा कि, "इस वृक्षको किसीने स्पर्श करना नहीं" बस, इस जाहिरातसे उस वृक्षके स्पर्शका निषेध सिद्ध हुआ. परंतु उस निषेधरूप वाचनिक शास्त्रको मनुष्यही जानेंगे और उस निषेधशास्त्रके पालनके लिये उस वृक्षको स्पर्श नहीं करेंगे. परंतु कोई पक्षी अथवा पशु "इस वृक्षका स्पर्श करना नहीं" ऐसी मालिककी आज्ञा है यह बात समझेगा क्या ? कभी नही. व- तो उडके उस वृक्षके मस्तकपर निर्भयपनेसे अधिरोहण करेगा, अथवा उसके पेडसे अपना अंग कंडुयन करके उसके त्वचाको घर्षण करेगा. इससे सिद्ध होताहै कि, वाचनिक विधनिषेधात्मक शास्त्रमें अधिकार मनुष्यकाही है. अतएव श्रीआचार्यचरणोंने कहा कि- "मनुष्याधिकारित्वाच्छास्त्रस्य" "शास्त्रमधिकरोति हि मनुष्यः" इस प्रकारसे शास्त्राधिकार मनुष्योंकोही प्राप्त है. और मनुष्येतर सर्व जीव वाचनिक शास्त्रके अधिकारी नहीं हैं. अत एव उनमें मनुष्योंके आचारके विरुद्ध आचार-जैसे पशुपक्षिआदिकोंमें मात्रागमन भगिनीगमन, अभक्ष्यभक्षण, अपेयपान आदिक पशुधर्म मनुष्यधर्मके विरुद्ध दीख पडतेहैं. मनुष्योंको विवेक ज्ञान होनेसेही मनुष्योंकी योग्यता सब संसारभरमें सब जीवमात्रसे उत्तम कही गई है. यदि मनुष्यभी अपने विवेकशक्तिसे अपने अपने आचारोंकी शुद्धताको यथावत् पालन करनेका प्रयत्न न किया करेंगे, तो उनको 'नरपशु' समझनेमें या कहनेमें कोई बाधा नहीं होगी

अब वेदानुशासनको 'धर्म' कहना यह प्रथमतः 'धर्म' शब्दकी व्याख्या है. उसके उपरांत स्मृति, उसके अनंतर सदाचार उसके पश्चात् जिसमें अपने आत्माको संतोष हो वैसा वर्तव-ये चारों 'धर्म' इसी नामसे कहे जाते हैं. इस विषयमें मनुस्मृतिमें कहाहै कि,-

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥" मनुस्मृति अध्याय २

वेद, धर्मशास्त्र, सज्जनोंका आचार और आत्मसंतुष्टि, ये चार साक्षात् धर्मके लक्षण कहे गये है.

धर्मकी प्रशंसा श्रुतिमें इस प्रकारसे है,-

" धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा । धर्मिष्ठं वै प्रजा उपसर्पन्ति लोके ।
धर्मेण पापमपनुदति । तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति ॥ "

सर्व जगतकी प्रतिष्ठा धर्मही अर्थात् सर्व जगत् धर्ममेंही प्रतिष्ठित हुआहै. जो मनुष्य सर्व सामान्य और स्वस्ववर्णाश्रमाचारोचित धर्मको पालन करता है, उसीके पास सब प्रजाजन अपने अपने संशयोंकी और अशुभोंकी निवृत्ति और अपने कल्याणमंगलकी प्राप्तिके लिये आनकर प्राप्त होते हैं. सर्व मनुष्य धर्मके आचरणसे पापका निवारण करते हैं. इसीलिये सब उपायोंमें स्वस्वधर्मका आचरण करना यही मुख्य उपाय है ऐसा सभी विद्वान् कहतेहैं.

इसी श्रुतिका अर्थ वसिष्ठस्मृतिमेंभी कहाहै कि,-

"ज्ञात्वा चानुतिष्ठन्धार्मिकः प्रशस्यतमो भवति लोके-प्रेत्य च स्वर्गं लोकं समश्नुते ॥ २ ॥"

जो मनुष्य जानकर धर्मका सेवन करताहै, वह इस लोकमें धर्मात्मा कहाताहै और प्रशंसाके योग्य होताहै; और मरनेपर स्वर्गका सुख भोग करताहै.

प्रथमतः अनादि अनंत भगवानने समस्त प्रजाओंके हितार्थ वेदानुशासनसेही धर्मका प्रचार किया. उसीके अनुसार सर्व प्रजाओंके वर्ण और आश्रमोंके अनुकूल आचार पृथक् पृथक् व्यवस्थासे चल रहेथे. उन धर्मोंको 'श्रौत धर्म' ऐसा कहनेमें आताहै. उस प्रथम सृष्टिके परिवर्तन कालक्रमसे जब प्रजाओंकी अतिवृद्धि और उसके साथही बुद्धिमान्द्यके कारणसे प्रजाओंकी यथार्थ श्रुत्यर्थ जाननेमें बुद्धिसामर्थ्यकी क्षीणता होने लगी. तब उस समयके पूर्णरीतिसे श्रुत्यर्थ जाननेवाले क्रान्तदर्शी मनुआदि महात्माओंने उस श्रौतधर्मके पोषणार्थ श्रुत्यर्थके अनुसार अपने अपने प्रियआचरणोंके नियम करनेके अर्थ कितनेक श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और कितनेक स्मृतिग्रंथ निर्माण किये. जैसे मानवगृह्यसूत्र, मनुस्मृति; कात्यायन श्रौतसूत्र, कात्यायन गृह्यसूत्र, कात्यायनस्मृति; आश्वलायनश्रौतसूत्र, आश्वलायनगृह्यसूत्र, आश्वलायनस्मृति;आपस्तम्बश्रौतसूत्र, आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, आपस्तम्बस्मृति इत्यादि इत्यादि ऐसे ऐसे कईएक आचार्योंने श्रुतियोंके अर्थोंका स्मरण करत करते श्रुतिप्रोक्त धर्मके नियमोंका निबंधन किया. इसी कारणसे उन ग्रंथोंकी स्मार्तसूत्र और स्मृतिग्रन्थ,इस नामसे प्रसिद्धि हुई. ऐसे ऐसे आचार्य कालके क्रमसे अनेक हुए हैं. और वे उस उस कालमें प्रचलित वेदानुकूल चालचलनके नवीन नियमोंको प्रचारमें लगातेथे. इसीसे कहां कहां श्रुतिसे भिन्न और अन्य अन्य स्मृतियोंसेभी भिन्न भिन्न आचार उन उन स्मृतियोंमें दीखनेमें

आते हैं. इस कारणसे धर्ममें विकल्प प्राप्त हुए. उदाहरण जैसे "उदिते जुहोति" सूर्य उदय होनेके उपरांत होम करना. ऐसा एक श्रुतिवचन है. और "अनुदिते जुहोति" सूर्य उदय होनेके पहिले होम करना. ऐसाभी एक श्रुतिवचन है. अब श्रुतिवचन तौ सर्वथैव मान्यही है. तब श्रुतिमें उदित होम और अनुदितहोम इस प्रकारके दोनोंभी धर्म कहे तब श्रुतिप्रोक्त होनेसे तौ ये दोनोंभी धर्म मान्यही हैं. इससे धर्मका विकल्प होनेसे स्मृतिकारोंने अपने अपने स्मृतिग्रंथोंमें व्यवस्था की हैं. कितनेक स्मृतिकारोंने वैकल्पिक धर्मकोभी वेदमूलत्व होनेसे मान्य किया है. जैसे कात्यायन-सूत्रमें अनुदित होमकोही प्रधान मानाहै और आश्वलायनसूत्रमें उदित होमकोही प्रधान मानाहै. और अन्य सूत्रोंमें उदितानुदित होमको प्रशस्त मानाहै. अर्थात् विकल्पकोही स्वीकृत किया है इसीके अनुसार उन उन सूत्र या स्मृतियोंमें भिन्न भिन्न आचार यद्यपि दीखतेहैं; तथापि उनका मूल वेद होनेसे दोनों प्रकारकेभी धर्म मान्यही हैं. इसी उपलक्षणसे सब स्मृतियोंके और श्रौतसूत्र तथा स्मार्तसूत्रआदि अनेक ऋषिप्रणीत धर्मशास्त्रोंके आचार और पद्धतियोंकी भिन्नता दीखती होय तौभी वे सब आचार सभीको मान्यही हैं. परंतु विशेषतः उन उन सूत्रानुसारि-योंको विशेष माननीय और आचरणीय हैं. कारण, आचार्य ऋषिजन अपन प्रथम श्रुतियोंका निर्मथन करकेही धर्मशास्त्रका निर्माण करतेथे, उसके अनुसार अपन आचरण करतेथे और अपने शिष्योंको पढायके उनसेभी आचरण करवातेथे. आचार्यशब्दकी निरुक्ति ऐसीही है कि-

" आचिनोति हि शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि ।
स्वयमाचरते यश्च आचार्यः स निगद्यते ॥"

वेदशास्त्रके अर्थका प्रथमतः शोध करताहै, फिर वह शास्त्रार्थ आचारमें स्थापित करताहै; और स्वयंभी उसीके अनुसार आचरण करताहै, उसीको **आचार्य** कहते हैं.

इससे वे आचार्य जिन जिन अपने शिष्योंको धर्मशास्त्र पढवातेथे, उन शिष्योंके वे वे आचार्य बडे बडे माननीय पुरुष कहलाये गये. उन्हींको महाजन (बडे बडे मान्यपुरुष) कहतेहैं. जहांपर अनेक प्रकारके धर्मशास्त्रोंमें अनेक प्रकारके भिन्नभिन्नसे आचार दीखते होंगे और ग्राह्य आचा-रके विषयमें संदेह उत्पन्न होता होगा, वहां प्रथमतः तौ अपने बडे मान्य पुरुष सूत्रकार आचार्यके मतके अनुसार संदेहनिवृत्ति करके निःसंदेह आचरण करना चाहिये. ऐसाही तैत्तिरीयशिक्षोप-निषद्में कहाभी है कि,-

" अथ ते वृत्तविचिकित्सा वा कर्मविचिकित्सा वा स्यात् । अथ ये तत्र ब्राह्मणा अलूक्षा धर्मकामा युक्ता आयुक्ताः संमर्शिनः । ते यथा तत्र वर्तेरंस्तथा तत्र वर्तेथाः ॥"

गुरुजी अपने शिष्यको वेद पढाकर लौकिक व्यवहारको सिखाते सिखाते उपदेश करतेहैं कि,-हे शिष्य ! यदि तेरेको किसी आचारमें या किसी कर्ममें शंका उत्पन्न होती होगी, तौ जो ब्राह्मण धर्मतत्त्वको जानकर स्वयं उन धर्म क्रियाको आचरण करते होंगे, धर्मकी प्रसिद्धि होनी चाहिये ऐसा उदात्त विचार अपने मनमें रखते होंगे, कर्ममें लगे होंगे, और कर्म किये होंगे, और बडे विचारवान् होंगे; वे विद्वान् ब्राह्मण जैसे कर्म करते होंगे और कहते होंगे वैसे तुमनेभी उन कर्मोंके करनेमें प्रवृत्त होना.

इसी श्रुत्यर्थके अनुसार स्पष्ट अर्थ अन्यत्रभी कहाहै कि,-

" श्रुतयश्च भिन्नाः स्मृतयश्च भिन्ना नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥ "

श्रुतिभी भिन्नभिन्न अनेक हैं, और स्मृतिभी भिन्न भिन्न अनेक हैं, सब स्मृतियोंका कर्ता एक ऋषि नहीं है, कि जिस एकक़ाही वचन अविरोधसे सब स्मृतिकारोंके वचनोंसे संमत होनेसे प्रमाणतापूर्वक मान्यही होगा धर्मका सत्यस्वरूप तौ गुहागत पदार्थके समान गुप्त है. इदमित्थमेव यह ऐसाही है ऐसा कहा जानेमें किसीका सामर्थ्य नहीं. इसीवास्ते जिस मार्गसे अपने मान्य बडे सूत्रकार आदि महाजन चले आये उसी मार्गका आश्रय करना चाहिये.

इस प्रकारके धर्माचार्य अगणित होगयेहैं. उनकी यथावत् परिगणना होना अशक्य है. तथापि यथाशक्ति उनके नाम शास्त्रकारोंने परिगणित किये हैं उस प्रकारसे कहेजातेहैं-याज्ञवल्क्य-स्मृतिमें लिखाहै कि,-

"मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः । यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥
पराशरव्यासशंखलिखिता दक्षगौतमौ । शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः ॥"

मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तंब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप और वसिष्ठ ये २० आचार्य धर्मशास्त्रके बनानेवाले हैं.

पाराशरस्मृतिमें-कश्यप, गर्ग और प्राचेतस इनके नाम अधिक पाये जाते हैं. इनके सिवायभी अनेक आचार्य धर्मशास्त्रके प्रणेता हैं. और उनकी बनाई हुई अनेकशः स्मृतिभी प्रसिद्ध हैं. इससे इन धर्माचार्योंका यथावत् परिगणन होनाही अशक्य है. उन अनेक आचार्योंने उस समयमें श्रुतिके अनेक शाखाओंमें कहेहुए अनादि अनंत भगवानके अनुशासनके अनुसार- "वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः" इस व्यासोक्तिके अनुसार अनेकशः स्मृतिग्रंथ निर्माण किये हैं.

यदि सूक्ष्मरीतिसे विचार किया जाय तौ ऐसाही सिद्ध होता है कि, धर्माचार्योंने जितने धर्मशास्त्रके ग्रन्थ निर्माण किये हैं, वे वेदके मंत्र और ब्राह्मणग्रंथोंके आशयको अपने अपने विचार शक्तिके अनुसार विचार करके वैदिक धर्मानुशासनके अभिप्रायको प्रकट करनेके अर्थही निर्माण किये हैं. इससे "नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते" इस व्याख्यानपद्धतिके अनुकूल सभी धर्मशास्त्रीय ग्रंथ श्रुतिमूलकही हैं.

इस सिद्धान्तमें यह एक आक्षेप आनकर प्राप्त होता है कि, सब स्मृतियोंके वचनोंके प्रतिपाद्यविषय क्रमशः वेदानुवचनोंके अनुसार कहेंगे तौ ऋग्वेदादिमें क्रमसे प्रमाण नहीं मिलते तब इनको मूल वेदका प्रामाण्य है यह कैसा कहाजाय? इस आक्षेपका यही समाधान है कि, सांप्रतकालमें आप ऋगादि चारों वेद समझते हैं. परन्तु उन वेदोंकी कितनी शाखाएं हैं, और उनमें कितनी प्रचलित और उपलब्ध हैं ? इनकाभी तौ कुछ विचार करना चाहिये ? देखिये; चरणव्यूहनामक ग्रन्थमें चारों वेदोंके भेद कहेहुए हैं, ऋग्वेदके आठ भेद, यजुर्वेदके छयांसी भेद, सामवेदके सहस्र भेद और अथर्वण वेदके नव भेद अर्थात् इतनी शाखायें चारों वेदोंकी हैं. सांप्रत इन शाखाओंका यथावत् प्रचार दीखता नहीं. कहींकहीं कितनेक शाखाओंकी प्रसिद्धि रही है. तब कहिये, उनउन ऋषियोंने कौनसे वेदके कौनसे शाखाके मूलवचनोंके अनुसार धर्मशास्त्रमें नियम रखे हैं; यह समझना वडा कठिन है. अतएव बुद्धिमानको यही विचार करना चाहिये कि, अनेक धर्मशास्त्रोंमें अनेक प्रकारके विधि और निषेध कहे हैं वे सब वेदमूलकही हैं. बस, इतना कथन बहुत है. जो कोई आधुनिक विद्वान् 'स्मृतिग्रन्थोंमें मनमानी बातें आचार्योंने कही हैं वे वेदमूलक नहीं होनेसे हमको अमान्य हैं' ऐसा कहके खडे होजाते हैं, यह उनका कहना ठीक नहीं होसकता. कारण, वेदकी शाखा अनेक होनेसे किस शाखाके प्रमाणके अनुसार उन्होंने अपने धर्मशास्त्रमें वचनोंका निर्माण किया है यह वह नहीं जानसकते, और अन्यभी कोई नहीं जानसकते. तौ फिर उनको निर्मूल कहनेका साहस तौभी क्योंकर करना चाहिये ? इससे याज्ञवल्क्यस्मृति पाराशरस्मृति आदिकोंमें कहेहुए धर्माचार्योंके सभी वचन वेदप्रमाण मूलकही हैं, अमूल कुछभी नहीं. यही सिद्ध होता है.

इस प्रकारसे श्रुतिके अनुसार स्मृतिग्रंथ अनेक ऋषियोंके द्वारा निर्माण होकर इस जगत्में वेदप्रोक्त भगवदाज्ञाको प्रकाशित करके धर्मकी वृद्धि और रक्षणसे जगत्के कल्याणार्थ प्रवृत्त हुए हैं.

अथ प्रकृतमनुसरामः-

इन सब स्मृतियोंसे श्रौतधर्मकाही स्मार्तधर्म इस नामसे रूपान्तर हुआहै, अर्थात् इनमें कहेहुए धर्म वेदमूलक हैं. और इनके आचरण करनेसे मनुष्यजन्मकी कृतार्थता है यह विचार करके बलिया जिलांतर्गत चरजपुराग्राम निवासी श्रीबाबू साधुचरणप्रसादजी इन महाशयने सब धर्मशास्त्रोंका अनुक्रमानुसार संग्रहकरके धर्मके सब आचारोंका एकही ग्रंथसे समस्त सज्जनोंको लाभ होनेके अर्थ समुद्रमंथनके समान महान् परिश्रमसे यह परमपवित्र धर्मशास्त्रसंग्रह नामका यथार्थनामा अत्यंत पवित्र धर्मग्रंथ निर्माण किया है.

इस ग्रंथमें (४४) स्मृतियोंके प्रमाण वचनोंका अत्यंत विचारपूर्वक समावेश किया गया है. उन स्मृतिग्रंथोंके नाम इस प्रकारसे हैं:-

संख्या.	स्मृतियोंके नाम.	संख्या.	स्मृतियोंके नाम.	संख्या.	स्मृतियोंके नाम.
(१)	मनुस्मृति	(१२)	बृहस्पतिस्मृति	(२५)	बौधायनस्मृति
(१ क)	वृद्धमनुस्मृति	(१३)	पाराशरस्मृति	(२६)	नारदस्मृति
(२)	याज्ञवल्क्यस्मृति	(१३ क)	बृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र	(२७)	सुमन्तुस्मृति
(२ क)	वृद्धयाज्ञवल्क्यस्मृति	(१४)	व्यासस्मृति	(२८)	मार्कण्डेयस्मृति
(३)	अत्रिस्मृति	(१५)	शंङ्खस्मृति	(२९)	प्राचेतसस्मृति
(४)	विष्णुस्मृति	(१५ क)	लघुशंङ्खस्मृति	(३०)	पितामहस्मृति
(४ क)	वृद्धविष्णुस्मृति	(१६)	लिखितस्मृति	(३१)	मरीचिस्मृति
(५)	हारीतस्मृति	(१६ क)	शंङ्खलिखितस्मृति	(३२)	जाबालिस्मृति
(५ क)	लघुहारीतस्मृति	(१७)	दक्षस्मृति	(३३)	पैठीनसिस्मृति
(६)	औशनसस्मृति	(१८)	गौतमस्मृति	(३४)	शौनकस्मृति
(६ क)	औशनसस्मृति	(१९)	शातातपस्मृति	(३५)	कण्वस्मृति
(६ ख)	औशनसस्मृति	(१९ क)	दूसरी शातातपस्मृति	(३६)	षट्त्रिंशन्मत
(७)	आंगिरसस्मृति	(१९ ख)	वृद्धशातातपस्मृति	(३७)	चतुर्विंशतिमत
(७ क)	दूसरी आंगिरसस्मृति	(२०)	वसिष्ठस्मृति	(३८)	उपमन्युस्मृति
(८)	यमस्मृति	(२० क)	वृद्धवसिष्ठस्मृति	(३९)	कश्यपस्मृति
(८ क)	बृहद्यमस्मृति	(२१)	प्रजापतिस्मृति	(४०)	लौगाक्षिस्मृति
(९)	आपस्तम्बस्मृति	(२२)	देवलस्मृति	(४१)	क्रतुस्मृति
(१०)	संवर्तस्मृति	(२२ क)	दूसरी देवलस्मृति	(४२)	पुलस्त्यस्मृति
(११)	कात्यायनस्मृति	(२३)	गोभिलस्मृति	(४३)	शाण्डिल्यस्मृति
		(२४)	लघुआश्वलायनस्मृति	(४४)	मानवगृह्यसूत्र

इस ग्रंथमें मुख्य मुख्य अनेक प्रकरण, उनमेंके विषय और उनके भेद और उनके प्रकारांतर इनका पृथक्पृथक् सविस्तर वर्णन कियागया है. उनमें मुख्यतः इन व्यापक प्रकरण और उनमेंके मुख्यमुख्य विषयोंका वर्णन इस प्रकारसे है.—

धर्मशास्त्रसंग्रहके प्रकरणोंका तदंतर्गत मुख्यमुख्य विषयोंका सूचीपत्र.

संख्या. प्रकरण.

१ धर्मप्रकरण

२ सृष्टिप्रकरण

३ देशप्रकरण
- १ पवित्रदेश
- २ तीर्थ
- ३ अपवित्र देश

४ ब्राह्मणप्रकरण
- १ ब्राह्मणका महत्त्व
- २ मान्यब्राह्मण और पंक्तिपावन ब्राह्मण
- ३ ब्राह्मणका धर्म
- ४ ब्राह्मणके लिये योग्य प्रतिग्रह
- ५ ब्राह्मणके आपत्कालका धर्म
- ६ ब्राह्मणके लिये भक्ष्याभक्ष्य
- ७ अयोग्य ब्राह्मण
- ८ मूर्खब्राह्मण

५ क्षत्रियप्रकरण
- १ क्षत्रियका धर्म
- २ क्षत्रियके आपत्कालका धर्म

६ राजप्रकरण
- १ राजाका महत्त्व
- २ राजाका धर्म
- ३ राज्यप्रबंध
- ४ राज्यकर
- ५ युद्ध

७ व्यवहार और राजदण्ड-प्रकरण
- १ ऋणदान, बंधक, जामिन, अभियोग, न्याय, व्याज, सत्त्व, साक्षी और शपथ
- २ धरोहर
- ३ अन्यकी वस्तु चोरीसे बेंचना
- ४ साझीदार
- ५ दियाहुआ दान लौटा लेना
- ६ भृत्य, दासआदिका विषय
- ७ प्रतिज्ञा और मर्यादाका उल्लंघन
- ८ वस्तु खरीदने, बेंचने और लौटानेका विधान
- ९ पशुपाल और पशुस्वामीका विवाद
- १० सीमाका विवाद
- ११ गालीआदि कठोर वचन
- १२ मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष और वस्तुपर प्रहार करनेका दंड
- १३ चोरी
- १४ डकैती आदि साहस
- १५ व्यभिचार आदि स्त्रीसंग्रहण
- १६ जूआ
- १७ दंडका महत्त्व, दंडका विधान और महापातकी, धूर्तव्यापारी, छली मनुष्य आदिका दंड

८ वैश्यप्रकरण
- १ वैश्यका धर्म
- २ वैश्यके आपत्कालका धर्म

९ शूद्रप्रकरण
- १ शूद्रका धर्म
- २ मान्य शूद्र
- ३ शू[illegible]षयमें अनेक बातें

१० ब्रह्म[illegible]**सीतला रोगसे पीडित** [illegible]**सीनारायण " का जन्म** [illegible]**नारायण अबतक वर्त्तमान** [illegible]**को तीन कन्याएं भी हुई**

११ [illegible] **पर इस समय इन तीनों-** [illegible]**पने पुत्रोंके साथ वर्त्तमान हैं।**

इस प्रकारसे इस ग्रंथमें छब्बीस महाप्रकरण हैं. और उनमें प्रत्येक प्रकरणमें कितनेक अवांतर मुख्य मुख्य विषयोंके प्रकरण हैं, और उन प्रत्येक अवांतर प्रकरणोंमें कितनेक भिन्नभिन्न प्रकारके मिलके १९४८ एक हजार नौसे अडतालीस अंतर्गत विषय हैं. जिनकी विषयानुक्रमणिका सविस्तर रीतिसे इस प्रस्तावनासे अलग लिखी है उन विषयोंमेंभी अनेक सूक्ष्मसूक्ष्म विषय वहां वहां प्रतिपादन किये हैं. और जहां तहां सैकडों स्थलोंमें अनेक धर्मशास्त्र ग्रन्थोंके विशेष सूचनार्थ प्रमाण वचनोंके सहित टिप्पणियांभी लगा दीगई हैं. इसके अनंतर अनेक स्मृतियोंके संग्रहका मूल वचनोंका परिशिष्ट भाग लगाया है. जिसमें अनेक टिप्पणियोंमें प्रमाण वचनोंका पूर्ण समावेश होगया है. इसके पश्चात् धर्मशास्त्र ग्रन्थमें जो पारिभाषिक संज्ञाशब्द हैं उनके अर्थ लगाय दिये गये हैं. उन संज्ञाशब्दोंका कोश–इस प्रस्तावनाके आगे जो १९४८ विषयोंकी सविस्तर विषयानुक्रमणिका दीगई है उसके पश्चात् लगाया गया है. उन शब्दोंके अर्थ–ग्रन्थके पीछे ५४९ पृष्ठसे दिये गये हैं. इस प्रकारसे सर्व उपकरणोंके साथ यह महान् सर्वोपकारी परममान्य सर्व धर्मशास्त्रोंका एक अद्वितीय भांडागारके समान धर्मशास्त्रसंग्रह नामक धर्मग्रंथ तैयार हुआ है. इस ग्रन्थके फुलिसकेप् साईजके ५६० पृष्ठ हैं. इस ग्रन्थके योजनाके प्रयत्न अत्यंतही प्रशंसनीय हैं. यह ग्रन्थ वैदिकधर्मानुयायी प्रत्येक मनुष्यमात्रको स्वकीय आचारका प्रकट उपदेश करनेमें साक्षात् धर्मोपदेशक धर्माचार्यही है. इसमें लवमात्रभी सन्देह नहीं.

ऐसा यह आचार, व्यवहार, धर्मनीति, राजनीति, दीवानी और फौजिदारी, राजकीय दंडानुशासन, धर्मानुसार दिनचर्या, स्त्रीपुरुषोंके सामान्य धर्म और विशेष धर्म, गर्भाधानादि सर्व संस्कार, पुत्रादिकोंके धर्म, सर्व पापोंके प्रायश्चित्त, कर्मविपाक, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, मोक्षधर्म, योगानुशासन इत्यादि बडेबडे विशाल विषयोंसे ५९ स्मृतिग्रंथोंके प्रमाणानुसार सर्वांगसुंदर परमादरणीय धर्मशास्त्रसंग्रह ग्रन्थ है. यह ग्रंथ समस्त सनातन वैदिकधर्मानुयायी, धर्मधुरंधर आचार्य, धर्माधिकारी, सर्व संप्रदायके ब्राह्मण, राजा, महाराजा, जहागीरदार, जमीदार, बडेबडे सभ्य सज्जन, महाजन, शेठ, साहुकार, सद्गृहस्थ, साधु, बैरागी, संन्यासी, स्त्री, पुरुष इनको स्वस्वधर्म और धार्मिक आचरणके ज्ञानार्थ अवश्य संग्राह्य है. कारण, इस एकही ग्रन्थके संग्रहसे वैदिकसिद्धांतानुसारी ५९ स्मृति ग्रंथोंका और सर्व सनातन धर्मतत्त्वके संग्रहका फल निश्चयसे प्राप्त हो सकताहै. जैसे कि, "सर्वं पदं हस्तिपदे निमग्नम्" सर्व प्राणियोंके पांव पृथ्वीपर उठेहुए हस्तिके पांवमें समाते हैं. उसी प्रकारसे इस एकही धर्मशास्त्रसंग्रह ग्रन्थमें सभी धर्मशास्त्रोंके सर्व तत्त्वोंका सार सब तरहसे अवतीर्ण होगयाहै.

हमको इस विषयमें बडा खेद होताहै कि, इस अत्यंत पवित्र अनुपम मान्य महाग्रंथका आज कितनेक वर्षोंसे अविश्रांत परिश्रम करके अनेक धर्मशास्त्रसागरका मंथन करके धर्मतत्त्वरूपी रत्नोंका संग्रह करनेवाले परम पवित्र जगन्मान्य श्रीबाबू साधुचरण प्रसादजी : इन्होंने सब स्मृतिवचनोंका संग्रह करके और भाषांतर, टिप्पणियां, प्रमाण, परिशिष्ट और संज्ञाशब्दार्थसंग्रह पूर्वक संपूर्ण तैयार होनेपर छापके प्रसिद्ध करनेके लिये इसके रजिष्ट्री हक्क समेत हमको यह ग्रंथ समर्पण किया. परन्तु इस अवधिमें ग्रंथके संपूर्ण छपकर तैयार होनेसे प्रथमही वे श्रीबाबू साधुचरणप्रसादजी अकालमेंही कुछ कालतक रोगग्रस्त होकर इस अनित्य संसारको छोडकर वैकुंठवासी होगये ! ! ! इससे हमारी उत्कंठा अति शीर्ण होगई. तथापि, उन महाशयने अंतकालके पहले अपनी रुग्ण अवस्थामें हमको परम उदार अंतःकरणसे प्रेरणा की कि, इस धर्मशास्त्रसंग्रह ग्रन्थको अवश्य छापके संपूर्ण सनातन वैदिकधर्मानुयायी बांधवोंको मेरी की हुई शास्त्रपरिशीलनसेवा अवश्य समर्पण करेंगे; जिससे मैं कृतार्थ होऊंगा. ऐसा उनका अपश्चिम पत्र आनेसे उनके उसी उत्साहके साथ हमने बहुत द्रव्य खर्च करके यह सर्वांगसंपूर्ण धर्मशास्त्रसंग्रह ग्रन्थ बंबईमें स्वकीय "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्–मुद्रणालयमें शुद्ध स्वच्छ सुन्दराक्षरोंमें सुन्दर पुष्ट चिक्कण कागजोंपर फुलिस्केप् बडे साईजमें व्यवस्थाके साथ सुन्दर छापकर प्रकाशित कियाहै.

अब हम इससे पूर्ण आशा रखते हैं और प्रार्थनाके साथ निवेदन करते हैं कि, समस्त सभ्यसज्जन विशेष करके राजा महाराजा और चातुर्वर्णिक सभी प्रतिष्ठित पुरुष अवश्य इस ग्रन्थको संग्रह करके इसके अनुसार कर्मोंका प्रचार करके धार्मिक, नैतिक और पारमार्थिक उन्नति करेंगे और अपने मनुष्यजन्मको धार्मिकाग्रेसरत्वसे धन्य करेंगे. और श्रीबाबू साधुचरणप्रसादजी इनके ग्रन्थरचनाके प्रयासको और हमारे मुद्रण और प्रकाशनके प्रयत्नको सफल करेंगे.

समस्तधार्मिकसज्जनोंका प्रेमाभिलाषी:–

खेमराज श्रीकृष्णदास. "श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयाध्यक्ष–मुंबई.

स्वर्गीय बाबू साधुचरणप्रसादजीकी स्वयं लिखित भूमिका।

भारतभ्रमण पुस्तक समाप्त होनेके पश्चात् सम्वत् १९५८ में जब कि मेरी अवस्था ५० वर्षकी हुई तब मैंने अपने जन्मस्थान (बलिया जिलेके) चरजपुरासे आकर काशीमें निवास आरंभ किया। सम्वत् १९६१ के फाल्गुनमें मैंने इस पुस्तकका काम आरंभ किया, जो सर्वशक्तिमान् परमात्माकी कृपासे आज समाप्त हुआ। मैं आशा करताहूं कि इसको पढनेसे सर्वसाधारण तथा विद्वानोंको थोडे परिश्रमसे धर्मशास्त्रका बोध होसकेगा और वे लोग धर्मशास्त्रानुसार कार्य करनेका उद्योग करेंगे।

स्मृतियोंमें हिन्दुओंके सम्पूर्ण कर्मोंका विधान है। विना स्मृतियोंके हिन्दू अपना धर्म कर्म नहीं समझ सकते। हिन्दुओंके राजत्वकालमें राजालोग स्मृतियोंके अनुसार राजप्रबन्ध तथा अभियोगोंका विचार करतेथे, स्मृतियां ही कानूनकी पुस्तकें थीं; सब वर्ण तथा आश्रमके लोग स्मृतियोंके बतलाये हुए मार्गपर चलते थे तथा स्मृतियोंके अनुसार प्रायश्चित्त करते थे।

जैसे महाभारत और पुराणोंके सुनने सुनानेकी चाल है वैसे स्मृतियोंकी भी होनी चाहिये क्योंकि ऐसा न होनेसे सर्वसाधारण लोग अपने धर्मको न जान सकेंगे। याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्यायके ३३४ श्लोकमें लिखा है कि जो विद्वान् इस स्मृतिको प्रतिपर्वमें द्विजोंको सुनावेगा वह अश्वमेध यज्ञ करनेका फल प्राप्त करेगा। अत्रिस्मृति–६श्लोकमें है कि पापी और धर्मदूषक मनुष्य भी इस उत्तम धर्मशास्त्रको सुनकर सब पापोंसे मुक्त होजावेगा।

याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्यायके ४–५ श्लोकमें है कि, मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य उशना, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप और वशिष्ठ; ये २० महर्षि धर्मशास्त्र बनानेवाले हैं अर्थात् मनुस्मृति आदि २० धर्मशास्त्र हैं। इनमेंसे कई ऋषियोंके नामसे एक एक या दो दो और धर्मशास्त्र हैं; जिनमेंसे किसीके नामके आदिमें लघुशब्द, किसीके नामके आदिमें बृहत्शब्द और किसीके नामके आदिमें वृद्धशब्द लगा हुआ है और २० स्मृतियोंके अतिरिक्त बोधायन, नारद, गोभिल, देवल आदि और भी बहुत से धर्मशास्त्र हैं; इनमें पूर्वोक्त २० धर्मशास्त्र प्रधान हैं, जिनमें मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति विशेष मान्य तथा प्रतिष्ठित हैं; इनके अनन्तर लघु, बृहत् और वृद्ध शब्दसे युक्त स्मृतियां तथा २० स्मृतियोंसे बाहरकी बोधायन आदि स्मृतियां माननीय हैं।

ब्राह्मण सब वर्णोंमें प्रधान है, इसलिये स्मृतियोंमें बहुतसे धर्म कर्म ब्राह्मणोंपर कहे गये हैं, किन्तु वास्तवमें उनमेंसे बहुत धर्म कर्म केवल ब्राह्मणोंके लिये, बहुत द्विजातियोंके लिये, बहुतसे चारोंवर्णोंके लिये और बहुत धर्म कर्म मनुष्यमात्रके लिये जानना चाहिये।

ऋषियोंके मतभेदसे किसी किसी विषयमें स्मृतियोंका परस्पर विरोध देख पडता है; वे दोनोंकी मत माननीय हैं; किन्तु स्मृतियोंमें किसी किसी स्थानपर पीछेके लिखे हुए तथा अशुद्ध श्लोक हैं। मनु आदि स्मृतियोंमें मांसभक्षण, मदिरापान और परस्त्रीसंभोगके बहुत दोष दिखाये गये हैं और इनके लिये बडे बडे प्रायश्चित्त लिखेहुए हैं; किन्तु मनुस्मृति–५ अध्यायके ५६ श्लोकमें (जिससे पहिले बहुत से श्लोकोंमें मांसभक्षण दोष दिखाया गया है) लिखा है कि मांसभक्षण, मदिरापान और मैथुन करनेमें दोष नहीं है; क्योंकि इनमें जीवोंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति रहती है; किन्तु इनसे निवृत्ति होनेसे महाफल मिलता है। ऐसेही पीछेके जोडेहुए और और भी अनेक श्लोक हैं और एकही स्मृतिकी कई एक पुस्तकोंको मिलानेपर अनेक श्लोकके एक या अनेक शब्द भिन्न भिन्न प्रकारके मिलते हैं, जिनसे अर्थ बदल जाते हैं। जहां एक पापके छोटे बडे कई प्रकारके प्रायश्चित्त लिखे हुए हैं, वहां अनजानमें पाप करनेवाले अज्ञानी पापी अथवा बालक वृद्धके लिये छोटा प्रायश्चित्त और जानकर पाप करनेवाले, ज्ञानी मनुष्य या सयानेके लिये बडा प्रायश्चित्त समझना चाहिये।

इस पुस्तकमें टीकाके नीचे जो टिप्पणियां लिखी गई हैं, उनके मूलश्लोक तथा सूत्र इस पुस्तकके अन्तमें दिये गये हैं और उनके बाद संज्ञाशब्दार्थ हैं जिससे अनेक शब्दोंके अर्थका बोध होगा। संज्ञाशब्दार्थ और भूमिकामें लिखेहुए विषयोंके मूलश्लोक भी पुस्तकके अन्तमें दिये हुए श्लोकोंमें हैं।

फाल्गुन संवत् १९६८ — सज्जनोंका अनुचर,
साधुचरणप्रसाद,–काशी।

स्वर्गीय-ग्रन्थकर्ता बाबू साधुचरणप्रसादजीकी संक्षिप्त जीवनी ।
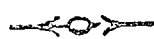
विहार प्रान्तके शाहाबाद जिलेमें भदवर नामकी एक प्रसिद्ध बस्ती है । हमारे चरितनायकके वंशके मूल पुरुप बाबू नन्दासाहि वहांके एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित निवासी थे । वह व्याहुत वंशी वैश्य थे । बाबू सुरिष्टसाहि उनके एक मात्र पुत्र थे । बाबू सुरिष्टसाहिके दो पुत्र हुए बाबू उच्छनसाहि और बाबू सनाथसाहि । इसके अतिरिक्त उन्हे एक कन्या भी हुई थी जिसका विवाह बलिया जिलेके चरजपुरा नामक ग्राममें हुआथा । बाबू उच्छनसाहि कुछ दिनोंके लिये अपना देश छोड़कर उड़ीसा चलेगये और वहीं रहकर व्यापार करनेलगे । उड़ीसा जानेके समय उनकी स्त्री मोतियाकुँअरि गर्भवती थीं इसलिये वह उन्हें घर परही छोड़गये थे । उनके जानेके कुछ मास बाद सम्वत् १८२१ में उनकी स्त्रीने एक पुत्र प्रसव किया जिनका नाम बाबू कर्त्तासाहि रखागया । सम्वत् १८३४ में बाबू कर्त्तासाहि तेरह वर्षकी अवस्थामें अपने पिताजीके पास उड़ीसा चलेगये और वहीं रहनेलगे । बाबू उच्छनसाहिने १८ वर्षतक उड़ीसामें रहकर व्यापारमें बहुत धन और यश प्राप्त किया था । संवत् १८३९ में वह स्वदेश लौटे । उन दिनों देशमें अशान्ति बहुत थी और प्रबन्ध ठीक न था । इसलिये उन्हे भय था कि भदवरमें चोर डाकुओंके उपद्रवके कारण इतना धन लेकर वह स्वच्छन्दता पूर्वक न रहसकेंगे । इसलिये बाबू उच्छनसाहि अपने पुत्र बाबू कर्त्तासाहिको साथ लेकर अपनी बहनकी ससुराल चरजपुरामें चलेगये । इस बीचमें उनके छोटे भाई बाबू सनाथसाहिका देहान्त होगया था । इसलिये उन्होंने अपनी स्त्री, विधवा भावज तथा परिवारके अन्य लोगोंको भी भदवरसे वहीं बुलवालिया और वहीं एक बड़ा मकान बनवाकर रहनेलगे । बाबू कर्त्तासाहिके, बाबू रामतवक्कलसाहि, बाबू लालविहारी साहि और बाबू ईश्वरदत्त साहि नामक तीन पुत्र हुए । बाबू रामतवक्कलसाहिके ९ पुत्र हुए पर वे सब निःसन्तानही इस संसारसे विदा होगये । बाबू ईश्वरदत्तसाहिके वंशज रामप्रीति अपने पुत्रके साथ वर्त्तमान हैं । सम्वत् १८७८ में मझले बाबू लालविहारीसाहिके बाबू विष्णुचन्द्र नामक एक पुत्र हुए । इसके बाद बाबू लालविहारीको एक और पुत्र हुए थे, पर दोही वर्षकी अवस्थामें उनका स्वर्गवास होगया ।

बाबू विष्णुचन्द्र बड़े धार्म्मिक और उद्योगी थे । उन्होंने अपने जीवनमें व्यापारसे बहुतसा धन कमाया था, अनेक स्थानोंपर दूकानें और कोठियां खोली थीं, चारों धाम सातों पुरी तथा अनेक तीर्थोंकी यात्राएं की थीं, और एक बड़ा शिवालय अनेक कूएं, बाग तथा शिवालयके पास पक्के मकान बनवाये थे । सम्वत् १८९७ में उनके प्रथम पुत्र बाबू मेवालाल हुए जो अभीतक वर्त्तमान हैं । उनके ग्यारहवर्ष बाद हमारे चरित-नायक बाबू साधुचरणप्रसादका सम्वत् १९०८ में चैत्रकृष्ण प्रतिपदा रविवारको १९ दण्ड ५६ पल पर जन्म हुआ था । सम्वत् १९१३ में बाबू विष्णुचन्द्रके तीसरे पुत्र बाबू संतचरणप्रसाद हुए जो चारही वर्षकी अवस्थामें सीतला रोगसे पीड़ित होकर स्वर्गवासी होगये । उनके चौथे और सबसे छोटे पुत्र बाबू " तपसीनारायण " का जन्म सम्वत् १९१६ में आषाढ़ कृष्ण १० शनिवार को हुआ था । बाबू तपसीनारायण अबतक वर्त्तमान हैं और काशीमें रहते हैं । इन चार पुत्रोंके, अतिरिक्त बाबू विष्णुचन्द्रको तीन कन्याएं भी हुई थीं जो बाबू मेवालालसे छोटी और बाबू साधुचरणप्रसादसे बड़ी थीं । पर इस समय इन तीनोंमेंसे कोई भी जीवित नहीं हैं । परन्तु उनमें से एक के पुत्र रघुनाथशरण अपने पुत्रोंके साथ वर्त्तमान हैं ।

बाबू साधुचरणप्रसादका जन्म चरजपुरा, जिला बलियामें हुआ था। बाल्यावस्थासे ही उनकी बुद्धि बहुत तीव्र थी, वह थोड़े ही परिश्रम और समय में प्रत्येक नवीन विषयका ज्ञान प्राप्त करलेतेथे। यद्यपि बाल्यावस्थामें उन्हें किसी पाठशाला या स्कूलमें जाने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ था, तोभी सरस्वती देवीकी विशेष कृपा होनेके कारण, घर परही उन्होंने पण्डितोंसे संस्कृत और हिन्दीका बहुत अच्छा अभ्यास करलिया था। देश और जातिकी प्रथाके अनुसार इनके पिताने इनका विवाह ग्यारह ही वर्षकी अवस्थामें चौराई जिला शाहाबादके बाबू रत्नचन्द्रकी रूपवती कन्यासे करादिया था। पांच वर्ष बाद सम्वत् १९२४ में उनका द्विरागमन भी होगया उसी वर्ष बाबू साधुचरणप्रसाद तथा उनके छोटे भाई बाबू तपसीनारायण चरजपुराके निकट चान्दपुर के मठ के महंत श्रीदीनदयालदास जी के शिष्य हो गये। एक वर्ष बाद सम्वत् १९२५ में माघ कृष्ण अष्टमी मंगलवारको बाबू साहबको एक कन्या हुई थी पर वह कई एक मासकी होकर कालकवलित होगई। उसके दो वर्ष बाद उनकी स्त्रीका भी देहान्त होगया था, इसलिये उनके पिताजीने सम्वत् १९२८ के आषाढमें गंजरी, जिला बलियाके बाबू, गतिलालकी मुनिया कुँआरि नामकी सुशीला और रूपगुणसम्पन्ना कन्यासे इनका दूसरा विवाह करदिया। पतिव्रता स्त्रियोंमें जिन गुणोंकी आवश्यकता होती हैं, वह सब गुण मुनियाकुआरिमें वर्त्तमान थे। उनके गुणों और योग्यताके कारण कुटुंबके सभी लोग उनसे बहुत प्रसन्न रहते थे। लेकिन इतना सब कुछ होनेपरभी बाबू साधुचरणप्रसाद की स्वाभाविक साधुता बनीही रही। वह सदा विरक्तसे रहते थे और कभी सन्तान न होनेका कुछ खेद या दुःख न करते थे उनका ध्यान सदा धार्मिक कार्योंकी ओरही लगा रहता था सब प्रकारके गीत इत्यादि तथा अन्य प्रकारके आमोदसे ये अत्यंत घृणा किया करते थे और सब प्रकारके कुमार्गियोंसे ये सदा दूर रहते थे। पिताजीकी आज्ञाओंको ये सदा शिरोधार्य करके तदनुसारही कार्य्य किया करतेथे।

बाबूसाहबने ग्यारह वर्षकी अवस्था से ही भगवत्-भक्ति तथा कथा वार्तादिमें मन लगाया था। तेरहवें वर्षमें आपने पण्डित रामप्रतापजीसे तुलसीकृत रामायणका अर्थ पढा। आपके इस अध्ययनसे आश्चर्यकी बात यह हुई कि आपने उसमें अपने शिक्षक की अपेक्षा कहीं अधिक ज्ञान प्राप्त करलिया। तदुपरांत आपने सूरदास तथा तुलसीदासके अन्य ग्रंथोंका अध्ययन आरम्भ किया और थोडेही समयमें उनका बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त करलिया। सम्वत् १९२५ के भाद्रपदमें सूर्य्य ग्रहण लगा था उस अवसर पर आप तीर्थयात्राके लिये काशी पधारे थे। माघ शुक्ला १४ सम्वत् १९२७ को ये एक बार पहले पहल पांजीपाडा (जिला पुर्निया) गये। वहां इनकी बहुत बडी दुकान थी जहां कभी इनके पिताजी और कभी इनके बडेभाई बाबू मेवालालजी रहा करते थे। उस दूकानपर रूई, सुर्ती, पटुआ आदिका बहुत बडा कारबार होता था। इसके सिवा वहां महाजनीका भी खूब काम होता था। सम्वत् १९२८ के बैशाखमें वहांसे लौटनेपर आपका उल्लिखित दूसरा विवाह हुआ था। उस सालके मार्गशीर्षमें ग्रहणस्नानके लिये अपने छोटे भाईको साथ लेकर आप काशी गये और स्नानादि कर घर लौट आये। सम्वत् १९२९ के ज्येष्ठ मासमें आप फिर पांजीपाडा गये और वहांके कुछ अदालती काम करके एक साल बाद घर लौट आये। एक वर्ष मकान रहकर आपको फिर पांजीपाडा जानापडा। इस बार आपने वहां उर्दू लिखने पढनेका भी अभ्यास किया। इसके सिवा आपने वहां बंगला भाषा भी सीखी। यद्यपि आप बंगला लिख या बोल न सकतेथे, पर भलीभांति पढ और समझ लेते थे। सम्वत् १९३३ में आपने अंतिम बार पांजीपाडा जाकर कई कारणोंसे स्वरूपगञ्ज और पांजीपाडाकी दुकानें बन्द करनेका बन्दोबस्त किया। सम्वत् १९३४ में आपके पिताजीने रिविलगञ्ज जिला सारनमें हुंडीकी कोठी खोली और आप प्रायः वहीं काम देखने लगे। तब संवत् १९३५ के भाद्रपदमें उपरोक्त दोनों स्थानोंका व्यापार बन्द करादियागया।

व्यापार तथा काठीके कामके अतिरिक्त आप अदालती कामोंमें भी बहुत निपुण थे। जिलेकी अदालतोंके सिवा आप हाईकोर्टका काम भी भली भांति कर लेतेथे। प्रबंधशक्ति भी आपमें बहुत अच्छी थी। आप सदा सब कामोंकी देखभाल करते तथा उनपर यथोचित ध्यान रखते थे। इसीलिये पिताजी भी सब कार्य्य इन्हींपर छोड़ कर स्वयं तीर्थाटन करनेलगे थे। इनके पिताजी भी वाल्यावस्थासे ही पूजा पाठ आदि किया करते थे। ऐसा सुयोग्य पुत्र पाकर आपको धर्म्मकार्य्य करनेका अच्छा अवसर मिला। सम्वत् १९३३ में वह अपनी स्त्री तथा छोटे पुत्र बाबू तपसीनारायण को लेकर रेलगाड़ी होनेपर भी, अपने मकानसे पैदलही बक्सर आदि होतेहुये प्रयाग गये। वहीं आपने मकर मासमें त्रिवेणीतटपर कल्पवास किया। इसके बाद आप लगातार चौदह वर्षोंतक प्रति वर्ष प्रयाग जाकर कल्पवास किया करते थे। पहिली वार कल्पवास करके आप विन्ध्याचल होते हुये काशी लौट आये और वहीं कुछ दिनोंतक रहे। उसी अवसर पर चैत्र कृष्ण प्रतिपदा बुधवार (सम्वत् १९३४) को आपकी स्त्री, (हमारे चरित--नायककी माता-) का देहान्त होगया। सम्वत् १९३७ में आपने बद्रीनाथकी यात्रासे लौटकर घरमें रहना छोड़ दिया था और अपने शिवमन्दिरमें ही रह कर ईश्वरोपासनमें समय व्यतीत करना आरंभ किया वे केवल भोजन के समय घर आते थे। शेष समय वहीं शिवालयमें शान्तिपूर्वक देवाराधनमें व्यतीत करते थे। बाबू साधुचरणप्रसाद वाल्यावस्थासेही अपने छोटे भाई बाबू तपसीनारायणपर बहुत प्रीति रखतेथे, उन्हें तुलसीकृत रामायण पढाते थे तथा उत्तमोत्तम शिक्षायें दिया करते थे। वहभी सदा श्रद्धा पूर्वक आपकी आज्ञाओंका पालन करते थे। सम्वत् १९३५ में आपने उन्हें अंगरेजी पढ़नेके लिये रिविलगंजके स्कूलमें भरती करादिया संवत् १९३७ के माघमें आप प्रयाग गये। उस समय आपके पिताजी वहीं कल्पवास करते थे। मकर मास समाप्त होनेपर आप अपने पिताजीके साथ ओंकार पुरी, उज्जैन, काशी आदि गये। इसी यात्रामें उज्जैन जानेपर आपको एक ऐसी पुस्तककी आवश्यकता माल्रुम हुई " जो भारत भ्रमण करनेवालोंको आगे आगे मार्ग दिखलावे और किसी प्रधान स्थान अथवा वस्तुओंको देखनेसे छुटने न देवे। " जिसकी सहायतासे प्रत्येक तीर्थ तथा प्रसिद्ध स्थानमें जानेमें लोगोंको सुगमता हो। जिसके फल स्वरूप आपने आगे चलकर " भारतभ्रमण " ऐसा सर्वोपयोगी और सर्वाङ्गपूर्ण उत्तम ग्रंथ लिखडाला।

सम्वत् १९३९ के कार्तिकमें आप हरिहरक्षेत्रके मेलेमें गये और वहांसे गाडी, घोडा खरीद लाये थे। चरजपुराके दिहातोंमें सडक न होनेके कारण आप प्रायः घोडेकी सवारी किया करते थे, पर रिविलगंजमें आप गाडी परही चढा करते थे। सम्वत् १९४१-४२ में आपने आरा और सारन जिलेमें तीन गांव खरीदे, और उनमेंसे एक गांव बीरमपुर (परगना पवार जिला शाहाबाद) में कचहरी भी बनवाई सम्वत् १९४३ के आरम्भ में आप कलकत्ते गये और वहांसे लौटते समय वैद्यनाथजी गये। इसके वाद आपने शाहाबाद और सारनमें दो और गांव खरीदे और उनमेंसे एक गांव बाबू पाली (परगना आरा जिला शाहाबाद) में बडी कचहरी बनवाई अपने जिमींदारीका प्रबन्ध आपने बडी उत्तमतासे किया, बीरमपुरकी भाउली जमींनको नकदी कराया और कुल अराजियात की पैमाईस कराके लगान की झंझट मिटा दिया। सम्वत् १९४७ में आपके छोटे भाई बाबू तपसीनारायणने "एण्ट्रेन्स" पास करलिया। स्कूलमें उनकी दूसरी भाषा संस्कृत थी।

उपर कहाजाचुकाहै कि उज्जैनकी यात्रामें आपने "भारतभ्रमण" लिखने का विचार किया था। इस बीचमें आप प्रायः कलकत्ते काशी आदिकी यात्रा करते ही थे, इसलिये वह विचार और भी दृढ होगया। सम्वत् १९४८ के आश्विनमें आपने अपने छोटे भाई की सम्मतिसे और उन्हे अपने साथ लेकर अपनी जन्मभूमि चरजपुरासे यात्रा आरम्भ करदी। जिन जिन तीर्थों, नगरों या अन्य प्रसिद्ध स्थानोंमें आप गये, वहांके प्रसिद्ध स्थानों और वस्तुओंका पूरा पूरा पता लगाकर आपने उनका कुल वृत्तान्त लिखा। बडे बडे मन्दिरों तथा अन्य प्रसिद्ध इमारतों और

स्थानों के चित्र तथा नकशे बनवाये, तथा प्राचीन शिलालेखों की प्रति लिपियां तैयार कराई। हिन्दुओंके देवमन्दिरोंके अतिरिक्त आपने जैनों, बौद्धों, सिक्खों पारसियों और मुसलमानोंके भी प्रसिद्ध और पवित्र स्थानोंका वर्णन विस्तार पूर्वक लिखा था । पहली बारकी यात्रासे लौट कर आप मकान चलेगये और आपके छोटे भाई बाबू तपसीनारायण काशी चलेगये । आपकी दूसरी और तीसरी यात्रायें सम्वत् १९४९ में हुई और चौथी यात्रा संवत् १९५० में तथा पांचवीं यात्रा सम्वत् १९५३ में हुई । इस प्रकार आपने भारतके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें पांच बार पांच यात्रायें कीं और प्रत्येक यात्राका क्रम क्रमसे एक एक खण्डमें पूरा वर्णन करके भारत भ्रमणके पांच खड तैयार किया । यह पुस्तक रायल आठ पेजीके २४०० पृष्ठोंमें समाप्त हुई थी । इस पुस्तकमें आपने अंगरेजी, फारसी, हिन्दी और बँगलाके ग्रन्थोंके अतिरिक्त, प्राचीन वृत्त लिखनेमें स्मृति, पुराण, महाभारत, वाल्मीकीय रामायण आदि प्राचीन प्रमाण दियेथे संस्कृत ग्रंथोंसेभी बहुत सहायता ली थी । भारत भ्रमणमें प्रायः ७०० बडे बडे तीर्थों, नगरों और प्रसिद्ध स्थानोंका पूरा पूरा विवरण दिया गयाहै जिसमें पर्वतों, नदियों, वहांके निवासियों और उनकी रीति रस्मोंका वर्णन भी सम्मिलित है । प्राचीन तीर्थ आदिके वर्णनमें रामायण, महाभारत, पुराणों तथा स्मृतियोंसे विशेष सहायता लीगई है । रेलके बडे बडे जंक्शनोंसे जो जो लाईन गई हैं उनका उल्लेख तथा वहांसे बडे बडे स्थानोंकी दूरी भी उसमें दी-गई है । आप स्वयं अंगरेजी नहीं जानतेथे इसलिये "इम्पीरियल गजेटियर, हैंडबुक् आफ इंडिया" आदि अंगरेजी पुस्तकोंसे जानकारी प्राप्त करनेमें आपको अपने छोटे भाई बाबू तपसीनारायणसे बहुत अधिक सहायता मिली थी । तात्पर्य यह कि उक्त पुस्तकको सब प्रकारसे सर्वोपयोगी बनानेमें आपने कोई बात उठा नहीं रखी थी. सम्वत् १९६० में छपकर तैयार होजानेपर जब यह ग्रन्थ विज्ञ पत्र-सम्पादकोंके पास समालोचनार्थ भेजागया, तो सबोंने मुक्तकण्ठसे इस ग्रंथकी उपयोगिताकी प्रशंसा की । आपको उस ग्रन्थसे किसी प्रकारका लाभ उठाना इष्ट न था, इस-लिये आपने उसका मूल्य भी केवल लागत मात्र रखा था । उसपरभी आप अपनी स्वाभाविक उदारताके कारण उसकी बहुतसी प्रतियां योंही बांटा करते थे । अपने मकानपर आनेवाले मित्रों, परिचितों, विद्वानों और गुणज्ञोंसे आप कदापि मूल्य न लेते तथा योंही ग्रन्थ उसको भेंट करते थे। इस पुस्तककी रचना करके मानों आपने अपना बडा भारी अभीष्ट सिद्ध करलिया था । उसके बाद आप सदा सन्तुष्ट दिखलाई पडते थे ।

संवत् १९५२ मार्गशीर्ष कृष्ण १४ शुक्रवार शिवरात्रि और वृश्चिक संक्रांतिको ९॥। बजे दिन के समय शिवमंदिरपर आपके पिताजीका ७४ वर्षकी अवस्थामें स्वर्गवास होगया. इस बातके फिरसे कहनेकी आवश्यकता नहीं कि आप व्यापारमें बहुत निपुण थे और उसीमें आपने प्रचुर धनोपार्जन किया था । आपने सरकारसे दो तलवारें तथा एक दोनली बन्दूक रखनेका लाइसेंस भी प्राप्त किया था जो अबतक आपके छोटे पुत्र बाबू तपसीनारायणकोभी प्राप्त है ।

जिसप्रकार आपमें तथा आपके छोटे भाईमें आदर्श भ्रातृभाव था, ठीक उसी प्रकार इन लोगोंकी स्त्रियोंमें भी परस्पर बहुतही उत्तम सद्व्यवहार था । पर आपके बडे भाई बाबू मेवा-लालकी स्त्रीसे उन लोगोंको कुछ अनबन रहा करती थी । इसलिये संवत् १९५४ के आश्विनमें आप अपने छोटे भाईको अपने साथ लेकर बडे भाईसे अलग होगये थे। लेकिन जिमीदारी आदिका सब काम पहलेहीकी भांति साथहीमें होतारहा इसके सिवा आप लोगोंमें व्यवहारभी परस्पर पूर्व-वत् ही था, जिसके कारण देखनेवाले आप लोगोंमें कोई भेद नहीं समझते थे ।

संवत् १९५५ में आपकी स्त्री बीमार हुई और बहुत कुछ औषधि तथा सेवा शुश्रूषा होने पर भी अच्छी न होसकीं और अन्तमें फाल्गुन शुक्ल ८ संवत् १९५६ को ४० वर्षकी अवस्थामें

वह निःसन्तानही स्वर्ग सिधारीं। भविष्यमें वंश चलनेके विचारसे आपसे तीसरा विवाह करनेके लिये बहुत आग्रह कियागया पर आपने वह स्वीकार न किया ।

संवत् १९५८ के श्रावणसे आप स्थिररूपसे काशीमें रहने लगे । बलिया जिलेके एकाध ब्राह्मण विद्यार्थी सदा आप के पास आप के खरचसे रहाकरते थे । ब्राह्मणों और साधु संन्यासियोंका आप बहुत आदर करते थे । ग्रहण आदि अवसरोंपर शाहाबाद सारन बलिया आदि जिलोंसे आपके यहां बहुतसे लोग आया करते थे, उन्हें खिलाने पिलानेके अतिरिक्त आप और प्रकारसे भी उनका सत्कार करते थे । आप बहुतही शान्तिप्रिय और मिष्टभाषी थे आपका अधिकांश समय पुस्तकें पढ़ने या सुननेमें ही जाता था । आपने संस्कृत तथा हिन्दी पुस्तकोंकाभी बहुत अच्छा संग्रह किया था । आप नित्य गीताका पाठ करते थे आप घरसे बहुत कम बाहर निकला करते थे । खरचके लिये आपको जितनी आवश्यकता हुआ करती थी । वह आपके छोटे भाई चरजपुरासे भेजदिया करते थे ।

कुछ समय बीत जाने पर आपने एक ऐसा ग्रन्थ बनानेका विचार किया जिसमें भिन्न भिन्न स्मृतियोंकी सभी आवश्यक बातोंका पूरा पूरा उल्लेख हो और जिसके द्वारा थोड़े परिश्रमसे ही लोगोंको हिन्दूधर्म्म–शास्त्रका अच्छा बोध होसके । सम्वत् १९६१ में आपने तदनुसार धर्म्म–शास्त्र–संग्रह का काम आरम्भ कर दिया । और लगातार सात वर्षोंतक कठिन परिश्रम करके सम्वत् १९६८ में आपने उसको भी समाप्त करडाला । इस ग्रंथके सम्बन्धमें कुछ विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह ग्रंथ आपलोगोंके सामने ही उपस्थित है सम्वत् १९६९ के ज्येष्ठमासमें "श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयके अध्यक्ष श्रीमान् सेठ खेमराजजी एक बार आपसे मिलने आये । आप भारतभ्रमणके सदैवके लिये प्रकाशनका अधिकार सम्वत् १९६४ में उक्त सेठजीको देचुके थे । उस अवसर पर सेठजीने "धर्म्म–शास्त्रसंग्रह" छापने का वचन दिया और आपनेभी उसके प्रकाशनका सब अधिकार सेठजीको सहर्ष उदारताके साथ दे दिया ।

आपका प्रायः सर्वदा स्वस्थ शरीर रहा करता था सम्वत् १९६९ के वैशाखके आरंभमें आप एकबार बीमार हुए और बहुत कुछ औषधोपचार करनेपर दो मासबाद आप आराम भी होगये । केवल साधारण निर्बलता रहगई थी । उस समय आपने अपने छोटे भाई बाबू तपसीनारायणको, जो बिमारीके दिनोंमें आपके पासही थे, जाकर कारबार देखनेके लिये कहा । तदनुसार आषाढमें वह छपरा होते हुए चरजपुरा चलेगये । भादोंमें आपने पुराणसंग्रह नामक पुस्तककी रचना आरम्भ करदी । आपके आज्ञानुसार आश्विन के शुक्ल पक्षमें बाबू तपसीनारायण चरजपुरासे कुछ पुराण आदि लेकर आपके पास–काशी पहुँचे । उसी समय आपका स्वास्थ फिर कुछ बिगडनेलगाथा । आपने कहा भी था "पुराण संग्रह मेरे जीवनमें समाप्त होते नहीं दिखाई देता, पर क्या करूं खाली बैठे रहनेसे कुछ करते रहनाही अच्छा है " शायद पहली बीमारी की कुछ कसर रहगई थी जिससे आपको कब्जियत थी । आश्विन शुक्ल ८ को आपको ज्वर आया । बाबू तपसीनारायण तथा परिवारके अन्य लोगोंने डाक्टर वैद्योंको बुलवाने तथा आपकी सेवा शुश्रूषामें कोई उठा नहीं रखा; लेकिन कालके आगे किसीका कुछ बस नहीं चला । मार्गशीर्ष कृष्ण ७ सम्वत् १९६९ रविवार ९ बजे प्रातःकाल आपका पवित्र आत्मा इस असार संसारको सदाके लिये छोड़ स्वर्गकी ओर सिधारी । मृत्युके समय आपकी अवस्था ६० वर्ष ८ महीना ७ दिनकी थी । उस समय आपके छोटे भाई, उनके पुत्र तथा बड़े भाईके चिरंजीव काशीमें ही उपस्थित थे । बाबू तपसीनारायणने ही आपकी अन्त्येष्टि क्रिया की । संवत् १९५८ के श्रावणसे आपने काशीमें रहना आरंभ किया था । सम्वत् १९५९ के माघमें आप बाबू सेवालालके पुत्र हरिशंकरप्रसादके विवाहमें एकबार चरजपुरा गये थे और वहां दो तीन मास रहे थे ।

उसके बाद आप कभी चरजपुरा नहीं गये। संवत् १९६१ के माघमें बाबू तपसीनारायणके पुत्र हरनन्दन प्रसाद का विवाह था। उस अवसर पर आप गाँवके बाहर ही बाहर जाकर बारातमें सम्मिलित होगये थे और बारात विदा होजानेपर बाहरही बाहर काशी चले आये थे। बहुत आग्रह किये जाने परभी आप चरजपुरा नहीं गये। उस समय आपको छ दिनोंके लिये काशीसे बाहर रहना पड़ा था। उसके बाद आप फिर कभी काशीके बाहर नहीं गये। आपको केवल एकही कन्या हुई थी जो कई मासकी होकर स्वर्गगामिनी हुई।

इस समय आपके बड़े भाई बाबू मेवालाल, उनके पुत्र सूर्य्यदेव प्रसाद और हरिशंकर प्रसाद तथा छोटे भाई बाबू तपसीनारायण और उनके पुत्र हरनन्दनप्रसाद और हरिहरेशप्रसाद वर्त्तमान हैं बाबू तपसीनारायणका एक प्रपौत्र भी है। हरनन्दन प्रसाद और हरिशंकरप्रसाद सम्वत् १९६९ में एण्ट्रेन्स परीक्षा पास करचुके हैं। इति।
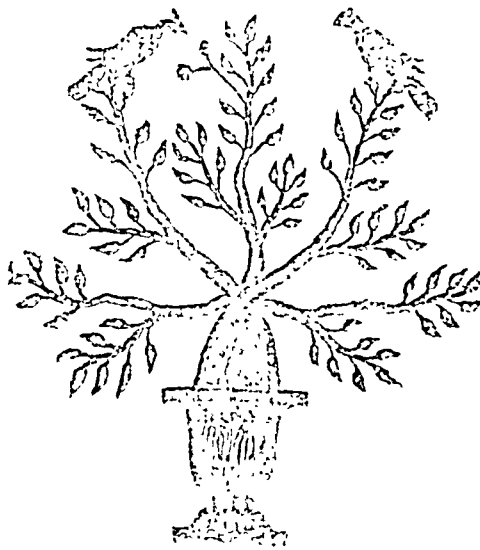
प्रकाशक—
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस—बम्बई.

श्रीः।

धर्मशास्त्रसंग्रहविषयानुक्रमणिका.

राज्यप्रबन्ध ३.

राज्य–कर ४.

युद्ध ५.

व्यवहार और राजदण्ड प्रकरण ७

ऋणदान बन्धक आदि १.

धरोहर २.

अन्यकी वस्तु चोरीसे बेचना ३.

साझीदार ४.

दियाहुआ दान लौटा देना ५.

भृत्य, दासआदिका विषय ६.

प्रतिज्ञा और मर्यादाका उलंघन ७.

वस्तु खरीदने, बेंचने और लौटानेका विधान

चोरी १३.

डकैती आदि साहस १४.

व्यभिचार आदि स्त्रीसंग्रहण १५.

जूआ १६.

दंडका महत्त्व, दंडका विधान आदि १७.

वैश्यप्रकरण ८.

वैश्यका धर्म १.

वैश्यके आपत्कालका धर्म २.

शूद्रप्रकरण ९.

शूद्रका धर्म १.

ब्रह्मचारीके लिये निषेध ३

उपाकर्म और अनध्याय ४.

गृहस्थप्रकरण ११.

गृहस्थाश्रमका महत्त्व १.

मनुष्यका जन्म २.

संस्कार ३.

विषयानुक्रमांक. विषय. पृष्ठांक. पंक्त्यंक.

गृहस्थ और स्नातकका धर्म ९.

आदर मानकी रीति ६.

स्त्रीका धर्म २.

स्त्रीको अन्य पतिका निषेध ३.

स्त्रीका नियोग ४.

जातियोंके विषयमें विविध बातें २.

धनविभागप्रकरण १६.

भाइयोंका भाग, ज्येष्ठांश बाटनेके अयोग्य धन और दादाके धनमें पोतोंका भाग १.

बारह प्रकारके पुत्रोंका भाग २.

अनेक वर्णकी भार्याओंमें उत्पन्न—पुत्रोंका भाग ३.

माता, स्त्री और बहिनका भाग ४.

भागका अधिकारी ९.

पुत्रहीन पुरुषके धनका अधिकारी ६.

स्त्रीधनका अधिकारी ७.

वानप्रस्थ आदि और व्यापारी आदिके धनका अधिकारी ८.

श्राद्धप्रकरण १८.

पितरगण और विश्वेदेव १.

श्राद्धका समय और फल २.

श्राद्ध करनेका स्थान ३.

श्राद्धके योग्य ब्राह्मण ४.

श्राद्धके अयोग्य ब्राह्मण ५.

श्राद्धमें निषेध ६.

श्राद्धकर्ताका धर्म और श्राद्धकी विधि ७.

श्राद्धमें खानेवाले ब्राह्मणका धर्म ८.

अशौच प्रकरण १९

जन्मका अशौच १.

बालककी मृत्युका अशौच २.

मृत्युके अशौचकी अवधि और—अन्य वर्णका अशौच ३.

सद्यः शौच ४.

शुद्धाशुद्धप्रकरण २०.

शुद्ध १.

अशुद्ध २.

प्रायश्चित्तप्रकरण २१.

प्रायश्चित्तके विषयकी अनेक बातें १.

व्यवस्था देनेवाली धर्मसभा २.

मनुष्यवधका प्रायश्चित्त ३.

गोवधका प्रायश्चित्त ४.

पशु, पक्षी, कृमि, कीट आदि वध और वृक्ष, लता आदि नाशका प्रायश्चित्त ५.

पापी और नीच जातिके संसर्गका प्रायश्चित्त १९

गुप्त पापोंका प्रायश्चित्त १६.

व्रतप्रकरण २२.

पापफलप्रकरण २३.

पूर्वजन्मके पापका फल और चिह्न १.

पूर्वजन्मके पापका प्रायश्चित्त २.

वानप्रस्थप्रकरण २४,

वानप्रस्थका धर्म १.

वानप्रस्थके विषयमें अनेक बातें २.

संन्यासिप्रकरण २९.

संन्यासीका धर्म १.

संन्यासीके विषयमें अनेक बातें २.

अध्यात्मज्ञानादि प्रकरण २६.

इति धर्मशास्त्रसंग्रहानुक्रमणिका समाप्त.

इसके आगे पेज ४४९ से पेज ५४८ तक परिशिष्ट भाग है इस 'धर्मशास्त्रसंग्रह पुस्तकमे स्थलस्थल' जितनी टिप्पणियां दीगई है उनके प्रमाणभूत अनेक स्मृतियोके मूल श्लोक परिशिष्टभागमे अलग छपवायके सामिल किये गये है उनके देखनेसे ग्रथस्थ विषयोके अनेकविध प्रमाणांतरोका ज्ञान अच्छी रीतिसे होगा, अतएव उन प्रमाणभूत स्मृतिवचनोकी अलग विषयानुक्रमणिका करनेकी जरूरत नहीं है.

अथ धर्मशास्त्रसंग्रहस्थ संज्ञाशब्दकोष.[1]

इति संज्ञाशब्दकोष समाप्त.

१ इन संज्ञाशब्दोंके अर्थ इस ग्रंथके अंतमें पेज ५४९ से पेज ५६० तक दिये गये हैं. वहांसे अर्थ जानना.

॥ श्रीः ॥

श्रीपरमात्मने नमः ।

अथ धर्मशास्त्रसंग्रह ।

भाषाटीकासमेत ।

धर्मप्रकरण १.

(१) मनुस्मृति-२ अध्याय ।

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् । आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ ६ ॥
यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः । स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥ ७ ॥
सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा । श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान्स्वधर्मे निविशेत वै ॥ ८ ॥

सम्पूर्ण वेद, वेदजाननेवाले ऋषियोंकी स्मृतियां और उनका शील अर्थात् राग द्वेषका परित्याग सज्जनोंका आचार और आत्मसन्तुष्टि, ये सब धर्मके मूल हैं ※ ॥ ६ ॥ भगवान् मनुने जिसका जो कुछ धर्म कहा है वह सब वेदमें लिखाहै, क्योंकि मनुजी सम्पूर्ण ज्ञानको जाननेवाले हैं ॥ ७ ॥ विद्वान्मनुष्योंको उचित है कि वेदके अर्थ जाननेके उपयोगी शास्त्रोंको ज्ञाननेत्रसे देखकर वेदकी आज्ञानुसार अपने धर्ममें स्थित रहैं ॥ ८ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः । इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ ९ ॥
श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः । ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥१०॥
योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः । स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ११ ॥
वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥
अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते । धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ १३ ॥
श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ ॥ उभावपि हि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः ॥ १४ ॥
उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा । सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥ १५ ॥

श्रुति और स्मृतिमें कहे हुए धर्मका करनेसे मनुष्य इस लोकमें कीर्ति पाताहै और परलोकमें स्वर्ग आदि उत्तम सुख प्राप्त करताहै ॥ ९ ॥ वेदको श्रुति और धर्मशास्त्रको स्मृति कहते हैं, ये दोनों सब प्रयोजनोंमें अतर्क्य हैं अर्थात् इनमें किसीप्रकारका तर्क नहीं करना चाहिये, क्योंकि सम्पूर्ण धर्म इन्हींसे प्रकाशित हुआहै ॥ १० ॥ जो द्विज कुतर्कसे धर्ममूल श्रुति और स्मृतिका अपमान करताहै वह वेदनिन्दक नास्तिक सज्जनोंके समाजसे बाहर करदेनेयोग्य है ॥ ११ ॥ वेद, धर्मशास्त्र, सज्जनोंका आचार और आत्मसन्तुष्टि, ये चार साक्षात् धर्मके लक्षण कहेगये हैं ॥ १२ ॥ अर्थकामनासे रहित मनुष्योंमें ही धर्मज्ञान होताहै, धर्मको जाननेकी इच्छावाले मनुष्योंकेलिये वेद ही श्रेष्ठ प्रमाण है ॥ १३ ॥ जहां वेदोंमें परस्पर विरुद्ध दो प्रकारके धर्म हैं वहां ऋषियोंने दोनोंको करनेको कहाहै; क्योंकि पहिलेके पण्डितोंने भी दोनोंका वर्णन कियाहै ॥ १४ ॥ जैसे वेदकी श्रुति है कि सूर्यके उदयकालमें, सूर्यके अस्त होतेसमयमें और सूर्य तथा नक्षत्र सहित कालमें होम करे तो समयमें परस्पर विरोध होनेपर भी अधिकारिभेदसे पूर्वोक्त सब समयमें ही होम करना योग्य है @ ॥ १५ ॥

४ अध्याय ।

अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् । हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ॥१७०॥
न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् । अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम् ॥ १७१ ॥

जो मनुष्य शास्त्रविरुद्ध कर्म करनेवाला है, जो असत्य-उद्योगसे धन-उपार्जन करता है और जो सदा हिंसा करनेमें रत रहता है वह इसलोकमें सुख नहीं पाता ॥ १७० ॥ धर्मनिष्ठ मनुष्य धनादिके विना क्लेश पानेपरभी अधर्ममें मनको नहीं लगावे; क्योंकि यद्यपि कोई कोई अधर्मी-मनुष्य धन आदिसे युक्त होते हैं, किन्तु पापके फलसे शीघ्रही उनके धनादिका नाश दीख पड़ता है ॥ १७१ ॥

※ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-७ श्लोक । वेद, धर्मशास्त्र, सज्जनोंका आचार, आत्मसन्तुष्टि और अच्छे सङ्कल्पसे उत्पन्न कामना, ये धर्मके मूल कहेगयेहैं ।

@ व्यासस्मृति-१ अध्याय-४ श्लोक । जहां श्रुति, स्मृति और पुराणका परस्पर विरोध देखपडे वहां श्रुतिका वचन प्रमाण है और जहां स्मृति और पुराणमें परस्पर विरोध देखाजाय वहां स्मृतिका कथन बलवान् है।

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव । शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ १७२ ॥
यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु । न त्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः ॥ १७३ ॥
अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति । ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ॥ १७४ ॥

जैसे भूमिमें बीज बोनेपर उसीसमय उससे फल उत्पन्न नहीं होता; समयपाकर होताहै, वैसेही अधर्मकरनेसे समयपर वह उस अधर्मीको मूलसहित नाश करदेताहै ॥ १७२ ॥ यदि अधर्मका फल अधर्मीको नहीं मिलता तो उसके पुत्रों अथवा पौत्रोंको अवश्य मिलताहै; कियाहुआ अधर्म निष्फल नहीं होता ॥ १७३ ॥ अधर्म-करनेवाला अधर्मके फल पानेसे पहिले बढ़ताहै, धनादिसे युक्त होताहै और शत्रुओंको जीतताहै; किन्तु अन्तमें मूलसहित उसका नाश होजाताहै ॥ १७४ ॥

धर्मं शनैः संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः । परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ २३८ ॥
नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च । । न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ २३९ ॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते । एकोनु भुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २४० ॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ । विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥ २४१ ॥
तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः । धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥ २४२ ॥
धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम् । परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम् ॥ २४३ ॥

जैसे दीमक धीरेधीरे वल्मीकको बढ़ातेहैं वैसेही परलोकके सहायके लिये किसी जीवको दुःख नहीं देकर शनैः शनैः धर्मसञ्चय करे ॥ २३८ ॥ परलोकमें सहायके लिये पिता, माता, पुत्र, भार्या और जातिके लोग उपस्थित नहीं रहतेहैं; केवल धर्म ही वहां सहायक रहताहै ॥ २३९ ॥ प्राणी अकेलाही जन्मताहै, अकेलाही मरताहै और अकेलाही अपने पुण्य-पापका फल भोगताहै ॥ २४० ॥ काठ और मिट्टीके ढेलेके समान मृत-शरीरको भूमिमें छोड़कर बान्धव-लोग चलेजातेहैं, केवल धर्म ही उसके सङ्ग जाताहै ॥ २४१ ॥ धर्मकी सहायतासे दुस्तर नरकोंसे निस्तार होताहै इस-कारणसे परलोकके सहायके लिये प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा धर्म सञ्चित करे ॥ २४२ ॥ जिस धर्मिष्ठ मनुष्यके पाप तपबलसे नष्ट हुएहैं, वह मरनेपर धर्मके सहारे प्रकाशमान-शरीर धारण करके शीघ्र ही स्वर्गादि परलोकमें पहुँचताहै ॥ २४३ ॥

८ अध्याय ।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः । तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥१५॥
वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् । वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥ १६ ॥
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः । शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥ १७ ॥

जो मनुष्य धर्मको नष्ट करने चाहताहै वह धर्मद्वारा आपही नष्ट होजाताहै । धर्मकी रक्षा करनेवालेकी धर्म रक्षा करताहै, इसलिये धर्मका अतिक्रम नहीं करना चाहिये, ऐसा करो जिसमें अतिक्रम कियाहुआ धर्म हमलोगोंको नष्ट न करे ॥ १५ ॥ भगवान् धर्म वृष (कामनाओंकी वर्षाकरनेवाला) कहाताहै; जो मनुष्य धर्मका निवारण करताहै उसको देवता लोग वृषल कहतेहैं; इसलिये धर्मलोप करना उचित नहीं है ॥ १६ ॥ एक धर्म ही प्राणियोंका मित्र है, मरनेके पश्चात् धर्म ही साथमें जाताहै, शरीरके नाश होनेपर सब लोग अलग होजाते हैं ॥ १७ ॥

(२) याज्ञवल्क्य--१ अध्याय ।

मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः । यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥ ४ ॥
पराशरव्यासशङ्खलिखिता दक्षगौतमौ । शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः ॥ ५ ॥

मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शङ्ख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप और वसिष्ठ, ये २० ऋषि धर्मशास्त्रके बनानेवाले हैं ❀ ॥ ४ ॥ ५ ॥

❀ पाराशरस्मृति--१ अध्यायके १२--१५ श्लोकमें इन २० धर्मशास्त्र बनानेवालोंमेंसे यम, बृहस्पति और व्यासका नाम नहींहै; इनके स्थानपर कश्यप, गर्ग और प्रचेतासका नाम है । २४--२५ श्लोकमें लिखा है कि सत्ययुगमें मनुके कहे धर्म, त्रेतामें गौतमके कहे धर्म, द्वापरमें शङ्ख और लिखितके कहे धर्म और कलियुगमें पराशरके कहेहुए धर्म मुख्य कहेगये हैं (यह वाक्य गौण प्रतीत होताहै कारण कि इसका प्रयोग बहुत न्यून है, और प्रधान २० स्मृतियोंमेंसे १९ स्मृतियोंमें तथा इनसे भिन्न जितनी स्मृतियां मुझको मिलीहैं उनमें किसी जगह नहीं लिखाहै कि किसी स्मृतीमें कहेहुए धर्म किसीएक युगकेलिये प्रधान हैं और थोड़ीसी बातोंको छोड़कर पाराशरस्मृतिकी सब बातें मनु, गौतम आदिकी स्मृतियोंमें भी लिखीहुई हैं) ।

देशे काल उपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम्। पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम् ॥ ६ ॥
इज्याचारदमाहिंसा दानं स्वाध्यायकर्म च। अयन्तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ॥ ८ ॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। दानं दया दमः क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥१२२॥

जो द्रव्य पवित्र देश और पुण्यसमयमें शास्त्रोक्त विधिसे सत्पात्रको श्रद्धापूर्वक दियाजाताहै, वह और इसीप्रकारके यज्ञादिक कर्म धर्मके लक्षण हैं ॥ ६ ॥ यज्ञ, आचार, इन्द्रियोंका दमन, अहिंसा, दान और वेदाध्ययन, इन सबसे बड़ा धर्म योगद्वारा आत्माका दर्शन करना है ॥ ८ ॥ हिंसा नहीं करना, सत्य बोलना, चोरी नहीं करना, पवित्र रहना, इन्द्रियोंको वशमें रखना, दान देना, सबपर दया करना, मनका संयम रखना और क्षमा करना, ये ब्राह्मणसे चाण्डालतक सब मनुष्योंके धर्म साधन हैं* ॥ १२२ ॥

(१४) व्यासस्मृति–४ अध्याय।

अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः। नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥ १९ ॥
प्राणनाशस्तु कर्तव्यो यः कृतार्थो न सो मृतः। अकृतार्थस्तु यो मृत्युं प्राप्तः खरसमो हि सः ॥ २५॥

शरीर और धन आदि विभव सदा नहीं रहता है और मृत्यु नित्य समीपमें रहती है, इसलिये धर्मका संग्रह करना उचित है ॥१९॥ एक दिन अवश्य मरना होगा; परन्तु कृतार्थ (धर्मिष्ठ) मनुष्य मरता नहीं अर्थात् उसका नाम जीता रहता है; जो अकृतार्थ (अधर्मी) मनुष्य मरता है वह गधेके समान है ॥ २५ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति–१ अध्याय।

ज्ञात्वा चानुतिष्ठन्धार्मिकः प्रशस्यतमो भवति लोके प्रेत्य च स्वर्गं लोकं समश्नुते ॥ २ ॥
श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मः ॥ ३ ॥ तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम् ॥ ४ ॥

जो मनुष्य जानकर धर्मका सेवन करता है वह इस लोकमें धर्मात्मा कहाता है और प्रशंसाके योग्य होता है और मरनेपर स्वर्गका सुख भोग करता है ॥ २ ॥ वेद और धर्मशास्त्रमें विधान कियेहुए कर्म धर्म कहलाते हैं ॥ ३ ॥ जिसका प्रमाण वेद तथा धर्मशास्त्रमें नहीं है उसके लिये शिष्ट लोगोंका आचार ही प्रमाण है @ ॥ ४ ॥

सृष्टिप्रकरण २.

(१) मनुस्मृति–१ अध्याय।

मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः। प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन् ॥ १ ॥
भगवन्सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः। अन्तरप्रभवाणां च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥
त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयम्भुवः। अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्यतत्त्वार्थवित्प्रभो ॥ ३ ॥
स तैः पृष्टस्तथा सम्यगमितौजा महात्मभिः। प्रत्युवाचार्च्य तान्सर्वान्महर्षीञ्छ्रूयतामिति ॥ ४ ॥

भगवान् मनु एकाग्रचित्त होकर बैठेहुए थे। महर्षिगण उनके समीप जाकर यथायोग्य उनका पूजा करके बोले, हे भगवन्! चारों वर्ण तथा उनके पश्चात् उत्पन्न वर्णसङ्करजातियोंका धर्म वर्णन कीजिये; क्योंकि कर्मविधायक, अचिन्त्य, अपरिमेय, अपौरुषेय, समस्त वेदशास्त्रोंके कार्य, तत्त्व तथा अर्थज्ञानके जाननेवाले एकमात्र आपही हैं ॥ १–३ ॥ महान् ज्ञानशक्तिसम्पन्न भगवान् मनु ऋषियोंके इसभाँति पूछनेपर आदरपूर्वक उनसे कहनेलगे कि सुनिये! ॥ ४ ॥

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ५ ॥
ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्। महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६ ॥
योसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः। सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ ७ ॥

एकसमय यह संसार घोर-अंधकारसे छिपाहुआ, अप्रत्यक्ष, चिह्नरहित, अनुमान करनेके अयोग्य, अविज्ञात और घोर निद्रासे निद्रितके समान था ॥ ५ ॥ अप्रकट स्वयम्भू भगवान् अप्रतिहत सामर्थ्यवाले और प्रकृतिको प्रेरणा करनेवाले महाभूत आदि तत्त्वोंको प्रकट करतेहुए स्वयं प्रकट हुए ॥ ६ ॥ जो इन्द्रियोंके ज्ञानसे बाहर, सूक्ष्म, अव्यक्त, सनातन, सर्वभूतमय और अचिन्त्य हैं वही स्वयं प्रगट होते भये ॥ ७ ॥

---

*याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–६६ श्लोक। सत्य बोलना, चोरी न करना, क्रोध न करना, लज्जा, पवित्रता, बुद्धिमानी, धीरज, शान्ति, इन्द्रियोंको वशमें रखना और विद्याभ्यास ये सब धर्मके लक्षण कहे गये हैं।

@ मनुस्मृति–१२ अध्याय–१०९ श्लोक और बौधायनस्मृति—१ प्रश्न–१ अध्याय,–६ श्लोक। जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य आदि धर्मसे युक्त होकर और वेद, वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र आदिके सहित वेद पढ़के वेदके अर्थका उपदेश करताहै उसको शिष्टब्राह्मण कहतेहैं। वसिष्ठस्मृति–६ अध्याय–४० श्लोक। जिस ब्राह्मणके घर कुलपरम्परासे वेद, वेदाङ्ग आदि पढ़के वेदका उपदेश करनेकी परिपाटी चलीआती हो, वह शिष्ट ब्राह्मण कहाता है।

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः । अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् । तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ ९ ॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् । तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥

उन्होंने अपनी देहसे विविधप्रकारकी प्रजाओंके रचनेकी इच्छा करके चिन्तामात्रसे ही प्रथम जलको उत्पन्न किया और उस जलमें अपना शक्तिरूप बीज स्थापन करदिया ॥ ८ ॥ वह बीज सुवर्णवर्ण सूर्यके समान प्रकाशयुक्त एक अण्डा बनगया, उस अण्डेमें वह (परमात्मा) स्वयं सब लोकोंके पितामह ब्रह्मा बनकर उत्पन्नहुए ॥ ९ ॥ नर अर्थात् परमात्मासे उत्पन्न होनेके कारण जलको नारा कहतेहैं और उस जलमें परमात्माका प्रथम निवासस्थान होनेसे वे नारायण कहेजातेहैं ॥ १० ॥ जो आदि-कारण, अव्यक्त, नित्य और सदसदात्मक हैं, उनसे जो पुरुष प्रथम उत्पन्न हुआ लोकमें वह ब्रह्मा कहलाताहै ॥ ११ ॥

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् । स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा ॥ १२ ॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे । मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् १३
उद्बबर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् । मनसश्चाप्यहङ्कारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥ १४ ॥
महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च । विषयाणां गृहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥ १५ ॥

भगवान् ब्रह्माने उस अण्डेमें एक वर्षतक वास करके आत्मगत-ध्यानके सहारे अण्डेको २ खण्ड किया ॥ १२ ॥ उन्होंने दोनों खण्डोंमेंसे ऊपरवाले खण्डमें स्वर्गलोक, नीचेके खण्डमें पृथिवी और दोनोंके बीचमें आकाश, आठों दिशा और चिरस्थायी समुद्रको बनाया ॥ १३ ॥ परमात्मास्वरूप सदसदात्मक मनको उत्पन्न किया; मनसे मैं ईश्वर हूँ ऐसा अभिमान करनेवाला अहङ्कार उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ उन्होंने अहङ्कारसे मायासहित महत्तत्त्व उत्पन्न किया और सत्त्व, रज और तम, इन ३ गुणोंसे युक्त और शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्धकी ग्रहणकरनेवाली श्रोत्रआदि ५ इन्द्रियोंको धीरे धीरे रचा ॥ १५ ॥

तेषान्त्ववयवान्सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसाम् । सन्निवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥ १६ ॥
सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक् । वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ २१ ॥
कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनाम्प्रभुः । साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥ २२ ॥
अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् । दुदोह यज्ञसिध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥ २३ ॥
कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा । सरितः सागराञ्शैलान्समानि विषमाणि च ॥ २४ ॥
तपो वाचं रतिं चैव कामं च क्रोधमेव च । सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः ॥ २५ ॥
कर्मणां च विवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवेचयत् । द्वन्द्वैरयोजयच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥ २६ ॥
लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः । ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्तयत् ॥ ३१ ॥

उनमेंसे अनन्तकार्यकी शक्ति रखनेवाले अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र,—इन ६ के सूक्ष्मसे सूक्ष्मः शरीरको अपने विकार इन्द्रिय और पञ्चभूतसे जोड़कर मनुष्य, पशु, आदि सबजीवोंको बनाया ॥ १६ ॥ वेदकी विधिसे सबका अलग अलग नाम कर्म और वृत्तिविभाग करदिया ॥ २१ ॥ उस प्रभुने कर्माङ्गभूत देवताओं, प्राणधारी, साध्यनामक सूक्ष्म देवताओं और सनातन यज्ञोंको बनाया ॥ २२ ॥ अग्नि, वायु और सूर्यसे यज्ञकार्यके लिये क्रमसे ऋक्, यजुः और साम, इन तीन सनातन वेदोंको प्रकट किया ॥ २३ ॥ काल, कालका विशेषविभाग (मास, ऋतु, अयन आदि), नक्षत्र, ग्रह, नदी, समुद्र, पर्वत, सम विषम भूमि, तपस्या, वाक्य, चित्तका परितोष, काम और क्रोध; इन सबको प्रजाकी सृष्टिकी अभिलाषासे उत्पन्न किया ॥ २४ ॥ २५ ॥ कर्मोंके जाननेके लिये धर्म और अधर्मका विभाग किया और धर्म अधर्मके फल सुखदुःखोंसे प्रजाओंको युक्त करदिया ॥ २६ ॥ लोकोंकी वृद्धिके लिये अपने मुखसे ब्राह्मणको, बाहुसे क्षत्रियको, ऊरुसे वैश्यको और पदसे शूद्रको उत्पन्न किया ॥ ३१ ॥

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् । अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥ ३२ ॥
तपस्तप्त्वाऽसृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट् । तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥

ब्रह्माने अपनी देहको दो भाग करके आधेसे पुरुष और आधेसे स्त्री बनाई और उस नारीके गर्भसे विराट्को उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥ हे द्विजोत्तमगण ! विराट्पुरुषने तपस्या करके स्वयं जिस पुरुषको उत्पन्न किया मैं वही मनु हूँ; मुझे इस समुदायका सृष्टिकर्त्ता जानो ॥ ३३ ॥

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् । पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥ ३४ ॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यम्पुलहं क्रतुम् । प्रचेतसं वसिष्ठञ्च भृगुन्नारदमेव च ॥ ३५ ॥
एते मनूंस्तु सप्तान्यानसृजन्भूरितेजसः । देवान्देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥ ३६ ॥
यक्षरक्षःपिशाचांश्च गन्धर्वाऽप्सरसोऽसुरान् । नागान् सर्पान् सुपर्णांश्च पितॄणां च पृथग्गणान् ॥३७॥
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च । उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च ॥ ३८ ॥
किन्नरान्वानरान्मत्स्यान्विविधांश्च विहंगमान् । पशून्मृगान्मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतो दतः ॥३९॥
कृमिकीटपतङ्गांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम् । सर्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥ ४० ॥

मैंने प्रजाकी सृष्टि करनेकी इच्छासे कठिन तपस्या करके प्रथम मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद, इन १० महर्षियोंकी सृष्टि की ॥ ३४–३५ ॥ इन्होंने महातेजस्वी अन्य ७ मनुओंको तथा देवताओं, उनके निवासस्थान, तेजस्वी महर्षिगण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, नाग, सर्प, गरुड़, पृथक्पृथक्–पितरगण, बिजली, वज्र, मेघ, ज्योति, इन्द्र–धनुष, उल्का धूमकेतु, अनेक प्रकारके ज्योतिर्मय-पदार्थ, किन्नर, वानर, मत्स्य, विविधप्रकारके–पक्षी, पशु, मृग, मनुष्य, दोनों ओर–दांत- वाले–जन्तु, कीड़े, कीट, पतंग, ढील, खटमल, मक्खी, मच्छड़, दंश और वृक्ष, लता आदि स्थावरोंको पृथक् पृथक् उत्पन्न किया ॥ ३६–४० ॥

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतो दतः । रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः ॥ ४३ ॥
अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः । यानि चैवं प्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च ४४
स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम् । ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम् ॥ ४५ ॥
उद्भिज्जास्स्थावरास्सर्वे वीजकाण्डप्ररोहिणः । ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ ४६ ॥
अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः । पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ॥ ४७ ॥

जीवोंमें पशु, मृग, हिंसक जन्तु, दोनों ओर–दांतवाले जीव, राक्षस, पिशाच और मनुष्य जरायुज (पिण्डज) हैं ॥ ४३ ॥ पक्षी, सर्प, घड़ियाल, मछली, कछुए और इसी प्रकारके स्थलमें तथा जलमें रहने- वाले, अन्य जीव अण्डज होते हैं ॥ ४४ ॥ दंश, मच्छड़, यूक, मक्खी और खटमल स्वेदज (पसीनेसे उत्पन्न होनेवाले) हैं; इसी प्रकारके चींटी आदि जीव भी गरमीके बाफसे उत्पन्न होते हैं ॥ ४५ ॥ वृक्ष आदि स्थावर उद्भिज्ज (भूमिसे निकलनेवाले) हैं,–इनमें बहुत तो बीजसे और बहुत रोपीहुई शाखासे उत्पन्न होते हैं। धान, गेहूं, आदि जो बहुतसे फल फूलोंसे युक्त होते हैं और फलके पकनेपर सूखजाते हैं उनको औषधी कहते हैं ॥ ४६ ॥ जो विनाफूल लगेही फलते हैं, (वट, पीपर, पाकडि आदि) वे वनस्पति कहलाते हैं और जिनमें फूल और फल दोनों होते हैं, वे वृक्ष कहे जाते हैं ॥ ४७ ॥

गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः । वीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्ल्य एव च ॥ ४८ ॥
तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना । अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः ॥ ४९ ॥
एतदन्तास्तु गतयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः । घोरेऽस्मिन् भूतसंसारे नित्यं सततयायिनि ॥ ५० ॥

गुच्छ (बेला, चमेली आदि जिनमें जड़से ही लताओंका समूह निकलता है) गुल्म (ऊख, सरपता आदि जिसके एकजड़से बहुतजड़ होजाते हैं), तृण (घास आदि) प्रतान (कुह्मडा, लौका आदि) और वल्ली (गुरच आदि) अनेक प्रकारके हैं इनमेंसे कोई बीजसे और कोई शाखासे उत्पन्न होते हैं ॥ ४८ ॥ ये सब स्थावर जीव अनेक प्रकारके असत्कर्मके फलसे तमोगुणसे परिपूर्ण हैं, इनमें चेतना शक्ति है और इनको सुखदुःख होता है ॥ ४९ ॥ जिस प्रकारसे यह नित्य विनाशशील जन्म और मरणयुक्त संसारमें ब्रह्मासे लेकर स्थावर तक जीवोंकी उत्पत्ति हुई है वह सब कही गई ॥ ५० ॥

एवं सर्वं स सृष्ट्वेदं मां चाचिन्त्यपराक्रमः । आत्मन्यन्तर्दधे भूयः कालं कालेन पीडयन् ॥ ५१ ॥
यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत् । यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ॥ ५२ ॥
तस्मिन् स्वपिति तु स्वस्थे कर्मात्मानः शरीरिणः । स्वकर्म्मभ्यो निवर्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति ५३
युगपत्तु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन् महात्मनि । तदाऽयं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निर्वृतः ॥ ५४ ॥
तमोऽयं तु समाश्रित्य चिरं तिष्ठति सेन्द्रियः । न च स्वं कुरुते कर्म तदोत्क्रामति मूर्तितः ॥ ५५ ॥
यदाऽणुमात्रिको भूत्वा वीजं स्थास्नु चरिष्णु च । समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्तिं विमुञ्चति ॥ ५६ ॥
एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वं चराचरम् । संजीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः ॥ ५७ ॥

मनु कहते हैं कि अचिन्त्य पराक्रमी भगवान् इस प्रकारसे सब जगत्को और मुझको रचते हैं और प्रलय-कालमें सृष्टिका विनाश करतेहुए फिर आपही अपनेमें लीन होजाते हैं ॥ ५१ ॥ जब वह देव जागते हैं तब जगत् चेष्टायुक्त होता है और जब सोते हैं तब यह जगत् लीन होजाता है ॥ ५२ ॥ उनके इच्छा-रहित होनेपर कर्मानुसार देह धारण करनेवाले प्राणी देह धारण करना आदि कर्मोंसे निवृत्त होजाते हैं और उनका मन भी सब इन्द्रियोंके सहित अपनी वृत्तिसे रहित होजाता है ॥ ५३ ॥ जब संपूर्ण जगत् उस महात्मामें लीन होजाता है तब वह सर्वभूतात्मा निश्चिन्त भावसे मानो परमसुखसे सोते हैं ॥ ५४ ॥ जब यह जीव अज्ञात-अवस्थामें इन्द्रियोंके सहित बहुत समयतक रहता है, श्वास प्रश्वास आदि कर्मोंको नहीं कर सकता, तब प्रथमके शरीरसे निकलजाता है ॥ ५५ ॥ जब यह अणुमात्रिक बीज होकर स्थावर अथवा जङ्गमबीजमें प्रवेश करता है तब शरीर धारण करता है ॥ ५६ ॥ इसी प्रकारसे अविनाशी पुरुष अपनी जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाके सहारेसे चराचर जगत्की सृष्टि और संहार करते हैं ॥ ५७ ॥

इदं शास्त्रं तु कृत्वाऽसौ मामेव स्वयमादितः । विधिवद्ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन् ॥ ५८॥
एतद्वोऽयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः । एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिलं मुनिः ॥ ५९ ॥

भगवान् मनुने ऋषियोंसे कहा कि ब्रह्माने सृष्टिकी आदिमें इस धर्मशास्त्रको मुझे पढाया, मैंने मरीचि आदि ऋषियोंको पढाया है, महर्षि भृगुने यह सम्पूर्ण शास्त्र भलीभांति मुझसे पढाहै, यही तुमलोगोंको आदिसे अन्ततक सुनावेगा ॥ ५८-५९ ॥

ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिर्मनुना भृगुः । तानब्रवीदृषीन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ६० ॥
स्वायम्भुवस्यास्य मनोः षड्वंश्या मनवोऽपरे । सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वा महात्मानो महौजसः॥६१॥
स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवत स्तथा । चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च ॥ ६२ ॥
स्वायम्भुवाद्याः सप्तैते मनवो भूरितेजसः । स्वेस्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् ॥ ६३ ॥

भगवान् मनुके ऐसे वचन सुनकर महर्षि भृगु प्रसन्नचित्त होकर ऋषियोंसे कहनेलगे कि तुम लोग मुझसे सुनो ! ॥ ६० ॥ इस स्वायम्भुवमनुके वंशमें महात्मा और बडे पराक्रमी ६ मनु हुएथे, उन्होंने प्रजा उत्पन्न करके निजवंशको बढायाथा ॥ ६१ ॥ स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष और महा तेजस्वी वैवस्वत, यही ६ मनु हैं ॥ ६२ ॥ महातेजस्वी स्वायम्भुवआदि सातों मनुओंने अपने अपने अधिकारके समय चराचर जीवोंको उत्पन्न करके पालन किया ॥ ६३ ॥

निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला । त्रिंशत्कला मुहूर्त्तः स्यादहोरात्रन्तु तावतः ॥६४॥
अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके । रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥ ६५ ॥
पित्र्ये राञ्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः । कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥ ६६ ॥
दैवे राञ्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः । अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ ६७ ॥

१८ पलकी १ काष्ठा, ३० काष्ठाकी १ कला, ३० कलाका १ मुहूर्त और ३० मुहूर्तकी एक दिन-रात्रि होतीहै ॥ ६४ ॥ मनुष्य और देवताओंका दिनरातका विभाग सूर्य करते हैं, इनमेंसे रात्रि जीवोंके सोनेके लिये और दिन काम करनेकेलिये है ॥ ६५ ॥ मनुष्योंके एकमहीनेका पितरोंका रातदिन होता है, उसमेंसे काम करनेके लिये कृष्णपक्ष उनका दिन और सोनेके लिये शुक्लपक्ष उनकी रात है ॥ ६६ ॥ मनुष्योंके एकवर्षका देवताओंका एक रातदिन होता है उत्तरायण उनका दिन और दक्षिणायन उनकी रात है ॥ ६७ ॥

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः । एकैकशो युगानान्तु क्रमशस्तन्निबोधत ॥ ६८ ॥
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् । तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ६९
इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु । एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ ७० ॥
तदेतत्परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम् । एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ ७१ ॥
दैविकानां युगानान्तु सहस्रं परिसंख्यया ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रिरेव च ॥ ७२ ॥
तस्य सोऽहर्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्रतिबुद्ध्यते । प्रतिबुद्धश्च सृजति मनः सदसदात्मकम् ॥ ७४ ॥
यत्प्राग् द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम् । तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ ७९ ॥
मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव च । क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनःपुनः ॥ ८० ॥
अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः । कृतत्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः ॥ ८३ ॥

ब्रह्माके दिनरातका प्रमाण सत्ययुग आदिके क्रमसे है, उसको संक्षेपसे सुनो ! ॥ ६८ ॥ दैववर्ष परिमाणसे ४००० वर्षका सतयुग होता है, उस युगके पहिले ४०० वर्षकी सन्ध्या और अन्तमें ४०० वर्षका

सन्धांश होता है ॥ ६९ ॥ ३००० वर्षका त्रेता, ३०० वर्ष उसकी सन्ध्या और ३०० वर्ष उसका सन्धांश २००० वर्षका द्वापर, २०० वर्ष उसकी सन्ध्या और २०० वर्ष उसका सन्ध्यांश और १००० वर्षका कलियुग, १०० वर्ष उसकी सन्ध्या और १०० वर्ष उसका सन्ध्यांश होताहै ॥ ७० ॥ दैववर्षके परिमाणसे १२००० वर्षमें चारोयुग बीततेहैं, जो देवताओंका एकयुग होताहै ॥ ७१ ॥ इसीभांति देवताओंके १००० युगमें ब्रह्माका एकदिन होताहै और देवताओंके १००० युगकी उनकी रात होतीहै ॥ ७२ ॥ पूर्वोक्त रात बीतनेपर ब्रह्मा जागतेहैं और सावधान होतेही सदसदात्मक मनको सृष्टिके काममें लगातेहैं ॥ ७४ ॥ पहिले कहागया है कि देववर्षके परिमाणसे १२००० वर्षमें देवताओंका एक युग होताहै; उसके ७१ गुणा करनेसे अर्थात् ७१ चतुर्युगी बीतनेपर एक मन्वन्तर व्यतीत होताहै ॥ ७९ ॥ इसीप्रकारसे असंख्य मन्वन्तर आते जाते हैं तथा अनेकवार जगत्की उत्पत्ति और प्रलय होतीहै; पितामह मानो खेल करतेहुए इन कार्योंको करतेहैं ॥ ८० ॥ सत्ययुगमें मनुष्य रोगरहित, सिद्धकाम और ४०० वर्षकी आयुवाले होतेहैं; परन्तु त्रेता आदि तीनों युगोंमें उनकी आयुका परिमाण क्रमसे एक एक सौ वर्ष घटताहै अर्थात् त्रेतामें ३०० वर्ष, द्वापरमें २०० वर्ष और कलियुगमें १०० वर्षकी आयुवाले मनुष्य होते हैं ॥ ८३ ॥

देशप्रकरण ३.

पवित्रदेश १.

(१) मनुस्मृति-२ अध्याय।

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ॥ १७ ॥
तस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः। वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥ १८ ॥
कुरुक्षेत्रञ्च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः। एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्त्तादनन्तरः ॥ १९ ॥
एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वंस्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ २० ॥
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत् प्राग्विनशनादपि। प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यप्रदेशः प्रकीर्त्तितः ॥ २१ ॥

सरस्वती और दृषद्वती, इन दोनों देवनदियोंके बीचके देवनिर्मितदेशको ब्रह्मावर्त्त देश कहते हैं ॥ १७ ॥ इस देशमें चारों वर्ण और वर्णसङ्कर-जातियोंके बीच जो परम्परा क्रमसे आचार चले आते हैं उन्हें सदाचार कहते हैं ॥ १८ ॥ कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, (जयपुर आदि) पाञ्चालदेश (कन्नौज आदि) और शूरसेनदेश (व्रजभूमि) को, जो ब्रह्मावर्तसे कुछ न्यून हैं, ब्रह्मर्षिदेश कहते हैं ॥ १९ ॥ इन देशोंमें उत्पन्न ब्राह्मणोंसे पृथिवीके सब मनुष्योंको अपना अपना आचार सीखना चाहिये ॥ २० ॥ हिमालयसे दक्षिण, विन्ध्यगिरिसे उत्तर, विनशनसे ॐ पूर्व और प्रयागसे पश्चिमका देश मध्यदेश कहा जाता है ✣ ॥ २१ ॥

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥ २२ ॥
कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः। स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्ततः परः ॥ २३ ॥
एतान् द्विजातयो देशान्संश्रयेरन्प्रयत्नतः। शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निवसेद्वृत्तिकर्शितः ॥ २४ ॥

पूर्वके समुद्रसे पश्चिमके समुद्रतक, हिमालय-पर्वतसे दक्षिण और विन्ध्यगिरिसे उत्तरके देशको पण्डितलोग आर्यावर्तदेश कहतेहैं ◎ ॥ २२ ॥ जिन देशोंमें कालेमृग स्वभावसेही विचरते हैं, उन देशोंको

ॐ सरस्वतीनदीके गुप्त होनेके स्थानको विनशन कहते हैं। सरस्वतीनदी पञ्जाबके अम्बाला जिलेमें प्रकट हुई है, वह कई बार भूमिमें गुप्त प्रकटहोकर पटियालेके राज्यमें गागरा (दृषद्वती) नदीमें मिलगई है, पूर्वकालमें यह नदी राजपूतानेके मैदानके पार तक बहतीथी।

✣ वसिष्ठस्मृति-१ अध्याय-८ और ११ अङ्क और बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-१ अध्यायके २७-२८ अङ्क। कोई आचार्य गङ्गा और यमुनाके बीचके देशको धर्म और आचारको विश्वासयोग्य कहतेहैं। बृहत्पाराशर-१ अध्याय-४२ श्लोक। हिमालय, विन्ध्याचल, विनशन और प्रयागके मध्यका देश पवित्र है, इससे इतर म्लेच्छदेश है।

◎ वसिष्ठस्मृति-१ अध्यायके ७-९ अङ्क। सरस्वतीनदीके गुप्तहोनेके स्थानसे पूर्व, कालकवनसे पश्चिम पारियात्र और विन्ध्य पर्वतसे उत्तर और हिमालयसे दक्षिणका देश आर्यावर्त कहाता है। उस देशमें जो जो धर्म और आचार हैं वे विश्वासयोग्य हैं। अन्य देशोंके धर्म उलटी कल्पनासे युक्त होनेके कारण विश्वासयोग्य नहीं हैं। बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-१ अध्यायके २७ अङ्कमें भी ऐसा है किन्तु वहां विन्ध्यका नाम नहीं है॥

यज्ञ करनेयोग्य देश जानना चाहिये, इनसे अन्य देशोंको म्लेच्छदेश कहते हैं ॥ २३ ॥ द्विजातियोंको यत्न पूर्वक इन देशोंमें निवास करना चाहिये, शूद्रलोग अपनी जीविकाके लिये किसी देशमें निवास करसकते हैं ॥ २४ ॥

(१३क) बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-१अध्याय।

देशेष्वन्येषु या नद्यो धन्याः सागरगाः शुभाः। तीर्थानि यानि पुण्यानि मुनिभिः सेवतानि च॥४३॥
वसेयुस्तदुपान्तेषु शमिच्छंतो द्विजातयः। मुनिभिः सेवितत्वेन पुण्यदेशः प्रकीर्त्तितः॥ ४४ ॥

सुखको चाहनेवाले द्विजाति अन्यदेशमेंभी समुद्रमें जानेवाली पवित्र नदियां तथा मुनियोंसे सेवित पुण्य तीर्थोंके आसपास निवास करें, क्योंकि मुनियोंके रहनेसे वे देशभी पवित्र कहाते हैं ॥४३-४४॥

तीर्थ २.

(३) अत्रिस्मृति।

प्रतिनिधिं कुशमयं तीर्थवारिषु मज्जति। यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टभागं लभेत सः॥ ५० ॥
मातरं पितरं वापि भ्रातरं सुहृदं गुरुम्। यमुद्दिश्य निमज्जेत द्वादशांशफलं भवेत्॥ ५१ ॥

जब कोई किसीकी कुशाकी प्रतिमा लेजाकर तीर्थके जलमें प्रतिमावाले मनुष्यको फल मिलनेके उद्देशसे स्नान करताहै तब प्रतिमावाले मनुष्यको स्नानके फलका आठवां भाग प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ जब कोई अपने पिता, माता, भाई, सुहृद् अथवा गुरुको फल मिलनेके उद्देशसे उनका नाम लेकर तीर्थके जलमें स्नान करता है तब पिता, माता आदिको स्नानके फलका बारहवां भाग मिलता है ॥ ५१ ॥

जायन्ते बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत्। यजते चाश्वमेधं च नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥ ५५ ॥
काङ्क्षन्ति पितरः सर्वे नरकान्तरभीरवः। गयां यास्यति यः पुत्रस्स नस्त्राता भविष्यति ॥ ५६॥
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम्। गयाशीर्षं पदाक्रम्य मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ ५७ ॥
महानदीमुपस्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः। अक्षयाँल्लभते लोकान्कुलं चैव समुद्धरेत्॥ ५८ ॥

बहुतसे पुत्र उत्पन्न करना चाहिये; क्यों कि उनमेंसे कोई तो गया जायगा वा अश्वमेध यज्ञ करेगा अथवा नीलबैलसे वृषोत्सर्ग करैगा ॥ ५५ ॥ नरकोंसे डरतेहुए पितृगण ऐसी इच्छा करते हैं कि जो पुत्र गया जायगा वह हमारा रक्षक होगा॥ ५६ ॥ ® फल्गु-नदीमें स्नान और गदाधरदेवका दर्शन करनेसे तथा गयासुरके सिरपर चरण रखनेसे मनुष्यकी ब्रह्महत्या भी छूट जाती है॥ ५७ ॥ फल्गुमें स्नान करके पितरों और देवताओंके तर्पण करनेवाले मनुष्य अपने कुलका उद्धार करते हैं और मृत्यु होनेपर अक्षय लोकको जाते हैं॥ ५८ ॥

(६क) उशनस्स्मृति-३ अध्याय।

गयायामक्षयं श्राद्धं प्रयागे मरणादिषु। गायन्ति गाथां ते सर्वे कीर्तयन्ति मनीषिणः॥ १३० ॥

गयाका श्राद्ध अक्षय होता है और प्रयागमें मृत्यु होनेसे विद्वान् लोग मृतमनुष्यकी कीर्त्तिका गान करते हैं॥ १३० ॥

(१६) लिखितस्मृति।

गयाशिरे तु यत्किञ्चिन्नाम्ना पिण्डन्तु निर्वपेत्। नरकस्थो दिवं याति स्वर्गस्थो मोक्षमाप्नुयात्॥१२॥

जिसके नामसे (गयामें) गयासिरपर पिण्ड दिया जाता है, वह यदि नरकमें हो तो स्वर्गमें चला जाता है और स्वर्गमें हो तो मुक्त होजाता है॥ १२॥

---

* संवर्तस्मृति-४ श्लोक। जिनदेशोंमें सदा स्वभावसेही काले मृग विचरतेहैं, उन देशोंको धर्मदेश जानना, वही देश द्विजोंके धर्म साधनके योग्य हैं। व्यासस्मृति-१ अध्याय-३ श्लोक। जिन देशोंमें स्वभावसे ही सदा काले मृग विचरते हैं, वे देश वेदोक्त धर्मोंके अनुष्ठानके योग्य हैं। वसिष्ठस्मृति--१ अध्याय १३ अंक और१४ श्लोक और बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-१ अध्यायके २९ अंक और ३० श्लोक। भाल्लवी शाखाध्यायी ऋषिलोग प्राचीन-गाथाका उदाहरण देते हैं। पश्चिमके सिन्धु और सूर्यके उदयाचलके-मध्यके जिन जिन स्थानोंमें काले मृग विचरते हैं उन देशोंमें ब्रह्मतेज वर्तमान है बृहत्पाराशरीय धर्म शास्त्र-१ अध्याय ४१ श्लोक। जिस देशमें काले मृग स्वभावसे ही विचरें उस देशमें द्विजातिको रहना चाहिये शूद्र जहां चाहे तहां रहे।

® बृहस्पतिस्मृति २०-२१ श्लोकमें भी ऐसा है।

(१३) पाराशरस्मृति–१२ अध्याय।

सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति। सेतुं दृष्ट्वा विशुद्धात्मा त्ववगाहेत सागरम् ॥ ६८ ॥

समुद्रके सेतुका दर्शन करके समुद्रमें स्नान करनेसे ब्रह्महत्याका पाप छूट जाता है॥ ॥ ६८ ॥

(१६) लिखितस्मृति।

वाराणस्यां प्रविष्टस्तु कदाचिन्निष्क्रमेद्यदि। हसन्ति तस्य भूतानि अन्योन्यं करताडनैः ॥ ११ ॥

जब कोई मनुष्य काशीमें जाकर उससे बाहर होने लगता है तब भूतगण ताली बजाकर उसको हंसते हैं अर्थात् काशी छोड़नेसे उसको मूर्ख समझकर ताली बजाते हैं तथा हंसते हैं ॥ ११ ॥

(२४) लघुआश्वलायनस्मृति–१ आचारप्रकरण।

यः कश्चिन्मानवो लोके वाराणस्यां त्यजेद्वपुः। स चाप्येको भवेन्मुक्तो नान्यथा मुनयो विदुः॥१८९॥

महर्षियोंने कहा है कि जो लोग मनुष्यलोकमें जन्म लेकर काशीमें शरीर–त्याग करते हैं वे मुक्त होजाते हैं ॥ १८९ ॥

(१४) व्यासस्मृति–४ अध्याय।

यत्फलं कपिलादाने कार्तिक्यां ज्येष्ठपुष्करे। तत्फलं ऋषयः श्रेष्ठा विप्राणां पादशौचने ॥ १० ॥

इन्द्रियाणि वशीकृत्य गृह एव वसेन्नरः। तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥ १३ ॥

गङ्गाद्वारं च केदारं सन्निहत्यं तथैव च। एतानि सर्वतीर्थानि कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ १४ ॥

कार्तिकमासमें (पुष्करतीर्थके) ज्येष्ठपुष्कर (सरोवर) में कपिला गौदान करनेसे जो फल मिलताहै ब्राह्मणके चरण धोनेसे वही फल प्राप्त होताहै ॥ १० ॥ जो मनुष्य अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके गृहमें निवास करताहै उसको घरमें ही कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, पुष्कर, हरिद्वार और केदारतीर्थ हैं; वह इन तीर्थोंको करके सब पापोंसे छूटताहै ॥ १३–१४ ॥

(१५) शङ्खस्मृति १४ अध्याय।

यद्ददाति गयास्थश्च प्रभासे पुष्करे तथा। प्रयागे नैमिषारण्ये सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥ २७ ॥

गङ्गायमुनयोस्तीरे पयोष्ण्यमरकण्टके। नर्मदायां गयातीरे सर्वमानन्त्यमुच्यते ॥ २८ ॥

वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे भृगुतुङ्गे महालये। सप्तवेण्यृषिकूपे च तदप्यक्षयमुच्यते ॥ २९ ॥

गया, प्रभास, पुष्कर, प्रयाग और नैमिषारण्य तीर्थमें; गङ्गा, यमुना और पयोष्णी नदीके तीरपर; अमरकण्टक तीर्थमें; नर्मदा और गयाके तीरपर; काशी, कुरुक्षेत्र, भृगुतुङ्ग और महालय तीर्थमें और सप्तवेणी तथा ऋषिकूपके निकट पितरोंके निमित्त जो कुछ दिया जाताहै उसका फल अक्षय होताहै ॥ २७—२९ ॥

अपवित्रदेश ३.

(१) मनुस्मृति–१० अध्याय।

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः। वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ ४३ ॥

पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजयवनाः शकाः। पारदा पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥४४॥

पौंड्रक, ओड्र, द्रविड, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खश देशके रहनेवाले क्षत्रिय यज्ञोपवीत आदि क्रियाओंके लोप होनेसे और उन देशोंमें ब्राह्मणके न रहनेके कारण धीरे-धीरे लोकमें शूद्र होगयेहैं ॥ ४३–४४ ॥

(४ क) बृहद्विष्णुस्मृति–७१ अध्याय।

न शूद्रराज्ये निवसेत् ॥ ६४ ॥ नाधार्मिकजनाकीर्णे ॥ ६५ ॥

(४) शूद्रके राज्यमें अथवा अधर्मियोंसे पूर्ण देशमें निवास नहीं करे ⊛ ॥ ६४–६५ ॥

॥ इसी स्मृतिके ६२ श्लोकसे ७२ श्लोकतक इस यात्राकी विधि लिखी हुई है; प्रायश्चित्तके प्रकरणमें देखिये।

⊛ मनुस्मृति–४ अध्याय-६० और ६१ श्लोक। अधर्मियोंके गांव या बहुव्याधियुक्तगांव, शूद्रके राज्य, अधर्मियोंके देश तथा पाखण्डियोंके वशवर्त्ती देश अथवा अन्त्यजातियोंसे उपद्रवयुक्त देशमें (स्नातकब्राह्मण) निवास नहीं करे।

८४ अध्याय ।

न म्लेच्छविषये श्राद्धं कुर्यात् ॥ १ ॥ न गच्छेन्म्लेच्छविषयम् ॥ २ ॥
चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन्देशे न विद्यते । स म्लेच्छदेशो विज्ञेय आर्यावर्त्तस्ततः परः ॥ ४ ॥

म्लेच्छकी भूमिमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये और म्लेच्छके राज्यमें नहीं जाना चाहिये※ ॥ १-२ ॥ जिन देशोंमें चारों वर्णोंकी व्यवस्था नहीं है उनको म्लेच्छदेश कहते हैं; उनसे अतिरिक्त देश आर्यावर्त्त है ॥ ४ ॥

(२२) देवलस्मृति ।

त्रिशङ्कुं वर्जयेद्देशं सर्वं द्वादशयोजनम् । उत्तरेण महानद्या दक्षिणेन तु कीकटम् ॥ ४ ॥
प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि विस्तरेण महर्षयः ॥ ५ ॥
सिन्धुसौवीरसौराष्ट्रं तथा प्रत्यन्तवासिनः । कलिङ्गकौङ्कणान्वङ्गान्गत्वा संस्कारमर्हति ॥ १६ ॥

महर्षि देवलने कहा कि महानदीसे उत्तर और कीकट※※ (देश) से दक्षिण १२ योजन त्रिशंकुनामक देश है, उसको छोड़कर (अन्य देशोंके मनुष्योंका) प्रायश्चित्त विस्तारसे कहूँगा ॥४-५॥ सिन्धु, सौवीर और सौराष्ट्र देशके तथा इनके निकटके निवासी कालिङ्ग (उड़ीसा), कौङ्कण (कोङ्कण) और बङ्गालमें जानेपर पुनः संस्कारके योग्य होतेहैं ॥ १६ ॥

(२५) बौधायनस्मृति-१प्रश्न-१ अध्याय ।

अवन्तयोऽङ्गमगधाः सुराष्ट्रा दक्षिणापथाः । उपावृत्सिन्धुसौवीरा एते सङ्कीर्णयोनयः ॥ ३१ ॥
आरट्टान्कारस्करान्पुण्ड्रान्सौवीरान्वङ्गकलिङ्गान्प्रानूनानिति च गत्वा पुनस्तोमेन यजेत सर्वपृष्ठया वा ॥३२॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥३३॥ पद्भ्यां स कुरुते पापं यः कलिङ्गान् प्रपद्यते॥ ऋषयो निष्कृतिं तस्य प्राहुर्वैश्वानरं हविः ॥ ३४ ॥

अवन्त, अङ्ग, मगध, सौराष्ट्र, दक्षिणापथ, उपावृत्, सिन्धु और सौवीर देश, यह सब सङ्कीर्ण योनि हैं ॥ ३१ ॥ आरट्ट, कारस्कर, पुण्ड्र, सौवीर, बङ्ग, कलिङ्ग और प्रानूनान देशमें जानेवालोंको अपनी शुद्धिकेलिये पुनस्तोमेन अथवा सर्वपृष्ठया मन्त्रसे यज्ञ करना चाहिये ॥ ३२ ॥ जैसाकि उदाहरण देते हैं ॥ ३३ ॥कलिङ्ग अर्थात् उड़ीसा देशमें जानेवाला दोनों पावोंसे पाप करताहै; महर्षियोंने उसकी शुद्धिके लिये वैश्वानरेष्टी यज्ञ कहाहै ॥ ३४ ॥

ब्राह्मणप्रकरण-४.

ब्राह्मणका महत्त्व-१.

(१) मनुस्मृति-१ अध्याय ।

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद् ब्रह्मणश्चैव धारणात् । सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ९३॥
तं हि स्वयम्भूः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजत् । हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये ॥९४॥
यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः । कव्यानि चैव पितरः किम्भूतमधिकं ततः ॥९५॥
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः । बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥९६॥
ब्राह्मणेषु तु विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः । कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥ ९७ ॥

ब्राह्मण ब्रह्माके मुखसे जन्म लेनेसे, सब वर्णोंसे पहिले उत्पन्न होनेसे, वेदके धारण करनेसे और जगत्को धर्मकी शिक्षा देनेसे सबका प्रभु है ॥९३॥ ब्रह्माने देव और पितरोंको हव्य कव्य पहुंचानेके लिये और जगत्की रक्षाके निमित्त तप करके अपने मुखसे ब्राह्मणको उत्पन्न किया ॥ ९४ ॥ जिन ब्राह्मणोंके मुखद्वारा स्वर्गवासी देवगण हव्य और पितरगण कव्यको सदा भोजन करते हैं उनसे अधिक श्रेष्ठ कौन होसकता है※※※ ॥ ९५ ॥ उत्पन्न हुए पदार्थोंमें प्राणधारी, प्राणधारियोंमें बुद्धिवाले जीव, बुद्धिवालोंमें मनुष्य, सब मनु-

---

※ शङ्खस्मृति-१४ अध्यायके ३० श्लोकमें ऐसा ही है।

※※ कीकटदेशमें गया, राजगृह आदि हैं।

※※※ व्यासस्मृति-४ अध्यायका ५४ श्लोक इस ९५ श्लोकके समान है।

ष्योंमें ब्राह्मण ब्राह्मणोंमें विद्वान्, विद्वानोंमें कृतबुद्धि, कृतबुद्धिवालोंमें कर्तव्यकार्य्य-करनेवाले और कर्तव्यकार्य-करनेवालोंमें ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं ॥ ९६-९७ ॥✽

९ अध्याय।

यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः। क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान्॥३१४॥
लोकानन्यान्सृजेयुर्ये लोकपालांश्च कोपिताः। देवान्कुर्युरदेवांश्च कः क्षिण्वंस्तान्समृध्नुयात् ॥३१५॥
यानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति लोका देवाश्च सर्वदा। ब्रह्म चैव धनं येषां को हिंस्यात्ताञ्जिजीविषुः ॥३१६॥
अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत्। प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥ ३१७ ॥
श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति। हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्धते ॥ ३१८ ॥
एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु। सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत् ॥ ३१९ ॥

जिन ब्राह्मणोंके कोपसे अग्नि सर्वभक्षी हुआ, समुद्रका जल खारा होगया और चन्द्रमा क्षयीरोगयुक्त होकर फिर अच्छा हुआ उनको क्रोधित करके कौन नष्ट नहीं होगा ॥ ३१४ ॥ जो ब्राह्मण स्वर्गादि-लोक और लोकपालोंकी सृष्टि करसकते हैं और क्रोध करके देवताओंको अदेवता बना सकते हैं, कौन पुरुष उनको पीड़ा देकर अपनी वृद्धि करसकता है ॥ ३१५ ॥ जिनके आश्रय अर्थात् यज्ञादि करानेसे लोक और देवगण सदा स्थित हैं और ब्रह्म ही जिनका धन है उनकी हिंसा करके कौन जीवित रहैगा ॥३१६॥ जैसे संस्कार युक्त अथवा संस्काररहित अग्नि महान् देवता है वैसे विद्वान् होवे चाहे अविद्वान् होवे ब्राह्मण महान् देवता है अर्थात् ब्राह्मणत्व युक्त अविद्वान् ब्राह्मण भी पूजने योग्य है ॥ ३१७ ॥ जैसे महातेजस्वी अग्नि श्मशानमें रहनेपर भी दूषित नहीं होता; यज्ञमें होम होनेपर वृद्धिको प्राप्त होता है, वैसे कुत्सितकर्मोंसे प्रवृत्त होनेपर भी ब्राह्मण पूज्य है; क्यों कि वह महान् देवता है ॥ ३१८-३१९ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१अध्याय।

अग्नेः सकाशाद्विप्राग्नौ हुतं श्रेष्ठमिहोच्यते ॥ ३१६ ॥

अग्निमें हवन करनेकी अपेक्षा ब्राह्मणरूपी अग्निमें हवन करना श्रेष्ठ है ॥ ३१६ ॥

(३) अत्रिस्मृति।

त्रयो लोकास्त्रयो वेदाआश्रमाश्च त्रयोऽग्नयः। एतेषां रक्षणार्थाय संसृष्टा ब्राह्मणाः पुरा ॥ २५ ॥

तीनों लोक, तीनों वेद, चारों आश्रम और तीनों अग्निकी रक्षाके लिये पूर्वकालमें विधाताने ब्राह्मणको रचा था ◎ ॥ २५ ॥

(१३) पाराशरस्मृति-१ अध्याय।

ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निरुदकमकण्टकम्। वापयेत्सर्वबीजानि सा कृषिः सर्वकामिका ॥ ६४ ॥

ब्राह्मणका मुख जल और कांटेसे रहित खेत है, उसीमें सब बीज बोना चाहिये; यही खेती सब कामना देनेवाली है ✤ ॥ ६४ ॥

८ अध्याय।

दुःशीलोपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेन्द्रियः। कः परित्यज्य गां दुष्टां दुहेच्छीलवतीं खरीम् ॥३३॥

दुःशील ब्राह्मण भी पूज्य हैं; परन्तु जितेन्द्रिय भी शूद्र नहीं; क्यों कि दुष्ट गौको छोड़कर सुशीला गदहीको कोई नहीं दुहता ॥ ३३ ॥

(१४) व्यासस्मृति-४ अध्याय।

पादोदकं पादघृतं दीपमन्नं प्रतिश्रयम्। यो ददाति ब्राह्मणेभ्यो नोपसर्पति तं यमः ॥ ८ ॥
विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी। तावत् पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरोऽमृतम् ॥ ९ ॥

जो गृहस्थ अपने घरमें ब्राह्मणके आनेपर पग धोनेके लिये जल, पादुका, दीप, अन्न और रहनेका स्थान देता है उसके पास यमराज नहीं आता है ॥ ८ ॥ जबतक ब्राह्मणोंके चरणोंके जलसे पृथ्वी भीगी हुई रहती है तबतक उस गृहस्थके पितर कमलके पत्तोंमें अमृत पीते हैं ॥ ९ ॥

✽याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय। ब्रह्माने वेद धारण करनेके लिये, पितर और देवताओंकी तृप्तिके निमित्त और धर्मकी रक्षाके लिये तप करके ब्राह्मणको उत्पन्न किया ॥ १९८ ॥ सबसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, उनमें वेद पढ़नेवाले, वेद पढ़नेवालोंमें वेदविहितकर्म करनेवाले और वेदविहित-कर्म करनेवालोंमें भी आत्म-तत्त्व-ज्ञानी श्रेष्ठ हैं ॥ १९९ ॥

◎ दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीय ये ३ अग्नि हैं।

✤ व्यासस्मृति-४ अध्याय-४८ श्लोकमें प्रायः ऐसा है।

यत्फलं कपिलादाने कार्तिक्यां ज्येष्ठपुष्करे । तत्फलं ऋषयः श्रेष्ठा विप्राणां पादशोधने ॥ १० ॥
स्वागतेनाग्नयः प्रीता आसनेन शतक्रतुः । पितरः पादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः ॥ ११ ॥
मातापित्रोः परं तीर्थं गङ्गा गावो विशेषतः । ब्राह्मणात्परमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ १२ ॥
ब्राह्मणः स भवेच्चैव देवानामपि देवतम् । प्रत्यक्षं चैव लोकस्य ब्रह्मतेजो हि कारणम् ॥ ४७ ॥

हे श्रेष्ठऋषियों ! जो फल कार्तिककी पूर्णिमाको ज्येष्ठपुष्करतीर्थमें कपिलागौ दान करनेसे होताहै वही फल ब्राह्मणोंके चरण धोनेसे मिलताहै ॥ १० ॥ ब्राह्मणके स्वागत करनेसे अग्नि, आसन देनेसे इन्द्र, चरण-धोनेसे पितर और अन्नआदि देनेसे ब्रह्मा प्रसन्न होतेहैं ॥ ११ ॥ माता और पितासे परम तीर्थ गङ्गा और गौ हैं; किन्तु ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ तीर्थ न हुआ है, न होगा ॥ १२ ॥ ब्राह्मण देवताओंके देवता हैं; जगत्का कारण प्रत्यक्ष ब्रह्मतेज ही है ॥ ४७ ॥

(१९) दूसरी शातातपस्मृति-१ अध्याय ।

जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि । सर्वं भवति निश्छिद्रं यस्य चेच्छन्ति ब्राह्मणाः ॥ २६ ॥
ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यन्ते तानि देवताः । सर्वदेवमया विप्रा न तद्वचनमन्यथा ॥ २७ ॥
उपवासो व्रतं चैव स्नानं तीर्थफलं तपः । विप्रैस्सम्पादितं सर्वं सम्पन्नं तस्य तत्फलम् ॥ २८ ॥
सम्पन्नमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः । प्रणम्य शिरसा धार्यमग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ २९ ॥
ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं निर्जलं सार्वकामिकम् । तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥ ३० ॥

जपका छिद्र, तपका छिद्र, तथा यज्ञके कर्मोंका छिद्र ब्राह्मणोंके सफल कहदेनेसे नष्ट होजाता है ❀ ॥ २६ ॥ ब्राह्मणोंके वचनोंको देवता मानतेहैं, ब्राह्मण सब देवताओंके रूप हैं, इससे उनका वचन झूठा नहीं होता ॥ २७ ॥ उपवास, व्रत, स्नान और तीर्थका फल ब्राह्मणोंके कहनेसे सफल होताहै ॥ २८ ॥ जिस कर्मको ब्राह्मण कहदेताहै कि यह पूर्ण हुआ उसके उस वचनको नमस्कार करके शिरपर धारण करनेवाले अग्निष्टोम यज्ञका फल पातेहैं ۞ ॥ २९ ॥ सब कामनाओंका देनेवाला, जलसे रहित चलनेवाला तीर्थ ब्राह्मण है, उनके वचनरूपी जलसे मलीन मनुष्य शुद्ध होजातेहैं ॥ ३० ॥

(२४) लघुआश्वलायनस्मृति-२२ वर्णधर्मप्रकरण ।

सर्वेषां चैव वर्णानामुत्तमो ब्राह्मणो यतः । क्षत्रस्तु पालयेद्विप्रं विप्राज्ञाप्रतिपालकः ॥ १ ॥
सेवां चैव तु विप्रस्य शूद्रः कुर्याद्यथोदितम् । सर्वेषां चापि वै मान्यो वेदविद्द्विज एव हि ॥ २ ॥

सब वर्णोंमें ब्राह्मण उत्तम हैं इसलिये क्षत्रियोंको उनका और उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये और शूद्रोंको यथारीति उनकी सेवा करनी चाहिये; वेदज्ञ-ब्राह्मण निश्चय करके सबके माननीय हैं ॥ १-२ ॥

मान्य ब्राह्मण और पङ्क्तिपावन ब्राह्मण २.

(१) मनुस्मृति-२ अध्याय ।

ब्राह्मस्य जन्मनः कर्त्ता स्वधर्मस्य च शासिता। बालोऽपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः॥१५०॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः । ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥ १५४ ॥

जो ब्राह्मण संस्कारआदि कर्मोंसे द्विज बनाताहै और वेदादिके व्याख्यानोंसे धर्म उपदेश करताहै वह ब्राह्मण बालक होनेपर भी धर्मपूर्वक बूढोंकेलिये भी पिताके समान माननीय है ॥ १५० ॥ बड़ी अवस्था, श्वेत-केश, धन और बहुत सम्बन्धीके रहनेपर कोई बड़ा नहीं होसकता; महर्षियोंने निश्चय कियाहै कि जो लोग अङ्गोंके सहित वेदोंको जानतेहैं वही लोग श्रेष्ठ हैं ॥ १५४ ॥

अपाङ्क्त्योपहता पङ्क्तिः पाव्यते यैर्द्विजोत्तमैः । तान्निबोधत कार्त्स्न्येन द्विजाग्र्यान्पङ्क्तिपावनान् १८३॥
अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च । श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ॥ १८४ ॥
त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् । ब्रह्मदेयात्मसन्तानो ज्येष्ठसामग एव च ॥ १८५ ॥
वेदार्थवित् प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः । शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥ १८६ ॥

❀ पाराशरस्मृति—६ अध्यायके ५२-५३ श्लोकमें ऐसा ही है, किन्तु ५६-५७ श्लोकमें है कि स्नेह, लोभ, भय अथवा अज्ञानसे किसीपर अनुग्रह करनेसे उसका पाप ब्राह्मणको ही लगजाताहै ।

۞ पाराशरस्मृति—६ अध्यायके ५१-५२ श्लोकमें शातातपस्मृति २९ श्लोकके समान है ।

जिन पंक्तिपावन ब्राह्मणोंके द्वारा पंक्तिहीन ब्राह्मणोंसे दूषित पंक्ति भी पवित्र होजाती है उनका वृत्तान्त मैं पूरी रीतिसे कहताहूं ॥ १८३ ॥ जो ब्राह्मण सब वेदोंके जाननेमें निपुण है, वेदाङ्गोंके जाननेमें श्रेष्ठ है और जिनके पिता आदि सब श्रोत्रिय हैं उनको पंक्तिपावन कहते है ॥ १८४ ॥ त्रिणाचिकेत, पञ्चाग्नि, त्रिसुपर्ण,※ छवो वेदाङ्ग जाननेवाले, ब्राह्मविवाहसे विवाहीहुई स्त्रीके पुत्र, ज्येष्ठसामग अर्थात् सामवेदका आरण्यक भाग–गानेवाले, वेदका अर्थ जाननेवाले, वेदका वक्ता, ब्रह्मचारी, बहुत दान करनेवाले और एकसौ वर्षकी अवस्थावाले ब्राह्मण पंक्तिपावन कहेजाते है✢ ॥ १८५–१८६ ॥

११ अध्याय ।

विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते । तस्मै नाकुशलं ब्रूयान्न शुष्कां गिरमीरयेत् ॥३५ ॥

विहित कर्मोंके करनेवाले, शिष्य आदिको शिक्षा देनेवाले, धर्मके व्याख्यान करनेवाले और सब प्राणियोंसे मित्रभाव रखनेवाले ब्राह्मण यथार्थमें ब्राह्मण कहाने योग्य है; कोई उनको बुरा अथवा रूखा वचन न कहे ॥ ३५ ॥

१२ अध्याय ।

यथा जातबलो वह्निर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान् । तथा दहति वेदज्ञः कर्मजं दोषमात्मनः ॥ १०१ ॥
वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् । इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ १०२ ॥

जैसे प्रचण्ड अग्नि हरितवृक्षोंको भी जला देता है वैसेही वेदज्ञ ब्राह्मण अपने कर्मजनित दोषोंको नष्ट करदेता है ॥ १०१ ॥ वेद और शास्त्रोंके तत्त्वोंको जाननेवाला ब्राह्मण किसी आश्रममें रहे, इसी लोकमें ब्रह्मरूपताको प्राप्त होता है ॥ १०२ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ॥ १३८ ॥
विद्यया याति विप्रत्वं श्रोत्रियस्त्रिभिरेव च । वेदशास्त्राण्यधीते यः शास्त्रार्थं च निबोधयेत्॥१३९॥
तदासौ वेदवित् प्रोक्तो वचनं तस्य पावनम् । एकोपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः ॥ १४० ॥
स ज्ञेयः परमो धर्मो नाज्ञानामयुतायुतैः ॥ १४१ ॥

ब्राह्मण ब्राह्मणके घरमे जन्म लेनेसे ब्राह्मण कहाजाता है, संस्कार होनेसे द्विज कहलाता है, विद्या पढ़नेसे विप्र होता है और इन तीनोंके होनेसे श्रोत्रिय कहाजाता है ॥ १३८–१३९ ॥ जो ब्राह्मण वेद और शास्त्रको पढ़ाता है और शास्त्रके अर्थका ज्ञान रखता है वह वेदविद् कहलाता है, उसका वचन पवित्र है एक भी वेदविद् ब्राह्मण जिस धर्मका जो निश्चय करदेवे उसीको परमधर्म मानना चाहिये; किन्तु सौहजार मूर्ख ब्राह्मण कहे उसको नही ॥ १४०–१४१ ॥

(१४) व्यासस्मृति–४ अध्याय ।

मीमांसते च यो वेदान् षड्भिरङ्गैः सविस्तरैः । इतिहासपुराणानि स भवेद्वेदपारगः ॥ ४५ ॥

जो ब्राह्मण विस्तारसहित सम्पूर्ण वेद, ६ वेदाङ्ग इतिहास तथा पुराणका विचार करता है उसको वेदपारग कहतेहै ॥ ४५ ॥

※ यजुर्वेदको पढ़ने और जाननेवाले और उसके नियम व्रतको करनेवालेको त्रिणाचिकेत कहते है श्रौत–स्मार्त अग्निहोत्र करनेवाला ब्राह्मण पञ्चाग्निहोत्री कहलाता है (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि, आहवनीयाग्नि, सभ्याग्नि और आवसथ्याग्नि ये पांच अग्नि हैं) और ऋग्वेदके होत्र–कर्मको पढ़ने, जानने और उसमें लिखेहुए नियम व्रतको करनेवाला ब्राह्मण त्रिसुपर्णवान् कहा जाता है ।

✢ शङ्खस्मृति–१४ अध्यायके ५–८ श्लोकमे अथर्वणको जाननेवाले, योगी, ध्यानपरायण और पत्थर तथा सोनाको समान जाननेवाले ब्राह्मणको भी पंक्तिपावन लिखा है । गौतमस्मृति–१५ अध्यायके अङ्कमें लिखा है कि स्नातक, वेदका मन्त्रभाग और ब्राह्मणभागको जाननेवाले और धर्मज्ञ ब्राह्मण भी पंक्तिपावन हैं । वसिष्ठ स्मृति–३ अध्यायके २२ अङ्कमें है कि वाजसनेयी–संहिताको जाननेवाले, वेदका मन्त्रभाग और ब्राह्मण–भागको जाननेवाले, धर्माध्यापक और जिसकी माता और पिताके वंशमें १० पीढ़ियोंसे वेद पढ़नेकी परम्परा चलीआती है; ये ब्राह्मण भी पंक्तिपावन है । उशनस्स्मृति–४ अध्यायके ३–७ श्लोकमें लिखा है कि सोमपानमे निरत, धर्मज्ञ, सत्यवादी, ऋतुकालमें अपनी स्त्रीसे गमन करनेवाले, अथर्ववेद पढ़नेवाले, रुद्राध्यायी, गुरु, अग्नि और देवताकी पूजा करनेवाले, ज्ञाननिष्ठ, सदा अहिंसामें तत्पर, दान नहीं लेनेवाले और सदा दान देनेवाले ब्राह्मण भी पंक्तिपावन है ।

(१८) गौतमस्मृति-८ अध्याय।

स एष बहुश्रुतो भवति लोकवेदवेदाङ्गविद् वाकोवाक्येतिहासपुराणकुशलस्तदपेक्षस्तद्वृत्तिश्चत्वारिंशता संस्कारैः संस्कृतस्त्रिषु कर्मस्वभिरतः षट्सु वा समयाचारिकेष्वभिविनीतः ॥ २ ॥

जो ब्राह्मण लोकव्यवहार और वेद तथा वेदाङ्गोंको जानताहै; वाकोवाक्य (प्रश्नोत्तररूप वैदिक ग्रन्थ), इतिहास और पुराण जाननेमें प्रवीण है, इन्हींकी अपेक्षा करनेवाला और इन्हींसे जीविका करनेवाला, ४० संस्कारोंसे शुद्ध, ※ ३ कर्म (वेद पढ़ना, यज्ञ करना और दान देना) अथवा ६ कर्म (पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञकरना, यज्ञकराना, दान देना और दानलेना) में तत्पर और समयके अनुकूल नम्रताके सहित आचारविचारमें वरताव करनेवाला है उसको बहुश्रुत कहतेहैं ॥ २ ॥

(२०) वशिष्ठस्मृति-६ अध्याय।

योगस्तपो दमो दानं सत्यं शौचं दया श्रुतम्। विद्या विज्ञानमास्तिक्यमेतद् ब्राह्मणलक्षणम् ॥२१॥
ये शान्तदान्ताः श्रुतिपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाः प्राणिवधान्निवृत्ताः।
प्रतिग्रहे सङ्कुचिताग्रहस्तास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ॥ २२ ॥

योग, तपस्या, इन्द्रियोंका संयम, दान, सत्य, शौच, दया, वेद, विज्ञान, आस्तिकता; ये सब ब्राह्मणके चिह्न हैं ॥ २१ ॥ जो ब्राह्मण सब प्रकारसे इन्द्रियोंके दमन करनेवाले हैं; जिनके कान वेदोंसे परिपूर्ण हैं, जो जितेन्द्रिय और जीवहिंसासे रहित हैं और दान लेनेमें संकोच करतेहैं, ऐसे ब्राह्मण मनुष्योंके तारनेके लिये समर्थ हैं ॥ २२ ॥

(२४) लघुआश्वलायनस्मृति-२२ वर्णधर्मप्रकरण।

वेदविद्विजहस्तेन सेवा संगृह्यते यदि। न तस्य वर्धते धर्मः श्रीरायुः क्षीयते ध्रुवम् ॥ १७ ॥
संतुष्टो येन केनापि सदाचारपरायणः। पराधीनो द्विजो न स्यात्स तरेद्भवसागरम् ॥ २४ ॥

जो मनुष्य वेद और शास्त्र-पढ़ेहुए तथा शास्त्रके अर्थको बतानेवाले ब्राह्मणके हाथसे अपनी सेवा करवाताहै उसके धर्मकी वृद्धि नहीं होती और उसकी लक्ष्मी तथा आयु क्षीण होजातीहै ॥ १७ ॥ जो ब्राह्मण स्वाधीन और सन्तुष्ट रहकर सदाचारमें तत्पर रहताहै वह संसार-समुद्रसे पार होताहै॥ २४ ॥

ब्राह्मणका धर्म ※※ ३.

(१) मनुस्मृति-२अध्याय।

संमानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव। अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ १६२ ॥
सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुध्यते। सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति ॥ १६३ ॥

ब्राह्मणको उचित है कि विषके समान सदा सम्मानसे डरे और अमृतके समान सदा अपमानकी चाहना करे; अन्यसे अपमान कियाहुआ पुरुष सुखसे सोताहै, सुखसे जागताहै और सुखसे लोकमें विचरताहै और अपमान करनेवालेका नाश होताहै ※॥ १६२-१६३ ॥

४ अध्याय।

चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः। द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १ ॥
अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः। या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥ २ ॥
यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः। अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसञ्चयम् ॥ ३ ॥
ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा। सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥ ४ ॥
ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम्। मृतं तु याचितं भैक्षं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥ ५ ॥
सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते। सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥
कुशूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव वा। त्र्यहैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा ॥ ७ ॥

※ ४० संस्कारोंका वर्णन गृहस्थप्रकरणमें हैं।

※※ ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदिका धर्म गृहस्थप्रकरणमें देखिये।

※ आपस्तंब स्मृति१० अध्याय। अपमानसे तपकी वृद्धि होतीहै और सम्मानसे तपका ह्रास होताहै; अर्चित और पूजित ब्राह्मण दूही जातीहुई गौके समान खिन्न होजाताहै, किन्तु जैसे जलसे उत्पन्न तृणोंको खाकर वह गौ पुष्ट होतीहै वैसेही जप और होम करनेसे वह ब्राह्मण फिर उन्नति प्राप्त करताहै ॥ ९-११ ॥

ब्राह्मणको उचित है कि अपनी आयुका पहिला चौथाई भाग गुरुके घरमें बितावे और दूसरे चौथाई भागमें विवाह करके निज गृहम निवास करे ॥ १ ॥ जिस वृत्तिसे किसी जीवसे कुछ द्रोह नही होवे अथवा अल्प द्रोह होवे विना आपत्कालके अन्य समयमें ऐसीही वृत्ति अवलम्बन करे ॥ २ ॥ केवल गृहस्थी धर्मके निर्वाहके लिये निज वर्ण विहित-उत्तम कार्यसे, शरीरको क्लेश नही देकर धनका सञ्चय करे ॥ ३ ॥ ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत अथवा सत्यानृत वृत्तिसे अपना निर्वाह करे, किन्तु श्ववृत्तिसे कभी नही ॥ ४ ॥ उञ्छ वृत्ति और शिल वृत्तिको ❀ ऋत वृत्ति, विना मांगेहुए भिक्षा आदि प्राप्तको अमृतवृत्ति, मांगी हुई भिक्षाको मृतवृत्ति, कृषिकर्मको प्रमृतवृत्ति और वाणिज्यको सत्यानृत वृत्ति कहतेहैं; इससेभी जीवन वितावे, किन्तु सेवा करना कुत्तेकी वृत्ति कहलाती है इसलिये सेवाका काम कभी नही करे ॥ ५-६ ॥ गृहस्थ ब्राह्मण कोठिले भर अन्न, अथवा ऊंटनी भर अन्न, तीन दिन खाने योग्य अन्न केवल एकदिनके भोजन योग्य अन्न सञ्चय करे ॥ ७ ॥

चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां गृहमेधिनाम् । ज्यायान्परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तमः ॥ ८ ॥
षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते । द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति ॥ ९ ॥
वर्तयंश्च शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः । इष्टीपार्वायनान्तीयाः केवला निर्वपेत्सदा ॥ १० ॥

इन ४ प्रकारके गृहस्थ ब्राह्मणोंमे क्रमसे पहिलेसे पीछेवाले श्रेष्ठ और स्वर्गादि लोकको जीतनेवाले होतेहै ❁ ॥ ८ ॥ इनमें कोई एक ६ कामोसे अर्थात् उञ्छ वृत्ति, शिल वृत्ति, अयाचित भिक्षा, याचित भिक्षा, कृषि और वाणिज्यसे, कोई तीन कामोंसे अर्थात् याजन, अध्यापन और प्रतिग्रहसे, कोई दो कामोंसे अर्थात् याजन और अध्यापनसे और कोई केवल एक कामसे अर्थात् अध्यापनसे ही अपना निर्वाह करता है ॥ ९ ॥ शिलोञ्छ वृत्तिवालोंको उचित है कि अग्निहोत्र करै और केवल पर्व तथा अयनान्त इष्टि अर्थात् दर्श पौर्णमासादि यज्ञोंको सदा करते रहै ॥ १० ॥

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् । सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ १२ ॥

सुखकी इच्छावाले गृहस्थ ब्राह्मण सन्तोषका अवलम्बन करके बहुत धनकी चेष्टा नही करे क्योंकि सन्तोषही सुखका मूल है और असन्तोष दुःखका कारण है ॥ २ ॥

न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् । न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥ ८० ॥

शूद्रको ज्ञान उपदेश, अपना जूठा, हविका बचाहुआ भाग, धर्मका उपदेश अथवा व्रतकरनेकी आज्ञा नही देवे ✾ ॥ ८० ॥

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत् । प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥ १८६ ॥
न द्रव्याणामविज्ञाय विधिं धर्म्यं प्रतिग्रहे । प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादवसीदन्नपि क्षुधा ॥ १८७ ॥

दान लेनेमें समर्थ होनेपर भी सदा दान नही लियाकरै; क्यो कि दान लेनेसे ब्राह्मणका ब्रह्मतेज नष्ट होताहै ॥ १८६ ॥ बुद्धिमान् ब्राह्मणको उचित है कि विना विशेषरूपसे प्रतिग्रहके विधानको जानेहुए क्षुधासे पीड़ित होनेपर भी द्रव्यआदि दान नही लेवे ◎ ॥ १८७ ॥

१० अध्याय।

ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ये स्वकर्मण्यवस्थिताः । ते सम्यगुपजीवेयुः षट्कर्माणि यथाक्रमम् ॥ ७४ ॥
अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्माण्यग्रजन्मनः ॥ ७५ ॥
षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका । याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥ ७६ ॥

❀ खेत कटजानेपर खेतमें पड़े हुए दानेको बीन लानेको उञ्छवृत्ति और अन्नकी बाल बीनलाने को शिलवृत्ति कहते हैं।

❁ विष्णुस्मृति-२ अध्यायके १५-१७ श्लोकमें भी ऐसाही है । याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय १२८ श्लोकमें है कि कोठिलेभर अन्न रखनेवालेसे ऊंटनीभर अन्न संचनेवाले, ऊंटनीभर अन्न रखनेवालेसे ३ दिन खानेयोग्य अन्न रखनेवाले, इनसे एकदिन खानेयोग्य अन्न रखनेवाले और एकदिन खाने योग्य अन्न रखनेवालेसे शिलोञ्छवृत्तिसे निर्वाह करनेवाले ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं।

✾ मनुस्मृति-१० अध्यायके १२५ श्लोकमें है कि सेवक शूद्रको जूठा अन्न देना चाहिये, और यहां जूठा नही देनेको लिखाहै सो यह सेवकसे भिन्न शूद्रोंके लिये है।

◎ वृहद्विष्णुस्मृति—५७ अध्याय-८श्लोक । जो ब्राह्मण दान लेनेकी विधिको विना जानेहुए दान लेताहै वह दाताके सहित नरकमें जाताहै ।

ब्रह्मयोनिमें रत और अपने कर्मोंसे युक्त ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक अध्ययन आदि षट्कर्मोंमें तत्पर रहना चाहिये ॥ ७४ ॥ वेदपढ़ाना, वेदपढ़ना, यज्ञकरना, यज्ञकराना, दान देना और दान लेना; ये ६ कर्म ब्राह्मणके है ❀ ॥ ७५ ॥ इनमें यज्ञ कराना, वेद पढ़ाना और शुद्ध दान लेना, ये तीन कर्म उनकी जीविका है ॥ ७६ ॥

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम् । वार्त्ताकर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥ ८० ॥

प्रतिग्रहाद् याजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि । प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गर्हितः ॥ १०९ ॥

ब्राह्मणके कर्मोंमे वेदका अभ्यासकरना, क्षत्रियके कर्मोंमे प्रजाकी रक्षाकरना और वैश्यके कर्मोंमें कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य श्रेष्ठ है ॥ ८० ॥ ब्राह्मणके प्रतिग्रह, याजन और अध्यापन कर्ममें प्रतिग्रह बहुत हीन है और परलोकके लिये निन्दित है ॥ १०९ ॥

११ अध्याय ।

यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति । स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः ॥ २५ ॥

जो ब्राह्मण यज्ञकेलिये दातासे धन लेकर उसको यज्ञकार्यमें नही लगाताहै वह मरनेपर उस पापसे १०० व तक गीध अथवा काकपक्षी होताहै ॥ २५ ॥

अग्निहोत्र्यपविध्याग्नीन्ब्राह्मणः कामकारतः । चान्द्रायणं चरेन्मासं वीरहत्यासमं हि तत् ॥ ४१॥

तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनाम् । पदा मस्तकमाक्रम्य दाता दुर्गाणि संतरेत् ॥ ४३ ॥

जो ब्राह्मण अनापत्कालमे नित्य दोनो सांझ अग्निहोत्र नही करता उसको पुत्रहत्याके समान पाप लगताहै; वह उस पापको छोड़ानेके लिये एकमास चान्द्रायण व्रत करे ॥ ४१ ॥ जो ब्राह्मण शूद्रसे द्रव्य लेकर अग्निहोत्र करताहै वह अज्ञानी है; वह शूद्र उसके शिरपर पांव रखकर नरकसे पार होताहै ॥ ४३ ॥

१२ अध्याय ।

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम् । तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ १०४ ॥

तपस्या और आत्मज्ञान ब्राह्मणका उत्कृष्ट मोक्षसाधन है तपसे पाप नष्ट होताहै और आत्मज्ञानसे मुक्ति होतीहै ॥ १०४ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय ।

न स्वाध्यायविरोध्यर्थमीहेत न यतस्ततः । न विरुद्धप्रसङ्गेन सन्तोषी च सदा भवेत् ॥ १२९ ॥

स्नातक ब्राह्मणको उचित है कि वेद पाठके विरोधी विना विचारे जहां तहांसे तथा नाच अथवा गानकी वृत्तिसे धन सञ्चय नही करे, सदा सन्तोषसे रहै ॥ १२९ ॥

प्रतिग्रहसमर्थोपि नादत्ते यः प्रतिग्रहम् । ये लोका दानशीलानां स तानाप्नोति पुष्कलान् ॥२१३॥

जो ब्राह्मण दानलेनेमें समर्थ होकर भी दान नहीं लेता है उसको दानशीलोंके समान लोक मिलता है ❀❀ ॥ २१३ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

शौचं मङ्गलमायास अनसूयास्पृहा दमः । लक्षणानि च विप्रस्य तथा दानं दयापि च ॥ ३३ ॥

शौच, मङ्गल अर्थात् उत्तम आचरण, परिश्रम करना, परके गुणोंमें दोषोंका नही देखना, कामना रहित होना, इन्द्रियोंको वशमें रखना, दान देना और दयाकरना, ये सब ब्राह्मणके लक्षण है ॥ ३३ ॥

पावका इव दीप्यन्ते तपोहोमैर्द्विजोत्तमाः॥१४१॥

प्रतिग्रहेण नश्यन्ति वारिणा इव पावकः । तान् प्रतिग्रहजान्दोषान्प्राणायामैर्द्विजोत्तमाः ॥ १४२ ॥

नाशयन्ति हि विद्वांसो वायुर्मेघानिवाम्बरे ॥ १४३ ॥

ब्राह्मण तप और अग्निहोत्र करनेसे अग्निके समान प्रकाशित होते है, परन्तु दान लेनेसे ऐसे तेजहीन होजाते हैं जैसे जलसे अग्नि, किन्तु श्रेष्ठ ब्राह्मण प्राणायामद्वारा प्रतिग्रहजनित दोषको ऐसे नाश करदेते हैं जैसे वायु मेघोंको उड़ा देता है ॥ १४१–१४३ ॥

❀ मनुस्मृति—१ अध्याय–८८ श्लोक; याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय–११८ श्लोक; अत्रिस्मृति–१३ श्लोक; हारीतस्मृति–१ अध्याय–१८ श्लो; शङ्खस्मृति–१ अध्याय–२ श्लोक; गौतमस्मृति–१० अध्याय–१ श्लोक और वसिष्ठस्मृति–२ अध्याय–१९–२० श्लोकमें ब्राह्मणके यही ६ कर्म लिखे हुए हैं ।

❀❀ वृहद्विष्णुस्मृति–५७ अध्यायके ९ श्लोकमें ऐसा ही है ।

(४ क) बृहद्विष्णुस्मृति–२९ अध्याय।

नापरीक्षितं याजयेत् ॥ ४ ॥ नाध्यापयेत् ॥ ५ ॥ नोपनयेत् ॥ ६ ॥

ब्राह्मणको उचित है कि विना (कुल शील आदि) जाने हुए किसी मनुष्यको यज्ञ नहीं करावे, विद्या नहीं पढावे तथा जनेऊ नहीं देवे ॥ ४–६ ॥

(७) अङ्गिरस्स्मृति।

अप्रमाणं गते शूद्रे स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः ॥ ४९ ॥
शूद्रोपि नरकं याति ब्राह्मणोपि तथैव च ॥ ५० ॥

जो ब्राह्मण बिना प्रणाम कियेहुए शूद्रको आशीर्वाद देता है वह उस शूद्रके साहित नरकमें जाता है ॥ ४९–५० ॥

(१३) पाराशरस्मृति–२ अध्याय।

अतः परं गृहस्थस्य कर्माचारं कलौ युगे। धर्मं साधारणं शक्त्या चातुर्वर्ण्याश्रमागतम् ॥ १ ॥
तं प्रवक्ष्याम्यहं पूर्वं पाराशरवचो यथा। षट्कर्मनिरतो विप्रः कृषिकर्माणि कारयेत् ॥ २ ॥
क्षुधितं तृषितं श्रान्तं बलीवर्दं न योजयेत्। हीनाङ्गं व्याधितं क्लीबं वृषं विप्रो न वाहयेत् ॥ ३ ॥
स्थिराङ्गं नीरुजं तृप्तं सुनर्दं षण्ढवर्जितम्। वाहयेद्दिवसस्यार्द्धं पश्चात् स्नानं समाचरेत् ॥ ४ ॥
जपं देवार्चनं होमं स्वाध्यायं चैवमभ्यसेत् ॥ एकद्वित्रिचतुर्विप्रान्भोजयेत्स्नातकान्द्विजः ॥ ५ ॥

इसके उपरान्त कलियुगके गृहस्थका कर्म आचार और चारों वर्ण तथा चारो आश्रमोंका साधारण धर्म, जिस प्रकारसे पराशरजीने कहाहै, कहते है ॥ १–२ ॥ अपने ६ कर्मोंमें निरत ब्राह्मण खेती करावे भूखे, प्यासे, थके, अङ्गहीन, रोगी और नपुंसक (बधिया किये) बैलोंको हलमे नही लगावे ॥ २–३ ॥ सब अङ्गोंसे युक्त, रोग रहित, तृप्त, बलदर्पित और बिना बधिया किये हुए बैलोंको आधे दिन तक हलमें जोतकर स्नान करै ॥ ४ ॥ इसके पश्चात् जप, देवपूजा, होम और वेदपाठका अभ्यास करे और एक, दो, तीन अथवा चार स्नातक ब्राह्मणोंको भोजन करावे ❀ ॥ ५ ॥

स्वयंकृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः। निर्वपेत्पञ्चयज्ञांश्च क्र दीक्षां च कारयेत् ॥ ६ ॥
तिला रसा न विक्रेया विक्रेया धान्यतःसमाः। विप्रस्यैवंविधा वृत्तिस्तृणकाष्ठादि विक्रयः ॥ ७ ॥
ब्राह्मणश्चेत्कृषिं कुर्यात्तन्महादोषमाप्नुयात्। अष्टागवं धर्महलं षड्गवं वृत्तिलक्षणम् ॥ ८ ॥
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गोजिघांसुवत्। द्विगवं वाहयेत्पादं मध्याह्नन्तु चतुर्गवम् ॥ ९ ॥
षड्गवं तु त्रियामाहेऽष्टभिः पूर्णं तु वाहयेत्। न याति नरकेष्वेवं वर्त्तमानस्तु वै द्विजः ॥१० ॥
दानं दद्याच्च वै तेषां प्रशस्तं स्वर्गसाधनम्। संवत्सरेण यत्पापं मत्स्यघाती समाप्नुयात् ॥ ११ ॥
अयोमुखेन काष्ठेन तदेकाहेन लाङ्गली। पाशको मत्स्यघाती च व्याधः शाकुनिकस्तथा ॥ १२ ॥
अदाता कर्षकश्चैव पञ्चैते समभागिनः ॥ १३ ॥

अपने जोते खेतके उपार्जित अन्नसे पञ्चयज्ञ करे और यज्ञादिकोंको करावे ॥ ६ ॥ तिल और रसोंको नही वेचे, अन्न, तृण और काष्ठको वेचे, ब्राह्मणकी ऐसी वृत्ति है ॥७॥ खेतीकरनेवाले ब्राह्मणको महा दोष लगताहै; ८ बैलोंका हल धर्मका, ६ बैलोका हल जीविका करनेवालोका, ४ बैलोंका हल निर्दयीका और २ बैलोंका हल गोहत्यारेका है॥८–९॥ दो बैलवाले हलको चौथाई दिन, ४ बैलवाले हलको आधा दिन,६ बैलवाले हलको ३ पहर और ८ बैलवाले हलको दिनभर जोतनेसे द्विज नरकमे नही जाते है ॥ ९–१० ॥ इन ब्राह्मणोंको स्वर्ग देनेवाला उत्तम दान देना चाहिये। जो पाप एक वर्ष मछली मारनेवालेको होताहै वही पाप एक दिन हल जोतनेवालेको लगताहै ॥ ११–१२ ॥ फांसी देनेवाला, मत्स्यघाती, मृगादिकका हिंसक व्याधा, पक्षीका घातक और अदाता हलचलानेवाला; ये पाञ्चो एकसमान पापी है ॥ १२–१३ ॥

वृक्षं छित्त्वा महीं भित्त्वा हत्वा च कृमिकीटकान् ॥ १५ ॥
कर्षकः खलयज्ञेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १६ ॥
र दत्त्वा तु षड्भागं देवानां चैकविंशकम् ॥ १७ ॥
विप्राणां त्रिंशकं भागं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १८ ॥

❀ खेती करनेवाला ब्राह्मण हल जोतने या जोतवानेपर प्रायश्चित्तके स्थानमें जप, होम आदि करे और स्नातक ब्राह्मणको भोजन करावे तो आगे लिखेहुए पाप उसको नहीं लगेंगे।

खेतके अन्नको काटने, भूमिको जोतने कोड़ने और कृमि तथा कीड़ोंके मरनेसे खेतिहरको जो पाप लगताहै वह खलयज्ञ अर्थात् खलिहानका यज्ञ करनेसे छूट जाताहै ॥ १५-१६ ॥ अन्नका छठा भाग राजाको, २१ वां भाग देवताओंको और ३० वां भाग ब्राह्मणोंको देनेसे वह सब पापोंसे छूटताहै ॥१७-१८॥

१२ अध्याय।

अग्निकार्यात्परिभ्रष्टाः सन्ध्योपासनवर्जिताः। वेदं चैवानधीयानाः सर्वे ते वृषलाः स्मृताः ॥ २९ ॥

तस्माद् वृषलभीतेन ब्राह्मणेन विशेषतः। अध्येतव्योप्येकदेशो यदि सर्वं न शक्यते ॥ ३० ॥

जो ब्राह्मण अग्निहोत्र, सन्ध्योपासना और वेदविद्यासे हीन हैं वे शूद्र कहे जाते हैं इसलिये ब्राह्मणको उचित है कि यदि सम्पूर्ण वेदोंको नहीं पढ़सके तो वेदका एक भाग अवश्य पढ़लेवे ॥ २९-३० ॥

दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः। ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ॥ ३६ ॥

जो ब्राह्मण दक्षिणाकेलिये शूद्रकी हविका हवन करताहै; वह शूद्र होजाता है और वह शूद्र ब्राह्मण होताहै ॥ ३६ ॥

(१६) शङ्खस्मृति-९ अध्याय।

एतैरेव गुणैर्युक्तं धर्मार्जितधनं तथा। याजयीत सदा विप्रो ग्राह्यस्तस्मात्प्रतिग्रहः ॥ १९ ॥

ब्राह्मणको उचित है कि धर्मपूर्वक धन उपार्जन करनेवालोंको यज्ञ करावे और ऐसेही लोगोंसेदान लेवे॥१९॥

१२ अध्याय।

गायत्र्याः परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम्। हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ॥ १२ ॥

तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो नियतः शुचिः। गायत्रीजाप्यनिरतं हव्यकव्येषु भोजयेत् ॥ १३ ॥

स्वर्ग अथवा मृत्युलोकमें गायत्रीसे अधिक पवित्र करनेवाला कोई नहीं है, गायत्री नरकरूप समुद्रमें पड़नेवाले मनुष्योंको हाथ पकडकर निकाल लेती है ॥ १२॥ ब्राह्मणोंको उचित है कि, नित्य नियमपूर्वक शुद्धतासे सविधि गायत्रीका जप करे। सब लोगोंको चाहिये कि देव और पितरके कार्योंमें गायत्रीके जपमें तत्पर ब्राह्मणोंको भोजन करावें ॥ १३ ॥

(१७) दक्षस्मृति-२ अध्याय।

दिवसस्याद्यभागे तु सर्वमेतद्विधीयते। द्वितीये चैव भागे तु वेदाभ्यासो विधीयते ॥ २८ ॥

वेदाभ्यासो हि विप्राणां परमं तप उच्यते। ब्रह्मयज्ञः स विज्ञेयः षडङ्गसहितस्तु यः ॥ २९ ॥

वेदस्वीकरणं पूर्वं विचारोऽभ्यसनं जपः। प्रदानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चधा ॥ ३० ॥

ब्राह्मणोंको उचित है कि दिनके प्रथम भागमें सन्ध्या आदि सम्पूर्ण कार्य करके दूसरे भागमें वेदका अभ्यास करें ॥ २८ ॥ उनके लिये वेदका अभ्यास परम तपस्या और षडङ्गसहित वेदका अभ्यास ब्रह्मयज्ञ है ॥ २९ ॥ वेदका अभ्यास ५ प्रकारका है, १ वेदका स्वीकार, २ वेदका विचार, ३ वेदका अभ्यास, ४ वेदका जप और ५ वेदका दान ॥ ३० ॥

बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—३ अध्याय, १०९-१२३ श्लोक। खलयज्ञको कहेंगे जिसके करनेसे द्विजाति सब पापोंसे मुक्त हो स्वर्गको प्राप्त करतेहैं। खलिहानमें चारों दिशासे सघन घेरा बनावै, वह चारोंओरसे ढँपा रहे, उसमें एक द्वार रहे। उसमें प्रवेश करते हुए गदहे, ऊँट, बकरे तथा भेड़को नहीं रोके। कुत्ते, सूअर, सियार, काक, उलूक, तथा कबूतरको तीनों कालमें प्रोक्षणजलसे प्रोक्षण करे और भस्म तथा जलधारासे रक्षा करे। महर्षि पराशरको स्मरण करतेहुए तीनों कालमें हलके फारकी पूजा करे। खलिहानमें रहकर प्रेत, भूतादिकोंका नाम नहीं लेवे। सूतिकागृहके समान वहां चारोंओरसे रक्षा करे; क्योंकि रक्षा नहीं करनेसे राक्षस सब हरलेतेहैं। अच्छेदिनके पूर्वाह्न अथवा पराह्नके सन्धिमें हलके फारकी पूजा करके अन्नको तौले। वहां रौहिणकालमें (दो पहर दिनसे थोड़ बाद) भिक्षासे यज्ञकरे। वहां जो कुछ भक्तिसे दियाजाताहै वह सब अक्षय होताहै। उस समय ऐसा कहे कि पूर्वकालमें ब्रह्माने खलयज्ञका दक्षिणा बनाया था, इस मेरे दक्षिणाको भागधेयरूपकर ग्रहण करो। इन्द्रादिकदेवता, सोमपादिक पितर, सनकादिक, मनुष्य और जो कोई दक्षिणाशी हैं उनके उद्देशसे प्रथम ब्राह्मणको, उसके पश्चात् अन्य याचकको और उसके बाद शिल्पीको और दीन, अनाथ, कोढी, कुशरीरी, नपुंसक, अन्ध, बधिर आदिको देवे। पतितवर्णोंको देकर भूतोंको तर्पण करे। चण्डाल, श्वपाक आदि सबही को यथाशक्ति देकर मीठे वचनसे उनको विसर्जन करे। उसके पश्चात् अन्नको घरमें लेजाकर वहां आभ्युदयिक श्राद्ध करे।

(२४) लघुआश्वलायनस्मृति--१ आचारप्रकरण ।

ततश्चैवाभ्यसेद्वेदं शिष्यानध्यापयेदथ । पोष्यवर्गार्थमन्नादि याचयेत यथोचितम् ॥ ७३ ॥
माता पिता गुरुर्भार्या पुत्रः शिष्यस्तथैव च । अभ्यागतोऽतिथिश्चैव पोष्यवर्ग इति स्मृतः ॥ ७४॥

ब्राह्मण वेदका अभ्यास करे; शिष्योंको पढावे और पोष्यवर्गके लिये यथा उचित अन्न आदि याचना करै ॥ ७३ ॥ माता, पिता, गुरु, भार्या, पुत्र, शिष्य, अभ्यागत और अतिथि, ये सब पोष्यवर्ग कहेजातेहैं ॥ ७४ ॥

ब्राह्मणकेलिये योग्य प्रतिग्रह ४.

(१) मनुस्मृति ४ अध्याय ।

एधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् । सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्वथाभयदक्षिणाम् ॥ २४७ ॥
आहृताभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम् । मेने प्रजापतिर्ग्राह्यामपि दुष्कृतकर्मणः ॥ २४८ ॥
नाश्नन्ति पितरस्तस्य दश वर्षाणि पञ्च च । न च हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥ २४९ ॥

ब्राह्मणको उचित है कि यदि कोई मनुष्य काठ, जल, मूल, फल, अन्न, मधु अथवा अभय-दान विना मांगे हुए स्वयं लाकर रखदेवे तो उसको लेलेवे ॥ २४७ ॥ ब्रह्माने कहा है कि दुष्कृत कर्म करनेवाले भी यदि बिना पहिले कुछ कहेहुए तथा बिना मांगेहुए अपनी इच्छासे भिक्षा लाकर रखदेवें तो उसे अवश्य लेलेवे; क्योंकि जो ब्राह्मण ऐसी भिक्षाको नहीं लेता है १५ वर्ष तक उसके पितरगण उसके दिये हुए कव्यको नहीं भोजन करते और अग्नि उसके हव्यको नहीं ग्रहण करते हैं ॥२४८-२४९॥

गुरून्भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्नर्चिष्यन्देवतातिथीन् । सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः ॥ २५१ ॥
गुरुषु त्वभ्यतीतेषु विना वा तैर्गृहे वसन् । आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन्गृह्णीयात्साधुतः सदा ॥ २५२ ॥

गुरुजन (पिता माता आदि) और भृत्यगण (स्त्री, पुत्र, सेवक आदि) के भरण पोषणके लिये और देवताओं तथा आतिथियोंके पूजनके निमित्त ब्राह्मण सबसे दान लेसकता है किन्तु अपने भोजनके लिये नहीं ॥ २५१ ॥ जो ब्राह्मण माता पिताके मरनेपर अथवा उनके जीते हुए पृथक् भावसे बसते हैं, उनको अपनी जीविकाके लिये उत्तम लोगोंसे ही दान लेना चाहिये ॥ २५२ ॥

(१८) गौतमस्मृति--१७ अध्याय ।

प्रशस्तानां स्वकर्मसु द्विजातीनां ब्राह्मणो भुञ्जीत, प्रतिगृह्णीयाच्चैधोदकयवसमूलफलमध्वभयाभ्युद्यत-प्रतिशय्यासनावसथयानपयोदधिधानाशफरिप्रियङ्गुस्रङ्मार्गशाकान्यप्रणोद्यानि सर्वेषां पितृदेवगुरुभृत्यभरणे चान्यवृत्तिश्चेन्नान्तरेण शूद्रान् ॥ १ ॥

ब्राह्मण निजकर्मोंमें तत्पर द्विजातियोंके घर भोजन करें और उन्हींसे दान लेवें; किन्तु पितर, देवता और गुरुके कार्यके लिये तथा निज-भृत्योंके भरणपोषणके निमित्त, काष्ठ, जल, भूसा, मूल, फल, मधु, अभयदान, नयी शय्या, आसन, घर, सवारी, दूध, दही, भूँजा यव, ककुनी, फूलकी माला, मार्ग और शाक सबसे लेलेवें; किन्तु यदि अन्य कोई जीविका होय तो शूद्रोंसे ले; वर्णसङ्करसे न लेवे ॥ १ ॥

१८ अध्याय ।

द्रव्यादानं विवाहसिद्ध्यर्थं धर्मतन्त्रप्रसंगे च शूद्रादन्यत्रापि, शूद्राद्बहुपशोर्हीनकर्मणः शतगोरनाहिताग्नेः सहस्रगोर्वा सोमपात् ॥ १ ॥

ब्राह्मणको उचित है कि कन्याके विवाह और इतर धर्मकार्योंके लिये शूद्रसे भी धन लेवे और अन्य कार्योंके लिये बहुत पशुवाले शूद्रसे, सौ गौवाले हीनकर्म करनेवालेसे, हजार गौवाले अग्निहोत्रसे-हीन द्विजसे अथवा सोमपान करनेवालेसे द्रव्य लेवे ॥ १ ॥

वृहद्विष्णुस्मृति-५७ अध्यायके १० अंक और ११-१२ श्लोकमें भी ऐसा लिखा है। याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्यायके २१५ श्लोकमें है कि दुष्कृत कर्म करनेवाले (दुराचारी) मनुष्य भी यदि विना मांगेहुए कोई पदार्थ लाकर रखदेवें तो लेलेना चाहिये, परन्तु व्यभिचारिणी स्त्री, नपुंसक, पतित और शत्रुकी लाईहुई वस्तु नहीं लेवे।

वृहद्विष्णुस्मृति-५७ अध्याय-१३ श्लोकमें और वसिष्ठस्मृति-१४ अध्याय-९ श्लोकमें भी ऐसा है। याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय२१६ श्लोकमें है कि देवता तथा अतिथिकी पूजाके लिये और भृत्यगणके भरणपोषणके निमित्त तथा अपने प्राणकी रक्षाके लिये ब्राह्मण सबसे दान लेवे ।

(२०) वसिष्ठस्मृति--१४ अध्याय ।

उद्यतामाहृतां भिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम् । भोज्यां प्रजापतिर्मेने अपि दुष्कृतकारिणः ॥ १३ ॥
न तस्य पितरोऽश्नन्ति दशवर्षाणि पञ्च च । न च हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥ १५ ॥
चिकित्सकस्य मृगयोः शल्यहस्तस्य पापिनः । षण्ढस्य कुलटायाश्च उद्यतापि न गृह्यते ॥ १६ ॥

ब्रह्माने कहाहै कि यदि दुष्कृतकर्म-करनेवाले भी बिना सूचनाके अकस्मात् भोजनकी वस्तु लाकर रखदेवें तो उसके लेनेमें कुछ दोष नहीं है ॥ १३ ॥ जो ऐसा अयाचित- भिक्षा ग्रहण नहीं करताहै उसके घर १५ वर्ष तक पितरगण नहीं खाते और उसका हव्य अग्नि ग्रहण नहीं करते ॥ १५ ॥ किन्तु चिकित्सक, व्याधा, शूल हाथमें लियेहुए हत्यारा नपुंसक और व्यभिचारिणी-स्त्रीका अयाचित अन्न भी नहीं लेना चाहिये ॥ १६ ॥

ब्राह्मणके आपत्कालका धर्म ५.

(१) मनुस्मृति--४ अध्याय ।

नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः । आददीताममेवास्मादवृत्तावेकरात्रिकम् ॥ २२३ ॥

विद्वान् ब्राह्मणको उचित है कि श्राद्ध आदि पञ्चयज्ञोंसे हीन शूद्रका पकाया हुआ अन्न भोजन नहीं करे; किन्तु क्षुधासे पीड़ित होनेपर एक रातके निर्वाहके योग्य उससे कच्चा अन्न लेलेवे ॥ २२३ ॥

१० अध्याय ।

अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा । जीवेत्क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्य प्रत्यनन्तरः ॥ ८१ ॥
उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत् । कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥ ८२॥

ब्राह्मण यदि अपने कर्मोंसे अपनी जीविका न चलासके तो क्षत्रियके कर्मसे जीविका करे; क्यों कि यही उसकी निकट वृत्ति है ॥ ८१ ॥ जब निजवृत्ति और क्षत्रियकी वृत्तिसे भी ब्राह्मणकी जीविका नहीं चलसके तो खेती पशुरक्षा आदि वैश्यके कर्मसे वह अपना निर्वाह करे ॥ ८२ ॥

वैश्यवृत्त्यापि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा । हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ॥८३॥
कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता । भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम् ॥८४॥

ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय यदि वैश्यवृत्ति अवलम्बन करें तो वैश्यकी वृत्तियोंमेंसे कृषिकर्मको, जो अति हिंसा युक्त और बैल, आदि पशुओंके आधीन है, यत्नपूर्वक छोड़देव ॥ ८३ ॥ कोई कोई खेतीको श्रेष्ठ कहते हैं; किन्तु यह वृत्ति सज्जनोंकरके निंन्दित है; क्यों कि उसके करनेमें हल, कुदाल आदिसे भूमिको खोदनेमें भूमिके जीवोंकी हिंसा होतीहै ॥ ८४ ॥

इदन्तु वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो धर्मनैपुणम् । विट्पण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्द्धनम् ॥ ८५ ॥
सर्वान्रसानपोहेत कृतान्नञ्च तिलैः सह । अश्मनो लवणश्चैव पशवो ये च मानुषाः ॥ ८६ ॥
सर्वञ्च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च । अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः ॥ ८७ ॥
अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गन्धांश्च सर्वशः । क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ॥८८॥
आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्च वयांसि च । मद्यं नीलीं च लाक्षां च सर्वांश्चैकशफांस्तथा ॥८९॥

निज वृत्तिका अभाव तथा निज धर्म पालनमें असमर्थ होनेपर ब्राह्मण और क्षत्रिय नीचे लिखी हुई वस्तुओंका क्रय विक्रय छोडकर वैश्य वृत्तिके व्यापारसे अपनी जीविका करें ॥ ८५ ॥ सब प्रकारके रस पकाहुआ अन्न, तिल, पत्थर, नोंन, पशु, मनुष्य, सूतसे बनेहुए लालवस्त्र, विना लालरंगके भी सणके बने वस्त्र

बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—४ अध्याय-२२५-२२६ श्लोक । हाथी और काली मृगछाला आदि सद्ब्राह्मण दान नहीं लेवें; क्योंकि लेनेसे वे पतित होतेहैं । काली मृगछाला दान लेनेवाला, घोड़ेके शुक्रका बेचनेवाला और नवश्राद्धमें भोजन करनेवाला फिर पुरुष नहीं होताहै ।

ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके आपत्कालका धर्म गृहस्थप्रकरणमें हैं ।

बौधायनस्मृति-२प्रश्न-२ अध्यायके ७७ श्लोकमें प्रायः ऐसा है ।

तीसीकी छालके वस्त्र और कम्बल, फल, मूल, औषधी, जल, शस्त्र, विष, मांस, सोमरस, सब प्रकारकी सुगन्धित वस्तु, दूध, मोम, दही, घी, तैल, मधु, गुड, कुश, सब प्रकारके बनैले पशु, दांतवाले जानवर, पक्षी, मद्य, नील लाह और घोडे आदि १ खुरवाले पशुका क्रय विक्रय नहीं करे ॥ ८६–८९ ॥

कामम़ुत्पाद्य कृष्यां तु स्वयमेव कृषीवलः । विक्रीणीत तिलाञ्शुद्धान्धर्मार्थमचिरस्थितान् ॥९०॥
भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः । कृमिभूतः श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति ॥ ९१ ॥
सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च । त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥ ९२ ॥
इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः । ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं नियच्छति ॥ ९३ ॥

कृषक अपने खेतमें उत्पन्न पवित्र तिलको धर्मकार्यके निमित्त इच्छानुसार बेंच सकता है; किन्तु लाभकी इच्छासे बहुत दिनोंतक रखके नहीं बेंचे ॥ ९० ॥ जो मनुष्य भोजन, उबटना और दानके सिवाय तिलको अन्य व्यवहारमें लाताहै वह पितरोंके सहित कुत्तेकी विष्ठाका कीडा होता है ▩ ॥ ९१ ॥ ब्राह्मण मांस, लाह, और नोंन बेंचनेसे उसीक्षण पतित होजाता है; तीनदिन तक दूध बेंचनेसे शूद्र बन जाता है तथा इच्छा पूर्वक ७ दिनतक ऊपर कहेहुए रस आदि निषिद्ध वस्तुओंको बेंचनेसे वैश्य होजाता है ▩ ॥ ९२–९३ ॥

वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणः स्व पथि स्थितः । अवृत्तिकर्षितः सीदन्निमं धर्मं समाचरेत् ॥ १०१ ॥
सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्ब्राह्मणस्त्वनयं गतः । पवित्रं दुष्यतीत्येतद्धर्मतो नोपपद्यते ॥ १०२ ॥
नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात् । दोषो भवति विप्राणां ज्वलनाम्बुसमा हि ते ॥१०३॥
जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः । आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते ॥ १०४ ॥
अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासर्पद्बुभुक्षितः । न चालिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीकारमाचरन् ॥ १०५ ॥
श्वमांसमिच्छन्नार्त्तोऽत्तुं धर्माधर्मविचक्षणः । प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ॥ १०६ ॥
भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो विजने वने । बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः ॥ १०७ ॥
क्षुधार्त्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रः श्वजाघनीम् । चण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ॥ १०८ ॥

जो ब्राह्मण ब्राह्मणकी वृत्तिसे निर्वाह न होनेपर भी वैश्यकी वृत्तिका अवलम्बन नहीं करके अपनी निजवृत्तिमें स्थित रहताहै वह नीचे कहेहुए धर्मको करे ॥ १०१ ॥ ऐसा विपद्ग्रस्त ब्राह्मण सब लोगोंसे दान लेलेवे; जो स्वयं पवित्र है वह दोषसे दूषित होगा ऐसा धर्मशास्त्रानुसार सिद्ध नहीं हो सकता ❋ ॥ १०२ ॥ ब्राह्मण स्वभावसे ही जल और अग्निके समान पवित्र हैं; आपत्कालमें निन्दितपुरुषोंके पढ़ाने, यज्ञकराने तथा उनसे दान लेनेसे उनको पाप नहीं लगता ॥ १०३ ॥ यदि प्राणसङ्कटकी सम्भावनामें ब्राह्मण

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्यायके ३६–३८ श्लोकमें लालवस्त्र, शणके वस्त्र, तेल, गुड़, बनैले पशु, दांतवाले जीव और पक्षीका नाम नहीं है; किन्तु लिखा हैं कि पूआ, विरुध, मिट्टी, चाम, चंवर आदि बालकी चीजें, भूमि, रेशमी वस्त्र, शीशा, शाक और तिलकी खलीभी नहीं बेंचे । गौतमस्मृति–७ अध्यायके १–२ अंकमें पत्थर, कम्बल, शस्त्र, विष, सोमरस, तेल, गुड़, कुश, बनैले पशु, नील और मधुका नाम नहीं है; किन्तु लिखा है कि मृगचर्म, तृण, भूमि, व्रीहि, यव, भेड़, बकरी और बैल भी नहीं बेंचे । वसिष्ठस्मृति–२ अध्यायके २९ अंकमें कम्बल, मनुष्य, तेल, मधु, गुड़, दांतवालेपशु, मद्य, नील और एक खुरवाले पशुका नाम नहीं है किन्तु लिखाहै कि मणि, रेशमी वस्त्र, मृगचर्म, शीशा, लोहा, और रांगा भी नहीं बेंचे । सुमन्तुस्मृति–भूमि, धान, जौ, बकरे, भेड, घोडा, बैल और धेनुको न बेंचे (१)।

▩ वासिष्ठस्मृति–२ अध्यायका ३५ श्लोक और बौधायनस्मृति–२ प्रश्न १ अध्यायका ७६ श्लोक ९१ श्लोकके समान है और ७७–७८ अंकमें है कि तिलको बेंचनेवाला अपने पितरोंको बेंचता है और चावल बेंचनेवाला अपने प्राणको बेंचता है । याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–३९ श्लोक । धर्म कार्यके लिये बराबर धान्य लेकर तिल देदेवे ।

▩ अत्रिस्मृतिके २१ श्लोकमें ९२ श्लोकके समान है । याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्यायके ४० श्लोकमें है कि लाह, नोंन अथवा मांस, बेंचनेसे ब्राह्मण पतित होजाता है और दूध, दही तथा मद्य बेचनेसे हीन जाति बन जाता है ।

❋ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय-४१ श्लोक । आपत्कालमें किसीका दान लेने अथवा किसीके घर भोजन करनेसे ब्राह्मण दोषी नहीं होता; क्यों कि उस समय वह अग्नि और सूर्यके समान सर्वभक्षी होजाताहै ।

किसीका अन्न लेवे तो जैसे आकाशमें कीच नहीं स्पर्श करताहै वैसे उसको पाप नहीं लगताहै ॥ १०४ ॥ भूखसे पीड़ित होकर अजीगर्त्तऋषि अपने पुत्रको मारनेको उद्यत हुए थे; किन्तु क्षुधा निवृत्त करनेके कारण ऐसा करनेसे वह पापसे लिप्त नहीं हुए ॥ १०५ ॥ धर्म अधर्मको जाननेवाले वामदेवऋषि प्राणरक्षाकेलिये कुत्तेका मांस खानेके अभिलाषी हुएथे तब भी उनको पाप नहीं लगा ॥ १०६ ॥ महातपस्वी भरद्वाज मुनिने पुत्रके सहित निर्जनवनमें क्षुधासे पीड़ित होकर वृधु नामक बढ़ईसे बहुतसी गौदान स्वरूप लीथी ॥ १०७ ॥ धर्म अधर्मके जाननेवाले विश्वामित्रने भूखसे पीड़ित होकर चण्डालसे कुत्तेका मांस लेकर खानेकी इच्छा कीथी तब भी वे दोषी नहीं हुए ॥ १०८ ॥

याजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृतात्मनाम् । प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः॥ ११० ॥

ब्राह्मण उपनयन संस्कारसे युक्त द्विजातियोंके याजन और अध्यापन कार्य सदा करावे परन्तु आपत्कालमें निकृष्टजाति शूद्रका भी प्रतिग्रह लेलेवे ॥ ११० ॥

११ अध्याय ।

तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्नता । अश्वस्तनविधानेन हर्त्तव्यं हीनकर्मणः ॥ १६ ॥

खलात्क्षेत्रादगाराद्वा यतो वाप्युपलभ्यते । आख्यातव्यं तु तत्तस्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥ १७ ॥

यदि ब्राह्मणको ६ बेला अर्थात् ३ दिन उपवास होजावे तो ७ वीं बेलामें हीनकर्मकरनेवाले मनुष्यके खलिहान, खेत अथवा घरसे चोरी करके एकबार भोजन करनेयोग्य वस्तु लेलेवे; किन्तु धनके स्वामीके पूछनेपर चुरानेका सच्चा कारण बतलादेवे ❀ ॥ १६-१७ ॥

आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुतेऽनापदि द्विजः । स नाप्नोति फलं तस्य परत्रेति विचारितम् ॥ २८ ॥

जो द्विज अनापत्कालमें भी आपत्कालका धर्म करताहै उसको परलोकमें उस धर्मका कुछ फल नहीं मिलताहै ॥ २८ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति--३ अध्याय ।

क्षात्रेण कर्मणा जीवेद्विशां वाप्यापदि द्विजः । निस्तीर्य तामथात्मानं पावयित्वा न्यसेत्पथि ॥३५॥

ब्राह्मण आपत्कालमें क्षत्रिय अथवा वैश्यका कर्म करके अपना निर्वाह करे; किन्तु आपत्से पार होनेपर प्रायश्चित्तसे पवित्र होकर फिर अपनी वृत्ति ग्रहण करलेवे ॥ ३५ ॥

कृषिः शिल्पं भृतिर्विद्या कुसीदं शकटं गिरिः । सेवानूपं नृपो भैक्ष्यमापत्तौ जीवनानि तु ॥ ४२॥

(९) आपस्तम्बस्मृति-८ अध्याय ।

आपत्काल तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि ॥ १९ ॥

मनस्तापेन शुद्ध्येत द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥ २० ॥

यदि ब्राह्मण आपत्कालमें शूद्रके घर भोजन करलेवे तो वह पश्चात्ताप करनेसे अथवा १०० द्रुपदा मन्त्र जपनेसे शुद्ध होजाता है ॥ १९-२० ॥

❀ गौतमस्मृति—१८ अध्यायके १ अङ्कमें भी ऐसा लिखाहै । याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय । यदि ३ दिन ब्राह्मणको अन्न नहीं मिले तो ब्राह्मणको छोड़कर अन्य जातिके घरसे एकवार भोजनयोग्य अन्न चुरालेवे; किन्तु पकड़ाजावे तो धर्मसे सत्य वृत्तान्त कह देवे ॥ ४३ ॥ राजाको चाहिये कि ऐसा विपद्ग्रस्त ब्राह्मणका कुल, शील, विद्या, वेद, तप और कुटुम्बका विचार करके धर्मानुसार उसकी जीविका ठहरादेवे ॥ ४४ ॥

▦ नारदस्मृति—१ विवादपद-३ अध्यायके ६१-६३ श्लोक । ब्राह्मणको चाहिये कि क्षत्रियका काम करके अपना आपत्काल बितावे; किन्तु आपत्काल बीतजानेपर प्रायश्चित्त करके पवित्र होवे; जो ब्राह्मण मोहवश होकर उसी वृत्तिको करतेहुए रहजाताहै वह धनुषधारी कहाताहै और अपने धर्मसे पतित होजानेके कारण पंक्तिके योग्य नहीं रहता है । प्रजापतिस्मृति—४७ श्लोक । यदि अपने कर्मसे ब्राह्मणका निर्वाह नहीं हो सके तो वह क्षत्रिय अथवा वैश्यकी वृत्तिसे निर्वाह करे; किन्तु कुत्तेकी वृत्तिके तुल्य शूद्रकी वृत्ति कभी नहीं करे । नारदस्मृति—१ विवादपद-१ अध्यायके ५८-६० श्लोकमें प्रायः ऐसा है और ६०-६१ श्लोकमें है कि बड़े मनुष्य छोटेका कर्म और छोटे मनुष्य बड़ेका कर्म नहीं करें; उत्तम और अधम वृत्तिको छोड़कर मध्यमवृत्ति सबकेलिये है ।

(१८) गौतमस्मृति–७ अध्याय।

प्राणसंशये ब्राह्मणोऽपि शस्त्रमाददीत राजन्यो वैश्यकर्म ॥ ३ ॥

प्राणजानेके संशय होनेपर ब्राह्मण शस्त्र धारण अर्थात् क्षत्रियका कर्म और क्षत्रिय वैश्यका कर्म करे ॥ ३ ॥

(२०) वशिष्ठस्मृति–३ अध्याय।

आत्मत्राणे वर्णसङ्करे वा ब्राह्मणवैश्यौ शस्त्रमाददीयाताम् ॥ २६ ॥

अपनी रक्षाके लिये अथवा वर्णसंकर होनेसे लोगोंको बचानेके लिये ब्राह्मण और वैश्यको भी शस्त्र ग्रहण करना चाहिये ॥ ॥ २६ ॥

२६ अध्याय।

क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः। धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपैर्होमैर्द्विजोत्तमः ॥ १७ ॥

क्षत्रिय अपने बाहु बलसे, वैश्य और शूद्र धनसे और ब्राह्मण जप और होमके बलसे आपत्कालसे पार होवें ॥ ॥ १७ ॥

ब्राह्मणकेलिये भक्ष्याभक्ष्य * ६.

(१) मनुस्मृति–४ अध्याय।

नाश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजिकृते तथा। स्त्रिया क्लीबेन च हुते भुञ्जीत ब्राह्मणः क्वचित् ॥ २०५ ॥
मत्तक्रुद्धातुराणाञ्च न भुञ्जीत कदाचन। केशकीटावपन्नञ्च पदा स्पृष्टञ्च कामतः ॥ २०७ ॥
भ्रूणघ्नावेक्षितञ्चैव संस्पृष्टञ्चाप्युदक्यया। पतत्रिणावलीढञ्च शुना संस्पृष्टमेव च ॥ २०८ ॥
गवां चान्नमुपघ्रातं घुष्टान्नञ्च विशेषतः। गणान्नं गणिकान्नञ्च विदुषा च जुगुप्सितम् ॥ २०९ ॥
स्तेनगायकयोश्चान्नं तक्ष्णो वार्धुषिकस्य च। दीक्षितस्य कदर्यस्य बद्धस्य निगडैरथ ॥ २१० ॥

ब्राह्मणको उचित है कि जिस यज्ञका करानेवाला अश्रोत्रिय है, तथा बहुतोंको यज्ञ करानेवाला है, स्त्री अथवा नपुंसक है उस यज्ञमें कभी नहीं भोजन करे ॥ २०५ ॥ मतवाले, क्रोधी और रोगीका अन्न; केश अथवा कीटसे दूपित अन्न; पैरसे छुआ हुआ अन्न; भ्रूणघातीका देखा हुआ, रजस्वला स्त्रीका छुआहुआ, पक्षीका खाया हुआ, कुत्तेका स्पर्श कियाहुआ और गौका सूँघाहुआ अन्न खानेवाला हो, सो आवै ऐसा पुकारके दियाहुआ, समूह सन्यासी और भिक्षुक लोगोंका, वेश्याका और पण्डितों द्वारा निन्दित अन्न चोर, गवैया, वढई, व्याज लेनेवाले ब्राह्मण, दीक्षित, कृपण और बेडीसे बँधाहुआ मनुष्यका अन्न कभी नहीं खावे ॥ २०७–२१० ॥

अभिशस्तस्य षण्ढस्य पुंश्चल्या दाम्भिकस्य च। शुक्तं पर्युषितञ्चैव शूद्रस्योच्छिष्टमेव च ॥२११ ॥
चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः। उग्रान्नं सूतिकान्नञ्च पर्याचान्नमनिर्दशम् ॥ २१२॥
अनर्चितं वृथा मांसमवीरायाश्च योषितः। द्विषदन्नं नगर्यन्नं पतितान्नमवक्षुतम् ॥ २१३ ॥
पिशुनानृतिनोश्चान्नं क्रतुविक्रयिणस्तथा। शैलूषतुन्नवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ॥ २१४ ॥
कर्मारस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च। सुवर्णकर्तुर्वेणस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा ॥ २१५ ॥
श्ववतां शौण्डिकानाञ्च चैलनिर्णेजकस्य च। रजकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ २१६ ॥
मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितानां च सर्वशः। अनिर्दशं च प्रेतान्नमतुष्टिकरमेव च ॥ २१७ ॥

दोषी, नपुंसक, व्यभिचारिणी स्त्री और छलधर्मीका अन्न; स्वादरहित, बासी और जूठा अन्न; शूद्र वैद्य, व्याधा, क्रूरपुरुष, जूठा खानेवाले, उग्र और दशदिनतक सूतिकाका अन्न; पंक्तिसे किसीके उठजानेपर उस पंक्तिका अन्न, वृथामांस, अवज्ञापूर्वक दिया अन्न, पति और पुत्रसे हीन स्त्रीका अन्न, द्वेषीका अन्न, नगरकी पञ्चायतका अन्न, पतितका अन्न और छींक पड़ाहुआ अन्न कभी नहीं भोजन करे ॥ २११–२१३ ॥ चुगुल,

---

बौधायनस्मृति–२ प्रश्न–२ अध्याय, ८० श्लोक। गौ और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये और वर्णसंकर होनेसे लोगोंको बचानेके अर्थ ब्राह्मण और वैश्य भी शस्त्र ग्रहण करै।

मनुस्मृति–११ अध्यायके ३४ श्लोकमें भी ऐसा है।

* इनमेंसे बहुत वस्तुओंको द्विज मात्रके लिये और अनेकको सबके लिये अभक्ष्य जानना चाहिये।

झूठा और यज्ञका फल बेचनेवालेका अन्न, नट, दरजी, कृतघ्न, लोहार, निषाद, तमासाकरनेवाले, सोनार, वेण, शास्त्र बेचनेवाले, कुत्तापालनेवाले, सुरा बेचनेवाले, धोबी, रङ्गरेज, निठुर, जिसके घरमें जारपुरुष रहता हो, जो जारपुरुषको घरमें रहते जानकर उसको सहलेता है. उसको और स्त्रीके वशमें रहनेवाले पुरुषका अन्न; दसदिनके भीतर मृतसूतकका अन्न और अतुष्टिकर अन्न कभी नहीं खावे ❀ ॥२१४-२१७॥

राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् । आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्तिनः ॥ २१८ ॥
कारुकान्नं प्रजां हन्ति बलं निर्णेजकस्य च । गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यः परिकृन्तति ॥२१९॥

राजाके अन्न खानेसे तेज, शूद्रके अन्नसे ब्रह्मतेज, सोनारके अन्न खानेसे आयु, चमारके अन्नसे यश, चित्रकारआदि कारुकके अन्नसे सन्तान और धोबीके अन्न खानेसे बल नष्ट होताहै, समाजके एकत्रित अन्न, और वेश्याके अन्न खानेसे सञ्चित पुण्य नष्ट होजातेहैं ✾ ॥ २१८-२१९ ॥

भुक्त्वातोन्यतमस्यान्नममत्या क्षपणं त्र्यहम् । मत्या भुक्त्वा चरेत्कृच्छ्रं रेतो विण्मूत्रमेव च॥२२२॥
नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः । आददीताममेवास्मादवृत्तावेकरात्रिकम् ॥ २२३ ॥

जो ब्राह्मण अज्ञानसे इनका अन्न खाताहै वह ३ रात उपवास करे और जो ब्राह्मण जानकर खाताहै वह कृच्छ्रव्रत करे ऐसे ही वीर्य, विष्ठा तथा मूत्र भक्षण करनेमें प्रायश्चित्त करे ॥ २२२ ॥ विद्वान् ब्राह्मणको उचित है कि श्राद्धकर्मसे हीन शूद्रका पकाहुआ अन्न नहीं खावे; किन्तु अन्न नहीं मिलनेपर एकरात निर्वाह योग्य उससे कच्चा अन्न लेलेवे ॥ २२३ ॥

आर्धिकः कुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ । एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥२५३॥

अपने साझीदार, कुलके मित्र, गोपालक, दास, नाई और अपनेको समर्पण करदेनेवाले; इतने शूद्रोंका अन्न खाना चाहिये ❋ ॥ २५३ ॥

११ अध्याय।

यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम् । तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः ॥ ९६ ॥

मद्य, मांस और सुराका आसव (टटका खींचाहुआ मद्य अर्क) ये सब यक्ष, राक्षस और पिशाचोंके अन्न हैं इन्हें ब्राह्मण कदापि नहीं भक्षण करें; क्यों कि वे लोग देवताओंके हवि भोजन करनेवाले हैं ▩ ॥ ९६ ॥

(४) विष्णुस्मृति--५ अध्याय।

शूद्रोपि द्विविधो ज्ञेयः श्राद्धी चैवेतरस्तथा । श्राद्धी भोज्यस्तयोरुक्तो ह्यभोज्यस्त्वितरो मतः॥१०॥
प्राणानर्थांस्तथा दारान्ब्राह्मणार्थं निवेदयेत् । स शूद्रजातिर्भोज्यःस्यादभोज्यः शेष उच्यते ॥ ११ ॥

शूद्र दो प्रकारके होते हैं, एक श्राद्धका अधिकारी. और दूसरा अनधिकारी; इनमेंसे श्राद्धके अधिकारी शूद्रका अन्न खाना चाहिये; किन्तु अनधिकारीका नहीं ॥ १० ॥ जो शूद्र अपना प्राण धन तथा स्त्रीको ब्राह्मणकी सेवामें समर्पण करदेवे उसका अन्न ब्राह्मण भोजन करे; अन्य शूद्रका नहीं ॥ ११ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति--१ अध्यायके-१६१-१६५ और १६७-१६८ श्लोकमें (स्नातकप्रकरणमें) प्रायः ऐसा ही है और लिखाहै कि व्रात्य, ग्रामयाजक, राजा, गाड़ीवान्, बन्दी और सोम बेंचनेवालेका अन्न भी स्नातकब्राह्मण नहीं खावे । व्यासस्मृति-३ अध्यायके ४७-५१ श्लोक और वसिष्ठस्मृति-१४ अध्यायके १-५ अङ्क और ६ श्लोकमें इनमेंसे बहुतलोगोंका अन्न नहीं खानेको लिखाहै; व्यासस्मृतिमें है कि नग्न, नास्तिक, निर्लज्ज और व्यसनीका भी अन्न ब्राह्मण नहीं खावें ।

✾ अङ्गिरास्मृति—७१ श्लोक, आपस्तम्बस्मृति-९ अध्याय-२७ श्लोक और अत्रिस्मृति-३०० श्लोक । राजाका अन्न तेजको और शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजको हरलेताहै ।

❋ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१६६ श्लोक, बृहद्विष्णुस्मृति-५७ अध्याय १६ श्लोक बृहद्यमस्मृति-३ अध्याय-१०श्लोक, पाराशरस्मृति-११अध्याय-२२ श्लोक, व्यासस्मृति-३ अध्यायके ५१-५२ श्लोक; आर गौतमस्मृति-२७अध्यायके १ अङ्कमें भी ऐसा है इनमेंसे गौतमस्मृतिमें साझीदारके स्थानमें क्षेत्रकर्षक लिखाहै ।

▩ शङ्खलिखितस्मृति-१८ श्लोक । जो अग्निहोत्री ब्राह्मण मछली अथवा मांस खाताहै वह कालरूपी काला सर्प और ब्रह्मराक्षस होताहै ।

(७) अङ्गिरास्मृति ।

यो भुङ्क्ते हि च शूद्रान्नं मासमेकं निरन्तरम् ॥ ४७ ॥
इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चाभिजायते ॥ ४८ ॥

जो ब्राह्मण निरन्तर एक महीने तक शूद्रका अन्न खाता है वह इसी जन्ममें शूद्र होजाता है और मरनेपर कुत्ता होता है* ॥ ४७-४८ ॥

ब्राह्मणस्य सदा भुङ्क्ते क्षत्रियस्य च पर्वसु ॥ ५४ ॥
वश्येष्वापत्सु भुञ्जीत न शूद्रेपि कदाचन ॥ ब्राह्मणान्ने पवित्रत्वं क्षत्रियान्ने पशुस्तथा ॥ ५५ ॥

ब्राह्मणके अन्नको सदा, क्षत्रियके अन्नको पर्वकालमें और वैश्यके अन्नको आपत्कालमें भोजन करे; किन्तु शूद्रके अन्नको कभी नहीं खावे ॥ ५४-५५ ॥

वैश्यान्नेन तु शूद्रत्वं शूद्रान्ने नरकं ध्रुवम् । अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् ॥ ५६ ॥
वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्नं रुधिरं ध्रुवम् । दुष्कृतं हि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठति ॥ ५७ ॥
यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम् ॥ ५८ ॥

ब्राह्मणका अन्न खानेवाला पवित्र, क्षत्रियका अन्न सदा खानेवाला पशु और वैश्यका अन्न सदा खानेवाला शूद्र होता है और श्राद्धके अनधिकारी शूद्रका अन्न खानेवाला निश्चय नरकमें जाता है ॥ ५५-५६ ॥ ब्राह्मणका अन्न अमृतके समान, क्षत्रियका अन्न दूधके तुल्य, वैश्यका अन्न अन्नके समान और शूद्रका अन्न रुधिरके तुल्य है ▣ ॥ ५६-५७ ॥ मनुष्यके कियेहुए पाप उसके अन्नमें रहते हैं, जो जिसका अन्न खाता है वह उसके पापको भोजन करता है ॥ ५७-५८ ॥

(९) आपस्तम्बस्मृति--८ अध्याय ।

शूद्रान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योधिगच्छति ॥ ९ ॥
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रस्य सम्भवः । शूद्रान्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्म्रियते द्विजः ॥१०॥
स भवेच्छूकरो ग्राम्यस्तस्य वा जायते कुले ॥ ११ ॥

जो ब्राह्मण शूद्रका अन्न खाकर निजस्त्रीसे मैथुन करता है उस मैथुनसे उत्पन्न उसका पुत्र शूद्र होता है; क्योंकि अन्नसे ही वीर्य होताहै ▣ ॥९-१० ॥ मरनेके समय जिस ब्राह्मणके पेटमें शूद्रका अन्न रहताहै वह दूसरे जन्ममें ग्रामसूकर होताहै अथवा शूद्रके घर जन्म लेताहै ॥ १०-११ ॥

(९) पाराशरस्मृति--१२ अध्याय ।

मृतसूतकपुष्टांगं द्विजं शूद्रान्नभोजिनम् । अहं तन्न विजानामि कांकां योनिं गमिष्यति ॥ ३४ ॥
गृध्रो द्वादशजन्मानि दशजन्मानि सूकरः । श्वयोनौ सप्त जन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ३५ ॥

जो ब्राह्मण मृतकके अशौच अथवा जन्मके अशौचमें भोजन करके पुष्ट है अर्थात् अशौचमें सदा भोजन किया करताहै अथवा सदा शूद्रका अन्न खाता है, मैं नहीं जानताहूँ कि वह किस किस योनिमें जायगा; भगवान् मनुने कहा है कि वह १२ जन्मतक गीध, १० जन्मतक सूअर और ७ जन्मतक कुत्ता होगा ॥ ३४-३५ ॥

अयोग्य ब्राह्मण ७.

(१) मनुस्मृति--२ अध्याय ।

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् । स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥१०३॥
सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः । नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥ ११८ ॥

---

* आपस्तम्बस्मृति-८ अध्यायके ६-७ श्लोकमें भी ऐसा है ।

▣ आपस्तम्बस्मृति-८ अध्यायके ११-१२ श्लोक अङ्गिरास्मृतिके ५४-५५ श्लोकके समान और १२-१३ श्लोक इसके ५६-५७ श्लोकके समान है । वहां अङ्गिराका आधा ५५ आधा ५६ श्लोक नहीं है । व्यासस्मृति-४ अध्याय-६६ श्लोकमें है कि ब्राह्मणके अन्न खानेसे स्वर्ग मिलता है, क्षत्रियका अन्न खानेसे दरिद्र होता है, वैश्यका अन्न खानेवाला शूद्र होता है और शूद्रका अन्न खानेवाला नरकमें जाता है ।

▣ शंखलिखितस्मृति-१५ श्लोक । परका अन्न खाकर मैथुन करनेसे जो पुत्र उत्पन्न होताहै वह जिसका अन्नहै उसीका पुत्र समझा जाता है; क्योंकि अन्नसेही वीर्य उत्पन्न होता है । १७ श्लोक । परका अन्न परका वस्त्र, परकी सवारी, परकी स्त्री, और परके गृहमें निवास ये सब इन्द्रके तेजको भी हर लेते हैं ।

जो ब्राह्मण प्रातःकाल और सन्ध्याकालमें सन्ध्यादिकर्म नहीं करताहै वह शूद्रके समान सब द्विजधर्मोंसे बाहर होजाताहै ॥ १०३ ॥ केवल गायत्रीमात्र नित्य जपनेवाला जितेन्द्रिय ब्राह्मण माननीय है; किन्तु तीनों वेद जाननेवाला विषयी, निषिद्ध भोजी और निषिद्धवस्तुओंको बेचनेवाला ब्राह्मण माननेयोग्य नहीं है ॥ ११८ ॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् । स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ १६८ ॥

जो द्विज वेद नहीं पढ़के अन्य विद्याओंमें परिश्रम करताहै वह इसी जन्ममें अपने पुत्रादिकोंके सहित शूद्र होजाताहै ॥ १६८ ॥

११ अध्याय ।

न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः । होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तो नासंस्कृतस्तथा ॥३६॥
नरके हि पतन्त्येते जुह्वन्तः स च यस्य तत् । तस्माद्वैतानकुशलो होता स्याद्वेदपारगः ॥ ३७ ॥

कन्या या युवा ब्राह्मणी और थोड़ा पढ़ा हुआ, मूर्ख, रोगी अथवा संस्कारहीन ब्राह्मण होम करनेका अधिकारी नहीं है ॥ ३६ ॥ इनमेंसे जो होम करताहै अथवा जो इनसे होम करवातेहैं वे नरकमें जातेहैं, इसलिये वैदिककर्ममें निपुण वेदपारग ब्राह्मणसे होम कराना चाहिये ॥ ३७ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे प्रकीर्तिते । काणः स्यादेकहीनोपि द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्त्तितः॥३४९॥
तस्माद्वेदेन शास्त्रेण ब्राह्मण्यं ब्राह्मणस्य तु । न चैकेनैव वेदेन भगवानत्रिरब्रवीत् ॥ ३५१ ॥

वेद और धर्मशास्त्र ये ब्राह्मणके दो नेत्र हैं; जो ब्राह्मण इनमेंसे एकको नहीं जानता वह काना और जो दोनोंको नहीं जानता वह अन्धा कहा जाताहै ※ ॥ ३४९ ॥ ब्राह्मणका ब्राह्मणत्व वेद और धर्मशास्त्रसे है, केवल वेदसे ही नहीं है; ऐसा भगवान् अत्रिने कहाहै ॥ ३५१ ॥

देवो मुनिर्द्विजो राजा वैश्यः शूद्रो निषादकः।पशुर्म्लेच्छोऽपि चाण्डालो विप्रा दशविधाः स्मृताः ३७१
सन्ध्या स्नानं जपं होमं देवतानित्यपूजनम् । अतिथिर्वैश्वदेवश्च देवब्राह्मण उच्यते ॥ ३७२ ॥
शाके पत्रे फले मूले वनवासे सदा रतः । निरतोऽहरहः श्राद्धे स विप्रो मुनिरुच्यते ॥ ३७३ ॥
वेदान्तं पठते नित्यं सर्वं सङ्गं परित्यजेत् । सांख्ययोगविचारस्थः स विप्रो द्विज उच्यते ॥ ३७४ ॥
अस्त्राहताश्च धन्वानः संग्रामे सर्वसम्मुखे । आरम्भे निर्जिता येन स विप्रः क्षत्र उच्यते ॥ ३७५ ॥
कृषिकर्मरतो यश्च गवां च प्रतिपालकः । वाणिज्यव्यवसायश्च स विप्रो वैश्य उच्यते ॥ ३७६ ॥
लाक्षालवणसंमिश्रं कुसुम्भक्षीरसर्पिषाम् । विक्रेता मधुमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥३७७॥
चौरश्च तस्करश्चैव सूचको दंशकस्तथा । मत्स्यमांसे सदा लुब्धो विप्रो निषाद उच्यते ॥ ३७८ ॥
ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेण गर्वितः । तेनैव स च पापेन विप्रः पशुरुदाहृतः ॥ ३७९ ॥
वापीकूपतडागानामारामस्य सरःसु च । निःशङ्कं रोधकश्चैव स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥ ३८० ॥
क्रियाहीनश्च मूर्खश्च सर्वधर्मविवर्जितः । निर्दयः सर्वभूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते ॥ ३८१ ॥

१० प्रकारके ब्राह्मण कहेजातेहैं;-देव, मुनि, द्विज, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद, पशु, म्लेच्छ और चाण्डाल ॥ ३७१ ॥ (१) जो ब्राह्मण नित्य सन्ध्या, स्नान, जप, होम, देवपूजन, अतिथिसत्कार और बलिवैश्वदेव करताहै उसको देव कहतेहैं ॥ ३७२ ॥ (२) जो ब्राह्मण शाक, पत्र, फल और मूल भक्षण करके नित्य श्राद्ध करताहुआ वनमें निवास करताहै वह मुनि कहलाताहै ॥ ३७३ ॥ (३) जो ब्राह्मण सबका सङ्ग त्यागकर नित्य वेदान्त पाठ करताहै और सांख्य तथा योगके विचारमें स्थित रहताहै वह द्विज कहाजाताहै ॥ ३७४ ॥ (४) जो ब्राह्मण संग्राममें सबके सम्मुख धनुषधारियोंको अस्त्रोंसे मारनेवाला और आरम्भमें ही जीतनेवाला है उसको क्षत्रिय कहतेहैं ॥ ३७५ ॥ (५) जो ब्राह्मण खेती, गोपालन और वाणिज्य करता है वह वैश्य कहलाता है॥३७६॥(६)जो ब्राह्मण लाह, नोन, कुसुम दूध, घी, मधु और मांस बेंचता है उसको शूद्र कहते हैं ॥ ३७७ ॥ (७) जो ब्राह्मण चोर, डाकू, चुगुल, कटुभाषी और मछली और मांसका सदा लोभी है वह निषाद कहाजाताहै ॥ ३७८ ॥ (८) जो ब्राह्मण ब्रह्मतत्त्वको नहीं

※ वसिष्ठस्मृति--३ अध्याय-३ श्लोक और लघुआश्वलायनस्मृति-२२ वर्णधर्मप्रकरण-२३ श्लोकमें ऐसा ही है ।

※ हारीतस्मृति-१ अध्यायके २५ श्लोकमें भी ऐसा है ।

जानता और जनेऊका गर्व करता है वह उसी पापसे पशु कहलाताहै ॥ ३७९ ॥ (९) जो ब्राह्मण निः-शंक होकर बावली, कूप, तड़ाग, बाग तथा सरोवरको रोकताहै उसको म्लेच्छ कहते हैं ॥ ३८० ॥ (१०) जो ब्राह्मण क्रियाहीन, मूर्ख, सब धर्मोंसे रहित तथा सब प्राणियोंके लिये निर्दयी है वह चाण्डाल कहा-जाता है ॥ ३८१ ॥

(८क) बृहद्यमस्मृति--४अध्याय।

सन्ध्याहीनो हियो विप्रः स्नानहीनस्तथैव च ॥ ५१ ॥
स्नानहीनो मलाशी स्यात्सन्ध्याहीनो हियो भ्रूणहा ॥ ५२ ॥

स्नानकर्मसे हीन ब्राह्मण मलभोजन करनेवालेके तुल्य और सन्ध्योपासनासे हीन ब्राह्मण भ्रूणहत्यारेके समान है ॥ ५१–५२ ॥

(९) आपस्तम्बस्मृति–९ अध्याय।

ब्राह्मणस्य सदा कालं शूद्रे प्रेषणकारिणः ॥ ३४ ॥
भूमावन्नं प्रदातव्यं यथैव श्वा तथैव सः ॥ ३५ ॥

जो ब्राह्मण सदा शूद्रकी आज्ञा प्रतिपालन करताहै उसके खानेकेलिये भूमिपर अन्न देना चाहिये; क्योंकि वह कुत्तेके समान है ॥ ३४–३५ ॥

(११) कात्यायनस्मृति–११ खण्ड।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि सन्ध्योपासनकं विधिम्।अनर्हः कर्मणां विप्रः सन्ध्याहीनो यतः स्मृतः ॥१॥
तिष्ठेदुदयनात्पूर्वां मध्यमामपि शक्तितः। आसीन उद्गमाच्चान्त्यां सन्ध्यां पूर्वत्रिकं जपन् ॥१४॥
एतत्सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यत्र तिष्ठति। यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते ॥ १५ ॥

इससे आगे सन्ध्यावन्दनकी विधि कहताहूँ; सन्ध्यासे हीन ब्राह्मण सब कर्मोंके अयोग्य कहागयाहै ॥ १ ॥ प्रातःकालकी सन्ध्या सूर्योदयसे पहिले खड़े होकर, मध्याह्नकी सन्ध्या मध्याह्नमें या कुछ इधरउधर और सायंकालकी सन्ध्या सूर्यास्त होनेके पूर्व बैठकर सूर्यका मन्त्र जपतेहुए करना चाहिये ॥१४॥ इन्हीं तीनों सन्ध्याओंमें ब्राह्मणत्व है, जो ब्राह्मण इन सन्ध्याओंको नहीं करता वह ब्राह्मण नहीं कहा जा-सकता है ❀ ॥ १५ ॥

(१२) पाराशरस्मृति--८अध्याय।

सावित्र्याश्चापि गायत्र्याः सन्ध्योपास्त्यग्निकार्ययोः।अज्ञानात्कृषिकर्त्तारो ब्राह्मणा नामधारकाः११

जो ब्राह्मण गायत्रीका जप, सन्ध्या और अग्निकार्य नहीं करताहै और अज्ञानसे खेतीके काममें लगाहै वह केवल नामधारी ब्राह्मण है ॥ ११ ॥

(१४) व्यासस्मृति--४ अध्याय।

पङ्क्तिभेदी वृथा पाकी नित्यं ब्राह्मणनिन्दकः। आदेशी वेदविक्रेता पञ्चैते ब्रह्मघातकाः ॥ ७० ॥

पंक्तिमें दो प्रकारसे भोजनकी वस्तु परोसनेवाला, विना बलिवैश्वदेवके उद्देश्यके अपने भोजनके लिये रसोई बनानेवाला, सदा ब्राह्मणकी निन्दा करनेवाला, दासका काम करनेवाला और द्रव्य लेकर वेद पढ़ानेवाला, ये ५ ब्राह्मण ब्रह्मघातीके समान हैं ॥ ७० ॥

(१५) शङ्खस्मृति–१४ अध्याय।

ब्राह्मणा ये विकर्मस्था वैडालव्रतिकास्तथा। ऊनाङ्गा अतिरिक्ताङ्गा ब्राह्मणाः पङ्क्तिदूषकाः ॥ २॥
गुरूणां प्रतिकूलाश्च वेदाग्न्युत्सादिनश्च ये। गुरूणां त्यागिनश्चैव ब्राह्मणाः पङ्क्तिदूषकाः ॥ ३ ॥
अनध्यायेष्वधीयानाः शौचाचारविवर्जिताः। शूद्रान्नरससंपुष्टा ब्राह्मणाः पङ्क्तिदूषकाः ॥ ४ ॥

निषिद्ध कर्म करनेवाले, बिडालव्रती ❀❀ कमअङ्गवाले, अधिक अङ्गवाले, गुरुजनोंसे विमुख रहनेवाले, वेद तथा अग्निको त्यागनेवाले, गुरुजनोंको त्यागनेवाले, अनध्यायोंमें वेद पढ़नेवाले, शौच-आचारसे रहित और शूद्रके अन्नसे पालन होनेवाले ब्राह्मण पंक्तिदूषक हैं ॥ २–४ ॥

❀ गोभिलस्मृति—२ प्रपाठकके १४–१६ श्लोकमें ऐसा ही है।

❀❀ लोगोंके जाननेकेलिये पाखण्डसे धर्म करनेवाले, सदा लोभमें तत्पर, कपटवेषधारी, लोगोंको ठगनेवाले, परहिंसामें तत्पर और द्वेष करके सबकी निन्दा करनेवालेको बिडालव्रती कहतेहैं;—मनुस्मृति–४ अध्याय-१९५ श्लोक।

(१७) दक्षस्मृति--२ अध्याय ।

सन्ध्यां नोपासते यस्तु ब्राह्मणो हि विशेषतः । स जीवन्नेव शूद्रः स्यान्मृतः श्वा चैव जायते॥२१॥

जो ब्राह्मण विशेषकरके सन्ध्योपासना नहीं करताहै वह जीवितअवस्थामें ही शूद्र होजाताहै और मरनेपर कुत्ता होताहै ॥ २१ ॥

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु । यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥ २२ ॥

सन्ध्यासे हीन ब्राह्मण सदा अपवित्र रहता है और सब कर्मोके अयोग्य है, उसके सब कियेहुए कर्म निष्फल होते हैं ॥ २२ ॥

(१९) शातातपस्मृति ।

अस्नाताशी अयाजी च विप्रकीर्णो भवेद् द्विजः । न तारयति दातारं नात्मानं सपरिग्रहम् ॥ १७ ॥

जो ब्राह्मण विना स्नान किये भोजन करता है और पञ्चयज्ञ नहीं करता वह "विप्रकीर्ण" होजाता है; तब वह न तो दाताको तारता है और न आपही तरता है ॥ १७ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति--२ अध्याय ।

ब्राह्मणराजन्यौ वार्धुषान्नं नाद्याताम् ॥ ४४ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ४५ ॥

समर्घं धान्यमुद्धृत्य महार्घं यः प्रयच्छति । स वै वार्धुषिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥ ४६ ॥

वृद्धिश्च भ्रूणहत्याश्च तुलया समतोलयत् । अतिष्ठद् भ्रूणहाकोट्यां वार्धुषिर्न व्यकम्पत ॥ ४७ ॥

वार्धुषिक ब्राह्मण और वार्धुपिक क्षत्रियका अन्न नहीं खाना चाहिये ॥ ४४ ॥ इसपर प्रमाण कहते हैं ॥ ४५ ॥ जो सस्ता अन्न लेकर उसको मंहगा करके देता है वह वार्धुषिक कहाजाता है वह ब्रह्म-वादियोंमें निन्दित है ॥ ४६ ॥ वार्धुपिक और भ्रूणघाती तराजूमें तोला गया तो भ्रूणघातीका पलरा उठगया; किन्तु वार्धुपिक हिला भी नहीं ❀ ॥ ४७ ॥

३ अध्याय ।

अश्रोत्रिया अननुवाक्या अनग्नयो वा शूद्रधर्माणो भवन्ति ॥ १ ॥

नानृग् ब्राह्मणो भवति न वणिङ् न कुशीलवः । न शूद्रप्रेषणं कुर्वन्न स्तेनो न चिकित्सकः ॥ ४ ॥

जो ब्राह्मण सम्पूर्ण वेद अथवा वेदका भाग भी नहीं पढ़ा है और अग्निहोत्रसे हीन है वह शूद्रके समान है ॥ १ ॥ ऋग्वेद नहीं पढ़नेवाला, वणिक्वृत्तिवाला, शीलरहित काम करनेवाला, द्रकी आज्ञामें रहने वाला, चोरी करनेवाला और चिकित्साकरनेवाला ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है ॥ ४ ॥

६ अध्याय ।

नास्तिकः पिशुनश्चैव कृतघ्नो दीर्घरोषकः । चत्वारः कर्मचाण्डाला जन्मतश्चापि पञ्चमः ॥ २३ ॥

नास्तिक, चुगुल, कृतघ्न और अतिक्रोधी ये चार ब्राह्मण कर्मचाण्डाल हैं और पाचवां चाण्डाल चाण्डालके घर जन्म लेनेवाला है ॥ २३ ॥

(२४) लघुआश्वलायनस्मृति--२२ वर्णधर्मप्रकरण ।

यश्च कर्मपरित्यागी पराधीनस्तथैव च । अधीतोऽपि द्विजश्चैव स च शूद्रसमो भवेत् ॥ २२ ॥

जो ब्राह्मण विहितकर्मको त्याग देता है और पराधीन रहता है वह विद्वान् होनेपर भी शूद्रके समान है ॥ २२ ॥

(२५) बौधायनस्मृति--१ प्रश्न--५ अध्याय ।

गोरक्षकान्वाणिजकांस्तथा कारुकुशीलवान् । प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव विप्राञ्छूद्रवदाचरेत् ॥ ९५ ॥

गोरक्षा, वाणिज्य और चित्रकार आदिका कर्म करनेवाले; नाचने गानेवाले; दूतका काम करनेवाले और सस्ता अन्न लेकर मंहगा बेंचनेवाले ब्राह्मणोंसे शूद्रके समान आचरण करना चाहिये ॥ ९५ ॥

❀बौधायनस्मृति–१ प्रश्न ५ अध्यायके ९३–९४ श्लोकमें प्रायः ऐसा है । बृहद्यमस्मृति–३ अध्याय २३ श्लोकमें है कि जो सस्ता धान्य लेकर मंहगा करके देता है वह ब्रह्मवादियोंमें निन्दित वार्धुषिक कहलाता है । प्रजापतिस्मृति–८८ श्लोक जो सस्ता अन्न लेकर मंहगा देता है, उसको वार्धुषिक कहते हैं, वह किसी कर्मके करनेयोग्य नहीं रहताहै ।

२ प्रश्न–४ अध्याय।

अनागतां तु ये पूर्वामनतीतां तु पश्चिमाम्। सन्ध्यां नोपासते विप्राः कथं ते ब्राह्मणाः स्मृताः॥१९॥
सायं प्रातः सदा सन्ध्यां ये विप्रा न उपासते। कामं तान्धार्मिको राजा शूद्रकर्मसु योजयेत्॥२०॥

जो ब्राह्मण सूर्यके उदयसे पहिले प्रातःकालकी सन्ध्याकी और सूर्यास्तसे पहिले सायंकालकी सन्ध्याकी उपासना नहीं करताहै वह ब्राह्मण कैसे कहाजायगा॥ १९॥ धार्मिक राजाको उचित है कि जो ब्राह्मण नित्य प्रातःकाल और सायंकालकी सन्ध्याकी उपासना नहीं करतेहैं उनको इच्छानुसार शूद्रोंके काममें नियुक्त करे॥ २०॥

मूर्ख ब्राह्मण* ८.

(१) मनुस्मृति–२ अध्याय।

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः। यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति॥ १५७॥
यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला। यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः॥१५८॥

काठके हाथी और चामके हरिणके समान मूर्ख ब्राह्मण है;–ये तीनों केवल नाम धारण करनेवाले होते हैं ✻✻॥ १५७॥ जैसा स्त्रीसे नपुंसकका और गौसे गौका सहवास और मूर्खको दियाहुआ दान निष्फल होताहै वैसे ही वेदाध्ययनसे हीन ब्राह्मण निष्फल है ✻✻✻॥ १५८॥

३ अध्याय।

ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवींषि च। न हि हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरेणैव शुद्ध्यतः॥१३२॥
यावतो ग्रसते ग्रासान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित्। तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलर्ष्ट्ययोगुडान्॥ १३३॥

ज्ञानमें श्रेष्ठ ब्राह्मणको ही देवता और पितरोंके निमित्त भोजन कराना चाहिये; मूर्खको नहीं; क्योंकि रुधिरसे लिपाहुआ हाथ रुधिरसे धोनेपर शुद्ध नहीं होताहै॥ १३२॥ वेदहीन मूर्ख ब्राह्मण देव तथा पितर कार्यमें जितने ग्रास खाताहै मरनेपर उसको उतनेही लोहेके तप्त पिण्ड भोजन करना पड़ताहै ◎ ॥ १३३॥

४ अध्याय।

हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान्घृतम्। प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मीभवति दारुवत्॥ १८८॥
हिरण्यमायुरन्नं च भूर्गौश्चाप्योपतस्तनुम्। अश्वश्चक्षुस्त्वचं वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः॥१८९॥
अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः। अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति॥ १९०॥
तस्मादविद्वान्बिभियाद्यस्मात्तस्मात्प्रतिग्रहात्। स्वल्पकेनाप्यविद्वान्हि पङ्के गौरिव सीदति॥ १९१॥

विद्यासे हीन ब्राह्मण सोना, भूमि, घोड़ा, गौ, अन्न, वस्त्र, तिल अथवा घृत दान लेनेसे काठके समान भस्म होजाताहै॥ १८८॥ जब विद्याहीन ब्राह्मण सोना अथवा अन्नदान लेताहै तो उसकी आयुकी भूमि वा गोदान लेताहै तो उसके शरीरकी, घोड़ा दान लेताहै तो उसकी आंखकी, वस्त्रदान लेता है तो उसकी त्वचाकी, घीदान लेताहै तो उसके तेजकी और तिलदान लेताहै तो उसकी सन्तानकी हानि होतीहै॥१८९॥ जैसे पत्थरकी नाव उसपर चढ़नेवालेके साथ जलमें डूब जातीहै वैसेही तपस्यासे हीन और वेदाध्ययनसे रहित ब्राह्मण दानलेनेपर दाताके सहित नरकमें डूबताहै ✠॥१९०॥ जैसे गौ कीचड़में धसती है वैसेही मूर्ख ब्राह्मण थोडे भी दान लेनेसे नरकमें फँसा रहता है, इसलिये मूर्खलोगोंको दानलेनेसे डरना चाहिये॥ १९१॥

---

* मूर्ख ब्राह्मणका वृत्तान्त दान-प्रकरण और श्राद्धप्रकरणमें भी है।

✻✻ पाराशरस्मृति—८ अध्यायके २४ श्लोकमें, व्यासस्मृति–४ अध्यायके ३७ श्लोकमें, वसिष्ठस्मृति–३ अध्यायके १२ श्लोकमें और बौधायनस्मृति–१ प्रश्न-१ अध्यायके ११ श्लोकमें भी ऐसा है॥

✻✻✻ पाराशरस्मृति—८ अध्यायके २६ श्लोकमें भी ऐसा है।

◎ शातातपस्मृतिके ८६ श्लोकमें भी ऐसा लिखा है। बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–४ अध्याय २३१ श्लोक। मूर्ख और दुराचारी ब्राह्मण यदि पड़ोसी होय तो उसको देवकार्य और पितृकार्यमें नहीं किन्तु उत्सवोंमें खिलावे।

✠ बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—४ अध्याय–११६ श्लोक। मूर्खको दान देनेसे गति नहीं होतीहै, जैसे पत्थरकी नाव उसपर चढ़नेवालेके साथ डूबजातीहै वैसेही मूर्ख दानलेनेपर दाताके सहित नरकमें डूबताहै।

१२ अध्याय ।

एकोऽपि वेदविद्धर्म यं व्यवस्येद्द्विजोत्तमः । स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥ ११३ ॥
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् । सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥ ११४ ॥
यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः । तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति ॥ ११५ ॥

वेद जाननेवाला एक ब्राह्मण जो प्रायश्चित्त बतावे उसको परमधर्म मानना चाहिये; किन्तु दस हजार मूर्ख ब्राह्मणोंके दी हुई व्यवस्थाको नहीं ॥ ११३ ॥ व्रत और वेदविद्यासे हीन नामधारी एक हजार ब्राह्मणोंके इकट्ठे होनेपर भी धर्मसभा नहीं वनसकती है ॥ ११४ ॥ मूर्ख और धर्मशास्त्रको नहीं जाननेवाले ब्राह्मण जिस मनुष्यको प पका प्रायश्चित्त बताताहै उसका पाप सौगुना होकर उसको लगजाता है❀ ॥ ११५ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय ।

विद्यातपोभ्यां हीनेन न तु ग्राह्यः प्रतिग्रहः । गृह्णन्प्रदातारमधो नयत्यात्मानमेव च ॥ २०२ ॥

विद्या और तपसे हीन ब्राह्मण दान नहीं लेवे; क्यों कि दान लेनेसे वह दाताके सहित नरकमें जायगा ▣ ॥ २०२ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

अव्रताश्चानधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः । तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चौरभक्तददण्डवत् ॥ २२ ॥
विद्वद्भोज्यमविद्वांसो येषु राष्ट्रेषु भुञ्जते । तेष्वनावृष्टिमिच्छन्ति महद्वा जायते भयम् ॥ २३ ॥

राजाको उचित है कि व्रत और वेदविद्यासे हीन ब्राह्मण जिस गांवमें भिक्षा मांगते हैं, चोरोंको भात देनेवालों अर्थात् चोरोंको पालनेवालोंके समान उस गांवके लोगोंको दण्ड देवे ❊ ॥ २२ ॥ जिस देशमें विद्वानोंके भोगनेयोग्य वस्तुको मूर्ख भोगते हैं उस देशमें अनावृष्टि होती है अथवा कोई बड़ा भय उपस्थित होता है ✾ ॥ २३ ॥

(१२) बृहस्पतिस्मृति ।

आमपात्रे यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ॥ ५८ ॥
विनश्येत्पात्रदौर्बल्यात्तच्च पात्रं विनश्यति । एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमन्नं महीं तिलान् ॥ ५९ ॥
अविद्वान्प्रतिगृह्णाति भस्मीभवति काष्ठवत् ॥ ६० ॥

जैसे कच्चे मिट्टीके पात्रमें रखनेसे दूध, दही, घी और मधु पात्रकी दुर्वलतासे नष्ट होजाते हैं और वह पात्र भी नष्ट होता है वैसे ही गौ, सोना, वस्त्र, अन्न, भूमि और तिलदान लेनेसे मूर्ख ब्राह्मण और दानका फल ये दोनों काठके समान भस्म होजाते हैं ✿ ॥ ५८-६० ॥

(१३) पाराशरस्मृति-८ ध्याय ।

ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपस्तु निर्जलः । यथा हुतमनग्नौ च अमन्त्रो ब्राह्मणस्तथा ॥ २५ ॥
गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत् । गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः संपूज्यन्ते जनैर्द्विजाः ॥ ३२ ॥

जैसे विना प्राणीका गांव, विना जलका कूप तथा विना अग्निकी आहुति व्यर्थ है वैसेही वेदसे हीन ब्राह्मण वृथा है ⚜ ॥ २५ ॥ गायत्रीसे हीन ब्राह्मण शूद्रसे भी अधिक अशुद्ध है; गायत्री और वेदके तत्त्वको जाननेवाले ब्राह्मणको सब लोग पूजते हैं ॥ ⚜ ॥ ३२ ॥

(१९) लघुशङ्खस्मृति ।

यानि यस्य पवित्राणि कुक्षौ तिष्ठन्ति भारत । तानि तस्यैव पूज्यानि न शरीराणि देहिनाम् ॥ २३ ॥

जिन ब्राह्मणोंके उदरमें वेदोंके पवित्र मत्र है वही ब्राह्मण पूजनेयोग्य है केवल ब्राह्मणका शरीर धारण करनेवाले नहीं ॥ २३ ॥

❀ अनेक स्मृतियोंमें ऐसा लिखा है, जो प्रायश्चित्तके प्रकरणमें लिखागया ।

▣ बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-४ अध्यायके २२१ श्लोकमें भी ऐसा है ।

❊ पाराशरस्मृति-१ अध्यायके ६६ श्लोक और वशिष्ठस्मृति-३ अध्यायके ५ श्लोकमें भी ऐसा है ।

✾ वसिष्ठस्मृति-३ अध्यायका १३ श्लोक इस २३ श्लोकके समान है ।

✿ वसिष्ठस्मृति-६ अध्यायके ३०-३१ श्लोकमें ऐसा ही है ।

⚜ व्यासस्मृति-४ अध्यायके ३८ श्लोकमें भी ऐसा लिखा है ।

बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-२ अध्याय-जपविधि,-१३ श्लोक । जो ब्राह्मण गायत्री नहीं जानता है अथवा जानकरके भी उसकी उपासना नहीं करता है वह शूद्र है ।

(२५) बौधायनस्मृति–१ प्रश्न–५ अध्याय।

कुलान्यकुलतां यांति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ९७ ॥
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति मूर्खे मन्त्रविवर्जिते। ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ ९८ ॥

ब्राह्मणका लंघन करनेसे कुलका नाश होजाता है; किन्तु वेदहीन मूर्ख ब्राह्मणका उलंघन करना उलंघन नहीं कहाजाता; क्यों कि प्रज्वलित अग्निको छोड़कर राखमें कोई होम नहीं करता ※ ॥ ९७–९८ ॥

क्षत्रियप्रकरण ५.

क्षत्रियका धर्म ✠ ३

(१) मनुस्मृति–१ अध्याय।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ ८९ ॥

ब्रह्माने प्रजाओंकी रक्षाकरना, दान देना, यज्ञ करना और वेद पढ़ना तथा विषयमे आसक्त नही होना; ये संक्षेपसे क्षत्रियोंके कर्म बनाये ॥ ८९ ॥

१० अध्याय

त्रयो धर्मा निवर्त्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति। अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः ॥ ७७ ॥
शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषिर्विशः। आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः ॥ ७९ ॥

वेद पढ़ाना, यज्ञ कराना और दानलेना; ये तीनों कर्म क्षत्रियोंके लिये निषेध है ॥ ७७ ॥ शस्त्र, अस्त्र धारण करना क्षत्रियोंकी जीविका और पशुपालन,कृषि तथा वाणिज्यकर्म वैश्यकी जीविका है और दान देना, वेद पढ़ाना तथा यज्ञ करना क्षत्रिय और वैश्य दोनोंका धर्म है ॥ ७९ ॥

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम्। वार्ताकर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥ ८० ॥

ब्राह्मणके कर्मोंमें वेद पढ़ाना, क्षत्रियके कर्मोंमें प्रजाओंकी रक्षा करना और वैश्यके कर्मोंमें कृषि,वाणिज्य और पशुपालन कर्म श्रेष्ठ हैं ॥ ८० ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत्। कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम् ॥ ११७ ॥

ब्राह्मण और क्षत्रियको उचित है कि व्याज लेनेकेलिये कभी किसीको ऋण नहीं देवें; किन्तु केवल धर्मकार्यके लिये वे लोग हीन कर्मवालोंको थोड़ा व्याजपर ऋण दे सकते हैं ॥ ११७ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति १ अध्याय।

इज्याध्ययनदानानि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च ॥ ११८ ॥
प्रधानं क्षत्रिये कर्म प्रजानां परिपालनम् ॥ ११९ ॥

यज्ञ करना, वेद पढ़ना और दान देना; ये ३ कर्म वैश्य और क्षत्रियोंके हैं ॥ ११८ ॥ प्रजाओंका पालन करना क्षत्रियोंका प्रधान कर्म है ⊠ ॥ ११९ ॥

(३) अत्रिस्मृति।

क्षत्रियस्यापि यजनं दानमध्ययनं तपः। शस्त्रोपजीवनं भूतरक्षणं चेति वृत्तयः ॥ १४ ॥
प्रतिग्रहोऽध्यापनं च तथाऽविक्रेयविक्रयः। याज्यं चतुर्भिरप्येतैः क्षत्रविट्पतनं स्मृतम् ॥ २० ॥

यज्ञ करना, दान देना और वेद पढ़ना क्षत्रियोंकी तपस्या है और शस्त्रव्यवहारकरना तथा सब प्राणियोंकी रक्षा करना क्षत्रियोंकी जीविका है ⚜ ॥ १४ ॥ दान लेने, वेद पढ़ाने, निषिद्धवस्तुओंको बेंचने और यज्ञकराने इन ४ कर्मोंके करनेसे क्षत्रिय और वैश्य पतित होजाते हैं ॥ २० ॥

※कात्यायनस्मृति–१५ खण्ड–९ श्लोक; बृहस्पतिस्मृति–६१ श्लोक; व्यासस्मृति–४ अध्याय ३४–३५ श्लोक; शातातपस्मृति–७७ श्लोक; वसिष्ठस्मृति–३ अध्याय–११ श्लोक और गोभिलस्मृति–२ प्रपाठक ६८–६९ श्लोकमें इस बौधायनस्मृतिके ९८ श्लोकके समान है।

✠ ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिके नित्य नैमित्तिक धर्म गृहस्थप्रकरणमें लिखेगये हैं।

⊠ शंखस्मृति–१ अध्यायके ३–४ श्लोक और वसिष्ठस्मृति २ अध्यायके २१–२२ अङ्कमें भी ऐसा है।

⚜ बौधायनस्मृति–१ प्रश्न–१० अध्याय,–३ अङ्क। बलसञ्चय करने, वेद पढ़ने, यज्ञ करने, दान देने शस्त्रधारणकरने, खजानेको बढ़ाने और सब प्राणियोंकी रक्षा करनेसे क्षत्रियकी वृद्धि होती है।

(४) विष्णुस्मृति--५अध्याय।

तेजः सत्यं धृतिर्दाक्ष्यं संग्रामेष्वनिवर्तिता। दानमीश्वरभावश्च क्षत्रधर्मः प्रकीर्तितः॥ २॥

क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानां परिपालनम्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षयेन्नृपतिः प्रजाः॥ ३॥

तेज, सत्य, धैर्य, चतुराई, संग्राममें नहीं हटना. दान देना और यथार्थ न्याय करना क्षत्रियोंका धर्म है ॥ २॥ प्रजापालन करना तो क्षत्रियोंका प्रधान धर्म है, इसलिये राजा सब यत्नोंसे प्रजाओंकी रक्षा करे ॥३॥

त्रीणि कर्माणि कुर्वीत राजन्यस्तु प्रयत्नतः। दानमध्ययनं यज्ञं ततो योगनिषेवणम्॥ ४॥

क्षत्रिय यत्नपूर्वक ३ कर्मोंको करे; दान, अध्ययन और यज्ञ और फिर योगमार्गका सेवन॥ ४॥

(१३) पाराशरस्मृति--२ अध्याय।

क्षत्रियोपि कृषिं कृत्वा देवान्विप्रांश्च पूजयेत्॥ १८॥

यदि क्षत्रिय (कलियुगमें) खेती करे तो वह भी इसी प्रकारसे देवता और ब्राह्मणोंको भाग देवे ॥१८॥

क्षत्रियके आपत्कालका धर्म *२.

(१) मनुस्मृति--१० अध्याय।

वैश्यवृत्त्यापि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा। हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत्॥ ८३॥

इदं तु वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो धर्मनैपुणम्। विट्पण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्धनम्॥ ८५॥

सर्वान् रसानपोहेत कृतान्नश्च तिलैः सह। अश्मनो लवणश्चैव पशवो ये च मानुषाः॥ ८६॥

सर्वश्च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च। अपि चेत् स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः॥ ८७॥

अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गन्धांश्च सर्वशः। क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान्॥८८॥

आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्च वयांसि च। मद्यं नीलीं च लाक्षां च सर्वांश्चैकशफांस्तथा॥ ८९॥

ब्राह्मण और क्षत्रियको उचित है कि यदि आपत्कालमें वैश्यवृत्तिसे अपनी जीविका करें तो वैश्यकी वृत्तियोंमेंसे कृषिकर्मको, जो अति हिंसायुक्त और बैल आदि पशुओंके आधीन है, यत्नपूर्वक छोड़देवें ॥८३॥ निजवृत्तिका अभाव तथा निजधर्मपालनमें असमर्थ होनेपर ब्राह्मण और क्षत्रिय नीचे लिखीहुई वस्तुओंका क्रय-विक्रय छोड़कर वैश्यवृत्तिके व्यापारसे अपनी जीविका करें॥ ८५ ॥ सब प्रकारके रस, पकाहुआ अन्न, तिल, पत्थर, नोंन, पशु, मनुष्य, लालसूतसे बनेहुए वस्त्र, शणके बने वस्त्र, तीसीके छालके वस्त्र, कम्बल, फल, मूल, औषधी, जल, शस्त्र, विष, मांस, सोमरस, सब प्रकारकी सुगन्धितवस्तु, दूध, मोम, दही, घी, तैल, मधु, गुड़, कुश, सब प्रकारके वनैले पशु, दांतवाले जानवर, पक्षी, मद्य, नील, लाह और घोड़े आदि १ खुरवाले पशुका क्रयविक्रय नहीं करें ▩ ॥८६-८९॥

जीवेदेतेन राजन्यः सर्वेणाप्यनयं गतः। न त्वेव ज्यायसीं वृत्तिमभिमन्येत कर्हिचित्॥ ९५॥

क्षत्रिय विपत्कालमें वैश्यके कर्म करके अपना निर्वाह करे; किन्तु दान लेना आदि ब्राह्मणकी वृत्तिका आश्रय कभी नहीं लेवे॥ ९५॥

(१८) गौतमस्मृति--७ अध्याय।

प्राणसंशये ब्राह्मणोऽपि शस्त्रमाददीत राजन्यो वैश्यकर्म वैश्यकर्म॥ ३॥

प्राणजानेका संशय होनेपर ब्राह्मण शस्त्रधारण और क्षत्रिय वैश्यका कर्म करे॥ ३॥

राजप्रकरण ६;

राजाका महत्व १.

(१) मनुस्मृति--७ अध्याय।

ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि। सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम्॥ २॥

अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात्। रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः॥ ३॥

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च। चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः॥ ४॥

यस्मादेषां सुरेंद्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः। तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा॥ ५॥

---

* ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिके आपत्कालके धर्म गृहस्थप्रकरणमें हैं।

▩ इसकी टिप्पणी ब्राह्मणप्रकरणके ब्राह्मणके आपत्कालके धर्ममें हैं।

क्षत्रियराजाको उचित है कि विधिपूर्वक जनेऊ होजानेपर न्यायके अनुसार प्रजाओंकी रक्षा करे ॥ २॥ जगत्में राजा नहीं रहनेसे सब लोगोंके भययुक्त होनेपर प्रभुने जगत्की रक्षाकेलिये इन्द्र, पवन, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा और कुबेर;– इन ८ दिक्पालोंके सारभूत अंशोंसे राजाको उत्पन्न किया ॥ ३–४ ॥ राजाओंमें इन्द्रादि देवताओंके अधिकगुण रहते हैं, इसी कारणसे राजालोग सबसे अधिक पराक्रमी होतेहैं।।५।।

तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च । न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम् ॥ ६ ॥
सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट् । स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः ॥ ७ ॥
बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः । महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥ ८ ॥
एकमेव दहत्यग्निर्नरं दुरुपसर्पिणम् । कुलं दहति राजाग्निः सपशुद्रव्यसञ्चयम् ॥ ९ ॥
कार्यं सोऽवेक्ष्य शक्तिं च देशकालौ च तत्त्वतः । कुरुते धर्मसिद्ध्यर्थं विश्वरूपं पुनःपुनः ॥ १० ॥
यस्य प्रसादे पद्मा श्रीर्विजयश्च पराक्रमे । मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः ॥ ११ ॥
तं यस्तु द्वेष्टि संमोहात्स विनश्यत्यसंशयम् । तस्य ह्याशु विनाशाय राजा न कुरुते मनः ॥ १२ ॥
तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु स व्यवस्येन्नराधिपः । अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत् ॥ १३ ॥

जब राजा सूर्यके समान अपने नेत्र और मनको उत्तप्त करताहै तब संसारमें कोई उसकी ओर देखनेमें समर्थ नहीं होताहै ॥ ६ ॥ राजा अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, यम, कुबेर, वरुण और इन्द्रके तुल्य प्रतापी होताहै ॥ ७ ॥बालकराजाको भी सधारण मनुष्य जानकर निरादर करना उचित नहीं है; क्योंकि वह महान् देवता मनुष्यरूपमें स्थित है ॥ ८ ॥ असावधानीसे अग्निके निकट जानेवाला मनुष्य केवल आप ही जलताहै; किन्तु राजाकी क्रोधाग्निमें पड़नेसे अपने कुटुम्ब, पशु तथा सम्पत्तिके साथ मनुष्य नष्ट होजाताहै ॥ ९ ॥ राजा प्रयोजनीय कार्योंके लिये अपनी शक्ति और देश कालको विचारकर धर्मकेलिये अनेकरूप धारण करता है ॥ १० ॥ जिसकी प्रसन्नतासे महती लक्ष्मी प्राप्त होतीहै, जिसके पराक्रमसे विजय होताहै और जिसके कोपसे मृत्यु होतीहै वह राजा सर्वतेजोमय है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य मोहवश होकर राजासे द्वेष करताहै निश्चय करके उसका नाश होताहै, शीघ्र ही उसके नाशके लिये राजा इच्छा करताहै, इसलिये शिष्टोंका पालन और दुष्टोंका दमन करनेके लिये राजा जो धर्म नियत करताहै कोई उसका उल्लंघन नहीं करे ॥ १२–१३ ॥

९ अध्याय ।

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च । राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥ ३०१ ॥
कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद्द्वापरं युगम् । कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥ ३०२ ॥

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग राजाके ही चेष्टित हैं; इसलिये राजाको युग कहते हैं ॥ ३०१ ॥ जब राजा आलसी और उद्योगरहित होकर राज्यके विषयमें सोतासा रहता है तब कलियुग, जब वह राज्यके विषयमें जागृतदृष्टिसे देखता रहता है तब द्वापर, जब वह राज्यकार्य करनेकेलिये उद्यत रहताहै तब त्रेता और जब वह शास्त्रके अनुसार सब राज्यकार्य करता है तब सतयुग वर्तता है ॥ ३०२ ॥

राजाका धर्म २.

(१) मनुस्मृति ७ अध्याय ।

तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् । समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥ २६ ॥
तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्धते । कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ॥ २७ ॥
दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः । धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ॥ २८ ॥
सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना । न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥ ३० ॥
शुचिना सत्यसंधेन यथाशास्त्रानुसारिणा । प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥ ३१ ॥

सत्यवादी, विचारकर काम करनेवाले, तत्त्वके विचारमें निपुण और धर्म, काम तथा अर्थको जाननेवाले राजाको ऋषिलोग दण्ड चलानेयोग्य कहते हैं ॥ २६ ॥ यथार्थरीतिसे विचार करके दण्डके विधान करनेसे राजाके अर्थ, धर्म और कामकी वृद्धि होती है; किन्तु भोगाभिलाषी, क्रोधी और क्षुद्र राजा दण्डद्वारा स्वयं नष्ट होजाता है ॥ २७ ॥ महा तेजस्वी दण्ड, शास्त्रज्ञान और राजधर्मसे हीन राजाके धारण करने योग्य नहीं है; क्यों कि वह ऐसे राजाको उसके बान्धवोंसहित नाश करदेता है ॥ २८ ॥ सहायतासे हीन, मूढ़, लोभी, शास्त्रज्ञानसे हीन और विषयी राजा न्यायपूर्वक दण्डका विधान नहीं करसकता है ॥ ३० ॥ पवित्रस्वभाव, सत्यप्रतिज्ञ, शास्त्रानुसार चलनेवाला, बुद्धिमान् और उत्तम सहाययुक्त राजा दण्डका विधान करनेयोग्य होता है ॥ ३१ ॥

स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद् भृशदण्डश्च शत्रुषु । सुहृत्स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः ॥ ३२ ॥
स्वेस्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः । वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता ॥३५॥

राजा न्यायपूर्वक व्यवहार करे, शत्रुओंको यथार्थ दण्ड देवे, मित्रोंसे सरल वर्ताव करे और ब्राह्मणोंके लिये क्षमावान् होवे ॥ ३२ ॥ अपने अपने धर्मोंमें तत्पर सब वर्णों और सब आश्रमोंके लोगोंकी रक्षा करनेके लिये विधाताने राजाको उत्पन्न किया ॥ ३५ ॥

ब्राह्मणान्पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः । त्रैविद्यवृद्धान्विदुषस्तिष्ठेत्तेषां च शासने ॥ ३७ ॥
वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शुचीन् । वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते ॥ ३८ ॥
तेभ्योऽधिगच्छेद्विनयं विनीतात्मापि नित्यशः । विनीतात्मा हि नृपतिर्न विनश्यति कर्हिचित् ॥३९॥
बहवोऽविनयान्नष्टा राजानः सपरिच्छदाः । वनस्था अपि राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे ॥ ४० ॥

राजाको उचित है कि प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर तीनों वेदोंके जाननेवाले वृद्ध विद्वान् ब्राह्मणोंकी सेवा करे और उनकी आज्ञानुसार कार्योंको करे ॥ ३७ ॥ वेदवित् पवित्र वृद्ध ब्राह्मणोंकी सदा सेवा करनेवाले राजाको राक्षस लोग भी पूजते हैं अर्थात् उसका हित करते हैं ॥३८॥ राजा बुद्धिमान् तथा गुणवान् होनेपर भी वृद्धोंसे विनय सीखे; क्यों कि विनयी राजा कभी विनष्ट नहीं होता है ॥ ३९ ॥ हाथी, घोड़े आदि ऐश्वर्ययुक्त राजा विनयी नहीं होनेके कारण नष्ट होगये और वनमें वसनेवाले बहुतेरे विनययुक्त होकर राज्यको पाये ॥ ४० ॥

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम्।आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः॥४३॥
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् । जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः॥४४॥
दशकामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च । व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥
कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः । वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु ॥ ४६ ॥
मृगयाक्षो दिवा स्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः । तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥४७॥
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् । वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥ ४८ ॥

राजा ऋक्, यजु और साम इन तीनों वेदोंको जाननेवाले ब्राह्मणसे तीनों वेद पढ़े और सनातन दण्डनीति, तर्कशास्त्र, ब्रह्मविद्या, कृषि, वाणिज्य और पशुपालनकर्म और उनके आरम्भ धन प्राप्तिके उपायोंको उनके जाननेवालोंसे सीखलेवे ॥ ४३ ॥ सब इन्द्रियोंको अपने वशमें रक्खे; क्योंकि जितेन्द्रिय राजा ही प्रजाओंको अपने वशमें रख सकताहै ॥ ४४ ॥ कामसे उत्पन्न १० व्यसन (दोष) और क्रोधसे उत्पन्न ८ व्यसन हैं, उनको राजा यत्नपूर्वक छोड़देवे ॥ ४५ ॥ कामज व्यसनोंमें आसक्त होनेवाला राजा निश्चय करके अर्थ और धर्मसे हीन होजाताहै और क्रोधज व्यसनोंमें आसक्त होनेवालेका जीवन भी नष्ट होताहै ॥ ४६ ॥ शिकारखेलना, जूआखेलना, दिनमें शयनकरना, परका दोष कहना, स्त्रियोंमें आसक्त होना, नशेबाजी, नाचना, गाना, बजाना और वृथा घूमना; ये १० कामज व्यसन हैं और चुगली, साहस, द्रोह, ईर्षा, परके गुणोंमें दोषोंका प्रकट करना, अन्यका द्रव्य हरलेना, कठोर वचन बोलना और निर्दोष मनुष्यको ताड़ना करना; ये ८ क्रोधज व्यसन हैं अर्थात् क्रोधसे उत्पन्न होतेहैं ॥ ४७–४८ ॥

द्वयोरप्येतयोर्मूलं य सर्वे कवयो विदुः । तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥ ४९ ॥
पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम् । एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥ ५० ॥
दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे । क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा ॥ ५१ ॥
सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषंगिणः । पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद् व्यसनमात्मवान् ॥ ५२ ॥

विद्वान्लोग कहतेहैं कि दोनो प्रकारके व्यसनोंका मूल कारण लोभ है, इसलिये राजा यत्नपूर्वक लोभका परित्याग करे ॥ ४९ ॥ दशप्रकारके कामज व्यसनोंमें मद्यआदि पीना, जूआखेलना, स्त्रियोंमें आसक्त होना और शिकारकरना; इन ४ को अत्यन्त कष्टदायक जानना चाहिये ॥ ५० ॥ आठ प्रकारके क्रोधज व्यसनोंमें बहुत ताड़ना करना, कठोर वचन बोलना और अन्यका द्रव्य हरण करना; इन तीनोंको अत्यन्त अनर्थकारी समझना चाहिये ॥ ५१ ॥ ये सातो व्यसन सम्पूर्ण राजमण्डलीमें व्याप्त हुआ करतेहैं; इन ७ में से क्रमसे पिछलेवालेसे पहिलेवाले व्यसन अधिक कष्टदायक हैं ॥ ५२ ॥

तदध्यास्योद्वहेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् । कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥ ७७ ॥
पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम् । तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्युर्वैतानिकानि च ॥ ७८ ॥

राजा किलेमें निवास करके अपनी जातिकी, शुभ लक्षणवाली, महान् कुलमें उत्पन्न, मनोहर और सद्-गुणोंसे युक्त कन्यासे अपना विवाह करे ॥ ७७ ॥ पुरोहित और ऋत्विज बनावे वे लोग राजाके गृह्यमें कहेहुए होम आदि वेदोक्तकर्मोंको करें ॥ ७८ ॥

यजेत राजा क्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः। धर्मार्थश्चैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च ॥ ७९ ॥
सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम्। स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्तेत पितृवन्नृषु ॥ ८० ॥
अध्यक्षान् विविधान्कुर्यात्तत्र तत्र विपश्चितः। तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन्नृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥८१॥
आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत्। नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ॥ ८२ ॥

बहुत दक्षिणावाले विविध भांतिके यज्ञ करे और धर्मके अर्थ अनेक प्रकारकी भोगकी वस्तुएं और द्रव्य ब्राह्मणोंको दान देवे ॥ ७९ ॥ विश्वासी कर्मचारियोंद्वारा प्रजाओंसे शास्त्रोक्त वार्षिक "राजकर" लेवे; प्रजा-ओंके साथ पिताके समान वर्त्ताव करे ॥ ८० ॥ राजकर्मचारियोंके कार्योंको विशेषरीतिसे देखनेके लिये चतुर मनुष्योंको नियुक्त करे ॥ ८१ ॥ ब्रह्मचर्यव्रत समाप्त करके गृहस्थाश्रममें आयेहुए ब्राह्मणोंका धन धान्यसे विशेष सत्कार करे; क्यों कि ऐसे ब्राह्मणोंको देनेसे अक्षय फल मिलता है ॥ ८२ ॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः। रक्षितं वर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत् ॥ ९९ ॥
एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थप्रयोजनम्। अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः ॥ १०० ॥
अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया। रक्षितं वर्द्धयेद् वृद्ध्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत् ॥ १०१ ॥

राजाको उचित है कि नहीं मिलेहुए (द्रव्य, भूमि आदि पदार्थों) के प्राप्त होनेकी चेष्टा करे, प्राप्तहुई वस्तुओंकी यत्नपूर्वक रक्षा करे, रक्षित वस्तुओंको बढ़ानेका उद्योग करे और बढ़ेहुए धनको सत्पात्रको दान देवे ॥ ९९ ॥ इन चार प्रकारके कर्मोंको पुरुषार्थ अर्थात् अर्थ, धर्म, काम और मोक्षका कारण जाने और आलस छोड़कर इनका अनुष्ठान करे ॥ १०० ॥ अलब्ध वस्तुओं (राज्य आदि) को दण्डद्वारा अर्थात् सेना आदिसे लेनेकी चेष्टा करे, प्राप्त वस्तुओंको विशेष अनुसन्धानसे रक्षा करे, रक्षित वस्तुओंको वृद्धिसे बढ़ावे और बढ़ेहुए धनको दान करे ॥ १०१ ॥

नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः। नित्यं संवृतसंवार्यो नित्यं छिद्रानुसार्यरेः ॥ १०२ ॥
बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्। वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ॥ १०६ ॥
एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः। तानानयेद्वशं सर्वान्सामादिभिरुपक्रमैः ॥ १०७ ॥
यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति। तथा रक्षेन्नृपोराष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥ ११० ॥
मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया। सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः॥१११॥

सदा अपनी सेनाकी शिक्षापर ध्यान रक्खे, अपने पुरुषार्थको देखा रहे, मन्त्र आदि कार्योंको गुप्त रक्खे और शत्रुके छिद्रोंको देखते रहे ॥ १०२ ॥ अपने अर्थके चिन्तनमें बगुलेके समान ध्यान लगाये रहे, सिंहके समान पराक्रम दिखावे, भेड़ियेके समान (शत्रुओंसे) अपना अर्थ साधन करे और आपत्कालमें खरहेके समान भाग जावे ॥ १०६ ॥ इस प्रकारसे राजाके विजयमें प्रवृत्त होनेपर जो लोग विरुद्धता करें राजा उनको साम, दान, भेद और दण्डके सहारे अपने वशमें लावे ॥ १०७ ॥ जैसे किसान लोग खेतीकी रक्षाके लिये सस्यके सहित उपजेहुए तृणोंको उखाड़ देते हैं वैसेही राजा दुष्टोंको नष्ट करके राज्यकी रक्षा करे ॥ ११० ॥ जो राजा अज्ञानवश होकर प्रजाओंको कष्ट देता है वह शीघ्रही राज्यच्युत होकर अपने वंशसहित नष्ट हो जाता है ॥ १११ ॥

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः। हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चार्च्य प्रविशेत्स शुभां सभाम् ॥१४५॥
तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य विसर्जयेत्। विसृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः॥१४६॥

यज्ञवलक्यस्मृति-१ अध्यायके३१३-३१४ श्लोक। दैवज्ञ, विद्वान् और दण्डनीति तथा अथर्ववेद जान-नेमें निपुण ब्राह्मणको राजा पुरोहित बनावे और श्रौतस्मार्त कर्म करनेकेलिये ऋत्विजोंका वरण करे। गौतम-स्मृति--११ अध्याय-१ अङ्क। राजाको चाहिये कि विद्वान, वक्ता, रूपवान, वयस्थ, सुशील न्यायपथमें चलने-वाले और तपस्वी ब्राह्मणको अपना पुरोहित बनावे; उसकी सम्मतिसे राज्यकार्य करे और दैवी उत्पातोंके चिन्तक (ज्योतिषी आदि) की बातोंका आदर करे; कोई आचार्य कहतेहैं कि उनके कहनेमुताबिक काम करें; क्योंकि वे लोग योगक्षेमकी बातोंको कहतेहैं।

याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्यायके ३१७ श्लोकमें भी ऐसा है।

याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-३४६ श्लोक साम, दान, भेद और दण्ड; ये ४ उपाय हैं जो विचार-पूर्वक करनेसे सिद्ध होतेहैं; जब कोई उपाय नहीं लगसके तब दण्ड करना चाहिये।

राजाको उचित है कि रातके पिछले पहरमें उठकर प्रातःकालका शौच आदि करे, पश्चात् अग्निहोत्र तथा ब्राह्मणोंका सत्कार करके शुभ सभागृहमें जावे; सभामें स्थित प्रजाओंको यथायोग्य सत्कारसे सन्तुष्ट करके विदा करे और मन्त्रियोंके साथ कार्योंको विचारे ॥ १४५-१४६ ॥

क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यं पशुवृद्धिकरीमपि । परित्यजेन्नृपो भूमिमात्मार्थमविचारयन् ॥ २१२ ॥
आपदर्थं धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि । आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ २१३ ॥
सह सर्वाः समुत्पन्नाः प्रसमीक्ष्यापदो भृशम् । संयुक्तांश्च वियुक्तांश्च सर्वोपायान् सृजेद्बुधः॥२१४॥
उपेतारमुपेयं च सर्वोपायांश्च कृत्स्नशः । एतत्त्रयं समाश्रित्य प्रयतेतार्थसिद्धये ॥ २१५ ॥
एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः । व्यायाम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तःपुरं विशेत् २१६॥
तत्रात्मभूतैः कालज्ञैरहार्यैः परिचारकैः । सुपरीक्षितमन्नाद्यमद्यान्मन्त्रैर्विषापहैः ॥ २१७ ॥

राजा कल्याणकरनेवाली, सदा सस्य उपजानेवाली और पशुओंकी वृद्धि करनेवाली भूमिको भी आत्मरक्षाकेलिये विना विचार कियेहुए छोड़देवे ॥ २१२ ॥ आपत्कालसे बचनेकेलिये धनकी रक्षा करे, धनका लोभ छोड़कर पत्नीकी रक्षा करे और धन तथा पत्नीका मोह छोड़कर सदा अपनी रक्षा करतारहे ॥ २१३ ॥ बुद्धिमान् राजा अनेक विपद् उपस्थित होनेपर भी अधीर नहीं होवे; किन्तु प्रयोजनके अनुसार एक ही साथ अथवा अलग अलग साम, दान आदि उपायोंको करे ॥ २१४ ॥ उपेता, उपेय और उपाय, इन तीनों द्वारा अर्थसिद्धिके लिये यत्न करे ※ ॥२१५ ॥ इसप्रकारसे मन्त्रियोंके सहित सब विषयोंका विचार और आयुधोंके अभ्याससे कसरत करके स्नान आदि मध्याह्नकर्म करनेके बाद भोजनके लिये रनिवासगृहमें जावे ॥ २१६ ॥ वहां योग्य सेवकद्वारा भोजनके पदार्थोंकी परीक्षा करके और विष दूरकरनेवाले मन्त्रोंसे उनको शुद्ध करके भोजन करे ॥ २१७ ॥

अलंकृतश्च संपश्येदायुधीयं पुनर्जनम् । वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राण्याभरणानि च ॥ २२२ ॥
सन्ध्यां चोपास्य शृणुयादन्तर्वेश्मनि शस्त्रभृत् । रहस्याख्यायिनां चैव प्रणिधीनां च चेष्टितम्॥२२३॥
गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत्समनुज्ञाप्य तं जनम् । प्रविशेद्भोजनार्थं च स्त्रीवृतोऽन्तःपुरं पुनः ॥ २२४ ॥
तत्र भुक्त्वा पुनः किञ्चित्तूर्यघोषैः प्रहर्षितः । संविशेत्तु यथाकालमुत्तिष्ठेच्च गतक्लमः ॥ २२५ ॥
एतद्विधानमातिष्ठेदरोगः पृथिवीपतिः । अस्वस्थः सर्वमेतत्तु भृत्येषु विनियोजयेत् ॥ २२६ ॥

सन्ध्याकालमें अलंकृत होकर योद्धाओं, वाहनों, अस्त्र शस्त्रों और अलङ्कारोंकी परीक्षा करे ॥ २२२ ॥ सन्ध्यावन्दन करके सशस्त्र, राजमन्दिरमें जाकर संवाददाताओं तथा गुप्त दूतोंसे गुप्त कामोंको सुने; उनको बिदा करके भोजनके लिये रनिवास-गृहमें जावे ॥ २२३ ॥ २२४ ॥ वहां कुछ भोजन करके नगारे आदि बाजोंके शब्दसे आनन्दित होकर योग्यसमयमें शयन करे और सबेरे श्रमरहित होकर उठे ॥ २२५ ॥ शरीर आरोग्यरहनेपर इस प्रकारसे स्वयं राज्यशासन करे; किन्तु रोगग्रस्त होनेपर योग्यकर्मचारियोंपर राज्यकार्यका भार अर्पण करे ॥ २२६ ॥

८ अध्याय

स्वादानाद्वर्णसंसर्गात्त्वबलानां च रक्षणात् । बलं संजायते राज्ञः स प्रेत्येह च वर्धते ॥ १७२ ॥

न्यायपूर्वक धन लेनेसे, वर्णसङ्कर होनेसे प्रजाओंको बचानेसे और बलवानोंसे दुर्बलोंकी रक्षा करनेसे राजाका बल बढ़ताहै और इस लोक तथा परलोकमें उसको सुख मिलताहै ॥ १७२ ॥

तस्माद्यम इव स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रिये । वर्तेत याम्यया वृत्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥१७३॥
यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्यान्नराधिपः । अचिरात्तं दुरात्मानं वशे कुर्वन्ति शत्रवः ॥ १७४ ॥
कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान् धर्मेण पश्यति । प्रजास्तमनुवर्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः ॥ १७५ ॥

इसलिये राजा जितेन्द्रिय और जितक्रोध होकर यमराजके समान अपने प्रिय अप्रियका विचार छोड़कर वृत्ति अवलम्बन करे ॥ १७३ ॥ जो राजा मोहवश होकर अधर्मसे कार्य करताहै उस दुरात्माके शत्रु उसको शीघ्र ही पराजित करतेहैं ॥ १७४ ॥ जो राजा काम और क्रोधको जीतकर धर्मपूर्वक कार्योंको करताहै उसकी प्रजा इसभांति उसकी सहायक होतीहै जैसे नदियां समुद्रकी ॥ १७५ ॥

श्रोत्रियं व्याधितार्तौ च बालवृद्धावकिञ्चनम् । महाकुलीनमार्यं च राजा संपूजयेत्सदा ॥ ३९५ ॥

श्रोत्रिय, रोगी, आर्त्त, बालक, वृद्ध, अतिदरिद्री, बड़े कुलमें उत्पन्न और उत्तम चरित्रवाले मनुष्योंका राजा सदा दान मानसे सम्मान करे ॥ ३९५ ॥

※ उपाय करनेवालेको उपेता, उपाय करनेयोग्यको उपेय और साम; दान आदिको उपाय कहतेहैं ।

…र अपनी भार्यामें ही रत रहे,
…चाहिये कि नीतिशास्त्रमें
…पितरोंके कार्योंमें

९ अध्याय ।

आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनःपुनः । कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निष…

राज्यकी रक्षाकरना आदि कार्योंमें बार बार कठिनाई होनेपर भी राजा कार्यारम्भका त्या…
क्योंकि कार्यारम्भ करनेवाले पुरुषकी स्वयं लक्ष्मी सेवा करतीहै ॥ ३०० ॥

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च । चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत् ॥ ३०३ ॥
वार्षिकांश्चतुरो मासान्यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति । तथाभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन् ॥ ३०४ ॥
अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः । तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत् ॥ ३०५ ॥
प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः । तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥ ३०६ ॥
यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति । तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥ ३०७ ॥
वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभिदृश्यते । यथा पापान्निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥ ३०८ ॥
परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः । तथा प्रकृतयो यस्मिन्स चान्द्रव्रतिको नृपः ॥ ३०९ ॥

राजाको उचित है कि इन्द्र, सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि और पृथ्वीके तेजरूपकर्मको करे ॥ ३०३ ॥ जैसे इन्द्र वर्षाकालके चारोंमासमें जल वरसाताहै वैसे राजा प्रजाओंके प्रार्थित विषयोंको वरसाया करे ॥ ३०४ ॥ जैजे सूर्य आठमासतक अपनी किरणोंद्वारा पृथ्वीके रसको धीरे धीरे खींचताहै वैसे वह अपने राज्यसे धीरेधीरे "राज्यकर" ग्रहण करे ॥ ३०५ ॥ जैसे पवन सब प्राणियोंमें प्रवेश करके विचरताहै वैसे वह दूतोंद्वारा सर्वत्र प्रवेश करके राज्यकार्यको देखे ॥ ३०६ ॥ जैसे यमराज समय आजानेपर प्रिय और अप्रियका विचार नहीं करताहै वैसे वह अभियोगोंके विचारके समय शत्रुमित्रका भेद छोड़करके न्यायानुसार दण्डका विधान करे ॥ ३०७ ॥ जैसे वरुणकी फांसी दृढ़ बन्धन है, राजा भी उसीप्रकार पापियोंका निग्रह करे ॥ ३०८ ॥ जैसे पूर्णचन्द्रमाको देखकर मनुष्य आनन्द होतेहैं राजा ऐसा उद्योग करै कि उसीप्रकार उसको देखकर प्रजा आनन्दित होवें ॥ ३०९ ॥

प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु । दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतम् ॥ ३१० ॥
यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम् । तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥ ३११ ॥

पापी और दुष्टोंको दण्ड देनेकेलिये अग्निके समान प्रतापी और तेजस्वी होवे ॥ ३१० ॥ जैसे पृथ्वी सब प्राणियोंको समभावसे धारण करतीहै वैसे सब जीवोंको समभावसे पालन करे ॥ ३११ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय ।

महोत्साहः स्थूललक्षः कृतज्ञो वृद्धसेवकः । विनीतः सत्यसम्पन्नः कुलीनः सत्यवाक्शुचिः ॥ ३०९ ॥
अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानक्षुद्रोऽपरुषस्तथा । धार्मिकोऽव्यसनश्चैव प्राज्ञः शूरो रहस्यवित् ॥ ३१० ॥
स्वरन्ध्रगोप्तान्वीक्षिक्यां दण्डनीत्यां तथैव च । विनीतस्त्वथ वार्तायां त्रय्यां चैव नराधिपः ॥ ३११ ॥

महा उत्साही, बहुदर्शी, कृतज्ञ, वृद्धसेवी, नम्रतायुक्त, सत्यसम्पन्न, कुलीन, सत्यवादी, पवित्र, शीघ्रतासे काम करनेवाला, स्मृतिमान्, गम्भीर, सरलस्वभाव, धार्मिक, व्यसनोंसे रहित, पण्डित, शूर, रहस्योंको जाननेवाला, अपने छिद्रोंको गुप्त रखनेवाला, न्याय विद्यामें प्रवीण, राजनीतिमें निपुण और तीनों वेदोंका ज्ञाता राजाको होना चाहिये ॥ ३०९–३११ ॥

कृतरक्षः समुत्थाय पश्येदायव्ययौ स्वयम् । व्यवहारांस्ततो दृष्ट्वा स्नात्वा भुञ्जीत कामतः ॥ ३२७ ॥
हिरण्यं व्यापृतानीतं भाण्डागारेषु निक्षिपेत् । पश्येच्चारांस्ततो दूतान्प्रेषयेन्मन्त्रिसंगतः ॥ ३२८ ॥

राजा प्रातःकाल उठकर प्रातःकालके कर्मोंको करके स्वयं अपनी आमदनी और खर्चको देखे उसके पश्चात् व्यवहार अर्थात् राजकार्यको देखे उसके पश्चात् मध्याह्नका स्नान करके अपनी रुचिके अनुसार भोजन करे ॥ ३२७ ॥ सुवर्णआदिके लानेमें नियुक्त कियेहुए मनुष्योंके लायेहुए सोने आदिको भण्डारमें रखवावे और मन्त्रियोंके सहित भेदिये और दूतोंके कामोंको देखे ॥ ३२८ ॥

ततः स्वैरविहारी स्यान्मन्त्रिभिर्वा समागतः । बलानां दर्शनं कृत्वा सेनान्या सह चिन्तयेत् ॥ ३२९ ॥
सन्ध्यामुपास्य शृणुयाच्चाराणां गूढभाषितम् । गीतनृत्यैश्च भुञ्जीत पठेत्स्वाध्यायमेव च ॥ ३३० ॥
संविशेत्तूर्यघोषेण प्रतिबुद्ध्येत्तथैव च । शास्त्राणि चिन्तयेद्बुद्ध्वा सर्वकर्तव्यतास्तथा ॥ ३३१ ॥
प्रेषयेच्च ततश्चारान्स्वेष्वन्येषु च सादरान् । ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैराशीभिरभिनन्दितः ॥ ३३२ ॥
दृष्ट्वा ज्योतिर्विदो वैद्यान् दद्याद्गां काञ्चनं महीम् । नैवेशिकानि च ततः श्रोत्रियेभ्यो गृहाणि च ॥ ३३३ ॥
ब्राह्मणेषु क्षमी स्निग्धेष्वजिह्मः क्रोधनोऽरिषु । स्याद्राजा भृत्यवर्गेषु प्रजासु च यथा पिता ॥ ३३४ ॥
पुण्यात्षड्भागमादत्ते न्यायेन परिपालयन् । सर्वदानाधिकं यस्मात्प्रजानां परिपालनम् ॥ ३३५ ॥

राजाको उचित है स्त्रियोंके साथ यथेष्ट विहार करके अपनी सेनाको देखे और सेनापतिके साथ तथा ब्राह्मणोंका सत्कार करे ॥३२९॥ सन्ध्याकालमें सन्ध्योपासना करनेके पश्चात् चारगणोंका गुप्त भाषण करके विदा करे उसे प्रसन्न होकर भोजन करके फिर अपना पाठ पढ़े ॥ ३३० ॥ उसके पीछे राजाके क्षेम्यां ... करे और उसीप्रकार जागे और जागकर कर्त्तव्यकार्योंको करके शास्त्रोंका विचार करे ॥ ३३१ ॥ ... तथा अन्यके राज्यमे गुप्त दूतोंको आदरपूर्वक भेजे; ऋत्विक्, पुरोहित और आचार्यके आशीर्वादसे ... होकर ज्योतिषी और वैद्यको देखे; गौ, सोना, भूमि, विवाहके उपयोगी धन और गृह श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दान देवे ॥ ३३२-३३३ ॥ ब्राह्मणोंके विषयमे क्षमावान् होवे, मित्रोंसे निष्कपट वर्त्ताव करे, शत्रुओंके विषयमें क्रोधी होवे और भृत्यवर्ग तथा प्रजाओंसे पिताके समान वर्त्ताव करे ॥ ३३४ ॥ जो राजा न्यायपूर्वक प्रजाओंका पालन करताहै वह उनके पुण्यमेंसे छठवां भाग पाताहै; राजाके लिये प्रजाका पालन करना सब प्रकारके दानोंसे अधिक फलदायक है ॥ ३३५ ॥

अरक्षमाणाः कुर्वंति यत्किञ्चित्किल्बिषं प्रजाः। तस्मात्तु नृपतेरर्द्धं यस्माद् गृह्णात्यसौ करान्॥३३७॥
ये राष्ट्राधिकृतास्तेषां चारैर्ज्ञात्वा विचेष्टितम्। साधून्संमानयेद्राजा विपरीतांश्च घातयेत् ॥ ३३८ ॥
उत्कोचजीविनो द्रव्यहीनान्कृत्वा विवासयेत्। सदानमानसत्काराञ्श्रोत्रियान्वासयेत्सदा॥ ३३९ ॥
अन्यायेन नृपो राष्ट्रात्स्वकोशं योऽभिवर्द्धयेत्। सोऽचिराद्विगतश्रीको नाशमेति सबान्धवः ॥ ३४०॥

प्रजाओंकी रक्षा नहीं करनेसे उनके कियेहुए पापोका आधा भाग राजाको मिलताहै; क्योंकि रक्षा करनेके ही लिये वह प्रजाओंसे कर लेताहै ॥ ३३७ ॥ राजा गुप्त दूतोंद्वारा राजकर्मचारियोका आचरण जानकरके श्रेष्ठ काम करनेवालोका सम्मान करे और दुष्टकर्म करनेवालेको दण्ड देवे ॥ ३३८ ॥ प्रजाओसे घूस लेनेवाले राजकर्मचारीका सब धन छीनकर उसको राज्यसे बाहर करदेवे और दानमानसे सत्कार करके श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको राज्यमें बसावे ॥ ३३९ ॥ जो राजा अन्यायसे अपने राज्यसे धन उपार्जन करके अपने खजानेको बढ़ाता है वह थोड़ेही कालमें निर्धन होकर अपने बान्धवोंसहित नष्ट होजाता है ॥ ३४० ॥

अधर्मदण्डनं स्वर्गं कीर्तिं लोकांश्च नाशयेत्। सम्यक्तु दण्डनं राज्ञः स्वर्गकीर्त्तिजयावहम् ॥ ३५७॥
अपि भ्राता सुतोऽर्घ्यो वा श्वशुरो मातुलोऽपि वा। नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति धर्माद्विचलितःस्वकात्॥३५८॥

जो राजा अधर्मसे दण्ड देता है उसका स्वर्ग, कीर्ति और लोक नाश होताहै और जो राजा विधिपूर्वक प्रजाओंको दण्ड देताहै उसको स्वर्ग, कीर्ति और जय प्राप्त होतीहै ॥ ३५७ ॥ राजाका धर्म है कि निज धर्मसे च्युत अपने भाई, पुत्र, अर्घदेनेयोग्य आचार्य आदि श्वशुर और मामाको भी दण्ड देवे क्योंकि अपने धर्मसे च्युत कोई भी राजाके लिये अदण्डय नहीं है ॥ ३५८ ॥

यो दण्ड्यान् दंडयेद्राजा सम्यग्वध्यांश्च घातयेत्। इष्टं स्यात्क्रतुभिस्तेन समाप्तवरदक्षिणैः ॥ ३५९॥

जो राजा दण्ड देनेयोग्य मनुष्योको दण्ड देताहै और वध करने योग्यका वध करताहै वह बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंके करनेका फल पाताहै ॥ ३५९ ॥

(६) अत्रिस्मृति।

दुष्टस्य दण्डः सुजनस्य पूजा न्यायेन कोशस्य च संप्रवृद्धिः।
अपक्षपातोऽर्थिषु राष्ट्ररक्षा पञ्चैव यज्ञाः कथिता नृपाणाम् ॥ २८ ॥
यत्प्रजापालने पुण्यं प्राप्नुवन्तीह पार्थिवाः। न तु क्रतुसहस्रेण प्राप्नुवन्ति द्विजोत्तमाः ॥ २९॥

दुष्टोंको दण्ड देना, श्रेष्ठ जनोंका पालन करना, न्यायसे धन बढ़ाना, पक्षपात रहित होकर विचार करना और राज्यकी रक्षा करना; ये ५ कर्म राजाओंके लिये पञ्चयज्ञके समान है ॥ २८ ॥ जो पुण्य राजाओंको प्रजापालन करनेसे मिलताहै वह पुण्य ब्राह्मण लोगोंको हजार यज्ञ करनेपर भी नहीं प्राप्त होताहै ॥२९॥

(७) हारीतस्मृति-२ अध्याय।

राज्यस्थः क्षत्रियश्चापि प्रजा धर्मेण पालयन्। कुर्यादध्ययनं सम्यग्यजेद्यज्ञान्यथाविधि ॥ २ ॥
दद्याद्दानं द्विजातिभ्यो धर्मबुद्धिसमन्वितः। स्वभार्यानिरतो नित्यं षड्भागार्हः सदा नृपः ॥ ३ ॥
नीतिशास्त्रार्थकुशलः सन्धिविग्रहतत्त्ववित्। देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्यपरस्तथा ॥ ४ ॥

---

* मनुस्मृति—८ अध्याय। यदि पिता, आचार्य, मित्र, भ्राता, भार्या, पुत्र अथवा पुरोहित भी अपने धर्ममें स्थित नहीं रहें तो राजा उनको दण्डित करे ॥ ३३५ ॥ जिस अपराधके करनेसे अन्य लोगोंको १ पण दण्ड होवे, उस अपराधको यदि राजा स्वयं करे तो वह १ हजार पण दण्डके योग्य होगा ॥ ३३६ ॥

क्षत्रिय राजा धर्मानुसार प्रजापालन करे, वेद पढे, यज्ञ करे, दान देवे और अपनी भार्यामें ही रत रहे, ऐसा राजा अपनी प्रजाओंसे छठवां भाग राजकर लेनेयोग्य होताहै ॥२-३॥ उसको चाहिये कि नीतिशास्त्रमें प्रवीण होवे, सन्धि और विग्रहके तत्त्वोंको जाने, देवता और ब्राह्मणोंमें प्रीति रक्खे तथा पितरोंके कार्योंमें तत्पर रहे ॥ ४ ॥

(१३) पाराशरस्मृति–१ अध्याय ।

क्षत्रियो हि प्रजां रक्षञ्शस्त्रपाणिः प्रचण्डवत् । निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत् ॥ ६७ ॥

क्षत्रिय राजा शस्त्र ग्रहण करके प्रचण्डभावसे प्रजाओंकी रक्षा करे और शत्रुकी सेनाको जीतकर धर्मपूर्वक पृथ्वीको पाले ॥ ६७ ॥

न श्रीः कुलक्रमायाता भूषणोल्लिखिताऽपि वा । खड्गेनाक्रम्य भुञ्जीत वीरभोग्या वसुन्धरा ॥६८॥
पुष्पंपुष्पं विचिनुयान्मूलच्छेदं न कारयेत् । मालाकार इवाऽऽरामे न यथाङ्गारकारकः ॥ ६९ ॥

लक्ष्मी कुलपरम्परासे नहीं आती और भूषणोसे भी नही जानीजाती; अपने तलवारके बलसे राजा पृथ्वीको भोगे; क्योंकि पृथ्वी वीरोके भोगने योग्य है ॥ ६८ ॥ जैसे माली वृक्षोंको जडसे नही उपारकर उनके फूल फलको ही तोड़ताहै वैसे ही राजा प्रजाओंसे थोड़ा थोड़ा राजकर लेवे; जैसे कोयले बनानेवाले वृक्षोंको काटडालतेहैं वैसे राजा बहुत कर लेकर प्रजाका नाश नही करे ॥ ६९ ॥

(१५) शंखस्मृति–५ अध्याय ।

न व्रतैर्नोपवासैश्च न च यज्ञैः पृथग्विधैः । राजा स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति परिपालनात् ॥ ९ ॥

व्रत, उपवास और अनेकभांतिके यज्ञोको करनेसे राजाको स्वर्ग नही मिलताहै; किन्तु प्रजाके पालन करनेसे ही प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥

(१६क) शंखलिखितस्मृति ।

गावो भूमिः कलत्रं च ब्रह्मस्वहरणं तथा । यस्तु न त्रायते राजा तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ २४ ॥
दुर्बलानामनाथानां बालवृद्धतपस्विनाम् । अन्यायैः परिभूतानां सर्वेषां पार्थिवो गतिः ॥ २५ ॥
पक्षिणां बलमाकाशं मत्स्यानामुदकं बलम् । दुर्बलस्य बलं राजा बालस्य रुदितं बलम् ॥ २८ ॥
बलं मूर्खस्य मौनत्वं तस्करस्यानृतं बलम् ॥ २९ ॥

जो राजा गौ, भूमि, कलत्र और ब्रह्मस्वकी रक्षा नही करताहै वह ब्रह्मघातक कहलाताहै ॥ २४ ॥ दुर्बल, अनाथ, बालक, वृद्ध तपस्वी आदि मनुष्योंकी राजा ही गति है ॥ २५ ॥ पक्षियोंका बल आकाश, मछलियोंका बल जल, दुर्बलोंका बल राजा, बालकोंका बल रोना, मूर्खोंका बल मौन होना और चोरोंका बल झूठ बोलना है ॥ २८ ॥ २९ ॥

(१८) गौतमस्मृति–१० अध्याय ।

राज्ञोधिकं रक्षणं सर्वभूतानां न्याय्यदण्डत्वं बिभृयाद् ब्राह्मणाञ्श्रोत्रियान्निरुत्साहांश्चाब्राह्मणानकरांश्चोपकुर्वाणांश्च योगश्च विजये भये विशेषेण चर्या च, रथधनुर्भ्यां संग्रामे संस्थानमनिवृत्तिश्च ॥ २ ॥

वेद पढ़ना, यज्ञ करना और दान देना, इन ३ कर्मोंके सिवाय राजाका धर्म है कि सब प्राणियोंकी रक्षा, न्यायपूर्वक दण्डका विधान, श्रोत्रिय ब्राह्मण, उत्साहहीन क्षत्रियादि और राजकरदेनेमें असमर्थ उपकारी पुरुषोंका प्रतिपालन करे । विजयका उद्योग करता रहे; आपत्कालमें तर्कका विशेष अवलम्बन करे और रथ और आयुधके सहित संग्राममें खडे होजावे; संग्रामसे पीछे नही हटे ॥ २ ॥

११ अध्याय ।

राजा सर्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्जं साधुकारी स्यात् साधुवादी त्रय्यामान्वीक्षिक्यां चाभिविनीतः शुचिर्जितेन्द्रियो गुणवत्सहायोपायसम्पन्नः समः प्रजासु स्याद्धितं चासां कुर्वीत तमुपर्यासीनमधस्तादुपासीरन्नन्ये ब्राह्मणेभ्यस्तेऽप्येनं मन्येरन्, वर्णानाश्रमांश्च न्यायतोऽभिरक्षेच्चलतश्चैनान्स्वधर्मे एव स्थापयेद् धर्मस्योंऽशभाग्भवतीति विज्ञायते ॥ १ ॥

ब्राह्मणको छोड़कर राजा सब मनुष्योंका स्वामीहै, उसको उचित है कि उत्तम कर्म करे सत्य वचन बोले, वेदशास्त्रकी उत्तम शिक्षा प्राप्त करे, विनीत स्वभाव रक्खे, पवित्र रहे, जितेन्द्रिय होवे, गुणवान्को अपना सहायक बनावे, उपायशील होवे, सब प्रजाओंको समान दृष्टिसे देखे, प्रजाओके हित करनेमे तत्पर रहे, राज-

सिंहासपर बैठे, ब्राह्मणोंके अतिरिक्त सब प्रजा नीचे बैठे, ब्राह्मण राजाका मान करें, राजा चारो वर्ण और चारो आश्रमोंके मनुष्योंकी रक्षा करे और उनको निज निज धर्ममें स्थित रक्खे; क्योंकि ये लोग अधर्म करतेहैं तो अधर्मका भाग राजाको भी मिलताहै ॥ १ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति-१अध्याय ।

त्रयो वर्णा ब्राह्मणस्य वशे वर्त्तेरन् ॥ ४० ॥ तेषां ब्राह्मणो धर्मान् प्रब्रूयात् ॥ ४१ ॥ तं राजा चानुशिष्यात् ॥ ४२ ॥

क्षत्रिय आदि तीनो वर्ण ब्राह्मणके उपदेशानुसार काम करें ॥ ४० ॥ उन सबको ब्राह्मण यथाधिकार धर्मोपदेश देवें ॥ ४१ ॥ जो ब्राह्मण अपने धर्मपर नहीं रहे राजा उसको दण्डित करे ॥ ४२ ॥

१९ अध्याय ।

स्वधर्मो राज्ञः पालनं भूतानां तस्यानुष्ठानात् सिद्धिः ॥ १ ॥ राजा चतुरो वर्णान् स्वधर्मे स्थापयेत् ॥ ५ ॥ तेष्वपचरत्सु दण्डं धारयेत् ॥ ६॥ दण्डस्तु देशकालधर्मवयोविद्यास्थानविशेषैर्हिंसाक्रोशयोः कल्प्य आगमाद् दृष्टान्ताच्च॥७॥ क्लीबोन्मत्तान् राजा बिभृयात्तद्गामित्वाद्रिक्थस्य ॥२३॥

सब प्राणियोंका पालन करना ही राजाका प्रधान धर्म है, उसीसे उसकी सिद्धि होती है ॥ १ ॥ राजाको उचित है कि चारों वर्णोके मनुष्योंको अपने अपने धर्ममें स्थित रक्खे ॥ ५ ॥ यदि वे लोग निज धर्मोंको छोड़ें तो उनको दण्ड देवे ॥ ६ ॥ हिंसा और वाक्पारुष्यके विषयमें देश, काल, धर्म, वयस, विद्या और स्थानके अनुसार शास्त्र और लोकदृष्टान्तसे दण्डकी कल्पना करे ॥ ७ ॥ नपुंसक और उन्मत्तकी रक्षा करे; क्यों कि अन्तमें उनका धन राजाको ही मिलेगा ॥ २३ ॥

राज्यप्रबन्ध ३.

(१) मनुस्मृति-७अध्याय ।

मौलाञ्छास्त्रविदः शूराँल्लब्धलक्षान्कुलोद्गतान् । सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥५४ ॥
तेषां स्वंस्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक्पृथक् । समस्तानां च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः ॥ ५७ ॥
सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता । मन्त्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम् ॥ ५८ ॥
नित्यं तस्मिन्समाश्वस्तः सर्वकार्याणि निक्षिपेत् । तेन सार्धं विनिश्चित्य ततः कर्म समारभेत् ॥५९॥
अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन्प्राज्ञानवस्थितान् । सम्यगर्थसमाहर्तॄनमात्यान्सुपरीक्षितान् ॥ ६० ॥
निर्वर्त्तेतास्य यावद्भिरितिकर्तव्यता नृभिः । तावतोऽतन्द्रितान् दक्षान्प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥ ६१ ॥
तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान् दक्षान् कुलोद्गतान् । शुचीनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तर्निवेशने ॥ ६२ ॥

राजाको उचित है कि वंशपरम्परासे राजाकर्मचारी, शास्त्रोंके जाननेवाले, वीर, युद्धविद्यामें निपुण, उत्तम कुलसे उत्पन्न और परीक्षामें योग्य ७ अथवा ८ मन्त्रियोंको रक्खे ॥ ५४ ॥ पहिले एकान्तमें प्रत्येक मन्त्रियोंके पृथक् पृथक् मत लेकर विचार करके निज सिद्धान्तके अनुसार अपने हितकर कार्योंको करे॥५७॥ इन मन्त्रियोंमेसे विद्वान् ब्राह्मणके साथ सन्धि, विग्रह, चढ़ाई, आसन, द्वैध और आश्रय; इन ६ विषयोंमें सलाह करे ॥ ५८ ॥ इसपर विश्वास करके सब कार्योंका भार छोड़ ओर इसके मत लेकर नये कामोंको करे ॥ ५९ ॥ इसके अतिरिक्त पवित्र स्वभाववाले, बुद्धिमान्, दृढनिश्चयवाले, न्यायसे धन बटोरनेवाले और परीक्षामें उत्तीर्णको मन्त्री बनावे॥६०॥सम्पूर्ण राज्य कार्योंमें आलस्यरहित कार्यमें चतुर और बुद्धिमान् लोगोको नियत करे॥६१॥ इनमेंसे वीर, चतुर, अच्छे कुलमें उत्पन्न और पवित्रस्वभाववालोंको सुवर्ण आदि द्रव्यकी खानिके काममें और धान्यादि संग्रहके कार्यमें और धर्मसे डरनेवालोंको रनिवासगृहमें नियुक्त करे ॥ ६२ ॥

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् । इंगिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥ ६३ ॥
अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित् । वपुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते ॥६४ ॥
अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया । नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ ॥ ६५ ॥

सब शास्त्रोंको जाननेवाले, सङ्केत, आकार और चेष्टाको समझनेवाले; पवित्र, चतुर और कुलीनको दूतका काम सौंपे; सर्वप्रिय, पवित्रस्वभाववाला, चतुर, स्मृति रखनेवाला, देशकालका जाननेवाला सुन्दर रूपवाला, निडर और सुवक्ता राजदूत प्रशंसाके योग्य होता है ॥६३॥ ६४ ॥ मन्त्रीके आधीन दण्ड, दण्डके आधीन सुशिक्षा, राजाके आधीन खजाना और देश और राजदूतके आधीन सन्धि विग्रह हैं ॥ ६५ ॥

जांगलं सस्यसम्पन्नमार्यप्रायमनाविलम्। रम्यमानतसामन्तं स्वाजीव्यं देशमावसेत् ॥ ६९ ॥
धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा। नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ॥ ७० ॥
सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत्। एषां हि बहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते ॥ ७१ ॥
त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषां मृगगर्ताश्रयाऽप्चराः। त्रीण्युत्तराणि क्रमशः प्लवंगमनरामराः ॥७२ ॥

जाङ्गल (जिसमें तृण और जल कम हो और वायु तथा घाम बहुत होता हो उसको जाङ्गल कहते हैं) धान्य आदिकी खेतीसे पूर्ण, धार्मिक मनुष्योंसे युक्त, रोगादि उपद्रवोंसे रहित, रमणीय, नम्र प्रजाओंसे युक्त और खेती, वाणिज्य आदि जीविकाओंसे युक्त देशमें राजा निवास करे ॥ ६९ ॥ वहां धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, जलदुर्ग, वृक्षदुर्ग, मनुष्यदुर्ग अथवा गिरिदुर्गके ❀ आश्रयवाले नगरमें निवास करे ॥ ७० ॥ इनमेंसे गिरि दुर्गमें विशेष गुण है, इसलिये राजाको यत्नपूर्वक उसीका आश्रय लेना चाहिये ॥ ७१ ॥ इन किलोंमें पहिले कहेहुए तीनमेंसे धन्वदुर्गमें मृग, महीदुर्गमें विलोंमें रहनेवाले मूस आदि और जलदुर्गमें मगर आदि जलजन्तु और पिछले तीनमेंसे वृक्षदुर्गमें वानर, मनुष्यदुर्गमें मनुष्य और गिरिदुर्गमें देवता रहते हैं ॥ ७२ ॥

यथा दुर्गाश्रितानेतान्नोपहिंसन्ति शत्रवः। तथारयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गसमाश्रितम् ॥ ७३ ॥
एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः। शतं दशसहस्राणि तस्माद् दुर्गं विधीयते ॥ ७४॥
तत्स्यादायुधसंपन्नं धनधान्येन वाहनैः। ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ॥ ७५ ॥
तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्गृहमात्मनः। गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥ ७६ ॥

जैसे दुर्गमस्थानमें रहनेसे मृग आदि वनजन्तुओंको व्याधे नहीं मारसकते हैं वैसे ही किलेमें निवास करनेपर राजाके शत्रु उसका अनिष्ट नहीं करसकते हैं ॥ ७३ ॥ किलेके भीतर रहकर एक योद्धा बाहरके शत्रुके १०० वीरोंसे और किलेके १०० योद्धा बाहरके १०,००० वीरोंसे लड़सकते हैं ॥ ७४ ॥ राजाको उचित है कि आयुध, धन, धान्य, वाहन, ब्राह्मण, शिल्पी, यन्त्र, तृण और जलसे किलेको पूर्ण रक्खे और किलेके मध्यमें जल, वृक्ष आदि उपयोगी सामानोंके सहित राजमहल बनावे ✠ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम्। तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम् ॥ ११४ ॥
ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामपतिं तथा। विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च ॥ ११५ ॥
ग्रामदोषान्समुत्पन्नान्ग्रामिकः शनकैः स्वयम्। शंसेद् ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिनम् ॥ ११६ ॥
विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत्। शंसेद् ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् ॥ ११७ ॥

राज्यकी रक्षाके लिये दो, तीन, पांच तथा एकसौ गांवोंके बीचमें रक्षकदल स्थापित करे ॥ ११४ ॥ प्रति गांवमें एकएक, १० गांवोंमें एक, २० गांवोंमें एक और १ हजार गांवोंमें एक अधिपति नियुक्त करे ॥ ११५ ॥ गांवके चोरी आदि दोषोंके प्रबन्ध करनेमें असमर्थ होनेपर १ गांवका अधिपति १० गांवोंके अधिपतिसे, १० गांवोंका अधिपति २० गांवोंके स्वामीसे, २० गांवोंका स्वामी एकसौ गांवोंके स्वामीसे और एकसौ गांवोंका अधिपति एकहजार गांवोंके स्वामीसे कहे ॥ ११६–११७ ॥

यानि राजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः। अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात् ॥११८॥
दशी कुलन्तु भुञ्जीत विंशी पञ्चकुलानि च। ग्रामं ग्रामशताध्यक्षः सहस्राधिपतिः पुरम् ॥ ११९ ॥

गांवके लोग जो प्रतिदिन अन्न, जल और लकड़ी आदि राजाकेलिये देवें वह गांवके अधिपति लेवें ॥ ॥ ११८ ॥ ६ बैलोंसे चलनेवाले ५ हलोंसे जोतनेयोग्य भूमिको 'कुल' कहतेहैं, उतनी भूमि १० गांवोंके स्वामीको; उससे पांच गुनी भूमि २० गांवोंके अधिपतिको; १ गांव १०० गांवोंके स्वामीको और १ नगर १००० गांवोंके अधिपतिको वृत्तिरूपसे राजा देवे ॥ ११९ ॥

तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्याणि चैव हि। राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः१२०
नगरे नगरे चैकं कुर्यात्सवार्थचिन्तकम् ॥ १२१ ॥
ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णायुः पापचेतसः। तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ॥ १२४ ॥

❀ धनुपाकार किलेको धन्वदुर्ग, ऊंची और विशेष चौड़ी तथा दृढ दीवारोंसे घेरेहुए मैदानके किलेको महीदुर्ग, अगाध जलसे घेरेहुए किलेको जलदुर्ग, कोसोंतक सघन वृक्षादिकोंसे घेरेहुए किलेको वृक्षदुर्ग, सेनाओंसे रक्षित किलेको मनुष्यदुर्ग और आवश्यकीय वस्तुओंसे युक्त पहाड़के ऊपरके किलेको गिरिदुर्ग कहते हैं।

✠ याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय। राजा रमणीक और पशुओंके हितकारक जाङ्गल देशमें निवास करे; वहां जन, कोष और आत्माकी रक्षाके लिये किला बनावे ॥ ३२१ ॥ चतुर, शुद्ध, आय-कर्म और व्यय-कर्ममें उत्तम अध्यक्षोंको नियत करे ॥ ३२२ ॥

राजा गांवोंके स्वामियोंके गांव सम्बन्धी तथा अन्य कार्योंको देखनेकेलिये आलसरहित और हितकारी एक मन्त्रीको नियुक्त करे और नगरोंके वृत्तान्तोंको जाननेकेलिये प्रत्येक नगरमें एक सच्चा, बुद्धिमान् तथा तेजस्वी कर्मचारीको नियत करदेवे ॥ १२०-१२१ ॥ कार्यार्थियोंसे अन्यायपूर्वक धन लेनेवाले कर्मचारियोंका सर्वस्व हरण करके उनको अपने राज्यसे बाहर करदेवे ॥ १२४ ॥

राजकर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च । प्रत्यहं कल्पयेद्वृत्तिं स्थानकर्मानुरूपतः ॥ १२५ ॥
पणो देयोऽवकृष्टस्य षडुत्कृष्टस्य वेतनम् । षाण्मासिकस्तथाच्छादो धान्यद्रोणस्तु मासिकः ॥१२६॥

राजकार्यमें नियुक्त दासी, तथा सेवकोंके पद तथा कार्योंकी श्रेष्ठताके अनुसार उनकी दैनिकवृत्ति निश्चय करे ॥ १२५ ॥ निकृष्ट दासदासीको नित्य एक पण, ❀ ६ महीनेपर २ वस्त्र और प्रतिमासमें १ द्रोण ✿ अन्न देवे और उत्तम दास, दासीको इससे छः गुना देवे ॥ १२६ ॥

८ अध्याय।

बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजानुपालयेत् । यावत्स स्यात्समावृत्तो यावच्चातीतशैशवः ॥ २७ ॥
वन्ध्याऽपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च । पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च ॥ २८ ॥
जीवन्तीनान्तु तासां ये तद्धरेयुः स्वबान्धवाः । तांश्छिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥२९॥

राजाको उचित है कि अनाथ बालक जबतक गुरुके गृहसे पढ़कर अपने घरमें नहीं आवे अथवा बालकअवस्थामें रहे तबतक उसके धनकी रक्षाकरे ✾ ॥ २७ ॥ इसीप्रकार वन्ध्या, पुत्रहीना, कुलहीना, पतिव्रता, विधवा और रोगिणी स्त्रियोंकी सम्पत्तिपर ध्यान रक्खे ॥ २८ ॥ इनकी जीवितअवस्थामें इनके धन लेलेनेवाले इनके बान्धवोंको धार्मिक राजा चोरके समान दण्ड देवे ॥ २९ ॥

प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत् । अर्वाक् त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् ॥ ३०॥
ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽनुयोज्यो यथाविधि । संवाद्य रूपसंख्यादीन्स्वामी तद्द्रव्यमर्हति ॥ ३१ ॥
अवेदयानो नष्टस्य देशं कालं च तत्त्वतः । वर्णं रूपं प्रमाणं च तत्समं दण्डमर्हति ॥ ३२ ॥

यदि किसीका नष्टहुआ धन राजाको मिलजावे तो वह उसको पोषण कराके ३ वर्षतक अपने पास रक्खे; धनके स्वामीके नहीं आनेपर ३ वर्षके बाद उसको लेलेवे ❁ ॥ ३० ॥ यदि धनका स्वामी ३ वर्षके भीतर आकर उसका रूप, उसकी संख्या तथा धन सम्बन्धी सब घटना कहके उसको अपना होनेका प्रमाण देवे तो राजा उसको वह धन देदेवे ॥ ३१ ॥ यदि वह नष्ट धनका स्थान, समय, रङ्ग, रूप और परिमाण नहीं जानता होवे तो उसपर उस धनके समान दण्ड करे ▦ ॥ ३२ ॥

आददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृपः । दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ३३ ॥
प्रणष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठितम् । यांस्तत्र चौरान्गृह्णीयात्तान्राजेभेन घातयेत् ॥ ३४ ॥

खोये हुए धनकी रक्षा करनेके बदलेमें धनके छठवां, दशवां अथवा बारहवां भाग धनके स्वामीसे राजा लेलेवे ❃ ॥ ३३ ॥ किसीकी खोईहुई वस्तु राजाके पास आवे तो राजा उसको योग्य कर्मचारीको सौंपदेवे यदि कोई उस वस्तुको चोरालेवे तो उसको हाथीसे मरवाडाले ॥ ३४ ॥

❀ ८० रत्ती ताम्बेका एक पण होताहै।

✿ १६ गण्डेभरका १ प्रस्थ और १६ प्रस्थका १ द्रोण होताहै।

✾ गौतमस्मृति—१० अध्यायके २ अङ्कमें भी ऐसा है।

❁ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय-१७७ श्लोक। यदि किसीकी नष्टहुई अथवा चोरी गईहुई वस्तु राज-कर्मचारी लेआवें तो राजा उसका विज्ञापन देकर उसको एकवर्षतक रक्खे; उसके स्वामीके नहीं आनेपर एकवर्षके पश्चात् उस वस्तुको लेलेवे।

▦ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय-३४ श्लोक। यदि किसीका खोयाहुआ धन राजाको मिलजावे तो राजा उसके स्वामीको वह धन देदेवे, किन्तु यदि वह अपने धनका ठीक चिह्न आदि नहीं बतासके तो उस धनके बराबर उससे दण्ड लेवे। गौतमस्मृति-१० अध्याय-२ अङ्क। यदि किसीकी खोईहुई वस्तु कोई पालेवे तो वह उसकी खबर शीघ्र ही राजाको देवे; राजा उसका विज्ञापन देकर उसको १ वर्षतक अपने पास रक्खे; यदि एक वर्षतक उसका स्वामी नहीं आवे तो उसका चौथाईभाग पानेवालेको देकर सब वस्तु आप लेलेवे।

❃ याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्याय-१७८ श्लोक। रक्षा करनेके बदलेमें घोडे आदि एकखुरवाले पशुके स्वामीसे ४ पण; मनुष्यके स्वामीसे ५ पण; भैंस, ऊंट और गौके स्वामीसे २ पण और बकरी तथा भेड़के स्वामीसे चौथाई पण राजा लेवे।

ममायमिति यो ब्रूयान्निधिं सत्येन मानवः । तस्याददीत षड्भागं राजा द्वादशमेव वा ॥ ३५ ॥
अनृतं तु वदन्दंड्यः स्ववित्तस्यांशमष्टमम् । तस्यैव वा निधानस्य संख्यायाल्पीयसीं कलाम् ॥ ३६ ॥

जो मनुष्य भूमिके भीतर मिलेहुए धनको अपना प्रमाणित करे राजा उससे छठा अथवा बारहवां भाग लेकर उसका धन उसको देदेवे ॥ ३५ ॥ यदि वह झूठा प्रमाणित होवे तो राजा उससे उस धनके आठवें भागके बराबर अथवा अल्प अंश दण्ड लेवे ※ ॥३६ ॥

विद्वांस्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निधिम् । अशेषतोऽप्याददीत सर्वस्याधिपतिर्हि सः ॥ ३७ ॥
यं तु पश्येन्निधिं राजा पुराणं निहितं क्षितौ । तस्माद्द्विजेभ्यो दत्त्वार्धमर्धं कोशे प्रवेशयेत् ॥ ३८ ॥
निधीनां तु पुराणानां धातूनामेव च क्षितौ । अर्धभाग्रक्षणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हि सः ॥ ३९ ॥

विद्वान् ब्राह्मण यदि भूमिमें गड़ाहुआ धन पावेगा तो उसको उसमेंसे राजाका भाग नहीं देना पड़ेगा क्योंकि वह सबका स्वामी है ॥ ३७ ॥ राजा भूमिमें गाड़ाहुआ धन पावे तो उसका आधा भाग ब्राह्मणको देकर आधा भाग अपने भण्डारमें रक्खे ※ ॥ ३८ ॥ यदि कोई मनुष्य भूमिके भीतरका पुराना धन अथवा सोना आदि धातुकी खानि पावे तो उसमेंसे आधा राजाको देवे; क्योंकि राजा रक्षक और भूमिका स्वामी है ॥ ३९ ॥

जातिजानपदान्धर्माञ्छ्रेणीधर्मांश्च धर्मवित् । समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ४१ ॥

धर्मज्ञ राजा जातिधर्म; देशधर्म; श्रेणीधर्म और कुलधर्मकी ओर विशेष ध्यान देकर, जिसमें इन धर्मोंमें विरुद्ध नहीं पड़े, देश प्रबन्धके लिये नियम बनावे ※ ॥ ४१ ॥

यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक् । न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक् ३८६
एतेषां निग्रहो राज्ञः पञ्चानां विषये स्वके । साम्राज्यकृत्सजात्येषु लोके चैव यशस्करः ॥ ३८७ ॥

जिस राजाके राज्यमें चोर, परस्त्रीगामी, कठोरवादी, डाकू और दण्डपारुष्य करनेवाला नहीं है, वह इन्द्रलोकमें वसताहै; इन पाचोंको अपने राज्यसे बाहर रखनेवाला राजा सब राजाओंमें उत्तम राज्य करने वाला कहलाताहै और जगत्में यश पाताहै ॥ ३८६-३८७ ॥

९ अध्याय।

स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा । सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥ २९४ ॥

राजा, मन्त्री, किला, देश अर्थात् प्रजा, खजाना, सेना और मित्र; ये ७ राज्यके मूल कारण है इसलिये राज्यको सप्ताङ्ग कहते है ※ ॥ २९४ ॥

राज्य-कर ४.

(१) मनुस्मृति-७ अध्याय।

क्रयविक्रयमध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम् । योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजो दापयेत्करान् ॥ १२७ ॥
यथा फलेन युज्येत राजा कर्त्ता च कर्मणाम् । तथावेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सततं करान् ॥ १२८॥
यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः । तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः॥१२९॥

राजाको उचित है कि वस्तुओंके क्रयविक्रयके मूल्य, लाने भेजनेके फासिले, खरच, रक्षाका खरच और व्यवसायके लाभका विचार करके वाणिज्यकी वस्तुओंपर राजकर नियत करे ॥ १२७ ॥ जिसमें राजा और वणिक् आदि प्रजा अपने अपने कार्योंका फल पासके ऐसा विचार कर राजा सदा "कर" निश्चय करे ॥ १२८ ॥ जैसे जोंक थोड़ा रुधिर, वछड़ा थोड़ा दूध और भँवरा थोड़ा रस पीता है वैसेही राजा अपनी प्रजाओंसे थोड़ा २ वार्षिक कर लेवे ॥ १२९ ॥

※ याज्ञवल्क्यस्मृति—२ आध्यायके-३६ श्लोकमें । ब्राह्मणसे भिन्न किसीका भूमिमें गड़ा हुआ धन किसीको मिलजावे तो राजा पानेवालेको छठा भाग देकरके बाकी आप लेलेवे; यदि कोई ऐसा धन पाकरके राजासे नही बतावे तो राजा उससे वह धन छीनलेवे और उसको दण्ड देवे । वसिष्ठस्मृति—३ अध्यायके-१४ अङ्क । अज्ञात गड़ा हुआ धन किसीको मिल जावे तो राजा उसको उसका छठवां भाग देकर शेषको लेलेवे ।

※ याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्यायके ३५ श्लोकमें भी ऐसा है ।

※ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय-३४३ श्लोक । राजाको उचित है कि देश जीतने पर उस देशमें जो आचार, व्यवहार और कुलकी मर्यादा हो उसको उसीरीतिसे पालन करे ।

※ याज्ञवाल्क्यस्मृति—१ अध्यायके ३५३ श्लोकमें भी ऐसा है ।

पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः । धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥ १३० ॥

वह पशु तथा सोनाके व्यापारियोंसे लाभका ५० वां भाग,❀ अन्नका ८ वां; ६ वां अथवा १२ वां भाग कर निश्चय करे ❀ ॥ १३० ॥

आददीताथ षड्भाग द्रुमांसमधुसर्पिषाम् । गन्धौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च ॥ १३१ ॥

पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य च । मृन्मयानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च ॥१३२ ॥

म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात्करम्। न च क्षुधाऽस्य संसीदेच्छ्रोत्रियो विषये वसन्॥१३३॥

संरक्ष्यमाणो राज्ञा यं कुरुते धर्ममन्वहम् । तेनायुर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ॥ १३६ ॥

यत्किञ्चिदपि वर्षस्य दापयेत्करसंज्ञितम् । व्यवहारेण जीवन्तं राजा राष्ट्रे पृथग्जनम् ॥ १३७ ॥

वृक्ष, मांस, मधु, घी, चन्दन आदि सुगन्धयुक्त वस्तु, औषधी, रस, फूल, मूल, फल, पत्र, शाक, तृण, चाम, बांस मट्टीके पात्र और पत्थरके पात्रके व्यापारियोंसे उनके लाभमेंसे ६ वां भाग कर लेवे ❀ ॥ १३१-१३२ ॥ श्रोत्रिय ब्राह्मणोंसे कभी नहीं कर लेवे; किन्तु राज्यमें वसनेवाले क्षुधित श्रोत्रिय ब्राह्मणोंका पालन करे ॥ १३३ ॥ राजासे रक्षित होकर श्रोत्रिय ब्राह्मणोंके धर्मानुष्ठान करनेसे राजाके धन, आयु और राज्यकी वृद्धि होती है ॥ १३६ ॥ तुच्छ काम करके जीविका करनेवालोंसे वर्षमें नाममात्र थोड़ासा कर लेवे ॥ १३७ ॥

कारुकाञ्छिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मोपजीविनः । एकैकं कारयेत्कर्म मासिमासि महीपतिः ॥ १३८ ॥

सोनार,चित्रकार आदि कारुक; लोहार, बढ़ई आदि शिल्पी और शरीरसे काम करके जीविका चलानेवाले शूद्रसे करके बदलेमें प्रति महीनेमें एक दिन अपना काम करालेवे ❀ ॥ १३८ ॥

नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया । उच्छिन्दन् ह्यात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत्१३९

राजा प्रजाओंपर दया करके कर लेना छोड़कर खजानेको नहीं घटावे और उनसे बहुत कर लेकरके उनका मूल नहीं उखाड़े ॥ १३९ ॥

८ अध्याय ।

अन्धो जडः पीठसर्पी सप्तत्या स्थविरश्च यः । श्रोत्रियेषूपकुर्वंश्च न दाप्याः केनचित्करम् ॥ ३९४ ॥

राजाको उचित है कि अन्ध, जड़, पंगु, ७० वर्षके बूढ़े, श्रोत्रिय और उपकारी मनुष्यसे किसीप्रकारका "राज्यकर" नहीं लेवे ॥ ३९४ ॥

पणं यानं तरे दाप्यं पौरुषोऽर्धपणं तरे । पादं पशुश्च योषिच्च पादार्धं रिक्तकः पुमान् ॥ ४०४ ॥

भाण्डपूर्णानि यानानि तार्यं दाप्यानि सारतः । रिक्तभाण्डानि यत्किञ्चित्पुमांसश्चापरिच्छदाः॥४०५॥

दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरो भवेत् । नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् ॥ ४०६ ॥

गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः । ब्राह्मणा लिङ्गिनश्चैव न दाप्यास्तारिकं तरे ॥४०७ ॥

नदीपार होनेवालोंमेंसे सवारीका १ पण, बोझेके सहित पुरुषका आधा पण, पशु और स्त्रियोंका चौथाई पण और विना बोझेके मनुष्यका एकपणका आठवां भाग राजा महसूल लेवे ॥ ४०४ ॥ भाण्डसे लदीहुई सवारीका महसूल उसके तौलके अनुसार और खाली भाण्ड तथा दरिद्री लोगोंसे बहुत थोड़ा महसूल लेवे ॥ ४०५ ॥ नदीके मार्गसे दूर देशमें जानेवाले मनुष्यसे देशकालका विचार करके और समुद्रमें यात्रा करनेवालेसे यथायोग्य महसूल लेवे ॥ ४०६॥ दो माससे अधिकको गर्भिणी स्त्री, संन्यासी, वानप्रस्थ, ब्राह्मण और ब्रह्मचारीसे नदीकी उतराई नहीं लेवे ॥ ४०७ ॥

१० अध्याय ।

चतुर्थमाददानोऽपि क्षत्रियो भागमापदि । प्रजारक्षन्परं शक्त्या किल्बिषात्प्रतिमुच्यते ॥ ११८ ॥

जो राजा अपने सामर्थ्यके अनुसार प्रजाकी रक्षा करनेमें तत्पर रहताहै वह आपत्कालमें प्रजाओंसे चौथाभाग कर लेनेपर भी अधिक कर लेनेके पापमें लिप्त नहीं होताहै ॥ ११८ ॥

❀ गौतमस्मृति-१० अध्यायके २ अङ्कमें भी ऐसा है ।

❀ गौतमस्मृति-१० अध्याय-२ अङ्क । खेती करनेवालोंसे राजा १० वां, ८ वां अथवा ६ ठा भाग कर लेवे ।

❀ गौतमस्मृति-१० अध्याय-२ अङ्क । मूल, फल, फूल, औषध, मधु, मांस, तृण और लकड़ी बेंचनेवालोंसे राजा लाभका ६ ठा भाग कर लेवे ।

❀ गौतमस्मृति-१० अध्याय २ अङ्क । लोहार, बढ़ई आदि शिल्पी तथा गाड़ीवान् आदिसे राजा प्रतिमहीनेमें एकदिन काम करालेवे; काम करानेके दिन उनको केवल भोजनमात्र देवे ।

शस्त्रेण वैश्यान् रक्षित्वा धर्म्यमाहारयेद्बलिम् ॥ ११९ ॥
धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं विंशं कार्षापणावरम् । कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा॥१२०॥

राजा शस्त्रोंसे वैश्योंकी रक्षा करे और उनसे धर्मानुसार राजकर लेवे ॥ ११९ ॥ कृषक वैश्यसे धान्यका आठवां भाग और व्यापारकरनेवालोंसे पण्यके लाभका बीसवां भाग कर लेवे ❀ और कामकरनेवाले शूद्र तथा शिल्पीसे काम करवालेवे ॥ १२० ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति-१ अध्याय।

राजा तु धर्मेणानुशासत् षष्ठं षष्ठं धनस्य हरेत् ॥ ४३ ॥ अन्यत्र ब्राह्मणात् ॥ ४४ ॥ इष्टापूर्तस्य तु षष्ठमंशं भजति-इति ह ब्राह्मणो वेदमाढ्यं करोति,ब्राह्मण आपद उद्धरति तस्माद्ब्राह्मणोऽनाद्यः४५

राजा धर्मानुसार प्रजाकी रक्षा करके उनके लाभमें छठा भाग करलेवे; किन्तु ब्राह्मणसे कुछ नहीं ले ॥ ४३-४४ ॥ ब्राह्मण जो यज्ञादि इष्टकर्म और जलाशय बनाना आदि पूर्त्तकर्म करताहै उसमें छठा भाग पुण्य-फल राजाको मिलताहै; ब्राह्मण वेद पढाताहै तथा आपत्से बचाताहै इसलिये राजा ब्राह्मणसे "राजकर" नहीं लेवे ॥ ४५ ॥

१९ अध्याय।

निरुदकस्तरोमोष्योऽकरः श्रोत्रियो राजपुमाननाथप्रव्रजितबालवृद्धतरुणप्रदातारः प्रागगामिकाः कुमार्यो मृतपत्न्यश्च ॥ १५ ॥ बाहुभ्यामुत्तरञ्छतगुणं दद्यात् ॥ १६ ॥ नदीकक्षवनदाहशैलोपभोगा निष्कराः स्युस्तदुपजीविनो वा दद्युः ॥ १७ ॥

राजाको चाहिये कि जलहीन खेत, वर्षासे डूबनेवाले खेत और जिसका अन्न चोर लेजातेहैं; ऐसे खेतोंका कर नहीं लेवे। श्रोत्रिय, राजवंशके लोग, अनाथ, संन्यासी, बालक, वृद्ध,ब्रह्मचारी, दाता, विधवा स्त्री और कुमारीकन्यासे राजकर नहीं लेवे ॥ १५ ॥ नदीमें भुजाओंसे पौरकर पार उतरनेवालेसे सौगुना महसूल लेवे ॥ १६ ॥ नदीके तीरके जलनेवाले वनके और पर्वतके ऊपरके खेतोंका राजकर नहीं ले अथवा उनसे जीविका करनेवालोंसे यथोचित कर लेवे ॥ १७ ॥

युद्ध ५.

(१) मनुस्मृति-७ अध्याय।

समोत्तमाधमै राजा त्वाहूतः पालयन्प्रजाः । न निवर्तेत संग्रामात्क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥८७॥
संग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां चैव पालनम् । शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम् ॥ ८८ ॥
आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः । युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ८९

प्रजापालक राजाका धर्म है कि समान बल, अधिक बल अथवा हीनबलवाला शत्रु यदि युद्धके लिये ललकारे तो "युद्धकरना ही क्षत्रियोंका धर्म है" ऐसा स्मरण करके कदापि युद्धसे मुख नहीं मोड़े ॥ ८७ ॥ युद्धसे नहीं हटना, प्रजाओंका पालन करना और ब्राह्मणोंका आदर करना; ये सब राजाओंके लिये महान् कल्याणकारी कर्म हैं ॥ ८८ ॥ जो राजा संग्राममें एक दूसरेके वधकी इच्छा करते हुए महा पराक्रमसे युक्त होकर पीछेको नहीं हटते हैं वे निर्विघ्नतासे स्वर्गमें चले जाते हैं ॥ ▩ ॥ ८९ ॥

न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानो रणे रिपून् । न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः ॥ ९० ॥
न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम् । न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम् ॥९१॥
न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम् । नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥ ९२ ॥

वीर लोगोंको उचित है कि जो देखनेमें शस्त्र नहीं जानपड़े ऐसे कूट आयुधसे, कांटेके आकारका फलक लगाहुआ बाणसे, विषैले बाणसे अथवा अग्निसे तपायेहुए बाणसे संग्राममें शत्रुको नहीं मारे ॥ ९० ॥ रथहीन होजानेवाले, नपुंसक, हाथ जोड़ेहुए, खुलेकेश भागतेहुए, युद्ध छोड़कर बैठेहुए अथवा शरणमें आयेहुए शत्रुका वध नहीं करे ॥ ९१ ॥ सोतेहुए; कवचसे हीन, नग्न, आयुधसे रहित, युद्धसे विमुख, युद्ध देखनेवाले अथवा दूसरेसे युद्ध करतेहुए मनुष्यको नहीं मारे ॥ ९२ ॥

❀ गौतमस्मृति-१० अध्याय-२ अङ्क। वैश्यसे सौदाका महसूल राजा २० वां भाग लेवे; सौदामें लाभ नहीं होवे तो कुछ नहीं ले। याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय-२६६ श्लोक। जो व्यापारी महसूल देनेके समय मालकी संख्याके विषयमें झूठ कहे, जो महसूल देनेकी जगहसे छिप करके जानेकी चेष्टा करे और जो क्रय विक्रयके विषयमें बहाना करे उनसे राजा महसूलका अठगुना दण्ड लेवे।

▩ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-३२४ श्लोक। जो राजा भूमिके लिये युद्ध करनेके समय विषैले आयुधोंसे युद्ध नहीं करताहै और संग्राममें सम्मुख लड़कर प्राण त्यागताहै वह योगियोंके समान स्वर्गमें निवास करता है।

नायुधव्यसनप्राप्तं नार्तं नातिपरीक्षितम् । न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ९३ ॥

जिसका हथियार टूटगया होय, जो पुत्र आदिके शोकसे व्याकुल हो, जो बहुत घायल होगया होवे अथवा जो युद्धसे डरकर भाग रहा हो; श्रेष्ठ धर्मका स्मरण करके इनका वध नहीं करे ॥ ९३ ॥

यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः । भर्तुर्यद्दुष्कृतं किञ्चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९४ ॥

यच्चास्य सुकृतं किञ्चिदमुत्रार्थमुपार्जितम् । भर्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु ॥ ९५ ॥

जो वीर लड़ाईसे डरकर संग्राममें भागनेके समय शत्रुके हाथसे मारा जाता है उसको अपने स्वामी राजाका सब पाप लग जाताहै ॥ ९४ ॥ जब योद्धा युद्धसे विमुख होकर मारा जाताहै तब उसके सम्पूर्ण सञ्चित पुण्यका फल उसके स्वामीको प्राप्त होताहै ▒ ॥ ९५ ॥

रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून् स्त्रियः । सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत् ॥९६ ॥

राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः । राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम् ॥ ९७ ॥

रथ; घोड़ा, हाथी, छत्ता, धन, धान्य, पशु, दासी, घृत आदि द्रव्य और ताम्बा आदि धातु युद्धको जीतके समय जो जिसको मिलताहै वह उसीका होता है ॥ ९६ ॥ योद्धाओंको उचित है कि राज-कार्यके उपयोगी (हाथी, घोड़ा, सोना, चांदी आदि) उत्तम वस्तुओंको राजाको अर्पण करें; राजाको चाहिये कि युद्धमें प्राप्त वस्तुओंको यथायोग्य योद्धाओंको बांट देवे ◎ ॥ ९७ ॥

एषोऽनुपस्कृतः प्रोक्तो योधधर्मः सनातनः । अस्माद्धर्मान्न च्यवेत क्षत्रियो घ्नन् रणे रिपून् ॥ ९८ ॥

यह योद्धाओंका सनातन उत्तम धर्म कहागया; युद्धमें शत्रुओंको मारनेवाला क्षत्रिय इस धर्मको नहीं छोड़े ॥ ९८ ॥

यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम् । परस्य विपरीतं च तदा यायाद्रिपुं प्रति ॥ १७१ ॥

राजा जब भलीभांति जान लेवे कि इस समय हमारी सेना हृष्टपुष्ट है, इसको किसी बातकी कमी नहीं है और शत्रुकी अवस्था इसके विपरीत है युद्धके लिये शत्रुपर चढ़ाई करे ॥ १७१ ॥

यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन च । तदासीत प्रयत्नेन शनकैः सान्त्वयन्नरीन् ॥ १७२ ॥

मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम् । तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्यमात्मनः ॥ १७३ ॥

यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत् । तदा तु संश्रयेत्क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ॥ १७४ ॥

निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्यो ऽरिबलस्य च । उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ॥ १७५ ॥

यदि तत्रापि सम्पश्येद्दोषं संश्रयकारितम् । सुयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत् ॥ १७६ ॥

जब देखे कि हमारे वाहन और सेना निर्बल है तब यत्नपूर्वक धीरे धीरे शत्रुको शान्त करे ॥ १७२ ॥ जब देखे कि शत्रु सब प्रकारसे बलवान् है तब उसको रोकनेके लिये एक सेनादल रखकर सेनाके दूसरे दलके साथ दुर्गम स्थानमें चलाजावे ॥ १७३ ॥ जब जान पड़े कि अब किसी प्रकारसे शत्रुके आक्रमणसे बचनेकी सम्भावना नहीं है तब शीघ्रही एक धार्मिक तथा बलवान् राजाका आश्रय लेवे ॥ १७४ ॥ यदि वह राजा युद्धकरके शत्रुको भगा देवे तो यत्नपूर्वक गुरूके समान उसकी सेवा करे ॥ १७५ ॥ यदि उस राजामें भी दोष देखे तो निःशंक होकर युद्ध ही करे ✿ ॥ १७६ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-३२६ श्लोक । शरणागत, नपुंसक, शस्त्रहीन, अन्यके साथ लड़ते हुए, संग्रामसे भागते हुए और युद्ध देखनेवालेको संग्राममें नहीं मारना चाहिये । गौतमस्मृति-१० अध्याय-२ अङ्क । संग्राममें हिंसाका दोष नहीं लगताहै; किन्तु घोड़े, सारथी अथवा आयुधसे हीन योद्धा; हाथ जोड़े हुए, केश खुले हुए, मुख फेरकर बैठेहुए या वृक्षपर चढ़ेहुए वीर; दूत अथवा अपनेको ब्राह्मण कहनेवालेको संग्राममें भी मारनेपर दोष लगताहै ।

▒याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-३२५ श्लोक । जो वीर अपनी सेनाके निर्बल होनेपर शत्रुकी सेनाकी ओर बढ़ताहै उसको पदपदमें अश्वमेध यज्ञका फल मिलताहै और जो वीर भागता है उसके सब पुण्यका फल राजाको प्राप्त होता है ।

◎ गौतमस्मृति-१० अध्याय-२ अङ्क । राजाको चाहिये कि विजयके समयमें संग्राममें मिली हुई वस्तुओंमेंसे धन और वाहन अपने लेवे और बाकी सामानोंको विजय करनेवाले सैनिकोंको यथा योग्य बांट देवे ।

✿ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय । राजाको उचित है कि मेल, बिगाड़, चढ़ाई, आसन, (बैठरहना), बलवान् राजाका आश्रय और सेनाका विभाग समयके अनुसार करे ॥ ३४७ ॥ जब दूसरेका राज्य अन्न, जल आदिसे सम्पन्न होय, शत्रु हीनदशामें होवे और अपनी सेना और वाहन हृष्टपुष्ट होंय तब चढ़ाई करे ॥ ३४८ ॥ भाग्य और पुरुषार्थ, इन दोनोंसे कार्य सिद्ध होताहै; पूर्वजन्मके पुरुषार्थको भाग्य कहते हैं ॥ ३४९ ॥ कोई भाग्यसे, कोई स्वभावसे, कोई कालसे और कोई पुरुषार्थसे फलकी सिद्धि कहते हैं; किन्तु बुद्धिमान् लोगोंका मत है कि सबके अनुकूल होनेपर कार्य सिद्ध होताहै ॥ ३५० ॥ जैसे एक चक्रसे रथ नहीं चलता इसीभांति विना पुरुषार्थ भाग्य सिद्ध नहीं होता ॥ ३५१ ॥

मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद्यात्रां महीपतिः। फाल्गुनं वाथ चैत्रं वा मासौ प्रति यथाबलम्॥ १८२॥
अन्येष्वपि तु कालेषु यदा पश्येद् ध्रुवं जयम्। तदा यायाद्विगृह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः॥ १८३॥
कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि। उपगृह्यास्पदं चैव चारान्सम्यग्विधाय च॥ १८४॥
दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा। वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा॥ १८७॥
यतश्च भयमाशङ्केत्ततो विस्तारयेद् बलम्। पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम्॥ १८८॥
सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत्। यतश्च भयमाशङ्केत्प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम्॥ १८९॥

शुभ अगहन, फागुन अथवा चैत मासमें युद्धके लिये राजा शत्रुपर चढ़ाई करे; अन्य मासमें भी जब देखे कि इस समय आक्रमण करनेसे विजयकी पूरी आशा है अथवा इस समय शत्रु निर्बल है तब बहुत सेनाओंके सहित उसपर चढ़ाई करदेवे॥ १८२–१८३॥ राज्य, किले आदिकी रक्षाका प्रबन्ध और यात्रासम्बन्धी वस्तुओंका संग्रह करके तथा दूतोंको आगे भेजकर यात्रा करे॥ १८४॥ दण्डव्यूह, शकटव्यूह, वराहव्यूह, मकरव्यूह, सूचीव्यूह अथवा गरुड़व्यूह बनाकर मार्गमें चले *॥ १८७॥ जिस ओरसे शत्रुकी शंका होवे उसी ओर अपनी सेनाको फैलावे; पद्मव्यूह, (कमलाकारव्यूह) के मध्यमें आप सदा स्थित रहे॥ १८८॥ सेनापति और प्रधान सेनाध्यक्षको सब स्थानोंके प्रबन्धके लिये नियुक्त करे; जिस ओरसे शत्रुके आक्रमणकी शंका होवे उसी ओर सेनाको बढ़ावे॥ १८९॥

गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान्कृतसंज्ञान्समन्ततः। स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः॥ १९०॥
संहतान्योधयेदल्पान्कामं विस्तारयेद्बहून्। सूच्या वज्रेण चैवैतान्व्यूहेन व्यूह्य योधयेत्॥ १९१॥
स्यन्दनाश्वैः समे युद्धेदनूपे नौद्विपैस्तथा। वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले॥ १९२॥
कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालाञ्शूरसेनजान्। दीर्घांल्लघूंश्चैव नरानग्रानीकेषु योजयेत्॥ १९३॥
भिन्द्याच्चैव तडागानि प्राकारपरिखास्तथा। समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा॥ १९६॥
उपजप्यानुपजपेद् बुद्ध्येतैव च तत्कृतम्। युक्ते च दैवे युद्ध्येत जयप्रेप्सुरपेतभीः॥ १९७॥
साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृथक्। विजेतुं प्रयतेतारीन्न युद्धेन कदाचन॥ १९९॥
त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानामसम्भवे। तथा युद्ध्येत संपन्नो विजयेत रिपून्यथा॥ २००॥

अवस्थान और युद्धमें चतुर संग्रामसे नहीं हटनेवाली निष्कपट, इशारेसे बात समझनेवाली और विश्वसनीय सेनाके दलोंको युद्धक्षेत्रके चारों ओर रक्खे॥ १९०॥ थोडे योद्धाओंको इकट्ठे करके और बहुत योद्धाओंको फैलाकरके सूचीव्यूह अथवा वज्रव्यूह बनाकर लड़ावे॥ १९१॥ समतल भूमिपर रथी और घुड़सवार सेनासे, जलयुक्तस्थानमें नाव और हाथियोंसे; वृक्ष, और ऊख, सरपता आदि गुल्मोंसे पूर्ण स्थानमें धनुष बाणसे और साफभूमिपर ढाल तलवार द्वारा शत्रुसे लडे॥ १९२॥ कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश (जयपुर), पांचालदेश (कान्यकुब्ज) और शूरसेन देश (व्रजभूमि) में उत्पन्न लम्बे और नन्हे शरीरवाले वीरोंको सबसे आगे रक्खे॥ १९३॥ शत्रुके राज्यके तालावोंका नाश करे किले और प्राकारको तोडदेवे; नहरोंको मिट्टीसे भरदेवे तथा रातमें बाजा बजाकर शत्रुको भयभीत करे॥ १९६॥ राज्य चाहनेवाले शत्रुवंशके मनुष्योंको तथा लोभी–राजकर्मचारियोंको फोड़कर और शत्रुकी सब चेष्टाको जानकर शुभ समयमें जयकी इच्छासे निर्भय होकर युद्ध करे॥ १९७॥ पहिले साम, दान और भेद इन तीनोंमेंसे एक उपायका प्रयोग कर अथवा एकही समयमें तीनोंका प्रयोग करके शत्रुको जीतनेका यत्न करे; पहिले ही युद्धकी चेष्टा कभी नहीं करे॥ १९८॥ जब तीनों उपायोंसे विजयकी सम्भावना नहीं देख पड़े तब प्राणपणसे युद्ध करके शत्रुको जीत लेवे॥ २००॥

जित्वा संपूजयेद्देवान्ब्राह्मणांश्चैव धार्मिकान्। प्रदद्यात्परिहारांश्च ख्यापयेदभयानि च॥ २०१॥

राजाको उचित है कि जीतेहुए देशके देवता और धार्मिक ब्राह्मणोंकी पूजा तथा सम्मान करके प्रजाओंको अभयदान देवे॥ २०१॥

सर्वेषां तु विदित्वैषां समासेन चिकीर्षितम्। स्थापयेत्तत्र तद्वंश्यं कुर्याच्च समयक्रियाम्॥ २०२॥
प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्मान् यथोदितान्। रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह॥ २०३॥
सह वापि व्रजेद्युक्तः सन्धिं कृत्वा प्रयत्नतः। मित्रं हिरण्यं भूमिं वा संपश्यंस्त्रिविधं फलम्॥ २०६॥

---

* दण्डके आकारके व्यूहको दण्डव्यूह और गाडीके आकारके व्यूह (सेना स्थापन)को शकटव्यूह कहते हैं; इसीभांति वराहव्यूह आदि जानिये।

पराजित राजपुरुषोंके अभिप्रायको संक्षेपसे जानकर उस शत्रुके वंशमें उत्पन्न एक पुरुषको उस राज्य-पर स्थापित करे और उसको योग्य कार्य करनेका उपदेश देवे ॥ २०२ ॥ उस देशके निवासियोंके धर्म-सङ्गत प्राचीन धर्मोंको प्रचलित रक्खे और उस देशके मन्त्री आदि प्रधान पुरुषोंको द्रव्य देकर प्रसन्न करे ॥ २०३ ॥ यदि युद्धके विजयसे पहिले शत्रुराजाका मित्र बनजाय वा सोना आदि द्रव्य अथवा कुछ भूमि देवे तो उससे सन्धि करके वह निज राज्यको लौट जावे; क्योंकि शत्रुपर चढाई करनेके यही ३ फल हैं ॥ २०६ ॥

(१२) पाराशरस्मृति—३ अध्याय।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ। परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥ ३२ ॥
यत्रयत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः। अक्षयाँल्लभते लोकान् यदि क्लीबं न भाषते ॥ ३३ ॥
यस्तु भग्नेषु सैन्येषु विद्रवत्सु समन्ततः। परित्राता यदागच्छेत्स च क्रतुफलं लभेत् ॥ ३५ ॥
देवाङ्गनासहस्राणि शूरमायोधने हतम्। त्वरमाणाः प्रधावन्ति मम भर्ता ममेति च ॥ ३७ ॥
यं यज्ञसङ्घैस्तपसा च विप्राः स्वर्गैषिणो यत्र यथैव यान्ति।
क्षणेन यान्त्येव हि तत्र वीराः प्राणान्सुयुद्धेन परित्यजन्ति ॥ ३८ ॥

जगत्में दो पुरुष सूर्यमण्डलको भेदकर ऊपर जाते हैं योगयुक्तसंन्यासी और संग्राममें सम्मुख मरने-वाला मनुष्य, ॥ ३२ ॥ जो योद्धा कातर वचन नहीं कहते वे, संग्रामके किसी स्थानमें मारे जावें, अक्षयलोक प्राप्त करते हैं ※ ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य भगतीहुई सेनाके सैनिकोंकी रक्षाके लिये जाते हैं वे यज्ञकरनेका फल पाते हैं ॥ ३५ ॥ हजारों देवकन्या अपने पति बनानेके लिये संग्राममें मरेहुए वीरोंके सम्मुख शीघ्रतासे दौडती हैं ॥ ३७ ॥ बहुत यज्ञ और तप करके जिस लोकको ब्राह्मणलोग पाते हैं, संग्राममें प्राण त्याग करनेसे वीरलोग क्षणमात्रमें उस लोकमें चलेजाते हैं ॥ ३८ ॥

जितेन लभ्यते लक्ष्मीर्मृतेनापि वराङ्गनाः। क्षणध्वंसिनि कायेऽस्मिन् का चिन्ता मरणे रणे ॥ ३९ ॥

संग्राममें विजय होनेसे लक्ष्मी मिलती है और मरनेसे अप्सरा प्राप्त होती है तो क्षणमात्रमें नाश होनेवाले शरीरके रणमें मरनेकी क्या चिन्ता है ॥ ३९ ॥

व्यवहार और राजदण्ड प्रकरण ७.

ऋणदान बन्धक आदि १

(१) मनुस्मृति—८ अध्याय।

व्यवहारान्दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः। मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम् ॥ १ ॥
तत्रासीनः स्थितो वापि पाणिमुद्यम्य दक्षिणम्। विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥२॥

राजाको व्यवहार देखनेकी इच्छा होवे तो ब्राह्मणों और मन्त्रके जाननेवाले मंत्रियोंके सहित विनीत भावसे सभामें प्रवेश करे ॥ १ ॥ वहां बैठकर अथवा खड़ा रहकर दाहिना हाथ उठा करके अनुद्धत वेष-भूषणोंसे युक्त हो वादी प्रतिवादीके कार्योंको देखे ॥ २ ॥

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः। अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक्पृथक् ॥ ३ ॥

१८ प्रकारके व्यावहारिक मार्गोंमें कहे हुए ऋणादानादिकार्योंका देशप्राप्त तथा शास्त्रप्राप्त साक्षिशपथादि हेतु द्वारा प्रतिदिन पृथक् पृथक् विचार करे ▩ ॥ ३ ॥

तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः। संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च ॥ ४ ॥
वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः। क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ॥ ५ ॥
सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके। स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥ ६ ॥
स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च। पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥ ७ ॥

※ बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—६ अध्यायके २९–३० श्लोकमें भी ऐसा है।

▩ याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्यायके १–२ श्लोक। राजाका धर्म है कि क्रोध और लोभसे रहित होकर विद्वान् ब्राह्मणोंके सहित धर्मशास्त्रोंके अनुसार व्यवहारोंको देखे अर्थात् मुकदमोंका विचार करे और शास्त्रादिको सुनेहुए तथा पढ़ेहुए धर्मज्ञ, सत्यवादी तथा शत्रु और मित्रको समान दृष्टिसे देखनेवालेको सभासद् बनावे।

इन १८ में १ ऋणादान (उधारलेना), २ निक्षेप (धरोहर रखना), ३ अस्वामिविक्रय (दूसरेकी वस्तु चोरीसे बेंचदेना), ४ संभूय समुत्थान (इकट्ठे होकर वाणिज्यआदि करना), ५ दत्तस्यानपकर्म (दी हुई वस्तुका लेलेना), ६ वेतनादान (काम करनेवालेकी मजूरी न देना), ७ संविद्व्यतिक्रम (प्रतिज्ञा और मर्यादाका उल्लंघन करना), ८ क्रयविक्रयानुशय (वस्तुको मोल लेकर अथवा बेंचकर स्वीकार नहीं करना), ९ स्वामी और पशुपालका झगड़ा, १० सीमाका झगड़ा, ११ कठोर वचन कहना, १२ प्रहार करना, १३ चोरी, १४ डकैती आदि साहस, १५ स्त्रीसंग्रहण, १६ स्त्रीपुरुषके धर्मकी व्यवस्था, १७ दाय-भाग और १८ जूआ तथा समाह्वय हैं; ये १८ व्यवहारके स्थान हैं ※ ॥ ४-७ ॥

एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम् । धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥ ८ ॥

इन स्थानोंमें मनुष्योंके बीच प्रायः विवाद हुआकरता है; राजाको चाहिये कि अनादिकालसे चले-आतेहुए धर्मके सहारे इन कार्योंका निर्णय करे ॥ ८ ॥

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम् । तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने ॥ ९ ॥
सोऽस्य कार्याणि संपश्येत्सभ्यैरेव त्रिभिर्वृतः । सभामेव प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थित एव वा ॥ १० ॥
यस्मिन्देशे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः । राज्ञश्चाधिकृतो विद्वान् ब्रह्मणस्तां सभां विदुः ॥ ११ ॥

जब राजा किसी कारणसे इन कार्योंको स्वयं नहीं देखसके तब इनके देखनेके लिये विद्वान् ब्राह्मणको नियुक्त करे॥९॥वह ब्राह्मण ३ सभ्योंके सहित सभामें जाकर बैठके अथवा खड़े रहकर सभाके कामोंको पूरा करे॥१०॥ जिस सभामें राजप्रतिनिधिके सहित ३ वेदविद् ब्राह्मण सभ्य रहते हैं उसको ब्रह्मसभा कहते हैं ✠ ॥ ११ ॥

※ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय-५ श्लोक । जब मनुष्य धर्मशास्त्र और सदाचारके विरुद्ध कामोंसे अन्य द्वारा पीड़ित होकर राजाके पास नालिश करता है तब वह व्यवहारपद कहलाता है । नारदस्मृति-१ विवादपद १ अध्याय । व्यवहारके ४ पाद, ४ स्थान और ४ साधन हैं; वह ४ का हितकारक है, ४ में रहनेवाला है और ४ कर्म करनेवाला है ॥ ९ ॥ उसके ८ अङ्ग, १८ पद, १०० शाखा, ३ योनि, २ अभियोग, २ द्वार और २ गति हैं ॥ १० ॥

धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजशासन; ये ४ पाद हैं; इनमें क्रमसे पहिलेके बाधक पिछले हैं ॥ ११ ॥ सभ्यमें धर्म, साक्षीमें व्यवहार, लेखपत्रमें चरित्र और राजाकी आज्ञामें शासन स्थित है ॥ १२ ॥ साम, दान, दण्ड और विभेद; इन चार उपायोंसे कियेहुए साधनको ४ साधन कहते हैं; चारों आश्रमोंकी रक्षा करता है इसलिये वह ४ का हितकारक कहलाता है ॥ १३ ॥ वह अभियोग करनेवाले, साक्षी सभाके सभ्य और राजा; इन ४ में एकएक पाद रहता है, इससे उसको चतुर्व्यापि अर्थात् ४ में रहनेवाला कहतेहैं ॥ १४ ॥ वह धर्म, अर्थ, यश और लोकमें प्रीति करनेवाला है, इसलिये वह चतुष्कारी कहाजाता है ॥१५॥ राजपुरुष, सभ्य, शास्त्र, गणक (रुपये गननेवाला), लेखक, सोना, अग्नि और जल (ये तीन शपथके लिये हैं) ये ८ व्यवहारके अङ्ग हैं ॥ १६ ॥

(१) ऋण लेना, (२) धरोहर, (३) अनेक मनुष्य मिलकर वाणिज्य आदि करना, (४) दीहुई वस्तुका लेलेना, (५) अशुश्रूषाभ्युपेत्य (सेवा आदिको स्वीकार करके नहीं करना), (६) काम करनेवालेको मजूरी नहीं देना, (७) दूसरेकी वस्तु चोरीसे बेंचना, (८) विक्रेयासम्प्रदान (बेंच करके नहीं देना), (९) क्रीत्वानुशय (वस्तु खरीद करके नहीं लेना), (१०) समयस्यानपाकर्म (समयका निश्चय करके झूठा होजाना), (११) खेतका विवाद, (१२) स्त्रीपुरुषका सम्बन्ध, (१३) दायभाग (धनविभाग), (१४) साहस, (१५) वाक्पारुष्य (कठोर वचन कहना), (१६) दण्डपारुष्य (प्रहार करना), (१७) जूआ और (१८) प्रकीर्णक; यही व्यवहारके १८ पद कहेजातेहैं ॥ १७-२० ॥

इन १८ पदोंके १०८ प्रभेद कहे गये हैं; मनुष्योंके क्रियाके भेदसे इनकी १०० शाखा होती हैं ॥ २१ ॥ काम, क्रोध और लोभ; इन ३ से मनुष्य इनमें प्रवृत्त होते हैं; इसी कारणसे व्यवहारको त्रियोनि कहते हैं यही तीन विवाद कराते हैं ॥ २२ ॥ शङ्का और तत्त्वाभिदर्शन, ये दो अभियोग हैं; सदा असत्के सङ्गसे शंका होती है और चिह्नको छिपानेसे (कामको इनकार करनेसे) तत्त्वाभिदर्शन (लिखा पढ़ी आदि देखाना) होता है ॥ २३ ॥ २ के सम्बन्धसे वह दो द्वारवाला कहाता है; इनमें प्रथम वादी और दूसरा प्रतिवादी कहाजाता है ॥ २४ ॥ भूत और छल, इन २ के अनुसार होनेसे व्यवहार २ गतिवाला कहलाता है; तत्त्वार्थ (लेख) संयुक्त व्यवहारको भूत और प्रमादयुक्त व्यवहारको छल कहते हैं ॥ २६ ॥

✠ याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्याय । यदि राजा किसी कार्यके वश होकर अभियोगोंको स्वयं नहीं देखसके तो अपने स्थानपर सभासदोंके सहित सब धर्मोंको जाननेवाले ब्राह्मणको नियत करदेवे ॥ ३ ॥ यदि सभासद लोग प्रीति, लोभ अथवा भयसे धर्मशास्त्रके विरुद्ध सभाका कार्य करें तो राजा प्रत्येक सभासदपर विवादसे दूना अर्थदण्ड करे ॥ ४ ॥ नारदस्मृति-१ विवादपद २ अध्याय । बुद्धिमान् राजाको उचित है कि सब प्रकारके मुकदमोंमें बहुश्रुत (ब्राह्मण) को नियुक्त करे; किन्तु बहुश्रुत होनेपर भी एकका विश्वास नहीं करे ॥ ३ ॥ वेद और धर्मशास्त्रोंको जाननेवाले १० अथवा वेदपारग ३ (ब्राह्मण) को विवादके कार्योंमें धर्माधर्मके विचारके लिये सभ्य बनावे ॥४॥ ऐसे सभासदोंका कहाहुआ धर्म माननीय है; किन्तु राजा धर्मका मूल है, इसलिये उसको उचित है कि सभासदोंके विचारोंका शोधन करे ॥ ९ ॥

धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते। शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥ १२ ॥

जिस सभामें सभासद लोग सद्विचारके सहारेसे अधर्मरूपी कांटेसे बिन्धेहुए धर्मका उद्धार नहीं करते हैं वहां वे लोग उसी अधर्मरूपी कांटेसे विन्धजाते हैं ॥ १२ ॥

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समंजसम्। अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी ॥ १३ ॥
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च। हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ १४ ॥
पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छति। पादः सभासदः सर्वान्पादो राजानमृच्छति ॥ १८ ॥
जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्याद्ब्राह्मणब्रुवः। धर्मप्रवक्ता नृपतेर्न तु शूद्रः कथंचन ॥ २० ॥
यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम्। तस्य सीदति तद्राष्ट्रं पङ्के गौरिव पश्यतः ॥ २१ ॥

सभामें नहीं जावे; किन्तु जावे तो सत्य वचन बोले; क्योंकि वहां चुप रहने अथवा झूठ बोलनेसे मनुष्य पापी होताहै * ॥ १३ ॥ जिस सभामें अधर्मसे धर्मका और असत्यसे सत्यका नाश होताहै उसके सम्पूर्ण सभासद नष्ट हो जातेहैं ** ॥ १४ ॥ सत्य निर्णय नहीं होनेसे पापका एक पाद मिथ्या अभियोग करनेवालेको, एक पाद झूठा साक्षीको, एक पाद सभासदोंको और एक पाद राजाको प्राप्त होताहै *** ॥१८॥ योग्य ब्राह्मण मिलनेपर जातिमात्रोपजीवी और कर्मानुष्ठानसे रहित ब्राह्मणको राजा धर्मप्रवक्ता बनासकता है; किन्तु शूद्रको कभी नहीं; क्योंकि जिस राजाकी सभामें शूद्र धर्मका निर्णय करताहै उसका राज्य पङ्कमें फँसीहुई गौकी भांति पीड़ित होताहै ॥ २०-२१ ॥

धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः। प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनमारभेत् ॥ २३ ॥
अर्थानर्थावुभौ बुद्ध्वा धर्माधर्मौ च केवलौ। वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥२४॥

राजा अपने शरीरको वस्त्रादिसे आच्छादित कर धर्मासनपर बैठे और एकाग्रचित्त होकर लोकपालोंको नमस्कार करके विचार आदि आरम्भ करे ॥ २३ ॥ अर्थ और अनर्थको जानकर धर्मकी ओर दृष्टि रक्खे और ब्राह्मण आदि वर्णक्रमसे वादी प्रतिवादीके कार्योंको देखे ॥ २४ ॥

बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैर्भावमन्तर्गतं नृणाम्। स्वरवर्णेङ्गिताकारैश्चक्षुषा चेष्टितेन च ॥ २५ ॥
आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च। नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ २६ ॥

वह बाहरके चिह्नोंसे लोगोंके मनका भाव जाने, लोगोंके स्वर, वर्ण, इङ्गित (नीचे चितवना), आकार, नेत्र और चेष्टाकी ओर ध्यान रक्खे ॥ २५ ॥ आकार, इङ्गित, गति, चेष्टा, वार्त्तालाप और नेत्र तथा मुखके विकारसे लोगोंके आन्तरिक भाव जाने जाते हैं ॥ २६ ॥

यथा नयत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः पदम्। नयेत्तथानुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् ॥ ४४ ॥
सत्यमर्थं च संपश्येदात्मानमथ साक्षिणः। देशं रूपं च कालं च व्यवहारविधौ स्थितः ॥ ४५ ॥
सद्भिराचरितं यत्स्याद्धार्मिकैश्च द्विजातिभिः। तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत् ॥ ४६ ॥
अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थमुत्तमर्णेन चोदितः। दापयेद्धनिकस्यार्थमधमर्णाद्विभावितम् ॥ ४७ ॥
यैर्यैरुपायैरर्थं स्वं प्राप्नुयादुत्तमर्णिकः। तैस्तैरुपायैः संगृह्य दापयेदधमर्णिकम् ॥ ४८ ॥
धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च। प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन बलेन च ॥ ४९ ॥
यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णोऽधमर्णिकात्। न स राज्ञाभियोक्तव्यः स्वकं संसाधयन्धनम् ॥ ५० ॥

राजाको चाहिये कि जैसे व्याधके बाणोंसे विद्ध मृगके भागनेका मार्ग रुधिरके गिरनेसे मालूम होता है वैसे ही अनुमान प्रमाणसे यथार्थ विषयोंका निश्चय करे ॥ ४४ ॥ व्यवहारविधिमें दृढ़ होकर सत्य, अर्थ निज, साक्षी, देश, रूप और कालको देखे ॥ ४५ ॥ विद्वान् और धार्मिक द्विजोंने जैसे आचरण किये हैं और जो देश, कुल तथा जातिधर्मसे विरुद्ध नहीं हैं उन्हींके अनुसार अभियोगोंका निर्णय करे ॥ ४६ ॥

---

* नारदस्मृति-१ विवाद पद-२ अध्यायके १६-१७ श्लोकमें ऐसा ही है।

** वसिष्ठस्मृति-१६ अध्याय। राजाका मन्त्री सभाके कार्योंको करे ॥ २ ॥ विवाद-करनेवाले वादी और प्रतिवादी; इन दोनोंमेंसे किसीका पक्ष नहीं करे ॥ ३ ॥ धनादिके लोभसे किसीका पक्ष करना अपराध है ॥ ४ ॥ मनुस्मृति-९ अध्याय। विचारक आदि राजकर्मचारी यदि लोभसे वादी अथवा प्रतिवादीके कामोंको बिगाड़ें तो राजा उनका सर्वस्व हरण करलेवे ॥ २३१ ॥ मन्त्री अथवा विचारकर्त्ता यदि मुकद्दमेंका ठीक विचार नहीं करें तो राजा फिरसे स्वयं उसका विचार करे और झूठ विचार करनेवालेसे १ हजार पण दण्ड लेवे ॥ २३४ ॥

*** बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-१० अध्यायके ३० श्लोकमें और नारदस्मृति-१ विवादपद-२ अध्यायके १९ श्लोकमें १८ श्लोकके समान है।

यदि ऋण देनेवाला धनी अपना धन पानेके लिये राजाके पास निवेदन करे तो लेख आदिसे प्रमाणित होनेपर राजा ऋणीसे उसका रुपया दिलादेवे ॥ ४७ ॥ ऋण प्रमाणित होजानेपर धनी जिस जिस उपायसे ऋणीसे अपना धन पासके उस उस उपायको स्वीकार करके ऋणीसे उसका धन दिलावे ॥ ४८ ॥ समझा बुझाकर, व्यवहारसे, छलसे, ऋणीका घर आदि रोककर और पांचवां बलसे धनी ऋणीसे अपना रुपया लेवे; यदि धनी इस भांति स्वयं अपना पावना वसूल करे तो राजा उसको दोषी नहीं समझे * ॥ ४९-५० ॥

अर्थेऽपव्ययमानं तु करणेन विभावितम् । दापयेद्धनिकस्यार्थं दण्डलेशंच शक्तितः ॥ ५१ ॥
अपह्नवेऽधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य संसदि । अभियोक्तादिशेद्देश्यं करणं वान्यदुद्दिशेत् ॥ ५२ ॥

यदि ऋणी धनीका पावना स्वीकार नहीं करे और धनी अपना पावना साक्षी आदिसे प्रमाणित करदेवे तो राजा धनीका रुपया ऋणीसे दिलावे और झूठ बोलनेके कारण ऋणीकी शक्तिके अनुसार उसपर दण्ड करे ** ॥ ५१ ॥ जब ऋणी राजसभामें ऋणको अस्वीकार करे तब धनीको चाहिये कि साक्षी, लेख आदि प्रमाण सभामें लावे ॥ ५२ ॥

अदेश्यं यश्च:दिशति निर्दिश्यापह्नुते च यः । यश्चाधरोत्तरानर्थान्विगीतान्नावबुद्ध्यते ॥ ५३ ॥
अपदिश्यापदेश्यं च पुनर्यस्त्वपधावति । सम्यक् प्रणिहितं चार्थं पृष्टः सन्नाभिनन्दति ॥ ५४ ॥
असंभाष्ये साक्षिभिश्च देशे संभाषते मिथः । निरुच्यमानं प्रश्नं च नेच्छेद्यश्चापि निष्पतेत् ॥ ५५ ॥
ब्रूहीत्युक्तश्च न ब्रूयादुक्तं च न विभावयेत् । न च पूर्वापरं विद्यात्तस्मादर्थात्स हीयते ॥ ५६ ॥
साक्षिणः सन्ति मेत्युक्त्वा दिशेत्युक्तो दिशेन्न यः । धर्मस्थः कारणैरेतैर्हीनं तमपि निर्दिशेत् ॥५७ ॥
अभियोक्ता न चेद्ब्रूयाद्बध्यो दण्ड्यश्च धर्मतः । न चेत्त्रिपक्षात्प्रब्रूयाद्धर्मं प्रति पराजितः ॥ ५८ ॥

जो झूठा प्रमाण देता है, जो एकबार कहकर उसको अस्वीकार करजाता है, जिसकी बातें विरुद्ध पड़ती हैं, जो एक बातको दोबार दो तरहसे कहता है, जो स्वीकार कीहुई बातको विचारकरके पूछनेपर फिर स्वीकार नहीं करता है, जो अयोग्य निर्जन स्थानमें साक्षियोंके साथ बातें करता है, जो हाकिमके विधिपूर्वक प्रश्न करनेपर उसका उत्तर देना नहीं चाहता, जो विना प्रयोजन बातोंको कहताहुआ इधर उधर घूमा करता है, जो अविदित विषयको प्रमाणसे सिद्ध नहीं करसकता है और जो पूर्वापरका ज्ञान नहीं रखता है; ऐसे लोगोंकी हार होती है ॥ ५३-५६ ॥ जो पहिले साक्षियोंके नाम कहकर पीछे उनको नहीं लावे हाकिम उसको हरादेवे ॥ ५७ ॥ जब वादी नालिश करके पूछनेपर मुखसे कुछ नहीं कहता है वह धर्मानुसार शारीरिक दण्ड अथवा अर्थदण्ड पानेके योग्य होता है और जब वादी नालिश करके तीनपक्षके भीतर कुछ नहीं कहता है तो धर्मानुसार वह हार जाता है ॥ ५८ ॥

यो यावन्निह्नुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत् । तौ नृपणे ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणं दमम् ॥ ५९ ॥
पृष्टोऽपव्ययमानस्तु कृतावस्थो धनैषिणा । त्र्यवरैः साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥ ६० ॥
यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिणः । तादृशान्संप्रवक्ष्यामि यथा वाच्यमृतं च तैः ॥६१ ॥
गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्रविट्शूद्रयोनयः । अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हन्ति न ये केचिदनापदि ॥ ६२ ॥
आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः । सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत् ॥ ६३ ॥
नार्थसंबन्धिनो नाप्ता न सहाया न वैरिणः । न दृष्टदोषाः कर्त्तव्या न व्याध्यार्त्ता न दूषिताः ॥६४॥
न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुककुशीलवौ । न श्रोत्रियो न लिङ्गस्थो न संगेभ्यो विनिर्गतः ॥६५॥
नाध्यधीनो न वक्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत् । न वृद्धो न शिशुर्नैको नान्त्यो न विकलेन्द्रियः ॥६६॥
नार्त्तो न मत्तो नोन्मत्तो न क्षुत्तृष्णोपपीडितः । न श्रमार्त्तो न कामार्त्तो न क्रुद्धो नापि तस्करः ॥६७॥

---

* मनुस्मृति-८ अध्यायके-१७६ श्लोक । ऋण प्रमाणित होजानेपर धनी अपनी इच्छानुसार ऋणीसे अपना धन लेवे, यदि ऋणी राजाके पास धनीपर नालिश करे तो राजा धनीका धन ऋणीसे दिला देवे और उसका चौथाई ऋणीसे दण्ड लेवे । याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्यायके ४१ श्लोकमें भी ऐसा है । नारदस्मृति-१ विवादपद-१ अध्यायके ४५-४६ श्लोक । जब ऋणी समयपर महाजनका धन नहीं देवे और बुलानेपर नहीं आवे तब महाजनको चाहिये कि जबतक वह नहीं आवे तबतक अपने कर्मचारीद्वारा उसको घरमें रहनेसे, भोजन करनेसे, परदेश जानेसे और खेती आदि काम करनेसे रोकवा देवे; ऋणी उसका उल्लङ्घन नहीं करे ।

** मनुस्मृति-८ अध्याय-१३९ श्लोक । मनुकी आज्ञा है कि यदि ऋणी राजाकी सभामें धनीका पावना स्वीकार करे तो राजा एकसौ पणके मुकदमेमें ५ पण और यदि स्वीकार नहीं करे और ऋण प्रमाणित होजावे तो एकसौ पणके मुकदमेमें १० पण उससे दण्ड लेवे ।

प्रतिवादी वादीका जितना धन अस्वीकार करे और वादी जितने धनका झूठा दावा करे विचारक इन दोनों अधर्मियोंसे उसका दूना दण्ड लेवे ❀ ॥ ५९ ॥ जब ऋणी धनीके धनको स्वीकार नहीं करे तब धनी राजा और ब्राह्मणके निकट कमसे कम ३ साक्षियोंसे अपना पावना प्रमाणित करे ॥ ६० ॥ ऋणादान आदि व्यवहारमें जैसे लोगोंको साक्षी मानना चाहिये और जिस प्रकारसे उन लोगोंको सत्य २ बोलना चाहिये वह सब मैं कहताहूं ॥ ६१॥ गृहस्थ, पुत्रवाले, उसी देशके रहनेवाले, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र साक्षी बनानेके योग्य हैं; किन्तु यह नियम आपत्कालके लिये नहीं है ॥ ६२ ॥ सब वर्णोंमें यथार्थ कहनेवाले, सब धर्मोंको जाननेवाले और लोभरहित मनुष्यको साक्षी बनाना चाहिये; अन्यको नहीं ॥ ६३ ॥ ऋण आदि अर्थको सम्बन्धी, मित्र, सहायता करनेवाले, शत्रु, पहिलेके झूठे, रोगी और महापातक आदिसे दूषितको साक्षी नहीं मानना चाहिये ॥ ६४ ॥ राजा, चित्रकार आदि कारुक, नाचनेवाले आदि शीलरहित, श्रोत्रिय, ब्रह्मचारी और संन्यासीको साक्षी बनाना उचित नहीं है ॥ ६५ ॥ बहुत पराधीन-दास, लुटेरा, निषिद्ध कर्म करनेवाले, बूढ़ा, बालक, एक मनुष्य, अन्त्यज जाति और बहिरा, अन्धा आदि विकलेन्द्रिय मनुष्य साक्षीके अयोग्य हैं ॥ ६६ ॥ दुःखी, मतवाला, उन्मत्त (पागल), भूख प्याससे पीड़ित, थकाहुआ, कामातुर, क्रोधी और चोर साक्षीके योग्य नहीं हैं ॥ ६७ ॥

स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः । शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ६८
अनुभावी तु यः कश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम् । अन्तर्वेश्मन्यरण्ये वा शरीरस्यापि चात्यये॥६९॥
स्त्रियाप्यसंभवे कार्यं बालेन स्थविरेण वा । शिष्येण बन्धुना वापि दासेन भृतकेन वा ॥ ७० ॥
बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येषु वदतां मृषा । जानीयादस्थिरां वाचमुत्सिक्तमनसां तथा ॥ ७१ ॥
साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च । वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥ ७२ ॥

स्त्रियोंका साक्षी स्त्रियोंको, द्विजोंका, साक्षी समान जातिके द्विजोंको, शूद्रोंका साक्षी सज्जन-शूद्रोंको और अन्त्यज जातियोंका साक्षी अन्त्यज जातिओंको बनाना चाहिये ॥ ६८ ॥ घरके भीतरके या निर्जन वनके घटनामें और मारपीट तथा मनुष्यवधके अभियोगमें जो उसका जानकार होवे उसीको साक्षी मानना चाहिये ॥ ६९ ॥ योग्य साक्षी नहीं रहनेपर स्त्री, बालक, वृद्ध, शिष्य, बन्धु, दास और भृत्य भी साक्षी होते हैं ॥ ७० ॥ यह भी जानना चाहिये कि बालक,वृद्ध, आतुर और विकृत चित्तवालेकी वाणी स्थिर नहीं रहती है, वे लोग झूठ कहसकते हैं ॥ ७१ ॥ डकैती आदि सब प्रकारके साहस, चोरी, स्त्रीसंग्रहण, गाली आदि वाक्पारुष्य और मारपीट आदि दण्डपारुष्यके मुकद्दमोंमें साक्षियोंकी परीक्षा नहीं करना चाहिये, अर्थात् जो मनुष्य उसको जानता होवे उसीको साक्षी मानना चाहिये [ ] ॥ ७२ ॥

बहुत्वं परिगृह्णीयात्साक्षिद्वैधे नराधिपः । समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥ ७३ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति- २ अध्याय । राजाको उचित है कि वादीके दावाको प्रतिवादी स्वीकार नहीं करे तो दावा प्रमाणित होनेपर उससे वादीका पावना दिलाकर उतनाही दण्ड लेवे और यदि वादी झूठा प्रमाणित होवे तो उससे उसका दूना दण्ड ले ॥ ११ ॥ जब धनीका धन ऋणीसे दिलावे तो ऋणीसे सैकड़े १० रुपया और धनीसे सैकड़े ५ रुपया लेवे ॥ ४३ ॥

[ ] याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्याय । तपस्वी, दानशील, कुलीन, सत्यवादी, धर्मिष्ठ, कोमलहृदयवाले, पुत्रवान, धनी, वेद और धर्मशास्त्रके अनुसार चलनेवाले, अपनी जाति अथवा वर्णके कमसे कम ३ मनुष्योंको साक्षी बनाना चाहिये आवश्यक होनेपर सब वर्ण और सब जातिके मनुष्य सबको साक्षी होते हैं॥६९॥७०॥ स्त्री, बूढ़ा, बालक, जुवारी, मतवाला, पागल, दोषी, नाचनेवाला, पाखण्डी, झूठ लेख-लिखनेवाला, बहरा, गूँगा आदि विकलेन्द्रिय, पतित, मित्र, अर्थ सम्बन्धी सहायक, शत्रु, चोर, साहसी, पहिलेका झूठा और घरसे निकाला हुआ; इनको साक्षी नहीं बनाना चाहिये ॥ ७२-७३ ॥ वादी और प्रतिवादी दोनोंकी अनुमति होनेपर धर्मवान् मनुष्य १ भी साक्षी होता है; स्त्रीसंग्रहण, चोरी, दण्डपारुष्य, वाक्पारुष्य और साहसके मुकद्दमोंमें सब लोग साक्षी बन सकते हैं ॥ ७४ ॥ वसिष्ठस्मृति-१६ अध्याय । श्रोत्रिय, रूपवान्, शीलवान्, पुण्यात्मा और सत्यवादी, साक्षी होना चाहिये अथवा (चोरी आदिमें) सबका साक्षी सब वर्णके मनुष्यको बनाना चाहिये ॥ २३ ॥ स्त्रियोंके विवादमें स्त्रियोंको, द्विजोंके विवादमें तुल्य द्विजोंको, शूद्रोंके विवादमें श्रेष्ठ शूद्रोंको और अन्त्यज जातियोंके विवादमें अन्त्यजोंको साक्षी करना चाहिये ॥ २४ ॥ बौधायनस्मृति—१ प्रश्न-१० अध्याय । पुत्रवाले चारों वर्णोंके मनुष्यको साक्षी बनाना चाहिये; किन्तु श्रोत्रिय ब्राह्मण, राजा और सन्यासीको नहीं ॥ ३७ ॥

राजाको उचित है कि साक्षी लोग दो प्रकारकी बातें कहें तो जो बात बहुत साक्षी कहें उसका प्रमाण माने, दोनों बातोंमें साक्षियोंकी बराबर संख्या होनेपर गुणमें श्रेष्ठ साक्षियोंका वचन और गुणवालोंमें भी मतभेद होनेपर उत्तम द्विजका वचन स्वीकार करे ❀ ॥ ७३ ॥

समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिद्ध्यति । तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥ ७४॥
साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्यसंसदि । अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ॥ ७५ ॥
यत्रानिबद्धोऽपीक्षेत शृणुयाद्वापि किञ्चन । पृष्टस्तत्रापि तद् ब्रूयाद्यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ७६ ॥

आखोंसे देखनेवाले और कानोंसे सुननेवाले साक्षी बनते हैं; वे लोग सत्य वचन कहनेसे धर्म और अर्थसे हीन नहीं होते हैं ॥ ७४ ॥ जो साक्षी देखे वा सुनेहुए विषयमें राजसभामें झूठ कहताहै वह नीचे मुखकर नरकमें पड़ताहै; मरनेपर स्वर्गमें नहीं जाता ॥ ७५ ॥ वादी प्रतिवादीके नहीं साक्षी बनानेपर भी विवादके मर्मको जाननेवाला मनुष्य हाकिमके पूछनेपर जैसा जानता होवे वैसा कहदेवे ▩ ॥ ७६ ॥

एकोऽलुब्धस्तु साक्षी स्याद्बह्व्यः शुच्योऽपि न स्त्रियः।स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वाच्च दोषैश्चान्येऽपि ये वृताः॥७७

लोभ रहित एक पुरुष भी साक्षी होसकता है; किन्तु अनेक स्त्रियां पवित्र होनेपर भी नहीं, क्योंकि उनकी बुद्धि स्थिर नहीं है और दोषसे युक्त मनुष्य भी साक्षीयोग्य नहीं है ॥ ७७ ॥

स्वभावेनैव यद्ब्रूयुस्तद्ग्राह्यं व्यावहारिकम् । अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम् ॥ ७८ ॥

साक्षीके स्वाभाविक वचनको ही राजा स्वीकार करे; भय, लोभ आदि किसी कारणसे कहेहुए वचन माननेयोग्य नहीं है ॥ ७८ ॥

सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ । प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिना तेन सान्त्वयन् ७९॥
यद्द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिन् चेष्टितं मिथः । तद्ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता ॥ ८० ॥

हाकिमको चाहिये कि सभामें आयेहुए गवाहोंसे वादी और प्रतिवादीके सामने शान्तिसे कहे कि तुम लोग वादी और प्रतिवादीके विषयमें जो कुछ जानतेहो उसे सत्य सत्य कहो; तुम लोग इसमें साक्षी हो ॥ ७९-८० ॥

सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान् । इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता॥८१॥
साक्ष्येऽनृतं वदन्पाशैर्बद्ध्यते वारुणैर्भृशम् । विवशः शतमाजातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेदृतम् ॥ ८२ ॥
सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते । तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥ ८३ ॥
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः । मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम्८४
मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः । तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥ ८५ ॥
द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः । रात्रिः सन्ध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥ ८६ ॥

❀ नारदस्मृति—१ विवादपद–५ अध्यायके ९३ श्लोकमें प्रायः ऐसा है । याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्यायके ८० श्लोकमें भी ऐसा है; केवल उत्तम द्विजके स्थानमें गुणोत्तम लिखाहै और ८१–८२ ॥ श्लोकमें है कि जिसकी बातोंको साक्षी सत्य कहेंगे वह जीतेगा और जिसकी बातोंको झूठ कहेंगे वह अवश्य हार जावेगा । जब साक्षी लोग किसीकी बातको सत्य कहें और उनसे अधिक गुणी अथवा संख्यामें दुगुने साक्षी उस बातको झूठ कहें तो पहिलेवाले साक्षी झूठे समझे जांयगे ।

▩ नारदस्मृति—१ विवादपद–५ अध्याय । शास्त्रज्ञ विद्वानोंने ११ प्रकारके साक्षी कहे हैं; इनमें ५ बनायेहुए और ६ विना बनायेहुए साक्षी होतेहैं ॥ ३॥ लिखनेवाला, स्मरण रखनेवाला, इच्छापूर्वक साक्षी बननेवाला, छिप करके (व्यवहारके कार्यको) देखनेवाला और साक्षीका साक्षी अर्थात् जिससे परदेश जाने अथवा मरनेके समय पहिला साक्षी ऋणादिका वृत्तान्त कहगया होवे; ये ५ प्रकारके बनायेहुए साक्षी हैं ॥ ४ ॥ विद्वानोंने ६ प्रकारके विना बनायेहुए साक्षी कहे हैं, उनमें (पहिलेके) ३ साक्षी निर्दिष्ट कहे गये हैं ॥ ५ ॥ विना बनायेहुए साक्षियोंमें ग्रामनिवासी, हाकिम, राजा, व्यवहारीके कार्यका मध्यस्थ और धनीका दूत है ॥ ६ ॥ कुलके विवादमें रहनेवाला कुल्य साक्षी कहाताहै ॥ ७ ॥ लिखनेवाले साक्षीकी गवाही बहुत कालतक जायज है ॥ २४ ॥ स्मरण रखनेवाले साक्षीकी गवाही ८ वर्षतक, इच्छापूर्वक स्वयं आकर गवाही बननेवाले साक्षीकी गवाही ५ वर्षतक और छिपकर देखने सुननेवाले साक्षीकी गवाही ३ वर्षतक हो सकती है ॥ २५–२६ ॥ साक्षीके साक्षीकी गवाही १ वर्षतक जायज है अथवा योग्य साक्षीके लिये कालका नियम नहीं है ॥ २७ ॥ शास्त्रज्ञोंने स्मरण रखनेवालोंको साक्षी कहाहै, जिनकी बुद्धि, स्मरणशक्ति और कर्णशक्ति ठीक है वे दीर्घकालतक गवाही दे सकते हैं ॥ २८–२९ ॥

सत्य कहनेवाला साक्षी मरनेपर श्रेष्ठ लोकमें जाता है और इस लोकमें उत्तम कीर्ति प्राप्त करताहै; ब्रह्मा भी सत्यवाक्यकी पूजा करते हैं ॥ ८१ ॥ झूठ बोलनेवाला साक्षी वरुणपाशसे बंधाहुआ अवश होकर एकसौ जन्मतक क्लेश भोगता है, इस लिये साक्षीको सत्य बोलना चाहिये ॥ ८२ ॥ साक्षी सत्य बोलनेसे पापोंसे छूटजाता है और उसका धर्म बढता है, इसलिये सब वर्णोंके विषयमें उसको सत्य ही कहना चाहिये ॥ ८३ ॥ देहमें स्थित आत्माही अपने शुभाशुभ कर्मोंका साक्षी है इसलिये झूठ बोलकर ऐसे उत्तम साक्षीका अपमान मत करो ॥ ८४ ॥ पाप करनेवाले समझते हैं कि हमारे पापोंको कोई नहीं देखता है; परन्तु देवता लोग, अपना अन्तरात्मा पुरुष, आकाश, भूमि, जल, हृदय, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, यम, पवन, रात्रि, सन्ध्या और धर्म; ये सब देहधारियोंके शुभाशुभ कर्मोंको जानते हैं ॥ ८५–८६ ॥

देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं पृच्छेदृतं द्विजान्।उदङ्मुखान्प्राङ्मुखान्वा पूर्वाह्णे वै शुचिः शुचीन् ८७
ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेत्सत्यं ब्रूहीति पार्थिवम् । गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥ ८८ ॥
ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातिनः । मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते ते स्युर्ब्रुवतो मृषा ॥८९ ॥

विचारकको चाहिये कि पवित्र होकर पूर्वाह्णसमयमें देवता अथवा ब्राह्मणके समीप साक्षियोंसे पूछे; साक्षी लोग उस समय उत्तर या पूर्व ओर मुख किये रहें ॥ ८७ ॥ प्रश्न करनेसे पहिले ब्राह्मण साक्षीसे कहै कि कहो, क्षत्रिय साक्षीसे कहै कि सत्य कहो; वैश्यसे कहै कि गौ, बीज और सोनाकी शपथ करके बोलो अर्थात् कहो कि हम झूठ कहैं तो हमारी गौ आदिवस्तु नाश होजावें और शूद्रसे कहै कि सब पापोंकी शपथ करके बोलो अर्थात् कहो कि हम झूठ कहें तो सब पाप हमको लगजावे ॥ ८८ ॥ इसके बाद साक्षीसे कहै कि साक्षी देनेके समय झूठ बोलनेसे ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या, बालहत्या, मित्रद्रोही और कृतघ्नीके समान पाप लगताहै ॥ ८९ ॥

जन्मप्रभृति यत्किञ्चित्पुण्यं भद्र त्वया कृतम् । तत्ते सर्वं शुनो गच्छेद्यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा ॥ ९० ॥
एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे । नित्यं स्थितस्ते हृद्येष पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥९१॥
यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः । तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गां मा कुरून्गमः ॥ ९२ ॥
नग्नो मुण्डः कपालेन भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः । अन्धः शत्रुकुलं गच्छेद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥९३॥
अवाक्छिरास्तमस्यन्धे किल्बिषी नरकं व्रजेत् । यः प्रश्नं वितथं ब्रूयात्पृष्टः सन्धर्मनिश्चये ॥ ९४॥
अन्धो मत्स्यानिवाश्नाति स नरः कण्टकैः सह । यो भाषतेऽर्थवैकल्यमप्रत्यक्षं सभां गतः ॥ ९५ ॥
यस्य विद्वान्हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते । तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्य पुरुषं विदुः ॥९६ ॥

हे भद्र ! यदि तुम इस विषयमें झूठ कहोगे तो तुम्हारा जन्मभरका सब पुण्य कुत्तोंको प्राप्त होगा ॥ ९० ॥ हे कल्याणकारी ! तुम अपनेको अकेले मत समझो, पापपुण्यका देखनेवाला परमात्मा सदा तुम्हारे हृदयमें रहता है ॥ ९१ ॥ सूर्यके पुत्र यमदेवके साथ, जो तुम्हारे हृदयमें स्थित हैं, यदि तुम्हारा विवाद नहीं है तो गङ्गा और कुरुक्षेत्र जानेकी आवश्यकता क्या है अर्थात् सत्य सत्य बोलनेसे ही तुम्हारा सब पाप दूर होजायगा ॥ ९२ ॥ झूठी साक्षी देनेवाले नङ्गे, शिर मुण्डायेहुए, भूखे, प्यासे और अन्धे होकर हाथमें खोपड़ी लियेहुए शत्रुओंके कुलमें भिक्षा मांगते हैं ॥ ९३ ॥ जो साक्षी प्रश्नकरने पर झूठ वचन कहता है वह पापी नीचेको मुख करके महा अन्धकार नरकमें जाता है ॥ ९४ ॥ जो मनुष्य सभामें जाकर विना देखीहुई झूठी बात कहता है वह कांटोंके साथ मछलियोंको खानेवाले अन्धेके समान है ॥ ९५ ॥ जिस विद्वान्‌की गवाहीमें अन्तर्यामी परमात्मा शङ्का नहीं करता है अर्थात् जो साक्षी सत्य कहता है देवतालोग उसको सबसे श्रेष्ठ समझते हैं ९६ ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्याय । विचारकको उचित है कि वादी और प्रतिवादीके सामने साक्षियों-को सुनावे कि पातकी महापातकी आग लगानेवाले, स्त्रीघाती और बालघातीको जो लोक प्राप्त होता है वही लोक झूठी गवाही देनेवालेको मिलता है ॥ ७५–७६ ॥ तुम झूठ बोलकर जिसको पराजित करोगे, तुम्हारे सौ जन्मका पुण्य उसको मिलजावेगा ॥ ७७ ॥ बौधायन स्मृति–१ प्रश्न १० अध्याय सभासद साक्षीसे कहै कि जो तुम झूठ कहोगे तो तुम्हारा जन्मभरका कियाहुआ पुण्य राजाके पास चलाजायगा॥३३॥

वसिष्ठस्मृति–१६ अध्यायके २८ श्लोकमें इस श्लोकके समान है ।

वासिष्ठस्मृति–१६ अध्याय–२७ श्लोक । साक्षीसे सभासद कहै कि जैसा तुम जानतेहो वैसाही ठीक ठीक कहो; क्योंकि तुम्हारे वचनका घाट देखतेहुए तुम्हारे पितरलोग बीचमें लटक रहे हैं; यदि तुम सत्य कहोगे तो वे लोग स्वर्गमें जांयगे और झूठ बोलोगे तो नरकमें गिरायेजावेंगे ॥

यावतो बान्धवान्यस्मिन्हन्ति साक्ष्येऽनृतं वदन्। तावतः संख्यया तस्मिञ्शृणु सौम्यानुपूर्वशः॥९७॥

हे सौम्य! जिन जिन विषयोंमे झूठी साक्षीदेनेवालोको जितने बान्धवोको मारनेका पाप लगता है उनकी संख्या सुन!॥ ९७॥

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते। शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते॥ ९८॥
हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन्। सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदीः॥ ९९॥
अप्सु भूमिवदित्याहुः स्त्रीणां भोगे च मैथुने। अब्जेषु चैव रत्नेषु सर्वेष्वश्ममयेषु च॥ १००॥
एतान्दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतभाषणे। यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वमेवाञ्जसा वद॥ १०१॥

पशुके विषयमे झूठ बोलनेसे ५ बान्धव, गौके विषयमें झूठ बोलनेसे १० बान्धव, घोड़ेके विषयमे झूठ बोलनेसे १०० बान्धव और मनुष्यके विषयमे झूठ बोलनेसे १,००० बान्धव मारनेका पाप लगता है ॥ ९८॥ सोनाके विषयमें झूठ बोलनेसे जन्मेहुए और विना जन्मेहुए बान्धवोंको मारनेका पाप लगता है और भूमिके अभियोगमें झूठ बोलनेसे सम्पूर्ण प्राणियोंका वध करनेका दोष होता है ❀ ॥ ९९॥ तालाव आदि जलाशय, स्त्रियोंके भोग मैथुन, जलसे उत्पन्न मोती आदि रत्न और हीरा आदि मूल्यवान् पत्थरके मामलेमें झूठ बोलनेसे भूमिके विषयमें झूठ बोलनेके समान पाप लगता है ॥ १००॥ तुम झूठ बोलनेके इन सब दोषोंको जानकर जैसा सुना हो और जैसा देखा हो वैसाही सच २ कहो ◎॥ १०१॥

रक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुकुशीलवान्। प्रैष्यान्वार्धुषिकांश्चैव विप्राञ्शूद्रवदाचरेत्॥१०२॥

गौपालन करके जीविका करनेवाले, वाणिज्यसे जीविका चलानेवाले, चित्रकार आदि कारुकर्म करनेवाले, नाचने-गानेवाले, दासकर्म-करनेवाले और व्याज-लेनेवाले; इतने ब्राह्मणोसे शूद्रोंके समान प्रश्न करना चाहिये॥ १०२॥

तद्वदन्धर्मतोऽर्थेषु जानन्नप्यन्यथा नरः। न स्वर्गाच्च्यवते लोकाद्दैवीं वाचं वदन्ति ताम्॥ १०३॥
शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यत्रर्तोक्तौ भवेद्वधः। तत्र वक्तव्यमनृतं तद्धि सत्याद्विशिष्यते॥ १०४॥

किसी विशेष स्थानमें धर्म बुद्धिसे झूठ कहदेनेसे मनुष्यका परलोक नहीं बिगड़ताहै; ऐसे वचनको देववाक्य कहते हैं॥ १०३॥ जहां सत्य कहनेसे शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मणका वध होवे वहांका झूठ सत्यसे श्रेष्ठ है॥ १०४॥

वाग्दैवत्यैश्च चरुभिर्यजेरंस्ते सरस्वतीम्। अनृतस्यैनसस्तस्य कुर्वाणा निष्कृतिं पराम्॥ १०५॥
कूष्माण्डैर्वापि जुहुयाद् घृतमग्नौ यथाविधि। उदित्यृचा वा वारुण्या त्र्यृचेनाब्दैवतेन वा॥१०६॥

किन्तु ऐसे स्थानमें झूठ बोलनेके पापसे शुद्ध होनेके लिये चरुपाक करके वाग्देवी सरस्वतीके निमित्त यज्ञ करना चाहिये॥ १०५॥ अथवा यजुर्वेद सम्बन्धी "यद्देवादेवहेडनं" इत्यादि कूष्माण्ड मन्त्रोंसे विधिपूर्वक अग्निमे घृतका होम करे और "उदुत्तमंवरुणं" इस वरुण देवताके मंत्रसे अथवा "आपोहिष्ठा" इत्यादि जलदेवताके मन्त्रसे अग्निमें आहुति करे ⁂॥ १०६॥

त्रिपक्षादब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः। तदृणं प्राप्नुयात्सर्वं दशबन्धं च सर्वतः॥ १०७॥
यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य साक्षिणः। रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणं दाप्यो दमं च सः॥१०८॥

❀ गौतमस्मृति—१३ अध्यायके २ अङ्कमें; वसिष्ठस्मृति—१६ अध्यायके २९ श्लोकमें और बौधायनस्मृति—१ प्रश्न-१० अध्यायके ३५-३६ श्लोकमे भी ९८ श्लोकके समान है; गौतम और बौधायनस्मृति में भी है कि भूमिके विषयमें झठ कहनेसे सब बान्धवोंको मारनेका दोष लगताहै; बौधायनस्मृतिके ३४ श्लोकमें है कि झूठ बोलनेवाला साक्षी अपने अगले पिछले ७ पुरुषोंका नाश करताहै और ३५ श्लोकमें है कि सोनाके विषयमें झूठ कहनेवा को ३ पुरुषोंके वध करनेका पाप लगता है।

◎ नारदस्मृति—१ विवादपदके ५ अध्यायमें ५८ से ९२ श्लोक तक विस्तारसे साक्षियोंके लिये उपदेश है।

⁂ याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्याय-८५ श्लोक। साक्षीको उचित है कि जहां किसी वर्णके मनुष्यका वध होनेकी संभावना होय वहां झूठ बोले और उस दोपको छुड़ानेके लिये वह द्विज सरस्वतीके निमित्त हविष्य बनाकर यज्ञ करे।

वसिष्ठस्मृति—१६ अध्याय। विवाहके समय, रतिकार्यमें,प्राणनाशकी संभावनामें, सब धन नाश होनेकी संभावनामें और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये झूठ बोलना चाहिये, क्योंकि इन ५ विषयोंमें झूठ कहनेसे दोष नहीं लगता॥ ३१॥ जो लोग अप स्वजनोंके लिये अथवा धन आदिके लोभसे या पक्षपात करके किसी विषयमें झूठ बोलते हैं वे स्वर्गमें गयेहुए अपने पुरुषोंको भी नरकमें गिराते है॥ ३२॥

यदि साक्षी रोगरहित अवस्थामें ३ पक्षके भीतर ऋण आदि व्यवहारके विषयमें गवाही नहीं देवे तो राजा उससे धनीका सब धन दिलावे और उसका दशवां भाग दण्ड लेवे ॥ १०७ ॥ यदि साक्षी कह देवे कि वादीका पावना झूठ है और उससे सात दिनके भीतर उसको कोई कठिन रोग होजावे या उसके घर आग लगजावे अथवा उसका कोई पुत्रादि ज्ञाति मरजावे तो राजा उसीसे धनीका पावना दिलावे और राजदण्ड लेवे॥ १०८ ॥

असाक्षिकेषु त्वर्थेषु मिथो विवदमानयोः । अविन्दंस्तत्त्वतः सत्यं शपथेनापि लम्भयेत् ॥ १०९ ॥
सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः । गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥ ११३ ॥
अग्निं वा हारयेदेनमप्सु चैनं निमज्जयेत् । पुत्रदारस्य वाप्येनं शिरांसि स्पर्शयेत्पृथक् ॥ ११४ ॥
यमिद्धो न दहत्यग्निरापो नोन्मज्जयन्ति च । न चार्तिमृच्छति क्षिप्रं स ज्ञेयः शपथे शुचिः ॥११५॥

वादी और प्रतिवादीके विवादमें यदि साक्षी नहीं होवे तो विचारक उनसे शपथ कराके सत्यका निर्णय करे ॥ १०९ ॥ ब्राह्मणको सत्यकी शपथ, क्षत्रियको वाहन और आयुधकी शपथ, वैश्यको गौ, बीज और सोनाकी शपथ और शूद्रको सब पापोंकी शपथ करावे ॥ ११३ ॥ अथवा जलतेहुए लोहेके गोलेको उससे उठवावे या उसको जलमें डुबावे अथवा उसके पुत्र, स्त्रीके शिरपर उसका हाथ रखवावे; यदि अग्निपरीक्षामें अग्नि उसको नहीं जलावे, जलपरीक्षामें जल उसको ऊपरको नहीं फेंके और स्त्री, पुत्रके शिरपर हाथ रखनेसे उन्हें शीघ्र कोई भारी पीड़ा नहीं होवे तो शपथ करनेवालेको सच्चा जाने ॥ ११४-११५ ॥

यस्मिन्यस्मिन्विवादे तु कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत् । तत्तत्कार्यं निवर्त्तेत कृतं चाप्यकृतं भवेत् ॥ ११७॥
लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात्क्रोधात्तथैव च । अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ॥ ११८ ॥

जिस मुकदमेमें गवाहोंकी बातें झूठी जान पड़े, विचारक उस मुकदमेका फिरसे विचार करे और झूठी साक्षीके कारणसे विचार सम्बन्धमें जो कुछ कार्य हुआ हो उसको बदल देवे ॥ ११७ ॥ लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान और असावधानीसे जो गवाही दी जाती है वह ग्रहण करने योग्य नहीं है ११८॥

एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत् । तस्य दण्डविशेषांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ ११९ ॥

जिस कारणसे झूठी गवाही देनेपर जो दण्ड होगा उसे क्रमसे कहता हूँ ॥ ११९ ॥

लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु साहसम् । भयाद्द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम् ॥ १२०॥
कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम् । अज्ञानाद्द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु ॥ १२१॥
कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन्वर्णान्धार्मिको नृपः । प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥१२३॥

लोभसे झूठी गवाही करनेवालेपर १००० पण, मोहसे झूठी गवाही करनेवालेपर २५० पण, भयसे ऐसा करनेवालेपर ५०० पण, मित्रताके कारणसे झूठी गवाही करनेवालेपर १००० पण, कामके कारण ऐसा करनेवालेपर २५०० पण, क्रोधसे ऐसा करनेवालेपर ३००० पण, अज्ञानसे ऐसा करनेवालेपर २०० पण, और असावधानीसे झूठी गवाही देनेवालेपर १०० पण राजा दण्ड करे ॥ १२०-१२१ ॥ धार्मिक राजाको उचित है कि बार बार झूठी गवाही देनेवाले क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको दण्ड देकर अपने राज्यसे निकाल देवे और ब्राह्मणको विना दण्डित किये ही राज्यसे बाहर कर देवे ॥ १२३ ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति--२ अध्याय । राजाको चाहिये कि जो साक्षी राजसभामें गवाही नहीं देवे उससे ४६ वें दिन धनीका सब पावना दिलादेवे और उसका दशवां भाग उससे दण्ड लेवे ॥ ७८ ॥ जो मनुष्योंमें अधम साक्षी जान करके गवाही नहीं देता है वह झूठे गवाहके समान पापी और दण्डका भागी होता है ॥ ७९ ॥ जो गवाह स्वीकार करके समयपर गवाही नहीं देवे और अन्य-साक्षियोंको गवाही देनेसे रोके उससे अठगुना दण्ड लेवे; यदि वह ब्राह्मण होवे तो उसको राज्यसे निकाल देवे ॥ ८४ ॥

नारदस्मृति—१ विवादपद-५ अध्याय । यदि धनी प्रमादवश होकर ऋणीसे न तो लेखपत्र लिखावे और न साक्षी बनावे और ऋणी उसका धन नहीं देवे तो वादीके लिये वहां ३ प्रकारका विधान कहा गया है, सदा तकाजा करना, युक्तिसे अपना पावना लेना और उसके बाद शपथ करना ॥ ९८-१०० ॥

८० रत्तीके ताम्बेके पैसेको १ पण कहते हैं; १०० पणका १।।-) होता है।

नारदस्मृति—१ विवादपद-५ अध्यायके ५६-५७ श्लोकमें ऐसा ही है।

याज्ञवल्क्यस्मृति--२ अध्याय-८३ श्लोक। जो गवाहको झूठा बनावे और जो गवाह झूठ कहे इन दोनोंपर अलग अलग विवादका दूना दण्ड होना चाहिये; यदि वे ब्राह्मण होवें तो उनको राज्यसे निकाल-देना चाहिये।

वमिष्ठविहितां वृद्धिं सृजेद्वित्तविवर्द्धिनीम्। अशीतिभागं गृह्णीयान्मासाद्वार्धुषिकः शते ॥ १४० ॥
द्विकं शतं वा गृह्णीयात्सतां धर्ममनुस्मरन्। द्विकं शतं हि गृह्णानो न भवत्यर्थकिल्विषी ॥ १४१ ॥
द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पञ्चकं च शतं समम्। मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥ १४२ ॥

व्याज-लेनेवाला मनुष्य वसिष्ठके कथनानुसार (बन्धकसहित ऋणमें) प्रति महीनेमें अस्सी पणका व्याज एक पण अर्थात् सौ पणमे सवापण लेवे ॥ १४० ॥ श्रेष्ठपुरुषोका धर्म स्मरण करके (बन्धकरहित स्थानमें) सौ पणका व्याज दो पण लेवे, सौ पणका (प्रतिमास) दो पण लेनेसे वह दोषी नही होता है ॥ १४१ ॥ सौ पणका व्याज प्रति महीनेमे ब्राह्मणसे २ पण, क्षत्रियसे ३ पण, वैश्यसे ४ पण और शूद्रसे ५ पण लेना चाहिये ❀ (आगे १५१ श्लोकसे व्याजकी व्याख्या देखिये) ॥ १४२ ॥

नत्वेवाधौ सोपकारे कौसीदीं वृद्धिमाप्नुयात्। न चाधेः कालसंरोधान्निसर्गोऽस्ति न विक्रयः॥ १४३॥

भूमि आदि भोगने योग्य वस्तु धनीके पास बन्धक रखके ऋण लेनेपर व्याज नहीं देना पड़ता है वन्धककी वस्तु वहुत दिनोंतक रहजानेपर भी धनी उसको दान अथवा विक्री नहीं कर सकता है ॥ १४३ ॥

न भोक्तव्यो बलादाधिर्भुञ्जानो वृद्धिमुत्सृजेत्। मूल्येन तोषयेच्चैनमाधिस्तेनोऽन्यथा भवेत् ॥ १४४॥

बन्धककी वस्तु बलपूर्वक भोग नही करना चाहिये, जो ऐसा करेगा उसको व्याज छोडना होगा और यदि भोग करनेके कारण वस्तु बिगड़जाय तो उसको बनवाकरके ऋणीको सन्तुष्ट करना होगा; यदि ऐसा नही करेगा तो वह उस वस्तुको चोरानेवाला समझा जायगा ✠ ॥ १४४ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय। भूषण आदि वस्तु बन्धक रखकर लियेहुए ऋणमे प्रतिमास ८० वां भाग अर्थात् सौ पणका सवा पण और विना बन्धकके ऋणमें सौ पणका प्रतिमास ब्राह्मणसे २ पण क्षत्रियसे ३ पण, वैश्यसे ४ पण, और शूद्रसे ५ पण व्याज लेना चाहिये ॥ ३८ ॥ वनमें व्यापार करनेवाले सौ पणका दस पण और समुद्रका व्यापार करनेवाले (प्रतिमासमे) सौपणका २० पण व्याज देंं अथवा सब जातियोंके लोग अपने स्वीकार कियेहुए व्याजको देवें ॥ ३९ ॥ वसिष्ठस्मृति-२ अध्याय। सौ पणका व्याज प्रति महीनेमें ब्राह्मणसे २ पण, क्षत्रियसे ३ पण, वैश्यसे ४ पण और शूद्रसे ५ पण लेना चाहिये ॥ ५४ ॥ वसिष्ठके कथनानुसार वार्धुषिक (ब्राह्मण और क्षत्रिय) से २० मासेका ५ मासा अर्थात् प्रति महीने सौ पणका ~५ पण व्याज लेनेसे धर्ममें हानि नही होती है ॥ ५५ ॥

✠ मनुस्मृति-८ अध्याय-१५० श्लोक। जो मूर्ख मनुष्य बन्धककी वस्तुको विना उसके स्वामीकी आज्ञासे भोगेगा उसको आधा व्याज छोडना होगा। (जो बलपूर्वक भोग करेगा उसको सब छोडना पड़ेगा।) याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय। जो कोई बन्धकआदिको हरण करे राजा उससे उसके स्वामीका धन दिलावे और उसके बराबर अथवा हरण करनेवालेकी शक्तिके अनुसार दण्ड ले ॥ २६ ॥ बन्धकका व्याज उसके मूलके बराबर होनेपर और छुड़ानेका समय नियतकर के रक्खीहुई बन्धकका समय बीत जानेपर बन्धककी वस्तु महाजनकी होजाती है किन्तु जिस बन्धकमें धनीका व्याज मिलता जाता है उसको धनी कभी नही खर्च करसकता है ॥ ५९ ॥ जिस बन्धकका व्याज लगता है उसको काममें लानेसे धनीको व्याज नहीं मिलेगा, यदि बन्धककी वस्तु बिगड़जावेगी या नष्ट होजावेगी तो उसका दाम धनीको अपने घरसे देना होगा; किन्तु यदि दैवयोग या राजउपद्रवसे ऐसा होगा तो नहीं देना पड़ेगा ॥ ६० ॥ बन्धककी सिद्धि स्वीकार करनेसे अर्थात् अधिकारमें रखनेसे होती है (केवल साक्षी और लेखसेही नहीं) यत्नसे रखनेपर भी यदि बन्धककी चीज बिगड़ जावे तो ऋणी उसको बदलेमें दूसरी वस्तु रखदेवे अथवा धनीका धन देदेवे ॥ ६१ ॥ यदि धनीमें विश्वास करके थोडी वस्तु रखकर वहुत धन दिया होगा तो व्याजसहित ऋणीको धनीका धन देना पडेगा, यदि सत्य प्रतिज्ञा करके (कि दूना सूद होजानेपर भी मै बन्धक छोड़ालूंगा) चीज रखा होगा तो दूना देना पड़ेगा ॥ ६२ ॥ धनीको उचित है कि जब ऋणी रुपया लेकर आवे तब उसकी चीजको देदेवे; यदि नही देगा तो चोरके समान दण्डके योग्य होगा; यदि धनी समीपमें नहीं होवे तो ऋणीको चाहिये कि उसके कुलके किसी भले आदमीको व्याजसहित रुपया देकर अपनी चीज लेजावे ॥ ६३ ॥ धनी यदि बन्धकका रुपया नही लेवे तो ऋण उस चीजका दाम करके उसको धनीके पास छोड देवे; उस समयसे आगेका व्याज उसको नहीं देना पड़ेगा और यदि ऋणी योग्य समयमें बन्धकको नहीं छोडावे तो धनी साक्षियोंके सहित बन्धककी चीजका दाम करके उसको बेंचडाले ॥ ६४ ॥ जब बन्धकमें ऋण दूना होगया होवे और उससे पैदाहुआ धन धनीको दूना मिलचुका हो तब धनी बन्धककी वस्तुको छोड देवे ॥ ६५ ॥ नारदस्मृति-१ विवादपद-

आधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालात्ययमर्हतः । अवहार्यौ भवेतां तौ दीर्घकालमवस्थितौ ॥ १४५ ॥
संप्रीत्या भुज्यमानानि न नश्यन्ति कदाचन । धेनुरुष्ट्रो वहन्नश्वो यश्च दम्यः प्रयुज्यते ॥ १४६ ॥

बन्धककी वस्तु और बासनमें बन्दकरके रक्खाहुआ धरोहर; ये दोनोंको जब इनके स्वामी मांगें तभी ददेना चाहियें, बहुतकालतक रहनेपर भी इनपर इनके स्वामीका दावा बना रहता है ॥ १४५ ॥ प्रीतिपूर्वक किसीको भोगनेके लिये दूध देनेवाली गौ, सवारीका ऊंट, घोड़ा आदि या अन्य कोई वस्तु दीजाती है तो बहुत समयतक भोगनेपर भी इनके स्वामीका दावा नष्ट नहीं होता है अर्थात् जब वह चाहेगा तब लेलेगा ॥ १४६ ॥

यत्किञ्चिद्दशवर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी । भुज्यमानं परैस्तूर्णीं न स तल्लब्धुमर्हति ॥ १४७ ॥

जब कोई मनुष्य अपनी किसी वस्तुपर दूसरेका अधिकार देखकर १० वर्षतक उससे रोकटोक नहीं करेगा तो उसके बाद उस वस्तुसे उसका स्वामित्व नष्ट होजायगा * ॥ १४७ ॥

अजडश्चेदपौगण्डो विषये चास्य भुज्यते । भग्नं तद्व्यवहारेण भोक्ता तद्द्रव्यमर्हति ॥ १४८ ॥

यदि उस वस्तुका स्वामी जड़ नहीं होगा, १६ वर्षसे कम अवस्थाका नहीं होगा और उसके सामने इतने समयतक किसीने उस वस्तुपर अधिकार रक्खा होगा तो उसपरसे उसके स्वामीका दावा नष्ट होकर वह भोगनेवालेकी होजायगी ॥ १४८ ॥

आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः । राजस्वं श्रोत्रियस्वं च न भोगेन प्रणश्यति॥१४९॥

बन्धककी वस्तु; गांव, खेत आदिकी सीमा; बालकका धन गिनाकर रक्खाहुआ धरोहर; बासनमें बन्द रक्खाहुआ धरोहर, स्त्रीका धन, राजाका धन और श्रोत्रियब्राह्मणका धन, इनका दावा किसीके भोगनेसे अर्थात् १० वर्ष अधिकारमें रखनेसे नष्ट नहीं होता है ꩜ ॥ १४९ ॥

कुसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यं नात्येति सकृदाहृता । धान्ये सदे लवे वाह्ये नातिक्रामति पञ्चताम् ॥ १५१ ॥
कृतानुसारादधिका व्यतिरिक्ता न सिद्ध्यति । कुसीदपथमाहुस्तं पञ्चकं शतमर्हति ॥ १५२ ॥

धनका सब व्याज एकही बार लेनेसे मूलधनके दूनेसे अधिक नहीं मिलसकता है और धान्य, वृक्षोंके फल, ऊनी वस्तु और जोतनेयोग्य बैलमें पांचगुनेसे अधिक व्याज नहीं मिलता है ॥१५१॥ शास्त्रके विधिसे अधिक व्याज लेना उचित नहीं है; अधिक व्याज लेना निन्दित है; (प्रतिमासमें) सैकड़े पांच रुपयेतक व्याज लिया जासकता है ॥ १५२ ॥

-४ अध्याय । जो वस्तु किसीके अधिकारमें करदीजाती है उसको आधि (बन्धक) कहते हैं; वह दोप्रकारकी होती है; एक छोड़ानेका समय निश्चय करके रक्खीहुई और दूसरी विना निश्चयकिये रक्खीहुई; फिर वह दो प्रकारकी होती है; एक रक्षा करनेके लिये और दूसरी महाजनके भोगनेके लिये रक्खी हुई ॥ ५२-५३ ॥ रक्षाके लिये रक्खी हुई बन्धकको यदि धनी भोग करेगा तो उसको व्याज नहीं मिलेगा; विना देवउपद्रव अथवा राजउपद्रवके यदि बन्धककी वस्तु विगड़ जायगी अथवा नष्ट होजायगी तो विना अपना पावना लियेहुए बन्धककी वस्तुका दाम धनी ऋणीको देगा॥५४-५५॥ यत्नपूर्वक रखनेपर भी यदि बहुत समय बीत जानेपर बन्धककी वस्तु विगड़जावे तो ऋणीको चाहिये कि उसके बदलेमें दूसरी वस्तु रखदेवे अथवा धनीका धन देदेवे ॥ ५५-५६ ॥ बन्धक दो प्रकारका होता है; एक जङ्गम (गौ, बैल आदि) और दूसरा स्थावर (भूमि, भूषण आदि); दोनों प्रकारके बन्धककी सिद्धि, भोगसे है; अन्यथा नहीं ॥ ६५-६६ ॥

* गौतमस्मृति—१२ अध्याय-२ अङ्क, वसिष्ठस्मृति-१६ अध्याय-१४ अङ्क और नारदस्मृति-१ विवादपद-४ अध्यायके ७ श्लोकमें ऐसा ही है; किन्तु याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्यायके २४ श्लोकमें है कि जब कोई मनुष्य अपनी वस्तुपर दूसरेका अधिकार देखकर रोकटोक नहीं करेगा तो २० वर्षके बाद भूमिपर और १० वर्षके बाद धनपर उसका स्वत्व नहीं रहेगा ।

꩜ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्यायके २५ श्लोक, वसिष्ठस्मृति-१६ अध्यायके १६ श्लोक और नारद-स्मृति-१ विवादपद-४ अध्यायके ९-१० श्लोकमें ऐसा ही है । गौतमस्मृति-१२ अध्यायके २ अङ्कमें है कि जड़ १६ वर्षसे कम अवस्थाके बालक, श्रोत्रिय, प्रव्रजित, राजा और धर्मनिष्ठ मनुष्यकी वस्तु दश वर्ष भोग-नेसे भी भोगनेवालेकी नहीं होजाती है । नारदस्मृतिके ११ श्लोकमें है कि स्त्रीके धन, और राजाके धनको छोड़करके २० वर्ष भोगनेपर बन्धक आदि वस्तु भोगनेवालेकी होजाती है (बन्धकके विषयमें पीछेके १४३-१४४ श्लोककी टिप्पणी देखिये) ।

नातिसांवत्सरीं वृद्धिं न चादृष्टां पुनर्हरेत् । चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः कारिता कायिका च या ॥१५३॥

(जब एकएक, दो दो अथवा तीनतीन महीनेपर व्याज लेनेका नियम ठहराया जाताहै तो) एक वर्षके बाद व्याजका नियम नहीं रहता, शास्त्रके नियमके विरुद्ध व्याज नहीं लेना चाहिये; व्याजका व्याज, महीने महीने व्याज, आपत्कालमें ऋणीका स्वीकार किया हुआ व्याज और देहको बहुत पीड़ा देकर व्याज लेना उचित नहीं है ❀(पीछे १४० श्लोकसे व्याजका वर्णन है) ॥ १५३ ॥

ऋणं दातुमशक्तो यः कर्तुमिच्छेत्पुनः क्रियाम् । स दत्त्वा निर्जितां वृद्धिं करणं परिवर्तयेत्॥१५४॥
अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यं परिवर्त्तयेत् । यावती संभवेद् वृद्धिस्तावतीं दातुमर्हति ॥ १५५ ॥
चक्रवृद्धिं समारूढो देशकालव्यवस्थितः । अतिक्रामन्देशकालौ न तत्फलमवाप्नुयात् ॥ १५६ ॥
समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः । स्थापयन्ति तु यां वृद्धिं सा तत्राधिगमं प्रति ॥ १५७ ॥

यदि ऋणी ऋण नहीं देसके तो धनीको व्याज देकर फिर लेखपत्र लिखदेवे; यदि व्याज भी नहीं देसके तो मूल और व्याज मिलाकरके धनीको कागज लिखदे, उसके पश्चात् वह व्याज भी मूल समझा जायगा ॥ १५४-१५५ ॥ व्याजका व्याज लेनेवाले महाजनको देश और कालके नियममें रहना चाहिये; देश और कालके नियमको छोडदेनेसे उसको सब व्याज नहीं मिलेगा ॥ १५६ ॥ स्थलके मार्ग और समुद्रमार्गसे व्यापार करनेवाले और देशकालको जाननेवाले महाजनलोग जो व्याज निश्चय करेंगे वही ग्राह्य होगा ॥ १५७ ॥

यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेद्दर्शनायेह मानवः । अदर्शयन्स तं तस्य प्रयच्छेत्स्वधनादृणम् ॥ १५८ ॥
प्रातिभाव्यं वृथादानमाक्षिकं सौरिकं च यत् । दण्डशुल्कावशेषं च न पुत्रो दातुमर्हति ॥ १५९ ॥
दर्शनप्रातिभाव्ये तु विधिः स्यात्पूर्वचोदितः । दानप्रतिभुवि प्रेते दायादानपि दापयेत् ॥ १६० ॥
अदातारि पुनर्दाता विज्ञातप्रकृतावृणम् । पश्चात्प्रतिभुवि प्रेते परीप्सेत्केन हेतुना ॥ १६१ ॥
निरादिष्टधनश्चेत्तु प्रतिभूः स्यादलंधनः । स्वधनादेव तद्दद्यान्निरादिष्ट इति स्थितिः ॥ १६२ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय । पशु और स्त्रीका व्याज उनकी सन्तान है; तेल, घी आदि रसका व्याज मूलसे अठगुनेतक, वस्त्रका व्याज चौगुनेतक, धान्यका तिगुने तक और सोनाका व्याज दुगनेतक वढता है ॥ ४० ॥ लघुहारीतस्मृति । यदि मूलधन वढकर दुगुना अथवा दुगुनेसे भी अधिक होगया होगा तो उसके पश्चात् धनी उसकी चौथाईसे अधिक उसका व्याज नहीं पावेगा ॥ ४६ ॥ ऐसी अवस्थामें यदि धनी धनवान् और ऋणी दरिद्र होगा तो धनी चौथाई भी नहीं पावेगा ॥ ४७ ॥ गौतमस्मृति-१२ अध्याय । सौपणका ५ पण व्याज धर्मानुकूल है; किसीका मत है कि १ वर्षसे कम प्रति महीनेमें ५ मासा व्याज लेना चाहिये, वहुत समयतक ऋण रहजानेपर मूलसे दूनातक व्याज लेना उचित है व्याज देते जानेपर ऋण नहीं वढता है किन्तु व्याज नहीं देनेपर चक्रवृद्धि, कालवृद्धि, कारिता, कायिका और आधिभोगा, व्याज लगता है, पशुके लोम और सौवार जोतेहुए खेतका व्याज ५ गुनेसे अधिक नहीं होता ॥ २ ॥ वासिष्ठस्मृति-२ अध्याय । क्रियाहीन और पापिष्ठसे दूना सोना, तिगुना धान्य, रस, फूल, मूल और फल और अठगुना तौलकर दियाहुआ घी लेना चाहिये ॥ ४७-५१ ॥ राजाकी अनुमतिके अनुसार द्रव्यका व्याज निवृत्त होगा और नये राजाका राजतिलक होनेपर भी व्याज नहीं, लगेगा अर्थात् प्रथमके ऋणका व्याज तवसे छोडदेना होगा ॥ ५३ ॥ नारदस्मृति-१ विवादपद-४ अध्याय कालिका, कायिका, कारिता और चक्रवृद्धि ये ४ प्रकारकी वृद्धि अर्थात् व्याज शास्त्रमें कहेगये हैं । ॥ २९ ॥ व्याजके वदलेमें शरीरसे काम लिया जाय वह कायिका वृद्धि और महीने महीनेमें व्याज लियाजाय वह कालिका वृद्धि कहलाती है ॥ ३० ॥ जब ऋणी स्वयं स्वीकार करताहै कि करारपर ऋण नहीं चुकादेंगे तो इतना अधिक व्याज देंगे तब वह कारितावृद्धि कहीजाती है ॥ ३१ ॥ व्याजका व्याज लगानेको चक्रवृद्धि कहते हैं; यह वृद्धि सार्वभौमवृद्धि करनेवाली कहलाती है ॥ ३२ ॥ इनसे अन्यप्रकारकी वृद्धि देशकी रीतिके अनुसार होती है; सोनाकी वृद्धि दुगुना, वस्त्रकी तिगुना और धान्यकी चौगुना, होतीहै ॥ ३३ ॥ रसकी वृद्धि अठगुना; स्त्री और पशुओंकी वृद्धि उनकी सन्तति; सूत, कपास, महुए आदि, रांगा, सीसा, सब प्रकारके आयुध, चर्म, ताम्बा, लोहा, और ईंटे आदि इनके लिये मनुप्रजापतिने अक्षय वृद्धि कही है ॥ ३४-३६ ॥ तेल, मद्य, मधु, घी, गुड़ और नोनकी वृद्धि अठगुना जानना; जो वस्तु प्रीतिपूर्वक विना व्याजकी दी जाती है उसका व्याज नहीं लगता है ॥ ३६-३७ ॥ जिसमें व्याज देनेका करार नहीं है वह भी ६ मासके बाद व्याज लगने योग्य होजाता यह व्याजका विधान धर्मपूर्वक प्रीतिके कारणसे देनेवालेके लिये है ॥ ३८ ॥

यदि हाजिर जामिनवाला यथासमयमें धनीके पास ऋणीको नहीं हाजिर करेगा तो उसे ही धनीका पावना देना पडेगा ॥ १५८ ॥ जामिनका धन, अयोग्य दान, जूआ, मद्यपान, दण्ड और महसूलकी बाकी पिताके मरजानेपर पुत्रको नहीं देना पड़ेगा, हाजिरजामिनका धन भी पुत्रको नहीं देना पडेगा; किन्तु पिताका किया माल जामिनका रुपया पुत्र आदिको देना पडेगा ॥१५९-१६० ॥ हाजिर जामिनवाला अथवा विश्वास जामिनवाला यदि ऋणका रुपया असामीसे लेकर विना महाजनको दियेहुए मरजायगा तो उसके पुत्रोंको महाजनका रुपया अवश्य देनापड़ेगा ❀ ॥ १६१-१६२ ॥

मत्तोन्मत्तार्ताध्यधीनैर्बालेन स्थविरेण वा । असंबद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिद्ध्यति ॥ १६३ ॥
सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्यात्प्रतिष्ठिता । बहिश्चेद्भाष्यते धर्मान्नियताद्व्यावहारिकात् ॥१६४॥
योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम् । यत्र वाप्युपधिं पश्येत्तत्सर्वं विनिवर्तयेत् ॥ १६५ ॥

मदिरा आदिसे मतवाले, उन्माद रोगग्रस्त, आर्त्त, अत्यन्त पराधीन, बालक और अति वृद्धके लियेहुए ऋणका व्यवहार जायज नहीं है ❀❀ ॥ १६३ ॥ किसीका वचन प्रमाणसे सच्चा सिद्ध होनेपर भी यदि उसका विषय धर्मशास्त्र और परम्परा व्यवहारसे विरुद्ध होगा तो वह सच्चा नहीं माना जायगा ॥ १६४ ॥ छलसे रक्खेहुए बन्धक, छलसे बेंचीहुई वस्तु, छलसे दिया दान, छलसे लियेहुए दान और छलसे धरा धरोहर लौटाने योग्य है अर्थात् जायज नहीं है ॥ १६५ ॥

बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्यच्चापि लेखितम् । सर्वान्बलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत् ॥ १६८॥
त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम् । चत्वारस्तूपचीयन्ते विप्र आढ्यो वणिङ्नृपः१६९

बलसे दियाहुआ ऋण बलसे भोगीहुई अर्थात् दखल कीहुई भूमि आदि वस्तु और बलसे लिखायाहुआ लेखपत्र तथा बलसे कियाहुआ अन्य सब काम नाजायज हैं; ऐसा मनुने कहा है ❀❀❀ ॥ १६८ ॥ साक्षी, जामिनदार, और कुल (स्वजन), ये ३ दूसरोंके लिये क्लेश पातेहैं और ब्राह्मण ऋणदेनेवाले, धनी, वणिक, और राजा, इन ४ की बढ़ती दूसरोंसे होतीहै ॥ १६९ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय । सुरापान, व्यभिचार, जूआ, राजदण्ड, महसूल और वृथादानकी बाकी, पुत्रको नहीं देना पड़ेगा ॥ ४८ ॥ दर्शनजामिन (हाजिरजामिन), विश्वासजामिन, (विश्वास देकर करज दिलाना) और दानजामिन (मालजामिन), ये ३ प्रकारके जामिन कहेगये हैं; इनमें पहिलेवाले २ झूंठ पड़ें तो राजा उनसे धनीका धन दिलादेवे; किन्तु तीसरेके पुत्रोंसे भी धनीका धन दिलावे ॥ ५४ ॥ जब दर्शनजामिनवाला अथवा विश्वासजामिनवाला मरजाय तो उसके पुत्र ऋण नहीं देवें; परन्तु दानजामिनवालेके पुत्र देवें ॥ ५५ ॥ यदि एक मनुष्यके अनेक जामिनदार होंगे तो जो जितने अंशका जामिन किया होगा उसको उतना अंश धन धनीको देना पड़ेगा; किन्तु जब जामिन करनेके समय ये लोग जामिनको अंशका विभाग नहीं किये होंगे तो धनीकी इच्छानुसार जामिनका रुपया देना पड़ेगा ॥ ५६ ॥ जब जामिनवाला प्रकाश्यभावसे ऋणीका ऋण महाजनको देदेगा तब ऋणीको उसका दूना धन जामिनी करनेवालेको देना पड़ेगा ॥ ५७ ॥ जब जामिनवाला धनीको स्त्री और पशु दिया होगा तो ऋणी सन्तानसहित स्त्री और पशु देगा; धान्य दिया होगा तो तिगुना धान्य, वस्त्र दिया होगा तो चौगुना वस्त्र और रस दिया होगा तो अठगुना रस ऋणी देवेगा ॥ ५८ ॥ गौतमस्मृति-१२ अध्याय-२ अंक । जामिन, वाणिज्यके महसूल, मदिरा, जूआ और राजदण्डकी बाकी, पुत्रको नहीं देना होगा । वसिष्ठस्मृति-१६ अध्याय-२६ श्लोक-जामिन वृथा दान, जूआ, सुरापान, राजदण्ड और महसूलकी बाकी, पुत्रको नहीं देना पड़ेगा । नारदस्मृति-१ विवादपद-४ अध्याय । महाजनको विश्वास करानेवाले दो हैं; जामिन और बन्धक ॥ ४५ ॥ सही करानेवाले दो हैं; लेख और साक्षी; जामिन ३ प्रकारके हैं; हाजिरजामिन, मालजामिन और विश्वास जामिन, ॥ ४६-४७ ॥ जब जामिनवाला मनुष्य धनीसे पीड़ित होकर उसका पावना अपने घरसे देदेगा तो ऋणीको उसका दूना धन जामिनवालेको देना पड़ेगा ॥ ५१-५२ ॥

❀❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय-३३श्लोक। मतवाले, उन्मत्त, अतिरोगी, अनिष्टके दुःखसे दुःखी, बालक या भयभीतसे तथा विना सम्बन्धसे कियेहुये व्यवहार जायज नहीं होतेहैं । नारदस्मृति-१ विवादपद अध्यायके ६२-६३ श्लोक । मतवाले अभियुक्त, स्त्री अथवा बालकका लिखाहुआ तथा बलात्कारसे लिखायाहुआ और भयसे लिखाहुआ व्यवहार जायज नहीं है ।

❀❀❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय-३१ श्लोक । बलात्कारसे, भय दिखाकर, स्त्रीसे, रातमें, घरके भीतर, गांवसे बाहर अथवा शत्रुसे कियाहुआ व्यवहार राजाके माननेयोग्य नहीं है ।

कर्मणापि समं कुर्याद्धनिकायाधमर्णिकः। समोऽवकृष्टजातिस्तु दद्याच्छ्रेयांस्तु तच्छनैः ॥ १७७ ॥
अनेन विधिना राजा मिथो विवदतां नृणाम्। साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समतां नयेत्॥१७८॥

धनीको उचित है कि यदि अपनी जातिका अथवा अपनेसे छोटी जातिका ऋणी ऋण नहीं देसके तो उससे उसके योग्य काम करवाके और यदि अपनेसे बड़ी जातिका ऋणी ऋण नहीं देसके तो उससे धीरे धीरे अपना धन वसूल करे ✽ ॥१७७॥ राजा इसी प्रकारसे विवाद करनेवाले बादी और प्रतिवादीके अभियोगोंका निर्णय साक्षीआदि प्रमाणोंसे करे ॥ १७८ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति--२ अध्याय।

प्रत्यर्थिनोग्रतो लेख्यं यथावेदितमर्थिना। समामासतदर्द्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितम् ॥ ६ ॥
श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यं पूर्वावेदकसन्निधौ। ततोर्थी लेखयेत्सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधनम् ॥ ७ ॥
तत्सिद्धौ सिद्धिमाप्नोति विपरीतमतोन्यथा। चतुष्पाद्व्यवहारोयं विवादेषु प्रदर्शितः ॥ ८ ॥

राजाको उचित है कि वादीने जो निवेदन किया हो उसको वर्ष, मास, पक्ष, दिन, नाम, जाति आदिसे चिह्नित करके प्रतिवादीके सामने लिखे ॥ ६ ॥ प्रतिवादीको चाहिये कि वादीका निवेदन सुनकर उसके सामने उसका उत्तर लिखावे, तब उसी समय वादीको अपने निवेदनका प्रमाण लिखाना चाहिये ॥ ७ ॥ निवेदनका प्रमाण देनेपर वादी जीतताहै, नहीं तो हार जाताहै, विवादमें ऐसा ही (वादीका निवेदन, प्रतिवादीका उत्तर, वादीका प्रमाण और हारजीत) चारपदका व्यवहार दिखायाहै ॥ ८ ॥

अभियोगमनिस्तीर्य नैनम्प्रत्यभियोजयेत्। अभियुक्तं च नान्येन नोक्तं विप्रकृतिं नयेत् ॥ ९ ॥
कुर्यात्प्रत्यभियोगं च कलहे साहसेषु च। उभयोः प्रतिभूर्ग्राह्यः समर्थः कार्यनिर्णये ॥ १० ॥

जबतक वादीके अभियोगका निर्णय नहीं होवे तबतक प्रतिवादी उसपर अभियोग नहीं करे, जिसपर किसीने अभियोग करदियाहो उसपर दूसरा कोई अभियोग (नालिश) नहीं करे, जो बातें एक बार कह चुकाहो उनको नहीं बदले ॥ ९ ॥ कठोर वाणी और कठोर दण्डरूप कलहमें और विष, अग्नि, वध, डकैती आदि साहसमें अभियोगकरनेवालेपर अभियोगका विना निर्णयहुए भी अभियोग करना चाहिये; जो कार्यके निर्णयमें समर्थ हो उसको वादी और प्रतिवादीका जामिन लेना चाहिये ॥ १० ॥

साहसस्तेयपारुष्यगोभिशापात्यये स्त्रियाम्। विवादयेत्सद्य एव कालोन्यत्रेच्छया स्मृतः ॥ १२ ॥

राजाको उचित है कि आगलगाना, विषदेना इत्यादि साहस; चोरी, वाक्पारुष्य, प्राण और धनका नाश, दण्डपारुष्य; गौका अभिशाप और स्त्री संग्रहण; इन अभियोगोंमें प्रतिवादीसे उत्तर लेनेमें विलम्ब नहीं करे; अन्य अभियोगोंमें (वादी, प्रतिवादी, सभासद आदिकी) इच्छासे उत्तर ग्रहण करे ॥ १२ ॥

देशाद्देशान्तरं याति सृक्किणी परिलेढि च। ललाटं स्विद्यते चास्य मुखं वैवर्ण्यमेति च ॥ १३॥
परिशुष्यत्स्खलद्वाक्यो विरुद्धं बहु भाषते। वाक् चक्षुः पूजयति नो तथौष्ठौ निर्भुजत्यपि ॥ १४ ॥
स्वभावाद्विकृतिं गच्छेन्मनोवाक्कायकर्मभिः। अभियोगे च साक्ष्ये वा दुष्टः स परिकीर्त्तितः ॥१५॥

जो इधर उधर घूमाकरे, गलफड़ोंको चाटा करे, जिसके ललाटपर पसीना होजाय, मुखका रङ्ग बदल जाय, जिसका मुख सूखजावे, कण्ठका स्वर क्षीण होजावे; जो पूर्वापर विरुद्ध बातें कहताहोवे, यथार्थ उत्तर नहीं देसके, सामने नहीं देखसके, दांतोंसे ओठोंको चबावे; इस प्रकार जो मन वाणी और कर्म तथा स्वभावसे ही विकारको प्राप्त होते हैं वे अभियोग और गवाही देनेसे दुष्ट समझे जातेहैं ॥ १३-१५ ॥

सन्दिग्धार्थं स्वतन्त्रो यः साधयेद्यश्च निष्पतेत्। न चाहूतो वदेत्किञ्चिद्धीनो दण्ड्यश्च स स्मृतः१६

जो वादी प्रतिवादीके अस्वीकार करनेपर विना प्रमाण दियेहुए स्वतन्त्रतासे धन पानेकी चेष्टा करें; जो प्रतिवादी वादीका पावना प्रमाणित होनेपर उसका पावना नहीं देवें, और जो सभामें बुलायेजानेपर कुछ नहीं बोलें, वे लोग हारजावेंगे और दण्डके योग्यहोंगे ॥ १६ ॥

साक्षिषूभयतः सत्सु साक्षिणः पूर्ववादिनः। पूर्वपक्षेऽधरीभूते भवन्त्युत्तरवादिनः ॥ १७ ॥

दोनोंके साक्षी होवें तो पहिले वादीके साक्षियोंसे पूछना चाहिये; जब वादीका दावा कमजोर जान पड़े तब प्रतिवादीके साक्षियोंकी गवाही लेना चाहिये ॥ १७ ॥

✽ याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्याय-४४ श्लोक। धनीको चाहिये कि अपनेसे छोटी जातिका ऋणी ऋण नहीं देसके तो उससे काम करवाके और यदि ब्राह्मण ऋण नहीं देसके तो उससे धीरेधीरे (विना काम कराये हुए) अपना धन लेवे।

सपणश्चेद्विवादः स्यात्तत्र हीनं तु दापयेत् । दण्डं च स्वपणं चैव धनिने धनमेव च ॥ १८ ॥

यदि दोनों मनुष्य शर्त किये होवें कि जो हार जायगा वह इतना रुपया देगा तो हारनेवालेसे राजा अपना उचित दण्ड लेवे और जीतनेवालेको शर्तका रुपया दिलावे; यदि धनी जीत जावे तो उसका पावना भी दिलादेवे ॥ १८ ॥

छलं निरस्य भूतेन व्यवहारान्नयेन्नृपः । भूतमप्यनुपन्यस्तं हीयते व्यवहारतः ॥ १९ ॥
निह्नुते लिखितं नैकमेकदेशे विभावितः । दाप्यः सर्वं नृपेणार्थं न ग्राह्यस्त्वनिवेदितः ॥ २० ॥

राजा छलसे कहीहुई बातोंको छोड़कर वस्तुके तत्त्वको जानकर अभियोगोंका निर्णय करे; जिस वस्तुके तत्त्वका लेख पहिले नहीं हुआ हो वह वस्तु व्यवहारके मार्गसे हानिको प्राप्त होजातीहै ॥ १९ ॥ यदि वादीकी लिखाईहुई सब बातोंको प्रतिवादीने नहीं स्वीकार किया होवे और वादी उनमेंसे एक दोका भी प्रमाण देदेवे तो राजा वादीको सब दिलावे; जो बात नालिश करनेके समय वादीने नहीं लिखायी होवे उसको राजा स्वीकार नहीं करे ॥ २० ॥

स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान्व्यवहारतः । अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः ॥ २१ ॥

दो स्मृतियोंके मतभेदमें व्यवहारके अनुसार न्याय बलवान् है और अर्थशास्त्र (नीतिशास्त्र) से धर्मशास्त्र बली है ऐसी शास्त्रमर्यादा है ❀ ॥ २१ ॥

प्रमाणं लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्तितम् । एषामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते ॥ २२ ॥

दस्तावेज आदि लेख, दखल और गवाह, ये ३ प्रमाण हैं, जब इनमेंसे कोई नहीं होवे तब कोई शपथ कराना चाहिये ◎ ॥ २२ ॥

सर्वेष्वर्थविवादेषु बलवत्युत्तरा क्रिया । आधौ प्रतिग्रहे क्रीते पूर्वा तु बलवत्तरा ॥ २३ ॥

ऋण आदि सम्पूर्ण अर्थोंके विवादोंमें पिछला कार्य बलवान् होता है अर्थात् यदि वादी कहे कि प्रतिवादीने मुझसे सौ रुपया लिया है और प्रतिवादी कहै कि मैंने लिया था; किन्तु देदिया तो दोनोंके अपनी बातोंको प्रमाणित करनेपर पीछेवाले प्रतिवादीकी बात मानी जावेगी और बन्धक, प्रतिग्रह तथा वस्तुको मोल लेनेके विवादमें पहिला काम बलवान् होता है अर्थात् यदि एक वस्तुपर दो जगह करज लिया जाय, एक वस्तु दो मनुष्योंको दान दिया जाय अथवा एक वस्तु दोके हाथ बेंचा जाय तो पहिलेका किया काम जायज समझा जायगा ॥ २३ ॥

आगमोऽभ्यधिको भोगाद्विना पूर्वक्रमागतात् । आगमेऽपि बलं नैव भुक्तिः स्तोकापि यत्र नो ॥२७॥
आगमस्तु कृतो येन सोऽभियुक्तस्तमुद्धरेत् । न तत्सुतस्तत्सुतो वा भुक्तिस्तत्र गरीयसी ॥ २८ ॥

यदि किसीकी वस्तु पूर्व क्रमसे किसीके दखलमें नहीं चली आती हो तो दखलसे लेख बली समझा जायगा और जहां लेख हो; किन्तु (उसके अनुसार) कुछ भी दखल नहीं हो वहां लेखमें भी बल नहीं होगा ॥ २७ ॥ जिसने कोई वस्तु लिखवाकर दखलमें करली है, यदि वस्तुका स्वामी उसपर नालिश करे तो वह लेखपत्र दिखलावे; किन्तु उसके पुत्र या पौत्रपर नालिश होवे तो उसको लेखपत्र दिखलानेकी जरूरत नहीं है; उसका दखल ही श्रेष्ठ प्रमाण है ॥ २८ ॥

योऽभियुक्तः परेतः स्यात्तस्य रिक्थी तमुद्धरेत् । न तत्र कारणं भुक्तिरागमेन विना कृता ॥ २९ ॥

यदि अभियुक्त मरजावे तो उसका उत्तराधिकारी उस मुकदमेका उद्धार करे; ऐसे व्यवहारमें विना लेख आदिका दखल प्रमाणयोग्य नहीं है ॥ २९ ॥

नृपेणाधिकृताः पूगाः श्रेणयोऽथ कुलानि च । पूर्वं पूर्वं गुरु ज्ञेयं व्यवहारविधौ नृणाम् ॥ ३१ ॥

राजाके नियुक्तकियेहुए मनुष्य, नगरनिवासी जन समूह, एक व्यापार करनेवालेका समूह और अपने कुलका समूह, इनमें व्यवहारके अभियोगोंके निर्णयकरनेमें पिछलेवालोंसे पहिलेवाले श्रेष्ठ हैं; जैसे अपने कुलका पञ्च किसी अभियोगका निर्णय करे तो यदि वादी या प्रतिवादीको सन्तोष नहीं होवे तो एकां व्यापार करनेवाले पञ्चोंसे, उसके निर्णयसे भी सन्तोष नहीं होवे तो नगरवासी जनसमूहसे और उससे भी नहीं सन्तोष होय तो राजकर्मचारीसे अभियोगका निर्णय करावे ॥ ३१ ॥

❀ नारदस्मृति--१ विवादपद--१ अध्याय । राजाको उचित है कि धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र (नीतिशास्त्र) के अनुसार व्यवहारका विचार करे ॥ ३४ ॥ जहां धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्रमें विरोध देखपड़े वह अर्थशास्त्रको छोड़कर धर्मशास्त्रका वचन माने ॥ ३५ ॥

◎ वसिष्ठस्मृति--१६ अध्याय । लेख, गवाह और भोग; ये ३ प्रमाण हैं, इनसे प्रमाणित होनेपर धनी ऋणीसे अपना धन पाता है ॥ ७ ॥ नारदस्मृति-१ विवादपद ४ अध्याय । लेख, साक्षी और भोग; ये ३ प्रकारके प्रमाण कहेगये हैं ॥ २ ॥

▣ नारदस्मृति--१ विवादपद-४ अध्यायके २७ श्लोकमें प्राय: ऐसा ही है ।

गृहीतानुक्रमाद्दाप्यो धनिनामधमर्णिकः। दत्त्वा तु ब्राह्मणायैव नृपतेस्तदनन्तरम्॥ ४२॥

एक ऋणीके एक ही जातिके अनेक महाजन होवें तो जो जिस क्रमसे ऋण दिया होवे उसको उसी क्रमसे राजा ऋण दिलावे; यदि एक ऋणीके अनेकवर्णके अनेक महाजन होवें तो प्रथम ब्राह्मणको तब क्रमसे क्षत्रिय आदिको दिलावे॥ ४२॥

दीयमानं न गृह्णाति प्रयुक्तं यः स्वकं धनम्। मध्यस्थस्थापितं चेत्स्याद्वर्द्धते न ततः परम्॥ ४५॥

जब ऋणीके देनेपर धनी अपना धन नहीं लेवे तो ऋणीको चाहिये कि किसी मध्यस्थके पास वह धन रखदेवे; ऐसा करनेसे उसके पश्चात् उस धनका व्याज उसको नहीं देना पडेगा॥ ४५॥

अविभक्तैः कुटुम्बार्थे यदृणं तु कृतम्भवेत्। दद्युस्तदृक्थिनः प्रेते प्रोषिते वा कुटुम्बिनि॥ ४६॥
न योषित्पतिपुत्राभ्यां न पुत्रेण कृतम्पिता। दद्यादृते कुटुम्बार्थान्न पतिः स्त्रीकृतं तथा॥ ४७॥

इकट्ठेरहनेवाले जो लोग कुटुम्बके भरण पोषणके लिये ऋण लेतेहैं वह ऋण गृहका स्वामी देवे; जब गृहका स्वामी मरजावे अथवा परदेशमें चलाजावे तब वह ऋण उसके धनमें भाग लेनेवाले लोग देवें॥ ४६॥ पति और पुत्रका लिया ऋण स्त्री नहीं देवे; पुत्रका लिया ऋण पिता और स्त्रीका लिया ऋण पति नहीं देवे; किन्तु जब कुटुम्बके पालनके लिये कोई ऋण लेवेगा तब वह सब कुटुम्बीको देना पड़ेगा॥ ४७॥

प्रतिपन्नं स्त्रिया देयं पत्या वा सह यत्कृतम्। स्वयं कृतं वा यदृणं नान्यत्स्त्री दातुमर्हति॥ ५०॥
पितरि प्रोषिते प्रेते व्यसनाभिप्लुतेपि वा। पुत्रपौत्रैर्ऋणं देयन्निह्नवे साक्षिभावितम्॥ ५१॥
रिक्थग्राह ऋणन्दाप्यो योषिद्ग्राहस्तथैव च। पुत्रोनन्याश्रितद्रव्यः पुत्रहीनस्य रिक्थिनः॥ ५२॥

अपने स्वीकार कियेहुए, पतिके सङ्ग लियेहुए तथा स्वयं लियेहुए ऋणको स्त्री देवे; अन्य ऋणको नहीं॥ ५०॥ जब पिता परदेशमें चलागया होवे, यद्वा मरगयाहो अथवा रोग आदि किसी व्यसनमें फँसगया होवे तब उसका ऋण उसका पुत्र और पौत्र देवे, यदि वे अस्वीकार करेंगे तो साक्षियोंसे प्रमाणित होनेपर उनको देना पडेगा॥ ५१॥ जो जिसकी सम्पत्ति अथवा स्त्रीको ले उसका ऋण उससे जिसका धन पुत्रको मिले उसका ऋण उसके पुत्रसे और अपुत्र मनुष्यका ऋण उसके धन लेनेवालेसे राजा दिलादेवे *॥ ५२॥

यः कश्चिदर्थो निष्णातः स्वरुच्या तु परस्परम्। लेख्यं तु साक्षिमत्कार्यं तस्मिन्धनिकपूर्वकम्॥८६॥
समामासतदर्धाहर्नामजातिस्वगोत्रकैः। सब्रह्मचारिकात्मीयपितृनामादिचिह्नितम्॥ ८७॥
समाप्ते तु ऋणी नाम स्वहस्तेन निवेशयेत्। मतम्मेऽमुकपुत्रस्य यदत्रोपरि लेखितम्॥ ८८॥
साक्षिणश्च स्वहस्तेन पितृनामकपूर्वकम्। अत्राहममुकः साक्षी लिखेयुरिति ते समाः॥ ८९॥
उभयाभ्यर्थितेनैतन्मया ह्यमुकसूनुना। लिखितं ह्यमुकेनेति लेखकोन्ते ततो लिखेत्॥ ९०॥
विनापि साक्षिभिर्लेख्यं स्वहस्तलिखितं तु यत्। तत्प्रमाणं स्मृतं लेख्यं बलोपधिकृतादृते॥ ९१॥

धनी और ऋणलेनेवालेके बीच जो जो बात ठहर गई होवे उन्हें साक्षीके सहित लेखपत्रमें लिखावे लेखमें पहिले धनीका नाम रहे॥ ८६॥ लेखपत्रमें वर्ष, महीना, पक्ष, दिन, नाम, जाति, गोत्र, उपनाम बह्वृच कठ आदि ब्रह्मचारीके नाम और पिताका नाम आदि लिखना चाहिये॥ ८७॥ लेखपत्र लिखाजानेपर उसके नीचे ऋण अपने हाथसे अपना नाम लिखकर ऐसा लिखे कि जो इस पत्रमें ऊपर लिखा है वह अमुकके पुत्र मुझको स्वीकार है॥ ८८॥ साक्षी भी अपने हाथसे यह लिखे कि अमुकका पुत्र मैं इस व्यवहारमें साक्षी हूँ; समसाक्षी होने चाहिये विषम नहीं॥ ८९॥ लेखपत्र (दस्तावेज) लिखनेवालेको चाहिये कि लेखके अन्तमें लिखदेवे कि अमुकके पुत्र अमुक मैंने ऋणी और धनीके कहनेपर यह लेखपत्र लिखा॥ ९०॥ ऋणीके हाथका लिखाहुआ लेखपत्र विना साक्षीका भी प्रमाण योग्य होता है किन्तु बलात्कार या छल आदि उपाधिसे लिखायाहुआ नहीं॥ ९१॥

ऋणं लेख्यकृतन्देयं पुरुषैस्त्रिभिरेव तु। आधिस्तु भुज्यते तावद्यावत्तन्न प्रदीयते॥ ९२॥

लेख लिखकर लियेहुए ऋणको तीनपीढ़ीतक देना पड़ता है; बन्धककी वस्तु जबतक ऋण चुकाया नहीं जाता तबतक धनीके पास रहतीहै॥ ९२॥

---

* मनुस्मृति–८ अध्याय–१६६–१६७ श्लोक। जब कोई मनुष्य सकुटुम्बके पालन पोषणके लिये किसीसे ऋण लेकर मरजावे तब एकत्र अथवा अलग अलग रहनेवाले कुटुम्बके सब लोग उस ऋणको देवें। यदि कोई सेवक अपने स्वामीके कुटुम्बके पालनके लिये किसी धनीसे ऋण लेवे तो उसका स्वामी, चाहे वह देशमें हो या परदेशमें, वह ऋण देवे (आगे नारद स्मृतिमें देखिये)।

देशान्तरस्थे दुर्लेख्ये नष्टोन्मृष्टे हृते तथा। भिन्ने दग्धेऽथ वा छिन्ने लेख्यमन्यत्तु कारयेत् ॥ ९३ ॥
सन्दिग्धलेख्यशुद्धिः स्यात्स्वहस्तलिखितादिभिः । युक्तिप्राप्तिक्रियाचिह्नसम्बन्धागमहेतुभिः॥९४॥
लेख्यस्य पृष्ठेऽभिलिखेद्दत्त्वा दत्त्वर्णिको धनम्। धनी वोपगतन्दद्यात्स्वहस्तपरिचिह्नितम् ॥ ९५ ॥
दत्त्वर्णं पाटयेल्लेख्यं शुद्धचै वान्यत्तु कारयेत्। साक्षिमच्च भवेद्यद्वा तद्दातव्यं ससाक्षिकम् ॥ ९६ ॥

ऋणीको उचित है कि यदि लेखपत्र देशान्तरमें हो, यथार्थ नहीं लिखाहो, नष्ट होजावे, विसजावे, चोरी होजावे,फटजावे जलजावे या कटजावे तो दूसरा लिखदेवे॥९३॥लेखमें सन्देह होय तो अपने लिखेहुए दूसरे पत्रसे मिलाकर, युक्ति, प्राप्ति,क्रिया,चिह्न,सम्बन्ध और आगमसे निश्चय करे❀॥९४॥ऋणी जब ऋणका रुपया धनीको देवे तब लेखपत्रकी पीठपर लिख दियाकरे अथवा धनी जब जितना रुपया पावे तब अपने हाथसे उसकी रसीद लिखकर ऋणीको देवे ॥ ९५ ॥ ऋणी जब ऋण चुकादेवे तो लेखपत्रको फाडडाले अथवा भरपाई लिखालेवे यदि पत्रमें साक्षी होवें तो उनके सामने ऋण चुकावे ॥ ९६ ॥

तुलाग्न्यापो विषं कोशो दिव्यानीह विशुद्धये। महाभियोगेष्वेतानि शीर्षकस्थेभियोक्तरि ॥ ९७ ॥
रुच्या वान्यतरः कुर्यादितरो वर्तयेच्छिरः। विनापि शीर्षकात्कुर्यान्नृपद्रोहेथ पातके ॥ ९८ ॥

शुद्धिके लिये तुला, अग्नि, जल, विष और कोश, ये ५ प्रकारके शपथ हैं; ◎ बड़े बड़े अभियोगोंमें जब वादी दण्ड स्वीकारकरे अर्थात् कहै कि प्रतिवादी सच्चा ठहरेगा तो मैं इतना दण्ड दूंगा तब प्रतिवादीको शपथ देना चाहिये ॥ ९७ ॥ वादी और प्रतिवादी आपसमें सम्मति करके कोई एक शपथ करे और दूसरा धनदण्ड या शरीरदण्ड स्वीकार करे; राजद्रोह और महापातकके अभियोगमें विना दण्ड स्वीकारका भी शपथ करे ॥ ९८ ॥

सचैलं स्नातमाहूय सूर्योदय उपोषितम्। कारयेत्सर्वदिव्यानि नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥ ९९ ॥
तुलास्त्रीबालवृद्धान्धपङ्गुब्राह्मणरोगिणाम्। अग्निर्जलं वा शूद्रस्य यवाः सप्त विषस्य च ॥ १०० ॥
नासहस्राद्धरेत्फालं न विषं न तुलां तथा। नृपार्थेष्वभिशापे च वहेयुः शुचयः सदा ॥ १०१ ॥

सभासदको चाहिये कि शपथ करनेवालेको पहिले दिन उपवास कराके प्रातःकाल वस्त्रोंसहित स्नान करावे और राजा और ब्राह्मणोंके सामने उससे शपथ करावे ॥ ९९ ॥ स्त्री, बालक, वृद्ध,अन्धा; पङ्गु, ब्राह्मण और रोगीको तुलाका; क्षत्रियको अग्निका; वैश्यको जलका और शूद्रको ७ यव विषका शपथ कराना चाहिये ▩ ॥ १०० ॥ एक हजार पणसे कमके विवादमें अग्नि, विष और तुलाका शपथ नहीं करावे; किन्तु राजद्रोह और महापातकके अभियोगमें कमके विवादमें भी इन शपथोंको करावे ॥ १०१ ॥

तुलाधारणविद्भिरभियुक्तस्तुलाश्रितः। प्रतिमानसमीभूतो रेखां कृत्वावतारितः ॥ १०२ ॥
त्वं तुले सत्यधामासि पुरा देवैर्विनिर्मिता। तत्सत्यं वद कल्याणि संशयान्मां विमोचय ॥ १०३ ॥
यद्यस्मि पापकृन्मातस्ततो मां त्वमधो नय। शुद्धश्चेद्गमयोर्ध्वं मां तुलामित्यभिमन्त्रयेत् ॥ १०४ ॥

तुलाशपथ करनेवालेको तुलाके एक पलरेमें बैठाकर और दूसरे पलरेमें कोई वस्तु रखकर चतुर मनुष्य-से तौलवा लेवे; शपथ करनेवाला तुलासे उतरकर इस प्रकारसे तुलाकी प्रार्थना करे कि हे तुले ! तू सत्यका स्थान है, देवताओंने तुझे पहले रचाहै इसलिये हे कल्याणि ! सत्य कहो और संसयसे मुझे छुड़ावो, हे मातः ! यदि मैं पापकर्मा हूं तो मुझे नीचे करो और जो मैं शुद्ध हूं तो ऊपरको पहुंचावो अर्थात् मेरे पलरेको ऊंचा करो ❋ ॥ १०२–१०४ ॥

करौ विमृदितव्रीहेर्लक्षयित्वा ततो न्यसेत्। सप्ताश्वत्थस्य पत्राणि तावत्सूत्राणि वेष्टयेत् ॥ १०५ ॥
त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि पावक । साक्षिवत्पुण्यपापेभ्यो ब्रूहि सत्यं कवे मम ॥ १०६ ॥
तस्येत्युक्तवतो लौहं पञ्चाशत्पलिकं समम्। अग्निवर्णं न्यसेत्पिण्डं हस्तयोरुभयोरपि ॥ १०७ ॥
स तमादाय सप्तैव मण्डलानि शनैर्व्रजेत्। षोडशांगुलकं ज्ञेयं मण्डलं तावदन्तरम् ॥ १०८ ॥
मुक्त्वाग्निम्मृदितव्रीहिरदग्धः शुद्धिमाप्नुयात्। अन्तरा पतिते पिण्डे सन्देहे वा पुनर्हरेत् ॥ १०९ ॥

❀ नारदस्मृति—१ विवादपद-४ अध्यायके ६८–७० श्लोकमें प्रायः ऐसा ही है।

◎ ये पाचों प्रकारके शपथका विधान आगे नारदस्मृतिमें विस्तारसे है।

▩ पितामहने कहाहै–ब्राह्मणको तुलाका, क्षत्रियको अग्निका, वैश्यको जलका और शूद्रको विषका शपथ कराना चाहिये (१)।

❋ आगे नारद स्मृतिमें देखिये।

अग्निके शपथ करनेवालेके हाथोंमें धान मलवा करके हाथोंके काले तिल आदि चिह्नोंको देखकर उनमें किसी रङ्गसे चिह्न करदेवे और अञ्जलीमें पीपलके सात पत्तोंको रखके डोरेसे हाथ और पत्तोंको सात फेरा बान्धदेवे ❀ ॥ १०५ ॥ शपथ करनेवाले कहैं कि हे अग्ने ! तुम सब भूतोंके अन्तःकरणमें वास करते हो, हे पावक ! हे कवे ! मेरे पुण्यपापको देखकर सत्य सत्य बतला दो ॥ १०६ ॥ उस समय अग्निके समान जलता हुआ ५० पलका लोहेका गोला शपथ करनेवालेकी अञ्जलीमें रखदेवे ॥ १०७ ॥ शपथकर्त्ता वह पिण्ड लेकर धीरे धीरे ७ मण्डलमें चले प्रतिमण्डलका प्रमाण १६ अंगुल और अन्तर भी १६ अंगुल होवे ॥ १०८ ॥ शपथ करनेवालेको चाहिये कि अग्निपिण्डको गिराकर हाथोंमें फिर व्रीहिको मले, यदि हाथ जला नहीं होगा तो वह शुद्ध समझा जायगा, यदि लोहेका पिण्ड बीचहीमें गिरपड़े अथवा जलने या नहीं जलनेमें सन्देह होय तो पिण्डको फिर उठाकर परीक्षा देवे ॥ १०९ ॥

सत्येन माभिरक्ष त्वं वरुणेत्यभिशाप्य कम् । नाभिदघ्नोदकस्थस्य गृहीत्वोरू जलं विशेत् ॥ ११० ॥
समकालमिषुम्मुक्तमानीयान्यो जवी नरः । गते तस्मिन्निमग्नाङ्गं पश्येच्चेच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥ १११ ॥

जलका शपथ करनेवालेको उचित है कि हे वरुण ! तू सत्यसे मेरी रक्षा कर इस मन्त्रसे जलकी प्रार्थना करे और नाभीतक जलमें खड़हुए एक मनुष्यकी जङ्घाको पकड़के जलमें डूबा रहे, उसी समय एक मनुष्य बाण चलावे, जबतक वेगसे चलनेवाला मनुष्य जाकर उस बाणको लेआवे तबतक यदि शपथकर्त्ता जलमें डूबा ही रहे तो उसको सच्चा जानना चाहिये ॥ ११०-१११॥

त्वं विष ब्रह्मणः पुत्रः सत्यधर्मे व्यवस्थितः । त्रायस्वास्मादभीशापात्सत्येन भव मेऽमृतम् ॥ ११२॥
एवमुक्त्वा विषं शार्ङ्गं भक्षयेद्धिमशैलजम् । यस्य वेगैर्विना जीर्येच्छुद्धिं तस्य विनिर्दिशेत् ॥ ११३ ॥

विषसे शपथ करनेवाला इस भांति विषकी प्रार्थना करे कि हे विष ! तुम ब्रह्माके पुत्र हो और सत्य धर्ममें स्थित हो, मुझको इस कलङ्कसे बचाओ और मेरे सत्यसे अमृतरूप हो जाओ इसके बाद हिमालयसे उत्पन्न शार्ङ्गविष (सिंगिया माहुर) खावे; यदि विष विना कष्टके पचजावे तो उसको सच्चा जानना चाहिये ❀❀॥ ११२-११३॥

देवानुग्रान्समभ्यर्च्य तत्स्नानोदकमाहरेत् । संश्राव्य पाययेत्तस्माज्जलात्सप्रसृतित्रयम् ११४ ॥
अर्वाक् चतुर्दशादह्नो यस्य नो राजदैविकम् । व्यसनं जायते घोरं स शुद्धः स्यान्न संशयः ॥ ११५ ॥

कोशशपथ लेनेके समय सभासदको चाहिये कि किसी कठोरदेवताकी पूजा करके उसके स्नानका जल लेआवे; उसकी प्रार्थनाकर उसमेंसे ३ पसर शपथकरनेवालेको पिला देवे; यदि १४ दिनके भीतर राजा अथवा देवद्वारा उसको कोई भारी पीडा नहीं होवे तो निःसन्देह उसको शुद्ध जाने ॥ ११४-११५ ॥

(२६) नारदस्मृति-१ विवादपद-३ अध्याय ।

पितर्युपरते पुत्रा ऋणं दद्युर्यथांशतः । विभक्ता वाविभक्ता वा यस्तामुद्वहते धुरम् ॥ २ ॥
पितृव्येणाविभक्तेन भ्रात्रा वा यदृणं कृतम् । मात्रा वा यत्कुटुम्बार्थे दद्युस्तद्रिक्थिनोऽखिलम् ॥३॥
क्रमादव्याहतं प्राप्तं पुत्रैर्यन्नर्णमुद्धृतम् । दद्युः पैतामहं पौत्रास्तच्चतुर्थान्निवर्त्तते ॥ ४ ॥
इच्छन्ति पितरः पुत्रान्स्वार्थहेतोर्यतस्ततः । उत्तमर्णाधमर्णेभ्यो मोक्षयिष्यंति ये हि नः ॥ ५ ॥
अतः पुत्रेण जातेन स्वार्थमुत्सृज्य यत्नतः । पिता ऋणान्मोचनीयो यथा न नरकं व्रजेत् ॥ ६ ॥
तज्जमाधिकमादाय स्वामिने न ददाति यः । स तस्य दासो भृत्यः स्त्री पशुर्वा जायते गृहे ॥ ७ ॥
याच्यमानं न दीयेत ऋणं वापि प्रतिग्रहम् । तद्धनं वर्धते तावद्यावत्कोटिशतं भवेत् ॥ ८ ॥

पिताके मरनेपर पुत्रलोग अपने भागके अनुसार उसका लिया ऋण देवें; पिताके साथमें रहताहोवे अथवा अलग होवे जो उसके स्थानपर कायम हो वह उसका लिया ऋण देवे ॥ २ ॥ एकत्र रहनेवाला चाचा वा भाई अथवा माता यदि कुटुम्बके पालन करनेके लिये ऋण लेवें तो सब हिस्सेदार उस ऋणको देवें ॥ ३ ॥ पिताका ऋण पुत्र नहीं देसकें तो पोते देवें; चौथी पीढीमें पोतेके पुत्रसे धनी बलसे ऋण नहीं लेसकेगा ॥ ४ ॥ पितरगण अपने स्वार्थकेलिये ऐसी इच्छा करतेहैं कि कोई पुत्र ऋण देकर धनीसे हम लोगोंको छुड़ावे इसलिये पुत्रोंको उचित है कि अपने स्वार्थको छोडकर यत्नपूर्वक पिताका लिया ऋण देके

❀ पितामहस्मृति--पीपलके सात पत्ते, अक्षत, फूल और दही; शपथ करनेवालेके हाथपर रखकर सूतसे बान्धदेवे (३) ।

❀❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय-१०० श्लोक । शूद्रको ७ यव विषका शपथ कराना चाहिये । बृहद्विष्णुस्मृति-१३ अध्यायके २-४ अङ्क । हिमालयसे उत्पन्न शार्ङ्गविषको छोडकर अन्य विषको नहीं देना चाहिये । ७ यव विष घीमें मिलाकर अभियुक्तको देना चाहिये । (आगे नारदस्मृतिमें देखिये) । पितामहस्मृति । विषसे शपथ करनेवालेको सींग, वत्सनाभ अथवा हिमालयसे उत्पन्न शार्ङ्गविष देवे ॥ ८ ॥

उसको नरकमें जानेसे बचावे ॥ ५-६ ॥ जो मनुष्य धनीका ऋण नहीं देताहै वह दास, भृत्य, स्त्री अथवा पशु होकर उसके घर रहता है ॥ ७ ॥ ऋण अथवा दान दियाहुआ घर नहीं देनेसे सौकरोड तक बढताहै ॥ ८ ॥

कोटिशते तु संपूर्णे जायते तस्य वेश्मनि । ऋणसंशोधनार्थाय दासो जन्मनिजन्मनि ॥ ९ ॥
तपस्वी वाग्निहोत्री वा ऋणवान्म्रियते यदि । तपश्चैवाग्निहोत्रं च तत्सर्वं धनिनां धनम् ॥ १० ॥

सौकरोड़ पूरा होनेपर वह ऋण चुकानेके लिये उसके घर अनेक जन्मतक दास होकर रहताहै ॥ ९ ॥ यदि तपस्वी अथवा अग्निहोत्री विना ऋण चुकायेहुए मरजाताहै तो तपस्वीके तप और अग्निहोत्रीके अग्निहोत्रका फल धनीको मिलताहै ॥ १० ॥

न पुत्रर्णं पिता दद्याद्दद्यात्पुत्रस्तु पैतृकम् । कामक्रोधसुराद्यूतप्रातिभाव्यकृतं विना ॥ ११ ॥
पितुरेव नियोगाद्यः कुटुम्बभरणाय वा । ऋणं वा यत्कृतं कृच्छ्रे दद्यात्पुत्रस्य तत्पिता ॥ १२ ॥
शिष्यान्तेवासिदासस्त्रीप्रेष्यकृत्यकरैस्तु यत् । कुटुम्बहेतोरुत्क्षिप्तं वोढव्यं तत्कुटुम्बिना ॥ १३ ॥
न स्त्री पतिकृतं दद्यादृणं पुत्रकृतं तथा ॥ १७ ॥
न भार्यया कृतमृणं कथञ्चित्पत्युरापतेत् ॥ १९ ॥
आपत्कृताहते पुंसां कुटुम्बे च तथाश्रयम् । पुत्रिणी तु समुत्सृज्य पुत्रं स्त्री यान्यमाश्रयेत् ॥ २० ॥

पुत्रका किया ऋण पिता नहीं देवे; किन्तु पिताका किया ऋण पुत्र देवे; परन्तु व्यभिचारकेलिये, क्रोधसे, सुरापानकेलिये, जूआकेलिये कियेहुए ऋणको तथा जामिनके रुपयेको पुत्र नहीं देवे ॥ ११ ॥ पिताकी आज्ञासे, कुटुम्ब पालनकेलिये अथवा कष्टके समय पुत्रकेकिये ऋणको पिता देवे ॥ १२ ॥ किसी कुटुम्बपालनकेलिये यदि वेदादिपढनेवाला शिष्य, शिल्पविद्या-पढनेवाला शिष्य, दास, स्त्री अथवा दूत आदिने ऋण कियाहोवे तो उस कुटुम्बके सब लोग वह ऋण देवें ॥१३॥ पतिका किया ऋण स्त्री और पुत्रका किया ऋण माता नहीं देवे॥१७॥ स्त्रीका किया ऋण पति नहीं देवे; किन्तु आपत्कालमें अथवा कुटुम्बपालनेके लिये स्त्रीका किया ऋण पति देवे ॥ १९-२० ॥

तस्या धनं हरेत्सर्वं निःस्वायाः पुत्र एव तु । या तु सप्रधनैव स्त्री सापत्या चान्यमाश्रयेत् ॥ २१ ॥
सोऽस्या दद्यादृणं भर्तुरुत्सृजेद्वा तथैव ताम् । भार्या स्नुषा प्रस्नुषा च भार्या यश्च प्रतिग्रहः ॥ २२ ॥
एतान्हरन्नृणं दाप्यो भूमिं यश्चोपजीवति । दारमूलाः क्रियाः सर्वा वर्णानामनुपूर्वशः ॥ २३ ॥
यो यस्य हरते दारान्स तस्य हरते धनम् । अधनस्य ह्यपुत्रस्य मृतस्योपैति चेत्स्त्रियम् ॥ २४ ॥
ऋणं वोढुः स भजते सैव तस्य धनं स्मृतम् ॥ २५ ॥

पुत्रवाली स्त्री यदि अपने पुत्रको छोडकर दूसरा पति करलेवे तो उसका सब धन पुत्र लेवे ॥२०-२१॥ यदि स्त्री धन और पुत्रके सहित दूसरे पतिके पास चली जावे तो उसका दूसरा पति उसके पहिले पतिका किया ऋण देवे अथवा उस स्त्रीको उस प्रकारसे त्याग देवे ॥ २१-२२॥ जो जिसकी स्त्री पतोहू, अथवा पुत्रकी पतोहूको अपनी भार्या बनावेगा और उसकी भूमि लेगा वही उसका कियाहुआ ऋण देवेगा ॥ २२-२३ ॥ सब वर्णोंको सब क्रियाका मूल स्त्री ही है; जो जिसकी स्त्रीको लेता है वही उसका धन लेनेवाला समझाजाताहै ॥ २३-२४ ॥ पुत्ररहित निर्धन मनुष्यके मरजानेपर जो उसकी स्त्रीको लेगा वही उसका कियाहुआ ऋण देवेगा; क्योंकि उसका धन स्त्री ही है ❀ ॥ २४-२५ ॥

९ अध्याय ।

धटोऽग्निरुदकं चैव विषं कोशश्च पञ्चमम् । आहुः पञ्चैव दिव्यानि दूषितानां विशोधनम् ॥ ११० ॥
वर्षासु समये वह्निः शिशिरे तु घटः स्मृतः ॥ ११३ ॥
ग्रीष्मे तु सलिलं प्रोक्तं विषं काले तु शीतले । ब्राह्मणस्य घटो देयः क्षत्रियस्याग्निरुच्यते ॥११४॥
वैश्ये तु सलिलं देयं विषं शूद्रे प्रदापयेत् ॥ ११५ ॥
अग्नौ तोये विषे चैव परीक्ष्येतोर्जितान्नरान् । बालवृद्धातुरांश्चैव परीक्ष्येत घटे सदा ॥ ११६ ॥

तुला, अग्नि जल, विष और कोश ❁ ये ५ प्रकारके शपथ दूषितलोगोंके शोधनके लिये कहेगयेहैं ॥ ११० ॥ वर्षाकालमें अग्निका शपथ, शिशिरमें तुलाका शपथ, ग्रीष्मकालमें जलका शपथ और शीतकालमें विषका शपथ कराना चाहिये ॥ ११३-११४ ॥ ब्राह्मणको तुलाका शपथ, क्षत्रियको अग्निका शपथ, वैश्यको जलका शपथ और शूद्रको विषका शपथ देना चाहिये ॥ ११४-११५ ॥ अग्नि, जल और विषके शपथसे बलवान् मनुष्यकी और तुलाके शपथसे बालक, वृद्ध और रोगीकी परीक्षा करनी चाहिये ॥ ११६ ॥

❀ पहिले याज्ञवल्क्यस्मृतिमें ऋणके जिम्मेदारोंको देखिये ।

❁ पहिले याज्ञवल्क्यस्मृतिमें भी इन ५ प्रकारके शपथोंका विधान लिखा गया है । पितामहस्मृतिमें है कि तुला, अग्नि, जल, विष, कोश, तण्डुल और तपाया माष ये ७ प्रकारके शपथ हैं (७) ।

न शीते जलशुद्धिः स्यान्नोष्णकालेऽग्निशोधनम्। न प्रावृषि विषं दद्यान्न धटं चातिमारुते ॥११७॥
कुष्ठिनां वर्जयेदग्निं सलिलं श्वासकासिनाम्। पित्तश्लेष्मवतां चैव विषं तु परिवर्जयेत् ॥ ११८॥

शीतकालमें जलका, गरमीके दिनोंमें अग्निका, वर्षाकालमें विषका और बहुत वायु बहनेके समय तुलाका शपथ नहीं कराना चाहिये ॥ ११७ ॥ कोढीको अग्निका, श्वासकास रोगवालेको जलका और पित्त श्लेष्मा रोगवालेको विषका शपथ करना उचित नहीं है ॥ ११८ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि धटस्य विधिमुत्तमम्। राजा च प्राड्विवाकश्च यथा तं कारयेन्नरम् ॥११९॥
धटस्य पादादूर्ध्वं तु चतुर्हस्तौ प्रकीर्तितौ। पञ्चहस्ता तुला कार्या द्विहस्ता चार्गला स्मृता॥१२०॥
कारयेत चतुर्हस्तां समां लक्षणलक्षिताम्।तुलां काष्ठमयीं राजा शिक्यप्रान्तावलम्बिनीम् ॥ १२१ ॥
दक्षिणोत्तरसंस्थानावुभावेकत्र सम्मतौ। स्तम्भौ कृत्वा समे देशे तयोः संस्थापयेत्तुलाम् ॥१२२॥
आयसेन तु पाशेन मध्ये संगृह्य धर्मवित्। योजयेत्तां सुसंयुक्तां तुलां प्रागपरायताम् ॥ १२३ ॥
सुवर्णकारा वणिजः कुशलाः कांस्यकारकाः। अवेक्षेरन्धटतुलां तुलाधारणकोविदः ॥ १२४ ॥
शिक्यद्वयं समासज्य धटकर्कटके दृढे। एकत्र शिक्ये पुरुषमन्यत्र तुलयेच्छिलाम् ॥ १२५ ॥
तोलयित्वा नरं पूर्वं चिह्नं कृत्वा धटस्य तु। कक्षास्थाने तयोस्तुल्यामवतार्य ततो धटात् ॥ १२६॥
अर्चयित्वा धटं पूर्वं गन्धमाल्यैस्तु बुद्धिमान्। समयैः परिगृह्याथ पुनरारोपयेन्नरम् ॥ १२७ ॥
धर्मपर्यायवचनैर्धट इत्यभिधीयते। त्वमेव देव जानीषे न विदुर्यानि मानुषाः ॥ १२८ ॥
व्यवहाराभिशस्तोयं मानुषस्तोल्यते त्वयि। तदेनं संशयादस्माद्धर्मतस्त्रातुमर्हसि ॥ १२९ ॥
ततश्चारोपयेद्राजा तत्कार्यं प्रतिपद्यते। तुलितो यदि वर्द्धेत न स शुद्धो भवेन्नरः ॥ १३० ॥
तत्समो हीयमानो वा स वै शुद्धो भवेन्नरः। शिक्यच्छेदेक्षभङ्गे च पुनरारोपयेन्नरम् ॥ १३१ ॥

तुलाके शपथकी उत्तम विधि कहता हूँ, इसको राजा तथा न्यायकर्ता इसप्रकारसे मनुष्यको करावे ॥११९॥ तराजूके दोनों पलरोंके ऊपर चारचार हाथकी रस्सी, ५ हाथ लम्बी तराजूकी डंडी और दो हाथ लंबा डंडीके मध्यका अंकुश बनावे ॥ १२० ॥ लक्षणसे युक्त काठके चारचार हाथ घेरेके एकसमान दो पलरे बनवाकर डंडीमें अलग अलग सिकहरके समान लटकादेवे ॥ १२१ ॥ एक स्थानमें एक दक्षिण ओर और दूसरा उत्तर ओर खंभे गाडे दोनों शिर झुककरके मिलेरहें; दोनोंके बीचमें तराजूको स्थापन करे ॥ १२२ ॥ धर्मज्ञ मनुष्य मध्यवाली लोहेकी कडीमें पूर्व और पश्चिमकी ओर करके तराजूको लटकादेवे ॥ ॥ १२३ ॥ तौलनेमें चतुर सोनार, वनिया अथवा कंसेरा तराजूके तौलको देखे ॥ १२४ ॥ तुलाके दृढ़ अंकुशमें दोनों पलडा लटका देवे; एक पलडेपर शपथ करनेवाले मनुष्यको चढावे और दूसरे पलडेपर पत्थरको रक्खे ॥ १२५ ॥ पूर्ववाले पलडेपर मनुष्यको तौलकर जब दोनों पलडे बराबर होजावें तब पलडेपर चिह्न देके मनुष्यको पलड़ेसे उतार लेवे ॥ १२६ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य प्रथम गन्ध और मालासे तुलाका पूजन करके फिर शपथ करनेवाले मनुष्यको उसपर चढ़ावे ॥ १२७ ॥ उस समय ऐसा कहै कि हे तुला! धर्मका पर्यायवाची शब्द धट कहा गया है; जो बात मनुष्य नहीं जानते हैं वह तुम जानती हो ॥ १२८ ॥ व्यवहारमें दूषित इस मनुष्यको हम तुमपर तौलते हैं तुम इसको यथाधर्म संशयसे रक्षा करो ॥ १२९ ॥ कार्यकी परीक्षाके लिये राजा उसको तुलापर चढ़ावे; यदि उसका पलड़ा नीचे रह जावे तो उसको दोषी समझे ॥ १३० ॥ यदि उसका पलड़ा बराबरमें रहै अथवा ऊपरको चढ़ जावे तो उसको शुद्ध जाने; यदि पलड़ेकी रस्सी टूटजाय या पलडा भङ्ग होजाय तो;फिरसे उस मनुष्यको तौले * ॥ १३१॥

६ अध्याय।

अतः परं प्रवक्ष्यामि लोहस्य विधिमुत्तमम्। यथा तं कारयेद्राजा अभिशापोर्जितान्नरान् ॥ १ ॥
कल्पयेत्तु नरः पूर्वं मण्डलानि तु सप्त वै। द्वात्रिंशदंगुलान्प्राहुर्मण्डलान्मण्डलान्तरम् ॥ २ ॥
सप्तभिर्मण्डलैरेवमंगुलानां शतद्वयम्। सचतुर्विंशति प्रोक्तं भूमेस्तु परिमाणतः ॥ ३ ॥

इसके उपरान्त अग्निके शपथकी उत्तम विधि कहता हूँ जिस प्रकारसे दूषित मनुष्यसे राजा करावे ॥ १ ॥ शपथ करनेवाला मनुष्य ७ मण्डल बनावे, एक मण्डलसे दूसरे मण्डलका अन्तर ३२ अंगुलका रहे अर्थात् प्रतिमण्डल १६ अंगुलका और अन्तर १६ अंगुलका रहे ॥ २ ॥ इस प्रकार ७ मण्डलके लिये २२४ अंगुल भूमिका प्रमाण कहा है ॥ ३ ॥

* पहिले याज्ञवल्क्यस्मृतिमें–तुला आदि शपथोंका विधान देखिये। पितामहस्मृति–यदि शपथ करनेवाला तौलमें बढ़ जाय तो निःसन्देह उसको शुद्ध जाने और यदि बराबर होय अथवा घटजावे तो उसको अशुद्ध जाने (२)।

मण्डलेष्वनुलिप्तेषु सोपवासः शुचिर्नरः । उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा प्रसारितभुजद्वयः ॥ ५ ॥
सप्तस्वश्वत्थपत्रेषु ससूत्रेषु तदुत्तरम् । हुताशतप्तलोहस्य पञ्चाशत्पलिकं समम् ॥ ६ ॥
हस्ताभ्यां पिण्डमादाय मण्डलानि शनैर्व्रजेत् । न मण्डलमतिक्रामेन्नाप्यर्वाक्स्थापयेत्पदम् ॥ ७ ॥
नीत्वानेन विधानेन मण्डलानि यथाक्रमम् । सप्तमं मण्डलं गत्वा महीपृष्ठे निधापयेत् ॥ ८ ॥
यदि स स्याच्च निर्दग्धस्तमशुद्धं विनिर्दिशेत् । न दग्धः सर्वतो यस्तु स शुद्धः स्यान्न संशयः ॥९॥
भयाद्वा पातयेद्यस्तु दग्धो वा न विभाव्यते । पुनस्तमाहरेल्लोहं समयस्याविशोधनात् ॥ १० ॥
त्वमग्ने सर्वभूतानामंतश्चरसि साक्षिवत् । त्वमेव देव जानीषे न विदुर्यानि मानवाः ॥ ११ ॥
व्यवहाराभिशस्तोयं मानुषः शुद्धिमिच्छति । तदेनं संशयादस्माद्धर्मतस्त्रातुमर्हसि ॥ १२॥

वह मनुष्य उपवास करके पवित्र होकर उस लीपेहुए मण्डलमें उत्तर अथवा पूर्व ओर मुख करके दोनों हाथ पसारकर खड़ा होवे ॥ ५ ॥ अन्य मनुष्य पीपलके ७ पत्ते उसके हाथोंपर रखके सूतसे बान्धदेवे, उसके पश्चात् आगमें तपायाहुआ ५० गण्डे भरका लोहेका पिण्ड उसके दोनों हाथोंमें रखदेवे, शपथ करनेवाला धीरे धीरे मण्डलोंमें चले, किसी मण्डलको नहीं लांघे और मण्डलके बीचकी भूमिपर पांव नहीं रक्खे ॥ ६-७ ॥ इस प्रकार यथाक्रमसे सातवें मण्डलमें जाकर लोहेके पिण्डको भूमिपर रखदेवे ॥ ८ ॥ यदि उसका हाथ जलजावे तो उसको दोषी जानना और यदि किसी प्रकार नहीं जले तो उसको निःसन्देह शुद्ध समझना चाहिये ॥ ९ ॥ यदि भयसे लोहपिण्ड बीचमें ही गिरपड़े अथवा हाथ जलने नहीं जलनेके विषयमें सन्देह होवे तो शपथ करनेवाला अपनी शुद्धि दिखानेके लिये फिरसे लोहपिण्ड ग्रहण करके परीक्षा देवे ॥ १० ॥ परीक्षाके समय ऐसा कहै कि हे अग्ने ! तुम सब जीवोंके भीतर साक्षीके समान रहते हो; हे देव ! जो मनुष्य नहीं जानते वह सब तुम जानते हो ॥ ११ ॥ व्यवहारमें दूषित यह मनुष्य अपनी शुद्धिकी इच्छा करताहै; संशयसे तुम इसकी रक्षा करो ॥ १२ ॥

७ अध्याय ।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि पानीयविधिमुत्तमम् । पानीये मज्जनं कार्यं शङ्कायां प्रतिपद्यते ॥ १ ॥
स्वच्छं जलं सुशीतं च जलौकःपङ्कवर्जितम् । विपुलं नातिगाढं च कुर्याद्दिव्यस्य निर्णयम् ॥ २ ॥
नाभेरूर्द्ध्वं निमज्जेत्तु ततोऽधस्ताद्विवर्जयेत् । नातिक्रूरेण धनुषा प्रेरयेत्सायकत्रयम् ॥ ३ ॥
क्रूरं धनुः सप्तशतं मध्यमं षट्शतं विदुः ॥ मन्दं पञ्चशतं ज्ञेयमेष ज्ञेयो धनुर्विधिः ॥ ४ ॥
अतिक्रूरातिमन्दाभ्यामिषुपातो यदा भवेत् । चतुःषष्टिपदां भूमिं तदा तस्य विनिर्दिशेत् ॥ ५ ॥
स्थिते तु बाणसम्पाते नरे साधकधारिणि । धार्मिके लघुसम्पाते द्विजातौ प्रतिवाश्रमे ॥ ६ ॥
देवताभ्यो नमस्कृत्य यमाय वरुणाय च । उदके स निमज्जेत्तु न दीर्घस्रोतसि क्वचित् ॥ ७ ॥
धर्मस्थानं ततः कुर्युः सप्त धर्मपरायणाः । धर्मशास्त्रविधानज्ञा रागद्वेषविवर्जिताः ॥ ८ ॥
मध्यमस्तु शरो यः स्यात्पुरुषेण बलीयसा । प्रत्यानीतस्य तस्याथ विशुद्धिमधिगच्छति ॥ ९ ॥
अन्यथा न विशुद्धः स्यादेकाङ्गस्यापि दर्शने । स्थानादन्यत्र वा गच्छेद्यस्मिन्पूर्वनिवेशितः ॥ १०॥
पुनस्तं मज्जयेत्प्राज्ञः समयस्याविशोधनात् । अच्छलेन यथा ज्ञेयो धर्माधर्मविचारकैः ॥ ११ ॥

जलके शपथकी उत्तम विधि कहताहूं; जिसमें दोषकी शङ्का होय वह जलमें गोता लगावे ॥ १ ॥ जो जल साफ, शीतल, जोंक और कीचड़से रहित हो और अत्यन्त गहिरा नहीं होवे उसमें जलका शपथ करे ॥ ॥ २ ॥ नाभीसे ऊपरतकके जलमें गोता लगावे नीचेतकमें नहीं; अतिक्रूर धनुषसे ३ बाण नहीं छोड़े ※ ॥३॥१०७ अंगुल अर्थात् ४ हाथ ११ अंगुल लम्बा क्रूरधनुष, १०६ अंगुलका मध्यम धनुष और १०५ अंगुल लम्बा मन्द धनुष कहलाताहै; इसप्रकार धनुषका विधान है ॥ ४ ॥ यदि अतिक्रूर अथवा अतिमन्द धनुषसे बाण छोड़ना होवे तो नियत स्थानसे ६४ पैर पीछे तथा आगे हटकर बाण छोड़े ॥ ५ ॥ बाण छोड़नेवाला और लेआनेवाला चतुर, धार्मिक, शीघ्रगामी और द्विजाति अथवा स्वजाति होना चाहिये ॥ ६ ॥ शपथ करने वाला यम और वरुणको नमस्कार करके जिस जलमें जोरसे धारा नहीं बहती होवे उसमें डुबकी लगावे ॥७॥ धर्मनिष्ठ धर्मशास्त्रके जाननेवाले, राग और द्वेषसे रहित ७ विद्वान् धर्मकी परीक्षामें स्थित रहें ॥ ८ ॥ जबतक

※ पितामहस्मृति-जलशपथ करनेवाला स्थिरजलमें गोता लगावे, जिसमें ग्राह हो अथवा थोड़ा जल हो उसमें न लगावे, तृण, शेवार, जोंक और मछलीसे रहित देवखातके जलमें शपथ करे, तडाग आदिसे लाकर कडाह आदिमें रखेहुए जलमें अथवा अधिकवेगवाली नदीके जलमें गोता नहीं लगावे;जिसमें तरंग वा कीचड न होय उसमें गोता लगावे (४-६)

वलवान् पुरुषका छोड़ाहुआ मध्यम धनुषका बाण एक मनुष्य लेआवे तबतक शपथ करनेवाला जलमें डूबकर रहनेसे शुद्ध समझाजाता है ॥ ९ ॥ एक अङ्ग भी देख पड़नेपर अथवा डूबनेके स्थानसे बहकर अन्यत्र चलाजानेसे वह शुद्ध नहीं समझाजाता; उसको चाहिये कि अपनी शुद्धिके लिये फिरसे गोता लगावे; धर्माधर्मको जाननेवाले धर्म अधर्मका विचार करें ॥ १०-११ ॥

स्त्रियस्तु न बलात्कार्या न पुमांसस्तु दुर्बलाः । भीरुत्वाद्योषितो वर्ज्या निरुत्साहतया कृशाः॥१३॥
अद्भ्यश्चाग्निरभूद्यस्मात्तस्मात्तोयं विशेषतः । तस्मात्तोयं समभवद्धर्मतस्त्रातुमर्हसि ॥ १४ ॥
आदिदेवोऽसि देवानां शौचस्यायतनं परम् । योनिस्त्वमसि भूतानां जलेश सुखशीतलः ॥ १५ ॥
त्वमपः सर्वभूतानामन्तश्चरसि साक्षिवत् । त्वमेव देव जानीषे न विदुर्यानि मानवाः ॥ १६ ॥
व्यवहाराभिशस्तोयं मानुषस्त्वयि मज्जति । तदेनं संशयादस्माद्धर्मतस्त्रातुमर्हसि ॥१७॥

स्त्री अथवा दुर्बल पुरुषको यह शपथ नहीं कराना चाहिये; क्योंकि स्त्री भयवाली होती है और दुर्बल पुरुष उत्साहरहित होता है ॥ १३ ॥ शपथ करनेके समय ऐसा कहे कि हे जल ! तुमसे अग्नि उत्पन्न हुआ है इस कारण तुम धर्मतः रक्षा करनेमें समर्थ हो ॥ १४ ॥ तुम देवताओंमें आदिदेव, पवित्रताके उत्तम स्थान, सब जीवोंके उत्पत्तिस्थान और शीतलता देनेवाले हो ॥ १५ ॥ हे जल ! तुम सब प्राणियोंके भीतर साक्षीके समान रहते हो; हे देव ! जो बात मनुष्य नहीं जानतेहैं वह तुम जानते हो ॥ १६ ॥ व्यवहारसे दूषित यह मनुष्य तुम्हारेमें गोता लगता है तुम धर्मपूर्वक संशयसे इसकी रक्षा करो ॥ १७ ॥

८ अध्याय ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि विषस्य विधिमुत्तमम् । यथा दद्याद्विषं राजा शोधनं परमं नृणाम् ॥ १ ॥
न मध्याह्ने न सायाह्ने न सन्ध्यायां तु धर्मवित् । शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु वर्षासु च विवर्जयेत् ॥ २ ॥
भग्नं च चारितं चैव धूपितं मिश्रितं तथा । कालकूटमलाबुं च विषं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ३ ॥
शार्ङ्गं हैमवतं श्रेष्ठं गन्धवर्णरसान्वितम् । यथोक्तेन विधानेन देयमेतद्धिमागमे ॥ ४ ॥
विषस्य तु पलार्द्धार्द्धाच्छतभागं घृतं युतम् । सोपवासस्तु भुञ्जीत देवब्राह्मणसन्निधौ ॥ ५ ॥
त्वं विष ब्रह्मणः पुत्र सत्यधर्मे व्यवस्थितः । शोधयैनं नरं पापात्सत्येनास्यामृतो भव ॥ ६ ॥
विषत्वाद्विषमत्वाच्च क्रूरस्त्वं सर्वदेहिनाम् । शुभाशुभविवेकार्थं नियुक्तो ह्यसि साक्षिवत् ॥ ७ ॥
धर्माणि चरितं पुंसामशुभानि शुभानि च । त्वमेव देव जानीषे न विदुर्यानि मानवाः ॥ ८ ॥
व्यवहाराभिशस्तोयं मानुषः शुद्धिमिच्छति । तदेनं संशयादस्माद्धर्मतस्त्रातुमर्हसि ॥ ९ ॥
विषं वेगमकृत्वैव सुखेन यदि जीर्यते । विशुद्ध इति तं ज्ञात्वा राजा सत्कृत्य मोचयेत् ॥ १० ॥

अब विषशपथकी उत्तम विधि कहताहूं; मनुष्यकी शुद्धता जाननेके लिये जैसे विषको राजा देवे ॥ ॥ १ ॥ मध्याह्नमें, चौथे पहरमें अथवा सन्ध्या कालमें और शरद्, ग्रीष्म, वसन्त या वर्षा ऋतुमें धर्मको जाननेवाला राजा शपथ करनेवालेको विष नहीं देवे ॥ २॥ रङ्ग बिगड़ा हुआ, पुराना, धूपित या मिश्रित विष, कालकूट अथवा कड़वी तुम्बीको कभी नहीं देवे ॥ ३ ॥ हिमालय पर्वतके शिखरका श्रेष्ठ विष (सिंगिया) जो गन्ध, वर्ण और रससे युक्त होवे, हेमन्त ऋतुमें यथोक्त विधानसे दे ॥ ४ ॥ शपथ करनेवालेको उपवास कराके देवता या ब्राह्मणके निकट एकभर विष उसके सौगुना घीके सहित देवे ॥ ५ ॥ उस समय ऐसा प्रार्थना करे कि हे विष ! तुम ब्रह्माके पुत्र हो; तुम सत्य धर्ममें स्थित होकर इस मनुष्यको पापकर्मसे शुद्ध करो, यदि यह सच्चा होवे तो इसके लिये अमृतके तुल्य हो जाओ ॥ ६ ॥ मारणधर्मयुक्त विष नाम होनेसे तुम सम्पूर्ण देहधारियोंके लिये क्रूरस्वरूप हो; शुभ अशुभ कर्मके विचारके लिये तुमको साक्षीके समान रक्खाहै ॥ ७ ॥ मनुष्योंके शुभ और अशुभ कर्मोंको तुम जानतेहो, जिसको मनुष्य नहीं जानसकते ॥ ८ ॥ व्यवहारमें दूषित इस मनुष्यको तुम संशयसे रक्षा करो ॥ ९ ॥ इस प्रकार शपथ करनेपर यदि विना क्लेश दियेहुए विष पचजावे तो राजा उसको शुद्ध समझे ॥ १० ॥

९ अध्याय

अतः परं प्रवक्ष्यामि कोशस्य विधिमुत्तमम् । पूर्वाह्णे सोपवासस्य स्नातस्यार्द्रपटस्य च ॥ १ ॥
सशूकस्याऽव्यसनिनः कोशपानं विधीयते । यद्भक्तः सोभिशस्तः स्यात्तद्दैवत्यं प्रदापयेत् ॥ २ ॥
नमो वोच्चारयन्नर्थं त्रिःकृत्वा संयतेन्द्रियः । उद्धास्यो देवतागारे पाययेत्प्रसृतित्रयम् ॥ ३ ॥
सप्ताहादन्तरे यस्य द्विसप्ताहेन वा शुभम् । प्रत्यात्मकं तु दृश्येत सैव तस्य विभावना ॥ ४ ॥
विभावितं स दाप्यः स्याद्धनिना तु स्वयं धनम् । ऋणाच्च द्विगुणं दण्डं राजा धर्मेण दापयेत् ॥५॥
महापराधे दुर्वृत्ते कृतघ्ने क्लीबकुत्सिते । नास्तिकेऽशुचिवृत्ते च कोशपानं विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

इसके उपरान्त मैं कोशशपथका उत्तम विधान कहताहूं; आस्तिक और व्यसनरहित मनुष्य उपवास युक्त होकर दिनके प्रथम पहरमें स्नान करके भीगाहुआ वस्त्र पहनकर कोशपान करे; शपथ करानेवालेको चाहिये कि दूषित मनुष्य जिस देवताका भक्त होवे उसी देवताका जल उसको पिलावे ॥ १-२ ॥ जितेन्द्रिय होकर ३ बार उस देवताको नमस्कार करके उसके स्थानसे जल लेआवे और उसमेंसे ३ पसर अभिशस्तको पिलावे ॥ ३ ॥ यदि ७ दिन अथवा १४ दिनके भीतर उसको कोई अशुभ होवे तो राजा उसको दोषी जाने ॥ ४ ॥ उससे धनीका ऋण दिलावे और ऋणका दूना दण्ड लेवे ॥ ५ ॥ बड़ा अपराधी, दुष्टवृत्तिवाले, कृतघ्न, नपुंसक, निन्दित, नास्तिक और अशुचिवृत्तिवालेको कोशशपथ वर्जित है ॥ ६ ॥

धरोहर २.

(१) मनुस्मृति-७अध्याय ।

कुलजे वृत्तसम्पन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि । महापक्षे धनिन्यार्ये निक्षेपं निक्षिपेद् बुधः ॥ १७९ ॥
यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः । स तथैव ग्रहीतव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः ॥ १८० ॥

बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि अच्छे कुलमें उत्पन्न, सदाचारवाले, धर्मनिष्ठ, सत्यवादी, अधिक परिवारवाले, धनवान् और कोमल स्वभाववालेके पास धरोहर रक्खे ॥ १७९ ॥ जो मनुष्य जिसप्रकार जो वस्तु धरोहर रक्खे, लेनेके समय उसको वैसी ही मिलनी चाहिये ॥ १८० ॥

निक्षेपोपनिधी नित्यं न देयौ प्रत्यनन्तरे । नश्यतो विनिपाते तावनिपाते त्वनाशिनौ ॥ १८५ ॥

महाजनको उचित है कि गिनाकर रक्खेहुए अथवा बन्द करके रक्खेहुए दोनों प्रकारके धरोहर रखनेवालेके रहतेहुए उसके पुत्र तथा भावी उत्तराधिकारीको नहीं देवे; क्योंकि यदि पुत्र आदि रखनेवालेको नहीं देवें अथवा मरजावें तो धरोहरकी वस्तु उसको नहीं मिले तो कलहकी सम्भावना है ॥ १८५ ॥

स्वयमेव तु यो दद्यान्मृतस्य प्रत्यनन्तरे । न स राज्ञा नियोक्तव्यो न निक्षेप्तुश्च बन्धुभिः॥१८६॥
अच्छलेनैव चान्विच्छेत्तमर्थं प्रीतिपूर्वकम् । विचार्य तस्य वा वृत्तं साम्नैव परिसाधयेत् ॥ १८७ ॥
निक्षेपेष्वेषु सर्वेषु विधिः स्यात्परिसाधने । समुद्रेनाप्नुयात्किञ्चिद्यदि तस्मान्न संहरेत् ॥ १८८ ॥
चौरैर्हृतं जलेनोढमग्निना दग्धमेव वा । न दद्याद्यदि तस्मात्स न संहरति किञ्चन ॥ १८९ ॥

धरोहर रखनेवालेके मरजानेपर यदि महाजन उसके पुत्रादि उत्तराधिकारियोंके निकट स्वयं जाकर धरोहरकी वस्तु देदेवे तो राजा अथवा मृतमनुष्यके बान्धवोंको धरोहरकी और वस्तु उसके पास रहनेका सन्देह नहीं करना चाहिये; यदि सन्देह होवे तो प्रीतिपूर्वक उससे मांगना चाहिये और समझाकरके उससे लेना चाहिये ॥ १८६-१८७ ॥ सब धरोहरोंमें निश्चय करनेके लिये यह विधि है; बन्द करके रक्खेहुए जैसाका तैसा धरोहर देदेनेसे महाजनका कुछ दोष नहीं समझाजाताहै ॥ १८८ ॥ यदि महाजन धरोहरकी वस्तुमेंसे कुछ अपने नहीं लिये होवे तो चोरके लेजानेपर, जलसे बहजानेपर अथवा आगमें जलजानेपर वह धरोहर रखनेवालेको उसका बदला नहीं देवे ※ ॥ १८९ ॥

निक्षेपस्यापहर्तारमनिक्षेप्तारमेव च । सर्वैरुपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चैव वैदिकैः ॥ १९० ॥
यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते । तावुभौ चोरवच्छास्यौ दाप्यौ वा तत्समं दमम् १९१॥

राजाको उचित है कि धरोहरको हरनेवाले तथा बिना धरोहर रक्खेहुए महाजनसे मांगनेवालेका विचार साम आदि उपायोंसे और वैदिक शपथोंके सहारेसे करे ※※ ॥ १९० ॥ जो किसीका धरोहर उसके मांगनेपर नहीं देवे और जो बिना रक्खेहुए धरोहर मांगे उन दोनोंको चोरके समान दण्ड देवे अथवा उतना ही उनपर अर्थदण्ड करे ॥ १९१ ॥

※ नारदस्मृति-२विव दपद-७श्लोक । यदि धरोहरकी वस्तुके सहित महाजनका भी धन नष्ट हुआ होगा तो धरोहर उसके मालिकका नष्ट होना समझा जायगा; इसी प्रकार दैव या राजा द्वारा धरोहर वस्तु नष्ट होनेपर यदि महाजनका दोष नहीं होगा तो धरोहरके स्वामीका ही नष्ट होना समझा जायगा अर्थात् उसका बदला महाजन नहीं देगा ।

※※ नारदस्मृति-२ विवादपद-३ श्लोक । धरोहर २ प्रकारके होतेहैं; साक्षी युक्त और बिना साक्षीका; महाजनको उचित है कि रखनेवालेके मांगनेपर धरोहरकी वस्तु शीघ्र देदेवे; यदि महाजन अस्वीकार करे तो राजा उससे शपथ करावे ।

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति २ अध्याय ।

वासनस्थमनाख्याय हस्ते न्यस्य यदर्प्यते । द्रव्यन्तदौपनिधिकं प्रतिदेयं तथैव तु ॥ ६६ ॥
न दाप्योपहृतं तन्तु राजदैविकतस्करैः । भ्रेषश्चेन्मार्गितेऽदत्ते दाप्यो दण्डं च तत्समम् ॥ ६७ ॥
आजीवन्स्वेच्छया दण्डयो दाप्यस्तं चापि सोदयम् ।याचितान्वाहितन्यासनिक्षेपादिष्वयं विधिः ॥

जब कोई वस्तु वासनमें बन्द करके विना गिनाईहुई अन्यके पास रक्षाके लिये रक्खीजातीहै तब उसको उपनिधि कहतेहैं; वह वस्तु रखनेवालेके मांगनेपर वैसी ही लौटादेनी चाहिये ॥ ६६ ॥, यदि राजा, दैव, अथवा चोर द्वारा उपनिधि नष्ट होजावे तो राजा उसका बदला उसके स्वामीको नहीं दिलावे; किन्तु उपनिधिके स्वामीके मांगनेपर महाजन उपनिधि नहीं दिया होवे और पीछे वह नष्ट हुआ हो तो उसका दाम उसके स्वामीको दिलावे और उतना ही द्रव्य उस महाजनसे दण्ड लेवे ॥ ६७ ॥ यदि महाजन अपनी इच्छासे उपनिधिको अपने काममें लगावे तो राजा उससे दण्ड लेवे और उपनिधिके स्वामीको व्याजसहित उसका दाम दिलावे; यही विधि याचित, अन्वाहित, न्यास और निक्षेप आदिके लिये जानना चाहिये ॥ ६८ ॥

अन्यकी वस्तु चोरीसे बेंचना ३.

१) मनुस्मृति-८ अध्याय ।

विक्रीणीते परस्य स्वं योऽस्वामी स्वाम्यसम्मतः । न तं नयेत साक्ष्यं तु स्तेनमस्तेनमानिनम्॥१९७॥
अवहार्यो भवेच्चैव सान्वयः षट्शतं दमम् । निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥ १९८ ॥
अस्वामिना कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा । अकृतः स तु विज्ञेयो व्यवहारे यथास्थितिः॥१९९॥
विक्रयाद्यो धनं किञ्चिद् गृह्णीयात्कुलसन्निधौ ।क्रयेण स विशुद्धं हि न्यायतो लभते धनम् ॥२०१॥
अथ मूलमनाहार्यं प्रकाशक्रयशोधितः । अदण्डयो मुच्यते राज्ञा नाष्टिको लभते धनम् ॥ २०२ ॥

जो मनुष्य स्वामीकी अनुमति विना उसकी वस्तु बेंचता है, उसकी गवाही नहीं लेवे अर्थात् उसका विश्वास नहीं करे; वह अपनेको चोर नहीं मानता; किन्तु वह यथार्थमें चोर है ॥ १९७ ॥ यदि वह वस्तुके स्वामीके वंशका होवे तो उसपर ६०० पण दण्ड करना चाहिये और यदि वह स्वामीका सम्बन्धी नहीं होवे तो उसको चोरके समान दण्ड देना चाहिये ॥ १९८ ॥ विना स्वामीकी अनुमतिसे जो वस्तु दान अथवा विक्रय की जाती है व्यवहारधर्मके अनुसार वह जायज नहीं है ॥ १९९ ॥ जो बेंचनेयोग्य स्थानमें बहुत लोगोंके सामने यथार्थ दामपर वस्तु मोल लेता है वह शुद्ध है, न्यायपूर्वक वह उस धनको पाताहै ॥ २०१॥ यदि वस्तु मोल लेनेवाला बेंचनेवालेको नहीं लिखाके परन्तु वह लोगोंके सामने मोल लेनेसे शुद्ध कहके प्रमाणित होय तो वह दण्डनीय नहीं होगा; किन्तु आधे दाम लेकर वस्तुके स्वामीको वस्तु लौटादेनी होगी ॥ २०२ ॥

नान्यदन्येन संसृष्टरूपं विक्रयमर्हति । न चासारं न च न्यूनं न दूरेण तिरोहितम् ॥ २०३ ॥

अन्य वस्तु मिलाकर कोई वस्तु नहीं बेंचे, निकम्मी वस्तुको अच्छी कहकर नहीं बेंचे, तौलमें कोई वस्तु कम नहीं देवे तथा स्वामीसे दूर जाकर अथवा छिपाकर कोई वस्तु नहीं बेंचे ॥ २०३ ॥

नारदस्मृति-२ विवादपद । जब कोई विश्वास करके शङ्कारहित, होकर किसीके पास (गिनाकर) अपना कोई द्रव्य रखदेता है तब बुद्धिमान् लोग उसको निक्षेप नाम विवादपद कहते हैं ॥ १ ॥ जब कोई किसी द्रव्यको विना गिनायेहुए किसी वर्तनमें बन्द करके दूसरेके पास रखदेताहै तब उसको उपनिधि कहते हैं ॥ २ ॥

नारदस्मृति-२ विवादपदके ५ और ८ श्लोकमें ऐसा ही है (विवाहादिमें भूषणादि मंगनी मांगलातेहैं उसको याचित कहते हैं, अन्यका रक्खाहुआ द्रव्य अन्यके पास रखदेतेहैं; वह अन्वाहित कहाजाता है । घरके स्वामीको देनेके लिये उसके परोक्षमें उसके घरवालोंको कोई वस्तु दी जातीहै उसको न्यास कहतेहैं और गिना करके रक्खाहुआ धरोहर निक्षेप कहलाता है)

नारदस्मृति-७ विवादपद-१ श्लोक । अपनेको सौंपाहुआ परका द्रव्य बेंचना अन्यका खोयाहुआ द्रव्य पाकरके बेंचदेना, चोरीका द्रव्य बेंचना और द्रव्यके स्वामीके विना अनुमतिके द्रव्यको बेंचदेना; अस्वामिविक्रय कहलाता है ।

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति--२ अध्याय।

स्वं लभेतान्यविक्रीतं क्रेतुर्दोषे प्रकाशिते। हीनाद्रहो हीनमूल्ये वेलाहीने च तस्करः॥ १७२॥
नष्टापहृतमासाद्य हर्तारं ग्राहयेन्नरम्। देशकालातिपत्तौ च गृहीत्वा स्वयमर्पयेत्॥ १७३॥
विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धिः स्वामी द्रव्यं नृपो दमम्। क्रेता मूल्यमवाप्नोति तस्माद्यस्तस्य विक्रयी॥१७४॥
आगमेनोपभोगेन नष्टं भाव्यमतोन्यथा। पञ्चबन्धो दमस्तस्य राज्ञे तेनाविभाविते॥ १७५॥
हृतं प्रनष्टं यो द्रव्यं परहस्तादवाप्नुयात्। अनिवेद्य नृपे दण्ड्यः स तु षण्णवतिं पणान्॥ १७६॥

किसीकी वस्तु दूसरा कोई बेंचदिये होवे तो वस्तुका स्वामी खरीदनेवालेसे वस्तुको लेलेवे; खरीदनेवाला यदि गुपचुप वस्तु खरीदे तो वह दोषी है; यदि असंभव, एकान्तमें, कम दाममें अथवा रात आदि कुसमयमें उस वस्तुको लिया होगा तो वह चोरके समान है ※॥ १७२॥ वस्तुके स्वामी अपनी नष्ट अथवा चोरीगईहुई चीज जिसके पास देखे उसको स्थानपाल आदि किसी राजकर्मचारीसे पकड़वा देवे; यदि देखे कि राजकर्मचारी समीपमें नहीं हैं अथवा जबतक उनसे कहेंगे तबतक यह भागजावेगा तो आपही उसको पकड़कर राजकर्मचारीको सौंपदेवे॥ १७३॥ वस्तु बेंचनेवालेको पकड़वा देनेसे मोल लेनेवाला छूट जायगा; बेंचनेवालेसे वस्तुका स्वामी अपनी वस्तु पावेगा, राजा दण्ड लेगा और खरीदनेवाला अपना दाम पावेगा॥ १७४॥ द्रव्यका स्वामी लेख आदि आगम वा उपभोगका प्रमाण देकर नष्ट द्रव्यको अपना सिद्ध करे, यदि प्रमाणसे सिद्ध नहीं करसके तो द्रव्यका पांचवां भाग राजाको दण्ड देवे॥ १७५॥ जो मनुष्य अपनी खोईहुई अथवा चोरीगईहुई वस्तुको किसीके पास देखकर विना राजाको जनायेहुए लेलेवे उससे राजा ९६ पण दण्ड लेवे॥ १७६॥

साझीदार ४.

(१) मनुस्मृति--८ अध्याय।

ऋत्विग्यदि वृत्तो यज्ञे स्वकर्म परिहापयेत्। तस्य कर्मानुरूपेण देयोंऽशः सह कर्तृभिः॥ २०६॥
दक्षिणासु च दत्तासु स्वकर्म परिहापयन्। कृत्स्नमेव लभेतांशमन्येनैव च कारयेत्॥ २०७॥
यस्मिन्कर्मणि यास्तु स्युरुक्ताः प्रत्यङ्गदक्षिणाः। स एव ता आददीत भजेरन्सर्व एव वा॥२०८॥
रथं हरेत चाध्वर्युर्ब्रह्माधाने च वाजिनम्। होता वापि हरेदश्वमुद्गाता चाप्यनःक्रये॥ २०९॥
सर्वेषामर्द्धिनो मुख्यास्तदर्द्धेनार्द्धिनोऽपरे। तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्च पादिनः॥ २१०॥

यज्ञका काम करताहुआ ऋत्विक यदि किसीकारणसे कामको छोडदेगा तो जितना काम किया होगा उतना दक्षिणाका भाग अपने सङ्गके यज्ञकार्य करनेवाले ऋत्विकोंसे पावेगा॥ २०६॥ दक्षिणा पर्यन्त काम करके यदि वह किसी कारणसे बाकी यज्ञकार्यको नहीं करसकेगा तो सम्पूर्ण दक्षिणा पावेगा; किन्तु बाकी काम अन्य ब्राह्मणसे करवादेना होगा॥ २०७॥ यज्ञादिके जिस काममें जिसके लिये जो दक्षिणा कहीगईहै वही उसको लेवे अथवा सब भागोंको सब लोग यथायोग्य बांटलें॥ २०८॥ आधान कर्ममें अध्वर्यु रथको, ब्रह्मा घोडेको, होता भी घोडेको, और उद्गाता सोमढोनेवाले शकटको लेवे॥ २०९॥ सब दक्षिणाकी वस्तुओंमेंसे आधा मुख्य ऋत्विक, आधेका आधा दूसरे प्रकारके ऋत्विक आधेका तीसरा भाग तीसरे प्रकारके ऋत्विक् और चौथे भागको चौथे प्रकारके ऋत्विक ग्रहणकरें अर्थात् १६ ऋत्विकोंमेंसे अध्वर्यु, ब्रह्मा, होता और उद्गाता; ये ४ मुख्य ऋत्विक दक्षिणाको आधा भाग १०० गौमेंसे ४८ गौ; मैत्रावरुण, प्रतिस्तोता, ब्राह्मणच्छंसि और प्रस्तोता ये ४ आधेमेंसे आधा भाग २४ गौ; अच्छावाक, नेष्टा, आग्नीध्र और प्रतिहर्ता, ये ४ आधेका तीसरा भाग १६ गौ और ग्रावस्तुत, उन्नेता, पोता और सुब्रह्मण्य, ये ४ ऋत्विक आधी दक्षिणाका चौथाई भाग १२ गौ लेवें॥ २१०॥

संभूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरिह मानवैः। अनेन विधियोगेन कर्तव्यांशप्रकल्पना॥ २११॥

जो लोग एकत्र मिलकर कोई काम करते हैं उनको इसी प्रकारसे अपने अपने अंशकी कल्पना करना चाहिये ⚘॥ २११॥

※ नारदस्मृति--७ विवादपद-३ श्लोक। बिना द्रव्यके स्वामीकी आज्ञासे, उसके अप्रतिष्ठित नोकरसे, एकान्तमें, विना समयमें अथवा थोड़े दामपर कोई वस्तु मोल लेनेवाला दोषी समझा जायगा।

⚘ नारदस्मृति-३ विवादपद-१ श्लोक। जब अनेक मनुष्य मिलकरके कोई काम करते हैं ता उसको संभूयसमुत्थान विवादपद कहते हैं।

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति--२ अध्याय।

समवायेन वणिजां लाभार्थं कर्म कुर्वताम्। लाभालाभौ यथाद्रव्यं यथा वा संविदा कृतौ ॥ २६३ ॥
प्रतिषिद्धमनादिष्टं प्रमादाद्यच्च नाशितम्। स तद्दद्याद्विप्लवाच्च रक्षिता दशमांशभाक् ॥ २६४ ॥

जो व्यापारी इकट्ठेहोकर लाभके लिये साझेमें व्यापार करते हैं, वे लोग अपनी अपनी पूँजीके अनुसार नफा या नुकसान ग्रहण करें अथवा जैसा नियम करलिये होवें वैसाही लाभहानिमें भाग लेवें ॥ २६३ ॥ उनमेंसे यदि कोई सबके निषेध करनेपर अथवा बिना सम्मति लियेहुए कोई काम करके या प्रमादसे वाणिज्यकी कोई वस्तु नाश करदेगा तो वही उसकी नुकसानी देगा और यदि कोई राजउपद्रव आदिसे वस्तुओंकी रक्षा करेगा तो वह दशवां भाग पावेगा ❀ ॥ २६४ ॥

जिह्मं त्यजेयुर्निर्लाभमशक्तोऽन्येन कारयेत्। अनेन विधिराख्यात ऋत्विक्कर्षककर्मिणाम् ॥२६९ ॥

इकट्ठे व्यापार करनेवालोंमेंसे जो व्यापारी ठगहारी करे उसको कुछ नफा नहीं देकरके सब लोग निकाल देवें; जो व्यापारी काम करनेमें अशक्त होजावे वह अपना काम अन्यसे करादेवे, यही विधि ऋत्विक, किसान आदिके लिये भी जानना चाहिये ॥ २६९ ॥

दियाहुआ दान लौटादेना ५.

(१) मनुस्मृति–८ अध्याय।

धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्कस्मैचिद्याचते धनम्। पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देयं तस्य तद्भवेत् ॥ २१२ ॥
यदि संसाधयेत्तत्तु दर्पाल्लोभेन वा पुनः। राज्ञा दाप्यः सुवर्णं स्यात्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः ॥ २१३ ॥

कोई दाता किसी याचकको यज्ञादि धर्मकार्यकेलिये धन दियाहो अथवा देनेको कहाहोवे; यदि याचक उसकार्यको नहीं करे तो दाता याचकसे अपना दियाहुआ धन फेरलेवे तथा देनेको कहेहुए धनको नहीं देवे॥ ॥ २१२ ॥ यदि वह याचक अहङ्कार अथवा लोभसे दाताका धन नहीं लौटादेवे अथवा देनेको कहेहुए धनको बलसे मांगे तो राजा याचककी चोरीकी शुद्धिके लिये उससे (८० रत्ती सोनेका) १ मोहर दण्ड लेवे ⚘ ॥ २१३ ॥

भृत्य, दास आदिका विषय ६.

(१) मनुस्मृति–८ अध्याय।

दत्तस्यैषोदिता धर्म्या यथावदनपक्रिया। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वेतनस्यानपक्रियाम् ॥ २१४ ॥
भृतोऽनार्तो न कुर्याद्यो दर्पात्कर्म यथोदितम्। स दण्ड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम् २१५॥
आर्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः सन्यथाभाषितमादितः। स दीर्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम् ॥ २१६ ॥
यथोक्तमार्तः सुस्थो वा यस्तत्कर्म न कारयेत्। न तस्य वेतनं देयमल्पोनस्यापि कर्मणः ॥ २१७ ॥

धर्मके लिये दियेहुएको नहीं देनेकी विधि कहीगई; अब वेतन नहीं देनेके विषयको कहताहूं ॥ २१४ ॥ जो भृत्य आरोग्य रहनेपर अहङ्कारसे यथार्थ काम नहीं करे उससे ८ रत्ती (सोना) दण्ड लेवे और उसका वेतन नहीं देवे ॥ २१५ ॥ यदि वह रोग आदिसे पीड़ित होनेके कारण काम नहीं करता होवे और पीड़ारहित होनेपर यथार्थ कामको करे तो वह बहुत दिनका बाकी वेतन भी पावेगा ॥ २१६ ॥ बीमार हो अथवा रोगरहित हो वह यदि यथोक्तकाम नहीं करेगा या अन्यसे नहीं करावेगा तो कुछ वेतन नहीं पावेगा ॥ २१७ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्याय।

गृहीतवेतनः कर्म त्यजन्द्विगुणमावहेत्। अगृहीते समं दाप्यो भृत्यै रक्ष्य उपस्करः ॥ १९७ ॥
दाप्यस्तु दशमं भागं वाणिज्यपशुसस्यतः। अनिश्चित्य भृतिं यस्तु कारयेत्स महीक्षिता ॥१९८॥
देशं कालं च योतीयाल्लाभं कुर्याच्च योन्यथा। तत्र स्यात्स्वामिनश्छन्दोऽधिकं देयं कृतेऽधिके॥१९९॥
यो यावत्कुरुते कर्म तावत्तस्य तु वेतनम्। उभयोरप्यसाध्यं चेत्साध्यं कुर्याद्यथाश्रुतम् ॥ २०० ॥

❀ नारदस्मृति–३ विवादपदके ५–६ श्लोकमें भी ऐसा है, वहां राजउपद्रव आदिके स्थानमें दैवउपद्रव, चोर उपद्रव और राजउपद्रव लिखा है।

⚘ गौतमस्मृति—५ अध्याय–१० अङ्क। धन देनेकी प्रतिज्ञा करके भी अधर्मीको कुछ नहीं देना चाहिये।

राजाको चाहिये कि जो भृत्य वेतन लेकर काम नहीं करे उससे उसका दूना स्वामीको दिलावे और जो वेतन नहीं लिया होवे तो वेतनके तुल्य उससे लेवे; खेती आदिके सामानको भृत्य रक्षा करे ॥१९७॥ यदि मनुष्य विना वेतन निश्चय कियेहुए किसी भृत्यसे व्यापार, पशु अथवा खेतीका काम करावे तो उस काममें जितना लाभ होवे उसका दशवां भाग राजा स्वामीसे उस भृत्यको दिलावे ॥ १९८ ॥ जो भृत्य (नोकर) देश तथा कालका उल्लंघन करके अर्थात् उचित देश और समयमें वस्तुका विक्रय आदि नहीं करके लाभमें हानि पहुंचाताहै उसका स्वामी उसका वेतन अपनी इच्छानुसार देवे और जो भृत्य अपनी चतुराईसे अधिक लाभ करदेवे उसको अधिक देवे ॥ १९९ ॥ वेतन ठहराकर दो मनुष्योंसे एक ही काम करायाजावे, यदि वह काम उनसे समाप्त नहीं होसके तो जिसने जितना काम किया हो उसको उतना वेतन देवे और काम समाप्त होजाय तो जितना वेतन ठहरा हो उतना देवे ॥ २०० ॥

अराजदैविकं नष्टं भाण्डं दाप्यस्तु वाहकः । प्रास्थानविघ्नकृच्चैव प्रदाप्यो द्विगुणां भृतिम् ॥ २०१ ॥
प्रक्रान्ते सप्तमं भागं चतुर्थं पथि संत्यजन् । भृतिमर्धपथे सर्वां प्रदाप्यस्त्याजकोपि च ॥ २०२ ॥

यदि राजा अथवा दैवके उत्पातके विना वर्तन ढोनेवालेसे वर्तन फूटजावे तो राजा उससे वर्तन दिलवावे, यदि नोकर मालिककी यात्रामें विघ्न करे तो उससे वेतनका दूना लेवे ॥ २०१ ॥ जो नोकर यात्राके आरम्भके समय काम छोडदेवे उससे वेतनका सातवां भाग, जो थोड़ी दूर जाकर काम छोड़े उससे चौथाई भाग और जो आधी राहमें जाकर काम छोड़देवे उससे राजा वेतनके बराबर मालिकको दिलावे और नोकरको छोड़नेवाले मालिकसे भी इसी रीतिसे नोकरको दिलादेवे ॥ २०२ ॥

(२६) नारदस्मृति–५ विवादपद ।

शुश्रूषकः पञ्चविधः शास्त्रे दृष्टो मनीषिभिः । चतुर्विधः कर्मकरस्तेषां दासस्त्रिपञ्चकाः ॥ २ ॥
शिष्यान्तेवासिभृतकाश्चतुर्थस्त्वधिकर्मकृत् । एते कर्मकरा ज्ञेया दासास्तु गृहजातयः ॥ ३ ॥
कर्मापि द्विविधं ज्ञेयं शुभं चाशुभमेव च । अशुभं दासकर्मोक्तं शुभं कर्म कृतं स्मृतम् ॥ ५ ॥
गृहद्वाराशुचिस्थानरथ्यावस्करशोधनम् । गुह्याङ्गस्पर्शनोच्छिष्टविण्मूत्रग्रहणोज्झनम् ॥ ६ ॥
इष्टतः स्वामिनश्चाङ्गैरुपस्थानमथान्ततः । अशुभं कर्म विज्ञेयं शुभमन्यदतः परम् ॥ ७ ॥
आविद्याग्रहणाच्छिष्यः शुश्रूषेत्प्रयतो गुरुम् । तद्वृत्तिर्गुरुदारेषु गुरुपुत्रे तथैव च ॥ ८ ॥

विद्वानोंने शास्त्र देखकर ५ प्रकारका शुश्रूषाकरनेवाला कहाहै उनमें ४ प्रकारके कर्मकरनेवाले शुश्रूषक और पांचवेंमें १५ प्रकारके दास होतेहैं ॥ २ ॥ शिष्य, अन्तेवासी अर्थात् शिल्पविद्या पढ़नेवाला, भृत्य और अधिकर्मकृत अर्थात् सौंपाहुआ काम करनेवाला; ये ४ प्रकारके कर्मकर (कर्मकरनेवाले) और पांचवा दासी पुत्र आदि (१५ प्रकारके) दास हैं ॥ ३ ॥ कर्म दोप्रकारका है शुभ और अशुभ । इनमें दासका कर्म बहुत हीन है और कर्मकरोंका कर्म (शुश्रूषकोंमें) अच्छा है ॥ ५ ॥ गृहका द्वार, पनारा आदि अपवित्र स्थान, गली और कतवारखानाका शोधन करना, गुप्त अङ्गका स्पर्श करना, जूठा विष्ठा तथा मूत्रको उठाकर फेंकना और स्वामीकी इच्छानुसार उसके शरीरकी सेवा करना; इनको; बहुत हीन कर्म और इनसे भिन्नको अच्छा कर्म जानना चाहिये ॥ ६–७ ॥ शिष्यकोचाहिये कि जबतक विद्या पढ़े तबतक गुरुकी सेवा करे और गुरुकी पत्नी तथा पुत्रसे वैसा ही भाव रक्खे ॥ ८ ॥

स्वशिल्पमिच्छन्नाहर्तुं बान्धवानामनुज्ञया । आचार्यस्य वसेदन्ते कालं कृत्वा सुनिश्चितम् ॥ १५ ॥
आचार्यः शिक्षयेदेनं स्वगृहाद्दत्तभोजनम् । न चान्यत्कारयेत्कर्म पुत्रवच्चैनमाचरेत् ॥ १६ ॥
शिक्षितोपि कृतं कालमन्तेवासी समाप्नुयात् । तत्र कर्म च यत्कुर्यादाचार्यस्यैव तत्फलम् ॥ १८ ॥
गृहीतशिल्पः समये कृत्वाचार्यं प्रदक्षिणम् । शक्तितश्चानुमान्यैनमंतेवासी निवर्तते ॥ १९ ॥

नारदस्मृति—६ विवादपद ५ श्लोक । जो भृत्य काम करना स्वीकार करके काम नहीं करे राजा उसको वेतन दिलाकर बलपूर्वक उससे मालिकका काम करवावे और यदि वेतन लेकरके वह काम नहीं करे तो वेतनसे दूना दाम उससे मालिकको दिलावे ।

नारदस्मृति–६ विवादपदके ३ श्लोकमें १९८ श्लोकके समान है ।

नारदस्मृति–६ विवादपदके । ८–९ श्लोकमें ऐसा ही है ।

नारदस्मृति–६ विवादपद । जो भृत्य मालिकका काम आरम्भ करके उसको समाप्त नहीं करे राजा उससे बलपूर्वक समाप्त करावे; यदि वह नहीं करे तो उसको दण्ड देवे ॥ ६ ॥ जो मालिक भृत्यसे काम करवाके उसका वेतन नहीं देवे. राजा उसको दण्डित करे और जो मालिक आधे मार्गमें भृत्यको छोड़देवे उससे उस भृत्यको सवाई वेतन दिलावे ॥ ७ ॥

जिसको शिल्प सीखनेकी इच्छा होवे वह अपने बान्धवोंसे आज्ञा लेकर आचार्यसे समयका निश्चय करके उसके घरमें निवास करे ॥ १५ ॥ आकार्यको चाहिये कि उसको अपने घरसे भोजन देकर शिक्षा देवे, उससे दूसरा काम नहीं करावे, उसको पुत्रके तुल्य समझे ॥ १६ ॥ शिल्प सीखनेवालेको चाहिये कि शिल्पशिक्षा प्राप्त होजानेके बाद भी जितने दिन आचार्यके घर रहनेका निश्चय किया होवे उतने दिन तक वह रहे और शिल्पकार्य करनेसे जो धन मिले वह आचार्यको देवे ॥ १८ ॥ निश्चय कियेहुए समयमें शिल्पविद्या सीखकर गुरुको प्रदक्षिणा और यथाशक्ति सत्कार करके अन्तेवासी अपने घर जावे ❀ ॥ १९ ॥

उत्तमस्त्वायुधीयोऽत्र मध्यमस्तु कृषीवलः । अधमो भारवाहः स्यादित्येष त्रिविधो भृतः ॥ २१ ॥
अर्थेष्वधिकृतो यः स्यात्कुटुम्बस्य तथोपरि । सोपि कर्मकरो ज्ञेयः स च कौटुम्बिकः स्मृतः ॥२२॥
शुभकर्मकरास्त्वेते चत्वारः समुदाहृताः । जघन्यकर्मभाजस्तु शेषदासास्त्रिपञ्चकाः ॥ २३ ॥

भृत्य ३ प्रकारके होते हैं,--इनमें शस्त्र धारण करनेवाले उत्तम, खेतीका काम करनेवाले मध्यम और बोझा ढोनेवाले अधम, भृत्य हैं ॥ २१ ॥ जिसको धन तथा कुटुम्बको रक्षाका अधिकार देदियागया है वह कौटुम्बिक कर्मकर कहलाता है ॥२२॥ ये ४ कर्मकर शुभकर्म करनेवाले और इनसे भिन्न १५ प्रकारके दास निन्दितकर्म करनेवाले कहेजातेहैं ॥ २३ ॥

गृहजातस्तथा क्रीतो लब्धो दायादुपागतः । अनाकालभृतो लोके आहितः स्वामिना च यः॥२४॥
मोक्षितो महतश्चर्णात्प्राप्तो युद्धात्पणार्जितः । तवाहमित्युपगतः प्रव्रज्यावसितः कृतः ॥ २५ ॥
भक्तदासश्च विज्ञेयस्तथैव वडवाहृतः । विक्रेता चात्मनः शास्त्रे दासाः पञ्चदश स्मृताः ॥ २६ ॥

(१) अपनी दासीमें उत्पन्न, (२) दाम देकर खरीदाहुआ, (३) दान आदिसे प्राप्त हुआ, (४) धन विभाग होनेके समय मिलाहुआ, (५) दुर्भिक्षमें रक्षा करके रक्खाहुआ, (६) ऋणके बदलेमें किसीका बन्धक रक्खाहुआ, (७) दासके महाजनका भारी ऋण देकर उसको छुड़ायाहुआ, (८) युद्धकी जीतमें मिलाहुआ, (९) जूएमें जीताहुआ, (१०) स्वयम् आकर रहनेका कौल करके दास बनाहुआ, (११) संन्यासधर्मसे नष्ट हुआ संन्यासी, (१२) समयका निश्चय करके रहाहुआ, (१३) खानेकेलिये दास बनाहुआ, (१४) किसीके दासीसे विवाह करके उसका दास बनाहुआ और (१५) अपनी आत्माको बेंचदेनेवाला, शास्त्रमें यही १५ प्रकारके दास कहेगये हैं ▩ ॥ २४-२६ ॥

तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दासत्वान्न विमुच्यते । प्रमादाद्धनिनोऽन्यत्र दासमेषां क्रमागतम् ॥ २७ ॥
यो वैषां स्वामिनः कश्चिन्मोक्षयेत्प्राणसंशयात् । दासत्वात्स विमुच्येत पुत्रभागं लभेत च ॥ २८ ॥
अनाकालभृतो दास्यान्मुच्यते गोयुगं ददत् ॥ २९ ॥
आहितोपि धनं दत्त्वा स्वामी यद्येनमुद्धरेत् ॥ ३० ॥
ऋणं तु सोदयं दत्त्वा ऋणी दास्यात्प्रमुच्यते । कृतकालव्यपगमात्कृतकोपि विमुच्यते ॥ ३१ ॥
तवाहमित्युपगतो युद्धप्राप्तः पणार्जितः । प्रतिशीर्षप्रदानेन मुच्यते तुल्यकर्मणा ॥ ३२ ॥
राज्ञामेव तु दासः स्यात्प्रव्रज्यावसितो नरः । न तस्य विप्रमोक्षोऽस्ति न विशुद्धिः कथञ्चन ॥ ३३ ॥
भक्तस्योत्क्षेपणात्सद्यो भक्तदासः प्रमुच्यते । निग्रहाद्वडवानां तु मुच्यते वडवाहृतः ॥ ३४ ॥
विक्रीणीतान्य आत्मानं स्वतन्त्रः सन्नराधमः । स जघन्यतरस्तेषां नैव दास्यात्प्रमुच्यते ॥ ३५ ॥
चौरापहृतविक्रीता ये च दासीकृता बलात् । राज्ञा मोचयितव्यास्ते दास्यं तेषु हि नेष्यते ॥ ३६ ॥

इनमेंसे पहिले कहेहुए दासीमें उत्पन्न आदि ४ प्रकारके दास अपने कामको नहीं छोड़सकते हैं, किन्तु परम्परासे प्राप्त दास मालिकके प्रमादसे अन्यका काम कर सकते हैं ॥ २७ ॥ इनमेंसे जो दास अपने स्वामीको प्राणजानेके संशयसे बचादेवेगा वह दासभावसे छूटजावेगा और पुत्रके भागको पावेगा ✤ ॥ २८ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय-१८८ श्लोक । रहनेके समयका निश्चय करके शिल्पशिक्षाके लिये गुरुके घरमें रहनेवाला अन्तेवासी शिल्पविद्याको सीखकरके भी अपने स्वीकार कियेहुए समयतक गुरुके घरमें रहे, गुरुके घर भोजन करे और शिल्पविद्यासे जो लाभ होवे वह गुरुको देवे ।

▩ मनुस्मृति-८ अध्याय ४१५ श्लोक । ७ प्रकारके दास होतेहैं,-युद्ध जीतनेसे मिलाहुआ, खानेकेलिये दास बना हुआ, दासीसे उत्पन्न, दाम देकर लियाहुआ अन्नसे मिलाहुआ पिता आदिके समयसे दास बनाहुआ और दण्डसे मिलाहुआ ।

✤ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय-१८६ श्लोक । जो दास अपने स्वामीका प्राण बचावेगा वह दासपनासे छूट जावेगा और खानेके लिये बनाहुआ दास भोजन नहीं मिलनेपर दासपनासे मुक्त होजायगा ।

दुर्भिक्षमें पालकर रक्खाहुआ दास २ गौ देनेसे छूटेगा ॥ २९ ॥ बन्धक रक्खाहुआ दास ऋण चुकजानेपर दूसरे स्वामीसे छूटजावेगा ॥ ३० ॥ दासका ऋण चुकाकर रक्खाहुआ दास व्याजके सहित ऋणचुकादेनेपर दासपनासे छूटजावेगा और रहनेके समयका निश्चय करके रहाहुआ दास समय बीतजानेपर छूटेगा ॥ ३१ ॥ रहनेका कौल करके दास बना हुआ, युद्धकी जीतमें मिलाहुआ और जूएमें जीताहुआ ये तीनों अपने समान दास देनेसे दासभावसे छूटेंगे ॥ ३२ ॥ सन्यासधर्मसे नष्ट संन्यासी राजाका दास बनेगा, न कभी उसका छुटकारा होगा न कभी उसकी शुद्धि होगी ❀ ॥ ३३ ॥ खानेके लिये रहाहुआ दास भोजन नहीं देनेपर शीघ्र दासपनासे छूटजावेगा और दासीसें विवाह करके बना हुआ दास दासीके साथ मैथुन करना रोकनेसे दासपनासे छूटजायगा ॥ ३४ ॥ अपनी आत्माको स्वतंत्र होकर बेंचदेनेवाला अधम मनुष्य दासपनासे नहीं छूटेगा ॥ ३५ ॥ जिसको चोरने चोराकर बेंचदियाहोवे और जो बलसे दास बनायागया होवे; इन दोनोंको राजा छुडादेवे, क्योंकि इनमें दासभाव नहीं है ❀❀ ॥ ३६ ॥

६ विवादपद ।

भृताय वेतनं दद्यात्कर्मस्वामी यथाक्रमम् । आदौ मध्येवसाने च कर्मणो यद्विनिश्चितम् ॥ २ ॥

भृत्यका जो वेतन निश्चय हुआ होय वह क्रमसे आदि मध्य और अन्तमें देना चाहिये ॥ २ ॥

प्रतिज्ञा और मर्यादाका उल्लंघन ७.

(१) मनुस्मृति-८ अध्याय ।

एष धर्मोऽखिलेनोक्तो वेतनादानकर्मणः । अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्मं समयभेदिनाम् ॥ २१८ ॥

यह वेतन देनेकी विधि कहीगई अब समयभेद करनेवालों अर्थात् प्रतिज्ञाभङ्ग करनेवालोंका धर्म कहता हूं ॥ २१८ ॥

यो ग्रामदेशसङ्घानां कृत्वा सत्येन संविदम् । विसंवदेन्नरो लोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥ २१९ ॥
निगृह्य दापयेच्चैनं समयव्यभिचारिणम् । चतुःसुवर्णान्षण्णिष्कान्छतमानं च राजतम् ॥ २२० ॥
एतद्दण्डविधिं कुर्याद्धार्मिकः पृथिवीपतिः । ग्रामजातिसमूहेषु समयव्यभिचारिणाम् ॥ २२१ ॥

गांव अथवा देशमें बसनेवाले व्यापारी आदिके समूहमें जो शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करके लोभवश होकर उसका उल्लंघन करे राजा उसको अपने राज्यसे निकालदेवे अथवा घटनाके अनुसार ४ मोहर २४ मोहर अथवा रूपाका शतमान अर्थात् ३२० रत्ती १ पल रूपा दण्ड लेवे ॥ २१९-२२० ॥ गांवके जातिसमूहमें जो मनुष्य प्रतिज्ञाभङ्ग करे तो धार्मिक राजा उसको इसी प्रकारसे दण्डित करे ॥ २२१ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय ।

गणद्रव्यं हरेद्यस्तु संविदं लङ्घयेच्च यः । सर्वस्वहरणं कृत्वा तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥ १९१ ॥
कर्तव्यं वचनं सर्वैः समूहहितवादिनाम् । यस्तत्र विपरीतः स्यात्स दाप्यः प्रथमं दमम् ॥ १९२ ॥
समूहकार्य आयातान्कृतकार्यान्विसर्जयेत् । सदानमानसत्कारैः पूजयित्वा महीपतिः ॥ १९३ ॥
समूहकार्यप्रहितो यल्लभेत तदर्पयेत् । एकादशगुणं दाप्यो यद्यसौ नार्पयेत्स्वयम् ॥ १९४ ॥
धर्मज्ञाः शुचयोऽलुब्धा भवेयुः कार्यचिन्तकाः । कर्त्तव्यं वचनं तेषां समूहहितवादिनाम् ॥ १९५ ॥
श्रेणिनैगमपाखण्डिगणानामप्ययं विधिः । भेदं चैषां नृपो रक्षेत्पूर्ववृत्तिं च पालयेत् ॥ १९६ ॥

जो मनुष्य समुदायके द्रव्यको चुराताहै और जो संवित् अर्थात् समूहकी या राजाकी स्थापित कीहुई मर्यादाका लङ्घन करता है उसका सब धन छीनकरके राजा उसको अपने देशसे निकालदेवे ॥ १९१ ॥ समूह लोगोंके हितकारी वचनको सब लोग मानें; जो उसके विरुद्ध चले उससे राजा २९२ पण दण्ड लेवे ॥ १९२ ॥ जो लोग साधारण लोगोंके कार्यके लिये आये होवें; राजा उनके कार्य करनेके पश्चात्

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय-१८७ श्लोक और बृहद्विष्णुस्मृति-५ अध्याय-१५१ अङ्क । संन्यास धर्मसे नष्ट संन्यासीको जन्मपर्यन्त राजाका दास बनना पडेगा ।

❀❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय-१८६ श्लोक । जो बलात्कारसे दास बनायागया होवे और जिसको चोरोंने बेंचदिया होवे व दोनों दासपनेसे छूटजावेंगे ।

दान और मानसे सत्कार करके उनको बिदा करे ॥ १९३ ॥ साधारण लोगोंके कार्यके देशमें लिये आनेवालोंको चाहिये कि जो कुछ मिले वह उन लोगोंको देदेवे, यदि स्वयं वे नहीं देवें तो राजा उनसे ग्यारहगुना लेकर उनको देवे ॥ १९४ ॥ धर्म जानने वाले, पवित्र रहनेवाले और निर्लोभी मनुष्य, साधारण लोगोंके कार्यका विचार करें; ऐसे साधारणके हितकारी लोग जो कहें वह सबको मानना चाहिये ॥ १९५ ॥ श्रेणी (एक व्यापारसे जीनेवाले), नैगम (वेदको माननेवाले), पाखण्डी (शास्त्रविरुद्ध चलनेवाले) और गण (शस्त्रविद्या आदि एकही कामसे जीविका करनेवाले) लोगोंके लिये भी यही विधि है, राजा इनके भेद अर्थात् धर्म व्यवस्थाकी रक्षा करे और इनकी पूर्ववृत्तिका पालनकरे * ॥ १९६ ॥

(२६) नारदस्मृति १० विवादपद।

यो धर्मः कर्म यच्चैषामुपस्थानविधिश्च यः। यच्चैषां वृत्त्युपादानमनुमन्येत तत्तथा ॥ ३ ॥
नानुकूलं च यद्राज्ञः प्रकृत्यवमतं च यत्। बाधकं च पदार्थानां तत्तेभ्यो विनिवर्तयेत् ॥ ४ ॥

राजाको उचित है कि जिनके जैसे धर्म तथा कर्म और जैसी आराधना तथा वृत्ति हैं उनको वैसी ही माने ॥ ३ ॥ राजाकी आज्ञानुसार नहीं चलनेवाले, राजाके विरुद्ध रहनेवाले और राजाकी हानि करनेवालेको राजा अपने राज्यसे निकालदेवे ॥ ४ ॥

वस्तु खरीदने, बेंचने और लौटानेका विधान ८.

(१) मनुस्मृति--८ अध्याय।

क्रीत्वा विक्रीय वा किञ्चिद्यस्येहानुशयो भवेत्। सोऽन्तर्दशाहात्तद्द्रव्यं दद्याच्चैवाददीत च ॥२२२॥
परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नापि दापयेत्। आददानो ददच्चैव राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥ २२३ ॥
यस्मिन्यस्मिन्कृते कार्ये यस्येहानुशयो भवेत्। तमनेन विधानेन धर्म्ये पथि निवेशयेत् ॥ २२८ ॥

जो मनुष्य कोई वस्तु मोल लेकर अथवा बेंचकर पछताता है वह १० दिनके भीतर उसको लौटा दे अथवा लौटाले सकता है, किन्तु१०दिनके बाद लौटादेने अथवा लौटा ले लेनेका अधिकार नहीं रहताहै, यदि १० दिनके पश्चात् कोई बलपूर्वक वस्तुको लौटादेवे या लेलेवे तो राजा उसपर ६०० पण दण्ड करें ॥२२२–२२३॥ जिस कामके करनेके पीछे किसीको पश्चात्ताप होवे उसको राजा इसी धर्ममार्गसे चलावे अर्थात् १० दिनके भीतर लौटवादेवे ※ ॥ २२८ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति--२ अध्याय।

दशैकपञ्चसप्ताहमासत्र्यहार्द्धमासिकम्। बीजायोवाह्यरत्नस्त्रीदोह्यपुंसां परीक्षणम् ॥ १८१ ॥
गृहीतमूल्यं यः पण्यं क्रेतुर्नैव प्रयच्छति। सोदयं तस्य दाप्योसौ दिग्लाभं वा दिगागते ॥ २५८ ॥
विक्रीतमपि विक्रेयं पूर्वक्रेतर्यगृह्णति। हानिश्चेत्क्रेतृदोषेण क्रेतुरेव हि सा भवेत् ॥ २५९ ॥
राजदैवोपघातेन पण्ये दोषमुपागते। हानिर्विक्रेतुरेवासौ याचितस्याप्रयच्छतः ॥ २६० ॥

गेहूँ, धान आदिके बीजकी परीक्षा १० दिन; लोहेकी१ दिन बैल आदि बोझे ढोनेवाले पशुकी ५ दिन; मणि, मोती, मूङ्गा आदि रत्नोंकी ७ दिन; स्त्री (दासी) की १ मास; भैंस आदि दूधदेनेवाले पशुकी ३ दिन और पुरुष (दास) की परीक्षा १५ दिनतक करना चाहिये अर्थात् इतने दिनोंतक ये लौटादिये

* नारदस्मृति--१० विवादपद। पाखण्डी, नैगम इत्यादिकी स्थितिको समय कहते हैं, समयका रोकना विवादपद कहलाता है अर्थात् इनकी स्थितिको रोकनेसे विवाद होता है ॥ १ ॥ राजाको चाहिये कि पाखण्डी, नैगम, श्रेणी, गण, आदिकी स्थितिको दुर्ग तथा नगरमें रक्षा करे ॥ २ ॥ यज्ञवाल्क्यस्मृति--१ अध्याय-३६ श्लोक। कुल, जाति, श्रेणी, गण और देशके लोग यदि धर्मसे चलायमान होवें तो राजा दण्ड देकर उनको अपने अपने धर्ममें स्थापन करे।

※ नारदस्मृति–९ विवादपद। जिस मनुष्यने माल खरीदकर उसका दाम देदिया होवे यदि उसको माल पसन्द नहीं होय तो वह उसी दिन बेंचनेवालेको जैसाका तैसा लौटा देवे; यदि वह दूसरे दिन लौटावेगा तो दामका तीसवां भाग और तीसरे दिन लौटावेगा तो उससे दूना अर्थात् दामका पन्द्रहवां भाग मालवालेको देना पड़ेगा; उसके बाद माल लौट नहीं सकेगा ॥ २—३॥ माल खरीदनेके पहिलेही उसके दोषगुणकी परीक्षा करके माल लेना चाहिये; परीक्षा कीहुई वस्तु लौट नहीं सकती है ॥ ४ ॥

जासकतेहैं॥ ।।१८१।। जो व्यापारी खरीदनेवालेसे दाम लेकर उसको माल नहीं देवे राजा उससे व्याज या नफा सहित दाम दिलादेवे; यदि खरीदनेवाला व्यापारी दूर देशका होवे तो उसके देशमें लेजाकर बेंचनेसे जो नफा होवे उसके सहित उसका दाम दिलावे ।। २५८ ।। यदि खरीदनेवाला मालको नहीं लेवे तो मालवाला उसको दूसरेके हाथ बेंचदेवे; यदि खरीदनेवालेके दोषसे मालवालेके घरमें किसी उपद्रवके कारण मालकी हानि होगी तो खरीदनेवालेकी ही हानि समझी जायगी ।। २५९ ।। जब मोल लेनेवालेके मांगनेपर बेंचनेवाला मालको नहीं देगा और राजा या दैवद्वारा मालकी हानि होगी तो बेंचनेवालेकी हानि समझी जायगी ।। २६० ।।

अन्यहस्ते च विक्रीते दुष्टं वादुष्टवद्यदि । विक्रीणीते दमस्तत्र मूल्यात्तु द्विगुणो भवेत् ।। २६१ ।।

जो व्यापारी किसी मालको एकके हाथ बेंचकर फिर दूसरेके हाथ बेंचदेवे अथवा निकम्मी वस्तुक अच्छी वस्तुके समान बेंचे उससे वस्तुके दामसे दूना दण्ड लेना चाहिये ।। २६१ ।।

क्षयं वृद्धिं च वणिजा पण्यानामविजानता। क्रीत्वा नानुशयः कार्यः कुर्वन्षड्भागदण्डभाक्।।२६२।।

जो व्यापारी मालकी हानि लाभको नहीं जानता वह मोललेकर उसमें सन्देह करके लौटानेका उद्योग नहीं करे; यदि करेगा तो मालका छठा भाग दण्ड देनेयोग्य होगा ।। २६२ ।।

(२६) नारदस्मृति–८ विवादपद ।

निर्दोषं दर्शयित्वा तु सदोषं यः प्रयच्छति । पण्यं तु द्विगुणं दाप्यो विनयं च तदेव च ।। ७ ।।
तथान्यहस्तविक्रीतं योऽन्यस्मै संप्रयच्छति । सोऽपि तद्द्विगुणं दाप्यो विनयं चैव राजनि ।। ८ ।।
दीयमानं न गृह्णाति क्रीतं पण्यं च यः क्रयी । विक्रीणानस्तदन्यत्र विक्रेता नापराध्नुयात् ।। ९ ।।
दत्तस्य मूल्यपण्यस्य विधिरेवं प्रकीर्तितः । अदत्तेन्यत्र समये न विक्रेतुरतिक्रमः ।। १० ।।

जो मनुष्य अच्छी वस्तुको दिखाकर उससे हीन वस्तु देताहै राजा उससे दूना दिलावे यही उसका दण्ड है ।। ७ ।। जो मनुष्य किसी वस्तुको एकके हाथ बेंचकर फिर दूसरेके हाथ बेंचदेवे राजा उससे खरीदनेवालेको दूना दिलावे और आपभी उतना ही दण्ड लेवे ।। ८ ।। बेंचाहुआ माल यदि देनेपर खरीदनेवाला नहीं लेवे तो बेंचनेवाला दूसरेके हाथ बेंचदेनेसे अपराधी नहीं समझाजायगा ।। ९ ।। जिस मालका दाम खरीदनेवालाने देदिया होगा उसके लिये यह विधि कहीगई है; यदि दाम नहीं दिया होगा तो करारका समय बीतजानेपर दूसरेके हाथ माल बेंचदेनेसे मालवाला मनुष्य अपराधी नहीं होगा ।। १० ।।

पशुपाल और पशुस्वामीका विवाद ९.

(१) मनुस्मृति–८ अध्याय ।

पशुषु स्वामिनां चैव पालानां च व्यतिक्रमे । विवादं संप्रवक्ष्यामि यथावद्धर्मतत्त्वतः ।। २२९ ।।
दिवा वक्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि तद्गृहे । योगक्षेमेऽन्यथा चेत्तु पालो वक्तव्यतामियात्।।२३०।।

अब मैं पशुके विषयमें स्वामी तथा पशुपाल (चरवाहे) के नियम व्यतिक्रमके विवादको धर्मतत्त्वसे कहता हूं ।। २२९ ।। दिनमें पशुपालके हाथमें सौंपेहुए पशुसे कुछ हानि होवे तो पशुपालको, रातमें स्वामीके घर पशुके रहनेपर पशुसे हानि होवे तो स्वामीको और दिनरात पशुरक्षाका भार पशुपालके हाथ रहनेपर पशुसे किसीकी हानि होवे तो पशुपालकोही अपराधी जानना चाहिये ।। २३० ।।

गोपः क्षीरभृतो यस्तु स दुह्याद्दशतो वराम् । गोस्वाम्यनुमते भृत्यः सा स्यात्पालेऽभृते भृतिः।।२३१।।

जो गोपाल वेतनके बदलेमें दूध लेता है वह स्वामीकी अनुमतिसे १० गौओंमेंसे एक श्रेष्ठ गौका दूध लेवे अर्थात् एक गौका दूध लेकर १० गौको चरावे, यही उसका वेतन है ॥ ।। २३१ ।।

नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहतं विषमे मृतम् । हीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात्पाल एव तु ।। २३२ ।।

॥ नारदस्मृति–९ विवादपदक ५–६ श्लोकमें ऐसा ही है।

॥ नारदस्मृति–६ विवादपद–१० श्लोक । जो गोप एक वर्षतक १०० गौओंको चरावे उसका वेतन १ बछिया और २०० गौओंको चरावे उसका वेतन १ व्याईहुई गौ और दोनोंको ८ वें दिन सब गौओंका दूध देना चाहिये।

पशुपालकी असावधानीसे यदि कोई पशु खोजावे अथवा सर्प आदि कीडे वा कुत्तेके काटनेसे तथा गड्हे आदि विषमस्थानमें गिरकर मरजावे तो पशुपाल पशुका बदला स्वामीको देवे ॥ २३२ ॥

विघुष्य तु हृतं चौरैर्न पालो दातुमर्हति । यदि देशे च काले च स्वामिनः स्वस्य शंसति ॥२३३॥
कर्णौ चर्म च वालांश्च वस्तिं स्नायुं च रोचनाम् । पशुषु स्वामिनां दद्यान्मृतेष्वङ्गानि दर्शयेत् ॥२३४॥
अजाविके तु संरुद्धे वृकैः पाले त्वनायति । यां प्रसह्य वृको हन्यात्पाले तत्किल्बिषं भवेत् ॥२३५॥
तासां चेदवरुद्धानां चरंतीनां मिथो वने । यामुत्प्लुत्य वृको हन्यान्न पालस्तत्र किल्बिषी ॥२३६ ॥

यदि बहुतसे चोर पशुपालसे पशुको छीन लेवें और पशुपाल उसी समय स्वामीको वह खबर देदेवे तो पशुपाल पशुका बदला स्वामीको नहीं देवे ॥ २३३ ॥ यदि पशु स्वयं मरजावे तो पशुपालको चाहिये कि पशुके स्वामीको पशुका कान,चाम, पूँछके बाल; नाभीके नीचेका भाग, स्नायु (नसें) अथवा रोचना लाकर दिखादेवे ॥ २३४ ॥ पशुपालके इधर उधर चलेजानेपर यदि भेड़िया आकर बकरी तथा भेड़को मारडाले तो पशुपाल दोषी समझा जायगा ॥ २३५ ॥ पशुपालसे रोकीहुई वनमें इकट्ठीहोके चरतीहुई बकरी भेड़को यदि भेड़िया उछलकर मारडाले तो पशुपाल अपराधी नहीं समझाजायगा ॥ २३६ ॥

धनुःशतं परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः । शम्यापातास्त्रयो वापि त्रिगुणो नगरस्य तु ॥२३७॥
तत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि । न तत्र प्रणयेद्दंडं नृपतिः पशुरक्षिणाम् ॥ २३८ ॥
वृतिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो न विलोकयेत् । छिद्रं च वारयेत्सर्वं श्वसूकरमुखानुगम् ॥ २३९॥

गांवके पास चारों ओर १०० धनुष अर्थात् ४०० हाथ तक अथवा ३ बार फेकनेसे जहां अन्तमें लाठी गिरे वहांतक और शहरके चारों ओर इसकी तिगुनी भूमि पशुओंके चरनेके लिये परती रखना चाहिये ॥ २३७ ॥ यदि कोई विना घेरा दिये उस परतीमें धान्य आदि बोवे और कोई पशु उस सस्यको नष्ट करे तो राजा पशुपालको कुछ दण्ड नहीं देवे ॥ २३८ ॥ उस परतीके खेतमें ऐसा घेरा देना चाहिये कि खेतको ऊंट नहीं देख सके और उसके छेदमें कुत्ते अथवा सूअर मुख नहीं घुसा सकें ॥२३९ ॥

पथि क्षेत्रे परिवृते ग्रामान्तीयेऽथ वा पुनः । स पालः शतदण्डार्हो विपालांश्वारयेत्पशून् ॥ २४० ॥
क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः सपादं पणमर्हति । सर्वत्र तु सदो देयः क्षेत्रिकस्येति धारणा ॥ २४१ ॥

राहके समीपके अथवा गांवके निकटके घेरेहुए खेतमें जाकर यदि पशु सस्योंको नष्ट करें तो राजा पशुपालपर १०० पण दण्ड करे; किन्तु यदि पशुपाल नहीं होवे तो खेतका स्वामी पशुओंको निवारण करे ॥ २४०॥ अन्य खेतोंका सस्य पशुद्वारा नष्ट होनेपर राजा पशुपालसे सवा पण दण्ड लेवे और सब जगह सस्यकी हानिका दाम पशुपाल अथवा पशुके स्वामीसे खेतके स्वामीको दिलावे ॥ २४१ ॥

नारदस्मृति—६ विवादपदके १४ श्लोकमें ऐसा ही है। याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्याय । गोपको प्रातःकाल जैसे पशु सौंपेगये होवें वे सन्ध्या-समयमें वैसेही लाकर स्वामीको सौंप देवे; जो पशु उसके अपराधसे मरजायगा अथवा खोजायगा उसका दाम उस गोपके वेतनसे स्वामीको मिलेगा ॥ १६८॥ यदि गोपके दोषसे पशुका नाश होवे तो राजा गोपसे साढ़े तेरह पण दण्ड लेवे और पशुका दाम पशुके स्वामीको दिलावे ॥ १६९ ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्याय-१७१ श्लोक। गांवके पास चारों ओर१००धनुष, बहुत कांटे युक्त गांवके पास चारों ओर २०० धनुष और शहरके पास चारों ओर४००धनुष परती भूमि छोड़कर खेत बनाना चाहिये।

नारदस्मृति—११ विवादपदके ४०-४१ श्लोक । गांवके निकट, तृणादिके वाड़ेके समीप अथवा प्रसिद्ध सड़कके पासके विना घेरोंके खेतका सस्य यदि पशु चरजावें तो चरवाहेका दण्ड नहीं होना चाहिये ।

नारदस्मृति—११ विवादपदके ४१-४२ श्लोक । राहके पासके खेतमें ऐसा घेरा चाहिये कि जिसमें खेतको ऊँट नहीं देख सके, घेरेको पशु अथवा घोड़ा नहीं लांघ सके और सूकर नहीं छेद सके ।

याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्याय-१६६ श्लोक । राह, गांव और तृणके वाड़ेके पासके सस्यको यदि पशुपाल आदिके विना जानेहुए पशु नष्ट करें तो वे अपराधी नहीं हैं; किन्तु यदि जानकरके चरावेंगे तो चोरके समान दण्डके योग्य होंगे। गौतमस्मृति–१२ अध्याय-२ अङ्क। पशुद्वारा थोड़ी भी खेतकी हानि होय तो पशुके स्वामीका दोष समझा जायगा; किन्तु यदि पशुके साथमें पशुपाल होगा तो वही अपराधी माना जायगा, परन्तु राहके समीपके विना घेरा दियेहुए खेतकों पशु चरजायगा तो चरवाहा और खेतका मालिक दोनों अपराधी समझे जांयगे । नारदस्मृति–११ विवादपद । यदि गौ आदि कोई पशु घेरेको डाककर खेत चरे तो उसको नहीं रोकनेके कारण चरवाहेको दण्डित करना चाहिये ॥ २८ ॥ यदि खेतका सब सस्य नष्ट होजाय तो राजा नुकसानीके तुल्य पशुके मालिकसे खेतवालेको दाम दिलावे और राजदण्ड लेवे; चरवाहेको छोड़देवे ॥ २९ ॥ यदि चरवाहेके दोषसे खेतकी हानि होय तो पशुके मालिकको नहीं; किन्तु चरवाहेको दण्डित करे ॥ ३५ ॥

अनिर्दशाहां गां सूतां वृषान्देवपशूंस्तथा । सपालान्वा विपालान्वा न दण्ड्यान्मनुरब्रवीत् ॥ २४२॥

दश दिनके भीतरकी व्याईहुई गौ, दागाहुआ सांड और देवतासम्बन्धी पशु अपने पालकके सहित होवें अथवा विना पालकके होवें यदि खेतके सस्यको खावें तो उनको दण्डित नहीं करना चाहिये अर्थात् नहीं पकड़ना चाहिये ऐसा मनुने कहाहै ※ ॥ २४२ ॥

क्षेत्रियस्यात्यये दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत् । ततोऽर्धदण्डो भृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रियस्य तु ॥ २४३ ॥
एतद्विधानमातिष्ठेद्धार्मिकः पृथिवीपतिः । स्वामिनां च पशूनां च पालानां च व्यतिक्रमे ॥ २४४ ॥

यदि किसानके दोषसे खेतका सस्य नष्ट होजावे तो जितना अन्न राजाका भाग होवे उसका दसगुना और यदि किसानके विनाजानेहुए नौकरोंसे नष्ट होजावे तो राजाके भागसे पञ्चगुना राजाको किसान दण्ड देवे ॥ २४३ ॥ पशुद्वारा खेत नष्ट होनेपर स्वामी और पशुपालके विषयमें धार्मिक राजा इसी विधान-से निर्णय करे ॥ २४४ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति--२ अध्याय ।

माषानष्टौ तु महिषी सस्यघातस्य कारिणी । दण्डनीया तदर्द्धन्तु गौस्तदर्द्धमजाविकम् ॥ १६३ ॥
भक्षयित्वोपविष्टानां यथोक्ताद्द्विगुणो दमः । सममेषां विवीतेपि खरोष्ट्रं महिषीसमम् ॥ १६४ ॥

राजा अन्यका खेत चरनेवाली भैंसके स्वामीपर ८ मासा, गौके स्वामी पर ४ मासा और बकरी अथवा भेडके स्वामी पर २ मासा अर्थदण्ड करे ॥ १६३ ॥ यदि भैंस आदि पशु अच्छीतरहसे खेत चरकर वहां ही बैठगई होवें तो उनके स्वामीसे दूना दण्ड लेवे; यदि कोई पशु तृण रखनेके बाड़ेमें तृणको खा-जावें तो उनके स्वामीपर पहिले कहेहुए दण्ड करे और गदहे तथा ऊंटके स्वामीसे भैंसके तुल्य दण्ड लेवे ◎॥ १६४ ॥

यावत्सस्यं विनश्येत्तु तावत्स्यात्क्षेत्रिणः फलम् । गोपस्ताड्यस्तु गोमी तु पूर्वोक्तं दण्डमर्हति १६५

राजाको चाहिये कि खेतका जितना सस्य नष्ट हुआ होवे उतना अन्न पशुके स्वामीसे खेतवालेको दिलावे, गोपको ताडना करे और पशुके स्वामीसे पूर्वोक्त दण्ड लेवे ॥ १६५ ॥

सीमाका विवाद १०.

(१) मनुस्मृति--८ अध्याय ।

सीमां प्रति समुत्पन्ने विवादे ग्रामयोर्द्वयोः । ज्येष्ठे मासि नयेत्सीमां सुप्रकाशेषु सेतुषु ॥ २४५ ॥

दो गांवोंकी सीमामें यदि विवाद उत्पन्न होवे तो ज्येष्ठमहीनेमें तृणोंके सूखजानसे सीमाके चिह्न प्रकट होजानेपर राजा सीमाका निर्णय करे ॥ २४५ ॥

सीमावृक्षांश्च कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान् । शाल्मलीन्सालतालांश्च क्षीरिणश्चैव पादपान्२४६॥
गुल्मान्वेणूंश्च विविधाञ्छमीवल्लीस्थलानि च । शरान्कुब्जकगुल्मांश्च तथा सीमा न नश्यति२४७॥
तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च । सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च ॥ २४८ ॥
उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिङ्गानि कारयेत्। सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम्२४९
अश्मनोऽस्थीनि गोवालांस्तुषान्भस्मकपालिकाः । करीषमिष्टकाङ्गाराञ्छर्करावालुकास्तथा॥२५०॥
यानि चैवंप्रकाराणि कालाद्भूमिर्न भक्षयेत् । तानि सन्धिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत् ॥२५१॥

※ याज्ञवल्क्यस्मृति--२ अध्याय-१६७ श्लोक । सांड, देवतासम्बन्धी पशु, व्याईहुई गौ आदि पशु, अपने यूथसे बहककर आयेहुए पशु, विना चरवाहेके पशु, अथवा दैव तथा राजासे पीड़ित पशु यदि खेत चरें तो उनको छोड़देना चाहिये । नारदस्मृति--११ विवादपद । दस दिनके भीतरकी व्याईहुई गौ, सांड, घोड़ा अथवा हाथी यदि यत्नसे निवारण करने पर भी खेत चरजावें तो इनके स्वामीपर दण्ड नहीं करना चाहिये ॥३० ॥ हाथी और घोड़े दण्ड योग्य नहीं हैं, क्योंकि इनकी माति प्रजाकी रक्षामें रहती है; अपने यूथसे बहक-कर आईहुई गौ प्रसूतिका हो अथवा रजस्वला होय दण्डके योग्य नहीं है॥३२॥ उशनास्मृति--हाथी और घोडे दण्डके योग्य नहीं हैं क्योंकि ये प्रजाके पालक कहेगये हैं (३) ।

◎ गौतमस्मृति--१२ अध्याय--२ अङ्क । किसीका खेत गौ चरे तो ५ मासा ऊंट चरे तो ६ मासा, गदहा, घोडा, अथवा भैंस, चरे तो १० मासा और बकरी या भेड चरे तो २ मासा (उसके स्वामी आदिपर) अर्थदण्ड होना चाहिये; यदि सब खेतका सस्य पशु नष्ट करदेवे तो १०० मासा अर्थ-दण्ड करना चाहिये । नारदस्मृति--११ विवादपद--३१ श्लोक । गौके खेत चरनेपर १ मासा भैंसके चरनेपर २ मासा और सवत्सा बकरी अथवा भेडके चरनेपर आधा मासा अर्थदण्ड होना चाहिये ।

सीमापर वट, पीपल, पलाश, सेसल, साल, ताड और गूलरका वृक्ष चिह्नके लिये लगवादेवे ॥ २४६ ॥ अनेक गुल्म, बांस, शमीवृक्ष, लता, मट्टीके ढूह, शरपत आदिको सीमाके स्थानपर स्थापित करनेसे सीमाका चिह्न नष्ट नहीं होता है ॥ २४७ ॥ दो गांवोंके सन्धिके स्थानमें अर्थात् सीमापर तड़ाग, कुंआ, बावड़ी, नाला अथवा देवमन्दिर बनवादेवें ॥ २४८ ॥ सीमाके लिये मनुष्योंके बीच सदा भ्रम हुआ करता है इस लिये औरभी अनेक प्रकारके अप्रकाश्य चिह्न सीमापर गाड़ना चाहिये ॥ २४९ ॥ पत्थर, हड्डी, गौके बाल, धानकी भूसी, राख, कपाल, गोंइठे, ईंट, कोयले, खपड़े और बालू तथा इसी प्रकारकी और वस्तु, जो बहुत दिनोंतक भूमिमें रहसकें, सीमाके स्थानमें गाड़देना चाहिये ॥ २५०–२५१ ॥

एतैर्लिङ्गैर्नयेत्सीमां राजा विवदमानयोः । पूर्वभुक्त्या च सततमुदकस्यागमेन च ॥ २५२ ॥
यदि संशय एव स्याल्लिङ्गानामपि दर्शने । साक्षिप्रत्यय एव स्यात्सीमावादविनिर्णयः ॥ २५३ ॥

राजाको उचित है कि दो गांवोंकी सीमाका विवाद उपस्थित होनेपर पूर्वोक्त चिह्न, दीर्घ समयके भोग और नदी आदिके प्रवाहसे सीमा निश्चय करे, यदि इनके देखनेसे भी सीमामें सन्देह होय तो गवाहोंसे सीमाका निर्णय करे ॥ २५२–२५३ ॥

ग्रामीयककुलानां च समक्षं सीम्नि साक्षिणः । प्रष्टव्याः सीमलिंगानि तयोश्चैव विवादिनोः ॥२५४॥
ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीम्नि निश्चयम् । निबध्नीयात्तथा सीमां सर्वास्तांश्चैव नामतः॥२५५॥
शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वीं स्रग्विणो रक्तवाससः । सुकृतैः शापिताः स्वैःस्वैर्नयेयुस्ते समञ्जसम्॥२५६॥
यथोक्तेन नयन्तस्ते पूयन्ते सत्यसाक्षिणः । विपरीतं नयन्तस्तु दाप्याः स्युर्द्विशतं दमम् ॥ २५७ ॥

गांववाले लोगों और वादी- प्रतिवादीके सामने साक्षियोंसे सीमाके चिह्नोंको पूछे ॥ २५४ ॥ साक्षियोंकी जबानबन्दी और उनके नामोंको सीमापत्रमें लिखलेवे ॥ २५५ ॥ साक्षी लोग माथेपर मिट्टी रखकर और लाल फूलोंकी माला तथा लाल वस्त्र पहनकर अपने पुण्यकी शपथ करके सीमाको निश्चय करे ॥ २५६॥ सत्य कहनेवाले गवाह निःपाप होंगे, झूठ कहनेवालेसे राजा २०० पण दण्ड लेवे ॥ २५७ ॥

साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः सामन्तवासिनः । सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयता राजसन्निधौ ॥२५८॥
सामन्तानामभावे तु मौलानां सीम्नि साक्षिणाम् । इमानप्यनुयुञ्जीत पुरुषान्वनगोचरान् ॥ २५९॥
व्याधाञ्छाकुनिकान्गोपान्कैवर्तान्मूलखानकान् ।व्यालग्राहानुञ्छवृत्तीनन्यांश्च वनचारिणः ॥२६०॥

गवाह नहीं रहनेपर गांवके चारों ओरके निकट बसनेवाले ४ मनुष्य राजाके सामने सीमाका निर्णय करें ॥ २५८ ॥ उनके अभावमें परम्परासे सीमाको जाननेवाले, और उनके अभावमें वनमें फिरनेवाले व्याधा, बहेलियां, गोप, कैवर्त्त, औषधी संग्रह करनेवाले, सर्प पकड़नेवाले, और उञ्छ वृत्तिवाले और अन्य वनचारियोंसे सीमाकी बात पूछनी चाहिये ॥ २५९–२६० ॥

ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः सीमासन्धिषु लक्षणम् । तत्तथा स्थापयेद्राजा धर्मेण ग्रामयोर्द्वयोः ॥ २६१॥

ये लोग सीमाके सम्बन्धमें जैसा चिह्न बतावें राजा उसी अनुसार दोनों गांवोंकी सीमा स्थापित करे ॥ २६१ ॥

क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य गृहस्य च । सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमासेतुविनिर्णयः ॥ २६२ ॥
सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवदतां नृणाम् । सर्वे पृथक्पृथग्दण्डया राज्ञा मध्यमसाहसम्॥२६३॥

खेत, कुँआ, तड़ाग, बगीचा और गृहकी सीमाका निर्णय इनके पास रहनेवालोंसे पूछकर राजा करे * ॥ २६२ ॥ ये लोग यदि झूठी गवाही देवें तो प्रति गवाहसे ५०० पण दण्ड लेवे ▣ ॥२६३ ॥

गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् । शतानि पञ्च दण्डयः स्यादज्ञानाद्द्विशतो दमः ॥ २६४॥

जो मनुष्य भय दिखाकर किसीका घर, तड़ाग, बगीचा अथवा खेत छीन लेवे राजा उसपर ५०० पण दण्ड करें; किन्तु यदि अज्ञानसे ऐसा किया होवे तो २०० पण दण्ड लेवे ॥ २६४ ॥

सीमायामविषह्यायां स्वयं राजैव धर्मवित् । प्रदिशेद्भूमिमेतेषामुपकारादिति स्थितिः ॥ २६५ ॥

---

*वसिष्ठस्मृति—१६ अध्याय । घर और खेतके विवादमें उनके पास रहनेवालेकी बात मानना चाहिये ॥ ९ ॥ उनके कहनेमें विरुद्ध पड़े तो लेखके अनुसार निर्णय करना चाहिये ॥ १० ॥ लेखमें भी विरोध जानपड़े तो गांव तथा नगरके वृद्ध लोगोंकी बात मानना चाहिये ॥ ११ ॥ इसपर श्लोक प्रमाण देते हैं॥१२॥ आठ प्रमाणोंसे घर आदिका मालिक होना निश्चय होता है;–१ पिताके समयसे दखलमें चलाआताहुआ, २ अपना खरीदाहुआ, ३ अपना बनायाहुआ, ४ अपना जीर्णोद्धारकियाहुआ, ५ दान मिलाहुआ, ६ यज्ञकी दक्षिणामें मिलाहुआ, ७ अपने हद्दके भीतरका, और ८ कोयला आदिके चिह्नसे युक्त, ॥ १३ ॥

▣ याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्यायके १५७ श्लोक और नारदस्मृति–११ विवादपदके ७ श्लोकमें ऐसा ही है।

यदि पूर्वोक्त प्रकारसे भी सीमाका निश्चय नहीं होसके तो उस भूमिसे दोनोंमेंसे जिसका अधिक उपकार होवे धार्मिक राजा वह भूमि उसीको देवे, ऐसी ही धर्मकी व्यवस्था है ॥ २६५ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति--२ अध्याय।

सीम्नो विवादे क्षेत्रस्य सामन्ताः स्थविरादयः। गोपाः सीमाकृषाणाश्च सर्वे च वनगोचराः॥१५४॥ नयेयुरेते सीमानं स्थलाङ्गारतुषद्रुमैः। सेतुवल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैरुपलक्षिताम् ॥ १५५ ॥

क्षेत्रकी सीमाके विवादमें पासके रहनेवाले; वृद्ध, गोप, निकटके खेतको जोतनेवाले और वनमें फिरनेवाले सब प्रकारके लोगोंसे पूछकर और मट्टीके ढूह, कोयला, धानकी भूसी, वृक्ष, पुल, दीमकके ढीले, गड्हे, हड्डी तथा प्रसिद्धस्थान आदि चिह्नोंको देखकर राजा सीमानिश्चय करे ॥ १५४—१५५ ॥

सामन्ता वा समग्रामाश्चत्वारोऽष्टौ दशापि वा। रक्तस्रग्वसनाः सीमां नयेयुः क्षितिधारिणः॥१५६॥ अभावे ज्ञातृचिह्नानां राजा सीम्नः प्रवर्तिता ॥१५७॥

यदि पूर्वोक्त रीतिसे सीमाका निश्चय नहीं होवे तो पासके गांवके अथवा उसी गांवके चार, आठ अथवा दस मनुष्य लालफूलोंकी माला तथा लाल वस्त्र धारण करके और शिरपर मिट्टी रखकर सीमाका निश्चय करें ॥ १५६ ॥ यदि जाननेवाले कोई मनुष्य अथवा कोई चिह्न नहीं मिले तो राजा अपनी इच्छानुसार सीमाका निश्चय करदेवे ॥ १५७ ॥

आरामायतनग्रामनिपानोद्यानवेश्मसु। एष एव विधिर्ज्ञेयो वर्षाम्बुप्रवहादिषु ॥ १५८ ॥

यही विधि बाग, बैठक, गांव, कूप आदि जलके स्थान, क्रीड़ाके वन, गृह और जलके नालेकी सीमाके निर्णय करनेमें जानना चाहिये ॥ १५८ ॥

मर्यादायाः प्रभेदे च सीमातिक्रमणे तथा। क्षेत्रस्य हरणे दण्डा अधमोत्तममध्यमाः ॥ १५९ ॥

राजाको उचित है कि गांवकी सीमा तोड़नेवालेपर २५० पण, सीमा तोड़कर अन्य गांवमें बढ़जानेवालेपर १००० पण और खेत हरण करनेवालेपर ५०० पण दण्ड करे ॥ १५९ ॥

(२६) नारदस्मृति-११ विवादपद।

सीमामध्ये तु जातानां वृक्षाणां क्षेत्रयोर्द्वयोः। फलं पुष्पं च सामान्यं क्षेत्रस्वामिषु निर्दिशेत्॥१३॥ अन्यक्षेत्रोपजातानां शाखास्त्वन्यत्र संस्थिताः। स्वामिनस्ता विजानीयादन्यक्षेत्राद्विनिर्गताः॥१४॥

दो खेतोंके बीचकी सीमापर उत्पन्नहुए वृक्षोंके फल, फूल खेतके जमीन्दारको देना चाहिये ॥ १३ ॥ यदि अन्य खेतमें उत्पन्नहुए वृक्षकी शाखा अन्यखेतमें चलीगई होगी तो जिसके खेतमें वह शाखा है वही उसका मालिक समझा जायगा ॥ १४ ॥

गाली आदि कठोर वचन ११.

(१) मनुस्मृति–८ अध्याय।

एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमाविनिर्णये। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम् ॥२६६॥

सीमानिश्चय करनेकी विधि कहीगई, अब मैं वाक्पारुष्य अर्थात् वचनकी कठोरताका निर्णय कहूंगा ॥ २६६ ॥

नारदस्मृति–११ विवादपदके २–५ श्लोकमें ऐसा ही है।

नारदस्मृति—११ विवादपद। अच्छी प्रकारसे भी सीमाका वृत्तान्त कहनेवाले केवल एकही मनुष्यका विश्वास करके सीमा निश्चय नहीं करदेना चाहिये; क्योंकि सीमाविवाद बहुत कठिन है; इस धर्मकी क्रिया बहुतमें रहती है ॥ ९ ॥ यदि एक ही मनुष्य सीमाके विवादमें गवाही देनेको खड़ा होय तो वह उपवास व्रत करके सावधान होकर लालमाला और लाल वस्त्र धारण करके और मस्तकपर मिट्टीका ढेला रखकर गवाही देवे ॥ १० ॥

नारदस्मृति—११ विवादपदके ११ श्लोकमें भी ऐसा है।

नारदस्मृति—१५ विवादपद। देश, जाति, कुल आदिमें दोषलगाकर ऊंचेस्वरसे किसीकी निन्दा करनेको और उद्वेगताको उत्पन्न करनेवाले कठोरवचन कहनेको वाक्पारुष्य कहतेहैं ॥ १ ॥ निष्ठुर, अश्लील और तीव्रके भेदसे यह ३ प्रकारका है; इनमें क्रमसे पहिलेवालेसे पीछेवाला बड़ा है और क्रमसे पहिलेवालेसे पीछेवालेमें दण्ड भी अधिक होताहै ॥ २ ॥ "इस मूर्खको धिक्कार है," ऐसे वचनको निष्ठुर कहतेहैं, "तेरी वहिनसे गमन करूंगा," ऐसा वचन अश्लील कहलाताहै और तू "ब्रह्मघाती है," ऐसा वचन तीव्र वाक्पारुष्य कहाजाता है ॥ ३ ॥

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति । वैश्योऽप्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति ॥ २६७ ॥
पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने । वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥२६८॥
समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे । वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ॥ २६९ ॥

ब्राह्मणको कठोर वचन कहनेवाले क्षत्रियपर १०० पण (१०० पैसे) और वैश्यपर १५० अथवा २०० पण राजा दण्ड करे और शूद्रको ताड़ना आदि शारीरिक दण्ड देवे ॥ २६७ ॥ ब्राह्मण यदि क्षत्रियको ऐसा कहे तो उसपर ५० पण वैश्यको ऐसा कहे तो २५ पण और शूद्रको ऐसा कठोरवचन कहै तो उसपर १२ पण दण्ड करे ※ ॥ २६८ ॥ ब्राह्मण ब्राह्मणको, क्षत्रिय क्षत्रियको और वैश्य वैश्यको यदि कठोरवचन कहैं तो राजा उनपर १२ पण दण्ड करे और बहुत कठोर वचन कहें तो इससे दूना दण्ड लेवे ॥ २६९ ॥

एकजातिर्द्विजातींस्तु वाचा दारुणया क्षिपन् । जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः॥२७०॥
नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः । निक्षेप्योऽयोमयः शङ्कुर्ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः ॥ २७१ ॥
धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः । तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥ २७२ ॥

यदि शूद्र द्विजातीको पातक उत्पन्न करनेवाला कठोरवचन कहै तो राजा उसकी जीभ कटवाडाले ॥ २७० ॥ यदि नाम और जाति कहकर द्विजातिकी निन्दा करे तो १० अंगुलको जलताहुआ लोहेको शलाका. उसके मुखमें डलवादेवे ॥ २७१ ॥ यदि अहङ्कारके साथ ब्राह्मणको धर्म उपदेश करे तो राजा उसके मुख और कानमें तप्त तेल डलवादेवे ※ ॥ २७२ ॥

श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च । वितथेन ब्रुवन्दर्पाद्दाप्यः स्याद्द्विशतं दमम् ॥ २७३ ॥
काणं वाप्यथवा खञ्जमन्यं वापि तथाविधम् । तथ्येनापि ब्रुवन्दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम् ॥२७४॥

कोई अहङ्कारपूर्वक किसीकी विद्या, देश, जाति तथा संस्कारकर्मके सम्बन्धमें अन्यथा कहै तो राजा उससे २०० पण दण्ड लेवे ॥ २७३ ॥ सत्य होनेपर भी काने मनुष्यको काना, लङ्गड़ेको लङ्गड़ा और कुबड़ेआदिको कुबड़ेआदि कहनेवालेपर कमसे कम १ पण दण्ड करे ※ ॥ २७४ ॥

मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम् । आक्षारयञ्छतं दाप्यः पन्थानं चाददद्गुरोः ॥ २७५ ॥

माता, पिता, भार्या, भाई, पुत्र अथवा गुरुको दुर्वचन कहनेवालेपर और बड़ेको देखकर मार्गसे नहीं हटजानेवाले पर १०० पण दण्ड होना चाहिये ॥ २७५ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो विजानता । ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेव मध्यमः॥२७६॥
विट्शूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः । छेदवर्जं प्रणयनं दण्डस्येति विनिश्चयः ॥ २७७ ॥

ब्राह्मण और क्षत्रियमें परस्पर गाली गलौज होनेपर दण्डका विधान जाननेवाला राजा ब्राह्मणपर२५०पण और क्षत्रियपर ५०० पण दण्ड करे ॥ २७६ ॥ इसी प्रकारसे वैश्य और शूद्रमें परस्पर गाली गलौज होनेपर वैश्यपर २५० पण और शूद्रपर ५०० पण दण्ड करे; जीभ नहीं कटवावे ॥ २७७ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्याय ।

अभिगन्तास्मि भगिनीं मातरं वा तवेति ह । शपन्तं दापयेद्राजा पञ्चविंशतिकं दमम् ॥ २०९ ॥
अर्द्धोऽधमेषु द्विगुणः परस्त्रीषूत्तमेषु च । दण्डप्रणयनं कार्यं वर्णजात्युत्तराधरैः ॥ २१० ॥
बाहुग्रीवानेत्रसक्थिविनाशे वाचिके दमः । शत्यस्तदर्धिकः पादनासाकर्णकरादिषु ॥ २१२ ॥
अशक्तस्तु वदन्नेवं दण्डनीयः पणान्दश । तथा शक्तः प्रतिभुवं दाप्यः क्षेमाय तस्य तु ॥ २१३ ॥
पतनीयकृते क्षेपे दण्डो मध्यमसाहसः । उपपातकयुक्ते तु दाप्यः प्रथमसाहसम् ॥ २१४ ॥

※ नारदस्मृति—१५ विवादपदके १५–१६ श्लोकमें ऐसा ही है और १७ श्लोकमे मनुस्मृतिके २६९ श्लोकके समान है। गौतमस्मृति–१२ अध्यायके १–२ अङ्कमे भी ऐसा है, विशेष यह है कि यदि ब्राह्मण शूद्रको कठोरवचन कहेगा तो उसका कुछ दण्ड नहीं होगा; किन्तु यदि क्षत्रिय अथवा वैश्य शूद्रको कठोरवचन कहेगा तो जो दण्ड क्षत्रियको कठोरवचन कहनेसे ब्राह्मणको होगा वही दण्ड उसको होगा। याज्ञवल्क्यस्मृति–२अध्याय–२११ श्लोक। ब्राह्मण आदि वर्णोंमें यदि छोटेवर्णका मनुष्य बड़ेवर्णके मनुष्यको गाली देवेगा तो दुगुना तिगुना दण्ड बढ़ताजायगा और बड़ीजातिका मनुष्य छोटीजातिके मनुष्यको गाली देगा तो आधेआधे दण्ड घटताजायगा अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रियको गाली देगा तो आधा, वैश्यको गाली देगा तो उससे आधा और शूद्रको देगा तो उससे भी आधा उसपर दण्ड होगा।

※ नारदस्मृति–१५ विवादपदके २२–२३ श्लोकमे २७१–२७२ श्लोकके समान है।

※ नारदस्मृति १५ विवादपदके १८ श्लोकमें ऐसा ही है.। याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्याय २०८ श्लोक। जो मनुष्य लंगड़े आदि न्यूनअङ्गवालेको अथवा रोगीको सत्य या.मिथ्या अथवा निन्दायुक्त स्तुतिसे निन्दा करे राजा उससे साढ़ेतेरह पण दण्ड लेवे।

राजाको उचित है कि जो मनुष्य किसीको कहै कि तेरी माता और बहिनसे गमन करूंगा उसपर २५ पण दण्ड करे ॥ २०९ ॥ अपनेसे छोटी जातिको गाली देनेवालेसे इसका आधा और परकी स्त्रीको या अपनेसे बड़ी जातिको गाली देनेवालेसे इसका दूना दण्ड लेवे, इसी प्रकारसे वर्ण और जातिकी लघुता श्रेष्ठता देखकर दण्डकी कल्पना करे ॥ २१० ॥ जो मनुष्य किसीको कहै कि तेरी बांह, गला; आंख और हड्डी तोड़डालूंगा उससे१००पण और जो कहे कि तेरा गोड़, नाक,कान, हाथ आदि तोड़दूंगा उससे ५० पण दण्ड लेवे ॥ २१२॥ यदि रोग आदिसे अशक्त मनुष्य ऐसा कहै तो उसपर १० पण और समर्थ मनुष्य रोगीको ऐसा कहै तो उसपर पूर्वोक्त (१०० पण) दण्ड करे और रोगीकी रक्षाके लिये उससे जमानत लेवे ॥ २१३॥ किसीको पतित होजाने योग्य झूठा दोष लगानेवालेपर ५०० पण और उपपातका झूठा दोप लगानेवालेपर २५० पण दण्ड करे ॥ २१४ ॥

त्रैविद्यनृपदेवानां क्षेप उत्तमसाहसः । मध्यमो जातिपूगानां प्रथमो ग्रामदेशयोः ॥ २१५ ॥

तीनों वेदोंको जाननेवाले ब्राह्मण अथवा राजा या देवताकी निन्दा करनेवालेसे १००० पण; समूहजातियोंकी निन्दा करनेवालेसे ५०० पण और गांव अथवा देशकी निन्दा करनेवालेसे२५०पण दण्ड लेवे॥२१५॥

राज्ञोऽनिष्टप्रवक्तारन्तस्यैवाक्रोशकारिणम् । तन्मन्त्रस्य च भेत्तारञ्छित्त्वा जिह्वां प्रवासयेत् ॥ ३०६ ॥

जो मनुष्य राजाकी अनिष्ट बातोंको कहते फिरे जो राजाकी निन्दा कियाकरे और जो राजाके गुप्त मन्त्रोंको प्रकट कियाकरे राजा उसकी जीभ कटवाके उसको अपने राज्यसे निकालदेवे ॥ ३०६ ॥

(२६) नारदस्मृति—१५ विवादपद ।

पूर्वमाक्षारयेद्यस्तु नितरं स्यात्स दोषभाक् । पश्चाद्यः सोप्यसत्कारी पूर्वं तु विनयेद् गुरुम् ॥ ९ ॥
द्वयोरापन्नयोस्तुल्यमनुबध्नाति यः पुनः । स तयोर्दण्डमाप्नोति पूर्वो वा यदिवोत्तरः ॥ १० ॥

दो मनुष्य परस्पर गालीगलौज करें तो दोनों दोषी हैं किन्तु जो प्रथम गाली दिया होवे उसपर राजा अधिक दण्ड करे ॥९॥ यदि दोनों तुल्यरूपसे विशेष गालीगलौज कियेहोवें तो पहिले गाली देनेवालेके समान पीछे गालीदेनेवालेको भी दण्डित करे ॥ १० ॥

न किल्बिषेणापवदेच्छास्त्रतः कृतपावनम् । न राज्ञा धृतदण्डं च दण्डभाक्तद्व्यतिक्रमात् ॥ १९ ॥
पतितं पतितेत्युक्त्वा चौरं चौरेति वा पुनः । वचनात्तुल्यदोषः स्यान्मिथ्याद्विर्दोषतां व्रजेत् ॥२१॥

जो मनुष्य शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त करके शुद्ध होगया हो उसको पातकी नहीं कहना चाहिये और जो मनुष्य राजा द्वारा किसी अपराधका दण्ड पाचुकाहो उसको अपराधी नहीं कहना चाहिये; क्योंकि कहनेवाला दण्ड पानेयोग्य होताहै ॥ १९ ॥ पतितको पतित तथा चोरको चोर कहनेसे उसके तुल्य दोषी होता है और झूठ मूठ किसीको पतितआदि दोषी कहनेसे कहनेवालेको दूना दोष लगताहै ॥ २१ ॥

उपाक्रुष्य तु राजानं कर्मणि स्वे व्यवस्थितम् । जिह्वाच्छेदाद्भवेच्छुद्धः सर्वस्वहरणेन वा ॥ २९ ॥

जो मनुष्य धर्मिष्ठ राजाको दुर्वचन कहै उसकी जीभ काटलेना अथवा उसका सब धन हरण करलेना चाहिये, ऐसा करनेसे वह शुद्ध होजाता है ॥ २९ ॥

मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष और वस्तुपर प्रहार करनेका दण्ड १२.

(१) मनुस्मृति ८ अध्याय ।

एष दण्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य तत्त्वतः । अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम् ॥२७८॥

वाक्पारुष्य अर्थात् वचनकी कठोरताके दण्डकी विधि कही गई; अब दण्डपारुष्य अर्थात् मारपीटकी कठोरताकी विधि कहता हूँ ❀ ॥ २७८ ॥

येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः । छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ॥ २७९ ॥
पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति । पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति ॥ २८० ॥

❀ नारदस्मृति—१५ विवादपद । पर (स्थावर जङ्गम) के गात्रपर हाथ, पांव अथवा आयुधसे मारकर या भस्म आदि वस्तु डालकर दुःख पहुँचानेको दण्डपारुष्य कहते हैं ॥ ४ ॥ वह ३ प्रकारका है; मारनेके लिये मुक्के, लाठी आदि उठाना मृदु दण्डपारुष्य; मुक्के, लाठी आदिसे मारना मध्यम दण्डपारुष्य और लाठी शस्त्र आदि किसीसे मारकर घाव करदेना उत्तम दण्डपारुष्य कहलाता है ॥ ५ ॥

अन्त्यज मनुष्य जिस अङ्गसे श्रेष्ठ जातिके मनुष्यको मारे राजा उसका वही अङ्ग कटवादेवे; ऐसी मनुकी आज्ञा है ※ ॥ २७९ ॥ राजाको चाहिये कि यदि वह श्रेष्ठ जातिको मारनेके लिये हाथ अथवा लाठी उठावे तो उसका हाथ कटवाडाले और यदि क्रोध करके लातसे मारे तो उसका पैर कटवादेवे ॥ २८० ॥

सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः। कट्यां कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वास्यावकर्त्तयेत् ॥ २८१ ॥
अवनिष्ठीवतो दर्पाद्द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः। अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम् ॥ २८२ ॥
केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदविचारयन्। पादयोर्दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च ॥ २८३ ॥
त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः। मांसभेत्ता तु षण्णिष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः॥२८४

यदि नीच जातिका मनुष्य ऊँच जातिके आसनपर बैठे तो राजा उसके कमरमें तप्त लोहेका चिह्न करके अपने राज्यसे निकालदेवे अथवा उसके कमरका मांसपिण्ड कटवादेवे ॥ २८१ ॥ यदि वह अहंकारसे श्रेष्ठके शरीरपर थूकदेवे तो उसके दोनों ओठोंको, मूत्र करदेवे तो उसके लिङ्गको और अधोवायु करदेवे तो उसके गुदाको कटवा दे ॥ २८२ ॥ यदि मारनेके लिये केश, चरण, दाढी, गर्दन अथवा अण्डकोशको पकड़े तो विना विचार किये उसके हाथोंको कटवा डाले ॥१८३॥ समान जातिके मनुष्यकी देहका चाम भेदन करनेवाले तथा देहसे रक्त निकालनेवालेपर १०० पण और मारकर मांस निकालनेवालेपर २४ मोहर दण्ड करे और हड्डी भेदन करनेवालेको राज्यसे निकालदेवे ▦ ॥ २८४ ॥

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथायथा। तथातथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा ॥ २८५ ॥

सब प्रकारके वनस्पतियोंके नष्ट करनेवालोंसे, उनके पत्र, फूल तथा फल और उत्तम मध्यमका विचार करके राजा दण्ड लेवे ॥ २८५ ॥

मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति। यथायथा महद् दुःखं दण्डं कुर्यात्तथातथा ॥ २८६ ॥
अङ्गावपीडनायां च व्रणशोणितयोस्तथा। समुत्थानव्ययं दाप्यः सर्वदण्डमथापि वा ॥ २८७ ॥

मनुष्यों अथवा पशुओंपर प्रहार करनेपर उनके क्लेशके अनुसार अपराधीको दण्डित करे ॥ २८६ ॥ घाव होने या रुधिर निकलनेसे पीड़ा होनेपर औषध, पथ्य आदिका सब खर्चा प्रहारकरनेवालेसे राजा दिलादेवे, यदि वह नहीं देवे तो घायल मनुष्यके खर्चके अनुसार अपराधीसे दण्ड वसूल करके घायलको देवे ॥ २८७ ॥

द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोपि वा। स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञो दद्याच्च तत्समम्॥२८८॥
चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्टमयेषु च। मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः पुष्पमूलफलेषु च ॥ २८९ ॥

जो मनुष्य जानकरके अथवा अनजानेमें किसीकी वस्तुको नष्टकरे वह वैसीही वस्तु अथवा उसका दाम देकर वस्तुके स्वामीको प्रसन्न करे और उतना ही दाम राजाको दण्ड देवे ॥ २८८ ॥ चाम, मशक आदि चामके वर्तन, काठके वर्तन और मिट्टीके वर्तनको, तथा फूल मूल अथवा फलको नष्ट करनेवाला मूल्यका पञ्चगुना दण्ड देवे ॥ २८९ ॥

यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन एव च। दशातिवर्तनान्याहुः शेषे दण्डो विधीयते ॥ २९० ॥
छिन्ननस्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते। अक्षभङ्गे च यानस्य चक्रभङ्गे तथैव च ॥ २९१ ॥
छेदने चैव यन्त्राणां योक्त्ररश्म्योस्तथैव च। आक्रन्दे चाप्यपैहीति न दण्डं मनुरब्रवीत् ॥ २९२ ॥

नीचे लिखेहुए १० कारणोंसे किसीकी हानि होनेपर यान, सारथी अथवा मालिक दण्डित नहीं होंगे; अन्य कारणोंसे हानि होनेपर दण्ड होनेकी विधि है ॥ २९० ॥ १ बलकी नाथ टूटजानेसे, २ जूआ टूटजानेसे ३ ऊंची नीची भूमिपर पहिये आदि फिसल जानेसे ४ कोई वस्तु सामने आनेपर बैलके चिहुकजानेसे ५ पहियेकी धूरी टूटजानेसे ६ पहिये टूटजानेसे, ७ चाम आदिका बन्धन टूटजानेसे ८ बैलोंके जोत टूटजानेसे, ९ मुख बन्धनकी रस्सी टूटजानेसे और १० हटजानेके लिये जोरसे सारथीके पुकारनेपर किसीकी वस्तु अथवा देहकी हानि होगी तो सारथी आदिको दण्ड नहीं होगा, ऐसा भगवान् मनुने कहा है ⁂ ॥ २९१--२९२ ॥

※ नारदस्मृति--१५ विवादपद--२४ श्लोक। जिस अङ्गसे ब्राह्मणको मारे राजा उसका वही अङ्ग कटवा देवे, इससे उसकी शुद्धि हो जाती है। गौतमस्मृति-१२ अध्याय--१ अङ्क। यदि शूद्र द्विजातिके निकट आकर गाली आदि देवे अथवा मारपीट करे तो जिस अङ्गसे वह अपराध करे उसका वही अङ्ग राजा कटवादेवे।

▦ नारदस्मृति--१५ विवादपदके २५--२८ श्लोकमें ऐसा ही है।

⁂ याज्ञवल्क्यस्मृति--२ अध्याय। उच्चस्वरसे पुकारकर सावधान करनेपर यदि किसीके घोडे, बैल आदि पशुसे अथवा फेंके हुए काठ, ढेले, बाण या पत्थरसे अथवा बाहुसे या रथके जूएसे किसीको चोट लगेगी अथवा किसीकी हानि होगी तो सावधानकरनेवाला मनुष्य दोषी नहीं समझा जायगा ॥ ॥ ३०२ ॥ बैलकी नाथ या जूआ टूटजानेपर यदि बैलके पीछे हटनेके कारण गाडीसे कोई प्राणी मरजायगा तो गाड़ीवान् अपराधी नहीं होगा ॥ ३०३ ॥

यत्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु । तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम् ॥२९३॥
प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति । युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याः शतंशतम् ॥ २९४ ॥
स चेत्तु पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा । प्रमापयेत्प्राणभृतस्तत्र दण्डोऽविचारितः ॥ २९५॥
मनुष्यमारणे क्षिप्रं चौरवत्किल्बिषं भवेत् । प्राणभृत्सु महत्स्वर्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु ॥ २९६ ॥
क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दमः । पञ्चाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु ॥ २९७ ॥
गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्पञ्चमाषिकः । माषकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकरनिपातने ॥ २९८ ॥

राजाको उचित है कि सारथीके दोषसे रथद्वारा हिंसा होजावे तो अशिक्षित सारथी रखनेके कारण रथके मालिकपर २०० पण दण्ड करे; किन्तु यदि शिक्षित सारथीके दोपसे ऐसा होवे तो सारथीको ही दण्डित करे और अशिक्षित सारथीके रथपर चढ़नेवालेसे १०० पण दण्ड लेवे ॥ २९३-२९४ ॥ यदि पशुओं और रथोंसे रुकेहुए मार्गमें सारथी रथको चलावे और उससे प्राणिकी हिंसा होजावे तो विन विचार कियेहुए सारथीको दण्डित करे; यदि कोई मनुष्य मरजावे तो सारथीको चोरके समान दण्डित करे और यदि गौ, हाथी, ऊंट; घोड़ा आदि बड़ा पशु मरे तो आधा दण्ड लेवे ॥ २९५-२९६ ॥ छोटे पशु नष्ट होनेपर २०० पण; रुरु, पृपत् आदि शुभ मृग अथवा हंस, सारस आदि पक्षीके नष्ट होनेपर ५० पण; गदहे, बकरे अथवा भेडके नष्ट होनेपर ५ मासा रूपा और कुत्ते या सूअरके नष्ट होनेपर १ मासा रूपा सारथीसे दण्ड लेवे ॥ २९७-२९८ ॥

भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राता च सोदरः । प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा॥२९९
पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गे कथञ्चन । अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥ ३०० ॥

भार्या, पुत्र, दास, शिष्य अथवा छोटे सहोदर भाई यदि अपराध करें तो रस्सी अथवा बांसकी कमाचीसे उनकी पीठपर मारना चाहिये; सिर आदि किसी कोमल अङ्गपर नहीं; क्योंकि कोमल अङ्गपर प्रहार करनेवाला चोरके समान अपराधी होगा ॥ २९९-३०० ॥

९ अध्याय ।

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा । यद्वापि प्रतिसंस्कुर्याद्दाप्यस्तूत्तमसाहसम् ॥ २७९ ॥
कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान् । हस्त्यश्वरथहर्तॄंश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥ २८० ॥
यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत् । आगमं वाप्यपां भिद्यात्स दाप्यः पूर्वसाहसम् ॥ २८१ ॥
संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः । प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानिच ॥ २८५ ॥:
अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा । मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः ॥ २८६ ॥
प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम् । द्वाराणां चैव भेत्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ २८९ ॥

राजाको उचित है कि तड़ाग तोड़नेवाले मनुष्यको जलमें डुबाकर अथवा साधारण प्रकारसे वध करे किन्तु यदि वह तड़ागको बनाकर ठीक करदेवे तो उससे १००० पण दण्ड लेवें ॥ २७९ ॥ जो मनुष्य राजाके भण्डारगृह, शस्त्रागार अथवा देवमन्दिरको तोड़ताहै अथवा राजाके हाथी, घोड़े या रथको हरण करताहै विना विचारकिये उसका वध करे ॥ २८० ॥ जो मनुष्य साधारण लोगोंके लिये पहिलेके बनेहुए तालावका जल नष्ट करे अथवा बान्ध बान्धकर जलका मार्ग बन्द करे उससे २५० पण दण्ड लेवे ॥ २८१ ॥ सीढ़ी, ध्वजा अथवा प्रतिमा तोड़नेवालेपर ५०० पण दण्ड करे और तोड़नेवालोंसे इनको नया बनवादेवे ॥ २८५ ॥ अच्छी वस्तुको दुष्ट वस्तु मिलाकर बिगाड़नेवाले और मणिआदिको तोड़ने तथा कुठारसे छेदकर बिगाड़देनेवालेपर १५० पण दण्ड करे ॥ २८६ ॥ पुर आदिकी दीवार तोड़नेवाले, किले आदिकी खाई भरनेवाले और शहरका द्वार तोड़नेवालेको शीघ्र अपने राज्यसे निकालदेवे ॥ २८९ ॥

अभिचारेषु सर्वेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः । मूलकर्मणि चानाप्ते कृत्यासु विविधासु च ॥ २९० ॥

मारण, वशीकरण-आदि अभिचार करनेवालेसे राजा २०० पण दण्ड लेवे; यदि अभिचार करनेसे कोई मरजावे तो उसको खूनीके समान दण्डित करे ॥ २९० ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-२अध्याय ।

भस्मपङ्करजःस्पर्शे दण्डो दशपणः स्मृतः । अमेध्यपार्ष्णिनिष्ठ्यूतस्पर्शने द्विगुणः स्मृतः ॥२१७॥
समेष्वेवं परस्त्रीषु द्विगुणस्तूत्तमेषु च । हीनेष्वर्धदमो मोहमदादिभिरदण्डनम् ॥ २१८ ॥

---

* याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय-३०४ श्लोक । यदि दांतवाले अथवा सींगवाले पशुका स्वामी समर्थ होनेपर भी पशुके मारनेके समय पशुसे नहीं बचावेगा तो राजा उसपर २५० पण दण्ड करेगा और यदि मनुष्यके पुकारनेपर भी उसको पशुसे नहीं बचावेगा तो राजा उससे ५०० पण दण्ड लेगा ।

अपने तुल्य मनुष्यके शरीरपर राख; पांऊ अथवा धूली डालनेवालेपर १० पण और अपवित्र-वस्तु अथवा थूक डालनेवाले या अपने पैरकी एड़ी छुआ देनेवालेपर राजा २० पण दण्ड करे और परकी स्त्री अथवा अपनेसे बड़ेके साथ ऐसा वर्ताव करनेवालेसे दूना और अपनेसे छोटेके साथ ऐसा करनेवालेसे आधा दण्ड लेवे; किन्तु यदि कोई अज्ञानसे अथवा मदिरा आदिसे मतवाला होकर ऐसा काम करे तो उसको दाण्डित नहीं करे ॥ २१७–२१८ ॥

विप्रपीडाकरं छेद्यमङ्गमब्राह्मणस्य तु । उद्गूर्णे प्रथमो दण्डः संस्पर्शे तु तदर्धिकः ॥ २१९ ॥
उद्गूर्णे हस्तपादे तु दशविंशतिकौ दमौ । परस्परं तु सर्वेषां शस्त्रे मध्यमसाहसः ॥ २२० ॥
पादकेशांशुककरोल्लुञ्चनेषु पणान्दश । पीडाकर्षांशुकावेष्टपादाध्यासे शतं दमः ॥ २२१ ॥
शोणितेन विना दुःखं कुर्वन्काष्ठादिभिर्नरः । द्वात्रिंशतं पणान्दण्ड्यो द्विगुणं दर्शनेऽसृजः ॥ २२२ ॥
करपाददतोभङ्गे छेदने कर्णनासयोः । मध्यो दण्डो व्रणोद्भेदे मृतकल्पहते तथा ॥ २२३ ॥
चेष्टाभोजनवाग्रोधे नेत्रादिप्रतिभेदने । कन्धराबाहुसक्थ्नां च भङ्गे मध्यमसाहसः ॥ २२४ ॥
एकन्नतां बहूनां च यथोक्ताद्द्विगुणो दमः । कलहापहृतं देयं दण्डश्च द्विगुणस्ततः ॥ २२५ ॥
दुःखमुत्पादयेद्यस्तु स समुत्थानजं व्ययम् । दाप्यो दण्डं च यो यस्मिन्कलहे समुदाहृतः ॥ २२६ ॥

राजाको चाहिये कि क्षत्रियआदि जिस अङ्गसे ब्राह्मणको आघात करके पीड़ा पहुंचावें उनका वह अङ्ग कटवादेवे । मारनेके लिये शस्त्र उठानेवालेसे २५० पण और मारनेके लिये शस्त्र छूनेवालेसे १२५ पण दण्ड लेवे ॥२१९॥ अपने समान जातिके मनुष्यको मारनेके लिये हाथ उठानेवालेपर १० पण पांव उठानेवालेपर २० पण और शस्त्र उठानेवालेपर ५०० पण दण्ड करे ॥२२०॥ पांव, केश, वस्त्र अथवा हाथ पकड़कर खींचनेवालेसे १० पण वस्त्र लपेटकर तथा खींचकर पैरसे मारनेवालेसे १०० पण; रुधिर नहीं निकलने योग्य काठ आदिसे मारनेवालेसे ३२ पण और रुधिर निकालनेसे ६४ पण दण्ड लेवे ॥ २२१–२२२ ॥ हाथ, पांव अथवा दांत तोडनेवाले; नाक या कान काटनेवाले; घाव कुचल देनेवाले; मारकर घायल करदेनेवाले; चलना, खाना अथवा बोलना रोकनेवाले; आंख या जीभ छेदनेवाले और कन्धा, बाहु अथवा जङ्घा तोड़नेवालेसे ५०० पण दण्ड लेवे ॥ २२३–२२४ ॥ यदि बहुत मनुष्य मिलकर एक मनुष्यको मारें तो प्रत्येकपर पूर्वोक्तका दूना दण्ड करे; कलहके समय यदि कोई किसीके द्रव्यको चुरालेवे तो उससे वह द्रव्य दिलावे और उसका दुगुना द्रव्य दण्ड लेवे ॥ २२५ ॥ जो किसीकी ताड़ना करके उसको पीड़ित करदेवे उससे घायलके औषध, पथ्य आदिका खर्चा दिलावे और अपराधके योग्य उससे दण्ड लेवे ॥ २२६ ॥

अभिघाते तथा छेदे भेदे कुड्यावपातने । पणान्दाप्यः पञ्चदश विंशतिं तद्व्ययं तथा ॥ २२७ ॥

किसीकी दीवारको चोट पहुंचानेवालेपर ५ पण, उसमें छेद करदेनेवालेपर १० पण, उसके हिस्सेको गिरादेनेवालेपर २० पण और सम्पूर्ण दीवार गिरादेनेवालेपर ३५ पण राजा दण्ड करे और दीवारके मालिकको दीवार बनानेका खर्चा दिलादेवे ॥ २२७ ॥

दुःखोत्पादि गृहे द्रव्यं क्षिपन्प्राणहरं तथा । षोडशाद्यः पणान्दाप्यो द्वितीयो मध्यमं दमम् ॥२२८॥

किसीके घरमें दुःख उत्पन्न करनेवाली कांटे आदि वस्तु फेंकनेवालेपर १६ पण और विष, सर्प आदि प्राणहरणकरनेवाली वस्तु फेंकनेपर ५०० पण दण्ड होना चाहिये ॥ २२८ ॥

दुःखे च शोणितोत्पादे शाखाङ्गच्छेदने तथा । दण्डः क्षुद्रपशूनां तु द्विपणप्रभृति क्रमात् ॥ २२९ ॥
लिङ्गस्य छेदने मृत्यौ मध्यमो मूल्यमेव च । महापशूनामेतेषु स्थानेषु द्विगुणो दमः ॥ २३० ॥

छोटे पशुओंमेंसे किसीको दुःख देनेवालेपर २ पण, उसके शरीरसे रुधिर निकालदेनेवालेपर ४ पण, उसकी सींग तोड़नेवालेपर ६ पण, अङ्ग तोड़देनेवालेपर ८ पण, और उसका लिङ्ग छेदन करनेवाले अथवा उसको मारडालनेवालेपर ५०० पण दण्ड करे और उसके मालिकको उसका दाम दिलावे, घोड़े आदि किसी बड़े पशुके साथ ऐसा वर्ताव करनेवालेपर दूना दण्ड होना चाहिये ※ ॥ २२९–२३० ॥

प्ररोहिशाखिनां शाखास्कन्धसर्वविदारणे । उपजीव्यद्रुमाणां च विंशतेर्द्विगुणो दमः ॥ २३१ ॥
चैत्यश्मशानसीमासु पुण्यस्थाने सुरालये । जातद्रुमाणां द्विगुणो दमो वृक्षेऽथ विश्रुते ॥ २३२ ॥
गुल्मगुच्छक्षुपलताप्रतानौषधिवीरुधाम् । पूर्वस्मृतादर्धदण्डः स्थानेषूक्तेषु कर्तने ॥ २३३ ॥

※ बृहद्विष्णुस्मृति—५ अध्याय-१०९ और ११८ अङ्क । पशुका पुरुषत्व नाश करनेवालेपर १०० पण दण्ड होगा ।

कलम लगाने योग्य और जीविकावाले वृक्षकी शाखा काटनेवालेसे २० पण, स्कन्ध काटनेवालेसे ४० पण, और जड़ काटनेवालेसे ८० पण दण्ड राजा लेवे ॥ २३१ ॥ चैत्य (चबूतरा), श्मशान, सीमा, पवित्र स्थान अथवा देवस्थानके वृक्ष तथा प्रसिद्ध वृक्षकी शाखा आदि काटनेवाले पर दूना दण्ड होना चाहिये ॥ २३२ ॥ पूर्वोक्त स्थानोंमें उत्पन्न ऊख, सरपता आदि गुल्म; बेला, चमेली आदि गुच्छ; करवीर आदि क्षुप; गुरुची आदि लता सारिवा-आदि प्रतान; धान, गेहूँ आदि औषधि; और कुम्हड़ा आदि वीरुधको काटनेवालोंसे आधा दण्ड राजा लेवे ॥ २३३ ॥

शस्त्रावपाते गर्भस्य पातने चोत्तमो दमः । उत्तमा वाधमो वापि पुरुषस्त्रीप्रमापणे ॥ २८१ ॥

शस्त्रसे किसीको मारनेवालेको और स्त्रीका गर्भ गिरानेवालेको उत्तम दण्ड और स्त्री अथवा पुरुषका मारनेवालेको यथायोग्य उत्तम अथवा अधम दण्ड देना चाहिये ॥ २८१ ॥

(२५) बौधायनस्मृति--१ प्रश्न-१० अध्याय ।

क्षत्रियादीनां ब्राह्मणवधे वधः सर्वस्वहरणं च ॥२० ॥ तेषामेव तुल्यापकृष्टवधे यथाबलमनुरूपान्दण्डान्प्रकल्पयेत् ॥ २१ ॥

राजाको उचित है कि ब्राह्मणवध करनेवाले क्षत्रिय आदिको वध करे और उनका सब धन हरण करलेवे ॥ २० ॥ अपने समान जाति अथवा अपनेसे नीच जातिके मनुष्यके वध करनेवालोंको उनके बलके अनुरूप दण्डित करे ॥ २१ ॥

(२६) नारदस्मृति-१५ विवादपद ।

राजनि प्रहरेद्यस्तु कृतागस्यपि दुर्मतिः । शूले तमग्नौ विपचेद् ब्रह्महत्याशताधिकम् ॥ ३० ॥

जो दुर्बुद्धि मनुष्य राजाके ऊपर प्रहार करे उसको त्रिशूलमें खोंसकर आगमें पकाना चाहिये; क्योंकि वह एकसौ ब्रह्मघातीसे अधिक पापी है ॥ ३० ॥

पुत्रापराधेन पिता नाश्वे न शुनि दण्डभाक् । न मर्कटे च तत्स्वामी तेनैव प्रहितो न चेत् ॥ ३१॥

पुत्रके अपराधसे पिताको दण्ड नहीं होना चाहिये और घोड़े, कुत्ते अथवा वानरके अपराधसे उसके स्वामीको यदि उसकी प्रेरणा न होय तो दण्डित नहीं करना चाहिये ॥ ३१ ॥

चोरी १३.

(१) मनुस्मृति-८ अध्याय ।

एषोऽखिलेनाभिहितो दण्डपारुष्यनिर्णयः । स्तेनस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णये ॥ ३०१ ॥

दण्डपारुष्यका विधान कहा गया, अब चोरीकी दण्डविधि कहताहूँ ❀ ॥ ३०१ ॥

परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां निग्रहे नृपः । स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्धते ॥ ३०२ ॥
अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः । सत्रं हि वर्धते तस्य सदैवाभयदक्षिणम् ॥ ३०३ ॥
सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षतः । अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः ॥ ३०४ ॥
रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन् । यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः ॥ ३०६ ॥
योऽरक्षन्बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः । प्रतिभागं च दण्डं च स सद्यो नरकं व्रजेत् ॥ ३०७ ॥

राजा अतियत्नपूर्वक चोरको दण्डित करे, चोरोंको दण्ड देनेसे उसका यश होता है और राज्यकी वृद्धि होतीहै ॥ ३०२॥ जो राजा चोरोंको दण्डित करके प्रजाओंको अभय करता है वह सबको पूजनयि होता है और उसकी अभय दक्षिणारूपी यज्ञकी वृद्धि होती है ॥ ३०३ ॥ प्रजाओंकी रक्षा करनेसे उनके धर्मकार्योंका छठा भाग राजाको मिलता है और उनकी रक्षा नहीं करनेसे उनके पापोंका छठा भाग राजाको प्राप्त होताहै ॥ ३०४ ॥ धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करने और वधयोग्य लोगोंके घात करनेसे राजाको प्रतिदिन लाख (गौ) दक्षिणावाले यज्ञके तुल्य फल मिलता है ॥ ३०६ ॥ जो राजा प्रजाकी रक्षा नहीं करके उनसे अन्न, कर, महसूल, भेंट अथवा राज-दण्ड लेताहै वह मरनेपर शीघ्रही नरकमें जाताहै ॥ ३०७ ॥

निग्रहेण हि पापानां साधूनां संग्रहेण च । द्विजातय इवेज्याभिः पूयन्ते सततं नृपाः ॥ ३११ ॥
अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी । गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम् ३१७॥

पापियोंको दण्डदेने और साधुओंकी रक्षा करनेसे यज्ञ करनेवाले द्विजोंके समान राजा सदा पवित्र होताहै ॥ ३११ ॥ भ्रूणघातीका पाप उसके अन्न खानेवालेको, व्यभिचारिणी स्त्रीका पाप उसके पतिको, शिष्यका पाप उसको दण्ड नहीं देनेसे गुरुको, विधिहीन यज्ञ करानेपर यजमानका पाप यज्ञ करानेव. और चोरका शासन नहीं करनेसे चोरका पाप राजाको लगता है ॥ ३१७ ॥

❀ मनुस्मृति—८ अध्याय-३३२ श्लोक । द्रव्यके स्वामीके अप्रत्यक्षमें द्रव्यहरण करनेको तथा लेकरके छिपानेको चोरी कहतेहैं ।

राजनिर्धूतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः । निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ३१८॥

पापी मनुष्य राजाद्वारा दण्डित होनेपर निष्पाप होकर यदि फिर पाप न करें तो साधु और पुण्यात्मा लोगोंके समान स्वर्गमें जातेहैं ॐ ॥ ३१८ ॥

यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्भिन्द्याच्च यः प्रपाम् । स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च तस्मिन्समाहरेत्॥३१९॥
धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः । शेषेऽप्येकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्धनम्॥३२०॥
तथाधरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः । सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम् ॥ ३२१ ॥
पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते । शेषे त्वेकादशगुणं मूल्याद्दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ ३२२ ॥
पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः । मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति ॥ ३२३ ॥

राजाको उचित है कि जो मनुष्य कुएके निकटकी पानी भरनेकी रस्सी अथवा घड़ेको चुरावे अथवा पौहरेको तोड़े उसपर एक मासा सोना दण्ड करे और रस्सी आदिके मालिकको रस्सी आदि दिलादेवे ॥ ॥ ३१९ ॥ दस कुम्भसे अधिक धान्य चुरानेवालेको शारीरिक दण्ड देवे और इससे कम धान्य चुराने-वाले चोरसे चोरीके धान्यसे ग्यारहगुना दण्ड लेवे और धनीका धान्य दिलादेवे ॥ ३२० ॥ सौ (पल) से अधिक तौलनेयोग्य सोना रूपा आदि तथा मूल्यवान् वस्त्र चुरानेवालेको शारीरिक दण्ड देवे; पचास पलसे अधिक (सौसे कम) चुरानेवालेके हाथ कटवाडाले और पचासपलसे कम चुरानेवालेसे ग्यारह गुना दण्ड लेवे ▩ ॥ ३२१–३२२ ॥ कुलीन पुरुषको विशेष करके कुलीन स्त्रीको तथा हीरा आदि श्रेष्ठ रत्नोंको हरण करनेवालेका वध करे ॥ ३२३ ॥

महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च । कालमासाद्य कार्यं च दण्डं राजा प्रकल्पयेत् ॥ ३२४ ॥
गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छुरिकायाश्च भेदने । पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ॥ ३२५ ॥

हाथी, घोड़े आदि बड़े-पशुओंको तथा शस्त्र और औषधीको चुरानेवालेके लिये समय और कार्यका विचार करके राजा दण्डका विधान करे ॥ ३२४ ॥ ब्राह्मणकी गौ चुरानेवाले, वन्ध्यागौका वाहनके लिये नाक छेदनेवाले और पशुके चुरानेवालेका आधा पांव शीघ्र कटवादेवे ॥ ३२५ ॥

सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च । दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य तृणस्य च ॥ ३२६ ॥
वेणुवैदलभाण्डानां लवणानां तथैव च । मृन्मयानां च हरणे मृदो भस्मन एव च ॥ ३२७ ॥
मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च । मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसम्भवम् ॥ ३२८ ॥
अन्येषां चैवमादीनां मद्यानामोदनस्य च । पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्द्विगुणो दमः ॥ ३२९ ॥

सूत, कपास, सुरबीज, गोबर, गुड़, दही, दूध, मट्ठा, पानी, तृण, बांस, बांसके-बर्तन, नोन, मिट्टीके वर्तन- मिट्टी, राख, मछली, पक्षी, तेल, घी, मांस, मधु, पशुओंके चमड़े, सींग आदि; मद्य, भात और पक्वान्न चोरानेवालेसे राजा चोरीकी वस्तुका दूना दण्ड लेवे ॥ ३२६–३२९ ॥

पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च । अन्येष्वपरिपूतेषु दण्डः स्यात्पञ्चकृष्णलः ॥ ३३० ॥
परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च । निरन्वये शतं दण्डः सान्वयेऽर्धशतं दमः ॥ ३३१ ॥

फूल, खेतका-हरितधान्य, ऊख, सरपता आदि गुल्म, गुरुच आदि वल्ली, तथा वृक्ष और इसप्रकारके विनाशुद्धकियेहुए धान्य चोरानेवालेपर राजा ५ रत्ती (रूपा या सोना) दण्ड करे ▩ ॥ ३३० ॥ साफ किये हुए धान्य, शाक, मूल अथवा फल चोरानेवाला यदि वस्तुके स्वामीका सम्बन्धी नहीं होवे तो उससे १०० पण और यदि सम्बन्धी होवे तो उससे ५० पण दण्ड लेवे ॥ ३३१ ॥

यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः । तमाद्यं दण्डयेद्राजा यश्चाग्निं चोरयेद्गृहात्॥ ३३३ ॥
येनयेन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते । तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥ ३३४ ॥

संस्कार कियेहुए सूत आदि पूर्वोक्त द्रव्योंको और अग्निशालासे अग्निको चुरानेवालेसे राजा २५० पण दण्ड लेवे ॥ ३३३ ॥ चोर जिस अङ्गके सहारे मनुष्यका धन चोरी करे राजा उसका वही अङ्ग कटवादेवे, जिससे वह फिर ऐसा काम नहीं करे ॥ ३३४ ॥

ॐ वसिष्ठस्मृति–१९ अध्यायके ३० श्लोकमें ऐसा ही है ।

▩ बृहद्विष्णुस्मृति–५ अध्यायके ७३–८२ अङ्क । धान्य और सस्य चुरानेवालेपर राजा उसका ग्यारहगुना दण्ड करे, पचास (पल) से अधिक सोना, चांदी, अथवा उत्तम वस्त्र, चुरानेवालेका हाथ कटवाडाले और इससे कम चुरानेवालेसे उसका ग्यारहगुना लेवे ।

▩ गौतमस्मृति–१३ अध्याय–२ अङ्क । फल, खेतका हरितधान्य अथवा शाक चुरानेवालेपर राजा ५ रत्ती (सोना) दण्ड करे ।

अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम् । षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च ॥ ३३७ ॥
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत् । द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः ॥ ३३८ ॥

राजाको उचित है कि चोरीके गुण दोषको जाननेवाला शूद्र चोरी करे तो उसपर विहित–दण्डसे ८ गुना, वैश्य चोरी करे तो उसपर १६ गुना, क्षत्रिय चोरी करे तो उसपर ३२ गुना और ब्राह्मण चोरी करे तो उसपर ६४ गुना या १०० गुना अथवा १२८ गुना दण्ड करे ॥ ३३७–३३८ ॥

वानस्पत्यं मूलफलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च । तृणं च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत् ॥ ३३९ ॥

वन आदिके अरक्षितस्थानसे वट, पीपलआदि वनस्पतियोंके मूल, फल, होमके लिये काठ अथवा गौके लिये तृण लेजानेवाले चोर नहीं समझे जांयगे; ऐसा भगवान् मनुने कहा है ॥ ३३९ ॥

योऽदत्तादायिनो हस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणो धनम् । याजनाध्यापनेनापि यथा स्तेनस्तथैव सः ॥ ३४० ॥

जो ब्राह्मण चोरसे यज्ञ कराने अथवा पढ़ानेका दक्षिणा स्वरूप चोरीका धन लेगा वह चोरके समान दण्डनीय होगा ॥ ३४० ॥

द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके । आददानः परक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति ॥ ३४१ ॥

यदि भूखसे पीड़ित ब्राह्मण पथिक किसीके खेतसे दो ऊख अथवा दो मूल लेलेगा तो वह दण्ड-योग्य नहीं होगा ॥ ३४१ ॥

असन्धितानां सन्धाता सन्धितानां च मोक्षकः । दासाश्वरथहर्ता च प्राप्तः स्याच्चोरकिल्बिषम् ॥ ३४२ ॥

दूसरेके छुटेहुए पशुको बान्धनेवाला, बन्धेहुए पशुको खोल लेजानेवाला और दस, घोड़ा तथा रथको हरण करनेवाला मनुष्य चोरके समान दण्डनीय होगा ॥ ३४२ ॥

अनेन विधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहम् । यशोऽस्मिन्प्राप्नुयाल्लोके प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ ३४३ ॥

जो राजा इस प्रकारसे चोरको दण्डित करताहै वह इसलोकमें यश और मरनेपर परलोकमें सुख पाताहै ॥ ३४३ ॥

९ अध्याय ।

सभाप्रपापूपशालावेशमद्यान्नविक्रयाः । चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाः समाजाःप्रेक्षणानि च ॥ २६४ ॥
जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेशनानि च । शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्युपवनानि च ॥ २६५ ॥
एवंविधान्नृपो देशान्गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः । तस्करप्रतिषेधार्थं चारैश्चाप्यनुचारयेत् ॥ २६६ ॥
तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः । विद्यादुत्सादयेच्चैव निपुणैः पूर्वतस्करैः ॥ २६७ ॥
भक्ष्यभोज्यापदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्शनैः । शौर्यकर्मापदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम् ॥ २६८ ॥
ये तत्र नोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये । तान्प्रसह्य नृपो हन्यात्समित्रज्ञातिबान्धवान् ॥ २६९ ॥

सभा, पानीशाले, पूआ बेंचनेके घर, वेश्याके गृह, मदिरा विकनेके स्थान, अन्न विकनेके स्थान, चौमुहानी राह, प्रसिद्ध वृक्षकी छाया, लोगोंके एकत्र होनेके स्थान, पुरानी फुलवाड़ी, कारीगरोंके घर, निर्जनगृह, वन और बगीचेमें चोर रहतेहैं; इनको रोकनेके लिये राजा स्थावर और जङ्गम सेना तथा दूतोंको नियुक्त करे ॥ २६४–२६६ ॥ जो लोग चोरोंके सहायक, अनुमत, चोरीके कार्यमें निपुण और पहिलेके चोर हैं राजा उनको भेदिया दूत बनाकर चोरोंको पकड़नेका प्रबन्ध करे ॥ २६७ ॥ अच्छे भोजन, सिद्ध ब्राह्मणके दर्शन और मल्लयुद्ध तमाशेका लोभ देकर दूतोंद्वारा चोरोंको बुलावे; जो चोर पकड़ेजानेकी शङ्कासे नहीं आवें तथा दूतोंके वशमें नहीं होवें उनको अकस्मात् पकड़कर मित्र, जाति और बान्धवोंके सहित दण्डित करे ॥ २६८–२६९ ॥

न होढेन विना चौरं घातयेद्धार्मिको नृपः । सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन् ॥ २७० ॥

गौतमस्मृति–१२ अध्याय२ अङ्क । चोरी करनेपर शूद्रसे दूना दण्ड वैश्यका, चौगुना दण्ड क्षत्रियका और अठगुना दण्ड ब्राह्मणका होना चाहिये और विद्वान्के निरादर करनेपर शूद्रसे अधिक दण्ड वैश्यका, वैश्यसे अधिक दण्ड क्षत्रियका और क्षत्रियसे अधिक दण्ड ब्राह्मणका होना चाहिये ।

याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्याय-१७० श्लोक । गांवके मनुष्योंकी इच्छासे अथवा भूमिके मालिककी इच्छानुसार गौओंके चरनेकेलिये गांवके पास परतीभूमि छोड़देना चाहिये; इस भूमिके सब स्थानोंसे सब कालमें तृण; लकड़ी और फूल ब्राह्मण लेजावें । गौतमस्मृति–१२ अध्याय-२ अङ्क । गौ और अग्निहोत्रके लिये तृण, लकड़ी, वीरुद् (बिरवा) वट, पीपलआदि वनस्पति और फूलको तथा अरक्षित-फलको अपनी वस्तुके समान लेआना चाहिये ।

धर्मात्मा राजाको उचित है कि चोरके पास चोरीका माल नहीं मिलनेसे तथा चोरीका निश्चय नहीं होनेसे चोरको दण्डित नहीं करे, किन्तु सेंध फोड़ने आदिकी सामग्री तथा चोरीके मालके सहित चोरके पकड़े जानेपर विना विचार कियेहुए उसको शारीरिक दण्ड देवे ॥ २७० ॥

ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः । भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत् ॥२७१॥
राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामन्तांश्चैव चोदितान् । अभ्याघातेषु मध्यस्थाञ्छिक्ष्याच्चौरानिव द्रुतम् ॥२७२॥

गांवके जो मनुष्य चोरको भोजन, वर्त्तन, अथवा रहनेका स्थान देतेहैं राजा उनको शारीरिक दण्ड देवे ॥ २७१ ॥ राज्यके रक्षक अथवा सीमापर रहनेवाले राजकर्मचारी यदि चोरोंकी सहायता करें तो राजा उनको शीघ्र ही चोरके समान दण्डित करे ॥ २७२ ॥

ग्रामघाते हिताभङ्गे पथि मोषाभिदर्शने । शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः ॥२७४॥
राज्ञः कोषापहर्तॄंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् । घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् ॥ २७५ ॥

जो लोग गांव लूटतेहुए, पुल तोड़तेहुए अथवा चोरी करके भागे जातेहुए चोरको अपनी शक्तिके अनुसार पकड़नेका उद्योग नहीं करतेहैं उनको धन और सब सामानोंके सहित राजा अपने राज्यसे निकाल देवे ॥ २७४ ॥ राजभण्डारसे धन चुरानेवाले, राजाके विरोधी और शत्रुके साथ राजाका वैर बढ़ानेवालेको अनेक प्रकारका दण्ड देकर वध करे ॥ २७५ ॥

सन्धिं छित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वंति तस्कराः । तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत्२७६

सेंध लगाकर रातमें चोरी करनेवाले चोरको राजा दोनों हाथ कटवाकर चोखे शूलपर चढ़वा देवे ॥ २७६ ॥

अंगुलीर्ग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे । द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ॥ २७७ ॥

गांठ काटनेवाले चोरके पहली बारकी चोरीमें उसकी अंगुलियोंको और दूसरी बारकी चोरीमें उसके हाथ पांवको कटवा देवे और तीसरी बारकी चोरीमें उसका वध करे ▦ ॥ २७७ ॥

अग्निदान्भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान् । संनिधातॄंश्च मोषस्य हन्याच्चौरमिवेश्वरः ॥ २७८ ॥

जो लोग जानबूझके चोरको आग, भोजन, शस्त्र, अथवा छिपनेका स्थान देतेहैं अथवा चोरीकी वस्तुको रखतेहैं राजा उनको चोरके समान दण्डित करें ❋ ॥ २७८ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्याय।

देयं चौरहृतं द्रव्यं राज्ञा जानपदाय तु । अददद्धि समाप्नोति किल्बिषं यस्य तस्य तत् ॥ ३७ ॥

किसी मनुष्यका धन चोर ले जावे तो राजा उस धनको चोरसे छीनकर धनके मालिकको दे देवे, जो राजा उसको नहीं देगा उसको चोरीका पाप लगेगा ֍ ॥ ३७ ॥

ग्राहकैर्गृह्यते चौरो लौप्त्रेणाथ पदेन वा । पूर्वकर्मापराधी च तथा चाशुद्धवासकः ॥ २७० ॥
अन्येपि शङ्कया ग्राह्या जातिनामादिनिह्नवैः । द्यूतस्त्रीपानसक्ताश्च शुष्कभिन्नमुखस्वराः ॥ २७१ ॥
परद्रव्यगृहाणां च पृच्छका गूढचारिणः । निराया व्ययवन्तश्च विनष्टद्रव्यविक्रयाः ॥ २७२ ॥

चोरके खोजनेवाले राजकर्मचारीको उचित है कि जिसक पास चोरीका माल कुछ मिल जावे जिसका पांव चोरीके स्थानके पादचिह्नसे मिलजावे, जो पहिलेका चोर होवे और जिसका वासस्थान अशुद्ध स्थानमें होवे उसे पकड़लेवे ॥ २७० ॥ जो पूछनेपर अपनी जाति और नामको छिपावे; जो जूआ

✿ नारदस्मृति—१४ विवादपदके २०–२१ श्लोक। जो मनुष्य किसीका धन हरण होनेके समय धनवालेके ऊँचे शब्दको सुनकर दौड़कर नहीं जातेहैं वे चोरीके पापके भागी होतेहैं।

▦ याज्ञवल्क्यस्मृति–२ आध्यय-२७८ श्लोक। उचक्का और गंठकटा चोरके पहली बारके अपराधमें उचक्केका हाथ और गंठकटेकी चुटकी और दूसरी बारके अपराधमें दोनोंका एक एक हाथ और एक एक पांव राजा कटवा देवे।

❋ याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्याय। जो जानबूझकर चोर अथवा घातकको भोजन, छिपनेका स्थान, आग, जल, सलाह, हथियार अथवा खरचा देताहै राजा उसको उत्तम दण्ड देवे ॥ २८० ॥ जो मनुष्य राजाके आज्ञापत्रको घटाबढाकर लिखताहै और जो मनुष्य व्यभिचारी अथवा चोरको पकड़पर राजाको नहीं सौंपदेताहै राजा उसका उत्तम दण्ड देवे ॥ २९९ ॥ नारदस्मृति–१४ विवादपद। जो मनुष्य चोरको भोजन या छिपनेका स्थान देताहै अथवा भगादेताहै या शक्ति रहतेहुए चोरको नहीं पकड़ताहै, वह चोरीके अपराधमें भागी होताहै ॥ १९–२० ॥

֍ मनुस्मृति—८ अध्यायके ४० श्लोकमें भी ऐसा है।

परस्त्री और मद्यपानमें आसक्त होवे; पूछनेपर जिसका मुख सूखजावे और स्वर वदलजावे, जो परके धन और घरका पता लगाता फिरता होवे, जो गुप्त रीतिसे विचरता हो; जो विना आमदनीके बहुत खरच करताहोवे और जो फटी पुरानी वस्तुओंको वेचताहोवे; उनको भी चोरकी शङ्काकरके पकड़े॥ ॥२७१-२७२ ॥

गृहीतः शङ्कया चौर्ये नात्मानं चेद्विशोधयेत् । दापयित्वा गतं द्रव्यं चौरदण्डेन दण्डयेत् ॥ २७३ ॥

जो मनुष्य चोरीमें सन्देहसे पकड़ागया होवे वह यदि अपनी शुद्धताका प्रमाण नहीं देवे तो राजा उससे धनीको चोरीका धन दिलावे और उसको चोरके तुल्य दण्डित करे ॥ २७३ ॥

चौरं प्रदाप्यापहृतं घातयेद्विविधैर्वधैः । सचिह्नं ब्राह्मणं कृत्वा स्वराष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥ २७४ ॥

राजाको उचित है कि (उत्तम द्रव्यादि चोरीकरनेपर) चोरीका धन धनके मालिकको दिलाकरके अनेकप्रकारके शारीरिक दण्डसे चोरको मरवाडाले; किन्तु ब्राह्मण चोरके ललाटमें दाग देकर उसको अपने राज्यसे निकालदेवे ॥ २७४ ॥

घातितेपहृते दोषो ग्रामभर्त्तुरनिर्गते । विवीतभर्त्तुस्तु पथि चौरोद्धर्तुरवीतके ॥ २७५ ॥

स्वसीम्नि दद्याद्ग्रामस्तु पदं वा यत्र गच्छति । पञ्चग्रामी वहिः क्रोशाद्दशग्राम्यथ वा पुनः॥२७६॥

गांवके भीतर चोरी अथवा खून होजानेपर यदि चोर या घातकका गांवसे निकल जानेका पता नहीं लगे तो गांवके मालिकका दोष; सरायमें ऐसा होय तो सरायके मालिकका दोष; और राहमें ऐसा हो तो मार्गरक्षकका दोष समझना चाहिये ॥ २७५॥ गांवकी सीमाके भीतर चोरी होय तो गांवके मालिकसे अथवा जहांतक चोरके पांवका चिह्न देखपड़े वहांके मालिकसे और कई गांवोंके वीचमें चोरी होय तो ५ अथवा १० गांवोंके ग्रामपालोंसे राजा चोरीका धन लेवे ॥ २७६ ॥

बन्दिग्राहांस्तथा वाजिकुञ्जराणां च हारिणः । प्रसह्य घातिनश्चैव शूलानारोपयेन्नरान् ॥ २७७ ॥

(को छुड़ा लेजानेवाले, घोड़े और हाथीको चुरानेवाले और बलपूर्वक घात करनेवाले मनुष्यको राजा शूलीपर चढ़वादेवे ॥ २७७ ॥

क्षुद्रमध्यमहाद्रव्यहरणे सारतो दमः । देशकालवयःशक्तीः संचिन्त्य दण्डकर्मणि ॥ २७९ ॥

क्षुद्र, मध्यम और उत्तमवस्तुकी चोरीमें वस्तुके दामके अनुसार चोरको दण्डित करना चाहिये और देश, काल, चोरकी, अवस्था और शक्तिका, विचार करके दण्डका विधान करना चाहिये ॥ २७९ ॥

(१८) गौतमस्मृति-१० अध्याय ।

चौरहृतमुपजित्य यथास्थानं गमयेत् कोशाद्वा दद्यात् ॥ २ ॥

राजाको उचित है कि चोरीका माल चोरसे छीनकरके अथवा अपने घरसे मालवालेको देदेवे ▧ ॥ २ ॥

(२६) नारदस्मृति-१४ विवादपद ।

आदिसाहसमाक्रम्य स्तेयमादिच्छले ननु । तदपि त्रिविधं प्रोक्तं द्रव्यापेक्षं मनीषिभिः ॥ १३ ॥
क्षुद्रमध्योत्तमानां तु द्रव्याणामपकर्षणम् । मृद्भाण्डासनखट्वास्थिदारुचर्मतृणादि यत् ॥ १४ ॥
शमी धान्यं कृतान्नं च क्षुद्रद्रव्यमुदाहृतम् । वासः कौशेयवर्जं च गोवर्जं पशवस्तथा ॥ १५ ॥
हिरण्यवर्जं लोहं च मध्यं व्रीहियवा अपि । हिरण्यरत्नकौशेयस्त्रीपुंगोगजवाजिनः ॥ १६ ॥
देवब्राह्मणवस्त्रं च राज्ञां च द्रव्यमुत्तमम् ॥ १७ ॥
साहसेषु य एवोक्तस्त्रिषु दण्डो मनीषिभिः ॥२१ ॥
स एवः दण्डः स्तेयेपि द्रव्येषु त्रिष्वनुक्रमात् ॥ २२ ॥

आदिमें साहस छोड़कर छलपूर्वक जो काम कियाजाताहै उसको चोरी कहतेहैं, विद्वान् लोगोंने द्रव्यकी अपेक्षासे उसको ३ प्रकारका कहाहै,-क्षुद्र, मध्यम, और उत्तम-मिट्टीके बर्तन, आसन, खटिया, हाड़, काठ, चाम, तृण, उर्दी आदि अन्न, और भात आदि कृतान्नकी चोरी क्षुद्र चोरी है, रेशमी वस्त्रके अतिरिक्त अन्य वस्त्र, गौके सिवाय अन्य पशु और सोनाको छोड़कर लोहाआदि धातुकी मध्यमचोरी चोरी कहीजातीहै और धान १ यव, सोना, रत्न, रेशमीवस्त्र, स्त्री, पुरुष, हाथी, घोडे, देवता और ब्राह्मणके वस्त्र, और राजाकी वस्तुकी चोरी उत्तम चोरी कहलातीहै ॥१३-१७॥ विद्वानोंने तीनों प्रकारके साहसमें जिस क्रमसे दण्ड कहाहै उसी क्रमसे तीनों प्रकारकी चोरीमें दण्ड होना चाहिये ॥ २१-२२ ॥

॥ नारदस्मृति-१४ विवादपद-१९ श्लोक । जो मनुष्य दुष्ट कार्य तथा विना आमदनीका बहुत खरच करताहोवे उसपर चोरकी शङ्काकरके उसको पकड़ना चाहिये ।

▧ नारदस्मृति-१४ विवादपदके २७-२९ श्लोक । चोर न तो अन्तरिक्षसे, न स्वर्गसे, न समुद्रसे; और न दूसरे अगम्य स्थानसे आताहै, इसलिये राजाको चाहिये कि जिस प्रकारसे होसके उस प्रकारसे चोरका पता लगावे; यदि चोर नहीं मिले तो अपने घरसे चोरीका धन धनके मालिकको देवे; क्योंकि नहीं देनेपर वह धन और धर्मसे हीन होजायगा ।

डकैती आदि साहस १४.

(१) मनुस्मृति-८ अध्याय ।

स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम् । निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृत्वापह्नूयते च यत् ॥ ३३२ ॥

द्रव्यके स्वामीके सामने वलपूर्वक द्रव्य हरण करलेनेको साहस कहतेहैं और स्वामीके पीछे द्रव्य हरण करनेको तथा लेकरके नकार करनेको चोरी कहतेहै ॥ ३३२ ॥

ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम् । नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ॥ ३४४ ॥

वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः । साहसस्य नरः कर्त्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥ ३४५ ॥

साहसे वर्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः । स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥ ३४६ ॥

न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात् । समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् ॥ ३४७ ॥

शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते । द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते ॥ ३४८ ॥

जो राजा इन्द्रकी पदवी पानेकी इच्छा रखता है और अक्षय तथा अव्यय यश चाहता है वह (डाकू आदि) साहसिकको शीघ्र दण्ड देवे ॥ ३४४ ॥ क्रूरवचन बोलनेवाले, चोरी करनेवाले और मारपीट करनेवालेसे साहसिक मनुष्यको बहुत अधिक पापी जानना चाहिये ॥ ३४५ ॥ जो राजा साहसिक मनुष्यको दण्ड देनेमे विलम्ब करताहै वह शीघ्र नष्ट होता है और प्रजाका अप्रिय होजाता है ॥ ॥ ३४६ ॥ मित्रताके कारण अथवा अधिक धन प्राप्तिके लोभसे राजा सब लोगोंको डरानेवाले साहसिकलोगोंको कभी नही छोड़े ॥ ३४७ ॥ जब साहसिक लोगोंके वलसे धर्मका मार्ग रुके अथवा समयके प्रभावसे वर्णविप्लव होनेलगे तब धर्म रक्षाके लिये ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंको शस्त्रग्रहण करना चाहिये ॥ ३४८ ॥

आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च सङ्गरे । स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च धर्मेण घ्नन्न दुष्यति ॥ ३४९ ॥

अपनी रक्षाके लिये, गौ आदि दक्षिणाकी वस्तुके लिये, संग्राममें और स्त्री तथा ब्राह्मणकी रक्षाके लिये धर्मपूर्वक प्राणिवध करनेसे दोप नही लगता है ॥ ३४९ ॥

गुरुं वा वालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा वहुश्रुतम् । आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥ ३५० ॥

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन । प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥ ३५१ ॥

गुरु, वालक, वृद्ध अथवा वहुश्रुत ब्राह्मण भी यदि आततायी होकर आवे तो विना विचार किये-हुए उसका वध करना चाहिये ॥ ३५० ॥ प्रकाश्यमें अथवा गुप्त रीतिसे आततायीका वध करनेमें दोष नही लगता है; क्योंकि उसका क्रोध ही दूसरेसे क्रोध करवाके उसका वध कराता है* ॥ ३५१ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय ।

सामान्यद्रव्यप्रसभहरणात्साहसं स्मृतम् । तन्मूल्याद् द्विगुणो दण्डो निह्नवे तु चतुर्गुणः ॥ २३४ ॥

यः साहसं कारयति स दाप्यो द्विगुणं दमम् । यश्चैवमुक्त्वाहं दाता कारयेत्स चतुर्गुणम् ॥२३५॥

वलपूर्वक अन्यके धन हरण करनेको साहस कहतेहैं । वलसे अन्यका धन हरण करे तो उसपर उस धनका दूना दण्ड और यदि वह अस्वीकार करे तो उसपर चौगुना दण्ड होना चाहिये ॥ २३४ ॥ जो मनुष्य किसी अन्यसे साहस करवावेगा वह साहसके दण्डसे दूना दण्ड देने योग्य होगा और जो धन देनेको कहकर अन्यसे साहस करवावेगा वह चौगुने दण्डके योग्य होगा ॥ २३५ ॥

(२६) नारदस्मृति-१४ विवादपद ।

सहसा क्रियते कर्म यत्किञ्चिद्वलदर्पितैः । तत्साहसमिति प्रोक्तं सहोवलमिहोच्यते ॥ १ ॥

तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं प्रथमं मध्यमं तथा । उत्तमं चेति शास्त्रेषु तस्योक्तं लक्षणं पृथक् ॥ २ ॥

---

* वृहद्विष्णुस्मृति-५ अध्यायके १८५-१८६ श्लोकमें ऐसा ही है १८७-१८८ श्लोकमें है कि जो मनुष्य तलवारसे मारनेके लिये,विप देनेके लिये, घर जलानेके लिये, शापदेनेके लिये, मारण अभिचार द्वारा मारनेके लिये चुगुली करके राजासे वध करानेके लिये और भार्याहरण करनेके लिये उद्यत होतेहैं; इन्ही ७ को आततायी कहतेहैं और यश, धन तथा धर्म हरण करनेवाले भी आततायी कहे-जातेहै । वसिष्ठस्मृति-३ अध्यायके १९-२० श्लोक । आग- लगानेवाला, विपदेनेवाला, शस्त्र हाथमें लेकर मारनेके लिये आनेवाला धन हरण करनेवाला, खत हरण करनेवाला और स्त्रीहरण करनेवाला; ये ६ आततायी है, यदि वेदवेदांतका पूरा विद्वान् ब्राह्मण भी आततायी होकर आवे तो उसको मारडालना चाहिये; उसको मारनेसे ब्रह्महत्याका पाप नही लगता है ।

फलमूलोदकादीनां क्षेत्रोपकरणस्य च । भङ्गाक्षेपोपमर्दाद्यैः प्रथमं साहसं स्मृतम् ॥ ४ ॥
वासःपश्वन्नपानानां गृहोपकरणस्य च । एतेनैव प्रकारेण मध्यमं साहसं स्मृतम् ॥ ५ ॥
व्यापादो विषशस्त्राद्यैः परदाराभिमर्शनम् । प्राणोपरोधि यच्चान्यदुक्तमुत्तमसाहसम् ॥ ६ ॥
तस्य दण्डः क्रियापेक्षः प्रथमस्य शतावरः । मध्यमस्य तु शास्त्रज्ञैर्दृष्टः पञ्चशतावरः ॥ ७ ॥
उत्तमे साहसे दण्डः सहस्रावर इष्यते । वधः सर्वस्वहरणं पुरान्निर्वासनाङ्कने ॥ ८ ॥
तदङ्गच्छेद इत्युक्तो दण्ड उत्तमसाहसे ॥ ९ ॥

बलके अभिमानसे जो कुछ काम किये जातेहैं उनको साहस कहतेहैं क्योंकि सह शब्दका अर्थ बल है॥१॥ वे प्रथम, मध्यम और उत्तमके भेदसे ३ प्रकारके होतेहैं, तीनोंका लक्षण शास्त्रमें अलग अलग कहागयाहै॥३॥ फल, मूल, जलआदि और खेतकी सामग्रीको भङ्ग, आक्षेप और उपमर्दन आदि करनेको प्रथम साहस कहते हैं ॥ ४ ॥ वस्त्र, पशु, अन्न, पान और घरकी सामग्रीको भङ्ग आक्षेप और उपमर्दन करनेको मध्यमसाहस कहतेहैं ॥ ५ ॥ विषदेने, शस्त्र आदिसे मारने और परकी स्त्रीसे दुष्टव्यवहार करनेको तथा अन्य जो प्राणके नाश करनेवाले कर्म हैं उनको उत्तम साहस कहतेहैं ॥ ६ ॥ प्रथम साहसका दण्ड १०० पण; मध्यमसाहसका दण्ड ५०० पण और उत्तम साहसका दण्ड यथा योग्य १००० पण दण्ड लेना वध करना, सर्वस्व हरण करना पुरसे निकाल देना; शरीरमें चिह्न (दाग) देना और अङ्ग काटना हैं ॥ ७-९ ॥

व्यभिचार आदि स्त्रीसंग्रहण १५.

(१) मनुस्मृति-८ अध्याय ।

परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नॄन्महीपतिः । उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ॥ ३५२ ॥
तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसङ्करः । येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ॥ ३५३ ॥

राजाको उचित है कि परकी स्त्रीसे गमन करनेवाले मनुष्यको उद्वेगजनक दण्डसे चिह्नित करके अर्थात् नाक, कान आदि कोई अङ्ग काटकर अपने राज्यसे निकालदेवे ॥ ३५२ ॥ परकी स्त्रियोंसे गमन करनेस लोकमें वर्णसङ्कर उत्पन्न होतेहैं, जिनसे धर्मका मूल छेदन होकर सर्वनाश होताहै ॥ ३५३ ॥

परस्य पत्न्या पुरुषः सम्भाषां योजयन्रहः । पूर्वमाक्षारितो दोषैः प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् ॥ ३५४ ॥
यस्त्वनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् । न दोषं प्राप्नुयात्किञ्चिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः ॥३५५॥
परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि वा । नदीनां वापि सम्भेदे स संग्रहणमाप्नुयात् ॥ ३५६ ॥
उपचारक्रिया केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम् । सह खट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥ ३५७ ॥

जो पुरुष पहिलेसे परस्त्रीदोषसे दूषित हो वह यदि गांवके निर्जनस्थानमें परकी स्त्रीसे अयोग्य बातें करे तो राजा उससे २५० पण दण्ड लेवे ॥ ३५४ ॥ जो पुरुष पहलेसे परस्त्रीसंग्रहणके विषयमें निर्दोष हो वह यदि किसीकारणसे निर्जनस्थानमें परकी स्त्रीसे बातें करे तो उसपर दण्ड नहीं करना चाहिये; क्यों कि उसका कुछ दोष नहीं है ॥ ३५५ ॥ जो पुरुष जल भरनेके घाट, निर्जनस्थान, वन अथवा नदियोंके सङ्गमके स्थानमें परकी स्त्रीसे वार्तालाप करे उसपर स्त्रीसंग्रहणका दण्ड होना चाहिये ॥३५६ ॥ परकी स्त्रीके पास सुगन्धयुक्त माला-आदि भेजना, उसके साथ हंसना, उसको आलिङ्गन करना, उसका भूषण तथा वस्त्रका स्पर्श करना ओर उसके सहित शय्यापर बैठना ये सब स्त्रीसंग्रहण कहलातेहैं ॥ ३५७ ॥

स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तया । परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥ ३५८ ॥

यदि नहीं स्पर्शकरनेयोग्य स्त्रीके अङ्गको पुरुष स्पर्श करे और नहीं छूटनेयोग्य पुरुषके अङ्गको स्त्री स्पर्श करे और दोनोंमें कोई अप्रसन्न नहीं होवें तो परस्परका स्वीकाररूप संग्रहणदोष समझाजायगा ❀ ॥ ३५८ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति२ अध्याय।यदि स्त्री और पुरुष परस्पर केशकी खिंचौवल करते देखपड़ें,किसीके शरीरमें तत्कालका नखचिह्न देखनेमें आवे अथवा दोनों अयोग्य करते होवें तो पुरुषको व्यभिचारके अपराधमें पकड़ना चाहिये ॥ २८७ ॥ जो पुरुष परकी स्त्रीकी कुफुती, अञ्चल, जङ्घा अथवा केश स्पर्श करे या अन्धेरे स्थानमें अकेले उससे वार्तालाप करे अथवा एक आसनपर उसके साथ बैठे उसको व्यभिचारी समझकर पकड़ना चाहिये ॥ २८८ ॥ नारदस्मृति-१२विवादपद । स्थान; सम्भाषण, और मोद; ये३(क्रमसे) संग्रहण हैं । नदीके सङ्गम, जल भरनेके घाट, बाग अथवा वनमें स्त्री और पुरुषका एकत्र होना; ये सब संग्रहण कहेजातेहैं । दूती अथवा पत्र भेजना; अयोग्य अङ्गका स्पर्श करनेपर अप्रसन्न नहीं होना,उपकार करना,खिलवारखेलना,भूषण या वस्त्रका स्पर्श करना, एक शय्यापर दोनोंका,बैठना हाथ आंचल अथवा चोटी पकड़ना और खड़ा रहो खड़ा रहो ऐसा कहना; ये सब संग्रहण कहलातेहैं । वस्त्र, भूषण, माला, पीनेकी वस्तु, खानेका पदार्थ या सुगन्ध वस्तु भेजना अथवा अहङ्कार या मोहसे कहना कि यह स्त्री मेरी भोगीहुईहै;ये सब भी संग्रहण कहे जातेहैं॥६३-७०॥

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति । चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा ॥ ३५९ ॥
क्षत्रिय आदि पुरुष यदि पूर्वोक्तरीतिसे (इच्छारहित) स्त्रीका संग्रहण करें तो उनका प्राणान्तक दण्ड होना चाहिये (और ब्राह्मण ऐसा करे तो उसको देशसे निकालदेना चाहिये;) चारों वर्णके मनुष्योंको अपनी स्त्रियोंकी सदा रक्षा करना चाहिये ॥ ३५९ ॥

भिक्षुका वन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारवस्तथा । सम्भाषणं सह स्त्रीभिः कुर्युरप्रतिवारिताः ॥ ३६० ॥
संन्यासीआदि भिक्षुक, स्तुति करनेवाले वन्दीजन, यज्ञमें दीक्षितपुरुष और सेवक परकी स्त्रीके सहित सम्भाषणकरनेसे दोषी नहीं समझे जांयगे ॥ ३६० ॥

न सम्भाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् । निषिद्धो भाषमाणस्तु सुवर्णं दण्डमर्हति ॥ ३६१ ॥
स्वामीके मना करनेपर स्त्रीसे वार्तालाप नहीं करना चाहिये; जो मना करनेपर अन्यकी स्त्रीसे बातें करे राजा उससे एक सोनाका मोहर दण्ड लेवे ॥ ३६१ ॥

नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीविषु । सज्जयन्ति हि ते नारीर्निगूढाश्चारयन्ति च ॥ ३६२ ॥
किञ्चिदेव तु दाप्यः स्यात्सम्भाषां ताभिराचरन् । प्रेष्यासु चैकभक्तासु रहः प्रव्रजितासु च॥३६३॥
चारण (नट) की स्त्री और भार्यासे जीविका करनेवालेकी स्त्रीके लिये दण्डका यह विधान नहीं है; क्योंकि वे लोग आपही अपनी स्त्रियोंको एकान्तमे दूसरेके सङ्ग करदेतेहैं ॥ ३६२॥ इनकी स्त्रियोंसे, किसीकी रखेलिन दासीसे और वैरागयुक्त स्त्रीसे एकान्तमें वार्तालाप करनेवालेपर कुछ थोड़ा दण्ड करना चाहिये ॥ ३६३ ॥

योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति । सकामां दूषयंस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नरः ॥ ३६४ ॥
कन्यां भजन्तीमुत्कृष्टं न किञ्चिदपि दापयेत् । जघन्यं सेवमानां तु संयतां वासयेद्गृहे ॥ ३६५ ॥
राजाको उचितहै कि कन्याकी विना इच्छासे उसको दूषित करनेवाले पुरुषका शीघ्र वध करे; किन्तु अपनी जातिकी कन्यासे उसकी इच्छानुसार गमन करनेवाले मनुष्यका वध नहीं करे॥ ३६४ ॥ संभोगके लिये अपनेसे ऊंची जातिके पुरुषकी सेवा करनेवाली कन्याको दण्डित नहीं करे; किन्तु नीच जातिके पुरुषकी सेवा करनेवाली कन्याको (जबतक उसका काम निवृत्त नहीं होय तबतक) रोककरके घरमे रक्खे ॥ ३६५ ॥

उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति । शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत्पिता यदि ॥ ३६६ ॥
ऊंची जातिकी कन्यासे प्रसङ्ग करनेवाले पुरुषको राजा वध करे अर्थात् शारीरिक दण्ड देवे और समान जातिकी कन्यासे प्रसङ्ग करनेवाले पुरुषसे, यदि कन्याके पिताकी इच्छा होवे तो उसको, कन्याका दाम दिलावे ॥ ३६६ ॥

भर्त्तारं लङ्घयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता । तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥ ३७१ ॥
पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे । अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ॥ ३७२ ॥
राजाको उचित है कि जो स्त्री अपनी जाति और अपने गुणके घमण्डसे अपने पतिका उल्लङ्घन करके परपुरुषके साथ व्यभिचार करे उसको बहुत लोगोंके सामने कुत्तोंको खिलादेवे और उससे गमन करनेवाले पापी पुरुषको लोहेकी तप्तशय्यापर सुलाकर काठ और आगके संयोगसे जलादेवे ॥३७१-३७२॥

संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः । व्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव तु ॥ ३७३ ॥
जो एकवार दण्डित होकर एक वर्षके भीतर फिर परकी स्त्रीसे गमन करे जो व्रात्य अथवा चाण्डालकी स्त्रीसे गमन करे उसको राजा दूना दण्ड देवे ॥ ३७३ ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय-२८९ श्लोक । जो स्त्री घरके लोगोंके मना करनेपर किसी पुरुषके सङ्ग सम्भाषण करे राजा उससे १०० पण (१॥-)) दण्ड लेवे और जो पुरुष मना करनेपर परकी स्त्रीसे सम्भाषण करे राजा उसपर २०० पण दण्ड करे और दोनोंको मना करनेपर वे परस्पर सम्भाषण करे तो उनको व्यभिचारके अपराधका दण्ड लेवे ।

याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय । किसीकी रखेलिन दासीसे गमन करनेवालेपर राजा ५० पण दण्ड करे ॥ २९४ ॥ वैरागयुक्त स्त्रीसे गमन करनेवालेसे राजा २४ पण दण्ड लेवे ॥ २९७ ॥

नारदस्मृति-१२ विवादपदके ७२—७३ श्लोक । ऊंची जातिकी कन्यासे प्रसङ्ग करनेवाले पुरुषका वधदण्ड होगा और उसका सर्वस्व हरण कियाजायगा; किन्तु यदि वह कन्याकी इच्छासे गमन किया होगा तो उसको दण्ड नहीं होगा; परन्तु कन्याको अलंकृत करके उस पुरुषको कन्यासे विवाह करलेना पड़ेगा।

गौतमस्मृति-२४ अध्याय-४ अङ्क । राजाको उचित है कि हीनवर्णके पुरुषसे व्यभिचार करनेवाली स्त्रीको बहुतलोगोंके सामने कुत्तोंको खिलादेवे और उस पुरुषको मरवाडाले अथवा उसी प्रकारसे कुत्तेको भक्षण करादेवे ।

शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन् । अगुप्तमङ्गसर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते ॥ ३७४ ॥

राजाको चाहिये कि शूद्र यदि द्विजातिकी अरक्षिता स्त्रीसे गमन करे तो उसका अङ्ग कटवादेवे और उसकी सब सम्पत्ति हरण कर लेवे और यदि द्विजातिकी रक्षिता स्त्रीसे गमन करे तो उसकी सब सम्पत्ति हरण करके उसको मरवाडाले ❀ ॥ ३७४ ॥

वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्संवत्सरनिरोधतः । सहस्रं क्षत्रियो दण्ड्यो मौण्ड्यं मूत्रेण चार्हति ॥३७५॥

वैश्यकी सब सम्पत्ति हरण करलेवे और उसको १ वर्ष कारागारमें रक्खे; क्षत्रियपर १००० पण दण्ड करे और गदहेके मूतसे उसका शिर मुण्डवादेवे ॥ ३७५ ॥

ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु गच्छेतां वैश्यपार्थिवौ । वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणम् ॥ ३७६ ॥

उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह । विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना ॥ ३७७ ॥

सहस्रं ब्राह्मणो दण्ड्यो गुप्तां विप्रां बलाद् व्रजन् । शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादिच्छन्त्या सह संगतः॥

अरक्षिता ब्राह्मणीसे गमन करनेवाले वैश्यपर ५०० पण और अरक्षिता ब्राह्मणीसे गमन करनेवाले क्षत्रियपर १००० पण दण्ड करे ॥ ३७६ ॥ वैश्य अथवा क्षत्रिय यदि रक्षिता ब्राह्मणीसे गमन करें तो उनको शूद्रोंकी भांति दण्डित करे अथवा चटाईमें लपेटकर जलादेवे ॥ ३७७ ॥ ब्राह्मण यदि रक्षिता ब्राह्मणीसे बलपूर्वक गमन करे तो उसपर १००० पण और ब्राह्मणीको इच्छानुसार उससे गमन करे तो उसपर ५०० पण दण्ड करे ॥ ३७८ ॥

वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो व्रजेत् । यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः ॥३८२॥

सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन् । शूद्रायां क्षत्रियविशोः सहस्रो वै भवेद्दमः ॥ ३८३ ॥

क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये पञ्चशतं दमः । मूत्रेण मौण्ड्यमिच्छेत्तु क्षत्रियो दण्डमेव वा ॥ ३८४ ॥

अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन् । शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम् ३८५

राजाको चाहिये कि यदि वैश्य क्षत्रियकी रक्षिता स्त्रीसे गमन करे अथवा क्षत्रिय रक्षिता वैश्यासे गमन करे तो जो दण्ड अरक्षिता ब्राह्मणीसे गमन करनेवालेके लिये कहागयाहै वही दण्ड इनपर करे ॥३८२॥ब्राह्मण यदि रक्षिता-क्षत्रिया अथवा रक्षिता वैश्यासे गमन करे अथवा क्षत्रिय या वैश्य रक्षिता शूद्रासे गमन करे तो उससे १००० पण दण्ड लेवे ॥ ३८३ ॥ अरक्षिता-क्षत्रियासे गमन करनेवाले वैश्यपर ५००. पण दण्ड करे और अरक्षिता क्षत्रियासे गमन करनेवाले क्षत्रियका शिर गदहेके मूतसे मुण्डवादेवे अथवा उसपर भी ५०० पण दण्ड करे ॥ ३८४ ॥ अरक्षिता क्षत्रिया, वैश्या अथवा शूद्रासे गमन करनेवाले ब्राह्मणसे ५०० पण दण्ड लेवे और धोबी आदि किसी अन्यजातिकी स्त्रीसे गमन करनेवाले ब्राह्मणपर १००० पण दण्ड करे ॥ ३८५ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति--२ अध्याय ।

स्वजातावुत्तमो दण्ड आनुलोम्येन मध्यमः । प्रातिलोम्ये वधः पुंसो:नार्याः कर्णादिकर्तनम्॥२९०॥

अपनी जातिकी स्त्रीसे व्यभिचार करनेवाले पुरुषपर राजा १००० पण और अपनेसे नीचजातिकी स्त्रीसे व्यभिचार करनेवाले पुरुषपर ५०० पण दण्ड करे और अपनेसे बड़ी जातिकी स्त्रीसे व्यभिचार करनेवाले पुरुषका वध करे और स्त्रीके कानआदि कटवादेवे ▩ ॥ २९० ॥

अलङ्कृतां हरेत्कन्यामुत्तमं ह्यन्यथाधमम् । दण्डन्दद्यात्सवर्णासु प्रातिलोम्ये वधः स्मृतः ॥ २९१ ॥

राजाको उचित है कि विवाहके समय अलङ्कारयुक्त अपनी जातिकी कन्याको हरण करनेवालेपर१००० पण दण्ड और विना विवाहके समय अपनी जातिकी कन्याको हरण करनेवाके पर ३५० पण दण्ड करे और अपनेसे ऊंच जातिकी कन्याको हरण करनेवालेका वध करे ॥ २९१ ॥

सकामास्वनुलोमासु न दोषस्त्वन्यथा दमः । दूषणे तु करच्छेद उत्तमायांवधस्तथा ॥ २९२ ॥

अपनेसे छोटी जातिकी कन्याको उसकी इच्छासे हरण करनेवालेको कुछ दण्ड नहीं देवे; किन्तु उसकी विना इच्छासे हरण करनेवालेसे२५० पण दण्ड लेवे;अपनेसे छोटी जातिकी कन्याको हाथसे दूषित करनेवाले का हाथ कटवाडाले और अपनेसे बड़ीजातिकी कन्याके साथ ऐसा काम करनेवालेका वध करे ॥ २९२ ॥

शतं स्त्रीदूषणे दद्याद्द्वे तु मिथ्याभिशंसने ।

किसीकी कन्याका सच्चा दोष प्रकाश करनेवालेपर १०० पण और झूठा दोष प्रकाश करनेवालेपर २०० पण दण्ड होना चाहिये ॥

पशून्गच्छञ्शतन्दाप्यो हीनां स्त्रीं गां च मध्यमम् ॥२९३॥

❀ गौतमस्मृति-१२ अध्याय १ अङ्क । शूद्र यदि द्विजकी स्त्रीके साथ व्यभिचार करे तो राजा उसका लिङ्ग कटवादेवे और उसकी सम्पत्ति छीनलेवे ।

▩ नारदस्मृति—१२ विवादपदके ७०-७१ श्लोकमें ऐसा ही है।

पशुसे गमन करनेवालेपर १०० पण और नीचकी स्त्री अथवा गौसे गमन करनेवालेपर ५०० पण दण्ड करे ॥ २९३॥

अन्त्याभिगमने त्वङ्क्यः कुबन्धेन प्रवासयेत्। शूद्रस्तथान्त्य एव स्यादन्त्यस्यार्यागमे वधः ॥२९८॥

चाण्डालीसे गमन करनेवाले द्विजके ललाटपर भगके आकारका चिह्न दागकरके उसको राजा अपने राज्यसे निकालदेवे; ऐसी स्त्रीसे गमन करनेवाला शूद्र उसीकी जाति बनजाताहै; उत्तम जातिकी स्त्रीसे गमन करनेवाले चाण्डालका वध करना चाहिये ॥ २९८ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति--२१ अध्याय।

शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद्वीरणैर्वेष्टयित्वा शूद्रमग्नौ प्रास्येत् ॥ १ ॥ ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषा समभ्यज्य नग्नां कृष्णखरमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत्पूता भवतीति विज्ञायते ॥ ॥ २ ॥ वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेल्लोहितदर्भैर्वेष्टयित्वा वैश्यमग्नौ प्रास्येत् ॥ ३ ॥ ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नग्नां गौरखरमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञायते ॥ ४ ॥

राजाको उचित है कि ब्राह्मणीसे व्यभिचार करनेवाले शूद्रको गांडरतृणमें लपेटकर आगमें डालदेवे और उस ब्राह्मणीका सिर मुण्डवाके उसके सब शरीरमें घी लगाकर उसको नंगीकरके और कालेगदहेपर चढ़ाके प्रधान सड़कपर छोड़देवे; ऐसा करनेपर वह शुद्ध होजातीहै; ऐसा शास्त्रसे जानाजाताहै ॥ १-२ ॥ ब्राह्मणीसे व्यभिचार करनेवाले वैश्यको लाल कुशाओंमें लपेटकर आगमें डालदेवे और उस ब्राह्मणीका सिर मुण्डनकराके उसके सब शरीरमें घी लगाकर उसको नंगी करके सफेद गदहेपर चढ़ाकर प्रधान सड़कपर छोड़देवे; ऐसा करनेसे वह पवित्र होजातीहै ॥ ३-४ ॥

राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेच्छरपत्रैर्वेष्टयित्वा राजन्यमग्नौ प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरोवपन कारयित्वा सर्पिषा समभ्यज्य नग्नां रक्तखरमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञायते ॥ ५ ॥ एवं वैश्यो राजन्यायां शूद्रश्च राजन्यावैश्ययोः ॥ ६ ॥

ब्राह्मणीसे व्यभिचार करनेवाले क्षत्रियको शरपततृणमें लपेटकर आगमें डालदेवे और ब्राह्मणीका सिर मुण्डवाके उसके सम्पूर्ण शरीरमें घी लगाकर उसको नंगीकरके और लाल गदहेपर चढ़ाके प्रधानसड़कपर छोड़देवे; ऐसा होनेसे वह शुद्ध होजातीहै; ऐसा शास्त्रसे जानाजाताहै ॥ ५ ॥ यदि वैश्य क्षत्रियासे और शूद्र वैश्या अथवा क्षत्रियासे व्यभिचार करे तो इसीप्रकारसे पुरुषों और स्त्रियोंका दण्ड करना चाहिये ॥ ६ ॥

(२६) नारदस्मृति--१२ विवादपद।

माता मातृष्वसा श्वश्रूर्मातुलानी पितृष्वसा ॥ ७३ ॥
पितृव्यसखिशिष्यस्त्री भगिनी तत्सखी स्नुषा। दुहिता चार्यभार्या च सगोत्रा शरणागता ॥ ७४॥
राज्ञी प्रव्रजिता धात्री साध्वी वर्णोत्तमा च या। आसामन्यतमां गत्वा गुरुतल्पग उच्यते ॥७५॥
शिश्नस्योत्कर्तनं तस्य नान्यो दण्डो विधीयते ॥ ७६ ॥

माता, मौसी, सास, मामी, फुआ, चाचाकी स्त्री, शिष्यकी भार्या, बहिन बहिनकी सखी, पतोहू, कन्या, आचार्यकी भार्या, सगोत्रा-स्त्री, शरणागतस्त्री, राजाकी-भार्या, वैराग्ययुक्ता-स्त्री, धाय, पतिव्रता और अपनेसे उत्तमवर्णकी स्त्रीसे गमन करनेवाले गुरुतल्पग कहलातेहैं; इनका लिङ्ग कटवादेना ही दण्ड है; अन्य नहीं ॥ ७३-७६ ॥

जूआ १६.

(१) मनुस्मृति--९ अध्याय।

अयमुक्तो विभागो वः पुत्राणां च क्रियाविधिः। क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्मं निबोधत ॥२२० ॥
द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत्। राज्यान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥ २२१ ॥
प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्देवनसमाह्वयौ। तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् ॥ २२२ ॥

यह धनविभाग और क्षेत्रज आदि पुत्रोंका विधान मैंने कहा; अब जूआका धर्म कहताहूं ॥ २२० ॥ राजाको चाहिये कि अपने राज्यसे जूआ और समाह्वय दूर करे ये दोनों दोष राजाके राज्यका विनाश करनेवाले हैं ॥ २२१॥ जूआ और समाह्वय ये दोनों प्रत्यक्ष चोरी हैं, इसलिये इनको रोकनकेलिये राजा सदा यत्न करतेरहें ॥ २२२ ॥

नारदस्मृति-१२ विवादपदके ७६-७७ श्लोकोंमें भी ऐसा है।

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते । प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः ॥ २२३॥

जो खेल (पासा आदि) प्राणरहित वस्तुओंसे खेली जाती है लोकमें उसको जूआ कहतेहैं और जो खेल (मेढ़. मुर्गे आदि) प्राणियोंके द्वारा बाजी लगाके खेली जाती है वह समाह्वय कहलातीहै ॥२२३ ॥

द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत वा । तान्सर्वान्घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ॥ २२४ ॥

जो मनुष्य जूआ अथवा समाह्वय खेलतेहैं अथवा दूसरोंको खेलातेहैं राजा उनको हाथ काटना आदि शारीरिक दण्ड देवे और द्विजचिह्नधारी शूद्रको भी इसीभांति दण्डित करे ॥ २२४॥

द्यूतमेतत्पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं महत् । तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥ २२७ ॥
प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेत यो नरः । तस्य दण्डविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा ॥ २२८ ॥

जूआ प्राचीनसमयसे वैर करानेवाला देखाजाता है इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य हंसीमें भी जूआ नहीं खेले ॥ २२७ ॥ छिपकर अथवा प्रकट जूआ खेलनेवालोंको राजा अपनी इच्छानुसार दण्ड देवे ॥ २२८ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय ।

ग्लहे शातकवृद्धेस्तु सभिकः पञ्चकं शतम् । गृह्णीयाद्धूर्तकितवादितराद्दशकं शतम् ॥ २०३ ॥
स सम्यक्पलितो दद्याद्राज्ञे भागं यथाकृतम् । जितमुद्ग्राहयेज्जेत्रे दद्यात्सत्यं वचः क्षमी ॥ २०४ ॥
प्राप्ते नृपतिना भागे प्रसिद्धे धूर्तमण्डले । जितं ससभिके स्थाने दापयेदन्यथा न तु ॥ २०५ ॥
द्रष्टारो व्यवहाराणां साक्षिणश्च त एव हि । राज्ञा सचिह्नं निर्वास्याः कूटाक्षोपधिदेविनः ॥ २०६ ॥
द्यूतमेकमुखं कार्यं तस्करज्ञानकारणात् । एष एव विधिर्ज्ञेयः प्राणिद्यूते समाह्वये ॥ २०७ ॥

फड़वालेको चाहिये कि धूर्त्त जुआड़ीसे सौ रुपयेकी जीतमें पांच रुपये और सौसे कममें दशवां भाग लेवे ॥ २०३ ॥ उसमेंसे स्वीकार किया हुआ राजाका भाग देवे, जीतका द्रव्य जीतनेवालेको दिलावे और क्षमाशील होकर सत्यवचन कहे ॥ २०४ ॥ राजाको उचित है कि जब वह अपना भाग पाचुका हो तो यदि जूआ खेलनेवाले उसके पास आवें तो वह फड़वालेके सामने जिसने जितना जीता होवे उसको उतना दिलादेवे; विना उसका भाग दियेहुए आवें तो नहीं दिलावे ॥ २०५ ॥ जूएके व्यवहारको देखनेवाला और इसका साक्षी जूए खेलनेवालेको ही बनावे; जो कपटसे जूआ खेले उसके ललाटमें चिह्न दागकर उसको अपने राज्यसे निकाल देवे ॥ २०६॥ चोरोंको पहचाननेके लिये जुआड़ियोंमेंसे एकको प्रधान बनावे; यही विधि प्राणियोंसे खेलनेवाले समाह्वयमें भी जानना चाहिये ॥ २०७ ॥

(२६) नारदस्मृति-१६ विवादपद ।

सभिकः कारयेद्द्यूतं देयं दद्याच्च तत्कृतम् । दशकं च शतं वृद्धिस्तस्य स्याद्द्यूतकारिणः ॥ २ ॥
कूटाक्षदेविनः पापान्राजा राष्ट्राद्विवासयेत । कण्ठेक्षमालामासज्य स ह्येषु विनयः स्मृतः ॥ ६ ॥
अनिर्दिष्टतया राज्ञो द्यूतं कुर्वीत मानवः । न स तं प्राप्नुयात्कामं विनयञ्चैव सोऽर्हति ॥ ७ ॥
अथवा कितवो राज्ञे दत्त्वा भागं यथोदितम् । प्रकाशं देवनं कुर्युरेवं दोषो न विद्यते ॥ ८ ॥

फड़वालेको उचित कि है जूआ खेलावे तो स्वीकार कियाहुआ राजाका भाग राजाको देवे और जूवा खेलनेवालोंसे सौ रुपयेकी जीतमें १० रुपये लेवे ॥ २ ॥ राजाको उचित है कि जो जूएकी खेलमें कपट करे उसके कण्ठमें पासेकी माला पहना करके उसको अपने राज्यसे निकाल देवे; उसका यही दण्ड है ॥ ६ ॥ जो लोग विना राजाकी आज्ञासे जूआ खेलते हैं वे अपनी इच्छाको नहीं पूर्ण कर सकते; किन्तु दण्डके योग्य होतेहैं ॥ ७ ॥ जब जुआड़ीलोग जीतेहुए द्रव्यमें राजाका भाग देकर प्रकाशभावसे जूआ खेलतेहैं तब वे अपराधी नहीं समझेजाते ▩ ॥ ८ ॥

दण्डका महत्त्व दण्डका विधान आदि १७.

(१) मनुस्मृति-७ अध्याय ।

तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् । ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः ॥ १४ ॥
तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च । भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च ॥१५ ॥

❀ नारदस्मृति-१६ विवादपद-१ श्लोक जो खेल बाजी लगाकर पासा, चमड़ेकी-पट्टी और शलाका (हाथी दांतकी सलाई) आदिसे खेली जातीहै वह जूआ कहीजातीहै और जो बाजीलगाकर (मुर्गे, पारावत आदि) पक्षी आदिसे खेलतेहैं वह समाह्वय कहलाती है ।

▩ व्यवहारके—१८ विवादपदोंमेंसे यहांतक १६ लिखे गये; बाकी स्त्री पुरुषके धर्मकी व्यवस्था विवाद प्रकरण, स्त्री प्रकरण और पुत्र प्रकरणमें और दायभाग धनविभागप्रकरणमें लिखागया है ।

तं देशकालौ शक्तिं च विद्यां चावेक्ष्य तत्त्वतः । यथार्हतः संप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्तिषु ॥ १६ ॥
स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः । चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः१७
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति । दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥ १८ ॥
सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः । दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगद्भोगाय कल्पते ॥ २२ ॥
देवदानवगन्धर्वा रक्षांसि पतगोरगाः । तेपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनैव निपीडिताः ॥ २३ ॥

ईश्वरने पूर्व समयमें राजाकी प्रयोजन सिद्धिके लिये सब प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले ब्रह्मतेजसे युक्त धर्मपुत्र दण्डको रचा था ॥ १४ ॥ दण्डके भयसे ही चर अचर सब प्राणी अपने अपने भोग सुखमें प्रतिष्ठित हैं और अपने अपने धर्मसे विचलित नहीं होतेहैं ॥ १५ ॥ राजाको उचित है कि देश, काल, शक्ति और विद्याका विचार करके अपराधीको यथायोग्य दण्ड देवे ॥ १६ ॥ वास्तवमें दण्ड ही राजा, वही पुरुष, वही राजका नेता और सबको शिक्षा देनेवाला तथा चारों आश्रमोंको धर्ममें स्थित रखनेवाला है ॥ १७ ॥ दण्ड ही सब प्राणियोंको शिक्षा देताहै, सबकी रक्षा करताहै और सबके सोनेपर जागता है, इसलिये विद्वान् लोग इसीको धर्म कहतेहैं ॥ १८ ॥ दण्डके भयसे ही मनुष्य सन्मार्गमें चलतेहैं; क्योंकि निर्दोष लोग जगत्में बहुत कम हैं; दण्डके भयके कारणसे ही जगत्के सब जीव भोग भोगनेमें समर्थ होतेहैं ॥ २२ ॥ देवता, दानव, गन्धर्व, राक्षस, पक्षी और सर्प दण्डके भयसे ही कर्तव्यकर्मको करतेहैं ॥ २३ ॥

८ अध्याय ।

दश स्थानानि दण्डस्य मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् । त्रिषु वर्णेषु यानि स्युः रक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत्१२४
उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम् । चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च ॥ १२५ ॥
अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः । सारापराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत् ॥ १२६॥
अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्तिनाशनम् । अस्वर्ग्यं च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ १२७ ॥
अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् । अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥१२८ ॥

स्वायम्भुवमनुने दण्डदेनेके लिये जो १० स्थान कहेहैं वे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके लिये हैं, ब्राह्मणको ऐसे दण्ड नहीं देकर उसको देशसे निकाल देना चाहिये ॥ १२४ ॥ लिङ्ग, उदर, जीभ, हाथ, पांव, आंख, नाक, कान, धन और सब शरीर अर्थात् वध; ये दश दण्डदेनेके स्थान हैं ॥ १२५ ॥ बारबार या एकहीवार कियेहुए अपराधको जानकर और देश, काल, अपराधीका सामर्थ्य और अपराधको विचार करके दण्डनीय मनुष्यको दण्ड देना चाहिये * ॥ १२६ ॥ अन्यायसे दण्डदेनेपर लोकमें यश और कीर्तिका नाश होताहै और मरनेपर स्वर्ग नहीं मिलता इसलिये अन्यायसे दण्ड नहीं देना चाहिये ॥ १२७ ॥ जो राजा दण्डके अयोग्य मनुष्यको दण्ड देताहै और दण्डदेने योग्यको छोडदेताहै वह इस लोकमें अपयश पाताहै और नरकमें जाताहै ※ ॥ १२८ ॥

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम् । तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम् ॥ १२९ ॥
वधेनापि यदा त्वेतान्निग्रहीतुं न शक्नुयात् । तदैषु सर्वमप्येतत्प्रयुञ्जीत चतुष्टयम् ॥ १३० ॥

राजाको उचित है कि पहिलीबार वचनसे धमका कर, दूसरीबार धिक्कार देकर और तीसरीबार अर्थदण्ड करके अपराधीका शासन करे और उसके बाद अपराधीको वधदण्ड अर्थात् शारीरिक दण्ड देवे ॥१२९॥ यदि उससे भी वह शान्त नहीं होवे तो उसके ऊपर चारों प्रकारका दण्ड करे ▣ ॥ १३० ॥

मौण्ड्यं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते । इतरेषांन्तु वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत् ॥
न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्ववस्थितम् । राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् ॥ ३८० ॥

---

* याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय–३६८ श्लोक । अपराध, देश, काल, बल, अवस्था, कर्म और धनके अनुसार अपराधीको दण्डित करना चाहिये ।

※ मनुस्मृति—९ अध्याय–२४९ श्लोक । नहीं वध करनेयोग्य मनुष्यका वध करनेसे और वध करने योग्य अपराधीको छोडदेनेसे राजाको एक समान पाप लगताहै; शास्त्रोक्त दण्डदेना राजाका धर्म है । वशिष्ठस्मृति–१९ अध्याय–३१ श्लोक । विना दण्डित कियेहुए अपराधीको छोडदेनेसे उसका सब पाप राजाको लगजाता है और अपराधीको यथार्थदण्ड करनेसे राजाका सब पाप नाश होजाताहै ।

▣ याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय–३६७ श्लोक । धिग्दण्ड, वाग्दण्ड, धनदण्ड और वधदण्डमेंसे एकको अथवा सबको अपराधीके अपराधके अनुसार देना चाहिये ।

ब्राह्मणका शिर मुंण्डन करादेना ही प्राणवधके समान है; क्षत्रियआदिवर्णोंका प्राणान्तदण्ड होना चाहिये ॥ ३७९ ॥ सम्पूर्ण पापोंके करनेपर भी ब्राह्मणका वध नहीं करे; किन्तु वधके योग्य अपराध करनेपर धनके सहित उसको अपने राज्यसे बाहर करदे ❀ ॥ ३८० ॥

ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्यो याज्यं चर्त्विक्त्यजेद्यदि । शक्तं कर्मण्यदुष्टं च तयोर्दण्डः शतंशतम् ॥ ३८८॥

यदि यजमान कर्मकरानेमें समर्थ तथा महापातकआदिरहित ऋत्विकको छोडे अथवा कर्ममें युक्त तथा महापातकादिरहित यजमानको छोड़ देवे तो राजा उस छोड़नेवालेसे १०० पण दण्ड लेवे ✠ ॥ ३८८ ॥

न भ्राता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति । त्यजन्नपतितानेतान्राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥ ३८९॥

भाई, पिता, स्त्री, और पुत्र त्यागने योग्य नहीं हैं ये लोग यदि पतित नहीं होंय तो इनमेंसे किसीको त्यागनेवालेपर राजा ६०० पण दण्ड करे ▦ ॥ ३८९ ॥

९ अध्याय ।

क्षत्रविट्शूद्रयोनिस्तु दण्डं दातुमशक्नुवन् । आनृण्यं कर्मणा गच्छेद्विप्रो दद्याच्छनैःशनैः ॥ २२९ ॥

स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां च रोगिणाम् । शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम् ॥ २३० ॥

राजाका धर्म है कि क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र यदि दण्डका धन देनेमें असमर्थ होवें तो उनसे उनकी जातिके करने योग्य काम करवाकरके दण्डका धन चुकालेवे; किन्तु ब्राह्मणसे परिश्रमका काम नहीं कराके उससे उसकी आयके अनुसार दण्डका धन धीरे २ लेलेवे॥२२९॥ स्त्री, बालक, उन्मत्त, वृद्ध, दरिद्र और रोगी अपराधियोंको वृक्षकी जटा; बांसकी कामांची अथवा रस्सीसे दण्ड देवे ॥ २३० ॥

कूटशासनकर्तॄंश्च प्रकृतीनां च दूषकान् । स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्याद्विट्सेविनस्तथा ॥ २३२ ॥

छलसे राजाज्ञापत्र बनानेवाले प्रजाओंमें भेद करानेवाले; स्त्री, बालक, अथवा ब्राह्मणका वध करनेवाले या राजाके शत्रुकी सेवा करनेवालेको राजा वध करे ॥ २३२ ॥

ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः । एते सर्वे पृथग्ज्ञेया महापातकिनो नराः ॥ २३५ ॥

चतुर्णामपि चैतेषां प्रायश्चित्तमकुर्वताम् । शारीरं धनसंयुक्तं दण्डं धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥ २३६ ॥

गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः । स्तेये श्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ॥ २३७ ॥

असंभोज्या ह्यसंयाज्या असंपाठ्याऽविवाहिनः । चरेयुः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ २३८ ॥

ज्ञातिसंबन्धिभिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः । निर्दया निर्नमस्कारास्तन्मनोरनुशासनम् ॥ २३९ ॥

ब्राह्मणवध—करनेवाले, सुरा पीनेवाले, चोरीकरनेवाले और गुरुकी पत्नीसे गमन करनेवाले, मनुष्य महापातकी कहलातेहैं ॥ २३५ ॥ राजाको उचित है कि ये ४ प्रकारके महापातकी यदि प्रायश्चित्त नहीं करें

❀ गौतमस्मृति–१२ अध्याय–२अङ्क । राजाको उचित है कि ब्राह्मणका वध नहीं करे; यदि वह वधके योग्य अपराध करे तो उसको दान लेना, वेदपढाना, यज्ञकराना आदि कर्मोंसे रहित करके उसके पातकी होनेका विज्ञापन करादेवे; उसको अपने राज्यसे निकाल देवे और उसके ललाटपर तप्त लोहेका चिह्न करदेवे; दण्ड न करनेसे राजा चोरके समान प्रायश्चित्तके योग्य होगा । बौधायनस्मृति–१ प्रश्न-१० अध्यायके १८–१९ अङ्क । बड़ा अपराध करनेपर भी ब्राह्मणका वध नहीं करे यदि वह ब्राह्मण हत्या, गुरुपत्नीगमन, सोनाचोरी अथवा सुरापान करे तो उसके ललाटपर तप्तलोहेका क्रमसे कबन्ध, मनुष्य,भग, सियार और सुराध्वजका चिह्न देकर उसको अपने राज्यसे निकाल देवे ।

नारदस्मृति–१४ विवादपदके १०–११ श्लोक । ब्राह्मणको वधदण्ड नहीं देवे यदि वह वधके योग्य अपराध करे तो उसका सिर मुण्डन कराके उसको अपने राज्यसे निकाल दे; यदि वह ब्रह्महत्या आदि कोई महापातक करके प्रायश्चित्त नहीं करे तो उसके ललाटपर चिह्न दागकर और उसको गदहेपर चढाकर अपने राज्यसे निकालदेवे ।

✠ नारदस्मृति–३ विवादपद । यदि ऋत्विक् दोषरहित यजमानको अथवा यजमान दोष रहित तथा यज्ञकरानेमें समर्थ ऋत्विक्को छोड़ देवे तो ये दोनों दण्डके योग्य हैं॥९॥ ऋत्विक् ३ प्रकारके होतेहैं; एक कुल परम्पराका दूसरा यज्ञकर्त्ताका बनायाहुआ और तीसरा स्वयं आकर प्रीतिपूर्वक ऋत्विक्का काम करनेवाला ॥ १० ॥ कुलपरम्पराके ऋत्विक् और यजमानके बनायेहुए ऋत्विक्के लिये यह विधान है; जो स्वयं आकर यज्ञमें ऋत्विक् बनताहै उसको त्यागनेमें यजमान अपराधी नहीं होता ॥ ११ ॥

▦ याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्याय-२४१ श्लोक । पिता, पुत्र, बहिन, भाई, स्त्री, पुरुष, आचार्य और शिष्य; ये लोग यदि पतित नहीं होवें तो इनमेंसे किसीको त्यागनेवालेसे राजा १०० पण दण्ड लेवे । (माता तो पतितहोनेपर भी त्यागने योग्य नहीं होती) यमस्मृति–१९ श्लोक । जो विना पतित बन्धुजनोंको त्यागदेताहै राजा उसपर १००० पण दण्ड करे ।

तो इनको नीचेलिखेहुए यथायोग्य शारिक दण्ड तथा धनदण्ड देवे ॥ २३६ ॥ गुरुकी पत्नीसे गमन करनेवाले के ललाटपर तप्तलोहेसे भगका चिह्न, सुरापीनेवालेके ललाटपर सुराध्वजका चिह्न, (सोना) चुरानेवालेके ललाटपर कुत्तेके पांवका चिह्न और ब्राह्मणवध करनेवालेके ललाटपर विनासिरके पुरुषका चिह्न करादेवे ॥ २३७ ॥ सब लोगोंको उचित है कि ऐसे महापातकियोंको भोजन नहीं करावे, यज्ञ नहीं करावे, विद्या नहीं पढावे और इनसे विवाहका सम्बन्ध नहीं करे; ये लोग सब धर्मोंसे बाहिर और दुःखी होकर पृथ्वीपर घूमते फिरें ॥ २३८ ॥ ऐसे चिह्नित महापातकियोंको उनकी जाति सम्बन्धके लोग त्यागदेवैं, उनपर दया तथा उनको नमस्कार नहीं करें ऐसी भगवान् मनुकी आज्ञा है ॥ २३९ ॥

प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्ववर्णा यथोदितम् । नाङ्क्या राज्ञा ललाटे स्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम्॥२४०॥

यदि महापातकी लोग अपने अपने वर्णके अनुसार प्रायश्चित्त करें तो राजा उनके ललाटपर चिह्न नहीं दागे; किन्तु उनसे १००० पण दण्ड लेवे ॥ २४० ॥

आगःसु ब्राह्मणस्यैव कार्यो मध्यमसाहसः । विवास्यो वा भवेद्राष्ट्रात्सद्रव्यः सपरिच्छदः ॥ २४१ ॥
इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येतान्यकामतः । सर्वस्वहारमर्हन्ति कामतस्तु प्रवासनम् ॥ २४२ ॥

राजाको चाहिये कि यदि ब्राह्मण अनजानमें महापातक करे तो उससे ५०० पण दण्ड लेवे और जानकर करे तो धन और वस्त्रादिके सहित उसको राज्यसे निकालदेवे और क्षत्रिय आदि अनजानमें महापातक करें तो उनका सब धन हरण करे और जानकर करें तो उनको अपने राज्यसे बाहर करदेवे ॥ २४१-२४२ ॥

नाददीत नृपः साधुर्महापातकिनो धनम् । आददानस्तु तल्लोभात्तेन दोषेण लिप्यते ॥ २४३ ॥
अप्सु प्रवेश्य तं दण्डं वरुणायोपपादयेत् । श्रुतवृत्तोपपन्ने वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् ॥ २४४ ॥

धार्मिक राजा महापातकीके दण्डका धन अपने कभी नहीं लेवे;क्योंकि लोभसे ऐसा करनेपर वह महापातकका भागी होगा ॥ २४३ ॥ महापातकीके दण्डका द्रव्य वह वरुणदेवताके निमित्त जलमें डालदेवे अथवा वेदपारग ब्राह्मणको देदेवे * ॥ २४४ ॥

उत्कोचकाश्चौपधिका वञ्चकाः कितवास्तथा । मङ्गलादेशवृत्ताश्च भद्राश्चेक्षणिकैः सह ॥ २५८ ॥
असम्यक्कारिणश्चैव महामात्राश्चिकित्सकाः । शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषितः ॥ २५९ ॥
एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशाल्लोककण्टकान् । निगूढचारिणश्चान्याननार्यानार्यलिङ्गिनः ॥ २६० ॥

राजाको चाहिये कि घूस लेनेवाले, झूठमूठ भय दिखाकर परधन हरण करनेवाले, ठग,पाखण्डी, सम्पत्ति, सन्तति आदि होनेको झूठी बात कहकर जीविका करनेवाले, अपने दोषोंको छिपाकर परको ठगनेवाले हस्तरेखादि देखके झूठ शुभाशुभ फल कहकर जीविका करनेवाले, अशिक्षित महावत, अशिक्षित वैद्य, शिल्पका उत्साह देकर परधन हरनेवाले और वेश्याको प्रकट लोकको ठगनेवाले जाने ॥ २५८-२६० ॥

तान्विदित्वा सुचरितैर्गूढैस्तत्कर्मकारिभिः । चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साद्य वशमानयेत् ॥ २६१ ॥
तेषां दोषानभिख्याप्य स्वेस्वे कर्मणि तत्त्वतः । कुर्वीत शासनं राजा सम्यक्सारापराधतः ॥२६२॥
न हि दंडादृते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः । स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ ॥ २६३ ॥

इनको और उत्तम पुरुषोंके वेषधारण करनेवाले अधम पुरुषोंको अनेकस्थानमें वासकरनेवाले, सच्चे तथा उन्हींके समान कार्य करनेवाले गुप्तदूतोंद्वारा पहचानकर अपने वशमें करे और उनके दोषोंका विज्ञापन देकर अपराधके अनुसार उनको दण्ड देवे; क्योंकि चोर, पापबुद्धिवाले मनुष्य और गुप्तरीतिसे पृथ्वीपर विचरनेवाले ठग विना दण्डके अपने कामसे निवृत्त नहीं होतेहैं (@) ॥२६१-२६३ ॥

यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवनः । दंडेनैव तमप्योषेत्स्वकाद्धर्माद्धि विच्युतम् ॥ २७३ ॥

धर्मजीवी ब्राह्मण यदि अपने धर्मसे भ्रष्ट होवे तो राजा उसको दण्ड आदिसे पीडित करे ॥ २७३ ॥

समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि । स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत् ॥ २८२ ॥
आपद्गतोऽथ वा वृद्धो गर्भिणी बाल एव वा । परिभाषणमर्हन्ति तच्च शोध्यमिति स्थितिः ॥२८३॥

विना आपत्कालके राजमार्गमें विष्ठा त्याग करनेवाले मनुष्यसे राजा २ पण दण्ड लेवे और उसीसे वह साफ करवावे; किन्तु विपद्ग्रस्त मनुष्य, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री अथवा बालक ऐसा करे तो उसको डांटकरके उससे विष्ठा साफ करालेवे ॥ २८२—२८३ ॥

---

* याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय-३११ श्लोक । राजा यदि किसीसे अन्यायपूर्वक द्रव्य दण्ड लेवे तो उसका तीसगुना द्रव्य वरुणके नामसे संकल्प करके ब्राह्मणको देवे और द्रव्यवालेका द्रव्य लौटादेवे ।

(@) याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय-३०८ श्लोक । राजाको उचित है कि जो शूद्र ब्राह्मणका वेष धारण करके जीविका करताहोय उसपर ८०० पण दण्ड करे ।

चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्याप्रचरतां दमः । अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः ॥ २८४ ॥

पशु, पक्षी आदिको मिथ्या चिकित्साकरनेवाले वैद्यपर २५० पण और मनुष्यको मिथ्या चिकित्सा करनेवाले वैद्यपर ५०० पण राजा दण्ड करे ❀ ॥ २८४ ॥

समैर्हि विषमं यस्तु चरेद्वै मूल्यतोऽपि वा । समाप्नुयाद्दमं पूर्वं नरो मध्यममेव वा ॥ २८७ ॥

जो मनुष्य एक समान दाम लेकर किसीको अच्छी वस्तु और किसीको बुरी वस्तु देताहै अथवा एकही समान वस्तु देकर किसीसे अधिक और किसीसे कम दाम लेताहै उससे राजा २५० पण अथवा ५०० पण दण्ड लेवे ॥ २८७ ॥

१० अध्याय ।

यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः । तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ ९६ ॥

यदि कोई नीच जातिका मनुष्य लोभवश होकर ऊँच जातिकी वृत्ति अवलंबन करके जीविका करे तो राजा उसका सर्वस्व हरण करके उसको देशसे निकालदेवे ॥ ९६ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय ।

अर्घ्याक्रोशातिक्रमकृद्भ्रातृभार्याप्रहारदः । संदिष्टस्याप्रदाता च समुद्रगृहभेदकृत् ॥ २३६ ॥
सामन्तकुलिकादीनामपकारस्य कारकः । पंचाशत्पणिको दण्ड एषामिति विनिश्चयः ॥ २३७ ॥

आचार्य आदि पूज्य लोगोंकी निन्दा और आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले, भाईकी भार्याको प्रहार करनेवाले, किसीको धन देनेको कहकर विना कारण ही उसको नहीं देनेवाले, किसीके वन्द घरके ताला खोलनेवाले और पड़ोसी तथा अपने कुलके लोगोंका अपकार करनेवालेपर राजा पचास, पचास, पण दण्ड करे ॥ २३६-२३७ ॥

स्वच्छन्दविधवागामी विक्रुष्टेनाभिधावकः । अकारणे च विक्रोष्टा चण्डालश्चोत्तमान्स्पृशेत् ॥ २३८॥
शूद्रप्रव्रजितानां च दैवे पित्र्ये च भोजकः । अयुक्तं शपथं कुर्वन्न योग्यो योग्यकर्मकृत् ॥ २३९ ॥
वृषक्षुद्रपशूनां च पुंस्त्वस्य प्रतिघातकृत् । साधारणस्यापलापी दासीगर्भविनाशकृत् ॥ २४० ॥
पितापुत्रस्वसृभ्रातृदम्पत्याचार्यशिष्यकाः । एषामपतितान्योन्यत्यागी च शतदण्डभाक् ॥ २४१ ॥

विना नियोगके विधवासे गमन करनेवाले, किसीके दुःखी होकर पुकारनेपर नहीं दौड़नेवाले, विना प्रयोजन लोगोंको पुकारनेवाले, चण्डाल होकर उत्तम जातिको छूनेवाले, शूद्र और सन्यासीको दैव तथा पितृकार्यमें भोजन करानेवाले ⊛ अयोग्य शपथ करनेवाले, जिस कर्मके योग्य नहीं है उस कर्मको करनेवाले, बैल तथा बकरे आदि छोटे पशुओंको वधिया करानेवाले, साधारणकी वस्तुको ठगनेवाले, दासीका गर्भ गिरानेवाले, और विना पतित पिता, पुत्र, बहिन, भाई, स्त्री, पुरुष, आचार्य अथवा शिष्यको त्यागनेवालेपर राजा १०० पण दण्ड करे ॥ २३८-२४१ ॥

वसानस्त्रीन्पणान्दण्ड्यो नेजकस्तु परांशुकम् । विक्रयावक्रयाधानयाचितेषु पणान्दश ॥ २४२ ॥

यदि धोबी अन्यके वस्त्रोंको पहने तो उससे ३ पण और वेचे, भाड़ेपर देवे, बन्धक रक्खे अथवा मँगनी देवे तो उससे १० पण राजा दण्ड लेवे ॥ २४२ ॥

पितापुत्रविरोधे तु साक्षिणां त्रिपणो दमः । अन्तरे च तयोर्यः स्यात्तस्याप्यष्टगुणो दमः ॥ २४३ ॥

पिता और पुत्रके विवादमें उनके कलहका निवारण न करके साक्षी बननेवालेपर ३ पण और बिचवई होनेवालेपर २४ पण राजा दण्ड करे ॥ २४३ ॥

तुलाशासनमानानां कूटकृन्नाणकस्य च । एभिश्च व्यवहर्त्ता यः स दाप्यो दममुत्तमम् ॥ २४४ ॥
अकूटं कूटकम्ब्रूते कूटं यश्चाप्यकूटकम् । स नाणकपरीक्षी तु दाप्य उत्तमसाहसम् ॥ २४५ ॥

जो मनुष्य तराजू और सेर, पसेरी आदि बाटको तथा मुद्रासे अङ्कित द्रव्यको घाटबाढ़ बनाते हैं और जो उनसे तौल आदि व्यवहार करतेहैं उनसे राजा १००० पण दण्ड लेवे ॥ २४४ ॥ मुद्रादिकी परीक्षा करनेवाला जौहरी यदि निकम्मेको अच्छा अथवा अच्छेको निकम्मा कहै तो उसपर भी १००० पण दण्ड करे ॥ २४५ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय-२४६ श्लोक । राजाको उचित है कि पशु पक्षी आदिको मिथ्या चिकित्सा करनेवालेपर २५० पण मनुष्यको मिथ्या चिकित्सा करनेवालेपर ५०० पण और राजपुरुषको मिथ्या दवा करनेवालेपर १००० पण दण्ड करे ।

⊛ श्राद्धमें निमन्त्रण देकर ब्राह्मणोंके समान शूद्र और संयासीको खिलानेका यहां निषेध है ।

मानेन तुलया वापि योंशमष्टमकं हरेत् । दण्डं स दाप्यो द्विशतं वृद्धौ हानौ च कल्पितम् ॥२४८॥
भेषजस्नेहलवणगन्धधान्यगुडादिषु । पण्येषु प्रक्षिपन्हीनं पणान्दाप्यस्तु षोडश ॥ २४९ ॥
मृच्चर्ममणिसूत्रायःकाष्ठवल्कलवाससाम् । अजातौ जातिकरणे विक्रेयाष्टगुणो दमः ॥ २५० ॥

जो मनुष्य किसीवस्तुके नापने या तौलनेमें ८ वां भाग हरण करलताहै उससे २०० पण, राजा दण्ड लवे, इससे कम अधिक हरण करनेवालेपर इसी हिसाबसे कम अधिक दण्ड करे ॥ २४८ ॥ औषध, घी, तेल, नोन, चन्दन आदि गन्धयुक्त वस्तु अन्न अथवा गुड़आदिमें निकम्मी वस्तु मिलाकर बेंचनेवालेसे १६ पण दण्ड लेवे ॥ २४९ ॥ मिट्टी, चाम, मणि, सूत, लोहा, काठ, वृक्षका छाल अथवा वस्त्रको उत्तम कहकर अधिकदामपर बेंचनेवालेसे उसके मूल्यसे अठगुना दण्ड लेवे ॥ २५० ॥

समुद्रपरिवर्त्तं च सारभांडं च कृत्रिमम् । आधानं विक्रयं वापि नयतो दण्डकल्पना ॥ २५१ ॥
भिन्ने पणे तु पंचाशत्पणे तु शतमुच्यते । द्विपणो द्विशतो दण्डो मूल्यवृद्धौ च वृद्धिमान् ॥ २५२ ॥

जो कोई टंकीहुई वस्तुकी पेटारीको बेंचनेके समय कौशलसे बदल लेवे और जो कृत्रिम कस्तूरी आदिको उत्तम कहकर बन्धक रक्खै अथवा बेंचै तो यदि उस वस्तुका दाम एकपणसे कम होय ५० पण दण्ड, एकपण होय तो १०० पण और दो पण होय तो २०० पण राजा उसपर दण्ड करे, इसीप्रकारसे जितना दाम अधिक होय उतना दण्ड बढ़ावे ॥ २५१-२५२ ॥

सम्भूय कुर्वतामर्घं सबाधं कारुशिल्पिनाम्।अर्घस्य ह्रासं वृद्धिं वा जानतो दम उत्तमः ॥ २५३ ॥
सम्भूय वणिजां पण्यमनर्घेणोपरुन्धताम्।विक्रीणतां वा विहितो दण्ड उत्तमसाहसः ॥ २५४ ॥
राजनि स्थाप्यते योर्घः प्रत्यहं तेन विक्रयः । क्रयो वा निस्रवस्तस्माद्वणिजां लाभकृत्स्मृतः॥२५५॥
स्वदेशपण्ये तु शतं वणिग्गृह्णीत पञ्चकम् । दशकं पारदेश्ये तु यः सद्यः क्रयविक्रयी ॥ २५६ ॥
पण्यस्योपरि संस्थाप्य व्ययं पण्यसमुद्भवम् । अर्घोनुग्रहकृत्कार्यः क्रेतुर्विक्रेतुरेव च ॥२५७॥

यदि व्यापारीलोग अपने लाभके लोभसे एका करके राजाके नियत कियेहुए भावको जानतेहुए भी कारु और शिल्पकारको दुःख पहुंचानेवाले अन्य भाव ठहराकर सौदा बेचे तो राजा उनपर १००० पण दण्ड करे ॥ २५३ ॥ यदि व्यापारीलोग एका करके बिकनेके लिये देशान्तरसे आयेहुए मालको कम दाममें लेनेके लिये निकम्मी कहकर बिकनेसे रोंके अथवा सबको खरीद करके बहुत महंगा बेंचे तो उनसे१००० पण दण्ड लेवे ॥ २५४ ॥ राजा जिस सौदेका जो भाव नियत करदेवे वणिक्लोग नित्य उसीके अनुसार खरीद बिक्री करें. उसमें जो बचे उसीको अपना लाभ समझें ॥२५५ ॥ व्यापारी अपने देशका खरीदाहुआ माल बेंचें तो सैकड़े पांच रुपया और परदेशका खरीदाहुआ माल झटपट बेंचदेवें तो सैकड़े दसरुपया नफा लेवे ॥ ॥ २५६ ॥ राजाको चाहिये कि मालका दाम और उसके खर्चा तथा व्यापारीके नफेपर ध्यान देकर मालका भाव ठहरावे ❀ ॥ २५७ ॥

तरिकः स्थलजं शुल्कं गृह्णन्दाप्यः पणान्दश ॥ २६७ ॥

जो स्थलमें चलनेवालेसे विना पार उतारेहुए पार उतारनेका महसूल लेवे उसपर राजा १० पण दण्ड करे ॥ २६७ ॥

विप्रदुष्टां स्त्रियं चैव पुरुषघ्नीमगर्भिणीम् । सेतुभेदकरीं चाप्सु शिलाम्बद्ध्वा प्रवेशयेत् ॥ २८२ ॥
विषाग्निदाम्पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम् । विकर्णकरनासौष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रमापयेत् ॥ २८३ ॥

राजाको चाहिये कि अति दुष्टा अर्थात् गर्भपातिनी, पुरुषकी हत्या करनेवाली अथवा सेतुभङ्ग करनेवाली स्त्रीका यदि गर्भवती नहीं होवे तो उसके गलेमें पत्थर बान्धकर उसको जलमें डुबादेवे ॥ २८२ ॥ विष देनेवाली, आग लगानेवाली, पतिके गुरुको अथवा अपनी सन्तानको मारनेवाली स्त्रीके कान, हाथ, नाक और ओठ कटवाकर उसको बैलोंसे मरवाडाले ॥ २८३ ॥

क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीतखलदाहकाः । राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना ॥ २८६ ॥

खेत, घर, वन, गांव तृणादिके घाड़े अथवा खलिहानमें आग लगानेवाले या राजीसे व्यभिचार करनेवाले मनुष्यको तृणकी चटाईमें लपेटकर राजा जलादेवे ॥ २८६ ॥

अभक्ष्येण द्विजं दूष्य दण्डच उत्तमसाहसम् । मध्यमं क्षत्रियं वैश्यम्प्रथमं शूद्रमर्द्धिकम् ॥ ३०० ॥
कूटस्वर्णव्यवहारी विमांसस्य च विक्रयी । अङ्गहीनस्तु कर्त्तव्यो दाप्यश्चोत्तमसाहसम् ॥ ३०१ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्याय–२६५ श्लोक । राजा मालके भाव निरूपण करदेनेके कारण व्यापारीसे (लाभमेंसे) बीसवां भाग लेवे; यदि व्यापारी राजाके निषेध करनेपर किसी वस्तुको अथवा राजाके लेनेयोग्य वस्तुको अन्यके हाथ बेंचदेवे तो राजा बलसे लेलेवे ।

विष्ठाआदि अभक्ष्यवस्तुसे दूषितपदार्थ ब्राह्मणको भोजन करानेवाले मनुष्यपर १००० पण, क्षत्रियको ऐसा दूषितपदार्थ खिलानेवालेपर ५०० पण; वैश्यको भोजन करानेवालेपर २५० पण और शूद्रको ऐसा अशुद्धपदार्थ खिलानेपर १२५ पण राजा दण्ड करे ॥ ३०० ॥ नकली सोनासे व्यवहार करनेवाले और कुत्सित मांस बेंचनेवालेसे १००० पण दण्ड लेवे और उसको अङ्गहीन करादेवे ॥ ३०१ ॥

मृताङ्गलग्नविक्रेतुर्गुरोस्ताडयितुस्तथा । राजयानासनारोढुर्दण्ड उत्तमसाहसः ॥ ३०७ ॥

मुर्देपरका वस्त्रादि बेंचनेवाले, गुरुको ताड़ना करनेवाले और राजाकी सवारी तथा आसनपर बैठनेवालेपर राजा १००० पण दण्ड करे ॥ ३०७ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

ये व्यपेताः स्वधर्मात्ति परधर्मे व्यवस्थिताः । तेषां शास्तिकरो राजा स्वर्गलोके महीयते ॥ १७ ॥

अपने धर्मको छोड़कर परके धर्ममें तत्पर रहनेवालेका शासन करनेवाला राजा स्वर्गमें पूजित होताहै ॥१७॥

(४ क) बृहद्विष्णुस्मृति–५ अध्याय ।

येषां देयः पन्थास्तेषामपथदायी कार्षापणानां पञ्चविंशतिं दण्ड्यः ॥ ९१॥ आसनार्हस्यासनमदद्च्च ॥ ९२ ॥ पूजार्हमपूजयंश्च ॥ ९३ ॥ प्रातिवेश्यब्राह्मणे निमन्त्रणातिक्रमे च ॥ ९४ ॥ निमन्त्रयित्वा भोजनादायिनश्च ॥ ९५ ॥ निमन्त्रितस्तथेत्युक्त्वा न भुञ्जानः सुवर्णमाषकं निमन्त्रयितुश्च द्विगुणमन्नम् ॥ ९६ ॥

राजाको चाहिये कि जिनकेलिये मार्ग छोड़कर हटजाना चाहिये उनका मार्ग नहीं छोड़नेवालेपर २५ पण दण्ड करे ॥ ९१ ॥ आसनदेनेके योग्य मनुष्यको नहीं आसन देनेवालेसे, पूजा करने योग्यकी नहीं पूजाकरनेवालेसे, निकटके योग्य ब्राह्मणको छोड़कर दूरके ब्राह्मणको निमन्त्रण करनेवालेसे और ब्राह्मणको निमन्त्रण देकर उसको नहीं खिलानेवालेसेभी इतनाही दण्डलेवे ❀ ॥ ९२–९५ ॥ निमन्त्रण स्वीकार करके विनाकारण नहीं भोजन करनेवाले ब्राह्मणपर एकमासा सोना दण्ड करै और उससे निमन्त्रण करनेवालेको भोजनका दूना अन्न दिलादेवे ॥ ९६ ॥

(८) यमस्मृति ।

आत्मानं घातयेद्यस्तु रज्वादिभिरुपक्रमैः । मृतोऽमेध्येन लेप्तव्यो जीवतो द्विशतं दमः ॥ २० ॥
दण्ड्यास्तत्पुत्रमित्राणि प्रत्येकं पणिकं दमम् । प्रायश्चित्तं ततः कुर्युर्यथाशास्त्रप्रचोदितम् ॥ २१ ॥

राजाको उचित है कि जो मनुष्य फांसीलगाकर अथवा अन्य प्रकारसे आत्मघातका उद्योग करे वह यदि मरजावे तो उसकी देहमें अपवित्र वस्तु लिपवादेवे और यदि बचजावे तो उससे १०० दण्ड लेवे ॥ २० ॥ उसके पुत्र और मित्रोंपर एकएक पणिक (मुद्रा)दण्ड करे और वे लोग शास्त्रके अनुसार प्रायश्चित्त करें ॥२१ ॥

वैश्यप्रकरण ☉ ८.

वैश्यका धर्म १.

(१) मनुस्मृति–१ अध्याय ।

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिरेव च ॥ ९० ॥

गौआदि पशुओंका पालनकरना, दानदेना यज्ञकरना, वेदपढ़ना, वाणिज्यकरना, व्याजलेना और खेतीकरना वैश्योंके धर्म हैं ▩ ॥ ९० ॥

२ अध्याय ।

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः । वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥१५५॥

ज्ञानवान् होनेसे ब्राह्मण, बलवान् होनेसे क्षत्रिय, धनधान्यसे युक्त होनेसे वैश्य और बड़ी अवस्था होनेसे शूद्र श्रेष्ठ समझेजातेहैं ✺ ॥ १५५ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्याय–२६७ श्लोक । श्राद्धआदिमें निकटके योग्य ब्राह्मणको निमन्त्रण नहीं देनेवालेसे राजा १० पण दण्ड लेवे ।

☉ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यका धर्म गृहस्थप्रकरणमें है ।

▩ याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्यायके ११८-११९ श्लोकमें; गौतमस्मृति–१०अध्यायके१ और ३ अङ्कमें और वसिष्ठस्मृति—२ अध्यायके-२२–२३ अङ्कमें भी ऐसा है ।

✺ बृहद्विष्णुस्मृति–३२ अध्यायका १८ श्लोक ऐसा ही है ।

९ अध्याय ।

वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दारपरिग्रहम् । वार्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैव रक्षणे ॥ ३२६ ॥
प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून् । ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः परिददे प्रजाः ॥ ३२७ ॥
न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयं पशूनिति । वैश्ये चेच्छति नाऽन्येन रक्षितव्याः कथंचन॥३२८॥
मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च । गन्धानां च रसानां च विद्यादर्घबलाबलम् ॥ ३२९॥
बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च । मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः ॥ ३३० ॥
सारासारं च भाण्डानां देशानां च गुणागुणान् । लाभालाभं च पण्यानां पशूनां परिवर्धनम्॥३३१॥
भृत्यानां च भृतिं विद्याद्भाषाश्च विविधा नृणाम् । द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च॥३३२॥
धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् । दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमेव प्रयत्नतः ॥ ३३३ ॥

वैश्यको उचित है कि संस्कार होजानेपर अपना विवाह करके कृषि, वाणिज्य और पशुपालन-कर्ममें सदा लगारहै और पशुओंकी रक्षाकरे ॥ ३२६ ॥ ब्रह्माने पशुओंको उत्पन्न करके उनकी रक्षाका भार वैश्यको और सब प्रजाओंकी सृष्टि करके उनकी रक्षाका भार ब्राह्मण और क्षत्रियको दियाथा ॥ ॥ ३२७ ॥ वैश्यको पशुपालन-कामका त्याग नहीं करना चाहिये; वैश्यके पशुपालन करनेपर अन्य कोई पशुपालनकरनेका अधिकारी नहीं होसकता ॥ ३२८ ॥ वैश्यको चाहिये कि मणि, मोती, मूँगा, लोहा, वस्त्र, गन्धयुक्त-पदार्थ और रसोंके मूल्य जाननेमें चतुर होवे ॥ ३२९ ॥ सब प्रकारके बीज बोने; भूमिका दोषगुण जानने और प्रस्थ आदि मान तथा तुलाका विधान जाननेमें प्रवीण होवे ॥३३०॥ सब वस्तुओंकी पहचान करे; देशोंके गुणदोषोंको व्यापारकी वस्तुओंके लाभ हानिको तथा पशुओंके बढानेवाले उद्योगको जाने ॥ ३३१ ॥ भृत्योंके वेतन, विविध देशके मनुष्योंकी भाषा वस्तुओंके मिलनेके स्थान, उनके इकट्ठे करनेके स्थान और खरीदने बेचनेका विधान जाननेमें चतुर होवे ॥ ३३२ ॥ धर्मपूर्वक धन बढानेके लिये विशेष यत्न करतरहै और यत्नपूर्वक सब जीवोंको अन्न देवे ॥ ३३३ ॥

१० अध्याय ।

शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषिर्विशः । आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः ॥ ७९ ॥
वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम् । वार्ताकर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥ ८० ॥

अस्त्र शस्त्र धारण करना क्षत्रियकी और वाणिज्य, पशुपालन तथा कृषिकर्म वैश्यकी जीविका है; दानदेना, वेदपढना और यज्ञकरना क्षत्रिय और वैश्य दोनोंके धर्म हैं ॥ ७९ ॥ ब्राह्मणके कर्मोंमें वेदपढना, क्षत्रियके कर्मोंमें प्रजाओंकी रक्षा करना और वैश्यके कर्मोंमें कृषि, गोपालन और वाणिज्य श्रेष्ठ हैं ॥ ८० ॥

११ अध्याय ।

ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् । वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥ २३६ ॥

ब्राह्मणका तप ज्ञान, क्षत्रियका तप प्रजाओंकी रक्षा, वैश्यका तप खेती, गोरक्षा और वाणिज्य, और शूद्रका तप सेवा करना है ॥ २३६ ॥

(९) हारीतस्मृति--२ अध्याय ।

गोरक्षां कृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथाविधि । दानं देयं यथाशक्त्या ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥ ६ ॥
दंभमोहविनिर्मुक्तः सत्यवागनसूयकः । स्वदारनिरतो दान्तः परदारविवर्जितः ॥ ७ ॥
धनैर्विप्रान्भोजयित्वा यज्ञकाले तु याजकान् । अप्रभुत्वे च वर्तेत धर्मे वा देहपातनात् ॥ ८ ॥

वैश्यका धर्म है कि विधिपूर्वक गोपालन, खेती और वाणिज्य करे; यथाशक्ति दान देवे, ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ ६ ॥ दम्भ, मोह और ईर्षाका त्याग करे, सत्य बोले, अपनी भार्यामें रत रहे, परकी स्त्रीसे सहवास नहीं करे ॥ ७ ॥ धनसे ब्राह्मणोंको और यज्ञके समय यज्ञकरानेवालोंको भोजन कराके प्रसन्न करे और धर्मके कार्योंमें जन्मपर्यन्त अपना प्रभुत्व नहीं जनावे ॥ ८ ॥

अत्रिस्मृतिके १४-१५ श्लोक और शंखस्मृति १ अध्यायके ३-४ श्लोकमें ऐसा ही है ।

बृहद्विष्णुस्मृति-२ अध्याय-४ अङ्क । ब्राह्मणका धर्म वेद पढाना, क्षत्रियका धर्म शस्त्रोंद्वारा प्रजाओंकी रक्षा करना, वैश्यका धर्म पशुपालन करना और शूद्रका धर्म द्विजातियोंकी सेवा करना है । नारदस्मृति-१ विवादपद-३ अध्याय, ५६-५७ श्लोक । कृषि, गोरक्षा और वाणिज्यसे प्राप्त ये ३ प्रकारका धन वैश्यके लिये उत्तम है ।

(१३) पाराशरस्मृति-१ अध्याय ।

लाभकर्म तथा रत्नं गवां च परिपालनम् । कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता ॥ ७० ॥

व्याज आदि लेना, रत्नका व्यापार, गोपालन, खेती और वाणिज्य करना वैश्यकी वृत्ति है ॥ ७० ॥

२ अध्याय ।

राज्ञे दत्त्वा तु षड्भागं देवानां चैकविंशकम् ॥ १७ ॥
विप्राणां त्रिंशकं भागं कृषिकर्त्ता न लिप्यते । क्षत्रियोऽपि कृषिं कृत्वा देवान्विप्रांश्च पूजयेत् ॥ १८॥
वैश्यः शूद्रस्तथा कुर्यात्कृषिवाणिज्यशिल्पकम् ॥ १९ ॥

छठा भाग राजाको, इक्कीसवां भाग देवताओंको और तीसवां भाग ब्राह्मणोंको देनेसे खेतीकरनेवाले खेतीके दोषसे छूटजातेहैं ॥ १७-१८ ॥ यदि क्षत्रिय खेती करे तो वह भी इसीप्रकार देवताओं और ब्राह्मणोंको भाग देवे और वैश्य खेती और वाणिज्यमें तथा शूद्र शिल्प कर्ममें इसीरीतिसे देवताओं और ब्राह्मणोंको देवे ॥ १८-१९ ॥

(२५) बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-५ अध्याय ।

वैश्यः कुसीदमुपजीवेत् ॥ ९० ॥ पंचविंशतिस्त्वेव पंचमाषकी स्यात् ॥ ९१ ॥

वैश्य व्याजसे जीविका करे ॥ ९० ॥ २५ का ५ मासा व्याज लेवे ॥ ९१ ॥

१ प्रश्न-१० अध्याय ।

विट्स्वध्ययनयजनदानकृषिवाणिज्यपशुपालनसंयुक्तं कर्मणां वृद्ध्यै ॥ ४ ॥

वेदपढ़ने, यज्ञकरने, दानदेने और खेती, वाणिज्य तथा पशुपालन करनेसे वैश्यकी वृद्धि होती है ॥ ४ ॥

वैश्यके आपत्कालका धर्म २.

(१) मनुस्मृति-८ अध्याय ।

शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते । द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते ॥ ३४८ ॥

जब साहसिकलोगोंके बलसे धर्मका मार्ग रुके अथवा समयके प्रभावसे वर्णविप्लव होनेलगे तब धर्मकी रक्षाके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सब द्विजातियोंको शस्त्रग्रहण करना चाहिये ॥ ३४८ ॥

वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्यापि वर्त्तयेत् । अनाचरन्न कार्याणि निवर्त्तेत च शक्तिमान् ॥ ९८ ॥

वैश्यको चाहिये कि यदि अपने वर्णके कर्मसे निर्वाह नहीं होसके तो शूद्रकी वृत्तिसे अपना निर्वाह करे; किन्तु जूठा भोजन आदि अनाचारकर्म नहीं करे और आपत्कालसे छूटते ही शूद्रकी वृत्ति त्यागदेवे ॥ ९८ ॥

११ अध्याय ।

क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः । धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः ॥ ३४ ॥

क्षत्रिय अपने बाहुबलसे; वैश्य और शूद्र धनसे और ब्राह्मण जप और होमके बलसे आपत्कालसे पार होवें ॥ ३४ ॥

(२६) नारदस्मृति-१ विवादपद-४ अध्याय ।

वृद्धिस्तु योक्ता धान्यानां वार्धुषं तदुदाहृतम् । आपदं निस्तरेद्वैश्यः कामं वार्धुषिकर्मणा ॥ ३९ ॥
आपत्स्वपि हि कष्टासु ब्राह्मणः स्यान्न वार्धुषी ॥ ४० ॥

वृहद्विष्णु-२ अध्याय-५ अङ्क । कृषि, गोपालन, वाणिज्य, व्याज और धान्यादि बीजकी रक्षा वैश्यकी जीविका है ।

व्याजका विधान व्यवहारप्रकरणके ऋणदानमें देखिये ।

चारों वर्णके आपत्कालका धर्म गृहस्थप्रकरणमें है ।

वसिष्ठस्मृति-३ अध्याय-२६ अङ्क । अपनी रक्षाके लिये अथवा वर्णसङ्कर होनेसे प्रजाओंको बचानेके लिये ब्राह्मण और वैश्यको भी शस्त्र ग्रहण करना चाहिये । बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-२ अध्याय,-८० श्लोक । गौ और ब्राह्मणका रक्षाके लिये और वर्णसङ्कर होनेसे प्रजाओंको बचानेके लिये ब्राह्मण और वैश्य भी शस्त्रग्रहण करें ।

वसिष्ठस्मृति—२६ अध्यायके १७ श्लोकमें भी ऐसा है ।

धान्योंकी वृद्धिको अर्थात् दुगुने चौगुने धान्य लेनेको वार्द्धुष्यकर्म कहतेहैं;वैश्यको उचित है कि वार्द्धुष्य कर्मसे आपत्कालसे पार होवे; किन्तु ब्राह्मण आपत्कालमें तथा अतिकष्ट होनेपर भी वार्द्धुष्यकर्म नहीं करे ॥ ३९—४० ॥

शूद्रप्रकरण ९.

शूद्रका धर्म १.

(१) मनुस्मृति--१ अध्याय।

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्। एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ ९१ ॥

ब्रह्माने शूद्रोंके लिये यही प्रधान कर्म बताया कि वे लोग शुद्धचित्तसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकी सेवा करें ❀ ॥ ९१ ॥

५ अध्याय।

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम्। शारीरं शौचमिच्छन्हि स्त्रीशूद्रस्तु सकृत्सकृत्॥१३९॥
शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम्। वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं च भोजनम्॥१४०॥

शुद्धिके लिये द्विजलोग ३ बार आचमन और २ बार मुखमार्जन करें और शरीरकी शुद्धिकी इच्छावाली स्त्री और शूद्र शौचके समय एकबार (ओठसे जल स्पर्शकरके) आचमन करें ۞ ॥ १३९ ॥ न्यायवर्ती शूद्र प्रतिमास केशमुण्डन करावे, वैश्यके समान (जन्ममृत्युका) अशौच माने और द्विजोंका जूठा भोजन करे ۞ ॥ १४० ॥

९ अध्याय।

विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम्। शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैःश्रेयसः परः ॥ ३३४ ॥
शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः। ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ॥ ३३५ ॥

वेदज्ञ और यशस्वी गृहस्थ ब्राह्मणोंकी सेवा करना ही शूद्रोंके लिये श्रेष्ठ कल्याणकारी धर्म है ॥ ३३४॥ पवित्र रहने, श्रेष्ठसेवा करने, कोमलवचन बोलने, अहंकाररहित होने और सदा ब्राह्मण आदिके आश्रयमें रहनेसे शूद्र अपनी जातिसे उत्कृष्ट जातिभावको प्राप्त होताहै ॥ ३३५ ॥

१० अध्याय।

अशक्नुवंस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम्। पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेत्कारुककर्मभिः ॥ ९९ ॥
यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यन्ते द्विजातयः। तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च॥१००॥

यदि द्विजोंकी सेवासे शूद्रकी स्त्री, पुत्रोंका पालन नहीं होसके तो वह चित्रकार आदि कारुकके काम करके अपना निर्वाह करे ॥ ९९ ॥ जिन कारुककर्म तथा शिल्पकर्मोंके करनेसे द्विजोंका काम चले वह उन्हींको करे ⚘ ॥ १०० ॥

❀ विष्णुस्मृति-५ अध्याय-८ श्लोक। शूद्रको चाहिये कि ईर्षाको छोड़कर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकी सेवा करे; धर्मपूर्वक इनकी सेवा करनेसे वह स्वर्गको जीतताहै। वसिष्ठस्मृति—२अध्याय-२४ अङ्क। तीनों वर्णोंकी सेवाकरना शूद्रोंका धर्म है।

۞ उशनस्मृति-२ अध्याय १५ श्लोक, वशिष्ठस्मृति-३ अध्यायके ३३-३४ अङ्क और संवर्तस्मृति-२० श्लोक। आचमनसे हृदयतक जल जानेपर ब्राह्मण, कण्ठतक जल जानेसे क्षत्रिय, दाँततक जल जानेसे वैश्य और केवल ओठोंमें जल स्पर्श करनेसे शूद्र शुद्ध होतेहैं।

۞ बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-५ अध्याय,-८९ अङ्क। श्रेष्ठ आचरणवाले शूद्रको उचित है कि १५ दिन अथवा १ मासपर केश मुण्डन करावे और अपनेसे श्रेष्ठ अर्थात् वैश्यके समान आचमन करे।

⚘ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय-१२० श्लोक। द्विजोंकी सेवा करना शूद्रका धर्म है; किन्तु यदि उससे उसकी जीविका नहीं चलसके तो वह वैश्यके कर्मसे अथवा द्विजोंका हित करताहुआ विविध-प्रकारके शिल्प कर्मसे अपना निर्वाह करे। बृहद्विष्णुस्मृति—२ अध्यायके ४-५ अङ्क। शूद्रोंका धर्म द्विजोंकी सेवा करना और उनकी जीविका सम्पूर्ण शिल्पकर्म हैं। शङ्खस्मृति—१ अध्याय-५ श्लोक। द्विजोंकी सेवा और सब प्रकारके शिल्पकार्य शूद्रोंके कर्म हैं। अत्रिस्मृति—१५ श्लोक। कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य द्विजोंकी सेवा; और कारुकर्म अर्थात् चित्रकार आदिका काम शूद्रोंके कर्म हैं। बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र— २ अध्याय-वर्णधर्मकथन-५ श्लोक। ब्राह्मण आदि द्विजोंकी सेवा तथा आज्ञापालन करना शूद्रोंका धर्म और वाणिज्य उनकी जीविका कहीगई है।

शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षन्क्षत्रमाराधयेद्यदि । धनिनं वाप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत् ॥ १२१ ॥
स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेत्तु सः । जातब्राह्मणशब्दस्य साह्यस्य कृतकृत्यता ॥ १२२ ॥
विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते । यदतोऽन्यद्धि कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम् ॥ १२३ ॥

शूद्रको यदि ब्राह्मणकी सेवासे जीविका नहीं चले तो वह क्षत्रियकी सेवा करे और उसके नहीं मिलनेपर धनवान्–वैश्यकी सेवा करके अपना निर्वाह करे ॥ १२१ ॥ स्वर्गके लिये अथवा स्वर्ग और अर्थ इन दोनोंके लिये शूद्रको ब्राह्मणकी सेवा करनी चाहिये; क्योंकि ब्राह्मणका सेवक कहनेसे ही शूद्र, कृतार्थ होजाताहै ॥ १२२ ॥ ब्राह्मणकी सेवा ही शूद्रके लिये श्रेष्ठ कर्म कहागया है; इससे अन्य जो कुछ वह करताहै वह सब निष्फल है ❀ ॥ १२३ ॥

न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति । नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ॥ १२६॥
शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसञ्चयः । शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ॥ १२९ ॥

शूद्रको (लहसुन आदि खानेमें) कुछ पातक नहीं लगता, उसका (यज्ञोपवीत) संस्कार नहीं होता-(अग्निहोत्र आदि) धर्मोंमें अधिकार नहीं है और (पाकयज्ञ आदि) धर्मोंमें निषेध नहीं है ॥ १२६॥ धन-बटोरनेमें समर्थ होनेपर भी शूद्रको बहुत धन इकट्ठा नहीं करना चाहिये; क्योंकि धनवान् होनेपर वह धनसे मतवाला होकर ब्राह्मणोंका अपमान करेगा ॥ १२९ ॥

११ अध्याय ।

ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् । वैश्यस्य तु तपो वार्त्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥ २३६॥

ब्राह्मणका तप ज्ञान, क्षत्रियका तप रक्षाकरना, वैश्यका तप खेती, गोरक्षा और: वाणिज्य करना और शूद्रका तप सेवा करना है ॥ २३६ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय ।

भार्यारतिः शुचिर्भृत्यभर्त्ता श्राद्धक्रियारतः । नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्न हापयेत् ॥ १२१ ॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । दानं दमो दया क्षांतिः सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥ १२२॥

अपनी भार्यामें रत, पवित्र, निज भृत्योंका पालक और श्राद्धकर्ममें परायण-शूद्र नमस्कारमन्त्रसे पञ्च महायज्ञोंको सदा करे ॥ १२१ ॥ हिंसाका त्याग करना, सत्य बोलना, चोरी नहीं करना, पवित्र रहना, इन्द्रियोंको रोकना, दानदेना, अन्तःकरणको रोकना, दयाकरना और क्षमावान् होना ये सब मनुष्योंके धर्म हैं ✽ ॥ १२२ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् । आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥ ४४ ॥
वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च । अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते ॥ ४५ ॥
इष्टापूर्ते द्विजातीनां सामान्ये धर्मसाधने । अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके ॥ ४६ ॥
जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रव्रज्या मन्त्रसाधनम् ॥ १३३ ॥
देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षट् ॥ १३४ ॥

अग्निहोत्र, तपस्या, सत्य, वेदोंका पालन, अतिथियोंका सत्कार और बलिवैश्वदेव इनको इष्ट और बावली कूप, तड़ाग, देवमन्दिर, तथा बागनिर्माण और अन्नदानको पूर्त कहतेहैं ॥ ४४–४५ ॥ द्विजोंके लिये इष्ट और पूर्त साधारण धर्म ह, शूद्र पूर्त धर्मका अधिकारी है, किन्तु इष्टके वैदिक धर्मका नहीं ✽✽ ॥ ४६ ॥ जप, तपस्या, तीर्थयात्रा ✽✽✽ संन्यासग्रहण, मन्त्रसाधन और देवताकी आराधना, इन ६ कर्मोंको करनेसे स्त्री और शूद्र पतित होजातेहैं ॥ १३३–१३४ ॥

❀ पाराशरस्मृति–१ अध्यायके ७१ श्लोकमें १२३ श्लोकके समान है ।

✽ वशिष्ठस्मृति—४ अध्याय–४ अङ्क । सत्य बोलना, क्रोधका त्याग करना, दानदेना, हिंसा नहीं करना और सन्तान उत्पन्न करना चारों वर्ण गृहस्थका धर्म हैं । शङ्खस्मृति—१ अध्याय–५ श्लोक । क्षमा करना, सत्य बोलना, इन्द्रियोंको वशमें रखना और पवित्र रहना; ये सब विना विशेषताके चारों वर्णोंके योग्य कर्म हैं ।

✽✽ लिखितस्मृतिके ४-६ श्लोकमें भी ऐसा है ।

✽✽✽ इसका भाव यह है कि अपने पतिके साथ स्त्री और अपने स्वामीके साथ शूद्र तीर्थयात्रा करे, अकेला नहीं ।

(४) विष्णुस्मृति--१ अध्याय।

शूद्रश्चतुर्थो वर्णस्तु सर्वसंस्कारवर्जितः। उक्तस्तस्य तु संस्कारो द्विजेष्वात्मनिवेदनम् ॥ १५ ॥

चौथा वर्ण शूद्र सब संस्कारोंसे हीन है; उसका संस्कार यही है कि वह अपने आत्माको द्विजोंके आधीन करदेवे ॥ १५ ॥

५ अध्याय।

पञ्चयज्ञविधानं तु शूद्रस्यापि विधीयते। तस्य प्रोक्तो नमस्कारः कुर्वन्नित्यं न हीयते ॥ ९ ॥

शूद्रको भी पञ्चयज्ञ करनेको कहा गया है, नमस्कार मन्त्रसे नित्य पञ्च महायज्ञ करनेसे शूद्रको हीन नहीं है ॥ ९ ॥

(५) हारीतस्मृति--२ अध्याय।

वर्णत्रयस्य शुश्रूषां कुर्याच्छूद्रः प्रयत्नतः। दासवद्ब्राह्मणानाञ्च विशेषेण समाचरेत् ॥ ११ ॥
अयाचितप्रदाता च कष्टं वृत्त्यर्थमाचरेत्। पाकयज्ञविधानेन यजेद्देवमतन्द्रितः ॥ १२ ॥
शूद्राणामधिकं कुर्यादर्चनं न्यायवर्तिनाम्। धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम् ॥ १३ ॥
स्वदारेषु रतिश्चैव परदारविवर्जनम्। इत्थं कुर्यात्सदा शूद्रो मनोवाक्कायकर्मभिः ॥
स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपापः सुपुण्यकृत् ॥ १४ ॥

शूद्रको उचित है कि यत्नपूर्वक तीनों वर्णोंकी विशेष करके ब्राह्मणोंकी सेवा करे ॥ ११ ॥ विना याचन किये ही दान देवे, कष्ट सहकर अपनी वृत्तिसे निर्वाह करे, आलस छोड़कर पाकयज्ञके विधानसे देवताओंको पूजे ॥ १२ ॥ न्यायवर्ती शूद्रोंका विशेष अर्चन करे, पुराने वस्त्रोंको पहने, ब्राह्मणोंका जूठा भोजन करे ॥ १३ ॥ अपनी भार्यामें रत रहे, परस्त्रीसे अलग रहे, जो शूद्र मन, शरीर और वचनसे सदा ऐसा करताहै वह निष्पाप होकर इन्द्रलोकमें जाताहै ॥ १४ ॥

(१३) पाराशरस्मृति--१ अध्याय।

लवणं मधु तैलं च दधि तक्रं घृतं पयः। न दुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात्सर्वेषु विक्रयम् ॥ ७२ ॥

नोन, मधु, तेल, दही, मट्ठा, घी और दूध बेंचनेसे शूद्रको दोष नहीं लगताहै; वह इनको सब जातियोंमें बेंचे * ॥ ७२ ॥

२ अध्याय।

विकर्म कुर्वते शूद्रा द्विजशुश्रूषयोज्झिताः ॥ १९ ॥
भवन्त्यल्पायुषस्ते वै निरयं यान्त्यसंशयम् ॥ २० ॥

जो शूद्र द्विजोंकी सेवाको छोड़करके अन्य कामोंको करताहै वह अल्पायु होताहै और निःसन्देह नरकमें जाताहै ॥ १९-२० ॥

(१४) व्यासस्मृति--१ अध्याय।

शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति। वेदमन्त्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना ॥ ६ ॥

चौथावर्ण शूद्र भी वर्ण होनेके कारण वेदमन्त्र, स्वधा, स्वाहा, वषट्कार आदि शब्दोंको छोड़कर (शास्त्रोक्त) कर्म करनेके अधिकारी हैं ॥ ६ ॥

(१८) गौतमस्मृति--१० अध्याय।

शूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजातिस्तस्यापि सत्यमक्रोधः शौचमाचमनार्थे पाणिपादप्रक्षालनमेवैके श्राद्ध-कर्म भृत्यभरणं स्वदारवृत्तिः परिचर्या चोत्तरेषां तेभ्यो वृत्तिं लिप्सेत जीर्णान्युपानच्छत्रवासः-कूर्चान्युच्छिष्टाशनं शिल्पवृत्तिश्च यं चार्यमाश्रयते भर्त्तव्यस्तेन क्षीणोऽपि तेन चोत्तरस्तदर्थोऽस्य निचयः स्यादनुज्ञातोऽस्य नमस्कारो मन्त्रः पाकयज्ञैः स्वयं यजेतेत्येके ॥ ४ ॥

शूद्र चौथावर्ण एक जाति है; सत्य, बोलना क्रोधका त्याग करना, शौचकरना और आचमनके लिये हाथपांव धोना उसका कर्म है; अन्य आचार्य कहतेहैं कि श्राद्ध करना, निज भृत्योंका पालन करना, अपनी भार्यामें रतरहना, द्विजोंकी सेवा करना, उनसे वेतन लेना, उनका पुराना जूता, छाता और वस्त्र धारण करना, द्विजोंका जूठा खाना और शिल्पकार्य करना शूद्रका धर्म है; जिस द्विजका आश्रयकरके शूद्र रहताहै वही उस शूद्रका दीन अवस्थामें भी पालनपोषण करे उसीसे उसकी प्रतिष्ठा है; उसीके लिये उसका धनसञ्चय है; किसी आचार्यका मत है कि नमस्कार मन्त्रके साथ पाकयज्ञ अर्थात् हविष्यान्नका होम शूद्र स्वयं करे ॥ ४ ॥

---

* बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—२ अध्याय–वर्ण धर्मकथन,–१२ श्लोकमें ऐसा ही है।

(२०) वसिष्ठस्मृति-२ अध्याय ।

एतेषां परिचर्या शूद्रस्य ॥ २४ ॥ अनियता वृत्तिः ॥ २५ ॥ अनियतकेशवेशाः सर्वेषां मुक्तशिखा वर्जम् ॥ २६ ॥

तीनों वर्णोंकी सेवा करना शूद्रोंका कर्म है ॥ २४ ॥ शूद्रकी वृत्ति, केश अथवा वेशका कोई नियम नहीं है; किन्तु शिखा खोलकर रहना सबके लिये वर्जित है ॥ २५—२६ ॥

(२४) लघ्वाश्वलायनस्मृति-२२ वर्णधर्मप्रकरण ।

शूद्रः कुर्याद्द्विजस्यैव सेवामेव कृषिं तथा । सुखं तेन लभेन्नूनं प्रवदन्ति महर्षयः ॥ ५ ॥

महर्षियोंने कहा है कि द्विजोंकी सेवा और कृषिकार्य शूद्रोंको करना चाहिये; इन्हीं कर्मोंसे उनको सुख मिलताहै ॥ ५ ॥

मान्य शूद्र २.

(१) मनुस्मृति-२ अध्याय ।

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी । एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥ १३६ ॥
पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च । यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः ॥१३७॥

धन, बन्धु, अवस्था, कर्म और विद्या; ये ५ सन्मानके कारण हैं, इनमें पहिलेवालेसे पीछेवाले अधिक मानके योग्य हैं ॥१३६॥ ब्राह्मणआदि तीनों द्विजातियोंमें पूर्वोक्त पांचों गुणोंमेंसे जिनमें जितने अधिक गुण हैं वे उतने अधिक माननीय हैं और ९० वर्षसे अधिक अवस्थावाले शूद्रभी द्विजोंकेलिये मान्य हैं * ॥ १३७॥

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः । वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥१५५॥

ज्ञानवान् होनेसे ब्राह्मण, बलवान् होनेसे क्षत्री, धनधान्यसे युक्त होनेसे वैश्य और बड़ी अवस्था होनेसे शूद्र श्रेष्ठ समझेजातेहैं ✠ ॥ १५५ ॥

१० अध्याय ।

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः । मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥ १२७ ॥
यथा यथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः । तथातथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः ॥ १२८ ॥

धर्मको चाहनेवाले, धर्मज्ञ और सज्जनोंकी वृत्ति करनेवाले शूद्र वेदमन्त्ररहित शास्त्रोक्त कर्म करनेसे दोषी नहीं होतेहैं; किन्तु प्रशंसायोग्य होजातेहैं ॥ १२७ ॥ निन्दारहित शूद्र सद्वृत्तियोंमें जितने प्रवृत्त होतेहैं उतने ही इसलोकमें मानेजातेहैं और मरनेपर स्वर्गका सुख भोगतेहैं ❁ ॥ १२८ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय ।

विद्या कर्म वयो बन्धुवित्तैर्मान्या यथाक्रमम् । एतैः प्रभूतैः शूद्रोऽपि वार्द्धके मानमर्हति ॥ ११६ ॥

विद्या, कर्म, अवस्था, सम्बन्ध और धनसे युक्त मनुष्य क्रमसे माननेयोग्य होतेहैं और अधिक विद्या आदिसे युक्त शूद्र भी वृद्धअवस्थामें माननेयोग्य होताहै ॥ ११६ ॥

शूद्रके विषयमें अनेक बातें ३.

(१) मनुस्मृति-४ अध्याय ।

आर्धिकः कुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ । एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥ २५३ ॥

---

* उशनस्मृति—१ अध्यायके ४८-४९ श्लोकमें विशेष यह है कि इन गुणोंसे युक्त शूद्र भी मान्य होताहै । गौतमस्मृति—६ अध्यायके-४ अङ्क । ८० वर्षसे कम अवस्थाके शूद्रको ब्राह्मण पुत्रके समान समझे (किन्तु इससे अधिक अवस्थावालेके साथ मित्रके समान वर्ताव करे) अपनेसे छोटे द्विजको भी शूद्र प्रणाम करे ।

✠ वृहद्विष्णुस्मृति—३२ अध्यायके १८ अङ्कमें भी ऐसा है ।

❁ वृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—४ अध्याय-३०७ श्लोक । अच्छे कुलमें उत्पन्न, मद्यमांससे अलग रहनेवाला, ब्राह्मणमें भक्ति रखनेवाला और वाणिज्य वृत्तिवाला शूद्र सच्छूद्र कहाजाता है ।

अपने खेतके साझीदार, कुलके मित्र, गोपालक, दास, क्षौरकर्म करनेवाले नाई और आत्माको समर्पण करदेनेवाले इतने शूद्रोंका अन्न खाना चाहिये ※ ॥ २५३ ॥

१० अध्याय।

प्रकल्प्या तस्य तैर्वृत्तिः स्वकुटुम्बाद्यथार्हतः। शक्तिं चावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम्॥१२४॥
उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च। पुलकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदाः ॥१२५॥

ब्राह्मणको उचित है कि अपने सेवक शूद्रकी शक्ति और चतुराई और उसके कुटुम्बके परिमाणका विचार करके उसका वेतन नियत करदेवे और उसको जूठा अन्न, पुराना वस्त्र, मध्यम प्रकारका अन्न और पुराने जूते आदि सामान देवे ※※ ॥ १२४-१२५ ॥

(३) अत्रिस्मृति।

वध्यो राज्ञा स वै शूद्रो जपहोमपरश्च यः। ततो राष्ट्रस्य हन्तासौ यथा वह्नेश्च वै जलम् ॥ १९ ॥

जैसे जलसे आग बुझाई जाती है वैसेही जप और होममें तत्पर रहनेवाले शूद्रके रहनेसे राजाके राज्यका नाश होताहै, इस लिये ऐसे शूद्रोंको राजा दण्डित करे ॥ १९ ॥

(४) विष्णुस्मृति--५ अध्याय।

शूद्रोपि द्विविधो ज्ञेयः श्राद्धी चैवेतरस्तथा। श्राद्धी भोज्यस्तयोरुक्तो ह्यभोज्यस्त्वितरो मतः॥१०॥
प्राणानर्थांस्तथा दारान् ब्राह्मणार्थे निवेदयेत्। स शूद्रजातिर्भोज्यः स्यादभोज्यः शेष उच्यते॥११॥

शूद्र २ प्रकारके हैं, एक श्राद्धका अधिकारी और दूसरे अनधिकारी; ब्राह्मण श्राद्धके अधिकारी शूद्रका अन्न भोजन करे; अनाधिकारीका अन्न नहीं ॥ १० ॥ जो शूद्र अपने प्राण, धन तथा स्त्रीको ब्राह्मणकी सेवामें अर्पण कर देवे ब्राह्मण उसका अन्न खावे; अन्य शूद्रोंका नहीं ॥ ११ ॥

(१६) पाराशरस्मृति--८ अध्याय।

दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेंद्रियः। कः परित्यज्य गां दुष्टां दुहेच्छीलवतीं खरीम् ॥३३॥

दुःशील ब्राह्मण भी पूजनेयोग्य होते हैं; किन्तु जितेन्द्रिय शूद्र भी पूज्य नहीं हैं; क्योंकि दुष्टगौको छोडकर सुशीला-गदहीको कोई नहीं दुहता ॥ ३३ ॥

११ अध्याय।

मद्यमांसरतं नित्यं नीचकर्मप्रवर्त्तकम्। तं शूद्रं वर्जयेद्विप्रः श्वपाकमिव दूरतः ॥ १५ ॥
द्विजशुश्रूषणरतान् मद्यमांसविवर्जितान्। स्वकर्मनिरतान्नित्यं ताञ्छूद्रान्न त्यजेद्विजः ॥ १६ ॥

ब्राह्मणको उचित है कि मदिरा और मांसमें सदा रत रहनेवाले और नीच कर्म करनेवाले शूद्रोंको श्वपाकके समान दूर रक्खे; किन्तु द्विजकी सेवामें तत्पर, मद्य मांससे वर्जित और सदा अपने कर्ममें निरत शूद्रोंको नहीं त्यागे ॥ १५-१६ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति--४ अध्याय।

गायत्र्या छन्दसा ब्राह्मणमसृजत् त्रिष्टुभा राजन्यं जगत्या वैश्यं न केनचिच्छन्दसा शूद्रमित्यसंस्कार्यो विज्ञायते ॥ ३ ॥

सृष्टिकर्ताने वेदके गायत्री छन्दसे ब्राह्मणको, त्रिष्टुपछन्दके योगसे क्षत्रियको और जगती छन्दके योगसे वैश्यको रचाथा; किन्तु किसी छन्दके योगसे शूद्रको नहीं रचा, इसी कारणसे शूद्र संस्कारके अयोग्य समझा गया है ॥ ३ ॥

ब्रह्मचारि-प्रकरण १०.

गुरुका धर्म १.

(१) मनुस्मृति--२ अध्याय।

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः। आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च ॥ ६९ ॥

※ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्यायके १६६ श्लोकमें; बृहद्विष्णुस्मृति-५७ अध्यायके १६ श्लोकमें; वृहद्यमस्मृति-३ अध्यायके-१० श्लोकमें; पाराशरस्मृति-११ अध्यायके २२ श्लोकमें; व्यासस्मृति—३ अध्यायके ५१-५२ श्लोकमें और गौतमस्मृति-१७ अध्यायके १ अङ्कमें भी ऐसा लिखाहै; इनमेंसे गौतमस्मृतिमें साझीदारके स्थानमें क्षेत्रकर्षक है।

※※ मनुस्मृति—४ अध्यायके ८० श्लोकमें है कि अपना जूठा तथा हविका बचाहुआ भाग शूद्रको नहीं देवे, वह अन्य शूद्रोंके लिये है; सेवकशूद्रके लिये नहीं है।

गुरुको उचित है कि शिष्यको जनेऊ देकर पहिले उसको शौचकर्मकी शिक्षा देवे, उसके पश्चात् आचार, अग्निहोत्र और सन्ध्योपासना सिखावे ॥ ६९ ॥

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः। आप्तः शक्तोऽर्थदः साधुः स्वोऽध्याप्या दश धर्मतः॥१०९॥

आचार्यका पुत्र, गुरुकी सेवा करनेवाला, दूसरे प्रकारसे ज्ञानदेनेवाला, धार्मिक, पवित्र रहनेवाला, सम्बन्धी, सेवाकरनेमें समर्थ, धनदेनेवाला, श्रेष्ठआचरणवाला और कुलका मनुष्य; ये १० प्रकारके शिष्य धर्मानुसार गुरुके पढाने योग्य हैं ॥ १०९ ॥

नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः। जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ॥११०॥

अधर्मेण च यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति। तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाऽधिगच्छति ॥ १११ ॥

गुरुका धर्म है कि शिष्यको छोड़कर विना पूछेहुए किसीसे वेदके तत्त्वोंको नहीं कहे, श्रद्धारहित अन्याय-भावसे किसीके पूछनेपर उसका उत्तर नहीं देवे, बुद्धिमानपुरुष ऐसे स्थलमें जानसुनके भी बधिरकी भांति रहे ॥ ११० ॥ जो मनुष्य अधर्मसे कहताहै और जो अधर्मसे पूछताहै; इन दोनोंमेंसे एक मरजाताहै अथवा दोनोंमें वैरभाव होताहै ॥ १११ ॥

धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वापि तद्विधा। तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ॥११२॥

विद्ययैव समं कामं मर्त्तव्यं ब्रह्मवादिना। आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत् ॥ ११३ ॥

विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम्। असूयकाय मां मादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा ॥११४॥

यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतब्रह्मचारिणम्। तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने ॥ ११५ ॥

जैसे उत्तमबीजको ऊपर भूमिमें नहीं बोना चाहिये वैसे ही जहां धर्म, धन अथवा यथार्थसेवा प्राप्त नहीं होवे वहां विद्यादान नहीं करना चाहिये ॥ ११२ ॥ ब्रह्मवादी आचार्यको उचित है कि आपत्कालमें विद्याके सहित मरजावे, किन्तु अपात्ररूपी खेतमें विद्यारूपी बीज नहीं बोवे ॥ ११३ ॥ विद्या ब्राह्मणके समीप आकर बोली कि मैं तुम्हारी निधि हूं; तुम मुझे यत्नपूर्वक रक्षा करो, श्रद्धाहीनआदि दोषोंसे दूषित अपात्रोंको मुझे मत देवो; ऐसा करनेसे मैं बलवती रहूंगी ॥ ११४ ॥ पवित्र, जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी, विद्यारूपी निधिको पालन करनेवाले तथा प्रमादरहित ब्राह्मणको मुझे देना ॥ ११५ ॥

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः। सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ १४० ॥

एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः। योऽध्यापयति वृत्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥ १४१ ॥

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि। संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥ १४२ ॥

जो ब्राह्मण शिष्यको जनेऊ देकर यज्ञविधि और उपनिषदके सहित वेदोंको पढ़ाताहै उसको आचार्य कहतेहैं ॥ १४० ॥ जो ब्राह्मण जीविकाके लिये वेदका एकदेश (मन्त्र वा ब्राह्मण) अथवा वेदाङ्ग पढ़ाताहै वह उपाध्याय कहलाताहै ॥ १४१ ॥ जो ब्राह्मण गर्भाधानआदि संस्कार विधिपूर्वक करके अन्नसे विद्यार्थीको पालताहै वह गुरु कहाजाता है ॥ १४२ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय।

कृच्छ्रत्रयं गुरुः कुर्यान्म्रियते प्रहितो यदि ॥२८३॥

आचार्यके किसी कठिनकाममें भेजनेसे यदि शिष्य मरजावेगा तो आचार्यको३कृच्छ्र करना होगा॥२८३॥

शंखस्मृति-३ अध्यायके १ श्लोकमें भी ऐसा है। याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्यायके १५ श्लोकमें प्रायः ऐसा है।

उशनस्मृति-२ अध्यायके ३५-३६ श्लोकमें भी ऐसा है। याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्यायके २८ श्लोकमें है कि गुरुको चाहिये कि उपकार माननेवाले; अद्रोही, पाठ ग्रहण करनेमें समर्थ, पवित्र रहने-वाले, अनिन्दक, श्रेष्ठ आचारणवाले, सेवाकरनेमें समर्थ, सम्बन्धी, दूसरे प्रकारसे ज्ञान देनेवाले और धन देनेवालेको धर्मानुसार पढावे। मानवगृह्यसूत्र-१ पुरुष-७ खण्ड, १-२ अङ्क। ब्रह्मचारी, सदाचारी, बुद्धिमान्, सन्ध्यातर्पणादि कर्म करनेवाले, धनदेनेवाले प्रिय कार्य करनेवाले और विद्याके बदलेमें अन्य विद्या सिखानेवालेको उपनिषद् और वेद पढाना चाहिये।

बौधायनस्मृति—१ प्रश्न-२ अध्यायके ४८ श्लोकमें भी ऐसा है।

याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्यायके ३४-३५ श्लोकमें प्रायः ऐसा ही है और लिखा है कि ऋत्विक्से उपाध्याय, उपाध्यायसे आचार्य, आचार्यसे गुरु और गुरुसे माता अधिक माननीय है। व्यासस्मृति—४ अध्याय-४३ श्लोक। जो ब्राह्मण अग्निहोत्री और तपस्वी है और यज्ञविधि तथा उपनिषद्के सहित वेदोंको पढ़ाताहै वह आचार्य कहलाताहै। शङ्खस्मृति—३ अध्याय-२ श्लोक। जो ब्राह्मण गर्भाधानआदि संस्कार करके वेदोंको पढ़ाताहै उसको गुरु और जो द्रव्य लेकर पढ़ाताहै उसको उपाध्याय कहतेहैं।

बौधायनस्मृति—२ प्रश्न-१ अध्यायके २७ अङ्कमें भी ऐसा है॥

(९) हारीतस्मृति-१ अध्याय।

अध्यापनश्च त्रिविधं धर्मार्थमृक्थकारणात्। शुश्रूषाकरणं चेति त्रिविधं परिकीर्तितम् ॥ १९ ॥ एषामन्यतमाभावे वृथाचारो भवेद् द्विजः। तत्र विद्या न दातव्या पुरुषेण हितैषिणा ॥ २० ॥ योग्यानध्यापयेच्छिष्यानयोग्यानपि वर्जयेत् ॥२१ ॥

विद्यापढ़ाना ३ प्रकारका है; धर्मके अर्थ, धनके लिये और सेवाकरानेके अर्थ ॥ १९ ॥ अपने हितके चाहनेवाले ब्राह्मणको उचित है कि जिस शिष्यसे इन तीनोंमेंसे एक भी प्राप्त होनेकी सम्भावना नहीं हो उसको विद्या नहीं पढ़ावे ॥ २० ॥ योग्यशिष्योंको शिक्षा देवे अयोग्योंको नही ॥ २१ ॥

(६ क) उशनस्मृति-३ अध्याय।

एवमाचारसम्पन्नमात्मरम्भं सदाहितम् ॥ ३३ ॥ वेदं धर्मं पुराणं च तथा तत्त्वानि नित्यशः। संवत्सरोषिते शिष्ये गुरुर्ज्ञानं विनिर्दिशेत् ॥ ३४ ॥ हरते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्य वत्सरे गुरुः ॥ ३५ ॥

गुरु एक वर्ष शिष्यकी परीक्षा करके जब उसको आचारयुक्त, मनस्वी और अपना हितकारी देखे और उसका सम्पूर्ण दुष्कर्म नाश होजावे तब उसको वेद, धर्मशास्त्र, पुराण और तत्त्वोंको पढावे ॥ ३३-३५ ॥

(१८) गौतमस्मृति-२ अध्याय।

शिष्यशिष्टिरवधेनाशक्तो रज्जुवेणुविदलाभ्यां तनुभ्यामन्येन घ्नन् राज्ञा शास्यः ॥ २१ ॥

गुरुको उचित है कि आवश्यक जानपडे तो शिष्यको रस्सी अथवा वांसकी कमाचीसे ताडना करे; यदि वह कठोर ताड़ना करे तो राजा उसको दण्ड देवे ॥ २१ ॥

ब्रह्मचारीका धर्म २.

(१) मनुस्मृति--२ अध्याय।

अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तो यथाशास्त्रमुदङ्मुखः। ब्रह्माञ्जलिकृतोऽध्याप्यो लघुवासा जितेन्द्रियः ॥७०॥ ब्रह्मारम्भेवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा। संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥ ७१॥ व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः। सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः ॥ ७२ ॥

शिष्यको उचित है कि शास्त्रकी विधिसे आचमन करके हलकेवस्त्र धारण कर जितेन्द्रिय होकर पढनेके लिये हाथ जोड़कर उत्तर मुखसे बैठे ॥ ७० ॥ प्रतिदिन वेद पढनेके आदि और अन्तमें गुरुके चरणोंको ग्रहण करे और हाथ जोड़के बैठकर पढे, इसको ब्रह्माञ्जलि कहतेहैं ॥ ७१ ॥ सूधा-हाथ क के गुरुके बायें चरणको अपने बायें हाथसे और दाहने चरणको दाहने हाथसे स्पर्श करे ॥ ७२ ॥

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा। स्रवत्यनोंकृतं पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति ॥ ७४ ॥

ब्राह्मण नित्य वेद पढनेके आदि और अन्तमें प्रणव उच्चारण करे; क्योंकि विना प्रणव उच्चारण किये-हुए वेद पढनेसे धीरेधीरे पढना नष्ट होजाताहै और पढनेके अन्तमें प्रणवका उच्चारण नही करनेसे सब-पाठ भूल जाताहै ॥ ७४ ॥

अग्नीन्धनं भैक्षचर्यामधःशय्यां गुरोर्हितम्। आसमावर्त्तनात्कुर्यात्कृतोपनयनो द्विजः ॥ १०८ ॥

ब्रह्मचारी जबतक ब्रह्मचर्यव्रत समाप्तिका स्नान नहीं करे तबतक गुरुके गृहमे रहकर प्रतिदिन प्रातः काल और सन्ध्याके समय होम करे, भिक्षा मांगे, भूमिपर चटाई बिछाकर सोवे और सदा गुरुके हित-करकार्योंमें तत्पर रहे ॥ १०८ ॥

तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचोदितैः। वेदः कृत्स्नोधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ॥ १६५ ॥ वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तमः। वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥ १६६ ॥

द्विजाति विविधप्रकारके नियम और विधिपूर्वक सावित्री आदि व्रतानुष्ठान करके उपनिषदोंके सहित वेदोंको पढे ॥ १६५ ॥ जिस ब्राह्मणको तपस्या करनेकी इच्छा होवे वह सदा वेदाभ्यास करे; वेदको अभ्यास करनाही ब्राह्मणकी परम तपस्या है ॥ १६६ ॥

मनुस्मृति-८ अध्याय-३१७ श्लोक। भ्रूणघातीका पाप उसके अन्न खानेवालेके व्यभिचारिणी स्त्रीका पाप उसके पतिको, शिष्यका पाप उसको दण्ड नहीं देनेसे गुरुको, विधिपूर्वक यज्ञ नहीं करानेसे उसका पाप यज्ञ करानेवालेको और चोरका शासन नहीं करनेसे चोरका पाप राजाको लगताहै।

यद्यस्य विहितं चर्म यत्सूत्रं या च मेखला । यो दण्डो यच्च वसनं तत्तदस्य व्रतेष्वपि ॥ १७४ ॥

उपनयनके समय जिस वर्णके ब्रह्मचारीके लिये जो चर्म, सूत्र, मेखला, दण्ड और वस्त्र नियत हुए हैं ब्रह्मचर्य व्रतके समय भी उनके लिये उन्हींका विधान है ❀ ॥ १७४ ॥

सेवेतेमांस्तु नियमान्ब्रह्मचारी गुरौ वसन् । सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्ध्यर्थमात्मनः ॥ १७५ ॥

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् । देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ॥ १७६ ॥

ब्रह्मचारी गुरुके गृहमें निवास करनेके समय इन्द्रियोंका संयम करे और अपने व्रतकी वृद्धिके लिये नित्य स्नान करके देव तथा पितरोंका तर्पण, देवताओंकी पूजा और होम करे ॥ १७५-१७६ ॥

उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकाकुशान् । आहरेद्यावदर्थानि भैक्षं चाहरहश्चरेत् ॥ १८२ ॥

वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु । ब्रह्मचार्याहरेद्भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥ १८३ ॥

गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु । अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ॥ १८४॥

सर्वं वापि चरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसम्भवे । नियम्य प्रयतो वाचमभिशस्तांस्तु वर्जयेत् ॥ १८५ ॥

ब्रह्मचारी जलका घड़ा, फूल, गोबर, मिट्टी और कुशा गुरुकी आवश्यकतानुसार गुरुको लादेवे और नित्य भिक्षा मांगलावे ۞ ॥ १८२ ॥ वैदिकयज्ञोंको करनेवाले और निजकर्ममें स्थित गृहस्थके घरसे यत्नपूर्वक नित्य भिक्षा लावे ॥ १८३ ॥ गुरुके कुलमें, अपने कुलमें तथा मामा आदि बन्धुओंके घरमें भिक्षा नहीं, मांगे; किन्तु यदि अन्यत्र भिक्षा नहीं मिले तो मामा आदि बन्धुओंके घरमें, वहां नहीं मिले तो अपने कुलमें और वहां नहीं मिले तो गुरुके कुलमें भिक्षा मांगे ॥ १८४ ॥ जब पूर्वोक्त स्थानोंमें किसीजगह भिक्षा मिलनेकी आशा नहीं होवे तब मौनहोकर गांवके सब गृहस्थियोंके यहांसे भिक्षा ग्रहण करे; किन्तु दोषी लोगोंके घरसे भिक्षा नहीं लेवे ✾ ॥ १८५ ॥

दूरादाहृत्य समिधः सन्निदध्याद्विहायसि । सायं प्रातश्च जुहुयात्ताभिरग्निमतन्द्रितः ॥ १८६ ॥

अकृत्वा भैक्षचरणमसमिध्य च पावकम् । अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥ १८७ ॥

भैक्षेण वर्त्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्व्रती । भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥ १८८ ॥

दूरसे समिध काठको लाकर आकाशमें रक्खे और नित्य आलस्य छोड़कर प्रातःकाल और सायंकाल अग्निमें होम करे ॥ १८६ ॥ जो ब्रह्मचारी अनातुर अवस्थामें ७ राततक भिक्षा नहीं मांगता और दोनों वेलाओंमें होम नहीं करता उसको अपनी शुद्धिके लिये अवकीर्णिका व्रत करना चाहिये ॥ १८७ ॥ ब्रह्मचारी नित्य भिक्षा मांगे; किन्तु एक ही गृहस्थके घरसे नहीं; ब्रह्मचारीके लिये भिक्षाकी वृत्ति उपवासके समान है ✾ ॥१८८॥

❀ विष्णुस्मृति-१ अध्यायके १६ श्लोकमें ऐसाही है; व्यासस्मृति-१ अध्यायके २३ श्लोकमें है कि ब्रह्मचारी जनेऊ होजानेपर दण्ड, कौपीन, जनेऊ, मृगछाला और मेखला धारण करके सावधानीसे गुरुकुलमें निवास करे । हारीतस्मृति-३ अध्याय--६ श्लोक और याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-२९ श्लोक । ब्रह्मचारी मृगचर्म, दण्ड, मेखला और जनेऊ सदा धारण करे । मनुस्मृति-२ अध्याय-६४ श्लोक । जब ब्रह्मचारीका मेखला, मृगचर्म, दण्ड, जनेऊ अथवा कमण्डलु टूटजावे तब वह उसको जलमें डालकर अपने गृह्यमें कहेहुए मन्त्रोंसे नवीन धारण करे । (जिस वर्णके ब्रह्मचारीको जो चर्म, जनेऊ, करधनी, दण्ड और वस्त्र धारणकरना चाहिये वे सब गृहस्थप्रकरणके संस्कारमें देखिये) ।

۞ विष्णुस्मृति--१ अध्याय-२० श्लोक । ब्रह्मचारीको चाहिये कि गुरुको होमके लिये लकड़ी कुशा और जलका घड़ा लादेवे । हारीतस्मृति--३ अध्याय-३ श्लोक । ब्रह्मचारी गुरुके लिये जलका घड़ा, लकड़ी और गौओंका घास लादेवे ।

✾ उशनस्मृति--१ अध्यायके-५४-५७ श्लोकमें प्रायः ऐसा है; गौतमस्मृति-२ अध्यायके १७-१८ अङ्क । यदि अन्यत्र भिक्षा मिलजावे तो आचार्यके कुलमें, अपने कुलमें तथा गुरु; अर्थात् मान्यलोगोंके घरमें ब्रह्मचारी भिक्षा नहीं मांगे; किन्तु यदि अन्यत्र भिक्षा नहीं मिले तो मान्य लोगोंके घर, वहां नहीं मिले तो अपने कुलमें और अपने कुलमें भी नहीं मिले तो आचार्यके कुलमें भिक्षा मांगे ।

✾ मनुस्मृति--२ अध्याय । द्विजको उचित है कि नित्य आचमन करके सावधान चित्तसे भोजन करे । पश्चात् आचमन करके आंख आदि इन्द्रियोंका स्पर्श करे ॥ ५३ ॥ आदरपूर्वक अन्नको खावे, उसकी निन्दा नहीं करे, प्रतिदिन मुझको अन्न मिले ऐसी प्रार्थना करे ॥ ५४ ॥ प्रतिदिन भक्तिपूर्वक अन्न भोजन करनेसे बल और वीर्य बढ़ताहै; किन्तु अश्रद्धासे भोजन करनेपर ये दोनो नष्ट होतेहैं ॥ ५५ ॥ किसीको जूठा नहीं देवे, दिन रातमें ३ बार नहीं खावे, अफरजाने योग्य बहुत भोजन नहीं करे, जूठे मुख कहीं नहीं जाय ॥ ५६ ॥ अत्यन्त भोजन करनेसे शरीर रोगी होताहै, आयु, घटती है, स्वर्ग नहीं मिलता, पुण्यकारक नहीं है और लोकमें निन्दा होतीहै, इस लिये अत्यन्त भोजन नहीं करना चाहिये ॥ ५७ ॥

व्रतवद्देवदैवत्ये पित्र्ये कर्मण्यथर्षिवत्। काममभ्यर्थितोऽश्नीयाद् व्रतमस्य न लुप्यते ॥ १८९ ॥
ब्राह्मणस्यैव कर्मैतदुपदिष्टं मनीषिभिः। राजन्यवैश्ययोस्त्वेवं नैतत्कर्म विधीयते ॥ १९० ॥

ब्राह्मण ब्रह्मचारी देवकार्यमें मांसादि रहित ब्रह्मचारीके खानेयोग्य पदार्थको और पितर कार्यमें नीवार आदि ऋषियोंके भोजनयोग्य पदार्थको इच्छानुसार भोजन करे, इससे उसका ब्रह्मचर्यव्रत लोप नहीं होता; ऐसा ऋषियोंने कहा है; किन्तु क्षत्रिय और वैश्य ब्रह्मचारीके लिये यह विधि नही है ❀ ॥ १८९—१९० ॥

हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ। उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशत् ॥ १९४ ॥
नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ। गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥ १९८ ॥
गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु कटेषु च। आसीत गुरुणा सार्धं शिलाफलकनौषु च ॥ २०४ ॥

ब्रह्मचारी सदा गुरुके निकट उसके भोजनके अन्नसे हीन अन्न खावे उससे हीन वस्त्र पहने; ✠ उससे पहले जागे और पीछे सोवे॥ १९४ ॥ सदा गुरुके समीप अपना आसन गुरुके आसनसे नीचे रक्खे; गुरुके सामने यथेच्छ हाथ, गोड फैलाकर नही बैठे ॥ १९८ ॥ बैल, घोडे तथा ऊंटकी सवारीपर, कोठेपर, पत्थरपर; चटाईपर, पत्थरके आसनपर तथा नावमें शिष्य गुरुके साथ बैठे ॥ २०४ ॥

गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत्। न चानिसृष्टो गुरुणा स्वान्गुरूनभिवादयेत् ॥ २०५ ॥
विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्तिः स्वयोनिषु। प्रतिषेधत्सु चाधर्मान्हितं चोपदिशत्स्वपि ॥ २०६ ॥
श्रेयःसु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत्। गुरुपुत्रेषु चार्येषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥ २०७ ॥

शिष्यको उचित है कि अपने गुरुका गुरु आवे तो उसके साथ गुरुके समान व्यवहार करे, गुरुके समीप रहनेपर विना उसकी आज्ञाके पिता आदि गुरुजनोंको प्रणाम नही करे ॥ २०५ ॥ उपाध्याय पिता आदि स्वजन, अधर्मसे निवृत्ति करनेवाले धर्म तत्त्वका उपदेश करनेवाले विद्या तथा तपमें श्रेष्ठ गुरु पुत्र, और गुरुके पिता आदि सम्बन्धियोंको गुरुके समान जाने ॥ २०६–२०७ ॥

बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि। अध्यापयन्गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति ॥ २०८ ॥
उत्सादनं च गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने। न कुर्याद् गुरुपुत्रस्य पादयोश्चावनेजनम् ॥ २०९ ॥
गुरुवत्प्रतिपूज्याः स्युः सवर्णा गुरुयोषितः। असवर्णास्तु सम्पूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥२१० ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय। ब्रह्मचारीको उचित है कि अपनी वृत्तिके लिये अनिन्दित ब्राह्मणोंके घरसे भिक्षा मांग लावे ॥ २९ ॥ भिक्षा मांगनेके समय ब्राह्मण ब्रह्मचारी कहे कि "भवति भिक्षां देहि" क्षत्रियब्रह्मचारी कहे कि "भिक्षां भवति देहि" और वैश्य ब्रह्मचारी कहे कि "भिक्षां देहि भवति" ॥ ३० ॥ ब्रह्मचारी भिक्षा लाकर अग्निहोत्र करके गुरुकी आज्ञा पाकर आचमन-पूर्वक मौन होकर भोजन करे अन्नकी निन्दा नहीं करे ॥ ३१ ॥ विना आपत्कालके एकका अन्न नही खावे; ब्राह्मण ब्रह्मचारी अपने व्रतकी रक्षा करतेहुए श्राद्धमें यथेच्छ भोजन करे ॥ ३२ ॥ विष्णुस्मृति–१ अध्याय। ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यव्रतके आरम्भसे समाप्तितक नित्य द्विजातियोंके घरसे भिक्षा मांगलावे, उसको गुरुको अर्पण करके गुरुकी आज्ञासे भोजन करे ॥ २१–२२ ॥ सायंकालकी सन्ध्या करके ८ सौ गायत्री जपे और सायंकालके भोजनके लिये फिर उसी प्रकारसे भिक्षाटन करे ॥ २३ ॥ हारीतस्मृति–३ अध्याय–७ श्लोक। ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय होकर सायंकाल और प्रातःकाल भोजनके निमित्त भिक्षाके लिये जावे। उशनस्मृति–१ अध्याय—५९ श्लोक। नित्य भिक्षाके अन्न भोजन करनेवाले ब्रह्मचारीका काम नाश होजाता है; ब्रह्मचारीके लिये भिक्षाकी वृत्ति उपवासके समान है। संवर्तस्मृति। ब्रह्मचारी सदा सायंकाल और प्रातःकाल भिक्षा मांग लावे और गुरुको निवेदन करके उनकी आज्ञा होनेपर पूर्व मुखसे बैठकर मौन हो भोजन करे ॥ ११ ॥ द्विजातियोंके लिये सायंकाल और प्रातःकाल भोजन करनेको वेदमें कहा गया है इस लिये अग्निहोत्रीको तीसरीवार नहीं खाना चाहिये ॥ १२ ॥ गौतमस्मृति–१ अध्याय–१५ अंक। ब्रह्मचारीको उचित है कि दोषी और पतित मनुष्यको छोडकर न्यायपूर्वक धन उपार्जन करनेवाले सब वर्णके घरसे भिक्षा मांग लावे। वसिष्ठस्मृति–७ अध्याय–७ अंक। ब्रह्मचारी अपनी वाणीको वशमें रक्खे, चौथे छठे अथवा आठवें मुहूर्तमें भिक्षाका अन्न भोजन करे। व्यासस्मृति—१ अध्यायके ३२–३३ श्लोक। ब्रह्मचारी आपत्कालमें भी भिक्षान्नको छोड़कर द्रव्यआदि नहीं लेवे, अनिन्द्यमनुष्यके निमन्त्रण देनेपर गुरुकी आज्ञा होनेसे श्राद्धमें भोजन करे, यदि ब्रह्मचर्यव्रतके नियममें बाधा नहीं होवे तो एकगृहस्थका अन्न खाकर भी मार्जनादि करके गुरुकी सेवा किया करे।

✠ गौतमस्मृति–३ अध्यायके ७–८ अङ्क। ब्रह्मचारी कौपीन और ओढनेका वस्त्र धारण करे; किसी आचार्यका मत है कि हीन वस्त्रको, जो धोबीका धोआ हुआ नहीं होवे, धारण करे।

अभ्यञ्जनं स्नापनं च गात्रोत्सादनमेव च। गुरुपत्न्यां न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ॥ २११ ॥
गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः। पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता॥ २१२ ॥

गुरुका पुत्र छोटा हो अथवा समानअवस्थाका हो किम्वा यज्ञ कर्मोंमें शिष्य ही होवे, यदि वह वेद पढ़ानेवाला होय तो गुरुके समान उसका आदर करे; किन्तु गुरुके समान उसके शरीरमें उबटन लगाना, उसको स्नान कराना, उसका जूठा खाना तथा उसका पांव धोना उचित नहीं है ॥ २०८—२०९ ॥ गुरुकी सवर्णा स्त्रीको गुरुकी भांति पूजे; किन्तु असवर्णा स्त्रीको केवल उठकर प्रणाम करके सम्मान करे ॥ २१० ॥ गुरुकी पत्नीके शरीरमें तेल लगाना, उसको स्नान कराना, उसकी देह मर्दन करना और उसका केश झाड़ना उचित नहीं है ॥ २११ ॥ गुण दोषको जाननेवाला २० वर्षका युवा शिष्य तरुणी गुरुपत्नीका पांव छूकर प्रणाम नहीं करे ॥ २१२ ॥

मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथ वा स्याच्छिखाजटः। नैनं ग्रामेऽभिनिम्लोचेत्सूर्यो नाभ्युदियात्कचित्॥

ब्रह्मचारी सिर मुण्डाते होवे वा जटा धारी होवे अथवा शिखाधारी होवे वह सूर्यास्तके समय अथवा सूर्योदयके समय कदापि बस्तीआदिमें नहीं सोवे ॥ २१९ ॥

तं चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामचारतः। निम्लोचेद्वाप्यविज्ञानाज्जपन्नुपवसेद्दिनम् ॥ २२० ॥
यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किञ्चित्समाचरेत्। तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वास्य रमेन्मनः ॥ २२३ ॥

यदि वह इन समयोंमें शयन कियेहुए रहजावे तो दिन भर उपवास करके गायत्री जपे ॥ २२० ॥ यदि स्त्री अथवा शूद्र भी कुछ कल्याणका अनुष्ठान करें तो ब्रह्मचारी सावधान होकर उसका अनुकरण करे अथवा शास्त्रके अनुकूल मनकी रुचिके अनुसार कार्य करे ॥ २२३ ॥

अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते। अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः ॥ २४१ ॥
नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यो वासमात्यन्तिकं वसेत्। ब्राह्मणे चाननूचाने कांक्षन्गतिमनुत्तमाम् ॥२४२॥

ब्रह्मचारीको उचित है कि आपत्कालमें अब्राह्मण अर्थात् क्षत्रिय अथवा वैश्य गुरुसे वेदाध्ययन करै और जबतक पढ़े तबतक उसका अनुगमन और शुश्रूषा करतेरहे ॥ २४१ ॥ उत्तम गतिको चाहनेवाला ब्रह्मचारी क्षत्रिय आदि गुरु अथवा अध्यापन आचारसे हीन ब्राह्मण गुरुके घरमें जन्मभर वास नहीं करै॥२४२॥

यदि त्वात्यन्तिकं वासं रोचयेत गुरोः कुले। युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात् ॥ २४३ ॥
आसमाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम्। स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्रह्मणः सद्मशाश्वतम्॥ २४४॥

जो ब्रह्मचारी नैष्ठिकरूपसे जन्मपर्यन्त गुरुके गृहमें वसनेकी इच्छा करताहै उसको देहान्त होनेतक गुरुके गृहमें वसकर गुरुकी सेवा आदि करना चाहिये ॥ २४३ ॥ जो ब्रह्मचारी शरीरान्त होनेतक गुरुकी सेवा करताहै वह मरनेपर ब्रह्ममें लीन होजाताहै ॥ २४४ ॥

न पूर्वं गुरवे किञ्चिदुपकुर्वीत धर्मवित्। स्नास्यंस्तु गुरुणाज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत् ॥ २४५ ॥
क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रोपानहमासनम्। धान्यं शाकं च वासांसि गुरवे प्रीतिमावहेत् ॥ २४६ ॥
आचार्ये तु खलु प्रेते गुरुपुत्रे गुणान्विते। गुरुदारे सपिण्डे वा गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ॥ २४७ ॥
एतेष्वविद्यमानेषु स्नानासनविहारवान्। प्रयुञ्जानोऽग्निशुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः ॥ २४८ ॥
एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविप्लुतः। स गच्छत्युत्तमस्थानं न चेह जायते पुनः ॥ २४९ ॥

गौतमस्मृति—२ अध्यायके ११-१२ अङ्क। शिष्य गुरुकी पत्नी और गुरुके पुत्रके साथ गुरुके समान व्यवहार करे किन्तु उनका जठा भोजन नहीं करे, उनको स्नान नहीं करावे, उनका शृङ्गार नहीं करे, चरण नहीं धोवे, उनको उबटना नहीं लगावे तथा उनका शरीर नहीं दबावे। बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-२ अध्यायके ३४-३६ अङ्कमें भी प्रायः ऐसा है।

गौतमस्मृति-६ अध्याय-११ अङ्क। ब्रह्मचारी शिरका सब बाल मुण्डायाकरे अथवा केवल शिखा रक्खे जीवहिंसा नहीं करे। कात्यायनस्मृति-२५ खण्ड-१४ श्लोक। ब्रह्मचारी समावर्त्तनतक शिखासहित मुण्डन करावे; किन्तु नैष्ठिक ब्रह्मचारीके लिये यह नियम नहीं है। वसिष्ठस्मृति-७ अध्याय-८ श्लोक। ब्रह्मचारी जटा धारण करे वा केवल शिखा रक्खे। गोभिलस्मृति-३ प्रपाठकके ८९-९० श्लोक। ब्रह्मचारी समावर्त्तनतक शिखासहित मुण्डन करावे; किन्तु गौतमका मत है कि औदनिकव्रतसे पहिले १ वर्ष या ६ मासतक मुण्डन नहीं करावे।

बौधायनस्मृति—१ प्रश्न-२ अध्यायके ४०-४२ अङ्क। ब्रह्मचारी आपत्कालमें क्षत्रिय अथवा वैश्यसे वेदाध्ययन करे और जबतक पढ़े तबतक उसकी शुश्रूषा और अनुगमन करे; ये दोनों काम उसको पवित्र करतेहैं। गौतमस्मृति-७ अध्याय-१ अङ्क। ब्राह्मणको चाहिये कि आपत्कालमें जब ब्राह्मण अध्यापक नहीं मिले तब क्षत्रिय अथवा वैश्यसे वेदादि पढ़े और पढ़नेके समय उसका अनुगमन और शुश्रूषा करे; किन्तु विद्या समाप्त होजानेपर ब्राह्मण ही श्रेष्ठ समझा जायगा।

धर्म जाननेवाले ब्रह्मचारीको उचित है कि व्रत समाप्तिके पहिले गुरुको कुछ धन दक्षिणा नहीं देवे; किन्तु अपने घर जानेके समय व्रतसमाप्तिके स्नान करनेपर अपनी शक्तिके अनुसार भूमि, सोना, गौ, घोड़ा, छाता, जूता, आसन, अन्न, शाक और वस्त्रादि गुरुदक्षिणा देकर गुरुको प्रसन्न करे ❀ ॥ २४५–२४६ ॥ नैष्ठिक ब्रह्मचारीको चाहिये कि गुरुके मरजानेपर गुणवान्-गुरुपुत्र, गुरुपत्नी तथा गुरुके सपिण्डोंसे गुरुके समान वर्ताव करे इनके नहीं रहनेपर गुरुके स्थानपर नियत होकर होम आदिसे गुरुके अग्निकी सेवा करते-हुए अपनी आयुका शेष दिन बितावे ॥ २४७–२४८ ॥ जो ब्राह्मण ऐसा अखण्ड ब्रह्मचर्य करता है वह उत्तम स्थानमें, जहां जानेसे फिर जन्म लेना नहीं पड़ता, जाताहै ◎ ॥ २४९ ॥

३ अध्याय।

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम्। तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥ १ ॥
वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्। अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥ २ ॥

ब्रह्मचारी ३६ वर्ष, १८ वर्ष अथवा ९ वर्ष तक अथवा जितने समयमें तीनों वेदोंका अर्थ जानलेवे उतने समयतक ब्रह्मचर्यव्रत करतेहुए गुरुके घरमें रहैं अथवा क्रमसे तीनों वेदोंकी शाखाओंको वा दो वेदोंकी शाखाओंको अथवा एक वेदकी शाखाको मन्त्र ब्राह्मणके क्रमसे पढ़कर अस्खलित ब्रह्मचर्य अवस्थामें गृहस्थाश्रममें जावे ※ ॥१–२ ॥

५ अध्याय।

आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात्। समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ ८८ ॥

व्रतसे आदेशवाला ब्रह्मचारी व्रतकी समाप्तितक उदकदान नहीं करे; किन्तु व्रत समाप्त होनेपर प्रेतोदक दान करके ३ रात अशौच मानकर शुद्ध होवे ॥ ८८ ॥

❀ लघुआश्वलायनस्मृति–१४ गोदानादित्रय प्रकरणके ६--८ श्लोक। स्नातक इस प्रकार (कर्म) करके समावर्तन करे; प्रति वार "प्रमाग्ने" मन्त्रको पढ़कर १० समिधाका होम करे; चरण स्पर्श करके गुरुको नमस्कारकरे और गुरु दक्षिणा देवे और "न नक्तम्" मन्त्रको पढ़ गुरुसे आज्ञा लेकर और स्विष्टकृत् आहुति करके होमका शेषकर्म समाप्त करे; तब विवाहके लिये गुरुसे आज्ञा लेवे; गुरु उसकी मेखला खोलदेवे।

◎ याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्यायके ४९--५० श्लोकमें हारीतस्मृति--३ अध्यायके १४--१६ श्लोकमें और गौतमस्मृति---३ अध्यायके २–३ अङ्कमें प्राय: ऐसा है।

※ याज्ञवल्क्यस्मृति--१ अध्याय--३६ श्लोक। प्रत्येक वेद पढनेमें १२ वर्ष अथवा ५ वर्ष या जबतक सब वेद पढ़लेवे तबतक ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यव्रत धारण करे और सोलहवें वर्ष केशान्त संस्कार करावे। मनुस्मृति--२ अध्याय--६५ श्लोक। (गर्भसे) १६ वें वर्ष ब्राह्मण, २२ वें वर्ष क्षत्रिय और २४ वें वर्ष वैश्य केशान्तसंस्कार करावे। गौतमस्मृति--२ अध्याय २१ अङ्क। ब्रह्मचारी प्रत्येक वेद पढ़नेमें १२ वर्ष व्यतीत करे; प्रत्येक १२ वर्षमें ब्रह्मचर्य धारण करे; अथवा जबतक सब वेदोंको पढ़लेवे तबतक ब्रह्मचारी रहे। वृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र----४ अध्याय--६३ श्लोक। प्रतिवेद पढनेमें १२ वर्ष अथवा ६ वर्ष ब्रह्मचर्यव्रत धारण करे; पश्चात् गुरुको गुरुदक्षिणा देकर व्रत समाप्त करे। मानवगृह्यसूत्र--१ पुरुष–२ खण्ड,---६–७ अङ्क। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य ब्रह्मचारी शिरका बाल मुण्डातेहुए अथवा शिखा और जटा धारण कियेहुए या सब जटा रक्खे हुए १२, २४; ३६ अथवा ४८ वर्षतक ब्रह्मचर्य धर्म पालन करके समावर्तन स्नान करताहै वह जो जो मनमें चाहताहै उनको प्राप्त करताहै और उसका पढना सुफल होताहै। तथा ११—१८ अङ्क समावर्तनके समय ब्रह्मचारी "आपोहिष्ठा" इत्यादि तीन मन्त्रोंसे तथा "हिरण्यवर्णाः शुचयः" इत्यादि दो मन्त्रोंसे जलमें स्नान करके नये दो वस्त्रोंको अर्थात् एक धोती और एक ऊपरना धारण करे "वस्त्र्यसि वसुमन्तं मा कुरु सौवर्चसाय तेजसे ब्रह्मवर्चसाय परिद मि" इस मन्त्रसे वस्त्र धारण करे ॥ १२ ॥ फिर "यथा द्यौश्च पृथिवी च न विभीतो नरिष्यतः। एवं मे प्राणमाविभ एवं मे प्राण-मारिषः" इस मन्त्रसे दोनों आंखोंमें अञ्जन लगावे ॥ १३ ॥ सोनेके कुण्डल और अन्य आभूषण पहने ॥ ॥ १४ ॥ फिर छाता, बांसकी छडी, फूलमाला और चन्दनआदि सुगन्ध धारण करे ॥ १५ ॥ फिर "प्रतिष्ठेस्थो दैवते द्यावापृथिवीमामासन्तात्प्तम्" मन्त्र पढकर नये जूते पहने ॥ १६ ॥ इसके पश्चात् सदा दो वस्त्र धारण करे; श्रुतिमें लिखाहै कि स्नातक गृहस्थ शुद्ध निर्मलवस्त्र धारण करे ॥ १७ ॥ यदि पितासे भिन्न गुरुके पास वेद पढ़ विद्वान् लोग हो तो (समावर्तनके पश्चात्) गुरु और गुरुपत्नीसे आज्ञा लेकर पिताके घर ज नैष्ठिक।

आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् । निर्हृत्य तु व्रती प्रेतान्न व्रतेन वियुज्यते ॥ ९१ ॥

अपने आचार्य, उपाध्याय, पिता, माता तथा गुरुकी मृतदेह श्मशानेमें लेजानेसे ब्रह्मचारीका व्रत लोप नहीं होता है ❀ ॥ ९१ ॥

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् । दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसन्ततिम् ॥ १५९॥

अनेक सहस्र कुमार ब्रह्मचारी ब्राह्मण विना सन्तान उत्पन्नकिये ही निज ब्रह्मचर्यके बलसे स्वर्गमें गये हैं ॥ २५९ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय।

दिवा सन्ध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र'उदङ्मुखः । कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥ १६ ॥

गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युद्धृतैर्जलैः । गन्धलेपक्षयकरं कुर्याच्छौचमतन्द्रितः ॥ १७ ॥

अन्तर्जानुः शुचौ देशे उपविष्ट उदङ्मुखः । प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥ १८ ॥

कनिष्ठादेशिन्यंगुष्ठमूलान्यग्रं करस्य च । प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमात् ॥ १९ ॥

त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्य खान्यद्भिः समुपस्पृशेत् । अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिः फेनबुद्बुदैः२०॥

ब्रह्मचारीको उचित है कि दाहने कानपर जनेऊ रखकर उत्तरमुख करके दिनमें और सन्ध्याके समय और दक्षिण ओर मुख करके रातमें विष्ठा तथा मूत्र त्याग करे ॥ १६ ॥ लिङ्गपकड़कर उठके आलस्यको त्यागकर मिट्टी और जलसे ऐसा शौच करे जिससे विष्ठा और मूत्रका गन्ध अथवा लेप कुछ नहीं रहजावे ॥ १७ ॥ जंघाओंके बीचमें हाथ रखकर पवित्र स्थानमें उत्तर अथवा पूर्व मुखसे बैठे और सदैव ब्रह्मतीर्थसे आचमन करे ॥ १८ ॥ कनिष्ठिकाके मूल भागको प्रजापति तीर्थ, तर्जनीके मूल भागको पितृतीर्थ, अंगूठेके मूल भागको ब्रह्मतीर्थ और करतलके अग्रभागको देवतीर्थ कहतेहैं ॥ १९ ॥ ब्रह्मचारी ब्रह्मतीर्थसे ३ बार जल पीवे और दो बार मुख धोकर फेने तथा बुलबुले रहित निर्मल जलसे नाक, कान आदि ऊपरके छिद्रोंका स्पर्श करे ॥ २० ॥

हृत्कण्ठतालुगाभिस्तु यथासंख्यं द्विजातयः । शुद्ध्येरन्स्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरन्ततः ॥ २१ ॥

स्नानमब्दैवतैर्मन्त्रैर्मार्जनं प्राणसंयमः । सूर्यस्य चाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहं जपः ॥ २२ ॥

गायत्रीं शिरसा सार्द्धं जपेद्व्याहृतिपूर्विकाम् । प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिरयं प्राणसंयमः ॥ २३ ॥

प्राणानायम्य संप्रोक्ष्य तृचेनाब्दैवतेन तु । जपन्नासीत सावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात् ॥ २४ ॥

सन्ध्यां प्राक्प्रातरेवं हि तिष्ठेदासूर्यदर्शनात् । अग्निकार्यं ततः कुर्यात्सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥ २५ ॥

ततोऽभिवादयेद्वृद्धानसावहमिति ब्रुवन् । गुरुञ्चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः ॥ २६ ॥

हृदयमें जल जानेसे ब्राह्मण, कण्ठमें जल जानेसे क्षत्रिय तालूतक जल जानेसे वैश्य तथा ओंठमें जल स्पर्श करनेसे स्त्री और शूद्र शुद्ध होतेहैं ॥ २१ ॥ ब्रह्मचारीको चाहिये कि प्रतिदिन स्नान, वेद मन्त्रोंसे मार्जन, प्राणायाम, सूर्यकी स्तुति और गायत्रीका जप करे ॥ २२ ॥ शिरोमन्त्र और महाव्याहृतिमें प्रणव जोडके श्वांस रोककर ३ बार गायत्रीको जपे तो एक प्रांणायाम होताहै ॥ २३ ॥ प्रणायाम करके मार्जनके मन्त्रसे शिरपर जल छिडके, सन्ध्यासमयमें जबतक तारोंका दर्शन नहीं होवे तबतक बैठकर गायत्रीका जप करे ॥ २४ ॥ इसीप्रकारसे प्रातःकालमें सूर्यके उदयतक खड़े होकर जप करे और दोनों सन्ध्याओंमें होम करे ✤ ॥ २५ ॥ तब अपना नाम सुनाकर वृद्धोंको प्रणाम करे और स्वस्थ, चित्त होकर पढनेके लिये गुरुके समीप जावे ॥ २६ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-६ अध्याय-१५ श्लोक । आचार्य, पिता, माता और उपाध्यायका मृतशरीर श्मशानमें लेजानेसे ब्रह्मचारीका व्रत भङ्ग नहीं होता, किन्तु वह अशौचका अन्न भोजन और अशौची-के साथ निवास न करे । लघुहारीतस्मृति-९२ श्लोकमें ९१ श्लोकके समान है और ९३-९४ श्लोकमें है कि माता पिताके मरनेपर ब्रह्मचारी उनको पिण्ड तथा जल देवे, उससे उसको अशौच नहीं लगता अग्निकार्य तथा अध्ययन आदि कम करनेमें बाधा नहीं होती है । बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-१ अध्याय, २९ अंक। ब्रह्मचारी यदि मुर्देका कर्म करे तो फिरसे अपना संस्कार करावे, किन्तु माता पिता अथवा आचार्यका सब कर्म करनेपर नहीं । कात्यायनस्मृति-२४ खण्डके ५-६ श्लोक और गोभिलस्मृति-३ प्रपाठकके ६४—६५ श्लोक ब्रह्मचर्य्य और यज्ञ अथवा कृच्छ्र आदि व्रतमें दीक्षित मनुष्यको अशौचमें अपने कर्मको नहीं छोड़ना चाहिये, पिताके मरजानेपर भी इनको अशौच नहीं लगता है अथवा ब्रह्मचा-रीको ब्रह्मचर्यव्रत समाप्त होनेपर ३ दिन अशौच मानना चाहिये ।

✤ मनुस्मृति-२ अध्याय-१०१ श्लोक, संवर्तस्मृति-६—७ श्लोक और गौतमस्मृति-२ अध्याय-५ अंकमें दोनों सन्ध्या करनेको प्रायः ऐसाही लिखा है ।

आहूतश्चाप्यधीयीत लब्धं तस्मै निवेदयेत् । हितं तस्याचरेन्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ २७ ॥

गुरुके बुलानेपर ही पढ़े; जो कुछ मिले सो गुरुको देवे और मन, वचन तथा कर्मसे सदा गुरुके हितमें तत्पर रहै ॥ २७ ॥

मधुना पयसा चैव सदेवांस्तर्पयेद्द्विजः । पितॄन्मधुघृताभ्यां च ऋचोधीते च योन्वहम् ॥ ४१ ॥
यजूंषि शक्तितोधीते योन्वहं स घृतामृतैः । प्रीणाति देवानाज्येन मधुना च पितॄंस्तथा ॥ ४२ ॥
स तु सोमघृतैर्देवांस्त र्पयेद्योन्वहं पठेत् । सामानि तृप्तिं कुर्याच्च पितॄणां मधुसर्पिषा ॥ ४३ ॥
मेदसा तर्पयेद्देवानथर्वांगिरसः पठन् । पितॄंश्च मधुसर्पिभ्यामन्वहं शक्तितो द्विजः ॥ ४४ ॥
वाकोवाक्यं पुराणं च नाराशंसीश्च गाथिकाः । इतिहासांस्तथा विद्याः शक्त्याधीते हि योन्वहम् ॥४५॥
मांसक्षीरौदनमधुतर्पणं स दिवौकसाम् । करोति तृप्तिं कुर्याच्च पितॄणां मधुसर्पिषा ॥ ४६ ॥

जो द्विज प्रतिदिन ऋग्वेदको पढताहै वह मधु और दूधसे देवताओंको और मधु और घृतसे पितरोंको तृप्तकरता है ॥ ४१ ॥ जो द्विज अपनी शक्तिके अनुसार नित्यही यजुर्वेदको पढताहै वह घृत और अमृतसे देवताओंको और घृत और मधुसे पितरोंको तृप्त करताहै ॥ ४२ ॥ जो द्विज प्रतिदिन सामवेदको पढ़ता है वह सोमरस और घृतसे देवताओंको और मधु और घीसे पितरोंको तृप्त करता है ॥ ४३ ॥ जो द्विज प्रतिदिन अपनी शक्तिके अनुसार अथर्वण वेदको पढ़ता है वह मज्जासे देवताओंको और मधु और घीसे पितरोंको तृप्त करता है ॥ ४४ ॥ जो द्विज प्रश्नोत्तररूप वेदके वाक्य, पुराण, नाराशंसी मन्त्र, यज्ञगाथा आदि गाथा इतिहास, और वारुणि आदि विद्याको अपनी शक्तिके अनुसार पढ़ताहै वह मांस, दूध, भात और मधुसे देवताओंको और मधु और घीसे पितरोंको तृप्त करताहै ※ ॥ ४५—४६ ॥

ते तृप्तास्तर्पयन्त्येनं सर्वकामफलैः शुभैः । यं यं क्रतुमधीतेसौ तस्य तस्याप्नुयात्फलम् ॥ ४७ ॥

पितर और देवता तृप्त होकर उस द्विजकी सब कामना पूरी करतेहै और जो जिस जिस यज्ञके वेदका पढता है वह उस उसका फल पाता है ॥ ४७ ॥

(४) विष्णुस्मृति–१ अध्याय।

वेदस्वीकरणे दृष्टो गुर्वधीनो गुरोर्हितः । निष्ठां तत्रैव यो गच्छेन्नैष्ठिकस्स उदाहृतः ॥ २४ ॥
अनेन विधिना सम्यक्कृत्वा वेदमधीत्य च । गृहस्थधर्ममाकांक्षन्गुरुगेहादुपागतः ॥ २५ ॥
अनेनैव विधानेन कुर्याद्दारपरिग्रहम् । कुले महति संभूतां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ २६ ॥
परिणीय तु षण्मासं वत्सरं वा न संविशेत् । औदुंबरायणो नाम ब्रह्मचारी गृहेगृहे ॥ २७ ॥

जो ब्रह्मचारी प्रसन्नमनसे वेद पढतेहुए गुरुके आधीन रहकर गुरुके हितकारी कार्योंको करतेहुए मरण पर्यन्त गुरुके घरमें निवास करताहै वह "नैष्ठिकब्रह्मचारी" कहा जाताहै ⊙ ॥ २४ ॥ जो इसीप्रकारसे ब्रह्मचर्यव्रत समाप्त करके अपने घर आकर शास्त्रोक्त विधिसे महान् कुलमें जन्मीहुई अपनी जातिकी सुलक्षणा स्त्रीसे विवाह करताहै और विवाहके पश्चात् ६ मास अथवा १ वर्षतक अपनी भार्यासे प्रसङ्ग नहीं करता उसको औदुंबरायण कहतेहै ॥ २५–२७ ॥

(५) हारीतस्मृति–३ अध्याय।

अभिवाद्य गुरोः पादौ सन्ध्याकर्मावसानतः । तथा योगं प्रकुर्वीत मातापित्रोश्च भक्तितः ॥ १० ॥
एतेषु त्रिषु नष्टेषु नष्टाः स्युः सर्वदेवताः । एतेषां शासने तिष्ठेद्ब्रह्मचारी विमत्सरः ॥ ११ ॥

※ मानवगृह्यसूत्र–१ पुरुष–१ खण्ड,—३ अंक। ब्रह्मचारीको जो कुछ प्राप्त होवे वह सब गुरुको समर्पण करे, यदि कई गुरु हों तो जिसके समीप रहता हो उसको देवे।

※ विष्णुस्मृति–१ अध्याय–२१ श्लोक। ब्रह्मचारी जिस जिस ग्रन्थको पढ़े उसी उसी ग्रन्थका व्रत करे।

⊙ व्याससमृति–१ अध्यायके ४० श्लोकमें भी ऐसा है; ४१ श्लोकमें है कि जो २६ वर्षकी अवस्थाका द्विज केशान्त संस्कारतक यथोक्त ब्रह्मचर्यव्रत रखताहै वह उपकुर्वाणक कहलाताहै और ४२ श्लोकमें है कि जो द्विज सम्पूर्ण वेद दो वेद अथवा एक पदको समाप्तकरके गुरुकी आज्ञासे समावर्तन स्नान करके गुरुकी दक्षिणा देकर अपने घर जाताहै उसको प्रवृत्त कहतेहैं। दक्षस्मृति–१ अध्यायके ८ श्लोकमें है कि विद्वान् लोग कहतेहैं कि शास्त्रमें दो प्रकारके ब्रह्मचारी कहेगयेहैं; एक "उपकुर्वाणक" और दूसरा नैष्ठिक।

ब्रह्मचारीको उचित है कि सन्ध्याकर्मके अन्तमें गुरुके चरणोंको नमस्कार करके भक्तिपूर्वक माता, पिताका दर्शन करे ॥ १० ॥ जो ब्रह्मचारी गुरु, माता और पितासे विमुख रहताहै उसपर सब देवता अप्रसन्न होतेहैं इसलिये ब्रह्मचारी ईर्षा त्यागकर इनकी आज्ञामें रहे ॥ ११ ॥

(३) अत्रिस्मृति।

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् । पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वा ह्यनृणी भवेत् ॥ ९ ॥
एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिमन्यते । शुनां योनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥ १० ॥

पृथ्वीमें इतना द्रव्य नहीं है जिसको देकर शिष्य एक अक्षर भी पढानेवाले गुरुसे अऋणी होसके ॥ ९ ॥ जो शिष्य एक अक्षर भी पढ़ानेवालेको गुरु नहीं मानताहै वह सौ जन्मतक कुत्तेकी योनिमें जाकर चाण्डालके घर जन्म लेताहै ॥ १० ॥

(६ क) उशनस्मृति--३ अध्याय।

योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजः । स वै मूढो न सम्भाष्यो वेदबाह्यो द्विजातिभिः ॥८०॥
न वेदपाठमात्रेण सन्तुष्टो वै द्विजोत्तमः । पाठमात्रावसानस्तु पङ्के गौरिव सीदति ॥ ८१ ॥
योऽधीत्य विधिवद्वेदं वेदान्तं न विचारयेत् । स सान्वयः शूद्रकल्पः स पाद्यं न प्रपद्यते ॥ ८२ ॥

जो द्विज वेद नहीं पढ़कर अन्य ग्रन्थ पढनेका यत्न करताहै वह वेदबाह्य और मूढ है तथा द्विजगणोंके सम्भाषण करने योग्य नहीं है ❀ ॥ ८० ॥ ब्राह्मणको केवल वेदपाठसे सन्तुष्ट नहीं होना चाहिये, क्योंकि विना विचारका केवल वेदपाठ करनेसे वह अन्तमें गौके पंकमें फँसनेके समान दुःखी होताहै ॥ ८१ ॥ जो द्विज विधिपूर्वक वेद पढकर वेदान्तका विचार नहीं करता वह अपने पुत्र, पौत्रादिकोंके साथ शूद्र होजाताहै और पादप्रक्षालन करने तथा परमपद जानेयोग्य नहीं है ॥ ८२ ॥

(११) कात्यायनस्मृति–२५ खण्ड।

ब्रह्मचारी समादिष्टो गुरुणा व्रतकर्मणि । वाढमोमिति वा ब्रूयात्तथैवानुपपालयेत् ॥ १३ ॥

ब्रह्मचारीका धर्म है कि गुरु जिस व्रतके कर्ममें जो आज्ञा देवे उसको सत्य है अथवा अङ्गीकार है, ऐसा कहै और उसका प्रतिपालन करे ॥ १३ ॥

(१३) पाराशरस्मृति–१ अध्याय।

यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ । तयोरन्नमदत्त्वा च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ५१ ॥

संन्यासी और ब्रह्मचारी; ये दोनों पकेहुए अन्नके अधिकारी हैं; इनके आनेपर जो गृहस्थ इनको विना दियेहुए भोजन करताहै वह चान्द्रायणव्रत करनेपर शुद्ध होताहै ॥ ५१ ॥

(१४) व्यासस्मृति–१ अध्याय।

शौचाचारविचारार्थं धर्मशास्त्रमपि द्विजः । पठेत गुरुतः सम्यक्कर्म तद्दिष्टमाचरेत् ॥ २५ ॥
नापक्षिप्तोऽपि भाषेत नाव्रजेत्ताडितोपि वा ॥ २७ ॥

शौच और आचारके जाननेके लिये ब्रह्मचारी गुरुसे धर्मशास्त्र भी पढ़े और सावधानीसे उसमें लिखेहुए कर्मको करे ॥ २५ ॥ गुरुके अनादर करनेपरभी उनका उत्तर नहीं देवे और उनके ताड़ना करनेपर भी वहांसे नहीं जावे ॥ २७ ॥

(१५) शङ्खस्मृति–५ अध्याय।

न स्नानेन न मौनेन नैवाग्निपरिचर्यया । ब्रह्मचारी दिवं याति संयाति गुरुपूजनात् ॥ १० ॥

स्नान, मौनव्रत और अग्निकी सेवा करनेसे ब्रह्मचारी स्वर्गमें नहीं जाताहै; किन्तु गुरुकी पूजा करनेसे जाताहै ॥ १० ॥

(१७) दक्षस्मृति–१ अध्याय।

मेखलाजिनदण्डैश्च ब्रह्मचारीति लक्ष्यते ॥ १३ ॥

मेखला, मृगछाला और दण्डधारण; इन चिह्नोंसे ब्रह्मचारी पहचाने जातेहैं ॥ १३ ॥

❀ मनुस्मृति--२ अध्याय-१६८ श्लोक, वासिष्ठस्मृति--३ अध्याय--३ श्लोक और लघुआश्वलायनस्मृति–२२ वर्णधर्मप्रकरण–२३ श्लोक । जो द्विज वेद नहीं पढ़कर अन्य विद्याओंमें परिश्रम करताहै वह जीवित अवस्थामें ही अपने पुत्रादिकोंके सहित शूद्र बनजाता है।

(२०) वसिष्ठस्मृति–६ अध्याय।

एका लिङ्गे करे तिस्र उभाभ्यां द्वे तु मृत्तिके। पञ्चापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ॥१६॥ एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः। वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥ १७ ॥ अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्तं वानप्रस्थस्य षोडश। द्वात्रिंशच्च गृहस्थस्य अमितं ब्रह्मचारिणः ॥ १८ ॥ अनड्वान्ब्रह्मचारी च आहिताग्निश्च ते त्रयः। भुञ्जाना एव सिद्ध्यन्ति नैषां सिद्धिरनश्नताम् ॥१९॥

मूत्र त्याग करनेपर लिङ्गमें १ बार, बांये हाथमें ३ बार और फिर दोनों हाथोंमें २ बार और विष्ठा त्याग-नेपर गुदामें ५ बार, बांये हाथमें १० बार और फिर दोनों हाथोंमें ७ बार मिट्टी लगाना चाहिये; यह शुद्धि गृहस्थके लिये है; ब्रह्मचारीको इससे दूना, वानप्रस्थको तिगुना और संन्यासीको इससे चौगुना शौच करना चाहिये ✻ ॥ १६–१७ ॥ संन्यासी केवल ८ ग्रास, वानप्रस्थ १६ ग्रास और गृहस्थ ३२ ग्रास (कवल) भोजन करे; ब्रह्मचारीके भोजनके ग्रासका नियम नहींहै; क्योंकि बैल, ब्रह्मचारी और अग्निहोत्रीकी कार्यसिद्धि भोजन करनेसे ही होतीहै; उपवास करनेसे नहीं ▦ ॥ १८–१९ ॥

१३ अध्याय।

ऋत्विगाचार्यावयाजकानध्यापकौ हेयावन्यत्र हानात्पतति ॥ १९ ॥

यदि ऋत्विक् यज्ञ नहीं करावे तो यजमान उसको छोड़देवे और आचार्य नहीं पढ़ावे तो शिष्य उसको त्यागदेवे; जो नहीं छोड़देताहै वह पतित होताहै ॥ १९ ॥

ब्रह्मचारीके लिये निषेध ◎३.

(१) मनुस्मृति–२ अध्याय।

वर्जयेन्मधुमांसं च गन्धं माल्यं रसान्स्त्रियः। शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥१७७॥ अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्। कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम् ॥ १७८ ॥ द्यूतं च जनवादं च परीवादं तथानृतम्। स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ॥ १७९ ॥ एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्। कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥१८०॥

ब्रह्मचारीको उचित है कि मधु और मांस भोजन; सुगन्ध युक्त वस्तुका सेवन; माला आदि धारण; गुड़आदि रसग्रहण; स्त्रीका प्रसङ्ग, कांजी, सिरका आदि खट्टी वस्तुका भोजन और प्राणियोंकी हिंसा करना त्यागदेवे ॥ १७७ ॥ शरीरमें तेल आदि मलना; नेत्रोंमें अञ्जन लगाना; जूता तथा छाता धारण करना; काम, क्रोध, लोभ और नाचना, गाना तथा बजाना छोड़देवे ॥ १७८ ॥ जूआ खेलना, लोगोंके साथ कलह करना, देशकी बातोंकी खोज करना, झूठ बोलना, स्त्रियोंकी ओर दृष्टि करना, उनको आलिङ्गन करना और परकी बुराई करना; इन कार्योंसे अलग रहे ✠ ॥ १७९ ॥ अकेला शयन करे, किसी भांति वीर्यको नहीं गिरावे; क्योंकि कामवश होकर वीर्य गिरानेवाले ब्रह्मचारीका व्रत नष्ट होजाताहै ॥ १८० ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय।

मधुमांसाञ्जनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम्। भास्करालोकनाश्लीलपरिवादांश्च वर्जयेत् ॥ ३३ ॥

ब्रह्मचारीका धर्म है कि मधु तथा मांस खाना, नेत्रोंमें अञ्जन लगाना, जूठा भोजन करना, कांजी आदि खट्टी वस्तु खाना; स्त्रीसे सङ्ग करना, प्राणीकी हिंसा करना, (सांझ सबेरे) सूर्यका दर्शन करना, लज्जा-वाले वचन बोलना और परकी निन्दा करना छोड़देवे ॥ ३३ ॥

✻ लघुआश्वलायनस्मृति—१ आचारप्रकरणके १०–११ श्लोकमें ऐसा ही है। मनुस्मृति–५ अध्यायके १३६–३७ श्लोक और दक्षस्मृति–५ अध्यायके ५–६ श्लोकमें है कि लिङ्गमें १ बार, गुदामें ३ बार, बांये हाथमें १० बार और दोनों हाथोंमें ७ बार मिट्टी लगावे और शङ्खस्मृति–१६ अध्यायके २१–२४ श्लोकमें है कि लिङ्गमें २ बार गुदामें ७ बार बांये हाथमें २० बार और दोनों हाथोंमें १४ बार मिट्टी लगाना चाहिये। दक्षस्मृति और शङ्खस्मृतिमें है कि पगोंमें तीन तीन बार मिट्टी लगावे। सब स्मृतियोंमें है कि इससे दूना ब्रह्मचारी, तिगुना वानप्रस्थ और चौगुना शौच संन्यासीको करना चाहिये।

▦ बौधायनस्मृति—२ प्रश्न–७ अध्यायके ३१–३२ श्लोकमें ऐसा ही है।

◎ प्रायश्चित्तप्रकरणमें ब्रह्मचारीका प्रायश्चित्त देखिये।

✠ उशनस्मृति—३ अध्यायके १६–१८ श्लोक; व्यासस्मृति–१ अध्यायके २७–२९ श्लोक और गौतमस्मृति–२ अध्यायके ६ अङ्कमें भी प्रायः ऐसा है। व्यासस्मृतिमें यह भी है कि ब्रह्मचारी सूर्यका दर्शन (सांझ सबेरे) नहीं करे, दर्पणमें मुख नहीं देखे और वृथा घुमा फिरा नहीं करे।

(६ क) उशनस्मृति-३ अध्याय।

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् । न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषणचेष्टितम् ॥ ५ ॥
नास्य निर्माल्यशयनं पादुकोपानहावपि । आक्रामेदासनं तस्य च्छायामपि कदाचन ॥ ९ ॥
अनन्यदर्शी सततं भवेद्गीतादिनिःस्पृहः । नादर्श चैव वीक्षेत न चरेद्दन्तधावनम् ॥ २० ॥
एकान्तमशुचिः स्त्रीभिः शूद्राद्यैरभिभाषणम् । गुरूच्छिष्टं भेषजार्थं न प्रयुञ्जीत कामतः ॥ २१ ॥
मलापकर्षणं स्नानं नाचरेद्वै कदाचन । न चातिसृष्टो गुरुणा स्वान्गुरूनभिवादयेत् ॥ २२ ॥

ब्रह्मचारी गुरुके परोक्षमें भी विना आचार्य, उपाध्यायआदि उपपद दियेहुए गुरुका केवल नाम नहीं; कहे अर्थात् आचार्यजी आदि उपपदके साथ गुरुका नाम धरे और गुरुके गमन तथा भाषणका अनुकरण नहीं करे ※ ॥ ५ ॥ गुरुके निर्माल्य, शय्या, खडाऊ, जूता, आसन और छायाको कभी नहीं लांघे ॥ ९ ॥ गीत आदिसे अलग रहे; सदा अनन्यदर्शी होवे, दर्पणमें मुख नहीं देखे; दन्तधवन नहीं करे; अति-अपवित्र मनुष्य स्त्री तथा शूद्रआदिसे सम्भाषण नहीं करे; जानकरके औषधके लिये गुरुका जूठा नहीं खावे ॥ २०-२१ ॥ मलापकर्षणस्नान ⊛ कभी नहीं करे, गुरुके घरमें विना गुरुकी आज्ञाके श्रेष्ठ लोगोंको अर्थात् अपने माता पिता आदिको (भी) प्रणाम नहीं करे ॥ २२ ॥

(११) कात्यायनस्मृति-२५ खण्ड।

न गात्रोत्सादनं कुर्यादनापदि कदाचन । जलक्रीडामलङ्कारान्व्रती दण्ड इवाप्लवेत् ॥ १५ ॥

ब्रह्मचारीका धर्म है कि विना आपत्कालके किसीसे अपने शरीरको नहीं दबवावे, जलक्रीड़ा तथा भूषण आदि अलङ्कारको धारण नहीं करे; स्नानकरनेके समय जलाशयमें दण्डके समान गोता लगाकर शीघ्र निकल जावे ▣ ॥ १५ ॥

(१२) पाराशरस्मृति-१ अध्याय।

यतये कांचनं दत्त्वा तांबूलं ब्रह्मचारिणे । चोरेभ्योप्यभयं दत्त्वा दातापि नरकं व्रजेत् ॥ ६० ॥
सन्यासीको द्रव्य, ब्रह्मचारीको पान अथवा चोरको अभयदान देकर दाता भी नरकमें जाता है ॥ ६० ॥

उपाकर्म और अनध्याय ४.

(१) मनुस्मृति-४ अध्याय।

श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाप्युपाकृत्य यथाविधि । युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान्विप्रोऽर्धपञ्चमान् ॥९५॥
पुष्ये तु च्छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजः । माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि ॥ ९६ ॥
यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छन्दसां बहिः । विरमेत् पक्षिणीं रात्रिं तदेवैकमहर्निशम् ॥ ९७ ॥
अत ऊर्ध्वं तु च्छन्दांसि शुक्लेषु नियतः पठेत् । वेदाङ्गानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत् ॥ ९८ ॥
नाविस्पष्टमधीयीत न शूद्रजनसन्निधौ । न निशान्ते परिश्रान्तो ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत् ॥ ९९ ॥
यथोदितेन विधिना नित्यं छन्दस्कृतं पठेत् । ब्रह्मच्छन्दस्कृतं चैव द्विजो युक्तो ह्यनापदि ॥ १०० ॥

ब्राह्मणको उचित है कि सावन अथवा भादोकी पूर्णमासीको यथाविधि "उपाकर्म" कर्म अर्थात् वेदोंका प्रारंभ करके साढ़े चार महीने तक वेदोंको पढ़े ॥ ९५ ॥ उसके पश्चात् जो सावनकी पूर्णिमाको

※ गौतमस्मृति—२ अध्याय-६ अङ्क । आचार्य, आचार्यके, पुत्र, आचार्यकी पत्नी और दीक्षित मनुष्यका नाम लेकर नहीं पुकारना चाहिये।

⊛ शंखस्मृति-८ अध्याय-६ श्लोक । जो स्नान उबटना आदि लगाकर मैल दूर करनेके लिये किया जाता है उसको "मलापकर्षण स्नान" कहतेहैं।

▣ गौतमस्मृति-२ अध्याय-६ अंक । ब्रह्मचारी (अधिक) स्नान नहीं करे, दन्तधावन नहीं करे और दिनमें नहीं सोवे । मानवगृह्यसूत्र-१ पुरुष १ खण्ड-१३-१४ अंक । ब्रह्मचारी जलाशयोंमें इच्छानुसार स्नान नहीं करे; स्नान करे तो दण्डके समान अर्थात् जैसे लाठी पानीमें डुबादेनेसे शीघ्र ऊपर होजाती है तैसे डुबकी लगाकर बाहर निकल जावे।

आरम्भ किया होवे वह पूसके पुष्य नक्षत्रमें और जो भादोंकी पूर्णिमाको आरंभ कियाहो वह मावसुदी एकमको पूर्वाह्णमें गांवके बाहर जाकर होमादिकर्म करके वेदोंका विसर्जन करे ❀ ॥ ९६ ॥ शास्त्रोक्त विधिसे वेदोंका उत्सर्ग अर्थात् विसर्जन करके उस दिन रात और दूसरे दिन दिनभर अथवा उत्सर्गकर्मके ही दिन रात वेद नहीं पढे ॥ ९७ ॥ उत्सर्ग करनेके पश्चात् प्रतिशुक्लपक्षमें एकाग्र भावसे वेदोंका और प्रति कृष्णपक्षमें वेदाङ्गोंका पाठ करे ॥ ९८ ॥ अस्पष्टभावसे, शूद्रके निकट, तथा समूह लोगोंके पास वेद नहीं पढे और रातके अन्तमें वेद पढकर फिर नहीं सोवे ॥ ९९ ॥ यथोक्त विधिसे गायत्री आदि छन्दोंसे युक्त नित्य मन्त्रमात्र पढे; अनापत्कालमें यथाविहित रीतिसे ब्राह्मण और मन्त्रात्मक वेदोंका पाठ करे ॥ १०० ॥

इमान्नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत् । अध्यापनं च कुर्वाणः शिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥१०१॥
कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांसुसमूहने । एतौ वर्षास्वनध्यायावध्यायज्ञाः प्रचक्षते ॥ १०२ ॥
विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च संप्लवे । अकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत् ॥ १०३ ॥
एतांस्त्वभ्युदितान्विद्याद्यदा प्रादुष्कृताग्निषु । तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ॥ १०४ ॥
निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने । एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि ॥ १०५ ॥
प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिःस्वने । सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषे रात्रौ यथा दिवा ॥१०६॥
नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च । धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धे च सर्वदा ॥ १०७ ॥
अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ । अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च ॥१०८॥
उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रस्य विसर्जने । उच्छिष्टः श्राद्धभुक् चैव मनसापि न चिन्तयेत् ॥ १०९ ॥
प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम् । त्र्यहं न कीर्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ॥ ११० ॥
यावदेकानुदिष्टस्य गन्धो लेपश्च तिष्ठति । विप्रस्य विदुषो देहे तावद्ब्रह्म न कीर्त्तयेत् ॥ १११ ॥
शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम् । नाधीयातामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥ ११२॥
नीहारे बाणशब्दे च सन्ध्ययोरेव चोभयोः । अमावास्याचतुर्दश्योः पौर्णिमास्यष्टकासु च ॥११३॥
अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति चतुर्दशी । ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत् ॥११४॥
पांशुवर्षे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा । श्वखरोष्ट्रे च रुवति पङ्क्तौ च न पठेद्द्विजः ॥ ११५ ॥
नाधीयीत श्मशानान्ते ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा । वसित्वा मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ११६॥
प्राणि वा यदि वाऽप्राणि यत्किञ्चिच्छ्राद्धिकं भवेत् । तदालभ्याप्यनध्यायः पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृतः॥
चौरैरुपप्लुते ग्रामे संभ्रमे चाग्निकारिते । अकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च ॥ ११८ ॥
उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षेपणं स्मृतम् । अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु ॥ ११९ ॥
नाधीयीताश्वमारूढो न वृक्षं न च हस्तिनम् । न नावं न खरं नोष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः ॥ १२० ॥
न विवादे न कलहे न सेनायां न सङ्गरे । न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वमित्वा न सूक्तके ॥ १२१ ॥
अतिथिश्चाननुज्ञाप्य मारुते वाति वा भृशम् । रुधिरे च स्रुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते ॥ १२२ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय–१४२–१४३ श्लोक । सावनकी पूर्णिमाको अथवा श्रवण नक्षत्र युक्त दिनमें वा हस्त नक्षत्र युक्त पञ्चमीमें औषधियोंके जमनेपर उपाकर्म करके पूसमासकी रोहिणी नक्षत्र में अथवा पूसवदी ८ को जलके पास गांवसे बाहर उत्सर्ग करना चाहिये । गौतमस्मृति—१६ अध्याय १ अंक । सावन अथवा भादोकी पूर्णमासीको उपाकर्म करके साढ़ेचारमास अथवा दक्षिणायनके पांचमास अथवा दोहीं मास वेदोंको पढे । वसिष्ठस्मृति–१३ अध्यायके १–३ अंक । जिसमें विधिपूर्वक अग्नियोंको स्थापित किया हो उसको उचित है कि सावन अथवा भादोकी पूर्णमासीको अपने सामने अग्नि स्थापित करके आघारादि सामान्य विधिपूर्वक देवताओं, ऋषियों तथा छन्दोंके नामसे प्रधान आहुति कर ब्राह्मणोंको स्वस्तिवाचन कराकर और दधिप्राशन करके उपाकर्म करे और साढेचार वा साढेपांच मास निरन्तर वेदाध्ययन करके उत्सर्गकरे; पश्चात् शुक्लपक्षमें वेदोंको और अपनी इच्छानुसार (दोनों पक्षोंमें) वेदांगोंको पढा करे । लघुआश्वलायनस्मृति–१२ उपाकर्मप्रकरण । गुरुको उचित है कि शिष्योंके सहित सावनमासके श्रवण नक्षत्र अथवा हस्त नक्षत्रमें; यदि सावनमें नहीं होसके तो भादोंमें उपाकर्म करे ॥ १ ॥ यदि इन महीनोंमें उपाकर्मके लिये शुभ ग्रह नहीं होवें तो आषाड़ अथवा शरद ऋतुमें करे ॥ २ ॥ इनके सिवा अन्य समयमें उपाकर्म नहीं करना चाहिये, जो शिष्य (घरजानेपर) विना उपाकर्म कियेहुए कन्यासे विवाह करता है वह पतित होजाता है ॥ ३ ॥

गुरु और शिष्य नीचे लिखेहुए अनध्यायोंमें सदा वेदका पढाना और पढना छोडदेवे ॥ १०१ ॥ वर्षाकालमें रातके समय शब्दयुक्त हवा चलने और दिनमें वायुद्वारा धूल उड़नेके समयको विद्वानलोग अनध्याय कहतेहैं ॥ १०२ ॥ बिजलीके शब्दके सहित वृष्टि और उल्कापात होनेपर दूसरेदिनके उसी समयतक अनध्याय होता है; ऐसा मनुजीने कहा है ॥ १०३ ॥ वर्षाकालमें सन्ध्याके अग्निहोत्रके समय पूर्वोक्त बिजली आदिका उत्पात होनेपर और अन्यऋतुओंमें अग्निहोत्रके समय बादल देख पडनेही पर अनध्याय मानना चाहिये ॥ १०४ ॥ वर्षाके समय आकाशमें शब्द होने, भूमिकम्प होने और चन्द्रमा सूर्य या तारागणोंकी ज्योतिमें उपद्रव होनेपर अकालिक अर्थात् बिनासमयका अनध्याय जानना चाहिये ॥ १०५ ॥ प्रातःकालकी सन्ध्यामें होमकी आग जलानेपर बिजली और मेघका शब्द होवे तो सूर्यास्ततक और सायंकालकी सन्ध्यामें ऐसा होवे तो ताराओंके प्रकाश रहनेतक और बिजली तथा मेघके शब्दके साथ वृष्टि होवे तो दिन रात अनध्याय होताहै ॥ १०६ ॥ धर्मके चाहनेवाले मनुष्योंके लिये गांव, नगर अथवा दुर्गन्धमय स्थानोंमें सदा अनध्याय है ॥ १०७ ॥ बस्तीमें मुरदा रहनेपर, अधर्मीके निकट, रोनेके शब्द होनेपर और बहुत लोगोंके इकट्ठे होनेपर अनध्याय होताहै ॥ १०८ ॥ जलमें, आधीरातके समय, विष्ठामूत्र त्याग करते समय जूठेमुख रहनेके समय और श्राद्धमें भोजनकरनेपर मनसेभी वेदका विचार नहीं करे ॥ १०९ ॥ विद्वान ब्राह्मणको उचित है कि एकोदिष्टश्राद्धमें अर्थात् एक मनुष्यके उद्देशसे किये गये हुए श्राद्धमें भोजन करनेपर, अपने राजाके सूतक होनेपर अथवा ग्रहण लगनेपर ३ दिन तक वेद नहीं पढे ॥ ११० ॥ जबतक एकोदिष्ट श्राद्धके अनुलेपनका गन्ध विद्वान ब्राह्मणके शरीरमें रहे तबतक वह वेद नहीं पढ़े ॥ १११ ॥ लेटकर, पैर, फैलाकर, दोनों जंघाएं बान्धकर, मांस खाकर, अथवा जन्म या मरणके अशौचमें भोजन करके वेदपाठ नहीं करे ॥ ११२ ॥ कुहरेमें, बाणका शब्द होनेपर, दोनों सन्ध्याओंमें, अमावास्या, चतुर्दशी, पूर्णमासी अथवा अष्टमीमें वेद नहीं पढ़ना चाहिये ॥ ११३ ॥ अमावास्यामें पढ़नेसे गुरुका, चतुर्दशीमें पढ़नेसे शिष्यका और पूर्णिमा अथवा अष्टमीमें पढ़नेसे निज वेद विद्याका नाश होताहै, इस लिये इन तिथियोंमें वेद पढ़ना निषेध है ॥११४॥ द्विजको उचित है कि धूली वर्षने, दिशाओंमें दाह होने, सियार, कुत्ते, गदहे अथवा ऊंटके चिल्लानेके समय या पंक्तिमें बैठकर वेद नहीं पढ़े ॥ ११५ ॥ श्मशान या गांवके समीप, गोशालेमें मैथुनके वस्त्र पहनकर अथवा श्राद्धकी कोई वस्तु दान लेकरके वेदपाठ नहीं करे ॥ ११६ ॥ आदिश्राद्धके गौ, घोड़े आदि जीव और वस्त्र निर्जीव वस्तुको दान लेकरके वेद नहीं पढ़े क्योंकि ब्राह्मणका हाथ ही मुख कहा गया है ॥ ११७ ॥ चोरोंके उपद्रवसे गांवके चञ्चल होनेपर, घर जलनेके अथवा अद्भुत उत्पात होनेपर अकालिक अनध्याय जानना चाहिये ॥ ११८ ॥ उपाकर्म और उत्सर्ग कर्मके समाप्त होनेपर ३ राततक और अष्टकाओंमें अर्थात् अगहन, पूस और माघके कृष्ण पक्षकी अष्टमीमें तथा ऋतुओंके अन्तके दिनमें दिनरात वेद नहीं पढ़े ॥ ११९ ॥ घोड़े, वृक्ष, हाथी, नाव, गदहे अथवा ऊंटपर चढ़के; ऊषरभूमि और गाड़ी आदि सवारीमें बैठकर; विवाद, कलह तथा सेनाके समीप संग्राममें तुरंत भोजन, करके; अजीर्ण होनेपर; वमन करनेपर और खट्टी डकार आनेपर वेद नहीं पढ़ना चाहिये ॥ १२०-१२१ ॥ अतिथिके पास उसके बिना अनुमतिके, वेग युक्त हवा चलनेपर, शरीरसे रुधिर बहनेपर अथवा शस्त्रसे घायल होनेपर वेदपाठ नहीं करे ॥ १२२ ॥

सामध्वनावृग्यजुषी नाधीयीत कदाचन । वेदस्याधीत्य वाप्यन्तमारण्यकमधीत्य च ॥ १२३ ॥
ऋग्वेदो देवदैवत्यो यजुर्वेदस्तु मानुषः । सामवेदः स्मृतः पित्र्यस्तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ॥ १२४ ॥
एतद्विद्वन्तो विद्वांसस्त्रयी निष्कर्ममन्वहम् । क्रमतः पूर्वमभ्यस्य पश्चाद्वेदमधीयते ॥ १२५ ॥

सामवेदके पाठके शब्द रहनेपर ऋग्वेद अथवा यजुर्वेदका पाठ कभी नहीं करे और एक वेद समाप्त होनेपर तथा आरण्यक पढ़के (दिनरात) अनध्याय करे ॥ १२३ ॥ ऋग्वेदमें देवताओंके, यजुर्वेदमें मनुष्योंके और सामवेदमें मुख्यकरके पितरोंके विषय हैं, इस लिये ऋग्वेद अथवा यजुवेदके सामने सामवेदकी ध्वनि अशुचिके समान जानपड़ती है ॥ १२४ ॥ विद्वानलोग तीनों वेदोंके ३ अधिष्ठाता जानकर तीनों वेदोंका सार प्रणव, व्याहृति और गायत्रीका पहिले उच्चारण करके पीछे क्रमपूर्वक वेद पढ़तेहैं ॥ १२५ ॥

बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-११. अध्याय,-२५ श्लोक । वर्षाकालसे अन्य समयमें जब जोरसे बादल गर्जकर अतिवृष्टि होवे और बिजली गिरे तब ३ दिन अनध्याय करना चाहिये ।

गौतमस्मृति-१६ अध्याय—२ अंक और बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-११ अध्याय;-२३ श्लोक । अपने देशके राजाके मरनेपर दिनरात अनध्याय करना चाहिये ।

बौधायनस्मृति—१ प्रश्न-११ अध्याय—४३ श्लोक । अष्टमी तिथिमें पढ़नेसे उपाध्यायका, चतुर्दशीमें पढनेसे शिष्यका और पञ्चदशीमें पढ़नेसे विद्याका नाश होताहै इसलिये इन पर्वोंमें वेद नहीं पढ़े ।

पशुमण्डूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिः। अन्तरागमने विद्यादनध्यायमहर्निशम् ॥ १२६ ॥
द्वावेव वर्जयेन्नित्यमनध्यायौ प्रयत्नतः। स्वाध्यायभूमिं चाशुद्धामात्मानं चाशुचिं द्विजः ॥ १२७ ॥

यदि वेद पढ़नेके समय गुरु और शिष्यके बीचसे पशु, मेड़क, बिलार, कुत्ता, सांप, नेवल अथवा चूहा निकलजावे तो उस दिनरात अनध्याय करे ॥ १२६ ॥ द्विजको उचित है कि वेद पढ़नेके स्थान अशुद्ध होनेपर और स्वयं अपवित्र रहनेपर यत्नसे अनध्याय किया करे ॥ १२७ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय।

त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु। उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये तथा ॥ १४४ ॥
सन्ध्यागर्जितनिर्घातभूकम्पोल्कानिपातने। समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च ॥ १४५ ॥
पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके। ऋतुसन्धिषु भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥ १४६ ॥
पशुमण्डूकनकुलमार्जारश्वाहिमूषकैः। कृतेन्तरे त्वहोरात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये ॥ १४७ ॥

शिष्य, ऋत्विक्, गुरु, बन्धु और अपनी शाखाके वेदपाठीके मरनेपर और उपाकर्म तथा उत्सर्गमें ३ दिन; अनध्याय करे *॥१४४॥ सन्ध्याके समय मेघके गर्जनेपर; भूकम्प या उल्कापात होनेपर; वेदका भाग मन्त्र वा ब्राह्मणकी समाप्ति और आरण्यकके अध्ययनमें; अमावास्या, पूर्णमासी, चतुर्दशी, अष्टमी, ग्रहण और ऋतुकी सन्धिमें; श्राद्धमें भोजन करनेपर अथवा दान लेनेपर; गुरु और शिष्यके बीचसे होकर पशु, मेड़क, नेवला बिलार, कुत्ता, सांप अथवा मूसाके निकल जानेपर और इन्द्रकी ध्वजाके बान्धने और उतारनेमें दिनरात अनध्याय होना चाहिये ॥ १४५-१४७ ॥

श्वक्रोष्टुगर्दभोलूकसामबाणार्तनिःस्वने। अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके ॥ १४८ ॥
देशेऽशुचावात्मनि च विद्युत्स्तनितसंप्लवे। भुक्त्वार्द्रपाणिरम्भोन्तरर्द्धरात्रेऽतिमारुते ॥ १४९ ॥
पांशुवर्षे दिशां दाहे सन्ध्यानीहारभीतिषु। धावतः पूतिगन्धे च शिष्टे च गृहमागते ॥ १५० ॥
खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षेरिणरोहणे। सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान्विदुः ॥ १५१ ॥

(१) कुत्ते, (२) सियार, (३) गदहे, (४) उल्लू, (५) सामवेद, (६) बाण और (७) रोगीका शब्द सुननेपर; (८) अपवित्रवस्तु, (९) मुर्दे, (१०) शूद्र, (११) अन्त्यज, (१२) श्मशान और (१३) पतितके निकट; (१४) अपवित्र स्थानमें; (१५) अपवित्र रहनेपर; (१६) बारबार बिजली चमकनेमें, (१७) बारबार मेघके गर्जनेपर; (१८) भोजनके बाद गीलेहाथ रहनेपर, (१९) जलमें रहनेपर; (२०) आधीरातमें; (२१) जोरसे पवनके बहनेपर; (२२) धूली वर्षनेके समय; (२३) दिशाओंमें दाह होनेपर, (२४) सांझके धुंधमें, (२५) सबेरे धुंधमें; (२६) भयके समय; (२७) दौड़नेके समय, (२८) दुर्गन्ध आनेके समय; (२९) शिष्टके अपनेघर आने पर; (३०) गदहे, (३१) ऊंट, (३२) रथ, (३३) हाथी, (३४) घोड़े (३५) नाव अथवा (३६) वृक्षपर चढ़नेके समय तथा (३७) ऊषर भूमिमें अनध्याय होताहै; इन ३७ अनध्यायोंको विद्वानलोग तात्कालिक अनध्याय कहतेहैं अर्थात् ये उतने ही समयतक रहतेहैं जितने समयतक पूर्वोक्त उपद्रवोंका प्रभाव रहताहै ☞ ॥१४८-१५१॥

(९) हारीतस्मृति-४ अध्याय।

शिष्यानध्यापयेच्चापि अनध्याये विसर्जयेत् ॥ ७० ॥
स्मृत्युक्तानखिलांश्चापि पुराणोक्तानपि द्विजः। महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि पर्वसु ॥ ७१ ॥
तथाऽक्षयतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्विजः ॥ माघमासे तु सप्तम्यां रथ्याख्यायां तु वर्जयेत् ॥७२॥
अध्यापनं समभ्यञ्जन्स्नानकाले च वर्जयेत् ॥ ७३ ॥

ब्राह्मण शिष्योंको पढावे; किन्तु धर्मशास्त्र और पुराणोंमें कहेहुये इन अनध्यायोंमें नहीं ॥ ७०-७१ ॥ कातिकसुदी नवमी, द्वादशी, भरणी नक्षत्र, अमावास्या आदि पर्व, वैशाखसुदी तीज और माघकी रथसप्तमी अर्थात् माघसुदी सप्तमीमें, उबटना लगानेके समय और स्नान करनेके समय वेद नहीं पढावे ॥ ७१-७३ ॥

---

* बौधायनस्मृति—१ प्रश्न-११ अध्याय,-२३ श्लोक। अपने साथ पढनेवाले वेदपाठीके मरनेपर दिनरात अनध्याय माने।

☞ यहां मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृतिमें लिखेहुए अनध्यायोंका वर्णन हुआ; इनके अलावे उशनस्मृति—३ अध्यायके ५४ से ७८ श्लोक तक; शङ्खस्मृति-३ अध्यायके ६ से ९ श्लोक तक; गौतमस्मृति-१६ अध्यायके १-२ अङ्कमें; वसिष्ठस्मृति-१३ अध्यायके ४ से १२ अङ्कतक और बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-११-अध्यायके ३३-२८ श्लोक तक अनध्यायोंका वर्णन है; किन्तु उनमें विशेष विशेषता नहीं है।

(६ क) उशनस्मृति-३ अध्याय।

अनध्यायो न चाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः। न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतानि वर्जयेत् ॥ ७८ ॥

वेदाङ्ग, इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्र पढ़नेमें अनध्यायकी आवश्यकता नहीं है; किन्तु पर्वोंमें इनको भी नहीं पढना चाहिये ❀ ॥ ७८ ॥

गृहस्थप्रकरण ११.

गृहस्थाश्रमका महत्त्व १.

(१) मनुस्मृति-३ अध्याय।

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ ७७ ॥
यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्। गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥७८॥
स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता। सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ ७९ ॥
ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा। आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता ॥ ८० ॥

जैसे प्राणवायुके सहारेसे सब प्राणी जीतेहैं वैसे ही गृहस्थके आसरेसे सम्पूर्ण आश्रमवाले मनुष्य जीवन धारण करतेहैं॥७७॥ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी; ये तीनों आश्रमी वेदार्थव्याख्या और अन्न आदि द्वारा सदा गृहस्थसे ही प्रतिपालित होतेहैं, इस लिये सब आश्रमोंसे गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है ॥७८॥ जो लोग मरनेपर अक्षय स्वर्ग और इस लोकमें सुख भोगनेकी इच्छा रखतेहैं उनको अत्यन्तयत्नसे गृहस्थधर्म पालन करना चाहिये; इन्द्रियोंको वशमें नहीं रखनेसे गृहस्थाश्रम-धर्मका पालन करना कठिन है ॥ ७९ ॥ ऋषि, पितर, देवता, भूत और अतिथि; ये सब गृहस्थोंकी ही आशा करतेहैं, इसलिये ज्ञानवान् गृहस्थोंको उनके लिये पञ्चमहायज्ञ करना उचित है ॥ ८० ॥

६ अध्याय।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा। एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥ ८७ ॥
सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः। यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ॥ ८८ ॥
सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः। गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्बिभर्ति हि ॥ ८९ ॥
यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्। तथैवाश्रमिणःसर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥९०॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी; ये चारों आश्रमवाले गृहस्थसे ही उत्पन्न होते हैं ॥ ८७ ॥ इन चारों आश्रमोंको शास्त्रविधिके अनुसार क्रमसे सेवन करनेसे ब्राह्मण परमगति प्राप्त करताहै ॥ ८८ ॥ वेद और स्मृतियोंके विधानसे चलनेवाले गृहस्थ ही आश्रमोंमें श्रेष्ठ हैं; क्योंकि वे ही तीनों आश्रमवालोंका पालन करतेहैं ॥ ८९ ॥ जैसे सब नदी और नद समुद्रमें जाकर स्थित होतेहैं वैसे ही तीनों आश्रमवाले मनुष्य गृहस्थकी ही सहायतासे निवास करतेहैं ✽ ॥ ९० ॥

(४ क) बृहद्विष्णुस्मृति-५९ अध्याय।

ब्रह्मचारी यतिर्भिक्षुर्जीवन्त्येते गृहाश्रमात्। तस्मादभ्यागतानेतान्गृहस्थो नावमानयेत् ॥ २७ ॥
गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः। ददाति च गृहस्थस्तु तस्माज्ज्येष्ठो गृहाश्रमी ॥ २८ ॥
ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा। आशासते कुटुम्बिभ्यस्तस्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमी ॥ २९ ॥

ब्रह्मचारी, संन्यासी और वानप्रस्थ; ये सब गृहस्थसे ही जीविका निर्वाह करतेहैं; इस लिये इनके अभ्यागत होकर आनेपर गृहस्थ इनका निरादर नहीं करे ॥ २७ ॥ गृहस्थ ही यज्ञ, तपस्या तथा दान करता है इसलिये गृहस्थ ही श्रेष्ठ है ◎ ॥ २८ ॥ ऋषि, पितर, देव, भूत और अतिथि गृहस्थकीही आशा करतेहैं, इस कारणसे (चारो आश्रमोंमें) गृहस्थ ही श्रेष्ठ हैं ॥ २९ ॥

❀ मनुस्मृति—२ अध्याय-१०५ श्लोक। वेदाङ्गोंके पढनेमें, नित्य करनेयोग्य स्वाध्यायमें और होमके मन्त्रोंमें अनध्याय नहीं होता। व्यासस्मृति-१ अध्याय-३८ श्लोक। ब्रह्मचारी अनध्यायोंको छोड़कर प्रतिदिन वेदोंको और अनध्यायोंमें वेदाङ्गोंको पढ़े और गुरुके वचनका पालन करता रहे॥

✽ वसिष्ठस्मृति—८ अध्यायका १५ श्लोक ९० श्लोकके समान है।

◎ शङ्खस्मृति-५ अध्यायके ५-६ श्लोकमें भी ऐसा है। वसिष्ठस्मृति-८ अध्याय-१४ श्लोक। गृहस्थ ही यज्ञ और तपस्या करताहै इस कारण चारों आश्रमोंमें गृहस्थ ही श्रेष्ठ है।

(१४) व्यासस्मृति–४ अध्याय।

गृहाश्रमात्परो धर्मो नास्तिनास्ति पुनःपुनः। सर्वतीर्थफलं तस्य यथोक्तं यस्तु पालयेत् ॥ २ ॥
गुरुभक्तो भृत्यपोषी दयावाननसूयकः। नित्यजापी च होमी च सत्यवादी जितेंद्रियः ॥ ३ ॥
स्वदारे यस्य संतोषः परदारनिवर्त्तनम्। अपवादोऽपि नो यस्य तस्य तीर्थफलं गृहे ॥ ४ ॥
इन्द्रियाणि वशीकृत्य गृह एव वसेन्नरः। तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥ १३ ॥
गङ्गाद्वारं च केदारं सन्निहत्य तथैव च। एतानि सर्वतीर्थानि कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ १४ ॥

निश्चय करके गृहस्थाश्रमसे श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं है; जो गृहस्थ यथोक्त अपना धर्म प्रतिपालन करता है उसको सब तीर्थोंका फल मिलताहै ॥ २ ॥ जो गृहस्थ गुरुजनोंका भक्त, निज भृत्योंको पालन करनेवाला, दयावान्, अनिन्दक, नित्य जप तथा होम करनेवाला, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, अपनी भार्यामें रत, परकी स्त्रीसे अलग रहनेवाला और अपवादसे रहित है उसको घरमें ही सब तीर्थ करनेका फल मिलजाताहै ॥ ३–४ ॥ जितेन्द्रिय होकर घरमें वसनेवाले मनुष्यको घरमें ही कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, पुष्कर, हरिद्वार और केदार तीर्थ मिलजातेहैं, वह इनको करके सब पापोंसे छूट जाता है ॥ १३–१४ ॥

(१७) दक्षस्मृति–२ अध्याय।

देवैश्चैव मनुष्यैश्च तिर्यग्भिश्चोपजीव्यते। गृहस्थः प्रत्यहं यस्मात्तस्माच्छ्रेष्ठाश्रमो गृही ॥ ४५ ॥
त्रयाणामाश्रमाणां तु गृहस्थो योनिरुच्यते। सीदमानेन तेनैव सीदन्तीहेतरे त्रयः ॥ ४६ ॥
मूलत्राणे भवेत्स्कन्धः स्कन्धाच्छाखेति पल्लवाः। मूलेनैव विनष्टेन सर्वमेतद्विनश्यति ॥ ४७ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयो गृहाश्रमी। राज्ञा चान्यैस्त्रिभिः पूज्यो माननीयश्च सर्वदा ॥ ४८ ॥

सब देवता, मनुष्य तथा पशु, पक्षी आदि जीव प्रतिदिन गृहस्थसे ही जीतेहैं, इस लिये सब आश्रमोंसे गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है ॥ ४५ ॥ इससे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासीकी उत्पत्ति है, गृहस्थोंके दुःखी होनेसे तीनों आश्रमी दुःखी होतेहैं ॥ ४६ ॥ वृक्षके मूलकी रक्षा होनेसे स्कन्ध, स्कन्धकी रक्षासे शाखा और शाखाकी रक्षासे पत्ते होतेहैं, किन्तु मूलके नाश होनेसे ये सब नष्ट होजातेहैं ॥ ४७ ॥ इसलिये राजा तथा तीनों आश्रमोंके लोगोंको उचित है कि सत्कार और मानके सहित यत्नपूर्वक गृहस्थोंकी रक्षा करे ॥ ४८ ॥

(१८) गौतमस्मृति–३ अध्याय।

ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षुर्वैखानस इति तेषां गृहस्थो योनिरप्रजनत्वादितरेषाम् ॥ १ ॥

आश्रमोंका उत्पत्तिस्थान गृहस्थ ही है, क्योंकि ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यासीकी कोई सन्तान नहीं होतीहै ॥ १ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति–८ अध्याय।

यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः। एवं गृहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति भिक्षवः ॥ १६ ॥

जैसे सब प्राणी माताके आश्रयसे पालित होतेहैं वैसे ही ब्रह्मचारी आदि सब भिक्षुक गृहस्थसे जीवन धारण करते हैं ॥ १६ ॥

मनुष्यका जन्म २.

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय।

निस्सरन्ति यथा लोहपिण्डात्तप्तात्स्फुलिङ्गकाः। सकाशादात्मनस्तद्वदात्मानः प्रभवन्तिहि ॥ ६७ ॥
निमित्तमक्षरः कर्त्ता बोद्धा ब्रह्मगुणी वशी। अजः शरीरग्रहणात्स जात इति कीर्त्यते ॥ ६९ ॥
आहुत्याप्यायते सूर्यः सूर्याद्वृष्टिस्तथौषधिः। तदन्नं रसरूपेण शुक्रत्वमधिगच्छति ॥ ७१ ॥
स्त्रीपुंसयोस्तु संयोगे विशुद्धे शुक्रशोणिते। पञ्चधातून्स्वयं षष्ठ आदत्ते युगपत्प्रभुः ॥ ७२ ॥
इन्द्रियाणि मनः प्राणो ज्ञानमायुः सुखं धृतिः। धारणा प्रेरणं दुःखमिच्छाहङ्कार एव च ॥ ७३ ॥
प्रयत्न आकृतिर्वर्णः स्वरद्वेषौ भवाभवौ। तस्यैतदात्मजं सर्वमनादेरादिमिच्छतः ॥ ७४ ॥

जैसे आगमें तपायेहुए लोहेके गोलेसे छोटी २ चिनगारियां उड़तीहैं वैसेही परमात्मासे जीवात्मा उत्पन्न होतेहैं ॥ ६७ ॥ यद्यपि आत्मा कारण, अविनाशी, जगत्का कर्ता, बोद्धा, सत्त्वादिगुणोंसे युक्त, स्वतन्त्र और अजन्मा है, तथापि शरीर ग्रहण करनेसे वह जन्मा हुआ कहा जाताहै ॥ ६९ ॥ आहुति देनेसे सूर्य पुष्ट होतेहैं, सूर्यसे वर्षा होतीहै, वर्षासे अन्न उत्पन्न होताहै और अन्नके रससे वीर्य बनताहै ॥ ७१ ॥

जब स्त्री और पुरुषके संयोगसे पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रज शुद्ध होतेहैं तब आकाश, वायु, अग्नी, जल और पृथ्वीके साथ आत्मा रूप ग्रहण करताहै ॥ ७२ ॥ इन्द्रिय, मन, प्राण, ज्ञान, अवस्था, सुख, धैर्य, स्मरणशक्ति, प्रेरणा, दुःख, इच्छा, अहंकार, प्रयत्न, आकार, रङ्ग, स्वर, द्वेष, उत्पत्ति और नाश; ये सब उस जीवात्माके आधार होतेहैं ॥ ७३—७४ ॥

प्रथमे मासि संक्लेदभूतो धातुविमूर्च्छितः। मास्यर्बुदं द्वितीये तु तृतीयेङ्गेन्द्रियैर्युतः॥ ७९ ॥
स्थैर्यं चतुर्थे त्वङ्गानां पञ्चमे शोणितोद्भवः। षष्ठे बलस्य वर्णस्य नखरोम्णां च सम्भवः॥८० ॥
मनश्चैतन्ययुक्तोऽसौ नाडीस्नायुशिरायुतः। सप्तमे चाष्टमे चैव त्वङ्मांसस्मृतिमानपि ॥ ८१ ॥
पुनर्धात्रीं पुनर्गर्भमोजस्तस्य प्रधावति। अष्टमे मास्यतो गर्भो जातः प्राणैर्वियुज्यते ॥ ८२ ॥
नवमे दशमे वापि प्रबलैः सूतिमारुतैः। निःसार्यते बाण इव यन्त्रच्छिद्रेण सज्वरः ॥ ८३ ॥

उसका रूप आकाश आदि पञ्चमहाभूतोंके साथ मिलाहुआ पहिले महीनेमें गोला रहताहै, दूसरे महीनेमें कड़ा होताहै, तीसरे महीनेमें अङ्ग और इन्द्रियोंसे युक्त होताहै ॥ ७५ ॥ चौथे मासमें प्रकट हुए अङ्ग कुछ दृढ होतेहैं, पांचवें महीनेमें रुधिरकी उत्पत्ति होती है; छठे मासमें बल, रङ्ग, नख और रोएं उत्पन्न होतेहैं ॥ ८० ॥ सातवें मासमें वह गर्भ मन, चैतन्यता, सब शरीरमें प्राणवायुको लेजानेवाली नाड़ी हड्डियोंको बान्धनेवाली स्नायु और वात, पित्त और श्लेष्माको शरीरमें डालनेवाली शिरासे युक्त होताहै; आठवें महीनेमें चाम, मांस और स्मरणशक्तिको प्राप्त करताहै ॥ ८१ ॥ आठवें मासमें गर्भका ओज बारम्बार भीतर दौडता है इसलिये ८ वें मासका जन्मा हुआ बालक मरजाता है ॥ ८२ ॥ नवें अथवा दशवें मासमें प्रबल मारुतसे प्रेरित होकर बाणके समान वेगसे बालक प्रकट होताहै ॥८३ ॥

तस्य षोढा शरीराणि षट् त्वचो धारयन्ति च। षडङ्गानि तथास्थ्नां च सह षष्ट्या शतत्रयम्॥८४॥
गन्धरूपरसस्पर्शशब्दाश्च विषयाः स्मृताः। नासिका लोचने जिह्वा त्वक् श्रोत्रं चेन्द्रियाणि च॥९१॥
हस्तौ पायुरुपस्थं च जिह्वा पादौ च पञ्च वै। कर्मेन्द्रियाणि जानीयान्मनश्चैवोभयात्मकम् ॥ ९२ ॥

बालकका ६ प्रकारका * शरीर ६ त्वचाओंको, ६ अङ्गोंको † और ३६० हड्डियोंको ‡ ग्रहण करता है ॥ ८४ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध; इतने विषय कहेजातेहैं; नाक, आंख, जीभ, त्वचा और कान; ये ५ ज्ञानेन्द्रिय और हाथ, गुदा, लिङ्ग, जीभ और पांव, ये ५ कर्मेन्द्रिय हैं और मनको ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों कहतेहैं ॥ ९१–९२ ॥

एकोनत्रिंशल्लक्षाणि तथा नवशतानि च। षट्पञ्चाशच्च जानीत शिरा धमनिसंज्ञिताः ॥ १०१ ॥
त्रयो लक्षास्तु विज्ञेयाः श्मश्रुकेशाः शरीरिणाम्। सप्तोत्तरं मर्मशतं द्वे च सन्धिशते तथा ॥ १०२॥
रोम्णां कोट्यस्तु पञ्चाशच्चतस्रः कोट्य एव च। सप्तषष्टिस्तथा लक्षाः सार्द्धाः स्वेदायनैः सह १०३

देहकी शिरा और धमनी, दोनों नाड़ियोंके मिलनेसे उसकी शाखा २९ लाख ९५६ होजातीहैं; ऐसा जानो ॥ १०१ ॥ दाढ़ी मूछ और शिरमें ३ लाख बाल होते हैं; १ सौ ७ मर्मस्थल और २ सौ हड्डियोंके जोड़ हैं ॥ १०२ ॥ पसीना निकलनेके स्थानोंसमेत सब शरीरमें ५४ करोड़, ६७ लाख और ५० हजार रोम होतेहैं ॥ १०३ ॥

रसस्य नव विज्ञेया जलस्याञ्जलयो दश। सप्तैव तु पुरीषस्य रक्तस्याष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥ १०५ ॥
षट् श्लेष्मा पञ्च पित्तञ्च चत्वारो मूत्रमेव च। वसा त्रयो द्वौ तु मेदो मज्जैकोर्ध्वं तु मस्तके ॥१०६॥
श्लेष्मौजसस्तावदेव रेतसस्तावदेव तु। इत्येतदस्थिरं वर्ष्म यस्य मोक्षाय कृत्यसौ ॥ १०७ ॥

शरीरमें भोजनका रस ९ अञ्जली, जल १० अञ्जली, विष्ठा, ७ अञ्जली, रक्त ८ अञ्जली, कफ ६ अञ्जली, पित्त ५ अञ्जली, मूत्र ४ अञ्जली, चरबी, ३ अञ्जली, मांसका रस २ अञ्जली, हड्डियोंके भीतरकी चरबी १ अञ्जली, मस्तककी चर्बी आधी अञ्जली और कफका सार और वीर्य आधी आधी अञ्जली रहताहै; इस प्रकार हड्डी, मांस आदि अपवित्र वस्तुओंसे शरीर बना है और स्थिर नहीं है, परन्तु जिसका मोक्षार्थ है वह कुशल है ॥ १०५–१०७ ॥

---

* रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य; इन ६ धातुओंके ६ स्थान रहनेके कारण ६ प्रकारका शरीर कहाजाताहै और यही ६ त्वचा कहेजातेहैं।

† २ हाथ, २ पांव, १ सिर और १ गात्र, यही ६ अङ्ग हैं।

‡ याज्ञवल्क्यस्मृतिमें यहां ८५ से ९० श्लोकतक ३६० हड्डियोंका वर्णन है।

संस्कार ३.

(१) मनुस्मृति-२ अध्याय।

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्। कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥ २६ ॥
गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौलमौञ्जीनिबन्धनैः। बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥ २७ ॥
मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम्। वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥ ३१ ॥
शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम्। वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रैष्यसंयुतम् ॥ ३२ ॥
स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम्। मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् ॥ ३३ ॥

द्विजातियोंके गर्भाधान आदि शारीरक संस्कार वैदिक पवित्र कार्योंसे करना चाहिये; क्योंकि वे संस्कार इस लोक तथा परलोकको पवित्र करनेवाले हैं ❀ ॥ २६ ॥ गर्भाधान, जातकर्म, मुण्डन और उपनयन; इन संस्कारोंके करनेसे द्विजातियोंके बीज तथा गर्भजनित दोष नष्ट होतेहैं ۞ ॥ २७ ॥ ब्राह्मणका नाम मङ्गल वाचक, क्षत्रियका नाम बलवाचक, वैश्यका नाम धनवाचक और शूद्रका नाम हीनतावाचक रखना चाहिये ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणके नामके अन्तमें शर्म, क्षत्रियके नामके अन्तमें वर्म आदि रक्षावाचक, वैश्यके नामके अन्तमें भूति, गुप्तआदि पुष्टिवाचक और शूद्रके नामके अन्तमें दास आदि सेवावाचक उपपद लगाना चाहिये ※ ॥ ३२ ॥ स्त्रीका नाम सुखसे उच्चारण करनेयोग्य, अच्छे अर्थका बोधक स्पष्ट अर्थ प्रकट करनेवाला, मनोहर, मङ्गलवाचक, अन्तमें दीर्घ स्वर रहनेवाला और आशीर्वादका बोधक रखना उचित है ◎ ॥ ३३ ॥

कार्ष्णरौरववास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः। वसीरन्नानुपूर्वेण शाणक्षौमादिकानि च ॥ ४१ ॥
मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला। क्षत्रियस्य तु मौर्वीज्या वैश्यस्य शणतान्तवी ॥ ४२ ॥

ब्राह्मण ब्रह्मचारीके ओढनेके लिये काले मृगकी छाल, क्षत्रियके ओढनेको, शुरु मृगकी छाल और वैश्यके ओढ़नेके लिये बकरेकी छाल देवे ※ और ब्राह्मणके पहननेको शणका वस्त्र, क्षत्रियके पहननेको अंतसीकी छालका वस्त्र और वैश्यके पहननेको (भेड़के रोएंका) वस्त्र दे ※ ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणकी करधनी ३ लरके मूञ्जकी, क्षत्रियकी करधनी धनुषके रोदेके समान मूर्वा घासकी और वैश्यकी करधनी शणकी ※ बनावे ॥ ४२ ॥

मुञ्जालाभे तु कर्त्तव्याः कुशाश्मन्तकबल्वजैः। त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ॥ ४३ ॥
कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत्। शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ॥ ४४ ॥
ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ। पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मतः ॥ ४५ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय-१० श्लोक। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र; ये ४ वर्ण हैं, इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विज कहेजाते हैं; इनका गर्भाधानसे लेकर मरणतक सब संस्कार मन्त्रसे होतेहैं।

۞ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१३ श्लोक। गर्भाधानादि संस्कार करनेसे बीज तथा गर्भसे उत्पन्न दोष नष्ट होतेहैं।

※ शङ्खस्मृति-२ अध्यायके ३-५ श्लोकमें प्रायः इसी भांति है; विशेष यह है कि चारों वर्णोंके बालकोंके नाम सम अक्षरके होने चाहिये; वैश्यके नामके अन्तमें धन वाचक और शूद्रके नामके अन्तमें दास शब्द रहना चाहिये।

◎ नामकरणका विशेष वर्णन आगे व्याससमृति और लघुआश्वलायनमें देखिये।

※ वसिष्ठस्मृति-११ अध्यायके ४८ अङ्कमें भी ऐसा है; किन्तु उसमें लिखाहै कि वैश्य ब्रह्मचारीको बकरे अथवा गौकी छालका दुपट्टा देवे।

※ गौतमस्मृति-१ अध्याय-७ अङ्कमें है कि ब्राह्मणके पहननेको शणका वस्त्र, क्षत्रियके अलसीकी छालका वस्त्र और वैश्यके पहननेको बकरीके रोएंका वस्त्र अथवा तीनों वर्णके पहननेको कपासके सूतका वस्त्र होना चाहिये। गौतमस्मृति-१अध्यायके-८-९ अङ्कमें है कि सबका वस्त्र कषाय रङ्गका(गेरूमें रङ्गेहुए) अथवा ब्राह्मणका खाकी, क्षत्रियका मजीठ रङ्गका लाल और वैश्यका वस्त्र हलदीके रङ्गका पीला होना चाहिये और वसिष्ठस्मृति-११अध्यायके४९अङ्कमें है कि ब्राह्मणका वस्त्र शुक्लरङ्गका,क्षत्रियका मजीठरङ्गका लाल और वैश्यका वस्त्र हलदीसे रङ्गा रेशमी होना चाहिये अथवा तीनों वर्णोंके वस्त्र विना रङ्गेहुए कपासके सूतके होनेचाहिये।

※ गौतमस्मृति-१ अध्यायके ७ अङ्कमें और वसिष्ठस्मृति-११ अध्यायके ४७ अङ्कमें भी ऐसा लिखा है; किन्तु गौतमस्मृतिमें है कि वैश्य ब्रह्मचारीकी करधनी सूतकी बनावे।

मूञ्ज आदि नहीं मिलनेपर ब्राह्मणकी करधनी कुशाकी, क्षत्रियकी अश्मन्तक तृणकी और वैश्यकी करधनी बल्वज नामक घासकी होनी चाहिये; करधनी ३ लरकी बनानी चाहिये, उसमें (कुलाचारके अनुसार) एक, तीन अथवा पांच गाँठ देना चाहिये ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणका जनेऊ कपासके सूतका, क्षत्रियका जनेऊ शणके सूतका और वैश्यका जनेऊ भेड़के रोएंके सूतका बनाना चाहिये; ३ तागेको ऊपरको ऐंठकर फिर तिगुना करके जनेऊ तैयार करना चाहिये ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणका दण्ड (छड़ी) बेल अथवा पलाशका, क्षत्रियका दण्ड वट अथवा खैरका और वैश्यका दण्ड पीलू अथवा गूलरका होना चाहिये ॥४५॥

केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः । ललाटसंमितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः ४६
ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः । अनुद्वेगकरा नॄणां सत्वचो नाग्निदूषिताः ॥ ४७ ॥
प्रतिगृह्येप्सितं दण्डमुपस्थाय च भास्करम् । प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद्भैक्ष्यं यथाविधि ॥ ४८ ॥
भवत्पूर्वं चरेद्भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः । भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ॥ ४९ ॥
मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् । भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं नावमानयेत् ॥ ५०॥
समाहृत्य तु तद्भैक्ष्यं यावदर्थममायया । निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः ॥ ५१ ॥

ब्राह्मणका दण्ड शिरतक, क्षत्रियका दण्ड ललाटतक और वैश्यका दण्ड पैरसे नाक तक लम्बा बनना चाहिये ॥ ४६ ॥ वे दण्ड सीधे चिकने, छिद्ररहित, देखनेमें सुन्दर, मनुष्योंको नहीं डरानेवाले, छिलके समेत और आगसे नहीं जलेहुए होने चाहिये ॥ ४७ ॥ ब्रह्मचारीको उचित है कि इच्छानुसार दण्ड ग्रहण करके सूर्यकी उपासना और अग्निकी प्रदक्षिणा करे और विधिपूर्वक "भिक्षा मांगे ॥ ४८॥ भिक्षा मांगनेके समय ब्राह्मण कहे कि "भवति भिक्षां देहि" क्षत्रिय कहे भिक्षां भवति देहि" और वैश्य कहे कि "भिक्षां देहि भवति" ॥ ४९ ॥ माता, बहिन अथवा मौसीसे अथवा जिस स्त्रीसे छूंछे फिरनेकी संभावना नहीं होवे ब्रह्मचारी पहिले उसीसे भिक्षा मांगे ॥ ५० ॥ प्रयोजनानुसार भिक्षा मांगके निष्कपटचित्तसे गुरुको समर्पण करके आचमन कर पवित्र होके पूर्वमुखसे बैठकर भोजन करे ॥ ५१ ॥

उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते द्विजः । सव्ये प्राचीन आवीती निवीती कण्ठसज्जने ॥ ६३ ॥

जो द्विज जनेऊ अथवा वस्त्रको बांयें कन्धेसे दाहने कोखके नीचे तक लटकाकर उसमेंसे दाहनी भुजा निकालताहै वह उपवीती, जो दाहिने कन्धेसे बांये कोखके नीचे तक लटका करके उसमेंसे अपनी बांई भुजा निकालताहै वह प्राचीनावीती और जो कण्ठमें मालाके समान लटकाताहै वह निवीती कहाजाता है ॥६३॥

अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः । संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥ ६६ ॥
वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः । पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥६७॥

स्त्रियोंकी देहशुद्धिके लिये उपनयनको छोड़कर यथासमयमें विना मन्त्रका उनका सब संस्कार करना चाहिये ॥ ६६ ॥ स्त्रियोंके लिये विवाहसंस्कार ही उपनयनके समान, निजपतिकी सेवा ही गुरुकुलमें वासके तुल्य और गृहके कार्य ही प्रातःकाल और सन्ध्याके अग्निहोत्रके समान हैं ॥ ६७ ॥

कात्यायनस्मृति-१ खण्डके २-३ श्लोक और गोभिलस्मृति-प्रथम प्रपाठकके २-३ श्लोकमें है कि तीन सूत ऊपरको ऐंठकर, उसको तिगुना करके फिर नीचेको ऐंठे और उसको ३ लड़ करके उसमें १ गांठ देकर जनेऊ बनालेवे । जो जनेऊ कन्धेसे पीठकी हड्डी और नाभी होकर कटितक पहुंच जावे और न बहुत लम्बा न बहुत छोटा होवे उसीको पहने ।

गौतमस्मृति-१ अध्यायके १०-१२ अङ्क । ब्राह्मणका दण्ड बेल अथवा पलाशका, क्षत्रियका दण्ड पीपलका और वैश्यका दण्ड पीलू (जालवृक्ष) का अथवा तीनों वर्णोंके ब्रह्मचारीका दण्ड किसी यज्ञीय वृक्षके काठका होना चाहिये ।

गौतमस्मृति-१ अध्यायके १३ अंकमें और वसिष्ठस्मृति-११ अध्यायके ४६ अंकमें ऐसा ही है ।

वसिष्ठस्मृति-११ अध्यायके ५० अंकमें ४९ श्लोकके समान है ।

उशनस्मृति-१ अध्यायके ९-१० श्लोकमें ऐसा ही है और लिखाहै कि पितरोंके कर्ममें दाहने कन्धेसे बांये भुजाके नीचे जनेऊ रखना चाहिये और ११-१२ श्लोकमें है कि अग्निशालेमें; गोशालामें होम करने, जप करने, पढने और भोजन करनेके समय; ब्राह्मणके समीप, गुरुकी सेवा और दोनों सन्ध्याओंको करनेके समय बांई भुजाके ऊपरसे दाहनी भुजाके नीचे जनेऊ पहनना चाहिये ।

याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१३ श्लोक । स्त्रियोंके सब संस्कार विना मन्त्रके होतेहैं; केवल उनके विवाहमें मन्त्र पढे जाते हैं ।

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने। तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ॥ १६९ ॥
तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम्। तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते॥१७०॥
वेदप्रदानादाचार्यं पितरं परिचक्षते। न ह्यस्मिन्युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् ॥ १७१ ॥
नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते। शूद्रेण हि समस्तावद्यावद्वेदे न जायते ॥ १७२ ॥

वेदमें लिखाहै कि द्विजका पहिला जन्म, मातासे, दूसरा जन्म उपनयन संस्कार होनेसे और तीसरा जन्म यज्ञदीक्षा पानेसे होताहै ॥ १६९ ॥ इनमें मेखला बन्धनयुक्त उपनयन–संस्काररूपी ब्रह्मजन्मके समय गायत्री माता कहलाती है और आचार्य पिता कहाजाता है ❀ ॥ १७० ॥ वेदविद्या दान करनेसे आचार्य पिता कहागया है। जनेऊ होनेसे पहिले मनुष्यको कोई कर्म करनेका अधिकार नहीं रहताहै ॥ १७१ ॥ विना जनेऊ हुए श्राद्धके मन्त्रोंके सिवाय कोई वेदमन्त्र नहीं उच्चारण करना चाहिये; जबतक वेद आरम्भ नहीं होताहै तबतक द्विज शूद्रके समान रहतेहैं ▩ ॥ १७२ ॥

(१४) व्यासस्मृति–१ अध्याय।

विप्रवद्विप्रविन्नासु क्षत्रविन्नासु क्षत्रवत्। जातकर्मादि कुर्वीत ततः शूद्रासु शूद्रवत् ॥ ७ ॥
वैश्यासु विप्रक्षत्राभ्यां ततः शूद्रासु शूद्रवत्। अधमादुत्तमायां तु जातः शूद्राधमः स्मृतः ॥ ८॥

ब्राह्मणकी विवाहिता ब्राह्मणी स्त्रीकी सन्तानका जातकर्म आदि संस्कार ब्राह्मणके संस्कारके समान, ब्राह्मणकी विवाहिता क्षत्रियाकी सन्तानका संस्कार क्षत्रियके संस्कारके समान और ब्राह्मणकी विवाहिता शूद्राकी सन्तानका संस्कार शूद्र संस्कारके तुल्य करना चाहिये। ब्राह्मण अथवा क्षत्रियकी विवहिता वैश्याकी सन्तानका संस्कार वैश्यके तुल्य और (ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्यकी विवाहिता) शूद्राकी सन्तानका संस्कार शूद्रके समान करना चाहिये; नीच वर्णके पुरुषसे विवाही हुई उच्च वर्णकी कन्याकी सन्तान शूद्रसे नीच होतीहैं ॥ ७–८ ॥

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च। नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रिया ॥ १३ ॥
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः। केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥ १४ ॥

(१) गर्भाधान, (२) पुंसवन, (३) सीमन्त, (४) जातकर्म, (५) नामकरण, (६) निष्क्रमण, (७) अन्नप्राशन, (८) मुण्डन, (९) कर्णवेध, (१०) जनेऊ, (११) वेदारम्भ, (१२) केशान्त (१३) ब्रह्मचर्यसमाप्तका स्नान, (१४) विवाह, (१५) विवाहकी अग्निका ग्रहण और (१६) दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय, इन तीन अग्निओंका ग्रहण करना; यही संस्कार हैं ॥ १३–१५ ॥

त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः। नवैताः कर्णवेधान्ता मन्त्रवर्जं क्रियाः स्त्रियाः ॥ १५ ॥
विवाहो मन्त्रतस्तस्याः शूद्रस्यामन्त्रतो दश। गर्भाधानं तु प्रथमस्तृतीये मासि पुंसवः ॥ १६ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय–३९ श्लोक। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इस कारणसे द्विज कहलाते हैं कि इनका पहिला जन्म मातासे और दूसरा जन्म यज्ञोपवीत संस्कारसे होताहै। व्यासस्मृति–१ अध्याय–२१ श्लोक। द्विजातियोंके दो जन्म होतेहैं, पहिला जन्म मातासे और दूसरा जन्म गुरुसे विधिपूर्वक वेदकी माता गायत्रीके ग्रहण करनेसे। शङ्खस्मृति–१ अध्यायके ६–७ श्लोक। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य; इन तीनों वर्णोंको द्विजाति कहतेहैं; इनका दूसरा जन्म यज्ञोपवीतसंस्कारसे जानना चाहिये; इनके यज्ञोपवीत संस्कारके जन्ममें आचार्य पिता कहाजाता है और गायत्री माता कही जाती है। वसिष्ठस्मृति–२ अध्यायके १–४ अङ्कमें भी ऐसा है।

▩ शङ्खस्मृति–१ अध्याय८ श्लोक। जबतक वेदारम्भ नहीं होताहै तबतक द्विजपुत्रोंको विद्वानलोग शूद्रोंके समान जानें; उसके पश्चात् द्विज जानें। वसिष्ठस्मृति–२ अध्यायके १२–१३ अङ्क। जनेऊ होनेसे पहिले द्विजको किसी वेदोक्त कर्म करनेका अधिकार नहीं है; जबतक जनेऊ नहीं होवे तबतक उसको शूद्रके समान जानना; किन्तु पितृकार्यमें जलदान और स्वधापूर्वक पिण्डदान वह करसकता है।

याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय–३६ श्लोक। ब्रह्मचारी (गर्भसे) १६वें वर्ष केशान्त संस्कार करे। मनुस्मृति–२ अध्याय—६५ श्लोक। ब्राह्मण (गर्भसे) १६वें वर्ष क्षत्रिय २२वें वर्ष और वैश्य २४ वें वर्ष केशान्त कर्म करे। मानवगृह्यसूत्र–१ पुरुष–२१ खण्ड। पूर्वोक्त चूडा करणकी रीतिसे सोलहवें वर्ष गोदाननाम केशान्तसंस्कार करे अथवा वेदाध्ययन करताहुआ जब आवसथ्याग्निको स्थापित करे तब पहिले या पीछे केशान्त संस्कार करे; क्योंकि श्रुतिमें लिखा है कि मैत्रायणि महर्षिने अग्नि स्थापनके समय केशान्त संस्कार किया था ॥१३॥ चूडाकरणमें (३ अंकमें) 'आदितिः केशान्' है। उसके स्थानमें 'अदितिः श्मश्रु' और (७ अंकमें) 'शुन्धि शिरो मास्यायुः' है उसके स्थानमें 'शुन्धिमुखमास्यायुः' पढे॥ १४ ॥ लघुआश्वलायनस्मृति—१४ गोदानादि त्रयम् प्रकरणके १–९ श्लोकमें केशान्त संस्कारका विधान है।

इनमेंसे गर्भाधानसे कर्णवेधतक ९ संस्कार कन्याओंके बिना मन्त्रके करने चाहिये; इनका केवल विवाह संस्कार वेदोक्त मन्त्रोंसे होना चाहिये और गर्भाधानसे कर्णवेध तक ९ तथा विवाह १०, ये १० संस्कार शूद्रके बिना मन्त्रके करने चाहिये ॥ १५-१६ ॥

सीमन्तश्चाष्टमे मासि जाते जातक्रिया भवेत् । एकादशेऽह्नि नामार्कस्येक्षा मासि चतुर्थके ॥ १७ ॥
षष्ठे मास्यन्नमश्नीयाच्चूडाकर्मकुलोचितम् । कृतचूडे च बाले च कर्णवेधो विधीयते ॥ १८ ॥
विप्रो गर्भाष्टमे वर्षे क्षत्र एकादशे तथा । द्वादशे वैश्यजातिस्तु व्रतोपनयमर्हति ॥ १९ ॥
तस्य प्राप्तव्रतस्यायं कालः स्याद्विगुणाधिकः । वेदव्रतच्युतो व्रात्यः स व्रात्यस्तोममर्हति ॥ २० ॥

प्रथम अर्थात् गर्भस्थापनके समय गर्भाधान संस्कार* गर्भाधानसे तीसरे मास पुंसवन † ८वें मास सीमन्त ‡ सन्तान उत्पन्न होनेपर जातकर्म §; जन्मके ११वें दिन नामकरण ||, ४थे मासमें निष्क्रमण ¶ होना चाहिये ॥१६-१७॥ ६ठे मास अन्नप्राशन **, कुलकी रीतिके अनुसार मुण्डन †† और मुण्डनके पश्चात् कर्णवेध संस्कार करना चाहिये ॥ १८॥ गर्भारम्भसे ८वें वर्ष ब्राह्मणका, ११वें वर्ष क्षत्रियका और १२वें वर्ष वैश्यका यज्ञोपवीत होना चाहिये ‡‡॥१९॥१६ वर्षतक ब्राह्मणका २२वर्षतक क्षत्रियका और २४ वर्षतक वैश्यका जनेऊ होसकता है; यदि

---

* याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-११ श्लोक । ऋतुकालमें गर्भाधानसंस्कार होताहै । शंखस्मृति-२ अध्याय-१ श्लोक । गर्भके प्रकाश होनेपर गर्भाधानसंस्कार होताहै ।

† याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-११ श्लोक । और शंखस्मृति-२ अध्याय-१ श्लोक । गर्भके डोलनेसे पहिले पुंसवनसंस्कार होताहै । याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय-७५ श्लोक । गर्भ तीसरे मासमें इन्द्रियोंसे युक्त होता है ।

‡ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-११ श्लोक और शंखस्मृति-२ अध्याय-२ श्लोक । गर्भारम्भके ६ठे अथवा ८वें मासमें सीमन्त संस्कार होताहै । विष्णुस्मृति-१ अध्याय-१० श्लोक । पुत्रीका सीमन्तसंस्कार नहीं है; किन्तु गर्भका संस्कार है, इसलिये प्रतिगर्भमें गर्भका संस्कार करना चाहिये ।

§ मनुस्मृति-२ अध्याय-२९ श्लोक; याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-११ श्लोक, विष्णुस्मृति-१ अध्याय ११ श्लोक और शंखस्मृति-२ अध्याय-१ श्लोकमें भी ऐसा है । मनुस्मृतिमें लिखा है बालकका नाल काटकर निज गृह्यमन्त्रोंसे उसको सोना, मधु और घी चटायाजाताहै, उसीको जातकर्म कहतेहैं ।

|| याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१२ श्लोकमें भी ऐसा है; किन्तु मनुस्मृति-२ अध्यायके ३० श्लोकमें है कि जन्मके १०वें या १२वें दिन अथवा जिसदिन तिथि, मुहूर्त और नक्षत्र शुभ होवे उसीदिन नामकरण करना चाहिये और शंखस्मृति २ अध्याय के २ श्लोकमें है कि जन्मका अशौच बीत जानेपर बालकका नामकरण करना उचित है (मनुस्मृति- और लघुआश्वलायनस्मृतिमें देखिये) ।

¶ मनुस्मृति-२ अध्याय-३४ श्लोक; याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१२ श्लोक और शंखस्मृति-२ अध्याय-५ श्लोकमें ऐसा ही है ।

** मनुस्मृति-२ अध्याय-३४ श्लोक; याज्ञवल्क्य-१ अध्याय-१२ श्लोक; विष्णुस्मृति-१ अध्याय-१२ श्लोक और शंखस्मृति-२ अध्याय-६ श्लोकमें एसा ही है ।

†† याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१२ श्लोकमें और शंखस्मृति-२ अध्याय-६ श्लोकमें भी ऐसा है; किन्तु मनुस्मृति-२ अध्याय-३५ श्लोकमें है कि पहिले वर्ष या तीसरे वर्ष मुण्डन कराना चाहिये और विष्णुस्मृति-१ अध्याय-१३ श्लोकमें है कि तीसरे वर्ष मुण्डन कराना चाहिये ।

‡‡ विष्णुस्मृति-१ अध्याय-९३ श्लोकमें शंखस्मृति-२ अध्याय-६ और ७ श्लोकमें, मनुस्मृति-२ अध्याय-३६ श्लोकमें और वसिष्ठस्मृति-११ अध्याय-४४ श्लोकमें ऐसा ही है; किन्तु मनुस्मृति-२ अध्याय ३७ श्लोकमें यह भी लिखा है कि ब्रह्म विद्याकी वृद्धि चाहनेवाले ब्राह्मणका जनेऊ ५वें वर्ष, बलकी वृद्धिकी इच्छावाले क्षत्रियका ६वें वर्ष और धनवृद्धिकी इच्छावाले वैश्यका जनेऊ ८वें वर्ष करना चाहिये । याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१४ श्लोक । गर्भारम्भ वा जन्मकालसे ८वें वर्ष ब्राह्मणका, ११ वें वर्ष क्षत्रियका और १२वें वर्ष वैश्यका अथवा कुलरीतिके अनुसार जनेऊ होना चाहिये । गौतमस्मृति-१ अध्याय ३ श्लोक । ब्राह्मणका जनेऊ गर्भ स्थितीसे ८वें, ९वें अथवा ५वें वर्ष करना चाहिये । बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-२ अध्याय के १०-११ अंक । ब्राह्मणका जनेऊ वसन्तऋतुमें, क्षत्रियका ग्रीष्मऋतुमें और वैश्यका जनेऊ शरदऋतुमें होना चाहिये; ब्राह्मणको गायत्रीछन्दवाली, क्षत्रियको त्रिष्टुप् छन्दवाली और वैश्यको जगतीछन्दवाली गायत्रीका उपदेश करना चाहिये ।

सके भीतर यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होवे तो ये लोग उपनयन संस्कार और वेदसे रहित "व्रात्य" होजाते ऐसे होनेपर इनको व्रात्यस्तोम यज्ञ करना चाहिये ※ ॥ २० ॥

(१९) गौतमस्मृति-८ अध्याय।

गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणान्नप्राशनचौडोपनयनं चत्वारि वेदव्रतानि स्नानं सहधर्मचारिणीसंयोगः पञ्चानां यज्ञानामनुष्ठानं देवपितृमनुष्यभूतब्रह्मणामेतेषां चाष्टकापार्वणश्राद्ध-श्रावण्याग्रहायणीचैत्र्याश्वयुजीति सप्त पाकयज्ञसंस्था अग्न्याधेयमग्निहोत्रदर्शपौर्णमासावाग्रयणं चातुर्मास्यनिरूढपशुबन्धसौत्रामणीति सप्त हविर्यज्ञसंस्था अग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशी वाजपेयोऽति-रात्रोऽप्तोर्याम इति सप्त सोमसंस्था इत्येते चत्वारिंशत्संस्काराः ॥ ३ ॥

(१) गर्भाधान, (२) पुंसवन, (३) सीमन्तोन्नयन, (४) जातकर्म, (५) नामकरण, (६) न्नप्राशन, (७) मुण्डन, (८) उपनयन, (९) ऋग्वेदका आरम्भ, (१०) यजुर्वेदका आरम्भ, (११) सामवेदका आरम्भ, (१२) अथर्वणवेदका आरम्भ, (१३) समावर्त्तनस्नान, (१४) विवाह, (१५) वयज्ञ, (१६) पितृयज्ञ, (१७) मनुष्ययज्ञ, (१८) भूतयज्ञ, (१९) ब्रह्मयज्ञ, (२०) अगहन वदी का श्राद्ध, (२१) पूस वदी ७ का श्राद्ध, (२२) माघ वदी ८ का श्राद्ध (ये ३ अष्टकाके ३ पार्वण द्ध हैं) (२३) श्रावणीकर्म, (२४) आग्रहायणीयज्ञ, (२५) चैतकी पूर्णमासीका यज्ञ, (२६) आश्वि-की पूर्णमासीका यज्ञ; अगहन वदी ८ के श्राद्धसे यहांतक ७ पाकयज्ञ कहाते हैं; (२७) अग्नियोंका स्थापन, २८) अग्निहोत्र, (२९) दर्शपौर्णमासयज्ञ, (३०) आग्रयणेष्टिक (नवान्नेष्टि), (३१) चातुर्मासयज्ञ, ३२) पशुबन्धयज्ञ, (३३) सौत्रामणियज्ञ; अग्निस्थापनसे यहांतक ७ हविर्यज्ञ कहाते हैं; (३४) अग्निष्टोम, ३५) अत्यग्निष्टोम, (३६) उक्थ्य, (३७) षोडशी, (३८) वाजपेय, (३९) अतिरात्र और (४०) प्तोर्याम; अग्निष्टोमसे यहांतक ७ सोमयज्ञ हैं, यही ४० संस्कार कहेजाते हैं ॥ ३ ॥

(२४) लध्वाश्वलायनस्मृति-३ गर्भाधानप्रकरण।

गर्भाधानं द्विजः कुर्यादृतौ प्रथम एव हि। चतुर्थदिवसादूर्ध्वं पुत्रार्थी दिवसे समे ॥ १ ॥
चरं दारुणभं पौष्णं दस्राग्नी च द्विदैवतम्। श्राद्धाहं चैव रिक्तां च हित्वाऽन्यस्मिन्विधीयते ॥ २॥
नान्दीश्राद्धं पतिः कुर्यात्स्वस्तिवाचनपूर्वकम्। उपलेपादिकं कृत्वा प्रातरौपासनादितः ॥ ३ ॥
प्रजापतेश्चरौरेकां हुत्वा चाऽऽज्याहुतीरथ। विष्णुर्योनिं नेजमेष षडेका च प्रजापतेः ॥ ४ ॥
आसीनायाः शिरः स्पृष्ट्वा प्राङ्मुख्याः पाणिना पतिः। तिष्ठञ्जपेद्दिने सूक्ते त्वयनश्च वधेन च ॥५ ॥
अग्निस्तु विश्ववस्तस्मामित्यृचौ द्वे तथैव च। सूर्योनोदिव इत्येतैः स्तुत्वा सूर्यं च पञ्चभिः ॥ ६ ॥
अश्वगन्धारसं पत्न्या दक्षिणे नासिकापुटे। उदीर्ष्वेति पठन्मन्त्रं सिञ्चेत्तद्वस्त्रशोधितम् ॥ ७ ॥
ततः स्विष्टकृदादि स्याद्वाससी च नवे तयोः। फलानि च पतिस्तस्यै प्रदद्यात्फलमन्त्रतः ॥ ८ ॥
मातुलिङ्गं नारिकेलं रम्भा खर्जूरपूगकम्। शस्तानि स्युरथान्यानि नारिङ्गादीनि वाऽपि च ॥ ९ ॥
वृषभं गां सुवर्णं च होत्रे दद्याच्च दक्षिणाम्। पुत्रबान्धनवांस्तेन भवेत्कर्त्ता न संशयः ॥ १० ॥
भोजयित्वा द्विजान्सम्यक्तोषयेद्दक्षिणादिभिः। सन्तुष्टा देवताः सर्वाः प्रयच्छन्तीप्सितं फलम्॥११॥
स्थालीपाकं चाऽऽग्रयणं गर्भसंस्कारकर्मसु। प्रातरौपासने कुर्यादग्नौकरणमेव च ॥ १२ ॥
प्रसन्नात्मा भवेत्कर्त्ता भुञ्जीत सह बन्धुभिः। तस्मिन्नेव दिने रात्रौ गर्भारोपणमिष्यते ॥ १३॥

द्विजको उचित है कि स्त्रीके प्रथम ऋतुके चौथे दिनके पश्चात् समदिनमें पुत्रकामनासे गर्भाधान कर्म ॥ १ ॥ श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, स्वाती, मूल, आश्लेषा, ज्येष्ठा, आर्द्रा, अश्विनी, कृत्तिका और शाखा नक्षत्र; श्राद्धके दिन; दोनों पक्षकी चौथ, नवमी और चतुर्दशीको छोड़कर अन्य दिनोंमें गर्भा-नका विधान करे ॥ २ ॥ प्रातः कालकी उपासना करके भूमि लीपके और प्रथम स्वस्तिवाचन करके नान्दी-

---

※ गौतमस्मृति-१ अध्याय-६ श्लोक। शङ्खस्मृति-२ अध्याय-७-से ९ श्लोक तक और मनुस्मृति-२ ध्यायके ३८-३९ श्लोकमें ऐसा ही है; किन्तु मनुस्मृति २ अध्याय ४० श्लोकमें है; कि विना यश्चित्त कियेहुए ३८ व्रात्यके साथ ब्राह्मणको किसी भांतिका सम्बन्ध नहीं करना चाहिये। याज्ञवल्क्य-ति--१अध्यायके श्लोकमें है कि व्रात्य द्विज विना व्रात्यस्तोम यज्ञ किये सावित्रीके अधिकारी नहीं होतेहैं र वसिष्ठस्मृति--११ अध्याय-५६-५८ और ५९ श्लोकमें है कि व्रात्य द्विज उद्दालक व्रत अथवा अश्वमे-ज्ञमें अवभृथ स्नान या व्रात्यस्तोम यज्ञ करनेपर जनेऊ देनेयोग्य होतेहैं।

श्राद्ध करे, चरूसे प्रजापतिको १ आहुति देवे, उसके पश्चात् "विष्णुर्योनि" और "नेजमेष", इन मन्त्रोंसे ६ और प्रजापतिको १ आहुति देवे ॥ ३-४ ॥ पूर्व मुखसे बैठीहुई अपनी भार्याका शिर खडे होकर हाथसे स्पर्श करे, "अपनश्च" और "वर्धेन च" इन दो सूक्तोंको जपे ॥ ५ ॥ "अग्निस्तु" और "विश्रवस्तमम्" इन दो ऋचाओं और "सूर्यो नोदिव" इत्यादि पांच मन्त्रोंसे सूर्यकी स्तुति करे ॥६॥ अश्वगन्धा औषधीका रस वस्त्रसे छानकर "उदीर्ष्व" इस मन्त्रको पढ़कर पत्नीके दाहने नाककी छिद्रमें छोड़े ॥ ७ ॥ उसके पश्चात् स्विष्टकृत आदि कर्म करके स्त्री और पुरुष नवीन वस्त्र पहने और फलके मन्त्रसे पति भार्याके गोदमें बिजोरा निम्बू, नारियर, केरा, खजूर, सुपारी, नारंगी आदि फल देवे ॥ ८-९ ॥ होता ब्राह्मणको बैल, गौ और सोना दक्षिणा देवे; ये सब देनेसे यजमान निःसन्देह धन और पुत्रसे युक्त होता है ॥१० ॥ ब्राह्मणोंको भोजन कराके दक्षिणासे संतुष्ट करे; इससे सब देवता संतुष्ट होकर पुरुषको मनवाञ्छित फल देतेहैं ॥११ ॥ गर्भाधान संस्कार कर्ममें प्रातःकाल उपासनाकी आगमें स्थालीपाक, आग्रयण और अग्नौकरण कर्म करे ॥ १२ ॥ उसके पश्चात् निज बन्धुओंके साथ भोजन करके प्रसन्नचित्त होकर उसीदिनकी रातमें गर्भ आरोपण करे ॥१३॥ *

४ पुंसवन और सीमन्तोन्नयनप्रकरण ।

कुर्यात्पुंसवनं मासि तृतीयेऽनवलोभनम् । सीमन्तोन्नयनं चैव चतुर्थे मासि तद्भवेत् ॥ १ ॥
नो चेत्षष्ठेऽष्टमे वाऽपि कर्त्तव्यं तद्द्वयं च हि । तावदेव भवेत्केचिद्यावत्स्याद्गर्भधारणम् ॥ २ ॥
पुष्यादित्याश्विनीहस्तविधिमूलोत्तरा मृगः । हरिपूषानुराधाश्च शस्तं पुंसवनादिकम् ॥ ३ ॥

गर्भ रह जानेपर उसके तीसरे महीनेमें पुंसवन और अनवलोभन संस्कार और चौथे महीनेमें सीमन्तोन्नयन अर्थात् सीमन्त संस्कार करे ॥ १ ॥ यदि उक्त समयपर नहीं होसकें तो छठे अथवा आठवें महीनेमें दोनों कर्मोंको करना चाहिये; कोई कोई ऋषि कहतेहैं कि सन्तान उत्पन्न होनेसे पहिले किसी महीनेमें करलेवे ॥ २॥ पुष्य, पुनर्वसु, अश्विनी, हस्त, अभिजित्, मूल, तीनों उत्तरा, मृगशिरा; श्रवण, रेवती और अनुराधा नक्षत्र पुंसवनआदि संस्कार करनेके लिये शुभ हैं ॥ ३ ॥

कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं चतुर्थ्यन्तं च पूर्ववत् । दधि माषौ यवं तस्या निधाय प्रसृतौ च तान्॥४॥
त्रिः पिबेत्किं पिबसीति पतिः पुंसवनं हि सा । गोक्ष्यापः पुनरेव स्यात्त्रिवारं पुनराचमेत् ॥ ५ ॥
सिञ्चेद् दूर्वारसं तस्या दक्षिणे नासिकापुटे । आतेगर्भ इति द्वाभ्यां सूक्ताभ्यां तावदुच्यते ॥ ६ ॥
प्रजापतये स्वाहेति जुहुयादाहुतिं चरोः । गुर्विण्या हृदयं स्पृष्ट्वा यत्ते मन्त्रमुदीरयेत् ॥ ७ ॥
धाता ददातु मन्त्रौ द्वौ तथा राकामहं च तौ । नेजमेषत्रयो मन्त्रा एको मन्त्रः प्रजापतेः ॥ ८ ॥
अष्टावाज्याहुतीर्हुत्वा त्रिशुक्लशललीकुशैः । औदुम्बरेण युग्मेन ग्लप्स्थे (द्रप्से) न सफलेन च ॥ ९॥
पूर्णसूत्रावृतेनेह सहैवैकत्रमेव च । त्रिरुन्नयेतिः गर्भिण्याः सीमन्तेन समूलतः ॥ १० ॥
कृतकेशविभागं स्याद्योषिद्भालाग्रभागतः । सीमन्तं सधवाचिह्नं सदा सौभाग्यदायकम् ॥ ११ ॥
तिष्ठन्पश्चात्प्राङ्मुखोऽग्नेरुच्चरन्भूर्भुवःस्वरोम् । चतुर्थ्योमूढतं कृत्वा विद्वायां तु निरुध्यते ॥ १२ ॥
सामस्वरेण मन्त्रं च सोमं राजानमुच्चरेत् । समीपस्थनदीनाम समुच्चार्य नमेदथ ॥ १३ ॥
पतिपुत्रवती नारी गर्भिणीमुपदेशयेत् । मा कुरु क्लेशदं कर्म गर्भसंरक्षणं कुरु ॥ १४ ॥
ततः स्विष्टकृदादि स्याद्धोमशेषं समापयेत् । पूर्ववत्फलदानानि कृत्वाऽऽचार्याय दक्षिणाम् ॥ १५॥
वृषभं धेनुसंयुक्तं दद्याद्विभवसारतः । भोजयेच्छक्तितो विप्रान्कर्मसाद्गुण्यहेतवे ॥ १६ ॥

---

* मानवगृह्यसूत्र—१ पुरुष-१४ खण्ड । विवाह होजानेपर १ वर्ष, १२ रात, ३ रात अथवा १ रात स्त्रीपुरुष मैथुन नहीं करें ॥ १४ ॥ इसीसमयमें गृहकार्यका अधिकार स्त्रीको सौंपदेवे ॥ १५ ॥ विवाहके समयकी स्त्रीके कटिमें बान्धीहुई मेखलाको खोलकर निम्नरीतिसे दोनों समागम करें । समागमसे पहिले पतिको जातं'तपसो' देखतीहुई "अपश्यं त्वा तपसा चेकितानं तपसो विभूतम् । इह प्रजामिह रयिं रराणः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकाम"॥इस मन्त्रको पत्नी पढे और पत्नीको देखताहुआ "अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वा यां तनूं ऋत्विये बाधमानाम् । उपमामुच्चायुवतिर्बभूयाः प्रजाय स्वप्रजया पुत्रकामे" इस मन्त्रको पति पढे, फिर "प्रजापतिस्तन्वं मे जुषस्व त्वष्टा देवैः सहमान इन्द्रः । विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः पुंसां बहूनां मातरौ स्याव" मन्त्रको पत्नी और "अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः । अहं प्रजा अजनयं पृथिव्या अहं जनिभ्योऽअपरीषु पुत्रान्" मन्त्रको पति पढ़े ॥ १६ ॥ फिर पुरुष "करत्" कहकर पत्नीके उपस्थेन्द्रियका और "जननी" कहकर अपने उपस्थेन्द्रियका स्पर्श करे और संयोगके अन्तमें "बृहत्" कहकर गर्भाशयका स्पर्श करे ॥ १७-१९ ॥ इसीप्रकार प्रति ऋतुकालमें दोनों समागम करें ॥ २० ॥

प्राशनं यत्पुंसवनं होमश्चानवलोभनम् । प्रतिगर्भमिदं कुर्यादाचार्यैणेह भाषितम् ॥ १७ ॥
आज्यहोमश्च शललौ कुशलयश्च निमज्जनम् । सीमन्तोन्नयनं तच्च प्रतिगर्भे न हि स्मृतम् ॥१८॥
प्रधानं पुंसवनं स्यादङ्गं चानवलोभनम् । सीमन्तं च तथैव स्यात्केचिदुन्नयनं तथा ॥ १९ ॥

पूर्वके समान चतुर्थ्यन्त विभक्तिके सहित आभ्युदयिकश्राद्ध करके पुरुष निज पत्नीके अञ्जलीमें दही, २ उर्द और१ यव रक्खे ॥४॥ पुरुष स्त्रीसे कहै कि "त्रिःपिबेत्किं पिबसि" और स्त्री कहै कि 'पुंसवनम्' उसके पश्चात् जलसे प्रोक्षण करके ३ वार आचमन करे ॥ ५ ॥ "आतगर्भ" इन दो सूक्तोंको पढ़कर स्त्रीके दहिने नाकके छिद्रमें दूबका रस छोडे ॥ ६ ॥ "प्रजापतये स्वाहा" ऐसा उच्चारण करके चरूकी आहुति देकर "यत्ते" मन्त्रको उच्चारण करके गर्भिणीस्त्रीका हृदय स्पर्शकरे ॥ ७ ॥ "धाता ददातु" २ मन्त्र "राकामहम्" २ मन्त्र, "नेजमेष" ३ मन्त्र और "प्रजापते:" १ मन्त्र इन ८ मन्त्रोंसे घीकी आठ आहुति देवे; शुक्लचिह्नवाले साहिलका एक कांटा, कुशा और गूलरके २ कच्चे फलोंका एक गुच्छा; इनको और पूर्णसूतके सहित तकुलाका ※ एक गुच्छा बनावे उससे स्त्रीके मांगको ३ बार निकाले अर्थात् उसके ललाटके बालोंको नीचेसे ऊपर तक दोतरफ करे ॥ ८-१० ॥ इसी प्रकारसे केशोंके विभाग करनेको सीमन्त कहतेहैं यह सधवा स्त्रीका चिह्न है और सदा सौभाग्यको देनेवाला है ॥ ११ ॥ अग्निके पश्चिम खड़े होकर "भूर्भुवःस्वरोम्" उच्चारण करे ॥ १२ ॥ सामवेदके स्वरसे "सोमं राजानम्" इस मन्त्रका उच्चारण करके गांवके निकटकी नदीका नाम लेवे और उसको प्रणाम करे ॥ १३ ॥ पतिवाली और पुत्रवती स्त्री उस गर्भवती स्त्रीको उपदेश देवे कि क्लेश प्राप्त होनेवाले कामको मत करो और अपने गर्भकी रक्षा करते रहो ॥ १४ ॥ पुरुषको उचित है कि स्विष्टकृत आदि कर्म और होमका बाकी कर्म समाप्त और पूर्वके समान फलदान करके आचार्यको दक्षिणा देवे ॥ १५ ॥ अपने विभवके अनुसार बैल और गौ दक्षिणा देकर कर्मके पूर्ण होनेके लिये यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ १६ ॥ आचार्योंने कहाहै कि प्राशन; पुंसवन और अनवलोभननामक होम प्रतिगर्भमें करना चाहिये ॥ १७ ॥ घीका होम, साहिलका कांटा, कुशाका मूल, जलका स्नान और सीमन्तोन्नयन; इनकी प्रतिगर्भमें आवश्यकता नहीं है ॥ १८ ॥ किसी किसीका मत है कि प्रधान कर्म पुंसवन, उसका अङ्ग अनवलोभन और सीमन्तका उन्नयनकर्म प्रति गर्भमें नहीं करना चाहिये ✠ ॥ १९ ॥

६ जातकर्मप्रकरण ।

जाते सुते पिता स्नायान्नान्दीश्राद्धं विधानतः । जातकर्म ततः कुर्यादैहिकामुष्मिकप्रदम् ॥ १ ॥
सौवर्णे राजते वाऽपि पात्रे कांस्यमयेऽपि वा । मधु सर्पिर्निषिच्याथ हिरण्येनावघर्षयेत् ॥ २ ॥
प्राशयेत्तं हिरण्येन कुमारं मधुसर्पिषी । प्रतिमन्त्रं पठेत्कर्णे हिरण्यं स्थाप्य दक्षिणे ॥ ३ ॥
तथा वामे जपेन्मेधां स्पृशेदंसावतः परम् । अश्माभव जपेदिन्द्रः श्रेष्ठान्यस्मै प्रयन्धि च ॥ ४॥
एवं कुर्यात्सुतस्यैव तूष्णीमेव च योषितः । केचिदिच्छन्त्यनादिष्टहोममन्त्रादिना परे ॥५ ॥

पिताको उचित है कि पुत्र उत्पन्न होनेपर स्नान और विधिपूर्वक नान्दीश्राद्ध करके पुत्रके कल्याणके लिये जातकर्म संस्कार करे ॥ १ ॥ सोना, रूपा अथवा कांसेके पात्रमें मधु और घीको रखकर उसमें सोना रगड़े; ॥२॥ उस मधु और घीको अंगूठीआदि किसी सोनेकी वस्तुसे उस कुमारको चटावे;उसके दोनों कानों

※ जिसको नचाकरके सूत ऐंठाजाता है उसको तकुला या बटनी कहतेहैं ।

✠ मानवगृह्यसूत्र-१ पुरुष-१५ खण्ड । गर्भस्थितिसे तीसरे छठे अथवा आठवें मासमें अरणीसे अग्निमन्थन करके जया आदि होम करे उसके बाद. अग्निसे पश्चिम बिछायेहुए कुशोंपर बैठीहुई पत्नीके शिरके सब केश खोलकर उसमें मक्खन लगावे, साहीके कांटेको, जिसमें तीन जगह श्वेत हो और पत्तों सहित शमीकी डालीको इकट्ठे कर "पुनः पत्नीमाग्निरदात्" मन्त्र पढकर उससे उसके शिरमें मांग निकाले ॥ १ ॥

१६ खण्ड । गर्भस्थितिसे आठवें महीनेमें जया आदि होम करके फलोंसे मिश्रित जलसे स्त्रीको स्नान करावे; "या ओषधयः" इस अनुवाकको पढकर स्त्रीको नया वस्त्र पहनावे; गन्ध, फूलमाला और आभूषणोंसे अलंकृत करे; और फलोंकी माला कण्ठमें पहनाकर अग्निकी प्रदक्षिणा करावे ॥ १ ॥ "प्रजां मे नर्य पाहि" मन्त्रसे अग्निका उपस्थान करके विद्वान ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ २ ॥ फूल और दक्षिणा देवे ॥३ ॥ उसके बाद स्वस्तिवाचन करावे ॥ ४ ॥ गुरुका पूजन करे ॥ ५ ॥

पर सोना रखकर दोनों कानोंके पास पवित्र मन्त्रोंको जपे; पश्चात् उस बालकके दोनों कन्धाओंका स्पर्श करके हृदयका स्पर्श करे; कन्धेके स्पर्श करनेके समय "अश्मा भव, इन्द्र: श्रेष्ठनि" और "यस्मै प्रयन्धि;" इन ३ मन्त्रोंको जपे ॥ ३-४ ॥ पुत्रका जातकर्म इस प्रकार मन्त्रोंके सहित और पुत्रीका जातकर्म मन्त्ररहित करना चाहिये कोई कोई मन्त्रसे अनादिष्टहोम करनेको कहते हैं ❀ ॥ ५ ॥

६ नामकरणप्रकरण ।

अहन्येकादशे कुर्यान्नामकर्म विधानतः । कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं द्वादशे षोडशेऽपि वा ॥ १ ॥
मार्गशीर्षं समारभ्य मासानां नाम निर्दिशेत् । नक्षत्रपादतो जातजन्मनाम तदुच्यते ॥ २ ॥
यद्वा तातपितुर्नाम भवेत्संव्यावहारिकम् । क्रमेणानेन संलिख्य नामानि च समर्चयेत् ॥ ३ ॥
समाक्षरयुतं नाम भवेत्पुंसः सुखप्रदम् । विषमं यदि तत्र श्रीसमेतं च विनिर्दिशेत् ॥ ४ ॥
आचार्येणात्र मन्त्रोऽयं नामानि तु उदाहृतः । नमस्करोत्यसौ देवं ब्राह्मणेभ्यः पिता वदेत् ॥ ५॥
त्रिस्त्रिः स्यात्प्रतिनामैवं ततः स्वस्तीति निर्दिशेत् । भवन्तोऽस्य ब्रुवन्त्वेवं प्रतिब्रूयुस्तथा द्विजाः॥६॥
तत्तन्नाम शिशोस्त्रिस्त्रिर्ब्रूयात्तत्र तथाऽऽशिषः । ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या भुञ्जीयात्सह बन्धुभिः ॥७॥

बालकके जन्मके ११ वें, १२ वें अथवा १६ वें दिन नान्दीश्राद्ध करके विधिपूर्वक नामकरण संस्कार करना चाहिये ॥ १ ॥ अगहन माससे आरम्भ करके मासनाम रखना चाहिये; जन्मके नक्षत्रके चरण-सम्बन्धी नामको जन्मनाम कहतेहैं ॥ २ ॥ अथवा व्यवहारके लिये पितामहसम्बन्धी नाम रक्खे; क्रमसे इन नामोंको लिखकर इनका पूजन करे ॥ ३ ॥ पुरुषका समअक्षरका नाम सुखदायक है; यदि विषम अक्षरका नाम होवे तो उसके आदिमें श्री लगादेना चाहिये ॥ ४ ॥ आचार्य उसी नाम रूप मन्त्रसे पूजा करावे और पिता उसीसे देवता तथा ब्राह्मणोंको प्रणाम करावे ॥ ५ ॥ पिताके कहनेपर ब्राह्मणलोग कुमारके प्रति नाममें तीन तीन बार स्वस्ति कहें ॥६॥ एक एक नाम तीन तीन बार कुमारको सुनावे, उसके बाद आशीर्वाद देवे। पिता यथाशक्ति ब्राह्मणोंको खिलावे और आप बान्धवोंसहित भोजन करे ⓐ ॥ ७ ॥

७ निष्क्रमणप्रकरण ।

मासे चैवं चतुर्थे तु कुर्यान्निष्क्रमणं शिशोः । कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धमादायाङ्के शिशुं पिता ॥ १ ॥
स्वति नो मिमीतां सूक्तं जपन्देवादिकं नयेत् । आशुः शिशान इत्येतत्पठेत्तं श्वशुरालयम् ॥ २॥
नीत्वाऽन्यस्य गृहं वाऽपि प्राङ्गणे वाऽर्कमीक्षयेत् । तच्चक्षुरिति मन्त्रेण दृष्ट्वार्कं प्रविशेद्गृहम् ॥ ३ ॥

❀ मानवगृह्यसूत्र-१ पुरुष-१७ खण्ड । पुत्र उत्पन्न हो तो गुरुआदिको श्रेष्ठ दक्षिणा देवे ॥ १ ॥ अरणीसे अग्नि मन्थन करके उसमें आयुष्यहोम करे; 'अग्नेरायुरसि' इस अनुवाकसे प्रत्येक ऋचासे प्रत्येक आवृत्तिमें २१, ३१ बार घीकी आहुति करे ॥२-३ ॥ होमके अन्तमें बाकी बचे घीमें दही, मधु और जलको मिलाकर सुवर्णके टुकडेसे तीन बार बालकको चटावे ॥ ४ ॥ "अश्माभव, परशुर्भव, हिण्यमस्तृतं भव, वेदो वै पुत्रनामासि, स जीव शरदः शतम्," इस मन्त्रके ५. टुकडोंको पढतेहुए बालकके मुखकी ओर तथा मुखके समीप प्रदक्षिणा करके प्रादेश द्वारा सङ्केत करे ढाकके पत्तोंमेंसे बीचके पत्तेको लपेटकर उसका एकछोर बालकके कानमें और एक अपने मुखमें लगाके ये मन्त्र पढे;-'भूस्ते ददामि' दहिने, 'भुवस्ते ददामि' बायें, 'स्वस्ते ददामि' दहिने, और 'भूर्भुवः स्वस्ते ददामि' बायें, कानमें जपे ॥ ६ ॥ फिर 'इषंपिन्वोर्जंपिन्व' मन्त्र पढकर पत्नीके दोनों स्तनोंको धोके बालकको पिलावे ॥ ७ ॥

ⓐ मानवगृह्यसूत्र-१ पुरुष-१८ खण्ड । जन्मसे दशवीं रात बीतनेपर ग्यारहवें दिन पुत्रका नाम धरे । दो अथवा चार अक्षरका नाम, जिसमें घोषप्रयत्नका अक्षर अर्थात् ग, ज,ड,द,ब और घ,झ,ढ,ध और भ आदिमें और अन्तस्थ अक्षर अर्थात् य, र, ल और व मध्यमें रहे, पुत्रका धरे और तीन अक्षरका दकारान्त नाम कन्याका रक्खे ॥ १ ॥ वह इसी नाममें गुरु आदिको प्रणाम करे । पुत्रके नामके अन्तमें पिताका नाम लगाया जाय; किन्तु गुरु आदिके प्रणाम करनेके समय पुत्र अपने पिताका नाम छोडकर केवल अपना नाम कहे । जिस नक्षत्रमें जन्म हो उसके देवता सम्बन्धी अथवा उस नक्षत्र सम्बन्धी नाम यशदायक है; किन्तु देवताका साक्षात् नाम रखना निषेध है अर्थात् इन्द्र नाम न रखकर इन्द्रदत्त आदि रक्खे ॥ २ ॥ स्नान करके पुत्रके सहित अग्निके पास बैठे ॥ ३ ॥ धोयेहुए हाथोंमें मक्खन, लगाकर अग्निमें तपा २ कर और "अग्ने ह्वावा तेजसा सूर्यस्य वर्चसा विश्वेषां त्वा देवानां क्रतुनाभिमृशामि" मन्त्र पढ़कर ब्राह्मणसे आज्ञा ले बच्चाका स्पर्श कर ॥ ४ ॥ कर्म करानेवाले ब्राह्मणको दक्षिणा देवे ॥ ५ ॥

पिताको उचित है कि चौथे महीनेमें नान्दीश्राद्ध करके कुमारको गोदमें लेकर घरसे बाहर निकाले ॥ १ ॥ "स्वस्ति नो मिमीताम्" इस सूक्तको जपतेहुए बालकको देवता आदिके पास ले जावे; "आशुःशिशानः" इस मन्त्रको जपते हुए अपने ससुरके घर अथवा अन्य किसीके घर लेजावे अथवा आंगनमें खड़े होकर सूर्यका दर्शन करावे और "तच्चक्षुः" इस मन्त्रको पढ़कर बालकको सूर्यका दर्शन कराके अपने घरमें जावे❀ ॥२–३॥

८ अन्नप्राशनप्रकरण ।

षष्ठेऽन्नप्राशनं कुर्यान्मासे पुंस्यष्टमेऽथ वा । दशमे द्वादशे मासि केचिदेवं वदन्ति हि ॥ १ ॥
कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं शुभे चैव दिने पिता । सौवर्णे राजते पात्रे कांस्ये वाऽथ नवे शुभे ॥ २ ॥
क्षीराज्यमधुदध्यन्नं विधाय प्राशयेच्छिशून् । मन्त्रेणान्नपतेऽन्नस्य हिरण्येन स्रुवेण च ॥ ३ ॥
पाणिना सपवित्रेण जलं चापि हि पाययेत् । दत्त्वा विप्राय तत्पात्रं तूष्णीमेव च योषितः ॥ ४ ॥
ततो विभवसारेण ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् । स्वयं चैव तु भुञ्जीयात्समाहितमना भवेत् ॥ ५ ॥

६ठे महीनेमें, किसी किसीके मतके अनुसार ८वें, १०वें अथवा १२वें महीनेमें बालकको अन्नप्राशन कराना चाहिये ॥ १ ॥ पिताको उचित है कि शुभदिनमें नन्दीश्राद्ध करके सोना, रूपा अथवा कांसेके नये बर्त्तनमें दूध, दही, घी, मधु और अन्न रखकर "अन्नपतेन्नस्य" इस मन्त्रको पढकर सोनाके चिमच अथवा अंगूठी युक्त हाथसे या स्रुवासे बालकको भोजन करावे ॥ २–३ ॥ पवित्रीयुक्त हाथसे उसको जल पिलावे; वह वर्तन ब्राह्मणको देदेवे; पुत्रीका अन्नप्राशनकर्म विना मन्त्रका करे ॥ ४ ॥ अन्तमें अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको खिलाकर अपने मनको समाधान करके भोजन करे ▣ ॥ ५ ॥

९ चौलकर्मप्रकरण ।

तृतीये वत्सरे चौलं बालकस्य विधीयते । शुभे चैव दिने मासि विहितं चोत्तरायणे ॥ १ ॥
कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं पूर्वेद्युरपरेऽहनि । प्रातःसन्ध्यादिकं कृत्वा नान्दीश्राद्धं परेऽहनि ॥ २ ॥
प्रा[illegible]स्य संकल्प्य कुर्वीत स्थण्डिलादिकम् । पात्रासादनपर्यन्तं कृत्वा धान्यानि पूरयेत् ॥ ३ ॥
[illegible]वेषु प्राक्संस्थेषु नवेषु च । तेषु वै क्रमतो व्रीहियवमाषतिलांश्च हि ॥ ४ ॥
[illegible]वे च विन्यसेद् वृषगोमयम् । तदुत्तरे न[illegible]ऽन्यस्मिञ्शमीपर्णानि पूरयेत् ॥ ५ ॥
[illegible]तः कुर्यात्कृत्वोत्तानानि पूरयेत् । ततश्च जुहुयादाज्यमाग्नेश्चोतं चतसृभिः ॥ ६ ॥
अग्न[illegible]षि पवस इत्येका च प्रजापतेः । एता एवोपनयने गोदाने च विवाहिके ॥ ७ ॥
मातुरङ्कोपविष्टस्य कुमारस्य तु चैव हि । पश्चात्स्थित्वा पिता शीतं जलमादाय पाणिना ॥ ८ ॥
दक्षिणेनाथ सव्येन पाणिनोष्णं जलं तथा । दक्षिणोत्तरयोस्तत्र निनयेत्केशपक्षयोः ॥ ९ ॥
उष्णेन वायमन्त्रेण जलधारे तयोश्च ते । अनामिकया चाऽऽदाय नवनीतं तथा दधि ॥ १० ॥
प्रदक्षिणप्रकारेण वामकर्णप्रदेशतः । सकेशान्धारयेद्ब्रह्मा त्रींस्त्रीन्प्रागग्रकान्कुशान् ॥ ११ ॥
आचार्यश्छेदयेदेतानोपधेमन्त्रमुच्चरेत् । छेदयेद्वामकर्णान्तं त्रिश्चैवादितिरुच्चरेत् ॥ १२ ॥
क्षुरेणेति च तीक्ष्णेन ताम्रयुक्तेन चैव हि । छेदितान्सुत आदाय मातुर्हस्ते निवेदयेत् ॥ १३ ॥
विन्यसेत्ताञ्शमीपर्णैः सहाऽऽनडुहगोमये । येनावपत्प्रथमं स्याचेन धाता द्वितीयकः ॥ १४ ॥
तृतीये येन भूयश्च सर्वैरेव चतुर्थकम् । एवं च दक्षिणे कृत्वा त्रिवार तूत्तरे तथा ॥ १५ ॥

❀ मानवगृह्यसूत्र—१ पुरुष--१९ खण्ड । अब सूर्यके दर्शन करानेकी विधि अर्थात् निष्क्रमण संस्कार कहतेहैं ॥ १ ॥ बालकके जन्मके चौथे मासमें दूधमें स्थालीपाक बनाकर उसका इस प्रकारसे होम करे ॥२॥ "आदित्यः शुक्र उदगात्पुरस्तात, हंसः शुचिषत्, यदेदेनम्" इन ३ मन्त्रोंसे सूर्यको आहुति देवे ॥ ३ ॥ "उदु-त्यं जातवेदसम्" मन्त्रसे सूर्यका उपस्थान करे; उसके बाद "नमस्ते अस्तु भगवञ्छतरश्मे तमोनुद । जहि मे देव दौर्भाग्यं सौभाग्येन मां संयोजयस्व" इस मन्त्रसे बालकको सूर्यका दर्शन करावे ॥४ ॥ इसके पश्चात् ब्राह्मणको भोजन करावै और एक बैल दक्षिणामें देवै ॥ ५--६ ॥

▣ मानवगृह्यसूत्र–१ पुरुष--२० खण्ड। अब अन्नप्राशन कहतेहैं ॥ १ ॥ पांचवें अथवा छठे महीनेमें दूधमें स्थालीपाक बनाकर बालकको स्नान करावे; भूषण पहनाकर नया वस्त्र पहनावे आचारादिके बाद "अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि" मन्त्रसे स्थालीपाकसे होम करे और "अन्नात्परिस्रुतः" इस ऋचाको पढकर बाल-कको सुवर्णसे स्थालीपाक खिलावे ॥ २ ॥ रत्न, सुवर्ण, बर्तन आदि और हथियार बालकको दिखावे ॥ ॥ ३ ॥ इनमेंसे जिसकी इच्छा हो उसको बालक ग्रहण करे ॥ ४ ॥ इसके पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराके दक्षिणामें वस्त्र देवे ॥ ५ ॥

यत्क्षुरेणेति मन्त्रेण क्षुरधारां जलेन च । निमृज्येन्मर्म तत्कृत्वा नापिताय प्रदापयेत् ॥ १६ ॥
यावन्तः प्रवरास्तस्य शिखामध्ये च पार्श्वयोः । पश्चात्पूर्वे तथा पञ्चप्रवराणां शिखाः स्मृताः ॥ १७॥
अभ्यञ्जयेत्कुमारं तमानयेदग्निसन्निधौ । ततः स्विष्टकृतं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥ १८ ॥
चौलकर्मादितश्चैव यावद्वैवाहिकं भवेत् । तावत्स्याल्लौकिको ह्यग्निरिति वेदविदो विदुः ॥ २२ ॥

जन्मके तीसरे वर्ष सूर्यके उत्तरायण रहनेपर शुभमहीनेमें और शुभदिनमें बालकका चूडाकर्म अर्थात् मुण्डन करना चाहिये ॥ १ ॥ पिताको उचित है कि कर्मके दिनसे १ दिन पहिले अथवा उसीदिन प्रातःकाल सन्ध्या आदि कर्म करके नान्दीश्राद्ध करे ॥२॥ प्राणायाम पूर्वक संकल्प करके होमके लिये वेदी और सब वस्तुओंको तैयार करके धान्योंको पात्रोंमें भरे॥३॥ अग्निकी उत्तर ओर पश्चिमसे पूर्वतक४ नई ढकनी रखकर उनमें क्रमसे व्रीहि, यव, उर्द और तिल भरदेवे ॥ ४ ॥ आगेकी ढकनीमें बैलका गोबर रक्खे और उसके उत्तरकी ढकनीमें शमीकी पत्तियां भरे ॥५॥ आघार पर्यन्त आहुति करनेके पश्चात् पात्रोंको सीधा करके भरे, उसके पश्चात् "अग्निश्च" इत्यादि४ मन्त्रोंसे घीका हवन करे ॥६॥"अग्नऽआयूंषि पवसे" इस मन्त्रसे १ आहुति देवे; उसके पश्चात् प्रजापतिको १ आहुति देवे; इतनीही आहुति उपनयन, गोदान और विवादमें करे ॥ ७ ॥ पिताको उचित है कि माताके गोदमें बैठेहुये बालकके पीछे बैठकर हाथमें ठंढे जल मिलेहुए गरम जल लेकर कुमारके सिरके दाहने और बांयेंके भागोंपर गिरावे ॥ ८-९ ॥ "उष्णेन वाय" इस मन्त्रको पढकर बालकके दोनों ओरके केशोंपर जलधारा देवे; अनामिका अंगुलीसे मक्खन और दही लेकरके केशोंमें लगावे ॥ १० ॥ ब्रह्मा ब्राह्मण बालकके दाहने कानसे बांयें कानतकके केशके लटोंमें प्रदक्षिणक्रमसे तीन तीन कुशा, जिनके अग्रभाग पूर्वको रहें, बान्धे ॥ ११ ॥ आचार्य "औषधे" इस मन्त्रका उच्चारण करके लटों को काटे; "अदिति" इस मन्त्रको पढ़कर दाहने कानसे बांये कानतक बालकके केशको ३ बार भिगोवे ॥ ॥ १२ ॥ ताम्बके बेंट लगेहुए चोखे छूरेसे कटेहुए केशको बालक माताके हाथमें देवे ॥ १३ ॥ शमीके पत्र और बैलके गोबरयुक्त पात्रमें उन केशोंको माता रखदेवे; पहिलेमें "येनावपत्" दूसरेमें "येन धाता" तीसरेमें "येन भूयः" और चौथे लटके काटनेमें सब मन्त्र उच्चारण करे; इस प्रकारसे ३ बार दाहने और ३ बार बांये (लट काटनेके समय) मन्त्र पढ़े ॥ १४---१५ ॥ "यत्क्षुरेण" इस मन्त्रसे क्षुराकी धारको [illegible]से धोकर उसको चोखा करके नाईको देवे ॥ १६ ॥ जिसके जितने प्रवर हों उसको उतनी ही शिखा [illegible] चाहिये; जिसके ५ प्रवर होवें उसको १ मध्यमें, १ आगे, १ पीछे, १ दाहने और १ बांये शिखा [illegible] उचित है ॥ १७ ॥ कुमारको उबटन लगाकर और स्नान कराके अग्निके पास लावे और स्विष्ट[illegible] होम करके होमका बाकी कर्म समाप्त करे ॥ १८ ॥ विद्वानोंने कहा है कि चूड़ाकर्म आदिसे विवाह [illegible]कके सब कर्म लौकिक अग्निमें करना चाहिये ॥ २२ ॥

१० उपनयनप्रकरण ।

ब्राह्मणस्याष्टमे वर्षे विहितं चोपनायनम् । सप्तमे चाथ वा कुर्यात्सर्वाचार्यमतं भवेत् ॥ १ ॥
कृत्वाऽभ्युदयिकं श्राद्धमावाह्य कुलदेवताः । मण्डपाद्यर्चनं कृत्वा भोजयेच्च द्विजान्स्वयम् ॥ २ ॥

मानवगृह्यसूत्र—१ पुरुष–२१ खण्ड । बालकके आयुके पौने तीन वर्ष बीत जानेपर जब उत्तरायण, शुक्लपक्ष और पुण्य नक्षत्र हो तब नवमी भिन्न तिथिमें बालकका मुण्डन करावे ॥ १ ॥ आघाराज्यभागादिके पश्चात् जयादि होम करे । " उष्णेन वायुरुदकेनेद्यजमानस्यायुषा । सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे" इस ऋचाको पढ़कर गर्म जलको अभिमन्त्रित करे ॥ २ ॥ " अदितिः केशान् वपत्वाप उन्दन्तु जीवसे । धारयतु प्रजापतिः पुनःपुनः स्वस्तये" इस ऋचाको पढकर गर्म जलसे बालकके बालोंको भिगोवे ॥ ३ ॥ "ओषधे त्रायस्वैनम्" मन्त्र पढ़कर शिरके दहिने बालोंके बीचमें कुशाको बान्धे ॥ ४ ॥ "स्वधितेमैनं हिंसीः" मन्त्र पढ़कर कुशासहित बालोंपर छुरा रक्खे ॥५॥"येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य केशान् तेन ब्राह्मणो वपत्वायुष्मानयं जरदष्टिरस्तु ॥ येन पूषा बृहस्पतेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत् । तेन ते वपाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय जीवसे ॥ येन भूयश्चरात्ययं ज्योक्च पश्यति सूर्यः । तेन ते वपाम्यायुषे सुश्लोक्याय स्वस्तये" इन ३ मन्त्रोंमें कुशासहित केशोंको ३ बार काटे ॥ ६ ॥ "यत्क्षुरेण वर्त्तयता सुतेजसा वातर्वपसि केशान् । शुंधि शिरो मास्यायुः प्रमोषीः" इस मन्त्रको पढकर छुरा नाईको देवे ॥ ७॥ "मा ते केशाननुगाद्वर्च एतत्तथा धाता दधातु ते ॥ तुभ्यमिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिः सविता वर्च आदधुः" इस मन्त्रसे नाईको अभिमन्त्रित करे ॥ ८ ॥ नाईके बनानेसे गिरतेहुए बालोंको सुहृद्भावसे लेलेकर गौके हरे गोबरके पिण्डपर रखताजावे ॥ ९ ॥ "उप्त्वाय केशान् वरुणस्य राज्ञो बृहस्पतिः सविता विष्णुरग्निः । तेभ्यो निधानं महतं न विन्दन्नन्तरा द्यावापृथिव्योरपस्तुः" इसको पढतेहुए बालोंके सहित गोबरके पिण्डको पूर्व अथवा उत्तर लेजावे ॥ १० ॥ बालोंसहित गोबरके पिण्डको पत्नीके हाथोंसे स्पर्श करावे; ऐसा श्रुतिमें लिखा है ॥ ११ ॥ कर्म करानेवाले पुरोहितको श्रेष्ठ दक्षिणा देवे और नाईको केशर, गुड़ और कुटेहुए तिल दे ॥ १२ ॥

अथापरेद्युरभ्यज्य कुमारं भोजयेत्ततः। वपेद्भुक्तवतः केशाम्मात्रा सहैकभाजने ॥ ३ ॥
चौलाङ्गस्थापिते ये च शिखे द्वे तेऽपि वापयेत् । सकेशेऽपि कुमारस्य हित्वैकां मध्यमस्थिताम् ॥४॥
आसीनस्यान्तिके स्नातं कुमारमुपवेशयेत् । पितुश्च प्राङ्मुखस्येह प्रत्यङ्मुखमलंकृतम् ॥ ५ ॥
धृत्वाऽञ्जलिं कुमारस्य सुवर्णफलसंयुतम् । मुहूर्त्तकालपर्यन्तमसमीक्ष्य परस्परम् ॥ ६ ॥
ध्यायन्देवान्सुमुहूर्त्ते मुहूर्त्ते पितुरञ्जलौ । दत्त्वा फलमसौ तस्य निदध्यात्पादयोः शिरः ॥ ७ ॥
शिरः स्पृशेत्पिता तस्य स्वाङ्के तमुपवेशयेत् । ये यज्ञेन पठेत्सूक्तमाचार्यो ब्राह्मणैः सह ॥ ८ ॥
आज्यसंस्कारपर्यन्तं प्राणायामादिपूर्वकम् । कृत्वा नवं ततो दद्यात्कौपीनं कटिसूत्रकम् ॥ ९ ॥
धारयित्वा ततो दद्याद्वाससी युवमित्यृचा । एकं स्यात्परिधानार्थमेकं प्रावरणाय हि ॥ १० ॥
इच्छन्ति केचिदैणेयमृक्सामाभ्यां तथाऽजिनम् । उपवीतं ततो दद्याद्यज्ञोपवीतमन्त्रतः ॥ ११ ॥

सब आचार्योंका मत है कि ब्राह्मणका जनेऊ संस्कार ८ वें अथवा ७ वें वर्षमें करना चाहिये ॥ १ ॥ संस्कार करनेवालेको उचित है कि नान्दीश्राद्ध करनेके पश्चात् मण्डपमें कुलदेवताका आवाहन करके पूजन करे और ब्राह्मणोंको भोजन कराके आप भोजन करे ॥ २ ॥ दूसरे दिन कुमारको उबटना लगाके स्नान करावे, बाद माताके सहित एकपात्रमें उसको भोजन करावे, उसके पश्चात् उसका मुण्डन करावे ॥३ ॥ चूड़ाकर्मके समयकी रक्खीहुई दोनों शिखाओंको भी मुण्डवादेवे; केशके सहित कुमार होवे तो सिरके मध्यमें शिखा छोड़कर मुण्डन करादेवे ॥ ४ ॥ कुमारको स्नान कराके आचार्यके पास बैठावे; पिता पूर्व मुखसे रहे और कुमार अलङ्कार युक्त होकर उसके सामने पश्चिम मुखसे खड़ा होवे ॥ ५ ॥ कुमार अञ्जलीमें सोना और फल लेवे; उससमय मुहूर्त पर्यन्त कुमार पिताको और पिता कुमारको नहीं देखे ॥ ६ ॥ कुमार शुभ मुहूर्तमें देवताका ध्यान करके पिताकी अञ्जलीमें फलको देवे और उसके चरणपर अपने सिरको रक्खे ॥ ७ ॥ पिता कुमारका सिर स्पर्श करके उसको अपने गोदमें बैठावे; आचार्य ब्राह्मणोंके सहित "ये यज्ञेन" सूक्तको पढे ॥ ८ ॥ प्राणायाम पूर्वक घृत संस्कारतक कम करके नवीन कौपीन और करधनी कुमारको देवे ॥ ९ ॥ कौपीन और कटिसूत्र धारण करानेके पश्चात् "युवम्" मन्त्रको पढकर एक वस्त्र पहननेके लिये और एक वस्त्र ओढनेके लिये कुमारको देदेवे ॥ १० ॥ किसी किसीका मत है कि ऋग्वेदी और सामवेदी ब्राह्मणको मृगचर्म देवे; "यज्ञोपवीतम्" मन्त्रको पढकर कुमारको जनेऊ देवे ॥ ११ ॥

आचम्याथ वटुर्गच्छेत्पुरतश्चोत्तरे गुरोः । दृष्ट्वा पात्रं तथाऽऽगत्य दक्षिणे तूपवेशयेत् ॥ १२ ॥
कृत्वाऽऽज्याहुतिपर्यन्तं बर्हिरास्तरणादिकम् । कुमारः पूर्ववद्गच्छेदुदगग्नेर्गुरोश्च हि ॥ १३ ॥
आचार्यः प्राङ्मुखस्तिष्ठेद्वटुः प्रत्यङ्मुखस्तथा । आचार्यः पूरयेत्तत्र कुमारस्याञ्जलौ जलम् ॥ १४॥
सजले चाञ्जलौ तस्य गन्धपुष्पाणि चाऽऽवपेत् । सुवर्णं च यथाशक्ति फलैः क्रमुकजैः सह ॥ १५॥
आचार्यस्याञ्जलौ ब्रह्मा पूरयेत्सलिलं च तत् । आचार्यो मन्त्रमुच्चार्य तत्सवितुर्वृणीमहे ॥ १६ ॥
कुमारस्याञ्जलौ चैव विनयेत्स्वस्य चाञ्जलिम् । ध्यायन्कुमार आदित्यमर्घ्यपात्रे निवेदयेत् ॥ १७ ॥
देवस्यत्वेति गृह्णीयात्साङ्गुष्ठं करमस्य च । असौ शर्मेति दीर्घायुर्भवत्विति वदेत्पिता ॥ १८॥
अथ वाऽसौपदे नाम सम्बुद्ध्या ऽस्य नामकम् । उच्चार्य शर्मदीर्घायुर्भवेत्येके वदन्ति हि ॥ १९॥
एवं त्रिः पूर्ववच्चैव मन्त्रोऽन्यः स्यात्करग्रहे । सविता तेऽग्रमेकः स्यादग्निराचार्य एव च ॥ २० ॥
ईक्षयेद्वटुरादित्यं देवं सवितृमन्त्रतः । आवर्तयेत्कुमारं तं पूर्वार्धर्चेन चैव हि ॥ २१ ॥
पाणिभ्यामुत्तरेणासौ पाणीवाऽस्य हृदि स्पृशेत् । एवं कृत्वा पुनश्चामुं दक्षिणे वटुमानयेत् ॥ २२ ॥
तूष्णीं समिधमादाय निदध्यादनले च ताम् । मन्त्रेणाग्नय इत्यत्र वदन्त्येके महर्षयः ॥ २३ ॥
ओष्ठौ विलोमकौ कृत्वा पाणिद्वयतलेन च । त्रिवारं प्रतिमन्त्रेण तेजसा मेति चैव हि ॥ २४ ॥
सूत्रोदितान्मयीत्यादीन्मन्त्रांस्तिष्ठञ्जपेदथ । मानस्तोकेऽनया भाले त्रिपुण्ड्रं धारयेत्क्रमात् ॥ २५ ॥
हृदि नाभौ तथा बाह्वोर्मस्तके चापि केचन । त्र्यायुषं ताञ्जपेन्मन्त्रानुपस्थायोंचमेस्वरः ॥ २६ ॥
पुरतः पितुरासीनो ब्रह्मचारी कुशासने । गायत्रीमनुगृह्णीयादुपांशुप्रत्यगाननः ॥ २७ ॥
पूर्ववदुपविश्यासावन्वाच्य जानु दक्षिणम् । फलाक्षतसुवर्णं च गुरवे तन्निवेदयेत् ॥ २८ ॥
अधीहीत्यादिकं मन्त्रं समुच्चार्य यथाविधि । नमस्कुर्याद् गुरोः पादौ धृत्वा हस्तद्वयेन च ॥ २९ ॥
ब्राह्मणोऽहं भवानीह गुरोऽहं ते प्रसादतः । गायत्रीं मामनुब्रूहि शुद्धात्मा सर्वदाऽस्मि हि ॥ ३० ॥
संगृह्य पाणी पाणिभ्यां स्वस्य च ब्रह्मचारिणः । वाससाऽऽच्छादनं कृत्वा गायत्रीमनुवाचयेत् ॥३१॥
उच्चार्य प्रणवं चाऽऽदौ भूर्भुवः स्वस्ततः परम् । पादमर्धमृचं चैव त यथाशक्ति वाचयेत् ॥ ३२ ॥

पाणिना हृदयं तस्य स्पृष्ट्वा ममव्रतं जपेत् । प्राणायाम ततः कृत्वा ब्रह्मचार्येव नेतरः ॥ ३३ ॥
आबध्य मेखलां तस्य प्रावेयामेत्यृचं जपेत् । एषक्षेत्यनया दण्डं धारयित्वा दिशेद्व्रतम् ॥ ३४ ॥
ब्रह्मचर्यादिकं भिक्षां ददात्वित्यन्त एव च । ततः स्विष्टकृतं हुत्वा होमशेषं समाप्य च ॥ ३५ ॥
याचयेत्प्रथमां भिक्षां पितरं मातरं च वा । पितरं यदि याचेत भवान्भिक्षां ददात्विति ॥ ३६ ॥
भवतीति पदं चोक्त्वा भिक्षां देहीति याचयेत् । मातरं चाग्र एवेति गत्वा पात्रं करान्तिके ॥ ३७॥
तण्डुलान्सफलान्दद्याद्भिक्षार्थं जननी तु च । होमार्थं तण्डुलान्मात्रे दत्त्वा शेषं गुरोरथ ॥ ३८ ॥

ब्रह्मचारीको उचित है कि आचमन करके गुरुके पाससे उत्तर ओर जावे और पात्रको देखकर लौटकर गुरुके दक्षिण बैठे॥१२॥बर्हिस्तरणादि कर्मसे आहुति तक कर्म करके पूर्वके समान अग्निके उत्तर गुरुके पास जावे१३॥ आचार्य पूर्व मुखसे और कुमार पश्चिममुखसे खड़ा होवे; अचार्य कुमारकी अंजलीमें जल भरे ॥ १४ ॥ उस जलमें प्रथम चन्दन, फूल, फल, सोपारी और यथाशक्ति सोना डालदेवे ॥ १५ ॥ ब्रह्मा ब्राह्मण आचार्यकी अञ्जलीमें वह जल भरे; आचार्य "तत्सवितुर्वृणीमहे" मन्त्रको पढकर अपनी अञ्जलीका जल कुमारकी अञ्जलीमें देवे, कुमार सूर्यका ध्यान करके अर्घपात्रमें अञ्जलीका जल छोडे ॥ १६-१७ ॥ पिता "देवस्यत्वा" मन्त्रको पढ़कर अंगूठेके सहित कुमारका हाथ ग्रहण करके कहे कि अमुक शर्मा दीर्घायु होवे ॥ १८ ॥ अथवा "असौ" पदके स्थानमें सम्बोधनयुक्त कुमारका नाम लेवे; एक आचार्यका मत है कि " शर्मदीर्घायुर्भव" ऐसा उच्चारण करे ॥ १९ ॥ इसीप्रकारसे३वार कुमारका हाथ ग्रहण करे; दूसरी बार हाथ ग्रहण करनेके समय"सविताते" और तीसरी बार हाथ ग्रहणके समय "अग्निराचार्यः" मन्त्र पढे ॥२० ॥ वह कुमार सावित्री मन्त्र पढकर सूर्यको देखे और आचार्य मन्त्रके पूर्वका आधा भाग कुमारसे पढावे ॥२१॥ अपने दोनों हाथोंसे कुमारके दोनों हाथोंका अथवा एक हाथसे उसके हृदयका स्पर्श करे; उसके बाद कुमारको दक्षिणमें लावे ॥ २२ ॥ समिधा काष्ठको ग्रहण करके विना मन्त्र पढेहुए अग्निमें छोड़े, एक ऋषि कहतेहैं कि "अग्नये" मन्त्र पढकर छोडना चाहिये ॥ २३ ॥ ओष्ठोंको उलटे करके दोनों हाथोंसे अञ्जली बान्धके प्रति मन्त्रको तीन बार पढकर होम करे ॥ २४ ॥ सूत्रमें कहेहुए "मयी" इत्यादि मन्त्रोंको खड़े होकर जपे "मानस्तोके" मन्त्रसे ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥ २५ ॥ किसीका मत है कि हृदय, नाभि, बाहु और ललाटम धारण करे, उस समय "त्र्यायुपञ्जमदग्नेः" मन्त्रको जपे और "ओंचमेस्वरः" मन्त्रसे प्रणाम करे ॥ २६ ॥ ब्रह्मचारी अपने पिताके आगे पश्चिममुखसे कुशासनपर बैठकर गायत्री मन्त्रको इसप्रकार ग्रहण करे जिसमें अन्य कोई नहीं सुने ॥ २७ ॥ कुमारको उचित है कि पूर्ववत् बैठकर दाहनी जंघाको नवाके फल, अक्षत, और सोना गुरुको देवे ॥ २८ ॥ "अधीहि" इत्यादि मन्त्रोंको यथाविधि उच्चारण करके दोनो हाथोंसे गुरुके चरणोंका स्पर्श करके गुरुको नमस्कार करे ॥ २९ ॥ ऐसा कहे कि हे गुरु मैं आपके प्रसादसे ब्राह्मण हुआ;मैं सदा शुद्धात्मा हूँ. आप मुझको गायत्रीका उपदेश देवें ॥३० ॥ गुरु कुमारके दोनों हाथोंको ग्रहण करके और वस्त्रसे छाया करके कुमारको गायत्री उपदेश करे ॥ ३१ ॥ गुरुको चाहिये कि प्रथम "प्रणव" उसके पश्चात् "भूर्भुवः स्वः" कहके गायत्रीके पहिली बारके आवर्तनमें चौथाई चौथाई, दूसरी बार आधा आधा और तीसरी बार सम्पूर्ण गायत्री यथा शक्ति कुमारसे कहलावे ॥ ३२॥ "ममव्रतं" मन्त्रको जपकर हाथसे कुमारका हृदय स्पर्श करे, उसके पश्चात् ब्रह्मचारी अर्थात् कुमार प्राणायाम करे; नहीं ॥ ३३ ॥ आचार्य ब्रह्मचारीको मेखला बान्धनेके समय "प्रावेपाम्" मन्त्रको जपे; "एषक्ष" मन्त्रसे उसको दण्ड ग्रहण कराके व्रतका उपदेश देवे ॥ ३४ ॥ ब्रह्मचर्य कर्मके आरम्भसे "भिक्षां ददातु" तक कर्म होजानेपर स्विष्टकृत् करके बाकी होमका काम समाप्त करे ॥ ३५ ॥ ब्रह्मचारीको उचित है कि पहलीबार पिता अथवा मातासे भिक्षा मांगे; यदि पितासे मांगे तो ऐसा कहे कि "भवान् भिक्षां ददातु" ॥ ३६ ॥ यदि मातासे मांगना होय तो पात्र हाथमें लेकर माताके आगे जावे और कहै कि "भवति भिक्षां देहि" ॥ ३७ ॥ माता कुमारको फलके सहित चावल भिक्षा देवे; कुमार होमके लिये माताको चावल देकर बाकी सब भिक्षा गुरुको अर्पण करे ॥ ३८ ॥

॥ मानवगृह्यसूत्र—१ पुरुष-२२ खण्ड । सातवें अथवा नौवें वर्षमें उपनयन संस्कार करावे ॥१ ॥ बालकके संरक्षकको उचित है कि बालकका क्षौर कराके उसको स्नान करावे,उसकी आंखोंमें अञ्जन और शिर आदिमें मक्खन लगावे और उसको अंगूठी आदि आभूषण तथा बनाया हुआ यज्ञोपवीत पहनावे । आचार्य बालकके निकट जाकर "आगन्त्रा समगन्महि प्रथममर्तिं युयातु नः । अरिष्टाः संचरेमहि स्वस्ति चरतादिशः । स्वस्त्या गृहेभ्यः" इस मन्त्रको जपे॥२॥ इसके अनन्तर बालकको नवीन वस्त्र देवे।"या अकृन्तन्या अतन्वन्या आवन्या अवाहरन् । याश्चाग्नादेव्योऽन्तानभितोऽततनन्त । तास्त्वा देव्यो जरसे संव्ययन्त्वायुष्मन्निदं परिधत्स्व वासः" इस मन्त्रसे वस्त्रको पहनावे । फिर बालकके अन्वारम्भ करनेपर आधार और आज्यभाग हवन करके उसके शेष घृतमें दही मिलाव; उसको "दधिक्राव्णो अकारिषम्" इस मन्त्रसे बालकको प्राशन करावे ॥ ३ ॥ आचमन—

दिनचर्या * ४.

(१) मनुस्मृति-३ अध्याय।

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि । पञ्चयज्ञविधानं च पक्तिं चान्वाहिकीं गृही ॥ ६७ ॥

—कर लेनेपर आचार्य कहै कि 'को नामासि' अर्थात् तुम्हारा क्या नाम है ॥ ४ ॥ बालक अपना नाम कहे । "देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाम्यसौ" इस मन्त्रसे आचार्य उस बालकका दहिना हाथ पकडके सम्बोधनान्त नाम लेवे । उस समय शिष्यका मुख पूर्वको,आचार्यका पश्चिमको; शिष्य बैठा आचार्य खडा रहे शिष्यका दहिना हाथ उत्तान और नीचे और आचार्यका दहिना हाथ किसी मङ्गल बोधक वस्तु सहित ऊपर रहै । आचार्य बालकका हाथ पकडनेपर "सविता ते हस्तमग्रहीदसावग्निराचार्यस्ततादेव प्रवितरेषते ब्रह्मचारी त्वं गोपाय समावृतन्" यह मन्त्र पढे । आचार्य पूछे कि किसका ब्रह्मचारी हो । बालक कहै कि प्राणका ब्रह्मचारी हूं । आचार्य पूछे कि कौन तुम्हारा उपनयन करताहै । कौन तुमको सौंपताहै । किसको सौंपताहै । इसके अनन्तर "भगाय त्वा परिददामि । अर्यम्णे त्वा परिददामि । सवित्रे त्वा परिददामि । सरस्वत्यै त्वा परिददामि । इन्द्राग्निभ्यां त्वा परिददामि । विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि । सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि" इन मन्त्रोंको पढ़कर ब्रह्मचारीकी रक्षाके लिये उसको मन्त्रोंमें कहेहुए देवताओंको सौंपे ॥५॥ बालकके हृदयपर दहिना हाथ रखकर"ब्रह्मणो ग्रन्थिरसि स ते माविस्रत्"मन्त्रको पढ़े और नासिकाके छिद्रोंपर हाथ रखके "प्राणानां ग्रन्थिरसि" मन्त्रको कहै॥६॥ब्रह्मचारी"ऋतस्य गोप्त्री तपसस्तरुत्री घ्नती रक्षः सहमाना अरातिः । सा नः समन्तमभिपर्येहि भद्रे भर्त्तारस्ते सुभगे मेखले मारिषाम" इस मन्त्रको पढकर तीन लड़की मुञ्जकी मेखला हाथमें लेवे ॥ ७ ॥ "युवा सुवासा" मन्त्रको पढकर मेखलाको प्रदक्षिण क्रमसे कटिमें तीनबार लपेटे ॥ ८ ॥ पुरुषकी मेखलामें ३ ग्रन्थी लगावे ॥ ९ ॥ उसके पश्चात् "इयं दुरुक्तात्परिबाधमाना वर्णं पुराणां पुनतीम आगात् । प्राणापानाभ्यां बलमाभजन्तो शिवा देवी सुभगे मेखले मारिषाम" मन्त्रको ब्रह्मचारी पढ़े और "मम व्रते ते हृदयं दधातु मम चित्तमनुचित्तन्ते अस्तु । मम वाचमेकव्रतो जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्" मन्त्रको आचार्य पढे ॥ १० ॥ फिर यज्ञीयवृक्ष (पलाश, बेल आदि) का दण्ड और काले मृगका चर्म ब्रह्मचारीको देकर "अध्वनामध्वपते श्रेष्ठयस्य स्वस्तस्याध्वनः पारमशीय । तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदःशतं जीवेम शरदः शतम् । शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतम् । अदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् । या मेधाऽप्सरःसु गन्धर्वेषु च यन्मनः। देवी या मानुषी मेधा सा मामाविशतादिहैव" इस मन्त्रको पढ़ताहुआ आचार्य सूर्यका उपस्थान करावे ॥ ११ ॥ आचार्य अग्निसे दक्षिण और अग्निसे पश्चिम ब्रह्मचारीको खडाकर "एह्यश्मानमातिष्ठाश्मेवत्वं स्थिरो भव । कृण्वन्तु विश्वेदेवा आयुष्टे शरदः शतम्" स मन्त्रको पढतेहुए पत्थरपर उसका दहिना पग धरावे ॥१२॥ इसके पश्चात् अग्निसे पश्चिम उच्चासनपर पूर्वको मुखकरके आचार्य और उसके सामने नीचे आसनपर पश्चिमको मुख करके ब्रह्मचारी बैठे; तब आचार्य ब्रह्मचारीको प्रणव तथा व्याहृतियोंसहित'तत्सवितु०'गायत्री सावित्रीका उपदेश करे; किसीका मत है कि (मानवगृह्यसूत्र—१ पुरुष-२ खण्ड,-३ अङ्कके लेखानुसार) क्षत्रियब्रह्मचारीको "आदेवो याति०" इस त्रिष्टुप् सावित्रीका और वैश्य ब्रह्मचारीको "युञ्जते०" इस जगती सावित्रीका उपदेश करे ॥ १३ ॥ उस गायत्रीको तीन भाग करके उपदेश करे । दो बार खण्ड खण्ड करके और एकवार संपूर्ण प्रथम वार तीनों पाद पृथक् पृथक्, द्वितीयवार दो पाद और तृतीयवार सब एकवार कहलावे ॥ १४ ॥ तीनों गायत्री (गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती) प्रातःकालमें उपदेश करे । क्षत्रिय, वैश्यको अथवा केवल वैश्यको उपनयनसे १ वर्ष, १२ दिन, ६ दिन अथवा ३ दिनपर और ब्राह्मणको उसीदिन उपदेश करे; ऐसा वेदमें लिखाहै ॥ १५ ॥ उपनयन करानेवालेको श्रेष्ठ वस्तु, कांसेका पात्र और वस्त्र ब्रह्मचारी देवे ॥ १६ ॥ आचार्य जिस ब्रह्मचारीको बुद्धिमान् होना चाहता हो उससे मक्खन लगेहुए पलाश वृक्षकी छायामें "सुश्रवः सुश्रवा असि । यथा त्वं सुश्रवः सुश्रवा असि एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु ॥ यथा त्वं देवानां वेदानां निधिपो असि । एवमहं मनुष्याणां वेदानां निधिपो भूयासम्" इस मन्त्रको कहलावे ॥ १७ ॥ वेदमें लिखाहै कि विधिपूर्वक उपनयन संस्कार होनेसे शिष्य एक, दो, तीन अथवा सब वेदोंको अवश्य पढताहै ॥ १८ ॥ ब्रह्मचर्यका व्याख्यान (इसके १ पुरुष—१-२ खण्डमें) कर चुके ॥ १९ ॥ अब भिक्षा मांगनेका विधान दिखातेहैं । ब्रह्मचारी पहिले मातासे ही भिक्षा मांगे; उसके पश्चात् मौसी आदि और सुहृद जो जो समीपमें हों उनसे मांगे ॥ २० ॥ भिक्षा मांगकर आचार्यको समर्पण करे; उसकी आज्ञासे भोजन करे ॥ २१ ॥

* इनमेंसे पञ्चमहायज्ञ आदि कई कर्म गृहस्थ और वानप्रस्थके लिये; होमादि कईएक कर्म गृहस्थ, ब्रह्मचारी और वानप्रस्थके लिये और स्नान आदि कई कर्म चारों आश्रमवालोंके लिये जानना चाहिये ।

गृहस्थको उचित है कि प्रतिदिन विवाहके समयकी आगमें निज गृह्यमें कहेहुए होम आदि कर्म और पञ्चमहायज्ञ तथा पाककर्मका विधान विधिपूर्वक करता रहे ❀ ॥ ६७ ॥

पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः । कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ॥ ६८ ॥
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः । पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥ ६९ ॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् । होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ७० ॥
पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः । स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ॥ ७१ ॥
देवतातिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः । न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवति ॥ ७२ ॥
स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि । दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् ॥ ७५॥
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा ॥ ७६ ॥

गृहथस्के घरमें, चुल्हे, चक्की, ऊखली, कूंची और जलके घड़े; इन ५ वस्तुओंसे जीवहिंसा होतीहै; इन हिंसाओंके पापोंसे छूटनेके लिये गृहस्थको प्रतिदिन पञ्चमहायज्ञ करनेको ऋषियोंने कहाहै ॥ ६८—६९ ॥ इनमें वेद पढाना, ब्रह्मयज्ञ, तर्पण करना पितृयज्ञ, होम करना देवयज्ञ, बलिवैश्वदेव करना भूतयज्ञ और अतिथियोंका सत्कार करना मनुष्ययज्ञ है ✿ ॥ ७० ॥ जो गृहस्थ विना आपत्कालके इन पांच महायज्ञोंको नहीं छोडता है, घरमें बसनेपर भी उसको पूर्वोक्त पांच प्रकारके हिंसाका पाप नहीं लगता है ॥ ७१ ॥ जो गृहस्थ अन्न आदिसे देवता; अतिथि; सेवक आदि भृत्य; पिता माता आदि गुरुजन और अपना आत्मा; इन पांचोंको सन्तुष्ट नहीं करता वह जीताहुआ भी मुर्देके समान है ॥ ७२ ॥ वेदाध्ययनसे युक्त होकर देवकर्म अर्थात् अग्निहोत्रमें गृहस्थको सदा तत्पर रहना चाहिये, क्योंकि देवकर्ममें रत रहनेवाला इस चराचर जगत्को धारण करता है ॥ ७५ ॥ अग्निमें दी हुई आहुति सम्यक् प्रकारसे सूर्यको प्राप्त होती है, फिर उस आहुतिका रस वर्षा होकर सूर्यसे वर्षता है, उस वर्षासे अन्न उत्पन्न होता है और अन्नसे प्रजा होती है ॥ ७६ ॥

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि । पितॄञ्छ्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥ ८१ ॥
कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा । पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥ ८२ ॥
एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थे पाञ्चयज्ञिके । न चैवात्राशयेत्किंचिद्वैश्वदेवं प्रति द्विजम् ॥ ८३ ॥
वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम् । आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥ ८४ ॥
अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः । विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धन्वन्तरय एव च ॥ ८५ ॥
कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय एव च । सह द्यावापृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृतेऽन्ततः ॥ ८६ ॥
एवं सम्यग्घविर्हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम् । इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यो बलिं हरेत् ॥ ८७ ॥
मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेदप्स्वद्भ्य इत्यपि । वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसलोलूखले हरेत् ॥ ८८ ॥
उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः । ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥ ८९ ॥
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत् । दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च ॥ ९० ॥
पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये । पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत् ॥ ९१ ॥
शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् । वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥ ९२ ॥
एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति । स गच्छति परं स्थानं तेजोमूर्तिः पथर्जुना ॥ ९३ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति--१ अध्याय-९७ श्लोक । गृहस्थ प्रतिदिन स्मृतिमें कहेहुये कर्मको विवाहकी आगमें अथवा विभाग कालमें मिलीहुई आगमें और वेदोक्त कर्मको आह्वनीय आदि वैतानिक अग्निमें करे । मानवगृह्यसूत्र--२ पुरुष-३ खण्ड । "अग्नये स्वाहा" मन्त्रसे एक और "प्रजापतये स्वाहा" मन्त्रसे दूसरी आहुति सायंकाल और "सूर्याय स्वाहा" मन्त्रसे १ तथा "प्रजापतये स्वाहा" मन्त्रसे दूसरी आहुति प्रातःकाल करे ॥ १-२ ॥

✿ शंखस्मृति-५ अध्यायके १-४ श्लोकमें भी ऐसा है; किन्तु उसमें वेदपढानेके स्थानमें वेद पढना लिखाहै । याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय—१०२ श्लोक । बलिवैश्वदेवको भूतयज्ञ, स्वधा अर्थात् तर्पण श्राद्धको पितृयज्ञ, होमको देवयज्ञ, वेदपढ़नेको ब्रह्मयज्ञ और अतिथिसत्कारको मनुष्ययज्ञ कहतेहैं । कात्यायनस्मृति-१३ खंडके ३-४ श्लोक और गोभिलस्मृति-२ प्रपाठकके २७-२८ श्लोक । वेद पढाना ब्रह्मयज्ञ, तर्पण करना पितृयज्ञ, होमकरना देवयज्ञ, बालिवैश्वदेव करना भूतयज्ञ और अतिथि सत्कार करना मनुष्य यज्ञ है अथवा श्राद्ध वा पितरोंकी बलि पितृयज्ञ और श्रुतिका जप ब्रह्मयज्ञ है ।

गृहस्थको उचित है कि वेदपाठसे ऋषियोंको, होमसे देवताओंको, श्राद्ध कर्मसे पितरोंको, अन्नसे मनुष्योंको और बलिकर्मसे पशु पक्षी आदि जीवोंको तृप्त करे ॥ ८१ ॥ अन्नआदिसे वा जलसे अथवा दूध, मूल तथा फूलोंसे प्रतिदिन पितरोंका श्राद्ध करे ॥ ८२ ॥ पञ्चयज्ञोंको श्राद्धकर्ममें पितरोंकी तृप्तिके लिये एक ब्राह्मण भोजन करावे; वैश्वदेव आदि कार्यमें ब्राह्मण भोजनकी आवश्यकता नहीं है ॥ ८३ ॥ आवसथ्य अग्निमें वैश्वदेवके निमित्त पकाये हुए अन्नको नीचे लिखेहुए देवताओंके लिये ब्राह्मण विधिपूर्वक प्रति दिन होम करे ॥ ८४ ॥ प्रथम अग्नि और सोमकी; तब अग्निसोम दोनोंकी फिर विश्वेदेव, धन्वन्तरि, कुहू, अनुमति और प्रजापतिकी; तब एकही साथ द्यावापृथिवीकी और अन्तमें स्विष्टकृत अग्निकी आहुति देवे अर्थात् 'अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा' इत्यादि कहकर हवन करे ॥ ८५-८६ ॥ इसप्रकारसे सावधान होकर हविसे होमकरके पूर्वआदि दिशाओंमें प्रदक्षिणा क्रमसे अनुचरोंके सहित इन्द्र, यम, वरुण और चन्द्रमाको भाग देवे ॥ ८७ ॥ "मरुद्भ्यो नमः" कहके द्वारपर, "अद्भ्यो नमः" कहकर जलके और "वनस्पतिभ्यो" नमः कहकर ओखली मूसलके निमित्त बलि देवे ॥ ८८ ॥ गृहके सिरपर (उत्तर पूर्व दिशामें) श्रीको, पदके स्थानमें (दक्षिण पश्चिम दिशामें) भद्रकालीको और गृहके भीतर ब्रह्मा और वास्तुके पतिको बलि देवे ॥ ८९ ॥ "विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः" ऐसा कहकर घरके आकाशमें बलि देवे, "दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः" ऐसा कहके दिवाचरको और "नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः" ऐसा कहकर नक्तंचारियोंको बलि फेंके ॥ ९०॥ गृहके ऊपरके मकानोंमें "सर्वात्मभूतये नमः" कहकर सब भूतोंको बलि दे और बलिके अन्तमें दक्षिण मुख होकर "स्वधा पितृभ्यः" कहकर पितरोंको बलि देवे ॥ ९१ ॥ उसके पश्चात् कुत्ते, पतित, श्वपच, कोढ़ आदि पापरोगी, काक और कीट आदि जन्तुओंके लिये अन्नको धीरे धीरे भूमिपर रक्खे ॥ ९२ ॥ जो ब्राह्मण इस प्रकारसे प्रतिदिन सब प्राणियोंका सत्कार करताहै वह प्रकाशमय शरीर धारण करके सादे मार्गसे परम धामको जाता है ॥ ९३ ॥

कृत्वै तद्बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत् । भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे ॥ ९४ ॥
यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्त्वा विधिवद् गुरोः । तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्त्वा द्विजो गृही ॥९५॥

बलि कर्म समाप्त होनेपर पहिले अतिथिको भोजन करावे और संन्यासी तथा ब्रह्मचारीको विधिपूर्वक

याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१०३ श्लोक । देवताओंको होमसे बचे हुए अन्नसे भूतबलि देवे और कुत्ते चाण्डाल तथा काकके लिये भूमिपर अन्न रक्खे ।

कात्यायनस्मृतिमें १३से १४ खण्डतक पञ्चमहायज्ञका विधान है । मानवगृह्यसूत्र-२ पुरुष-१२ खण्ड। सायंकाल और प्रातःकालमें विश्वेदेवके लिये पकेहुए अन्नसे बलिकर्म करे ॥ १॥ अग्नि, सोम, धन्वन्तरि, विश्वेदेव, प्रजापति और अग्निस्विष्टकृत्; इन देवताओंका होम करे अर्थात् इनको एक एक आहुति देवे ॥ २॥ "अग्नये नमः, सोमाय नमः, धन्वन्तरये नमः, विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, प्रजापतये नमः" और "अग्नये स्विष्टकृते नमः" इन मन्त्रोंसे अग्निशालेमें उत्तर उत्तरको ६ ग्रास करे ॥ ३ ॥ "अद्भ्यो नमः" मन्त्रसे जल भरेहुए कुम्भके निकट, "औषधिभ्यो नमः" मन्त्रसे औषधियोंके समीप, "वनस्पतिभ्यो नमः" कहकर बीचके खम्भेके पास, "गृह्याभ्यो देवताभ्यो नमः" मन्त्रसे घरके बीच, और "धर्मायाधर्माय नमः" कहकर द्वारपर बलि देवे ॥ ४-७ ॥ "मृत्यव आकाशाय नमः" कहकर आकाशमें बलि फेंके ॥ ८॥ "अन्तर्गोष्ठाय नमः" मन्त्रसे घरके गोशालामें, "वहिर्वैश्रवणाय नमः" कहकर घरसे बाहर पूर्व ओर, "विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः" मन्त्रसे घरमें बलि रक्खे ॥९-११॥ "इन्द्राय नमः।इन्द्रपुरुषेभ्यो नमः" मन्त्रसे घरके पूर्व भागमें, "यमाय नमः । यमपुरुषेभ्यो नमः" मन्त्रसे घरके दक्षिण भागमें "वरुणाय नमः' वरुणपुरुषेभ्यो नमः" मन्त्रसे घरके पश्चिम भागमें, "सोमाय नमः । सोमपुरुषेभ्यो नमः" मन्त्रसे गृहके उत्तर भागमें और "ब्रह्मणे नमः । ब्रह्मपुरुषेभ्यो नमः" मन्त्रसे घरके मध्यभागमें बलि देवे ॥ १२-१६ ॥ "आपातिकेभ्यः सम्पातिकेभ्यः ऋक्षेभ्यो यक्षेभ्यः पिपीलिकाभ्यः पिशाचेभ्योऽप्सरोभ्यो गन्धर्वेभ्यो गुह्यकेभ्यः शैलेभ्यः पन्नगेभ्यः" इन ग्यारह वाक्योंसे ग्यारह बलि भी पूर्व ओर धरे ॥ १७ ॥ "दिवाचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः" मन्त्रसे दिनमें और "नक्तचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः" मन्त्रसे रातमें एकएक बलि बीचमें धरे ॥ १८ ॥ "धन्वन्तरये नमः" मन्त्रसे धन्वन्तरिकी तृप्तिके लिये एक बलि रक्खे ॥ १९ ॥ शेष बचे अन्नमें कुछ जल मिलाकर दक्षिणमुख करके घरके दक्षिणमें "पितृभ्यः स्वधा" कहकर एक बलि भूमिपर धरे ॥ २० ॥ फिर अतिथियोंको भोजन कराके हाथ पांव धोकर शेष बचेहुए अन्नको पति,पत्नी खावें ॥ २१ ॥

भिक्षा देवे॥ ९४ ॥ जो फल गुरुको विधिपूर्वक गोदान करनेसे ब्रह्मचारीको प्राप्त होताहै वही फल भिक्षा देनेसे गृहस्थ द्विजको मिलता है ❀ ॥ ९५ ॥

भिक्षामप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् । वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ ९६ ॥
नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम् । भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः ॥ ९७ ॥
विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु । निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् ॥ ९८ ॥

भिक्षा हो चाहे जलसे भरा पात्रही होवे वेदके तत्त्व अर्थको जाननेवाले ब्राह्मणको विधिपूर्वक देना चाहिये ॥ ९६ ॥ जो मनुष्य दानधर्मको नहीं जानकर मोहवश होके मूर्ख ब्राह्मणको (देवताओंके) हव्य और (पितरोंके) कव्य देताहै उसका हव्य-कव्य निष्फल होजाताहै ॥ ९७ ॥ विद्या और तप तेज युक्त ब्राह्मणके मुखरूप अग्निमें हव्य-कव्यकी आहुति पड़नेसे विविध सङ्कट और बड़े पापोंसे उद्धार होजाताहै ॥ ९८ ॥

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके । अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ ९९ ॥
शिलानप्युञ्छतो नित्यं पञ्चाग्नीनपि जुह्वतः । सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन् ॥ १०० ॥
तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता । एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ १०१ ॥

गृहस्थको उचित है कि आयेहुए अतिथिका विधिपूर्वक सत्कार करके उसके बैठनेको आसन, पांव धोनेको जल और अपनी शक्तिके अनुसार भोजनके लिये अन्न देवे ◎ ॥९९॥ गृहस्थ चाहे उञ्छवृत्ति हो चाहे पञ्चाग्निमें होम करता होय ब्राह्मण अतिथिसत्काररहित होनेपर उसके पुण्यको लेकर चलदेताहै ※ ॥ १००॥ चटाई, ठहरनेके लिये भूमि, जल और प्रिय वचन, ये चार बातें दरिद्र सज्जनोंके गृहमें भी अतिथिको अवश्य मिलनी चाहिये ॥१०१॥

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः । अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ १०२ ॥
नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं साङ्गतिकं तथा । उपस्थितं गृहे विद्याद्भार्या यत्राग्नयोऽपि वा ॥ १०३ ॥
उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः । तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥ १०४ ॥

केवल एक रात अन्यके घरमें वसनेवाले ब्राह्मणको अतिथि कहतेहैं जिसकी अनित्य (नित्य नहीं) स्थिति है वही अतिथि कहाजाताहै ॥ १०२ ॥ जो ब्राह्मण एकही गांवका वसनेवाला है अथवा संगति करके

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१०८ श्लोक । संन्यासी और ब्रह्मचारीको सत्कारपूर्वक भिक्षा देना चाहिये । पाराशरस्मृति-१ अध्याय । यदि वैश्वदेवके समय संन्यासी आदि भिक्षुक गृहस्थके घर आजावे तो वह वैश्वदेवके लिये अलग अन्न निकालकर बाकी अन्नमेंसे भिक्षादेकर उनको बिदा करदेवे ॥ ५० ॥ संन्यासी और ब्रह्मचारी ये दोनों पकेहुए अन्नके अधिकारी हैं; जो इनको विना अन्न दियेहुए भोजन कराता है वह चान्द्रायण व्रत करनेपर शुद्ध होताहै ॥ ५१ ॥ संन्यासी और ब्रह्मचारियोंको प्रतिदिन ३ भिक्षा अवश्य देना चाहिये; यदि ऐश्वर्य होय तो अपनी इच्छानुसार तीनसे अधिकको भी देवे ॥ ५२ ॥ संन्यासीके हाथमें पहिले जल तब अन्न और भोजनके अन्तमें फिर जल देवे; ऐसी भिक्षा मेरुपर्वतके दानके समान और जल समुद्रदानके समान होताहै ॥ ५३ ॥ वैश्वदेवमें भूल होनेके दोषको भिक्षुक दूर कर सकताहै; किन्तु भिक्षुकके सत्कारमें भूल होनेसे उस पापको वैश्वदेव नहीं दूर करसकता ॥ ५५ ॥ जो अधम द्विज विना वैश्वदेव कियेहुए भोजन करता है उसका सब कर्म निष्फल होताहै और मरनेपर वह अपवित्र नरकमें पडता है ॥ ५७ ॥ जो द्विज वैश्वदेवसे रहित होकर अतिथियोंका सत्कार नहीं करताहै वह नरकमें जाताहै और उसके बाद काक होकर जन्मताहै ॥ ५८ ॥ सन्यासीको द्रव्य, ब्रह्मचारीको पान और चोरको अभयदान देकर दाताभी नरकमें जातेहैं ॥ ६० ॥

◎ पाराशरस्मृति--१ अध्यायके-४३-४४ श्लोक । गृहस्थको चाहिये कि अतिथिके आनेपर स्वागत आदिसे पूजन करके उसको आसन देवे, उसका चरण धोवे, उसको श्रद्धापूर्वक अन्न भोजन करावे, उससे प्रिय और मधुर प्रश्न करे और उसके जानेके समय कुछ दूरतक उसके पीछे चलकर उसको प्रसन्न करे ।

※ याज्ञवल्क्यस्मृति--१ अध्याय । पथिक और वेदपारग श्रोत्रिय अतिथि कहलाते हैं, ये दोनों ब्रह्मलोकके अभिलाषी गृहस्थोंके माननेयोग्य हैं ॥ १११ ॥ श्रोत्रिय अतिथिको भोजनसे तृप्त करके गांवकी सीमातक पहुंचादेना चाहिये ॥ ११३ ॥ पाराशरस्मृति०-१ अध्याय । जिसके घरसे निराश होकर अतिथि चला जाताहै उसके घर १५ वर्षतक पितरलोग नहीं खातेहैं ॥ ४५ ॥ जिसके गृहसे निराश हो अतिथि लौट जाते हैं, हजार बोझ लकडी और सौ घड़े घीसे होम करनेपरभी उसका होम वृथा होजाताहै ॥४६॥ जो ब्राह्मण वेदपारग अतिथिको भोजन नहीं कराके अन्न खाताहै वह पापको भोजन करताहै ॥ ६३ ॥

जीविका चाहनेवाला है या जिसके साथ भार्या और अग्नि है वह अतिथि नहीं समझाजाताहै ❀ ॥ १०३ ॥ जो गृहस्थ पराये अन्नके दोषको नहीं जानकर अतिथिसत्कारके लोभसे अन्य गांवोंमें फिरा करताहै अर्थात् अतिथि बनता है वह इस पापसे दूसरे जन्ममें अन्नदाताका पशु होताहै ॥ १०४ ॥

अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिनाम् । काले प्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन्गृहे वसेत् ॥१०५॥
न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत् । धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वातिथिपूजनम् ॥ १०६ ॥
आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम् । उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम् ॥ १०७ ॥
वैश्वदेवे तु निर्वृत्ते यद्यन्योऽतिथिराव्रजेत् । तस्याप्यन्नं यथाशक्ति प्रदद्यान्न बलिं हरेत् ॥ १०८ ॥
न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत् । भोजनार्थं हि ते शंसन्वान्ताशीत्युच्यते बुधैः ॥ १०९॥
न ब्राह्मणस्य त्वतिथिर्गृहे राजन्य उच्यते । वैश्यशूद्रौ सखा चैव ज्ञातयो गुरुरेव च ॥ ११० ॥
यदि त्वतिथिधर्मेण क्षत्रियो गृहमाव्रजेत् । भुक्तवत्सूक्तविप्रेषु कामं तमपि भोजयेत् ॥ १११ ॥
वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथिधर्मिणौ । भोजयेत्सह भृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रयोजयन् ॥११२ ॥
इतरानपि सख्यादीन्संप्रीत्या गृहमागतान् । संस्कृत्यान्नं यथाशक्ति भोजयेत्सह भार्यया ॥ ११३ ॥
सुवासिनीः कुमारांश्च रोगिणो गर्भिणीस्तथा । अतिथिभ्योऽग्र एवैतान्भोजयेदविचारयन् ॥११४॥
अदत्त्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं भुङ्क्ते विचक्षणः । स भुञ्जानो न जानाति श्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः ॥ ११५ ॥
भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि । भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती ॥ ११६ ॥
देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन्गृह्याश्च देवताः । पूजयित्वा ततः पश्चाद्गृहस्थः शेषभुग्भवेत् ॥ ११७॥
अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात् । यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ॥ ११८ ॥

सूर्यास्त होनेपर आयेहुए अतिथिको गृहस्थ फिरावे नहीं रातके वैश्वदेवके समय अथवा भोजन हो चुकनेपर जो अतिथि आवे उसको अवश्य खिलावे ▩ ॥ १०५ ॥ जो वस्तु अतिथिको नहीं खिलावे वह आप नहीं खावे; अतिथिके सत्कार करनेसे धन, यश, आयु और स्वर्गलोक मिलताहै ◎ ॥ १०६ ॥ अतिथिकी योग्यतानुसार उनको उत्तम, हीन तथा समान आसन, वासस्थान और शय्या देवे और उनका अनुगमन तथा उनकी सेवा करे ॥ १०७ ॥ वैश्वदेव कर्मके अतिथि भोजन होजानेके पश्चात् यदि घरमें और कोई अतिथि आजावे तो शक्तिके अनुसार उसको अन्न देवे, किन्तु फिर वैश्वदेवबलि नहीं करे ▦ ॥१०८॥ ब्राह्मणके

❀ वसिष्ठस्मृति--८ अध्यायके ७-८ श्लोकमें भी ऐसा है। पाराशरस्मृति-१अध्याय-४२ श्लोक। जो ब्राह्मण एकही गांवमें वसनेवाला है उसको अतिथि समझकर नहीं ग्रहण करे; जिसकी अनित्य स्थिति है वही अतिथि कहलाताहै। हारीतस्मृति-४ अध्याय-५६श्लोक॥ जितने समयमें गौ दुही जातीहै, गृहस्थ उतने समय तक अतिथिको बाट देखे; पहिलेके विना देखेहुए तथा विना जानेहुए अतिथिके आनेपर उसका सत्कार करे। व्यासस्मृति---३ अध्याय-३८ श्लोक। दूरसे आयाहुआ, थकाहुआ भोजन चाहनेवाला और पासमें कुछ नहीं रखनेवाला; ऐसे अतिथिको देखकर नम्रतापूर्वक उसका सत्कार करे। शातातपस्मृति-५५ श्लोक। विना प्रयोजन, विना बुलाये और देश तथा कालमें आयेहुएको अतिथि जानना; पहिलेके प्राप्तहुएको नहीं।

▩ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१०७ श्लोक। सायंकालमें आयेहुए अतिथिको निराश नहीं करे; यदि अन्न नहीं होवे तो वचन, वासस्थान और जलसे उसका सत्कार करे।

◎ हारीतस्मृति--४ अध्याय। अतिथिके स्वागत करनेसे गृहस्थपर अग्नि तुष्ट होतेहैं ॥ ५७ ॥ आसन देनेसे इन्द्र प्रसन्न होते हैं, चरणोंके धोनेसे पितरगण दुर्लभ प्रीति प्राप्त करतेहैं ॥ ५८ ॥ और भोजन करानेसे ब्रह्मा प्रसन्न होतेहैं; इस लिये अवश्य अतिथिका सत्कार करे॥ ५९ ॥ शङ्खस्मृति-५ अध्याय। जैसे स्त्रीका प्रभु पति और सब वर्णोंका प्रभु ब्राह्मण हैं उसी प्रकार गृहस्थोंके प्रभु अतिथि कहेगयेहैं ॥ ७ ॥ दक्षिणावाले बड़े बड़े यज्ञों और अग्नियोंकी सेवासे गृहस्थ वैसा स्वर्गमें नहीं जाता जैसा अतिथिके पूजनसे जाताहै ॥ १३ ॥ पाराशरस्मृति-१ अध्याय-४८ श्लोक। अतिथिसे उसका गोत्र, चरण (नाम, कठ, कौथुम आदि), ब्रह्मयज्ञ और वेदाध्ययन नहीं पूछे अपने हृदयमें उसको देवता समझे; क्योंकि अतिथि सब देवताओंका रूप है। उशनस्मृति-१ अध्याय-४७ श्लोक। द्विजातियोंका गुरु अग्नि, सब वर्णोंका गुरु ब्राह्मण, पत्नीका गुरु स्वामी और सब मनुष्योंका गुरु अभ्यागत है।

▦ पाराशरस्मृति--१ अध्याय। मित्र हो अथवा शत्रु हो मूर्ख हो या पण्डित हो जो वैश्वदेवके अन्तमें आवे वह अतिथि स्वर्गमें पहुंचानेवाला है ॥ ४० ॥ जो दूरसे आया हो, थका हो और वैश्वदेवके समय उपस्थित हो उसको अतिथि जानना; पहिले आयेहुएको नहीं ॥ ४१ ॥ चोर हो अथवा चाण्डाल हो या पितृघातक शत्रु होवे, यदि वैश्वदेवके समय आया हो तो वह अतिथि स्वर्गमें ले जानेवाला है ॥ ६२ ॥ शातातपस्मृतिका ५२ श्लोक पाराशरस्मृतिके ४० श्लोकके समान है।

उचित है कि भोजन करनेके लिये अपने कुल गोत्रकी प्रशंसा नहीं करे; क्योंकि पण्डितलोग ऐसे ब्राह्मणको वमन भोजन करनेवाले कहके उससे घृणा करतेहैं ॥ १०९ ॥ ब्राह्मणके घरमें आयेहुए क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मित्र, स्वजन और गुरु अतिथि नहीं कहेजातेहैं ॥ ११० ॥ यदि क्षत्रिय अतिथिरूपसे ब्राह्मणके घर आवे तो ब्राह्मणको उचित है कि ब्राह्मण अतिथियोंको खिलानेके पश्चात् उसको भी इच्छापूर्वक भोजन करादेवे और वैश्य तथा शूद्र इस प्रकारसे आवै तो दयाकरके उसकोभी अपने भृत्योंके सहित खिलादेवे ॥ १११-११२ ॥ इनके सिवाय मित्र आदि यदि प्रीतिके कारणसे उस समय आजावें तो उनको अपनी भार्याके भोजनके समय यथाशक्ति अच्छा अन्न भोजन करादेवे ॥ ११३ ॥ नवीन विवाहीहुई पतोहू तथा पुत्री, बालक, रोगी मनुष्य और गर्भवती स्त्रीको विना विचार कियेहुए अतिथिसे पहिले खिलावे ॥ ११४ ॥ जो मूर्ख इन सबको नहीं खिलाकर पहिले स्वयं भोजन करताहै, मरनेपर उसके शरीरको कुत्ते और गीध खातेहैं ॥ ११५ ॥ ब्राह्मणों, स्वजनों और सेवकोंको खिलाकरके पश्चात् बचेहुए अन्नको पुरुष और स्त्री दोनो भोजन करें ॥ ११६ ॥ देवता, ऋषि, मनुष्य, पितर और गृह्यदेवताकी अन्नादिसे पूजा करके बाकी अन्न, गृहस्थ स्वयं भोजन करे ॥ ११७ ॥ जो य अपनेही भोजनके लिये अन्न पकाताहै वह पाप भोजन करताहै, पाकयज्ञमें बचेहुए अन्न सज्जन लोगोंको खानेयोग्य है ॥ ११८ ॥

सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत् । वैश्वदेवं हि नामैतत्सायं प्रातर्विधीयते ॥ १२१ ॥

गृहस्थकी पत्नीको उचित है कि सन्ध्याके समय पकायेहुए अन्नसे विना मन्त्रकेही बलि देवे; क्योंकि वैश्वदेवबलि सबेरे और सन्ध्यासमयमें अन्नसेही करनेको कहागयाहै ॥ १२१ ॥

४ अध्याय ।

नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत् । न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ॥ ४५ ॥
न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते । न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥ ४६ ॥
न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः । न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके ॥ ४७ ॥
वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाः । न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् । ४८ ॥
तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्टपत्रतृणादिना । नियम्य प्रयतो वाचं संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः ॥ ४९ ॥
मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः । दक्षिणाभिमुखो रात्रौ सन्ध्ययोश्च यथा दिवा ॥ ५० ॥
छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः । यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च ॥ ५१ ॥
प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रति सोमोदकद्विजान् । प्रति गां प्रति वातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥ ५२ ॥

स्नातक ब्राह्मणको उचित है कि एक वस्त्र धारण करके अर्थात् अंगौछा न लेकर केवल धोती पहनकर भोजन तथा नंगा होकर स्नान नहीं करे; मार्गमें, भस्मपर, गौओंके चरनेके स्थानमें, हलसे जोतेहुए खेतमें जलमें, श्मशानमें, पर्वतपर, पुराने देवमन्दिरमें, वल्मीकपर, प्राणियोंसे मुक्त बिलमें, चलतेहुए, खडे होकर नदीके तटपर, पहाड़के शिखरपर और पवन, आग, ब्राह्मण, सूर्य, जल अथवा गौके सामने कभी मल मूत्रका

याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्यायके १०७-१०८ श्लोक । अनेक वर्णके अतिथियोंके आजानेपर वर्णक्रमसे अपनी शक्तिके अनुसार उनको भोजन कराना चाहिये और भोजनके समय आयेहुए मित्र, सम्बन्धी तथा बान्धवोंको भोजन करादेना चाहिये । बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-३ अध्याय । स्नातकको चाहिये कि सायंकाल और प्रातः काल भोजनके अन्नमेंसे बलिवैश्वदेव करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अभ्यागतका यथा शक्ति सत्कार करे ॥ १३ ॥ १४॥ यदि बहुतको देनेकी शक्ति नहीं होवे तो एकही गुणवान्को देवे अथवा जो पहिले आवे उसीको देवे ॥ १५-१६ ॥ यदि शूद्रही प्रथम आजाय तो उसीको देवे ॥ १७ ॥ अथवा श्रोत्रियको प्रथम देवे ॥ १८ ॥ जिसमें नित्य भोजन करने वालोंके भोजनमें कमी नहीं होवे वैसाही अभ्यागतोंके लिये विभाग करे ॥ १९ ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१०५ श्लोक । बालक, नवीन विवाहीहुई पतोहू तथा पुत्री, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री, रोगी मनुष्य, कन्या अतिथि और सेवकोंको खिलाकरके बाकी बचेहुए अन्नको गृहस्थ स्त्री पुरुष दोनों भोजन करें । हारीतस्मृति—४ अध्यायके ६४-६६ श्लोक । नवीन विवाहीहुई पतोहू तथा पुत्री, कुमारी कन्या, भृत्य आदि, बालक और वृद्धोंको खिलाकरके बाकी अन्नको पूर्व या उत्तर मुख करके मौन होकर गृहस्थ भोजन करे । व्यासस्मृति-३ अध्याय-४५ श्लोक । जो गृहस्थ गर्भिणी स्त्री, रोगी मनुष्य, भृत्यगण, बालक और वृद्धको भूखे रखकर आप भोजन करता है वह पापका भागी होताहै ।

याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१०४ श्लोक । प्रतिदिन पितर और मनुष्योंको अन्न तथा जल देवे और वेद पढे; केवल अपने खानेके लिये रसोई नहीं करे ।

त्याग नहीं करे ॥ ४५–४८ ॥ सिरपर वस्त्र डालकर सिर नीचेको करके मौन होकर काठ, ढेले, पत्ते अथवा तृण आदि कोई वस्तु भूमिपर बिछाकर उसके ऊपर मल मूत्र त्याग करे ॥ ४९ ॥ दिनमें और दोनों सन्ध्याओंमें उत्तरमुख करके और रातमें दक्षिण मुख करके मल मूत्र परित्याग करे ॥ ५० ॥ छाया अथवा अन्धकारके कारण दिशाका ज्ञान नहीं होनेपर अथवा चोर, बाघ आदिसे प्राणका भय होनेपर दिनमें अथवा रातमें अपनी इच्छानुसार मुखकरके मलमूत्र त्याग करे ॥ ५१ ॥ अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, जल, ब्राह्मण, गौ अथवा वायुके सामने मल मूत्र त्याग करनेसे बुद्धि नष्ट होतीहै ❀ ॥ ५२ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् । कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ॥ ९२ ॥
उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः । पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम् ॥ ९३ ॥
ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः । प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥ ९४ ॥

स्नातकको उचित है कि दोघड़ी रात रहने पर उठकर विचारकरे कि किस प्रकारसे शरीरके क्लेश देनेसे धर्म तथा अर्थ प्राप्त होगा और निश्चय करके वेदका तत्त्व क्या है ॥ ९२ ॥ शय्यासे उठ आवश्यक शौच और स्नान करके एकाग्र चित्तसे प्रातःसन्ध्या गायत्रीका जप करे और सायं सन्ध्याके समय भी देरतक गायत्रीको जपे ॥ ९३ ॥ ऋषियोंने देरतक सन्ध्या करके आयु, बुद्धि, यश, कीर्ति और ब्रह्मतेज प्राप्त कियेथे ॥ ९४ ॥

परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन । निपानकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥ २०१ ॥
यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृहाणि च । अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीयभाक् ॥ २०२ ॥
नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसु । स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च ॥ २०३ ॥

गृहस्थ ब्राह्मणको उचित है कि अन्यके बनायेहुए जलाशयमें (जो केवल अपनेही लिये बनाया हो, उसमें) स्नान नहींकरे क्योंकि उसमें स्नान करनेसे उसके बनानेवालेके पापोंके अंशका भागी होना पड़ताहै ॥ २०१ ॥ अन्यकी सवारी, शय्या, आसन, कूप, बाग अथवा गृहको विना उनके स्वामीके अनुमति लियेहुए उपभोग नहीं करे; क्योंकि उपभोग करनेसे उनके स्वामीके पापोंके चौथे अंशका भागी होगा ॥ २०२ ॥ नित्यही, नदी, देवताओंके निमित्त बने जलाशय, तलाव, गर्त्त अथवा झरनेमें स्नान करे ❋ ॥ २०३ ॥

५ अध्याय ।

ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः । यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैव मलाश्च्युताः ॥ १३२ ॥
विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थं मृद्वार्यादेयमर्थवत् । दैहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वपि ॥ १३४ ॥

❀ उशनस्मृति-२ अध्यायके ३६ से ४२ श्लोक तक ऐसाही है; विशेष यह है कि छायामें, कूपके पास गोबरपर, उद्यानके पास, ऊपर स्थानमें, अन्यके विष्ठादिके ऊपर, जूता पहनकर और छाता लगाकर भी मल मूत्र नहीं त्यागे । याज्ञवल्क्यस्मृति--१अध्याय--१३४ श्लोक । नदीके पास, वृक्षकी छायामें, मार्गमें गोशालामें, जलमें और भस्मके ऊपर और अग्नि, सूर्य, गौ, चन्द्रमा, जल, स्त्री और द्विजोंके सामने तथा सन्ध्या समयमें मलमूत्रका त्याग नहीं करे । गौतमस्मृति-:९ अध्याय-३ अङ्क । विना शिरमें वस्त्र लपेटेहुए, विना तृण आदि कोई वस्तु बिछायेहुए, घरके पास, भस्मपर; जोतेहुए खेतमें, वृक्षादिकी छायामें, मार्गमें और रमणीक जगहमें मल मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये; दिनमें तथा सायंकाल और प्रातःकालमें उत्तर ओर मुख करके और रातमें दक्षिण ओर मुख करके विष्ठा मूत्र त्यागना चाहिये। वसिष्ठस्मृति--६ अध्यायके १० से १३ श्लोक । दिनमें उत्तर ओर मुख करके और रातमें दक्षिण ओर मुख करके मलमूत्रका त्याग करनेसे आयु क्षीण नहीं होतीहै अग्नि, सूर्य, गौ, ब्राह्मण, चन्द्रमा और जलाशयके सामने तथा सन्ध्याकालमें मल मूत्र त्यागनेसे बुद्धि नष्ट होतीहै; नदी, भस्म, गोबर, जोतेहुए खेत, मार्ग और बोयेहुए खेतमें विष्ठा मूत्र त्याग, नहीं करे; किन्तु बादल आदिकी छायामें तथा अन्धकारके समय अथवा प्राणका भय होनेपर दिन हो अथवा रात होवे अपनी इच्छानुसार मल मूत्र त्यागकरे १२ अध्याय–१० अङ्क । सिरमें वस्त्र लपेटकर यज्ञमें काम नहीं आनेवाले सूखे तृणोंको भूमिपर बिछाकरके उनपर विष्ठा मूत्र त्यागकरे ।

❋ बौधायनस्मृति—२ प्रश्न–३ अध्याय । तीनों वर्ण–द्विजोंको उचित है कि प्रातःकाल उठकर बान्धरहित बहती हुई नदीमें देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण करे ॥ ६ ॥ बान्धसे रोकाहुए जलमें तर्पण करनेसे उसका पुण्य बान्ध बान्धने वालेको होताहै, इसलिये बान्धसे रोकेहुए जल और कूपके जलको त्यागदेवे ॥७॥ आपत्कालमें बान्धसे रोकेहुए जलमेंसे ३ पिण्ड मट्टी और कूपमेंसे ३ घड़ा जल निकालकरके स्नान तर्पण करे ॥ ९ ॥ लघुआश्वलायनस्मृति—१ आचारप्रकरण । द्विजको उचित है कि नदी, देवनिर्मित तीर्थ, सरोवर अथवा द्विजके बनायेहुए कूपमें आचमन करके स्नान करे ॥ १६ ॥ यदि जलसे स्नान करनेमें असमर्थ होय तो अनुक्रमसे आपोहिष्ठा आदि ३ मन्त्रोंसे यथाविधि मार्जन करलेवे ॥ २३ ॥

वसा शुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रविट् घ्राणकर्णविट्। श्लेष्माश्रुदूषिकास्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥ १३५॥
एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश। उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता ॥ १३६ ॥
एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम्। त्रिगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम्॥ १३७ ॥
कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा खान्याचान्त उपस्पृशेत्। वेदमध्येष्यमाणश्च अन्नमश्नंश्च सर्वदा ॥ १३८ ॥
त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम्। शारीरं शौचमिच्छन्हि स्त्रीशूद्रस्तु सकृत्सकृत्॥१३९॥

नाभीसे ऊपरकी इन्द्रियोंके छिद्र सदा पवित्र हैं; किन्तु नाभीके नीचेवाली इन्द्रियोंके छिद्र और शरीरके मल अपवित्र हैं ॥ १३२ ॥ मल मूत्र बाहर होनेके छिद्रोंको जल तथा मिट्टीसे शुद्धकरना चाहिये और नीचे लिखेहुए १२ दैहिक मलोंकोभी इसीप्रकार जल और मिट्टीसे शुद्ध करलेना चाहिये ॥ १३४ ॥ चर्बी अर्थात् देहके भीतरकी चिकनाई, वीर्य, रुधिर, मस्तकके भीतरकी चर्बी, मूत्र, विष्ठा, नाकका मल, कानकी मैल, कफ आंखका जल, आंखकी मैल और पसीना यही १२ शारीरिक मल हैं ॥ १३५ ॥ गृहस्थ मल मूत्र त्यागने पर लिङ्गमें १ बार, गुदामें ३ बार, बांये हाथमें १० बार और दोनों हाथोंमें ७ बार मिट्टी लगावे, इससे दूना ब्रह्मचारी, तिगुना वानप्रस्थ और चौगुना संन्यासी शौचकर्म करे ॥ १३६-१३७ ॥ विष्ठा मूत्र त्यागनेपर इस प्रकारसे शुद्ध होकर ३ बार आचमन करके नाभीसे ऊपरकी इन्द्रियोंके छिद्रोंका स्पर्श करे; वेद पढ़ने और अन्न खानेके समय भी इसी प्रकार सदा आचमन करे ॥ १३८ ॥ तीनबार आचमन करके २ बार मुख धोवे; शारीरिक शुद्धिकी इच्छा करके स्त्री और शूद्रभी एकबार आचमन करें ॥ १३९ ॥

(३) अत्रिस्मृति।

पुरीषे मैथुने होमे प्रस्रावे दन्तधावने ॥ ३१९ ॥
स्नानभोजनजाप्येषु सदा मौनं समाचरेत्। यस्तु संवत्सरं पूर्णं भुङ्क्ते मौनेन सर्वदा ॥ ३२० ॥
युगकोटिसहस्रेषु स्वर्गलोके महीयते ॥ ३२१ ॥

विष्ठात्याग, मैथुन, होम, मूत्रत्याग, दन्तधावन, स्नान, भोजन और जप करनेके समय मौन रहना चाहिये। जो मनुष्य एकवर्ष सदा मौन होकर भोजन करताहै वह सहस्र करोड़ युगतक स्वर्गमें पूजित होताहै ॥ ३१९-३२१ ॥

अत्रिस्मृतिके ३१—३२ श्लोकमें १२ शारीरिक मलोंमेंसे पिछले ६ के स्थानमें कानकी मैल, नख, कफ, हड्डियां, आंखकी मैल और पसीना यही ६ हैं और लिखा है कि १२ शारीरिक मलोंसे पहिलेके ६ की शुद्धि मिट्टी और जलसे और पिछले ६की शुद्धि केवल जलसे होतीहै।

दक्षस्मृति–५ अध्यायके ५ से ७ श्लोकतकभी ऐसा है; वहां विशेष यह है कि दोनों पावोंमें भी तीन तीन बार मिट्टी लगावे; पहिली बार आधी पसर और दूसरी या तीसरी बार उससे आधी मिट्टी लेवे शंखस्मृति–१६ अध्यायमें २० से २४ श्लोक तक इसका विधान है; उसमें विशेष यह है कि गुदामें ७ बार लिंगमें ३ बार बांये हाथमें २० बार, फिर दोनों हाथोंमें १४ बार नखोंकी शुद्धिके लिये ३ बार और परोंमें तीन तीन बार मिट्टी लगावे; जितनी मिट्टीसे हाथके अंगुल पूरे होजायं प्रतिवार उतनी मिट्टी लेवे। वसिष्ठस्मृति–६ अध्यायके–१६–१७ श्लोक। मूत्र त्यागनेपर लिंगमें १ बार, बांये हाथमें ३ बार और फिर दोनों हाथोंमें एक एक बार और विष्ठा त्यागनेपर गुदामें ५ बार, बांये हाथमें १० बार और दोनों हाथोंमें ७ बार, गृहस्थ मिट्टी लगावे। लघुआश्वलायनस्मृति–१ आचारप्रकरणके १०—११ श्लोकमेंभी वासिष्ठस्मृतिके समान है और १२–१३ श्लोकमें लिखा है कि ब्राह्मण अपना पांव सदा बांये हाथसे धोवे; शौचके समय पहिले दहिना पांव, उसके बाद बांया पांव धोकरके दोनो हाथ धोलेवे और अन्य समयोंमें बांया पांव धो करके दहिना पांव धोवे; दूसरेके पांव धोवे तो पहिले उसका दहिना पांव धोकरके पीछे बांया पांव धोवे। बौधायनस्मृति–२ प्रश्न–३ अध्याय,–३५ अङ्क। पांवसे पांव नहीं धोवे और पांवपर पांव रखकर नहीं नहीं बैठे। अत्रिस्मृति–३१७–३१९ श्लोक। कल्याणको चाहनेवाला मनुष्य शौचके लिये ७ स्थानोंकी मिट्टी नहीं लेवे;–बेमुअटकी, चूहेके स्थानकी, जलके भीतरकी; श्मशानकी, वृक्षके जड़की, देवस्थानकी और बैलकी कोदीहुई; शुद्ध स्थानसे कङ्कड और पत्थर रहित मिट्टी लेवे। उशनस्मृति–२ अध्यायके ४४–४५ श्लोक। ब्राह्मण शौचके लिये ७ प्रकारकी मिट्टी नहीं लेवे;–धूलीसे पांकसे, मार्गसे, ऊपर भूमिसे, दूसरेके शौचसे बची हुई, देवालयसे और गांवके भीतरकी। वसिष्ठस्मृति–६ अध्याय–१५ श्लोक। ब्राह्मण शौचके लिये ५ प्रकारकी मिट्टी नहीं लेवे:–जलके भीतरकी, देवालयकी, ऊपरभूमिकी; चूहेके स्थानकी और अन्यके शौचसे बँची हुई।

(४) विष्णुस्मृति-२ अध्याय।

अतः परं प्रवक्ष्यामि गृहिणां धर्ममुत्तमम्। प्राजापत्यपदस्थानं सम्यक्कृत्यं निबोधत ॥ १ ॥
सर्वः कल्ये समुत्थाय कृतशौचः समाहितः। स्नात्वा सन्ध्यामुपासीत सर्वकालमतन्द्रितः ॥ २ ॥
अज्ञानाद्यदि वा मोहाद्रात्रौ यद्दुरितं कृतम्। प्रातःस्नानेन तत्सर्वं शोधयन्ति द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥
प्रविश्याथाग्निहोत्रं तु हुत्वाग्निं विधिवत्ततः। शुचौ देशे समासीनः स्वाध्यायं शक्तितोऽभ्यसेत् ॥४॥
स्वाध्यायान्ते समुत्थाय स्नानं कृत्वा तु मन्त्रवित्। देवानृषीन्पितॄँश्चापि तर्पयेत्तिलवारिणा ॥ ५ ॥
मध्याह्ने त्वथ संप्राप्ते शिष्टं भुञ्जीत वाग्यतः। भुक्तोपविष्टो विश्रान्तो ब्रह्म किञ्चिद्विचारयेत् ॥ ६ ॥
इतिहासं प्रयुञ्जीत त्रिकालसमये गृही। काले चतुर्थे संप्राप्ते गृहे वा यदि वा बहिः ॥ ७ ॥
आसीनः पश्चिमां सन्ध्यां गायत्रीं शक्तितो जपेत्। हुत्वा चाथाग्निहोत्रं तु कृत्वा चाग्निपरिक्रियाम्॥८
बलिं च विधिवद्दत्त्वा भुञ्जीत विधिपूर्वकम्। दिवा वा यदि वा रात्रौ अतिथिस्त्वाव्रजेद्यदि ॥ ९ ॥
तृणभूवारिवाग्भिस्तु पूजयेत्तं यथाविधि। कथाभिः प्रीतिमाहृत्य विद्यादीनि विचारयेत् ॥ १० ॥
संनिवेश्याथ विमन्तु संविशेत्तदनुज्ञया। यदि योगी तु संप्राप्तो भिक्षार्थी समुपस्थितः ॥ ११ ॥
योगिनं पूजयेन्नित्यमन्यथा किल्बिषी भवेत् ॥ १२ ॥

अब मैं गृहस्थोंके उत्तम धर्मको कहताहूँ; ब्रह्मलोकको देनेवाले इस धर्मको भलीभांति सुनिये ॥ १ ॥ गृहस्थको उचित है कि सदा आलस छोड़कर प्रभातकालमें उठकर शौचादि और स्नान करके सन्ध्योपासना करे ॥ २ ॥ अज्ञानसे अथवा मोहसे रातका कियाहुआ ब्राह्मणका सब पाप प्रातःकालके स्नान करनेसे दूर हो जाताहै ॥ ३ ॥ उसके पश्चात् अग्निशालामें विधिपूर्वक अग्निहोत्र करके पवित्र स्थानमें बैठकर अपनी शक्तिके अनुसार वेद पढ़े ॥ ४ ॥ वेदपाठके अन्तमें मन्त्रपूर्वक स्नान करके तिल और जलसे देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण करे ॥ ५ ॥ मध्याह्न कालमें बलिवैश्वदेवसे बचाहुआ अन्न मौन होकर भोजन करे; उसके पश्चात् विश्राम करके कुछ वेदका विचार करे ॥ ६ ॥ दिनके तीसरे कालमें इतिहासका विचार और चौथे कालमें घरमें अथवा बाहर बैठकर सन्ध्योपासना और अपनी शक्तिके अनुसार गायत्रीका जप करके अग्निहोत्र और अग्निकी प्रदक्षिणा करे ॥ ७-८ ॥ उसके पश्चात् विधिपूर्वक बलि वैश्वदेव करके भोजन करे ॥ ८-९ ॥ दिनमें अथवा रातमें अतिथि आ जावें तो आसन, स्थान, जल और वचनसे यथाविधि उनका सत्कार करे; उनसे प्रीतिकी बातें करके विद्या आदिका विचार करे ॥ ९-१० ॥ प्रथम अतिथिके शयनका प्रबन्ध करके पीछे उनसे आज्ञा लेकर आप शयन करे; भिक्षाके लिये आयेहुए योगीकी पूजा करे; ऐसा नहीं करनेसे वह पापका भागी होताहै ॥ ११-१२ ॥

(५) हारीतस्मृति-४ अध्याय।

गृहीतवेदाध्ययनः श्रुतशास्त्रार्थतत्त्ववित्। असमानर्षिगोत्रां हि कन्यां सभ्रातृकां शुभाम् ॥ १ ॥
सर्वावयवसम्पूर्णां सुवृत्तामुद्वहेन्नरः ॥ २ ॥
उपासनं च विधिवदाहृत्य द्विजपुङ्गवाः ॥ ३ ॥
सायं प्रातश्च जुहुयात्सर्वकालमतन्द्रितः। स्नानं कार्यं ततो नित्यं दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ४ ॥
उषःकाले समुत्थाय कृतशौचो यथाविधि। मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः ॥ ५ ॥
तस्माच्छुष्कमथार्द्रं वा भक्षयेद्दन्तकाष्ठकम्। करञ्जं खादिरं वापि कदम्बं कुरबं तथा ॥ ६ ॥
सप्तपर्णः पृश्निपर्णी जाम्बू निम्बं तथैव च। अपामार्गं च बिल्वं चार्कं चोदुम्बरमेव च ॥ ७ ॥
एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्मणि। दन्तकाष्ठस्य भक्षश्च समासेन प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥
सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः। अष्टांगुलेन मानेन दन्तकाष्ठमिहोच्यते ॥ ९ ॥
प्रादेशमात्रमथ वा तेन दन्तान्विशोधयेत्। प्रतिपत्पर्वषष्ठीषु नवम्यां चैव सत्तमाः ॥ १० ॥
दन्तानां काष्ठसंयोगाद्दहत्यासप्तमं कुलम्। अभावे दन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धदिनेषु च ॥ ११ ॥
अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं समाचरेत्। स्नात्वा मन्त्रवदाचम्य पुनराचमनं चरेत् ॥ १२ ॥
मन्त्रवत्प्रोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपेदुदकाञ्जलिम् ॥ १३ ॥
तस्मान्न लङ्घयेत्सन्ध्यां सायं प्रातः समाहितः ॥ १६ ॥
उल्लङ्घयति यो मोहात्स याति नरकं ध्रुवम्। सायं मन्त्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सूर्यस्य चाञ्जलिम् ॥ १७ ॥
दत्त्वा प्रदक्षिणं कुर्याज्जलं स्पृष्ट्वा विशुद्ध्यति। पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ॥ १८ ॥

गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावदादित्यदर्शनम् । उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सादित्यां च यथाविधि ॥ १९ ॥
गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावत्ताराणि पश्यति । ततश्चावसथं प्राप्य कृत्वा होमं स्वयं बुधः ॥ २० ॥
सञ्चिन्त्य पोष्यवर्गस्य भरणार्थं विचक्षणः । ततः शिष्यहितार्थाय स्वाध्यायं किञ्चिदाचरेत्॥२१॥
ईश्वरं चैव कार्यार्थमभिगच्छेद्द्विजोत्तमः । कुशपुष्पेन्धनादीनि गत्वा दूरं समाहरेत् ॥ २२ ॥
ततो माध्याह्निकं कुर्याच्छचौ देशे मनोरमे ॥ २३ ॥

नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादन्यवारिणि ॥ २५ ॥
न स्नायादल्पतोयेषु विद्यमाने बहूदके । सरिद्वरं नदीस्नानं प्रतिस्रोतस्थितश्चरेत् ॥ २६ ॥
तडागादिषु तोयेषु स्नायाच्च तदभावतः । शुचिं देशं समभ्युक्ष्य स्थापयेत्सकलाम्बरम् ॥ २७ ॥
मृतो येन स्वकं देहं लिम्पेत्प्रक्षाल्य यत्नतः । स्नानादिकं च संप्राप्य कुर्यादाचमनं बुधः ॥ २८ ॥
सोऽन्तर्जलं प्रविश्याथ वाग्यतो नियमेन हि । हरिं संस्मृत्य मनसा मज्जयेच्चोरुमज्जले ॥ २९ ॥
ततस्तीरं समासाद्य आचम्यापः समन्त्रतः । प्रोक्षयेद्वारुणैर्मन्त्रैः पावमानीभिरेव च ॥ ३० ॥
कुशाग्रकृततोयेन प्रोक्ष्यात्मानं प्रयत्नतः । स्योनापृथ्वीति मृद्गात्रे इदं विष्णुरिति द्विजाः ॥ ३१ ॥
ततो नारायणं देवं संस्मरेत्प्रतिमज्जनम् । निमज्ज्यांतर्जले सम्यक् क्रियते चाघमर्षणम् ॥ ३२ ॥
स्नात्वाक्षततिलैस्तद्वद्देवर्षिपितृभिः सह । तर्पयित्वा जलं तस्मान्निष्पीड्य च समाहितः ॥ ३३ ॥
जलतीरं समासाद्य तत्र शुक्ले च वाससी । परिधायोत्तरीयं च कुर्यात्केशान्न धूनयेत् ॥ ३४ ॥
न रक्तमुल्बणं वासो न नीलं च प्रशस्यते । मलाक्तं गन्धहीनं च वर्जयेदम्बरं बुधः ॥ ३५ ॥
ततः प्रक्षालयेत्पादौ मृत्तोयेन विचक्षणः । दक्षिणं तु करं कृत्वा गोकर्णाकृतिवत्पुनः ॥ ३६ ॥
त्रिःपिबेदीक्षितं तोयमास्यं द्विः परिमार्जयेत् । पादौ शिरस्ततोऽभ्युक्ष्य त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत्॥३७॥
अंगुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुषी समुपस्पृशेत् । तथैव पञ्चभिर्मूर्ध्नि स्पृशेदेवं समाहितः ॥ ३८ ॥
अनेन विधिनाचम्य ब्राह्मणः शुद्धमानसः । कुर्वीत दर्भपाणिस्तूदङ्मुखः प्राङ्मुखोऽपि वा ॥ ३९ ॥
प्राणायामत्रयं धीमान्यथान्यायमतन्द्रितः । जपयज्ञं ततः कुर्याद्गायत्रीं वेदमातरम् ॥ ४० ॥
जपेदहरहर्ज्ञात्वा गायत्रीं मनसा द्विजः । सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ॥४८॥
गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते । अथ पुष्पाञ्जलिं कृत्वा भानवे चोर्ध्ववाहुकः ॥ ४९ ॥
उदुत्यं च जपेत्सूक्तं तच्चक्षुरिति चापरम् । प्रदक्षिणमुपावृत्य नमस्कुर्याद्दिवाकरम् ॥ ५० ॥
ततस्तीर्थेन देवादीनद्भिः संतर्पयेद् द्विजः । स्नानवस्त्रं तु निष्पीड्य पुनराचमनं चरेत् ॥ ५१ ॥
तद्वद्भक्तजनस्येह स्नानं दानं प्रकीर्तितम् । दर्भासीनो दर्भपाणिर्ब्रह्मयज्ञविधानतः ॥ ५२ ॥
प्राङ्मुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः । ततोर्घ्यं भानवे दद्यात्तिलपुष्पाक्षतान्वितम् ॥ ५३ ॥
उत्थाय मूर्द्धपर्यन्तं हंसः शुचिषदित्यृचा । ततो देवं नमस्कृत्य गृहं गच्छेत्ततः पुनः ॥ ५४ ॥
विधिना पुरुषसूक्तस्य गत्वा विष्णुं समर्चयेत् । वैश्वदेवं ततः कुर्याद्बलिकर्म विधानतः ॥ ५५ ॥

वेदाध्ययनसमाप्त करके वेद और धर्मशास्त्रके अर्थको ठीकठीक जानकर मनुष्य भिन्न प्रवर और भिन्न गोत्रकी कन्यासे, जिसका भाई होवे, जिसके सब अङ्ग ठीक होंय और सुन्दर आचरण होवे; अपना विवाह करे ॥ १–२ ॥ वह ब्राह्मण सामग्री इकट्ठा करके आलस छोड़कर नित्य सायंकाल और प्रातःकालमें होम करे; नित्यही दन्तधावन करके स्नान करे ॥ ३–४ ॥ अरुणोदयके समय उठकर यथाविधि शौच करे; मुख बासी रहनेसे मनुष्यका मुख अपवित्र होताहै इस लिये सूखी अथवा गीली दन्तधावन करना चाहिये ॥ ॥ ५–६ ॥ करञ्ज, खैर, कदम्ब, मौलसरी, सप्तपर्ण, पृश्निपर्णी, जामुन, निम्ब, चिचिरी, बेल, मन्दार और गूलर; इतने वृक्ष दन्तधावनके लिये उत्तम हैं; संक्षेपसे यह दन्तधावनका विधान कहागया ॥ ६–८ ॥ कांटेदार वृक्षोंकी दतवन पुण्यदायक और दूधवाले वृक्षोंकी दतवन यश देनेवाली हैं; ८ अंगुलकी लंबी दतवन होनी चाहिये अथवा बीते भरकी दतवनसे मुख धोना चाहिये ॥ ९–१० ॥ हे उत्तमः लोग ! पड़वा अमावास्या, छठ और नवमीमें दान्तमें काठ छुआनेसे ७ पीढ़ीतकके पुरुष दग्ध होतेहैं ॥ १०–११ ॥ दतवन नहीं मिलनेपर अथवा पड़िवा आदि वर्जित दिनोंमें जलके १२ कुल्लोंसे दांत शुद्ध करलेना चाहिये ❀ ॥ ११–१२ ॥

❀ कात्यायनस्मृति—१० खण्डके२–४श्लोक । नारदादि ऋषियोंके कहेहुए वृक्षकी, विना फटीहुई, छालके सहित ८ अंगुल लंबी दतवनके अग्रभागसे दान्तोंको धोना चाहिये; उस समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिये कि "आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशून् वसूनि च । ब्रह्मप्रज्ञाश्च मेधाश्च त्वन्नो देहि वनस्पते।।" गोभिलस्मृति—

दतवनके पश्चात् मन्त्रोंसे आचमन करके स्नान करे; स्नान करके फिर आचमन करे; मन्त्रोंसे देहपर जल छिड़ककर सूर्यको अञ्जलीसे जल देवे ॥ १२–१३॥ प्रातःकाल और सायंकालकी सन्ध्याका अवलङ्घन नही करे; जो ब्राह्मण मोहवश होकर अवलङ्घन करताहै वह निश्चय करके नरकमें जाताहै ॥ १६–१७ ॥ सायंकालमें मन्त्रोंसे आचमन और देहपर जल छिड़क करके सूर्यको जलाञ्जली देवे और सूर्यकी प्रदक्षिणा करे फिर जल स्पर्श करके शुद्ध होवे ॥१७–१८॥ आकाशमें तारागणोंके देख पड़नेतक विधिपूर्वक प्रातःकालकी सन्ध्या; सूर्यके दर्शन होनेसे पहिले गायत्रीका जप; सूर्यके अस्तहोनेसे पहिले सायंकालकी सन्ध्या और ताराओंके देख-पड़नेके पहिले गायत्रीका जपकरे; उसके पश्चात् विद्वान् द्विज घरमें जाकर विधिपूर्वक होम करे ॥ १८–२० ॥ अपने पोष्यवर्ग * के भरण० पोषणका प्रबन्ध करे; उसके पश्चात् कुछ शिष्योंको पढावे ॥ २१ ॥ ब्राह्मण अपने कार्यके लिये राजा अथवा अन्य ऐश्वर्यवाले मनुष्यके पास जावे; दूर जाकर कुशा, फूल, लकड़ी आदि ले आवे ॥ पवित्र मनोरम स्थानमें बैठकर मध्याह्नका कर्म करे ॥ २३ ॥ नदी रहनेपर अन्य जलमें और अधिक जल मिलने पर अल्प जलमें स्नान नहीं करे; श्रेष्ठ नदीमें धाराकी ओर मुख करके स्नान करे; नदी नहीं रहने पर तड़ाग आदिके जलमें स्नान करे (ग) ॥ २५–२७॥ पवित्र स्थानमें जल छिड़ककर वस्त्रोंको रक्खे; मिट्टी और जलसे देह धोकरके स्नान करनेके पश्चात् आचमन करे ॥ २७–२८ ॥ जलमें प्रवेशकर मौन होके हरिका स्मरण करके जंघेतक जलमें गोता लगावे ॥ २९ ॥ किनारेपर आकर मन्त्रपूर्वक जलसे आचमन करके वरुणके मन्त्रो अथवा पावमानी सूक्तसे शरीरपर जल छिड़के ॥ ३० ॥ कुशाके अग्रभागके जलसे यत्नपूर्वक देहका मार्जन करके "स्योनापृथ्वी" मन्त्र अथवा "इदं विष्णु" मन्त्रसे शरीरमें मिट्टी लगावे ॥ ३१ ॥ प्रति गोता लगानेमें नारायण देवका स्मरण करे और जलके भीतर गोता लगायेहुए अघमर्षण मन्त्रको जपे ॥ ३२ ॥ स्नानकरके अक्षत और तिल और देव, ऋषि और पितरोंका तर्पण करे; वस्त्रको निचोडकर सावधानीसे तीरपर आकर शुक्लवस्त्र पहने और दुपट्टा धारण करे; सिरको केशोंके नही झिटकारे ॥ ३३–३४ ॥ अधिक लाल वा नीलसे रंगा हुआ अथवा मैला या दुर्गन्ध युक्त वस्त्र नहीं धारण करे (घ) ॥ ३५ ॥ पश्चात् विचारशील पुरुष मिट्टी और जलसे पैर धोवै और दाहने हाथको गौके कानके आकारका करके ३ बार आचमन करे २ बार मुखको पोछे पैर और शिरपर जल छिडककर बीचवाली ३ अंगुलीयोंसे मुखका स्पर्श करे ॥ ३६–३७ ॥ अंगुठा और अनामिका अंगुलीसे नेत्रोंका और सावधान होकर पांचो अंगुलियोंसे मस्तकका स्पर्श करे ॥३८॥ शुद्धमनवाला ब्राह्मण इस प्रकार आचमन करके कुशा हाथमे लेवे, उत्तर अथवा पूर्व मुख करके आलसको छोड़कर ३ प्रणायाम और जप यज्ञ करे (ङ) और वेदमाता गायत्रीको जपे ॥ ३९–४० ॥ ब्राह्मण प्रति दिन मनसे गायत्रीका जप करे; १ हजार गायत्रीका जप श्रेष्ठ, १ सौ गायत्रीका जप मध्यम और १० गायत्रीका जप अधम है ॥ ४८ ॥ जो नित्य गायत्रीका जप करताहै वह पापसे लिप्त नही होता सूर्यको पुष्प सहित जलाञ्जली देकर, ऊपरको भुजा उठाकर हाथ जोड़कर "उदुत्यं" और "तच्चक्षुः" इन मन्त्रोंको कहे और प्रदक्षिणा करके सूर्यको नमस्कार करे ॥ ४९–५० ॥ फिर ब्राह्मण देव आदिका तर्पण करे, पीछे

—प्रथमप्रपाठकके १३८–१४० श्लोकमें ठीक ऐसाही है। लघुआश्वलायनस्मृति–१ आचारप्रकरणके १४–१५ श्लोकमें है कि कुल्लेसे मुख शुद्ध और आचमनकरके काठ, पत्ते अथवा तृणसे दतवन करे किन्तु कोई कोई कहतेहै कि पत्ते अथवा तृणसे ही सदा दांतोंको शुद्ध करे। नवमी, द्वादशी; नन्दा (पड़वा, षष्ठी, और एकादशी), अमावास्या, रविवार, उपवासके दिन और श्राद्धके दिन दतवन करना उचित नहीं है। वृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—३ अध्याय कृषिकर्म आदि; ४३ श्लोक। अष्टमीमें मैथुन करनेसे, षष्ठीमे तेल लगानेमें और अमावास्यामे दांतमें काठ छुआनेसे ७ कुलका नाश होताहै।

* दक्षस्मृति–२ अध्यायके ३१–३३ श्लोक। माता, पिता; गुरु, भार्या, सन्तान, दीन, दास, दासी, अभ्यागत, अतिथि, अग्नि इत्यादि पोष्यवर्ग है।

(ग) अत्रिस्मृति। घरके स्नानसे कूपके पासके स्नानका पुण्य दसगुना कूपके स्नानसे तड़ाग आदि जलाशयके तटके स्नानका पुण्य दसगुना और तटके स्नानसे नदीमे स्नान करनेका पुण्य दसगुना होताहै, गंगा स्नानके पुण्यकी संख्या नहीं है ॥ ३९१ ॥ बहता हुआ जल, ब्राह्मण, सरोवरका जल क्षत्रिय, बावली और कूपका जल वैश्य और भांडका जल शूद्र है ॥ ३९२ ॥

(घ) लघुआश्वलायनस्मृति–१ आचारप्रकरणके २८–२९ श्लोक। ब्राह्मण शुक्लवस्त्र अथवा रेशमी वस्त्र पहने और ओढे. कम्बल और तसरका वस्त्र पहननेके लिये नहीं है किन्तु ओढनेके लिये है इन दो प्रकारके वस्त्रोंमें स्पर्शका दोष नही लगता। वृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–२ अध्याय; षट्कर्मणि स्नानविधि १५८–१५९ श्लोक। विद्वानको चाहिये कि विना फटाहुआ फीचाहुआ और शुक्लवस्त्र पहनकर मृत्तिका लगाकर जलसे ऊरु और चरणको धोवे। यदि ऐसा वस्त्र नहीं होय तो शण तीसीके छाल भेडके रोम अथवा बनैले बकरेके रोमका वस्त्र या योगपट्ट धारण करे और एक अंगौछी लेवे।

(ङ) यहां ४१ से ४५ श्लोकतक जपयज्ञका वर्णन है।

धोतीको निचोड़कर आचमन कर लेवे॥५१॥इसी प्रकार भक्त जनका स्नान और दान कहा गयाहै;कुशाओंपर बैठकर और कुशाओंको हाथमें लेकर ब्रह्मयज्ञके विधानसे पूर्व मुख होकर श्रद्धासे ब्रह्मयज्ञ करे और तिल, फूल तथा अक्षतके सहित सूर्यको अर्घ देवे ॥ ५२-५३ ॥ अर्घको मस्तकपर्यन्त उठाकर "हंसः शुचिषत्" इत्यादि ऋचासे सूर्यके सम्मुख छोड़े और सूर्यको नमस्कार करके अपने घर जावे ॥ ५४ ॥ घरमें जाकर विधिपूर्वक पुरुषसूक्तसे विष्णुका पूजन करके वलिकर्मविधिसे बलिवैश्वदेव करे ॥ ५५ ॥

(९) आपस्तम्बस्मृति--९ अध्याय ।

ऊर्ध्वं नाभेः करौ मुक्त्वा यदङ्गमुपहन्यते ॥ १० ॥
ऊर्ध्वं स्नानमधः शौचमात्रेणैव विशुध्यति ॥ ११ ॥

हाथको छोड़कर नाभीसे ऊपरके अङ्ग अपवित्र होनेपर स्नान करनेसे पवित्र होतेहैं और हाथ तथा नाभीसे नीचेके अङ्ग अशुद्ध होनेपर शौच करनेसे ही अर्थात् केवल मिट्टी लगाकर जलसे धोनेसे शुद्ध हो जातेहैं ॥ १०-११ ॥

(१०) संवर्तस्मृति ।

अकृत्वा पादशौचं तु तिष्ठन्मुक्तशिखोपि वा । विना यज्ञोपवीतेन त्वाचान्तोप्यशुचिर्भवेत् ॥ १५ ॥

विना पैर धोयेहुए, विना शिखा बान्धेहुए अथवा विना जनेऊ पहनेहुए आचमन करनेपर भी द्विज शुद्ध नहीं होतेहैं ॐ ॥ १५ ॥

(११) कात्यायनस्मृति--६ खण्ड ।

अधानकाला ये प्रोक्तास्तथा याश्चाग्नियोनयः । तदाश्रयोग्निमादध्यादग्निमानग्रजो यदि ॥ १ ॥
दाराधिगमनाधाने यः कुर्यादग्रजाग्रिमः । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ २ ॥
परिवित्तिपरिवेत्तारौ नरकं गच्छतो ध्रुवम् । अपि चीर्णप्रायश्चितौ पादोनफलभागिनौ ॥ ३ ॥
यस्य दत्ता भवेत्कन्या वाचा सत्येन केनचित् । सोऽन्त्यां समिधमाधास्यन्नादधीतैव नान्यया॥१३॥
अनूढैव तु सा कन्या पञ्चत्वं यदि गच्छति । न तथा व्रतलोपोऽस्य तेनैवान्यां समुद्वहेत् ॥ १४ ॥
अथ चेन्न लभेतान्यां याचमानोऽपि कन्यकाम् । तमग्निमात्मसात्कृत्वा क्षिप्रं स्यादुत्तराश्रमी ॥१५॥

जो अग्निहोत्र ग्रहणके समय कहेगये हैं और जो अग्निके कारण हैं उन्हींमें जेठा भाई अग्निहोत्र ग्रहण करचुका होवे तब छोटाभाई अन्त्याधानपूर्वक अग्निहोत्र ग्रहण करे ▣ ॥ १ ॥ जब छोटा भाई बड़े भाईसे पहिले विवाह और अग्निहोत्र ग्रहण करताहै तब वह परिवेत्ता और बड़ाभाई परिवित्ति कहलाता है ॥ २ ॥ परिवित्ति और परिवेत्ता, दोनों निश्चय करके नरकमें जातेहैं; प्रायश्चित्त करनेपर भी वे तीन चौथाई फलके भागी होतेहैं ॥ ३ ॥ यदि कोई कन्या देनेके लिये वचन देचुका हो तो वह उसी कन्यासे विवाह करके उसके साथ अग्निहोत्र ग्रहण करे; अन्य स्त्रीका साथ नहीं, किन्तु यदि वह कन्या विना विवाही मरजाय तो उससे उस पुरुषका अग्निहोत्र लेनेकी प्रतिज्ञाका नाश नहीं होताहै; वह दूसरी कन्यासे विवाह करलेवे ॥ १३-१४ ॥ यदि मांगनेसे भी अन्य कन्या नहीं मिले तो आत्मामें अग्निको स्थापित करके संन्यासी होजावे ॥ १५ ॥

७ खण्ड ।

अश्वत्थे यः शमीगर्भः प्रशस्तोर्वीसमुद्भवः । तस्य च प्राङ्मुखी शाखा वोदीची वोर्द्ध्वगापि वा ॥१॥
अरणिस्तन्मयी प्रोक्ता तन्मध्ये वोत्तरारणिः । सारवद्दारवश्चात्र मोविली च प्रशस्यते ॥ २ ॥
संसक्तमूलो यः शम्या स शमीगर्भ उच्यते । अलाभे त्वशमीगर्भादुद्धरेदविलम्बितः ॥ ३ ॥

ॐ शङ्खस्मृति--१० अध्यायके १४ श्लोक और लघुहारीतस्मृतिके ३६ श्लोकमें ऐसाही है। पाराशर-स्मृति-१२ अध्याय-१६ श्लोक और उशनस्मृति-२ अध्याय-९ श्लोक शिर अथवा कण्ठमें वस्त्र लपेटकर, काछ खोलकर या शिखा खोलकर अथवा विना जनेऊ पहनेहुए आचमन करनेपर भी द्विज शुद्ध नहीं होता है। शातातपस्मृति १२७ श्लोक। शिर अथवा कण्ठमें वस्त्र लपेटकर या शिखा खोलकर स्नान करनेसे और विना पांव धोयेहुए आचमन करनेसे द्विज पवित्र नहीं होताहै । कात्यायनस्मृति-१ खण्ड ४ श्लोक। द्विज सदा जनेऊ पहने रहे और शिखामें गांठ दिये रहे; क्योंकि जिस द्विजका शिखा और जनेऊ नहीं है उसके कियेहुए सब कर्म व्यर्थ होजातेहैं ।

▣ मानवगृह्यसूत्र--२ पुरुष-१ खण्डमें आवसथ्याग्न्याधानका विधान है।

चतुर्विंशतिरंगुष्ठदैर्घ्यं षडपि पार्थिवम् । चत्वार उच्छ्रये मानमरण्योः परिकीर्तितम् ॥ ४ ॥
अष्टाङ्गुलः प्रमन्थः स्याच्चत्रं स्याद् द्वादशांगुलम् । ओविली द्वादशैव स्यादेतन्मन्थनयन्त्रकम् ॥५ ॥
अंगुष्ठांगुलमानन्तु यत्रयत्रोपदिश्यते । तत्रतत्र बृहत्पर्व ग्रन्थिभिर्मिनुयात्सदा ॥ ६ ॥
गोवालैः शणसंमिश्रैस्त्रिवृत्तममलात्मकम् । व्यामप्रमाणं नेत्रं स्यात्प्रमथ्यस्तेन पावकः ॥ ७ ॥
मूर्धाक्षिकर्णवक्त्राणि कन्धरा चापि पञ्चमी । अंगुष्ठमात्राण्येतानि द्व्यंगुष्ठं वक्ष उच्यते ॥ ८ ॥
अंगुष्ठमात्रं हृदयं त्र्यंगुष्ठमुदरं स्मृतम् । एकांगुष्ठा कटिर्ज्ञेया द्वौ वस्तिर्द्वौ च गुह्यकम् ॥ ९ ॥
ऊरुजंघे च पादौ च चतुस्त्र्येकैर्यथाक्रमम् । अरण्यवयवा ह्येते याज्ञिकैः परिकीर्तिताः ॥ १० ॥
यत्तद् गुह्यमिति प्रोक्तं देवयोनिस्तु सोच्यते । अस्यां यो जायते वह्निः स कल्याणकृदुच्यते ॥११ ॥
अन्येषु ये तु मथ्नन्ति ते रोगभयमाप्नुयुः । प्रथमे मन्थने त्वेष नियमो नोत्तरेषु च ॥ १२ ॥
उत्तरारणिनिष्पन्नः प्रमन्थः सर्वथा भवेत् । योनिसङ्करदोषेण युज्यते ह्यन्यमन्थकृत् ॥ १३ ॥
आर्द्रा सशुषिरा चैव घूर्णाङ्गी पाटिता तथा । न हिता यजमानानामरणिश्चोत्तरारणिः ॥ १४ ॥

जिस पवित्र भूमिके पीपलमें शमी जमी हो उसकी पूर्व, उत्तर अथवा ऊपरको जानेवाली शाखाकी अरणी और उत्तरारणी बनाना चाहिये और काठके सार अर्थात् दृढ़ काठका चात्र और ओविली श्रेष्ठ कहे हैं ॥ १–२ ॥ शमीके मूलसे युक्त पीपलको शमीगर्भ कहतेहैं, यदि ऐसा वृक्ष नहीं मिले तो विना शमीयुक्त पीपलसे शीघ्र शाखाको काटलावे ॥ ३ ॥ २४ अंगुलकी लम्बाई, ६ अंगुलकी चौड़ाई और ४ अंगुलकी ऊंचाई (मोटाई) दोनों अरणियोंका कहाहै ॥ ४ ॥ ८ अंगुलका प्रमन्थ और १२ अंगुलका चात्र होताहै और १२ अंगुलकी ओविली होतीहै; ये सब मिलकर अग्नि मथनेका यन्त्र होताहै ॥ ५ ॥ जहां जहां अंगूठेके अंगुलका प्रमाण कहाहै वहां २ अंगूठेके वीचकी गांठसे नापना चाहिये ॥६॥ शण और गौके पूंछके बालोंको तिगुना ऐंठकर निर्मल ३ हाथ लम्बा नेत्र नामक रस्सी बनाना चाहिये और उसीसे अग्निको मथना चाहिये ॥ ॥ ७ ॥ सिर, नेत्र, कान, मुख और गला;ये पांचों एक एक अंगूठेके प्रमाण; छाती २ अंगूठेके बराबर हृदय १ अंगूठेभर; उदर ३ अंगूठेभर; कटि १अंगूठेभर नाभीसे नीचेका भाग और गुदा दो दो, अंगूठे परिमाण; ऊरू अर्थात् घोंटूसे ऊपरका भाग ४अंगूठेभर घोंटूसे नीचेका भाग ३ अंगूठेभर और पैर १ अंगूठेभर होवे; यज्ञ कर्त्ताओंने ये सब अरणीके अङ्ग कहेहैं अर्थात् इसी परिमाणसे चिह्न करदेना चाहिये ॥ ८–१० ॥ जो पहिले गुदा कहा गया है उसीको देवयोनि अर्थात् अग्नि उत्पन्न होनेका स्थान कहतेहैं, इसमें जो अग्नि उत्पन्न होता-है वह कल्याण करनेवाला कहा गया है ॥ ११ ॥ जो देवयोनिसे अन्य जगह मथन करताहै उसको रोग और भय होताहै; प्रथमवार मथन करनेमें यह नियम है; पीछे मथन करनेमें गुह्यस्थलका नियम नहीं है ॥ १२ ॥ सर्वदा उत्तरारणी सम्बन्धी टुकड़ेका प्रमन्थ होना चाहिये; यदि अन्य लकड़ीका प्रमन्थ बनावेगा तो योनिसङ्कर दोष लगेगा ॥ १३ ॥ गीली, छेदवाली, घुनी वा फटी अरणी अथवा उत्तरारणी यजमानके लिये हितकारी नहीं है ॥ १४॥

८ खण्ड ।

परिधायाहतं वासः प्रावृत्य च यथाविधि । बिभृयात्प्राङ्मुखो यन्त्रमावृता वक्ष्यमाणया ॥ १ ॥
चात्रबुध्ने प्रमन्थाग्रं गाढं कृत्वा विचक्षणः । कृत्वोत्तराग्रामरणिं तद् बुध्नमुपरि न्यसेत् ॥ २ ॥
चात्राधः कीलकाग्रस्थामोविलीमुदगग्रकाम् । विष्टम्भाद्धारयेद्यन्त्रं निष्कम्पं प्रयतः शुचिः ॥ ३ ॥
त्रिरुद्वेष्ट्याथ नेत्रेण चात्रं पत्न्योऽहतांशुकाः । पूर्वं मन्थन्त्यरण्यान्ताः प्राच्यग्नेः स्याद्यथा च्युतिः॥४॥
नैकयापि विना कार्यमाधानं भार्यया द्विजैः । अकृतं तद्विजानीयात्सर्वान्वाचारमन्ति यत् ॥ ५ ॥
वर्णज्येष्ठ्येन बह्वीभिः सवर्णाभिश्च जन्मतः । कार्यमग्निच्युतेराभिः साध्वीभिर्मन्थनं पुनः ॥ ६ ॥
नात्र शूद्रीं प्रयुञ्जीत न द्रोहद्वेषकारिणीम् । नाव्रतस्थान्न चैवान्यपुंसा च सहसङ्गताम् ॥ ७ ॥
ततः शक्ततरा पश्चादासामन्यतरापि वा । उपेतानां वान्यतमा मन्थेदग्निं निकामतः ॥ ८ ॥

नवीन धोती पहनकर और ऐसाही एक अंगौछा ओढकर पूर्वमुख हो आगे कहेअनुसार अग्निमन्थनका यन्त्र धारण करे ॥ १ ॥ विचारशील पुरुष चात्रके छिद्रमें प्रमन्थके अग्रभागको ठोककर अधरारणि उत्त-राग्र रखकर उसके ऊपर गुह्यस्थलमें प्रमन्थका छोर धरे ॥ २॥ तब शुद्ध हुआ यजमान चात्रके नीचेकी कीलके अग्रभागमें जिसका अग्रभाग उत्तरको होवे ओविलीको रक्खे और बड़े जोरसे सावधान होकर दोनों हाथोंसे ओविलीको ऐसा दबावे जिससे वह हिले नहीं ॥ ३ ॥ यजमानकी पत्नी नवीन वस्त्र पहनकर नेत्र नामक रस्सीको चात्रमें ३ वार लेपटकर पहिले इसप्रकार अग्निको मन्थे जिससे अरणीमेंसे पूर्वदिशामें

अग्नि निकलकर गिरे ॥ ४ ॥ जिस द्विजको एकभी स्त्री नहीं होवे वह अग्निका आधान (अग्निहोत्र) नहीं करे; क्योंकि उसका करना नहीं करनेके समान है और अन्यभी आचार नहींके समान हैं ॥ ५ ॥ यदि बहुत स्त्रियां होंवे तो उनमें जो उत्तम वर्णकीही सवर्ण होवे उसके साथ और यदि उत्तम वर्णकीही बहुतसी स्त्रियां होवें तो उनमें जो ज्येष्ठा होवे उसके साथ अग्निका आधान करे; यदि मथित अग्नि नष्ट हो जाय तो साधुस्वभाववाली स्त्रियां फिर मथन करें ॥ ६ ॥ अग्नि मथन करनेमें शूद्री, द्रोह करनेवाली, द्वेष करनेवाली, नियम रहित और परपुरुषसङ्गता स्त्रियोंको नियुक्त नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥ सवर्णा असवर्णा स्त्रियोंमें जो अत्यन्त बलवती हो अथवा एक वर्णकी बहुतसी स्त्रियोंमें अवस्थामें छोटी स्त्रीभी बलवती हो वही अग्निका मन्थन करे ॥ ८ ॥

जातस्य लक्षणं कृत्वा तं प्रणीय समिध्य च । आधाय समिधं चैव ब्रह्माणं चोपवेशयेत् ॥ ९ ॥
ततः पूर्णाहुतिं हुत्वा सर्वमन्त्रसमन्विताम् । गां दद्याद्यज्ञवानन्ते ब्रह्मणे वाससी तथा ॥ १० ॥
होमपात्रमनादेशे द्रवद्रव्ये स्रुवः स्मृतः । पाणिरेवेतरस्मिंस्तु स्रुचैवात्र तु हूयते ॥ ११ ॥
खादिरो वाथ पालाशो द्विवितस्तिः स्रुवः स्मृतः । स्रुग्बाहुमात्रा विज्ञेया वृतस्तु प्रग्रहस्तयोः ॥ १२ ॥
स्रुवाग्रे घ्राणवत्खातं द्व्यंगुष्ठपरिमण्डलम् । जुह्वाः शरावंवत्खातं सनिर्वाहं षडंगुलम् ॥ १३ ॥

उत्पन्नहुए अग्निके लक्षण प्रकाश कर कुण्डमें प्रज्वलित करे और समिधा (ढाककी लकड़ी)अग्निमें रखकर वहां ब्रह्माको बैठावे ॥ ९ ॥ फिर मन्त्रोंसे युक्त पूर्णाहुति देकर यज्ञके अन्तमें ब्राह्मण ब्रह्माको दो वस्त्रके सहित गौ देवे ॥ १० ॥ जहां घी आदि द्रव पदार्थका होम करना होत्र और कोई होम पात्र नहीं कहा-गया हो वहां स्रुवाको होमका पात्र समझना चाहिये; अन्य सूखे साकल्यका होम हाथोंसे और अग्निहोत्रका होम स्रुक्से होताहै ॥ ११ ॥ खैर अथवा पालाशके काठका २ बिलस्त लम्बा स्रुव होताहै और १ भुजा लम्बी स्रुक् होती है और इन दोनोंके पकड़नेका स्थान गोल होताहै ॥ १२ ॥ स्रुवके अग्रभागमें नासिकाके छेदके समान अंगूठेके बराबर गहरे, गोलाकार २ गड़हे होतेहैं और स्रुक्के अग्र भागमें सकोराके समान गड़हा होताहै उसके आगे ६ अंगुल लम्बा पनालेके समान थोड़ा गड़हा रहताहै ॥ १३ ॥

तेषां प्राक्शः कुशैः कार्यः संप्रमार्गो जुहूषता । प्रतापनश्च लिप्तानां प्रक्षाल्योष्णेन वारिणा ॥ १४ ॥
प्राञ्चं प्राञ्चमुदगग्नेरुदगग्रं समीपतः । तत्तथासादयेद्द्रव्यं यद्यथा विनियुज्यते ॥ १५ ॥
आज्यहव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते । मन्त्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः ॥ १६ ॥
नांगुष्ठादाधिका ग्राह्या समित्स्थूलतया क्वचित् । न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता ॥ १७ ॥
प्रादेशान्नधिका नोना न तथा स्याद्विशाखिका । न सपर्णा न निर्वीर्या होमेषु च विजानता ॥ १८ ॥
प्रादेशद्वयमिध्मस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् । एवंविधाः स्युरेवेह समिधः सर्वकर्मसु ॥ १९ ॥
समिधोऽष्टादशेध्मस्य प्रवदन्ति मनीषिणः । दर्शे च पौर्णमासे च क्रियास्वन्यासु विंशतिः ॥ २० ॥
समिधादिषु होमेषु मन्त्रदैवतवर्जिता । पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च हीन्धनार्थं समिद्भवेत ॥ २१ ॥
इध्मोऽप्येधार्थमाचार्यैर्हविराहुतिषु स्मृतः । यस्य चास्य निवृत्तिः स्यात्तत्स्पष्टीकरवाण्यहम् ॥ २२ ॥
अङ्गहोमसमित्तन्त्रसोष्यन्त्याख्येषु कर्मसु । येषां चैतदुपर्युक्तं तेषु तत्सदृशेषु च ॥ २३ ॥
अक्षभङ्गादिविपदि जलहोमादिकर्मणि । सोमाहुतिषु सर्वासु नैतेष्विध्मो विधीते ॥ २४ ॥

होम करनेवालेको चाहिये कि पूर्वमुख होकर इन पात्रोंको अच्छी तरहसे कुशाओंसे साफ करे; यदि इनमें घी आदि लगगये होंय तो इनको तप्त जलसे धोकर आगमें तपाय लेवे ॥ १४ ॥ होमके उपयोगी सामानोंको अग्निके उत्तर क्रम पूर्वक पूर्व पूर्व क्रमसे एक सङ्ग दो दो वस्तुओंको उत्तराग्र स्थापन करे॥१५॥जहां

लघुआश्वलायनस्मृति—१ आचारप्रकरण । अग्निहोत्री ब्राह्मणको उचितहै कि अपनी भार्याको घरमें छोड़कर गांवकी सीमासे बाहर नहीं जावे; जहां भार्या रहे वहांही अग्निहोत्र करे ॥ ६९ ॥ जो द्विज मोहवश होकर सीमाके बाहर जाके बिना भार्याके विद्यमान रहतेहुए होम करताहै उसका होम व्यर्थ हो जाताहै ॥ ७० ॥अग्निहोत्री ब्राह्मण सदा अग्निशालामें भार्याके सहित होमका विधान करे ॥ ७१ ॥ महर्षियोंने कहाहै कि जहां धर्मनिष्ठा सवर्णा भार्या रहतीहै वहांही अग्निहोत्रआदि.कर्म करना चाहिये ॥ ७२ ॥ कात्यायनस्मृति—१९ खण्ड । भार्याओंमेंसे जो पुत्रवती, आज्ञाकारिणी, प्यारी, चतुर, प्रिय बोलनेवाली और शुद्धस्वभाववाली होवे उसीको अग्निकार्यमें लगाना चाहिये॥४॥ २० खण्ड । भार्याके मरजानेपर वैदिक अग्निका त्याग नहीं करे; भार्याकी प्रतिमा बनाकर जीवनपर्यन्त अग्निहोत्र करतेरहे ॥ ९ ॥ जो पुरुष मृत भार्याको अग्निहोत्रकी आगमें जलाकर अग्निहोत्रको त्याग देताहै वह दूसरे जन्ममें स्त्री होता है और उसकी स्त्री पुरुष होतीहै ॥ ११ ॥

होमकी वस्तुका नाम नहीं कहाहै वहां घीकी हव्य जानना और जहां किसी मन्त्रका देवता नहीं कहागयाहै वहां प्रजापति देवता समझना चाहिये; यही मर्यादा है ॥ १६ ॥ अंगूठेसे अधिक मोटी, छालरहित, कीडे युक्त, फटी हुई, १० अंगुलसे अधिक अथवा कम लम्बी, विना शाखावाली, पत्तेवाली अथवा अति जीर्ण समिधासे ज्ञानवान् मनुष्य कभी होम नहीं करे ॥ १७-१८ ॥ दो प्रादेश (२० अंगुल) की समिधाको इध्म (इन्धन) कहतेहैं अग्निहोत्र कर्मोंमें ऐसीही समिधा होतीहै ॥ १९ ॥ विद्वान् लोग अमावास्या और पूर्णमासीके होममें १८ और अन्य होमोंमें २० इध्म नामक समिधा देनेको कहतेहैं ॥ २० ॥ जो होम समिधोंसे कियेजातेहैं उनके पहिले अथवा पीछे इन्धनके लिये जो समिधा होतीहै उसका मन्त्र अथवा देवता कोई नहीं होता ॥ २१ ॥ आचार्य कहतेहैं कि इन्धनके लिये इध्म (१८ समिधे) भी हविष्यकी आहुतियोंमें संमिलित है; जिस कर्ममें यह इध्म नहीं डालीजाती उसको मैं कहताहूं ॥ २२ ॥ बड़े यज्ञके अङ्गहोममें समित्तन्त्रमें, गर्भाधान आदि संस्कारमें, पहिले कहेहुए कर्मोंमें, उनके समान कर्मोंमें, अक्षभङ्गआदि विपत्ति-निमित्तक होममें जल निमित्त होममें और सोमरसकी आहुतिमें इध्मका विधान नहीं कहाहै ॥ २३-२४ ॥

९ खण्ड ।

सूर्येऽन्तशैलमप्राप्ते षट्त्रिंशद्भिः सदांगुलैः । प्रादुष्करणमग्नीनां प्रातर्भासां च दर्शनात् ॥ १ ॥
हस्तादूर्ध्वं रविर्यावद्गिरिं हित्वा न गच्छति । तावद्धोमविधिः पुण्यो नात्येत्युदितहोमिनाम् ॥ २ ॥
यावत्सम्यङ्न भासन्ते नभस्यृक्षाणि सर्वतः । न च लौहित्यमपैति तावत्सायं च हूयते ॥ ३ ॥
रजोनीहारधूमाभ्रवृक्षाग्रान्तरिते रवौ । सन्ध्यामुद्दिश्य जुहुयाद्धुतमस्य न लुप्यते ॥ ४ ॥
न कुर्यात्क्षिप्रहोमेषु द्विजः परिसमूहनम् । वैरूपाक्षं च न जपेत्प्रपदं च विवर्जयेत् ॥ ५ ॥
पर्युक्षणं च सर्वत्र कर्तव्यमुदिते त्विति । अन्ते च वामदेव्यस्य गानं कुर्यादृचस्त्रिधा ॥ ६ ॥
अहोमकेष्वपि भवेद्यथोक्तं चन्द्रदर्शनम् । वामदेव्यं गणेष्वन्ते बल्यन्ते वैश्वदेविके ॥ ७ ॥
यान्यधस्तरणान्तानि न तेषु स्तरणं भवेत् । एककार्यार्थसाध्यत्वात्परिधीनपि वर्जयेत् ॥ ८ ॥
बर्हिः पर्युक्षणं चैव वामदेव्यजपस्तथा । कृत्वाहुतिषु सर्वासु त्रिकमेतन्न विद्यते ॥ ९ ॥
हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु व्रीहयः स्मृताः । माषकोद्रवगौरादि सर्वालाभेऽपि वर्जयेत् ॥ १० ॥
पाण्याहुतिर्द्वादशपर्वपूरिका कंसादिनाचेत्स्रुवमात्रपूरिका ।
दैवेन तीर्थेन च हूयते हविः स्वङ्गारिणि स्वर्चिषि तच्च पावके ॥ ११ ॥
योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः । मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्च स जायते ॥ १२ ॥
तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कदाचन । आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यन्तिकीं पराम् ॥ १३ ॥
होतव्ये च हुते चैव पाणिशूर्पस्फ्यदारुभिः । न कुर्यादग्निधमनं कुर्याद्वा व्यजनादिना ॥ १४ ॥
मुखेनैके धमन्त्यग्निं मुखाद्ध्येषोऽध्यजायत । नाग्निं मुखेनेति च यल्लौकिके योजयन्ति तम् ॥ १५ ॥

सूर्यके अस्ताचलसे ३६अंगुल ऊपर रहनेपर सायंकालके होमके लिये और प्रातःकालमें सूर्यके किरणोंके देखने पर प्रातःकालके होमके लिये अग्निको प्रज्वलित करे॥१॥प्रातःकालमें जबतक सूर्य उदयाचलसे १ हाथसे अधिक ऊपर नहीं जातेहैं तब तक होम होसकताहै; यह विधि उदित होम करनेवालोंके लिये है ॥ २ ॥ जबतक अच्छी तरहसे नक्षत्र नहीं देखपडें और आकाशकी लाली दूर नहीं होवे तबतक सन्ध्याकालका होम हो सकता है ॥ ३ ॥ यदि धूली, कुहरा, धुंआ, मेघ अथवा वृक्षके आड़से सूर्य नहीं देखपड़े और सन्ध्या जानकर कोई होम करे तो उसका होम नष्ट नहीं होता ॥ ४ ॥ द्विजको उचित है कि शीघ्रताके होमोंमें कुशाओंसे वेदीकी स्वच्छता, विरूपाक्ष मन्त्रका जप और प्रपद कर्म (तपश्च तेजश्च इत्यादि मन्त्रपाठ) नहीं करे ॥ ५ ॥ सब होमोंके आदिमें अग्निकुण्डके सब ओर जल सेंचन करे और अन्तमें वामदेव्य सूक्तका ३ बार पाठ करे ॥ ६ ॥ जिन कर्मोंमें होम नहीं होता उनमें चन्द्रमाका दर्शन जिस भांति होताहै वैसेही सब कर्मोंके समूहोंके अन्तमें तथा बलिवैश्वदेवके अन्तमें (सामवेदके) वामदेव्य सूक्तका गान करे ॥ ७ ॥ जिन कर्मोंकी समाप्ति नीचे

ॐ लघुआश्वलायनस्मृति—१ आचारप्रकरण । यदि द्विज किसी कारणसे दोनों कालमें होम नहीं करसके तो सायंकालमें ही घीकी आहुतिसे प्रातःकालकी आहुति भी करदेवे ॥ ६५ ॥ सायंकालमें घीका ४ आहुति करके एकही साथ अग्नि और सूर्यकी स्तुति करे ॥ ६६ ॥ होमका प्रथम काल छूट जाय तो दूसरे कालमें व्याहृतिमन्त्रसे घीका हवन करके दोनों कालका होम करदेवें ॥ ६७ ॥ यदि अग्नि नष्ट हो जाय तो अपराह्नमें अग्निस्थापनका विधान करके सूर्यके अस्त होजानेपर सायंकालकी उपासना करे ॥ ६८ ॥

स्थलमें बिछायेहुये कुशोंतक होतीहै उनमें अलग अलग कुशा नहीं बिछाना चाहिये और एक ही कार्यकी सिद्धिके लिये अलग अलग बनेहुए अग्निकुण्डोंमें अलग अलग परिधि (कुण्डके चारों तरफका घेरा) नहीं करना चाहिये ॥८॥ वर्हिः (४ मुट्ठी कुशाके बिछानेका विनियोग),पर्युक्षण और वामदेव्यका जप; ये ३ कर्म सब यज्ञोंकी आहुतियोंमें नहीं होतेहैं ॥ ९ ॥ हविष्यमें यव प्रधान हैं उसके बाद धान है, यदि कुछ नहीं मिलें तो भी उर्दी, कोदो और सफेद सरसोंको ग्रहण नहीं करना चाहिये ॥ १० ॥ हाथसे आहुति देना होय तो चारो अंगुलियोंके बारहो पर्व (पोर) भरकर देवे और पात्रसे देना हो तो स्रुवेको भरके देवे; अङ्गारयुक्त अच्छी तरहसे प्रज्वलित अग्निमें देवतीर्थ अर्थात् अंगुलियोंके अग्रभागसे आहुति डाले ॥ ११ ॥ जो मनुष्य ज्वाला और अङ्गार रहित अग्निमें होम करताहै वह मन्दाग्नि, रोगी और दरिद्री होताहै, इसलिये आरोग्यता, बड़ी अवस्था और महान् लक्ष्मीको चाहनेवाले मनुष्य जलतीहुई आगमें होम करे ॥ ॥ १२-१३ ॥ जिस अग्निमें होम करना होय या कर चुका हो उसको हाथ, सूप, खड्गके तुल्य बना यज्ञपात्र अथवा काठसे नहीं प्रज्वलित करे; किन्तु पंखे आदिसे करे ॥ १४ ॥ कोई आचार्य कहते हैं कि मुखकी हवासे अग्निको प्रज्वलित करना चाहिये; क्योंकि मुखसेही अग्नि उत्पन्न हुआहै; जो कहते हैं कि मुखसे अग्निको नहीं फूँकना वह लौकिक अग्निके लिये है; होमकी अग्निके लिये नहीं ❀ ॥ १५ ॥

११ खण्ड ।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि सन्ध्योपासनकं विधिम् । अनर्हः कर्मणां विप्रः सन्ध्याहीनो यतः स्मृतः॥१॥
सव्ये पाणौ कुशान्कृत्वा कुर्यादाचमनक्रियाम् । ह्रस्वाः प्रचरणीयाः स्युः कुशा दीर्घास्तु वर्हिषः॥२॥
दर्भाः पवित्रमित्युक्तमतः सन्ध्यादिकर्मणि । सव्यः सोपग्रहः कार्यो दक्षिणः सपवित्रकः ॥ ३ ॥
रक्षयेद्वारिणात्मानं परिक्षिप्य समन्ततः । शिरसो मार्जनं कुर्यात्कुशैः सोदकबिन्दुभिः ॥ ४ ॥
प्रणवो भूर्भुवःस्वश्च सावित्री च तृतीयिका । अब्दैवत्यं त्र्यृचं चैव चतुर्थमिति मार्जनम् ॥ ५ ॥
भूराद्यास्तिस्र एवैता महाव्याहृतयोऽव्ययाः । महर्जनस्तपःसत्यं गायत्री च शिरस्तथा ॥ ६ ॥
आपोज्योतीरसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरिति शिरः । प्रतिप्रतीकं प्रणवमुच्चारयेदन्ते च शिरसः ॥ ७ ॥
एता एतां सहानेन तथैभिर्दशभिः सह । त्रिर्जपेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ ८ ॥
करेणोद्धृत्य सलिलं घ्राणमासज्य तत्र च । जपेदनायतासुर्वा त्रिः सकृद्वाघमर्षणम् ॥ ९ ॥
उत्थायार्कं प्रति प्रोहेत्त्रिकेणाञ्जलिनाम्भसः । उच्चित्रमृग्द्वयेनाथ चोपतिष्ठेदनन्तरम् ॥ १० ॥
सन्ध्याद्वयेप्युपस्थानमेतदाहुर्मनीषिणः । मध्ये त्वह्न उपर्यस्य विभ्राडादीच्छया जपेत् ॥ ११ ॥
तदसंसक्तपार्ष्णिर्वा एकपादर्द्धपादपि । कुर्यात्कृताञ्जलिर्वापि ऊर्ध्ववाहुरथापि वा ॥ १२ ॥
यत्र स्यात्कृच्छ्रभूयस्त्वं श्रेयसोऽपि मनीषिणः । भूयस्त्वं ब्रुवते तत्र कृच्छ्राच्छ्रेयो ह्यवाप्यते ॥१३॥
तिष्ठेदुदयनात्पूर्वां मध्यमामपि शक्तितः । आसीन उद्गमाच्चान्त्यां सन्ध्यापूर्वत्रिकं जपन् ॥ १४ ॥
एतत्सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं तत्र तिष्ठति । यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते ॥ १५ ॥
सन्ध्यालोपाच्च चकितः स्नानशीलश्च यः सदा । तं दोषा नोपसर्पन्ति गरुत्मन्तमिवोरगाः ॥ १६ ॥

इससे आगे सन्ध्यावन्दनकी विधि कहताहूं; सन्ध्याहीन ब्राह्मण सब कर्मोंके अयोग्य कहा गयाहै ॥ १ ॥ बांये हाथमें कुशा रखके आचमन करे; छोटे कुशा दर्भ और बड़े कुशा वर्हि कहातेहैं ॥ २ ॥ सन्ध्या आदि कर्मोंमें दर्भ ही पवित्र हैं; बांये हाथमें कुशाओंको लेकर दहिने हाथमें पवित्री पहने ॥ ३ ॥ चारो ओर जलको फेंककर:अपने शरीरकी रक्षा करे;कुशाओंके जलसे शिरका मार्जन करे॥४॥ ओंकार, भूः भुवः स्वः और तीसरी गायत्री और आपोहिष्ठा आदि तीन ऋचा; यह चौथा मार्जन है ॥ ५ ॥ भूः, भुवः स्वः ये तीन अविनाशी महा व्याहृती हैं महः जनः तपः सत्यं और गायत्री और शिरः आपो ज्योती रसोमृतं ब्रह्म, भूर्भुवः स्वः यह शिरोमन्त्र है; भूः आदि प्रत्येकके आगे और शिरोमन्त्रके पीछे ओंकारका उच्चारण करे ॥६-७॥ इन ७ व्याहृति, गायत्री, शिरोमन्त्र और ओंकार, इन१०का प्राणोंको रोक कर तीनवार जप करनेको प्राणायाम कहतेहैं ॥ ८ ॥ हाथमें जल लेकर उसको नासिकासे लगाकर प्राणोंको रोंकेहुए अथवा नहीं रोके हुए तीन बार या एकही बार अघमर्षण (ऋतं च म् इत्यादि) मन्त्रको जपे ॥ ९ ॥ उठकर सूर्यको अञ्जलीसे जल देवे, फिर उदुत्यं जात० और चित्रं देवानां० दो ऋचाओंसे सूर्यकी स्तुति करे ॥ १० ॥ विद्वानलोग कहतेहैं कि दोनों सन्ध्याओंमें इसीप्रकार सूर्यकी स्तुति करना, मध्याह्नमें इस स्तुतिके पीछे यदि इच्छा

❀ गोभिलस्मृति—१ प्रपाठकके १२२ से १३६ श्लोक तक ऐसाही है। कात्यायनस्मृतिके अन्य खण्डोंमें भी होम की बहुत बातें हैं।

होय तो "विभ्राड्" आदि अनुवाकोंको जपे ॥ ११ ॥ इस स्तुतिके समय एड़ी पृथ्वीपर नहीं लगने पावे अथवा एकही पैरसे खडारहे अथवा आधे पैरसे खड़ा रहे, फिर हाथ जोड़कर अथवा ऊपरको भुजा करके सूर्यकी स्तुति करे ॥ १२॥ विद्वान लोग कहतेहैं कि जिस कर्मके करनेमें बहुत कष्ट है उसमें कल्याणभी बहुत होता है; कष्टसेही कल्याण होताहै ॥ १३ ॥ सूर्यका मन्त्र जपताहुआ प्रातःकालकी सन्ध्या सूर्योदयसे पहिले खड़े होकर मध्याह्नकी संध्या अपने शक्तिके अनुसार यथावकाश खडे होकर और सायंकालकी सन्ध्या सूर्यास्त होनेपर बैठकर करे ॥ १४ ॥ इन तीनों सन्ध्याओंमें ब्राह्मणका ब्राह्मणत्व है, जिस ब्राह्मणको इनमें श्रद्धा नहीं है वह ब्राह्मण नहीं कहाजाता ॥ १५ ॥ जो सन्ध्याके छूटनेके पापसे डरताहै और सदा स्नानादि करताहै उससे पाप ऐसे भागजाते हैं जैसे गरुड़के डरसे सर्प भागतेहैं ॥ १६ ॥

(१३) पाराशरस्मृति–१२ अध्याय ।

स्नातुं यान्तं द्विजं सर्वे देवाः पितृगणैः सह । वायुभूतास्तु गच्छन्ति तृषार्ताः सलिलार्थिनः ॥१२ ॥
निराशास्ते निवर्तन्ते वस्त्रनिष्पीडने कृते । तस्मान्न पीडयेद्वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम् ॥ १३ ॥
अवधूनोति यः केशान्स्नात्वा प्रस्रवतो द्विजः । आचामेद्वा जलस्थोपि बाह्यः सपितृदैवतैः॥ ॥ १५ ॥
शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकक्षशिखोपि वा । विना यज्ञोपवीतेन आचान्तोप्यशुचिर्भवेत् ॥१६ ॥
जले स्थलस्थो नाचामेज्जलस्थश्च बहिस्थले । उभे स्पृष्ट्वा समाचामेदुभयत्र शुचिर्भवेत् ॥ १७ ॥
स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे । आचान्तः पुनराचामेद्वासोविपरिधाय च ॥ १८ ॥
क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथाऽनृते । पतितानां च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥ १९ ॥
भास्करस्य करैः पूतं दिवा स्नानं प्रशस्यते । अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥ २० ॥
महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम् । प्रदोषपश्चिमौ यामौ दिनवत्स्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥

द्विजके स्नान करनेके समय देवतालोग और पितर गण वायुरूप धारण करके तृषासे पीड़ित होकर उससे जल लेनेके लिये उसके पीछे पीछे चलतेहैं किन्तु जब वह विना तर्पण कियेहुए अपनी धोती निचोड़ने लगताहै तब वे लोग निराश होकर लौटजातेहैं इसलिये विना तर्पण कियेहुए धोती नहीं निचोड़ना चाहिये ॥ १२–१३ ॥ जो द्विज स्नान करके जल टपकतेहुए केशोंको झाड़ताहै अथवा पानीमें खड़े होकर आचमन करता है वह पितर तथा देवतओंके कार्योंके अयोग्य है ॥ १५ ॥ जो अपने शिर अथवा गलेमें साफा आदि कोई वस्त्र लपेटकर, काछ खोलकर, शिखा खोलकर अथवा जनेऊको छोड़कर आचमन करताहै वह आचमन करनेपरभी अशुद्ध रहताहै ॥ १६ ॥ स्थलमें रहकर हाथका जल जलमें टपकातेहुए. अथवा जलमें रहकर हाथका जल स्थलमें टपकातेहुए आचमन नहीं करे; किन्तु एक पाद जलमें और एक पाद स्थलमें रखकर आचमन करे, ऐसा करनेसे हाथके जलविन्दु स्थलमें गिरे या जलमें गिरे आचमन करनेवाला शुद्ध होताहै ॥ १७ ॥ आचमन करनेके पीछे यदि स्नान करे, जल पीवे, छींके, सोवे, भोजन करे, मार्गमें चले अथवा वस्त्र बदले तो फिरसे आचमन करना चाहिये ॥ १८ ॥ छींकने, थूकने, दांतोंके जूठेहोने, झूठ बोलने अथवा पतितसे सम्भाषण करनेपर अपने दहने कानका स्पर्श करलेना चाहिये ॥ १९ ॥ सूर्यकी किरणोंसे पवित्र दिनका स्नान उत्तम है; चन्द्रग्रहणके स्नानको छोडकर रातका स्नान अधम कहा गयाहै ॥ २० ॥ रातका दूसरा पहर और तीसरा पहर महानिशा कहाजाताहै; उस समयको छोड़कर रातके पहले और चौथे पहरमें दिनके समान स्नान करना चाहिये ॥ २४ ॥

(१४) व्यासस्मृति–३ अध्याय ।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यमिति कर्म त्रिधा मतम् । त्रिविधं तच्च वक्ष्यामि गृहस्थस्यावधार्यताम् ॥१॥
यामिन्याः पश्चिमे यामे त्यक्तनिद्रो हरिं स्मरेत् । आलोक्य मङ्गलद्रव्यं कर्मावश्यकमाचरेत् ॥
कृतशौचो निषेव्याग्निन्दन्तान्प्रक्षाल्य वारिणा । स्नात्वोपास्य द्विजः सन्ध्यां देवादींश्चैव तर्पयेत्॥३॥
वेदवेदाङ्गशास्त्राणि इतिहासानि चाभ्यसेत् । अध्यापयेच्च सच्छिष्यान्सद्विप्रांश्च द्विजोत्तमः ॥ ४ ॥
सरित्सरःसु वापीषु गर्तप्रस्रवणादिषु । स्नायीत यावदुद्धृत्य पञ्चपिण्डानि वारिणा ॥ ६ ॥
तीर्थाभावेप्यशक्तो वा स्नायात्तोयैः समाहृतैः । गृहाङ्गणगतस्तत्र यावदम्बरपीडनम् ॥ ७ ॥
स्नानमब्दैवतैः कुर्यात्पावनैश्चापि मार्जनम् । मन्त्रैः प्राणांस्त्रिरायम्य सौरैश्चार्कं विलोकयेत् ॥ ८ ॥
तिष्ठन्स्थित्वा तु गायत्रीं ततः स्वाध्यायमारभेत् ॥ ९ ॥
शक्त्या सम्यक्पठेन्नित्यमल्पमप्यासमापनात् ॥ १० ॥

स यज्ञदानतपसामखिलं फलमाप्नुयात् । तस्मादहरहर्वेदं द्विजोऽधीयीत वाग्यतः ॥ ११ ॥
धर्मशास्त्रेतिहासादि सर्वेषां शक्तितः पठेत् । प्रथमं कृतस्वाध्यायः तर्पयेच्चाथ देवताः ॥ १२ ॥
जान्वाच्य दक्षिणं दर्भैः प्रागग्रैः सयवैस्तिलैः । एकैकाञ्जलिदानेन प्रकृतिस्थोपवीतकः ॥ १३ ॥
समजानुद्वयो ब्रह्मसूत्रहार उदङ्मुखः । तिर्यग्दर्भैश्च वामाग्रैर्यवैस्तिलविमिश्रितैः ॥ १४ ॥
अम्भोभिरुत्तरक्षिप्तैः कनिष्ठामूलनिर्गतैः । द्वाभ्यां द्वाभ्यामञ्जलिभ्यां मनुष्यांस्तर्पयेत्ततः ॥ १५ ॥
दक्षिणाभिमुखः सव्यं जान्वाच्य द्विगुणैः कुशैः । तिलैर्जलैश्च देशिन्या मूलदर्भाद्विनिःसृतैः ॥ १६ ॥
दक्षिणांसोपवीतः स्यात्क्रमेणाञ्जलिभिस्त्रिभिः । संतर्पयेद्‍ दिव्यपितॄंस्तत्परांश्च पितॄन्स्वकान् ॥ १७ ॥
मातृमातामहांस्तद्वत्त्रीनेवं हि त्रिभिस्त्रिभिः । मातामहस्य येऽप्यन्ये गोत्रिणो दाहवर्जिताः ॥ १८ ॥
तानेकाञ्जलिदानेन तर्पयेच्च पृथक्पृथक् । असंस्कृतप्रमीता ये प्रेतसंस्कारवर्जिताः ॥ १९ ॥
वस्त्रनिष्पीडिताम्भोभिस्तेषामाप्यायनं भवेत् । अतर्पितेषु पितृषु वस्त्रं निष्पीडयेच्च यः ॥ २० ॥
निराशाः पितरस्तस्य भवन्ति सुरमानुषैः । पयोदर्भस्वधाकारगोत्रनामतिलैर्भवेत् ॥ २१ ॥
सुदत्तं तत्पुनस्तेषामेकेनापि विना वृथा । अन्यचित्तेन यद्दत्तं यद्दत्तं विधिवर्जितम् ॥ २२ ॥
अनासनस्थितेनापि तज्जलं रुधिरायते । एवं सन्तर्पिताः कामैस्तर्पकांस्तर्पयन्ति च ॥ २३ ॥
ब्रह्मविष्णुशिवादित्यमित्रावरुणनामभिः । पूजयेल्लक्षितैर्मन्त्रैर्जलमन्त्रोक्तदेवताः ॥ २४ ॥
उपस्थाय रविं काष्ठां पूजयित्वा च देवताः । ब्रह्माग्नीन्द्रौषधीजीवविष्णुवाङ्महतां तथा ॥ २५ ॥
अपाम्पतेति सत्कारं नमस्कारैः स्वनामभिः । कृत्वा मुखं समालभ्य स्नानमेवं समाचरेत् ॥ २६ ॥

गृहस्थका नित्य, नैमित्तिक और काम्य; यह तीन प्रकारका कर्म कहाहै उन तीनों प्रकारके कर्मोंको कहताहूं ॥१॥ द्विजको उचित है कि रातके पिछले पहरमें उठकर हरिका स्मरण करे, गौ आदि मङ्गलद्रव्यको देखकर शौचादि आवश्यक काम करे॥२॥शौच, होम, दन्तधावन,स्नान,सन्ध्या और देवता तथा पितरोंका तर्पण करे ॥३॥ ब्राह्मण वेद, वेदाङ्ग, शास्त्र और इतिहासका अभ्यास करे ❀ और अच्छे शिष्य और उत्तम ब्राह्मणोंको पढ़ावे ॥ ४ ॥ नदी, तालाव, वावली, कुण्ड अथवा झरनेमें स्नान करनेलगे तो पहिले उसमेंसे ५ पिण्डी मिट्टी निकाल करके तव स्नान करे ✠ ॥६॥ नदी आदि कोई तीर्थ नहीं रहनेपर अथवा जानेमें असमर्थ होनेपर कूप आदिसे जल मंगाकर पहनीहुई धोती भींगनेयोग्य जलसे अपने आङ्गनमेंही स्नान करलेवे ॥ ७ ॥ जिन मन्त्रोंका जल देवता है उन मन्त्रोंसे स्नान करे; पवित्र मन्त्रोंसे मार्जन करे और मन्त्रोंसे ३ प्राणायाम करके सूर्यके मन्त्रोंसे सूर्यको देखे ॥८॥ फिर खड़ा होकर गायत्रीका जप करके वेद आरम्भ करे ॥ ९ ॥ जो द्विज नित्य अपनी शक्तिके अनुसार वेदके थोडे भागको भी समाप्ति होनेतक पढ़ताहै वह यज्ञ, दान और तपके सम्पूर्ण फलको पाताहै,इस लिये द्विजको उचित है कि वाणीको वशमें रखकर प्रतिदिन वेदको पढ़े॥१०-११॥ धर्मशास्त्र, इतिहास आदिकाभी अपनी शक्तिके अनुसार पाठ करे; इसभांति प्रथम स्वाध्याय करके आगे लिखेहुए प्रकारसे देवताओंका तर्पण करे ॥ १२ ॥ दहिने जानुको भूमिपर नवायके, कुशाओंके अग्रभागको पूर्वकरके तथा कुशा, यव और तिल लेकर, सव्य जनेऊ धारण कियेहुए पूर्वाभिमुख बैठेहुए एक एक अञ्जली देताहुआ तर्पण करे ॥१३ ॥ दोनों जानु वरावर रखके जनेऊ कण्ठमें करके उत्तर मुख होकर कुशाओंके अग्रभागको बांयी ओर तिरछी करे; तिल मिलेहुए यवसे कनिष्ठाअंगुलीके मूलसे उत्तर जलको गिरातेहुए दो दो अञ्जलियोंसे मनुष्योंका अर्थात् सनकादि ऋषियोंका तर्पण करे ॥ १४-१५ ॥ दक्षिणको मुख करके वांया जानु भूमिपर टेककर दूना कुशा, तिल और तर्जनीके मूलपर रक्खेहुए कुशाओंसे गिरतेहुए जलसे दहिने कन्धेसे जनेऊ पहनेहुए क्रमसे तीन तीन अञ्जली देकर दिव्य पितरोंको तर्पण करे बाद

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय-१०१ श्लोक । जपयज्ञकी सिद्धिके लिये वेद, अथर्वण, इतिहास, पुराण और अध्यात्मविद्याका यथाशक्ति विचार करे। हारीतस्मृति—४ अध्याय ६८ श्लोक। कुछ समय (भोजनके उपरान्त) इतिहास और पुराणकी चर्चामें वितावे; फिर गांवसे वाहर जाकर विधिपूर्वक सन्ध्यावन्दन करे।

✠ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय-१५९ श्लोक। विना ५ पिण्डी मिट्टी निकालेहुए दूसरे मनुष्यके जलाशयमें स्नान नहीं करना चाहिये; नदी, देवखात, ह्रद और झरनेमें विना मिट्टी निकालेहुए स्नान करना चाहिये । अत्रिस्मृति-३० श्लोक । अन्यके जलाशयसे ४ पिण्डी मिट्टी निकालकर उसमें स्नान करे । वसिष्ठस्मृति-६ अध्याय १४ अङ्क। जलाशयसे जलको वाहर निकालकर सब काम करे जलाशयके भीतर नहीं; किन्तु स्नान जलाशयके भीतर करना उचित है ।

अपने पिता, पितामह और प्रपितामहका तर्पण करे ॥ १६-१७ ॥ इसी भांति, माता, पितामही और प्रपितामही तथा, मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह इन तीन तीन अञ्जलियोंसे तर्पण करे, नानाके कुलके जो लोग विना दाहकिये हुए मरगये हों, उनको एक एक अञ्जली देकर अलग अलग तर्पण करे; जो लोग विना संस्कार हुए मरे हैं अथवा जिनका प्रेतसंस्कार नहीं हुआ है उनकी तृप्ति अंगौछे निचोड़नेके जलसे होजातीहै ॥ १८-२० ॥ पितरोंके तर्पणसे पहिले वस्त्र निचोड़नेसे देवता और ऋषियोंके सहित पितर गण निराश होजातेहैं ॥ २०-२१ ॥ जल, कुशा, स्वधा शब्द गोत्र, नाम और तिलके सहित तर्पण करना चाहिये; इनमेंसे एकके भी नहीं होनेसे तर्पण वृथा होजाताहै ॥ २१-२२ ॥ एकान्तचित्त नहीं होकर विधिसे हीन अथवा आसनपर नहीं बैठकर जो जल दिया जाताहै वह रुधिरके समान है; इस प्रकारसे तृप्त होनेपर पितृगण तर्पण करनेवालेके कामनाओंको पूरा करतेहैं ॥ २२-२३ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य और मित्रावरुणको उनके मन्त्रोंसे जल द्वारा उनको अर्घ देवे ॥ २४ ॥ सूर्यकी, स्तुति करके पूर्व आदि दिशाओंको उनके देवताओंके सहित नमस्कार करे; ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र, औषधी, जीव, विष्णु, वाच, महत् और अपांपति इनके नामके मन्त्रोंसे इनको नमस्कार करे; उसके बाद मुखको पोंछकर स्नान करे ॥ २५-२६ ॥

ततः प्रविश्य भवनमावसथ्ये हुताशने। पाकयज्ञांश्च चतुरो विदध्याद्विधिवद्द्विजः ॥ २७ ॥
अनाहितावसथ्याग्निरादायान्नं घृतप्लुतम्। शाकलेन विधानेन जुहुयाल्लौकिकेऽनले ॥ २८ ॥
व्यस्ताभिर्व्याहृतीभिश्च समस्ताभिस्ततः परम्। षड्भिर्देवकृतस्येति मन्त्रवद्भिर्यथाक्रमम् ॥ २९ ॥
प्राजापत्यं स्विष्टकृतं हुत्वैवं द्वादशाहुतीः। ओंकारपूर्वः स्वाहान्तस्त्यागः स्विष्टविधौ मतः ॥ ३० ॥
भुवि दर्भान्समास्तीर्य बलिकर्म समाचरेत्। विश्वेभ्यो देवेभ्य इति सर्वेभ्यो भूतेभ्य एव च ॥ ३१ ॥
भूतानां पतये चेति नमस्कारेण शास्त्रवित्। दद्याद्बलित्रयं चाग्रे पितृभ्यश्च स्वधा नमः ॥ ३२ ॥
पात्रनिर्णेजनं वारि वायव्यां दिशि निःक्षिपेत्। उद्धृत्य षोडशग्राससमात्रमन्नं घृतोक्षितम् ॥ ३३ ॥
इदमन्नं मनुष्येभ्यो हन्तेत्युक्त्वा समुत्सृजेत्। गोत्रनामस्वधाकारैः पितृभ्यश्चापि शक्तितः ॥ ३४ ॥
षड्भ्योऽन्नमन्वहं दद्यात्पितृयज्ञविधानतः। वेदादीनां पठेत्किञ्चिदल्पं ब्रह्म मखाप्तये ॥ ३५ ॥
ततोऽन्यदन्नमादाय निर्गत्य भवनाद्बहिः। काकेभ्यः श्वपचेभ्यश्च प्रक्षिपेद्ग्रासमेव च ॥ ३६ ॥

द्विजको उचित है कि उसके पश्चात् अपने घरमें जाकर गृह्य अग्निमें विधिपूर्वक देवयज्ञ आदि चारो पाकयज्ञोंको करे ॥ २७ ॥ जिसने अग्निहोत्र ग्रहण नहीं किया हो वह घीसे भरेहुए अन्नको लेकर शाकल्य-संहिताके विधानसे लौकिक आगमें होम करे ॥ २८ ॥ ओंभूः स्वाहा, ओंभुवः स्वाहा और ओंस्वः स्वाहा, इस प्रकार पृथक् पृथक् ३ व्याहृतियोंसे तथा "ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहा" और "देवकृतस्य" इत्यादि शाकलहोमके ६ मन्त्रोंसे ६ आहुति करे और इसीप्रकार स्विष्ट प्राजापत्यकी १२ आहुति देवे; सब मन्त्रोंके आदिमें ओंकार और अन्तमें स्वाहा पद लगावे ॥ २९-३० ॥ शास्त्रज्ञ मनुष्यको उचित है कि भूमिपर कुशा बिछाकर उसके ऊपर बलिकर्म करे; विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, सर्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः और भूतानां पतये नमः इन ३ मन्त्रोंसे प्रथम ३ बलि देकर पितृभ्यः स्वधा नमः मन्त्रसे पितरोंको बलि देवे ॥ ३१-३२ ॥ वैश्वदेवसम्बन्धी अन्न पात्रके धोनेका जल वायव्य दिशामें छोडे फिर घी छिड़के हुए १६ ग्रास अन्नको निकालकर "इदमन्नं मनुष्येभ्यो हन्त" कहकर मनुष्ययज्ञ करे और अपने गोत्रका नाम और स्वधा शब्द कहकर यथाशक्ति पितरोंको देवे ॥ ३३-३४ ॥ पितृयज्ञकी विधिसे ३ पितृपक्षके और ६मातृपक्षके मृत मनुष्यको नित्य अन्न देवे; ब्रह्मयज्ञकी प्राप्तिके निमित्त कुछ वेद आदिका भाग पढ़े ॥ ३५ ॥ फिर अन्य अन्नको लेकर घरसे बाहर जाके काक और चाण्डाल आदिको ग्रास देवे ॥ ३६ ॥

उपविश्य गृहद्वारि तिष्ठेद्यावन्मुहूर्तकम्। अप्रसुक्तोऽतिथिं लिप्सुर्भावशुद्धः प्रतीक्षकः ॥ ३७ ॥
आगतं दूरतः श्रान्तं भोक्तुकाममकिञ्चनम्। दृष्ट्वा सम्मुखमभ्येत्य सत्कृत्य प्रश्रयार्चनैः ॥ ३८ ॥
पादधावनसम्मानाभ्यञ्जनादिभिरर्चितः। त्रिदिवं प्रापयेत्सद्यो यज्ञस्याभ्यधिकोऽतिथिः ॥ ३९ ॥
कालागतोऽतिथिर्दृष्टवेदपारो गृहागतः। द्वावेतौ पूजितौ स्वर्गं न यतोऽधस्त्वपूजितौ ॥ ४० ॥

घरके द्वारपर बैठकर २ घड़ीतक ठहरे, स्वयं भोजन नहीं करे और मन शुद्ध करके अतिथिकी बाट देखे ॥ ३७ ॥ दूरसे आयाहुआ, थकाहुआ, भोजन चाहनेवाला तथा पासमें कुछ नहीं रखनेवाला ऐसे अतिथिको देखकर नम्रतापूर्वक उसकी पूजा तथा सत्कार करे ॥ ३८ ॥ अतिथिके पद धोने, सम्मान करने और उबटना आदि लगानेसे यज्ञ करनेसे भी अधिक स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै ॥ ३९ ॥ समयपर आये हुए अतिथि और वेदपारग; ये दोनों पूजित होनेपर गृहस्वामीको स्वर्गमें पहुंचातेहैं और नहीं पूजित होनेपर नरकमें लेजातेहैं ॥ ४० ॥

हैमराजतकांस्येषु पात्रेष्वद्यात्सदा गृही । अभावे साधुगन्धेषु लोध्रद्रुमलतासु च ॥ ६३ ॥
पलाशपद्मपत्रेषु गृहस्थो भोक्तुमर्हति । ब्रह्मचारी यतिश्चैव श्रेयो यद्भोक्तुमर्हति ॥ ६४ ॥
अभ्युक्ष्यान्नं नमस्कारैर्भुवि दद्याद्बलित्रयम् । भूपतये भुवः पतये भूतानां पतये तथा ॥ ६५ ॥
अपः प्राश्य ततः पश्चात्पञ्च प्राणाहुतीः क्रमात् । स्वाहाकारेण जुहुयाच्छेषमद्याद्यथासुखम् ॥ ६६ ॥
अनन्यचित्तो भुञ्जीत वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् । आतृप्तेरन्नमश्नीयादक्षुण्णं पात्रमुत्सृजेत् ॥ ६७॥
उच्छिष्टमन्नमुद्धृत्य ग्रासमेकं भुवि क्षिपेत् । आचान्तः साधुसङ्गेन सद्विद्यापठनेन च ॥ ६८ ॥
वृत्तवृद्धकथाभिश्च शेषाहमतिवाहयेत् । सायं सन्ध्यामुपासीत हुत्वाग्निं भृत्यसंयुतः ॥ ६९ ॥
आपोशानक्रियापूर्वमश्नीयादन्वहं द्विजः । सायमप्यतिथिः पूज्यो होमकालागतो निशम् ॥ ७० ॥
श्रद्धया शक्तितो नित्यं श्रुतं हन्यादपूजितः । नातितृप्त उपस्पृश्य प्रक्षाल्य चरणौ शुचिः ॥७१ ॥
अप्रत्यगुत्तरशिराः शयीत शयने शुभे । शक्तिमानुदिते काले स्नानं सन्ध्यां न हापयेत् ॥ ७२ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेद्धितमात्मनः । शक्तिमान्मतिमान्नित्यं व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ ७३ ॥

गृहस्थको उचित है कि सदा सोना, रूपा तथा कांसेके वर्तनमें भोजन करे; यदि ये सब नहीं मिलें तो सुगन्ध युक्त लोध आदि वृक्षोंके पत्तोंमें अथवा पलाश तथा कमलके पत्तोंमें भोजन करे; ब्रह्मचारी और संन्यासीको भी इन पत्तोंमें खाना चाहिये ॥६३-६४॥भोजन करनेके समय अन्नके पात्रके चारो ओर जलका घेरा देकर नमस्कार पूर्वक भूपतये नमः, भुवः पतये नमः और भूतानां पतये नमः, इन ३ मन्त्रोंको पढ़कर भूमिपर ३ बलि देवे अर्थात् ३ वार ३ ग्रास रक्खे ॥ ६५ ॥ फिर आचमन करके ॐ प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा और व्यानाय स्वाहा क्रमसे कहकर पांचों प्राणोंको अन्नकी ५ आहुति अपने मुखमें देवे और फिर सुखसे बाकी अन्न भोजन करे ॥ ६६ ॥ तृप्ति होनेपर्यन्त चित्तको एकाग्र रक्खे, मौन रहे, अन्नकी निन्दा नहीं करे, और थालीको अन्नसे खाली नहीं छोड़े ॥ ६७ ॥ जूठे अन्नमेंसे एक ग्रास निकालकर भूमिपर फेंकदेवे;फिर आचमन करके साधुकी सङ्गति, उत्तम विद्याके पढ़ने और प्राचीन इतिहासोंकी उत्तम कथाओंसे बाकी दिनको बितावे ॥ ६८-६९ ॥ सायंकालकी सन्ध्या करके अग्निहोत्र करे और भोजनसे पहिले आचमन करके नित्य भृत्यों सहित भोजन करे ॥ ६९-७० ॥ सायंकालमें होमके समय आयेहुए अतिथिका पूजन करे क्योंकि श्रद्धापूर्वक शक्तिके अनुसार अतिथिका सत्कार नहीं करनेसे वेदपाठ करना निष्फल होजाताहै ॥ ७०-७१ ॥ अत्यन्त भोजन नहीं करे अर्थात् हलका भोजन करके आचमन करे और चरणोंको धोकर पवित्र होवे ॐ ॥ ७१ ॥ उत्तम शय्यापर शयन करे; किन्तु पश्चिम

ॐ मनुस्मृति—४ अध्याय । सारहीन वस्तुको नहीं भोजन करे, दोनों वेलामें अत्यन्त तृप्त होकर नहीं खावे, सूर्योदय और सूर्यास्तके समय नहीं भोजन करे, सबेरे बहुत खालेनेपर रातमें नहीं भोजन करे ॥ ६२ ॥ शय्यापर बैठकर, हाथमें अन्नआदि लेकर अथवा शय्यापर अन्नादि रखकर भोजन नहीं करे ॥ ७४ ॥ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय । गृहस्थ सायंकालकी सन्ध्या, होम और अग्निकी उपासना करके भृत्यगणोंसे परिवृत होकर ऐसा भोजन करे जिसमें अफर नहीं जावे; उसके बाद शयन करे ॥ ११४ ॥ भार्याके सामने, एकवस्त्र धारण करके अर्थात् केवल धोती पहनकर अथवा खड़े होकर नहीं भोजन करे ॥ १३१ ॥ हारीतस्मृति-४ अध्यायके ६९-७० श्लोक । सन्ध्याका होम करके और अतिथियोंको खिलाकर रातमें भोजन करे; वेदमें लिखा है कि द्विजातियोंको एक वार सबेरे और एक वार रातमें भोजन करना चाहिये; बीचमें नहीं; यह विधि अग्निहोत्रके तुल्य है अर्थात् अग्निहोत्रके पश्चात् प्राणाग्निहोत्र भोजनका विधान भी दोही बार है । संवर्त्तस्मृति-१२ श्लोक । वेदमें लिखाहै कि द्विजातियोंको एक बार सबेरे और एक वार रातमें भोजन करना चाहिये, इसलिये सावधान हो अग्निहोत्री बीचमें नहीं भोजन करे । कात्यायनस्मृति-१३ खण्ड ९ श्लोक । मुनियोंने भूलोकवासी ब्राह्मणोंको दो वार भोजन करनेको कहा है, एकवार डेढ़पहर दिन चढ़नेके भीतर और एकबार डेढ़पहर रातके भीतर । पाराशरस्मृति—१ अध्याय-५९ श्लोक । सिरमें साफा आदि कोई वस्त्र बांधकर, दक्षिणको मुख करके अथवा बांये पैर पर हाथ रखकर भोजन करनेसे उस अन्नको राक्षस खाजातेहैं । ६ अध्याय । जूठे पात्रमें गोड़में खड़ाऊं पहनकर अथवा खाटपर बैठकर भोजन नहीं करे कुत्ते अथवा चाण्डाल भोजन करनेके समय देखलेवे तो भोजनका अन्न त्यागदेवे ॥६६-६७॥ १२ अध्याय । द्विजको उचित है कि मौन होकर भोजन करे; यदि खानेके समय बोलदेवे तो उस अन्नको त्यागदेवे ॥३७॥ जो ब्राह्मण आधा भोजन करनेपर भोजनके पात्रसे जल पीताहै उसके देवकर्म तथा पितृकर्म नष्ट होजातेहैं और वह भी नष्ट होताहै, ॥३८॥ जो मूढ़ ब्राह्मण भोजनकी पंक्तिमेंसे पहले उठजाताहै उसको ब्रह्महत्यारा कहतेहैं ॥ ३९ ॥ जो ब्राह्मण भोजन करतेहुए किसीको आशीर्वाद देताहै उसके देवता तृप्त नहीं होतेहैं और पितर निराश होकर चलेजातेहैं ॥४०॥ विना स्नान और विना अग्निकी पूजा कियेहुए भोजन नहीं करे; पत्तोंकी पीठपर नही खावे; रातमें विना दीपके नहीं भोजन करे॥४१॥जो अज्ञानी ब्राह्मण हाथोंके विद्यमान रहतेहुए जलमें मुख लगाकर पानी--

अथवा उत्तर ओर शिर करके नहीं सोवे ❀। नीरोग रहनेपर सूर्योदयके समय स्नान और सन्ध्याको कभी नहीं छोड़े; दो घड़ी रात रहनेपर उठकर अपने हितकी चिन्ता करे; शक्तिमान् और बुद्धिमान् मनुष्य इस नियमका नित्य पालन करे ॥ ७२-७३ ॥

(१९) शङ्खस्मृति-८ अध्याय।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम्। क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढा स्नानं प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥
अस्नातः पुरुषोऽनर्हो जप्याग्निहवनादिषु। प्रातःस्नानं तदर्थञ्च नित्यस्नानं प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥
चण्डालशवपूयाद्यं स्पृष्ट्वा स्नानं रजस्वलाम्। स्नानानर्हस्तु यः स्नाति स्नानं नैमित्तिकं च तत् ॥ ३ ॥
पुष्यस्नानादिकं स्नानं दैवज्ञविधिचोदितम्। तद्धि काम्यं समुद्दिष्टं नाकामस्तत्प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥
जप्तुकामः पवित्राणि अर्चिष्यन्देवतां पितॄन्। स्नानं समाचरेद्यस्तु क्रियाङ्गं तत्प्रकीर्तितम् ॥ ५ ॥
मलापकर्षणार्थाय स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम्। मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तस्य नान्यथा ॥ ६ ॥
सरःसु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च। क्रियास्नानं समुद्दिष्टं स्नानं तत्र महाक्रिया ॥ ७ ॥
तत्र काम्यं तु कर्तव्य यथावद्विधिचोदितम्। नित्यं नैमित्तिकं चैव क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ॥ ८ ॥
तीर्थाभावे तु कर्तव्यमुष्णोदकपरोदकैः। स्नानं तु वह्नितप्तेन तथैव परवारिणा ॥ ९ ॥
शरीरशुद्धिर्विज्ञाता न तु स्नानफलं लभेत्। अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यंति तीर्थस्नानात्फलं भवेत् ॥ १० ॥
सरःसु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च। स्नानमेव क्रिया तस्मात्स्नानात्पुण्यफलं स्मृतम् ॥ ११ ॥
तीर्थं प्राप्यानुषङ्गेण स्नानं तीर्थे समाचरेत्। स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राफलं न तु ॥ १२ ॥
सर्वतीर्थानि पुण्यानि पापघ्नानि सदा नृणाम्। परस्परानपेक्षाणि कथितानि मनीषिभिः ॥ १३ ॥

-पीता है वह मरनेपर निश्चय करके कुत्ता होताहै ॥ ५३ ॥ शातातपस्मृति। घी, तेल आदि चिकनी वस्तु नोन अथवा व्यञ्जन हाथमें देनेसे दाताको कुछ फल नहीं मिलताहै और खानेवालोंको पाप लगता है ॥ ॥ ७१ ॥ लोहेके वर्तनसे अन्न परोसनेपर वह अन्न भोजन करनेवालोंके लिये विष्ठाके समान हो जाताहै और देनेवाला नरकमें जाताहै ॥ ७२ ॥ भोजनकी थालीको विना जलसे घेरा दियेहुए अन्न भोजन करनेसे अन्नके रसको यातुधान, पिशाच और राक्षस हरण करलेतेहैं ॥१३१॥ ब्राह्मण ४ कोणका, क्षत्रिय ३ कोणका और वैश्य गोलाकार घेरा देवे और शूद्र जल छिडक देवे ॥ १३३ ॥ वृद्धशातातपस्मृति। आसनके ऊपर पांव रखकर, विना अंगोछे लियेहुए आधी धोतीको ओढ़कर अथवा अन्नको मुखसे फूंककर भोजन करनेवालेको अपनी शुद्धिके लिये चान्द्रायण व्रत करना चाहिये ॥ ५२ ॥ मनुस्मृति—४ अध्याय-६३ श्लोक, याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय, १३८ श्लोक। वृहद्विष्णुस्मृति—६८-अध्याय-४७ अङ्क और गौतमस्मृति-९ अध्याय-१ अङ्क। अञ्जलीसे पानी नहीं पीना चाहिये; गौतमस्मृतिमें है कि खड़े होकरभी जल नहीं पीना चाहिये। वसिष्ठस्मृति—६ अध्याय १८ श्लोक और बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-७ अध्यायका ३१ श्लोक। संन्यासी ८ ग्रास, वानप्रस्थ १६ ग्रास और गृहस्थ ३२ ग्रास अन्न भोजन करें; ब्रह्मचारीके भोजनके ग्रासका प्रमाण नहीं है। वसिष्ठस्मृति-१२ अध्यायके १५-१६ अङ्क। स्नातक पूर्व ओर मुख करके मौन होकर भोजन करे, अंगूठेके सहित पूरा ग्रास मुखमें दियाकरे। १४ अध्याय-२६ श्लोक। भोजनके समय घी, तेल, नोन और व्यञ्जन हाथमें देनेसे दाताको कुछ फल नहीं होताहै और खानेवालोंको पाप लगताहै। लघुआश्वलायनस्मृति--१ आचारप्रकरण। भोजन करतेहुए यदि जूठा स्पर्श हो जाय तो जितना अन्न थालीमें होय उतनाही खाना चाहिये, अधिक लेकरके नहीं ॥ १६८ ॥ संस्कार कियेहुए थालीके अन्नको जूठेसे स्पर्श होजानेके कारण नहीं त्यागना चाहिये; किन्तु उस थालीमें फिर निर्जूठ अन्न लकर खानेवालेको शुद्धिके लिये १०० बार गायत्री जपना चाहिये ॥ १६९ ॥ २२ वर्णधर्मप्रकरण। भोजन करतेहुए यदि भोजनकी थालीसे यज्ञ करानेवालेका जूठा स्पर्श होजाय तो थालीके अन्नको नहीं त्यागना चाहिये; किन्तु उस थालीमें और अन्न लेकर नहीं खाना चाहिये ॥१५॥ बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-७ अध्याय। जो गृहस्थ अथवा ब्रह्मचारी भोजन त्यागकर तपस्या करता है वह प्राणाग्निहोत्र लोप होनेके कारण अवकीर्णी हो जाताहै ॥ ॥ ३३ ॥ प्रायश्चित्त करनेके समय भोजन त्याग करनेसे प्राणाग्निहोत्रलोपका दोष नहीं होताहै ॥ ३४ ॥ उदाहरण देतेहैं ॥ ३५ ॥ जो भोजनके दो समयोंमेंसे एक समयको छोड़कर नित्य एकही वार रातमें अथवा दिनमें भोजन करता है वह सदा उपवास करनेवालेके तुल्य है ॥ ३६ ॥ जिस दिन भोजनकी वस्तु नहीं मिले उसदिन प्राणाग्निहोत्रके मन्त्रोंको जपलेवे और जिस दिन अग्निहोत्रके लिये सामान नहीं मिले उस दिन तीनों अग्नियोंके मन्त्रोंका जप करे ॥ ३७ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय-१३६श्लोक। पश्चिम सिर करके नहीं शयन करे। लघुआश्वलायनस्मृति--१ आचारप्रकरण-१८५ श्लोक। उत्तरकी ओर सिर करके कभी नहीं सोवे।

सर्वे प्रस्रवणाः पुण्याः सरांसि च शिलोच्चयाः । नद्यः पुण्यास्तथा सर्वा जाह्नवी तु विशेषतः ॥१४॥
यस्य पादौ च हस्तौ च मनश्चैव सुसंयतम् । विद्यातपश्च कीर्तिश्च सतीर्थफलमश्नुते ॥ १५ ॥
नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत् । यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ॥ १६ ॥

६ प्रकारका स्नान है; नित्यस्नान, नैमित्तिकस्नान, काम्यस्नान, क्रियाङ्गस्नान, मलकर्षणस्नान और क्रियास्नान ॥ १ ॥ जप, अग्निहोत्र आदि करनेके योग्य होनेके लिये जो प्रातःकाल स्नान कियाजाताहै वह नित्यस्नान कहाताहै ॥ २ ॥ चाण्डाल, मुर्दे, पीब, रजस्वला स्त्री आदिके स्पर्श होजानेपर जो दुबारा स्नान किया जाता है वह नैमित्तिक स्नान है ॥ ३ ॥ ज्योतिषके कथनानुसार पुष्यनक्षत्र आदिमें जो स्नान किया जाता है जो निष्काम मनुष्यके लिये अयोग्य है वह काम्य स्नान है ॥ ४ ॥ पवित्र मन्त्रोंके जपने अथवा देवता तथा पितरोंके पूजनके लिये जो स्नान किया जाता है वह क्रियाङ्ग स्नान कहलाता है ॥ ५ ॥ शरीरका मैल दूर करनेके लिये उबटन आदि लगाकर जो स्नान किया जाता है वह मलकर्षण स्नान है; क्यों कि उस स्नान करनेसे मनुष्यकी प्रवृत्ति केवल मैल दूर करनेके लिये है ॥ ६ ॥ सरोवर, देवताओंके कुण्ड, तीर्थ और नदीमें जो स्नान किया जाता है वह क्रिया स्नान है; क्योंकि इनमें स्नान करना उत्तम कर्म है ❀ ॥ ७ ॥ पूर्वोक्त सरोवर आदिमेंही विधिपूर्वक काम्य, नित्य, नैमित्तिक, क्रियाङ्ग और मलकर्षण स्नान करना चाहिये ॥ ८ ॥ इनके नहीं मिलनेपर गरम जलसे अथवा भिन्न जलसे भी स्नान करलेना चाहिये; किन्तु आगसे तपाये हुए गरम जल अथवा पूर्वोक्त सरोवर आदिसे भिन्न जलसे स्नान करनेपर केवल शरीरकी शुद्धि होती है; उससे स्नानका फल नहीं मिलता; क्योंकि जलसे गात्र शुद्ध होताहै और तीर्थके स्नानसे फल मिलताहै ॥ ९-१० ॥ सरोवर, देवताओंके कुण्ड, तीर्थ और नदीमें स्नान करना उत्तम कर्म है, इस कारण उनमें स्नान करनेसे पुण्य फल मिलताहै ॥ ११ ॥ जो मनुष्य अकस्मात् अन्य कार्यवश तीर्थमें जाकर स्नान करता है वह केवल स्नान करनेका फल पाताहै; तीर्थयात्राका फल नहीं ॥ १२ ॥ बुद्धिमानोंने कहाहै कि सम्पूर्ण तीर्थ पवित्र; सदा मनुष्योंके पापके नाश करनेवाले और एक दूसरेकी अपेक्षा नहीं रखनेवाले हैं ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण झरने, सरोवर, पर्वत और नदी पुण्यदायक हैं; किन्तु गङ्गा विशेष करके पवित्र हैं ॥ १४॥ जिसके पांव, हाथ और मन अपने वशमें हैं और जो विद्यावान्, तपस्वी तथा कीर्तिमान् है, वही तीर्थका फल भोगताहै ॥ १५ ॥ पापी मनुष्यके पापका नाश तीर्थमें हो जाताहै और पवित्र आत्मावाले मनुष्यको तीर्थका यथार्थ फल मिलता है ✿ ॥ १६ ॥

(१७) दक्षस्मृति-२ अध्याय ।

अस्नात्वा नाचरेत्किञ्चिज्जपहोमादिकं द्विजः । प्रातरुत्थाय यो विप्रः प्रातःस्नायी भवेत्सदा ॥ १० ॥
सप्तजन्मकृतं पापं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति । उषस्युषसि यत्स्नानं सन्ध्यायामुदिते रवौ ॥ ११ ॥

❀ पाराशरस्मृति—१२ अध्यायके ९-११ श्लोक । विद्वानोंने ५ प्रकारके स्नानोंको, पवित्र कहाहै;—आग्नेय, वारुण, ब्राह्म, वायव्य और दिव्य; इनमेंसे भस्मसे कियेहुए स्नानको आग्नेयस्नान, जलसे कियेहुए स्नानको वारुणस्नान, आपोहिष्ठा आदि मन्त्रोंसे कियेहुए स्नानको ब्राह्मस्नान, गौओंके पदोंकी धूलीसे किये हुए स्नानको वायव्यस्नान और घाम रहनेपर वर्षाके स्नानको दिव्यस्नान कहतेहैं, उससमय वर्षाके जलसे स्नान करनेपर गङ्गास्नानका फल मिलताहै । दक्षस्मृति २ अध्यायके ४०-४१ श्लोक । नित्य, नैमित्तिक और काम्य, ये ३ प्रकारका स्नान कहागया है; इनमें नित्य स्नानभी ३ प्रकारका है; पहला जो शरीरका मैल दूर करनेके लिये किया जाता है, दूसरा जो मन्त्रपूर्वक जलमें करतेहैं और तीसरा जो दोनों सन्ध्याओंमें किया जाताहै । बृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र—२ अध्याय—षट्कर्मणि स्नानविधि, ८३-८६ श्लोक । मन्त्र, पार्थिव, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण और मानस; ये ७ प्रकारके स्नान कहलातेहैं । "शन्न आप" इत्यादि मन्त्रोंसे किया स्नान मन्त्रस्नान है, मृत्तिकास्नान पार्थिवस्नान है, भस्मसे स्नान करना आग्नेयस्नान है, गौके पदोंकी धूलीसे स्नान करना वायव्य स्नान है, घाम रहनेपर वर्षाका स्नान करना दिव्यस्नान है, नदी आदिका स्नान वारुण स्नान है और मनमें विष्णुका ध्यान करनेको मानस स्नान कहतेहैं ।

✿ शङ्खस्मृतिके ९ से १३ अध्यायतक, क्रियास्नान, आचमन, वेदोक्तमन्त्र, जप और तर्पणकी विधि विस्तारसे है । १२ अध्यायके ५-६ अङ्कमें है कि सोना, मणि, मुक्ता, स्फटिक, कमलगट्टे, रुद्राक्ष, अथवा जीवकको जपके लिये माला बनावे अथवा कुशाकी गांठोंसे या बायें हाथकी अंगुलियोंसे गिनती करे । बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—२ अध्याय जपविधि, ४१-४२ श्लोक । स्फटिक, कमलाक्ष, रुद्राक्ष अथवा पुत्रजीवके फलकी जपमाला बनावे; इनमें पहिलेवालेसे पीछेवाले उत्तम हैं; इनके नहीं मिलनेपर कुशामें गांठ देकर अथवा हाथकी अंगुलीकी गांठसे जपकी संख्या करे ।

प्राजापत्येन तत्तुल्यं सर्वपापापनोदनम् । प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत् ॥ १२ ॥
सर्वमर्हति पूतात्मा प्रातःस्नायी जपादिकम् ॥ १३ ॥

गुणा दश स्नानपरस्य साधो रूपं च पुष्टिश्च बलं च तेजः ॥ १३ ॥
आरोग्यमायुश्च मनोनुरुद्धदुःस्वप्नघातश्च तपश्च मेधा ॥ १४ ॥

द्विजको उचित है कि विना स्नान कियेहुए जप, होम आदि कुछभी नहीं करे; जो ब्राह्मण प्रातःकालमें ही उठकर नित्य नियमसे सदा स्नान करताहै, उसके ७ जन्मतकके कियेहुए पाप ३ वरसमें नष्ट हो जातेहैं ॥ १०–११ ॥ प्रातःकालमें सूर्योदयसे प्रथमका और सायंकालमें सूर्यास्तके पहिलेका स्नान प्राजापत्य व्रतके समान सब पापोंका नाश करनेवाला है ॥ ११–१२ ॥ प्रातःकालका स्नान प्रत्यक्ष और परोक्ष अर्थात् इसलोकमें और परलोकमें फल देनेवाला है; उसकी विद्वान लोग प्रशंसा करतेहैं; प्रातःकालमें स्नान करनेवाला मनुष्य पवित्र होकर जप आदि सम्पूर्ण कर्म करनेयोग्य होताहै ॥ १२–१३ ॥ स्नानमें तत्पर सज्जन मनुष्यको १० उत्तम गुण होतेहैं; रूप, पुष्टता, बल, तेज, आरोग्य, आयुकी वृद्धि, मनकी प्रसन्नता, दुःस्वप्नकी निवृत्ति तथा तपस्या और बुद्धिकी वृद्धि ॥ १३–१४ ॥

५ अध्याय ।

शौचे यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः। शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः२॥
शौचं च द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा । मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिस्तथान्तरम् ॥३॥
अशौचाद्धि वरं बाह्यं तस्मादाभ्यन्तरं वरम् । उभाभ्यां तु शुचिर्यस्तु स शुचिर्नेतरः शुचिः ॥ ४ ॥
मृत्तिकानां सहस्रेण चोदकुम्भशतेन च । न शुद्ध्यन्ति दुरात्मानो येषां भावो न निर्मलः ॥ १० ॥

विशेष यत्नसे शौच कर्म करना चाहिये; क्यों कि द्विजोंके लिये शौचही सब धर्मोंका मूल है; शौचाचारसे रहित द्विजके सर्व कर्म निष्फल होतेहैं ॥ २ ॥ शौच दो प्रकारका है एक बाहरका और दूसरा भीतरका; बाहरका शौच मिट्टी और जलसे और भीतरका शौच मनकी शुद्धतासे होताहै ॥ ३ ॥ अशौचसे बाहरका शौच उत्तम है और बाहरके शौचसे भीतरका शौच श्रेष्ठ है;जो मनुष्य इन दोनोंसे शुद्ध है वही यथार्थ पवित्र है; अन्य नहीं ॥ ४ ॥ जिसका अंतःकरण निर्मल नहीं है वह दुष्टात्मा हजार बार मिट्टी लगानेसे और सौ घड़े जलसे धोनेपर भी शुद्ध नहीं होताहै ॥ १० ॥

अन्यदेव दिवा शौचमन्यद्रात्रौ विधीयते । अन्यदापदि निर्दिष्टं ह्यन्यदेव ह्यनापदि ॥ १२ ॥
दिवा कृतस्य शौचस्य रात्रावर्धं विधीयते । तदर्धमातुरस्याहुस्त्वरायामर्धं वर्त्मनि ॥ १३ ॥
न्यूनाधिकं न कर्तव्यं शौचे शुद्धिमभीप्सता । प्रायश्चित्तेन युज्येत विहितातिक्रमे कृते ॥ १५ ॥

दिनका शौच भिन्न, रातका शौच अन्य,आपत्कालका शौच भिन्न और विना आपत्कालका शौच अन्य है ॥ १२ ॥ दिनके शौचसे आधा रातमें, रातके शौचसे आधा शौच रोगग्रस्त होनेपर और उससेभी आधा शौच किसी शीघ्रताके समय और यात्राके मार्गमें चलनेके समय करना चाहिये ॥ १३ ॥ शुद्धिको चाहनेवालेको उचित है कि इससे कम अथवा अधिक शौच नहीं करे; क्योंकि शास्त्रविहित कर्मका उल्लंघन करनेसे मनुष्य प्रायश्चित्त करनेयोग्य होताहै ॥ १५ ॥

गृहस्थ और स्नातकका धर्म ५.

(१) मनुस्मृति–२ अध्याय ।

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः । माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः२२५
आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः । नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥ २२६ ॥
यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् । न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥ २२७ ॥
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा । तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥ २२८ ॥
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते । न तैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥ २२९ ॥
त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः । त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥ २३० ॥
पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः । गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी ॥ २३१ ॥

---

* इसमें किसी जगह केवल गृहस्थका धर्म, किसी जगह स्नातकका धर्म और किसी जगह दोनोंका धर्म है।

त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रींल्लोकान्विजयेद्गृही । दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते ॥ २३२ ॥
इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् । गुरुशुश्रूषया त्वेव ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ २३३ ॥
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः । अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥२३४ ॥
यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् । तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ॥ २३५ ॥
तेषामनुपरोधेन पारत्र्यं यद्यदाचरेत् । तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ॥ २३६ ॥
त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते । एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥ २३७ ॥
श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि । अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥ २३८ ॥
विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् । अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम् ॥ २३९ ॥
स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् । विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः २४०

आचार्य वेदकी मूर्ति, पिता ब्रह्माकी मूर्ति, माता पृथ्वीकी मूर्ति और सहोदर भाई निज आत्माकी मूर्ति है॥२२५॥स्वयं पीडित होनेपर भी अपने आचार्य, पिता, माता और बडे भाईका अपमान नहीं करे॥२२६॥ सन्तानके उत्पन्न होनेके कारण माता पिता जो क्लेश सहतेहैं सन्तान सौ वर्षमें भी उसका बदला नहीं दे सकता है ॥ २२७ ॥ सदा माता, पिता और आचार्यका प्रिय कार्य करना चाहिये; क्योंकि इन तीनोंके प्रसन्न रहनेसे सब तपस्या पूर्ण होतीहै ॥ २२८ ॥ इन तीनोंकी सेवाकोही पण्डितलोग परम तपस्या कहतेहैं; इनकी बिना सम्मतिके कोई धर्माचरण नहीं करना चाहिये ॥ २२९ ॥ यही तीनों लोक, तीनों आश्रम तीनों वेद और तीनों अग्नि हैं ॥ २३० ॥ पिता गार्हपत्य अग्नि, माता दक्षिणाग्नि और गुरु आहवनीय अग्नि कहेगयेहैं; यही तीनों अग्नि पृथ्वीमें श्रेष्ठ हैं ॥ २३१ ॥ जो गृहस्थ इन तीनोंके ऊपर प्रमाद प्रकाशित नहीं करके इनके विषयमें सदा सावधान रहताहै वह तीनों लोकोंको जय करताहै और स्वयं प्रकाशित होकर स्वर्गलोकमें देवताओंके समान दिव्य आनन्द भोगताहै २३२ ॥ माताकी भक्तिसे भूलोक, पिताकी भक्तिसे देवलोक और गुरुकी सेवासे ब्रह्मलोक मिलताहै ॥ २३३ ॥ इन तीनोंके आदर करनेसे धर्मका आदर होताहै और अनादर करनेसे सब धर्म कर्म व्यर्थ होजातेहैं ॥ २३४ ॥ जबतक ये तीनों जीते रहें तबतक स्वतन्त्र होकर कोई धर्मकार्य नहीं करे; किन्तु प्रतिदिन इनकी सेवा और इनका प्रियकार्य करतेरहे ॥ २३५ ॥ इनकी सेवा करताहुआ परलोककी इच्छासे मन, वचन, तथा कर्मद्वारा जो कुछ धर्मकार्य करे वह सब इनको अर्पण करदेवे ॥ २३६ ॥ इन तीनोंकी यथायोग्य सेवा करनेसे पुरुषके सम्पूर्ण कर्त्तव्य कार्य समाप्त हो जातेहैं; इनकी सेवाही परम धर्म है; अन्य सब धर्म उपधर्म कहेजातेहैं * ॥ २३७ ॥ श्रद्धावान् मनुष्यको उचित है कि नीच वर्णसेभी कल्याणदायिनी विद्या सीखे, अन्त्यजसे भी परम धर्मकी शिक्षा लेवे और कलङ्कित कुलसे भी स्त्रीरत्नको ग्रहण करे ॥ २३८ ॥ विषसेभी अमृतको, बालकसे भी हित वचनको, शत्रुसे भी शुभ आचरणको और अपवित्र स्थानसे भी (अपने) सोनाको ग्रहण कर लेवे ॥ २३९ ॥ स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, पवित्रता, हितकारी वचन और विविध प्रकारकी शिल्पविद्या सबसे ग्रहण करे ॥ २४० ॥

३ अध्याय ।

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा । पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥ ४५ ॥
ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः । चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥ ४६ ॥
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या । त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥४७ ॥

---

* बृहद्विष्णुस्मृति--३१ अध्याय । माता, पिता और आचार्य; ये ३ मनुष्यके महागुरु हैं; सदा इनकी सेवा और इनके प्रिय तथा हितकाम करना चाहिये इनकी बिना अनुमतिसे कुछ काम करना उचित नहीं है ॥ ॥ १-६ ॥ यही ३ वेद, ३ देवता, ३ लोक और ३ अग्नि हैं ॥ ७ ॥ पिता गार्हपत्य अग्नि, माता दक्षिणाग्नि और आचार्य आहवनीय अग्नि हैं ॥ ८ ॥ इन तीनोंके आदर करनेसे धर्मका आदर होताहै और इनका अनादर करनेसे सब धर्म कर्म व्यर्थ हो जातेहैं ॥ ९ ॥ माताकी भक्तिसे भूलोक, पिताकी भक्तिसे स्वर्गलोक और गुरुकी सेवासे ब्रह्मलोक मिलताहै ॥ १० ॥ उशनस्मृति-१ अध्याय । जबतक माता पिता जीते रहैं तबतक सब कामोंको छोड़कर इनकी सेवा करनी चाहिये ॥ ३० ॥ माता पिताके प्रसन्न रहनेसे पुत्रको सम्पूर्ण सत्कर्म करनेका फल मिलताहै ॥ ३४ ॥ जगत्में माताके समान देवता और पिताके समान गुरु नहीं है; उनके उपकारका बदला देनेके लिये कोई वस्तु नहीं है ॥ ३५ ॥ मन, कर्म और वचनसे सदा इनका प्रिय कार्य करना चाहिये; बिना इनके अनुमतिके कोई धर्मकार्य करना उचित नहीं है ॥ ३६ ॥ अत्रिस्मृति-१४८ श्लोक इस लोक और परलोकमें मातासे बड़ा कोई गुरु नहीं है ।

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु। तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ॥४८॥
पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः। समे पुमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥४९॥
निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्। ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ५० ॥

ऋतुकालमें अवश्य अपनी स्त्रीसे गमन करे; ❀ सदा अपनी भार्यामें रत रहे; अन्य समयमें भी रतिकी कामनासे स्त्रीसे सम्भोग करे; किन्तु अमावास्या आदि पर्वमें नहीं ॥ ४५ ॥ सज्जनासे निन्दित प्रथमके चार दिन रातके सहित ऋतुकालकी स्वाभाविक अवस्था १६ दिन रातकी जानना चाहिये ॥ ४६ ॥ इनमेंसे प्रथमकी ४ रात और ११ वीं तथा १३ वीं रात निन्दित हैं बाकी १० रात स्त्रीसे गमन करनेके लिये श्रेष्ठ हैं ✠ ॥ ४७ ॥ ऋतुकालकी युग्म रात्रिमें स्त्रीसे गमन करनेपर पुत्र जन्म लेताहै और अयुग्म रात्रिमें गमन करनेसे पुत्री उत्पन्न होतीहै, इसलिये पुत्रकी कामनावाले पुरुषको युग्म रातमेंही निज भार्यासे गमन करना चाहिये ॥ ४८ ॥ पुरुषके वीर्यकी अधिकता होनेसे (अयुग्मरातमें) गमन करने परभी) पुत्र उत्पन्न होताहै; स्त्रीके रजकी अधिकता होनेसे (युग्म रातमें गमन करने परभी) पुत्री जन्मती है; स्त्री और पुरुष दोनोंके रजवीर्यकी समानता होनेपर नपुंसक अथवा एक पुत्री और एक पुत्र उत्पन्न होताहै और दोनोंका रज बीज अल्प होनेपर गर्भ नहीं ठहरताहै ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य ऋतुकालकी १६ रात्रियोंमेंसे पूर्वोक्त निन्दित ६ रात्रियोंको और बाकी १० रात्रियोंमेंसे अमावास्या आदि और ८ रात्रियोंको छोड़कर केवल २ रात्रियोंमें निजभार्यासे गमन करताहै वह गृहस्थाश्रममें रहनेपरभी ब्रह्मचारीके समान है ۞ ॥ ५० ॥

४ अध्याय।

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च। वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह ॥१८॥

❀ पाराशरस्मृति–४ अध्याय–१४ श्लोक। जो स्त्री ऋतु स्नान करके पतिसे सहवास नहीं करती है वह मरनेपर नरकमें जातीहै और बार बार विधवा होतीहै। पाराशरस्मृति–१५ श्लोक और व्यासस्मृति–२ अध्याय–४५ श्लोक। जो पुरुष ऋतुकालमें स्त्रीसे सम्भोग नहीं करताहै उसको निश्चय करके घोर भ्रूण-हत्याका पाप लगताहै। शातातपस्मृति–१४४ श्लोक। जो पुरुष ऋतुकालमें अपनी भार्यासे भोग नहीं करताहै, एक मास तक उसके पितरगण उस स्त्रीके रजमें निवास करतेहैं। यमस्मृति–१६ श्लोक। ऋतु-कालमें गर्भकी शङ्कासे अपनी भार्यासे मैथुन करनेवाला पुरुष स्नान करे और अन्य समयमें मैथुन करनेवाला मलमूत्र त्यागनेके समान शौच करके शुद्ध होवे।

✠ मनुस्मृति–४ अध्याय–१२८ श्लोक। स्नातक ब्राह्मण अमावास्या, अष्टमी, पूर्णमासी और चतुर्दशीको ऋतुकालमें भी भार्यासे मैथुन नहीं करे; ब्रह्मचारी भावसे रहे।

۞ याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय। स्त्रीसे पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र होतेहैं, जिनसे स्वर्ग मिलताहै, इस-लिये स्त्रीसे सम्भोग और उसकी भली भांति रक्षा करना चाहिये ॥ ७८ ॥ स्त्रीका ऋतुकाल रजोदर्शनसे १६ राततक रहताहै; ऋतुकालके प्रथमकी ४ रातको और अमावास्या आदि पर्वोंको छोड़कर युग्म (सम) रात्रि-योंमें गमन करे; इस प्रकारसे स्त्रीसे गमन करनेवाला ब्रह्मचारीके समान है ॥ ७९ ॥ मघा और मूल नक्षत्रको छोडकर और शुभ स्थानमें चन्द्रमाके रहनेपर स्त्रीसे गमन करनेसे उत्तम लक्षणवाला पुत्र उत्पन्न होताहै ॥ ८० ॥ अथवा स्त्रियोंके वरको स्मरण करके स्त्रीकी इच्छानुसार उससे गमन करे और उसके धर्मकी रक्षाके लिये निज भार्यामेंही रत रहे ॥ ८१ ॥ व्यासस्मृति–२ अध्यायके ४१–४५–श्लोकमें प्रायः ऐसाही है; विशेष यह है कि रेवती, मघा और श्लेषा नक्षत्रमें तथा दिनमें स्त्रीसे गमन नहीं करे। वसिष्ठस्मृति–५ अध्याय। इन्द्र देवता तीन सिरवाले त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरको मारकर महापापसे ग्रस्त हुए, जब सब प्राणियोंने ३ बार चिल्ला चिल्लाकर इन्द्रसे कहा कि तुम भ्रूणहा हो तब उसने स्त्रियोंके पास जाकर कहा कि तुम लोग मेरी ब्रह्म-हत्याका तीसरा भाग लेलो; स्त्रियोंने कहाकि इससे हमको क्या फल मिलेगा। इन्द्र देवने कहा कि तुमलोग वर मांगो; स्त्रियोंने कहा कि ऋतुकाल होनेपर गर्भस्थिति द्वारा हमको सन्तान हुआकरें और सन्तान उत्पन्न होनेतक गर्भकालमें भी हम यथेच्छ पतिसे सहवास करसकें; जब इन्द्रदेवताने स्त्रियोंको ऐसा वरदान दिया तब स्त्रियोंने इन्द्रकी भ्रूणहत्याका तीसरा भाग ग्रहण किया ॥ ८ ॥ वही भ्रूणहत्या स्त्रियोंके मासिक रजोधर्म रूपसे प्रतिमास प्रकट होतीहै ॥ ९ ॥ १२ अध्याय। इन्द्रने स्त्रियोंको ऐसा वरदान दिया है कि सन्तान उत्पन्न होनेसे एक दिन पहले भी वे अपने पतिसे सहवास करसकेगीं ॥ २४ ॥ अत्रिस्मृति–१६३ श्लोक गर्भवती स्त्रीके साथ ६ मासतक और सन्तान उत्पन्न होनेपर सन्तानके दांत निकलनेपर स्त्रीसे मैथुन करनेसे पुरुषका धर्म नष्ट नहीं होताहै। बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–४ अध्याय–६६ श्लोक। दिनमें, अमावास्या आदि पर्वकालमें, सन्ध्यासमय और ऋतुकालकी चार रातमें स्त्रीसे सम्भोग नहीं करे।

गृहस्थ ब्राह्मणको उचित है कि जैसी अपनी अवस्था, जैसा कर्म, जितना धन, जैसी विद्या और जैसा कुल होवे वैसेही वेष, बोल, चाल और बुद्धि रखकर इस लोकमें विचरे ॥ १८ ॥

दर्शेन चार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि ॥ २५ ॥
सस्यान्ते नवसस्येष्ट्या तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः । पशुना त्वयनस्यादौ समान्ते सौमिकैर्मखैः ॥ २६ ॥

अमावास्याको दर्शनामक यज्ञ, पूर्णिमाको पौर्णमास यज्ञ, नये अन्न पकनेके समय आग्रयण यज्ञ (नवान्नेष्टि), ऋतुके अन्तमें चातुर्मास्य यज्ञ, अयनके आदिमें पशुयज्ञ और वर्षके अन्तमें सोमरससे करने योग्य अग्निष्टोम आदि यज्ञ करें ॥ २५-२६ ॥

पाषण्डिनो विकर्मस्थान्बैडालव्रतिकाञ्छठान् । हैतुकान्बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥३०॥
वेदविद्याव्रतस्नाताञ्श्रोत्रियान्गृहमेधिनः । पूजयेद्धव्यकव्येन विपरीतांश्च वर्जयेत् ॥ ३१ ॥
शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधिना । संविभागश्च भूतेभ्यः कर्तव्योऽनुपरोधतः ॥ ३२ ॥

गृहस्थको उचित है कि यदि (दर्श, पौर्णमास आदि यज्ञके समय) पाखण्डी, अन्य वर्णकी वृत्तिसे जीविका करनेवाले, बिडालव्रती, मूर्ख, वेदविरुद्ध तर्क करनेवाले अथवा बकवृत्ती आवे तो वचनसेभी उनका सत्कार नहीं करे ॥ ३० ॥ वेदविद्या स्नातक और व्रतस्नातक श्रोत्रिय गृहस्थोंको हव्यकव्यसे पूजा करे; जो इनसे विपरीत हैं उनको परित्याग कर देवे ॥ ३१ ॥ स्वयं पाक नहीं करनेवाले ब्रह्मचारी, संन्यासी आदिको अपनी शक्तिके अनुसार भिक्षा देवे और अपने स्वजनोंके खानेयोग्य रखकर खानेकी सामग्री सब प्राणियोंको बांटदेवे ॥ ३२ ॥

राजतो धनमन्विच्छेत्संसीदन्स्नातकः क्षुधा । याज्यान्तेवासिनोर्वापि न त्वन्यत इति स्थितिः ॥३३॥
न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधासक्तः कथंचन । न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ॥ ३४ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति-७१ अध्यायके ५-६ अङ्क । अवस्था, विद्या, कुल, धन और देशके अनुरूप वेष रखना चाहिये । याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१२३ श्लोक । अवस्था, बुद्धि, धन, वाणी, वेष, विद्या, कुल और कर्मके अनुरूप आचरण करना चाहिये । लघुहारीतस्मृति-५५ श्लोक । समय, देश, धन, धनके प्रयोजन, धनके आय और धनकी अवस्थाको जान करके श्राद्ध, दान आदि पवित्रकर्म करना चाहिये ।

कात्यायनस्मृति-२६ खण्ड ९ श्लोक । कोई ऋषि शरद और वसन्त ऋतुमें और कोई ऋषि अन्न पकनेपर नवान्नेष्टि यज्ञ करनेको कहतेहैं; वानप्रस्थको सांवा पकनेके समय नवान्नेष्टि करना चाहिये । कात्यायनस्मृति-२५ खण्ड-१८ श्लोक । अज्ञानसे विना नवयज्ञ कियेहुए नवीन अन्न खालेताहै, उसको उस पापसे छूटनेके लिये अग्निमें चरूसे होम करना चाहिये । मानवगृह्यसूत्र-२ पुरुष-३ खण्ड । नित्य "अग्नये स्वाहा" मन्त्रसे १ और "प्रजापतये स्वाहा" मन्त्रसे दूसरी आहुति सायंकालमें और "सूर्याय स्वाहा" मन्त्रसे १ और "प्रजापतये स्वाहा" मन्त्रसे दूसरी आहुति प्रातःकालमें करे ॥ १-२ ॥ प्रति पौर्णमासीको अग्नीषोम देवताके निमित्त और प्रति अमावास्याको इन्द्राग्नी देवताके लिये स्थालीपाक बनाकर पूर्ववत् होम करे; पौर्णमासी और अमावास्या दोनोंमें अग्नि देवताके लिये स्थालीपाकका होम करे और आग्रयणादि पर्वोंमें नैमित्तिक कर्मको पौर्णमासीमें पहिले और अमावस्यामें पीछेसे करे ॥ ३ ॥ आश्विन मासकी पौर्णमासीमें प्रातःकाल नित्यकर्म और नैमित्तिककर्म दोनोंका एकही स्थालीपाक करे ॥ ४ ॥ उस पौर्णमासीमें उस स्थालीपाकसे "अग्नये स्वाहा" इत्यादि मन्त्रोंको पढ पढके अग्नि, रुद्र, पशुपति, ईशान, त्र्यम्बक, शरद्, पृषातक और गौको आहुति देवे ॥ ५ ॥ दही और घीके मेलको पृषातक हवि कहतेहैं; उससे "आनो-मित्रावरुणा" और "प्रवाहवा" इन २ मन्त्रों द्वारा अग्निमें आहुति देकर "अम्भः स्थाम्भोवोभक्षीय" मन्त्रसे शेष पृषातक गौओंको खिलावे ॥ ६ ॥ उस समय गौएं बछडोंसे अलग रक्खी जावें ॥ ७ ॥ ब्राह्मणोंको घी सहित अन्न भोजन करावे ॥ ८ ॥ विना नवान्नेष्टि कियेहुए नया अन्न नहीं खावे ॥ ९ ॥ वसन्त ऋतुकी पौर्णमासी और अमावास्यामें यवसे और शरद् कालकी पौर्णमासी तथा अमावास्यामें चावलोंसे नवान्नेष्टि करे ॥ १० ॥ पहिले पहिल पकेहुए यव अथवा चावलोंका दूधमें स्थालीपाक पकाकर उसका आघारादिके अनन्तर "सजूरग्नीन्द्राभ्यां स्वाहा । सजूर्विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । सजूर्द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा । सजूः सोमाय स्वाहा" इन ४ मन्त्रोंसे प्रधान होम करे ॥ ११ ॥ चौथे मन्त्रवाली सोमदेवताकी आहुति शरद् ऋतुमें सांवासे औ वसन्त ऋतुमें वेणुयवोंसे करे अथवा दोनों समय सोमकी आहुति घीसे करे ॥ १२ ॥ पहिलेपहिल व्याईहुई गौका बछडा आचार्यको दक्षिणामें देवे ॥ १३ ॥ नवान्नेष्टिमें हविका शेष भाग ब्राह्मणही खावे, ऐसा वेदमें लिखाहै ॥ १४ ॥

बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—४ अध्याय, ६४-६५ श्लोक । व्रत और विद्याका सेवन करनेवाला सुस्नातक कहा जाता है, विद्याको समाप्तकर स्नान करनेवाला विद्यास्नातक कहलाताहै, ब्रह्मचर्य व्रतको समाप्त करके स्नान करने वाला व्रतस्नातक है यज्ञका समाप्त करके स्नान करनेवाला सिद्धिनामा कहा जाताहै।

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः। स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च ॥ ३५ ॥
वैणवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च कमण्डलुम्। यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले ॥ ३६ ॥

स्नातक ब्राह्मणको उचित है कि क्षुधासे पीड़ित होनेपर राजा, यजमान अथवा अन्तेवासी शिष्योंसे धन मांगे; किन्तु अन्यसे नहीं ॥ ३३ ॥ शक्ति रहतेहुए क्षुधासे पीड़ित नहीं होवे; धन रहनेपर पुराने तथा मैले वस्त्र नहीं धारण करे ॥ ३४ ॥ केश, नख, दाढ़ी और मूंछ कटवाता रहे; तपके क्लेशको सहे; शुक्ल वस्त्र पहने; पवित्र रहे; वेदाध्ययनमें तत्पर रहे; अपने आत्माके हितमें सदा लगारहे ॥ ३५ ॥ बांसकी छड़ी और जलसे भरा कमण्डलु साथमें रक्खे; जनेऊ, कुशाकी मुष्टि और सोनेके २ कुण्डल धारण करे ✽ ॥ ३६ ॥

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः। आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ॥ १३७ ॥
सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्। प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ १३८ ॥

धन प्राप्तिके यत्न निष्फल होनेपर भी मनको दृढ रखकर धनप्राप्ति और धन बढानेका उद्योग सदा करता रहे ॥ १३७ ॥ सत्य और प्रिय वचन कहे, सत्य होनेपरभी किसीका अप्रिय वचन नहीं बोले, किसीके प्रसन्न होनेके लिये मिथ्या वचन नहीं कहे; यह सनातन धर्म है ॥ १३८ ॥

सावित्राञ्शान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वसु नित्यशः। पितॄंश्चैवाष्टकास्वर्चेन्नित्यमन्वष्टकासु च ॥ १५० ॥
दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम्। उच्छिष्टान्नं निषेकञ्च दूरादेव समाचरेत् ॥ १५१ ॥
मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम्। पूर्वाह्न एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् ॥ १५२ ॥

सदा अमावास्या आदि पर्वोंमें गायत्रीका जप और शान्तिहोम करे; अष्टकाओं और अन्वष्टकाओंमें ✾ पितरोंका श्राद्ध करे ॥ १५० ॥ अग्निशालासे दूर जाकर मल मूत्रका त्याग करे, पैर धोवे, जूठा अन्न फेंके तथा वीर्यपात करे ॥ १५१ ॥ मलका त्याग, स्नान, दन्तधावन, अञ्जन और देवपूजन पूर्वाह्नमें अर्थात् दिनके पहले भागमें करे ॥ १५२ ॥

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्। यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥ १५९ ॥
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्। एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ १६० ॥
यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः। तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ॥ १६१ ॥
परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैव निपातयेत्। अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्ट्यर्थं ताडयेत्तु तौ ॥१६४॥
येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः। तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते॥१७८॥

परवश कामको यत्नपूर्वक त्याग देवे और अपने वशके कामको यत्नसहित सेवन करे ॥ १५९ ॥ पराधीनता दुःखका और स्वाधीनता सुखका लक्षण है ॥ १६० ॥ जिन कामोंके करनेसे आत्मा संतुष्ट होताहै यत्न पूर्वक उन कामोंको करे और जिन कामोंके करनेसे आत्मा तुष्ट नहीं होता उनको त्यागदेवे ॥ १६१ ॥ क्रोध करके किसीको मारनेके निमित्त दण्ड नहीं उठावे अथवा किसीको दण्डसे प्रहार नहीं करे; किन्तु पुत्र और शिष्यको शिक्षाके लिये ताड़ना करे ❂ ॥ १६४ ॥ जिस मार्गसे सत्पुरुष पिता पितामह चलेहों उसी मार्गसे चलना चाहिये; उस मार्गसे चलनेसे क्लेश नहीं होताहै ॥ १७८ ॥

✽ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय। स्नातक क्षुधासे पीड़ित होनेपर राजा, अन्तेवासी शिष्य और यजमानसे धन मांगे; किन्तु दम्भी वेदविरुद्ध तर्क करनेवाले, पाखण्डी और बकवृत्तीसे नहीं मांगे ॥ १३० ॥ शुक्ल वस्त्र धारण करे; केश, दाढ़ी, मूछ और नखोंको कटवाते रहे और सदा पवित्र रहे ॥ १३१ ॥ सोनेके कुण्डल, जनेऊ, बांसकी छड़ी और कमण्डलु सदा धारण करे; देवता, गौ, ब्राह्मण और पीपल आदि वनस्पतियोंको दाहने करके गमन करे ॥ १३३ ॥ गौतमस्मृति—९ अध्याय—१ अङ्क। स्नातक दाढ़ी और मूछ नहीं रखावे अर्थात् मुण्डवाते रहे। वसिष्ठस्मृति—१२ अध्याय। अब स्नातकका नियम कहतेहैं ॥ १ ॥ वह राजा और अन्तेवासी शिष्योंसे भिन्न किसीसे कुछ नहीं मांगे ॥२॥ यदि क्षुधासे पीड़ित हो तो पकाया या कच्चा थोड़ा अन्न मांग लेवे;अन्तमें यदि कुछ नहीं मिले तो खेत, गौ, बकरी, भेड़, सोना अथवा अन्न जो मिले मांगे, परन्तु क्षुधासे पीड़ित होकर दुःख नहीं भोगे; यह उनके लिये उपदेश है ॥ ३ ॥ सदा एक, धोती, एक अंगौछा और दो जनेऊ धारण करे तथा बांसकी छड़ी और जलके सहित कमण्डलुं साथमें रक्खे ॥ १२ ॥ बांसकी छड़ी और सोनेका कुण्डल धारण करे ॥३४॥ बौधायनस्मृति—२ प्रश्न—३ अध्यायके ३३—३४ अङ्क। स्नातकको उचित है कि बांसका दण्ड और सोनेके कुण्डल धारण करे।

✾ अगहन, पूस और माघके कृष्णपक्षकी अष्टमीको अष्टका और तीनों नवमीको अन्वष्टका कहतेहैं।

❂ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय—११५ श्लोक। किसीकी निन्दा और ताड़ना नहीं करे; किन्तु पुत्र और शिष्यकी ताड़ना करना उचित है।

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः। बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ॥ १७९ ॥
मातापितृभ्यां यामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया। दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥ १८० ॥
एतैर्विवादान्सन्त्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते। एभिर्जितैश्च जयति सर्वाँल्लोकानिमान्गृही ॥ १८१ ॥
आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता प्रभुः। अतिथिस्त्विन्द्रलोकेशो देवलोकस्य चर्त्विजः ॥१८२॥
यामयोऽप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बान्धवाः। संबन्धिनो ह्यपां लोके पृथिव्यां मातृमातुलौ॥१८३॥
आकाशेशास्तु विज्ञेया बालवृद्धकृशातुराः। भ्राता ज्येष्ठः समः पित्रा भार्या पुत्रः स्वका तनुः॥१८४॥
छाया स्वो दासवर्गश्च दुहिता कृपणं परम्। तस्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेतासंज्वरः सदा ॥ १८५ ॥

ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, आश्रितमनुष्य, बालक, वृद्ध, आतुर, वैद्य, ज्ञाति, सम्बन्धी, बान्धव, माता, पिता, बहिन, पतोहू, भाई, पुत्र, भार्या, कन्या और दास लोगोंके साथ कभी विवाद नहीं करना चाहिये ॥ १७९--१८० ॥ जो गृहस्थ इनसे विवाद नहीं करताहै वह सब पापोंसे छूट जाताहै और इनको प्रसन्न रखताहै वह नीचे कहेहुए लोगोंको जय करताहै * ॥ १८१ ॥ आचार्यकी प्रसन्नतासे ब्रह्मलोक, पिताकी प्रसन्नतासे प्रजापतिलोक, अतिथिकी प्रसन्नतासे इन्द्रलोक, ऋत्विक्की प्रसन्नतासे देवलोक, बहिन और पतोहूकी प्रसन्नतासे अप्सरालोक, बान्धवकी प्रसन्नतासे वैश्वदेवलोक, सम्बन्धीकी प्रसन्नतासे वरुणलोक, माता और मामाकी प्रसन्नतासे पृथ्वीलोक और बालक, वृद्ध, दुःखी और आतुरकी प्रसन्नतासे अन्तरिक्षलोक मिलताहै ॥ १८२-१८४ ॥ जेठा भाई पिताके समान, स्त्री और पुत्र अपने शरीरके समान और दास वर्गके लोग अपनी छायाके समान हैं और पुत्री कृपाकी पात्र है, इस लिये इनसे अनादर होनेपर भी इनसे विवाद नहीं करना चाहिये ॥ १८४–१८५ ॥

श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः। श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः ॥ २२६ ॥

सदा आलसको छोड़कर यज्ञ आदि इष्टकर्म और तालाब आदि बनाना तथा बाग लगाना पूर्त कर्म करना चाहिये; न्यायसे प्राप्तहुए धनसे श्रद्धापूर्वक करनेसे ये दोनों अक्षय फल देतेहैं ** ॥ २२६ ॥

महर्षिपितृदेवानां गत्वानृण्यं यथाविधि। पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थमाश्रितः ॥ २५७ ॥
एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः। एकाकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोऽधिगच्छति॥२५८॥
एषोदिता गृहस्थस्य वृत्तिर्विप्रस्य शाश्वती। स्नातकव्रतकल्पश्च सत्त्ववृद्धिकरः शुभः ॥ २५९ ॥

---

* याज्ञवल्क्यस्मृति--१ अध्यायके १५७-१५८ श्लोकमें ऐसाही है।

** अत्रिस्मृति। ब्राह्मण यत्न पूर्वक इष्ट कर्म और पूर्तकर्म करे; इष्टसे स्वर्ग मिलताहै और पूर्तसे मोक्ष प्राप्त होताहै ॥ ४३ ॥ अग्निहोत्र, तपस्या, सत्य, वेदपालन, अतिथिसत्कार और बलिवैश्वदेवको इष्ट और बावली, कूप, तड़ाग, देवमन्दिर और बाग निर्माण तथा अन्नदानको पूर्त कहतेहैं ॥ ४४-४५ ॥ द्विजातियोंके लिये इष्ट और पूर्त साधारण धर्म है, शूद्र पूर्त धर्मका अधिकारी है; किन्तु वैदिक इष्टधर्मका नहीं ॥ ४६ ॥ यमस्मृति। ब्राह्मण यत्न पूर्वक इष्ट और पूर्त कर्म करे, इष्टसे स्वर्ग और पूर्तसे मोक्ष मिलताहै ॥ ६८ ॥ धनके अनुसार यज्ञ आदि इष्टकर्म होतेहैं तड़ाग, बाग और पानीशालाको पूर्तकर्म कहतेहैं ॥ ६९ ॥ जो मनुष्य टूटे हुए, कूप, बावली, तड़ाग अथवा देवमन्दिरको बनवा देताहै वह पूर्तकर्मका फल पाताहै ॥ ७० ॥ लिखितस्मृति। ब्राह्मण यत्न पूर्वक इष्ट और पूर्तकर्म करे; इष्टसे स्वर्ग और पूर्तसे मोक्ष मिलताहै ॥ १ ॥ जिस जलाशयमें गौके एक दिन तृप्त होने योग्य जल रहताहै उसके बनानेवालेके ७ पुश्त तरजातेहैं ॥ २ ॥ जो लोक भूमिदान अथवा गोदान करनेसे मिलताहै वही लोक वृक्षोंके लगानेसे प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ टूटेहुए कूप, बावडी, तड़ाग अथवा देवमन्दिरको बनवा देनेवाला पूर्तकर्मका फल पाताहै ॥ ४ ॥ अग्निहोत्र, तपस्या, सत्य, वेदपालन, अतिथिसत्कार और बलिवैश्वदेवको इष्ट कहतेहैं ॥ ५ ॥ इष्ट और पूर्त द्विजातियोंके साधारण धर्म हैं; शूद्र पूर्तधर्मका अधिकारी है; किन्तु वैदिक पूर्तधर्मका नहीं ॥ ६ ॥ बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र--८ अध्याय। गृहस्थ तड़ाग, पुष्करिणी, दीर्घिका, कूप और बावली बनावे ॥ ३६५ ॥ तृषार्त प्राणी उनमेंसे जितने बूंद जल पीतेहैं उतने वर्षतक उनके बनानेवाले स्वर्गमें बसतेहैं ॥ ३६८ ॥ स्नान, शौचादि तथा आचमन करनेवाले ब्राह्मण क्रियाके समय उनके जलसे जितने कुल्ला करतेहैं उतने लाख वर्ष उनके बनानेवाले अप्सराओंके सहित स्वर्गमें निवास करतेहैं ॥ ३६९-३७० ॥ १ पीपल, १ नीम्ब, १ वट, १० इमिली, ३ कैन्त, बेल तथा आंवला और ५ आम्रवृक्ष लगानेवाले नरकमें नहीं जातेहैं ॥ ३७५ ॥ क्षुधासे पीडित मनुष्य और पक्षी वृक्षके जितने फल खातेहैं उतने वर्षतक वृक्षको लगानेवाला स्वर्गमें बसताहै ॥३७६॥ वृक्षके जितने फूल देवताओंके मस्तकपर चढ़तेहैं या भूमिपर गिरते हैं उतने शत वर्षतक वृक्ष लगानेवाला स्वर्गमें क्रीडा करताहै ॥ ३७७ ॥

वेदाध्ययनसे ऋषियोंके, पुत्र उत्पन्नकरके पितरोंके और यज्ञ करके देवताओंके ऋणसे छूटकर कुटुम्बका भार अपने पुत्रोंपर रखकर मध्यस्थभावसे घरमें ही रहे ❀ ॥ २५७ ॥ निर्जनस्थानमें अकेले निवास करतेहुए सदा अपने हितका चिन्तन करे; ऐसा करनेसे उसका परम कल्याण होताहै ॥ २५८ ॥ इसप्रकार गृहस्थ आश्रमवाले ब्राह्मणकी नित्यवृत्ति और स्नातकके व्रतकी विधि, जो सत्त्वगुणकी वृद्धि करनेवाली है कही गई ॥ २५९ ॥

११ अध्याय।

यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये। अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥ ७ ॥
अतः स्वल्पीयसि द्रव्ये यः सोमं पिबति द्विजः। सपीतसोमपूर्वोऽपि न तस्याप्नोति तत्फलम् ॥ ८ ॥

जिसके घरमें ३ वर्षतक अथवा उससे अधिकतक कुटुम्ब पालन करने योग्य द्रव्य होवे वह सोमपान करने योग्य है॥७॥जिस द्विजके घरमें इससे कम द्रव्य है वह सोमपानकरनेसे सोमयज्ञका फल नहीं पाताहै ◎ ॥८॥

(३) अत्रिस्मृति।

यस्यैकापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी ॥ २१७ ॥
मङ्गलानि कुतस्तस्य कुतस्तस्य तमःक्षयः ॥ २१८ ॥

जिसके घरमें बछडे सहित एकभी गौ नहीं रहती है उसका मङ्गल नहीं है और उसका पाप नाश नहीं होता है ॥ २१७-२१८ ॥

अष्टागवं धर्महलं षड्गवं व्यावहारिकम् ॥ २१९ ॥
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गववध्यकृत्। द्विगवं वाहयेत्पादं मध्याह्ने तु चतुर्गवम् ॥ २२० ॥
षड्गवं तु त्रिपादोक्तं पूर्णाहस्त्वष्टभिः स्मृतः ॥ २२१ ॥

८ बैलका हल धर्मका, ६ बैलका हल व्यवहारका, ४ बैलका हल निर्दयीका और २ बैलका हल गौहत्यारेका है ॥ २१९-२२० ॥ २ बैलके हलसे केवल १ पहर, ४ बैलके हलसे २ पहर, ६ बैलके हलसे ३ पहर और ८ बैलके हलसे ४ पहर खेत जोतना चाहिये ◎ ॥ २२०-२२१ ॥

(९) आपस्तम्बस्मृति-१ अध्याय।

द्वौ मासौ पाययेद्वत्सं द्वौ मासौ द्वौ स्तनौ दुहेत् ॥ २० ॥
द्वौ मासावेकवेलायां शेषकालं यथारुचि ॥ २१ ॥

व्याई हुई गौका दूध २ महीने तक बछडेको पिलाना चाहिये; उसके पश्चात् २ महीनेतक दो थन, २ महीनेतक प्रतिदिन केवल एकवार और उसके बाद अपनी इच्छानुसार दुहना चाहिये ॥ २०-२१ ॥

(८) यमस्मृति।

त्यजन्तोऽपतितान्बन्धून्दण्ड्या उत्तमसाहसम्। पिता हि पतितः कामं न तु माता कदाचन ॥१९॥

जो गृहस्थ विना पतितहुए बन्धुको त्यागदेताहै उसपर राजा उत्तम साहस अर्थात् १००० पण दण्ड करे; पतित पिताको यथेच्छा त्याग देवे; किन्तु पतित माताको कभी नहीं त्यागे ※ ॥ १९ ॥

❀ वसिष्ठस्मृति--११ अध्यायके ४२-४३ अङ्क। ब्राह्मण तीन ऋणोंसे ऋणी होकर जन्म लेताहै; वह यज्ञ करके देवऋणको, सन्तान उत्पन्न करके पितृऋणको और वेद पढ़कर ऋषिऋणको चुकावे।

◎ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय। जिस द्विजके घरमें ३ वर्षसे अधिक खर्चयोग्य अन्न होय वही सोमपान अर्थात् अग्निष्टोम यज्ञ करे और जिसके घर १ वर्ष खर्च योग्य अन्न होय वह सोमयज्ञसे प्रथम करने योग्य कर्मोंको करे ॥१२४॥ सोमयज्ञ वर्षमें एकबार,पशुयज्ञ दक्षिणायन और उत्तरायणमें अथवा प्रतिवर्ष एकवार और आग्रयण यज्ञ तथा चातुर्मास्य यज्ञ प्रतिवर्ष करना चाहिये ॥ १२५ ॥ यदि सोमयज्ञ आदि नहीं करसके तो वैश्वानरी यज्ञ करे; किन्तु धनवान् ऐसा नहीं करे ॥ १२६ ॥ शङ्खस्मृति-५ अध्याय-१६-१७ श्लोक। जिसके घर ३ वर्षके खर्चसे अधिक अन्न होय वह सोमपान करे; किन्तु यदि थोड़े धनवाला होय तो वैश्वानरी यज्ञ करे।

◎ पाराशरस्मृति-२ अध्यायके ८-१० श्लोकमें ऐसाही है और आपस्तम्बस्मृति-१ अध्यायके २२-२३ श्लोकमें अत्रिस्मृतिके २१९-२२० श्लोकके समान है।

※ बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-२ अध्याय-४८ अङ्क। यदि माता पतित होजावे तो भी उसका पालन करे; किन्तु उससे भाषण नहीं करे। वसिष्ठस्मृति-१३ अध्याय। पुत्रका धर्म है कि पतित पिताको त्याग देवे; किन्तु पतित माताको नहीं छोड़े ॥ १५ ॥ यदि, भार्या, पुत्र अथवा शिष्य विशेष पाप कर्मोंसे युक्त होवें तो पाप कर्मोंसे निवृत्त होने तथा प्रायश्चित्त करके शुद्ध होनेके लिये उनसे कहे, यदि वे कहना नहीं मानें तो उनको त्याग देवे; जो विना कहेहुए उनको त्यागदेताहै वह पतित हो जाताहै ॥ १८ ॥

(११) कात्यायनस्मृति-१खण्ड ।

यत्रोपदृश्यते कर्म कर्तुरङ्गं न तूच्यते ॥ ८ ॥
दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः । यत्र दिङ्नियमो न स्याज्जपहोमादिकर्मसु ॥ ९ ॥
तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐन्द्रीसौम्यापराजिताः । तिष्ठन्नासीनः प्रह्वो वा नियमो यत्र नेदृशः ॥१०॥
तदासीनेन कर्तव्यं न प्रह्वेण न तिष्ठता ॥ ११ ॥

जिस कर्ममें नहीं लिखा है कि किस हाथसे करना चाहिये उसको दहिने हाथसे; जिस जप, होम आदि कर्मके लिये नहीं लिखा है कि किस ओर मुख करके करना चाहिये वह पूर्व, उत्तर अथवा पश्चिम मुख करके और जिस कर्ममें नहीं लिखाहै कि खड़े होकर, बैठकर अथवा झुककर करो उसको बैठकर करना उचित है ॥ ८-११ ॥

(१३) पाराशरस्मृति-१२ अध्याय ।

गृहस्थस्तु दयायुक्तो धर्ममेवानुचिन्तयेत् । पोष्यवर्गार्थसिद्ध्यर्थं न्यायवर्ती स बुद्धिमान् ॥ ४२ ॥
न्यायोपार्जितवित्तेन कर्त्तव्यं ह्यात्मरक्षणम् । अन्यायेन तु यो जीवेत्सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ ४३ ॥

दयावान् और बुद्धिमान् गृहस्थको उचित है कि अपने धर्मकी चिन्ता करे; अपने पोष्यवर्ग के प्रयोजनकी सिद्धिके लिये न्यायका बर्ताव करे ॥ ४२ ॥ न्यायपूर्वक धन उपार्जन करके अपनी रक्षा करे; जो अन्यायसे धन उपार्जन करके अपना निर्वाह करता है वह सब धर्मोंसे रहित है ॥ ४३ ॥

अग्निचित्कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः । दृष्टमात्राः पुनन्त्येते तस्मात्पश्येत्तु नित्यशः ॥ ४४ ॥
अरणिं कृष्णमार्जारं चन्दनं सुमणिं घृतम् । तिलान्कृष्णाजिनं छागं गृहे चैतानि रक्षयेत् ॥ ४५ ॥

अग्निहोत्री, कपिला गौ, यज्ञमें दीक्षित मनुष्य, राजा, भिक्षुक और समुद्रको देखनेसे मनुष्य पवित्र हो जातेहैं, इस लिये इनको नित्य देखना चाहिये ॥ ४४ ॥ अरणी, काला बिलार, चन्दन, उत्तम मणि, घी, तिल काली मृगछाला और बकरेको घरमें रखना चाहिये ॥ ४५ ॥

(१४) व्यासस्मृति-४ अध्याय ।

यद्ददाति विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नाति दिनेदिने । तच्च वित्तमहं मन्ये शेषं कस्याभिरक्षति ॥ १६ ॥
जीवन्ति जीविते यस्य विप्रमित्राणि बान्धवाः । जीवितं सफलं तस्य आत्मार्थे को न जीवति॥२१॥
पशवोऽपि हि जीवन्ति केवलात्मोदरम्भराः । किं कायेन सुगुप्तेन बलिना चिरजीविना ॥ २२ ॥

जो (गृहस्थ) अपना धन उत्तम पात्रको देताहै और उसको आप नित्य भोगताहै वही उस धनका स्वामी है; अन्यको किसी अन्यके धनका रक्षक जानना चाहिये ॥ १६ ॥ जिस मनुष्यके शरीर धारण करनेसे ब्राह्मण, मित्र और बान्धव लोगोंकी जीविका चलतीहै उसीका जीना सार्थक है; अपने लिये कौन नहीं जाताहै ॥ २१ ॥ केवल अपने पेट भरनेके लिये तो पशुभी जीवन धारण करतेहैं; भली भांति शरीरकी रक्षा करने, बलवान् होने तथा बहुत दिनोंतक जीनेसे ही क्या फल है ॥ २२ ॥

(१७) दक्षस्मृति-१ अध्याय ।

जातमात्रः शिशुस्तावद्यावदष्टौ समा वयः । स हि गर्भसमो ज्ञेयो व्यक्तिमात्रप्रदर्शितः ॥४ ॥
भक्ष्याभक्ष्ये तथा पेये वाच्यावाच्ये ऋतानृते । अस्मिन्बाले न दोषः स्यात्स यावन्नोपनीयते ॥ ५ ॥
उपनीते तु दोषोऽस्ति क्रियमाणैर्विगर्हितैः । अप्राप्तव्यवहारोऽसौ बालः षोडशवार्षिकः ॥ ६ ॥
स्वीकरोति यदा वेदं चरेद्वेदव्रतानि च । ब्रह्मचारी भवेत्तावदूर्ध्वं स्नातो भवेद् गृही ॥ ७ ॥
द्विविधो ब्रह्मचारी स्यादाद्यो ह्युपकुर्वाणकः । द्वितीयो नैष्ठिकश्चैव तस्मिन्नेव व्रते स्थितः ॥ ८ ॥
त्रयाणामानुलोम्येन प्रातिलोम्येन वा पुनः । प्रतिलोमं व्रतं यस्य स भवेत्पापकृत्तमः ॥ ९ ॥
यो गृहाश्रममास्थाय ब्रह्मचारी भवेत्पुनः । न यतिर्न वनस्थश्च स सर्वाश्रमवर्जितः ॥ १० ॥

---

* गोभिलस्मृति-प्रथमप्रपाठकके ८-१० श्लोकमें भी ऐसा है ।

दक्षस्मृति—२ अध्याय-३१ श्लोक । माता, पिता, गुरु, भार्या, सन्तान, दीन, दास, दासी, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि पोष्यवर्ग हैं ।

गोभिलस्मृति—२ प्रपाठक । जो मनुष्य प्रातःकालमें श्रोत्रिय, सौभाग्यवती स्त्री, गौ, अग्निहोत्री, अग्नि अथवा यज्ञमें दीक्षित मनुष्यको देखताहै वह आपत्से छूट जाताहै ॥ १६३ ॥ जो मनुष्य प्रातःकालमें पापी मनुष्य, दुर्भगा स्त्री, अन्त्यज जाति, नंगा मनुष्य अथवा नकटा मनुष्यको देखताहै वह मरजाताहै ॥ १६५ ॥

अनाश्रमी न तिष्ठेत दिनमेकमपि द्विजः । आश्रमेण विना तिष्ठन्प्रायश्चित्तीयते हि सः ॥ ११ ॥
जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये च रतः सदा । नासौ फलमवाप्नोति कुर्वाणोप्याश्रमाद्दते ॥ १२ ॥
मेखलाजिनदण्डैश्च ब्रह्मचारीति लक्ष्यते । गृहस्थो देवयज्ञाद्यैर्नखलोमैर्वनाश्रमी ॥ १३ ॥
त्रिदण्डेन यतिश्चैव लक्षणानि पृथक्पृथक् । यस्यैतल्लक्षणं नास्ति प्रायश्चित्ती न चाऽश्रमी ॥ १४॥

जबतक बालक ८ वर्षका नहीं होताहै तबतक वह सद्य जन्मे हुए बालकके समान है; उसको गर्भमें रहनेवाले बालकके समान जानना; उसका एक आकार मात्रही देख पड़ताहै ॥ ४ ॥ जबतक बालकका जनेऊ नहीं होताहै तबतक उसको भक्ष्य, अभक्ष्य, पेय, अपेय, योग्य वचन, अयोग्य वचन, सत्य और झूठका दोष नहीं लगताहै अर्थात् उसको कुछ पुण्य पाप नहीं होताहै ॥ ५ ॥ जनेऊ हो जानेपर उसको निन्दित कर्म करनेका दोष लगताहै; १६ वर्ष तक वह संसारके व्यवहार योग्य नहीं समझा जाताहै ※ ॥ ६॥ बालक जब वेद आरम्भ करे तब वेदोक्त ब्रह्मचर्याश्रमके व्रतोंको भी पालन करे और ब्रह्मचारी रहे, फिर समावर्तन स्नान करके गृहस्थ बने ॥ ७ ॥ ब्रह्मचारी दो प्रकारका है, एक उपकुर्वाणक और दूसरा जन्मभर ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थित रहनेवाला नैष्ठिक ॥ ८ ॥ ब्रह्मचारीसे गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इस क्रमसे तीनों आश्रमोंमें जाना चाहिये; जो मनुष्य गृहस्थसे ब्रह्मचारी अथवा वानप्रस्थसे गृहस्थ वा संन्यासीसे वानप्रस्थ बनताहै वह बड़ा पापी है ॥ ९ ॥ जो गृहस्थाश्रममें जाकर वानप्रस्थ और संन्यासी नहीं होकर फिर ब्रह्मचारी बनताहै वह सब आश्रमोंसे रहित है ॥ १० ॥ द्विजको एक दिनभी आश्रमसे बाहर नहीं रहना चाहिये; क्योंकि आश्रमसे बाहर रहनेपर वह प्रायश्चित्त करनेके योग्य होताहै ॥ ११ ॥ आश्रमसे बाहर रहकर जप, होम, दान तथा वेदपाठ करनेसे उनका कुछ फल नहीं होताहै ॥ १२ ॥ मेखला, मृगचर्म और दण्ड धारण ब्रह्मचारीका चिह्न; देव यज्ञ, दान, अतिथिसेवा आदि गृहस्थका चिह्न नख और लोम धारण करना वानप्रस्थका चिह्न और त्रिदण्ड धारण करना संन्यासीका चिह्न है; ये चारो आश्रमोंके पृथक् पृथक् लक्षण हैं; जिस आश्रमके मनुष्यमें उसके आश्रमके चिह्न नहीं हैं वह प्रायश्चित्तके योग्य है;आश्रमी नहीं है ॥ १३-१४ ॥

२ अध्याय।

माता पिता गुरुर्भार्या प्रजा दीनः समाश्रितः । अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥३२॥
ज्ञातिर्बन्धुजनः क्षीणस्तथाऽनाथः समाश्रितः । अन्योऽपि धनयुक्तस्य पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥ ३३ ॥
सार्वभौतिकमन्नाद्यं कर्तव्यं तु विशेषतः । ज्ञानविद्भ्यः प्रदातव्यमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥ ३४ ॥
भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् । नरकः पीडने तस्य तस्माद्यत्नेन तं भरेत् ॥ ३५ ॥
स जीवति य एवैको बहुभिश्चोपजीव्यते । जीवन्तो मृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरम्भराः ॥ ३६ ॥
बह्वर्थं जीव्यते कैश्चित्कुटुम्बार्थं तथा परैः । आत्मार्थेऽन्यो न शक्नोति स्वोदरेणापि दुःखितः ॥३७॥

माता, पिता, गुरु, भार्या, सन्तान, दीन, समाश्रित (दासदासी आदि), अभ्यागत, अतिथि और अग्नि; ये सब पोष्यवर्ग अर्थात् पालनेयोग्य कहेगयेहैं ॥ ३२ ॥ धनवान् मनुष्योंके लिये जाति और आत्मीय लोगोंमें जो लोग असमर्थ, अनाथ और समाश्रित (शरणागत) हैं वे भी पोष्यवर्ग समझेगयेहैं ⚘ ॥ ३३ ॥ सब भूतोंके लिये अन्न आदि विशेष बनाना चाहिये और ज्ञानियोंको दान देना चाहिये; जो ऐसा नहीं करताहै वह नरकमें जाताहै ॥ ३४ ॥ पोष्यवर्गके पालन करनेसे स्वर्ग मिलताहै; उनके दुःखी होनेसे नरकमें जाना पड़ताहै, इस लिये यत्नपूर्वक उनका पालन करना चाहिये ॥३५॥ जिस मनुष्यके सहारेसे बहुत लोगोंका निर्वाह होताहै वास्तवमें वही जीवित है; केवल अपना उदरभरनेवाला मनुष्य जीवित अवस्थामें भी मृतकके समान है ॥ ३६ ॥ कोई बहुत लोगोंके लिये और कोई अपने कुटुम्बोंके लिये जीता है और कोई अपना पालन भी नहीं कर सकताहै; अपने उदर भरनेके लिये भी दुःखी है ॥ ३७ ॥

※ गौतमस्मृति—२ अध्याय—१ अङ्क । जबतक बालकका जनेऊ नहीं होताहै तबतक इच्छानुसार बोलने तथा भोजन करनेसे उसको कोई दोष नहीं लगता; वह हवन या ब्रह्मचर्यका अधिकारी नहीं होता और उसके लिये मल मूत्र त्यागके शौचका भी नियम नहीं है; किन्तु मार्जन करना, हाथ पांव धोना और भूमिपर जल छिडककर भोजनादि करना उसको भी उचितहै; नहीं छूने योग्य वस्तुका स्पर्श करनेसे उसको दोष नहीं लगता होमकर्म अथवा वैश्वदेव कर्ममें उसको नहीं लगाना चाहिये और पितृकार्यके अतिरिक्त किसी समयमें उससे वेदमन्त्रका उच्चारण नहीं कराना चाहिये । वसिष्ठस्मृति—२ अध्याय । द्विजोंके बालक जनेऊ होनेसे पहिले वेदोक्त कर्म करनेके अधिकारी नहीं रहतेहैं; वे शूद्रके तुल्य समझे जातेहैं ॥ १२ ॥ पितृकार्यमें जलदान और स्वधापूर्वक पिण्डदान वे करसकतेहैं ॥ १३ ॥

⚘ लघुआश्वलायनस्मृति—१ आचार प्रकरण—७४ श्लोक । माता, पिता, गुरु, भार्या, पुत्र, शिष्य, दास, दासी आदि आश्रित मनुष्य और अतिथि पोष्यवर्ग हैं ।

गृहस्थोऽपि क्रियायुक्तो गृहेण न गृही भवेत् । न चैव पुत्रदारेण स्वकर्मपरिवर्जितः ॥ ४९ ॥

क्रियायुक्त गृहस्थ घरमें रहनेसे गृहस्थ नहीं होता अर्थात् घर उसको बन्धन नहीं होता और अपने कर्मसे हीन गृहस्थ पुत्र और स्त्रीसे गृहस्थ नहीं होता अर्थात् पुत्रादि उसको नरकसे नहीं बचासकते ॥ ४९ ॥

३ अध्याय ।

सुधा नव गृहस्थस्य ईषद्दानानि वै नव । नव कर्माणि च तथा विकर्माणि नवैव तु ॥ १ ॥
प्रच्छन्नानि नवान्यानि प्रकाश्यानि पुनर्नव । सफलानि नवान्यानि निष्फलानि नवैव तु ॥ २ ॥
अदेयानि नवान्यानि वस्तुजातानि सर्वदा । नवका नव निर्दिष्टा गृहस्थोन्नतिकारकाः ॥ ३ ॥
सुधावस्तूनि वक्ष्यामि विशिष्टे गृहमागते । मनश्चक्षुर्मुखं वाचं सौम्यं दत्त्वा चतुष्टयम् ॥ ४ ॥
अभ्युत्थानं ततो गच्छेत्पृच्छालापः प्रियान्वितः । उपासनमनुव्रज्या कार्याण्येतानि नित्यशः ॥ ५ ॥
ईषद्दानानि चान्यानि भूमिरापस्तृणानि च । पादशौचं तथाऽभ्यङ्ग आश्रयः शयनानि च ॥ ६ ॥
किञ्चिद्द्याद्यथाशक्ति नास्यानश्नन्गृहे वसेत् । मृज्जलं चार्थिने देयमेतान्यपि सदा गृहे ॥ ७ ॥
सन्ध्या स्नानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् । वैश्वदेवं क्षमातिथ्यमुद्धृत्यापि च शक्तितः ॥ ८ ॥
पितृदेवमनुष्याणां दीनानाथतपस्विनाम् । गुरुमातृपितॄणां च संविभागो यथार्थतः ॥ ९ ॥
एतानि नव कर्माणि विकर्माणि तथा पुनः । अनृतं परदाराश्च तथाभक्ष्यस्य भक्षणम् ॥ १० ॥
अगम्यागमनापेयपानं स्तेयं च हिंसनम् । अश्रौतकर्माचरणं मैत्रं धर्मबहिष्कृतम् ॥ ११ ॥
नवैतानि विकर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥ १२ ॥
आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रो मैथुनभेषजे ॥ १३ ॥
तपो दानापमाने च नव गोप्यानि सर्वदा । प्रायोग्यमृणशुद्धिश्च दानाध्ययनविक्रयाः ॥ १४ ॥
कन्यादानं वृषोत्सर्गो रहः पापमकुत्सनम् । प्रकाश्यानि नवैतानि गृहस्थाश्रमिणस्तथा ॥ १५ ॥
मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणि । दीनानाथविशिष्टेषु दत्तं च सफलं भवेत् ॥ १६ ॥
धूर्ते बन्दिनि मल्ले च कुवैद्ये कितवे शठे । चाटुचारणचोरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम् ॥ १७ ॥
सामान्यं याचितं न्यासमाधिर्दाराश्च तद्धनम् । अन्वाहितं च निःक्षेपं सर्वस्वं चान्वये सति ॥ १८ ॥
आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा । यो ददाति स मूर्खस्तु प्रायश्चित्तेन युज्यते ॥ १९ ॥
नव नवकवेत्ता च मनुष्योधिपतिर्नृणाम् । इह लोके परत्रापि नीतिस्तं नैव मुञ्चति ॥ २० ॥

गृहस्थोंके लिये ९ अमृत, ९ तुच्छदान, ९ कर्म, ९ निन्दितकर्म, ९ गुप्तकार्य, ९ प्रकाश्यकार्य, ९ सफलकार्य, ९ निष्फलकार्य, और ९ अदेय वस्तु हैं; यही नव नवक अर्थात् ८१ क्रिया गृहस्थोंकी उन्नति करनेवाली है ॥ १-३ ॥ इनमें सज्जनके आनेपर (१) मन, (२) नेत्र, (३) मुख, और (४) वचनको सौम्य रखना, (५) उसको देखकर उठना, (६) उससे आनेका प्रयोजन पूछना, (७) उससे प्रिय वचन बोलना, (८) भोजनादिद्वारा उसकी सेवा करना और (९) उसको कुछ दूरतक पहुंचाना, ये ९ अमृत हैं ॥४-५॥ अभ्यागतके आनेपर उसको (१) भूमि, (२) जल और (३) कुशासन देना; (४) उसका पैर धोना, (५) उसको उबटनलगाना, (६) उसको वासस्थान देना, (७) शय्या देना (८) यथाशक्ति कुछ भोजन कराना और (९) अभ्यागतको मिट्टी या जल देना; ये ९ तुच्छ दान हैं ॥ ६-७॥(१) सन्ध्या, (२) स्नान, (३) जप, (४) होम, (५) वेदपाठ, (६) देवपूजा, (७) बलिवैश्वदेव, (८) शक्तिके अनुसार शान्तिपूर्वक अतिथिसेवा करना और (९) पितर, देव, मनुष्य, दरिद्र, अनाथ, तपस्वी, गुरु, माता और पिताको यथायोग्य विभागकरके भोजन देना, ये ९ कर्म हैं ॥ ८-१० ॥ (१) झूठबोलना, (२) परस्त्रीसे गमन करना, (३) अभक्ष्यभक्षण करना, (४) अगम्यागमन, (५) नहीं पीनेयोग्य वस्तुको पीना, (६) चोरी करना, (७) हिंसा करना, (८) वेदबाह्यकाम करना और (९) सन्ध्या आदि कर्मसे अलग रहना; ये ९ निन्दित कर्म हैं; इनको त्याग देवे ॥ १०—१२ ॥ (१) अवस्था, (२) धन, (३) घरका छिद्र, (४) मन्त्र, (५) मैथुनकर्म, (६) औषधका नाम, (७) तपस्या, (८) दान और (९) अपमान; ये ९ सदा गुप्त रक्खे ॥१३-१४॥(१) ऋणदान,(२) ऋणशोध,(३)वस्तुदान, (४)अध्ययन, (५) वस्तुविक्रय, (६) कन्यादान, (७)वृषोत्सर्ग,(८)गुप्त पाप और (९) अनिन्दनीय कार्य;ये९ कार्य गृहस्थ प्रकाशित करे॥१४-१५॥ (१) माता (२) पिता, (३) गुरु (४) मित्र (५) नम्रमनुष्य, (६) उपकारीमनुष्य, (७) दरिद्र, (८) अनाथ और (९) सज्जनमनुष्य, इन ९ को देना सफल है ॥ १६॥ (१) धूर्त, (२) बन्दी, (३) मल्ल, (४) कुवैद्य, (५) कपटी, (६) मूर्ख, (७) छली, (८) चारण और (९) चोर; इन ९ क

देना निष्फल है ॥ १७ ॥ (१) सर्वसाधारणकी वस्तु, (२) मंगनी लाईहुई वस्तु (३) अन्यद्वारा रक्खा हुआ किसी अन्य मनुष्यका धरोहर, (४) बन्धनकी वस्तु, (५) भार्या, :(६) स्त्रीका धन, (७) जो द्रव्य एकके घर रक्खा हो और उसनेभी अन्यके घर रखदिया होय वह द्रव्य, (८) गिनाकर किसीका रक्खाहुआ धरोहर और (९) वंश रहतेहुए अपना सर्वस्व; ये ९ प्रकारकी वस्तु आपत्कालमें भी किसीको नहीं देना चाहिये; ❀ जो इन वस्तुओंको किसीको देताहै वह मूर्ख है और प्रायश्चित्त करनेयोग्य है ॥ ॥ १८-१९ ॥ जो मनुष्य इन ८१ क्रियाओंको जानता है वह मनुष्योंमें श्रेष्ठ है; दोनों लोकोंमें नीति उसके साथ रहतीहै ॥ २० ॥

यथैवात्मा परस्तद्वद् द्रष्टव्यः सुखमिच्छता । सुखदुःखानि तुल्यानि यथात्मनि तथा परे ॥ २१ ॥
सुखं वा यदि वा दुःखं यत्किञ्चित्क्रियते परे । यत्कृतं तु पुनः पश्चात्सर्वमात्मनि तद्भवेत् ॥ २२ ॥
न क्लेशेन विना द्रव्यं न द्रव्येण विना क्रिया । क्रियाहीने न धर्मः स्याद्धर्महीने कुतः सुखम् ॥ १३ ॥
सुखं हि वाञ्छते सर्वं तच्च धर्मसमुद्भवम् । तस्माद्धर्मः सदा कार्यः सर्ववर्णैः प्रयत्नतः ॥ २४ ॥
न्यायागतेन द्रव्येण कर्तव्यं पारलौकिकम् । दानं हि विधिना देयं काले पात्रे गुणान्विते ॥ २५ ॥

सुखको चाहनेवाले मनुष्यको उचित है कि अपने समान दूसरोंको देखे; क्यों कि अपने सुख दुःखके समान दूसरेको भी सुख दुःख होताहै; जो सुख अथवा दुःख अन्यको दिया जाताहै वह सब अपने आत्माको मिलताहै ॥ २१-२२ ॥ विना क्लेश कियेहुए द्रव्य नहीं मिलता, विना द्रव्यके क्रिया नहीं होती, विना क्रियाके धर्म नहीं होता और विना धर्मके सुख नहीं मिलताहै ॥ २३॥ सब मनुष्य सुखकोही चाहतेहैं, वह सुख धर्मसेही उत्पन्न होताहै, इसलिये सब वर्णके मनुष्योंको यत्नपूर्वक धर्म करना चाहिये ॥ २४ ॥ न्यायसे प्राप्तहुए धनसे पारलौकिक काम करना और उत्तम समयमें विधिपूर्वक सुपात्रको दान देना चाहिये ॥ २५ ॥

(१८) गौतमस्मृति-८ अध्याय।

अथाष्टावात्मगुणा दया सर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूया शौचमनायासो मङ्गलमकार्पण्यमस्पृहेति ॥ ४ ॥

आत्माके ये ८ गुण हैं;—सब जीवोंपर दया करना, क्षमाकरना, परकी निन्दा नहीं करना, पवित्र रहना, परमार्थकार्य करनेमें कष्ट नहीं मानना, प्रसन्न रहना, उदार रहना और सन्तोष रखना ॥ ४ ॥

११ अध्याय।

वर्णाश्रमाश्च स्वकर्मनिष्ठाः प्रेत्यकर्मफलमनुभूय ततः शेषेण विशिष्टदेशजातिकुलरूपायुःश्रुतवित्तवृत्त-सुखमेधसो जन्म प्रतिपद्यन्ते, विष्वञ्चो विपरीता नश्यन्ति ॥ १ ॥

सब वर्ण और आश्रमोंके मनुष्य अपने अपने वर्ण और आश्रमके कर्ममें स्थित रहनेसे मरनेके पश्चात् अपने अपने कर्मोंके फलोंको भोगकर उत्तम देश, जाति और कुलमें जन्म लेकर रूप, आयु, विद्या, धन, चरित्र, सुख और बुद्धिसे युक्त होतेहैं, किन्तु अपने वर्ण तथा आश्रमसे विपरीत कर्म करनेवाले नष्ट होजातेहैं ॥ १ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति-४ अध्याय।

सर्वेषां सत्यमक्रोधो दानमहिंसा प्रजननं च ॥ ४ ॥

सत्य बोलना, क्रोधका त्याग करना, दान देना, हिंसा नहीं करना और सन्तान उत्पन्न करना; ये सब मनुष्योंके धर्महैं ❀❀ ॥ ४ ॥

६ अध्याय।

आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः । हीनाचारपरीतात्मा प्रेत्य चेह च नश्यति ॥ १ ॥
नैनं तपांसि न ब्रह्म नाग्निहोत्रं न दक्षिणा । हीनाचारमितो भ्रष्टं तारयन्ति कथंचन ॥ २ ॥
आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः ।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥ ३ ॥
नैनं छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति मायाविनं मायया वर्तमानम् ।

❀ नारदस्मृति-४ विवादपद ४ श्लोक । जो द्रव्य एकके घर रक्खा हो और उसनेभी अन्यके घर रख दियाहो, मंगनी चीज, बन्धककी वस्तु, साधारणकी चीज, गिनाकर रक्खा हुआ धरोहर, पुत्र, स्त्री और वंश रहतेहुए अपना सर्वस्व; ये वस्तु किसीको देनेयोग्य नहीं हैं ।

❀❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय-१२२ श्लोक । हिंसा नहीं करना, सत्य बोलना, चोरी नहीं करना, पवित्र रहना, इन्द्रियोंको रोकना, दान देना, अन्तःकरणको रोकना, दया करना और क्षमावान् होना; ये सबके धर्म हैं ।

द्वेऽप्यक्षरे सम्यगधीयमाने पुनाति तद्ब्रह्म यथावदिष्टम् ॥ ५ ॥
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः । दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ ६ ॥
आचाराल्लभते धर्ममाचाराल्लभते धनम् । आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ७ ॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः । श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ ८ ॥

निश्चय करके आचारमें सबका परम धर्म है; आचारसे हीन मनुष्य इस लोक और परलोक दोनोंमें नष्ट होताहै ॥ १ ॥ आचारसे भ्रष्ट मनुष्यको तपस्या, वेदाध्ययन, अग्निहोत्र और दक्षिणा ये सब दुःखसागरसे कभी पार नहीं करसकतेहैं ॥ २ ॥ छवो वेदाङ्गोंके सहित वेदभी आचारहीन मनुष्यको पवित्र नहीं कर-सकतेहैं; जैसे पंख निकल आनेपर पक्षियोंके बच्चे घोंसलेको छोड़कर उड़जातेहैं वैसेही पढ़ेहुए वेद मृत्युके समय आचारहीनको त्याग देतेहैं ॥ ३ ॥ छल कपटके साथ वर्ताव करनेवाले मायावी पुरुषको पढ़ेहुए वेद पापसे पार नहीं करतेहैं; किन्तु शुद्धाचारी मनुष्यको श्रद्धापूर्वक पढेहुए वेदके दो अक्षरभी पवित्र कर देतेहैं ॥ ५ ॥ आचारसे हीन मनुष्य लोकमें निन्दित, सदा दुःखी, रोगी और अल्प अवस्थावाला होताहै ॥ ॥ ६ ॥ आचारसे धर्म धन और लक्ष्मी प्राप्त होतीहै और कुलक्षणोंका नाश होताहै ॥ ७ ॥ सब लक्षणोंसे हीन मनुष्यभी सदाचारसे युक्त, श्रद्धावान् और अनिन्दक होनेसे सौ वर्षतक जीताहै ॥ ८ ॥

आहारनिर्हारविहारयोगाः सुसंवृता धर्मविदा तु कार्याः ।
वाग्बुद्धिवीर्याणि तपस्तथैव धनायुषी गुप्ततमे तु कार्ये ॥ ९ ॥

धर्म जाननेवाले मनुष्यको उचित है कि भोजन, मल मूत्रका त्याग, मैथुन और योगको छिपाकर करे और वाणी, बुद्धि, पराक्रम, तपस्या, धन और आयु इन सबको गुप्त रक्खे ॥ ९ ॥

१३ अध्याय ।

ऋत्विगाचार्यावयाजकानध्यापकौ हेयावन्यत्र हानात्पतति ॥ १९ ॥

यदि यजमानको ऋत्विक् यज्ञ नहीं करावे और विद्यार्थीको आचार्य नहीं पढ़ावे तो यजमान ऋत्विक्को छोड़ देवे और विद्यार्थी आचार्यको त्यागदेवे; जो नहीं त्यागताहै वह पतित होताहै ॥ १९ ॥

(२५) बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-३ अध्याय ।

प्रभूतैधोदकयवससमित्कुशमाल्योपनिष्क्रमणमाढ्यजनाकुलमनलससमृद्धमार्यजनभूयिष्ठमदस्युप्रवेश्यं ग्राममावसितुं यतेत धार्मिकः ॥ ५८ ॥

जिस गांवमें इच्छानुसार लकड़ी, जल, घास, समिधाके सहित कुशा, फूल, अच्छा मार्ग, आलस्यरहित मनुष्य, धनवान् मनुष्य, व्यापार और वहुत श्रेष्ठलोग होवें और चोर नहीं प्रवेश करसकें उसी गांवमें धार्मिक गृहस्थको वसना चाहिये ॥ ५८ ॥

(२६) नारदस्मृति-१ विवादपद ३ अध्याय ।

स्वातन्त्र्यं तु स्मृतं ज्येष्ठे ज्यैष्ठ्यं गुणवयःकृतम् । त्रयः स्वतन्त्रा लोकेस्मिन्राजाचार्यस्तथैव च॥३४॥
प्रतिवर्णं च सर्वेषां वर्णानां स्वे गृहे गृही । अस्वतन्त्राः प्रजाः सर्वाः स्वतन्त्रः पृथिवीपतिः ॥ ३५॥
अस्वतन्त्रः स्मृतः शिष्य आचार्ये तु स्वतन्त्रता । अस्वतन्त्राः स्त्रियः पुत्रा दासा यश्च परिग्रहः३६॥
स्वतन्त्रस्तत्र तु गृही तस्य स्याद्यत्क्रमागतम् । गर्भस्थैः सदृशो ज्ञेय आष्टमाद्वत्सराच्छिशुः ॥३७॥
बाल आषोडशाद्वर्षात्पौगण्ड इति शब्द्यते । परतो व्यवहारज्ञः स्वतन्त्रः पितरौ विना ॥ ३८ ॥
जीवतोरस्वतन्त्रः स्याज्जरयापि समन्वितः । तयोरपि पिता श्रीमान्बीजप्राधान्यदर्शनात् ॥३९ ॥
अभावे बीजिनो माता तदभावे च पूर्वजः ॥ ४० ॥

स्वतन्त्रता वड़ेमें होतीहै; किन्तु यदि वड़ा मनुष्य गुणवान् और अवस्थामें बड़ा होय तब । संसारमें ३ स्वतन्त्र हैं; राजा, आचार्य और सब वर्णोंमें अपने घरका मालिक ॥ ३४-३५ ॥ सम्पूर्ण प्रजा अस्वतन्त्र और राजा स्वतन्त्र है, शिष्य अस्वतन्त्र और आचार्य स्वतन्त्र है और स्त्री, पुत्र, दास और ग्रहण किया हुआ मनुष्य अस्वतन्त्र और घरका मालिक स्वतन्त्र है ॥ ३५-३७ ॥ माता पिताके नहीं रहनेपर लड़का ८ वर्षतक गर्भके समान और १६ वर्षतक बालक रहताहै उसके पश्चात् व्यवहारके योग्य स्वतन्त्र होताहै; किन्तु माता पिताके जीवित रहनेपर वृद्ध होजानेपरभी पुत्र स्वतन्त्र नहीं होता ॥ ३७-३९ ॥ माता पितामें पिता स्वतन्त्र समझा जाताहै; क्योंकि बीज प्रधान है; पिताके नहीं रहनेपर माता और माताके नहीं रहनेपर बड़ा भाई स्वतन्त्र है ॥ ३९-४० ॥

मनुस्मृति—४ अध्यायका १५८ श्लोक और बृहद्विष्णुस्मृति ७१ अध्यायका ९२ श्लोक ठीक इसी श्लोकके समान है ।

धनमूलाः क्रियाः सर्वा यत्नस्तस्यार्जने मतः ॥ ४५ ।
रक्षणं वर्धनं भोग इति तस्य विधिः क्रमात् । तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं शुद्धं शबलमेव च ॥ ४६ ॥
कृष्णं च तस्य विज्ञेयो विभागः सप्तधा पुनः । श्रुतशौर्यतपःकन्याशिष्ययाज्यान्वयागतम् ॥ ४७ ॥
धनं सप्तविधं शुद्धमुदयोप्यस्य तद्विधः । कुसीदकृषिवाणिज्यशुल्कशिल्पानुवृत्तिभिः ॥ ४८ ॥
कृतोपकारादाप्तं च शबलं समुदाहृतम् । उत्कोचद्यूतचौर्यार्तिप्रातिरूपकसाहसैः ॥ ४९ ॥
व्याजेनोपार्जितं यञ्च तत्कृष्णं समुदाहृतम् । तेन क्रयो विक्रयश्च दानं ग्रहणमेव च ॥ ५० ॥
विविधाश्च प्रवर्तन्ते क्रियाः सम्भोग एव च । यथाविधेन द्रव्येण यत्किञ्चिल्लभते नरः ॥ ५१ ॥
तथाविधमवाप्नोति फलं चेह परत्र च । तत्पुनर्द्वादशविधं प्रतिवर्णाश्रमात्स्मृतम् ॥ ५२ ॥

सम्पूर्ण क्रिया धनसे ही होतीहैं, इस लिये यत्न पूर्वक धन इकट्ठा करना चाहिये और क्रमसे धनकी रक्षा, वृद्धि और उसको भोग करना चाहिये ॥४५–४६॥ फिर उस धनको ३ प्रकारका जानना चाहिये;शुद्ध, शबल और कृष्ण * वह सात सात प्रकारके हैं; वेदविद्या,शूरता,तपस्या,कन्या, शिष्य, यज्ञ और धनविभागसे मिलता हुआ, ये ७ प्रकारका धन शुद्ध है. इसका फलभी शुद्ध है ॥ ४६–४८ ॥ व्याज, कृषि, वाणिज्य, शुल्क, शिल्प, अनुवृत्ति और कृत उपकारसे मिला हुआ (ये ७ प्रकारका) धन शबल कहलाता है ॥४८-४९॥ रिसवत, जूआ, चोरी, दुःखदेने, ठगहारी, साहस और कपटसे प्राप्तहुआ धन कृष्ण कहाजाताहै ॥ ४९–५० ॥ उस धनसे खरीदना, बिक्रीकरना, देना, लेना, भोग करना इत्यादि नानाप्रकारकी क्रिया होतीहै ॥ ५०–५१॥ मनुष्य जिस प्रकारके धनसे जो कुछ काम करताहै उसको इस लोक तथा परलोकमें वैसाही फल मिलताहै५१-५२

साधारणं स्यात्त्रिविधं शेषं नवविधं विदुः । क्रमागतं प्रीतिदायप्राप्तं च सह भार्यया ॥ ५३ ॥
अविशेषेण सर्वेषां वर्णानां त्रिविधं धनम् । वैशेषिकं धनं ज्ञेयं ब्राह्मणस्य त्रिलक्षणम् ॥ ५४ ॥
प्रतिग्रहेण यल्लब्धं याज्यतः शिष्यतस्तथा । त्रिविधं क्षत्रियस्यापि प्राहुर्वैशेषिकं धनम् ॥ ५५ ॥
कराद्युद्धोपलब्धं च दण्डाच्च व्यवहारतः । वैशेषिकं धनं ज्ञेयं वैश्यस्यापि त्रिलक्षणम् ॥ ५६ ॥
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यैः शूद्रस्यैभ्यस्त्वनुग्रहात् । सर्वेषामेव वर्णानामेष धर्म्यो धनागमः ॥ ५७ ॥

फिर वह धन प्रति वर्णके आश्रित होकर १२ प्रकारका होताहै; उसमें ३ प्रकारका सब वर्णोंके लिय साधारण और बाकी ९ प्रकारका (तीनों वर्णोंके लिये) जानना चाहिये ॥ ५२ ॥ पुश्तैनी, प्रीतिपूर्वक किसीसे मिलाहुआ और विवाहके समय मिलाहुआ; ये ३ प्रकारका धन सब वर्णोंके लिये सामान्य रूपसे है ॥ ५३–५४ ॥ दानसे, यज्ञसे और शिष्यसे मिला हुआ; ये ३ प्रकारका धन ब्राह्मणके लिये उत्तम है ॥ ॥ ५४–५५॥ भूमि आदिके कर, युद्धमें प्राप्त और व्यवहारके दण्डसे प्राप्त ** हुआ, ये ३ प्रकारका धन क्षत्रियके लिये श्रेष्ठ है ॥ ५५–५६ ॥ कृषि, गोरक्षा और वाणिज्यसे मिला हुआ; ये ३ प्रकारका धन वैश्यके लिये उत्तम है और द्विजोंके अनुग्रहसे मिलाहुआ धन शूद्रके लिये श्रेष्ठ है; सब वर्णोंके लिये धन आगमका यही धर्म है ॥ ५६–५७ ॥

आदरमानकी रीति ६.

(१) मनुस्मृति–२ अध्याय ।

लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च । आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ॥ ११७ ॥
शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् । शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥ ११९ ॥
ऊर्ध्वं प्राणाह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति । प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥ १२० ॥
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः । चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ १२१ ॥
अभिवादात्परं विप्रो ज्यायांसमभिवादयन् । असौ नामाहमस्मीति स्वं नाम परिकीर्त्तयेत् ॥ १२२ ॥
नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते । तान्प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैव च ॥ १२३ ॥
भोः शब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने । नाम्नां स्वरूपभावो हि भोभाव ऋषिभिः स्मृतः १२४

जिससे अर्थशास्त्र आदि लौकिक ज्ञान अथवा वेदोक्त कर्म तथा ब्रह्मज्ञान ग्रहण करे, बहुत मान्य लोगोंके मध्यमें प्रथम उसेही प्रणाम करना चाहिये ॥ ११७ ॥ श्रेष्ठ लोगोंकी शय्या अथवा आसनपर नहीं बैठे;

---

* वृहद्विष्णुस्मृति—५८ अध्यायके १–२ अङ्क । गृहाश्रमीका धन तीन प्रकारका होताहै,–शुक्ल, शबल, और कृष्ण ।

** व्यवहारका वर्णन व्यवहार प्रकरणमें देखिये ।

श्रेष्ठ लोगोंके आनेपर अपनी शय्या तथा आसनसे उठकर उनको प्रणाम करे ॥ ११९ ॥ अवस्था और विद्यामें वृद्ध पुरुषके आनेपर युवाके प्राण ऊपरको चढ़तेहैं अर्थात् शरीरसे बाहर निकलना चाहतेहैं; किन्तु खडे होकर उनको प्रणाम करनेसे फिर स्थिर होजातेहैं ॥ १२० ॥ उठकर सदा वृद्धोंको नमस्कार करनेवाले और वृद्धोंकी सदा सेवा करनेवाले मनुष्यकी आयु, विद्या, यश और बल, इन चारोंकी वृद्धि होतीहै ॥ १२१ ॥ श्रेष्ठ लोगोंको नमस्कार करनेके अन्तमें अपना नाम सुनाना चाहिये ॥ १२२ ॥ जो पुरुष नामधेय उच्चारणपूर्वक नमस्कारको नहीं समझ सकताहै उससे बुद्धिमान् पुरुष ऐसा कहे कि मैं नमस्कार करताहूं; सब स्त्रियोंसे भी ऐसाही कहना चाहिये ॥ १२३ ॥ नमस्कारमें कहेहुए अपने नामके पीछे संबोधनके लिये भोः शब्दका उच्चारण करे अर्थात् ब्राह्मण कहे कि 'अभिवादये शुभशर्माऽहमस्मि भोः" इसीसे ऋषियोंने नमस्कार करनेयोग्य पुरुषके नामके स्वरूपकी सत्ता भोः शब्दमें ही कहीहै ॥ १२४ ॥

आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने । अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः॥
यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् । नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ १२६ ॥
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् । वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥ १२७ ॥

प्रणाम करनेपर ब्राह्मण कहे कि "सौम्य आयुष्मान् भव" और प्रणाम करनेवालेके नामके अन्तके पहिलेके अक्षरको प्लुत उच्चारण करे ॥१२५॥ विद्वान् पुरुषको उचित है कि जो ब्राह्मण प्रणाम करनेपर उसके बदलेका अशीर्वाद देना नहीं जानताहै उसको प्रणाम नहीं करे; क्योंकि वह शूद्रके समान है ॥ १२६ ॥ ब्राह्मणको चाहिये कि प्रणाम करनेवाले ब्राह्मणसे कुशल, क्षत्रियसे अनामय, वैश्यसे क्षेम और शूद्रसे आरोग्यता पूछे ❀ ॥ १२७ ॥

अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् । भोभवत्पूर्वकं त्वेनमभिभाषेत धर्मवित् ॥ १२८॥

यज्ञ आदिमें दीक्षित मनुष्य यदि अवस्थामें छोटा होवे तौभी धर्मज्ञ पुरुष उस समय उसका नाम लेकर उसको नहीं पुकारे; किन्तु भो दीक्षित ऐसा कहकर उससे सम्बोधन करे ✪ ॥ १२८ ॥

परपत्नी तु या स्त्री स्यादसंबन्धा च योनितः । तां ब्रूयाद्भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च ॥ १२९ ॥

विना योनिसम्बन्धकी परकी स्त्रीको भी भवति, सुभगे अथवा भगिनी कहके पुकारे ✤ ॥ १२९ ॥

मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् । असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय यवीयसः ॥ १३० ॥

मामा, चाचा, श्वशुर, ऋत्विक् और गुरु; ये लोग यदि अवस्थामें अपनेसे छोटे होंवे ता भी इनके आनेपर उठकर अपना नाम सुनावे ▣ ॥ १३० ॥

मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा । संपूज्या गुरुपत्नीवत्समास्ता गुरुभार्यया ॥ १३१ ॥
भ्रातुर्भार्योपसंग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि । विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसंबन्धियोषितः ॥ १३२ ॥
पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि । मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी॥१३३॥
दशाब्दाख्यं पौरसख्यं पञ्चाब्दाख्यं कलाभृताम् । त्र्यब्दपूर्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनिषु१३४
ब्राह्मणं दशवर्षन्तु शतवर्षन्तु भूमिपम् । पितापुत्रौ विजानीयाद्ब्राह्मणस्तु तयोः पिता ॥ १३५ ॥

मौसी, मामी, सास और बुआ (फूफू) गुरुपत्नीके समान पूज्य हैं; क्योंकि ये गुरुभार्याके तुल्य हैं ॥ ॥ १३१ ॥ बड़े भाईकी सवर्णा स्त्रीको प्रतिदिन और सम्बन्धी स्त्रियोंको विदेशसे आनेपर चरण छूकर

❀ उशनस्मृति-१ अध्यायके १९,-२० और २४ श्लोकमें ऐसाही है ।

✪ उशनस्मृति-१ अध्यायके ४३ श्लोकमें भी ऐसा है ।

✤ वृहद्विष्णुस्मृति-३२ अध्याय-७ अंक । अपरिचित परकी पत्नीकोभी बहिन, पुत्री अथवा माता कहके सम्बोधन करना चाहिये ।

▣ उशनस्मृति- १ अध्यायका ४२ श्लोक ऐसाही है । बृहद्विष्णुस्मृति-३२ अध्याय-४ अंक और वसिष्ठस्मृति-१३ अध्याय-१३ अङ्क । श्वशुर, चाचा, मामा अथवा ऋत्विक् यदि अवस्थामें अपनेसे छोटा होवे तो उसके आनेपर उठकरके उसका सम्मान करे; यही उसके प्रणाम करनेके तुल्य है । गौतमस्मृति-६ अध्याय-४ अङ्क । यदि ऋत्विक् श्वशुर, चाचा अथवा मामा अवस्था में अपनेसे छोटा होवे और क्षत्रिय आदि अन्य जातिके पुरवासी अवस्थामें अपनेसे बड़ा होवे तो उसके आनेपर ब्राह्मण उठकर खडा होजावे; किन्तु उसको प्रणाम नहीं करे । बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-२ अध्यायके ४४-४६ अङ्क । ऋत्विक्, श्वशुर, चाचा अथवा मामा यदि अवस्थामें अपनेसे छोटा होवे तो उसके आनेपर खड़े होकर उससे सम्भाषण करे; कात्यायन कहतेहैं कि आशीर्वाद देवे और अङ्गिरा कहतेहैं कि वह यदि शिशु अर्थात् संस्काररहित होवे तो उसको आशीर्वाद देवे ।

प्रणाम करे ※ ॥ १३२ ॥ बूआ, मौसी और जेठी बहिन माताके समान मान्य हैं; किन्तु माता, इनसे बहुत श्रेष्ठ है ॥ १३३ ॥ एक गांवके बसनेवाले लोगोंके बीच १० वर्षतक, गीत आदिके कलाओंके जाननेवालोंमें ५ वर्षतक और श्रोत्रिय ब्राह्मणोंके बीच ३ वर्षतक छोटी बडी अवस्थाके मनुष्योंमें मित्रता होतीहै अर्थात् वे तुल्य अवस्थाके समझे जातेहैं; किन्तु अपने कुलके मनुष्योंमें थोड़ी छोटी बढ़ी अवस्थावालोंमें भी छोटे बड़ेका व्यवहार चलताहै ※ ॥ १३४ ॥ सौ वर्षके क्षत्रियको उचित है कि दस वर्षके ब्राह्मणको पिताके समान श्रेष्ठ जाने ॥ १३५ ॥

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी । एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥ १३६ ॥
पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च । यत्र स्युःसोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः॥ १३७ ॥

धन, बन्धु, अवस्था, कर्म और विद्या; येप५ सम्मानके स्थान हैं;इनमें धनीसे बहुत बन्धुवाला, उससे अधिक अवस्थावाला,उससे शास्त्रविहित कर्म करनेवाला और उससे भी विद्यावान् अधिक माननेके योग्य हैं※॥१३६॥ ब्राह्मण आदि तीनों द्विजातियोंमें इन पांचों गुणोंमेंसे जिसमें जितने गुण अधिक हैं, वह उतनाही मान्य है और ९० वर्षसे अधिक अवस्थाके शूद्रभी द्विजोंके लिये माननीय हैं ※ ॥ १३७ ॥

चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः। स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देयो वरस्यच १३८॥
तेषान्तु समवेतानां मान्यौ स्नातकपार्थिवौ । राजस्नातकयोश्चैव स्नातको नृपमानभाक् ॥ १३९ ॥

पथिकोंको उचित है कि रथवाले, नव्वे वर्षसे अधिकके वृद्ध, रोगी, भार ढोनेवाले, स्त्री, स्नातक ब्राह्मण, राजा अथवा दुलहेके आजानेपर मार्ग छोड़कर हट जावे ॥ १३८ ॥ पूर्वोक्त लोग स्नातक ब्राह्मण अथवा राजाके आजानेपर और राजा स्नातक ब्राह्मणके आजानेपर मार्ग छोड़देवे ※ ॥ १३९ ॥

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता । सहस्रन्तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ १४५ ॥
उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता । ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ १४६ ॥

उपाध्यायसे दस गुना आचार्य, आचार्यसे सौगुना पिता और पितासे हजारगुना माता गौरवमें श्रेष्ठ है ※ ॥ १४५ ॥ जन्मदाता और वेद पढानेवाला, ये दोनो पिता कहेजातेहैं; इनमें जन्मदाता पितासे वेद पढ़ानेवालाही श्रेष्ठ है;क्योंकि ब्राह्मणका ब्रह्मजन्मही अर्थात् वेदारंभही दोनों लोकमें मोक्षरूप फल देनेवालाहै॥१४६॥

ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता स्वधर्मस्य च शासिता। बालोऽपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः॥१५०॥

जो ब्राह्मण संस्कार आदि कर्मोंसे मनुष्योंको द्विज बनाताहै: और वेदादिके व्याख्यानोंसे धर्म उपदेश करताहै वह बालक होनेपरभी धर्मपूर्वक बूढोंके लियेभी पिताके समान माननीय है ॥ १५० ॥

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः। वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥१५५॥

ज्ञानवान् होनेसे ब्राह्मण, बलवान् होनेसे क्षत्रिय, धनधान्यसे युक्त होनेसे वैश्य और बड़ी अवस्था होनेसे शूद्र बड़े समझेजातेहैं ॥ १५५ ॥

※ गौतमस्मृति–६ अध्याय–३ अंक। नाते रिश्तेकी स्त्रियोंको परदेशसे आनेपर प्रणाम करे; किन्तु माता, चाची, बड़ी बहिन, बड़ी भौजाई और सासुको नित्यही चरण छूकर प्रणाम करना चाहिये।

※ गौतमस्मृति-६ अध्यायके ४ अंकमें प्रायः ऐसाही है।

※ गौतमस्मृति–६ अध्याय–५ अंक । धन, बन्धु, कर्म, जाति, विद्या और अवस्था; ये सम्मानके कारण हैं; इनमें पहिलेवालेसे पीछेवाले अधिक मान्य हैं । वसिष्ठस्मृति–१३ अध्यायके–२४–२५ अंक। विद्या, धन, अवस्था, सम्बन्ध और कर्म; ये सम्मानके कारण हैं; इनमें क्रमसे पीछेवालेसे पहिलेवाले अधिक मान्य हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय–११६ श्लोक। विद्या, कर्म, अवस्था, बन्धु और धनसे युक्त मनुष्य यथाक्रमसे माननेयोग्य होतेहैं। उशनस्मृति–१ अध्याय–४८ श्लोक। विद्या, कर्म, अवस्था, बन्धु और धन ये ५ मान्यके कारण हैं, इनमें पीछेवालेसे पहिलेवाले अधिक मान्य हैं।

※ उशनस्मृति—१ अध्याय–४९ श्लोक। ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंमें (विद्या, कर्म, अवस्था बन्धु और धन);इन पांचों गुणोंमेंसे जिसमें जितने गुण अधिकहैं वह उतनाही अधिक मान्य है; इन गुणोंसे युक्त शूद्रभी मान्य होताहै। गौतमस्मृति ६ अध्याय–४ अङ्क। ८० वर्षसे कम अवस्थाके शूद्रको ब्राह्मण पुत्रके समान समझे। शूद्र अपनेसे छोटे द्विजको भी प्रणाम करे।

※ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्यायके ११७ श्लोकमें और वसिष्ठस्मृति—१३ अध्याय २५–२७ अङ्कमें भी ऐसा है।

※ वसिष्ठस्मृति— १३ अध्यायके १७ श्लोकमें भी ऐसा है। जो उपनयनपूर्वक केवल सावित्रीका उपदेश करताहै उसी आचार्यसे पिताको सौगुना अधिक कहाहै।

३ अध्याय।

राजर्त्विक्स्नातकगुरून्प्रियश्वशुरमातुलान्। अर्हयेन्मधुपर्केण परिसंवत्सरात्पुनः॥ ११९ ॥
राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युपस्थितौ। मधुपर्केण सम्पूज्यौ न त्वयज्ञ इति स्थितिः॥ १२० ॥

यदि राजा, ऋत्विक्, स्नातक, ब्राह्मण, गुरु, प्रिय (दामाद, और मित्र), ससुर और मामा घरमें आवें तो गृह्योक्त मधुपर्कसे इनकी पूजा करे; और एक वर्ष व्यतीत होनेके बाद आवें तब फिर पूजन करे राजा और श्रोत्रिय ब्राह्मण यज्ञकर्मके समय एक वर्षके भीतर भी आवें तो मधुपर्कसे इनको पूजे; किन्तु अन्य समयके लिये यह नियम नहीं है ❀॥ ११९-१२०॥

४ अध्याय।

दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान्। ईश्वरं चैव रक्षार्थं गुरूनेव च पर्वसु ॥ १५३ ॥
अभिवादयेद् वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम्। कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् ॥ १५४ ॥

गृहस्थको उचित है कि अमावास्या आदि पर्वोंमें देवता, धार्मिक ब्राह्मण, रक्षा करनेवाले राजा और गुरुके निकट जाकर उनका दर्शन करे॥१५३॥घरमें आयेहुए वृद्धोंको प्रणाम करके बैठनेके लिये अपना आसन देवे, उनके सामने हाथ जोड़कर बैठे और उनके जाते समय कुछ दूरतक उनके पीछे पीछे जावे ॥ १५४ ॥

(४ क) बृहद्विष्णुस्मृति-३२ अध्याय।

राजर्त्विक् श्रोत्रियाधर्मप्रतिषेध्युपाध्यायपितृव्यमातामहमातुलश्वशुरज्येष्ठभ्रातृसम्बन्धिनश्चा-चार्यवत् ॥ १ ॥ पत्न्य एतेषां सवर्णाः ॥ २ ॥ मातृष्वसा पितृष्वसा ज्येष्ठा स्वसा च ॥ ३ ॥

राजा, ऋत्विक्, श्रोत्रिय ब्राह्मण, अधर्मनिषेधक, उपाध्याय, चाचा, नाना, मामा, श्वशुर, बड़ा भाई और अवस्थामें बड़े अन्य सम्बन्धीका मान आचार्यके समान करना चाहिये ॥ १ ॥ इन सबकी सवर्णा स्त्री और अपनी मौसी, फुआ तथा जेठी बहिनभी ऐसीही मान्य हैं ॥ २-३ ॥

(६ क) उशनस्मृति-१ अध्याय।

मातुलश्वशुरभ्रातृमातामहपितामहौ। वर्णकाश्च पितृव्यश्च सप्तैते पितरः स्मृताः ॥ २५ ॥
माता मातामही गुर्वी पितृमातृष्वसादयः। श्वश्रूः पितामही ज्येष्ठा ज्ञातव्या गुरवः स्त्रियः ॥२६ ॥
गुरूणामपि सर्वेषां पूज्याः पञ्च विशेषतः। तेषामाद्यास्त्रयः श्रेष्ठास्तेषां माता सुपूजिता ॥ ३० ॥

मामा, श्वशुर, जेठा भाई, नाना, दादा, वर्ण-ज्येष्ठ और चाचा; ये ७ पिताके तुल्य कहेजातेहैं ॥ २५॥ माता, नानी, फुआ, मौसी आदि, सास, दादी और जेठी बहिन; इनको गुरुकी स्त्रीके समान जानना चाहिये ॥ २६ ॥ सब गुरुओंमें ५ (माता, पिता, आचार्य, उपाध्याय और ऋत्विक्) विशेष पूज्य हैं; इनमें पहिलेके ३ (माता, पिता और आचार्य) श्रेष्ठ हैं; इन तीनोंमेंभी माता अधिक पूज्य है ॥ ३०॥

(१८) गौतमस्मृति-६ अध्याय।

पादोपसंग्रहणं गुरुसमवायेऽन्वहम् ॥ १॥ अभिगम्य तु विप्रोष्य मातृपितृतद्बन्धूनां पूर्वजानां विद्या-गुरूणां तत्तद्गुरूणां च सन्निपाते परस्य॥२॥ राजन्यो वैश्यकर्मा विद्याहीनो दीक्षितस्य प्राक्कुर्यात्॥४

गुरुके मिलनेपर नित्य उनका चरण स्पर्श करे ॥ १ ॥ विदेशसे आनेपर माता, पिता, मामा, चाचा, बड़ा भाई और विद्यागुरु यदि इकट्ठे मिलजावें तो श्रेष्ठताके क्रमसे इनका चरण स्पर्श करे ॥ २ ॥ विद्याहीन और वैश्य कर्म करनेवाला क्षत्रिय उचित है कि यदि अपनी जातिके दीक्षित मनुष्य अवस्थामें छोटा होवे तौभी उसको प्रणाम करे ॥ ४ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति-१३ अध्याय।

गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद् वृत्तिरिष्यते। गुरुवद् गुरुपुत्रस्य वर्तितव्यमिति श्रुतिः ॥ २२ ॥

यदि निकट होवे तो गुरुके गुरु और गुरुके पुत्रके साथ गुरुके समान वर्ताव करना चाहिये ॥ २२ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय-११० श्लोक। यदि एकवर्षपर स्नातक ब्राह्मण, आचार्य, राजा, प्रिय (मित्र) और दामाद आवे तो मधुपर्कसे उसकी पूजा करे; किन्तु यज्ञके समय वर्षके भीतरभी ऋत्विकको मधुपर्कसे पूजे। व्यासस्मृति—३ अध्याय-४१ श्लोक। यदि एक वर्षपर दामाद, स्नातक ब्राह्मण, राजा, आचार्य, मित्र अथवा ऋत्विक् आवे तो मधुपर्कसे विधिपूर्वक उसकी पूजा करे। मानवगृह्यसूत्र—१ पुरुष-९ खण्डके १-१ अंकमें भी ऐसा है।

(२४) लघुआश्वलायनस्मृति-२२ वर्णधर्मप्रकरण ।

उच्चालयोपविष्टस्य मान्यानां पुरतो यदि । गच्छेत्स विपदं नूनमिह चामुत्र चैव हि ॥ २०॥

जो मनुष्य माननीय लोगोंके सम्मुख उच्च आसनपर बैठताहै वह निश्चयकरके दोनों लोकोंमें दुःख भोगता है ॥ २० ॥

आपत्कालका धर्म ७.

(१) मनुस्मृति-८ अध्याय ।

शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते । द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते ॥ ३४८ ॥
आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च सङ्गरे । स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति ॥ ३४९ ॥

जब साहसिक लोगोंके बलसे धर्मका मार्ग रुके अथवा समयके प्रभावसे वर्ण विप्लव होनेलगे तब धर्मकी रक्षाके लिये ब्राह्मण आदि सब द्विजातियोंको शस्त्र ग्रहण करना चाहिये ॥ ३४८ ॥ अपनी रक्षा, न्यायपूर्वक युद्ध और स्त्रियों तथा ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये धर्मपूर्वक प्राणिवध करनेसे दोष नहीं लगताहै ॥ ३४९ ॥

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् । आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् । ३५० ॥
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन । प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥ ३५१ ॥

गुरु, बालक, वृद्ध अथवा बहुश्रुत ब्राह्मणभी यदि आततायी होकर आवे तो विना विचार कियेहुए उसका वध करना चाहिये ॥ ३५० ॥ प्रकट अथवा गुप्त रीतिसे आततायीको मारनेमें कुछ दोष नहीं लगता है; क्योंकि उसका क्रोधही उसका वध कराताहै ⊙ ॥ ३५१ ॥

११ अध्याय ।

क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः । धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्विजोत्तम ॥ ३४ ॥

क्षत्रिय अपने बाहुबलसे, वैश्य और शूद्र धनसे और ब्राह्मण जप तथा होमके बलसे आपत्कालको हटावे ❊ ॥ ३४ ॥

(४क) वृहद्विष्णुस्मृति-५ अध्याय ।

नखिनां दंष्ट्रिणां चैव शृङ्गिणामाततायिनाम् । हस्त्यश्वानां तथान्येषां वधे हन्ता न दोषभाक् १८४

नखसे, दांतसे और सींगसे मारनेवाले जीव;आततायी मनुष्य और हाथी तथा घोड़े यदि मारनेके लिये आवें तो इनके वध करनेसे दोष नहीं लगताहै ॥ १८४ ॥

(१६) पाराशरस्मृति-७ अध्याय ।

आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः । स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्ध्येत्स आतुरः ॥२१ ॥

यदि रोगी मनुष्यको स्नान करनेकी जरूरत पड़े तो नीरोग मनुष्य १० बार स्नान करके उसका स्पर्श करे तब वह स्नान करनेके समान शुद्ध हो जावेगा ॥ २१ ॥

देशभङ्गे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि ॥ ४० ॥
रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत् । येन केन च धर्मेण मृदुना दारुणेन वा ॥ ४१ ॥
उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत् । आपत्काले तु संप्राप्ते शौचाऽचारं न चिन्तयेत् ॥ ४२ ॥
शुद्धिं समुद्धरेत्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत् ॥ ४३ ॥

❀ वसिष्ठस्मृति-३ अध्याय-२६ अंक । अपनी रक्षा और वर्णरक्षाके लिये ब्राह्मण और वैश्यको भी हथियार ग्रहण करना चाहिये । बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-२ अध्यायके ८० श्लोकमें प्रायः ऐसा है ।

⊙ वसिष्ठस्मृति-३ अध्यायके १९-२० श्लोक । आग लगानेवाला, विष देनेवाला, शस्त्रहाथमें लेकर मारनके लिये आनेवाला, धन हरण करनेवाला, खेत हरण करनेवाला और स्त्री हरण करनेवाला; ये ६ आततायी हैं । यदि वेद वेदान्तका पूर्ण विद्वान् ब्राह्मणभी आततायी होकर आवे तो उसको मारडाले;उसके मारनेसे ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगेगा । वृहद्विष्णुस्मृति-५ अध्यायके १८५ और १८६ श्लोक मनुस्मृतिके ३५०-३५१ श्लोकके समान हैं और १८७ तथा १८८ श्लोकमें है कि तलवारसे मारनेके लिये, विष देनेके लिये, आग लगानेके लिये, शापदेनेके लिये, मारण अभिचार द्वारा मारनेके लिये, चुगली करके राजासे वध करानेके लिये और भार्या हरणकरनेके लिये जो उद्यत होतेहैं, इन्हीं ७ को आततायी कहतेहैं तथा यश, धन और धर्म हरण करनेवालेभी आततायी कहलातेहैं ।

❊ वसिष्ठस्मृति--२६ अध्यायके १७ श्लोकमें ऐसाही है ।

मनुष्यको उचित है कि देशमें गदर होनेपर, देश भ्रमण करनेके समय, रोगी होनेपर, शिकार आदि व्यसनके समय धर्मका विचार छोड़कर अपने शरीर आदि व्यसनके समय धर्मका विचार छोड़कर अपने शरीर आदिकी रक्षाकरे; पीछे निश्चिन्त होनेपर धर्मका आचरण करलेवे ॥ ४०-४१ ॥ कोमल अथवा कठोर धर्मसे जिस प्रकारसे अपने असमर्थ आत्माका उद्धार होवे वही उपाय करे; पीछे समर्थ होजानेपर फिर धर्मका प्रबन्ध करले ॥ ४१-४२ ॥ आपत्काल आजानेपर शौच आचारकी चिन्ता नहीं करे; विपत्से पार होनेपर शुद्धि तथा धर्मका आचरण करलेवे ॥ ४२-४३ ॥

(६ क) उशनस्मृति-२ अध्याय।

आरभ्यानुदके रात्रौ चौरैर्वाप्याकुले पथि। कृत्वा मूत्रपुरीषं वा द्रव्यं हस्ते न दुष्यति ॥ ३३ ॥

मार्गमें रातके समय चोर अथवा बाघके भय होनेपर विना जल शौचके मल मूत्र त्याग करनेसे मनुष्य अशुद्ध नहीं होगा और उसके हाथमें स्थित वस्तु अशुद्ध नहीं होगी ॥ ३३ ॥

(१७) दक्षस्मृति-५ अध्याय।

अन्यदेव दिवा शौचमन्यद् रात्रौ विधीयते। अन्यदापदि निर्दिष्टं ह्यन्यदेव ह्यनापदि ॥ १२ ॥
दिवाकृतस्य शौचस्य रात्रावर्द्धं विधीयते। तदर्धमातुरस्याहुस्त्वरायामर्द्धं वर्त्मनि ॥ १३ ॥
दिवा यद्विहितं कर्म तदर्धं च निशि स्मृतम्। तदर्धं चातुरे काले पथि शूद्रवदाचरेत् ॥ १४ ॥

दिनका शौच अन्य,रातका शौच अन्य,आपत्कालका शौच अन्य और अनापत्कालका शौच अन्य है॥१२॥ दिनमें जो शौच किया जाताहै उससे आधा शौच रातमें उससे भी आधा शौच रोगी होनेपर और उससेभी आधा शौच शीघ्रताके समय तथा मार्गमें चलनेके समय करना चाहिये ॥ १३ ॥ दिनमें जो कर्म किया जाताहै उससे आधा कर्म रातमें, उससे आधा कर्म रोगी होनेपर और शूद्रके समान कर्म मार्गमें चलनेके समय करना चाहिये ॥ १४ ॥

६ अध्याय।

स्वस्थकाले त्विदं सर्वमशौचं परिकीर्तितम्। आपद्गतस्य सर्वस्य सूतकेपि न सूतकम् ॥ १८ ॥

ये सब अशौच स्वस्थ कालके लिये कहे गयेहैं; आपत्कालमें अशौचके समयभी अशौच नहीं होताहै१८॥

(१८) गौतमस्मृति-१८ अध्याय।

धर्मतन्त्रपीडायां तस्याकरणे दोषोऽदोषः ॥ १ ॥

यदि धर्मसंबन्धी किसी कामके करनेमें शरीरको बहुत क्लेश पहुंचना संभव होय तो उसको नहीं करनेसे दोष नहीं लगेगा ॥ १ ॥

गृहस्थ और स्नातकके लिये निषेध * ८.

(१) मनुस्मृति-४ अध्याय।

न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधाशक्तः कथंचन। न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ॥ ३४ ॥
नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यान्तं कदाचन। नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ॥ ३७ ॥
न लङ्घयेद्वत्सतन्त्रीं न प्रधावेच्च वर्षति। न चोदके निरीक्षेत स्वं रूपमिति धारणा ॥ ३८ ॥
नाश्नीयाद्भार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम्। क्षुवतीं जृम्भमाणां वा न चासीनां यथासुखम्॥४३॥
नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्यक्तामनावृताम्। न पश्येत्प्रसवन्तीं च तेजस्कामो द्विजोत्तमः॥ ४४ ॥
नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम्। नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत् ॥ ५३ ॥
अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभिलंघयेत्। न चैनं पादतः कुर्यान्न प्राणाबाधमाचरेत् ॥ ५४ ॥
नाश्नीयात्सन्धिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत्। न चैव प्रलिखेद् भूमिं नात्मनोपहरेत्स्रजम् ॥५५॥
नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत्। अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥५६॥
नैकः स्वपेच्छून्यगेहे शयानं न प्रबोधयेत्। नोदक्ययाभिभाषेत यज्ञं गच्छेन्न चावृतः ॥ ५७ ॥
न वारयेद् गां धयन्तीं न चाचक्षीत कस्यचित्। न दिवीन्द्रायुधं दृष्ट्वा कस्य चिद्दर्शयेद्बुधः ॥ ५९ ॥

---

* दिनचर्याके विषयका निषेध दिनचर्या प्रकरणमें है। इसमें किसी जगह केवल स्नातकके लिये और किसी स्नातक तथा अन्य गृहस्थके लिये निषेध जानना।

नाधार्मिके वसेद्ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम्। नैकः प्रपद्येताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥ ६० ॥
न शूद्रराज्ये निवसेन्नाधार्मिकजनावृते। न पाषण्डिगणाक्रान्ते नोपसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः ॥ ६१ ॥
न नृत्येदथ वा गायेन्न वादित्राणि वादयेत्। नास्फोटयेन्न च क्ष्वेडेन्न च रक्तो विरावयेत् ॥ ६४ ॥
न पादौ धावयेत्कांस्ये कदाचिदपि भाजने। न भिन्नभाण्डे भुञ्जीत न भावप्रतिदूषिते ॥ ६५ ॥
उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत्। उपवीतमलङ्कारं स्रजं करकमेव च ॥ ६६ ॥
नाविनीतैर्व्रजेद्धुर्यैर्नच क्षुद्व्याधिपीडितैः। न भिन्नशृङ्गाक्षिखुरैर्न वालधिविरूपितैः ॥ ६७ ॥
विनीतैस्तुव्रजेन्नित्यमाशुगैर्लक्षणान्वितैः। वर्णरूपोपसम्पन्नैः प्रतोदेनातुदन्भृशम् ॥ ६८ ॥
बालातपप्रेतधूमो वर्ज्यं भिन्नं तथासनम्। न च्छिन्द्यान्नखलोमानि दन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान् ॥ ६९ ॥
न मृल्लोष्टं च मृद्नीयान्नच्छिद्यात्करजैस्तृणम्। न कर्म निष्फलं कुर्यान्नायत्यामसुखोदयम् ॥ ७० ॥
लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः। स विनाशं व्रजत्याशु सूचकोऽशुचिरेव च ॥ ७१ ॥

स्नातक ब्राह्मणको उचित है कि शक्ति रहतेहुए भूखसे पीडित नहीं होवे; धन रहतेहुए पुराने और मैले कपड़े नहीं पहिरे ❀ ॥३४॥ अस्त तथा उदयके समय,ग्रहणके समय, जलमें अथवा मध्याह्नमें सूर्यको नहीं देखे ◎ ॥ ३७ ॥बछड़ेकी रस्सीको नहीं लांघे; वर्षा वर्षनेके समय दौड़कर नहीं चले, जलमें अपनी परिछांही नहीं देखे ॥ ३८ ॥ अपनी भार्याके सङ्ग भोजन नहीं करे, भोजन करती हुई, छिंकरती हुई, जंभाई लेतीहुई, एकान्तमें सुखसे बैठीहुई, आंखोंमें अञ्जन लगातीहुई, वस्त्ररहित होकर तेल लगातीहुई तथा सन्तान जनती हुई अपनी भार्याको नहीं देखे ॥ ४३-४४ ॥ अग्निको मुखसे नहीं फूंके, नंगी स्त्रीको नहीं देखे, अशुद्ध वस्तुको अग्निमें नहीं डाले, अग्निमें पैरको नहीं तपावे ॥ ५३ ॥ खटिये आदिके नीचे आग नहीं रक्खे, आगको नहीं लांघे, पांवकी ओर अग्निको नहीं रक्खे, प्राणोंको पीड़ा देनेवाला कोई काम नहीं करे ❀ ॥ ५४ ॥ सन्ध्याओंके समय भोजन, पर्यटन और शयन नहीं करे, भूमिपर रेखा नहीं खींचे, पहिनी हुई मालाको स्वयं नहीं उतारे ॥ ५५ ॥ जलमें विष्ठा, मूत, खंखार, विष्ठा आदि अपवित्र वस्तु लगीहुई वस्त्र, रुधिर अथवा विष नहीं डाले ❀ ॥ ५६ ॥ शून्य घरमें अकेला नहीं सोवे, सोयेहुए (अपनेसे श्रेष्ठ) को नहीं जगावे, ❀ रजस्वला स्त्रीसे बातें नहीं करे, विना निमन्त्रणके किसीके यज्ञमें नहीं जावे ॥ ५७ ॥ जलपीती हुई अथवा दूध पिलाती हुई गायको नहीं रोके; परकी गौको दूध पिलाती हुई अथवा जल पीतीहुई देखकर उससे नहीं कहे; आकाशमें इन्द्रधनुषको देखकर अन्यको नहीं दिखावे ❀ ॥ ५९ ॥ अधर्मियोंके गांवमें और बहुत व्याधियुक्त गांवमें निवास नहीं करे, दूरके देशमें अकेला नहीं जावे, बहुत दिनोंतक पहाड़पर नहीं बसे ॥ ६० ॥ शूद्रके राज्य, अधर्मियोंके देश, पाखण्डियोंके वशवर्ती देश, अथवा अन्त्यज जातियोंसे उपद्रव युक्त देशमें निवास नहीं करे ॥६१॥ नाचना, गाना तथा बाजा बजाना नहीं सीखे,करताली नहीं बजावे, दांतसे दांत नहीं खटखटावे, गदहे आदिकी तरह बोली नहीं बोले ॥ ६४ ॥ कांसके बर्तनमें पैर नहीं धोवे, टूटेहुए बर्तन तथा घृणित पात्रमें भोजन नहीं करे ॥ ६५ ॥ दूसरेका बर्ताहुआ जूता, वस्त्र, जनेऊ, अलङ्कार, फूलकी माला और कमण्डलु धारण नहीं करे ❀ ॥ ६६ ॥ अशिक्षित क्षुधासे पीड़ित, रोगी, टूटे सींगवाले, काने, फटे

❀ गौतमस्मृति-९ अध्याय-१ अङ्क। स्नातक धन होय तो पुराना तथा मैला वस्त्र नहीं पहने; लाल वस्त्र नहीं धारण करे।

◎ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१३५ श्लोक। स्नातक सूर्यको नहीं देखे। बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-३ अध्याय,-३७ अंक। स्नातकको चाहिये कि उदय अथवा अस्तके समय सूर्यको नहीं देखे।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१३७ श्लोक। अग्निमें पैर नहीं तपावे और आगको नहीं लांघे। गौतमस्मृति--९ अध्याय-१ अङ्क। एक समयमें आग और जल हाथमें नहीं लेवे। ३अङ्क। अग्निको मुखसे नहीं फूंके।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१३७ श्लोक। जलमें थूक, रुधिर, विष्ठा, मूत्र अथवा वीर्य नहीं डाले।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१३८ श्लोक। सोयेहुए मनुष्यको नहीं जगावे; रोगियोंके साथ शयन नहीं करे। बृहद्विष्णुस्मृति-६३ अध्याय-२१ अङ्क। शून्य गृहमें नहीं सोवे।

❀ गौतमस्मृति--९ अध्याय-२ और ३ अङ्क। बछड़ा गौका दूध पीताहोवे तो स्नातक किसीसे नहीं कहे तथा आपभी उसको नहीं हटावे; इन्द्रधनुषको मणिधनु कहे।

❀ गौतमस्मृति--९ अध्याय-१ अंक। स्नातकको उचित है कि अन्यका पहिराहुआ वस्त्र, फूलकी माला और जूता नहीं पहने।

टूटे खुरवाले, और पूंछहीन हाथी, घोड़े आदि वाहनोंपर नहीं चढ़े ॥ ६७ ॥ सीधे स्वभावके, शीघ्र चलने-वाले, शुभलक्षणोंसे युक्त, सुन्दर वर्ण तथा रूपवाले वाहनोंपर चढ़े; चढ़नेपर, वाहनको बेंतआदिसे नहीं मारे ❁ ॥ ६८ ॥ सूर्योदयके समयका घाम अथवा कन्याराशिके सूर्यका घाम, चिताका धूंआ और टूटा हुआ आसन परित्याग करे; अपने नख और रोमोंको नहीं काटे, दांतसे नखको नहीं उखाड़े ॥ ६९ ॥ बिना प्रयोजन मिट्टीका ढेला नहीं तोड़े, नखसे तृण नहीं तोड़े, निष्फल और आगामी कालमें दुःख देनेवाले कामोंको नहीं करे ॥ ७० ॥ ढेला फोरनेवाले, तृण तोड़नेवाले, दांतसे नख काटनेवाले, परकी निन्दा करनेवाले और अपवित्र रहनेवाले शीघ्रही नष्ट होजातेहैं ॥ ७१ ॥

न विगर्ह्यकथां कुर्याद्बहिर्माल्यं न धारयेत् । गवां च यानं पृष्ठेन सर्वथैव विगर्हितम् ॥ ७२ ॥
अद्वारेण च नातीयाद् ग्रामं वा वेश्म वा वृतम् । रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ७३ ॥
नाक्षैः क्रीडेत्कदाचित्तु स्वयं नोपानहौ हरेत् । शयनस्थो न भुञ्जीत न पाणिस्थं न चासने ॥ ७४ ॥
सर्वं च तिलसंबद्धं नाद्यादस्तमिते रवौ । न च नग्नः शयीतेह न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥ ७५ ॥
आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् । आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ७६ ॥
अचक्षुर्विषयं दुर्गं न प्रपद्येत कर्हिचित् । न विण्मूत्रमुदीक्षेत न बाहुभ्यां नदीं तरेत् ॥ ७७ ॥
अधितिष्ठेन्न केशांस्तु न भस्मास्थिकपालिकाः । न कार्पासास्थि न तुषान्दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥७८॥
न संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुक्कसैः । न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥ ७९ ॥
न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः । न स्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो न च स्नायाद्विना ततः ॥ ८२ ॥
केशग्रहान्प्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्जयेत् । शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत् ॥ ८३ ॥

शास्त्रके तथा लोकके व्यवहारमें हठ करके बात चीत नहीं करे,माला बाहर नहीं पहने ✪ गौकी पीठपर चढ़कर नहीं चले, यह सदा निन्दित है ॥ ७२ ॥ दीवार आदिसे घेरेहुए गांव अथवा गृहमें दर्वाजेको छोड़कर अन्य राहसे नहीं जावे, रातके समय वृक्षके मूलसे दूर रहे ॥ ७३ ॥ जूआ कभी नहीं खेले ✺ अपना जूता हाथमें लेकर नहीं चले, शय्यापर बैठकर, हाथमें अन्न आदि लेकर अथवा शय्यापर रखकर भोजन नहीं करे ॥ ७४ ॥ तिल संबन्धी कोई पदार्थ रातमें नहीं खावे, ⚘ नङ्गा होकर शयन नहीं करे, जूठे मुखसे कहीं नहीं जावे ॥ ७५ ॥ ओदे पांव भोजन करे; किन्तु भींगेहुए पैर सोवे नहीं; ओदे पैर खानेसे बड़ी आयु होतीहै ॥ ७६ ॥ जो जगह आंखसे नहीं देखपड़ती और जो जगह दुर्गम है वहां कभी नहीं जावे, मूत्र अथवा विष्ठाको नहीं देखे, बाहुओंसे नदीमें नहीं पैरे ▩ ॥ ७७ ॥ आयुको चाहनेवाला मनुष्य केश, राख, हाड़, खपड़े, बिनौले और भूसीपर नहीं बैठे ⚜ ॥ ७८ ॥ पतित, चाण्डाल, पुक्कस, मूर्ख, अहङ्कारी, धोबी अन्त्यज और अन्त्यावसायीके साथ निवास नहीं करे ॥ ७९ ॥ दोनों हाथोंसे अपना शिर नहीं खुजलावे, जूठे मुख रहकर माथा नहीं छूवे, विना शिर धोयेहुए स्नान नहीं करे ॥ ८२ ॥ क्रोध करके किसीकी चोटी नहीं पकड़े, किसीके शिरमें नहीं मारे, शिरसे स्नान करनेपर किसी अङ्गमें तेल नहीं लगावे ॥ ८३ ॥

अमावास्यामष्टमीञ्च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥ १२८ ॥
न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि । न वासोभिः सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये ॥ १२९ ॥
देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययोस्तथा । नाक्रामेत्कामतश्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च ॥ १३० ॥

❁ बृहद्विष्णुस्मृति—६३ अध्याय-१८ अंक । घोड़े आदि वाहनोंको विना घास और जल दियेहुए आप भोजन नहीं करे ।

✪ गौतमस्मृति-९ अध्याय-३ अङ्क । स्नातकको चाहिये कि फूलकी माला बाहर धारण नहीं करे । वसिष्ठस्मृति-१२ अध्याय-३५ अङ्क । स्नातक सोनेकी मालाको छोड़कर अन्य मालाको बाहर नहीं पहने । बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-३ अध्याय-३६ अङ्क । स्नातक माला बाहर नहीं पहने ।

✺ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१३८ श्लोक । जूआ नहीं खेले ।

⚘ बृहद्विष्णुस्मृति-६८ अध्यायके २९-३० अंक । तिलयुक्त पदार्थ, दही और सत्तू रातमें नहीं भोजन करे ।

▩ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१३५ श्लोक । मूत्र अथवा विष्ठाको नहीं देखे । गौतमस्मृति-९अध्याय-३ अंक नदीमें बाहुओंसे नहीं पैरे ।

⚜ बृहद्विष्णुस्मृति—६३ अध्यायके २४-२५ अंक । केश, भूसी, खपड़े, हाड़, राख, कोयले और बिनौलेपर नहीं बैठे । गौतमस्मृति-९ अध्याय-१ अंक । राख, केश, नख, भूसी, खपड़े और अपवित्र वस्तुपर नहीं बैठे ।

मध्यन्दिनेऽर्द्धरात्रे च श्राद्धं भुक्त्वा च सामिषम्। सन्ध्ययोरुभयोश्चैव न सेवेत चतुष्पथम् ॥ १३१॥
उद्वर्तनमपस्नानं विण्मूत्रे रक्तमेव च। श्लेष्मनिष्ठ्यूतवान्तानि नाधितिष्ठेत्तु कामतः ॥ १३२ ॥
वैरिणं नोपसेवेत सहायं चैव वैरिणः। अधार्मिकं तस्करञ्च परस्यैव च योषितम् ॥ १३३ ॥
नहीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते। यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ १३४ ॥
क्षत्रियञ्चैव सर्पञ्च ब्राह्मणं च बहुश्रुतम्। नावमन्येत वै भूष्णुः कृशानपि कदाचन ॥ १३५ ॥
नातिकल्यं नातिसायं नातिमध्ये दिने स्थिते। नाज्ञातेन समं गच्छेन्नैको न वृषलैः सह ॥ १४० ॥
हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनान्वयोऽधिकान्। रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥१४१॥
नस्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान्। न चापि पश्येदशुचिः सुस्थो ज्योतिर्गणान्दिवि १४२

स्नातक ब्राह्मणको उचित है कि अमावास्या, अष्टमी, पूर्णमासी और चतुर्दशीको ऋतुकालमें भी स्त्रीसे मैथुन नहीं करे; ब्रह्मचारी भावसे रहे ॥ १२८ ॥ भोजन करनेपर, रोगसे पीड़ित होनेपर, रातके दूसरे और तीसरे पहरमें, बहुत वस्त्र पहनकर अथवा विना जानेहुए जलाशयमें स्नान नहीं करे * ॥ १२९ ॥ देवता, गुरुजन, राजा, स्नातक ब्राह्मण, आचार्य, कपिला गौ और दीक्षित मनुष्यकी छायाको जान बूझकर नहीं लांघे ॥ १३० ॥ मध्याह्नमें, आधीरातके समय, श्राद्धमें मांस खाकर और दोनों सन्ध्याओंके समय देरतक चौमुहानीपर नहीं रहे † ॥ १३१ ॥ उबटनाकी मैलपर, स्नानके जलपर, विष्ठा, मूत्र, रुधिर, थूक खंखार और वमनपर जानकर नहीं बैठे ॥ १३२ ॥ शत्रु, शत्रुके सहायक, अधर्मी, चोर और परकी स्त्रियोंकी सेवा नहीं करे ॥ १३३ ॥ परकी स्त्रीकी सेवाके समान पुरुषकी आयुको घटानेवाला इस लोकमें कुछ नहीं है ॥ ॥ १३४ ॥ धन, गौ आदिकोंसे बढाहुआ पुरुष भी क्षत्रिय, सर्प और बहुश्रुत ब्राह्मणको असमर्थ जानकर कभी इनका अपमान नहीं करे ॥ १३५ ॥ बहुत सवेरे, सायङ्कालमें, मध्य दिनमें, विना जानेहुए मनुष्यके साथ, अकेला अथवा शूद्रके साथ कहीं नहीं जावे ‡ ॥१४० ॥ अङ्गहीन, अधिक अङ्गवाले, विद्यारहित, बूढे, कुरूप, निर्धन अथवा नीच जातिके मनुष्योंकी निन्दा नहीं करे ॥ १४१ ॥ जूठे हाथसे अथवा अशौचके हाथसे गौ, ब्राह्मण अथवा अग्निको नहीं छूवे और व्याधिसे रहित मनुष्य अपवित्र रहनेपर आकाशमें तारा आदिको नहीं देखे § ॥ १४२ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय।

परशय्यासनोद्यानगृहयानानि वर्जयेत्। अदत्तान्यग्निहीनस्य नान्नमद्यादनापदि ॥ १६० ॥

दूसरेकी, शय्या, आसन, बाग, घर और सवारीका उपभोग (उसकी आज्ञा विना) नहीं करे; विना आपत्कालके अग्निहोत्रसे हीन द्विजका अन्न नहीं भोजन करे ॥ १६० ॥

(३) अत्रिस्मृति।

स्वसुतान्नं च यो भुङ्क्ते स भुङ्क्ते पृथिवीमलम्। स्वसुता अप्रजाता च नाश्नीयात्तद्गृहे पिता ॥ ३०१ ॥
भुङ्क्ते त्वस्या मायदान्नं पूयसं नरकं व्रजेत् ॥ ३०२ ॥

जो मनुष्य अपनी पुत्रीका अन्न भोजन करताहै उसको पृथ्वीके मल खानेका दोष लगताहै; इस लिये जबतक पुत्रीको सन्तान नहीं उत्पन्न होवे तबतक पिता उसके घरका अन्न नहीं खावे जो खाताहै वह पूय नरकमें पड़ताहै ¶ ॥ ३०१–३०२ ॥

अंगुल्या दन्तकाष्ठं च प्रत्यक्षं लवणं तथा ॥ ३१३ ॥
मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांसभक्षणम्। दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधिशमीषु च ॥३१४॥
कर्पासदन्तकाष्ठं च विष्णोरपि श्रियं हरेत् ॥ ३१५ ॥

---

* शातातपस्मृतिके १३५ श्लोकमें भी स्नानके लिये ऐसाही है।

† बृहद्विष्णुस्मृति–६३ अध्याय–१९ अङ्क। चौमुहानी राहपर अवस्थान नहीं करे।

‡ बृहद्विष्णुस्मृति—६३ अध्यायके २–१७ अङ्क। स्नातकको उचित है कि अकेला, अधर्मीके साथ, शूद्रके साथ, शत्रुके सङ्ग, सवेरे, सन्ध्याकालमें, मध्याह्नमें, जलके निकट होकर, अतिशीघ्रतापूर्वक और रातमें तथा रोगी, अङ्गहीन अथवा दुर्बल वाहनपर चढ़कर या बैलके ऊपर बैठकर मार्गमें नहीं चले।

§ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय–१३५ श्लोक। अशुद्ध रहनेपर ग्रहण और ताराओंको नहीं देखे।

¶ लघुआश्वलायनस्मृति–१ आचारप्रकरण–१७५ श्लोक। ब्राह्मणको अपनी पुत्रीका अन्न कभी नहीं खाना चाहिये; जो मोहवश होकर खाताहै वह रौरव नरकमें जाताहै।

अंगुलीसे दन्तधावन, प्रत्यक्ष, (खाली) नोनका भक्षण और मिट्टी भक्षण करनेसे गोमांस भक्षण करनेका दोष लगताहै ❀ ॥ ३१३-३१४ ॥ दिनमें कैथकी छायामें निवास और रातमें दही भोजन तथा शमी वृक्षके नीचे निवास करनेपर और कपासके काठसे दतौवन करनेसे विष्णुकाभी विभव नाश हो जाताहै ❀ ॥ ३१४-११५ ॥

स्नानं दानं जपं होमं भोजनं देवतार्चनम् ॥ ३२१ ॥
व्यूढपादो न कुर्वीत स्वध्यायं पितृतर्पणम् ॥ ३२२ ॥

स्नान, दान, जप, होम, भोजन, देवपूजन, अध्ययन और पितरोंका तर्पण पांव पसारकर नहीं करना चाहिये ॥ ३२१-३२२ ॥

(४ क) बृहद्विष्णुस्मृति-६८ अध्याय ।

चन्द्रार्कोपरागे नाश्नीयात् ॥ १ ॥ स्नात्वा मुक्तयोरश्नीयात् ॥ २ ॥ अमुक्तयोरस्तङ्गतयोर्दृष्ट्वा स्नात्वा चापरेऽह्नि ॥ ३ ॥ नैको मिष्टम् ॥ २६ ॥ नोच्छिष्टश्च घृतमादद्यात् ॥ ३६ ॥

चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहणके समय भोजन नहीं करना चाहिये; मोक्ष होनेपर स्नान करके भोजन करना चाहिये, यदि ग्रहण लगेहुए सूर्य वा चन्द्रमा अस्त होजावें तो दूसरे दिन उदय होनेपर स्नान करके खाना चाहिये ॥ १-३ ॥ मीठी वस्तु अकेला नहीं खावे ॥ २६ ॥ भोजन करते समय जूठे अन्नमें घी नहीं डाले ॥ ३६ ॥

(७) अङ्गिरास्मृति ।

अग्न्यागारे गवां गोष्ठे देवब्राह्मणसन्निधौ ॥ ६० ॥
आहारे जपकाले च पादुकानां विसर्जनम् । पादुकासनमारूढो गेहात्पंच गृहं व्रजेत् ॥ ६१ ॥
छेदयेत्तस्य पादौ तु धार्मिकः पृथिवीपतिः । अग्निहोत्री तपस्वी च श्रोत्रियो वेदपारगः ॥ ६२ ॥
एते वै पादुकैर्यान्ति शेषान्दण्डेन ताडयेत् ॥ ६३ ॥

अग्निशालामें, गोशालामें, देवता अथवा ब्राह्मणके निकट तथा भोजन या जप करतेहुए खडाऊ नहीं पहनना चाहिये ❀ ॥ ६०-६१ ॥ धार्मिक राजाको उचित है कि जो साधारणलोग खडाऊंपर चढ़कर अपने घरसे पांच घरतक जावे उसका पैर कटवादेवे; क्योंकि अग्निहोत्री, तपस्वी, श्रोत्रिय और वेदपारगको ही खडाऊंपर चलनेका अधिकार है ॥ ६१-६३ ॥

(१०) संवर्तस्मृति ।

चत्वार्येतानि कर्माणि सन्ध्यायां वर्जयेद्बुधः ॥ ९७ ॥
आहारं मैथुनं निद्रां तथा संपाठमेव च । आहाराज्जायते व्याधी रौद्रगर्भश्च मैथुनात् ॥ ९८ ॥
निद्रातो जायतेऽलक्ष्मीः संपाठादायुषः क्षयः ॥ ९९ ॥

बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि भोजन, मैथुन, शयन और पाठ; ये ४ काम सन्ध्याके समयमें नहीं करे; क्योंकि उस समय भोजन करनेसे रोग होताहै, मैथुन करनेसे भयङ्कर गर्भ होताहै, शयन करनेसे दरिद्रता आतीहै और पाठ करनेसे आयु क्षीण होतीहै ॥ ९७-९९ ॥

(११) कात्यायनस्मृति-१० खण्ड ।

मासद्वयं श्रावणादि सर्वा नद्यो रजस्वलाः । तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः ॥ ५ ॥
धनुःसहस्राण्यष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते । न ता नदी शब्दवहा गर्तास्ताः परिकीर्तिताः ॥ ६ ॥
उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च । चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते ॥ ७ ॥
वेदाश्छन्दांसि सर्वाणि ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः । जलार्थिनोऽथ पितरो मरीच्याद्यास्तथर्षयः ॥ ८ ॥
उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्नानार्थं ब्रह्मवादिनः । पिपासूननुगच्छन्ति सन्तुष्टाः स्वशरीरिणः ॥ ९ ॥
समागमस्तु यत्रैषां तत्र हत्यादयो मलाः । नूनं सर्वे क्षयं यान्ति किमुतैकं नदीरजः ॥ १० ॥

❀ शातातपस्मृति-७३ श्लोकमें भी ऐसा है ।

❀ लघुशङ्खस्मृति-६८० श्लोक । दिनमें कैथकी छायामें, रातमें दही और शमीके वृक्षमें और सप्तमी तिथिमें आंवराके फलमें सदा दरिद्रता वास करतीहै । लिखितस्मृति-९१-श्लोक । दिनमें, कैथकी छायामें रातमें दही और सत्तूमें और सदा आंवराके फलमें दरिद्रता बसतीहै ।

❀ आपस्तंबस्मृति-९ अध्यायके २०-२१ श्लोक । अग्निशालामें, गोशालामें ब्राह्मणके निकट, पढ़तेहुए और भोजन करतेहुए खड़ाऊं नहीं पहने । शातातपस्मृति-१२६ श्लोक । अग्निशालामें, गोशालामें देवताके समीप, भोजन करतेहुए और जप करतेहुए खड़ाऊं नहीं पहनना चाहिये ।

सावन और भादो इन दो महीनेमें सब नदियां रजस्वला (मलिनजलवाली) रहतीहैं; समुद्रमें जानेवाली नदियोंको छोड़कर अन्य नदियोंमें दो मास स्नान नहीं करना चाहिये ॥ ५ ॥ आठ हजार धनुष, (८ कोस) से कम बहनेवाली नदीको नदी नहीं जानना चाहिये; उसको गर्त कहतेहैं ॥ ६ ॥ उपाकर्ममें उत्सर्गमें, प्रेतके निमित्त स्नान करनेमें, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समयमें सावन और भादोमें किसी नदीमें स्नान करनेसे रजस्वलाका दोष नहीं लगताहै ॥७॥ जिस समय ब्रह्मवादी लोग उपाकर्म और उत्सर्गके स्नानके लिये जातेहैं उस समय संपूर्ण वेद, छन्द, ब्रह्मादिक देवता, पितरगण और मरीचि आदि ऋषि जलकांक्षी होकर सूक्ष्मशरीर धारण कर उनके पीछे पीछे चलतेहैं ॥ ८—९ ॥ जहां वेदादिकोंका समागम है वहां इत्यादि दोष नाश होजातेहैं तो नदीके रजका नाश क्यों नहीं होगा ❀ ॥ १० ॥

(१५) शङ्खस्मृति-१७ अध्याय।

तस्करश्वापदाकीर्णे बहुव्यालमृगे वने ॥ ६३ ॥
न व्रतं ब्राह्मणः कुर्यात्प्राणबाधभयात्सदा। सर्वत्र जीवनं रक्षेज्जीवन्पापमपोहति ॥ ६४ ॥

ब्राह्मणको उचित है कि जिस वनमें चोर, भेड़िया सांप और मृगका भय होवे अपने प्राणोंके डरसे उस वनमें व्रतका अनुष्ठान नहीं करे; क्योंकि जीवनकी सर्वत्र रक्षा करनी चाहिये; जीताहुआ मनुष्य पापको दूर करताहै ॥ ६३-६४ ॥

(१६) लिखितस्मृति।

आर्द्रवासास्तु यत्कुर्याद्बहिर्जानु च यत्कृतम्। सर्वं तन्निष्फलं कुर्याज्जपं होमं प्रतिग्रहम् ॥ ६१ ॥

भींगेहुए वस्त्र पहनकर अथवा जंघासे बाहर हाथ करके जप, होम तथा प्रतिग्रह करनेसे उनके फल निष्फल होजातेहैं ▩ ॥ ६१ ॥

(१८) गौतमस्मृति-९ अध्याय।

उद्धृतेनोदकेनाचामेन्न शूद्राशुच्येकपाण्यावर्जितेन न वाय्वग्निविप्रादित्यापोदेवता गाश्च प्रतिपश्यन्वा मूत्रपुरीषामेध्यान्युदस्येन्नैता देवताः प्रति पादौ प्रसारयेन्न पर्णलोष्टाश्मभिर्मूत्रपुरीषापकर्षणं कुर्यात् न म्लेच्छाशुच्यधार्मिकैः सह सम्भाषेत सम्भाष्य वा पुण्यकृतो मनसा ध्यायेद्व ब्राह्मणेन वा सह संभाषेत ॥ १ ॥

स्नातकको उचित है कि जलाशयसे अलग निकालेहुए जलसे आचमन करे,शूद्र अथवा अपवित्र मनुष्यके लायेहुए अथवा एक हाथसे निकालेहुए जलसे आचमन नहीं करे; पवन, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, जलाशय, देवता और गौके सन्मुख विष्ठा,मूत्र अथवा थूक आदि अपवित्र वस्तु परित्याग नहीं करे; देवता आदिकी ओर पैर नहीं पसारे, पत्ते,ढेले अथवा पत्थरसे विष्ठा मूत्रको नहीं हटावे,म्लेच्छ, अपवित्र और पापी मनुष्यसे नहीं बोले; यदि बोले तो मनमें पुण्यात्मा मनुष्योंका ध्यान करे अथवा ब्राह्मणके साथ सम्भाषण करलेवे ॥ १ ॥

पालाशमासनं पादुके दन्तधावनमिति वर्जयेत् ॥ ३ ॥ सोपानत्कश्चाशनासनशयनाभिवादननमस्कारान्वर्जयेत् ॥ ४ ॥

पालाशकी लकड़ीका आसन, खड़ाऊ और दतौन नहीं बनावे ※ ॥ ३ ॥ जूता पहनकर आसनपर नहीं बैठे तथा भोजन, शयन, स्तुति अथवा नमस्कार नहीं करे ॥ ४ ॥

(१९) शातातपस्मृति।

पुष्पाणि क्षारवस्त्राणि गन्धमाल्यानुलेपनम्। उपवासे न शुध्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम् ॥ ७५ ॥

फूल, क्षारवस्त्र, गन्ध, माला, अनुलेपन, दन्तधावन और अञ्जन उपवास व्रत करनेवालोंके लिये शुद्ध नहीं है ॥ ७५ ॥

(१९ ख) वृद्धशातातपस्मृति।

दन्तकाष्ठममावस्यां चतुर्दश्यां च मैथुनम्। हन्ति सप्त कुलान्कृत्वा तैलाभ्यङ्गं तथा व्रती ॥ ५६ ॥

❀ गोभिलस्मृति–प्रथमप्रपाठकके १४१–१४६ श्लोकमें ठीक ऐसाही है।

▩ लघुशङ्खस्मृति—७० श्लोक। विना अङ्गोछेके केवल धोती पहनकर अथवा जंघासे बाहर हाथ करके जप, होम तथा क्रिया करनेसे वे सब राक्षसी कर्म कहे जातेहैं।

※ वसिष्ठस्मृति–१२ अध्यायके ३२ अङ्कमें और बौधायनस्मृति—२ प्रश्न–३ अध्यायके ३० अङ्कमें ऐसाही है।

अमावास्यामें दन्तधावन और चतुर्दशीमें मैथुन करनेसे और व्रतके समय शरीरमें तेल लगानेसे ७ पीढ़ीका नाश होताहै ॥ ५६ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति-६अध्याय ।

नेष्टकाभिः फलानि पातयेत् ॥ ३५ ॥ न फलेन फलं न कल्केन कुहको भवेत् ॥ ३६ ॥ न म्लेच्छभाषां शिक्षेत ॥ ३७ ॥

ईटोंसे फलोंको नहीं गिरावे ॥ ३५ ॥ फलसे फलको नहीं गिरावे,: दम्भ या पापमें तत्पर होकर धर्मसे शून्य नहीं होवे ॥ ३६ ॥ म्लेच्छ भाषाको नहीं सीखे ॥ ३७ ॥

(२२ क) दूसरी देवलस्मृति ।

चाण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतिकाग्निश्च कर्हिचित् । पतिताग्निश्चिताग्निश्च न शिष्टग्रहणोचितः ॥

चाण्डाल, सूतिका, पतित अथवा चिताकी आग या अपवित्र आग शिष्ट लोगोंके ग्रहण करनेयोग्य नहीं है ।

विवाहप्रकरण १२.

आठप्रकारका विवाह १.

(१) मनुस्मृति-३ अध्याय ।

चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हिताहितान् । अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधत ॥ २० ॥
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः । गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २१ ॥

चारों वर्णोके इसलोक और परलोकमें हित तथा अहित करनेवाले ८ प्रकारके विवाहोंको मैं संक्षेपसे कहताहूं ॥ २० ॥ १ ब्राह्म, २ दैव, ३ आर्ष, ४ प्राजापत्य, ५ आसुर, ६ गान्धर्व, ७ राक्षस और ८ वां सब विवाहोंसे अधम पैशाच विवाह है ॥ २१ ॥

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतशीलवते स्वयम् । आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्त्तितः॥२७॥
यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते । अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥ २८ ॥
एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः । कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ २९ ॥
सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च । कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥३०॥
ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः । कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥३१॥
इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च । गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः ॥३२॥
हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशंतीं रुदतीं गृहात् । प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥३३॥
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति । स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥३४ ॥

(१) जब विद्यावान् और शीलवान् वरको बुलाकर उत्तम वस्त्र और भूषणोंसे अलंकृत करके कन्या दान कीजातीहै तब उसको ब्राह्मविवाह कहतेहैं ॥ २७ ॥ (२) जब यज्ञके समय यज्ञ करानेवाले ऋत्विक्को अलंकृत करके यजमान कन्या दान करदेताहै तब वह दैवविवाह कहा जाताहै ॥ २८ ॥ (३) जब किसी धर्म कार्यके लिये वरसे १ अथवा २ जोड़े गौ बैल लेकर उसको विधिपूर्वक कन्या दीजातीहै तब उसको आर्ष विवाह कहतेहैं ॥ २९ ॥ (४) जब ऐसा कहके कि वर कन्या तुम दोनों धर्माचरण करो, भूषण आदिसे पूजित करके वरको कन्या दीजातीहै तब वह प्राजापत्य विवाह कहाजाताहैं ॥ ३० ॥ (५) कन्याके पिता आदि सम्बन्धीको अथवा कन्याको यथाशक्ति धन देकर जब कोई इच्छापूर्वक कन्या ग्रहण करताहै तब उसको आसुर विवाह कहतेहैं ॥ ३१ ॥ (६) कन्या और वरका परस्पर प्रीतिसे जो मिलन हो जाताहै उसको गान्धर्व विवाह कहतेहैं ॥ ३२ ॥ (७) जब कन्याके पक्षके लोगोंको मार, काट तथा गृहको भेदकर रोती और पुकारती हुई कन्याको हरण करके विवाह कियाजाताहै तब उसको राक्षसे विवाह कहतेहैं ॥ ३३ ॥ (८) जिस विवाहमें सोतीहुई अथवा मदपानसे मतवाली या उन्मत्त कन्याको एकान्तमें मैथुनपूर्वक ग्रहण करताहै उसको सब विवाहोंसे अधम आठवां पैशाच विवाह कहतेहैं ❀ ॥ ३४ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्यायके ५८-६१ श्लोक; शङ्खस्मृति-४ अध्यायके-४-६ श्लोक; गौतमस्मृति-४ अध्यायके-३ अङ्क; बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—४ अध्याय, ३-११ श्लोक; बौधयनस्मृति-१ प्रश्न-११ अध्यायके २—९ अङ्क और नारदस्मृति—१२ विवादपदके ४०-४४ श्लोकमें भी यही ८ प्रकारका विवाह है; याज्ञवल्क्यस्मृति और शङ्खस्मृतिमें लिखाहै कि जब मांगनेवाले वरको कन्या दीजातीहै तब वह प्राजापत्य विवाह कहलाताहै और जब छलसे कन्या ग्रहण कीजातीहै तब वह पैशाच विवाह कहाजाताहै ।

दश पूर्वान्परान्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम्। ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृन्मोचयेदेनसः पितॄन्॥ ३७॥
दैवोढाजः सुतश्चैव सप्त सप्त परावरान्। आर्षोढाजः सुतस्त्रींस्त्रीन्षट्षट् कायोढजः सुतः॥ ३८॥
ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः। ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्मताः॥ ३९॥
रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः। पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः॥ ४०॥
इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिन। जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः॥ ४१॥
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिंद्या भवति प्रजाः। निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निंद्यान्विवर्जयेत्॥ ४२॥

ब्राह्मविवाहकी स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र पहिलेकी १० पीढ़ी और पीछेकी १० पीढ़ीको तथा अपनेको; इन २१ पीढ़ियोंको पवित्र करताहै और पितरोंका उद्धार कर देताहै॥ ३७॥ दैव विवाहकी स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र पहिलेकी ७ पीढ़ी, पीछेकी ७ पीढ़ी और अपनेको तारताहै; आर्षविवाहकी स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र पहिलेकी ३ पीढ़ी और पीछेकी ३ पीढ़ीको तथा अपनेको पवित्र करताहै और प्राजापत्य विवाहकी स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र पहिलेकी ६ पीढ़ी और पीछेकी ६ पीढ़ी तथा अपनेको तारताहै ❀॥ ३८॥ ब्राह्म आदि ४ प्रकारके विवाहकी स्त्रियोंसे उत्पन्न पुत्र ब्रह्मतेजयुक्त, साधुसम्मत, रूपवान्, सत्त्वगुणी, धनवान्, यशस्वी, इच्छित भोगोंसे युक्त और धर्मात्मा होतेहैं और एकसौ वर्षतक जीतेहैं॥ ३९–४०॥ इनसे भिन्न (आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच) विवाहकी स्त्रियोंसे उत्पन्नहुए पुत्र क्रूर कर्म करनेवाले, मिथ्या बोलनेवाले और वेद तथा धर्मके द्वेषी होतेहैं ♧॥ ४१॥ अनिन्दित विवाहकी स्त्रीकी सन्तान अनिन्दित और निन्दित विवाहकी स्त्रीकी सन्तान निन्दित होतीहै इसलिये निन्दित विवाह नहीं करना चाहिये॥ ४२॥

(३) अत्रिस्मृति)

क्रयक्रीता च या कन्या पत्नी सा न विधीयते। तस्यां जाताः सुतास्तेषां पितृपिण्डं न विद्यते३८७॥

मूल्य देकर विवाहीहुई कन्या पुरुषकी धर्मपत्नी नहीं है;उससे उत्पन्नहुए पुत्रोंको पितरोंके पिण्ड देनेका अधिकार नहीं है॥ ३८७॥

(१०) संवर्तस्मृति।

अलंकृत्य तु यः कन्यां वराय सदृशाय वै। ब्राह्मेण तु विवाहेन दद्यात्तां तु सुपूजिताम्॥ ६१॥
स कन्यायाः प्रदानेन श्रेयो विन्दति पुष्कलम्। साधुवादं स वै सद्भिः कीर्तिं प्राप्नोति पुष्कलाम्॥६२॥

जो मनुष्य ब्राह्मविवाहके विधानसे कन्याको अलंकृत तथा पूजित करके उसके समान वरको कन्यादान करताहै; उसका बड़ा कल्याण होताहै, सज्जन लोग उसकी प्रशंसा करतेहैं और उसकी बड़ी कीर्ति फैलतीहै॥ ६१–६२॥

(१४) व्यासस्मृति–२ अध्याय।

ब्राह्मोद्वाहविधानेन तदभावे परो विधिः॥ ५॥

ब्राह्मविवाहके विधानसे (ब्राह्मणको) विवाह करना चाहिये; इसके अभावमें अन्य प्रकारके विवाहकी विधि कहीगईहै॥ ५॥

(२५) बौधायनस्मृति–११प्रश्न-११ अध्याय।

क्रीता द्रव्यण या नारी सा न पत्नी विधीयते। सा न दैवे न सा पित्र्ये दासीं तां काश्यपोऽब्रवीत्॥२०॥

द्रव्य देकर मोल लीहुई स्त्री पत्नी नहीं कहातीहै, वह देवकार्य अथवा पितृकार्य करनेयोग्य नहीं होतीहै; महर्षि कश्यप कहतेहैं कि वह दासी है॥ २०॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्यायके ५८–६१ श्लोकमें ऐसाही है; किन्तु गौतमस्मृति—४ अध्यायके १० अङ्कमें लिखाहै कि आर्ष विवाहकी स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र ३ पीढ़ीतक, दैव विवाहकी स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र १० पीढ़ीतक, प्राजापत्य विवाहकी स्त्रीसे उत्पन्नः पुत्र १० पीढीतक और ब्राह्मविवाहकी स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र पहिलेकी १० पीढी और पीछेकी १० पीढीको तथा अपनेको पवित्र करताहै।

♧ गौतमस्मृति—४ अध्याय–४ अंक। ८ प्रकारके विवाहोंमेंसे पहलेके ४ (ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य) विवाह धर्मानुकूल हैं. कोई-आचार्य ६ को अर्थात् गान्धर्व और आसुर विवाहको भी धर्मविवाह कहताहै। नारदस्मृति—१२ विवादपद, ४४–४५ श्लोक। ब्राह्म आदि ४ प्रकारके विवाह (ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष और दैवविवाह) धर्मविवाह कहे गयेहैं; गान्धर्वविवाह साधारण है और अन्य ३ प्रकारके विवाह (राक्षस, आसुर और पैशाच विवाह) अधर्म विवाह हैं।

(२६) नारदस्मृति-१२ विवादपद ।

कन्यायां दत्तशुल्कायां ज्यायांश्चेद्वर आव्रजेत् । धर्मार्थकामसंयुक्तं वाच्यं तत्रानृतं भवेत् ॥ ३० ॥

जो पुरुष द्रव्य देकर कन्या ग्रहण करताहै उसका अर्थ, धर्म, काम और वचन व्यर्थ है ॥ ३० ॥

वरका धर्म २.

(१) मनुस्मृति-२ अध्याय ।

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि । अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥ २३८ ॥

श्रद्धावान् मनुष्यको उचित है कि नीच वर्णसे भी कल्याण दायिनी विद्या सीखे, अन्त्यज जातिसे भी परम धर्मकी शिक्षा लेवे और कलङ्कित कुलसे भी स्त्रीरत्न ग्रहण करे ❀ ॥२३८ ॥

३ अध्याय ।

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि । उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ ४ ॥

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ५ ॥

महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः । स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् । क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ७ ॥

नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् । नालोमिकां नातिलोमां न वाचटां न पिङ्गलाम् ८

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ ९ ॥

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् । तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥ १० ॥

द्विजको उचित है कि गुरुकी आज्ञासे ब्रह्मचर्य व्रत समाप्तिका समावर्तन स्नान करके शुभलक्षणोंसे युक्त अपने वर्णकी स्त्रीसे विवाह करे ॥ ४ ॥ जो कन्या वरकी माताकी सपिण्डा और पिताकी सगोत्रा नहीं है वही द्विजातियोंकी भार्या होने योग्य है ॥ ५॥ नीचे लिखे हुए १० कुल यदि गौ, बकरी, भेड़, धन और धान्यसे युक्त होंय तो भी उनकी कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये ॥ ६ ॥ (१) क्रियाहीन, (२) केवल कन्या ही उत्पन्न होनेवाला, (३) वेदविद्यासे रहित, (४) अधिक रोएंवाला, (५) बवासीर रोगवाला, (६) क्षयी रोगसे युक्त, (७) मन्दाग्नि रोग युक्त, (८) मिरगी रोग युक्त, (९) श्वेतकुष्ठसे युक्त और (१०) गलत्कुष्ठसे युक्त ॥ ७ ॥ भूरे केशवाली, अधिक अङ्गवाली, रोगिणी, रोमरहित, बहुत रोएंवाली, बहुत बोलनेवाली, पीले आंखवाली, तथा नक्षत्र, वृक्ष, नदी, म्लेच्छ, पहाड़, पक्षी, सर्प, दासी आदि सेवा सूचक अथवा भयानक नामवाली कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये ✤ ॥ ८—९ ॥ शुद्ध अङ्गोंसे युक्त, प्रिय नामवाली, हंस और हाथीके समान गमन करनेवाली तथा सूक्ष्म लोम बारीक केश, छोटे दांत और कोमल अङ्गवाली कन्यासे विवाह करना चाहिये ⊙ ॥ १० ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय—२६१ श्लोक । जो मनुष्य ब्रह्मघाती आदि महापातकियोंके साथ एक वर्षतक रहतेहैं वे उन्हींके समान होजाते हैं, किन्तु उनकी कन्याओंको उपवास कराके और अपना वस्त्र आदि देकर विवाहलेवेगा तो कुछ दोष नहीं होगा ।

✤ शातातपस्मृतिके ३४–३५ श्लोक मनुके ८–९ श्लोकके समान हैं ।

⊙ याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्यायके ५२–५४ श्लोक । द्विजको चाहिये कि ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त करके लक्षणोंसे युक्त, विना विवाहीहुई, असपिण्ड, अपनेसे छोटी अवस्थाकी, रोगरहिता, भ्रातावाली, अपने गोत्र और प्रवरसे बाहरकी, मातासे ५ पीढ़ी और पितासे ७ पीढ़ी अन्तरवाली और १० पीढियोंसे विख्यातनामा श्रोत्रियोंके महान् कुलकी कन्यासे अपना विवाह करे; कुष्ठ आदि सञ्चारी रोग तथा दोष युक्त बड़े कुलकी भी कन्याको नहीं विवाहे । व्यासस्मृति–२ अध्यायके १—४ श्लोकमें भी ऐसा है और लिखाहै कि जिस कन्याका पिता मूल्य नहीं चाहता होवे, जो अपनी जातिकी होवे, जो नीचे लटकने वाले (लंहगा आदि) वस्त्र पहनती होवे और सदाचारसे युक्त होवे उस कन्यासे शास्त्रकी विधिसे विवाह करे । गौतमस्मृति–४ अध्यायके १–२ अङ्क और वसिष्ठस्मृति–८ अध्यायके १–२ अंक । गृहस्थको उचित है कि अपने तुल्य, विना विवाही हुई, अपनेसे छोटी अवस्थावाली, अन्य प्रवरकी, पिताके बन्धुओंसे ७ पीढ़ी और माताके बन्धुओंसे ५ पीढ़ीके अन्तर वाली कन्यासे अपना विवाह करे । शङ्खस्मृति–४ अध्यायका १ श्लोक और नारदस्मृति–१२ विवादपदका ७ श्लोक । असमान प्रवर और अन्य गोत्रकी अथवा मातासे ५ पीढ़ी और पितासे ७ पीढी अन्तरवाली कन्यासे विधिपूर्वक विवाह करना चाहिये । शातातपस्मृति–३२श्लोक । अपने गोत्र और समान प्रवरकी कन्यासे द्विज विवाह नहीं करे;कदाचित् ऐसी कन्यासे विवाह होजाय तो अतिकृच्छ्र–

यस्यास्तु न भवेद् भ्राता न विज्ञायेत वा पिता। नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया ॥ ११॥

जिस कन्याका भाई नहीं होवे और जिसके पिताको नहीं जानता होय; "पुत्रिका", और धर्मकी शंकासे बुद्धिमान् पुरुष उससे विवाह नहीं करे ॥ ११ ॥

दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते। परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ १७१ ॥

परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते। सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥ १७२ ॥

जब बड़े भाईके क्वारे रहतेहुए छोटा भाई विवाह अग्निहोत्र ग्रहण करताहै तब छोटा भाई परिवेत्ता और बड़ा भाई परिवित्ति कहलाताहै ॥ १७१ ॥ परिवित्ति, परिवेत्ता वह कन्या, कन्यादान करनेवाला और विवाह करानेवाला पुरोहित; ये पांचो नरकमें जातेहैं ॥ १७२ ॥

(११) कात्यायनस्मृति-६ खण्ड।

दाराधिगमनाधाने यः कुर्यादग्रजाग्निमः। परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ २ ॥

परिवित्तिपरिवेत्तारौ नरकं गच्छतो ध्रुवम्। अपि चीर्णप्रायश्चित्तौ पादोनफलभागिनौ ॥ ३॥

जब छोटा भाई अपने बड़े भाईसे पहिले विवाह और अग्निहोत्र ग्रहण करताहै तब वह परिवेत्ता और बड़ा भाई परिवित्ति कहलाताहै ॥ २ ॥ ये दोनों निश्चय करके नरकमें जातेहैं; चीर्ण प्रायश्चित करने परभी तीन चौथाई फलके भागी होतेहैं ॥ ३ ॥

देशान्तरस्थक्लीबैकवृषणानसहोदरान्। वेश्यातिसक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः ॥ ४ ॥

जडमूकान्धबधिरकुब्जवामनकुण्डकान्। अतिवृद्धानभार्यांश्च कृषिसक्तान्नृपस्य च ॥ ५ ॥

धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतः कारिणस्तथा। कुलटोन्मत्तचोरांश्च परिविन्दन्न दुष्यति ॥ ६ ॥

धनवार्धुषिकं राजसेवकं कर्मकस्तथा। प्रोषितं च प्रतीक्षेत वर्षत्रयमपि त्वरन् ॥ ७ ॥

प्रोषितं यद्यशृण्वानमब्दादूर्ध्वं समाचरेत्। आगते तु पुनस्तस्मिन्पादं तच्छुद्धये चरेत् ॥ ८ ॥

यदि बड़ाभाई परदेशमें बसाहो, नपुंसक अथवा एक अण्डकोशवाला होवे, अपना सहोदर भाई नहीं हो, वेश्यामें आसक्त हो, पतित, शूद्रतुल्य, अतिरोगी, जड़, गूंगा, अन्धा, बहिरा, कुबड़ा, बौना, कुष्ठ, अतिवृद्ध, मृतभार्य, राजाकी खेती करनेवाला, धन बढ़ानेमें आसक्त अर्थात् वार्द्धुषिक, यथेच्छाचारी, अतिविषयी उन्मत्त अथवा चोर होवे तो उससे पहिले विवाहकरने अथवा अग्निहोत्र लेनेसे छोटा भाई दोषभागी नहीं होता ॥ ४-६ ॥ यदि बड़ा भाई धन बढानेके लिये, राजाकी सेवाके लिये या अन्य कामके लिये परदेशमें होवे तो छोटा भाई ३ वर्षतक उसकी बाट देखे ॥ ७ ॥ यदि परदेशमें उसका पता नहीं होवे तो एक वर्षतक उसकी बाट देखकर विवाहादि करलेवे किन्तु उसके आजाने पर अपनी शुद्धिके लिये चौथाई प्रायश्चित्त करे ॥ ८ ॥

(३) अत्रिस्मृति।

कुब्जवामनखञ्जेषु गद्गदेषु जडेषु च। जात्यन्धे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥ १०३ ॥

क्लीबे देशान्तरस्थे च पतिते व्रजितेऽपि वा। योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥ १०४ ॥

कनीयान् गुणवांश्चैव ज्येष्ठश्चेन्निर्गुणी भवेत्। पूर्वं पाणिं गृहीत्वा च गृह्याग्निं धारयेद्बुधः ॥ २५५ ॥

–व्रत करे। लघुआश्वलायनस्मृति–१५ विवाहप्रकरण–२ श्लोक। विद्वान् मनुष्यको चाहिये कि अच्छे कुलमें उत्पन्न, सुन्दर मुखवाली, सुन्दर अङ्गवाली, सुन्दरवस्त्र धारण करनेवाली मनोहर, सुन्दर नेत्रवाली और भाग्यवती कन्यासे विवाह करे। मानवगृह्यसूत्र–१ पुरुष–७ खण्ड,–८ अंक। पुरुषसम्भोगसे बची हुई, अपने वर्णकी, भिन्न प्रवरवाली, अपनेसे छोटी अवस्थावाली और विना स्तनवाली कन्यासे विवाह करना चाहिये।

शातातपस्मृति–३६ श्लोक और लिखितस्मृति–५१ श्लोकमें ऐसाही है। गौतमस्मृति–२९ अध्याय–३ अंक। विना पुत्रवाला पुरुष जब अग्नि और प्रजापतिको आहुति देकर ऐसी प्रतिज्ञाके साथ कन्यादान करताहै कि इसका पुत्र हमारे पुत्रके स्थानपर होकर हमारा श्राद्धादि कर्म करेगा तब वह कन्या "पुत्रिका" कहलाती है; किसी आचार्यका मत है कि मनमें भी ऐसी इच्छा करके कन्यादान करनेसे ऐसी कन्या 'पुत्रिका' बन जातीहै; पुत्रिका होजानेकी शंकासे विना भाईवाली कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये। मानवगृह्यसूत्र–१ पुरुष–७ खण्ड ८ अंक। जिसका भाई होवे उस कन्यासे विवाह करना चाहिये।

शातातपस्मृतिके ३९–४० श्लोकमें भी ऐसा है। पाराशरस्मृति–४ अध्यायके २५ श्लोक तथा बौधायनस्मृति २ प्रश्न १ अध्यायके ४८ श्लोकमें यहांके १७२ श्लोकके समान है।

गोभिलस्मृति प्रथम प्रपाठकके ७०–७१ श्लोकमें ऐसाही है।

गोभिलस्मृति–प्रथम प्रपाठकके ७२–७६ श्लोकमें ऐसाही है।

ज्येष्ठश्चेद्यदि निर्दोषो गृह्णात्यग्निं यवीयकः। नित्यंनित्यं भवेत्तस्य ब्रह्महत्या न संशयः ॥ २५६ ॥

यदि बड़ाभाई कुबड़ा, बौना, लंगडा, तोतला, जड़, जन्मका अन्धा, बहिरा, गूंगा, क्लीब (नपुंसक), परदेशमें बसा हुआ, पतित, संन्यासी, अथवा योगशास्त्रमें रत होगा तो उसको छोड़कर विवाह करनेसे छोटे भाईको दोष नहीं लगेगा ❀ ॥ १०३–१०४ ॥ जब छोटा भाई गुणवान् और बड़ाभाई गुणहीन होवे तो छोटा भाई बड़े भाईसे पहिले अपना विवाह करके अग्निहोत्र ग्रहण करलेवे; किन्तु बड़े भाईके निर्दोष रहनेपर ऐसा करनेसे उसको प्रतिदिन ब्रह्महत्याका दोष लगेगा ॥२५५–२५६ ॥

(१३) पाराशरस्मृति–४ अध्याय ।

कुब्जवामनपण्ढेषु गद्गदेषु जडेषु च । जात्यन्धे बधिरे मूके न दोषः परिविन्दतः ॥ २७ ॥
पितृव्यपुत्रः सापत्नः परनारीसुतस्तथा । दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ॥ २८ ॥
ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव कारयेत् । अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शङ्खस्य वचनं यथा ॥ २९ ॥

यदि बड़ा भाई कुबड़ा, बौना, नपुंसक, तोतला, जड़, जन्मका अन्धा, बहिरा, गूंगा, चचेरा भाई, सौतेली माताका पुत्र अथवा पिताके वीर्यसे परकी स्त्रीमें उत्पन्न हुआ पुत्र होय तो उसको छोड़कर विवाह तथा अग्निहोत्र ग्रहण करनेसे छोटे भाईको दोष नहीं लगेगा ॥ २७–२८ ॥ बड़े भाईके रहनेपर छोटा भाई अग्निहोत्र नहीं ग्रहणकरे; शङ्खके बचनानुसार उसकी आज्ञासे ग्रहण करे ॥ २९ ॥

(१४) व्यासस्मृति–२ अध्याय ।

पाटितोऽयं द्विजाः पूर्वमेकदहः स्वयम्भुवा ॥१२ ॥
पतयोऽर्द्धेन चार्द्धेन पत्न्योऽभूवन्निति श्रुतिः । यावन्न विन्दते जायां तावदर्द्धो भवेत्पुमान् ॥ १३॥

वेदमें लिखा है कि पूर्वकालमें ब्रह्माने एकही शरीरको दो भाग करके आधेको पुरुष और आधेको स्त्री बनाया, इसलिये पुरुष जबतक अपना विवाह नहीं करताहै तबतक वह आधाही रहताहै ॥ १२–१३॥

कन्याके पिता तथा कन्याका धर्म और विवाहकी अवस्था ३.

(१) मनुस्मृति–३ अध्याय ।

न कन्यायाः पिता विद्वान्गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि। गृह्णञ्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥५१॥
आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत् । अल्पोऽप्येवं महान्वापि विक्रयस्तावदेव सः ॥ ५३ ॥
यासां नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः। अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यं च केवलम् ॥ ५४ ॥

कन्याके पिताको उचित है कि कन्यादानके लिये वरसे थोड़ाभी धन नहीं लेवे; क्योंकि लोभवश होकर धन लेनेसे वह सन्तान बेंचनेवाला हो जाताहै ◎ ॥ ५१ ॥ कोई कोईः कहतेहैं कि आर्ष विवाहमे वरसे एक गौ और एक बैल शुल्क लेना चाहिये सो असत्य है क्योंकि कन्याके बदलेमें थोड़ा अथवा अधिक जो कुछ लिया जाताहै उससे ही कन्याका बेंचना सिद्ध होताहै ॥ ५३ ॥ वरपक्षके लोग प्रसन्न होकर कन्याको जो द्रव्य देतेहैं, वह कन्याका मूल्य नहीं कहा जासकता है क्योंकि वह धन केवल कन्यापर दया करके उसका उपहार दिया जाताहै वह द्रव्य कन्याका पिता नहीं लेताहै ॥ ५४ ॥

९ अध्याय ।

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते । सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् ॥ ४७ ॥
न दत्त्वा कस्य चित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः । दत्त्वा पुनः प्रयच्छन् हि प्राप्नोति पुरुषानृतम् ॥७१ ॥
उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च । अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥ ८८ ॥
काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि । न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ ८९ ॥

❀ लिखितस्मृतिके ७५–७६ श्लोकमें ऐसाही है ।

◎ मनुस्मृति–९ अध्याय–९८ श्लोक । शूद्रभी मूल्य लेकर कन्या नहीं देवे, क्यों कि कन्याका मूल्य लेनेवाला कन्याका गुप्त विक्रय करनेवाला सिद्ध होताहै । आपस्तम्बस्मृति–९ अध्यायके २५–२६ श्लोक । जो मनुष्य कुछ भी दाम लेकर अपनी कन्याको बेंचता है वह बहुत वर्षोतक रौरव नरकमें रहकर विष्ठा मूत्र खाताहै । बौधायनस्मृति१–प्रश्न–११ अध्यायके २१–२२श्लोक । जो मनुष्य लोभसे मोहित होकर कन्याको बचताहै वह आत्माको बेंचनेवाला और महापातकी होजाता है और मरनेपर घोर नरकमें गिरताहै तथा अपने ७ पुश्तका नाश करताहै ।

धनका विभाग, कन्यादान और वस्तुदान; ये ३ काम सज्जन लोग एकही:बार करतेहैं अर्थात् दुवारा नहीं करते ✽ ॥ ४७ ॥ बुद्धिमान् लोग एकको कन्या देनेका वचन देकर दूसरेको कन्या नहीं देतेहैं, क्योंकि ऐसा करनेसे उसको झुठाईका दोष लगताहै॥७१॥कन्याके पिताका धर्म है कि श्रेष्ठ रूपवान् तथा कन्याके योग्य वर मिलजानेपर कन्या विवाहने योग्य नहीं होनेपर भी उस वरके साथ उस कन्याका विधिपूर्वक विवाह कर देवे; किन्तु कन्याके ऋतुमती होने तथा जन्म पर्यन्त कुमारी रहनेपरभी उसका विवाह गुण हीन वरके साथ नहीं करे ॥ ८८-८९ ॥

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती। ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ ९० ॥
अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम्। नैनः किञ्चिदवाप्नोति न च यं साऽधिगच्छति ॥ ९१ ॥
अलंकारं नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयंवरा। मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत् ॥९२ ॥

कन्याको उचित है कि ऋतुमती होनेके पश्चात् ३ वर्षतक विवाहकी बाट देखकर योग्य वरसे स्वयं अपना विवाह करलेवे; पिता आदिके नहीं विवाह कर देनेपर स्वयं विवाह करलेनेसे उसको तथा उसके पतिको कुछ दोष नहीं होगा; किन्तु इस प्रकारसे स्वयं विवाह कर लेनेवाली कन्या माता, पिता और भाईके भूषणादि लेजानेपर चोर समझी जावेगी ◎ ॥ ९०-९२ ॥

पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन्। स हि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिरोधनात् ॥ ९३ ॥

कन्याके ऋतुमती होजानेपर उससे विवाह करनेवाला वर कन्याके पिताको उसका मूल्य (यदि ठहरा होवे तो) नहीं देवे; क्योंकि सन्तानका उत्पन्न होना रोकनेसे कन्याके ऊपरसे पिताका स्वामित्व नष्ट होजाताहै ॥ ९३ ॥

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्। त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ ९४ ॥

३० वर्षका पुरुष १२ वर्षकी कन्यासे अथवा २४ वर्षका पुरुष ८ वर्षकी कन्यासे अपना विवाह करे; शीघ्रता करनेसे धर्ममें हानि होतीहै ☸ ॥ ९४ ॥

कन्याया दत्तशुल्कायां म्रियते यदि शुल्कदः। देवराय प्रदातव्या यदि कन्याऽनुमन्यते ॥ ९७ ॥

यदि कोई पुरुष अपने विवाहके लिये कन्याका दाम देकर विवाहसे पहिले मरजावे तो कन्याके सहमत होनेपर कन्याके देवर अर्थात् मृत पुरुषके भाईके साथ उसका विवाह करदेना चाहिये ॥ ९७ ॥

एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः। यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीयते ॥ ९९ ॥

श्रेष्ठ लोगोंने वचनसे एक एक वरको कन्या देकर दूसरे वरको कभी नहीं दियाथा और न वे लोग इस समयमें देतेहैं ॥ ९९ ॥

(३) अत्रिस्मृति।

स्वसुतान्नं च यो भुङ्क्ते स भुङ्क्ते पृथिवीमलम्। स्वसुता अप्रजाता च नाश्नीयात्तद्गृहे पिता ॥ ३०१ ॥
भुङ्क्ते त्वस्या माययान्नं पूयसं नरकं व्रजेत् ॥ ३०२ ॥

जो मनुष्य अपनी पुत्रीका अन्न भोजन करताहै उसको पृथ्वीके मल खानेका दोष लगताहै; इस लिये जबतक पुत्रीको सन्तान नहीं उत्पन्न होवे तबतक पिता उसके घरका अन्न नहीं खावे; क्योंकि जो खाताहै वह पूय नरकमें पड़ता है ✠ ॥ ३०१-३०२ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति--१ अध्याय।

एतैरेव गुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियो वरः। यत्नात्परीक्षितः पुंस्त्वे युवा धीमाञ्जनप्रियः ॥ ५९ ॥

✽ नारदस्मृति-१२ विवादपदके २८ श्लोकमें ऐसाही है और २९ श्लोकमें है कि ब्राह्म विवाह आदि ५ प्रकारके विवाहोंके लिये यही विधि कही गईहै; और आसुर विवाह आदि ३ प्रकारके विवाहोंमें गुणकी अपेक्षासे कन्यादान होताहै।

◎ वसिष्ठस्मृति-१७ अध्यायके ५९ अंकमें भी ऐसा है। बौधायनस्मृति ४-प्रश्न-१ अध्यायके १५ श्लोकमें ऐसाही है और है कि यदि तुल्य वर नहीं मिले तो गुणहीनसे विवाह कर लेवे। गौतमस्मृति-१८ अध्याय-१ अंक। कन्याको चाहिये कि यदि ३ बार रजस्वला होनेपरभी उसका कोई विवाह नहीं करदेवे तो अपना भूषण आदि अलंकार घरमें छोड़कर सत्पात्र पतिसे वह स्वयं अपना विवाह करलेवे।

☸ आगे पाराशरस्मृतिमें देखिये।

✠ लघुआश्वलायनस्मृति-१५ विवाहप्रकरण--८० श्लोक। ब्राह्मण अपनी विवाही हुई कन्याका अन्न कभी नहीं खावे; क्योंकि जो मोहवश होकर खाताहै वह नरकमें जाताहै।

पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त, अपनी जातिके, वेदपाठी, यत्नपूर्वक पुरुषत्वमें परीक्षा कियेहुए, युवा, बुद्धिमान् और सबके प्रिय वरसे कन्याका विवाह करना चाहिये ॥ ५५ ॥

अप्रयच्छन्समाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ । गम्यन्त्वभावे दातॄणां कन्या कुर्यात्स्वयं वरम् ॥ ६४ ॥

जो मनुष्य उचित समयमें कन्याका विवाह नहीं कर देताहै उसको कन्याके प्रति ऋतुमें भ्रूण-हत्याका पाप लगता है; कन्याको चाहिये कि यदि उचित समयमें कोई उसका विवाह नहीं करे तो वह योग्य वरसे स्वयं अपना विवाह करलेवे ॥ ६४ ॥

सकृत्प्रदीयते कन्या हरंस्तां चोरदण्डभाक् । दत्तामपि हरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत् ॥ ६५ ॥

कन्या एकही बार दीजातीहै; जो मनुष्य कन्या देकर उसको हरलेताहै वह चोरके समान दण्ड पानेके योग्य होताहै; किन्तु यदि पहिले वरसे उत्तम वर मिलजावे तो दी हुई कन्या भी हरलेना चाहिये ॥६५॥

(१०) संवर्त्तस्मृति ।

ज्योतिष्टोमातिरात्राणां शतं शतगुणीकृतम् । प्राप्नोति पुरुषो दत्त्वा होममन्त्रैश्च संस्कृताम् ॥ ६३॥
तां दत्त्वा तु पिता कन्यां भूषणाच्छादनाशनैः । पूजयन्स्वर्गमाप्नोति नित्यमुत्सववृद्धिषु ॥ ६४ ॥

होमके मन्त्रोंसे संस्कारको प्राप्तहुई कन्याको दान करनेवाला मनुष्य १० हजार ज्योतिष्टोम और अतिरात्र यज्ञ करनेका फल पाताहै ॥ ६३ ॥ जो मनुष्य उत्सव अथवा पुत्रजन्म आदिके समय भूषण, वस्त्र आदिसे अपनी कन्याका सम्मान करताहै वह मरनेपर स्वर्गमें जाताहै ॥ ६४ ॥

(१३) पाराशरस्मृति ७ अध्याय ।

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा तु रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६ ॥
प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति । मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरोनिशम्॥७॥
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च । त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ८ ॥
यस्तां समुद्वहेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः । असम्भाष्यो ह्यपांक्तेयः स विप्रो वृषलीपतिः ॥ ९ ॥
यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः । स भैक्ष्यभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्विशुध्यति ॥ १० ॥

८ वर्षकी पुत्री गौरी, ९ वर्षकी रोहिणी और १० वर्षकी कन्या कहलाती है, उसके बाद वह रजस्वला होतीहै ॥ ६ ॥ जो मनुष्य १२ वर्षकी होजानेपरभी अपनी कन्याका विवाह नहीं करताहै उसके पितर प्रतिमासमें उस कन्याके रजको पीते हैं ॥ ७ ॥ विना विवाही हुई रजस्वला कन्याको देखनेसे उसके पिता, माता और बड़ाभाई, ये तीनों नरकमें जातेहैं ॥ ८ ॥ जो ब्राह्मण मदसे मोहित होकर ऐसी कन्यासे विवाह करताहै वह संभाषण करने और पंक्तिमें बैठाने योग्य नहीं है; उसको वृषलीपति जानना चाहिये ॥ ९ ॥ जो द्विज एक रातभी वृषलीसे मैथुन करताहै वह ३ वर्ष तक भिक्षाका अन्न भोजन और जप करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १० ॥

व्यासस्मृति—२ अध्याय–५श्लोक । जो मनुष्य अवस्था, विद्या और वंश आदिमें समान होवे उसीके घर कन्याका विवाह करना चाहिये । लघुआश्वलायनस्मृति–१५ विवाह प्रकरण–३ श्लोक । स्नातक,सुशील, उत्तम कुलमें उत्पन्न और वेद जाननेवाले वरको कन्या देना चाहिये । नारदस्मृति–१२विवादपद । कन्यावालेको उचित है कि वरके पुरुषत्वकी परीक्षा अपने आदमियोंसे करावे; पुरुषत्व युक्त वर कन्या पानेके योग्य होताहै ॥ ८ ॥ जिसका वीर्य जलमें डूबजावे और मूत्र शब्द और फेन युक्त होवे उसको पुरुषत्वयुक्त और इससे विपरीत होवे तो उसको नपुंसक जाने ॥१०॥ सन्तान उत्पन्न करनेके लिये स्त्रियोंकी उत्पत्ति हुईहै; स्त्रियां क्षेत्र और पुरुष बीज बोनेवाले हैं, इस लिये वीर्यवाले पुरुषको ही स्त्री देना चाहिये ॥ १९॥ बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र ४ अध्यायके४ श्लोकमें नारदस्मृतिके१० श्लोकके समान है । आगे बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्रका वृत्तान्त देखिये ।

व्यासस्मृति–२ अध्यायके ६–७ श्लोकमें प्रायः ऐसा है ।

यह बात सप्तपदीसे प्रथम अथवा वाग्दानसे दीहुई कन्याके विषयमें जानना चाहिये ।

संवर्तस्मृति ६६ श्लोक और बृहद्यमस्मृति–३ अध्यायके २१ श्लोकमें पाराशरस्मृतिके ६ श्लोकके समान; बृहद्यमस्मृति–३ अध्यायके२० श्लोकमें७ श्लोकके समान; संवर्तस्मृतिके६७ श्लोक और बृहद्यमस्मृति–३ अध्यायके २२ श्लोकमें ८ श्लोकके समान और बृहद्यमस्मृति–३ अध्यायके १९ श्लोकमें पाराशरके ९ श्लोकके समान है । संवर्त्तस्मृतिके ६८ श्लोकमें है कि रजस्वला होनेसे पहिलेही कन्याका विवाह करदेना चाहिये ८ वर्षकी कन्याका विवाह उत्तम है । बृहद्यमस्मृतिके–३ अध्यायके १८ श्लोकमें है कि जब विना विवाहीहुई कन्या पिताके घर रजस्वला होतीहै तब उसके पिताको भ्रूणहत्याका पाप लगताहै और वह कन्या वृषली कहलातीहै । प्रजापतिस्मृतिके ८५–८६ श्लोकमें है कि जब विना विवाही कन्या पिताके घरमें रजस्वला होतीहै तब वह वृषली कहीजातीहै और उसका पति वृषलीपति कहलाताहै [पीछे मनुस्मृतिका ९४ श्लोक देखिये] ।

(१३ क) बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र--४ अध्याय।

स्त्रीणामाजीवशर्मार्थं वंशशुद्ध्यै प्रयत्नवान्। वरं हि वरयेद्धीमाञ्जात्यादिगुणसंयुतम् ॥ १७ ॥
जातिर्विद्या वयः शक्तिरारोग्यं बहुपक्षता। शीलं च वित्तसम्पत्तिरष्टावेते वरे गुणाः ॥ १८ ॥
जातिर्विद्या च रूपं च शीलं चैव नवं वयः। अरोगित्वं विशेषेण पुंस्त्वे सत्यपि लक्षयेत् ॥ १९ ॥
जातिं रूपं च शीलं च वयो नवमरोगिताम्। सावरत्वं विशेषेण संलक्ष्य वरमाश्रयेत् ॥ २० ॥
सज्जातिं रूपवित्तं च तथाग्रवयसं दृढम्। सन्तोषजननं स्त्रीणां प्रज्ञावानाश्रयेद्वरम् ॥ २१ ॥

बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि कन्याके जीवन पर्यन्त सुखके लिये और वंशकी शुद्धिके लिये यत्न-पूर्वक जाति आदि गुणोंसे युक्त वरको कन्या देवे ॥ १७ ॥ जाति, विद्या, अवस्था, शक्ति, आरोग्य, बहुपक्षता, शीलता और धन सम्पत्ति, ये ८ गुण वरके हैं ॥ १८ ॥ विशेष करके पुरुषत्व रहने परभी वरकी जाति, विद्या, रूप, शील, नई जवानी और आरोग्य देखना चाहिये ॥ १९ ॥ जाति, रूप, शील, नई जवानी आरोग्य और सावरत्व विशेष रूपसे देखकर वरको कन्या देवे ॥ २० ॥ बुद्धिमान् मनुष्य उत्तम जाति, रूप, धन तथा स्त्रीको सन्तोष करनेवाले युवा वरको कन्या दान करे ❀ ॥ २१ ॥

दूरस्थानामविद्यानां मुमुक्षूणां गरीयसाम्। शूराणां निर्धनानां च न देया कन्यका बुधैः ॥ २६ ॥
नातिदूरे न चासन्ने अत्याढ्ये चातिदुर्बले। वृत्तिहीने च मूर्खे च षट्सु कन्या न दीयते ॥ २७ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य दूर रहनेवाले, मूर्ख, विरक्त, अतिमहान्, बहुत लडाके तथा दरिद्र वरको अपनी कन्या नहीं देवे ॥ २६ ॥ अत्यन्त दूर रहनेवाले अति.निकट रहनेवाले; अत्यन्त धनवान्, बहुत दुर्बल जीविकाहीन और मूर्ख; इन ६ को कन्या नहीं देना चाहिये ॥ २७ ॥

(१५) शङ्खस्मृति–१५ अध्याय।

पितृवेश्मनि या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता। तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचिदपि शाम्यति ॥ ८ ॥

यदि विना विवाही हुई कन्या अपने पिताके घरमें रजस्वला होजावे तो उसके मरनेका अशौच, कभी नहीं छूटताहै ॥ ८ ॥

विवाहमें धोखा देनेवालेका दण्ड ४.

(१) मनुस्मृति–८ अध्याय।

अन्यां चेद्दर्शयित्वान्या वोढुः कन्या प्रदीयते। उभे ते एकशुल्केन वहेदित्यब्रवीन्मनुः ॥ २०४ ॥
नोन्मत्ताया न कुष्ठिन्या न च या स्पृष्टमैथुना। पूर्वं दोषानभिख्याप्य प्रदाता दण्डमर्हति ॥ २०५ ॥
यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति। तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान् ॥ २२४॥

मनुने कहाहै कि जब कन्या बेंचनेवाला मनुष्य वरको उत्तम कन्या दिखाकर विवाहके समय निकृष्ट कन्या देगा तब उसको एकही दाममें दोनों कन्याओंका विवाह उस वरके साथ करदेना पड़ेगा ॥ २०४ ॥ जो मनुष्य वरसे पहिले नहीं जनाकर उन्मत्ता, कोढ़िनी अथवा मैथुनसंसर्गवाली कन्या वरको देगा वह दण्डके योग्य होगा ॥ २०५ ॥ जो मनुष्य दोषयुक्त कन्याका दोष छिपाकर उसका विवाह वरके साथ करदेवे राजा उससे ९६ पण दण्ड लेवे ❀❀ ॥ २२४ ॥

९ अध्याय।

विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम्। व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम् ॥७२॥
यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्यायोपपादयेत्। तस्य तद्वितथं कुर्यात्कन्यादातुर्दुरात्मनः ॥ ७३ ॥

वरको उचित है कि अलक्षण दोषवाली, रोगिणी, मैथुनसंसर्गवाली अथवा ठगहारी करके दीहुई कन्याको विधिपूर्वक ग्रहण करकेभी त्याग देवे ॥ ७२ ॥ जो दुरात्मा मनुष्य दोषयुक्त कन्याके दोषोंके विना कहे कन्यादान करे उसका दान निष्फल करदेवे ॥ ७३ ॥

❀ मानवगृह्यसूत्र—१ पुरुष–७ खण्ड, ६–७ अङ्क। कन्याके पिता आदि वरकी ५ दशा देखें–१ धन, २ रूप, ३ विद्या, ४ बुद्धि और ५ कुटुम्ब; इनमेंसे एकके अभावमें धनको छोड़कर ४ गुणवाले वरसे, दूसरे गुणके अभावमें रूपको छोड़कर और तीसरे गुणके अभावमें विद्याको छोडकर बुद्धिमान् और कुटुम्बवाले वरसे कन्याका विवाह करे (पीछे याज्ञवल्क्यस्मृति देखो)।

❀❀ नारदस्मृति—१२ विवादपदके ३३–३४ श्लोक। जो मनुष्य दोषयुक्त कन्याका दोष छिपाकर उसका विवाह वरके साथ करदेवे राजा उसपर २५० पण दण्ड करे।

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय ।

अनाख्याय ददद्दोषं दण्ड उत्तमसाहसम् । अदुष्टान्तु त्यजन्दण्ड्यो दूषयंस्तु मृषा शतम् ॥ ६६ ॥

कन्याके दोषको छिपाकर कन्यादान करनेवालेपर और निर्दोष कन्याके त्यागनेवाले वरपर १ हजार पण और कन्याके ऊपर झूठा दोष लगाने वालेपर १ सौ पण दण्ड होना चाहिये ॥ ६६ ॥

२ अध्याय ।

दत्त्वा कन्यां हरन्दण्ड्यो व्ययं दद्याच्च सोदयम् । मृतायां दत्तमादद्यात्परिशोध्योभयव्ययम् ॥१५०॥

जो मनुष्य किसीको कन्या देकर हरलेवे तो राजा उससे दण्ड लेवे और व्याजके सहित वरका खर्च उससे दिलावे; यदि वाग्दत्ता कन्या विवाहसे पहिले मरजाय तो अपने दियेहुए धनमेंसे अपना और कन्यावालेका खर्च काटकरके वर अपना धन लौटालेवे ॥ १५० ॥

(१४) व्यासस्मृति–२ अध्याय ।

तुभ्यं दास्याम्यहमिति ग्रहीष्यामीति यस्तयोः । कृत्वा समयमन्योन्यं भजते न स दण्डभाक् ॥८॥
त्यजन्नदुष्टां दण्ड्यः स्याद्दूषयंश्चाप्यदूषिताम् ॥ ९ ॥

कन्याका पिता यदि वरसे कन्या देनेको निश्चय करके उसको कन्या नहीं देवेगा अथवा वर यदि कन्याके पितासे कन्या लेनेको कहकर कन्यासे विवाह नहीं करेगा तो दण्डका भागी होगा ॥ ८ ॥ अदूषित कन्याको त्यागनेवाले और निर्दोष कन्याको दूषण लगानेवाले दण्डके योग्य होंगे ॥ ९ ॥

(२६) नारदस्मृति–१२ विवादपद ।

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति ॥ ३१ ॥
दोषे तु सति नागः स्यादन्योन्यं त्यजतोस्तयोः । दत्त्वा न्यायेन यः कन्यां वराय न ददाति ताम् ३२
अदुष्टश्चेद्वरो राज्ञा स दण्डयस्तत्र चौरवत् ॥ ३३ ॥

यदि कन्याके दोषको छिपाकर वरको कन्या दी जावे तो वर कन्याको त्याग देवे और वरके दोषको छिपाकर कन्यासे विवाह किया जावे तो कन्या वरको त्यागदेवे इसमें कोई अपराधी न होगा ॥ ॥ ३१–३२ ॥ जो मनुष्य विधिपूर्वक कन्या देकर उस योग्य वरको कन्या नहीं देवे उसको राजा चोरके समान दण्डित करे ॥ ३२–३३॥

विवाहका विधान और उसकी समाप्ति ५.

(१) मनुस्मृति–३ अध्याय ।

अद्भिरेव द्विजाग्र्याणां कन्यादानं विशिष्यते । इतरेषां तु वर्णानामितरेतरकाम्यया ॥ ३५ ॥

ब्राह्मणोंके लिये जलसे सङ्कल्प करके कन्यादान करना उत्तम है; किन्तु क्षत्रिय आदि अन्य वर्णोंके लिये उनकी इच्छानुसार बचनसेभी कन्यादान होताहै ॥ ३५ ॥

पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते । असवर्णास्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाहकर्मणि ॥ ४३ ॥

अपने वर्णकी कन्याकेही पाणिग्रहणकी व्यवस्था है; अन्य वर्णकी कन्याके विवाहमें नीचे लिखीहुई विधि जानना चाहिये ॥ ४३ ॥

शरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया । वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ॥ ४४ ॥

श्रेष्ठ जातिके पुरुषसे विवाह होनेके समय क्षत्रिया कन्या वरके हाथका बाणका छोर ग्रहण करे, वैश्या कन्या वरके हाथमें स्थित पैनेका छोर पकड़े और शूद्रा कन्या वरके वस्त्रकी दसी ग्रहण करे ❀ ॥ ४४ ॥

८ अध्याय ।

पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः । नाकन्यासु क्वचिन्नॄणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः॥२२६॥

पाणिग्रहणसम्बन्धी मन्त्र कन्याकेही विषयमें हैं क्षतयोनि कन्याओंके विषयमें नहीं क्योंकि वे धर्म क्रियाको नाश करनेवाली हैं ॥ २२६ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय–६२ श्लोक और शङ्खस्मृति–४ अध्याय–१४ श्लोक । अपने वर्णकी कन्यासे विवाह होय तो पाणिग्रहण करे, किन्तु अपनेसे बड़े वर्णके पुरुषसे विवाह होनेके समय क्षत्रिया वरके हाथका बाण ग्रहण करे और वैश्या वरके हाथमें स्थित पनैको छोर पकड़े ।

पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम्। तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ॥ २२७ ॥

विद्वानोंको जानना चाहिये कि पाणिग्रहणके मन्त्रोंसे कन्याका पाणिग्रहण होजाना भार्यात्व (स्त्रीपना) कारण है; मन्त्रपूर्वक सप्तपदी कर्म होजानेपर भार्यात्वकी समाप्ति होजातीहै ❀ ॥ २२७ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय।

पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा। कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥ ६३ ॥

पिता, पिताके नहीं रहनेपर दादा; उसके नहीं रहनेपर भाई, भाईके नहीं रहनेपर कुलके अन्यपुरुष और उसके भी नहीं रहनेपर माता कन्यादान करे; किन्तु इनमें जो अपने धर्ममें स्थित नहीं होवे वह नहीं करे ❀ ॥ ६३ ॥

(८) यमस्मृति।

स्वगोत्राद्भ्रश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे। स्वामिगोत्रेण कर्तव्यास्तस्याः पिण्डोदकक्रियाः॥७८॥
विवाहे चैव संवृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु। एकत्वं सा व्रजेद्भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके ॥ ८६ ॥

विवाहके समय सप्तपदी कर्म होजानेपर कन्या अपने पिताके गोत्रसे अलग होजाती है; उसके बाद उसके पतिकें गोत्रसे ही उसका पिण्डदान और जलदान करना चाहिये॥७८॥विवाह होजानेपर चौथे दिनकी रात्रिमें अर्थात् चतुर्थीके समय कन्या पिण्ड, गोत्र और सूतकमें पतिकी समानताको प्राप्त हो जाती है ❀ ॥८६ ॥

(९) आपस्तम्बस्मृति–७ अध्याय।

विवाहे वितते यज्ञे संस्कारे च कृते तथा। रजस्वला भवेत्कन्या संस्कारस्तु कथं भवेत् ॥ ९ ॥
स्नापयित्वा तदा कन्यामन्यैर्वस्त्रैरलंकृताम्। पुनर्मध्याहुतिं हुत्वा शेषं कर्म समाचरेत् ॥ १० ॥

यदि विवाहके कर्म आरम्भ होकर कुछ संस्कार होजानेपर कन्या रजस्वला होजावे तो उसको स्नान कराके और अन्य वस्त्र पहनाकर फिर आहुति देके विवाहका बाकी कर्म करना चाहिये ❀ ॥ ९–१० ॥

(१३) पाराशरस्मृति–३ अध्याय।

विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके। पूर्वसंकल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति ॥ २९ ॥

विवाह, उत्सव अथवा यज्ञकार्यके बीचमें यदि मृत्यु अथवा जन्मका अशौच होजावे तो पहिलेका सङ्कल्पित द्रव्य देनेमें दोष नहीं लगता ❀ ॥ २९ ॥

❀ लघुआश्वलायनस्मृति–१५ विवाहप्रकरण–६० श्लोक। विवाहके समय जबतक सप्तपदी नहीं होतीहै अर्थात् कन्याको ७ पग चलानेका विधान नहीं होताहै तबतक विवाह सिद्ध नहीं समझा जाता, इसलिये उसी समय होम करके पीछे सायङ्कालकी उपासना करना चाहिये। मनुस्मृति–५ अध्याय–१५२ श्लोक। विवाहके समय जो स्वस्त्ययन और प्रजापतिका होम कियाजाताहै वह मङ्गलके लिये है; विवाहका वाग्दान होनाही पतिके स्वामी होनेका कारण है।

❀ व्यासस्मृति–२ अध्यायके ६ श्लोकमें विशेष यह है कि भाईके नहीं रहनेपर चाचा और चाचाके नहीं रहनेपर कुलका अन्य पुरुष कन्यादान करे; यदि कन्यादान करनेवाला कोई नहीं होय तो कन्या स्वयं अपना पति बनालेवे। नारदस्मृति–१२ विवादपदके २०—२१ श्लोक। पिता स्वयं कन्यादान करे, पिताकी आज्ञासे भाई करे; पिताके नहीं रहनेपर दादा, दादाके अभावमें मामा; उसके नहीं रहनेपर कुलका मनुष्य, उसके नहीं रहनेपर बान्धवके और बान्धवके नहीं रहनेपर माता, यदि अपने धर्ममें स्थित होय तो कन्यादान करे; यदि माता अपने धर्ममें नहीं होय तो कन्या स्वयं अपना पति बनालेवे।

❀ लिखितस्मृतिके २५—२६–२७ श्लोकमें ऐसाही है।

❀ बृहद्यमस्मृति–३ अध्यायके ५६–५९ श्लोक। विवाह अथवा यज्ञ आरम्भ हो जानेपर यदि स्त्री रजस्वला होजावे तो उसको बहुतसे जलमें स्नान कराके और शुक्लवस्त्रसे अलंकृत करके आपोहिष्ठा अथवा आयंगौ मन्त्रसे मार्जन कराना चाहिये; उसके बाद गायत्री और व्याहृति मन्त्रसे घीकी १०८ आहुति देकर फिर कर्म आरम्भ करना चाहिये।

❀ अत्रिस्मृति–९६ श्लोक, बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–६ अध्याय–४५ श्लोक, वृद्धविष्णुस्मृति–२२ अध्याय ५२–अङ्क, उशनस्मृति ६ अध्याय ५८ श्लोक, आपस्तम्बस्मृति–१० अध्यायके १५–१६ श्लोक, दक्षस्मृति–६ अध्यायके १९–२०–श्लोक और लघुआश्वलायनस्मृति–१५ विवाहप्रकरणके ७२ श्लोकमें है कि विवाहके काम आरम्भ होजानेपर कोई अशौच नहीं लगताहै। अत्रिस्मृति–२४७श्लोक देवयात्रा,विवाह, यज्ञ। और उत्सवोंके समय स्पर्शका दोष नहीं होताहै क्रतुस्मृति–अशौचमें भी पूर्वसंकल्पित द्रव्य देनेमें दोष नहीं होता (२)।

(२६) नारदस्मृति १२--विवादपद ।

स्त्रीपुंसयोस्तु संबन्धे वरणं प्राग्विधीयते । वरणाद् ग्रहणं पाणेः संस्कारो हि द्विलक्षणः ॥ २ ॥
तयोरनियतं प्रोक्तं वरणं दोषदर्शनात् । पाणिग्रहणमन्त्राश्च नियतं दारलक्षणम् ॥ ३ ॥

स्त्री और पुरुषके सम्बन्धमें पहिले वरण अर्थात् वरण रक्षाका विधान करके पीछे पाणिग्रहण होताहै; इस प्रकार विवाहरूपी संस्कार दो प्रकारका है ॥ २ ॥ इनमेंसे वरण होनेपर दोष देखपड़नेसे वरण असिद्ध होजाताहै; कन्या वरकी भार्या नहीं होती; किन्तु पाणिग्रहणके मन्त्रोंसे कन्याका पाणिग्रहण होनेपर स्त्रीपनका निश्चय होताहै ॥ ३ ॥

(२४) लघुआश्वलायनस्मृति-१५ विवाहप्रकरण ।

आचार्यस्नातकादीनां मधुपर्कार्चनं चरेत् । स्वगृह्योक्तविधानेन विवाहे च महामखे ॥ ४ ॥

विवाहके समय और महायज्ञमें अपने गृह्यसूत्रके अनुसार आचार्य और स्नातक आदिका पूजन मधुपर्कसे करे ॥ ४ ॥

वरयेच्चतुरो विप्रान्कन्यकावरणाय च । कन्यासमीपमागत्य विप्रगोत्रपुरस्सरम् ॥ १६ ॥
नाम ब्रूयुर्वरस्याथ प्रपितामहपूर्वकम् । प्रपौत्रपौत्रपुत्रेषु चतुर्थ्यन्तं वराय च ॥ १७ ॥
गोत्रे चैवाथ संबन्धे षष्ठी स्याद्वरकन्ययोः । वरे चतुर्थी कन्यायां विभक्तिर्द्वितीयैव हि ॥ १८ ॥
श्रावयेयुः प्रसुग्मन्तासूक्तं कन्यां कनिक्रदत् । देवीमृचं पठन्तश्च नयेयुस्ते हि वै वरम् ॥ १९ ॥
प्राङ्मुखी कन्यका तिष्ठेद्वरः प्रत्यङ्मुखस्तथा । वस्त्रान्तरं तयोः कृत्वा मध्ये तु वरकन्ययोः ॥२० ॥
परस्परमुखं पश्यन्मुहूर्तं चाक्षतान्क्षिपेत् । वरमूर्ध्नीति कन्यादौ कन्यामूर्ध्नि वरस्तथा ॥ २१ ॥
गाथामिमां पठेयुस्ते ब्राह्मणा ऋक्च वा इदम् । क्षिपेयुस्तेऽक्षतान्विप्राः शिरसोरुभयोरपि ॥ २२ ॥
तिष्ठेत्प्रत्यङ्मुखी कन्या प्राङ्मुखः स्याद्वरस्तथा । मन्त्रेणानृक्षराश्चैव भवेत्स्थानविपर्ययः ॥ २३ ॥
अक्षतारोपणं कुर्यात्पूर्ववच्चैव कन्यका । श्रियो मे कन्यका ब्रूयात्प्रजायै स्याद्वरस्तथा ॥ २४ ॥
त्रिवारमेवं कृत्वा तु कन्यां दद्यात्ततः पिता । शिष्टाचारानुसारेण वदन्त्येके महर्षयः ॥ २५ ॥
लक्ष्मीरूपामिमां कन्यां प्रददेद्विष्णुरूपिणे । तुभ्यं चोदकपूर्वां तां पितॄणां तारणाय च ॥ २६ ॥
वरगोत्रं समुच्चार्य कन्यायाश्चैव पूर्ववत् । एषा धर्मार्थकामेषु न त्याज्या स्वीकृता ह्यतः ॥ २७ ॥
दाता वदेदिमं तन्त्रं कन्या तारयतु स्वयम् । अक्षतारोपणं कार्यं मन्त्र उक्तो महर्षिभिः ॥ २८ ॥
इहापि पूर्ववत्कुर्यादक्षतारोपणं सकृत् । यज्ञो मे कन्यका मन्त्रः पशवो मे वरस्य च ॥ २९ ॥
ईशानकोणतः सूत्रे वेष्टयेत्पश्चवा तयोः । परित्वेत्यादिभिर्मन्त्रैः कुर्यात्तच्च चतुर्गुणम् ॥ ३० ॥
रक्षार्थं दक्षिणे हस्ते बध्नीयात्कङ्कणे तयोः । विश्वेतासाविकं पुंसः कन्यायास्तद्ववी तथा ॥ ३१ ॥
कन्यायै वाससी दद्याद्युवमित्यनया वरः । तयोरुभे ते बध्नीयान्नीललोहितमित्यृचा ॥ ३२॥
बध्नीयात्कन्यकाकण्ठे सूत्रं मणिसमन्वितम् । माङ्गल्यतन्तुनानेन मन्त्रेण स्यात्सदा सती ॥ ३३ ॥
पुण्याहं स्वस्ति वृद्धिं च त्रिस्त्रिर्ब्रूयाद्वरस्य च । अनाधृष्टमुभौ मन्त्रावापोह्यानः प्रजां तथा ॥ ३४ ॥
नमस्कुर्यात्ततो गौरीं सदा मङ्गलदायिनीम् । तेन सा निर्मला लोके भवेत्सौभाग्यदायिनी ॥ ३५ ॥
दम्पती तु व्रजेयातां होमार्थं चैव वेदिकाम् । वरस्य दक्षिणे भागे तां वधूमुपवेशयेत् ॥ ३६ ॥
आघारान्तं ततः कुर्यादुपलेपादि पूर्ववत् । सूत्रोक्तविधिना कर्म सर्वं कुर्यात्तु चैव हि ॥ ३७ ॥
अग्न आयूषि तिस्रोत्र त्वमर्यमाप्रजापते । हुत्वा त्वाज्याहुतीरेवं सूत्रोक्तं पाणिपीडनम् ॥ ३८ ॥
वराद्भिः प्रोक्षयेल्लाजञ्छूर्पस्थानाभिघारयेत् । अभिघार्याञ्जलिं तस्याः पूरयित्वाऽभिघारयेत् ॥ ३९ ॥
अञ्जलीन्पूरयेद्धुत्वा लाजान्बध्वा विवाहिके । विच्छिन्नवह्निसन्धाने पतिर्लाजान्द्विरावपेत् ॥ ४० ॥
हुत्वा लाजांस्तथा होमं हुत्वा कुर्यात्प्रदक्षिणम् । सोदकुम्भस्य चैवाग्नेरश्मानमवरोहयेत् ॥ ४१ ॥
विधिरेष विवाहस्य प्रत्याहुतिप्रदक्षिणम् । मन्त्रोऽर्यमणं वरुणं पूषण लाजहोमके ॥ ४२ ॥
अवशिष्टान्वरो लाजाञ्छूर्पकोणेन चैव हि । अभ्यात्मं जुहुयात्तूष्णीमिति यज्ञविदां मतम् ॥ ४३ ॥
यदि बद्धे शिखे स्यातां कन्यकावरयोरपि । प्रत्यृचं शिखे बद्ध्वा तूष्णीं वरस्य मोचयेत् ॥ ४४ ॥
इषइत्यादिभिर्मन्त्रैरीशान्यां चालयेद्वधूम् । गत्वा पदानि सप्ताथ संयोज्य शिरसी च ते ॥ ४५ ॥
कुम्भस्य सलिलं सिञ्चेदुभयोः शिरसोः स्वयम् । सौभाग्यजननीं देवीं स्मृत्वा दाक्षायणीं शिवाम्॥४६॥

ततः स्विष्टकृदादि स्याद्धोमशेषं समापयेत् । अहःशेषं च तिष्ठेतां मौनेनैव तु दम्पती ॥ ४७ ॥
ध्रुवं चारुन्धतीं दृष्ट्वा विसृजेतामुभौ वचः । पतिपुत्रवती चाशीस्तयोर्दद्याद्यथोचितम् ॥ ४८ ॥
अनेन विधिनोत्पन्नो विवाहाग्निरिति स्मृतः । स एव स्यादजस्राख्य इति यज्ञविदो विदुः ॥ ४९ ॥
दिवा वा यदि वा रात्रौ कन्यादानं विधीयते । तदानीमेव होमन्तु कुर्याद्वैवाहिकं च हि ॥ ५० ॥
वध्वा सह गृहं गच्छेदादायाग्निं तमग्रतः । सूत्रोक्तविधिना चेह प्रियामूढां प्रवेशयेत् ॥ ५१ ॥
प्रतिष्ठाप्यानलं कुर्याच्चक्षुष्यन्तश्च पूर्ववत् । ऋग्भिश्च जुहुयादाज्यमानःप्रजां चतसृभिः ॥ ५२ ॥
समञ्जन्त्वेतया प्राश्य दधि तस्यै प्रयच्छति । अनक्ति हृदये तस्या दध्नाऽलाभे घृतं च तत् ॥ ५३ ॥
मन्त्रलोपादि होमान्तं कृत्वा स्विष्टकृदादिकम् । हुत्वा व्याहृतिभिश्चात्र पत्नीं वामे समानयेत्॥५४॥
नवोढामानयेत्पत्नीं वामं वामं त इत्यृचा । वाममद्येत्यृचा चैके ततः पूर्णमसीति च ॥ ५५ ॥

कन्याका पिता कन्या वरनेके लिये कन्याके समीप गोत्रपूर्वक ४ ब्राह्मणोंका वरण करे ॥ १६ ॥ वे लोग वरका नाम प्रपितामहपूर्वक चतुर्थीविभक्तिसे युक्त अर्थात् प्रपौत्राय, पौत्राय, पुत्राय और वराय ऐसा बोलें ॥ १७ ॥ वरकन्याके गोत्र और सम्बन्धमें षष्ठी, वरमें चतुर्थी और कन्यामें द्वितीया विभक्तिका उच्चारण करें ॥ १८ ॥ वे ब्राह्मण कन्याको प्रद्युम्नमन्तासूक्त और कनिक्रदत् सुनावें । देवीमृचम् मन्त्र पढ़तेहुए कन्याके समीप वरको लावें ॥ १९ ॥ पूर्वको मुख के कन्या और पश्चिमको मुख करके वर खड़ा होवे, दोनोंके मध्यमें वस्त्रसे आड़ कीजावै ॥ २० ॥ परस्पर मुख देखके प्रथम वरके मस्तकपर कन्या बाद कन्याके मस्तकपर वर अक्षत फेंके ॥ २१ ॥ ऋक्चवा गाथाको ब्राह्मण पढकर दोनोंके मस्तकपर अक्षत फेंके ॥ २२ ॥ पश्चिमको मुखकर कन्या तथा पूर्वको मुखकर वर खड़ा होवे, अनृक्षरा मन्त्रसे स्थानविपर्यय (बदला) किया जाताहै ॥ २३ ॥ पूर्वके समान कन्या अक्षतका आरोपण करे "श्रियेमें" शब्दको कन्या और "प्रजायै स्यात्" शब्दको वर कहे ॥ २४ ॥ तीन बार ऐसा होनेपर पिता वरको कन्या देवे; किसी आचार्यका मत है कि शिष्ट लोगोंके आचारके अनुकूल कन्यादान करे ॥ २५ ॥ जल लेकर यह कहे कि लक्ष्मीरूप इस कन्याको विष्णुरूप वरके लिये पितरोंके तारनेको देताहूं ॥ २६ ॥ पूर्वके समान वर और कन्याका गोत्र उच्चारणकरके वरसे कहे कि धर्म, अर्थ और काम इन तीनोंमें इसका त्याग नहीं करना; क्योंकि तुमने इसको स्वीकार कियाहै ॥ २७ ॥ "कन्या तारयतु स्वयम्" मन्त्रको दाता पढ़े और ऋषियोंके कहे मन्त्रसे अक्षतारोपण करे ॥ २८ ॥ प्रथमके समान यहां भी एकवार अक्षतारोपण करे, "यज्ञो मे" कन्याका मन्त्र और "पशवो मे" वरका मन्त्र है ॥ २९ ॥ उन दोनोंको ईशान कोणसे सूत्रको पांच फेराकर लपेटे और उस सूत्रको परित्वा इत्यादि मन्त्रसे चतुर्गुण करे ॥ ३० ॥ वरकन्याकी रक्षाके लिये "विश्वेत्तासाविकं" मन्त्रसे वरके दक्षिण हाथमें और "तद्धवि" मन्त्रसे कन्याके दक्षिण हाथमें कङ्कण बांधे ॥ ३१ ॥ "युवम्" मन्त्रसे वर कन्याको दो वस्त्र देवे, वह दोनों नील और लोहित इन मन्त्रोंसे बांधे ॥ ३२ ॥ कन्याके कण्ठमें मणिसे युक्त सूत्र "माङ्गल्यतन्तुना" मन्त्रसे बांधनेमें कन्या सर्वदा साध्वी रहती है ॥ ३३ ॥ वरके प्रति पुण्याह, स्वस्ति और वृद्धि यह शब्द तीन तीन बार कहे । "अनाधृष्टं" और "आपोह्यानः प्रजां" यह दोनों मन्त्र पढ़े ॥ ३४ ॥ सर्वदा मङ्गलको देने वाली गौरीको नमस्कार करे, ऐसा करनेसे लोकमें निर्मल सौभाग्य मिलता है ॥ ३५ ॥ वर और कन्या होम करनेको वेदीके समीपजावें, वहां वरके, दक्षिण भागमें वधूको बैठावे ॥ ३६ ॥ उपलेपादि आघारान्त सब कर्म सूत्रोक्त विधिसे करे ॥ ३७ ॥ "अग्न आयूंषि" यह तीन मन्त्र "अत्र त्वयर्यमाप्रजापते" हवन करके घृतकी आहुति देवे, इस प्रकार सूत्रोक्त पाणिपीड़न कहाताहै ॥ ३८ ॥ सूपमें रक्खेहुए लाजाओंको वर तीन बार प्रोक्षणकरे और उन लाजाओंसे तीन बार वधूकी अञ्जली भरे ॥ ३९ ॥ अञ्जलीको पूर्णकर वधू (कन्या) हवन करे द्वितीयबार फिर इसी प्रकार करे इसप्रकार लाजा होमकर जलसे युक्त कलश और अग्निकी प्रदक्षिणा करे, और वधूको अश्मारोहण (पत्थरपरचढ़ना) करावे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ प्रति आहुतिपर प्रदक्षिणा करे इस प्रकार विवाहकी विधि है । लाजा हवनके "अर्यमणम्, वरुणं और पूपणं" यह मन्त्र जानना ॥ ४२ ॥ शेष लाजाको सूपके कोनेसे मौन होकर हवन करे, ऐसा यज्ञकर्ताओंका मत है ॥ ४३ ॥ यदि कन्या और वरकी शिखा बंधी होवें तो मौन होकर "प्रत्यृचं च" मन्त्रसे वरकी शिखा खोल देवे ॥ ४४ ॥ इप इत्यादि मन्त्रोंसे ईशान दिशामें वधूको सप्तपद चलावे, चलते समय शिर दोनोंके मिले रहें ॥ ४५ ॥ सौभाग्यको देनेवाली दाक्षायणी शिवा देवीको स्मरण कर कुम्भका जल दोनोंके शिरपर सिञ्चन करे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार स्विष्टकृत् होम समाप्तकर शेष दिन वर और कन्या मौन रहें ॥ ४७ ॥ ध्रुव और अरुन्धती ताराको देख मौनका त्याग करें, वर और कन्याको स्त्री पुरुष सब आशीर्वाद देवें ॥ ४८ ॥ इस प्रकार उत्पन्न हुई अग्निको विवाहाग्नि कहते हैं, जिसको यज्ञका विधान जाननेवाले अजस्र अर्थात् गृह्याग्नि कहतेहैं ॥ ४९ ॥ दिन या रात्रिमें जिस समय कन्यादान करे उसी समय वैवाहिक होम करदेवे ॥ ५० ॥ वर अग्निको आगे कर वधू सहित घरको जावे

और सूत्रमें कही विधिसे प्रथम स्त्रीको घरमें प्रवेश करावे ॥ ५१ ॥ अग्निको स्थापित कर चक्षुष्यन्त कर्म करे और "आज्यमानः प्रजां" इन चार मन्त्रोंसे हवन करे ॥ ५२ ॥ समञ्जन्तु मन्त्रसे दधिप्राशन कर वधूको देवे और वधूका हृदय स्पर्शकरे; दधिके अभावमें घृतप्राशन करावे ॥ ५३ ॥ मन्त्रलोपादि होमान्त कर्म कर स्विष्टकृत् आदि व्याहृतिओंसे हवन करे, इस कार्यमें पत्नीको वामभागमें बैठावे ॥ ५४ ॥ नवीन स्त्रीको लाकर "वामं वामन्त" ऋक्से तथा किसी आचार्यका मत है कि "वाममद्य" को पढ़कर पूर्णमसिको पढे ॥ ५५ ॥

दम्पती नियमेनैव ब्रह्मचर्यव्रतेन तु । वैवाहिकगृहे तौ च निवसेतां चतुर्दिनम् ॥ ६३ ॥
चतुर्थेत्रिदिवस्यान्ते यामे वा चैव दम्पती । उमामहेश्वरौ नत्वा वंशदानं प्रदापयेत् ॥ ६४ ॥
भोजनं शयनं स्नानं तथैकत्रोपवेशनम् । गृहप्रवेशपर्यन्तं दम्पत्योर्मुनयो विदुः ॥ ६५ ॥
वध्वा सह वरो गच्छेत्स्वगृहं पञ्चमे दिने । गृह्योक्तविधिना चैव देशधर्मेण वापि च ॥ ६६ ॥
नान्दीश्राद्धं द्विजः कुर्यात्स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । गृहे प्रवेशमारभ्य पितर्यपि च जीवति ॥ ६७ ॥

स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य नियमसे विवाह हुए घरमें चार दिवस पर्यन्त निवास करें ॥ ६३ ॥ तीसरे अथवा चौथे दिनके चौथे पहरमें स्त्री पुरुष पार्वती महादेवको नमस्कार करके वंश दानकरें ॥ ६४ ॥ भोजन, शयन, स्नान तथा इकट्ठा बैठना गृहप्रवेश तक स्त्री पुरुष एक साथ करें, ऐसा मुनियोंका मत है ॥ ६५ ॥ देश धर्म अथवा गृह्योक्त विधिसे वधूसहित वर अपने घर पांचवें दिन जावे ॥ ६६ ॥ पिताके जीवित रहने परभी द्विज लोग गृहप्रवेशके आरम्भमें स्वस्तिवाचन नान्दीश्राद्ध करें ॥ ६७ ॥

मानवगृह्यसूत्र--१ पुरुष ८ खण्ड ।

पश्चादग्नेश्चत्वार्यासनान्युपकल्पयीत ॥ १ ॥ तेषूपविशन्ति पुरस्तात्प्रत्यङ्मुखो दाता पश्चात्प्राङ्मुखः प्रतिग्रहीता दातुरुत्तरतः प्रत्यङ्मुखी कन्या दक्षिणत उदङ्मुखो मन्त्रकारः ॥ २ ॥ तेषां मध्ये प्राक्तूलान्दर्भानास्तीर्य कांस्यमक्षतोदकेन पूरयित्वाऽविधवास्मै प्रयच्छति ॥ ३ ॥ तत्र हिरण्यम् ॥४॥ अष्टौ मङ्गलान्यावेदयति ॥ ५ ॥ मङ्गलान्युक्त्वा ददामि प्रतिगृह्णामीति त्रिर्ब्रह्मदेयां पिता भ्राता वा दद्यात् ॥६॥ सहिरण्यानञ्जलीनावपति धनाय त्वेति दाता पुत्रेभ्यस्त्वेति प्रतिग्रहीता तस्मै प्रत्यावयति ॥ ७ ॥ चतुर्व्यतिहृत्य ददाति ॥ ८ ॥ सावित्रेण कन्यां प्रतिगृह्य प्रजापतय इति च क इदं कस्मा अदादिति सर्वत्रानुषजति कामैतत्त इत्यन्तम् ॥ ९॥ समाना वा आकूतानीति सह जपन्त्याऽन्तादनुवाकस्य ॥ १० ॥ खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो । अपालामिन्द्रसित्रः पूर्त्यवकृणोत्सूर्यत्वचम् ॥ इति तेनोदकांस्येन कन्यामभिषिञ्चेत् ॥ ११ ॥

विवाहके समय अग्निसे पश्चिम चार आसन विछावे ॥ १ ॥ उन आसनोंपर इस प्रकारसे बैठे । पूर्व ओर पश्चिममुख करके कन्यादाता, पश्चिम ओर पूर्वमुख करके वर, कन्यादाताके उत्तर ओर पश्चिम मुख करके कन्या और उस स्थानके दक्षिण ओर उत्तर मुख करके मन्त्र पढनेवाला पुरोहित बैठे ॥ २ ॥ उन सबके बीचमें पूर्व ओर अग्रभाग करके कुश बिछावे; कांसेके पात्रमें अक्षत सहित जल भरकर सधवा स्त्री दाताके हाथमें देवे ॥ ३ ॥ उस पात्रमें सोना डाले ॥ ४ ॥ सधवा स्त्री मङ्गल रूप आठ वस्तु दाताको देवे ॥ ५ ॥ कन्यादान करनेवाला पिता अथवा भाई, जिसने वरसे कन्याका मूल्य नहीं लिया है, मङ्गल शब्दसे युक्त ३ बार ददामि कहकर देवे और ३ बार प्रतिगृह्णामि कहकर कन्याको स्वीकार करे ॥ ६ ॥ यदि कन्याका पिता आदि वरसे कन्याका मूल्य: लेवे तो वर सोना आदि धन अञ्जलीमें ले और कन्याका पितादि कन्याका हाथ पकड़कर कहे कि धनाय त्वा ददामि और वर सुवर्णादि देनेके समय कन्याका हाथ पकडकर कहे कि पुत्रेभ्यस्त्वा प्रतिगृह्णामि;इस भांति धन और कन्याका लौट फेर कर लेवें ॥७॥ चारबार दोनों लौट फेर करें ॥ ८ ॥ वर सविता देवता सम्बन्धी "देवस्य त्वा०" इत्यादि प्रत्येक मन्त्रसे कन्याको स्वीकार करे और प्रत्येक मन्त्रके अन्तमें "क इदं कस्मा अदात्" से 'कामैत्तते' पर्यन्तको सबके सङ्ग जोड लेवे ॥ ९ ॥ फिर अनुवाकके अन्ततक शेष बचे "समाना वा आकूतानि" इत्यादि मन्त्रोंको कन्याको देने लेने वाले सब लोग एक साथही जपें अर्थात् ऊंचे स्वरसे बोलें ॥ १० ॥ "खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ! अपालामिन्द्रसित्र पूर्त्यवकृणोत्सूर्यत्वचम्" इस मन्त्रको पढकर कांसेके पात्रमें (अक्षतोंसहित) रक्खे हुए जलसे वर कन्याके शिरपर अभिषेक करे ॥ ११ ॥

९ खण्ड ।

अथालङ्करणमलङ्करणमसि सर्वस्मा अलं मे भूयासम् ॥२४॥ प्राणापानौ मे तर्पय (समानव्यानौ मे तर्पय उदानरूपे मे तर्पय) सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासं, सुवर्चा मुखेन सुश्रुत्कर्णा-

भ्यां भूयासमिति यथालिङ्गमङ्गानि संमृशति ॥ २५ ॥ अथ गन्धोत्सदने वाससी ॥ २६ ॥ परिधास्ये यशोधास्ये दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्तु । शतं जीवेम शरदः पुरूचीरायस्पोषमभिसंव्यथिष्ये॥यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती । यशो भगश्च मारीषयशो मा प्रतिमुच्यताम्॥ इत्यहतं वासः परिधत्ते ॥ २७ ॥ कुमार्याः प्रमदने भगमर्यमणं पूषणं त्वष्टारमिति यजति ॥ २८॥ प्राक्स्विष्टकृतश्चतस्रो अविधवा नन्दीरुपवादयन्ति ॥ २९ ॥ अभ्यन्तरे कौतुके देवपत्नीर्यजति ॥ ३० ॥

वर उसके अनन्तर "अलङ्करणमलङ्करणमसि सर्वस्मा अलं मे भूयासम्" मन्त्रको पढकर मालादि आभूषण पहने ॥ २४ ॥ "प्राणापानौ मे तर्पय" मन्त्रको पढकर नासिकाका, समानव्यानौ मे तर्पय" मन्त्रसे नाभीका, "उदानरूपे मे तर्पय" मन्त्रसे कण्ठका, "सुचक्षा अहमक्षिभ्यां भूयासम्" मन्त्रसे आंखोंका, "सुवर्चा मुखेन" मन्त्रसे मुखका और "सुश्रुत्कर्णाभ्यां भूयासम्" मन्त्रसे कानोंका स्पर्श करे (दहिने हाथसे पहिले दहिना फिर बायां कान छुवे)॥२५॥फिर शरीरमें चन्दन तथा सुगन्ध तैलादि सहित उबटन लगावे॥२६॥ फिर स्नान करके "परिधास्ये यशोधास्ये दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्तु । शतं जीवेम शरदः पुरूचीरायस्पोषमभि संव्ययिष्ये"मन्त्रसे नई धोती पहने और"यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पतो । यशो भगश्च मारिषयशो मा प्रतिमुच्यताम्" मन्त्रसे नया दुपट्टा ओढे ॥ २७ ॥ कन्याके क्रीडास्थानमें भग, अर्यमा, पूषा और त्वष्टा देवतोंके नामसे घीकी आहुति देवे ॥ २८ ॥ स्विष्टकृत् आहुतिसे पहिले चार सधवा स्त्रियां माङ्गलिक बाजे बजाकर मङ्गल रूप गीत गावें ॥ २९ ॥ कन्याका पिता अथवा भाई घरके भीतर नियत कियेहुए कौतुकागारमें " देवपत्नीभ्यः स्वाहा" मन्त्रसे होम करे ॥ ३० ॥

१० खण्ड ।

प्रागुदक्च्चं लक्षणमुद्धृत्या वीक्ष्य, स्थण्डिलं गोमयेनोपलिप्य मण्डलं चतुरस्रं वा, अग्निं निर्मथ्याभिमुखं प्रणयेत्(तत्र ब्रह्मोपवेशनम्)॥१॥दर्भाणां पवित्रे मन्त्रवदुत्पाद्येमंस्तो ममर्हत इत्यग्निं परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य पश्चादग्नेरेकवद्बर्हिः स्तृणाति॥२॥उदक् प्राक् तूलान्दर्भान्प्रकृष्य दक्षिणांस्तथोत्तरानग्रेणाग्निं दक्षिणैरुत्तरानवस्तृणाति ॥३ ॥ दक्षिणतोऽग्नेर्ब्रह्मणे संस्तृणात्यपरं यजमानाय पश्चार्द्धे पत्न्यै अपरमपरं शाखोदकधारयोर्लाजाधार्याश्च पश्चाद् युगधारस्य च ॥ ४ ॥ स्योनापृथिविभवेत्येतयाऽवस्थाप्य शमीमयीः शम्याः कृत्वाऽन्तर्गोष्ठेऽग्निमुपसमाधाय भर्त्ता भार्यामभ्युदानयति॥५॥ वाससोऽन्ते गृहीत्वा अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ इत्यग्निपरिगृह्याभ्युदानयति ॥ ६ ॥ उत्तरेण रथं वाऽनो वाऽनुपरिक्रम्यान्तरेण ज्वलनवहनावतिक्रम्य दक्षिणस्यां धुर्युत्तरस्य युगतन्मनोऽधस्तात्कन्यामवस्थाप्य शम्यामुत्कृष्य हिरण्यमन्तर्धाय हिरण्यवर्णाः शुचय इति तिसृभिरद्भिरभिषिच्य, अत्रैव बाणशब्दं कुरुतेति प्रेष्यति ॥ ७ ॥ अथास्यै वासः प्रयच्छति–या अकृन्तन्या अतन्वन्या आवन्या आवाहरन् । याश्चाग्ना देव्योऽन्तानभितोऽततनन्त । तास्त्वा देव्यो जरसे संव्ययन्त्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥ इत्यहतं वासः परिधाप्यान्वारभ्याघारावाज्यभागौ हुत्वा । अग्नये जनविदे स्वाहेत्युत्तरार्द्धे जुहोति । सोमाय जनविदे स्वाहेति दक्षिणार्द्धे । गन्धर्वाय जनविदे स्वाहेति मध्ये ॥ ८ ॥ युक्तो वह, यदाकूतमिति द्वाभ्यामग्निं योजयित्वा नक्षत्रमिष्ट्वा नक्षत्रदेवतां यजेत्तिथिं तिथिदेवतामृतुमृतुदेवतां च ॥ ९ ॥ सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वोददग्नये । रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् । अग्निरस्याः प्रथमो जातवेदाः सोऽस्याः प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदिदं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेदं स्त्रीपौत्रमगन्म रुद्रियाय स्वाहा इति ॥ हिरण्यगर्भ इत्यष्टाभिः प्रत्यृचमाज्याहुतीर्जुहुयात् ॥ ॥१०॥येन च कर्मणेच्छेत्तत्र जयाञ्जुहुयात् जपानां च श्रुतिस्तां यथोक्ताम् । आकूत्यै त्वा स्वाहा । भूत्यै त्वा स्वाहा । प्रयुजे त्वा स्वाहा । नभसे त्वा स्वाहा । अर्यम्णे त्वा स्वाहा । समृद्ध्यै त्वा स्वाहा । कामाय त्वा स्वाहेत्यृचास्तोमं, प्रजापतय इति च ॥११॥ शुचिप्रत्यङ्ङुपयन्ता तां–समीक्षस्वेत्याह ॥ १२ ॥ तस्यां समीक्षमाणायां जपति–मम व्रते ते हृदयं दधातु मम चित्तमनुचित्तं तेऽस्तु । ममवाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ इति ॥१३ ॥ कानामासीत्याह ॥ १४॥ नामधेये प्रोक्ते–देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्त गृह्णाम्यसाविति गृह्णन्नाम गृह्णाति । प्राङ्मुख्याः प्रत्यङ्मुख ऊर्ध्वस्तिष्ठन्नासीनाया दक्षिणमुत्तानं दक्षिणेन

नीचारिक्तमरिक्तेन ॥ यथेन्द्रो हस्तमग्रहीत्सविता वरुणो भगः । गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासत् । भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥याग्रेवाक्स-मवदत पुरा देवासुरेभ्यः ।तामद्य गाथां गास्यामो यास्त्रीणामुत्तमं मनः ॥ सरस्वती प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति । यां त्वा विश्वस्य भूतस्य भव्यस्य प्रगायाम्यस्याग्रतः ॥ अमोऽहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्याप्यमोऽहम् । द्यौरहं पृथिवी त्वमृक्त्वमसि सामाहम् । रेतोऽहमस्मि रेतो धत्तम् ॥ ता एव विवहावहै पुंसे पुत्राय कर्त्तवे । श्रिये पुत्राय वेधवे । रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ १५ ॥ अभिदक्षिणमानीयाग्नेः पश्चात्–एतमश्मानमातिष्ठतमश्मेव युवां स्थिरौ भवतम् । कृण्वन्तु विश्वेदेवा आयुर्वां शरदः शतम् ॥ इति दक्षिणाभ्यां पद्भ्यामश्मानमास्थापयति ॥ १६ ॥ यथेन्द्रः सहेन्द्राण्या । अवारुहद्गन्धमादनात् । एवं त्वमस्मादश्मनोऽवरोह सह पत्न्या ॥ आरोहस्व समे पादौ प्रपूर्ण्यायुष्मती कन्ये पुत्रवती भव ॥ इत्येवं द्विरास्थापयति ॥ १७ ॥ चतुःपरिणयति ॥ १८ ॥ समितं संकल्पेथामिति पर्याये पर्याये ब्रह्मा ब्रह्मजपं जपेत् ॥ १९ ॥

गोलाकार या चौकोन वेदीके ऊपर पश्चिमसे पूर्वको उत्तरोत्तर क्रमसे (५) रेखा देवे, रेखाके बीचसे (अनामिका और अंगुष्ठसे) मृत्तिका निकालकर (ईशानमें) फेंके, वेदीको जलसे सेंचकर गोबरसे लीपे, अरणी मन्थनकरके अग्निको अपने सन्मुख स्थापन करे, दक्षिण ब्रह्माको बैठावे ॥ १ ॥ कुशाओंको मन्त्रसे पवित्र बनाकर "इमं स्तोममर्हतः" मन्त्रसे अग्निको चारो तरफसे इकट्ठा करके प्रदक्षिण क्रमसे जल सेंचन करे तब अग्निके चारो ओर कुश बिछाके अग्निसे पश्चिम एकावृत्ति कुश बिछावे ॥ २ ॥ वेदीके दक्षिण और उत्तरके कुशका अग्रभाग पूर्वको रहे और पूर्व और पश्चिमके कुशका अग्रभाग उत्तरको रहे ॥ ३ ॥ अग्निसे दक्षिण ब्रह्माके लिये बिछाएहुए आसनपर ब्रह्मासे पश्चिम यजमानके आसनपर; यजमानसे पश्चिम पत्नीके आसनपर कुश बिछादेवे तथा ब्रह्मा, यजमान और पत्नीसे दक्षिण आम्रपल्लव शाखा धारण करनेवालेके लिये; उससे पश्चिम कलश धारण करनेवालेके लिये; उससे पश्चिम लाजा (धानके लावा) धारण करनेवाली सधवा स्त्रीके लिये और उसके पश्चिम हलके जुए धारण करनेवालेके लिये कुश बिछावे ॥४॥ "स्योनापृथिवि भव"मन्त्रसे आम्रपल्लवशाखा धारण करनेवाले इत्यादि चारोंको बैठावे शमीवृक्षकी शम्या प्रादेशमात्र बनाकर गोष्ठ (गृह) में अग्नि प्रज्वलित करके निम्न रीतिसे वर अपनी पत्नीको अग्निके निकट लावे ॥ ५ ॥ भार्याके दुपट्टेका छोर पकडकर "अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवाप शुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे" इस मन्त्रको पढे, उसके अनन्तर भार्याको (दोनों हाथोंसे) उठाकर लावे ॥६॥ खडेहुए रथ अथवा छकडेके उत्तरसे दक्षिणकी ओर परिक्रमाकर अथवा अग्नि और छकडेके बीचसे निकलकर धुर और शम्याके * छिद्रके बीच उत्तरको नीचे कन्याको स्थित करे; शम्याको जुएके छिद्रसे निकालकर दोनों छिद्रोंमें सोना रक्खे"हिरण्यवर्णाः शुचयः" इत्यादि तीन ऋचा पढके छिद्रके ऊपरसे कुशाओं वा आम्रपल्लवसे कन्याके शिरपर अभिषेक करे उसी समय 'बाणशब्दं कुरुत' वाक्यसे बाजा बजानेकी आज्ञा देवे ॥ ७ ॥ "या अकृन्तन्या अतन्वन्या आवन्या अवाहरन् । याश्चग्नादेव्योऽन्तानाभितोऽततनन्त । तास्त्वा देव्यो जरसे संव्ययन्त्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः"मन्त्र पढकर भार्याको विना फाडीहुई नई साडी पहनावे । उसके पश्चात् भार्यासे स्पर्श करके प्रजापति और इन्द्रके लिये २ आघार और अग्नि तथा चन्द्रमाके लिये २ आज्यभागकी आहुति देकर अग्निके उत्तरार्द्धमें "अग्नये जनविदे स्वाहा" मन्त्रसे, दक्षिणार्द्धमें "सोमाय जनविदे स्वाहा" मन्त्रसे और अग्निके बीचमें "गन्धर्वाय जनविदे स्वाहा" मन्त्रसे आहुति देवे॥८॥ "युक्तो वह० । यदा कुतम्०" इन दो मन्त्रोंसे अग्निदेवताको सम्बोधन करके विवाहके तिथि, नक्षत्र और ऋतुके नामसे तथा इन तीनोंके तीन देवताओंके नामसे एक आहुति देवे ॥ ९ ॥ फिर "सोमोददद्गन्धर्वाय गन्धर्वोददद्ग्नये । रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥ अग्निरस्याः प्रथमो जातवेदाः सोऽस्याः प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदिदं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेदं स्त्रीपौत्रमगनमरुद्रियाय–स्वाहा" इन दो ऋचाओंसे एक आहुति देकर "हिरण्यगर्भः०" इत्यादि आठ ऋचाओंसे घीकी आठ आहुति देवे ॥ ॥ १० ॥ जिस कर्मसे कार्यकी सिद्धि चाहता होवे वहां जयाहोम करे जैसा श्रुतिमें कहाहै वैसा जया होम करे "आकूत्यै त्वा स्वाहा, भूत्यै त्वा स्वाहा, प्रयुजे त्वा स्वाहा, नभसे त्वा स्वाहा, अर्यम्णे त्वा स्वाहा, समृद्ध्यै त्वा स्वाहा, जयायै त्वा स्वाहा, कामाय त्वा स्वाहा" इन आठ मन्त्रोंसे जयाहोमकी आठ आहुति देकर "ऋचास्तोमं स्वाहा" मन्त्रसे नवीं और "प्रजापतये स्वाहा" मन्त्रसे दशवीं आहुति दे ॥ ११ ॥ वर अपने मनको पवित्र रखकर पश्चिमको मुख करके पत्नीसे कहे कि "समीक्षस्व" अर्थात् मुझे देखो ॥ १२ ॥

---

* गाड़ीके जुएके मध्य भागको धुर कहतेहैं और जुएके दोनों ओरके शमीकाष्ठकी खूंटीका नाम शम्या है ।

जब कन्या वरको देखती हो तब वर कन्याकी ओर देखता हुआ "मम व्रते ते हृदयं दधातु मम. चित्तमनुचित्तं तेऽअस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु· मह्यम्" मन्त्रको पढे ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर वर कन्यासे कहे कि कानामासि (तुम्हारा क्या नाम है) ॥ १४ ॥ जब कन्या अपना नाम कहे तब वर " देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाम्यसौ" मन्त्रको पढकर इस भांति कन्याका हाथ पकड़े और मन्त्रके अन्तमें असौ शब्दके स्थानमें कन्याका नाम सम्बोधनान्त बोले; कन्याका मुख पूर्व ओर, वरका मुख पश्चिम ओर रहे; कन्या बैठी रहे, वर खड़ा रहे कन्याका दहिना हाथ खाली उत्तान और वरके दहिने हाथमें कोई फलादि रहे; इस प्रकार वर अपने दहिने हाथसे अंगूठा अंगुलियोंसहित कन्याका दहिना हाथ पकड़कर "यथेन्द्रो हस्तमग्रहीत्सविता वरुणो भगः । गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासत् । भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ याग्रे वाक्समवदत पुरा देवासुरेभ्यः । तामद्य गाथां गास्यामो यास्त्रीणामुत्तमं मनः ॥ सरस्वती प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति । यां त्वां विश्वस्य भूतस्य भव्यस्य प्रगायाम्यस्याग्रतः ॥ अमोऽहमस्मि सा त्वं सात्वमस्याप्यमोऽहम् । द्यौरहं पृथिवी त्वमृक्त्वमसि सामाहम् । रेतोऽहमस्मि रेतो धत्तम् ॥ ता एव विवहावहै पुंसो पुत्राय कर्त्तवै । श्रिये पुत्राय वेधवै । रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय" इन मन्त्रोंको पढे ॥ १५ ॥ एक पुरुष वरसे दक्षिणमें और अग्निसे पश्चिममें कन्याको खड़ा करके कन्या और वरके दाहने पगको पत्थरकी शिलापर धरवाके " एतमश्मानमातिष्ठतमश्मेव युवां स्थिरौ भवतम् । कृण्वन्तु विश्वेदेवा आयुर्वां शरदः शतम्" मन्त्रको पढे ॥ १६ ॥ उसके पश्चात् " यथेन्द्रः सहेन्द्राण्या । अवारुहद्गन्धमादनात् । एवं त्वमस्मादश्मनोऽअवरोह सह पत्न्या ॥ आरोहस्व समे पादौ प्रपूर्वायुष्मती कन्ये पुत्रवती भव" मन्त्र पढकर दोनोंके पगोंको पत्थरसे नीचे उतरवावे; इसी प्रकारसे फिर दोनोंके पगोंको पत्थर पर रखवा करके नीचे उतरवावे ॥ १७ ॥ कन्या और वर चारवार अग्निकी प्रदक्षिणा करें ॥ १८ ॥ ब्रह्मा प्रत्येक परिक्रमाके समय "समितं संकल्पेथाम्" मन्त्रका जप करे ॥ १९ ॥

११ खण्ड ।

ततो यथार्थं कर्मसन्निपातो विज्ञेयः ॥ १ ॥ अर्यम्णेऽग्नये पूष्णे (ऽग्नये) वरुणाय च व्रीहीन्यवान्वाऽभिनिरूप्य प्रोक्ष्य लाजा भृज्जति ॥ २ ॥ मात्रे प्रयच्छति सजाताया अविधवायै ॥ ३ ॥ अथास्यै द्वितीयं वासः प्रयच्छति तेनैव मन्त्रेण ॥ ४ ॥ दर्भरज्ज्वा इन्द्राण्याः संनहनमित्यन्तौ समायम्य पुमांसं ग्रन्थिं बध्नाति ॥ ५ ॥ संत्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः संत्वा नह्याम्यद्भिरोषधीभिः । संत्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सुनुहि भागधेयम् ॥ इत्यन्तरतो वस्त्रस्य योक्त्रेण कन्यां संनह्यते ॥ ६ ॥ अथैनान्युपकल्पयते शूर्पं लाजा इषीका अश्मानमञ्जनम् ॥ ७ ॥ चतसृभिर्दर्भेषीकाभिः शरेषीकाभिर्वा समुञ्जाभिः सतूलाभिरित्येकैकया त्रैककुभस्याञ्जनस्य संनिष्कृष्य—वृत्रस्यासि कनीनिकेति भर्तुर्दक्षिणमक्षि त्रिः प्रथममाङ्क्ते तथापरं, तथा पत्न्याः शेषेण तूष्णीम् ॥ ८ ॥ दिशि शलाकाः प्रविध्यति—यानि रक्षांस्यभितो व्रजन्त्यस्या वध्वा अग्निसकाशमागच्छन्त्याः । तेषामहं प्रतिविध्यामि चक्षुः स्वस्ति वध्वै भूपतिर्दधातु ॥ इति ॥ ९ ॥ लाजाः पश्चादग्नेरुपसाद्य शमीपर्णैः संसृज्य शूर्पे समं चतुर्धा विभज्याग्रेणाग्निं पर्याहृत्य लाजाधार्यै प्रयच्छति ॥ १० ॥ लाजा भ्राता ब्रह्मचारी वाऽञ्जलिनाञ्जल्योरावपति ॥ ११ ॥ उपस्तरणाभिघारणैः संपातं ता अविच्छिन्नैर्जुहुता—अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत । सोऽस्मान्देवोऽअर्यमा प्रेतो मुञ्चतु मामुतः स्वाहा ॥ तुभ्यमग्ने पर्यवहन्त्सूर्यां वहतु नासह । पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्नेः प्रजया सह ॥ पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ इयं नार्युपब्रूतेऽग्नौ लाजानावपन्तिका । दीर्घायुरस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम ॥ इति (जपति) ॥ १२ ॥ एवं पूषणं नु देवं, वरुणं नु देवम् ॥ ॥ १३ ॥ येन द्यौरुग्रेत्यादय उद्वाहे होमाः । जयाभ्यातानाः सन्ततिहोमा राष्ट्रभृतश्च ॥ १४ ॥ आकूताय स्वाहेति जयाः । प्राची दिग्वसन्तऋतुरित्यभ्यातानाः । प्रोणादपानं सन्तन्विति सन्ततिहोमाः । ऋताषाड्ऋतधामेति (द्वादश) राष्ट्रभृतश्च ॥ १५ ॥ त्रातारमिन्द्रं, विश्वादित्या इति मङ्गल्ये ॥ १६ ॥ लाजाः कामेन चतुर्थं स्विष्टकृतमिति ॥ १७ ॥ अथैनां प्राचीं सप्तपदानि प्रक्रमयति । एकमिषे द्वे ऊर्जे । त्रीणि प्रजाभ्यः । चत्वारि रायस्पोषाय । पञ्च भवाय । षड् ऋतुभ्यः । सखा सप्तपदी भव सुमृडीका सरस्वती । मा ते व्योम संदृशि ॥ विष्णुस्त्वामुन्नयत्विति सर्वत्रानुषजति ॥ १८ ॥

पश्चादग्ने रोहिते चर्मण्यानडुहे प्राग्ग्रीवे लोमतो दर्भानास्तीर्य तेषु वधूमुपवेशयत्यापि वा दर्भेष्वेव ॥ १९ ॥ इमं विष्यामि वरुणस्य पाशं यज्जग्रन्थ सविता सत्यधर्मा । धातुश्च योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां मा सह पत्यादधातु ॥ इति योक्त्रपाशं विषाय वाससोऽन्ते बध्नाति ॥ २० ॥ अनुमतिभ्यां व्याहृतिभिश्च त्वंनो अग्ने । सत्वंनो अग्ने । अयाश्चाग्नेऽसीति च ॥ २१ ॥ शमीमयीस्तिस्रोऽक्ताः समिधः । समुद्रादूर्मिरित्येताभिस्तिसृभिः स्वाहाकारान्ताभिरादधीत ॥ २२ ॥ अक्षतसक्तूनां दध्नश्च समवदायेदं हविः प्रजननं म इति च हुत्वा वितं मुञ्चामि रशनां विरश्मीनिति च हुत्वा पवित्रेऽनुप्रहृत्याऽऽज्येनाभिजुहोति ॥ २३ ॥ एधोऽस्येधिषीमहीति समिधमादधाति । समिदसि समेधिषीमहीति द्वितीयाम् ॥२४ ॥ अपो अद्यान्वचारिषमित्युपतिष्ठते ॥ २५ ॥ कुम्भादुदकेनापोहिष्ठीयाभिर्मार्जयन्ते ॥ २६ ॥ वरो दक्षिणा ॥ २७ ॥

जहां जब जिस कर्मका प्रयोजन हो वहां उसी समय उस कर्मका अनुष्ठान करे ॥ १ ॥ अर्यमाग्नि, पूषाग्नि और वरुणाग्नि देवताके लिये धान अथवा यवको लाकर प्रोक्षण करके लावा भूंजे ॥ २ ॥ कन्याकी माता अथवा सधवा मौसीको वह लावा देवे ॥ ३ ॥ इसके पश्चात् उसी मन्त्रसे ऊपरसे ओढनेके लिये दूसरा वस्त्र कन्याको देवे॥४॥आचार्य "इन्द्राण्याः संनहनम्" मन्त्रको पढके कुशकी रस्सीके दोनों छोर मिलाकर प्रदक्षिणारीतिसे गांठ देवे ॥ ५ ॥ फिर "संत्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः संत्वा नह्याम्यद्भिरोषधीभिः । संत्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सुनुहि भागधेयम्" मन्त्रको पढकर कन्याके कटिभागमें साड़ीके बीच कुशकी रस्सीको प्रदक्षिण लपेटे; यह पत्नीकी दीक्षार्थ मेखला है ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् सूप, धानके लावा, कुश अथवा मूञ्जकी (चार) सींक, पत्थरकी शिल और अञ्जन लाकर रक्खे ॥ ७ ॥ कुशकी अथवा मूञ्जकी ४ लम्बी सींकके छोरसें अञ्जन लगाके कन्या एक सींकसे वरकी दहिनी आखमें और दूसरी सींकसे बांयीं आंखमें तीन तीन बार अञ्जन लगावे; दोनों वार "वृत्रस्यासि कनीनिका" मन्त्रको पढे । शेष बंची दो सींकोंसे वर कन्याकी दहिनी और बायीं आंखोंमें विना मन्त्र अञ्जन लगावे ॥ ८ ॥ वर "यानि रक्षांस्यभितो व्रजन्त्यस्या वध्वा अग्निसकाशमागच्छन्त्याः । तेषामहं प्रतिविष्यामि चक्षुः स्वस्ति वध्वै भूपतिर्दधातु" मन्त्रको पढकर अञ्जनकी एक एक सींक प्रदक्षिण क्रमसे चारों दिशाओंमें फेंके ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् धानके लावाको अग्निसे पश्चिम रखकर लावामें शमीके पत्ते मिलावे, उसको सूपमें चार भाग अलग अलग रखके और अग्निके उत्तर पूर्वसे प्रदक्षिण लाकर लावाके सूपको लावा धारण करनेवाली स्त्रीको देवे ॥ १० ॥ कन्याका भाई अथवा ब्रह्मचारी कन्या वर दोनोंकी मिलीहुई अञ्जलीमें अपनी अञ्जलीसे लावा गिरावे ॥११॥ लावा गिरानेसे पहिले अञ्जलीमें उपस्तार रूप घी लगावे और लावा गिराकर उसके ऊपर घी डाले यह अभिघारण कहाता है । फिर धार बान्धकर अर्यमणं आदि मन्त्रोंसे वर और कन्या होम करें "अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत । सोऽस्मान्देवोऽअर्यमा प्रेतो मुञ्चतु मामुतः स्वाहा ॥ तुभ्यमग्ने पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह । पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने: प्रजया सह" मन्त्रको वर पढे "पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा । दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम्" ॥ मन्त्रको अध्वर्यु पढे और "इयं नार्युपब्रूते (ऽग्नौ) लाजानावपन्तिका । दीर्घायुरस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम" मन्त्रको कन्या पढे चारो मन्त्रोंके पाठके साथ वर और कन्या धीरे धीरे लावा गिराते जावें; यह एक आहुति हुई ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर " पूषणं नु देवं वरुणं नु देवं" इत्यादि मन्त्रोंसे दोबार लावाका होम करे ॥ १३ ॥ येन द्यौरुग्रा इत्यादि होम विवाहमें करे, आकूताय इत्यादि जयाहोम, प्राचीदिग्वसन्तऋतु इत्यादि अभ्यातान होम, प्राणादपानं सन्तनु इत्यादि सन्ततिहोम और ऋताषाडृतधाम इत्यादि द्वादश आहुति राष्ट्रभृत् होम भी विवाहमें करे ॥ १४-१५ ॥ "त्रातारमिन्द्रं०, त्रिधादित्या०" इन दो मन्त्रोंसे मङ्गल आहुति करे ॥ १६ ॥ "अर्यमणं नु० " इत्यादि पूर्वोक्त मन्त्रोंमें अर्यमाके स्थानमें कामशब्दका ऊह करके कि "कामं नु देवं०" बचेहुए लावासे चौथी स्विष्टकृत् आहुति करे ॥ १७ ॥ "एकमिषे, द्वे ऊर्जे त्रीणि प्रजाभ्यः चत्वारि रायस्पोषाय, पञ्च भवाय, षड् ऋतुभ्यः"और" सखा सप्तपदी भव" इन सातो मन्त्रोंके अन्तमें"भव सुमृडीका सरस्वती।माते व्योम संदृशि ॥ विष्णुस्त्वामुन्नयतु" मन्त्रको जोडकर एक एक मन्त्रसे एक एक पग कन्याको पूर्व ओर चलावे ॥ १८ ॥ अग्निसे पश्चिम लाल बैलका चर्म, जिसका शिर पूर्व और लोम ऊपर रहे, बिछावे; उसपर कुश बिछवाकर कन्याको बैठावे अथवा केवल कुशाओंपर बैठादेवे ॥ १९ ॥ इसके पश्चात् "इमं विष्यामि वरुणस्य पाशं यज्जग्रन्थ सविता सत्यधर्मा । धातुश्च योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां मा सह पत्या दधातु" मन्त्रको पढकर कन्याके कटिमें बांधीहुई कुशकी रस्सीको खोलके ओढेहुए वस्त्रके छोरमें बांधदेवे ॥ २० ॥ "अनुमतये स्वाहा" मन्त्रसे२ आहुति, व्याहृतिसे ३ आहुति और "त्वं नो अग्ने" मन्त्रसे १, "स त्वं नो अग्ने" मन्त्रसे १ और "अयाश्चाग्नेऽसि"मन्त्रसे १ आहुति देवे ॥ २१ ॥ शमीवृक्षकी ३ समिधाको घृतमें डुबाकर"समुद्रादूर्मिः" इत्यादि स्वाहाकारान्त तीन मन्त्रोंसे अग्निमें डाले यवके सत्तू और दहीमेंसे एक आहुतिसे दूना हवि

द्रव्य लेकर "इदं हविः प्रजननं मे" मन्त्रसे आहुति देवे; "वितेमुञ्चामि रशनां विरश्मीन्" मन्त्रसेभी होम करे और पवित्रोंमें घीलगाकर उसका होम करदेवे ॥ २३ ॥ "एधोऽस्येधिषीमहि" मंत्रसे एक और "समिदसि समेधिषीमहि" मंत्रसे दूसरी समिधा अग्निमें डाले ॥ २४ ॥ "अपो अद्यान्वचारिषम्" मंत्रसे अग्निके पास खड़ाहोवे ॥ २५ ॥ कलश धारण करनेवालेके कलशसे (कुश वा आम्रपल्लव द्वारा) जल लेले करके "आपोहिष्ठा०" इत्यादि तीनें मंत्रोंसे पत्नीका अभिषेक करे ॥ २६ ॥ आचार्यको श्रेष्ठ (गौ) दक्षिणा देवे ॥ २७ ॥

१२ खण्ड ।

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्त्वा याथास्तं विपरेत न ॥ इति प्रेक्षकान्व्रजतोऽनुमन्त्रयते ॥ १ ॥ अत्रैव सीमन्तं करोति त्रिश्वेतया शलल्या समूलेन वा दर्भेण । सेना हनामेत्येतया ॥२॥ अथाभ्यञ्जन्ति । अभ्यज्य केशान्सुमनस्यमानाः प्रजावरीर्यशसे बहुपुत्रा अघोराः । शिवा भर्तुः श्वशुरस्यावदायायुष्मतीः श्वश्रूमतीश्चिरायुः ॥ इति ॥ ३ ॥ जावोर्णायोपसमस्यति । समस्य केशानवृजिनानघोराञ् शिवां सखीभ्यो भव सर्वाभ्यः । शिवा भव सुकुलोह्यमाना शिवा जनेषु सह वाहनेषु इति ॥ ४॥ अथैनौ दधि मधु समश्नुतो यद्वा हविष्यं स्यात् ॥ ५ ॥ तस्य स्वस्ति वाचयित्वा, समाना वा अकूतानीति सह जपन्ति ॥ ६ ॥ उभौ सह प्राश्नीतः ॥७ ॥

विवाह देखनेवालोंके घर जानेके समय उनको देखताहुआ "सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्त्वा याथास्तं विपरेत न" मन्त्र पढे ॥१ ॥ उसी समय वर अपनी भार्याका सीमन्तोन्नयन करे अर्थात् इसप्रकार मांग भरे । "सेनाहनाम" ऋचाको पढकर तीन जगह श्वेत शाहिलके कांटेसे अथवा जड़सहित उखाडेहुए कुशके गुच्छेसे मांगके बालोंको दोनों ओर फारदेवे ॥ २ ॥ "अभ्यज्य केशान्सुमनस्यमानाः प्रजावरीर्यशसे बहुपुत्री अघोराः । शिवा भर्त्तुः श्वशुरस्यावदायायुष्मतीः श्वश्रुमतीश्चिरायुः" मन्त्रसे बालोंमें तेल लगाकर कंकहीसे काढे ॥ ३ ॥ "समस्य केशान् वृजिनानघोराञ् शिवा सखीभ्यो भव सर्वाभ्यः । शिवा भव सुकुलोह्यमाना शिवा जनेषु सह वाहनेषु" मन्त्रसे जीतेहुए भेडेकी ऊनके डोरेके साथ पत्नीके बालोंको गूंथे ॥ ४ ॥ उसके पश्चात् पति और पत्नी दही और मधुको मिलाकर अथवा हविष्यान्नको एक साथ खावें ॥ ५ ॥ खानेसे पहिले पुरोहितादिसे कहे कि आप लोग स्वस्ति कहिये; तब ब्राह्मण लोग मन्त्रसहित स्वस्ति कहें पश्चात् वर, कन्या और ब्राह्मण "समाना वा आकूतानि" मन्त्रको पढें पति और पत्नी दोनों एक साथ भोजन करें ॥ ६ ॥ ७ ॥

१३ खण्ड ।

पुण्याहे युङ्क्ते ॥ १॥ युञ्जन्ति ब्रध्नमिति द्वाभ्यां युज्यमानमनुमन्त्रयते दक्षिणमथोत्तरम् ॥२॥ अहतेन वाससा दर्भैर्वा रथं संमार्ष्टि ॥ ३ ॥ अङ्क्न्यङ्कावभितो रथं ये ध्वान्ता वाता अग्निमभि ये संचरन्ति । दूरे हेतिः पतत्री वाजिनीवांस्ते नोऽग्नयः पप्रयः पालयन्तु ॥ इति चक्रेऽभिमन्त्रयते ॥ ॥ ४ ॥ वनस्पते वीड्वङ्ग इत्यधिष्ठानम् ॥ ५ ॥ सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् । आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥ इत्यारोहयति ॥ ६ ॥ अनुमायन्तु देवता अनुब्रह्म सुवीर्यम् । अनुक्षत्रं तु यद्बलमनुमामैतु यद्यशः इति प्राङभिप्रयाय प्रदक्षिणमावर्तयति ॥७॥ प्रतिमायन्तु देवताः प्रतिब्रह्म सुवीर्यम् । प्रतिक्षत्रं तु यद्बलं प्रतिमामैतु यद्यशः इति यथास्तं यन्तमनुमन्त्रयते ॥ ८ ॥ अमंगल्यं चेदतिक्रामति । अनुमायन्त्विति जपति ॥ ९ ॥ नमो रुद्राय ग्रामसद इति ग्रामे इमा रुद्रायेति च ॥ १० ॥ नमो रुद्रायैकवृक्षसद इत्येकवृक्षे । ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा इति च ॥ ११ ॥ नमो रुद्राय श्मशानसद इति श्मशाने । ये भूतानामधिपतय इति च ॥ १२ ॥ नमो रुद्राय चतुष्पथसद इति चतुष्पथे । ये पथां पथि रक्षय इति च ॥ ॥ १३ ॥ नमो रुद्राय तीर्थसद इति तीर्थे । ये तीर्थानि प्रचरन्तीति च ॥ १४ ॥ यत्रापस्तरितव्या आसीदति । समुद्राय वैणवे सिन्धूनां पतये नमः । नमो नदीनां सर्वासां पत्ये । विश्वाहाजुषतां विश्वकर्मणामिदं हविः स्वः स्वाहेत्यप्सूदकाञ्जलीन्निनयति॥ अमृतं वा आस्ये जुहोम्यायुः प्राणेऽप्यमृतं ब्रह्मणा सह मृत्युं तरति । प्रासहादिति रिष्टिरिति मुक्तिरिति मुक्षीयमाणः सर्वं भयं नुदस्व स्वाहेति त्रिः परिसृज्याचामति ॥ १५ ॥ यदि नावा तरेत्सुत्रामाणमिति जपेत् ॥१६॥ यदि रथाक्षः शम्याणी वा रिष्येतान्यद्वा रथाङ्गं तत्रैवाग्निमुपसमाधाय जपप्रभृतिभिर्हुत्वा सुमङ्गलीरियं वधूरिति जपेत् । वध्वा सह । वधूं समेत पश्यत ॥ १७ ॥ व्युत्क्राम पन्थां जरितां

जवेन । शिवेन वैश्वानर इडयास्याग्रतः । आचार्यो येनयेन प्रयाति तेनतेन सह ॥ इत्युभावेव व्युत्क्रामतः ॥ १८ ॥ गोभिः सहास्तमिते ग्रामं प्रविशन्ति ब्राह्मणवचनाद्वा ॥ १९ ॥

पत्नीको अपने घर लेजानेके लिये पुण्य दिनमें रथादिको जोड़े ॥१॥ जब कोई रथमें घोडे अथवा बैलोंको जोड़ता हो तब वर उसकी ओर देखताहुआ एक बार दहिने जोडनेके समय और दूसरी बार बायेंको जोडते समय "युञ्जन्ति ब्रध्नम्" मन्त्रको पढे ॥ २ ॥ उसके पश्चात् नये वस्त्रसे अथवा कुशाओंसे रथको झाड़े ॥ ॥ ३ ॥ "अंकून्यङ्कावभितो रथं येध्वान्ता वाता अग्निमभि ये संचरन्ति । दूरे हेतिः पतत्री वाजिनीवांस्तेनोऽग्नयः पप्रयः पालयन्तु" मन्त्र पढकर रथके पहियोंका अभिमन्त्रण करे ॥४॥"वनस्पतेवींड्वङ्गः" मन्त्रको पढकर रथपर बैठनेके स्थानका अभिमन्त्रण करे ॥ ५ ॥ "सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् । आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व" मन्त्रको पढकर पत्नीको (अध्वर्युआदि द्वारा) रथपर चढावे ॥ ६ ॥ पश्चात् वर स्वयं रथपर बैठकर "अनुमायन्तु देवता अनुब्रह्म सुवीर्यम् । अनुक्षत्रं तु यद्बलमनुमामैतु यद्यशः" मन्त्र पढके थोडा पूर्व रथ चलावे और प्रदक्षिण क्रमसे जानेके मार्गपर फेरलावे ॥ ७ ॥ जब घरके मार्गपर रथ चलने लगे तब "प्रतिमायन्तु देवताः प्रतिब्रह्म सुवीर्यम् । प्रतिक्षत्रं तु यद्बलं प्रतिमामैतु यद्यशः" इस मन्त्रको पढे ॥ ८ ॥ यदि मार्गमें किसी अमङ्गल वस्तुके समीप होकर निकलना पडे तो "अनुमायन्तु" मन्त्रका जप करे ॥ ९ ॥ यदि गांवमें होकर निकले तो "नमो रुद्राय ग्रामसदः" और "इमा रुद्राय" इन दो मन्त्रोंको जप ॥ १० ॥ यदि मार्गमें एक वृक्ष पडे तो "नमो रुद्रायैकवृक्षसदः" और "ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा" इन दो मन्त्रोंको जपे ॥ ११ ॥ यदि मार्गमें मरघट पडजावे तो "नमो रुद्राय श्मशानसदः" और "ये भूतानामधिपतयः" इन दो मन्त्रोंको जपे ॥ १२ ॥ यदि मार्गमें चौमुहानी राह पडे तो "नमो रुद्राय चतुष्पथसदः" और "ये पथां पथि रक्षयः" इन दो मन्त्रोंका जप करे ॥ १३ ॥ यदि मार्गमें कोई तीर्थ पडे तो "नमो रुद्राय तीर्थसदः" और "ये तीर्थानि प्रचरन्ति" इन दो मन्त्रोंको जपे ॥ १४ ॥ यदि मार्गमें पार उतरनेयोग्य नदी आदि जलाशय मिले तो अञ्जलीमें जल भरकर"समुद्राय वैणवे सिन्धूनां पतये नमः । नमो नदीनां सर्वासां पत्ये । विश्वाहा जुषतां विश्वकर्मणामिदं हविः स्वः स्वाहा" मन्त्रको पढकर उस जलाशयमें अञ्जलीके जलका होम कर देवे फिर तीनबार अपने शिर आदि अङ्गोंपर जलसे मार्जन करके "अमृतं वा आस्ये जुहोम्यायुः प्राणेऽप्यमृतं ब्रह्मणा सह मृत्युं तरात । प्रसहादिति रिष्टिरिति मुक्तिरिति मुक्षीयमाणः सर्वं भयं नुदस्व स्वाहा". मन्त्र पढे; उसके पश्चात् तीन बार आचमन करे ॥ १५ ॥ यदि नावसे पार उतरना होय तो, उसपर चढके." सुत्रामाणम्" मन्त्रका जप करे ॥ १६ ॥ यदि मार्गमें रथका पहिया, धुरी अथवा अन्य कोई अङ्ग टूटजावे तो उसको बनवाकरके साथमें लायेहुए विवाहाग्निको स्थापन करे. और उसमें जयादि होम करके "सुमङ्गलीरियं वधूः" मन्त्रको जपे बाद वधूके सहित "वधूं समेत पश्यत" मन्त्रको पढे ॥ १७ ॥ पति और पत्नी दोनों "व्युत्क्राम पन्थां जरितां जवेन । शिवेन वैश्वानर इडयास्याग्रतः । आचार्यो येनयेन प्रयाति तेनतेन सह"मन्त्रको पढकरः रथसे उतरें और पृथक् पृथक् चलें फिर बैठजावें ॥ १८ ॥ सूर्यास्त होनेपर गौओंके वनसे घर आनेके समय अथवा ब्राह्मणकी आज्ञानुसार अपने गांवमें प्रवेश करें ॥ १९ ॥

१४ खण्ड ।

अपरस्मिन्नहः सन्धौ गृहान्प्रपादयीत ॥१॥ प्रतिब्रह्मन्निति प्रत्यवरोहति ॥२॥ मङ्गलानि प्रादुर्भवन्ति ॥ ३ ॥ गोष्ठात्संततामुलपराजिं स्तृणाति ॥ ४ ॥ रथादध्योपासनात् । येष्वध्येति प्रवसन्येषु सौमनसं महत् । तेनोपह्वयामहे तेनोजानन्त्वागतम् ॥ इति तयाभ्युपैति ॥ ५ ॥ गृहानहं सुमनसः प्रपद्ये वीरं हि वीरवतः सुशेवा । इरां वहन्ती घृतमुक्षमाणास्तेष्वहं सुमनाः संवसाम॥इत्यभ्याहिताग्निं सोदकं सौषधमावसथं प्रपद्यते । रोहिण्या मूलेन वा यद्वा पुण्योक्तम्॥६॥ पश्चादग्नेरोहिते चर्मण्यानडुहे प्राग्ग्रीवे लोमतो दर्भानास्तीर्य तेषु वधूमुपवेशयत्यपि वा दर्भेष्वेव ॥७॥ अथास्यै ब्रह्मचारिणमुपस्थ आवेशयति । सोमेनादित्य बलिनः सोमेन पृथिवीमही । असौ नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ इति ॥ ८ ॥ अथास्य तिलतण्डुलानां फलमिश्राणामञ्जलिं पूरयित्वोत्थाप्य । अथास्यै ध्रुवमरुन्धतीं जीवन्तीं सप्तऋषीनिति दर्शयेत् ॥ ९ ॥ अच्युताध्रुवाध्रुवपत्नी ध्रुवं पश्येम सर्वतः ॥ ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुलेयम् ॥ इति तस्यां समीक्षमाणायां जपति ॥ १० ॥ श्वो भूते प्राजापत्यं पयसि स्थालीपाकं श्रपयित्वा तस्य जुहोति (आज्यशेषे) ॥ ११ ॥ चक्रीवानडुहो वामे वाङ्मैतु ते मनः । चाक्रवाकं संवननं तन्नो संवननं कृतम् ॥ इति यजमानस्त्रिः । प्राश्नाति । अवशिष्टं तूष्णीं पत्नी ॥ १२ ॥ अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञः । स व्याख्यातः ॥ १३ ॥

सन्ध्यासमय वहूको रथसे उतारकर घरमें प्रवेश करावे ॥ १ ॥ "प्रतिब्रह्मन्" मन्त्र पढकर बहूको रथसे उतारे ॥ २ ॥ उस समय दही आदि कोई मङ्गल वस्तु घरके भीतरसे लावे और मंगल सूचक मन्त्रादि उच्चारण होवे ॥ ३ ॥ रथसे घरके भीतरतक पूर्वको अग्रभाग करके कुश बिछावे ॥ ४ ॥ अध्वर्यु "येष्वध्येति प्रवसन्येपु सौमनसमहम् । तेनोपह्वमहे तेनोजानन्त्वागतम्" मन्त्रको पढताहुआ बिछायेहुए कुशोपर बहूको गृहमे ले चले ॥ ५ ॥ रोहिणी अथवा मूल नक्षत्रमे या अन्य ज्योतिःशास्त्रानुकूल मुहूर्तमे "गृहानहं सुमनसं प्रपद्ये वीरं हि वीरवतः सुशेवा । इरां वहन्तो घृतमुक्षमाणास्तेष्वहं सुमनाः संवसाम" मन्त्रको पढतेहुए और जलपूर्ण पात्रं, धानके लावा आदि और विवाहके अग्निको साथमें लियेहुए गृहमे प्रवेश करें ॥ ६ ॥ पश्चात् पहिलेसे वनायेहुए कुण्डमे अग्निका स्थापन करके उस अग्निसे पश्चिम ओर पूर्वको शिर और ऊपरको लोम करके लाल बैलका चर्म बिछावे उसपर कुश बिछाकर अथवा चर्मके अभावमें केवल कुशाओंपर बहूको बैठावे ॥ ७ ॥ इसके पश्चात् "सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही । असौ नक्षत्राणामेपामुपस्थे सोम आहितः" मन्त्रको पढकर किसी ब्रह्मचारीको बहूकी गोदीमे बैठावे ॥ ८ ॥ बाद फलमिश्रित तिल और चावलसे ब्रह्मचारीकी अञ्जली भरकर उसको उठा देवे । इसके अनन्तर ध्रुव, अरुन्धती, जीवन्ती (सप्तऋषियोंके बीचकी तारा) और सप्तर्षि ताराओंको बहूको दिखावे ॥ ९ ॥ जब बहू ताराओंको देखतीहो तब वर "अच्युता ध्रुवा ध्रुवपत्नी ध्रुवं पश्येम सर्वतः ॥ ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुलेयम्" मन्त्रको जपे ॥ १० ॥ दूसरे दिन प्रातःकाल प्रजापतिके लिये दूधमें स्थालीपाक पकाकर उससे "प्रजापतये स्वाहा" मन्त्रसे तूष्णी प्रधान होम करे ॥ ११ ॥ "चक्रीवानडुहौ वामे व इङ्गैतु ते ग्रनः । चक्रवाकं संवननं तन्नौ संवननं कृतम्" मन्त्रको पढ़कर हनवका शेष भाग तीन वार वर प्राशन करे और पतिके प्राशनसे वचेहुए भागको विना मन्त्रके ३ वार पत्नी प्राशन करे ॥ १२॥ उसी दिन अपराह्णमे पिण्डपितृयज्ञ करे ॥ १३ ॥

अन्यवर्णकी कन्यासे विवाह ६.

(१) मनुस्मृति–३ अध्याय ।

सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि । कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो वराः ॥ १२ ॥
शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते । ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः१३॥

द्विजातियोके लिये प्रथम विवाहमें अपने वर्णकी स्त्रीही श्रेष्ठ है; कामके वश होकर उनके पुनर्विवाह करनेपर नीचे लिखेहुए क्रमसे स्त्रियां श्रेष्ठ होतीहै ॥१२ ॥ शूद्रकी स्त्री केवल शूद्रा, वैश्यकी स्त्री वैश्या और शूद्रा, क्षत्रियकी स्त्री क्षत्रिया,वैश्या और शूद्रा और ब्राह्मणकी स्त्री ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या और शूद्रा❀॥१३॥

न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः । कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते ॥ १४ ॥
हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः । कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्तानानि शूद्रताम् ॥ १५ ॥
शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्यतनयस्य च । शौनकस्य सुतोत्पत्त्या तदपत्यतया भृगोः ॥ १६ ॥
शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् । जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥ १७ ॥
दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु । नाश्नन्ति पितृदेवास्तन्न च स्वर्गं स गच्छति ॥ १८ ॥
वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च । तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ १९ ॥

किसी वृत्तान्तमें नहीं देखा जाताहै कि विपत्कालमे भी ब्राह्मण अथवा क्षत्रियने शूद्रासे विवाह कियाथा ॥ १४ ॥ जो द्विज मोहवश होकर शूद्रा स्त्रीसे विवाह करताहै वह अपनी सन्तान और कुलके सहित शीघ्रही शूद्र होजाताहै ॥ १५ ॥ अत्रि और गौतमके मतसे शूद्रासे विवाह करनेसेही, शौनकके मतसे शूद्रासे सन्तान उत्पन्न करनेपर ओर भृगुके मतसे शूद्रासे उत्पन्न सन्तानकी सन्तान होनेपर द्विज पतित होतेहै ॥ १६ ॥ शूद्रा स्त्रीसे गमन करनेवाला ब्राह्मण नरकमें जाताहै और उससे पुत्र उत्पन्नकरनेवालेका ब्राह्मणत्व भ्रष्ट होजाताहै ॥ १७ ॥ जिस द्विजके देवकार्य, पितरकार्य और अतिथिकार्यमें गृहिणी होकर शूद्रा स्त्री रहतीहै उसका हव्य कव्य देवता और पितर लोग ग्रहण नही करतेहै और उस कर्मसे उसको स्वर्ग नहीं मिलताहै ॥ १८ ॥ शूद्रा स्त्रीके ओठका रस पीनेवाले, उसका श्वास ग्रहण करनेवाले और उसमें पुत्र उत्पन्न करनेवाले द्विजके प्रायश्चित्तका विधान नहीहै ✠ ॥ १९ ॥

❀ बौधायनस्मृति–१ प्रश्न–८ अध्यायके २–५ अङ्क । वर्णक्रमसे ब्राह्मणकी ४ स्त्री अर्थात् ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा; इसी प्रकार क्षत्रियकी ३ स्त्री; वैश्यकी २ स्त्री और शूद्रकी १ स्त्री होतीहै ।

✠ पाराशरस्मृति–१२ अध्याय–३३ श्लोक और व्यासस्मृति–४ अध्याय–६८ श्लोक । जो द्विज शूद्रा स्त्रीसे भोजन बनवाताहै और जिसके घरमें शूद्राही स्त्री है वह पितर और देवताओंसे वर्जित होकर रौरव नरकमें जाताहै । शङ्खस्मृति–४ अध्याय । द्विजको उचित है कि आपत्कालमें भी शूद्रकी कन्यासे–

९ अध्याय ।

यदि स्वाश्च पराश्चैव विन्देरन्योषितो द्विजाः । तासां वर्णक्रमेण स्याज्ज्यैष्ठं पूजा च वेश्म च ॥८५॥
भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मकार्यं च नैत्यकम् । स्वा चैव कुर्यात्सर्वेषां नास्वजातिः कथञ्चन ॥८६ ॥
यस्तु तत्कारयेन्मोहात्सजात्या स्थितयान्यया । यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः ॥ ८७ ॥

द्विजको उचित है कि यदि उसकी अनेक वर्णकी अनेक स्त्रियां होवें तो वर्णके अनुसार बड़ाई और स्थान देवे तथा उनका सम्मान करे ॥ ८५ ॥ अपनी जातिकी स्त्रीको ही पतिके शरीरकी सेवा, धर्म-सम्बंधी काम और रसोई आदि घरके नित्यकर्म करनेका अधिकार है अन्य वर्णकी स्त्रीको कभी नहीं ॥ ८६ ॥ जो मोहवश होकर अन्य वर्णकी अपनी भार्यासे इन कामोंको करवाताहै वह चाण्डालके तुल्य है ※ ॥ ८७ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय ।

यदुच्यते द्विजातीनां शूद्राद्दारोपसंग्रहः न तन्मम मतं यस्मात्तत्रात्मा जायते स्वयम् ॥ ५६ ॥
तिस्रो वर्णानुपूर्व्येण द्वे तथैका यथाक्रमम् । ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्या स्वा शूद्रजन्मनः ॥ ५७ ॥

शूद्रकी कन्यांसे द्विजातियोंके विवाहकी बातें जो कही गईहैं उनमें मेरी सम्मति नहींहै; क्योंकि भार्यामें आत्मा स्वयं उत्पन्न होताहै ॥ ५६ ॥ ब्राह्मणकी ३ भार्या (ब्राह्मणी, क्षत्रिया और वैश्या) क्षत्रियकी २ भार्या (क्षत्रिया और वैश्या), वैश्यकी १ भार्या (वैश्या) और शूद्रकी १ भार्या (शूद्रा) ही होतीहै ◎ ॥ ५७ ॥

(१४) व्यासस्मृति-२ अध्याय ।

ऊढायां हि सवर्णायामन्यां वा काममुद्वहेत् ॥ ९ ॥
तस्यामुत्पादितः पुत्रो न सवर्णात्प्रहीयते । उद्वहेत् क्षत्रियां विप्रो वैश्यां च क्षत्रियो विशाम् ॥१० ॥
न तु शूद्रां द्विजः कश्चिन्नाधमः पूर्ववर्णजाम् ॥ ११ ॥

प्रथम अपने वर्णकी कन्यासे विवाह करके तब यदि भोगकी विशेष इच्छा होवे तो अन्य वर्णकी कन्यासे विवाह करे; ऐसा करनेसे सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र असवर्ण नहीं होगा अर्थात् पिताके वर्णका होगा ॥ ९-१० ॥ ब्राह्मण क्षत्रिया और वैश्यासे और क्षत्रिय वैश्यासे विवाह करसकताहै; परन्तु किसी द्विजको शूद्रासे और किसी वर्णके मनुष्यको अपनेसे उत्तम वर्णकी कन्यासे विवाह करनेका अधिकार नहीं है ॥ १०-११ ॥

(२६) नारदस्मृति १२-विवादपद ।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परिग्रहे । सजातिः श्रेयसी भार्या सजातिश्च पतिः स्त्रियाः ॥ ४ ॥
ब्राह्मणस्यानुलोम्येन स्त्रियोन्यास्तिस्र एव तु । शूद्रायाः प्रातिलोम्येन तथान्ये पतयस्त्रयः ॥ ५ ॥
द्वे भार्ये क्षत्रियस्यान्ये वैश्यस्यैका प्रकीर्तिता । वैश्याया द्वौ पती ज्ञेयावेकोन्यः क्षत्रियापतिः ॥ ६॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र; इन सबको अपनी जातिकी भार्या श्रेष्ठ होतीहै और स्त्रियोंको अपनी जातिका पति उत्तम है ॥ ४ ॥ ब्राह्मणको अनुलोम (सीधा) क्रमसे ३ और स्त्रियां होतीहैं (क्षत्रिया,

---

-विवाह नहीं करे; क्योंकि शूद्रासे उत्पन्न सन्तानके द्विज होनेका कोई प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ९ ॥ द्विजकी शूद्रा स्त्रीका पुत्र श्राद्धके समय सपिण्डी नहीं करसकता है इसलिये शूद्रकी कन्यासे कभी विवाह नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥

※ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय-८८ श्लोक । सवर्णा भार्या रहनेपर अन्य वर्णकी भार्यासे धर्म सम्बन्धी कार्य नहीं करावे और बहुतसी सवर्णा भार्या रहनेपर बड़ी भार्याको छोड़कर अन्य स्त्रीको धर्मकार्यमें नहीं लगावे । कात्यायनस्मृति-८ खण्ड—६ श्लोक और व्यासस्मृति—२ अध्यायके ११-१२ श्लोकोंमें प्रायः ऐसा है ।

◎ शङ्खस्मृति-४ अध्यायके ६-७ श्लोकमें ५७ श्लोकके समान है और ७-८ श्लोकमें है कि ब्राह्मणी, क्षत्रिया और वैश्या ब्राह्मणकी भर्या; क्षत्रिया और वैश्या क्षत्रियकी भार्या; वैश्या वैश्यकी भार्या और शूद्रा शूद्रकी भार्या होतीहै ।

वैश्या और शूद्रा) और शूद्राको प्रतिलोम (उलटा) क्रमसे ३ और पति होतेहैं (वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण) ॥ ५ ॥ क्षत्रियको अनुलोम क्रमसे अन्य २ स्त्री (वैश्या और शूद्रा) और वैश्यको अनुलोम क्रमसे अन्य १ स्त्री होतीहै (शूद्रा) और वैश्याका२ पति (क्षत्रिय और ब्राह्मण) और क्षत्रियाका प्रतिलोम क्रमसे अन्य प्रतिलोम क्रमसे अन्य१पति होताहै (ब्राह्मण) ॥ ५-६ ॥

पुरुषका पुनर्विवाह ७.

(१) मनुस्मृति–५ अध्याय।

एवं वृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम्। दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ १६७ ॥
भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि। पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥ १६८ ॥
अनेन विधिना नित्यं पञ्च यज्ञान्न हापयेत्। द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १६९ ॥

धर्मको जाननेवाले द्विजातिको उचित है कि यदि उसकी सद्वृत्तशालिनी सवर्णा स्त्री उससे पहिले मरजावे तो अग्निहोत्रकी आग और यज्ञके पात्रोंसे उसका दाह करे ॥ १६७॥ उसकी प्रेतक्रिया समाप्त करनेके पश्चात् फिर अपना दूसरा विवाह करके अग्निहोत्र ग्रहण करे ॥ १६८ ॥ पूर्वोक्त विधिसे सदा पञ्च महा यज्ञकरे इस प्रकारसे विवाह करके अपनी आयुका दूसरा भाग गृहस्थाश्रममें बितावे ॥ १६९ ॥

९ अध्याय।

मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत्। व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिंस्राऽर्थघ्नी च सर्वदा॥८०॥
वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा। एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥ ८१ ॥
या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः। सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित्॥८२
अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रुषिता गृहात्। सा सद्यः सन्निरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ॥८३

पतिको उचित है कि मदिरा पीनेवाली, निषिद्ध आचरण करनेवाली, पतिसे विमुख रहनेवाली असाध्य रोगसे पीड़ित, गर्भ आदि नाश करनेवाली अथवा बहुत खरच करके धन नष्ट करनेवाली स्त्रीके रहतेहुए अपना दूसरा विवाह करलेवे ॥ ८० ॥ यदि स्त्री वन्ध्या होवे तो ८ वें वर्ष, उसकी सब सन्तान मरजाती होवें तो १० वें वर्ष और उसको केवल कन्याही उत्पन्न होती होवें तो ११ वें वर्ष अपना दूसरा विवाह करे; किन्तु यदि स्त्री सदा अप्रिय बोलनेवाली होवे तो शीघ्रही अपना दूसरा विवाह करलेवे ॥८१ ॥ रोगिणी स्त्री भी यदि पतिके हितमें तत्पर और सुशीला होवे तो उसकी बिना अनुमतिसे अपना दूसरा विवाह नहीं करे; वह निरादर करनेयोग्य नहीं है॥८२॥ दूसरा विवाह करनेपर यदि पहिली स्त्री कुपित होकर घरसे बाहर निकले तो शीघ्र उसको रोककर रक्खे अथवा क्रोध शान्तिके लिये उसको पिताके घर पहुंचा देवे ॥८३॥

११ अध्याय।

कृतदारोऽपरान्दारान्भिक्षित्वा योऽधिगच्छति। रतिमात्रं फलं तस्य द्रव्यदातुस्तु सन्ततिः ॥ ५ ॥

जब कोई ब्राह्मण पहली स्त्रीके रहनेपर किसीसे धन याचना करके अपना दूसरा विवाह करताहै तब उसको उस विवाहसे केवल रति फल मिलताहै; पछिली स्त्रीसे उत्पन्न सन्तान धन देनेवालेकी हैं ॥ ५ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति--१ अध्याय।

गर्भभर्तृवधादौ च तथा महति पातके ॥ ७२ ॥
सुरापी व्याधिता धूर्ता वन्ध्यार्थघ्न्यप्रियंवदा। स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा ॥ ७३ ॥
अधिविन्ना तु भर्तव्या महदेनोन्यथा भवेत् ॥ ७४ ॥

पुरुषको उचित है कि गर्भपात करानेवाली, भर्त्ताके वधका उद्योग करनेवाली, महापातकी, मदिरा पीनेवाली, सदा रोगग्रस्त रहनेवाली, धूर्ता, वन्ध्या, बहुत खरच करके धननाश करनेवाली, अप्रिय वचन बोलनेवाली, सदा कन्याही जननेवाली और पतिसे द्वेष रखनेवाली स्त्रीके जीवित रहनेपरही अपना दूसरा विवाह कर लेवे ॥ ७२-७३ ॥ दूसरा विवाह करनेपर उचित रीतिसे पहिली स्त्रीका पालन करे; क्योंकि उसका पालन नहीं करनेसे भारी पातक लगेगा ॥ ७४ ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति--१ अध्यायके ८९ श्लोकमें प्रायः ऐसाहै।

बौधायनस्मृति--२ प्रश्न--२ अध्याय,--६५ श्लोक। पुरुषको चाहिये कि यदि स्त्रीको सन्तान नहीं उत्पन्न होवे तो १० वर्षमें, उसको केवल कन्याही उत्पन्न होवे तो १२ वर्षमें, उसकी सब सन्तान मरजाती होवें तो १५ वर्षमें उसको छोड़देवे अर्थात् अपना दूसरा विवाह करलेवे; किन्तु यदि वह अप्रिय बोलनेवाली होवे तो शीघ्रही अपना दूसरा विवाह करे।

२ अध्याय ।

अधिविन्नस्त्रियै दद्यादाधिवेदनिकं समम् । न दत्तं स्त्रीधनं यस्यै दत्ते त्वर्द्धं प्रकीर्तितम् ॥ १५२ ॥

यदि पति अपना दूसरा विवाह करे और यदि पहिली स्त्रीको स्त्रीधन ❀ नहीं मिला होवे तो दूसरे विवाहमें जितना धन खरच पड़े उतना धन पहिली स्त्रीको देवे; किन्तु यदि उसको स्त्रीधन मिला होवे तो विवाहके खरचका आधा देवे ॥ १५२ ॥

(१४) व्यासस्मृति-२ अध्याय ।

धूर्तां च धर्मकामघ्नीमपुत्रां दीर्घरोगिणीम् । सुदुष्टां व्यसनासक्तामहितामधिवासयेत् ॥ ५० ॥

धूर्त्ता, धर्म तथा कामको नष्ट करनेवाली, पुत्रहीना, अर्थात् सदा पुत्री जननेवाली, सदा रोगिणी अति दुष्टा, मदपान आदिव्यसनमें आसक्त रहनेवाली और हितकार्य नहीं करनेवाली स्त्रीके रहनेपरभी पति अपना दूसरा विवाह करलेवे ॥ ५० ॥

स्त्रीका पुनर्विवाह ❀ ८.

(१) मनुस्मृति-९ अध्याय ।

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया । उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥ १७५ ॥
सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा । पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥ १७६ ॥

जब स्त्री पतिके त्यागदेनेपर अथवा विधवा होजानेपर अपनी इच्छासे अन्य पुरुषकी भार्या बनकर पुत्र उत्पन्न करतीहै तब वह पुत्र पौनर्भव पुत्र कहा जाताहै ॥ १७५ ॥ वह स्त्री पुरुष सहवाससे बचकर यदि दूसरे पतिके पास जावे तो दूसरा पति उससे विवाह संस्कार करे अथवा पतिके त्याग देनेपर पुरुषके सहवाससे बचकर अन्यके घरसे अपने पहिले पतिके पास लौट आवे तो पहिला पति उससे फिर विवाह संस्कार करे;ऐसी स्त्री अपने पतिकी पुनर्भू पत्नी कही जातीहै ॥ १७६ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय ।

अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः । स्वैरिणी या पतिं हित्वा सवर्णं कामतः श्रयेत् ॥ ६७ ॥

कन्या चाहे पुरुषसहवाससे बची हो चाहे पुरुषसहवाससे दूषित हुईहो दूसरी बार विवाह होनेसे पुनर्भू कही जातीहै और जो कन्या अपनी इच्छासे पतिको छोड़कर अपने वर्णके किसी पुरुषको ग्रहण करतीहै वह स्वैरिणी कहलातीहै ◎ ॥ ६७ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति--२ अध्यायके १४७-१४८ श्लोक । पिता, माता, पति, और भाईसे मिलाहुआ; विवाहके समय मिलाहुआ, दूसरा विवाह करनेके समय पतिका दियाहुआ, बन्धुजनोंसे मिलाहुआ, कन्याका मूल्य मिलाहुआ और विवाहके बाद पतिके कुलसे स्त्रीको मिलाहुआ धन स्त्रीधन कहलाताहै ।

❀ स्त्रीके अन्य पति करनेका विवरण स्त्रीप्रकरणमें देखिये ।

◎ नारदस्मृति-१२ विवादपद । अन्य ७ प्रकारकी यथाक्रमसे परपूर्वा स्त्री होतीहैं; उनमें ३ प्रकारकी पुनर्भू और ४ प्रकारकी स्वैरिणी कहलातीहैं ॥ ४५-४६ ॥ जो कन्या पुरुषसहवाससे बची होय; किन्तु पाणिग्रहण उसका होगया हो, उसका फिर विवाह होनेसे वह प्रथम पुनर्भू कही जातीहै ॥ ४६-४७ ॥ जो स्त्री कौमार अवस्थाके अपने पतिको छोड़कर दूसरे पुरुषका आश्रय करतीहै और पीछे फिर अपने पतिके घर आजातीहै वह दूसरे प्रकारकी पूनर्भू कहलाती है ॥ ४७-४८ ॥ जिस स्त्रीके बान्धवलोग देवरके नहीं रहनेपर उसको सवर्ण तथा सपिण्ड पुरुषको देदेतेहैं वह तीसरे प्रकारकी पुनर्भू कहीजातीहै ॥ ४८-४९ ॥ जिस स्त्रीका पति जीवित है उसको सन्तान हुईहो अथवा नहीं हुई हो वह यदि इच्छासे अन्य पुरुषका आश्रय करलेती है तो वह प्रथम प्रकारकी स्वैरिणी कहलातीहै ॥ ४९-५० ॥ जो स्त्री पतिके मरनेपर देवर आदि किसीके पास रहनेके बाद इच्छापूर्वक अन्य पुरुषके पास चली जातीहै वह दूसरे प्रकारकी स्वैरिणी कहीजातीहै ॥५०-५१॥ जो स्त्री क्षुधा तृषासे पीड़ित हो किसीके शरणमें आजातीहै और वह पुरुष दाम देकर उसको मोल लेताहै वह तीसरे प्रकारकी स्वैरिणी कहलातीहै ॥ ५१-५२ ॥ दूसरे पति करनेका साहस देखकर जिसके बड़े लोग देश धर्मकी रक्षाके लिये जिससे अन्य पुरुषको देदेतेहैं वह चौथे प्रकारकी स्वैरिणी कही जातीहै इस प्रकारसे पुनर्भू और स्वैरिणी स्त्रियोंकी विधि कही गईहै ॥ ५२-५३ ॥ इनमें क्रमसे पीछेवालीसे पहिलेवाली अधम और पहिलीसे पिछली श्रेष्ठ है ॥ ५४ ॥

(१९) शातातपस्मृति ।

उद्वाहिता च या कन्या न संप्राप्ता च मैथुनम् । भर्त्तारं पुनरभ्येति यथा कन्या तथैव सा ॥ ४४ ॥
समुद्गृह्य तु तां कन्यां सा चेदक्षतयोनिका । कुलशीलवते दद्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ॥ ४५ ॥

जिस कन्याका विवाह हो चुकाहो; किन्तु पतिसे सहवास नहीं हुआहो वह (पतिके मरजानेपर) दूसरा पति प्राप्त करे; क्योंकि वह अविवाहिता कन्याके समान है ॥ ४४॥ महर्षि शातातपने कहाहै कि यदि ऐसी कन्या पतिके सहवाससे बचीहोवे तो उसको ग्रहण करके कुलीन और शीलवान् पुरुषके साथ विवाह करदेना चाहिये ॥ ४५ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति–१७ अध्याय ।

अद्भिर्वाचा च दत्तायां म्रियेतादौ वरो यदि । न च मन्त्रोपनीता स्यात्कुमारी पितुरेव सा ॥ ६४ ॥
बलाच्चेत्प्रहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता । अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा ॥ ६५ ॥
पाणिग्राहे मृते बाला केवलं मन्त्रसंस्कृता । सा चेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति ॥ ६६ ॥

जल अथवा वाक्य द्वारा कन्यादान हो चुकाहो; किन्तु मन्त्रोंसे विवाहकार्य पूरा नहीं हुआहो; यदि उस समय वर मरजावे तो वह कन्या अपने पिताकी कुमारी कन्या समझीजावेगी ॥ ६४ ॥ मन्त्रोंद्वारा विवाहसंस्कार होनेसे पहिले यदि किसीने बलपूर्वक कन्याको हरलिया हो तो वह कन्या विधिपूर्वक अन्य वरको देदेनी चाहिये; क्योंकि वह अविवाहिता कन्याके समान है ॥ ६५ ॥ कन्याका पाणिग्रहण मन्त्रपूर्वक हुआ होवे; किन्तु पतिसे उसका सहवास होनेसे पहिलेही उसका पति मरजावे तो दूसरे वरके साथ उसका विवाह करदेना चाहिये ❀ ॥ ६६ ॥

स्त्रीप्रकरण १३.

स्त्रीके विषयमें उसके पति आदि सम्बन्धियोंका कर्तव्य और स्त्रीकी शुद्धता ✿ १.

(१) मनुस्मृति–३ अध्याय ।

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा । पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ५५ ॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवताः । यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ ५६ ॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् । न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥ ५७ ॥

स्त्रीके पिता, भाई, पति और देवरको उचित है कि यदि अपना अधिक कल्याण चाहे तो सदा उसको भोजन आदिसे पूजित और वस्त्र, भूषणादिसे भूषित करे ॥ ५५ ॥ जहां स्त्रियोंका आदर होताहै वहां देवगण प्रसन्न रहतेहैं और जहां उनका आदर नहीं होता वहांकी सब क्रिया निष्फल होतीहैं ॥ ५६ ॥ जिस कुलमें स्त्रियां दुःख पातीहैं उस कुलका शीघ्रही नाश होताहै और जिस कुलमें वे सुखी रहतीहैं उस कुलकी सदा धन आदिसे वृद्धि होतीहै ॥ ५७ ॥

९ अध्याय ।

अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् । विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे२
पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने । रक्षन्ति स्थाविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ ३ ॥
कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्पतिः । मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता ॥ ४ ॥
सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः । द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ ५ ॥
इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम् । यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्तारो दुर्बला अपि ॥ ६ ॥
स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च । स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति ॥ ७ ॥
पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते । जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥ ८ ॥
यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम् । तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥ ९ ॥

❀ बौधायनस्मृति—४ प्रश्न१ अध्यायका१६ श्लोक६५ श्लोकके समान है और१७-१८श्लोकमें है कि विधिपूर्वक विवाह होजानेपर कन्याका पति मरजावे तो यदि वह पतिके सहवाससे बंचकर अपने पिताके घर चलीआवे तो पौनर्भव विधिसे उसका दूसरा विवाहसंस्कार करदेना चाहिये ।

✿ स्त्रियोंके प्रायश्चित्तका विवरण प्रायश्चित्तप्रकरणमें देखिये

न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम्। एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम् ॥ १० ॥
अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत्। शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च परिणाह्यस्य वेक्षणे ॥ ११ ॥

पुरुषको उचित है कि दिन रातमें किसी समय स्त्रीको स्वतन्त्ररीतिसे नहीं रहनेदेवे; जो स्त्री रूप, रस आदि विषयोंमें आसक्त हो उसको अपने वशमें रक्खे ॥ २ ॥ कुमारी अवस्थामें पिता, युवा अवस्थामें पति और वृद्ध अवस्थामें पुत्र स्त्रीकी रक्षा करें; स्त्री कभी स्वतन्त्र नहीं रहे * ॥३॥ समयपर कन्याका विवाह नहीं करनेपर उसका पिता ऋतुकालमें स्त्रीसे मैथुन नहीं करनेपर उसका पति और स्त्रीके विधवा होनेपर उसकी रक्षा नहीं करनेसे उसके पुत्र निन्दायोग्य होतेहैं ॥ ४ ॥ थोड़े कुसङ्गसे भी यत्न पूर्वक स्त्रियोंको बचाना चाहिये; क्योंकि उस विषयमें आलस्य करनेसे वे पिता और पति, इन दोनों कुलोंको सन्ताप देतीहैं ॥ ५ ॥ उत्तम धर्मके जाननेवाले सब वर्णके मनुष्योंको उचित है कि अपने दुर्बल रहनेपरभी यत्नपूर्वक अपनी अपनी भार्याकी रक्षा करें ॥ ६ ॥ अपनी स्त्रीकी रक्षा करनेसे अपने चरित्र, वंशपरम्परा तथा अपने धर्मकी रक्षा होतीहै, इसलिये स्त्रीकी रक्षा करनेका यत्न करना चाहिये ॥ ७ ॥ पति वीर्यरूपसे भार्याके शरीरमें प्रवेश करके पुत्ररूपसे जन्मताहै; स्त्रीसे पुनर्वार जन्मनेके कारण भार्याका जाया नाम होताहै ॥ ८ ॥ जो स्त्री जैसे पतिकी सेवा करतीहै वह ठीक वैसेही पुत्रको जनतीहै, इसलिये शुद्ध सन्तान पानेकी इच्छासे भार्याकी सदा रक्षा करना उचित है ॥ ९ ॥ बलसे स्त्रीकी रक्षा नहीं होसकतीहै इसलिये नीचे कहेहुए उपायोंसे स्त्रीकी रक्षा करे ॥ १० ॥ धन संग्रहकरने, खरच करने, अपने शरीर तथा गृह आदिकी शुद्धि करने, अग्नि और पति आदिकी सेवा करने, रसोई बनाने तथा घरकी सामग्रियोंपर दृष्टि रखनेके कामोंमें स्त्रीको सदा नियुक्त करे ॥ ११ ॥

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्। स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षट् ॥ १३ ॥
नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः। सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥ १४ ॥
पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैःस्नेह्याच्च स्वभावतः। रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते ॥ १५ ॥
एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापतिनिसर्गजम्। परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥ १६ ॥
शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमनार्जवम्। द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत् ॥ १७ ॥
नास्ति स्त्रीणां क्रियामन्त्रैरिति धर्मो व्यवस्थितः।निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः१८

मदिरापान, दुर्जनोंका संसर्ग, पतिका विरह, पर्यटन, कुसमयका शयन और दूसरेके घरमें निवास; ये ६ स्त्रियोंके व्यभिचारदोषके कारण हैं ॥ १३ ॥ स्त्रियां पुरुषकी सुन्दरताई अथवा अवस्थाका विचार नहीं करती हैं; सुरूप होय अथवा कुरूप होय पुरुषको पानेसेही संभोग करतीहैं ॥ १४ ॥ पुरुषके देखनेसे संभोगकी इच्छा होनेके कारण और चित्तकी चञ्चलता और स्वभावसे स्नेहरहित होनेके कारण यत्नपूर्वक रक्षित स्त्रियां भी पतिके विरुद्ध व्यभिचार करतीहैं॥ १५ ॥ ब्रह्माजीने इसी प्रकारका स्त्रियोंका स्वभाव बनायाहै इसलिये पुरुष यत्नपूर्वक अपनी स्त्रीकी रक्षा करे ॥ १६ ॥ मनुजीने स्त्रियोंकेही लिये शय्या, आसन, अलङ्कार, काम, क्रोध, कुटिलता, द्रोहभाव और कुत्सित आचारकी कल्पना की है ॥ १७ ॥ स्त्रियोंके जातकर्म आदि संस्कार मन्त्रसे नहीं होतेहैं और इनको श्रुतिस्मृतियोंका अधिकार नहीं है और पाप दूर होनेवाले जपमन्त्रोंसे रहित हैं ऐसी धर्मकी मर्यादा है ॥ १८ ॥

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः। स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ २६ ॥
उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्। प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥ २७ ॥
अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा। दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह ॥ २८ ॥

स्त्रियां सन्तान उत्पन्न करके महा कल्याण करनेवाली माननीया और घरकी शोभा बढ़ानेवाली होतीहैं; घरके बीच स्त्री और श्रीमें कुछ विशेषता नहींहै अर्थात् स्त्री लक्ष्मीके समान है ॥ २६ ॥ स्त्रीही सन्तान उत्पन्न, सन्तानके पालन और नित्यके लौकिक कार्यके निर्वाहका मुख्य साधन है ॥ २७ ॥ सन्तानकी प्राप्ति, अग्निहोत्र आदि धर्मकार्य, सेवा, श्रेष्ठ रति, पितरगण तथा अपनी स्वर्गप्राप्ति भार्याकेही आधीन है ॥ २८ ॥

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह। विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना ॥ ४५॥
न निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या विमुच्यते। एवं धर्मं विजानीमः प्राक्प्रजापतिनिर्मितम् ॥ ४६ ॥

---

* याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय–८५ श्लोक, व्यासस्मृति–२ अध्यायके ५३–५४ श्लोक, वसिष्ठ स्मृति—५ अध्यायके ४ श्लोक और नारदस्मृति–१३ विवादपदके ३०–३१ श्लोकमें मनुस्मृतिके ३ श्लोकके समान है; याज्ञवल्क्यस्मृतिमें लिखाहै कि यदि पिता, पति और पुत्र कोई नहीं होवे तो जातिके लोग स्त्रीकी रक्षा करें।

वेदजाननेवाले ब्राह्मण कहतेहैं कि पुरुष अपनी भार्या, सन्तान और देहके सहित पूर्व शरीरको प्राप्त करताहै; पति अपनी भार्यासे अलग नहीं है ॥ ४५ ॥ विधाताने पहिलेसेही नियम बनायाहै कि बेंचदेने अथवा त्यागदेनेसेभी स्त्री अपने पतिके भार्यापनसे नहीं छूटेगी ॥ ४६ ॥

विधाय वृत्तिं भार्यायां प्रवसेत्कार्यवान्नरः। अवृत्तिकर्शिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ॥ ७४ ॥

कार्यके लिये विदेशमें जानेवाले पुरुषको उचित है कि अपनी स्त्रीको भरण पोषणके लिये धन देकर विदेशमें जावे; क्योंकि जीविकाका प्रबंध नहीं रहनेपर उत्तम चरित्रवाली स्त्रियां भी कुमार्गमें चलनेवाली होजातीहैं ॥ ७४ ॥

संवत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्तीं योषितं पतिः। ऊर्ध्वं संवत्सरात्त्वेनां दायं हृत्वा न संवसेत् ॥ ७७ ॥

अतिक्रामेत्प्रमत्तं या मत्तं रोगार्त्तमेव वा। सा त्रीन् मासान् परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा ॥७८॥

उन्मत्तं पतितं क्लीवमबीजं पापरोगिणम्। न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्तनम् ॥ ७९ ॥

पतिका धर्म है कि अपनेसे द्वेष रखनेवाली स्त्रीकी एक वर्षतक प्रतीक्षा करे, इतने दिनोंमें यदि उसका द्वेषभाव नहीं छूटे तो अपने दियेहुए भूषण आदि छीनकर उसका सङ्ग छोड़देवे ॥ ७७ ॥ जो स्त्री जूआ आदि प्रमादवाले, मद आदिसे मतवाले अथवा रोगी पतिका निरादर करतीहै उसके भूषण आदि छीनकरके ३ महीनेतक पति उसको त्यागदेवे; किन्तु उन्मत्त, पतित, नपुंसक, वीर्यरहित अथवा कोढ़ आदि पापरोगी पतिसे द्वेष रखनेवाली स्त्रीका त्याग नहीं करे तथा उसका भूषण आदि नहीं छीने ॥ ७८-७९ ॥

११ अध्याय।

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि। यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद् व्रतम् ॥ १७७ ॥

सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपयन्त्रिता। कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम् ॥ १७८ ॥

पतिको उचित है कि व्यभिचारिणी स्त्रीको एक घरमें बंद रक्खे और परकी स्त्रीसे गमन करनेवाले पुरुषके लिये जो प्रायश्चित्त कहागया है वही प्रायश्चित्त उससे करवावे; यदि वह फिर अपनी जातिके पुरुषके साथ व्यभिचार करे तो उसकी शुद्धिके लिये उससे चान्द्रायणव्रत करवावे ॥ १७७-१७८ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय।

हृताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपजीविनीम्। परिभूतामधः शय्यां वासयेद्व्यभिचारिणीम् ॥ ७० ॥

सोमः शौचं ददावासां गन्धर्वश्च शुभां गिरम्। पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्या वै योषितो ह्यतः ॥७१ ॥

व्यभिचारिणी स्त्रीको गृहके सब अधिकारोंसे रहितकरके मैले वस्त्र पहनाकर केवल जीवन निर्वाह योग्य भोजन देकर अनादरके साथ सदा भूमिपर सुलाना चाहिये ॥ ७०॥ स्त्रियोंको चन्द्रमाने शौच, गन्धर्वने मधुर वचन और अग्निने सब प्रकारकी पवित्रता दीहै इस कारणसे वे पवित्र होतीहैं ॥ ७१ ॥

व्यभिचाराद्दतौ शुद्धिर्गर्भे त्यागो विधीयते ॥ ७२ ॥

व्यभिचारिणी स्त्री ऋतुकाल होनेपर और पर पुरुषसे गर्भ धारण करनेवाली स्त्री गर्भको त्यागनेपर अर्थात् सन्तान उत्पन्न होनेपर शुद्ध होजातीहै ॥ ७२ ॥

आज्ञासम्पादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम्। त्यजन्दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्यो भरणं स्त्रियाः ॥ ७६ ॥

जो पुरुष आज्ञा पालन करनेवाली, गृहके काममें चतुर, पुत्र जननेवाली तथा प्रियवचन बोलनेवाली स्त्रीको छोड़देवे उससे राजा उसके धनका तीसरा भाग उस स्त्रीको दिलावे, यदि वह पुरुष निर्धन होवे तो उससे जन्मपर्यन्त उस स्त्रीका पालन करावे ॥ ७६ ॥

लोकानंत्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः। यस्मात्तस्मात्स्त्रियः सेव्याः कर्त्तव्याश्च सुरक्षिताः ॥७८॥

भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः। बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥ ८२ ॥

अत्रिस्मृतिके १३७-१३८ श्लोक, बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र--४ अध्याय-६२ श्लोक, वसिष्ठस्मृति--२८अध्यायके ६ श्लोक और बौधायनस्मृति--२ प्रश्न--२ अध्यायके ६४ श्लोकमें ७१ श्लोकके समान है।

बृहद्यमस्मृति-४ अध्याय-३६ श्लोक। यमका कहना सत्य है कि व्यभिचारिणी स्त्री ऋतुकाल आनेपर निःसन्देह शुद्ध होजातीहै और व्यभिचारसे गर्भ धारण करनेवाली सन्तान उत्पन्न होनेपर शुद्ध होतीहै। अत्रिस्मृति--१९१-१९३ श्लोक और देवलस्मृति-५०-५१ श्लोक। अन्य वर्णके पुरुषसे गर्भ धारण करनेवाली स्त्री जबतक सन्तान उत्पन्न नहीं करतीहै तभी तक अशुद्ध रहतीहै; सन्तान उत्पत्तिके पश्चात् रजस्वला होनेपर निर्मल सोनाके समान वह शुद्ध होजातीहै। मनुस्मृति--५ अध्याय-१०८ श्लोक। दुष्ट चित्तवाली स्त्री रजस्वला होनेपर शुद्ध होतीहै।

पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र द्वारा अनन्त लोक और स्वर्ग मिलताहै, इसलिये यत्नसे स्त्रियोंका पालन और उनकी रक्षा करना चाहिये ॥ ७८ ॥ स्त्रीके पति, भाई, पिता, जातिके लोग, सासु, ससुर, देवर और बन्धुओंको उचित है कि भूषण, वस्त्र और अन्नसे उसका सत्कार करतेरहें ॥ ८२ ॥

३ अध्याय ।

नीचाभिगमनं गर्भपातनं भर्तृहिंसनम् । विशेषपतनीयानि स्त्रीणामेतान्यपि ध्रुवम् ॥ २९८ ॥

नीच पुरुषसे गमन, गर्भपात और पतिके वध करनेसे निश्चय करके स्त्रियां पतित होतीहैं ❀ ॥ २९८ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

स्वयं विप्रतिपन्ना या यदि वा विप्रतारिता ॥ १९३ ॥

बलान्नारी प्रभुक्ता वा चौरभुक्ता तथापि वा । न त्याज्या दूषिता नारी न कामोस्य विधीयते १९४ ऋतुकाल उपासीत पुष्पकालेन शुद्ध्यति ॥ १९५ ॥

जो स्त्री स्वयं खिझलाकर अथवा पति आदिके ताड़ना करनेपर कहीं चलीजातीहो, यदि उस समय कोई बलात्कारसे अथवा चोरी करके उससे भोग करे तो ऐसी दूषित स्त्री त्यागनेयोग्य नहींहै; क्योंकि उसकी विना इच्छासे वह काम हुआ; ऋतुकाल आनेपर उससे प्रसङ्ग करना चाहिये; रजके समय वह शुद्ध हो जातीहै ❁ ॥ १९३–१९५ ॥

(७) यमस्मृति ।

उभावप्यशुची स्यातां दम्पती शयनं गतौ । शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥ १७॥

शय्यापर सोतेहुए पुरुष और स्त्री दोनों अशुद्ध रहतेहैं; किन्तु शय्यासे उठजानेपर स्त्री शुद्ध होजातीहै; पुरुष (विना स्नान किये) शुद्ध नहीं होताहै ✠ ॥ १७ ॥

भर्तुः शरीरशुश्रूषां दौरात्म्यादप्रकुर्वती । दण्ड्या द्वादशकं नारी वर्षं त्याज्या धनं विना ॥ १८ ॥

जो स्त्री अपनी कुबुद्धिसे अपने पतिके शरीरकी सेवा नहीं करतीहै उसको धनके विना १२ वर्षतक त्याग देना चाहिये ॥ १८ ॥

(८ क) बृहद्यमस्मृति ।

विधवा चैव या नारी पुंसोपगतसेविनी । त्याज्या सा बन्धुभिश्चैव नान्यथा यमभाषितम् ॥ ३९ ॥

यमका कहा सत्य है कि विधवा स्त्री यदि सदा परपुरुषसे सहवास करे तो उसके बन्धु उसका त्यागदेवें ॥ ३९ ॥

(११) कात्यायनस्मृति–२० खण्ड।

मान्या चेन्म्रियते पूर्वं भार्या पतिविमानिता । त्रीणि जन्मानि सा पुंस्त्वं पुरुषः स्त्रीत्वमर्हति ॥ १३॥

जब पुरुषके अनादर करनेसे माननीया भार्या पहिले मरजातीहै तब तीन जन्मतक वह स्त्री पुरुष बनतीहै और वह पुरुष स्त्री बनताहै ▩ ॥ १३॥

(१३) पाराशरस्मृति–४ अध्याय ।

बान्धवानां सजातीनां दुर्वृत्तं कुरुते तु या । गर्भपातं च या कुर्यान्न तां संभाषयेत्क्वचित् ॥ १९ ॥

यत्पापं ब्रह्महत्याया द्विगुणं गर्भपातने । प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते ॥ २० ॥

पतिको उचित है कि जो स्त्री अपने सजातीय बान्धवोंके साथ दुष्ट आचरण अथवा गर्भपात करतीहै उससे कभी नहीं बोले ॥ १९ ॥ गर्भपात करनेसे ब्रह्महत्याका दूना पाप लगताहै, उसका प्रायश्चित्त नहींहै, इस लिये ऐसी स्त्रीको त्यागदेवे ॥ २० ॥

१० अध्याय ।

जारेण जनयेद्गर्भं मृते त्यक्ते गते पतौ । तां त्यजेदपरे राष्ट्रे पतितां पापकारिणीम् ॥ ३० ॥

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्परपुंसा समन्विता । सा तु नष्टा विनिर्दिष्टा न तस्या गमनं पुनः ॥ ३१ ॥

❀ वशिष्ठस्मृति–२८ अध्याय–७१ श्लोक । धर्मज्ञ विद्वान् लोग स्त्रियोंके ३ विशेष पातक मानतेहैं;–१ पतिवध, २ भ्रूणहत्या और ३ अपना गर्भपात करना ।

❁ वसिष्ठस्मृति—२८ अध्यायके २–३ श्लोकमें ऐसाही है ।

✠ अङ्गिरास्मृतिके ४० श्लोकमें ऐसाही है ।

▩ गोभिलस्मृति—तीसरे प्रपाठकके १३ श्लोकमें ऐसाही है ।

जो स्त्री पतिके मर जानेपर अथवा पतिके त्यागदेनेपर जार अर्थात् उपपतिसे सन्तान उत्पन्न करतीहै उस पतितहुई पापिनी स्त्रीको दूसरे देशमें खदेडदेना चाहिये ॥ ३० ॥ जो ब्राह्मणी दूसरे पुरुषके साथ चलीजातीहै उसको नष्टा कहतेहैं; उसका फिर लौटना नहींहै ॥ ३१ ॥

कामान्मोहाच्च या गच्छेत्त्यक्त्वा बन्धून्सुतान्पतिम्। सापि नष्टा परे लोके मानुषेषु विशेषतः॥३२॥
ब्रह्मणी तु यदा गच्छेत्परपुंसा विवर्जिता। गत्वा पुंसां शतं याति त्यजेयुस्तां तु गोत्रिणः ॥३६॥

जो स्त्री इच्छासे अथवा मोहवश होकर बन्धु, पुत्र और पतिको छोड़कर चलीजातीहै वह परलोकमें और विशेष करके इस लोकमें नष्टा है ॥ ३२ ॥ यदि पति आदिके रोकनेपर भी ब्राह्मणी परपुरुषके साथ चलीजावे और जाकर एक सौ पुरुषसे संसर्ग करे तो गोत्रियगण उसको त्यागदेवें * ॥ ३६ ॥

(१४) व्यासस्मृति--२ अध्याय।

सा त्ववाप्यान्यतो गर्भं त्याज्या भवति पापिनी। महापातकदुष्टा च पतिगर्भविनाशिनी ॥ ४६ ॥
सद्वृत्तचारिणीं पत्नीं त्यक्त्वा पतति धर्मतः। महापातकदुष्टोऽपि ना प्रतीक्ष्यस्तया पतिः ॥ ४७ ॥

अन्य पुरुषसे गर्भ धारण करनेवाली, महापातकोंसे दुष्टा और पतिके गर्भका नाश करनेवाली पापिनी स्त्री त्यागनेयोग्य है ॥ ४६ ॥ अच्छे आचरणवाली स्त्रीको त्यागनेवाला पुरुष धर्मसे पतित होताहै; स्त्री महापातकी पतिकी शुद्धितक उसका बाट देखे ॥ ४७ ॥

(१५) शङ्खस्मृति--४ अध्याय।

लालनीया सदा भार्या ताडनीया तथैव च। ताडिता लालिता चैव स्त्री श्रीर्भवति नान्यथा ॥ १६॥

भार्याको सदा प्यार और ताड़ना करना चाहिये; क्योंकि ऐसा करनेसे वह स्त्री श्री होतीहै; अन्यथा नहीं ॥ १६ ॥

(१७) दक्षस्मृति--४ अध्याय।

पत्नीमूलं गृहं पुंसां यदि च्छन्दानुवर्तिनी। गृहाश्रमात्परं नास्ति यदि भार्या वशानुगा ॥ १ ॥
तया धर्मार्थकामानां त्रिवर्गफलमश्नुते। अनुकूलकलत्रो यः स्वर्गस्तस्य न संशयः ॥ २ ॥
प्रतिकूलकलत्रस्य नरको नात्र संशयः। स्वर्गेपि दुर्लभं ह्येतदनुरागः परस्परम् ॥ ३ ॥

पुरुषके लिये आज्ञाकारिणी स्त्री गृहका मूल है; यदि स्त्री वशमें होय तो गृहस्थाश्रमसे और कोई श्रेष्ठ नहीं है ॥ १ ॥ गृहस्थ स्त्रीसेही अर्थ, धर्म और कामका फल भोगताहै; जिसकी स्त्री अनुकूल है निःसन्देह उसका घर स्वर्गके समान है और जिसकी स्त्री प्रतिकूल है निःसन्देह उसको घरमेंही नरक है; स्त्री पुरुषकी परस्पर प्रीति स्वर्गमें भी दुर्लभ है ॥ २-३ ॥

प्रतिकूलकलत्रस्य द्विदारस्य विशेषतः। जलौका इव ताः सर्वा भूषणाच्छादनाशनैः ॥ ६ ॥
सुभृतापि कृता नित्यं पुरुषं ह्यपकर्षति। जलौका रक्तमादत्ते केवलं सा तपस्विनी ॥ ७ ॥
इतरा तु धनं वित्तं मांसं वीर्यं बलं सुखम् ॥ ८ ॥

जिसकी स्त्री प्रतिकूल है और विशेष करके जिसकी दो स्त्रियां हैं उसको भूषण, वस्त्र और भोजनसे पालित होनेपरभी वे जोंकके समान चूसलेतीहैं ॥ ६-७ ॥ जोंक केवल रुधिरको खींचताहै; किन्तु वे स्त्रिय पुरुषके धन, अन्न, मांस, वीर्य, बल और सुखको हरलेतीहैं ॥ ७-८ ॥

अदुष्टपतितां भार्यां यौवने यः परित्यजेत् ॥ १५ ॥
स जीवनान्ते स्त्रीत्वं च वन्ध्यत्वं च समाप्नुयात् ॥ १६ ॥

जो पुरुष दोषरहित और विना पतितहुई भार्याको युवा अवस्थामें त्यागदेताहै वह मरनेपर वन्ध्या स्त्री होताहै ‡ ॥ १५-१६ ॥

स्त्रीका धर्म २.

(१) मनुस्मृति--२ अध्याय।

अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः। संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥ ६६ ॥
वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः। पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥६७॥

* पाराशरस्मृति—७ अध्याय-४ श्लोक। जो स्त्री निरन्तर व्यभिचार नहीं करती है वह रजस्वला होनेपर शुद्ध होतीहै।

‡ पाराशरस्मृति—४ अध्याय-१६ श्लोक। जो पुरुष दोषरहित और विना पतितहुई भार्याको युवा अवस्थामें छोड़देताहै वह ७ जन्मतक स्त्री होकर जन्मताहै और बारबार विधवा होताहै।

स्त्रियोंके शरीरकी शुद्धिके लिये यथासमयमें क्रमानुसार विना मन्त्रका उनका संस्कार होना चाहिये ॥ ६६ ॥ उनके लिये विवाह होनाही उपनयन संस्कारके समान, निज पतिकी सेवा करनाही गुरुकुलमें निवास अर्थात् ब्रह्मचर्य्यव्रतके तुल्य और गृहके काम करनाही अग्निहोत्र करनेके समान ऋषियोंने कहाहै ॥ ६७ ॥

५ अध्याय ।

बालया वा युवत्या वा वृद्धया:वापि योषिता । न स्वातन्त्र्येण कर्त्तव्यं किञ्चित्कार्यं गृहेष्वपि१४७॥
बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने । पुत्राणां भर्त्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥ १४८ ॥
पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मनः । एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले ॥ १४९ ॥

स्त्रियोंको उचित है कि बाल, युवा अथवा वृद्धा अवस्थामें कभी स्वाधीन होकर घरमें कुछ काम नहीं करें ॥ १४७ ॥ बाल अवस्थामें पिताके, युवा अवस्थामें पतिके और विधवा होनेपर पुत्रके वशमें रहें; कभी स्वतन्त्र भावसे नहीं रहें ॥ १४८ ॥ पिता पति तथा पुत्रसे पृथक् रहनेकी चेष्टा नहीं करे क्योंकि इनसे अलग होनेसे दोनों कुलोंको कलङ्कित करतीहैं ❀ ॥ १४९ ॥

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया । सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ १५० ॥
यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वानुमते पितुः । तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लंघयेत् ॥१५१॥
अनृतावृतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः । सुखस्य नित्यं दातेह परलोके च योषितः ॥ १५३ ॥
विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः । उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥१५४ ॥
नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम् । पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥ १५५ ॥
पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा । पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम्१५६॥

स्त्रीका धर्म है कि सदा प्रसन्न रहे घरका काम करनेमें चतुर होवे, वर्तन आदि घरकी सामग्रियोंको साफ रक्खे और कम खरच करे ꕥ ॥ १५० ॥ पिताने अथवा पिताके अनुमतिसे भाईने जिस पतिको सौंप दियाथा उस पतिके जीनेतक उसकी सेवा करे और उसके मरनेपर उसको उल्लंघन नहीं करे ॥१५१॥ विवाहकरनेवाला पति ऋतुकालमें तथा अन्य समयमें इस लोकमें तथा परलोकमें सदा स्त्रीको सुख देताहै ॥ १५३ ॥ पतिव्रता स्त्रीको उचित है कि पति यदि शीलरहित, परस्त्रीगामी अथवा गुणोंसे हीन होवे तौभी देवताके समान सदा उसकी सेवा करे ॥ १५४ ॥ स्त्रियोंको अपने पतिसे अलग यज्ञ, व्रत अथवा उपवास कुछ धर्मकार्य नहीं करना चाहिये; केवल पतिकी सेवा करनेसे ही उनको स्वर्ग मिलताहै ॥ १५५ ॥ पतिके लोकमें जानेकी इच्छावाली पतिव्रता स्त्रीको उचित है कि अपने पाणिग्रहणं करनेवाले पतिके जीवित समयमें अथवा मरनेपर कभी उसका अप्रिय कार्य नहीं करे ॥ १५६ ॥

९ अध्याय ।

अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः । आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः ॥ १२ ॥
पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् । स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसन्दूषणानि षट् ॥ १३ ॥

जो स्त्री स्वयं अपनी रक्षा नहीं करतीहै स्वजन लोग घरमें बन्द करके उसकी रक्षा नहीं कर सकते; परन्तु जो सदा अपनी रक्षामें तत्पर है वह किसीके नहीं रक्षा करनेपरभी सुरक्षित रहतीहै ॥ १२ ॥ मदिरा पीना, दुष्ट मनुष्योंका सङ्ग करना, पतिसे अलग रहना, इधर उधर भ्रमण करना, कुसमयमें शयन करना और परके घरमें रहना; इन ६ कामोंसे स्त्रियोंको व्यभिचारदोष उत्पन्न होताहै ॥ १३ ॥

पतिं या नाभिचरति मनो वाग्देहसंयता । सा भर्तृलोकानाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ॥ २९ ॥
व्यभिचारात्तु भर्त्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम् । शृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते॥३०॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय । कुमारी अवस्थामें पिता, विवाह होनेपर पति, वृद्ध होनेपर पुत्र और इनके नहीं रहनेपर जातिके लोग स्त्रीकी रक्षा करें; स्त्रीको स्वतन्त्र कभी नहीं होनेदेवे ॥ ८५ ॥ यदि पति नहीं हो तो स्त्री अपने पिता, माता, पुत्र, भाई, सास, श्वसुर और मामासे दूर नहीं रहे; क्योंकि दूर होनेसे निन्दित होतीहै ॥ ८६ ॥

ꕥ याज्ञवल्क्यस्मृति–१अध्याय–८३श्लोकमेंभी ऐसा है और लिखाहै कि सास ससुरके चरणोंकी वन्दना करे तथा पतिकी सेवामें तत्पर रहे ।

जो स्त्री मन, वचन और देहसे कभी परपुरुषके सङ्ग व्यभिचार नहीं करतीहै वह मरनेपर स्वर्गमें पतिके साथ निवास करतीहै और श्रेष्ठ लोगोंसे पतिव्रता कहीजातीहै ॥ २९ ॥ जो स्त्री पतिका निरादर करके व्यभिचार करतीहै वह इस लोकमें निन्दित होतीहै और मरनेपर सियारिन होतीहै तथा क्षयी आदि रोगोंसे पीडित हुआकरतीहै ॥ ३० ॥

विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता । प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ॥ ७५ ॥

स्त्रीको उचित है कि यदि पति उसके खाने पहननेके लिये धन देकर विदेश गया हो तो नियमसे रह कर उसके दियेहुए धनसे अपना निर्वाह करे और यदि उसकी जीविकाके लिये धन नहीं देगया हो तो सूत-कातना आदि अनिन्दित शिल्पकर्म करके अपना समय बितावे ॥ ७५ ॥

प्रतिषिद्धापि चेद्या तु मद्यमभ्युदयेष्वपि । प्रेक्षासमाजं गच्छेद्वा सा दण्डया कृष्णलानि षट् ॥८४॥

जो स्त्री पति आदि स्वजनके निषेध करनेपरभी उत्सव आदिमें मदिरा पीवे अथवा नाच मेलेमें जावे राजा उसपर ६ रत्ती सोना दण्ड करे ॥ ८४ ॥

न निर्हारं स्त्रियः कुर्युः कुटुम्बाद्बहुमध्यगात् । स्वकादपि च वित्ताद्धि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया ॥१९९॥

कोई स्त्री बहुत कुटुम्बोंमें रहकर अपने भूषण आदिके लिये साधारण धनमेंसे अपने लिये कुछ सञ्चय नहीं करे और विना पतिकी आज्ञाके पतिका धन नहीं लेवे ॥ १९९ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय ।

मृते जीवति वा पत्यौ या नान्यमुपगच्छति । सेह कीर्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह ॥ ७५ ॥
स्त्रीभिर्भर्तृवचः कार्यमेष धर्मः परः स्त्रियाः । आशुद्धेः संप्रतीक्ष्यो हि महापातकदूषितः ॥ ७७ ॥
क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् । हास्यं परगृहे यानन्त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥ ८४ ॥
पतिप्रियहिते युक्ता स्वाचारा विजितेन्द्रिया । सेह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमां गतिम् ॥८७ ॥

जो स्त्री पतिके जीतेहुए अथवा मरजानेपर अन्य पुरुषके पास नहीं जातीह वह इसलोकमें उत्तम कीर्त्ति पातीहै और मरनेपर उमाके सहित आनन्द करतीहै ॥ ७५ ॥ स्त्रीका परम धर्म है कि पतिकी आज्ञामें रहे; यदि पतिको ब्रह्महत्या आदि कोई महापातक लगजावे तो उसकी शुद्धितक उसका आसरा देखे ॥ ७७ ॥ जिसका पति परदेशमें होवे वह खेलना, शृङ्गार करना, मेलेमें जाना, उत्सव देखना, हंसना और परके घर जाना छोडदेवे ॥८४ ॥ जो स्त्री पतिके प्रिय और हित कामोंमें तत्पर रहतीहै और उत्तम आचरणवाली तथा जितेन्द्रिय होतीहै वह इस लोकमें यश और परलोकमें उत्तम गति पातीहै ॥ ८७ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि स्त्रीशूद्रपतनानि च । जपस्तपस्तीर्थयात्राप्रव्रज्या मन्त्रसाधनम् ॥ १३३ ॥
देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षट् । जीवद्भर्तरि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी ॥ १३४ ॥

इससे और स्त्री आगे शूद्रके पतित होनेकाः कारण कहेंगे; जप, तपस्या, तीर्थयात्रा, संन्यासग्रहण, मन्त्रसाधन और देवताकी आराधना; इन ६ कर्मोंके करनेसे स्त्री और शूद्र पतित हो जातेहैं ॥ १३३-१३४ ॥

आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् । तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ॥ १३५ ॥
शङ्करस्यापि विष्णोर्वा प्रयाति परमं पदम् । जीवद्भर्तरि वामाङ्गी मृते वापि सुदक्षिणे ॥ १३६ ॥
श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा ॥ १३७ ॥

मनुस्मृति—५ अध्यायके–१६४–१६५ श्लोकमें ऐसाही है ।

याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–२५६ श्लोक । जो ब्राह्मणी सुरापान करतीहै वह पतिलोकमें नहीं जाती है; किन्तु कुत्ती, गीधनी और शूकरी होतीहै ।

व्यासस्मृति—२ अध्याय, ५१—५२ श्लोक । पति परदेशमें हो तो स्त्री शृङ्गार आदिसे शरीरको नहीं संवारे, मुखको मलीन रक्खे, उबटन आदिसे देहको साफ नहीं करे, पतिमें व्रत रक्खे और निराहार रहकर शरीरको निर्बल करदेवे ।

मनुस्मृति—५ अध्याय–१५५ श्लोक और बृहद्विष्णुस्मृति २५ अध्याय–१५ श्लोक । स्त्रियोंको पतिसे अलग यज्ञ, व्रत अथवा उपवास कुछ धर्मकार्य नहीं करना चाहिये; केवल पतिकी सेवा करनेसे ही उनको स्वर्ग मिलताहै । (पतिके साथ स्त्रीको और स्वामीके साथ शूद्रको तीर्थयात्रा तथा पतिके साथ स्त्रीको देवताकी आराधना करना चाहिये; अकेला नहीं) बृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र—४ अध्याय—६५ श्लोक । स्त्रियां पुरुषोंके आधा अङ्ग हैं; स्त्रियोंके लिये पृथक् व्रत नहीं है

जो स्त्री पतिके जीतेहुए उपवासव्रत करतीहै वह अपने पतिकी आयुको हरतीहै और आप नरकमें जातीहै ※ ॥ १३४-१३५ ॥ जिस स्त्रीको तीर्थमें स्नान करनेकी इच्छा होवे उसको पतिका चरणोदक पीना चाहिये; उससे उसको शिवलोक अथवा विष्णुलोक मिलताहै ॥ १३५—१३६ ॥ स्त्री पतिके जीतेहुए उसकी बांयी ओर और मरनेपर उसके दहिनी ओर स्थित होतीहै और श्राद्ध, यज्ञ तथा विवाहके समय सदा उसके दहिनी ओर बैठतीहै ॥ १३६—१३७ ॥

(७) अङ्गिरास्मृति ।

स्नात्वा रजस्वला चैव चतुर्थेह्नि विशुद्ध्यति । कुर्याद्रजसि निर्वृत्ते निर्वृत्तेऽन कथञ्चन ॥ ३५ ॥
रोगेण यद्रजः स्त्रीणामत्यर्थं हि प्रवर्त्तते । अशुद्धास्ता न तेन स्युस्तासां वैकारिकं हि तत् ॥ ३६ ॥
साध्वाचारा न तावत्स्याद्रजो यावत्प्रवर्तते । वृत्ते रजसि गम्या स्त्री गृहकर्मणि चेन्द्रिये ॥ ३७ ॥
प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी । तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥ ३८ ॥

रजस्वला स्त्री स्नान करनेपर चौथे दिनमें शुद्ध होतीहै,उसको उचित है कि रजनिवृत्ति होनेपर स्नान करे इससे पहिले नहीं ॥३५॥ जब किसी रोगके कारण स्त्रीको रज अर्थात् रुधिर निकलताहै तब वह अशुद्ध नहीं होतीहै; क्यों कि वह विकारसे गिरताहै ॥ ३६ ॥ स्त्रीका धर्म है कि जबतक रज गिरतारहे तबतक उत्तम काम नहीं करे; रजकी निवृत्ति होनेपर गृहका काम तथा पतिका सङ्ग करे ॥ ३७ ॥ रजस्वला स्त्री पहले दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी और तीसरे दिन धोबिनके समान रहतीहै -और चौथे दिनमें शुद्ध होतीहै ◎ ॥ ३८ ॥

(११) कात्यायनस्मृति-१९ खण्ड ।

पतिमुल्लंघ्य मोहाच्च स्त्री किंकिन्नरकं व्रजेत् । कृच्छ्रान्मनुष्यतां प्राप्य किंकिं दुःखं न विन्दति ॥ ११ ॥
पतिशुश्रूषयैव स्त्री कान्न लोकान्समश्नुते । दिवः पुनरिहायाता सुखानामम्बुधिर्भवेत् ॥ १२ ॥

जो स्त्री अज्ञानवश होकर पतिका अवलङ्घन करतीहै वह मरनेपर किस नरकमें नहीं जातीहै और मनुष्यका जन्म पानेपर किस दुःखको नहीं भोगतीहै ▧ ॥ ११ ॥ जो स्त्री पतिकी सेवा करतीहै वह किस लोकके सुखको नहीं भोगतीहै और स्वर्गसे भूलोकमें आकर सुखोंका समुद्र बनतीहै ॥ १२ ॥

(१३) पाराशरस्मृति--४ अध्याय ।

ऋतुस्नाता तु या नारी भर्तारं नोपसर्पति । सा मृता नरकं याति विधवा च पुनःपुनः ॥ १४ ॥
दरिद्रं व्याधितं धूर्तं भर्त्तारं यावमन्यते । सा शुनी जायते मृत्वा शूकरी च पुनःपुनः १६ ॥

जो स्त्री ऋतुस्नान करके पतिसे सहवास नहीं करतीहै वह मरनेपर नरकमें जातीहै और बार बार विधवा होतीहै ॥ १४ ॥ जो स्त्री दरिद्री, रोगी, और धूर्त पतिका निरादर करतीहै वह मरनेपर बार बार कुत्ती तथा सूकरी होतीहै ※ ॥ १६ ॥

(१४) व्यासस्मृति--२ अध्याय ।

न पृथग्विद्यते स्त्रीणां त्रिवर्गविधिसाधनम् ॥ १८ ॥
भावतो ह्यतिदेशाद्वा इति शास्त्रविधिः परः । पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिं विधाय च ॥ १९ ॥
उत्थाय शयनाद्यानि कृत्वा वेश्मविशोधनम् । मार्जनैर्लेपनैः प्राप्य साग्निशालां स्वमङ्गणम् ॥ २० ॥
शोधयेदग्निकार्याणि स्निग्धान्युष्णेन वारिणा । प्रोक्षण्यैरिति तान्येव यथास्थानं प्रकल्पयेत् ॥ २१ ॥
द्वन्द्वपात्राणि सर्वाणि न कदाचिद्वियोजयेत् । शोधयित्वा तु पात्राणि पूरयित्वा तु धारयेत् ॥ २२ ॥
महानसस्य पात्राणि बहिः प्रक्षाल्य सर्वथा । मृद्भिश्च शोधयेच्चुल्लीं तत्राग्निं विन्यसेत्ततः ॥ २३ ॥
स्मृत्वा नियोगपात्राणि रसांश्च द्रविणानि च । कृतपूर्वाह्णकार्या च स्वगुरूनभिवादयेत् ॥ २४ ॥
ताभ्यां भर्तृपितृभ्यां वा भ्रातृमातुलबान्धवैः । वस्त्रालंकाररत्नानि प्रदत्तान्येव धारयेत् ॥ २५ ॥

※ बृहद्विष्णुस्मृति—२५ अध्याय-१६ श्लोक और पाराशरस्मृति-४ अध्याय-१७ श्लोकमें ऐसाही है और १८ श्लोकमें है कि जो स्त्री विना पतिकी आज्ञासे व्रत करती है उसके व्रतका सब फल राक्षसोंको मिलताहै; ऐसा भगवान् मनुने कहाहै ।

◎ आपस्तम्बस्मृति—७ अध्यायके १-४ श्लोकमें ऐसाही है । आगे व्यासस्मृतिमें देखिये ।

▧ गोभिलस्मृति—दूसरे प्रपाठकके १६६-१६७ श्लोकमें ऐसाही है ।

※ दक्षस्मृति-४ अध्यायके १६-१७ श्लोक । जो स्त्री दरिद्र अथवा रोगी पतिका अनादर करतीहै वह मरनेपर बार बार कुत्ती, गीधनी तथा मकरी होतीहै ।

मनोवाक्कर्मभिः शुद्धा पतिदेशानुवर्तिनी । छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हितकर्मसु ॥ २६ ॥
दासीवदिष्टकार्येषु भार्या भर्तुः सदा भवेत् । ततोऽन्नसाधनं कृत्वा पतये विनिवेद्य तत् ॥ २७ ॥
वैश्वदेवकृतैरन्नैर्भोजनीयांश्च भोजयेत् । पतिं चैवाभ्यनुज्ञाता सिद्धमन्नादिनात्मना ॥ २८ ॥
भुक्त्वा नयेदहःशेषमायव्ययविचिंतया । पुनः सायं पुनः प्रातर्गृहशुद्धिं विधाय च ॥ २९ ॥
कृतान्नसाधना साध्वी सुभृशं भोजयेत्पतिम् । नातितृप्त्या स्वयं भुक्त्वा गृहनीतिं विधाय च ॥३०॥
आस्तीर्य साधु शयनं ततः परिचरेत्पतिम् । सुप्ते पतौ तदभ्याशे स्वपेत्तद्गतमानसा ॥ ३१ ॥

स्त्रीके लिये अर्थ, धर्म और कामका अनुष्ठान पतिसे अलग नहीं है ॥ १८ ॥ पतिके अभिप्राय अथवा उसकी आज्ञासे स्त्री धर्मादि करे, यही शास्त्रकी उत्तम विधि है; स्त्रीको उचित है कि पतिसे पहले उठकर दन्तधावन आदि शरीरकी शुद्धि करे ॥ १९ ॥ शय्या आदिको उठाकर झाडू आदिसे घरको साफ करे, अग्निशाला और आंगनको बुहार लीपकर शुद्ध करे ॥ २०॥ अग्निकार्यके चिकने पात्रोंको गरम जलसे धोकर तथा शुद्ध करके यथास्थानोंमें रखदेवे ॥ २१ ॥ जोड़े पात्रोंको अलग नहीं रक्खे, पात्रोंको शुद्ध करके और जल आदिसे भरकर रखदेवे ॥ २२ ॥ चौकेसे बाहर रसोईके सब पात्रोंको धोवे मिट्टीसे चूल्हेको लीपकर उसमें आग रक्खे ॥ २३ ॥ बर्त्तनके पात्रोंको तथा रसद्रव्योंको स्मरण करे; पूर्वाह्नका काम समाप्त करके बड़ोंको नमस्कार करे ॥ २४ ॥ पति, सासु, श्वशुर, माता, पिता, भाई, मामा और बान्धवके दियेहुए वस्त्र भूषण आदि धारण करे॥२५॥ मन, वचन और शरीरसे शुद्ध रहकर पतिकी आज्ञाका पालन करतीरहे, छायाके समान पतिके साथ अनुगमन करे, सखीके समान शुद्ध मनसे पतिका हित करे ॥ २६ ॥ दासीके समान सदा पतिकी आज्ञाका पालन करे, रसोई बनाकर बलिवैश्वदेव कियेहुए अन्न पुत्र आदिको और पतिको खिलावे और पतिकी आज्ञा होनेपर बचाहुआ अन्न आप भोजन करे ॥ २७-२८ ॥ भोजन करके बाकी दिनको आमदनी और खर्चीकी चिन्तामें बितावे; फिर सायङ्काल और प्रातःकालमें घरकी शुद्धि करे ॥ २९ ॥ पतिव्रता स्त्री नित्यही उत्तम स्वादिष्ट पाक बनाकर प्रीतिपूर्वक पतिको भोजन करावे और जिसमें अफर न होजावे ऐसा स्वयं भोजन करके घरका काम समाप्त करे ॥ ३० ॥ पश्चात् भली प्रकार शय्याको बिछाकर पतिकी सेवा करे; पतिमें मन रखनेवाली स्त्री पतिके सोजानेपर उसके निकट सोजावे ॥ ३१ ॥

अनग्ना चाप्रमत्ता च निष्कामा च जितेन्द्रिया । नोच्चैर्वदेन्न परुषं न बहून्पत्युरप्रियम् ॥ ३२ ॥
न केन चिद्विवदेच्च अप्रलापविलापिनी । न चापि व्ययशीला स्यान्न धर्मार्थविरोधिनी ॥ ३३ ॥
प्रमादोन्मादरोषेर्ष्या वञ्चनं चातिमानिताम् । पैशुन्यहिंसाविद्वेषमहाहंकारधूर्तताम् ॥ ३४ ॥
नास्तिक्यं साहसं स्तेयं दम्भान्साध्वी विवर्जयेत् । एवं परिचरन्ती सा पतिं परमदैवतम् ॥ ३५ ॥
यशः शमिह यात्येव परत्र च सलोकताम् । योषितो नित्यकर्मोक्तं नैमित्तिकमथोच्यते ॥ ३६ ॥

स्त्रीको उचित है कि नङ्गी नहीं रहे, जूए आदि व्यसनोंमें प्रमत्त नहीं होवे, निष्काम और जितेन्द्रिय रहे, चिल्लाकर नहीं बोले, कठोर वचन नहीं कहे बहुत नहीं बोले, पतिके अप्रिय वचन नहीं बोले ॥ ३२ ॥ किसीसे झगड़ा नहीं करे, अनर्थक बात नहीं बोले, वृथा विलाप नहीं करे, खरचदार नहीं होवे, धर्म और अर्थका विरोध नहीं करे ॥ ३३ ॥ असावधानी, उन्माद, क्रोध, ईर्षा, ठगहारी, अत्यंत मान, चुगलपन, हिंसा, वैर, अहङ्कार, धूर्तपना, नास्तिकपना, साहस, चोरी और दम्भको पतिव्रता स्त्री त्यागदेवे ॥ ३४-३५ ॥ जो स्त्री इस प्रकारसे परम देवरूप पतिकी सेवा करतीहै वह इस लोकमें यश और सुखको पातीहै और मरनेपर पतिलोकमें निवास करतीहै; स्त्रियोंके नित्यकर्म कहेगये अब मैं नैमित्तिककर्म कहताहूँ ॥ ३५-३६ ॥

रजोदर्शनतो दोषात्सर्वमेव परित्यजेत् । सर्वैरलक्षिता शीघ्रं लज्जितान्तर्गृहे वसेत् ॥ ३७ ॥
एकाम्बरावृता दीना स्नानालंकारवर्जिता । मौनिन्यधोमुखी चक्षुःपाणिपद्भिरचञ्चला ॥ ३८ ॥
अश्नीयात्केवलं भक्तं नक्तं मृन्मयभाजने । स्वपेद्भूमावप्रमत्ता क्षपेदेवमहस्त्रयम् ॥ ३९ ॥
स्नायीत च त्रिरात्रान्ते सचैलमुदिते रवौ । विलोक्य भर्तुर्वदनं शुद्धा भवति धर्मतः ॥ ४० ॥

स्त्रीको चाहिये कि रजोदर्शन होनेपर शीघ्र गृहके सब कामोंको त्यागकर निर्जन गृहमें लज्जित होकर बसे ॥३७॥ एक वस्त्र धारण करै स्नान तथा भूषणादि अलङ्कारको छोडदेवे, मौन होकर नीचेको मुख किये रहे, नेत्र, हाथ और पैरको नहीं चलावे ॥३८॥ रातके समय मिट्टीके पात्रमें एकवार केवल भात खावे, प्रमाद छोड़ सावधान होकर भूमिपर शयन करे, इस प्रकारसे ३ दिन बितावे ॥३९॥ ३ रात बीतनेपर चौथे दिनमें सूर्यके उदय होनेपर वस्त्रके सहित स्नान करे; पश्चात् पतिके मुखको देखनेपर धर्मपूर्वक वह शुद्ध होजातीहै*॥४०॥

---

* शङ्खस्मृति—१६ अध्याय—१७ श्लोक । रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करनेपर पतिके लिये शुद्ध होजातीहै; किन्तु पांचवें दिन देवता तथा पितरोंके कार्य करनेयोग्य होतीहै ।

(१६) शङ्खस्मृति-६ अध्याय ।

न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च । नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात् ॥ ८ ॥

स्त्रीको व्रत, उपवास और नाना धर्म करनेसे स्वर्ग नहीं मिलताहै; किन्तु पतिकी सेवा करनेसे मिलताहै ॥ ८ ॥

(१७) दक्षस्मृति-४ अध्याय ।

मृते भर्तरि या नारी समारोहेद्धुताशनम् ॥ १७ ॥

सा भवेत्तु शुभाचारा स्वर्गे लोके महीयते । व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ॥ १८ ॥

तथा सा पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ॥ १९ ॥

जो स्त्री पतिके मरनेपर उसके साथ अग्निमें जलजातीहै वह शुभ आचरणोंसे युक्त होतीहै और स्वर्गमें पूजीजातीहै ॥ १७ ॥ १८ ॥ जैसे सपेरा बलसे सांपोंको बिलसे निकाललेताहै वैसेही वह पतिका उद्धार करके उसके सङ्ग आनन्द करतीहै ❀ ॥ १८-१९ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति १२ अध्याय ।

अपि नः श्वो विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयीरन्निति स्त्रीणामिन्द्रदत्तो वर इति ॥ २४ ॥

इन्द्रदेवताने स्त्रियोंको ऐसा वरदान दियाहै कि सन्तान होनेसे एकही दिन पहिलेभी वे अपने पतिके सहित शयन करें ॥ २४ ॥

स्त्रीको अन्यपतिका निषेध ◎२.

(१) मनुस्मृति-५ अध्याय ।

कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः । न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥ १५७ ॥

आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी । यो धर्म एकपत्नीनां कांक्षन्ती तमनुत्तमम् ॥ १५८ ॥

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् । दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम् ॥ १५९ ॥

मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता । स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ १६० ॥

अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते । सेह निन्दामवाप्नोति पति लोकाच्च हीयते ॥ १६१ ॥

नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहे । न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते ॥ १६२ ॥

स्त्रीको उचित है कि पतिके मरनेपर पवित्र फूल, मूल और फलको खाकर जीवन बितावे; व्यभिचारकी बुद्धिसे अन्य पुरुषका नामभी नहीं लेवे॥१५७॥एक पतिवाली स्त्रियोंके उत्तम धर्मकी इच्छा करनेवाली स्त्री अपने मरणपर्यन्त क्षमायुक्त, नियमचारी और ब्रह्मचारिणी होकर रहे ॥ १५८ ॥ जिस प्रकारसे कई हजार कुमार ब्रह्मचारी ब्राह्मणोंने विना सन्तान उत्पन्न कियेही स्वर्ग पायाहै उसी भांति पतिव्रता स्त्रियां अपुत्रा होने परभी स्वामीके मरनेपर केवल ब्रह्मचर्य धारण करके स्वर्गमें जातीहैं ॥१५९-१६०॥ जो स्त्री पुत्रके लोभसे स्वामीका उल्लङ्घन अर्थात् व्यभिचार करतीहै वह इस लोकमें निन्दित और पतिलोकसे भ्रष्ट होतीहै ॥ १६१ ॥ अन्य पुरुषसे उत्पन्न सन्तानसे स्त्रीका तथा अन्य स्त्रीसे उत्पन्न संतानसे पुरुषका धर्मकार्य नहीं होसकता; किसी शास्त्रमें पतिव्रता स्त्रीको दूसरा पति करनेका उपदेश नहीं है ॥ १६२ ॥

(१३) पाराशरस्मृति-४ अध्याय ।

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ । पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥ ३० ॥

मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता । सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ ३१ ॥

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यानि लोमानि मानवे । तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं याऽनुगच्छति॥३२॥

व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् । एवं स्त्री पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ॥ ३३ ॥

❀ पाराशरस्मृति—४ अध्याय ३२-३३ श्लोक । जो स्त्री पतिके सङ्ग सती होजातीहै वह साढ़े तीन करोड़ वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करतीहै । जैसे सांपके पकड़नेवाला बलसे सांपको बिलसे निकाल लेताहै वैसेही वह स्त्री पतिका उद्धार करके उसके सङ्ग स्वर्गमें आनन्द भोगती है । बृहद्विष्णुस्मृति—२५ अध्याय-१४ अङ्क। स्त्री अपने पतिके मरनेपर ब्रह्मचर्य धारण करे अथवा सती होकर उसके सङ्ग जावे ।

◎ यद्यपि स्त्रियोंके लिये अन्य पति करना निषेध तथा निन्दित है तथापि जो करने चाहतीहैं वाग्दान होनेपर विवाहसे पहले उनके लिये ऐसा नियम कियागयाहै ।

पति यदि विदेश गया होय और उसका पता नहीं होवे, मरजावे, संन्यासी होजावे, नपुंसक हो अथवा पतित होजावे तो इन पांच आपत्तियोंमें स्त्रियोंको दूसरा पति कहाहै * ॥३०॥ जो स्त्री पतिकी मृत्यु होनेपर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करतीहै वह मरनेपर ब्रह्मचारियोंके समान स्वर्गमें जातीहै ॥ ३१ ॥ जो स्त्री पतिके साथ जलकर सती हो जातीहै वह मनुष्यके शरीरमें साढे तीन करोड़ रोएँ हैं उतने वर्षतक स्वर्गमें रहतीहै ॥ ३२ ॥ जैसे सांपको पकड़नेवाला बलपूर्वक बिलसे सांपको निकाल लेताहै, वैसेही वह स्त्री पतिका उद्धार करके उसके संग आनन्द करतीहै @ ॥ ३३ ॥

(१४) व्यासस्मृति--२ अध्याय।

मृतं भर्त्तारमादाय ब्राह्मणी वह्निमाविशेत् ॥ ५२ ॥
जीवन्ती चेत्त्यक्तकेशा तपसा शोधयेद्वपुः ॥ ५३ ॥

पतिके मरजानेपर ब्राह्मणी उसके साथ अग्निमें जलजावे; यदि जीवित रहजावे तो केशोंको मुण्डाकर तपस्यासे शरीरको शुद्ध करे ॥ ५२–५३ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति–१७ अध्याय।

प्रोषितपत्नी पञ्चवर्षाण्युपासीतोर्ध्वं पञ्चभ्यो वर्षेभ्यो भर्तृसकाशं गच्छेत् ॥ ६७ ॥ यदि धर्मार्थाभ्यां प्रवासं प्रत्यनुकामा न स्याद्यथा प्रेत एवं वर्तितव्यं स्यात् ॥ ६८ ॥ एवं ब्राह्मणी पञ्च प्रजाताऽप्रजाता चत्वारि राजन्या प्रजाता पञ्चाऽप्रजाता त्रीणि वैश्या प्रजाता चत्वार्यप्रजाता द्वे, शूद्रा प्रजाता त्रीण्यप्रजातैकम् ॥ ६९ ॥ अत ऊर्ध्वं समानोदकपिण्डजन्मर्षिगोत्राणां पूर्वः पूर्वो गरीयान् ॥७० ॥ न तु खलु कुलीने विद्यमाने परगामिनी स्यात् ॥ ७१ ॥

परदेशमें गयेहुए पुरुषकी स्त्री ५ वर्षतक पतिका बाट देखे, पश्चात् उसके पास चलीजावे ⊕ ॥ ६७ ॥ यदि धर्म अथवा धनके लोभसे पतिके पास नहीं जावे तो विधवाके समान वर्त्ताव करे ॥ ६८ ॥ इसी प्रकार ब्राह्मणीको सन्तान हुई होवे तो ५ वर्षतक और सन्तान नहीं हुई होवे तो ४ वर्षतक; क्षत्रियाको सन्तान हुई होवे तो ५ वर्षतक और सन्तान नहीं हुई होवे तो ३ वर्षतक; वैश्याको सन्तान हुई होवे तो ४ वर्षतक और सन्तान नहीं हुई होवे तो २ वर्षतक और शूद्राको सन्तान हुई होवे तो ३ वर्षतक और सन्तान नहीं हुई होवे तो १ वर्षतक वह पतिकी बाट देखे ॥ ६९ ॥ उसके पश्चात् समानोदक, सपिण्ड अथवा सगोत्र पुरुषसे सम्बन्ध करलेवे; इनमें पिछलेसे पहिलेवालेसे सम्बन्ध करना श्रेष्ठ है ॥ ७०॥ कुलीन पुरुषके विद्यमान रहनेपर अन्य पुरुषसे प्रसङ्ग नहीं करे ⊛ ॥ ७१ ॥

---

* नारदस्मृति–१२ विवादपदके ९७–९८ श्लोकमें ऐसाही है।

@ इन चार चार श्लोकोंसे यह निश्चय होताहै कि स्त्रियोंके लिये अपने पतिके मरजानेपर उसके साथ सती होजाना अथवा ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना उत्तम है और अन्य पति करलेना अच्छा नहीं है; किन्तु ५ आपत्तियोंमें वे दूसरा पति कर सकतीहैं। सोभी यह प्रकरण वाग्दानके विषयमें है न कि विवाह होजानेपर।

⊕ गौतमस्मृति–१८ अध्याय–१ अङ्क। स्वामीके बेपता होजानेपर स्त्री ६ वर्षतक उसको बाट देखे; उसकी खबर पानेपर उसके पास चलीजावे; यदि वह संन्यासी होगया हो तो उसके पास नहीं जावे। मनुस्मृति–९ अध्याय–७६ श्लोक। पति यदि धर्मकार्यके लिये विदेश गया होवे तो ८ वर्षतक, विद्या अथवा यशके लिये गया हो तो ६ वर्षतक और कामके लिये गया होवे तो ३ वर्षतक स्त्री उसके आनेकी बाट देखे।

⊛ नारदस्मृति–१२ विवादपद। परदेश गयेहुए ब्राह्मणकी ब्राह्मणी स्त्री ८ वर्षतक और यदि सन्तान नहीं होवे तो ४ वर्षतक पतिकी बाट देखकर दूसरे पुरुषका आश्रय करलेवे; ॥ ९८–९९ ॥ परदेश गयेहुए क्षत्रियकी स्त्री ६ वर्षतक और यदि सन्तान नहीं हुई होवे तो ३ वर्षतक और परदेश गयेहुए वैश्यकी स्त्री ४ वर्षतक और सन्तान नहीं हुई होवे तो २ वर्ष तक पतिकी बाट देखे; परदेशमें गयेहुए शूद्रकी स्त्रीके लिये कालका नियम नहीं है; परदेशमें रहनेवालोंकी स्त्रियोंके लिये ऐसा कहाहै ॥ ९९–१०० ॥ इन स्त्रियोंको उचित है कि यदि पतिके जीवित रहनेका समाचार मिलता होवे तो दूना समयतक पतिका आसरा देखे ॥ १०१ ॥ (स्त्रीके लिये ऐसे समयमें दूसरा पति करना अच्छा नहीं है, किन्तु जो करे उसके लिये यह विधान लिखा गयाहै)

(२६) नारदस्मृति १२-विवादपद।

चतुर्दशविधः शास्त्रे षण्ढो दृष्टो मनीषिभिः। चिकित्स्यश्चाचिकित्स्यश्च तेषामुक्तो विधिः क्रमात् ११
निसर्गषण्ढो बद्धश्च पक्षषण्ढस्तथैव च। अभिशापाद्गुरो रोगाद्देवक्रोधात्तथैव च ॥ १२ ॥
ईर्ष्याषण्ढश्च सेव्यश्च वातरेता मुखेभगः। आक्षिप्तमोघबीजश्च शालीनोन्यापतिस्तथा ॥ १३ ॥

महर्षियोंने शास्त्रमें १४ प्रकारका नपुंसक कहाहै उनमेंसे कुछ औषधके योग्य और कुछ असाध्य हैं उनको क्रमसे मैं कहताहूं ॥११॥ १ निसर्गपण्ढ (जन्मका नपुंसक) २ बद्धषण्ढ (बनाया हुआ नपुंसक,) ३ पक्षषण्ढ (१५ दिनपर मैथुनकी शक्ति होनेवाला,) ४ गुरुके शापसे नपुंसक हुआ, ५ रोगसे नपुंसक हुआ, ६ देवताके क्रोधसे नपुंसक हुआ, ७ ईर्ष्याषण्ढ (द्वेषसे नपुंसक बना) ८ सेव्यषण्ढ (बहुत मैथुन करनेके कारण नपुंसक बनगया), ९ वातरेताषण्ढ (वीर्य्यपातके समय केवल वायु निकले), १० मुखभगे (मुख मैथुन करनेवाला), ११ आक्षिप्तषण्ढ (छितराकरके बीज निकले), १२ मोघबीजषण्ढ (निरर्थक वीर्यवाला मनुष्य), १३ शालीनषण्ढ (प्रबला स्त्रीसे संभोग करनेके कारण नपुंसक बना), १४ अन्यापतिषण्ढ (परस्त्रीसे ही मैथुनकी इच्छा होवे) ॥ १२ ॥ १३ ॥

तत्राद्यावप्रतीकारौ पक्षाख्यो मासमाचरेत्। अनुक्रमात्त्रयस्यास्य कालः संवत्सरः स्मृतः ॥ १४ ॥
ईर्ष्याषण्ढादयो येन्ये चत्वारः समुदाहृताः। त्यक्तव्यास्ते पतितवत्क्षतयोन्या अपि स्त्रिया ॥ १५ ॥
आक्षिप्तमोघबीजाभ्यां कृतोपि पतिकर्मणि। पतिरन्यः स्मृतो नार्या वत्सरार्द्धं प्रतीक्षते ॥ १६ ॥
शालीनस्यापि धृष्टस्त्रीसंयोगाद्भ्रश्यते ध्वजः। तं हीनविषयं तु स्त्री वर्षं क्षिप्त्वान्यमाश्रयेत् ॥१७॥
अन्यस्यां यो मनुष्यः स्यादमनुष्यः स्वयोषिति। लभेत सान्यं भर्तारमेतत्कार्यं प्रजापतेः ॥ १८ ॥

आदिके २ पण्ढ स्त्रीके लिये ग्रहण करनेयोग्य नहीं हैं; पक्षपण्ढकी एक मास प्रतीक्षा करे और गुरु शापषण्ढ आदि तीनकी एकवर्ष आसरा देखै ॥ १४ ॥ स्त्रियोंको चाहिये कि ईर्षापण्ढ आदि ४ प्रकारके पण्ढोंको उनसे प्रसङ्ग हो जाने परभी पतितके समान त्याग देवे ॥ १५ ॥ आक्षिप्तषण्ढ और मोघबीजषण्ढसे यदि विधिपूर्वक विवाह होगया होय तो ६ महीनेतक आसरा देखकर दूसरा पति करलेवे ॥ १६ ॥ प्रबला स्त्रीसे संभोग करनेके कारण जिसका कामदेव नष्ट होगयाहै उसको शालीन पण्ढ कहते हैं, ऐसे पुरुषकी स्त्री एक वर्ष परीक्षा करके अन्य पति करलेवे ॥१७॥ जिस पुरुषको अपनी स्त्रीसे मैथुन करनेका सामर्थ्य नहीं होता, किन्तु परकी स्त्रीसे करनेका होता है ऐसे पुरुषकी स्त्री दूसरा पति करलेवे; ऐसा प्रजापतिने कहाहै॥१८॥

प्रतिगृह्य च यः कन्यां वरो देशान्तरं व्रजेत्। त्रीनृतून्समतिक्रम्य कन्यान्यं वरयेद्वरम् ॥ २४ ॥

जो पुरुष विवाह करके देशान्तरमें चलाजाताहै, उसकी भार्या ३ ऋतुकाल बीतजाने दूसरा वर करलेवे ॥ २४ ॥

स्त्रीका नियोग ४.

(१) मनुस्मृति--९ अध्याय।

अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्ममापदि ॥ ५६ ॥
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा। यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता॥५७॥
ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम्। पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥ ५८ ॥
देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया। प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥ ५९ ॥
विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि। एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथञ्चन ॥ ६० ॥
द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः। अनिर्वृत्तं नियोगार्थं पश्यन्तो धर्मतस्तयोः ॥ ६१ ॥
विधवाया नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि। गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्त्तेयातां परस्परम् ॥ ६२ ॥
नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्त्तेयातां तु कामतः। तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ ॥ ६३ ॥

अब स्त्रियोंके आपत्कालका धर्म कहताहूं ॥५६॥ छोटे भाईके लिये बड़े भाईकी स्त्री गुरुपत्नीके समान और बड़े भाईके लिये छोटे भाईकी स्त्री पतोहूके तुल्य है ॥५७॥ बड़ा भाई छोटे भाईकी स्त्रीसे अथवा छोटा भाई बड़े भाईकी स्त्रीसे विना आपत्कालके अर्थात् सन्तान रहनेपर नियुक्त होकर भी गमन करनेसे पतित होजाता है ॥५८॥ स्त्रीको चाहिये कि सन्तान नहीं होवे तो देवर अथवा अन्य सपिण्ड पुरुषसे नियुक्त होकर मनोवाञ्छित सन्तान उत्पन्न करे ॥५९॥ नियुक्त पुरुष अपने शरीरमें घी लगाकर मौन हो रातमें विधवा स्त्रीसे मैथुन करके एक पुत्र उत्पन्न करे; दूसरा नहीं ॥६०॥ स्त्रीतत्त्वके जाननेवाले अन्य आचार्य कहतेहैं कि एक सन्तानसे नियोगका उद्देश्य सिद्ध नहीं होसकता इस लिये नियोगसे २ सन्तान उत्पन्न करना धर्म है ॥ ६१ ॥

विधवाका नियोग विधिपूर्वक सम्पन्न होनेपर छोटे भाईकी स्त्री पतिके बड़े भाईको गुरुके समान माने और बड़ा भाई छोटे भाईकी स्त्रीको पतोहूके समान जाने ॥६२॥ यदि नियुक्त होकर अपनी इच्छानुसार विधिको छोड़कर छोटे भाईकी भार्यासे बड़ा भाई अथवा बड़े भाईकी भार्यासे छोटा भाई गमन करेगा तो बड़ा भाई पतोहूसे गमन करनेवालेके समान और छोटा भाई गुरुपत्नीसे गमन करनेवालेके तुल्य पतित होजायगा ॥ ६३ ॥

द्विजातिमें नियोगनिषेध।

नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः। अन्यस्मिन्हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम्६४
नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित्। न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ॥ ६५ ॥
अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः। मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति ॥ ६६ ॥
स महीमखिलां भुञ्जन्राजर्षिप्रवरः पुरा। वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः ॥ ६७ ॥
ततः प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम्। नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः ॥ ६८ ॥
यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः। तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥ ६९ ॥
यथाविध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम्। मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ ॥ ७० ॥

विधवाका नियोग कराना द्विजातियोंके लिये उचित नहीं है; नियोग करानेवाले सनातन धर्मका नाश करतेहैं ॥ ६४ ॥ विवाहके किसी मन्त्रमें नियोगका विधान और विवाहके विधानमें विधवाओंके पुनर्विवाह-की विधि नहीं है ॥ ६५ ॥ यह पशुधर्म विद्वान् लोगोंमें निन्दित है; कहतेहैं कि राजा वेनके समय मनुष्योंके बीच नियोगकी रीति प्रचलित हुई ॥ ६६ ॥ वेन अपने भुजबलसे सम्पूर्ण पृथ्वीका राजा बना, राजर्षियोंमें अग्रगण्य उसने कामादिके वश होकर यह विधि प्रचलित करके वर्णसङ्कर धर्म चलाया ॥ ६७ ॥ तबसे जो पुरुष मोहवश होकर विधवामें सन्तान उत्पन्न करनेके लिये नियोग करताहै; साधुलोग उसकी निन्दा करतेहैं ॥ ६८ ॥ वाग्दत्ता कन्याके वरकी मृत्यु हो जानेपर उसके देवरके साथ उस कन्याके समागमकी विधि है ॥ ६९ ॥ उस देवरको चाहिये कि विधिपूर्वक कन्याको अङ्गीकार करके जबतक उसको गर्भ नहीं रहजावे तबतक प्रतिऋतुकालमें वैधव्यसूचक श्वेतवस्त्र धारण करनेवाली उस कन्यासे गमन करे ▩ ॥ ७० ॥

यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य च। स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः॥१६७॥

मरेहुए, नपुंसक अथवा असाध्य रोगी पुरुषकी स्त्रीमें धर्मपूर्वक नियुक्त पुरुषके वीर्यसे उत्पन्न पुत्रका क्षेत्रज पुत्र कहतेहैं ॥ १६७ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय।

अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया। सपिण्डो वा सगोत्रो वा घृताभ्यक्त ऋतावियात् ॥ ६८ ॥
आगर्भसंभवाद् गच्छेत्पतितस्त्वन्यथा भवेत्। अनेन विधिना जातः क्षेत्रजोऽस्य भवेत्सुतः ॥ ६९ ॥

पुत्रहीन स्त्रीका देवर, सपिण्ड अथवा सगोत्र पुरुष स्त्रीके (पिता, ससुर आदि) बड़ोंकी आज्ञा होनेपर स्त्रीके ऋतुकालमें अपने शरीरमें घी लगाकर पुत्रकी इच्छासे उससे गमनकरे ॥ ६८ ॥ जबतक गर्भाधान नहीं होवे तभीतक उस स्त्रीसे प्रसङ्गकरे, गर्भ रहजानेपर उससे गमन करनेसे वह पतित होगा, इस भांति उत्पन्न पुत्र क्षेत्रजपुत्र कहाताहै ॥ ६९ ॥

(१८) गौतमस्मृति-१८ अध्याय।

अपतिरपत्यलिप्सुर्देवराद् गुरुप्रसूतान्नर्तुमतीयात् पिण्डगोत्रऋषिसंबन्धिभ्यो योनिमात्राद्वा नादेवरादित्येके ॥ १ ॥

मनुस्मृति—३ अध्याय—१७३ श्लोक। जो पुरुष अपने मरेहुए भाईकी स्त्रीमें धर्मपूर्वक नियुक्त होकरभी नियमको छोड़कर कामनापूर्वक रमण करताहै वह दिधिषूपति कहलाताहै। नारदस्मृति—१२ विवादपद। बड़ोंकी आज्ञासे पुत्रहीन स्त्री पुत्र उत्पन्न करनेके लिये देवरसे सहवास करे ॥ ८१ ॥ पुत्र उत्पन्न होजानेपर फिर सहवास नहीं करे क्योंकि फिर ऐसा करनेसे वर्णसङ्कर उत्पन्न होगा ॥ ८२ ॥ जो स्त्री विना बड़ोंकी आज्ञासे देवरसे सन्तान उत्पन्न करतीहै उस सन्तानको ब्रह्मवादीलोग जारज सन्तान कहतेहैं ॥ ८४ ॥ ॥ ८५ ॥ विना बड़ोंकी आज्ञासे यदि बडे भाईकी स्त्रीसे छोटा भाई अथवा छोटे भाईकी स्त्रीसे बड़ा भाई गमन करताहै तो यह दोनों गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाले समझे जातेहैं ॥ ८५-८६ ॥

▩ यह नियोगका निषेध अन्य स्मृतियोंसे तथा इसी मनुस्मृतिके ऊपर लिखेहुए श्लोकोंसे अयोग्य जानपडताहै।

स्वामीके नहीं रहनेपर यदि स्त्रीको सन्तानकी इच्छा होवे तो देवर अथवा पिण्ड, गोत्र वा ऋषि सम्बन्धी अथवा पतिके कुलके किसी पुरुषसे ऋतुकालमें सहवास करके सन्तान उत्पन्न करे; किसी आचार्यका मत है कि देवरको छोड़कर अन्य पुरुषसे नियोग नहीं करे ॥ १ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति--१७ अध्याय ।

प्रेतपत्नी षण्मासान्व्रतचारिण्यक्षारलवणं भुञ्जानाऽधः शयीतोर्ध्वं षड्भ्यो मासेभ्यः स्नात्वा श्राद्धं च पत्ये दत्त्वा विद्याकर्मगुरुयोनिसंबंधान्सन्निपात्य पिता भ्राता वा नियोगं कारयेत्तपसे ॥४९ ॥ न सोन्मत्तामवशां व्याधितां वा नियुञ्ज्यात् ॥ ५० ॥ ज्यायसीमपि षोडश वर्षाणि, न चेदामयावी स्यात् ॥ ५१ ॥ प्राजापत्ये मुहूर्त्ते पाणिग्राहवदुपचरेत् ॥ ५२ ॥ लोभान्नास्ति नियोगः ॥ ॥ ५७ ॥ प्रायश्चित्तं वाऽप्युपनियुञ्ज्यादित्येके ॥ ५८ ॥

मरेहुए पुरुषकी स्त्री ६ मासतक खार लवणको छोड़कर (हविष्य भोजन करके)व्रत करे, भूमिपर सोवे, ६ महीनेके बाद स्नान करके पतिका श्राद्ध करे; उसके पश्चात् विधवाका पिता अथवा भाई उसके पतिके विद्यागुरु, कर्मगुरु और बन्धुजनोंको इकट्ठा करके उनकी अनुमति लेकर सन्तान उत्पत्तिके लिये उसका नियोग करादेवे ॥ ४९ ॥ यदि वह स्त्री, उन्मत्ता, स्वेच्छाचारिणी, रोगिणी अथवा १६ वर्षसे कम अवस्थाकी होवे तो उसका नियोग नहीं करावे और स्त्रीसे कम अवस्थाके पुरुषके साथ नियोग न करावे ॥ ५०-५१ ॥ नियुक्त पुरुष चार घड़ी रात रहनेपर विवाहित पतिके समान नियुक्ता स्त्रीसे सहवास करे ॥ ५२ ॥ काम भोगके लोभसे नियोग नहीं है ॥ ५७ ॥ एक आचार्य कहते हैं कि लोभसे नियोग करनेवालेको प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ५८ ॥

(२५) बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-२ अध्याय ।

संवत्सरं प्रेतपत्नी मधुमांसमद्यलवणानि वर्जयेदधः शयीत ॥६६॥ षण्मासानिति मौद्गल्यः ॥ ॥ ६७ ॥ अत ऊर्ध्वं गुरुभिरनुमता देवराज्जनयेत्पुत्रमपुत्रा ॥ ६८ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ६९ ॥ वशा चोत्पन्नपुत्रा च नीरजस्का गतप्रजा । नाकामा संनियोज्या स्यात्फलं यस्यां न विद्यते इति७०

मृत पुरुषकी स्त्री १ वर्षतक मधु, मांस, मद्य और नोनको छोड़कर भूमिपर सोवे; मौद्गल्य ऋषि कहतेहैं कि ६ महीनेतक ऐसा करे ॥ ६६-६७ ॥ पुत्ररहित स्त्री इसके पश्चात् श्वशुर आदि बड़े लोगोंकी आज्ञानुसार देवरसे पुत्र उत्पन्न करे ॥ ६८ ॥ और उदाहरण देतेहैं ॥ ६९ ॥ वन्ध्या, पुत्रवती, ऋतुहीन, मरेहुए पुत्रकी माता और कामचेष्टासे रहित स्त्रीका नियोग करानेसे कुछ फल नहीं होताहै ॥ ७० ॥

पुत्रप्रकरण १४.

पुत्रका महत्व और पुत्रवान् मनुष्य १.

(१) मनुस्मृति-९ अध्याय ।

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते । अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम् ॥ १३७ ॥
पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात् त्रायते पितरं सुतः । तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥ १३८ ॥

मनुष्य पुत्रसे सब लोकोंको पाताहै, पौत्रसे बहुत कालतक स्वर्गमें वसताहै और प्रपौत्रसे सूर्यलोकमें जाताहै ❀ ॥ १३७ ॥ पुंनाम नरकका है उससे पुत्र अपने पिताको बचाताहै, इसलिये स्वयं ब्रह्माने"पुत्र"नाम रक्खाहै ⚘ ॥ १३८ ॥

भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान् भवेत् । सर्वांस्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥ १८२ ॥
सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् । सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ॥ १८३ ॥

एक माता पितासे उत्पन्न बहुतसे भाइयोंके बीच यदि एकही भाईका पुत्र होगा तो उसी पुत्रसे सब भाई पुत्रवाले समझे जांयगे, ऐसा भगवान् मनुने कहाहै ॥१८२ ॥ एक पतिकी अनेक भार्याओंमेंसे यदि एकही भार्याका पुत्र होगा तो उसी पुत्रसे सब भार्या पुत्रवती समझी जावेंगी, ऐसा मनुने कहाहै ✿ ॥ १८३ ॥

❀ वसिष्ठस्मृति-१७ अध्याय-५ श्लोक,बृहद्विष्णुस्मृति-१५अध्याय-४५ श्लोक और बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-९अध्याय,-७श्लोकमें ऐसाही है ।

⚘ बृहद्विष्णुस्मृति-१५ अध्याय-४३ श्लोकमें ऐसाही है ।

✿ बृहद्विष्णुस्मृति--१५ अध्यायके ४०-४१ श्लोकमें और वसिष्ठस्मृति-१७ अध्यायके१०--११ श्लोकमें भी ऐसा है ।

(३) अत्रिस्मृति।

पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम्। ऋणमस्मिन्संनयति अमृतत्वं च गच्छति ॥ ५३ ॥
जातमात्रेण पुत्रेण पितॄणामनृणी पिता। तदह्नि शुद्धिमाप्नोति नरकात्त्रायते हि सः ॥ ५४ ॥

पुत्रके जन्म होनेपर जीवित पुत्रका मुख देखनेसेही पिता पितरोंके ऋणसे मुक्त होताहै और मरने पर स्वर्गमें जाताहै ॥ ५३ ॥ पुत्रके जन्म होनेसे ही पिता पितरोंके ऋणसे छूटताहै और उसी दिन शुद्ध होजाताहै; क्योंकि पुत्र पिताको नरकसे बचाताहै ॥ ५४ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति–१७ अध्याय।

अनन्ताः पुत्रिणां लोका नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति श्रूयते ॥ २ ॥

पुत्रवाले मनुष्यको अनन्त कालतक स्वर्गलोक मिलताहै; पुत्रहीन मनुष्यको स्वर्ग प्राप्त नहीं होता; ऐसा श्रुतिमें है ॥ २ ॥

(२६) बौधायनस्मृति–२ प्रश्न-९ अध्याय।

जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणी जायते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति ॥९॥

ब्राह्मण ३ ऋणसे युक्त होकर जन्म लेताहै; वह ब्रह्मचारी होनेसे ऋषिऋणसे, यज्ञ करनेसे देवऋणसे और सन्तान उत्पन्न करनेसे पितृऋणसे छूटताहै ॥ ९ ॥

बारह प्रकारके पुत्र और कुण्ड तथा गोलकपुत्र २.

(१) मनुस्मृति९ अध्याय।

पुत्रान्द्वादश यानाह नृणां स्वायम्भुवो मनुः। तेषां षड् बन्धुदायादाः षडदायादबान्धवाः ॥१५८॥

स्वायम्भुव मनुने १२ प्रकारके पुत्र कहेहैं; उनमेंसे ६ धनमें भाग पानेके अधिकारी और बान्धव हैं; किन्तु ६ धनमें भाग पानेका अधिकारी नहीं हैं, वे केवल बान्धव हैं ॥ १५८ ॥

स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धि यम्। तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम् ॥ १६६ ॥

(१) जो पुत्र विवाहसंस्कारसे युक्त भार्यामें पतिके वीर्यसे उत्पन्न होताहै, उसको औरस कहतेहैं वही पुत्र मुख्य है ॥ १६६ ॥

यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा। स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः१६७॥

(२) जो पुत्र मरेहुए, नपुंसक अथवा असाध्यरोगी पुरुषकी स्त्रीमें धर्मपूर्वक नियुक्त अन्य पुरुषके वीर्यसे उत्पन्न होताहै उसको क्षेत्रज कहतेहैं ॥ १६७ ॥

माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि। सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः ॥ १६८ ॥

(३) जब माता पिता आपत्कालमें प्रीतिपूर्वक किसी समान जातिके मनुष्यको जलसे सङ्कल्प करके अपने पुत्रको देदेतेहैं तब उसको दत्तक पुत्र कहतेहैं ॥ १६८ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति—१५ अध्यायके ४४श्लोकमें और वसिष्ठस्मृति-१७अध्यायके १ श्लोकमें भी ऐसा है।

(१) याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्याय-१३३ श्लोकमें, बृहद्विष्णुस्मृति—१५ अध्याय-२ अङ्कमें, वसिष्ठस्मृति-१७ अध्याय-१३ अङ्कमें और बौधायनस्मृति—२ प्रश्न-२ अध्याय-१४ अङ्कमें ऐसाही है।

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्याय-१३२ श्लोक। अपनी भार्यामें सगोत्र अथवा दूसरे पुरुषसे उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज कहा जाताहै। बृहद्विष्णुस्मृति-१५ अध्याय-३ अङ्क। नियोग धर्मके अनुसार सपिण्ड अथवा उत्तम वर्णके पुरुषके वीर्यसे अन्यकी भार्यामें उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज होताहै। वसिष्ठस्मृति-१७अध्याय-१४ अङ्क। औरस पुत्र नहीं होनेपर नियुक्त स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज कहाताहै। बौधायनस्मृति—२ प्रश्न-२ अध्यायके २०-२१ अङ्क। मृत पुरुष, नपुंसक अथवा रोगी पुरुषकी स्त्रीमें नियोगद्वारा उत्पन्न पुत्रको क्षेत्रज कहतेहैं; वह २ पितावाला और २ गोत्रवाला कहलाताहै; वह दोनों पिताको पिण्ड देताहै और दोनोंके धनमें भाग पाताहै।

(३) याज्ञवल्क्यस्मृति—२अध्याय-१३४ श्लोक। माता पिताका दिया हुआ पुत्र दत्तकपुत्र कहाताहै। बृहद्विष्णुस्मृति-१५ अध्यायके १८-१९ अङ्कमें, पाराशरस्मृति-४ अध्यायके २४ श्लोकमें और वसिष्ठस्मृति-१७ अध्यायके २९ अङ्कमें भी ऐसाही है। बौधायनस्मृति—२ प्रश्न-२ अध्यायके २४अङ्कमें है कि जब कोई पुत्रकी माता पितासे या अन्य सम्बन्धसे पुत्र बनानेके लिये लड़का लेताहै तब वह दत्तकपुत्र होताहै।

सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम् । पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेयश्च कृत्रिमः ॥ १६९ ॥

(४) जब कोई मनुष्य गुणदोषके विचार करनेमें चतुर, गुणयुक्त और अपनी जातिके बालकको ग्रहण करके अपना पुत्र बनाताहै तब उसको कृत्रिम पुत्र कहतेहैं ॥ १६९ ॥

उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य सः । स गृहे गूढ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः ॥ १७० ॥

(५) जब किसीकी स्त्रीमें कोई विना जानाहुआ पुरुष गुप्त सहवास करताहै तब उससे उत्पन्न पुत्रको गूढोत्पन्न पुत्र कहतेहैं, वह क्षेत्रस्वामीका पुत्र बनताहै ॥ १७० ॥

मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा । यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते ॥ १७१ ॥

(६) जब माता पिता अथवा पुत्रका रक्षक बालकको त्यागदेताहै और अन्य पुरुष उसको ग्रहण करके अपना पुत्र बनाताहै तब वह अपविद्ध पुत्र कहलाताहै ॥ १७१ ॥

पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः । तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम् ॥ १७२ ॥

(७) कन्या कुमारी अवस्थामें गुप्तसहवास करके पिताके घरमें जिस पुत्रको उत्पन्न करतीहै वह पुत्र कन्यासे विवाह करनेवालेका कानीनपुत्र कहाजाताहै ॥ १७२ ॥

या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताऽज्ञातापि वा सती । वोढुः स गर्भो भवति सहोढ इति चोच्यते ॥१७३॥

(८) विना जानेहुए अथवा जानकर गर्भवती कन्यासे विवाह करनेपर विवाहके पश्चात् उस गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होताहै उसको विवाह करनेवाले पतिका सहोढ़ पुत्र कहतेहैं ॥ १७३ ॥

क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमन्तिकात् । स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा॥१७४॥

(९) जो माता पिताको मूल्य देकर खरीदा जाताहै, वह समान हो अथवा असमान होवै, खरीदनेवालेका क्रीतपुत्र कहलाताह ॥ १७४ ॥

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया । उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥ १७५ ॥
सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा । पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥ १७६ ॥

(१०) जब स्त्री पतिके छोड़देनेपर अथवा विधवा होनेपर अपनी इच्छासे फिर अन्य पुरुषकी भार्या बनकर पुत्र उत्पन्न करतीहै तब वह पुत्र पौनर्भव कहाजाताहै ॥ १७५ ॥ वह स्त्री पुरुषके सहवाससे बचकर यदि दूसरे पतिके पास जावे तो दूसरा पति उससे विवाह संस्कार करलेवे और यदि पतिके त्यागदेनेपर पुरुषके सहवाससे बचकर अन्यके घरसे अपने पहिले पतिके घर लौट आवे तो पहिला पति उससे फिर विवाह संस्कार करे; ऐसी स्त्री अपने पतिकी पुनर्भू पत्नी कहीजातीहै ॥ १७६ ॥

---

(४) याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्याय–१३५ श्लोक । जिसको कोई अपना पुत्र बनालेताहै वह कृत्रिम पुत्र कहा जाताहै । बृहद्विष्णुस्मृति–१५अध्याय और वसिष्ठस्मृति–१७अध्यायमें जहां१२ प्रकारके पुत्र लिखे गये हैं वहां कृत्रिम पुत्र नहीं है, उसके स्थानपर "पुत्रिकापुत्र" है । बौधायनस्मृति–२ प्रश्न २ अध्याय,–२५ अङ्क । जब कोई समान जातिके लड़केको अपनी इच्छासे पुत्र बनालेताहै तब वह कृत्रिमपुत्र कहाताहै ।

(५) याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्याय–१३३ श्लोक । जो गृहमें गुप्तभावसे उत्पन्न होताहै उसको गूढज याने गूढोत्पन्न पुत्र कहतेहैं । वसिष्ठस्मृति–१७ अध्यायके २६–२७ अङ्कमें और बौधायनस्मृति–२ प्रश्न–२ अध्यायके २६ अङ्कमें ऐसाही है । बृहद्विष्णुस्मृति–१५ अध्यायके १३–१४अङ्कमें मनुस्मृतिके समान है।

(६) याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्यायके १३६ श्लोकमें बृहद्विष्णुस्मृति–१५ अध्यायके २४–२६ अंकमें वसिष्ठस्मृति–१७ अध्यायके ३४ अंकमें और बौधायनस्मृति–२ प्रश्न–२ अध्यायके २७ अंकमें ऐसाही है ।

(७) बृहद्विष्णुस्मृति–१५ अध्यायके १०–१२ अंकमेंभी ऐसा है । याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्याय–१३३ श्लोक । विना विवाहीहुई कन्यासे उत्पन्न कानीन पुत्र है,वह नानाके लिये पुत्रके तुल्य होताहै। वसिष्ठस्मृति–१७ अध्यायके २२–२५ अंक । कुमारी कन्या कामवश होकर अपने पिताके घरमें किसी अपने तुल्य पुरुषसे सभोग करके जिस पुत्रको उत्पन्न करतीहै वह कानीनपुत्र कहलाताहै;वह अपने नानाके पुत्रके स्थानमें होकर नानाका पिण्डदान करताहै और उसका उत्तराधिकारी होताहै । बौधायनस्मृति–२ प्रश्न२अध्याय,–२८अंक । जब कन्या कुमारी रहनेपर गुप्तभावसे पुरुषसे सहवास करके पुत्र उत्पन्न करतीहै तब उस पुत्रको कानीनपुत्र कहतेहैं ।

(८) बृहद्विष्णुस्मृति—१५ अध्यायके १५–१७ अंकमें और बौधायनस्मृति—२ प्रश्न–२ अध्यायके २९ अंकमें ऐसाही है । याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्याय–१३५ श्लोक। जो विवाहके समय कन्याके गर्भमें रहताहै वह जन्म लेनेपर विवाहनेवालेका सहोढ़ पुत्र होताहै । वसिष्ठस्मृति–१७ अध्यायके २८ अंकमें भी ऐसा है ।

(९) याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्याय–१३५ श्लोक । जिसको माता पिता बेंचदेतेहैं वह क्रीत पुत्र कहलाताहै । बृहद्विष्णुस्मृति–१५ अध्याय–२०–२१ अंकमें, वसिष्ठस्मृति १७ अध्याय ३०–३१ अंकमें और बौधायनस्मृति–२ प्रश्न–२ अध्यायके ३० अंकमें ऐसाही है ।

(१०) याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्याय–१३४ श्लोक । पतिसे प्रसङ्ग नहीं हुआहो अथवा हुआहो दुबारा विवाहीहुई स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र पौनर्भव कहलाताहै बृहद्विष्णुस्मृति—१५ अध्यायके ७–९ अङ्कमें ऐसाही–

मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात्। आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयं दत्तस्तु स स्मृतः॥१७७

(११) माता पितासे हीन अथवा विना कारणके माता पिताका त्यागदियाहुआ पुत्र जब स्वयं जाकर किसीका पुत्र बनजाताहै तब वह लेनेवालेका स्वयंदत्त पुत्र कहलाताहै ॥ १७७ ॥

यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम्। स पारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवः स्मृतः ॥ १७८ ॥

(१२) जिस पुत्रको ब्राह्मण कामवश होकर शूद्रा भार्यामें उत्पन्न करताहै उस पुत्रको पारशव (शौद्र) कहतेहैं; वह जीतेहुएही मृतकके समान है; इसलिये वह पारशव कहलाताहै ॥ १७८ ॥

क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादश यथोदितान्। पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ॥ १८० ॥

य एतेऽभिहिताः पुत्राः प्रसङ्गादन्यबीजजाः। यस्य ते बीजतो जातास्तस्य ते नेतरस्य तु ॥१८१॥

श्राद्ध आदि क्रियाओंके लोप होनेके भयसे विद्वान् लोग क्षेत्रज आदि ११ प्रकारके पुत्रोंको पुत्रके प्रतिनिधि अर्थात् पुत्र कहतेहैं ॥ १८० ॥ प्रसङ्ग आजानेसे अन्यके वीर्यसे जन्मेहुए पुत्रको क्षेत्रके स्वामीका पुत्र कहागया; वास्तवमें जिसके वीर्यसे सन्तान उत्पन्न होतीहै, वह उसीकी सन्तान है; अन्यकी नहीं ॥१८१॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्याय।

औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः ॥ १३२ ॥

विवाहिता सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र औरस पुत्र कहाजाताहै,पुत्रिकाका पुत्रभी उसीके समान है❀ ॥ १३२॥

(३) अत्रिस्मृति।

अपुत्रेणैव कर्त्तव्यः पुत्रप्रतिनिधिस्सदा। पिण्डोदकक्रियाहेतोर्यस्मात्तस्मात्प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

–है। बौधायनस्मृति––२ प्रश्न–२ अध्याय,–३१ अङ्क । पतिके त्यागदेनेपर या नपुंसक अथवा पतित होजानेपर जो स्त्री दूसरा पति करलेतीहै वह पुनर्भू और उसका पुत्र पौनर्भव कहाताहै । वसिष्ठस्मृति—१७ अध्याय । पुनर्भू स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र पौनर्भव है ॥ १९ ॥ जो स्त्री अपने कुमार पतिको त्यागके अन्य पुरुषके साथ रहकर फिर पहिले पतिका आश्रय लेतीहै वह पुनर्भू कहलातीहै ॥ २० ॥ जो स्त्री पतिके नपुंसक, पतित या उन्मत्त होजानेपर अथवा मरजानेपर अन्य पतिको प्राप्त होतीहै वह भी पुनर्भू कहातीहै ॥ २१ ॥

(११) वृहद्विष्णुस्मृति––१५ अध्यायके २२–२३ अङ्कमें प्रायः ऐसाही है । याज्ञवल्क्यस्मृति—२ अध्याय–१३५ श्लोक । जो अपनी इच्छासे किसीका पुत्र बनजाताहै उसको स्वयंदत्त पुत्र कहतेहैं । वसिष्ठ स्मृति––१७ अध्यायके ३२ अङ्कमें प्रायः ऐसाही है । बौधायनस्मृति—२ प्रश्न–२ अध्यायका ३२ अङ्क । मातापितासे हीन लड़का जब अपनेको देदेताहै तब वह स्वयंदत्त पुत्र कहाताहै ।

(१२) वृहद्विष्णुस्मृति––१५ अध्याय–२७ अङ्क । किसी स्त्रीमें उत्पन्नकियाहुआ पुत्र बारहवां पुत्र है। वसिष्ठस्मृति––१७ अध्याय–३५ अङ्क । शूद्राका पुत्र (१२ पुत्रोंमें) छठवां है बौधायनस्मृति––२ प्रश्न–२ अध्यायके ३३–३४ अंक । ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न पुत्र निषाद और व्यभिचारसे शूद्रामें उत्पन्न पुत्र पारशव होताहै । याज्ञवल्क्यस्मृति––२ अध्यायके १३२ श्लोकमें वृहद्विष्णुस्मृति–१५ अध्यायके ४–५ अंकमें और गौतमस्मृति––२९ अध्यायके ९ अंकमें जहां १२ प्रकारके पुत्रोंका वृत्तान्त है वहां पारशवका नाम नहीं है, उसके स्थानपर "पुत्रिकापुत्र" लिखाहै ।

❀ मनुस्मृतिमें लिखेहुए १२ प्रकारके पुत्रोंमें पुत्रिकाका पुत्र नहींहै;किन्तु याज्ञवल्क्यस्मृति,वृहद्विष्णुस्मृति गौतमस्मृति, वसिष्ठस्मृति, बौधायनस्मृति और नारदस्मृतिमें लिखेहुए १२ प्रकारके पुत्रोंमें पुत्रिकापुत्र है । वृहद्विष्णुस्मृति–१५ अध्यायके४—६ अङ्क । पुत्रिकाका पुत्र (१२ पुत्रोंमेंसे) तीसरा पुत्र है; जब भाईसे हीन कन्याका पिता ऐसा कहकर वरको कन्या देताहै कि इससे जो पुत्र होगा वह हमारा श्राद्धादि कर्म करेगा तब उस कन्याको "पुत्रिका" कहतेहै । गौतमस्मृति–२९ अध्याय ३ अंक विना पुत्रवाला पुरुष जब अग्नि और प्रजापतिको आहुति देकर ऐसे प्रतिज्ञाके साथ कन्यादान करताहै कि इसका पुत्र हमारे पुत्रके स्थानपर होकर हमारा श्राद्धादि कर्म करेगा तब वह कन्या"पुत्रिका" कहलातीहै; किसी आचार्यका मत है कि मनमें भी ऐसी इच्छाकरके कन्यादान करनेसे ऐसी कन्या "पुत्रिका" बनजातीहै। वसिष्ठस्मृति–१७ अध्यायके १५–१७ अंक और १८ श्लोक । "पुत्रिकापुत्र" (१२ पुत्रोंमेंसे) तीसरा पुत्र है । भाईसे हीन कन्याका पुत्र नानाके घर आकर श्राद्ध आदि करके पितरोंको संसारसे पार करताहै । यहां श्लोकका प्रमाण है;–कन्याका पिता वरसे कहताहै कि विना भाईवाली कन्याको वस्त्र भूषणोंसे शोभित करके मैं तुमको देताहूं, इस कन्यामें जो पुत्र उत्पन्न होगा वह मेरा पुत्र बनेगा । बौधायनस्मृति–२ प्रश्न–२ अध्याय,–१७ अंक । प्रतिज्ञापूर्वक दी हुई कन्याके पुत्रको "पुत्रिकापुत्र" और अन्यकन्याके पुत्रको दौहित्र कहतेहैं । नारदस्मृति–१३ विवादपदके ४४–४६ श्लोक । औरस, क्षेत्रज, पुत्रिकापुत्र, कानीन, सहोढ़ गूढोत्पन्न, पौनर्भव, अपविद्ध, लब्ध, क्रीत, कृत्रिम और स्वयं उपगत; ये १२ प्रकारके पुत्र हैं ।

पुत्र हीन मनुष्यको उचित है कि पिण्ड और जलदानके लिये यत्नपूर्वक किसी प्रकारसे पुत्र बनावे ॥ ५२ ॥

(१३) पाराशरस्मृति–४ अध्याय ।

तद्वत्परस्त्रियाः पुत्रौ द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ । पत्यौ जीवति कुण्डस्तु मृते भर्तरि गोलकः ॥ २३ ॥
औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः । दद्यान्माता पिता वापि स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥ २४ ॥

इसी प्रकारसे परकी स्त्रीमें गमन करनेपर कुण्ड और गोलक दो प्रकारके पुत्र होतेहैं;–पतिके जीतेहुए जारसे उत्पन्न होताहै वह कुण्ड और पतिके मरनेपर विना नियोगके अन्य पुरुषसे उत्पन्न होताहै वह गोलक कहाताहै ॥ २३ ॥ औरस, क्षेत्रज, दत्तक और कृत्रिम (४ प्रकारके) पुत्र होतेहैं; जिसको माता अथवा पिता दूसरेको देदेताहै वह लेनेवालेका दत्तकपुत्र होताहै ॥ २४ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति–१५ अध्याय ।

शोणितशुक्रसंभवः पुरुषो मातापितृनिमित्तकः ॥ १ ॥ तस्य प्रदानविक्रयत्यागेषु मातापितरौ प्रभवतः ॥ २ ॥ न त्वेकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा ॥ ३ ॥ स हि संतानाय पूर्वेषाम् ॥ ४ ॥

रज वीर्यके निमित्तकारण माता पिता हैं; रज वीर्यसे सन्तानका शरीर बना है ॥ १ ॥ माता पिताको अधिकार है कि अपने पुत्रको किसीको देदेवे अथवा किसीके हाथ बेंचदेवे या परित्याग करदेवे;किन्तु यदि एकही पुत्र होवे तो उसको देनेका माता पिताका या लेनेका किसीका अधिकार नहीं है; क्योंकि वही पूर्वपुरुषोंकी सन्तान चलानेवाला होगा ॥ २–४ ॥

न स्त्री दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वाऽन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः ॥ ५ ॥ पुत्रं प्रतिग्रहीष्यन्बन्धूनाहूय राजनि चावेद्य निवेशनस्य मध्ये व्याहृतिभिर्हुत्वा दूरेबान्धवं बन्धुसन्निकृष्टमेव प्रतिगृह्णीयात् ॥ ६ ॥

किसी स्त्रीको विना अपने पतिके अनुमतिसे किसीको अपनी सन्तान देने अथवा किसीकी सन्तान लेनेका अधिकार नहीं है ॥ ५ ॥ जो मनुष्य दूसरेके पुत्रको लेताहै उसको उचित है कि अपने बन्धुगणोंको बुलाकर,राजाको जनाकर और अपने घरमें व्याहृतियोंसे होम करके और यदि उसके बन्धु बान्धव दूर होवें तो उनको जनाकर पुत्रको ग्रहण करे ॥ ६ ॥

बीज और क्षेत्रकी प्रधानता २.

(१) मनुस्मृति–९ अध्याय ।

पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः । विश्वजन्यमिमं पुण्यमुपन्यासं निबोधत ॥ ३१ ॥
भर्तुः पुत्रं विजानन्ति श्रुतिद्वैधं तु भर्तरि । आहुरुत्पादकं केचिदपरे क्षेत्रिणं विदुः ॥ ३२ ॥
क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् । क्षेत्रबीजसमायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम् ॥ ३३ ॥
विशिष्टं कुत्रचिद्बीजं स्त्री योनिस्त्वेव कुत्रचित् । उभयं तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशस्यते ॥ ३४ ॥
बीजस्य चैव योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते । सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता ॥ ३५ ॥
यादृशं तूप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते । तादृग्रोहति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः ॥ ३६ ॥

प्राचीन महर्षियोंने पुत्रोत्पत्तिके विषयमें जो पुराना इतिहास कहाहै, उस जगत्के उपकार करनेवाले और पवित्र उपाख्यानको मैं कहताहूं; सुनो ! ॥३१॥ पुत्र पतिकाही होताहै; किन्तु पतिके विषयमें दो प्रकारकी श्रुति है, श्रुतिके एक स्थानमें लिखाहै कि सन्तान उत्पन्नकरनेवाले पुरुषकाही पुत्रके ऊपर स्वामित्व है और दूसरे स्थानमें है कि अन्यक वीर्यसे उत्पन्न पुत्रके ऊपरभी विवाहकरनेवाले क्षेत्रस्वामीका स्वामित्व है ॥ ३२ ॥ स्त्री क्षेत्ररूपी और पुरुष बीजस्वरूप है; क्षेत्र और बीजके संयोगसे सब जीव उत्पन्न होतेहैं ॥ ३३ ॥ किसी स्थानमें बीजकी और किसी स्थानमें स्त्रीयोनिकी प्रधानता है; किन्तु जहां बीज और योनि दोनोंकी समानता रहतीहै अर्थात् अपनी भार्यामें सन्तान उत्पन्न होतीहै वही सन्तान उत्तम कहीजातीहै ॥ ३४ ॥ बीज और क्षेत्रमें बीजकी ही प्रधानता देख पड़तीहै; क्योंकि बीजके लक्षणोंसे युक्त होकरके ही सब प्राणी उत्पन्न हुआ करतेहैं ॥ ३५ ॥ यथासमयपर जोतेहुए खेतमें जैसा बीज बोयाजाताहै उसीके गुणके अनुसार अंकुर उत्पन्न होतेहैं ॥ ३६ ॥

तत्प्राज्ञेन विनीतेनज्ञानविज्ञान वेदिना । आयुष्कामेन वप्तव्यं न जातु परयोषिति ॥ ४१ ॥
येऽक्षेत्रिणो बीजवन्तः परक्षेत्रप्रवापिणः । ते वै सस्यस्य जातस्य न लभन्ते फलं क्वचित् ॥ ४९ ॥
क्रियाभ्युपगमात्त्वेतद्बीजार्थं यत्प्रदीयते । तस्येह भागिनौ दृष्टौ बीजी क्षेत्रिक एव च ॥ ५३ ॥

ॐ मनुस्मृति–३ः अध्यायके १७४ श्लोकमें ऐसाही है ।

बुद्धिमान, विनीत, वेद वेदाङ्गोंके जाननेवाले तथा दीर्घजीवी होनेकी इच्छावाले पुरुषको उचित है कि परकी स्त्रीमें कभी बीज नहीं डाले॥४१॥जिसका खेत नहीं है, केवल बीजही है वह यदि किसी दूसरेके खेतमें बीज बो देताहै तो उससे उसको कुछ फल नहीं मिलताहै; खेतका स्वामी ही उसका फल भोग करताहै ॥४९॥ जब बीजवाले पुरुष और खेतके स्वामीकी सम्मतिसे बीज बोयाजाताहै तब दोनो फलके भागी होतेहैं‌॥५३॥

(१३) पाराशरस्मृति-४ अध्याय।

ओघवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति। स क्षेत्री लभते बीजं न बीजी भागमर्हति ॥ २२ ॥
तद्वत्परस्त्रियः पुत्रौ द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ। पत्यौ जीवति कुण्डस्तु मृते भर्तरि गोलकः ॥ २३ ॥

जब आँधीके वेगसे उड़कर बीज किसी दूसरेके खेतमें उपजजाताहै तब वह अन्न होनेपर खेतवालेका ही होताहै, उसमें बीजवाला भाग नहीं पाताहै, इसी प्रकारसे अन्य पुरुषके वीर्यसे स्त्रीमें उत्पन्नहुआ पुत्र स्त्रीवालेका ही होगा ; ऐसे कुण्ड और गोलक दो पुत्र होतेहैं, पतिके जीते रहते जो अन्य पुरुषसे होताहै वह कुण्ड और पतिके मरनेपर जो अन्य पुरुषसे (विना नियोग किये) होताहै वह गोलक कहाजाताहै॥२२-२३॥

(१८) गौतमस्मृति--१८ अध्याय।

जनयितुरपत्यं समयादन्यत्र जीवतश्च क्षेत्रे परस्मात्तस्य द्वयोर्वा रक्षणाद्भर्तुरेव ॥ १ ॥

यदि कोई स्त्री नियोगके नियत समयसे भिन्न कालमें नियुक्त पुरुषके साथ सहवास करेगी तो उससे उत्पन्न सन्तान नियुक्त पुरुषकी होगी और पतिके जीतेरहतेही यदि अन्य किसी पुरुषसे उसकी स्त्रीमें सन्तान उत्पन्न होगी तो वह सन्तान क्षेत्रस्वामीकी अथवा दोनोंकीमानी जावेगी अथवा जो उसका पालन करेगा, उसीकी होगी ॥ १ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति--१७ अध्याय।

अनियुक्तायामुत्पन्न उत्पादयितुः पुत्रो भवतीत्याहुः ॥ ५५ ॥

विना नियोगके अन्यकी स्त्रीमें उत्पन्न कियाहुआ पुत्र उत्पन्न करनेवाले पुरुषका होताहै, ऐसा ऋषि लोग कहतेहैं ॥ ५५ ॥

जातिप्रकरण १५.

जातियोंकी उत्पत्ति और जीविका १.

(१) मनुस्मृति-१ अध्याय।

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः। ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निरवर्त्तयत् ॥३१ ॥

ब्रह्माने लोकोंकी वृद्धिके लिये अपने मुखसे ब्राह्मणको, बाहुसे क्षत्रियको, जंघासे वैश्यको और चरणसे शूद्रको उत्पन्न किया ॥ ३१ ॥

नारदस्मृति--१२ विवादपदके ५८-५९ श्लोक। जब किसीकी अनुमतिसे कोई उसके क्षेत्रमें बीज बोताहै तब उससे उत्पन्न सन्तान बीजवाले और क्षेत्रवाले दोनोंकी होती है।

मनुस्मृति;९ अध्यायके ५४ श्लोकमें और नारदस्मृति-१२ विवादपदके ५६-५७ श्लोकमें भी ऐसा है।

एक एक वर्णमें बहुतसी जातियां बनगई हैं, इस लिये इस समय यह निश्चय करना कठिन होगया है कि कौन कौन जाति वैश्य और कौन कौन जाति शूद्रहै। ब्राह्मण और क्षत्रियकी सब जातियोंके साथ उनका वर्ण लगाहुआ है तथा मनुष्यगणनाके समय ब्राह्मणकी सब जातियां ब्राह्मणमें और क्षत्रियकी सब जातियां क्षत्रियमें लिखी जातीहैं; किन्तु वैश्य और शूद्रके लिये ऐसा नहीं है। धर्मशास्त्रोंमें वर्णोंकी वृत्ति, संस्कार; शर्म वर्म आदि नामान्त तथा अशौच भिन्न भिन्न प्रकारसे लिखेहुए हैं; किन्तु इस समय इसका विचार नहीं है। वैश्यको कृषि तथा गोपालन वृत्ति तो वैश्यसे छूट करके ब्राह्मण और क्षत्रियकी प्रधान वृत्ति बन गयीहै; केवल वाणिज्य वैश्यकी वृत्ति रहगई है और शूद्रकी सेवावृत्ति भी बहुत नीच नहीं समझीजाती। तीनों द्विजातियोंका उपनयन आदि संस्कार तथा यज्ञसूत्र एकही तरहके होतेहैं। अग्रवाले आदि वैश्यके नामके साथ भी दास शब्द जो शूद्रके लिये है, लगाहुआहै। गोप, नाई आदि कई जातियां धर्मशास्त्रोंसे शूद्र जानपड़तीहैं उनका अशौच भी १५ दिनपर समाप्त होजाताहै। वैश्यमें बहुत लोगोंका उपनयन संस्कार छूटगयाहै। जिस जातिमें परम्परासे वाणिज्य होताहै उसको वैश्य और जिस जातिमें दासवृत्ति है उसको शूद्र जानना-चाहिये। बहुत लोग अपनी जातिकी उत्पत्तिका प्रमाण ढूंढतेहैं; किन्तु किसी प्राचीन ग्रन्थमें उनकी उत्पत्ति नहीं मिलती; क्योंकि प्राचीन समयमें चारही वर्णकी चार जातियां थीं, पीछे एक एक वर्णमें बहुत जाति पांति होगईं; वर्णसङ्कर जातियोंमें भी बहुत जातियां बढ़गई। धर्मशास्त्रोंमें लिखी हुई बहुतसी जातियां अब नहीं हैं।

याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्यायके १२६ श्लोकमें, हारीतस्मृति १ अध्यायके १२-१३ श्लोकमें और वसिष्ठस्मृति-४ अध्यायके २ श्लोकमें भी ऐसा है।

१० अध्याय ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः । चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ॥ ४ ॥

ब्राह्मण,क्षत्रिय और वैश्य; ये ३ वर्ण द्विज हैं;चौथा वर्ण शूद्र, इनके सिवाय पांचवां वर्ण नहीं है ※॥४॥

सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु । आनुलोम्येन सम्भूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥ ५ ॥

सम्पूर्ण वर्णोंमें समान जातिकी शास्त्रकी रीतिसे व्याहीहुई और पर पुरुषके सम्पर्कसे बचीहुई कन्यामें अनुलोमतासे अर्थात् ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें, क्षत्रियसे क्षत्रियामें, वैश्यसे वैश्यामें और शूद्रसे शूद्रामें उत्पन्न पुत्र अपने पिता माताकी जातिके होतेहैं, ऐसा जानना चाहिये । ⚘ ॥ ५ ॥

स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान् । सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ॥ ६ ॥

अनन्तरासु जातानां विधिरेष सनातनः । द्व्येकान्तरासु जातानां धर्म्यं विद्यादिमं विधिम् ॥ ७ ॥

द्विजों द्वारा अनुलोम क्रमसे अनन्तर वर्णजा पत्नीमें उत्पन्न अर्थात् ब्राह्मणसे क्षत्रियामें, क्षत्रियसे वैश्यामें और वैश्यासे शूद्रामें उत्पन्न पुत्र माताकी हीन जाति होनेके कारण अपने पिताकी जातिके तुल्य नहीं होतेहैं ⚜॥६॥ अनन्तर जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न सन्तानोंकी सनातन विधि कहीगई अब पतिसे एक वर्णके अन्तरकी और दो वर्णके अन्तरकी पत्नीमें उत्पन्न पुत्रोंका वृत्तान्त कहताहूं ॥ ७ ॥

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते । निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते ॥ ८ ॥

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् । क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तुरुग्रो नाम प्रजायते ॥ ९ ॥

ब्राह्मणसे वैश्यकी कन्यामें अम्बष्ठ जाति उत्पन्न होतीहै ۞ और ब्राह्मणसे शूद्रकी कन्यामें निषाद जातिका पुत्र जन्म लेताहै, जिसको पारशव भी कहतेहैं ▩ ॥ ८ ॥ क्षत्रियसे शूद्रकी कन्यामें क्रूर चेष्टावाली तथा क्रूर

※ व्यासस्मृति-१ अध्यायके ५-६ श्लोक । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये तीन वर्ण द्विजाति हैं; यही तीनों वेद, स्मृति और पुराणमें कहेहुए धर्मके अधिकारी हैं; अन्य नहीं । चौथा वर्ण शूद्र भी वर्ण होनेके कारण वेदमन्त्र, स्वधा, स्वाहा, वषट्कार आदिको छोड़कर धर्मका अधिकारी है ।

⚘ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-९० श्लोक । शुद्ध विवाहसे व्याहीहुई अपने वर्णकी स्त्रीसे अपने वर्णके पुत्र उत्पन्न होतेहैं और उनसे सन्तानकी बढ़ती होतीहै । वृहद्विष्णुस्मृति—१६ अध्याय-१ अंक । अपने वर्णकी भार्यामें अपने वर्णके पुत्र उत्पन्न होतेहैं । गौतमस्मृति-४ अध्याय ७ अंक । ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें ब्राह्मण जन्म लेताहै, क्षत्रियसे क्षत्रियामें क्षत्रियका जन्म होताहै, वैश्यसे वैश्यामें वैश्य उत्पन्न होताहै और शूद्रसे शूद्रामें शूद्र जन्मताहै । बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-८ अध्याय-६ अंक । अपने वर्णकी भार्यामें उत्पन्न पुत्र अपने वर्णका होताहै; अन्य वर्णकी भार्यामें उत्पन्न पुत्र अपने वर्णका नहीं होता ।

⚜ वृहद्विष्णुस्मृति—१६ अध्यायके २-३ अङ्क । बड़े वर्णके पुरुषसे छोटे वर्णकी कन्यामें माताके वर्णके पुत्र उत्पन्न होतेहैं और छोटे वर्णके पुरुषसे बड़े वर्णकी कन्यामें निन्दित पुत्र जन्मतेहैं । व्यासस्मृति-१ अध्यायके ७-८श्लोक । ब्राह्मणसे विवाहीहुई ब्राह्मणको कन्याकी सन्तानका जातकर्म आदि संस्कार ब्राह्मणके संस्कारके समान, ब्राह्मणसे विवाहीहुई क्षत्रियाकी सन्तानका संस्कार क्षत्रियके संस्कारके तुल्य और ब्राह्मणसे विवाहीहुई शूद्रकी कन्याकी सन्तानका संस्कार शूद्रके संस्कारके समान करना चाहिये । ब्राह्मण अथवा क्षत्रियसे विवाहीहुई वैश्यकी कन्याकी सन्तानका संस्कार वैश्यके संस्कारके तुल्य और किसी द्विजातिसे विवाही हुई शूद्रकी कन्याकी सन्तानका संस्कार शूद्रके संस्कारके समान होना चाहिये; नीच वर्णके पुरुषसे उच्चवर्णकी कन्यामें उत्पन्न सन्तान शूद्रसे नीच कही गईहै ।

۞ वसिष्ठस्मृति—१८ अध्यायके ६ अंक, बौधायनस्मृति—१ प्रश्न-९ अध्यायके ३ अंकमें और याज्ञवल्क्यस्मृति—१अध्याय-९१श्लोकमें भी ऐसा है । औशनसस्मृति-३१श्लोक । ब्राह्मणकी विवाहिता वैश्यामें उत्पन्न पुत्र अम्बष्ठ होताहै । मनुस्मृति—१० अध्याय-४७ श्लोक । अम्बष्ठकी जातिकी वृत्ति चिकित्सा है । औशनसस्मृतिके ३१-३२ श्लोक । अम्बष्ठकी वृत्ति खेती, लकड़ी, सेना और शस्त्र है ।

▩ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय-९१ श्लोक । ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न पुत्र निषाद होताहै, जिसको पारशव भी कहतेहैं । बौधायनस्मृति १ प्रश्न-९ अध्याय-,३ अंक । ब्राह्मणसे शूद्रा स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र निषाद होताहै, जिसको एक आचार्य पारशव कहतेहैं । गौतमस्मृति—४अध्याय-७अंक । ब्राह्मणसे शूद्रा स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र पारशव होताहै । औशनसस्मृतिके ३६—३८ श्लोक । ब्राह्मणकी विवाहिता शूद्र में उत्पन्न पुत्र पारशव कहलातेहैं ये भद्रक आदि पर्वतों पर रहतेहैं और पूतक कहातेहै, शिवादि आगमविद्या और मण्डल वृत्तिसे जीविका करतेहैं । और पारशवसे पारशवीमें उत्पन्न पुत्र निषाद कहेजातेहैं, वे वनमें दुष्ट मृगोंको मारकर उनके मांस बेंचकर निर्वाह करतेहैं । मनुस्मृति-१० अध्याय-४८ श्लोक । निषादकी वृत्ति मछली मारना है ।

कर्म करनेवाली क्षत्रिय और शूद्रके स्वभावसे युक्त उग्र जाति होतीहै ❀ ॥ ९ ॥

विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः। वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन्षडेतेऽपसदाः स्मृताः ॥ १० ॥

ब्राह्मणसे क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा भार्यामें उत्पन्न; क्षत्रियसे वैश्या और शूद्रामें उत्पन्न और वैश्यसे शूद्रामें उत्पन्न, ये ६ प्रकारके पुत्र अपने वर्णकी भार्याके पुत्रसे नीच होतेहैं ॥ १० ॥

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः। वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्राङ्गनासुतौ ॥ ११ ॥

शूद्रादायोगवः क्षत्ता चाण्डालश्चाधमो नृणाम्। वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः ॥१२ ॥

क्षत्रियसे ब्राह्मणकी कन्यामें सूत, ❀ वैश्यसे क्षत्रियामें मागध❀और वैश्यसे ब्राह्मणीमें वैदेह जातिका पुत्र उत्पन्न होताहै ❀॥११॥ शूद्रसे वैश्यामें आयोगव, ❀ शूद्रसे क्षत्रियामें क्षत्ता ❀ और शूद्रसे ब्राह्मणीमें चाण्डाल ◎; ये सब वर्णसंकर जन्म लेतेहैं ॥ १२ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय—९२ श्लोक। क्षत्रियकी विवाहिता शूद्रामें उत्पन्न पुत्र उग्र होताहै। वसिष्ठस्मृति—१८ अध्याय—६ अंक और बौधायनस्मृति—१ प्रश्न—९ अध्याय,—५ अंक। क्षत्रियकी शूद्रा स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र उग्र कहलाताहै। औशनसस्मृति—४०—४१ श्लोक। ब्राह्मणकी शूद्रा स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र उग्रजाति कहा जाताहै, उग्र जातिके लोग राजाके दण्डधार (चोबदार) होतेहैं और राजाकी आज्ञा होनेपर दण्डयोग्य मनुष्योंको दण्ड देतेहैं। मनुस्मृति—१० अध्याय—४९ श्लोक। उग्र जातिकी वृत्ति बिलमें बसनेवाले जीवोंका वध करना तथा बान्धना है।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय—९३ श्लोक, बृहद्विष्णुस्मृति—१६ अध्याय—६ अंक, गौतमस्मृति—४ अध्याय—७ अंक, वसिष्ठस्मृति—१८ अध्याय—३ अंक और बौधायनस्मृति—१ प्रश्न—९ अध्याय,—९ अंक। क्षत्रियकी ब्राह्मणी स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र सूतजाति कहलाताहै। औशनसस्मृति—२—३ श्लोक। क्षत्रियकी विवाहिता ब्राह्मणी स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र सूतजाति कहाजाताहै। मनुस्मृति—१० अध्याय—४७ श्लोक और बृहद्विष्णुस्मृति—१६ अध्याय—१३ अंक। सूतजातिकी वृत्ति रथ हांकना है।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय—९४ श्लोकमें ऐसाही है। गौतमस्मृति—४ अध्याय—७ अंक। औशनसस्मृति—७ श्लोक। वैश्यकी ब्राह्मणी स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र मागध होताहै। बृहद्विष्णुस्मृति—१६ अध्याय—५ अंक। शूद्रकी क्षत्रिया स्त्रीमें उत्पन्न पुत्रको मागध कहाताहै। बौधायनस्मृति—१ प्रश्न—९ अध्याय,—७ अंक। शूद्रकी वैश्या स्त्रीमें उत्पन्न पुत्रको मागध जाति कहतेहैं। मनुस्मृति—१० अध्याय—४७ श्लोक। मागधकी वृत्ति वाणिज्य है। बृहद्विष्णुस्मृति—१६ अध्याय—१० अंक। मागधकी वृत्ति प्रशंसा करना है। औशनसस्मृति—७—८ श्लोक। मागध लोग ब्राह्मणोंकी और विशेष करके क्षत्रियोंकी प्रशंसा करतेहैं; प्रशंसा करना और वैश्यकी सेवा करना उनकी वृत्ति है।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय—९३ श्लोक, बृहद्विष्णुस्मृति१६ अध्याय—६ अङ्क, और बौधायनस्मृति—१ प्रश्न—९ अध्याय,—८ अङ्कमें ऐसाही है। औशनसस्मृति—२० श्लोक और गौतमस्मृति—४ अध्याय—७ अंक। शूद्रकी वैश्या स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र वैदेह जाति कहाताहै। मनुस्मृति—१०अध्याय—४७श्लोक और बृहद्विष्णुस्मृति—१६अध्याय—१२ अंक। वैदेहकी वृत्ति अन्तःपुरकी रक्षा करना है। औशनसस्मृति—२०—२१ श्लोक। वैदेहके जातिके लोग बकरी, भैंस और गौको पालतेहैं और दही, दूध,घी तथा मट्ठा बेंचकर अपना निर्वाह करतेहैं।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—१अध्याय—९४श्लोक और बृहद्विष्णुस्मृति—१६ अध्याय—४अंकमें ऐसाही है। औशनसस्मृति—१२ श्लोक और बौधायनस्मृति—१ प्रश्न—९ अध्याय,—८ अंक। वैश्यकी क्षत्रिया स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र आयोगव जाति होताहै। मनुस्मृति—१० अध्याय—४८ श्लोक। आयोगवकी वृत्ति काठ छीलना है। बृहद्विष्णुस्मृति—१६ अध्याय—८ अंक। आयोगवकी वृत्ति रङ्गावतारण है। औशनसस्मृति—१३ श्लोक। आयोगव लोग वस्त्र बीनकर और कांसेके व्यापारसे जीविका करतेहैं; इनमें जो वस्त्रपर रेशम आदिके कसीदे निकालतेहैं वे शीलिक कहलातेहैं।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय-९३ श्लोक और बौधायनस्मृति—१ प्रश्न-९ अध्याय;-७ अंकमें ऐसाही है। मनुस्मृति—१० अध्याय—४९ श्लोक। बिलमें बसनेवाले जीवोंको मारना तथा बांधना क्षत्ता जातिकी वृत्ति है।

◎ याज्ञवल्क्यस्मृति -१ अध्याय-९४ श्लोक, बृहद्विष्णुस्मृति-१६ अध्याय-६ अंक,औशनसस्मृति—८श्लोक, व्याससस्मृति—१ अध्याय-९श्लोक, गौतमस्मृति—४अध्याय ७ अंक, वसिष्ठस्मृति १८अध्याय-१अंक और बौधायनस्मृति—१ प्रश्न-९ अध्याय,-७ अंकमें भी ऐसा है व्याससस्मृति-१ अध्यायके ९—१० श्लोकमें है कि चाण्डाल ३ प्रकारके होतेहैं;—पहिला कुमारी कन्यामें उत्पन्न, दूसरा अपने गोत्रकी कन्यामें उत्पन्न और तीसरा शूद्रसे ब्राह्मणकी कन्यामें उत्पन्न। मनुस्मृति—१० अध्याय ५५ श्लोक। चाण्डाल और श्वपच लोग अनाथ मुर्दोंको गांवसे बाहर फेंकतेहैं। ५६ श्लोक। जिनको राजा शास्त्रकी आज्ञानुसार वधदण्ड देताहै उनको चाण्डाल और श्वपाक वध करतेहैं और मृतककी शय्या और भूषण लेतेहैं। बृहद्विष्णुस्मृति—१६ अध्याय-११ अंक। वधयोग्य मनुष्योंका वधकरना चाण्डालकी वृत्ति है। (चाण्डालका कुछ वृत्तान्त आगे लिखाहै)।

एकान्तरे त्वानुलोम्यादम्बष्ठोग्रौ यथा स्मृतौ । क्षत्तृवैदेहकौ तद्वत्प्रातिलोम्येऽपि जन्मनि ॥ १३ ॥
पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमेणोक्ता द्विजन्मनाम् ।ताननन्तरनाम्नस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते ॥ १४ ॥

जैसे अनुलोम (सीधा) क्रमसे एकान्तर वर्णज अम्बष्ठ और उग्र जाति कहेगयेहैं उसी भांति प्रतिलोम (उलटा) क्रमसे एकान्तर वर्णज क्षत्ता और वैदेह हैं ॥ १३ ॥ द्विजातियोंके जो अनुलोम क्रमसे अनन्तर जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न पुत्र कहेगयेहैं वे पतिसे छोटी जातिकी माता होनेके कारण अनन्तर नामवाले कहेजातेहैं ॥ १४ ॥

ब्राह्मणादुग्रकन्यायामावृतो नाम जायते । अभीरोऽम्बष्ठकन्यायामायोगव्यां तु धिग्वणः ॥ १५ ॥

ब्राह्मणसे उग्रकी कन्यामें आवृत जाति, ब्राह्मणसे अम्बष्ठकी कन्यामें आभीर और ब्राह्मणसे आयोगवकी कन्यामें धिग्वण जातिका पुत्र ❀ उत्पन्न होताहै ॥ १५ ॥

अयोगवश्च क्षत्ता च चण्डालश्चाधमो नृणाम् । प्रातिलोम्येन जायन्ते शूद्रादपसदास्त्रयः ॥ १६ ॥
वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एव तु । प्रतीपमेते जायन्ते परेऽप्यपसदास्त्रयः ॥ १७ ॥

शूद्र द्वारा प्रतिलोम (उलटा) क्रमसे उत्पन्न (ऊपर लिखेहुए) आयोगव, क्षत्ता और चाण्डाल मनुष्योंमें अधम और पितरके कार्योंसे रहित हैं ॥ १६ ॥ इसी भांति प्रतिलोम क्रमसे वैश्य द्वारा उत्पन्न मागध और वैदेह और क्षत्रिय द्वारा उत्पन्न सूत जाति भी पितृकार्यके अधिकारी नहीं है ◎ ॥ १७ ॥

जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुक्कसः । शूद्राज्जातो निषाद्यां तु स वै कुक्कुटकः स्मृतः॥१८॥
क्षत्तुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते । वैदेहकेन त्वम्बष्ठ्यामुत्पन्नो वेण उच्यते ॥ १९ ॥

निषादसे शूद्रामें पुक्कस जाति, ❀❀ शूद्रसे निषादीमें कुक्कुटक जाति होतीहै ॥ १८ ॥ क्षत्तासे उग्रामें श्वपाक जाति ✿ और वैदेहसे अम्बष्ठामें वेण जातिके पुत्र होतेहैं ❁ ॥ १९ ॥

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान् । तान्सावित्रीपरिभ्रष्टान्व्रात्यानिति विनिर्दिशेत् ॥ २०॥
व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः । आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च ॥२१ ॥
झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेव च । नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च ॥ २२ ॥
वैश्यात्तु जायते व्रात्यात्सुधन्वाचार्य एव च । कारुषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च ॥ २३ ॥

द्विजाती लोग अपनी सवर्णा स्त्रीमें जिन पुत्रोंको उत्पन्न करतेहैं वे यदि उपनयन संस्कारसे रहित होजातेहैं । तो व्रात्य कहेजातेहैं ॥ २० ॥ व्रात्य ब्राह्मणकी सवर्णा स्त्रीमें पापकर्मा भूर्जकण्टक जातिका पुत्र उत्पन्न होताहै, जिसको आवन्त्य, वाटधान, पुष्पध और शैख भी कहतेहैं॥२१॥ ▦ व्रात्य क्षत्रियकी सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न पुत्रको झल्ल, मल्ल, निच्छिवि, नट, करण, खस और द्रविड जाति कहतेहैं ॥ २२॥ व्रात्य वैश्यकी सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न पुत्रको सुधन्वा, आचार्य, कारुष, विजन्मा, मैत्र और सात्वत जाति कहतेहैं ॥ २३ ॥

व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च । स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः ॥ २४ ॥

व्यभिचारकरनेसे, विवाहके अयोग्य सगोत्र आदिमें विवाह करनेसे और उपनयन आदि अपने कर्मोंको त्यागनेसे ब्राह्मण आदि वर्णोंमें वर्णसंकर हुआकरतेहैं ॥ २४ ॥

❀ मनुस्मृति—१० अध्याय ४९ श्लोक । चमड़ेका काम धिग्वणजातिकी वृत्ति है ।

◎ गौतमस्मृति-४ अध्याय ९ अंक । नीचवर्णके पुरुषसे उच्च वर्णकी स्त्रीमें उत्पन्न तथा द्विज द्वारा शूद्रामें उत्पन्न पुत्र धर्म कर्मसे रहित होतेहैं और शूद्रसे द्विजकी कन्यामें उत्पन्न पुत्र पतित और पापी होतेहैं । नारदस्मृति—१२ विवादपद-१०३—श्लोक । छोटे वर्णके पुरुषसे बड़े वर्णकी कन्यामें उत्पन्न पुत्रको वर्णसंकर जानना चाहिये ।

❀❀ बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-९ अध्यायके १४ श्लोकमें ऐसाही है । मनुस्मृति-१० अध्याय ४९ श्लोक । बिलके जीवोंको मारना और बांधना पुक्कसकी वृत्ति है । बृहद्विष्णुस्मृति १६ अध्याय-९ अङ्क । व्याधाका कर्म पुक्कसकी वृत्ति है ।

❀ बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-९ अध्यायके १५ श्लोकमें भी ऐसा है ।

✿ बौधायनस्मृति—१ प्रश्न-९ अध्यायके १२ अंकमें उग्रसे क्षत्तास्त्रीमें उत्पन्न पुत्रको श्वपाक लिखाहै । मनुस्मृति-१० अध्यायके ५५-५६ श्लोक । चाण्डाल और श्वपच अनाथ मुर्दोंको गांवसे बाहर फेंकतेहैं; जिनको राजा शास्त्रकी आज्ञानुसार वधदण्ड देताहै उनको वे लोग वध करतेहैं और मृतककी शय्या और भूषण लेतेहैं ।

❁ बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-९ अध्यायके १३ अङ्कमें ऐसाही है । वसिष्ठस्मृति-१८ अध्याय-१ अंक । शूद्रसे क्षत्रियामें उत्पन्न पुत्र वैण होताहै । औशनसस्मृति-४ श्लोक । सूतसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न पुत्र वेणुक कहलाताहै । मनुस्मृति—१० अध्याय-४९ श्लोक मृदङ्ग आदि बजाना वैण जातिकी वृत्ति है ।

▦ गौतमस्मृति-४ अध्याय-७ अङ्क ब्राह्मणसे वैश्याम् उत्पन्न पुत्र भृज्ज कण्टक होताहै ।

संकीर्णयोनयो ये तु प्रतिलोमानुलोमजाः । अन्योन्यव्यतिषक्ताश्च तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ २५ ॥
सूतो वैदेहकश्चैव चण्डालश्च नराधमः । मागधः क्षत्तृजातिश्च तथाऽयोगव एव च ॥ २६ ॥
एते षट् सदृशान्वर्णाञ्जनयन्ति स्वयोनिषु । मातृजात्यां प्रसूयन्ते प्रवरासु च योनिषु ॥ २७ ॥
यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोरात्मास्य जायते। आनन्तर्यात्स्वयोन्यां तु तथा बाह्येष्वपि क्रमात्॥२८॥
ते चापि बाह्यान्सुबहूंस्ततोऽप्यधिकदूषितान्। परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान् ॥ २९ ॥
यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जन्तुं प्रसूयते । तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते ॥ ३० ॥

संकीर्ण योनि अर्थात् दो वर्णके मेलसे प्रतिलोम और अनुलोम होतेहैं तथा परस्पर अन्यकी स्त्रियोंमें आसक्त होनेसे जो वर्णसंकर उत्पन्न होतेहैं उनको पूरी रीतिसे कहताहूं॥२५॥सूत,वैदेह,मनुष्योंमें अधम चाण्डाल,मागध, क्षत्ता और आयोगव; ये ६ प्रतिलोमज वर्णसंकर अपनी जाति, माताकी जाति और अपनेसे श्रेष्ठ जातिकी कन्यामें अपने समान जातिके पुत्रको उत्पन्न करतेहैं जैसे शूद्रसे वैश्या स्त्रीमें आयोगव होताहै तो वह आयोगव जातिकी स्त्रीमें, माताकी जाति वैश्यामें और श्रेष्ठ जाति ब्राह्मणी तथा क्षत्रियामें आयोगव जातिका पुत्र उत्पन्न करताहै ॥ २६-२७ ॥ जैसे ब्राह्मण द्वारा क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रामें उत्पन्न सन्तानोंमेंसे क्षत्रिया तथा वैश्यामें उत्पन्न सन्तान द्विज होताहै और ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न सन्तान भी द्विज हैं और जैसे वैश्यामें उत्पन्न पुत्रसे क्षत्रियामें उत्पन्न पुत्र और क्षत्रियामें उत्पन्न पुत्रसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न पुत्र श्रेष्ठ है वैसेही प्रतिलोम क्रमसे ब्राह्मणीमें क्षत्रिया द्वारा उत्पन्न सन्तानसे वैश्य द्वारा उत्पन्न सन्तान और वैश्य द्वारा उत्पन्न सन्तानसे शूद्र द्वारा उत्पन्न सन्तान नीच होतीहै ॥ २८ ॥ प्रतिलोमज वर्णसंकर जब परस्पर जातिकी स्त्रियोंमें, जैसे सूतवैदेहकी स्त्रीमें वा वैदेह सूतकी स्त्रीमें पुत्र उत्पन्न करतेहैं तब वे पुत्र अपने पिता मातासे अधिक दूषित और निन्दित होतेहैं ॥ २९ ॥ जैसे शूद्रसे ब्राह्मणीमें चाण्डाल उत्पन्न होताहै वैसेही वर्णसंकर द्वारा ब्राह्मण आदि चारो वर्णोंकी स्त्रियोंमें चाण्डालसे भी नीच पुत्र उत्पन्न होतेहैं ॥ ३० ॥

प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनम् । सैरिन्ध्रं वागुरावृत्तिं सूते दस्युरयोगवे ॥ ३२ ॥
मैत्रयकं तु वैदेहो माधूकं संप्रसूयते । नॄन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टाताडोऽरुणोदये ॥ ३३ ॥
निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनम् । कैवर्त्तमिति यं प्राहुरार्यावर्त्तनिवासिनः ॥ ३४ ॥
मृतवस्त्रभृत्सु नारीषु गर्हितान्नाशनासु च । भवन्त्यायोगवीष्वेते जातिहीनाः पृथक्त्रयः ॥ ३५ ॥
कारावरो निषादात्तु चर्मकारः प्रसूयते । वैदेहकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ ॥ ३६ ॥
चाण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान्। आहिण्डको निषादेन वैदेह्यामेव जायते ॥ ३७ ॥
चाण्डालेन तु सोपाको मूलव्यसनवृत्तिमान् । पुक्कस्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः ॥ ३८ ॥
निषादस्त्री तु चाण्डालात्पुत्रमन्त्यावसायिनम्। श्मशानगोचरं सूते बाह्यानामपि गर्हितम् ॥३९॥
संकरे जातयस्त्वेताः पितृमातृप्रदर्शिताः । प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः ॥ ४० ॥

डाकू जातिसे आयोगवकी स्त्रीमें उत्पन्न पुत्रको सैरिन्ध्र जाति कहतेहैं वे लोग केशरचना, देह दाबना आदि दासके काम करनेमें चतुर होतेहैं, दास नहीं होनेपरभी दासकर्म करके निर्वाह करतेहैं और फंदेसे मृगको मारकर जीविका चलातेहैं ॥ ३२ ॥ वैदेहसे आयोगवी स्त्रीमें उत्पन्न सन्तानको मैत्रेय जाति कहतेहैं, वे लोग मीठी बात बोलनेवाले होतेहैं और सूर्योदयके समय घण्टा बजाकर जीविकाके लिये राजा आदिकी प्रशंसा करतेहैं ॥ ३३ ॥ निषादसे आयोगवीमें उत्पन्न सन्तानको मार्गव और दास जाति कहतेहैं, वे लोग नाव चलाकर जीविका करतेहैं आर्यावर्त्तके लोग इनको कैवर्त्त कहतेहैं ॥ ३४ ॥ मुर्देका वस्त्र पहननेवाली क्रूर तथा जूठा खानेवाली अयोगवीमें जन्मदाताके भेदसे सैरिंध्र, मैत्रेय और मार्गव; ये ३ हीन जाति उत्पन्न होती है ॥ ३५ ॥ निषादसे वैदेही स्त्रीमें कारावर सन्तान उत्पन्न होतीहै, चामका काटना इनकी जीविका है; वैदेहसे कारावरीमें अन्ध्र और निषादीमें भेद उत्पन्न होतेहैं, ये गांवसे बाहर बसतेहैं । चाण्डालसे वैदेही स्त्रीमें बांसके काम चटाई,पंखा आदि बनाकर जीविका करनेवाली पाण्डुसोपाक जाति और निषादसे वैदेहीमें आहिण्डिक जाति उत्पन्न होतीहै॥३६॥३७॥चाण्डालसे पुक्कसी स्त्रीमें पापी सोपाक जाति होतीहै, वह साधुओंकरके निन्दित है और जल्लादका काम करके निर्वाह करतीहै ॥ ३८ ॥ चाण्डालसे निषादकी स्त्रीमें अन्त्यावसायी जाति उत्पन्न होतीहै, वे लोग श्मशानके कामसे अपना निर्वाह करतेहैं; और ये नीच जातिसे भी नीच हैं ॥ ॥३९॥ वर्णसंकर जाति और इनके मातापिताका नाम वर्णन कियागया; इनके सिवाय अन्य छिपी हुई अथवा प्रकट वर्णसंकर जाति कामोंसे पहचानी जातीहैं ॥ ४० ॥

सजातिजानन्तरजाः षट् सुता द्विजधर्मिणः । शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः ॥ ४१ ॥

 वसिष्ठस्मृति—१८ अध्याय-१ अंक । शूद्रसे वैश्यामें अन्त्यावसायी पुत्र उत्पन्न होताहै ।

ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें, क्षत्रियसे क्षत्रियामें, वैश्यसे वैश्यामें और अनुलोम क्रमसे ब्राह्मणसे क्षत्रियामें, ब्राह्मणसे वैश्यामें और क्षत्रियसे वैश्यामें उत्पन्न, ये ६ प्रकारके पुत्र द्विजधर्मपर चलनेवाले अर्थात् यज्ञोपवीतके योग्य होतेहैं;किन्तु द्विजोंके सब प्रतिलोमज पुत्र अर्थात् क्षत्रियसे ब्राह्मणीमें और वैश्यसे क्षत्रिया तथा ब्राह्मणीमें उत्पन्न पुत्र शूद्रधर्मी हुआ करतेहैं ॥ ४१ ॥

तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगेयुगे । उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ ४२ ॥
शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः । वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ ४३ ॥
पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः । पारदापह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥४४॥
मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः । म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ ४५ ॥

मनुष्य सब युगोंमें तपके प्रभावसे (विश्वामित्रके समान) और वीर्यके प्रभावसे (ऋष्यशृङ्ग आदिके समान) अपनी जातिसे श्रेष्ठ जातिके बनजातेहैं और क्रियाहीन होजानेसे बड़ी जातिके मनुष्य हीन जातिके होजातेहैं ॥ ४२ ॥ पौण्ड्रक, औड्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खश देशके रहनेवाले क्षत्रिय यज्ञोपवीत आदि क्रियाओंके लोप होनेसे और इन देशोंमें ब्राह्मणके रहनेके कारण धीरे धीरे शूद्र होगयेहैं ॥ ४३--४४ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र लोगोंमें चाहे आर्यभाषा बोलनेवाले हैं अथवा म्लेच्छभाषावाले हैं क्रियालोप आदि कारणोंसे जो बाह्य जाति बनगयेहैं वे दस्यु अर्थात् डाकूजाति कहेजातेहैं ॥ ४५ ॥

ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंसजाः स्मृताः । ते निन्दितैर्वर्त्तयेयुर्द्विजानामेव कर्मभिः ॥ ४६ ॥
मेदान्ध्रचुञ्चुमद्गूनामारण्यपशुहिंसनम् ॥ ४८ ॥
क्षत्तुग्रपुक्कसानां तु बिलौकोवधबन्धनम् । धिग्वणानां चर्मकार्यं वेणानां भाण्डवादनम् ॥ ४९ ॥
चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु च । वसेयुरेते विज्ञाना वर्त्तयन्तः स्वकर्मभिः ॥ ५० ॥
चाण्डालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः । अपपात्राश्च कर्त्तव्याःधनमेषां श्वगर्दभम् ॥ ५१ ॥
वासांसि मृतचैलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम् । कार्ष्णायसमलंकारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥ ५२ ॥
न तैः समयमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन् । व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहः सदृशैः सह ॥ ५३ ॥
अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद्भिन्नभाजने । रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ५४ ॥
दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः । अबान्धवं शवं चैव निर्हरेयुरिति स्थितिः ॥ ५५ ॥
वध्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया । वध्यवासांसि गृह्णीयुः शय्याश्चाभरणानि च ॥ ५६ ॥

द्विजातियोंकी अनुलोम क्रमसे (बड़ी जातिके पुरुषसे छोटी जातिकी कन्यामें) उत्पन्न सन्तान अथवा प्रतिलोमक्रमसे (छोटी जातिके पुरुषसे बड़ी जातिकी कन्यामें) उत्पन्न सन्तान द्विजोंके कर्मोंसे भिन्न निन्दित कर्मोंसे अपनी जीविका करतीहैं ॥ ४६ ॥ मेद, अन्ध्र, चुञ्चु और मद्गु जातिकी वृत्ति बनैले पशुओंका वध करना है ॥ ४८ ॥ क्षत्ता, उग्र और पुक्कसकी वृत्ति बिलमें बसनेवाले जीवोंका मारना तथा बांधना; धिग्वणकी वृत्ति चमड़ेका काम करना और वेण जातिकी वृत्ति मृदङ्ग आदिका बजाना है ॥ ४९ ॥ इन जातियोंके मनुष्य अपनी अपनी वृत्तिका अवलम्बन करके प्रसिद्ध वृक्षोंकी जड़के पास, पर्वतके समीप और श्मशान तथा उपवनमें वास करें ॥ ५० ॥ चाण्डाल और श्वपचको गांवसे बाहर बसाना चाहिये;ये निषिद्ध पात्र रखनेयोग्य हैं; कुत्ते और गदहे इनके धन हैं ॥५१॥ ये लोग मुर्देके वस्त्र पहनतेहैं, टूटे बर्त्तनमें खातेहैं, लोहेके गहने पहनतेहैं और एक जगहसे दूसरी जगह भ्रमण किया करतेहैं ॥ ५२ ॥ धर्मकार्यके समय इनको नहीं देखना चाहिये; इनका लेन देन व्यवहार और विवाह अपने समानवालोंके साथ होना चाहिये ॥५३॥ इनको अन्न देना होवे तो दासोंद्वारा टूटे बर्तनमें देना चाहिये; और रातके समय इनको गांव अथवा नगरमें नहीं आनेदेना चाहिये ॥ ५४ ॥ ये लोग राजाकी आज्ञा लेकर अपनी जातिका चिह्न धारण करके किसी कार्यके लिये दिनमें गांव या नगरमें जावें और अनाथ मुर्दोंको गांवसे बाहर फेंकें ※ ॥ ५५ ॥ जिसको शास्त्रकी आज्ञानुसार राजा वध करनेका दण्ड देताहै उसका ये लोग वध करें और मृतकके वस्त्र, शय्या और गहनेको लेवें ॥ ५६ ॥

वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् । आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ॥ ५७ ॥
अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता । पुरुषं व्यंजयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥ ५८ ॥

※ औशनसस्मृति–९–११ श्लोक । चाण्डाल सीसे और लोहेके गहने पहनतेहैं इनको चाहिये कि कण्ठमें चमड़ेका पट्टा और कोखमें झालरी बांधकर मध्याह्नसे पहिलेही गांवमें जाकर गांवकी शुद्धिके लिये मल उठावें; मध्याह्नके पश्चात् गांवमें नहीं जावें, गांवसे बाहर नैर्ऋत्य दिशामें निवास करें, सब एकही जगह रहें यदि ऐसा नहीं करें तो विशेष दण्डके योग्य होतेहैं ।

पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा। न कथञ्चन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति ॥ ५९ ॥
कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्य स्याद्योनिसङ्करः। संश्रयत्येव तच्छीलं नरोऽल्पमपि वा बहु ॥ ६० ॥
यत्र त्वेते परिध्वंसा जायन्ते वर्णदूषकाः। राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति ॥ ६१ ॥

जो वर्णसंकर अनार्य मनुष्य अपनेको छिपाकर आर्यके वेषसे रहतेहैं उनको नीचे लिखेहुए कर्मोंसे पहचानना चाहिये॥५७॥ कठोरता, निष्ठुरता, क्रूरता, और शास्त्रोक्त कर्मसे रहित होना, ये सब वर्णसंकरकी जातिको लोकमें प्रकट करदेतेहैं अर्थात् जिनमें कठोरता आदि होय उनको वर्णसंकर जानना चाहिये ॥ ५८॥ ये लोग पिताके स्वभावके अथवा माताके स्वभावके या दोनोंके स्वभावके होतेहैं; अपने नीचकुलके स्वभावको किसीप्रकार छिपा नहीं सकतेहैं ॥ ५९ ॥ बड़े कुलमें उत्पन्न होनेपरभी वर्णसंकरमें थोड़ा अथवा बहुत अपने पिताका स्वभाव रहताहै ॥ ६०॥ जिस राज्यमें वर्णदूषक वर्णसङ्कर उत्पन्न होतेहैं वह राज्य शीघ्रही प्रजाओंके सहित नष्ट हो जाताहै ॥ ६१ ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः। स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् ॥ ६२॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ ६३ ॥

विना पुरस्कारकी आशाके ब्राह्मण, गौ स्त्री अथवा बालककी रक्षाके लिये प्राणत्याग करनेसे वर्णसंकरोंको स्वर्ग मिलताहै *॥६२॥ भगवान् मनुने कहाहै कि हिंसा नहीं करना, सत्य बोलना, चोरी नहीं करना, पवित्र रहना और इन्द्रियोंको वशमें रखना ये सब धर्म चारो वर्ण और वर्णसंकर जातियोंके लिये भी हैं ※ ॥ ६३ ॥

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते। अश्रेयाञ्छ्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥ ६४॥
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्। क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ ६५ ॥

ब्राह्मण द्वारा शूद्रामें उत्पन्न सन्तान श्रेष्ठसे सम्बन्ध होनेके कारण सातवीं पीढ़ीमें नीच जातिसे श्रेष्ठ जाति होजातीहै (जैसे ब्राह्मणसे शूद्रा स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र निषादजाति होताहै, यदि ब्राह्मणकी शूद्रा स्त्रीमें कन्या उत्पन्न होवे और वह ब्राह्मणसे विवाहीजाय और उसकी कन्यासे फिर ब्राह्मणका विवाह होवे इसी प्रकारसे लगातार सात पीढ़ी तक हो तो सातवीं पीढ़ीका निषादीका पुत्र श्रेष्ठ जाति अर्थात् ब्राह्मण हो जाताहै) ॥ ६४ ॥ इसी भांति शूद्र ब्राह्मण होताहै और ब्राह्मण शूद्र होजाताहै, क्षत्रिय और वैश्यसे उत्पन्न सन्तानके विषयमें भी ऐसाही जानना ※ ॥ ६५ ॥

अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया। ब्राह्मण्यामप्यनार्याच्च श्रेयस्त्वं केति चेद्भवेत् ॥ ६६ ॥
जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः। जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः ॥६७ ॥
तावुभावप्यसंस्कार्याविति धर्मो व्यवस्थितः। वैगुण्याज्जन्मनः पूर्व उत्तरः प्रतिलोमतः ॥ ६८ ॥
सुवीजं चैव सुक्षेत्रे जातं संपद्यते यथा। तथाऽर्याज्जात आर्यायां सर्वसंस्कारमर्हति ॥ ६९ ॥
वीजमेके प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः। वीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयं तु व्यवस्थितिः ॥ ७० ॥
अक्षेत्रे वीजमुत्सृष्टमन्तरैव विनश्यति। अवीजकमपि क्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत् ॥ ७१ ॥
यस्माद्वीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽभवन्। पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्वीजं प्रशस्यते ॥ ७२ ॥

---

* वृहद्विष्णुस्मृति—१६ अध्यायके १८ श्लोकमें ऐसाही है।

※ याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय १२२ श्लोक। हिंसा नहीं करना, सत्य बोलना, चोरी नहीं करना पवित्र रहना इन्द्रियोंको वशमें रखना, दान देना, दया करना, अन्तःकरणको रोकना और क्षमा करना मनुष्यमात्रके धर्मका साधन है अर्थात् ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालपर्यन्तके लिये ये सब धर्म हैं।

※ याज्ञवल्क्यस्मृति–१अध्याय–९६ श्लोक। पांचवीं अथवा सातवीं पीढीमें जातिकी उत्कर्षता (श्रेष्ठता)होतीहै यदि कर्मोंकी विपरीतता होय तो पांचवीं वा सातवीं पीढ़ीमें छोटी जातिका मनुष्य बड़ी जाति और बडी जातिका मनुष्य छोटी जाति होजाताहै और नीच प्रतिलोमज तथा उत्तम अनुलोमज भी पूर्वके समान होतेहैं। गौतमस्मृति–४ अध्यायके ८–९ अंक। अनेक आचार्योंका मत है कि सातवीं अथवा पांचवीं पीढीमें वर्णसंकर पुरुष अपने पिताकी जातिमें ऊंच वा नीच होजाताहै और सृष्ट्यन्तर नाम वर्णसंकरोंसे जो वर्णसंकर जाति होतीहैं वे भी इसी भांति सातवीं अथवा पांचवीं पीढीमें अपने अपने पिताकी जातिमें होजातीहैं। बौधायनस्मृति १ प्रश्न–८ अध्यायके १३–१५ अङ्क। ब्राह्मणके पुत्र निषादसे निषादीमें उत्पन्न पुत्रोंकी पांचवीं पीढ़ीमें शूद्रता छूटजातीहै, छठवीं पीढीमें उनका यज्ञोपवीत करना चाहिये तथा उनको यज्ञ कराना चाहिये, किसी आचार्यका मत है कि सातवीं पीढ़ीमें उसकी शूद्रता छूटतीहै, एक आचार्यका मत है कि समान वीजवाले अर्थात् ब्राह्मण हो जातेहैं। १ प्रश्न–९ अध्याय ३ अंक। ब्राह्मणसे शूद्रामें निषाद होताहै।

ब्राह्मणद्वारा शूद्रा स्त्रीमें इच्छापूर्वक उत्पन्नहुई सन्तान और शूद्र द्वारा ब्राह्मणीमें उत्पन्न सन्तान, इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है ॥ ६६ ॥ ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न पुत्र पाकयज्ञानुष्ठानगुणयुक्त होनेसे शूद्रसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न पुत्रसे निश्चय करके श्रेष्ठ होताहै ॥ ६७ ॥ धर्मकी व्यवस्था है कि ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न पुत्र (पारशव) अथवा शूद्रसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न पुत्र (चाण्डाल); इन दोनोंके बीच कोई उपनयन संस्कारके योग्य नहीं है; क्योंकि पारशव तो निन्दित क्षेत्रमें जन्मा और चाण्डाल प्रतिलोमज है ॥ ६८ ॥ जैसे उत्तम खेतमें अच्छे बीज बोनेसे उत्तम सस्य उत्पन्न होताहै वैसेही द्विजातिद्वारा अनुलोम क्रमसे द्विजकी कन्यामें उत्पन्न पुत्र उपनयन आदि संस्कारोंके योग्य होतेहैं ॥ ६९ ॥ पण्डितोंमें कोई बीजकी और कोई क्षेत्रकी प्रशंसा करतेहैं और कोई बीज और क्षेत्र दोनोंकी प्रशंसा किया करतेहैं, इस मतभेदमें नीचे कहीहुई व्यवस्था उत्तम है ॥ ७० ॥ ऊषर भूमिमें अच्छा बीजभी नहीं जमताहै और विना बीज बोयेहुए उपजाऊ भूमि भी निष्फल होती है, इसलिये बीज और क्षेत्र दोनों प्रधान हैं ॥ ७१ ॥ वीर्यके. प्रभावसे तिर्यक् योनिमें उत्पन्न ऋषि अर्थात् हरिणी आदिकसे उत्पन्न हुये शृङ्गी ऋष्यादि मुनि होकर पूजित तथा स्तुतिके योग्य हुये इसलिये बीज श्रेष्ठ कहागयाहै ॥ ७२ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति--१ अध्याय।

विप्रान्मूर्द्धावषिक्तो हि क्षत्रियायां विशः स्त्रियाम्। अम्बष्टः शूद्र्यां निषादो जातः पारशवोऽपि वा
वैश्याशूद्र्योस्तु राजन्यान्माहिष्योग्रौ सुतौ स्मृतौ। वैश्यात्तु करणः शूद्र्यां विन्नास्वेष विधिःस्मृतः९२
माहिष्येण करण्यां तु रथकारः प्रजायते। असत्सन्तस्तु विज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः ॥ ९५ ॥

ब्राह्मणसे क्षत्रियामें मूर्द्धावषिक्त जाति, ❀ वैश्यामें अम्बष्ठ और शूद्रामें निषाद जाति, जिसको पारशव भी कहतेहैं उत्पन्न होतीहै ॥ ९१ ॥ क्षत्रियसे वैश्यामें उत्पन्न पुत्र माहिष्य ✤ और शूद्रामें उत्पन्न पुत्र उग्र और वैश्यसे शूद्रामें उत्पन्न पुत्र करण ✿ जाति होतीहै, यह विवाहिता स्त्रियोंमें जानना॥ ९२॥ माहिष्यसे करणकी स्त्रीमें रथकार उत्पन्न होताहै ✽; इनमेंसे नीच जातिके पुरुषसे ऊंच जातिकी स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र बुरे और ऊंच जातिके पुरुषसे नीच जातिकी स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र अच्छे समझे जातेहैं ॥ ९५ ॥

(१३) पाराशरस्मृति--११ अध्याय।

शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः। संस्कृतस्तु भवेद्दासो ह्यसंस्कारैस्तु नापितः ॥ २३ ॥
क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां समुत्पन्नस्तु यः सुतः। स गोपाल इति ख्यातो भोज्यो विप्रैर्न संशयः॥२४॥
वैश्यकन्यासमुद्भूतो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः। स ह्यार्द्धिक इति ज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥ २५ ॥

ब्राह्मणसे शूद्रकी कन्यामें उत्पन्न पुत्रका यदि ब्राह्मण संस्कार करताहै तो वह दासजाति कहलाताहै और यदि उसका संस्कार नहीं करताहै तो वह नापित (नाई) जाति होताहै ✾ ॥ २३ ॥ क्षत्रियसे शूद्रकी कन्यामें उत्पन्न पुत्रको गोपाल जाति कहतेहैं, उसके घर ब्राह्मण निःसन्देह भोजन करे ॥ २४ ॥ ब्राह्मणसे वैश्यकी कन्यामें उत्पन्न पुत्रका यदि ब्राह्मण संस्कार करताहै तो वह आर्द्धिक कहाताहै; उसके घर ब्राह्मण निःसन्देह खावे ॥ २५ ॥

(१८)गौतमस्मृति–४ अध्याय।

ब्राह्मण्यजीजनत्पुत्रान्वर्णेभ्यआनुपूर्व्यात् ब्राह्मणसूतमागधचाण्डालान् तेभ्य एव क्षत्रिया मूर्द्धावषिक्तक्षत्रियधीवरपुल्कसान्तेभ्य एव वैश्याभृज्जकण्टकमाहिष्यवैदेहान्तेभ्य एव पारशवयवनकरणशूद्राञ्शूद्रेत्येके ॥ ७ ॥

❀ गौतमस्मृति–४ अध्यायके ७ अङ्कमें ऐसाही है।

✤ गौतमस्मृति–४ अध्यायके ७ अंकमें भी ऐसा है।

✿ गौतमस्मृति–४ अध्यायके ७ अंकमें ऐसाही है।

✽ औशनसस्मृति–५ श्लोक। क्षत्रियसे ब्राह्मणीमें व्यभिचारसे उत्पन्न पुत्र रथकार होताहै; वह शूद्रधर्मी है। बौधायनस्मृति–१ प्रश्न—९ अध्याय,–६ अंक। वैश्यसे शूद्रामें उत्पन्न पुत्र रथकार होताहै।

✾ औशनसस्मृति–३२–३३ श्लोक। चोरीसे ब्राह्मणद्वारा वैश्यामें उत्पन्न पुत्र कुंभार कहाताहै, वह मिट्टीके वर्तन बनाकर जीविका करताहै, इसी प्रकार ब्राह्मणसे वैश्यामें उत्पन्न नाई होतेहैं जो जन्म सूतक और रणसूतकमें तथा दीक्षाके समय केशोंको काटतेहैं।

क्षत्रिया स्त्रीमें वैश्यसे धीवर जाति पुत्र उत्पन्न होताहै। शूद्रा स्त्रीमें क्षत्रियसे यवन जाति पुत्र उत्पन्न होताहै ❀ ॥ ७ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति--१८ अध्याय।

वैश्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नो रोमको भवतीत्याहुः राजन्यायां पुल्कसः ॥ २ ॥

वैश्यसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न पुत्र रोमक और क्षत्रियामें उत्पन्न पुत्र पुल्कस जाति होताहै, ऐसा कहतेहैं ▨ २

(६ ख) औशनसस्मृति।

सूताद्विप्रप्रसूतायां सुतो वेणुक उच्यते। नृपायामेव तस्यैव जातो यश्चर्मकारकः ॥ ४ ॥
चाण्डालाद्वैश्यकन्यायां जातः श्वपच उच्यते ॥ ११ ॥
श्वमांसभक्षणं तेषां श्वान एव च तद्बलम् ॥ १२ ॥
आयोगवेन विप्रायां जातास्ताम्रोपजीविनः। तस्यैव नृपकन्यायां जातः सूनिक उच्यते ॥ १४ ॥
सूनिकस्य नृपायां तु जाता उद्बन्धकाः स्मृताः। निर्णेजयेयुर्वस्त्राणि अस्पृश्याश्च भवन्त्यतः ॥१५॥
नृपायां वैश्यतश्चौर्यात्पुलिन्दः परिकीर्तितः। पशुवृत्तिर्भवेत्तस्य हन्युस्तान्दुष्टसत्त्वकान् ॥ १६ ॥
पुल्कसाद्वैश्यकन्यायाञ्जातो रजक उच्यते ॥ १८ ॥
नृपायां शूद्रतश्चौर्याज्जातो रञ्जक उच्यते। वैश्यायां रञ्जकाज्जातो नर्तको गायको भवेत् ॥ १९ ॥
वैदेहिकात्तु विप्रायां जाताश्चर्मोपजीविनः ॥ २१ ॥
नृपायामेव तस्यैव सूचिकः पाचकः स्मृतः। वैश्यायां शूद्रतश्चौर्याज्जातश्चक्री च उच्यते ॥ २२ ॥
तैलपिष्टकजीवी तु लवणं भावयन्पुनः। विधिना ब्राह्मणः प्राप्य नृपायां तु समन्त्रकम् ॥ २३ ॥

☞ सूतसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न पुत्र वेणुक और क्षत्रियामें उत्पन्न पुत्र चर्मकार जाति होताहै ॥ ४ ॥ चाण्डालसे वैश्यकी कन्यामें उत्पन्न पुत्रको श्वपच कहतेहैं; ये लोग कुत्तेका मांस खातेहैं और कुत्ताही इनका बल है ॥ ११–१२ ॥ आयोगवसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न पुत्रको ताम्रोपजीवी और आयोगवसे क्षत्रियकी कन्यामें उत्पन्न पुत्रको सूनिक कहतेहैं ॥ १४ ॥ सूनिकसे क्षत्रियामें उत्पन्न पुत्र उद्बन्धक कहाताहै, जो वस्त्र धोताहै, स्पर्श करनेयोग्य नहींहै ॥ १५ ॥ चोरीसे वैश्य द्वारा क्षत्रियामें उत्पन्न पुत्रको पुलिन्द जाति कहतेहैं, जो दुष्ट जीवोंको मारताहै और पशुओंको मारकर उनका मांस बेंचकर जीविका चलाताहै ॥ १६ ॥ पुल्कससे वैश्यकी कन्यामें उत्पन्न पुत्र रजक, शूद्रद्वारा चोरीसे क्षत्रियामें उत्पन्न पुत्र रञ्जक (रङ्गरेज) और रञ्जकसे वैश्यामें उत्पन्न पुत्र नर्त्तक और गायक कहलाताहै ॥ १८–१९ ॥ वैदेहिकसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न पुत्र चर्मोपजीवी और वैदेहिकसे क्षत्रियामें उत्पन्न पुत्र सूचिक और पाचक कहाजाताहै ॥ २१–२२ ॥ चोरीसे शूद्र द्वारा वैश्यामें उत्पन्न पुत्रको चक्री (तेली) कहतेहैं; यह तैल, खली और लवणसे जीविका करताहै २२–२३

जातः सुवर्ण इत्युक्तः सानुलोमद्विजः स्मृतः। अथवर्णाक्रियां कुर्वन्नित्यनैमित्तिकीं क्रियाम् ॥ २४ ॥
अश्वं रथं हस्तिनं च वाहयेद्वा नृपाज्ञया। सैनापत्यं च भैषज्यं कुर्याज्जीवेत्तु वृत्तिषु ॥ २५ ॥
नृपायां विप्रतश्चौर्यात्संजातो यो भिषक्स्मृतः। अभिषिक्तनृपस्याज्ञां परिपाल्येत्तु वैद्यकम् ॥ २६ ॥
आयुर्वेदमथाष्टाङ्गं तन्त्रोक्तं धर्ममाचरेत्। ज्योतिषं गणितं वापि कायिकीं वृत्तिमाचरेत् ॥२७॥
नृपायां विधिना विप्राज्जातो नृप इति स्मृतः। नृपायां नृपसंसर्गात्प्रमादाद्गूढजातकः ॥ २८ ॥
सोऽपि क्षत्रिय एव स्यादभिषेके च वर्जितः। अभिषेकं विना प्राप्य गोज इत्यभिधायकः ॥२९॥
सर्वं तु राजवृत्तस्य शस्यते पदवन्दनम्। पुनर्भूकरणे राज्ञां नृपकालीन एव च ॥ ३० ॥
वैश्यायां विप्रतश्चौर्यात्कुम्भकारः स उच्यते ॥ ३२ ॥
कुलालवृत्त्या जीवेत्तु नापिता वा भवन्त्यतः ॥ ३३ ॥

❀ मूलकी और बातें अन्य स्थानपर टिप्पणीमें लिखी गईं।

▨ गौतमस्मृति—४ अध्याय–७ अंक। शूद्रसे क्षत्रियामें उत्पन्न पुत्र पुल्कस जाति होताहै। औशनसस्मृति–१७–१८ श्लोक। शूद्रसे क्षत्रियामें उत्पन्न पुत्रको पुल्कस कहतेहैं, वे लोग सुरा और मदिरा बेंचतेहैं, बनीहुई सुराको बेंचतेहैं और पकातेहैं।

☞ औशनसस्मृतिकी अनेक बातें अन्य स्मृतियोंसे नहीं मिलतीहैं और इसमें अन्य स्मृतियोंसे अधिक जातियोंकी उत्पत्ति लिखीहुई है।

नृपाज्जातोऽथ वैश्यायां गृह्यायां विधिना सुतः । वैश्यवृत्त्या तु जीवेत क्षत्रधर्मं न चारयेत् ॥ ३८॥
तस्यां तस्यैव चौरेण मणिकारः प्रजायते । मणीनां राजतां कुर्यान्मुक्तानां वेधनक्रियाम् ॥३९ ॥
प्रवालानां च सूत्रित्वं शाखानां वलयक्रियाम् । शूद्रस्य विप्रसंसर्गाज्जात उग्र इति स्मृतः ॥ ४०॥
नृपस्य दण्डधारः स्याद्दण्डं दण्ड्येषु संचरेत् । तस्यैव चौर्यसंवृत्त्या जातः शुण्डिक उच्यते ॥४१॥
जातदुष्टान्समारोप्य शुण्डाकर्मणि योजयेत् । शूद्रायां वैश्यसंसर्गाद्विधिना सूचकः स्मृतः ॥४२॥
सूचकाद्विप्रकन्यायां जातस्तक्षक उच्यते । शिल्पकर्माणि चान्यानि प्रासादलक्षणं तथा ॥ ४३ ॥
नृपायामेव तस्यैव जातो यो मत्स्यबन्धकः । शूद्रायां वैश्यतश्चौर्यात् कटकार इति स्मृतः ॥४४॥

ब्राह्मणसे विधिपूर्वक विवाहीहुई क्षत्रियकी कन्यामें उत्पन्न पुत्र सुवर्ण कहलाताहै, वह अनुलोम द्विज है, नित्य, नैमित्तिक द्विजके कर्मोंको करताहै, राजाकी आज्ञासे घोड़ा, रथ और हाथीको चलाताहै और सेनापति बनकर अथवा औषधसे अपना जीवन निर्वाह करताहै ॥ २३-२५ ॥ चोरीसे ब्राह्मण द्वारा क्षत्रियामें उत्पन्न पुत्र भिषक् कहलाताहै वह राजाकी आज्ञासे वैद्यका काम करताहै ॥२६ ॥ अष्टाङ्ग आयुर्वेद या तन्त्रमें कहेहुए धर्मको करे और ज्योतिष तथा गणित विद्यासे अपना निर्वाह करे ॥ २७ ॥ ब्राह्मणसे विवाही क्षत्रियामें उत्पन्न पुत्र नृप कहलाताहै; नृपसे क्षत्रियामें उत्पन्न पुत्रको गूढ़ कहतेहैं, वह क्षत्रिय है; किन्तु राजतिलकके योग्य नहीं है, राजतिलकके अयोग्य होनेके कारण उसको गोज कहतेहैं ॥ २८-२९ ॥ सब प्रकारसे राजाके चरणोंकी वन्दना करना श्रेष्ठ है, यह गोज राजाओंके पुनर्भूकरणमें अर्थात् दूसरा विवाह करनेमें राजाके समान है अर्थात् इनके यहां राजा दूसरा विवाह करलेवे ॥ ३० ॥ चोरीसे ब्राह्मण द्वारा वैश्यामें उत्पन्न पुत्र कुम्भकार (कुम्हार) कहातेहैं; वे मिट्टीके वर्त्तन बनाकर जीविका चलातेहैं; इसी प्रकार ब्राह्मणसे वैश्यामें उत्पन्न नापित (नाई) होतेहैं ॥ ३२-३३ ॥ क्षत्रियसे विधिपूर्वक विवाहीहुई वैश्यकी कन्याके पुत्र वैश्यकी वृत्तिसे अपना निर्वाह करें; क्षत्रियके धर्मपर नहीं चलें ॥ ३८ ॥ चोरीसे क्षत्रियद्वारा वैश्यकी कन्यामें उत्पन्न पुत्र मणिकार (मीनाकार) होतेहैं; वे मणियोंको रंगतेहैं, मोतियोंको छेदते हैं और मूंगोंकी माला और कड़े बनातेहैं ॥ ३९-४० ॥ ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न पुत्र उग्र जाति कहातेहैं, वे लोग राजाका दण्ड धारण करतेहैं और दण्डके योग्य मनुष्योंको दण्ड देतेहैं ॥ ४०-४१ ॥ चोरीसे ब्राह्मण द्वारा शूद्रामें उत्पन्न पुत्र शुण्डिक कहलातेहैं, राजाको चाहिये कि इनको जन्महीसे दुष्टोंका अधिपति बनाकर शुण्डाकर्म (शूलीदेने) में नियुक्त करे ॥ ४१-४२ ॥ वैश्यसे विवाहीहुई शूद्रामें उत्पन्न पुत्र सूचक (दरजी) कहलाताहै ॥ ४२ ॥ सूचकसे ब्राह्मणकी कन्यामें उत्पन्न पुत्रको तक्षक (बढ़ई) जाति कहतेहैं, वे लोग कारीगरीका काम करतेहैं और मकान बनातेहैं ॥ ४३ ॥ सूचकसे क्षत्रियामें उत्पन्न पुत्र मत्स्यबन्धक और चोरीसे वैश्यद्वारा शूद्रामें उत्पन्न पुत्र कटकार कहलातेहैं ॥ ४४ ॥

जातियोंकी तालिका।

संख्या	जाति	पिता	माता	जातिकी जीविका	स्मृति
१	ब्राह्मण	ब्रह्माके	मुखसे	०	मनु, याज्ञवल्क्य, हारीत और वसिष्ठ
				यज्ञकराना, वेद पढाना और दान लेना	मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, हारीत, शंख, गौतम और वसिष्ठस्मृति
२	क्षत्रिय	ब्रह्माके	वाहुसे	०	मनु, याज्ञवल्क्य, हारीत और वसिष्ठ
				अस्त्र शस्त्र धारण और प्राणियोंकी रक्षा करना	मनु अत्रि इत्यादि
३	वैश्य	ब्रह्माके	जंघेसे	०	मनु, याज्ञवल्क्य, हारीत, और वसिष्ठ
				खेती, पशुपालन, वाणिज्य, और व्याज	मनु, याज्ञवल्क्य, गौतम और वसिष्ठ
४	शूद्र	ब्रह्माके	चरणसे	०	मनु, याज्ञवल्क्य, हारीत और वसिष्ठ
				द्विजातियोंकी सेवा और इनके अभावमें शिल्पकर्म	मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि इत्यादि
५	अम्बष्ठ	ब्राह्मण	वैश्यकी कन्या	चिकित्सा	मनुस्मृति
		,,	वैश्या	०	वसिष्ठ और बौधायन और याज्ञवल्क्य
		,,	विवाहिता वैश्या *	खेती, लकडी, सेना और शस्त्र	औशनस
६	निषाद वा पारशव	ब्राह्मण	शूद्रकी कन्या	मछलीमारना	मनुस्मृति
		,,	शूद्रा	०	याज्ञवल्क्य, गौतम और बौधायनस्मृति
	निषाद	पारशव	पारशवी	वनके मृगोंका वध करना	औशनसस्मृति
	पारशव	ब्राह्मण	विवाहिता शूद्रा	शिवादि आगम विद्या और मंडल वृत्ति	,,
७	उग्र	क्षत्रिय	शूद्रकी कन्या।	बिलमें रहनेवाले जीवोंकी हिंसा	मनुस्मृति
		,,	विवाहिता शूद्रा	०	याज्ञवल्क्य
		,,	शूद्रा	०	वसिष्ठ और बौधायन
		ब्राह्मण	,,	राजाका चोबदार होना	औशनस
८	सूत	क्षत्रिय	ब्राह्मणकी कन्या	रथहांकना	मनु और बृहद्विष्णुस्मृति
		,,	ब्राह्मणी	०	याज्ञवल्क्य, गौतम, वसिष्ठ और बौधायनस्मृति
		,,	विवाहिता ब्राह्मणी	०	औशनस

* जहां विवाहिता शब्द है वहां उसी पुरुषकी विवाहिता पत्नी जानना चाहिये और जहां विना व्याही हुई शब्द है वहां व्यभिचारसे पुत्रका जन्म समझना चाहिये।

९	मागध	वैश्य	क्षत्रिया	वाणिज्य	मनुस्मृति
		,,	,,	०	याज्ञवल्क्य
		शूद्र	,,	प्रशंसा करना	बृहद्विष्णु
		वैश्य	ब्राह्मणी	०	गौतम
		,,	,,	प्रशंसा और वैश्यकी सेवा करना	औशनस
		शूद्र	वैश्या	०	बौधायन
१०	वैदेह	वैश्य	ब्राह्मणी	अन्तःपुरकी रक्षाकरना	मनु और बृहद्विष्णुस्मृति
		,,	,,	०	याज्ञवल्क्य और बौधायन
		शूद्र	वैश्या	०	गौतम
		,,	,,	बकरी, भैंस और गौका पालन करना	औशनस
११	आयोगव	शूद्र	वैश्या	काठ छीलना	मनुस्मृति
		,,	,,	०	याज्ञवल्क्यस्मृति
		,,	,,	रङ्गावतारण	बृहद्विष्णु
		वैश्य	क्षत्रिया	०	बौधायन
		,,	,,	वस्त्र बीनना और कांसेका व्यापार करना	औशनसस्मृति
१२	क्षत्ता	शूद्र	क्षत्रिया	बिलमें रहनेवाले जीवोंका वध करना	मनुस्मृति
		,,	,,	०	याज्ञवल्क्य और बौधायन
१३	चाण्डाल	शूद्र	ब्राह्मणी	मुर्दा फेंकना और शूली देना	मनुस्मृति
		,,	,,	०	याज्ञवल्क्य, व्यास, गौतम, वसिष्ठ और बौधायन
		,,	,,	वधयोग्यको शूली देना	बृहद्विष्णु
		,,	,,	गांवका मल उठाना	औशनस
१४	आवृत	ब्राह्मण	उग्रकीकन्या	०	मनुस्मृति
१५	आभीर	ब्राह्मण	अम्बष्ठकी कन्या	०	मनुस्मृति
१६	धिग्वण	ब्राह्मण	आयोगवकी कन्या	चमडेका काम	मनुस्मृति
१७	पुक्कस	निषाद	शूद्रा	बिलके जीवोंका वधकरना	मनुस्मृति
		,,	,,	०	बौधायन०
		०	०	व्याधाका काम	बृहद्विष्णु
१८	कुक्कुटक	शूद्र	निषादी	०	मनु और बौधायन
१९	श्वपाक	क्षत्ता	उग्रा	मुर्देको फेंकना और शूली देना	मनुस्मृति
		उग्र	क्षत्तास्त्री	०	बौधायन
२०	वेण	वैदेह	अम्बष्ठा	मृदङ्ग आदि बजाना	मनुस्मृति
	,,	,,	,,	०	बौधायन
	(अ. संभेद) वैण	शूद्र	क्षत्रिया	०	वसिष्ठ
	वेणुक	सूत	ब्राह्मणी	०	औशनस

२१	भूर्जकण्टक, जिसको आवन्त्य वाटधान पुष्पध और शैख कहतेहैं	व्रात्य ब्राह्मण	सवर्णास्त्री	०	मनुस्मृति
	भूर्ज कण्टक	ब्राह्मण	वैश्या	०	गौतमस्मृति
२२	झल्ल, मल्ल, निच्छिवि, नट करण, खस और द्रविड	व्रात्यक्षत्रिय	सवर्णास्त्री	०	मनुस्मृति
२३	सुधन्वा, आचार्य, कारूष विजन्मा, मैत्र और सात्वक	व्रात्यवैश्य	सवर्णास्त्री	०	मनुस्मृति
२४	सैरिन्ध्र	डाकू	आयोगवी	मृगादिवध और सेवा करना	मनुस्मृति
२५	मैत्रेय	वैदेह	आयोगवी	प्रातःकाल राजा आदिकी प्रशंसा करना	मनुस्मृति
२६	मार्गव, दास तथा कैवर्त	निषाद	आयोगवी	नाव चलाना	मनुस्मृति
२७	कारावर	निषाद	वैदेही	चमड़ेका काम	मनुस्मृति
२८	पाण्डुसोपाक	चाण्डाल	वैदेही	बांसका काम	मनुस्मृति
२९	आहिण्डिक	निषाद	वैदेही	०	मनुस्मृति
३०	सोपाक	चाण्डाल	पुक्कसी	जल्लादका काम	मनुस्मृति
३१	अन्त्यावसायी	चाण्डाल	निषादी	श्मशानका काम	मनुस्मृति
		शूद्र	वैश्या	०	वसिष्ठस्मृति
३२	मेद	वैदेह	निषादी	वनैले पशुओंका वध करना	मनुस्मृति
३३	अन्ध्र	वैदेह	कारावरी	वनैले पशुओंका वध करना	मनुस्मृति
३४	चुञ्चु	०	०	वनैले पशुओंका वध करना	मनुस्मृति
३५	मद्गु	०	०	वनैले पशुओंका वध करना	मनुस्मृति
३६	मूर्द्धावषिक्त	ब्राह्मण	क्षत्रिया	०	याज्ञवल्क्य और गौतम
३७	माहिष्य	क्षत्रिय	वैश्या	०	याज्ञवल्क्य और गौतम
३८	करण	वैश्य	शूद्रा	०	याज्ञवल्क्य और गौतम
३९	रथकार	माहिष्य	करणजातिकी स्त्री	०	याज्ञवल्क्य
		वैश्य	शूद्रा	०	बौधायन
		क्षत्रिय	क्षत्रियकी विना व्याही ब्राह्मणीस्त्री	शूद्रधर्मी	औशनस
४०	दास	ब्राह्मण	शूद्रकीकन्या	०	पाराशरस्मृति
४१	नाई	ब्राह्मण	शूद्रकीकन्या	०	पाराशर
		”	विनाब्याही वैश्या	केश काटना	औशनस
४२	ग्वाल	क्षत्रिय	शूद्रकीकन्या	०	पाराशर

४३	आर्द्धिक	ब्राह्मण	वैश्यकी कन्या	०	पाराशर
४४	धीवर	वैश्य	क्षत्रिया	०	गौतमस्मृति
४५	यवन	क्षत्रिय	शूद्रा	०	गौतम
४६	रोमक	वैश्य	ब्राह्मणी	०	वसिष्ठस्मृति
४७	पुल्कस	वैश्य	क्षत्रिया	०	वसिष्ठस्मृति
		शूद्र	क्षत्रिया	०	गौतम
		,,	,,	सुराका व्यापार	औशनस
४८	चर्मकार	सूत	क्षत्रिया	०	,,
४९	श्वपच	चाण्डाल	वैश्यकीकन्या	कुत्तेका मांस खाना और कुत्ता पालना	,,
५०	ताम्रोपजीवी	आयोगव	ब्राह्मणी	०	,,
५१	सूनिक	आयोगव	क्षत्रियकीकन्या	०	,,
५२	उद्बन्धक	सूनिक	क्षत्रिया	वस्त्र धोना	,,
५३	पुलिन्द	वैश्य	विना विवाही क्षत्रिया	पशुमांस वेंचना	बृहत्पाराशर
५४	रजक	पुल्कस	वैश्यकीकन्या	०	औशनस
५५	रञ्जक	शूद्र	विना विवाही क्षत्रिया	०	,,
५६	नर्तक तथा गायक	रञ्जक	वैश्या	०	,,
५७	चर्मोपजीवी	वैदेहिक	ब्राह्मणी	०	,,
५८	सूचिक और पाचक	वैदेहिक	क्षत्रिया	०	,,
५९	चक्री(तेली)	शूद्र	विना विवाही वैश्या	तेल खली और नोन बेंचना	,,
६०	सुवर्ण	ब्राह्मण	विवाहिता क्षत्रियास्त्री	सवार और सेनापतिका काम और औषध करना	,,
६१	भिषक्	ब्राह्मण	विनाविवाही क्षत्रिया	वैद्यक और ज्योतिष	,,
६२	नृप	ब्राह्मण	विवा०क्षत्रिया	०	,,
६३	गूढ वा गोज	नृप	क्षत्रिया	क्षत्रियधर्मी	,,
६४	कुम्भकार (कुम्हार)	ब्राह्मण	विना विवाही वैश्या	मिट्टीका बर्त्तन बनाना	,,
६५	मणिकार	क्षत्रिय	विना विवाही वैश्या	मणि, मुक्ता आदिका काम करना	,,
६६	शुण्डिक	ब्राह्मण	विनावि०शूद्रा	शुंढा कर्म (शूली देना)	,,
६७	सूचक	वैश्य	विवाहिताशूद्रा	०	,,
६८	तक्षक(बढई)	सूचक	ब्राह्मणकी कन्या	शिल्प कर्म और गृहनिर्माण	,,
६९	मत्स्यबन्धक	सूचक	क्षत्रिया	०	,,
७०	कटकार	वैश्य	विना विवाहिता शूद्रा	०	,,
७१	शबर	०	०	०	बृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र

जातियोंके विषयमें विविध बातें २.

(१) मनुस्मृति–४ अध्याय ।

न संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुक्कसैः । न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥ ७९ ॥

पतित, चाण्डाल, पुक्कस, मूर्ख, धन आदिके मदसे मतवाले, अन्त्यज (धोबी, चमार, नट, बुरुड, कैवर्त्त, मेद और भील) और अन्त्यावसायी जातिके साथ नहीं बसना चाहिये ॥ ७९ ॥

९ अध्याय ।

सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारन्तु पार्थिवः । प्रवर्तमानमन्याये छेदयेल्लवशः क्षुरैः ॥ २९२ ॥

सब पापियोंमें सोनार बड़े पापी हैं;राजाको उचित है कि सोना आदि तौलमें कम देनेवाले, अथवा उनमें अन्य धातु मिला देनेवाले सोनारकी देहको छूरेसे टुकड़े टुकड़े करवा देवे ॥ २९२ ॥

१२ अध्याय ।

मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवाः । विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु ॥ ६१ ॥

लोभ वश होकर मणि, मोती, मूंगा और अनेक प्रकारके रत्न चोरानेवाले मनुष्य (नरकसे निकलने पर) सोनार होतेहैं ❀ ॥ ६१ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय ।

चाटतस्करदुर्वृत्तमहासाहसिकादिभिः । पीडयमानाः प्रजा रक्षेत्कायस्थैश्च विशेषतः ॥ ३३६ ॥

राजाको उचित है कि छली, चोर, दुष्टवृत्तिवाले और डाकू आदि साहसिकसे विशेष करके कायस्थोंसे पीड़ित प्रजाओंकी रक्षा करे ♣ ॥ ३३६ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च ॥ १९५ ॥

कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः ॥ १९६ ॥

अन्त्यहस्तात्तु विक्षिप्तं काष्ठलोष्टतृणानि च । न स्पृशेत्तु ततोच्छिष्टमहोरात्रं समाचरेत् ॥ २६४ ॥

चर्मको रजको वैण्यो धीवरो नटकस्तथा ॥ २८४ ॥

एतान्स्पृष्ट्वा द्विजो मोहादाचमेत्प्रयतोपि सन् । एतैः स्पृष्टो द्विजो नित्यमेकरात्रं पयः पिबेत् ॥२८५॥

धोबी, चमार, नट, बुरुड (बेग या बंसफोर,) कैवर्त्त (मलाह), मेद (एक प्रकारका व्याध) और भील; ये ७ जाति अन्त्यज अर्थात् बहुत नीच कहलातेहैं ▦ ॥ १९५ ॥ १९६ ॥ धोबी आदि अन्त्यजोंके हाथसे फेंकेहुए काठ ढेले अथवा तृणको अथवा उनके जूठेको स्पर्श करनेवाले द्विज दिनरात उपवास करें ॥ २६४ ॥ जो द्विज अज्ञानके वश होकर चमार, धोबी, बैण,धीवर तथा नटको स्पर्श करे वह सावधान होकर आचमन करें और जो जानकर इनका स्पर्शकरे वह एक रात दूध पीकर रहे ॥ २८४–२८५ ॥

(८) यमस्मृति ।

चाण्डालैः श्वपचैः स्पृष्टो विण्मूत्रे च कृते द्विजः । त्रिरात्रं तु प्रकुर्वीत भुक्त्वोच्छिष्टः षडाचरेत् ॥ १० ॥

द्विजको उचित है कि यदि विष्ठा मूत्र त्यागनेके पीछे (विना शौच कियेहुए) चाण्डाल अथवा श्वपच उसको छू देवे तो वह ३ रात उपवास करे और यदि उसी अवस्थामें वह भोजन करलेवे तो ६ रात उपवास करे ॥ १० ॥

(१०) संवर्तस्मृति ।

चाण्डालं पतितं स्पृष्ट्वा शवमंत्यजमेव च । उदक्यां सूतकां नारीं सवासाः स्नानमाचरेत् ॥१८४॥

चाण्डाल, पतित, मुर्दे, धोबी आदि अन्त्यज, रजस्वला और प्रसूतिका स्त्रीको स्पर्श करके वस्त्रोंके सहित स्नान करे ॥ १८४ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय-२१३ श्लोक। परके रत्नोंको चोरानेवाला हीनजाति होकर जन्म लेताहै ।

♣ वृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–१० अध्याय–राजधर्म । राजाको चाहिये कि पवित्र, विद्वान् और स्वधर्मको जाननेवाले ब्राह्मणको मुद्राकर और लिखनेमें चतुर कायस्थको लेखक बनावे ॥१०॥ कायस्थ, छली और चोरसे पीडित प्रजाओंकी रक्षा करे ॥ २४ ॥

▦ अङ्गिरास्मृति—३ श्लोक और यमस्मृति—३३ श्लोकमेंभी ऐसा है।

(१३) पाराशरस्मृति-६ अध्याय ।

श्वपाकं चापि चाण्डालं विप्रः संभाषते यदि। द्विजसंभाषणं कुर्यात्सावित्रीं च सकृज्जपेत् ॥२२॥ चाण्डालैः सह संपर्कं मासं मासार्द्धमेव वा । गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुध्यति ॥ ४३ ॥ रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीवनी । चातुर्वर्ण्यस्य तु गृहे त्वविज्ञाता तु तिष्ठति ॥ ४४ ॥ ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात्पूर्वोक्तस्यार्द्धमेव तु ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणको उचित है कि यदि श्वपाक अथवा चाण्डालसे बोले तो ब्राह्मणसे सम्भाषण करके एक बार गायत्रीका जप करे ॥ २२ ॥ चाण्डालके साथ एक महीना अथवा पंद्रह दिन संसर्ग करनेवाला १५ दिनतक गोमूत्र और यवका काढ़ा पीकर रहनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४३ ॥ चारो वर्णके मनुष्योंको उचित है कि यदि उनके घरमें अज्ञातसे, धोबिन, चमारिन, बहेलिन अथवा वेणुजीविनी टिकजावे तो जानलेनेपर पूर्वोक्त प्रायश्चित्तका आधा प्रायश्चित्त करे ॥ ४४—४५ ॥

(१३ क) बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-६ अध्याय ।

शबराश्च पुलिन्दाश्च केवटाश्च नटास्तथा । एतान् रजकसंतुल्यान्केचिदाहुर्मनीषिणः ॥ ३१२ ॥

कोई विद्वान् कहतेहैं कि शबर, पुलिन्द केवट (कैवर्त) और नट धोबीके समान हैं ॥ ३१२ ॥

धनविभागप्रकरण ❁ १६.

भाइयोंका भाग, ज्येष्ठांश बांटनेके अयोग्य धन और दादाके धनमें पोतोंका भाग १.

(१) मनुस्मृति--९ अध्याय ।

ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम् । भजेरन्पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतोः ॥१०४ ॥ ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः । शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा ॥ १०५ ॥ ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः । पितॄणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति ॥ १०६ ॥ यस्मिन्नृणं सन्नयति येन चानन्त्यमश्नुते । स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः ॥ १०७ ॥ यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स पितेव सः । अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्स संपूज्यस्तु बन्धुवत्११०॥ एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया । पृथग्विवर्धते धर्मस्तस्माद्धर्म्या पृथक्क्रिया ॥ १११ ॥

सब भाई अपनी मातापिताकी मृत्यु होनेपर पिताके धनको बराबर भागकरके बांटलेवें; किन्तु उनके जीते रहनेपर धन बांटनेको पुत्रोंका अधिकार नहीं है ❁॥१०४॥बड़ा भाई पिताकी सारी सम्पत्तिका अधिकारी होकर अन्य सब भाइयोंको भोजन वस्त्र आदि देकर पालन करे; छोटे भाई अपने बड़े भाईको पिताके समान मानें ❁ ॥ १०५ ॥ मनुष्य बड़े पुत्रके जन्म होतेही पुत्रवान् होताहै और पितरोंके ऋणसे छूटजाताहै, इसलिये बड़ा पुत्र पिताकी सब सम्पत्ति पानेके योग्य है ॥ १०६ ॥ जिस बड़े पुत्रके जन्म लेनेसे मनुष्य पितरोंके ऋणसे छूटजाताहै और स्वर्ग पाताहै वह पुत्र धर्मसे उत्पन्न पुत्र है;अन्य पुत्र कामज हैं; ऐसा पण्डित लोग कहतेहैं ॥ १०७ ॥ भाइयोंके साथ यथार्थ वर्ताव करनेवाला बड़ा भाई छोटे भाइयोंके लिये पिता माताके समान पूज्य है; किन्तु ऐसा वर्त्ताव नहीं करनेवाला बन्धुके समान है ॥ ११० ॥ भाइयोंको उचित है कि इकट्ठे रहें अथवा धर्मकी वृद्धिकी इच्छासे धन बाँटकर अलग अलग निवास करें; अलग अलग रहनेसे धर्मकी वृद्धि होतीहै इस लिये अलग रहना भी धर्मसङ्गत है ❁ ॥ १११ ॥

❁ नारदस्मृति—१३ विवादपद–१ श्लोक । पुत्र पिताके धनका विभाग करतेहैं, बुद्धिमानोंने उसको दायभाग नामका व्यवहारपद कहाहै ।

❁ याज्ञल्क्यस्मृति—२ अध्याय–११९ श्लोक । माता और पिताके मरनेपर सब पुत्र पिताके धन और ऋणको बराबर हिस्सेमें बांटलेवें; किन्तु माताके मरनेपर उसका ऋण चुकाकर उसके धनको उसकी पुत्रियां लेवें; यदि पुत्री नहीं होवे तो पुत्र आदि ग्रहण करे ।

❁ गौतमस्मृति—२९अध्याय–१अङ्क। बड़ा भाई सब धनका मालिक रहे और पिताके समान सब भाइयोंका भरण पोषण करे । नारदस्मृति–१३ विवादपद–५ श्लोक । ज्येष्ठ भाई पिताके समान सबका पालन करे; यदि ज्येष्ठ भाई शक्तिहीन होवे तो कनिष्ठ भाई सबको पाले; शक्तिवाले पुरुषसे कुलकी स्थिति रहती है ।

❁ अलग अलग रहनेसे सब लोग अलग अलग पञ्चयज्ञ आदि कर्म करेंगे, जिससे धर्मकी वृद्धि होगी, इसी लिये अलग होना धर्मसङ्गत है ।

ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम्। ततोऽर्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ॥ ११२ ॥
ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च संहरेतां यथोदितम्। येऽन्ये ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां तेषां स्यान्मध्यमं धनम् ॥ ११३ ॥
सर्वेषां धनजातानामाददीताग्र्यमग्रजः। यच्च सातिशयं किञ्चिद्दशतश्चाप्नुयाद्वरम् ॥ ११४ ॥
उद्धारो न दशस्वस्ति संपन्नानां स्वकर्मसु। यत्किञ्चिदेव देयं तु ज्यायसे मानवर्धनम् ॥ ११५ ॥
एवं समुद्धृतोद्धारे समानंशान्प्रकल्पयेत्। उद्धारेऽनुद्धृते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना ॥ ११६ ॥
एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठः पुत्रोऽप्यर्धं ततोऽनुजः। अंशमंशं यवीयांस इति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ११७ ॥
अजाविकं सैकशफं न जातु विषमं भजेत्। अजाविकं तु विषमं ज्येष्ठस्यैव विधीयते ॥ ११९ ॥
यवीयाञ्ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि। समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ १२० ॥
उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतो नोपपद्यते। पिता प्रधानं प्रजने तस्माद्धर्मेण तं भजेत् ॥ १२१ ॥
पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः। कथं तत्र विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत् ॥१२२॥
एकं वृषभमुद्धारं संहरेत स पूर्वजः। ततोऽपरे ज्येष्ठवृषास्तदूनानां स्वमातृतः ॥ १२३ ॥
ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठायां हरेद्वृषभषोडशाः। ततः स्वमातृतः शेषा भजेरन्निति धारणा ॥ १२४ ॥
सदृशस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः। न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥१२५॥
जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं स्वब्राह्मण्यास्वपि स्मृतम्। यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता ॥ १२६ ॥

पिताका धन बांटनेके समय धनका बीसवां भाग और सब वस्तुओंमेंसे श्रेष्ठ एक वस्तु बड़े पुत्रको; चालीसवां चालीसवां भाग सब मझले पुत्रोंको और अस्सीवां भाग छोटे पुत्रको अधिक मिलना चाहिये ॥११२-११३॥ यदि बड़ा भाई गुणवान् होवे तो सब वस्तुओंमेंसे एक श्रेष्ठ वस्तु और १० गौओंमेंसे एक श्रेष्ठ गौ भी उसको अधिक मिलना चाहिये ॥ ११४ ॥ यदि सब भाई समान गुणवान् होवें तो ऊपर कहीहुई दस वस्तुओंमेंसे एक वस्तु अधिक बड़ेको नहीं देना चाहिये; किन्तु जेठेके सम्मानके लिये कुछ अधिक देना योग्य है ॥ ११५ ॥ इसप्रकारसे ज्येष्ठांश आदि निकल जानेपर बाकी धन सब भाइयोंको समान भागमें बांटलेना चाहिये; यदि ऐसा नहीं होवे तो नीचे लिखेहुए प्रकारसे धनमें भाग लगाना चाहिये ॥ ११६ ॥ पिताके धनमें बड़ा पुत्र दो भाग उससे छोटा पुत्र डेढ़भाग और उससे छोटे पुत्र एक एक भाग लेवें इसप्रकार धर्मकी व्यवस्था है ※ ॥११७॥ बकरी, भेड़ अथवा घोड़े आदि एकखुरवाले पशु यदि समान भागमें बंटने योग्य नहीं होवें तो वह बड़े भाईको मिलना चाहिये॥११९॥ यदि छोटाभाई अपने बड़ेभाईकी स्त्रीमें (नियोगद्वारा) पुत्र उत्पन्न करे तो वह (क्षेत्रज पुत्र) अपने दादाके धनविभाग होनेके समय अपने चाचाके समान भाग पावे, इसप्रकार धर्मकी व्यवस्था है॥१२०॥ बड़े भाईके क्षेत्रज पुत्र होनेसे उसको ज्येष्ठांश नहीं मिलेगा; क्योंकि निजक्षेत्रमें सन्तान उत्पन्न करनेके लिये क्षेत्रीही मुख्य है॥१२१॥यदि पुरुषकी बड़ी स्त्रीका पुत्र छोटा और छोटी स्त्रीका पुत्र बड़ा होगा तो धन विभाग होनेके समय बड़ी स्त्रीका पुत्र एक बड़ा बैल और छोटी स्त्रीका पुत्र एक छोटा बैल ज्येष्ठांश पावेगा; किन्तु यदि बड़ी स्त्रीका पुत्र अवस्थामें बड़ा होगा तो १६ वृषभ अर्थात् १५ गौ और १ वृषभ ज्येष्ठांश लेगा और अन्य पुत्रोंको उनकी

※ गौतमस्मृति-२९ अध्याय-२ अंक। यदि धर्मकी वृद्धिके लिये सब भाई धन विभाग करें तो ज्येष्ठ भाईको धनका बीसवां भाग और एक रथ तथा एक बैल अधिक देवें; मझिले भाईको काना, लंगड़ा और गंजा बैल अधिक मिले; यदि कई एक मझिले भाई होवें तो भेड़, धान्य, लोहेकी वस्तु और गृहमें जो अधिक हो उनमेंसे यथासम्भव उनको अधिक दिया जावे और छोटेभाईको एक चतुष्पद अधिक मिले, बाकी धन सब भाई बराबर बांटलेवें अथवा ज्येष्ठभाई दोभाग और अन्य सब एक एक भाग लेवें अथवा छोटे छोटे भाईकी अपेक्षा एकएक धनरूप मूल्यवान् अंश बड़ेबड़े भाईको अधिक मिले अथवा बड़ेभाईको १० पशु और १ बैल अधिक दियाजावे। वसिष्ठस्मृति-१७ अध्यायके४०-४२ अंक। ज्येष्ठभाई धनमें दो भाग लेवे और गौ तथा घोड़ोंमेंसे दसवां हिस्सा अधिक लेवे; छोटेभाईको भेड़, बकरी और गृहमें दोभाग मिलें और मझिले भाईको लोहाआदि कालीवस्तु और घरका अन्यसामान दोभाग दियाजावे। नारदस्मृति-१३ विवादपद-१३श्लोक। बड़ेपुत्रको ज्येष्ठअंश, उससे छोटेको उससे कम देकर बाकी धन सब पुत्रोंको बराबर हिस्सेमें पिता बांटदेवे। वृहद्विष्णुस्मृति-१८ अध्यायके३६—३७अंक। सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न सब पुत्र एकसमान भाग लेवें; किन्तु बड़े भाईको ज्येष्ठांश देना चाहिये। बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-२ अध्यायके ६-९ अंक। ज्येष्ठ पुत्रको दसभागोंमेंसे एक भाग ज्येष्ठांश देवे और अन्य पुत्रोंको एकसमान भाग देदेवे; पिताके रहनेपर उसकी अनुमतिसे धन बांटा जाताहै; चारों वर्णोंमें गौ, घोड़ा और बकरी ज्येष्ठका अंश है।

माताकी ज्येष्ठतानुसार गौव मिलेंगी ❀ ॥ १२२-१२४ ॥ समान जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न पुत्रोंके लिये माताकी ज्येष्ठता नहीं मानीजातीहै वहां किसी स्त्रीमें पहिलेका उत्पन्न हुआ पुत्र जेठा पुत्र समझा जाता है ॥ १२५ ॥ ज्योतिष्टोम यज्ञमें स्वब्राह्मणाख्य मन्त्रसे बड़े पुत्रके द्वारा इन्द्रका आवाहन कियाजाताहै अर्थात् कहाजाता है कि अमुकका पिता यज्ञ करताहै; इसलिये बड़ापुत्र मुख्य है यमज पुत्रोंमें जो प्रथम जन्म लेता है वही जेठा कहाजाता है ॥ १२६ ॥

यत्किञ्चित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठेऽधिगच्छति । भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालिनः ॥ २०४ ॥
अविद्यानां तु सर्वेषामीहातश्चेद्धनं भवेत् । समस्तत्र विभागः स्यादपित्र्य इति धारणा ॥ २०५ ॥

पिताके मरजानेपर यदि जेठा पुत्र भाइयोंके साथ इकट्ठे रहकर अपने पौरुषसे धन उपार्जन करेगा तो उस उपार्जित धनमेंसे उसका छोटाभाई यदि विद्वान् होगा तो भाग पावेगा ॥ २०४ ॥ यदि विद्यासे हीन सब भाई इकट्ठे रहकर धन उपार्जन करेंगे तो धन बांटनेके समय सबको बराबर भाग मिलेगा ॥ २०५ ॥

विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत् । मैत्र्यमौद्वाहिकं चैव माधुपर्किकमेव च ॥ २०६ ॥
अनुपघ्नन्पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जितम् । स्वयमीहितलब्धं तन्नाकामो दातुमर्हति ॥ २०८ ॥
पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात् । न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्धमकामः स्वयमर्जितम् ॥ २०९ ॥

विद्यासे, विवाहसे, मित्रतासे अथवा मधुपर्क देनेके समय पूज्यतासे मिलाहुआ धन नहीं बांटा जावेगा; जिसको मिलेगा उसीका होगा ✿ ॥ २०६ ॥ जो मनुष्य पिताके धनको बचाकरके परिश्रमसे धन उपार्जन करेगा उसकी विना इच्छाके उसके उपार्जित धनमेंसे किसीको नहीं मिलेगा ॥ २०८ ॥ पिताके असमर्थ होनेके कारण उसकी कोई सम्पत्ति उसके हाथसे निकलगई होगी यदि उसका एकपुत्र अपनी शक्तिसे उसका उद्धार करेगा तो विना उसकी इच्छाके उस सम्पत्तिमेंसे कोई भाग नहीं पावेगा ❀ ॥ २०९ ॥

विभक्ताः सह जीवन्तो विभजेरन्पुनर्यदि । समस्तत्र विभागः स्याज्ज्यैष्ठ्यं तत्र न विद्यते ॥ २१० ॥
यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीत लोभाद्भ्रातॄन्यवीयसः । सोऽज्येष्ठः स्यादभागश्च नियन्तव्यश्च राजभिः॥२१३॥
न चादत्त्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ॥ २१४ ॥
भ्रातॄणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह । न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कथंचन ॥ २१५ ॥
ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरेद्धनम् । संसृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजेत स तैः सह ॥ २१६ ॥
ऋणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथाविधि । पश्चाद्दृश्येत यत्किञ्चित्तत्सर्वं समतां नयेत् ॥ २१८ ॥

यदि सब भाई अलग अलग होकर फिर इकट्ठे रहेंगे तो दूसरीबार धनविभाग होनेके समय सब भाइयोंको बराबर भाग मिलेगा; जेठाभाई ज्येष्ठांश नहीं पावेगा ॥ २१० ॥ यदि जेठाभाई लोभवश होकर छोटे भाइयोंको धोखा देगा तो उसको ज्येष्ठांश नहीं मिलेगा और वह राजाके द्वारा दण्ड पावेगा ॥ २१३ ॥ विना छोटे भाइयोंके दियेहुए बड़ाभाई साधारण धनमेंसे अपने लिये सञ्चय नहीं करसकेगा ॥ २१४ ॥ यदि भाई पिताके साथ रहकर अपने पराक्रमसे धन उपार्जन करें तो धन बांटनेके समय पिता सबको बराबर भाग देवे◎॥२१५॥ धन विभाग होजानेपर यदि पिताका पुत्र उत्पन्न होगा तो वह पिताका भाग पावेगा; किन्तु यदिभाई लोग फिर पिताके साथ इकट्ठा होकर रहेंगे तब धनविभाग होनेके समय भाइयोंसे उसको भाग मिलेगा ❁ ॥ २१६ ॥

❀ गौतमस्मृति-२९ अध्याय-३ अङ्क । बड़ी स्त्रीके-बड़े पुत्रको १६ वृषभ अधिक मिलैं अथवा सब एक समान भाग लेवैं अथवा माताकी श्रेष्ठताके अनुसार भाइयोंका भाग स्थिर होवे ।

✿ नारदस्मृति—१३ विवादपद । शूरतासे प्राप्तहुआ धन, भार्याका धन, विद्यासे प्राप्तहुआ धन और प्रसन्न होकर पिताका दियाहुआ धन तथा प्रीतिपूर्वक माताका दियाहुआ धन नहीं बांटाजायगा ॥ ६-७ ॥ जो मनुष्य विद्यापढनेके लिये गयेहुए भाईके कुटुम्बका पालन करेगा वह मूर्ख होनेपर भी विद्यासे उपार्जित धनमें भाग पावेगा ॥ १० ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्यायके १२०-१२१ श्लोक । विना पैतृक धनकी सहायतासे अपने पुरुषार्थसे उपार्जित कियेहुए धनमेंसे, मित्रसे मिलेहुए धनमेंसे और विवाहमें मिलेहुए धनमेंसे भाइयोंको भाग नहीं मिलेगा । जो मनुष्य अपने बापदादेकी खोईहुई वस्तुका उद्धार करेगा उसमेंसे कोई भाई भाग नहीं पावेगा और विद्यासे प्राप्तहुए धनमें भी किसी भाईको भाग नहीं मिलेगा ।

◎ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्यायके १२२ श्लोकमें इस श्लोकके समान है ।

❁ याज्ञवल्क्यस्मृति-२अध्याय-१२४ श्लोक । यदि पुत्रोंको धन बांट देनेपर पिताको सवर्णा स्त्रीमें पुत्र उत्पन्न होगा तो वह पिताका भाग पावेगा, यदि पिताकी मृत्यु होजानेपर भाइयोंके विभागके समय माताका गर्भ ज्ञात न होय और विभाग करनेके पीछे पुत्र उत्पन्न होय तो वह आयव्ययका शोधन करके भाइयोंसे-

यदि सब ऋण और धन बांटनेके पश्चात् छिपाहुआ पैतृक ऋण अथवा धन देखपड़ेगा तो उसमें सब भाइयोंको समानभाग मिलेगा ❀ ॥ २१८ ॥

वस्त्रं पत्रमलंकारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः। योगक्षेमं प्रचारं च न विभाज्यं प्रचक्षते ॥ २१९ ॥

वस्त्र, पत्र (वाहन), अलंकारकी वस्तु, भातआदि कृतान्न, जल, स्त्रियां, योगक्षेम और गौआदिके प्रचारका मार्ग; इतनी वस्तु नहीं बांटी जावेंगी ▩ ॥ २१९ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति--२ अध्याय।

विभागं चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सुतान्। ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्वे वा स्युः समांशिनः ११६॥
शक्तस्यानीहमानस्य किञ्चिद्दत्वा पृथक्क्रियात्। न्यूनाधिकविभक्तानां धर्म्यः पितृकृतः स्मृतः ११८॥
अनेकपितृकाणान्तु पितृतो भागकल्पना ॥ १२२ ॥
भूर्या पितामहोपात्ता निबन्धो द्रव्यमेव च। तत्र स्यात्सदृशं स्वाम्यम्पितुः पुत्रस्य चोभयोः १२३॥
पितृभ्यां यस्य यद्दत्तं तत्तस्यैव धनम्भवेत् ॥ १२५ ॥
असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः ॥ १२६ ॥

यदि पिता अपने जीवित अवस्थामें ही अपने पुत्रोंको धन बांट देना चाहैं, तो उसका अखतियार है कि ज्येष्ठ पुत्रको ज्येष्ठांश देवे अथवा सब पुत्रोंको बराबर भाग देदेवे ✿ ॥ ११६ ॥ जो पुत्र धन उपार्जन करनेमें समर्थ होनेके कारण पिताके धन लेनेकी इच्छा नहीं करे उसको कुछ धन देकरके शेष धन अन्य पुत्रोंको बांटदेवे; धर्मके अनुसार कम या अधिक पिताका विभाग कियाहुआ नहीं बदलता है ◎ ॥ ११८ ॥ यदि पौत्रलोग अपने पितामहका धन बांटें तो अपने अपने पिताका भाग लगा करके उसमें अपना अपना भाग लगावें ॥ १२२ ॥ पितामहकी भूमि, निबन्ध (चुंगीआदि प्रबन्ध) और द्रव्यमें पिता और पुत्र अर्थात् धनके स्वामीके पुत्र और पौत्र दोनोंका तुल्य स्वामित्व है✿॥१२३॥माता पिता अपनी जो वस्तु जिसको देदेंगे वह उसीकी होगी ॥१२५॥ धनविभाग होनेके समय जिस भाईका विवाह आदि संस्कार नहीं हुआ होगा उसका संस्कार सब भाइयोंको करवादेना पड़ेगा ॥ १२६ ॥

(९ क) लघुहारीतस्मृति।

ये जाता येऽपि चाजाता ये च गर्भे व्यवस्थिताः। वृत्तिं तेऽपि हि काङ्क्षन्ति वृत्तिदानं न सिध्यति॥
पितृप्रसादाद्भुञ्जन्ते धनानि विविधानि च। स्थावरं न तु भुज्येत प्रसादे सति पैतृके ॥ ११६ ॥
स्थावरं द्विपदं चैव यद्यपि स्वयमर्जितम्। असंभूय सुतान्सर्वान्न दानं न च विक्रयः ॥ ११७ ॥

–भाग पावेगा। वृहद्विष्णुस्मृति—१७ अध्याय-३ अंक। यदि पुत्रोंको धन बांट देनेपर पिताको पुत्र होगा तो भाइयोंको उसके लिये उचित भाग देना पड़ेगा। नारदस्मृति–१३ विवादपद–४२ श्लोक। यदि पुत्रोंका धन बांट देनेपर पिताको पुत्र होगा तो वह पिताका भाग पावेगा।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्याय–१२८ श्लोक। यदि धन बांटलेनेके पश्चात् किसी भाईके पास छिपाकर रक्खाहुआ धन देखपड़े तो उसको सब भाई बराबर भागमें बांटलेवें।

▩ वृहद्विष्णुस्मृति–१८ अध्यायके ४४ श्लोकमें भी ऐसा है। उसमें लिखा है कि पढ़नेकी पुस्तक भी नहीं बांटी जायंगी। गौतमस्मृति-२९ अध्याय-९ अंक। धनविभागके समय जल, योगक्षेम, भात आदि कृतान्न और स्त्रियां ये सब नहीं बांटे जायंगे। लौगाक्षिस्मृति। तत्त्वज्ञोंने बावली, कूप आदि निर्माण पूर्तकर्मको क्षेम और अग्निहोत्र, तपस्याआदि इष्टकर्मको योग कहाहै, ये और शय्या तथा आसन विभागके अयोग्य हैं (२)।

✿ गौतमस्मृति—२९ अध्याय–१ अंक। पिताके जीते रहनेपर भी जब माताका रजोधर्म बन्द होजावे तब पिताकी इच्छा होनेपर पुत्रलोग धन बांट लेवें। नारदस्मृति–१३ विवादपदके३—४श्लोक। यदि पुत्रोंकी माताका रज निवृत्त होगया होयऔर बहिनोंका विवाह होगया होय और पिताका मन मैथुनसे निवृत्त होगया होय तो वह अपना धन पुत्रोंको बांटदेवे; बड़े पुत्रको ज्येष्ठांश देवे अथवा अपनी इच्छानुसार भाग लगावे।

◎ नारदस्मृति–१३ विवादपदके१५—१६ श्लोक। पुत्रोंका धर्म है कि पिता जो कम अधिक भाग देवे उसको स्वीकार करें; क्योंकि वह सबका प्रभु है; किन्तु यदि वह रोगी, क्रोधी, विषयमें आसक्त अथवा नास्तिक होगा तो विभाग करनेमें प्रभु नहीं समझा जायगा।

✿ वृहद्विष्णुस्मृति--१७ अध्यायके १--२ अंक। पिता अपना उपार्जित धन अपनी इच्छानुसार अपने पुत्रोंको बांटसकता है; किन्तु पितामहके धनपर पिता और पुत्रका तुल्य स्वामित्व है।

यह विधि सजातीय पुत्रोंकी कहीगई; दासीमें उत्पन्न भी शूद्रका पुत्र पिताकी इच्छा होनेपर धनमें भाग पावेगा; ॥ १३७ ॥ पिताके मरनेपर शूद्रकी सवर्णा स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र दासीपुत्रको आधा भाग देवेगा; यदि मरेहुए शूद्रको भाई, दुहिता या दौहित्र नहीं होगा तो दासीका पुत्र सब धन लेवेगा ॥ १३८ ॥

(१८) गौतमस्मृति--२९ अध्याय ।

पुत्रा औरसक्षेत्रजदत्तकृत्रिमगूढोत्पन्नापविद्धा रिक्थभाजः कानीनसहोढपौनर्भवपुत्रिकापुत्रस्वयंदत्त-क्रीता गोत्रभाजश्चतुर्थांशिनश्चौरसाद्यभावे ॥ ९ ॥

औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढोत्पन्न और अपविद्ध; ये ६ प्रकारके पुत्र पैतृक धनके अधिकारी होतेहैं और कानीन, सहोढ़, पौनर्भव, पुत्रिकाका पुत्र, स्वयंदत्त और क्रीत; ये ६ प्रकारके पुत्र पिताके गोत्र हैं और औरस आदि पुत्रोंकी अपेक्षा चौथाई अंशके भागी हैं ॥ ९ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति-१७ अध्याय ।

द्वादश इत्येव पुत्राः पुराणदृष्टाः ॥ १२ ॥ स्वयमुत्पादितः स्वक्षेत्रे संस्कृतायां प्रथमः ॥ १३ ॥ तदलाभे नियुक्तायां क्षेत्रजो द्वितीयः ॥ १४ ॥ तृतीयः पुत्रिका विज्ञायते ॥१५॥ पौनर्भवश्चतुर्थः ॥ ॥ १९ ॥ कानीनः पञ्चमः ॥ २२ ॥ गृहे च गूढोत्पन्नः षष्ठः ॥ २६ ॥ इत्येते दायादा बान्धवास्त्रातारो महतो भयादित्याहुः ॥ २७ ॥ अथादायादबन्धूनां सहोढ एव प्रथमो या गर्भिणी संस्क्रियते तस्यां जातः सहोढः पुत्रो भवति ॥ २८ ॥ दत्तको द्वितीयो यं मातापितरौ दद्याताम् ॥ २९ ॥ क्रीतस्तृतीयस्तच्छुनःशेपेन व्याख्यातम् ॥ ३० ॥ स्वयं क्रीतवान् स्वयमुपागतश्चतुर्थः तच्छुनः शेपेन व्याख्यातम् ॥ ३२ ॥ अपविद्धः पञ्चमो यं मातापितृभ्यामपास्तं प्रतिगृह्णीयात् ॥ ३४ ॥ शूद्रापुत्र एव षष्ठो भवतीत्याहुः ॥ ३५ ॥ इत्येतेऽदायादा बान्धवाः ॥ ३६ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ३७ ॥ यस्य पूर्वेषां षण्णां न कश्चिद्दायादः स्यादेते तस्य दायं हरेरन्निति ॥ ३८ ॥

प्राचीन ग्रन्थोंमें १२ प्रकारके पुत्र देखेजाते हैं ॥ १२ ॥ पहिला अपनी विवाहिता स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र औरस ॥ १३ ॥ दूसरा औरसके नहीं रहनेपर नियुक्त स्त्रीमे उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज ॥ १४ ॥ तीसरा पुत्रिकाका पुत्र ॥ १५ ॥ चौथा पौनर्भव ॥ १९ ॥ पांचवां कानीन ॥ २२ ॥ और छठा गृहमें गुप्तरूपसे उत्पन्न पुत्र गूढोत्पन्न ॥ २६ ॥; ये ६ पुत्र पिताके धनके दायभागी और बड़े भयसे बचानेवाले हैं ॥ २७ ॥ नहीं भाग पानेवाले पुत्रोंमें पहिला पुत्र सहोढ़ है, यह माताके विवाहके समय उसके गर्भमें रहताहै ॥ २८ ॥ दूसरा पुत्र दत्तक है, जिसकी मातापिताने जिसको अन्यको देदिया ॥ २९ ॥ धन देकर मोल लियाहुआ तीसरा पुत्र क्रीत कहाता है, जैसे शुनःशेप हुए ॥ ३० ॥ जो स्वयं जाकर किसीका पुत्र बन जाता है वह चौथा स्वयमुपागत पुत्र कहलाता है जैसे शुनःशेप हुए ॥ ३२॥ जिसको माता पिता त्यागदेतेहैं और अन्य मनुष्य लाकर अपना पुत्र बनाता है उसको पांचवां अपविद्ध पुत्र कहतेहैं ॥ ३४ ॥ और छठा शूद्राका पुत्र है ॥ ३५ ॥ ये ६ प्रकारके पुत्र पैतृकधनमें भाग नहीं पातेहैं ॥ ३६ ॥ ऋषिलोग कहतेहैं कि जिसके औरस आदि ६ प्रकारके पुत्रोंमेंसे कोई नहीं रहताहै उसके धनको सहोढ़आदि ६ प्रकारके पुत्र लेतेहैं ❀ ॥ ३७-३८ ॥

(२६) नारदस्मृति-१३ विवादपद ।

औरसः क्षेत्रजश्चैव पुत्रिकापुत्र एव च ॥ ४४ ॥
कानीनश्च सहोढश्च गूढोत्पन्नस्तथैव च । पौनर्भवोपविद्धश्च लब्धक्रीतः कृतस्तथा ॥ ४५ ॥
स्वयं चोपगतः पुत्रो द्वादशैत उदाहृताः । एषां षड्बन्धुदायादाः षडदायादबान्धवाः ॥ ४६ ॥
पूर्वः पूर्वः स्मृतः श्रेयाञ्जघन्यो यो य उत्तरः ॥ ४७ ॥

औरस, क्षेत्रज, पुत्रिकापुत्र, कानीन, सहोढ, गूढोत्पन्न, पौनर्भव, अपविद्ध, लब्ध (दत्तक), क्रीत, कृत्रिम और स्वयं उपगत; ये १२ प्रकारके पुत्र कहेगये हैं ॥ ४४—४६ ॥ इनमें ६ बन्धु और धनमें भाग लेनेवाले हैं और ६ धनमें भाग लेनेवाले नहीं हैं; केवल बान्धव हैं; इनमें क्रमसे पहिले कहेहुए श्रेष्ठ और पिछले निन्दित हैं ✿ ॥ ४६—४७ ॥

❀ वृहद्विष्णुस्मृति १५ अध्यायमें १ अंकसे ३१ अंकतक ऐसा ही है; किन्तु वहां लिखाहै कि इन १२ प्रकारके पुत्रोंमें पिछलेकी अपेक्षा पहिले लिखे हुए पुत्र श्रेष्ठ हैं और क्रमसे वह पिताके धनके अधिकारी होतेहैं जो धनका स्वामी होवे वही अन्य प्रकारके पुत्रोंका भरण पोषण करे और अपने धनके अनुसार अपनी बहिन और भाइयोंका संस्कार करावे ।

✿ नारदस्मृति—१३ विवादपदके १७-१८ श्लोक । कानीन, सहोढ़ और गूढोत्पन्न पुत्रका पालन करनेवाला पिता होगा; ये सब धनमें भाग नहीं पावेंगे । विना विवाही कन्यामें गुप्त रीतिसे उत्पन्नपुत्र कानीन है; वह अपने नानाको पिण्ड देवे और उसका धन लेवे ।

अनेकवर्णकी भार्याओंमें उत्पन्न पुत्रोंका भाग ३.

(१) मनुस्मृति–९ अध्याय।

एतद्विधानं विज्ञेय विभागस्यैकयोनिषु । बह्वीषु चैकजातानां नानास्त्रीषु निबोधत ॥ १४८ ॥
ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतस्रस्तु यदि स्त्रियः । तासां पुत्रेषु जातेषु विभागेऽयं विधिः स्मृतः ॥१४९॥
कीनाशो गोवृषो यानमलङ्कारश्च वेश्म च । विप्रस्यौद्धारिकं देयमेकांशश्च प्रधानतः ॥ १५० ॥
त्र्यंशं दायाद्धरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रियासुतः । वैश्याजः सार्धमेवांशमंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥ १५१ ॥
सर्वं वा रिक्थजातं तद्दशधा परिकल्प्य च । धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिनाऽनेन धर्मवित् ॥१५२॥
चतुरोंऽशान्हरेद्विप्रस्त्रीनंशान्क्षत्रियासुतः । वैश्यापुत्रो हरेद्द्व्यंशमंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥ १५३ ॥
यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रोऽप्यसत्पुत्रोऽपि वा भवेत् । नाधिकं दशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः ॥ १५४ ॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाक् । यदेवास्या पिता दद्यात्तदेवास्य धनं भवेत् ॥ १५५ ॥
शूद्रस्य तु सवर्णैव नान्या भार्या विधीयते । तस्यां जाताः समांशाः स्युर्यदि पुत्रशतं भवेत् ॥१५७॥

सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न पुत्रोंका विभाग कहागया; अब अनेक वर्णकी भार्यायोंमें उत्पन्न पुत्रोंके विभागकी विधि कहीजाती है ॥१४८॥ ब्राह्मणकी विवाहिता चारों वर्णोंकी स्त्रियोंसे उत्पन्न पुत्रोंके विभागका विधान इसप्रकार कहागया है ॥ १४९ ॥ ब्राह्मणीका पुत्र खेतीवाला १ बैल, एकएक यान, आभूषण, एक घर और एक प्रधान अंश ज्येष्ठांशस्वरूप पावेगा ॥ १५० ॥ ब्राह्मणीका पुत्र ३ भाग, क्षत्रियाका पुत्र २ भाग, वैश्याका पुत्र डेढ़ भाग और शूद्राका पुत्र १ भाग लेगा ॥ १५१ ॥ अथवा धर्मको जाननेवाले धर्मपूर्वक सब धनको १० भागमें करें; उसमेंसे ४ भाग ब्राह्मणीका पुत्र,३ भाग क्षत्रियाका पुत्र, २ भाग वैश्याका पुत्र और १ भाग शूद्राका पुत्र लेवे *॥१५२॥ १५३॥ ब्राह्मणकी ब्राह्मणी, क्षत्रिया, और वैश्या स्त्रियोंमेंसे किसीको पुत्र हो वा न हो शूद्राका पुत्र पिताके धनमें दशवें भागसे अधिक नहीं पावेगा ॥ १५४ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्यकी शूद्रा स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र धनका भागी नहीं है; किन्तु उसका पिता अपनी इच्छासे जो कुछ उसको देदेगा वह उसीको पावेगा ॥१५५॥शूद्रको सवर्णास्त्रीके अतिरिक्त अन्य वर्णकी स्त्री नहीं होसकती है, इसलिये शूद्रके एकसौ पुत्र होनेपर भी सबको समान भाग मिलेगा ॥ १५७ ॥

(४ क) बृहद्विष्णुस्मृति–१५ अध्याय।

प्रतिलोमासु स्त्रीषु चोत्पन्नाश्चाभागिनः ॥ ३६ ॥ तत्पुत्राः पैतामहेऽप्यर्थे ॥ ३७ ॥
अंशग्राहिभिस्ते भरणीयाः ॥ ३८ ॥

प्रतिलोमज अर्थात् उच्चवर्णकी स्त्रीमें नीच वर्णके पुरुषसे उत्पन्न पुत्र पैतृकधनमें भाग नहीं पावेगा, उसके पुत्रभी पितामहके धनमें भाग पानेके अधिकारी नहीं होंगे; किन्तु जो उस धनका अधिकारी होगा वही उनका पालन करेगा ⊙ ॥ ३६–३८ ॥

१८ अध्याय।

ब्राह्मणस्य चतुर्षु वर्णेषुचेत् पुत्राः भवेयुस्ते पैतृकमृक्थं दशधा विभजेयुः ॥१ ॥ तत्र ब्राह्मणी-पुत्रश्चतुरोंऽशानादद्यात् ॥ २ ॥ क्षत्रियापुत्रस्त्रीन् ॥ ३ ॥ द्वावंशौ वैश्यापुत्रः ॥ ४ ॥ शूद्रापुत्र-स्त्वेकम् ॥ ५ ॥ अथ चेच्छूद्रापुत्रवर्जं ब्राह्मणस्य पुत्रत्रयं भवेत् तदा तद्धनं नवधा विभजेयुः ॥६॥
वर्णानुक्रमेण चतुस्त्रिद्विभागी कृतानंशानादद्युः ॥ ७॥ वैश्यवर्जमष्टधाकृतं चतुरस्त्रीनेकश्चादद्युः ॥८॥
क्षत्रियवर्जं सप्तधाकृतं चतुरो द्वावेकश्च ॥ ९ ॥ ब्राह्मणवर्जं षड्धाकृतं त्रीन् द्वावेकं च ॥ १० ॥

---

* बौधायनस्मृति–२ प्रश्न–२ अध्यायके १० अङ्कमें इस १५२—१५३ श्लोकके समान है। याज्ञवल्क्य स्मृति—२ अध्यायके १२७ श्लोकमें भी ऐसा है और लिखाहै कि क्षत्रियकी क्षत्रिया स्त्रीमें उत्पन्न पुत्रको (६ भागोंमेंसे) ३ भाग वैश्यामें उत्पन्न पुत्रको २ भाग और शूद्रामें उत्पन्न पुत्रको १ भाग मिलेगा और वैश्यकी वैश्या स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र (३ भागोंमेंसे) २ भाग और शूद्रामें उत्पन्न पुत्र १ भाग पावेगा (आगे बृहद्विष्णुस्मृतिमें देखिये) इससे नीचे मनुस्मृतिके १५५ श्लोकमें है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्यसे उत्पन्न शूद्राका पुत्र धनका भागी नहीं होगा; किन्तु उसका पिता अपनी इच्छासे जो कुछ उसको देगा वही उसका धन होगा सो यह वचन उस धनके विषयमें है जो पिता अपनी जीवित अवस्थामें शूद्राके पुत्रको देदेवे; यदि शूद्राके पुत्रका पिताने उसको धन नहीं दिया होगा तो वह १० भागोंमेंसे १ भाग पावेगा।

⊙ गौतमस्मृति–२९ अध्याय–९ अंक। प्रतिलोमज पुत्रको शूद्राके पुत्रके समान (भोजनादिके निर्वाह मात्र जीविका) मिलना चाहिये।

क्षत्रियस्य क्षत्रियावैश्याशूद्रापुत्रेष्वयमेव विभागः ॥ ११ ॥ अथ ब्राह्मणस्य ब्राह्मणक्षत्रियौ पुत्रौ स्यातां तदा सप्तधा कृताद्धनाद् ब्राह्मणश्चतुरोंऽशानादद्यात् ॥ १२ ॥ त्रीन् राजन्यः ॥ १३ ॥ अथ ब्राह्मणस्य ब्राह्मणवैश्यौ तदा षड्धा विभक्तस्य चतुरोंऽशान् ब्राह्मण आदद्यात् ॥ १४ ॥ द्वावंशौ वैश्यः ॥ १५ ॥ अथ ब्राह्मणस्य ब्राह्मणशूद्रौ पुत्रौ स्यातां तद्धनं पञ्चधा विभजेयाताम् ॥ १६ ॥ चतुरोंऽशान् ब्राह्मणस्त्वादद्यात् ॥ १७ ॥ एकं शूद्रः ॥ १८ ॥ अथ ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य वा क्षत्रियवैश्यौ स्यातां तदा तद्धन पञ्चधा विभजेयाताम् ॥ १९ ॥ त्रीनंशान् क्षत्रियस्त्वादद्यात् ॥ २० ॥ द्वावंशौ वैश्यः ॥ २१ ॥ अथ ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य वा क्षत्रियशूद्रौ पुत्रौ स्यातां तदा तद्धनं चतुर्द्धा विभजेयाताम् ॥ २२ ॥ त्रीनंशान् क्षत्रियस्त्वादद्यात् ॥ २३ ॥ एकं शूद्रः ॥२४॥ अथ ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य वैश्यस्य वा वैश्यशूद्रौ पुत्रौ स्यातां तदा तद्धनं त्रिधा विभजेयाताम्॥२५॥ द्वावंशौ वैश्यस्त्वादद्यात् ॥ २६ ॥ एकं शूद्रः ॥२७॥ अथैकपुत्रा ब्राह्मणस्य ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः सर्वहराः ॥ २८ ॥ क्षत्रियस्य राजन्यवैश्यौ ॥ २९ ॥ वैश्यस्य वैश्यः ॥ ३० ॥ शूद्राः शूद्रस्य ॥३१॥ द्विजातीनां शूद्रस्त्वेकः पुत्रोऽर्द्धहरः ॥३२॥ अपुत्ररिक्थस्य या गतिः सात्रार्द्धस्य द्वितीयस्य ॥३३॥

यदि ब्राह्मणकी चारों वर्णकी स्त्रियोंसे पुत्र होवें तो उनमें ब्राह्मणीका पुत्र १० भागोंमेंसे ४ भाग, क्षत्रियाका पुत्र ३ भाग, वैश्याका पुत्र २ भाग और शूद्राका पुत्र १ भाग लेवे ॥ १–५ ॥ यदि ब्राह्मणकी ब्राह्मणी, क्षत्रिया और वैश्या तीन स्त्रियोंके ३ पुत्र होवें तो उसका धन ९ भागोंमें होकर४ भाग ब्राह्मणीका पुत्र, ३ भाग क्षत्रियाका पुत्र और दो भाग वैश्याका पुत्र पावे ॥ ६–७ ॥ यदि ब्राह्मणकी ब्राह्मणी, क्षत्रिया और शूद्रा तीन स्त्रियोंमें तीन पुत्र होवें तो उसका धन ८ भागोंमें करके ४ भाग ब्राह्मणीका पुत्र, ३ भाग क्षत्रियाका पुत्र और १ भाग शूद्रका पुत्र लेवे ॥ ८ ॥ यदि ब्राह्मणकी ब्राह्मणी, वैश्या और शूद्रा तीन स्त्रियोंके ३ पुत्र होवें तो उसका धन ७ भागोंमें होकर ४ भाग ब्राह्मणीका पुत्र, २ भाग वैश्याका पुत्र और १ भाग शूद्राका पुत्र पावे ॥ ९ ॥ और यदि ब्राह्मणकी क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा ३ स्त्रियोंके ३ पुत्र होवें तो ब्राह्मणका धन ६ भागोंमें करके ३ भाग क्षत्रियाका पुत्र, २ भाग वैश्याका पुत्र और १ भाग शूद्राका पुत्र लेवे ॥ १० ॥ क्षत्रियकी क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा तीन स्त्रियोंके ३ पुत्र होवें तो इसी भांति अर्थात् उसका धन ६ भागोंमें करके ३ भाग क्षत्रियाका पुत्र, २ भाग वैश्याका पुत्र और १ भाग शूद्राका पुत्र ग्रहण करे ॥ ११ ॥ यदि ब्राह्मणकी ब्राह्मणी और क्षत्रिया २ स्त्रियोंमेंसे २ पुत्र होवें तो धनको ७ भागमें करके ४ भाग ब्राह्मणीका पुत्र और ३ भाग क्षत्रियाका पुत्र लेवे ॥ १२-१३ ॥ यदि ब्राह्मणी और वैश्या २ स्त्रियोंके २ पुत्र होंवे तो धनको ६ भागोंमें करके ४ भाग ब्राह्मणीका पुत्र और २ भाग वैश्याका पुत्र लेवे ॥१४–१५ ॥ यदि ब्राह्मणी और शूद्रा दो स्त्रियोंके दो पुत्र होवें तो धनको ५ भागोंमें विभक्त करके ४ भाग ब्राह्मणीका पुत्र और १ भाग शूद्राका पुत्र ग्रहण करे ॥ १६–१८ ॥ यदि ब्राह्मण अथवा क्षत्रियकी क्षत्रिया और वैश्या दो स्त्रियोंके दो पुत्र होवें तो धन ५ भागोंमें विभक्त कियाजावे उसमेंसे ३ भाग क्षत्रियाका पुत्र और २ भाग वैश्याका पुत्र लेवे ॥ १९–२१ ॥ यदि ब्राह्मण अथवा क्षत्रियकी क्षत्रिया और शूद्रा दो स्त्रियोंमें दो पुत्र होवें तो धनको ४ भागोंमें करके ३ भाग क्षत्रियाका पुत्र और १ भाग शूद्राका पुत्र लेवे ॥ २२–२४ ॥ और यदि ब्राह्मण; क्षत्रिय अथवा वैश्यकी वैश्या और शूद्रा दो स्त्रियोंमें दो पुत्र होवें तो धनको ३ भागोंमें करके २ भाग वैश्याका पुत्र और १ भाग शूद्राका पुत्र लेवे ॥ २५–२७ ॥ यदि ब्राह्मणकी ब्राह्मणी, क्षत्रिया अथवा वैश्या स्त्रीसे क्षत्रियकी क्षत्रिया अथवा वैश्या स्त्रीसे; वैश्यकी वैश्या स्त्रीसे और शूद्रकी शूद्रा स्त्रीसे केवल एक ही पुत्र होवे तो वह सब धनका अधिकारी बने ॥ २८–३१ ॥ यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्यका केवल शूद्रा स्त्रीसे एकमात्र पुत्र होवे तो वह धनमेंसे आधा भाग पावे और आधे धनको अपुत्रकमृत मनुष्यके धनके समान दूसरे लोग लेवें ॥ ३२–३३ ॥

यदि द्वौ ब्राह्मणीपुत्रौ स्यातामेकः शूद्रापुत्रस्तदा नवधा विभक्तस्यार्थस्य ब्राह्मणीपुत्रावष्टौ भागानादद्यातामेकं शूद्रापुत्रः ॥ ३८ ॥ अथ शूद्रापुत्रावुभौ स्यातामेको ब्राह्मणीपुत्रस्तदा षड्धा विभक्तस्यार्थस्य चतुरोंऽशान् ब्राह्मणस्त्वादद्याद्वावंशौ शूद्रापुत्रौ ॥ ३९ ॥ अनेन क्रमेणा-न्यत्राप्यंशकल्पना भवति ॥ ४० ॥

यदि ब्राह्मणकी ब्राह्मणीसे २ पुत्र और शूद्रास्त्रीसे १ पुत्र होवे तो उसका धन ९ भागोंमें करके चार चार भाग ब्राह्मणीके दोनों पुत्र और १ भाग शूद्राका पुत्र लेवे॥३८॥ यदि ब्राह्मणकी शूद्रा स्त्रीसे २ पुत्र और ब्राह्मणी स्त्रीसे १ पुत्र होवे तो धनको ६ भागोंमें करके २ भाग शूद्राके दोनों पुत्र और ४ भाग ब्राह्मणीका पुत्र लेलेवे ॥ ३९ ॥ इसी रीतिसे अन्यत्र भी भागकी कल्पना होगी ॥ ४० ॥

(१८) गौतमस्मृति-२९ अध्याय।

ब्राह्मणस्य राजन्यापुत्रो ज्येष्ठो गुणसंपन्नस्तुल्यांशभाग् ज्येष्ठांशहीनमन्यद्राजन्यावैश्यापुत्रसमवाये स यथा ब्राह्मणीपुत्रेण क्षत्रियाच्चेच्छूद्रापुत्रोऽप्यनपत्यस्य शुश्रूषुश्चेल्लभेत वृत्तिमूलमन्तेवासिविधिना सवर्णापुत्रोऽप्यन्यायवृत्तो न लभेतैकेषाम् ॥ ९॥

यदि ब्राह्मणकी क्षत्रिया स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र ज्येष्ठ और गुणवान् होगा तो वह ब्राह्मणीके पुत्रके समान भाग पावेगा; अन्यरूप होनेसे ज्येष्ठांश नहीं पावेगा; यदि ब्राह्मणकी क्षत्रिया और वैश्या दोनों स्त्रियोंके २ पुत्र होंगे तो क्षत्रियाके पुत्रको उसी प्रकारका भाग मिलैगा जैसे ब्राह्मणकी ब्राह्मणी और क्षत्रियामें दो पुत्र होने पर ब्राह्मणीके पुत्रको मिलता; यदि किसी पुत्रहीन क्षत्रियकी शूद्रा स्त्रीका पुत्र शिष्यके समान पिताकी सेवा करेगा तो वृत्तिमूल पावेगा; ❀ किसी आचार्यका मत है कि सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र भी यदि कुमार्गी होगा तो उसको भाग नहीं मिलेगा ॥ ९ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति-१७ अध्याय।

यदि ब्राह्मणस्य ब्राह्मणीक्षत्रियावैश्यासु पुत्राः। स्युस्त्र्यंशं ब्राह्मण्याः पुत्रो हरेद्‌द्व्यंशं राजन्यायाः पुत्रः सममितरे विभजेरन् ॥४४॥ येन चैषां स्वयमुत्पादितं स्याद्‌द्व्यंशमेव हरेत् ॥४५ ॥

यदि ब्राह्मणकी ब्राह्मणी, क्षत्रिया और वैश्या, इन तीनों स्त्रियोंके पुत्र होंगे तो ब्राह्मणीका पुत्र ३ भाग क्षत्रियाका पुत्र २ भाग और अन्य त्र बराबर भाग पावेंगे ॥४४॥ इनको स्वयं उपार्जन कियेहुए धनमेंसे दो भाग मिलेंगे ॥ ४५ ॥

माता, स्त्री और बहिनका भाग ४.

(१) मनुस्मृति-९ अध्याय।

स्वेभ्योंऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक्। स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिताः स्युरदित्सवः॥११८॥

बिना विवाहीहुई बहिनोंके विवाहके लिये सब भाइयोंको अपने अपने भागमेंसे चौथा भाग देना चाहिये; नहीं देनेवाला पतित होजाता है ॥ ११८॥

येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीयेतांशप्रदानतः। म्रियेतान्यतरो वापि तस्य भागो न लुप्यते ॥ २११ ॥
सोदर्या विभजेरंस्तं समेत्य सहिताः समम्। भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सनाभयः ॥ २१२ ॥

धन बांटनेके समय यदि बड़ाभाई अथवा छोटाभाई संन्यासी होगया हो अथवा मरगया होवे तो उसका भाग लोप नहीं होता सब सहोदर भाई और सहोदरा बहिन उसके भागको समान हिस्से करके बांटलेवें ॥ २११-२१२ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय।

यदि कुर्यात्समानंशान्पत्न्यः कार्याः समांशिकाः। न दत्तं स्त्रीधनं यासां भर्त्रा वा श्वशुरेण वा ११७
विभजेरन्सुताः पित्रोरूर्ध्वं रिक्थमृणं समम्। मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्य ऋतेन्वयः ॥ ११९ ॥
पितुरूर्ध्वं विभजतां माताप्यंशं समं हरेत् ॥ १२५ ॥

जब सब पुत्रोंको समान भाग बांटदेवे तो अपनी स्त्रियोंको भी, जिनको पति अथवा ससुरसे धन नहीं मिला होवे, पुत्रोंके समान भाग देवे ॥ ११७ ॥ मातापिताके मरनेपर सब पुत्र धन और ऋणको बराबर बांट लेवें; माताका धन उसका ऋण चुकाकर पुत्रियां लेंगीं किन्तु यदि पुत्री नहीं होगी तो पुत्रोंको मिलेगा ❁ ॥ ११९ ॥ यदि पिताके मरनेपर पुत्रलोग पैतृकधनको बांटेंगे तो माता भी पुत्रोंके समान १ भाग पावेगी ✿ ॥ १२५ ॥

❀ बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-२ अध्यायके १२--१३अङ्क। सवर्णापुत्र और अनन्तरापुत्र अर्थात् अपनेसे एकवर्ण नीचेकी स्त्रीमें उत्पन्न पुत्रमें यदि सवर्णापुत्रसे अनन्तरापुत्र गुणवान् होगा तो वह ज्येष्ठांश पावेगा; क्योंकि गुणवान् पुत्र सबका पालन करनेवाला होताहै।

याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्यायके १२६ श्लोकमें भी ऐसा है। बृहद्विष्णुस्मृति-१५ अध्याय-३१अङ्क। जो पुत्र पिताके धनका मालिक होवे वह अपने धनके अनुसार खरच करके अपने बहिनों विवाह और असंस्कृत भाइयोंका संस्कार करादेवे।

❁ मनुस्मृति-९ अध्याय-१३१ श्लोक। माताके दहेजमें मिलाहुआ धन माताके मरनेपर कुमारी कन्याका भाग होगा।

✿ बृहद्विष्णुस्मृति-१८ अध्याय -३४ अङ्क। माता अपने पुत्रके समान भाग पावे। नारदस्मृति-१३ विवादपद-१३ श्लोक। माता अपने पतिके मरनेपर पुत्रके समान भाग पावेगी।

भागका अधिकारी ५.

(१) मनुस्मृति-९ अध्याय ।

अनियुक्तासुतश्चैव पुत्रिण्याप्तश्च देवरात् । उभौ तौ नार्हतो भागं जारजातककामजौ ॥ १४३ ॥
नियुक्तायामपि पुमान्नार्यां जातोऽविधानतः । नैवार्हः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितो हि सः ॥१४४॥

विना ससुरआदि बड़ोंकी आज्ञाके अन्य पुरुषसे उत्पन्न पुत्र और पुत्रवती स्त्रीमें नियोग द्वारा देवरसे उत्पन्न पुत्र जारज और कामज कहेजातेहैं; ये दोनों प्रकारके पुत्र पितृधन अर्थात् अपनी माताके प्रथम पतिके धनके अधिकारी नहीं होसकतेहैं ॥ १४३ ॥ नियुक्तस्त्रीमें भी विना विधानसे: जन्माहुआ पुत्र अपने क्षेत्रिकपिताका धन नहीं पावेगा; क्योंकि वह पतितसे जन्मा है ॥ १४४ ॥

अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा । उन्मत्तजडमूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः ॥ २०१ ॥
सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनीषिणा । ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितो ह्यददद्भवेत् ॥ २०२ ॥
यद्यर्थिता तु दारैः स्यात्क्लीबादीनां कथंचन । तेषामुत्पन्नतन्तूनामपत्यं दायमर्हति ॥ २०३ ॥

नपुंसक,पतित,जन्मका अन्धा,जन्मका बहिरा,उन्मत्त,जड़ और गूंगा आदि इन्द्रियहीन मनुष्य भाग नहीं पावेंगे;किन्तु सम्पत्ति लेनेवालोंको न्यायपूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार उनके निर्वाहके योग्य भोजन, वस्त्रआदि देना होगा; वे यदि नहीं देंगे तो पतित होजावेंगे ॥ २०१-२०२ ॥ नपुंसक, अन्धा आदि यदि विवाह करेंगे और उनकी स्त्रियोंमें (क्षेत्रज, औरसआदि) पुत्र उत्पन्न होंगे तो वे लोग पितामहके धनमें भाग पावेंगे ॥ २०३ ॥

सर्व एव विकर्मस्था नार्हन्ति भ्रातरो धनम् ॥ २१४ ॥

कुकर्ममें फसाहुआ मनुष्य भाइयोंसे भाग नहीं पावेगा ॥ २१४ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय ।

क्लीबोथ पतितस्तज्जः पंगुरुन्मत्तको जडः । अन्धोऽचिकित्स्यरोगाद्या भर्त्तव्याः स्युर्निरंशकाः॥१४४॥
औरसाः क्षेत्रजास्त्वेषां निर्दोषा भागहारिणः । सुताश्चैषां प्रभर्त्तव्या यावद्वै भर्तृसात्कृताः ॥१४५ ॥
अपुत्रा योषितश्चैषां भर्त्तव्याः साधुवृत्तयः । निर्वास्या व्यभिचारिण्यः प्रतिकूलास्तथैव च ॥१४६॥

नपुंसक, पतित, पतितके पुत्र, लंगड़ा, उन्मत्त, जड़, अन्धा, असाध्यरोगी आदिको इनके निर्वाहयोग्य भोजन वस्त्रआदि देदेना चाहिये; धनमें भाग नहीं ॥ १४४ ॥ इन लोगोंके औरस अथवा क्षेत्रजपुत्र, यदि निर्दोष होंगे तो भाग पावेंगे; इनकी कुमारीकन्याओंको भर्त्ताके घर जानेके समयतक पालन करना चाहिये ॥ १४५ ॥ इनकी पुत्रहीन स्त्रियोंको यदि वे अच्छे आचरणवाली होवें तो पालन करना चाहिये और यदि व्यभिचारिणी अथवा प्रतिकूला होवें तो घरसे बाहर करदेना चाहिये ॥ १४६ ॥

(४ क) बृहद्विष्णुस्मृति--१५ अध्याय ।

पतितक्लीबाचिकित्स्यरोगविकलास्त्वभागहारिणः॥ ३२ ॥ रिक्थग्राहिभिस्ते भर्त्तव्याः ॥ ३३ ॥
तेषां चौरसाः पुत्रा भागहारिणः ॥ ३४ ॥ न तु पतितस्य पतनीये कर्मणि कृते त्वनन्तरोत्पन्नाः३५

पतित, नपुंसक, असाध्यरोगी और अन्धा आदि विकलेंद्रिय मनुष्य पैतृक धनमें भाग नहीं पावेंगे; किन्तु जो धनका अधिकारी होगा वही इनका पालन करेगा ॥ ३२-३३ ॥ इनके औरसपुत्र पितामहके धनमें भाग पावेंगे; किन्तु पतितहोजानेके पश्चात्का जन्माहुआ पतितका पुत्र भाग पानेका अधिकारी नहीं होगा ॥ ३४-३५ ॥

(१८) गौतमस्मृति--२९ अध्याय ।

सवर्णापुत्रोऽप्यन्यायवृत्तो न लभेतैकेषां जडक्लीबौ भर्त्तव्यावपत्यं जडस्य भागार्हम् ॥ ९ ॥

किसी किसीका मत है कि सवर्णा स्त्रीका पुत्र भी कुमार्गी होगा तो पैतृकधनमें भाग नहीं पावेगा । जड़ अर्थात् मूढ़ और नपुंसकको भाग नहीं मिलेगा; जो भाग पावेगा वही उनका पालन करेगा; किन्तु जड़का पुत्र धनमें भाग पावेगा ॥ ९ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति--१७ अध्याय ।

अनंशास्त्वाश्रमान्तरगताः ॥ ४६ ॥ क्लीबोन्मत्तपतिताश्च ॥ ४७ ॥ भरणं क्लीबोन्मत्तानाम् ॥ ४८ ॥

नारदस्मृति-१३ विवादपद-१९ श्लोक । विना स्त्रीके श्वशुरआदिकी आज्ञाके अन्य पुरुषसे उत्पन्न पुत्र, माताके प्रथम पतिका धन नहीं पावेंगे; क्योंकि वे बीजवालके पुत्र हैं ।

गृहस्थसे वानप्रस्थ अथवा संन्यासी होजानेवाले मनुष्य पिताके धनमें भाग नहीं पावेंगे ॥ ४६ ॥ नपुंसक, उन्मत्त और पतित भाग नहीं पावेगा॥४७॥भाग लेनेवालेको नपुंसक और उन्मत्तका पालन करना पड़ेगा॥४८॥

(२५) बौधायनस्मृति--२प्रश्न-२ अध्याय।

अतीतव्यवहारान्ग्रासाच्छादनैर्बिभृयुः ॥ ४३ ॥ अन्धजडक्लीबव्यसनिव्याधितादींश्च ॥ ४४ ॥ अकर्मिणः ॥ ४५ ॥ पतिततज्जातवर्जम् ॥ ४६ ॥

जो लोग व्यवहारयोग्य नहीं हैं भोजनवस्त्रादि देकर उनका पालन करना चाहिये ॥ ४३ ॥ इसी प्रकारसे अन्धा, जड़, नपुंसक, व्यसनी, असाध्यरोगी तथा कर्मरहितका भी पालन करना उचित है ॥४४-४५॥ पतित और पतितसे उत्पन्न सन्तानको कुछ नहीं देना चाहिये ॥ ४६ ॥

(२६) नारदस्मृति-१३ विवादपद।

पितृद्विट् पतितः पण्ढो यश्च स्यादौपपातिकः। औरसा अपि नैतेंशं लभेरन्क्षेत्रजाः कुतः ॥ २१ ॥
दीर्घतीव्रामयग्रस्ता जडोन्मत्तान्धपङ्गवः। भर्तव्याः स्युः कुलेनैते तत्पुत्रास्त्वंशभागिनः ॥ २२ ॥

पिताका वैरी, पतित, नपुंसक और उपपातकी; ये सब औरस पुत्र होनेपर भी पिताके धनका भाग नहीं पाते तो क्षेत्रज कैसे पावेगा ॥ २१ ॥ असाध्य रोगी, जड़, उन्मत्त अन्धा और पङ्गुको धनमें भाग नहीं देकर पालन करना चाहिये; किन्तु इनको यदि पुत्र होंगे तो वे धनमें भाग पावेंगे ॥ २२ ॥

पुत्रहीन पुरुषके धनका अधिकारी ६.

(१) मनुस्मृति-९ अध्याय।

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा। तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥ १३० ॥
मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः। दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम् ॥ १३१ ॥
दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत्। स एव दद्याद्द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च ॥ १३२ ॥
पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः। तयोर्हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः ॥ १३३ ॥

पुत्र पिताके आत्माके समान है और पुत्री भी पुत्रके ही समान है इसलिये पुत्रीके रहनेपर पुत्रहीन पुरुषकी सम्पत्तिको अन्य कोई कैसे लेसकेगा ॥ १३० ॥ माताके दहेजमें मिलाहुआ धन माताके मरनेपर कुमारीकन्याका भाग होवे और पुत्रहीनपुरुषका सम्पूर्ण धन उसके दौहित्र अर्थात् उसकी पुत्रीके पुत्रको मिले ॥ १३१ ॥ विना पुत्रवाले नानाका सम्पूर्ण धन दौहित्र लेवे और वह अपने पिता और नाना दोनोंको पिण्ड देवे ॥ १३२ ॥ लोकमें धर्मके अनुसार पौत्र और दौहित्रमें कुछ भेद नहीं है; क्योंकि एक ही पुरुषसे पौत्राके पिता और दौहित्रकी माताका जन्म है * ॥ १३३ ॥

न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः। पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातर एव च ॥ १८५ ॥
अनन्तरः सपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत्। अत ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा१८७॥
सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थभागिनः। त्रैविद्याः शुचयो दान्तास्तथा धर्मो न हीयते ॥ १८८ ॥
अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः। इतरेषां तु वर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः ॥ १८९ ॥

पुरुषके धनका अधिकारी उसका भाई अथवा पिता नहीं होवेगा; उसके पुत्र ही होंगे; किन्तु यदि उसका पुत्र नहीं होगा तो उसका पिता और पिता नहीं होगा तो उनका भाई उसके धनको ग्रहण करेगा ॥ १८५ ॥ सपिण्डलोगोंमें जो सबसे अधिक शारीरिक सम्बन्धियोंमें समीपी होगा वही धनका अधिकारी बनेगा और उसके नहीं रहनेपर उसके बादका समीपी, उसके नहीं होनेपर सकुल्य अर्थात् समानोदक, समानोदकके नहीं रहनेपर आचार्य और आचार्यके नहीं रहनेपर शिष्य धनका मालिक होगा ॥ १८७ ॥ इनमेंसे किसीके नहीं रहनेपर तीनों वेदोंको जाननेवाला, पवित्र, तथा जितेन्द्रिय ब्राह्मण पुरुषके धनका स्वामी होगा; ऐसा होनेसे मरेहुए पुरुषके श्राद्धआदि धर्मकी हानि नहीं होतीहै ॥ १८८ ॥ राजाको उचित है कि

---

* नारदस्मृति-१३ विवादपदके ४९-५० श्लोक। श्रेष्ठपुत्रके नहीं रहनेपर उससे नीच पुत्र और पुत्रके नहीं रहनेपर कन्या मरेहुए पुरुषके धनको पाती है; क्योंकि वह पुत्रके तुल्य है।

ब्राह्मणकी सम्पत्ति कभी नहीं लेवे, किन्तु क्षत्रियआदि अन्यकी सम्पत्तिको, यदि उसका लेनेवाला कोई सम्बन्धी नही होवे तो, लेलेवे ॥ १८९ ॥

संस्थितस्यानपत्यस्य सगोत्रात्पुत्रमाहरेत् । तत्र यद्रिक्थजातं स्यात्तत्तस्मिन्प्रतिपादयेत् ॥ १९० ॥

पुत्रहीन विधवा स्त्री सगोत्रपुरुषसे पुत्र उत्पन्न करके अपने मृत पतिका सब धन उस पुत्रको देदेवे ॥ १९० ॥

अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् । मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम् ॥ २१७ ॥

सन्तानहीन पुत्रके मरनेपर (यदि उसकी भार्या नहीं होगी तो) उसका धन उसकी माताको और माताके अभावमें उसकी दादीको मिलगा ॥ २१७ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-२अध्याय ।

पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा । तत्सुता गोत्रजा बन्धुशिष्यसब्रह्मचारिणः ॥ १३९ ॥
एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः । स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥ १४० ॥

सब वर्णोके लिये यही विधि है कि जो सन्तानहीन मरजावेगा उसका धन उसकी स्त्रीको, स्त्री नहीं होगी तो पुत्रीको, पुत्री नहीं होगी तो मृतमनुष्यके पिताको, पिताके अभावमें माताको माताके नहीं रहनेपर भाईको, भाई नहीं रहनेपर भाईके पुत्रको, इनके नहीं रहने पर गोतियेको, गोतियेके नहीं रहनेपर बन्धुवर्गको, इनके नहीं रहनेपर शिष्यको और शिष्यके भी नहीं होनेपर सहपाठी ब्रह्मचारीको मिलेगा ॥ १३९-१४० ॥

नीचे याज्ञवल्क्यस्मृति और उसकी टिप्पणीमें देखिये ।

गौतमस्मृति-२९ अध्याय-४ अङ्क । पुत्रहीन विधवा स्त्री देवरसे (नियोग विधिसे) पुत्र उत्पन्न करके पतिका सब धन पुत्रको देवेगा, यदि (देवरके रहनेपर) अन्य पुरुषसे पुत्र उत्पन्न करेगी तो उस पुत्रको वह धन नहीं मिलेगा ।

बृहद्विष्णुस्मृति—१७ अध्यायके ४-१२ अङ्कमें भी ऐसा है और १३-१४ अंकमें है कि सहपाठीके नहीं रहनेपर मृतपुरुषका धन राजाको मिलेगा; किन्तु ब्राह्मणका धन ब्राह्मणकोही मिलना चाहिये । लघु-हारीतस्मृतिके ६४-६५ श्लोकमें भी ऐसा है और ६६-६७ श्लोकमें है कि भार्या जबतक व्यभिचार कर्मसे रहित और नियमसे रहेगी तभीतक पतिके धनपर उसका अधिकार रहेगा; यदि विधवा अथवा युवती स्त्री कर्कशा होगी तो सदाके निर्वाहयोग्य उसको धन देना होगा । वृद्धमनुस्मृति-जो अपुत्रा विधवा स्त्री अपने पतिकी शय्याको पालतीहै अर्थात् पतिव्रत धर्ममें रहतीहै वही पतिको पिण्ड दे और उसका सब धन लेवे (१) गौतमस्मृति—२९ अध्याय ४ अंक । मृत मनुष्यका समीपी नहीं रहनेपर उसके धनको सपिण्डी, सगोत्री अथवा गुरु, शिष्य आदि वेदविद्या सम्बन्धी लेवेंगे । सन्तानहीन पुरुषके मरनेपर उसका धन उसकी स्त्री लेवेगी । ९ अंक । यदि अन्यसम्बन्धी नहीं होवेंगे तो सन्तानहीन-ब्राह्मणके धनको श्रोत्रिय-ब्राह्मण और क्षत्रिय आदिके धनको राजा लेवेगा । वसिष्ठस्मृति-१७ अध्यायके ७२-७५ अंक । जिसका पूर्वोक्त (औरस, क्षेत्रज, पुत्रिका पुत्र, पौनर्भव, कानीन, और गूढ़ोत्पन्न) ६ प्रकारके पुत्रोंमेंसे कोई नहीं होगा उसके धनको पुत्रके स्थानापन्न (सहोढ़, दत्तक आदि पुत्र) अथवा सपिण्डी लेवेंगे, इनके नहीं रहनेपर आचार्य या अन्तेवासी शिष्य और इनके नहीं रहनेपर वह धन राजा लेवेगा; किन्तु ब्राह्मणका धन राजाको नहीं लेना चाहिये । ७८ अंक । ब्राह्मणाका धन तीनों वेद जाननेवाले सज्जन ब्राह्मणको देना चाहिये । बौधायनस्मृति—१ प्रश्न-५ अध्यायके ११६-११८ अंक । मृत ब्राह्मणका सपिण्ड नहीं होगा तो उसका धन सकुल्य (समानोदक) को और सकुल्यके नहीं रहनेपर क्रमसे आचार्य, पिता, अन्तेवासी शिष्य और ऋत्विक्को मिलेगा. यदि इनमेंसे कोई नहीं होगा तो राजा तीनों वेदोंके जाननेवाले वृद्ध ब्राह्मणको देवेगा । नारदस्मृति—१३ विवादपदके २५-२६ श्लोक । भाइयोंमेंसे कोई सन्तानहीन मरजावे अथवा संन्यासी होजावे तो सब भाई स्त्रीधनको छोड़कर उसके धनको बाँट लेवें; यदि उसकी स्त्री पतिव्रता होकर रहै तो—

स्त्रीधनका अधिकारी ७,

(१) मनुस्मृति–९ अध्याय।

मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः। दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम्॥ १३१॥

माताको दहेजमें मिलाहुआ धन उसके मरनेपर कुमारी पुत्रीको और पुत्रहीन पुरुषका सब धन उसकी पुत्रीके पुत्रको मिलना चाहिये ❀॥ १३१॥

जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः। भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः॥ १९२॥
यास्तासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथार्हतः। मातामह्या धनात्किञ्चित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम्॥ १९३॥

माताके मरनेपर उसका धन उसके सब पुत्र और कुमारी कन्यायें समान भागमें बांटलेवें; यदि पुत्रीकी पुत्री होवेगी तो उसके सम्मानके लिये उसको भी कुछ देना होगा॥ १९२–१९३॥

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि। भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्॥ १९४॥
अन्वाधेयं च यद्दत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत्। पत्यौ जीवति वृत्तायाः प्रजायास्तद्धनं भवेत्॥ १९५॥

—वे लोग जन्मपर्यन्त उसका पालन करें और यदि व्यभिचारिणी होजावे तो उसको त्याग देवें। मनुस्मृतिका लेख ऊपर देखिये।

मांडलीकके अनुसार इस टेबुलमें ५७ डिगरियोंमें गोत्र विभक्त कियागयाहै। मृतपुरुषसे सात दर्जे नीचेकी लाइन और सात दर्जे ऊपरकी लाइनमें गोत्र मानागयाहै। दर्जा ३३ से सात दर्जे और नीचे तथा दर्जा २८ से सात दर्जे और ऊपर समानोदक मानाजाताहै। इस टेबुलका सारांश यह है कि मृतपुरुषकी संपत्ति दर्जा १। २। ३ यानी उसके पुत्र पौत्र और प्रपौत्रके न होने पर दर्जा ४ स्त्रीको पहुंचतीहै इसी प्रकार दर्जोंके क्रमानुसार संपत्ति प्राप्त होतीहै। मयूख इस सिद्धांतको थोड़ा विरुद्ध मानताहै उनके सिद्धांतके अनुसार वीर्य्यकी प्रधानतासे पहिले संपत्ति पिताको और फिर माताको मिलतीहै। परन्तु मिताक्षराकारके सिद्धांतके अनुसार माताका विशेष अंश होनेसे प्रथम माताको और उसके बाद पिताको संपत्ति प्राप्त होतीहै। मांडलीक हिन्दूलाके अनुसार तीन तीन दर्जोंमें सात पुश्त ऊपर संपत्ति प्राप्त होतीहै यानी पुरुष, उसका लडका और उसका लडका। देखो दर्जे ८ पिताके, बाद उसके पुत्र (मृतपुरुषके सहोदर) को और उसके बाद उसके लडके (सहोदरभाईके लडके) को। इसी प्रकारसे बराबर ऊपर, सात पुश्त तक चला जाताहै। इस गोत्रटेबुलके संबंधमें स्मरण रखना चाहिये कि यह क्रम बटेहुए हिन्दूपरिवारका है।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्याय–११९ श्लोक। मातापिताके मरनेपर सब पुत्र पैतृक धन और ऋणको बराबर भागमें बांट लेवें; किन्तु माताके मरनेपर उसका ऋण चुकाकर उसका धन पुत्रियाँ लेवें; यदि पुत्रियाँ नहीं होवें तो पुत्रोंको मिले। नारदस्मृति–१३ विवादपद–२ श्लोक। माताका धन उसके मरनेपर पुत्रीको मिले यदि पुत्री नहीं होवे तो उसके पुत्रआदि लेवें।

स्त्रीधन ६ प्रकारका है;-(१) विवाहके होमके समयका मिलाहुआ, (२) ससुरालमें जानेके समयका मिलाहुआ, (३) प्रीतिनिमित्तक स्वामीका दियाहुआ, (४) भाईसे मिलाहुआ (५) मातासे मिलाहुआ और (६) पितासे मिलाहुआ ॥१९४॥ विवाहके बाद पतिके कुल तथा पिताके कुलसे मिलाहुआ और प्रतिनिमित्तक पतिका दियाहुआ धन पतिकी जीवित अवस्थामें स्त्रीके मरनेपर उसकी सन्तानोंको मिलेगा ❀ ॥ १९५ ॥

ब्रह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु यद्वसु । अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते ॥ १९६ ॥
यत्त्वस्याः स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वासुरादिषु । अप्रजायामतीतायां मातापित्रोस्तदिष्यते ॥ १९७ ॥

ब्राह्म, दैव, आर्ष, गान्धर्व और प्राजापत्यविवाहकी स्त्रियोंके निःसन्तान मरजानेपर उनका धन उनके पतिको और आसुर, राक्षस तथा पैशाच विवाहकी स्त्रियोंके निःसन्तान मरनेपर उनका धन उनके माता पिताको मिलेगा ⊙ ॥ १९६-१९७ ॥

स्त्रियां तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं कथञ्चन । ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत् ॥ १९८ ॥

ब्राह्मणकी अनेक वर्णकी भार्याओंमेंसे यदि कोई भार्या निःसन्तान मरजावे तो उसके पितासे मिलाहुआ उसका धन उसकी ब्राह्मणी सौतकी कन्याको और कन्या नहीं रहनेपर उस कन्याकी सन्तानको मिलना चाहिये ॥ १९८ ॥

पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलंकारो धृतो भवेत् । न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते ॥ २००॥

पतिकी जीवित अवस्थामें जिन भूषणोंको स्त्री पहनतीहै पतिके मरनेपर उसके जीवित रहतेहुए उसके पुत्रआदि उन भूषणोंको नहीं बांटसकेंगे; यदि लेवेंगे तो पापी होंगे ॥ २०० ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय ।

दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ सम्प्रतिरोधके । गृहीतं स्त्रीधनम्भर्त्ता न स्त्रियै दातुमर्हति ॥ १५१ ॥

यदि दुर्भिक्षमें प्राणरक्षाके लिये, धर्मकार्यके लिये, रोगकी चिकित्साके लिये अथवा बन्धनसे छूटनेके लिये पति अपनी स्त्रीका धन लेवेगा तो पीछे उसको वह नहीं लौटाना पड़ेगा ॥ १५१ ॥

(१८) गौतमस्मृति-२९ अध्याय ।

स्त्रीधनं दुहितॄणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानां च भगिनीशुल्कं सोदर्याणामूर्ध्वं मातुः पूर्वं चैके ॥ ५ ॥

माताका निजका धन विना विवाहीहुई अथवा विवाहीहुई दीन दुःखित पुत्रियोंको मिलना चाहिये । सहोदर बहिनके विवाहमें कन्याके पितामाताने जो वरसे धन लिया होगा वह भी माताके मरनेपर पुत्रियोंका होगा; किसीका मत है कि माताकी विद्यमानतामें ही वह धन पुत्रियोंका होजावेगा ॥ ५ ॥

(२९) बौधायनस्मृति--२ प्रश्न-२ अध्याय ।

मातुरलङ्कारं दुहितरः सांप्रदायिकं लभेरन्नन्यद्वा ॥ ४९ ॥

माताके अलंकार पुत्रियोंको अथवा अन्य कोई सांप्रदायिकका मिलना चाहिये ॥ ४९ ॥

वानप्रस्थ आदि और व्यापारी आदिके धनका अधिकारी ८.

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय ।

वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणां रिक्थभागिनः । क्रमेणाचार्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिनः ॥ १४१ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्यायके १४७-१४८ श्लोक । पिता, माता, पति और भाईसे मिलाहुआ, विवाहके होमके समयका मिलाहुआ और दूसरा विवाह करनेके समय अपनी पहिली स्त्रीको पतिका दियाहुआ स्त्रीधन कहलाताहै । बन्धुओंका दियाहुआ, वरसे कन्याका मूल्य लियाहुआ और विवाहके बाद पतिके कुल तथा पिताके कुलसे मिलाहुआ धन भी स्त्रीधन कहाजाताहै; यदि स्त्री निःसन्तान मरजायगी तो उसका धन उसके (पतिआदि) बान्धव लेंगे । वृहद्विष्णुस्मृति-१७ अध्यायके १८ अंकमें प्रायः ऐसा है । नारदस्मृति-१३ विवादपदके ८ श्लोकमें मनुस्मृतिके १९४ श्लोकके समान है ।

⊙ नारदस्मृति-१३ विवादपदके ९ श्लोकमें भी ऐसा है । याज्ञवल्क्यस्मृति-२अध्याय-१४९श्लोक । ब्राह्म, दैव आर्ष और प्रजापत्य; इन ४ प्रकारसे विवाही हुई स्त्रियोंका धन उनके निःसन्तान मरनेपर उनके पतियोंको और सन्तान रहतेहुए मरनेपर उनकी पुत्रियोंको मिलेगा और अन्यप्रकार अर्थात् आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच विवाहसे विवाहीहुई स्त्रियोंका धन उनके पिताओंका होगा । वृहद्विष्णुस्मृति १७ अध्यायके १९-२१ अंकमें ऐसा ही है ।

वानप्रस्थके धनको एक आश्रममें रहनेवाला धर्मभ्राता (सहपाठी) संन्यासीके धनको श्रेष्ठ शिष्य और ब्रह्मचारीके धनको आचार्य लेवे ※ ॥ १४१ ॥

देशान्तरगते प्रेते द्रव्यं दायादबान्धवाः। ज्ञातयो वा हरेयुस्तदागतास्तैर्विना नृपः ॥ २६८ ॥

यदि कोई व्यापारी अन्यदेशमें जाकर मरजावे तो उसके द्रव्यको उसके पुत्रादि दायाद, बान्धव अथवा जातिके मनुष्य वहां जाकरके लेवें; यदि इनमेंसे कोई नहीं आवे तो उस द्रव्यको राजा लेलेवे ॥ २६८ ॥

(२६) नारदस्मृति-३ विवा पद ।

एकस्य चेत्स्याद्व्यसन दायादोऽस्य तदाप्नुयात्। अन्यो वासति दायादे सक्ताश्चेत्सर्व एव वा ॥७॥
ऋत्विजां व्यसनेप्येवमन्यस्तत्कर्म निस्तरेत्। लभेत दक्षिणाभागं स तस्मात्संप्रकल्पितम् ॥ ८ ॥
कश्चिच्चेत्सञ्चरन्देशान्प्रेयादभ्यागतो वणिक्। राजास्य भाण्डं तद्रक्षेद्यावद्दायाददर्शनम् ॥ १४ ॥
दायादे सति बन्धुभ्यो ज्ञातिभ्यो वा तदर्पयेत्। तदभावे सुगुप्तं तु धारयेद्दशतीः समाः ॥ १५ ॥
अस्वामिकमदायादं दशवर्षस्थितं पुनः। राजा तदात्मसात्कुर्यादेवं धर्मो न हीयते ॥ १६ ॥

साझीदार व्यापारियोंमेंसे यदि एक मरजावे तो उसके हिस्सेका धन उसके पुत्रादि दायाद लेवें, दायाद नहीं होवें तो अन्य सम्बन्धी पावें और वे भी नहीं होवें तो साझीदार बांटलेवें ॥ ७ ॥ इसीप्रकारसे बहुत ऋत्विजोंमेंसे एक ऋत्विजके मरनेपर उसका कोई दायाद नहीं होवे तो जो ऋत्विज उसका कामसमाप्त करे वही उसके हिस्सेकी दक्षिणा लेवे ॥ ८ ॥ यदि कोई व्यापारी परदेशमें जाकर मरजावे तो जबतक उसका कोई दायाद नहीं आवे तबतक राजा उसके धनकी रक्षा करे ॥ १४ ॥ यदि उसका दायाद नहीं होवे तो उसके बान्धवको, बान्धव भी नहीं होवे तो उसकी जातिके मनुष्यको उसका धन देवे, यदि वे भी नहीं आवें तो १० वर्षतक उस धनको अमानत रक्खे ॥ १५ ॥ स्वामी तथा दायादरहित उस धनको १० वर्षके बाद लेलेनेसे राजाके धर्ममें हानि नहीं होगी ॥ १६ ॥

दानप्रकरण १७.

सफलदान १.

(१) मनुस्मृति-३ अध्याय ।

भिक्षामप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम्। वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ ९६ ॥

भिक्षा हो अथवा जलसे भरा पात्र ही होवे वेदार्थतत्त्वके जाननेवाले ब्राह्मणको विधिपूर्वक देना चाहिये ॥ ९६ ॥

७ अध्याय ।

आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणा पूजको भवेत्। नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ॥ ८२ ॥

राजाको उचित है कि जो ब्राह्मण गुरुके घरसे वेद समाप्त करके गृहस्थाश्रममें आते हैं सदा धनधान्यसे उनका सत्कार करे; ऐसे दान देनेसे धनधान्यमें बड़ी वृद्धि होती है ॥ ८२ ॥

८ अध्याय ।

अन्धो जडः पीठसर्पी सप्तत्या स्थविरश्च यः। श्रोत्रियेषूपकुर्वंश्च न दाप्यः केनचित्करम् ॥ ३९४ ॥
श्रोत्रियं व्याधितार्तौ च बालवृद्धावकिञ्चनम्। महाकुलीनमार्यं च राजा संपूजयेत्सदा ॥ ३९५ ॥

राजाको उचित है कि अन्धे, जड़, पङ्गु सत्तरवर्षके वृद्ध और श्रोत्रियोंपर सदा उपकार करनेवाले मनुष्योंसे किसी प्रकारका राजकर नहीं लेवे और श्रोत्रिय, रोगी, आर्त, बालक, वृद्ध, कुछ नहीं पासमें रखनेवाले, महाकुलीन और उत्तम चरित्रवाले मनुष्योंका दान मानसे सदा सम्मान करे ॥ ३९४-३९५ ॥

११ अध्याय ।

सान्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम्। गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायार्थ्युपतापिनौ ॥ १ ॥
नवैतान्स्नातकान्विद्याद्ब्राह्मणान्धर्मभिक्षुकान्। निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्याविशेषतः ॥ २ ॥
एतेभ्यो हि द्विजाग्र्येभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम्। इतरेभ्यो बहिर्वेदि कृतान्नं देयमुच्यते ॥ ३ ॥

※ वृहद्विष्णुस्मृति—१७ अध्यायके १५-१६ अंक। वानप्रस्थका धन आचार्य अथवा शिष्य लेगा (सञ्चितनीवार आदि वानप्रस्थका धन; आच्छादनका वस्त्र कमण्डलु, और खड़ाऊं संन्यासीका धन और पुस्तक आदि ब्रह्मचारीका धन है)

सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हं प्रतिपादयेत् । ब्राह्मणान्वेदविदुषो यज्ञार्थं चैव दक्षिणाम् ॥ ४ ॥
धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् । वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥ ६ ॥

(१) सन्तानके लिये विवाहकी इच्छावाला, (२) यज्ञकरनेकी इच्छावाला, (३) पथिक, (४) सर्वस्वदक्षिणा देकर विश्वजित् यज्ञ करनेकी इच्छावाला, (५) गुरुके भोजनादिके लिये याचनेवाला, (६) पिताके भोजनादिके लिये याचनेवाला, (७) माताके भोजनादिके लिये याचनेवाला, (८) अध्ययनके लिये याचनेवाला और (९) रोगी; इन नवप्रकारके स्नातक विद्वान् ब्राह्मणोंको धर्मभिक्षुक जानना चाहिये; इन निर्धनब्राह्मणोंको विद्याके अनुसार दान देना उचित है ॥ १-२ ॥ इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको यज्ञवेदीके बीचमें बैठाकरके दक्षिणाके सहित अन्न और अन्य ब्राह्मणोंको यज्ञवेदीसे बाहर पकायाहुआ अन्न देना चाहिये ॥ ३ ॥ राजाको उचित है कि वेदजाननेमें प्रवीण ब्राह्मणोंको यथायोग्य सबप्रकारके रत्न और यज्ञके लिये दक्षिणा देवे * ॥ ४ ॥ जो मनुष्य वेद जाननेवाले और कुटुम्बी ब्राह्मणोंको यथाशक्ति धनदान देताहै वह मरनेपर स्वर्गमें जाताहै ॥ ६ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय ।

न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता । यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्तितम् ॥ २०० ॥
गोभूतिलहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम् । नापात्रे विदुषा किञ्चिदात्मनः श्रेय इच्छता ॥ २०१ ॥

केवल विद्या और तपसे ब्राह्मण सुपात्र नहीं होताहै, जिसमें विद्या, तप और शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठान है वही ब्राह्मण सुपात्र कहाजाताहै ॥ २०० ॥ अपना कल्याण चाहनेवालोंको उचित है कि गौ, भूमि, तिल ,सोना आदि जो कुछ दान देना होवे वह सुपात्र ब्राह्मणको देवे; कुपात्रको नहीं ॥ २०१ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

ब्राह्मणे वेदविदुषि सर्वशास्त्रविशारदे । मातृपितृपरे चैव ऋतुकालाभिगामिनि ॥ ३३९ ॥
शीलचारित्रसंपूर्णे प्रातः स्नानपरायणे । तस्यैव दीयते दानं यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ ३४० ॥

दाता यदि अपना कल्याण चाहै तो वेद जाननेमें प्रवीण, सब शास्त्रोंके जाननेमें चतुर, मातापिताके भक्त, केवल ऋतुकालमें अपनी स्त्रीसे गमन करनेवाले, उत्तम स्वभाव और आचरणवाले और सदा प्रातःकाल स्नान करनेवाले, ब्राह्मणोंको दान देवे ॥ ३३९-३४० ॥

(८) बृहद्यमस्मृति-४ अध्याय ।

विद्यातपोभ्यां संयुक्तः शान्तः शुचिरलम्पटः ॥ ५३ ॥
अलुब्धाह्लादनिष्पापा भूदेवा नात्र संशयः । पात्रीभूताश्च विज्ञेया विप्रास्ते नात्र संशयः ॥ ५४ ॥
तेभ्यो दत्तमनन्तं हि इत्याह भगवान्यमः ॥ ५५ ॥

विद्या और तपसे युक्त, शान्त, पवित्र, अलम्पट, लोभरहित, सदा प्रसन्न और पापरहित ब्राह्मण निःसन्देह भूदेव हैं; ऐसे ही ब्राह्मण निःसन्देह दानके पात्र कहेजातेहैं ॥ ५३-५४ ॥ ऐसे ब्राह्मणोंको दान देनेसे अनन्तफल मिलताहै; ऐसा भगवान् यमने कहाहै ॥ ५५ ॥

(१०) संवर्तस्मृति ।

दानं तु विविधं देयमशुभानां विनाशनम् । यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं भवेत् ॥ ४५ ॥
तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता । नानाविधानि द्रव्याणि धान्यानि सुबहूनि च ॥ ४६ ॥
श्रोत्रियाय कुलीनायाभ्यर्थिने हि विशेषतः । यद्दानं दीयते भक्त्या तद्भवेत्सुमहत्फलम् ॥ ४९ ॥
आहूय शीलसंपन्नं श्रुतेनाभिजनेन च । शुचिं विप्रं महाप्राज्ञं हव्यकव्यैः सुपूजयेत् ॥ ५० ॥

---

* बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-३ अध्याय,-२४ अंक । सुपात्र, श्रोत्रिय, वेदपारग, गुरुके लिये, विवाहके लिये या औषधके लिये याचनेवाले; जीविकाहीन; यज्ञके लिये अथवा पढ़नेके लिये याचनेवाले; पथिक और विश्वजित्यज्ञके लिये याचनेवालेको यथाशक्ति द्रव्यका विभाग करके देना चाहिये; अन्य भिक्षुकोंको वेदीसे बाहर पकाया अन्न देना चाहिये । गौतमस्मृति-५ अध्याय-९ अंक । गुरुके लिये, विवाहके लिये और औषधके लिये याचनेवाले; जीविकाहीन; यज्ञ करनेके लिये और विद्या पढ़नेके लिये याचनेवाले; पथिक और विश्वजित्यज्ञके लिये याचनेवालेको द्रव्यका विभाग करके और अन्य भिक्षुकोंको वेदीसे बाहर पकाहुआ अन्न देना चाहिये ।

अक्षय पुण्यको चाहनेवाले मनुष्यको उचित है कि अशुभोंको नाश करनेवाले अनेक प्रकारके द्रव्य और बहुत अन्न और जो जो वस्तु इस लोकमें मनुष्यको इष्ट और प्यारी होवे वे वस्तु गुणवान् ब्राह्मणको देवे ॥ ॥ ४५-४६ ॥ श्रोत्रिय, कुलीन और विशेष करके भिक्षुकोंको ॐ भक्तिपूर्वक दान देनेसे महान् फल मिलताहै ॥ ४९ ॥ बुद्धिमान्को उचित है कि शीलवान्, वेदको भलीभांति जाननेवाले कुलीन और पवित्र ब्राह्मणको बुलाकरके हव्य और कव्यसे तृप्त करे ॥ ५० ॥

(११) कात्यायनस्मृति–१९ खण्ड।

सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत्। यद्ददाति तमुल्लंघ्य ततस्तेयेन युज्यते ॥ ७ ॥
यस्य त्वेकगृहे मूर्खो दूरस्थश्च गुणान्वितः। गुणान्विताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥ ८ ॥
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते। ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ ९ ॥

समीपके विद्वान् ब्राह्मणको छोड़ करके अन्य ब्राह्मणको जितना द्रव्य दान दियाजाता है दाताको उतना द्रव्य चोरी करनेका दोष लगताहै ॥ ७ ॥ निकट रहनेवाले मूर्ख ब्राह्मणको छोड़ करके दूर रहनेवाले वेदज्ञ ब्राह्मणको बुलाकरके दान देना चाहिये; वेदसे हीन ब्राह्मणका उल्लंघन उल्लंघन नहीं कहाजाताहै; क्योंकि जलतीहुई आगको छोड़कर भस्ममें आहुति नहीं दीजातीहै ◎ ॥ ८-९ ॥

(१२) बृहस्पतिस्मृति।

श्रोत्रियाय कुलीनाय दरिद्राय च वासव ॥ ५६ ॥
सन्तुष्टाय विनीताय सर्वभूतहिताय च। वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ॥ ५७ ॥
ईदृशाय सुरश्रेष्ठ यद्दत्तं हि तदक्षयम् ॥ ५८ ॥

हे इन्द्र श्रोत्रिय, कुलीन, दरिद्री, सन्तोषी, नम्र, सब जीवोंका हितकारी, वेदाभ्यासी, तपस्वी, और जितेन्द्रिय ब्राह्मणको दियाहुआ दान अक्षय होताहै ॥ ५६-५८ ॥

(१३) पाराशरस्मृति–१ अध्याय।

सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम्। सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्युप्तं तन्न विनश्यति ॥ ६५ ॥

अच्छे खेतमें बीज बोना चाहिये और सुपात्रको धन देना चाहिये; क्योंकि अच्छे खेतमें बोयाहुआ अन्न और सुपात्रको दियाहुआ धन नष्ट नहीं होता ॥ ६५ ॥

१२ अध्याय।

कुटुम्बिने दरिद्राय श्रोत्रियाय विशेषतः। यद्दानं दीयते तस्मै तद्दानं शुभकारकम् ॥ ४८ ॥

जो ब्राह्मण कुटुम्बवाला, दरिद्र और विशेषकरके श्रोत्रिय होवे उसको दियाहुआ दान दाताका शुभ करताहै ॥ ४८ ॥

(१४) व्यासस्मृति–४ अध्याय।

यद्भुंक्ते वेदविद्विप्रः स्वकर्मनिरतः शुचिः। दातुः फलमसंख्यातं प्रतिजन्म तदक्षयम् ॥ ५५ ॥

वेदवित् और स्वकर्ममें तत्पर पवित्र ब्राह्मणको जो कुछ खिलायाजाताहै उसके फलकी संख्या नहीं है; वह प्रतिजन्ममें अक्षय होताहै ॥ ५५ ॥

(१७) दक्षस्मृति–२ अध्याय।

दीनानाथविशिष्टेभ्यो दातव्यं भूतिमिच्छता ॥ ३८ ॥

ऐश्वर्यको चाहनेवालेको उचित है कि दीन, अनाथ और सज्जनको दान देवे ॥ १३८ ॥

३ अध्याय।

मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणि। दीनानाथविशिष्टेषु दत्तं च सफलं भवेत् ॥ १६ ॥

माता, पिता, गुरु, मित्र, नम्र मनुष्य, उपकारी मनुष्य, दीन, अनाथ और सज्जनको देना सफल है ॥ १६ ॥

(१९) शातातपस्मृति।

सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत्। भोजने चैव दाने च दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ ७८ ॥

ॐ ९ प्रकारके धर्मभिक्षुक हैं; मनुस्मृतिमें ऊपर देखिये।

◎ गोभिलस्मृति–२ प्रपाठकके ६६-६९ श्लोकमें ऐसा ही है। व्यासस्मृति–४ अध्यायके ३५-३७ श्लोक और शातातपस्मृतिके ७६-७८ श्लोकमें प्रायः ऐसा है। बृहस्पतिस्मृतिके ६०-६१ श्लोकमें और वसिष्ठस्मृति–३ अध्यायके १०-११ श्लोकमें कात्यायनस्मृतिके ८-९ श्लोकके समान है।

भोजन कराने अथवा दान देनेके समय समीपमें रहनेवाले विद्वान् ब्राह्मणको छोड़देनेसे दाताकी ७ पीढ़ी भस्म होजातीहै ॥ ७८ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति-६ अध्याय ।

स्वाध्यायोत्थं योनिमन्तं प्रशान्तं वैतानस्थं पापभीरुं बहुज्ञम् ।
स्त्रीषु क्षान्तं धार्मिकं गोशरण्यं व्रतैः क्षान्तं तादृशं पात्रमाहुः ॥ २९ ॥

जो ब्राह्मण स्वाध्याय-सम्पन्न, कुलीन,प्रशान्त, अग्निहोत्री,पापसे डरनेवाला, बहुज्ञ स्त्रियोंमें क्षमाशी; धर्मात्मा और गौकी सेवामें तत्पर है और व्रत करनेसे दुर्बल हुआहै वही सुपात्र कहाजाताहै ॥ २९ ॥

(१३ क) बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-८ अध्याय ।

क्लीवान्धबधिरादीनां रोगार्तकुशरीरिणाम् । तेषां यद्दीयते दानं दयादानं तदुच्यते ॥ २४६ ॥

नपुंसक, अन्धे, बहिरे, रोगी और कुत्सितशरीरवालेको जो दान दियाजाताहै उसको दयाद कहतेहैं ॥ २४६ ॥

निष्फलदान २.

(१) मनुस्मृति-३ अध्याय ।

नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम् । भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः ॥ ९७ ॥
विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु । निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् ॥ ९८ ॥
ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवींषि च । न हि हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरेणैव शुद्ध्यतः ॥ १३२॥

जो दाता विना दानधर्मको जानेहुए मोहवश होकर मूर्ख ब्राह्मणको देवताओंके निमित्त हव्य और पितरोंके निमित्त कव्य देताहै उसके हव्यकव्यका फल नाश होजाताहै ॥ ९७ ॥ विद्यावान् और तपतेजसे युक्त ब्राह्मणके मुखरूपी आगमें हव्य कव्यकी आहुति करनेसे विविधसंकटसे और बड़े पापोंसे उद्धार होजाता है ॥ ९८ ॥ ज्ञानमें श्रेष्ठ ब्राह्मणको ही देवता और पितरोंके निमित्त भोजन कराना चाहिये; मूर्खको नहीं; क्योंकि रुधिरसे भीगाहुआ हाथ रुधिरसे धोनेपर शुद्ध नहीं होताहै ॥ १३२ ॥

४ अध्याय ।

हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान्घृतम् । प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मीभवति दारुवत् ॥ १८८ ॥

विद्यासे हीन ब्राह्मण सोना, भूमि, घोड़ा, गौ, अन्न, वस्त्र, तिल अथवा घृतदान लेनेसे काठके समान भस्म होजाताहै ❀ ॥ १८८ ॥

न वार्यपि प्रयच्छेत्तु बैडालव्रतिके द्विजे । न बकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् ॥ १९२ ॥

धर्मको जाननेवाले मनुष्यको उचित है कि बिडालव्रती, बकव्रती और वेदाध्ययनसे हीन ब्राह्मणको जल भी नहीं देवे ✤ ॥ १९२ ॥

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम् । दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥ १९३ ॥

इन तीनों प्रकारके ब्राह्मणोंको धर्मपूर्वक उपार्जित धन भी दान देनेसे दाता और दान लेनेवाला, दोनों नरकमें जातेहैं ॥ १९३ ॥

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् । तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ १९४ ॥

जैसे पत्थरकी बनीहुई नावसे पार जानेवाला नावके सहित पानीमें डूबजाताहै वैसे ही दानधर्मको नहीं जानकरके दान करनेवाला मनुष्य दान लेनेवाले ब्राह्मणके साथ नरकमें डूबताहै ॥ १९४ ॥

धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः । बैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः ॥१९५॥
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः । शठो मिथ्या विनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥ १९६ ॥
ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः । ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्मणा ॥ १९७ ॥

जो लोगोंको देखा करके उनके जाननेके लिये पाखण्डसे धर्म करता है, सदा लोभ करता है, कपट वेष धारण करके लोगोंको ठगता है, परहिंसामें तत्पर रहताहै और द्वेषसे सबकी निन्दा करताहै, उसको 'बिडालव्रती' कहतेहैं ॥ १९५ ॥ जो ब्राह्मण अपनी नम्रता दिखानेके लिये पाखण्डसे नीचे दृष्टि रखताहै; किन्तु

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-२०२ श्लोक । विद्या और तपसे हीन ब्राह्मण दान नहीं लेवे; क्योंकि दान लेनेसे वह दाताके सहित नरकमें जायगा । बृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र-४ अध्याय-२२२ श्लोक । मूर्ख ब्राह्मण तिल, सोना, गौ और भूमिदान लेनेसे शीघ्र ही भस्म होजाताहै; दाताको फल नहीं मिलता ।

✤ बृहद्विष्णुस्मृति-९३ अध्यायके ७ श्लोकमें भी ऐसा है ।

उसका अन्तःकरण स्वार्थसाधन और निठुरतासे पूर्ण है, उस मूर्ख तथा वृथ नम्रता दिखानेवालेको बकव्रती कहतेहैं; क्योंकि उसका आचरण बगुलेके समान है ॥ १९६ ॥ बकव्रती और बिडालव्रती ब्राह्मण उस पापसे अन्धतामिश्र नरकमें जातेहैं ❀ ॥ १९७ ॥

(३) अत्रिस्मृति।

अव्रताश्चानधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः। तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चौरभक्तदद्दण्डवत् ॥ २२ ॥
विद्वद्भोज्यमविद्वांसो येषु राष्ट्रेषु भुञ्जते। तेष्वनावृष्टिमिच्छन्ति महद्वा जायते भयम् ॥ २३ ॥

राजाको उचित है कि व्रत और वेदविद्यासे हीन ब्राह्मण जिस गांवमें भिक्षा मांगतेहैं उस गांवके लोगोंको चोरोंको भात देनेवाले अर्थात् पालनेवालोंके समान दण्ड देवे ✿ ॥ २२ ॥ जिस देशमें विद्वानोंके भोगनेयोग्य वस्तुको मूर्ख भोगतेहैं उस देशमें अनावृष्टि होतीहै अथवा कोई बड़ा भय उपस्थित होताहै ❁ ॥ २३ ॥

अपात्रेष्वपि यद्दत्तं दहत्यासप्तमं कुलम्। हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा ॥ १४९ ॥

कुपात्रको दियाहुआ दान ७ पीढ़ीतक भस्म करताहै; उसको दियेहुए हव्यको देवगण और कव्यको पितरगण ग्रहण नहीं करते हैं ॥ १४९ ॥

(५) हारीतस्मृति–१ अध्याय।

स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च ॥ २३ ॥
दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुलविनाशनम् ॥ २४ ॥

वेद और धर्मशास्त्रसे हीन ब्राह्मणको दान देनेसे अथवा भोजन करानेसे या अन्न देनेसे कुलका नाश होजाताहै ॥ २३–२४ ॥

(८ क) बृहद्यमस्मृति–४ अध्याय।

कुकर्मस्थास्तु ये विप्रा लोलुपा वेदवर्जिताः ॥ ५५ ॥
सन्ध्याहीना व्रतभ्रष्टाः पिशुना विषयात्मकाः। तेभ्यो दत्तं निष्फलं स्यान्नात्र कार्या विचारणा॥५६॥

कुकर्मी, लोभी, वेदहीन, सन्ध्योपासनासे रहित, व्रतभ्रष्ट, चुगुल और विषयी ब्राह्मणको दान देनेसे कुछ फल नहीं मिलताहै; इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ ५५–५६ ॥

(१२) बृहस्पतिस्मृति।

आमपात्रे यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ॥ ५८ ॥
विनश्येत्पात्रदौर्बल्यात्तच्च पात्रं विनश्यति। एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमन्नं महीं तिलान् ॥ ५९ ॥
अविद्वान्प्रतिगृह्णाति भस्मीभवति काष्ठवत् ॥ ६० ॥

जैसे मिट्टीके कच्चे बर्त्तनमें रखनेसे दूध, दही; घी और मधु उस वर्तनकी दुर्बलतासे नष्ट होजातेहैं और वह वर्तन भी नष्ट होताहै, वैसे ही गौ, सोना, वस्त्र, अन्न, भूमि और तिल दान लेनेसे मूर्ख ब्राह्मण और उस दानका फल; ये दोनों काठके समान भस्म होतेहैं ✾ ॥ ५८–६० ॥

(१३ क) बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–८ अध्याय।

पण्यस्थानेषु यद्दत्तं वृथादानं तदुच्यते। अरूढपतिते चैव अन्यायोपार्जितं च यत् ॥ ३१४ ॥
व्यर्थमब्राह्मणे दानं पतिते तस्करेपि च। गुरोरप्रीतिजनके कृतघ्ने ग्रामयाचके ॥ ३१५ ॥
ब्रह्मबन्धौ च यद्दत्तं यद्दत्तं वृषलीपतौ। वेदविक्रयिणे चैव यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ ३१६ ॥
स्त्रीजिते चैव यद्दत्तं व्यालग्राहेपि निष्फलम्। परिचारकेपि यद्दत्तं वृथा दानानि षोडश ॥ ३१७ ॥

१. सौदा बेंचनेके स्थानका दिया दान अर्थात् घलुआ, २ सद्यःपतितको दिया, ३ अन्यका उपार्जन किया दान ४ अब्राह्मण, पतित ६ चोर, ७ गुरुद्वेषी, ८ कृतघ्न, ९ग्रामयाचक, १० निन्दित, ११ वृषलीपति, १२ वेदबेंचनेवाले, १३ जिसके गृहमें उपपति है, १४ स्त्रीके वशमें रहनेवाले, १५ सर्प पकडनेवाले और १६ दास ब्राह्मणको दियाहुआ दान ये १६ वृथादान कहातेहैं ॥ ३१४–३१७ ॥

❀ बृहद्विष्णुस्मृति–९३ अध्यायके ८–१० श्लोकमें ऐसा ही है।

✿ पाराशरस्मृति–१ अध्यायके ६६ श्लोकमें और वसिष्ठस्मृति–३ अध्यायके ५ श्लोकमें भी ऐसा है।

❁ वसिष्ठस्मृति–३ अध्यायके १३ श्लोकमें इस २३ श्लोकके समान है।

✾ वसिष्ठस्मृति–६ अध्यायके ३०–३१ श्लोकमें ऐसा ही है।

(१४) व्यासस्मृति-४ अध्याय।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गृहमागते। क्रीडंत्योषधयः सर्वा यास्यामः परमां गतिम् ॥ ५० ॥
नष्टशौचे व्रतभ्रष्टे विप्रे वेदविवर्जिते। दीयमानं रुदत्यन्नं भयाद्वै दुष्कृतं कृतम् ॥ ५१ ॥
वेदपूर्णमुखं विप्रं सुभुक्तमपि भोजयेत्। न च मूर्खं निराहारं षड्रात्रमुपवासिनम् ॥ ५२ ॥
ऊषरे वापितं बीजं भिन्नभाण्डेषु गोदुहम्। हुतं भस्मनि हव्यं च मूर्खे दानमशाश्वतम् ॥ ६२ ॥

जब गृहस्थके घरमें विद्या और विनयसे युक्त ब्राह्मण भिक्षाके लिये आताहै तब उसके घरके सब अन्न अति प्रसन्न होकर कहतेहैं कि अब हम लोग इसके पास जानेसे परम गतिको प्राप्त करेंगे और जब शौचाचारसे रहित, व्रतभ्रष्ट और वेदहीन ब्राह्मणको अन्न दियेजातेहैं तब वे अन्न रोकर कहतेहैं कि इस दाताने हमको देकर बड़ा नीच काम किया ※ ॥ ५०—५१ ॥ भोजनसे तृप्तभी वेदपारग ब्राह्मणको आग्रह करके फिर भोजन करावे किन्तु ६ रात उपवास कियेहुए मूर्ख ब्राह्मणको नहीं खिलावें ॥ ५२ ॥ ऊषर भूमिमें बोनेसे बीज, फूटेहुए भाण्डमें दुहनेसे दूध, भस्ममें आहुति देनेसे साकल्य और मूर्खको देनेसे दान व्यर्थ होजाताहै ◎ ॥ ६२ ॥

(१७) दक्षस्मृति-३ अध्याय।

धूर्ते बन्दिनि,मल्ले च कुवैद्ये कितवे शठे। चाटुचारणचोरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम् ॥ १७ ॥

धूर्त्त, बन्दी, मल्ल, कुवैद्य, कपटी, मूर्ख, छली चारण और चोरको देना निष्फल है ॥ १७ ॥

विधिहीने यथाऽपात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम् ॥ २७ ॥
न केवलं हि तद्व्यर्थं शेषमन्यत्र नश्यति ॥ २८ ॥

विधिसे हीन तथा कुपात्रको दान देनेसे केवल उस दानका फलही नहीं व्यर्थ होताहै; किन्तु उस दाताके पहिलेके पुण्यभी नाश होजातेहैं ॥ २७—२८ ॥

मन्त्रपूतं तु यत्त्वन्नममन्त्राय च दीयते। हस्तं कृन्तति दातुस्तु भोक्तुर्जिह्वां निकृन्तति ॥ ८५ ॥

मन्त्रसे पवित्र कियाहुआ अन्न वेदहीन ब्राह्मणको खिलानेसे वह अन्न दाताके हाथको और खानेवाले-की जीभको काटताहै ॥ ८५ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति-३ अध्याय।

श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि नित्यशः। अश्रोत्रियाय दत्तं हि पितॄन्नैति न देवताः ॥ ९ ॥

श्रोत्रिय ही ब्राह्मणको नित्य हव्य कव्य देना चाहिये; वेदहीन ब्राह्मणको देनेसे पितर तथा देवगण तृप्त नहीं होतेहैं ॥ ९ ॥

दानकी विधि और दाताका धर्म ३.

(१) मनुस्मृति-४ अध्याय।

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव च। तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ॥ २३५ ॥

सत्कारपूर्वक दान लेनेवाला और सत्कारसे दान देनेवाला, दोनों मरनेपर स्वर्गमें जातेहैं; किन्तु ऐसा नहीं करनेसे दोनोंको नरकमें जाना पड़ताहै ॥ २३५ ॥

धर्मं शनैः संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः। परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ २३८ ॥

जैसे दीमक मिट्टीका टिल्ला तयार करतेहैं,वैसे ही किसी जीवको दुःख नहीं देकर परलोककी सहायताके लिये धीरेधीरे धर्म सञ्चय करना चाहिये ॥ २३८ ॥

८ अध्याय।

धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्कस्मैचिद्याचते धनम्। पश्चाच्च न तथा तस्मान्न देयं तस्य तद्भवेत् ॥ २१२ ॥
यदि संसाधयेत्तत्तु दर्पाल्लोभेन वा पुनः। राज्ञा दाप्यः सुवर्णं स्यात्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः ॥२१३॥

※ शातातपस्मृति-८३-८४ श्लोक। जब वेदविद्या और ब्रह्मचर्यव्रतसमाप्तिका स्नान करके श्रोत्रिय ब्राह्मण याचनाके लिये किसी गृहस्थके घर आताहै तब उस गृहस्थके सम्पूर्ण अन्न प्रसन्न होकर कहतेहैं कि अब हम लोग इस ब्राह्मणके पास जाकर परम गति प्राप्त करेंगे और जब शौचसे हीन और वेदसे रहित ब्राह्मणको अन्न दियाजाताहै तब वह अन्न रोनेलगताहै और कहताहै कि मैंने कौन पाप किया कि इसके पास आया।

◎ बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-४ अध्याय, २१७-२१८ श्लोक। मूर्ख ब्राह्मण भस्मके समान और विद्वान् ब्राह्मण प्रज्वलित अग्निके तुल्य हैं; दीप्त अग्निमें हवन करना चाहिये, भस्ममें कौन होम करताहै। शूद्रके समान मूर्ख है; भस्मके तुल्य शूद्रके साथ संवेश नही करे तथा मूर्ख ब्राह्मणको दान नहीं देवे।

कोई दाता किसी याचकको धर्मकार्यके लिये धन देवे अथवा धन देनेको कहे, यदि याचक उस कार्यको नहीं करे तो दाताको उचित है कि दियेहुए धनको याचकसे लौटालेवे तथा देनेको कहेहुए धनको नहीं देवे; यदि वह याचक अहङ्कार अथवा लोभसे दाताका धन नहीं लौटादेवे अथवा देनेको कहेहुए धनको बलसे मांगे तो राजा याचककी शुद्धिके लिये उसपर एक मोहर दण्ड करे ॥२१२–२१३ ॥

११ अध्याय ।

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि । मध्वापातो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः ॥ ९ ॥
भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् । तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च ॥ १० ॥

जिसके पिता, माता, भाई आदि स्वजन खाने पहननेका कष्ट पातेहैं; वह जब अन्यको दान देताहै तब उसका वह दान निष्फल होजाताहै उस दानसे पहिले तो उसका यश होताहै; किन्तु अन्तमें उसको नरकमें जाना पड़ताहै ॥९ ॥ जो पुरुष पालन करने योग्य लोगोंका पालन नहीं करके अपने परलोक बननेकी इच्छासे दान करताहै उसको इस लोकमें तथा परलोकमें दुःख भोगना पड़ताहै ॥ १० ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति १ अध्याय ।

दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्ते तु विशेषतः । याचितेनापि दातव्यं श्रद्धापूतन्तु शक्तितः ॥ २०३ ॥

प्रतिदिन विशेष करके ग्रहणआदि निमित्तकालोंमें तथा याचनेपर अपनी शक्तिके अनुसार श्रद्धापूर्वक सुपात्रको दान देना चाहिये ॥ २०३ ॥

२ अध्याय ।

स्वकुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते । नान्वये सति सर्वस्वं यच्चान्यस्मै प्रतिश्रुतम् ॥ १७९ ॥
प्रतिग्रहः प्रकाशः स्यात्स्थावरस्य विशेषतः । देयं प्रतिश्रुतं चैव दत्त्वा नापहरेत्पुनः ॥ १८० ॥

जिस धनके दान देनेसे अपने कुटुम्बके लोगोंको दुःख होवे वह धन और अपनी स्त्री तथा पुत्रोंको कभी दान नहीं करना चाहिये; (@) सन्तानवाले मनुष्यको अपना सर्वस्व दान करना उचित नहीं है; एकको देनेक कहीहुई कोई वस्तु दूसरेको नहीं दान देना चाहिये ॥ १७९ ॥ दानको विशेषकरके भूमिआदि स्थावर सम्पत्तिको अनेकलोगोंके सामने लेना चाहिये; जिसको जो वस्तु देनेको कहे उसको अवश्य देना चाहिये और दान कीहुई वस्तुको (विना कारणके) लौटालेना नहीं चाहिये ॥ १८० ॥

(११) कात्यायनस्मृति–१९ खण्ड ।

कुलर्त्विजमधीयानं सन्निकृष्टं तथा गुरुम् । नातिक्रामेत्सदा दित्सन्य इच्छेदात्मनो हितम् ॥ ४ ॥
अहमस्मै ददामीति एवमाभाष्य दीयते । नैतावपृष्ट्वा ददतः पात्रेऽपि फलमस्ति हि ॥ ५ ॥
दूरस्थाभ्यामपि द्वाभ्यां प्रदाय मनसा वरम् । इतरेभ्यस्ततो देयादेष दानविधिः परः ॥ ६ ॥

अपने कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको उचित है कि यदि कुलका ऋत्विज् विद्वान् होवे और गुरु समीपमें होय तो इनको छोड़ करके दूसरोंको दान नहीं देवे ॥ ४ ॥ इनसे पूँछकर अन्यको देवे; इनकी विना सम्मतिके सुपात्रको भी दान देनेसे दानका फल नहीं होताहै ॥ ५ ॥ यदि ये लोग दूरदेशमें होवें तो इनके नामसे उत्तम वस्तुओंका संकल्प करके बाकी वस्तुएं अन्यको दान करे, यह उत्तम दानकी विधि है ॥ ६ ॥

(१३) पाराशरस्मृति–१ अध्याय ।

अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव तु मध्यमम् ॥ २९ ॥
अधमं याचमानाय सेवादानं तु निष्फलम् ॥ ३० ॥

जो दान ब्राह्मणके समीपमें जाकर दियाजाताहै वह उत्तम, जो बुलाकरके दियाजाताहै वह मध्यम और जो मांगनेपर दियाजाताहै वह अधम और जो दान अपने सेवकको दियाजाताहै वह निष्फल है (卐) ॥ २९–३० ॥

यतये काञ्चनं दत्त्वा ताम्बूलं ब्रह्मचारिणे । चोरेभ्योऽप्यभयं दत्त्वा दातापि नरकं व्रजेत् ॥ ६० ॥

---

* गौतमस्मृति–५ अध्याय–१० अंक । अधर्मीको धन देनेकी प्रतिज्ञा करके भी कुछ नहीं देना चाहिये।

(@) नारदस्मृति–४विवादपद । कुटुम्बके लोगोंके पालनेयोग्य द्रव्य रखकर दान देना चाहिये; जो अन्यथा दान करतेहैं वे दोषभागी होतेहैं ॥ ६ ॥

(卐) व्यासस्मृति–४ अध्याय–२६ श्लोक । युगका अन्त होगा; किन्तु अयाचकके पास जाकर दियेहुए दानके फलका अन्त नहीं होगा ।

संन्यासीको द्रव्य, ब्रह्मचारीको पान और चोरको अभयदान देनेवाले दाता भी नरकमें जातेहैं ॥ ६०॥

१२ अध्याय।

खलये विवाहे च संक्रान्तौ ग्रहणे तथा। शर्वर्यां दानमस्त्येव नाऽन्यत्र तु विधीयते ॥ २२ ॥
पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा चात्ययकर्मणि। राहोश्च दर्शने दानं प्रशस्तं नान्यदा निशि ॥ २३ ॥

खलियानके यज्ञ, विवाहकाल, संक्रांति, पुत्रजन्म, यज्ञ, मृतकके कर्म और ग्रहणमें रातके समय भी दान देना चाहिये अन्यत्र नहीं ❀ ॥ २२—२३ ॥

सर्वं गंगासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे। सोमग्रहे तथैवोक्तं स्नानदानादिकर्मसु ॥ २७ ॥

सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणके समय स्नान, दान आदि कर्मोंके लिये सब जल गङ्गाजलके समान होजातेहैं ✠ ॥ २७ ॥

(१४) व्यासस्मृति-४ अध्याय।

मृतवत्सा यथा गौश्च कृष्णा लोभेन दुह्यते। परस्परस्य दानानि लोकयात्रा न धर्मतः ॥ २७ ॥

जैसे मृतवत्सा काली गौका दूध लोभसे लोग दुहतेहैं, धर्मसङ्गत नहीं है, वैसे परस्परका दान लोककी रीति है धर्मयुक्त नहीं है ॥ २७ ॥

ब्राह्मणेषु च यद्दत्तं यच्च वैश्वानरे हुतम्। तद्धनं धनमाख्यातं धनं शेषं निरर्थकम् ॥ ३९ ॥

जो धन ब्राह्मणको दियाजाताहै अथवा अग्निके होममें लगायाजाताहै वही धन धन कहाताहै; अन्य धन व्यर्थ है ॥ ३९ ॥

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः। वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा ॥ ५८ ॥
न रणे विजयाच्छूरोऽध्ययनान्न च पण्डितः। न वक्ता वाक्पटुत्वेन न दाता चार्थदानतः ॥ ५९ ॥
इन्द्रियाणां जये शूरो धर्मं चरति पण्डितः। हितप्रायोक्तिभिर्वक्ता दाता सन्मानदानतः ॥ ६० ॥

सौमें एक वीर, हजारमें एक पण्डित और लाखमे एक वक्ता होताहै; किन्तु लाखोंमें दाता होना दुर्लभ है ॥ ५८ ॥ रणमें जीतजानेसे शूर नहीं होता, पढनेसे पण्डित नहीं होता, वचनकी चतुराईसे वक्ता नहीं होता और धनक देनेसे दाता नहीं होता ॥ ५९ ॥ इन्द्रियोंको जीतनेवाला वीर, शास्त्रोक्त धर्म करनेवाला पण्डित, हितका उपदेश करनेवाला वक्ता और सन्मानपूर्वक दान देनेवाला दाता है ॥ ६० ॥

(१७) दक्षस्मृति-३ अध्याय।

सामान्यं याचितं न्यासमाधिर्दाराश्च तद्धनम्। अन्वाहितं च निःक्षेपं सर्वस्वं चान्वये सति ॥ १८ ॥
आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा। यो ददाति स मूर्खस्तु प्रायश्चित्तेन युज्यते ॥ १९ ॥

सर्वसाधारणकी वस्तु, मंगनी लाईहुई वस्तु अन्यद्वारा रक्खाहुआ किसी अन्यमनुष्यका धरोहर, बन्धककी वस्तु, भार्या, स्त्रीका धन, जो द्रव्य एकके घर रक्खाहो और उसने भी अन्यके घर रखदिया होय वह द्रव्य गिनाकर रक्खाहुआ धरोहर और वंश रहतेहुए अपनी सर्वस्व; ये ९ प्रकारकी वस्तु आपत्कालमें भी किसीको नहीं देना चाहिये; जो इन वस्तुओंको किसीको देताहै वह मूर्ख है; उसको प्रायश्चित्त करना चाहिये॥१८—१९॥

(१९) शातातपस्मृति।

अनियोगेन यो दद्याद्ब्राह्मणाय प्रतिग्रहम्। स पूर्वं नरकं याति ब्राह्मणस्तदनन्तरम् ॥ ४८ ॥

विना दानकी विधिको जानेहुए दान देनेसे पहिले दाता और उसके पीछे दान लेनेवाला ब्राह्मण नरकमें जाताहै ॥ ४८ ॥

दानका फल और महत्व ४.

(१) मनुस्मृति-१ अध्याय।

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते। द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ ८६ ॥

सतयुगमें तपस्या, त्रेतामे ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुग दान मुख्य धर्म है ❁ ॥ ८६ ॥

❀ अत्रिस्मृति ३२३-३२४ श्लोक। ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति और पुत्रजन्मके समयका दान नैमित्तिक दान कहलाताहै; वह रातमें भी करना चाहिये।

✠ कात्यायनस्मृति-१० खण्डके १४ श्लोकमें और गोभिलस्मृति प्रथम प्रपाठकके १५० श्लोकमें भी ऐसा है।

❁ पाराशरस्मृति-१ अध्यायके २३-२४ श्लोकमें ऐसा ही है।

४ अध्याय।

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः। तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम्॥ २२९॥
यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः। धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टिताम्॥ २३२॥
सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते। वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्॥ २३३॥
येनयेन तु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति। तत्तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः॥ २३४॥

जलदान करनेवाला तृप्ति, अन्नदान करनेवाला अक्षय सुख, तिलदाता इच्छानुसार सन्तति और दीपदान करनेवाला उत्तम नेत्र पाताहै ॥ २२९॥ सवारी और शय्या देनेवाला भार्या, अभयदान करनेवाला ऐश्वर्य, धान्य देनेवाला चिरस्थायी सुख और वेददानवाला अर्थात् वेद पढ़ानेवाला ब्रह्मलोक पाताहै ॥ २३२॥ जल, अन्न, गौ, भूमि, वस्त्र, तिल, सोना, घी आदिके दानोंसे वेददान ही श्रेष्ठ है ॥ २३३॥ जिस अभिप्रायसे जो दान दियाजाताहै प्रतिपूजित होकर उसी अभिप्रायसे वह दान जन्मान्तरमें मिलताहै ॥२३४॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय।

हेमशृङ्गी खुरै रौप्यैः सुशीला वस्त्रसंयुता। सकांस्यपात्रा दातव्या क्षीरिणी गौः सदक्षिणा ॥२०४॥
दातास्याः स्वर्गमाप्नोति वत्सरान्रोमसम्मितान्। कपिला चेत्तारयति भूयश्चासप्तमं कुलम्॥ २०५॥
सवत्सारोमतुल्यानि युगान्युभयतोमुखीम्। दातास्याः स्वर्गमाप्नोति पूर्वेण विधिना ददत्॥ २०६॥
यावद्वत्सस्य पादौ द्वौ मुखं योन्यां च दृश्यते। तावद्गौः पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति॥ २०७॥
यथा कथञ्चिद्दत्त्वा गां धेनुं वा धेनुमेव वा। अरोगामपरिक्लिष्टां दाता स्वर्गे महीयते ॥ २०८॥
श्रान्तसंवाहनं रोगिपरिचर्या सुरार्चनम्। पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदानवत्॥ २०९॥

जो मनुष्य सोनेसे सींग और रूपेसे खुर मढ़ाकर, वस्त्र ओढ़ाकरके, कांसकी दोहनी और दक्षिणाके सहित सुशीला दुग्धवती गौका दान करताहै, वह जितने रोम उस गौके शरीरमें रहतेहैं उतने वर्षोंतक स्वर्गमें, निवास करताहै, जो इस रीतिसे कपिला गौ देताहै उसके ७ पुरुषे तरजाते हैं ॥ २०४-२०५॥ जो कोई इसी रीतिसे उभयतोमुखी गौका दान करताहै वह जितने रोम उस गौ और उसके बछड़ेके शरीरमें होतेहैं उतने युगोंतक स्वर्गमें बसताहै ॥ २०६॥ जबतक गौके व्यानेके समय उसकी योनिमें बछड़ेके दोनों पांव और मुख, ये तीनों देखपडतेहैं। और बछड़ा भूमिपर नहीं गिरताहै तबतक वह गौ उभयतोमुखी कहलाती है और पृथ्वीके समान रहतीहै ॥ २०७॥ व्याईहुई अथवा विना व्याईहुई रोगरहित गौको देनेवाले स्वर्गमें जातेहैं ॥ २०८॥ थकेहुएके श्रमको दूर करनेसे; रोगीकी सेवा तथा देवताकी पूजा करनेसे और ब्राह्मणके चरणको तथा उसके जूंठको धोनेसे गोदान करनेका फल मिलताहै ॥ २०९॥

याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-२१० श्लोक। जल, अन्न, तिल और दीपआदि दान करनेवालोंको स्वर्गलोकमें सुख मिलताहै। अत्रिस्मृति-३२८-३२९ श्लोक। दुर्भिक्षमें अन्न देनेवाला और जलसे शून्य वनमें जलदान करनेवाला स्वर्गमें पूजित होताहै। संवर्त्तस्मृति। अन्न तथा जलदान करनेवालेको सुख मिलताहै ॥ ५४॥ अन्नदान करनेवाला सदा तृप्त और पुष्ट और जलदान करनेवाला सुखी तथा सब कर्मोंसे युक्त होताहै ॥ ८०॥ सब दानोंमें अन्नदान उत्तम है; क्योंकि सम्पूर्ण प्राणी अन्नसे ही जीतेहैं ॥ ८१॥ जो मनुष्य पैरआदि धोनेके लिये ब्राह्मणको जल देताहै सदा उसकी बुद्धि शुद्ध रहती है ॥ ८५-८६॥ बृहस्पतिस्मृति। अन्नदान करनेवाला सदा सुखी रहताहै ॥ १३॥ दीपदान करनेवाले मनुष्यका शरीर सुन्दर होताहै ॥६६॥ पापी मनुष्य भी याचकको विशेषकरके ब्राह्मणको अन्नदान देनेसे पापसे लिप्त नहीं होताहै॥६७॥ बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-३ अध्याय। अन्न आश्रित सब जीव रहतेहैं, अन्न सबका प्राणस्वरूप है ऐसी श्रुति है, इसलिये अन्नदान देना चाहिये ॥ ६८॥ जो मनुष्य दक्षिणाके सहित अन्नदान करताहै वह शान्तिको प्राप्त होताहै; ऐसी श्रुति है ॥ ६९॥

याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय। धान्य, अभय, सवारी, शय्या आदि दान देनेवाले अत्यन्त सुखी होतेहै ॥ २११॥ वेद सर्वधर्मरूप है, इसलिये वेददान करनेवाला अर्थात् वेदको पढ़ानेवाला सदाके लिये ब्रह्मलोकमें निवास करताहै ॥ २१२॥ संवर्तस्मृति। प्राणियोंको अभयदान देनेवाला सम्पूर्ण कामना, बड़ी अवस्था और सदाके लिये सुख प्राप्त करताहै ॥ ५३॥ शय्या, सवारी आदि दान करनेवाले धनी होतेहै ॥ ५७॥ बुद्धिमान् मनुष्य विद्यादान करके ब्रह्मलोकमें पूजित होताहै ॥ ८९॥

मनुस्मृति-४ अध्याय-२३१ श्लोक। गोदान करनेवालेको सूर्यलोक मिलताहै। अत्रिस्मृति। अधव्याईहुई गौ पृथ्वीके तुल्य है, ऐसी गौ दान करनेवाला पृथ्वीदान करनेका फल पाताहै ॥ ३२९-३३०॥ जो मनुष्य नित्य गोदान करताहै उसको अग्निहोत्र करनेका फल मिलताहै, उसके पितर तृप्त होतेहै और उसको सब देवताओंके पूजनेका फल प्राप्त होताहै ॥ ३३०-३३१॥ संवर्तस्मृति। जो मनुष्य कांसेके पात्रसहित—

भूदीपांश्चान्नवस्त्राम्भास्तिलसर्पिःप्रतिश्रयान् । नैवेशिकं स्वर्णधुर्यं दत्त्वा स्वर्गे महीयते ॥ २१० ॥
गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनम् । यानं वृक्षं प्रियं शय्यां दत्त्वात्यन्तं सुखी भवेत् ॥ २११ ॥

[भूमि, दीप, अन्न, वस्त्र, जल, तिल] ❀ घी, परदेशीको वासस्थान और गृहस्थको कन्या [सोना और बैल] देनेवाले स्वर्गमें जातेहैं ⚘ ॥ २१० ॥ [धान्य, अभय, सवारी, शय्या] गृह, जूता, छाता, माला, अनुलेपन और वृक्ष दान देनेवाले अत्यन्त सुखी होतेहैं ❁ ॥ २११ ॥

(९) अत्रिस्मृति ।

नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातुः परो गुरुः । नास्ति दानात्परं मित्रमिहलोके परत्र च ॥ १४८ ॥

इस लोक और परलोकमें वेदसे बड़ा कोई शास्त्र नहीं, मातासे बड़ा कोई गुरु नहीं और दानसे बड़ा कोई मित्र नहीं है ॥ १४८ ॥

कांस्यस्य भाजनं दद्याद्घृतपूर्णं सुशोभनम् ॥ ३२५ ॥
तथा भक्त्या विधानेन अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ३२६ ॥
तैलपात्रं तु यो दद्यात्संपूर्णं सुसमाहितः ॥ ३२७ ॥
स गच्छति ध्रुवं स्वर्गे नरो नास्त्यत्र संशयः ॥ ३२८ ॥
कृष्णाजिनं तु यो दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ३३२ ॥
उद्धरेन्नरकस्थानात्कुलान्येकोत्तरं शतम् ॥ ३३३ ॥

जो घीसे भराहुआ कांसेका पात्र भक्तिपूर्वक विधिसे दान देताहै उसको अग्निष्टोमयज्ञका फल मिलताहै ॥ ३२५-३२६ ॥ जो मनुष्य सावधान होकर तेलसे भराहुआ पात्र दान करताहै वह निश्चय करके स्वर्गमें जाताहै ॥ ३२७-३२८ ॥ उपकरणके सहित काली मृगछाला दान करनेसे एकसौ एक कुलका नरकसे उद्धार होजाताहै ॥ ३३२-३३३ ॥

(१०) संवर्त्तस्मृति ।

अन्नदाता सुवेषः स्याद्रूप्यदो रूपमेव च । हिरण्यदः समृद्धिं च तेजश्चायुश्च विन्दति ॥ ५२ ॥
धान्योदकप्रदायी च सर्पिदः सुखमेधते । अलंकृतस्त्वलंकारं दाताप्नोति महत्फलम् ॥ ५४ ॥
फलमूलानि विप्राय शाकानि विविधानि च । सुरभीणि च पुष्पाणि दत्त्वा प्राज्ञस्तु जायते ॥ ५५ ॥
ताम्बूलं चैव यो दद्याद्ब्राह्मणेभ्यो विचक्षणः । मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते ॥ ५६ ॥
पादुकोपानहौ छत्रं शयनान्यासनानि च । विविधानि च यानानि दत्त्वा द्रव्यपतिर्भवेत् ॥ ५७ ॥
दद्याद्यः शिशिरे वह्निं बहुकाष्ठं प्रयत्नतः । कायाग्निर्दीप्तिप्राज्ञत्वं रूपं सौभाग्यमाप्नुयात् ॥ ५८ ॥
औषधं स्नेहमाहारं रोगिणो रोगशान्तये । दत्त्वा स्याद्रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च ॥ ५९ ॥
इन्धनानि च यो दद्याद्विप्रेभ्यः शिशिरागमे । नित्यं जयति सग्रामे श्रिया युक्तस्तु दीव्यते ॥ ६० ॥

—वस्त्रसे अलंकृत करके दुग्धवती गौ ब्राह्मणको देताहै वह स्वर्गमें पूजित होताहै ॥ ७२ ॥ जो मनुष्य अर्द्धप्रसूता अर्थात् अधव्याईहुई गौ वेदपारग ब्राह्मणको देताहै जितने रोम उस गौके शरीरमें रहतेहैं वह उतने वर्षतक स्वर्गमें निवास करताहै ॥ ७३-७४ ॥ जो मनुष्य रूपेसे खुर और सोनेसे सींग मढाकरके रोगरहित सुशीला, सवत्सा तथा दुग्धवती गौ दान करताहै, जितने रोम उस गौ और उसके बछड़ेके शरीरमें रहतेहैं उतने वर्षतक वह ब्रह्माके समीप निवास करताहै ॥ ७५-७६ ॥ जो मनुष्य पूर्वोक्त विधिसे गौके साथ बलिष्ठ बैल दान करताहै उसको दशगुणा फल मिलताहै ॥ ७७ ॥

❀ [ ] ऐसे कोष्ठके भीतरकी वस्तुका वर्णन दूसरी जगह है ।

⚘ संवतस्मृति । घी दान करनेवाला सुखी होताहै ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य भूषणादिसे अलकृत करके ब्राह्म विवाहकी रीतिसे तुल्य वरको कन्या देताहै उसका बड़ा कल्याण होताहै; साधुसमाजमें उसकी प्रशंसा होतीहै और बड़ी कीर्ति फैलतीहै; होमके मन्त्रोंसे संस्कारको प्राप्तहुई कन्याको दानकरके वह दशहजार अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञ करनेका फल पाताहै ॥ ६१-६३ ॥

❁ मनुस्मृति-४ अध्याय-२३० श्लोक । गृहदान करनेवाला उत्तम गृह प्राप्त करताहै । अत्रिस्मृति-३२६ ३२७ श्लोक । श्राद्धकालमें जूता दान करनेवाला अन्न मिलनेवाले मार्गसे जाताहै और घोड़ा दान करनेका फल पाताहै । संवर्त्तस्मृति । जूता, छाता आदि दान करनेवाले धनी होतेहैं ॥ ५७ ॥ तेल, आंवला और अनुलेपन दान करनेवाला प्रसन्नचित्त और भाग्यवान् होताहै ॥ ६९ ॥

वस्त्र देनेवालेका सुन्दरवेष; रूपा० देनेवालेका सुन्दररूप [और सोना दान० करनेवालेका ऐश्वर्य, बड़ी-आयु और तेज] होताहै ※ ॥ ५२ ॥ [अन्न, जल और घी दान करनेवालेको सुख और] भूषण आदि अलङ्कार दान करनेवालेको महान् फल मिलताहै ॥ ५४ ॥ जो ब्राह्मणको फल, मूल, नानाविध शाक और गन्धयुक्त फूल दान करताहै वह पण्डित होताहै और जो पान देताहै वह बुद्धिमान्, पण्डित, भाग्यवान् तथा सुन्दर होताहै ॥ ५५-५६ ॥ [छाता, शय्या, जूता, सवारी] खड़ाऊं और आसन दान करनेवाले धनी होतेहैं ॥ ५७ ॥ शिशिरऋतुमें आग और बहुतसी काष्ठ देनेवालेकी जठराग्नि तेज होतीहै और वह मनुष्य पण्डित, रूपवान् और भाग्यवान् होताहै ॥ ५८ ॥ रोगियोंके रोग शान्त करनेके लिये उनको औषध, घी, तेल, आदि चिकनीवस्तु और आहार देनेवाला मनुष्य रोगरहित, सुखी और बड़ी आयुवाला होताहै ॥ ५९ ॥ जाडेके दिनोंमें ब्राह्मणोंको लकड़ी देनेवाला सदा युद्धमे जीतताहै और धनी होकर दीप्तिमान् होताहै ॥ ६० ॥

अनड्वाहौ तु यो दद्याद्द्विजे सीरेण संयुतौ । अलंकृत्य यथाशक्त्या धूर्वहौ शुभलक्षणौ ॥ ७० ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वकामसमन्वितः । वर्षाणि वसते स्वर्गे रोमसंख्याप्रमाणतः ॥ ७१ ॥

जो मनुष्य अलंकृत करके हलसहित २ बैल ब्राह्मणको देताहै वह पापोसे शुद्ध होजाताहै और जितने रोएं उन बैलोंके शरीरसे रहतेहैं उतने वर्षोंतक स्वर्गमे वसताहै ॥ ७०—७१ ॥

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ।
लोकास्त्रयस्तेन भवन्ति दत्ता यः काञ्चनं गां च महीं च दद्यात् ॥ ७८ ॥
सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् । हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥ ७९ ॥

अग्निका प्रथमपुत्र सोना, विष्णुकी पुत्री पृथ्वी और सूर्यकी पुत्री गौ है इसलिये जो मनुष्य सोना, भूमि और गौदान करताहै वह तीनों लोक दान करनेका फल पाताहै ॥ ७८ ॥ सब दानोंका फल एक ही जन्ममे मिलताहै; किन्तु सोना, भूमि और गौदानका फल सातजन्मतक प्राप्त होताहै ॥ ७९ ॥

मृत्तिका गोशकृद्दर्भानुपवीतं तथोत्तरम् ॥ ८३ ॥
दत्त्वा गुणाढ्यविप्राय कुले महति जायते । मुखवासं तु यो दद्याद्दन्तधावनमेव च ॥ ८४ ॥
शुचिगन्धसमायुक्तो अवाग्दुष्टस्सदा भवेत् ॥ ८५ ॥
गुडमिक्षुरसं चैव लवणं व्यञ्जनानि च ॥ ८७ ॥
सुरभीणि च पानानि दत्त्वात्यन्तं सुखी भवेत् ॥ ८८ ॥

जो मनुष्य मिट्टी, गोबर, कुशा और जनेऊ गुणवान् ब्राह्मणको देताहै वह बड़े कुलमें जन्म लेताहै ॥ ८३—८४ ॥ जो ब्राह्मणको इलायची आदि मुखको सुगन्धकरनेवाली वस्तु और दतवन देताहै वह शुद्धगन्धवाला होताहै और तोतला अथवा गूंगा कभी नहीं होता ॥ ८४-८५ ॥ गुड़, ऊखका रस, नोन, दही आदि व्यञ्जन और गन्धयुक्त पीनेकी वस्तु दान करनेवाला अत्यन्त सुखी होताहै ॥ ८७—८८ ॥

अन्योन्यान्नप्रदा विप्रा अन्योन्यप्रतिपूजकाः ॥ ८९ ॥
अन्योन्यं प्रतिगृह्णन्ति तारयन्ति तरन्ति च ॥ ९० ॥

ब्राह्मणलोग अन्य ब्राह्मणोंको अन्नदान देकर, ब्राह्मणोंकी पूजा करके तथा अन्य ब्राह्मणोंसे दान लेकर अन्यका उद्धार करते और अपने भी तर जातेहै ॥ ८९-९० ॥

※ मनुस्मृति-४ अध्याय । रूपा दान करनेवाला उत्तम रूप पाताहै ॥ २३० ॥ वस्त्रदान करनेवालेको चन्द्रलोक मिलताहै ॥ २३१ ॥ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय । वस्त्रआदि दान करनेवाले स्वर्गमें जातेहैं ॥ २१० ॥ बृहस्पतिस्मृति । वस्त्रदान करनेवाला रूपवान् होताहै ॥ १३ ॥

संवर्तस्मृति-८६-८७ श्लोक । रोगियोंको औषध, पथ्य, आहार, तेलआदि चिकनी, वस्तु, उबटन और रहनेका स्थान देनेवाला व्याधिरहित होताहै ।

मनुस्मृति-४ अध्याय-२३१ श्लोक । बैलदान करनेवाला बड़ा धनी होताहै और घोड़ा दान करने-वालेको अश्विनीकुमारका लोक मिलताहै ।

बृहस्पतिस्मृतिके ३०-३१ और ३३-३४ श्लोकमें भी ऐसा है और ४ श्लोकमें लिखाहै कि सोना, गौ और भूमिदान देनेवाला सब पापोंसे छूटजाताहै संवर्तस्मृति-२०७ श्लोक । सोना, भूमि और गौदान करनेवालेके अन्य जन्मके सब पाप शीघ्र नाश होजातेहैं ।

अत्रिस्मृति—३२४-३२५ श्लोक । तीसीके छालके सूत, कपासके सूत अथवा पाटके सूतका जनेऊ दान करनेवाला वस्त्रदान करनेका फल पाताहै ।

तिलं धेनुं च यो दद्यात्संयताय द्विजातये । ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ २०८ ॥
माघमासे तु संप्राप्ते पौर्णमास्यामुपोषितः । ब्राह्मणेभ्यस्तिलान्दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २०९ ॥
उपवासी नरो भूत्वा पौर्णमास्यां तु कार्तिके । हिरण्यं वस्त्रमन्नं च दत्त्वा तरति दुष्कृतम् ॥ २१० ॥

जो मनुष्य जितेन्द्रियब्राह्मणको तिल और धेनु दान करताहै वह निःसन्देह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे छूटजाताहै ॥ २०८ ॥ जो माघकी पूर्णमासीको उपवास करके ब्राह्मणको तिलदान देताहै वह सब पापोंसे छूटताहै ॥ २०९ ॥ जो कार्तिककी पूर्णमासीको उपवास करके सोना वस्त्र तथा अन्न दान करताहै वह पापोंसे मुक्त होताहै ॥ २१० ॥

(१२) बृहस्पतिस्मृति ।

सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिं रत्नं च वासव । सर्वमेव भवेद्दत्तं वसुधां यः प्रयच्छति ॥ ५ ॥
फालकृष्टां महीं दत्त्वा सबीजां सस्यशालिनीम् । यावत्सूर्यकरा लोके तावत्स्वर्गे महीयते ॥ ६ ॥
यत्किञ्चित्कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्शितः । अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥
दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डा निवर्त्तनम् । दश तान्येव विस्तारो गोचर्मैतन्महाफलम् ॥ ८ ॥
सवृषं गोसहस्रन्तु यत्र तिष्ठत्यतन्द्रितम् । बालवत्साप्रसूतानां तद्गोचर्म इति स्मृतम् ॥ ९ ॥
विप्राय दद्याच्च गुणान्विताय तपोनियुक्ताय जितेन्द्रियाय ।
यावन्मही तिष्ठति सागरान्ता तावत्फलं तस्य भवेदनन्तम् ॥ १० ॥
यथा बीजानि रोहन्ति प्रकीर्णानि महीतले । एवं कामाः प्ररोहन्ति भूमिदानसमर्जिताः ॥ ११ ॥
अन्नदाः सुखिनो नित्यं वस्त्रदश्चैव रूपवान् । स नरस्सर्वदो भूप यो ददाति वसुन्धराम् ॥ १३ ॥
त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती । तारयन्तीह दातारं जपवापनदोहनैः ॥ १८ ॥
षडशीतिसहस्राणां योजनानां वसुन्धरा ॥ ३१ ॥
स्वयं दत्ता तु सर्वत्र सर्वकामप्रदायिनी । भूमिं यः प्रतिगृह्णाति भूमिं यश्च प्रयच्छति ॥ ३२ ॥
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतं स्वर्गगामिनौ ॥ ३३ ॥

हे इन्द्र सोना, रूपा, वस्त्र, मणि और रत्नदान करनेका फल भूमिदान करनेवालेको मिलताहै ॥ ५ ॥ जबतक जगत्में सूर्यका प्रकाश रहता है तबतक बोआहुआ खेत दान करनेवाला स्वर्गमें बसताहै ॥ ६ ॥ जो मनुष्य जीविकासे दुःखी होकर पाप करताहै वह गोचर्ममात्र भूमिदान करनेसे निश्चय शुद्ध होजाताहै ॥ ७ ॥ दश हाथके दण्डसे तीस दण्डका एक निवर्तन और दश निवर्तनका महाफल देनेवाला गोचर्म कहलाताहै ॥८॥ जितनी भूमिपर वृष और बछड़ोंके सहित एक हजार गौ सुखसे निवास करसकें उतनी भूमिको भी गोचर्म कहतेहैं * ॥ ९ ॥ गुणी, तपस्वी और जितेन्द्रिय ब्राह्मणको गोचर्ममात्र भूमिदान देनेसे जबतक पृथिवी और समुद्र रहतेहैं तबतक देनेवाला अनन्तफल भोगताहै ॥ १० ॥ जैसे पृथ्वीपर बोयेहुए बीज जमते हैं वैसे ही भूमिदान करनेसे कामनाओंकी वृद्धि होती है ॥ ११ ॥ [अन्नदान करनेवाला सदा सुखी रहताहै, वस्त्रदान करनेवाला रूपवान् होताहै और] भूमिदान करनेवाला सदा राजा रहताहै ॥ १३ ॥ गोदान, भूमिदान और विद्यादान ये तीन श्रेष्ठ दान हैं; इनमेंसे गौ दुहेजानेसे, खेत बोयेजानेसे और विद्या जप कियेजानेसे दाताको तारतेहैं ॥ १८ ॥ छियासीहजार योजन पृथ्वीका विस्तार है; जो भूमिदान करताहै उसकी सब कामना वह पूर्ण करतीहै ॥३१-३२ ॥ जो भूमिदान लेता है और जो भूमिदान करताहै वे दोनों पुण्यात्मा निश्चय स्वर्गमें जातेहैं (१) ॥ ३२-३३ ॥

यस्तडागं नवं कुर्यात्पुराणं वापि खानयेत् । स सर्वं कुलमुद्धृत्य स्वर्गलोके महीयते ॥ ६२ ॥
वापीकूपतडागानि उद्यानोपवनानि च । पुनः संस्कारकर्त्ता च लभते मौलिकं फलम् ॥ ६३ ॥

---

* दूसरी शातातपस्मृति-१ अध्यायके १५ श्लोकमें ८ श्लोकके समान और पाराशरस्मृति-१२अध्यायके ४६ श्लोकमें ९ श्लोकके समान है ।

(१) मनुस्मृति-४ अध्याय-२३० श्लोक । भूमिदान करनेवाला भूमि पाताहै । याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-२१० श्लोक । भूमिआदि दान देनेवाले स्वर्गमें जातेहैं । अत्रिस्मृति-३३३-३३४ श्लोक । और बृहस्पतिस्मृति १६ श्लोक सूर्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अग्नि और शिव भूमिदान करनेवालेकी प्रशंसा करतेह । संवर्तस्मृति-७३-७४ श्लोक । जो मनुष्य अन्नसे सम्पन्न श्रेष्ठ भूमि वेदपारग ब्राह्मणको देताहै, जितने अन्नके पौधेकी जड़ उस खेतमें रहतीहै उतने वर्षतक वह स्वर्गमें वसताहै । पाराशरस्मृति-१२ अध्याय-४७ श्लोक । जो मनुष्य गोचर्ममात्र भूमि दान करताहै वह मन, वचन और शरीरसे कियेहुए ब्रह्महत्यादि पापोंसे छूटजाताहै ।

निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वासव । स दुर्गं विषमं कृत्स्नं न कदाचिदवाप्नुयात् ॥ ६४ ॥
एकाहं तु स्थितं तोयं पृथिव्यां राजसत्तम । कुलानि तारयेत्तस्य सप्तसप्त पराण्यपि ॥ ६५ ॥

नया तड़ाग बनवानेवाला और पुराने तड़ागका जीर्णोद्धार करानेवाला अपने कुलका उद्धार करके स्वर्ग- निवास करताहै ॥ ६२ ॥ प्राचीन बावड़ी, कूप, तडाग, बाग अथवा उपवनका जीर्णोद्धार करनेवाला नये बनानेके समान फल पाताहै ॥ ६३ ॥ हे इन्द्र ! जिसके बनायेहुए जलाशयमें गरमीके दिनोंमें पानी रहताहै उसको कभी कठोर विषम दुःख नहीं होता ॥ ६४ ॥ जिसके जलाशयमें एकदिन भी पानी रहताहै उसके सात अगली और सात पिछली पीढीके मनुष्य तरजातेहैं ॥ ६५ ॥

(१३ क) बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–८ अध्याय ।

आत्मतुल्यं सुवर्णं यो रजतं द्रव्यमेव च । प्रयच्छति द्विजाग्र्येभ्यस्तस्याप्येतत्फलं भवेत् ॥ २०१ ॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्यदि युक्तो भवेन्नरः । स तैः पापैर्विनिर्मुक्तः प्रोक्तं विष्णुपुरं वसेत् ॥ २०२ ॥
गुडं वा यदि वा खण्ड लवणं वापि तोलितम् । यो ददात्यात्मना तुल्यं नारी वा पुरुषोपि वा॥२०४॥
पुमान्प्रद्युम्नवत्स स्यान्नारी स्यात्तु रतेः समा । सुभगे रूपसम्पन्ने भुञ्जातां तौ त्रिविष्टपम् ॥ २०५ ॥
हिरण्य दक्षिणायुक्तं सवस्त्रं भूषणान्वितम् । अलङ्कृत्य द्विजाग्र्यं तं परिधाप्य च वाससी ॥ २०६ ॥
खण्डादि तोलितं सर्वं विप्रेभ्यः प्रतिपादयेत् । सर्वकामसमृद्धात्मा चिरकालं वसेद्दिवि ॥ २०७ ॥

जो मनुष्य अपने शरीरके बराबर तोलकर सोना अथवा रूपा ब्राह्मणोंको देताहै वह ब्रह्महत्यादि पापोंसे युक्त होनेपर भी सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुपुरमें निवास करताहै ॥ २०१–२०२ ॥ जो स्त्री अथवा पुरुष अपने शरीर बराबर गुड़, खाण्ड या निमक दान करताहै वह पुरुष कामदेव समान और स्त्री रतितुल्य होकर स्वर्गमें नानाप्रकारके भोगको भोगतीहै ॥ २०४–२०५ ॥ ब्राह्मणको वस्त्र और अलङ्कारसे युक्त करके सुवर्णदक्षिणाके सहित अपने शरीरसे तौलेहुए खाण्ड आदि देनेसे मनुष्य सब कामनाओंसे पूर्ण होकर बहुतसमयतक स्वर्गमें निवास करताहै ॥ २०६–२०७ ॥

किञ्चैव बहुनोक्तेन दानस्य तु पुनःपुनः । दीयते यद्दरिद्राय तदक्षय्यं कुटुम्बिने ॥ ३१० ॥

दानके विषयमें बहुत कहनेका क्या प्रयोजन है जो दरिद्रकुटुम्बीको दियाजाताहै उसका फल अक्षय होताहै ॥ ३१० ॥

(१४) व्यासस्मृति–४ अध्याय ।

अदृष्टे चाशुभे दानं भोक्ता चैव न दृश्यते । पुनरागमनं नास्ति तत्र दानमनन्तकम् ॥ २८ ॥
मातापितृषु यद्द्याद्भ्रातृषु श्वशुरेषु च । जायापत्येषु यद्द्यात्सोऽनन्तः स्वर्गसंक्रमः ॥ २९ ॥
पितुः शतगुणं दानं सहस्रं मातुरुच्यते । भगिन्याः शतसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम् ॥ ३० ॥

जो मनुष्य न तो किसी पापके नाशके लिये, न फल मिलनेके लिये और न तो फिर जगत्में आनेकी इच्छासे दान करताहै उस दानके फलका अन्त नहीं है ॥ २८ ॥ माता, पिता, भाई, श्वशुर, स्त्री और सन्तानको देनेवाले अनन्तकालतक स्वर्गमें बसतेहैं ॥ २९ ॥ पिताको दान देनेसे सौगुना; माताको देनेसे हजार- गुना, बहिनको देनेसे लाखगुना और सहोदर भाईको देनेसे अक्षय फल मिलताहै ॥ ३० ॥

समे हि ब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे । सहस्रगुणमाचार्ये ह्यनन्तं वेदपारगे ॥ ४० ॥
ब्रह्मबीजसमुत्पन्नो मन्त्रसंस्कारवर्जितः । जातिमात्रोपजीवी च स भवेद्ब्राह्मणः समः ॥ ४१ ॥
गर्भाधानादिभिर्मन्त्रैर्वेदोपनयनेन च । नाध्यापयति नाधीते स भवेद्ब्राह्मणब्रुवः ॥ ४२ ॥
अग्निहोत्री तपस्वी च वेदमध्यापयेच्च यः । सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ ४३ ॥
इष्टिभिः पशुबन्धैश्च चातुर्मास्यैस्तथैव च । अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्येन चेष्टं स इष्टवान् ॥ ४४ ॥
मीमांसते च यो वेदान्षड्भिरङ्गैः सविस्तरैः । इतिहासपुराणानि स भवेद्वेदपारगः ॥ ४५ ॥

समब्राह्मणको दान देनेसे जो फल होताहै ब्राह्मणब्रुवको दान देनेसे उसका दूना फल, आचार्य (वेदपढ़ा- नेवाले) को देनेसे हजारगुना फल और वेदपारगब्राह्मणको दान देनेसे अनन्तफल मिलताहै ॥ ४० ॥

दक्षस्मृति–३ अध्यायके २६–२७ श्लोक । ब्राह्मणसे अन्यको देनेसे समानफल, ब्राह्मणब्रुवको देनेसे दूना, आचार्यको देनेसे सहस्रगुना और वेदपारगको देनेसे अनन्त फल होताहै । मनुस्मृति–७ अध्याय– ८५ श्लोक । ब्राह्मणसे भिन्न (क्षत्रियआदि) को दान देनेसे समानफल, ब्राह्मणब्रुवको देनेसे उसका दूना विद्वान्ब्राह्मणको देनेसे लाखगुना और वेदपारग ब्राह्मणको दान देनेसे अनन्तफल होताहै । बृहद्विष्णुस्मृति– ९३ अध्यायके१–४अङ्क । ब्राह्मणसे भिन्नको दान देनेसे समानफल होताहै, ब्राह्मणब्रुवको देनेसे उसका दूना,–

जो ब्राह्मणके वीर्यसे उत्पन्न है; किन्तु मन्त्र और संस्कारसे रहित होकर अपनेको ब्राह्मण कहके जीविका करताहै, उसको ब्रमब्राह्मण कहतेहैं ॥ ४१ ॥ जिसका गर्भाधानआदि संस्कार और वेदोक्त यज्ञोपवीत हुआहै; किन्तु वह पढता पढ़ाता नहीं है वह ब्राह्मणब्रुव कहलाताहै ॥४२॥ जो ब्राह्मण अग्निहोत्री और तपस्वी है और कल्प तथा रहस्यके सहित वेदोंको पढ़ाता है उसको आचार्य कहतेहैं ॥ ४३॥ जो ब्राह्मण पशुबन्ध, चातुर्मास और अग्निष्टोमआदि यज्ञोंसे देवताओंकी पूजा करताहै और विस्तारसहित वेदके छवों अङ्ग, सम्पूर्ण वेद, इतिहास तथा पुराणका विचार करताहै वह वेदपारग कहाजाताहै ॥ ४४-४५ ॥

(१६ क) शङ्खलिखितस्मृति ।

यान्ग्रासान्क्षुधितो भुङ्क्ते ते ग्रासाः क्रतुभिः समाः । ग्रासे तु हयमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ८ ॥

भूखेमनुष्यको जितने ग्रास भोजन कराया जाता है उतने अश्वमेधयज्ञ करनेका फल मिलताहै ॥ ८ ॥

(१९) शातातपस्मृति ।

अयने दानमादौ स्याद्विषुवे मध्यवर्तिनि । षडशीतिमुखेऽतीते समन्ताच्चन्द्रसूर्ययोः ॥ १४२ ॥
अर्वाक् षोडश विज्ञेया नाड्यः पश्चाच्च षोडश । कालः पुण्योऽर्कसंक्रान्त्यां विद्वद्भिः परिकीर्तितः१४६
शतमिन्दुक्षये दानं सहस्रं तु दिनक्षये । विषुवे शतसाहस्रमाकाचैत्यनन्तकम् ॥ १५० ॥
अयनेषु च यद्दत्तं षडशीतिमुखे तथा । चन्द्रसूर्योपरागे च दत्तं भवति चाक्षयम् ॥ १५१ ॥

मकर और कर्कको संक्रान्तिके आदिमें; मेष और तुलाकी संक्रान्तिके मध्यमें और षडशीतिमुखकी संक्रान्तिके अन्तमें ✻ और ग्रहणमें सदा दान देना चाहिये ॥१४२॥ विद्वान्लोग कहतेहैं कि सूर्यकी संक्रान्तिमें १६ दण्ड पहिलेसे १६ दण्ड पीछेतक पुण्यकाल रहताहै ॥ १४६ ॥ अमावास्यामें दान देनेसे सौगुना, तिथिके हानिके दिन दान देनेसे हजारगुना, मेष और तुलाकी संक्रान्तिमें दान देनेसे लाखगुना, और व्यतीपातमें देनेसे अनन्तगुना फल होताहै । मकर, कर्क और षडशीति मुखकी संक्रान्ति और सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणमें दान देनेसे अक्षय फल मिलताहै ☙ ॥१५०-१५१ ॥

श्राद्धप्रकरण १८

पितरगण और विश्वेदेवे १.

(१) मनुस्मृति--३ अध्याय ।

अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः । न्यस्तशस्त्रा महाभागाः पितरः पूर्वदेवताः ॥ १९२ ॥
यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्यशेषतः । ये च यैरुपचर्याः स्युर्नियमैस्तान्निबोधत ॥ १९३ ॥
मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः । तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥१९४ ॥
विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः । अग्निष्वात्ताश्च देवानां मारीचा लोकविश्रुताः १९५
दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । सुपर्णकिन्नराणां च स्मृता बर्हिषदोऽत्रजाः ॥ १९६ ॥
सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः । वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणां तु सुकालिनः॥१९७
सोमपास्तु कवेः पुत्रा हविष्मन्तोऽङ्गिरःसुताः । पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः १९८
अग्निदग्धानग्निदग्धान्काव्यान्बर्हिषदस्तथा । अग्निष्वात्तांश्च सौम्यांश्च विप्राणामेव निर्दिशेत्॥१९९॥
य एते तु गणा मुख्याः पितॄणां परिकीर्तिताः । तेषामपीह विज्ञेयं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥ २०० ॥
ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवमानवाः । देवेभ्यस्तु जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वशः ॥ २०१ ॥

-विद्वान् ब्राह्मणको देनेसे हजारगुना और वेदपारगब्राह्मणको दान देनेसे अनन्तफल मिलताहै । गौतमस्मृति-५ अध्याय-८ अङ्क । ब्राह्मणसे भिन्न (क्षत्रियआदि) को दान देनेसे समानफल मिलताहै, ब्राह्मणको देनेसे दूना फल,श्रोत्रिय ब्राह्मणको देनेसे हजारगुना फल और वेदपारगब्राह्मणको देनेसे अनन्तगुना फल प्राप्त होताहै।

✻ कन्या, मीन, धन और मिथुनकी संक्रान्तिको षडशीत्यानन कहतेहैं दीपिकामें ऐसा लिखाहै ।

☙ संवर्तस्मृति-२११-२१३ श्लोक , दक्षिणायन, उत्तरायण, तुलाकी संक्रान्ति मेषकी संक्रान्ति व्यतीपात, तिथिके हानिके दिन, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणका किया दान अक्षय होताहै । अमावास्या, द्वादशी, विशेष करके संक्रान्ति और रविवार; ये बहुत श्रेष्ठ हैं । इनमें स्नान, जप, होम, ब्राह्मणभोजन, उपवास और दान करनेसे मनुष्य पवित्र होजाताहै ।

पितरलोग क्रोधरहित, शौचपरायण, सदा ब्रह्मचारी, शस्त्रत्यागी, दयाआदि गुणोंसे युक्त प्राचीन देवता हैं ॥ १९२ ॥ पितरोंकी उत्पत्ति, उनके नाम और उनकी पूजाका विधान सब कहताहूँ ॥१९३॥ हिरण्यगर्भके पुत्र मनुके जो मरीचिआदि पुत्र हैं, उन सब ऋषियोंके पुत्र पितरगण कहातेहैं ॥१९४॥विराट्के सोमसद्नामक पुत्र साध्यगणोंके पितर कहातेहैं; मरीचिके अग्निष्वात्तानामक पुत्र देवताओंके पितर लोकमें विख्यात हैं और अत्रिके बर्हिषद् नामक पुत्र दैत्य, दानव, यक्ष, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, सुपर्ण और किन्नरोंके पितर कहातेहैं ॥ १९५-१९६ ॥ ब्राह्मणोंके पितर सोमपा, क्षत्रियोंके पितर हविर्भुज, वैश्योंके पितर आज्यपा और शूद्रोंके पितर सुकालिन हैं ॥ १९७ ॥ भृगुके पुत्र सोमपा, अङ्गिराके पुत्र हविष्मन्त अर्थात् हविर्भुज, पुलस्त्यके पुत्र आज्यपा और वसिष्ठके पुत्र सुकालिन हैं ॥१९८॥ अग्निदग्ध, अनग्निदग्ध, काव्य, बर्हिषद, अग्निष्वात्ता और सौम्य; ये सब ब्राह्मणोंके पितर कहातेहैं ॥ १९९ ॥ ये सब मुख्य पितर कहेगये, इनके पुत्र पौत्र जगत्में अनन्त पितरगण हैं ॥ २०० ॥ ऋषियोंसे पितरगण, पितरोंसे देवगण और मनुष्य और देवताओंसे जगत्के सम्पूर्ण चराचर जीव उत्पन्न हुएहैं ॥ २०१ ॥

वसून्वदन्ति तु पितॄन्रुद्रांश्चैव पितामहान् । प्रपितामहांस्तथादित्याञ्छ्रुतिरेषा सनातनी ॥ २८४ ॥

अनादिश्रुतिमें है और ऋषिलोग कहातेहैं कि पिता वसुस्वरूप पितामह रुद्रस्वरूप और प्रपितामह सूर्यस्वरूप है ॥ २८४ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय ।

वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः । प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितॄञ्श्राद्धेन तर्पिताः ॥ २६९ ॥
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च । प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः॥२७०

श्राद्धके देवता पितरस्वरूप वसु, रुद्र और सूर्य श्राद्धसे तृप्त होनेपर मनुष्योंके पितरोंको तृप्त करतेहैं और पितामह प्रसन्न होकर और श्राद्ध करनेवाले मनुष्यको आयु, पुत्र, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष और राज्य देतेहैं ॥ २६९—२७० ॥

(१६) लिखितस्मृति ।

क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामौ धूरिलोचनौ ॥ ४७ ॥
पुरूरवार्द्रवाश्चैव विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः ॥ ४८ ॥

इष्टिश्राद्धे क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यश्च दैविके ॥ ४९ ॥
कालकामोऽग्निकार्येषु काम्येषु धूरिलोचनौ । पुरूरवार्द्रवाश्चैव पार्वणेषु नियोजयेत् ॥ ५० ॥

क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धूरी, लोचन, पुरूरवा और आर्द्रवा; ये विश्वेदेवा कहेगये हैं ॥ ४७-४८ ॥ अमावास्या, पूर्णमासीआदि इष्टिश्राद्धमें क्रतु और दक्ष; देवश्राद्धमें वसु और सत्य; अग्निके कर्ममें काल और काम; काम्यश्राद्धमें धूरी और लोचन और पार्णवश्राद्धमें पुरूरवा और आर्द्रवा विश्वेदेवाको आवाहन करना चाहिये ⊛ ॥ ४९—५० ॥

श्राद्धका समय और फल २.

(१) मनुस्मृति-३ अध्याय ।

यत्किञ्चिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम् । तदप्यक्षयमेवस्याद्वर्षासु च मघासु च ॥ २७३ ॥
अपि नः स कुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् । पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च॥२७४॥
यद्यद्ददाति विधिवत्सम्यक् श्रद्धासमन्वितः । तत्तत्पितॄणां भवति परत्रानन्तमक्षयम् ॥ २७५ ॥
कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् । श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः ॥ २७६ ॥

॥ बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-२ अध्याय, षट्कर्मणि श्राद्धविधि, १९०—१९१ श्लोक । कव्यवाह, अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्ता, सोमपा, बर्हिषद और अन्य भी पितर प्रयत्नसे पूजनीय हैं; इनके तृप्त होनेसे पुरुष मनुष्यसे तर्पित होतेहैं। ५ अध्याय-१६५-१६६ श्लोक । सोमसद् अग्निष्वात्ता; बर्हिषद्,सोमपा,हविर्भुज, आज्यपा,वत्स, सुकालिन् आदि पितर द्विजके लिये पूज्य हैं। मनुस्मृति-१अध्याय-६६-६७ श्लोक । मनुष्योंके एक महीनेमें पितरोंकी एक दिनरात होतीहै, उसमें कृष्णपक्ष उनका दिन और शुक्लपक्ष उनकी रातहै, कृष्णपक्ष काम करने और शुक्लपक्ष उनके सोनेका समय है। मनुष्योंके एकवर्षमें देवताओंकी एक दिनरात होतीहै, उत्तरायण उनका दिन और दक्षिणायन उनकी रात है।

⊛ प्रजापतिस्मृतिके १८० श्लोकमें है कि सपिण्डीकरणश्राद्धमें काल और काम और वृद्धिश्राद्धमें सत्य और वसु वेश्वेदेवा होतेहैं।

वर्षाकालकी मघा नक्षत्रयुक्त त्रयोदशीमें अन्नआदिमें मधु मिलाकरके पितरोंको देनेसे उनकी अक्षयतृप्ति होतीहै ॥ २७३॥ पितरलोग ऐसी इच्छा करतेहैं कि ऐसा पुरुष हमारे कुलमें जन्मे जो त्रयोदशीमें, और जब पूर्वगजच्छाया योग पडे, घी और मधुके सहित पायससे हमको तृप्त करे ॥ २७४ ॥ जो कुछ विधिपूर्वक पूरीश्रद्धासे पितरोंके निमित्त दियाजाताहै वह परलोकमें पितरोंको अनन्त और अक्षय प्राप्त होताहै ॥ २७५ ॥ श्राद्धके लिये जैसी कृष्णपक्षकी दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी और अमावास्या तिथि श्रेष्ठ हैं वैसी अन्य तिथि नहीं हैं ॥ २७६ ॥

युक्षु कुर्वन्दिनर्क्षेपु सर्वान्कामान्समश्नुते । अयुक्षु तु पितृन्सर्वान्प्रजां प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥ २७७ ॥

द्वितीया, चतुर्थी आदि युग्मतिथियोंमें और भरणी, रोहिणी आदि युग्मनक्षत्रोंमें श्राद्ध करनेसे सब वांछित काम मिलतेहैं और प्रतिपदा, तृतीया आदि अयुग्मतिथियोंमें तथा अश्विनी कृत्तिका आदि अयुग्म नक्षत्रोंमें पितरोंका श्राद्ध करनेसे धन, विद्यादिसे युक्त सन्तति प्राप्त होतीहै ॥ २७७ ॥

यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते । तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते ॥ २७८ ॥

श्राद्धकर्मके लिये जैसे शुक्लपक्षसे कृष्णपक्ष अधिक फलदायक है वैसे ही पूर्वाह्णसे अपराह्ण अधिक फल देनेवाला है ॥ २७८ ॥

रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा । सन्ध्ययोरुभयोश्चैव सूर्ये चैवाचिरोदिते ॥ २८० ॥

रात्रि काल राक्षसी समय कहलाता है इसलिये रात्रिमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये और दोनों सन्ध्याओंमें तथा सूर्योदयसे कुछ पीछे तक भी श्राद्ध नहीं करना चाहिये ॥ २८० ॥

अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् । हेमन्तग्रीष्मवर्षासु पाञ्चयज्ञिकमन्वहम् ॥ २८१ ॥
न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकेऽग्नौ विधीयते । न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः ॥ १८२ ॥
यदेव तर्पयत्यद्भिः पितॄन्स्नात्वा द्विजोत्तमः । तेनैव कृत्स्नमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् ॥ २८३ ॥

यदि प्रतिमासमें श्राद्ध नहीं हो सके तो हेमन्त, ग्रीष्म और वर्षाऋतुमें (वर्षमें ३ बार) करे और पञ्चमहायज्ञका श्राद्ध नित्य ही करना चाहिये ॥ २८१ ॥ पितृश्राद्धका होम लौकिकअग्निमें नहीं करना चाहिये; अग्निहोत्री ब्राह्मणको अमावास्याके सिवाय अन्य तिथियोंमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये ॥ २८२ ॥ जो ब्राह्मण स्नानकरके जलसे पितरोंका तर्पण करताहै वह संपूर्ण पितृयज्ञ करनेका फल पाताहै ॥ २८३ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय ।

अमावास्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम् । द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत्सूर्यसंक्रमः ॥ २१७ ॥
व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः । श्राद्धं प्रतिरुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ॥ २१८ ॥

अमावास्या, अष्टका (अगहन, पूस और माघके कृष्णपक्षकी अष्टमी),पुत्रजन्मआदि वृद्धि, कृष्णपक्ष, मकर और कर्ककी संक्रान्ति,द्रव्यप्राप्ति,उत्तम ब्राह्मणोंकी प्राप्ति,मेष और तुलाकी संक्रान्ति,सूर्यकी बारहों संक्रान्ति,

---

याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-२६१ श्लोक । वर्षाकालकी मघा नक्षत्रयुक्त त्रयोदशीका श्राद्ध अनन्तफल देनेवाला है । उशनस्मृति-३ अध्याय-११० श्लोक । वर्षाकालकी मघा नक्षत्र युक्त कृष्णपक्षकी त्रयोदशीका श्राद्ध विशेष फलदायक है । शङ्खस्मृति-१४ अध्यायके ३२-३३ श्लोक । भादों मासकी पूर्णमासी बीत जानेपर मघानक्षत्रसे युक्त त्रयोदशीमें मधु वा खीरसे श्राद्ध करनेसे पितरलोग प्रसन्न होकर मनुष्यको सन्तान, पुष्टता, यश, स्वर्ग, आरोग्य और धन देतेहैं । वसिष्ठस्मृति-११ अध्याय-३७ श्लोक । वर्षा कालके मघानक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे पितरोंको विशेष सन्तोष होताहै । बृहद्विष्णुस्मृति-७६ अध्यायके १-२ अङ्क । भादोंकी पूर्णमासीके बादकी कृष्णात्रयोदशीको श्राद्ध करना चाहिये ।

बृहद्विष्णुस्मृति-७८ अध्याय--५२ और ५३ श्लोक । पितरलोग ऐसा चाहते हैं कि जो वर्षाकालमें कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको और गजच्छाया योगमें और कार्तिकमासमें प्रयाससे श्राद्ध करे ऐसा नरोत्तम हमारे कुलमें उत्पन्न होवे । (जब मघायुक्त त्रयोदशीके दिन हस्तनक्षत्रपर सूर्य रहतेहैं तब गजच्छयायोग कहलाता है) ।

लघुहारीतस्मृति-१०२श्लोकमें ऐसा ही है और १०३ श्लोकमें है कि ग्रहणमें किसीसमय श्राद्ध करनेसे अक्षय फल मिलताहै । बृहद्विष्णुस्मृति-७७ अध्याय ८ श्लोक । बुद्धिमान्को उचित है कि रातमें और सन्ध्याओंके समय श्राद्ध नहीं करे; किन्तु ग्रहण लगनेपर इन समयोंमें भी श्राद्ध करे । शातातपस्मृति-९४ श्लोक । विना ग्रहणके रातमें और दोनों सन्ध्याओंमें कभी श्राद्ध नहीं करना चाहिये ।

शातातपस्मृति--१४६ श्लोक । विद्वान्लोग कहते हैं कि सूर्यकी संक्रान्तिमें १६ दण्ड पहिलेसे १६ दण्ड पीछेतक पुण्यकाल रहताहै ।

व्यतीपातयोग, गजच्छाया, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण और श्राद्धमें श्रद्धा; ये सब श्राद्ध करनेके समय कहेगये हैं ※ ॥ २१७-२१८ ॥

कन्यां कन्यावेदिनश्च पशून्वै सत्सुतानपि। द्यूतं कृषिं च वाणिज्यं द्विशफैकशफांस्तथा ॥ २६२ ॥
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान्स्वर्णरूप्ये सकुप्यके। जातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा ॥ २६३ ॥
प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम्। शस्त्रेण तु हता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते ॥ २६४ ॥

प्रतिपदा आदि तिथियोंमें श्राद्ध करनेवालोको (१) कन्या, (२) जमाई, (३) बकरीआदि पशु, (४) श्रेष्ठपुत्र, (५) जूआमें लाभ, (६) खेतीमें लाभ, (७) वाणिज्यमें लाभ, (८) गौ आदि दोशफवाले पशु, (९) घोड़ाआदि एकशफवाले पशु, (१०) ब्रह्मतेजवाला पुत्र, (११) सोना (१२) रूपा, (१३) जातिमें श्रेष्ठता, (१४) ताम्बाआदि धातु और (१५) सम्पूर्णकामना मिलती है अर्थात् प्रतिपदामें श्राद्ध करनेवालेको कन्या, द्वितीयामें श्राद्धकरनेवालेको जमाई; इत्यादि; जो मनुष्य शस्त्रद्वारा मरता है उसका श्राद्ध चतुर्दशीमें होताहै अन्यका नहीं ☙ ॥ २६२-२६४ ॥

स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा। पुत्रं श्रैष्ठ्यं च सौभाग्यं समृद्धिं मुख्यतां शुभम् ॥२६५॥
प्रवृत्तचक्रतां चैव वाणिज्यप्रभृतीनपि। अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम् ॥ २६६ ॥
धनं वेदान्भिषक्सिद्धिं कुप्यं गा अप्यजाविकम्। अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं संप्रयच्छति॥२६७॥
कृत्तिकादिभरण्यन्तं स कामानाप्नुयादिमान्। आस्तिकः श्रद्दधानश्च व्यपेतमदमत्सरः ॥ २६८ ॥

विश्वासी तथा श्रद्धायुक्त होकर गर्व और ईर्षासे रहित हो कृत्तिकासे भरणी नक्षत्र तक श्राद्ध करनेवालोंको यथाक्रम (१) स्वर्ग, (२) सन्तान, (३) अधिकशक्ति, (४) शूरता, (५) भूमि, (६) बल, (७) पुत्र, (८) श्रेष्ठता, (९) सौभाग्य, (१०) धनआदिमें वृद्धि, (११) मुख्यता, (१२) शुभ, (१३) राज्य, (१४) वाणिज्यमें वृद्धि, (१५) आरोग्य (१६) यश, (१७) सुख, (१८) परमगति, (१९) धन, (२०) विद्या, (२१) वैद्यककी सिद्धि, (२२) ताम्बाआदि धातु, (२३) गौ, (२४) बकरी, (२५) भेड़, (२६) घोड़ा और (२७) आयु मिलतीहै अर्थात् कृत्तिकामें श्राद्ध करनेवालेको स्वर्ग, रोहिणीमें श्राद्ध करनेवालेको सन्तान; इत्यादि ⊛ ॥ २६५—२६८ ॥

(३) अत्रिस्मृति।

सूर्ये कन्यागते कुर्याच्छ्राद्धं यो न गृहाश्रमी ॥ ३५७ ॥
धनं पुत्रान्कुलं तस्य पितृनिश्वासपीडया। कन्यागते सवितरि पितरो यान्ति सत्सुतान् ॥ ३५८ ॥
शून्या प्रेतपुरी सर्वा यावद्वृश्चिकदर्शनम्। ततो वृश्चिकसंप्राप्तौ निराशाः पितरो गताः ॥ ३५९ ॥
पुनः स्वभवनं यान्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम्। पुत्रं वा भ्रातरं वापि दौहित्रं पौत्रकं तथा ॥ ३६० ॥

जो गृहस्थ कन्याके सूर्य होनेपर श्राद्ध नहीं करताहै पितरोंकी लम्बी श्वाससे उसका धन, पुत्र और कुल नष्ट होजाताहै ॥ ३५७—३५८ ॥ जब कन्याराशिपर सूर्य आतेहैं तब पितर अपने उत्तम पुत्रोंके निकट जातेहैं; जबतक वृश्चिककी संक्रान्ति नही होती तबतक प्रेतपुरी शून्य रहतीहै; वृश्चिककी संक्रान्ति होनेपर पितर पिण्ड नहीं पानेसे निराश होकर पुत्रों, भाई, दौहित्र और पोतेको कठोर शाप देकर लौटजाते हैं ॥ ३५८—३६० ॥

पितृकार्ये प्रसक्ता ये ते यान्ति परमां गतिम्। यथा निर्मथनादग्निः सर्वकाष्ठेषु तिष्ठति ॥ ३६१ ॥
तथा संदृश्यते धर्मः श्राद्धदानान्न संशयः ॥ ३६२ ॥

※ शंखस्मृति–१४ अध्याय– ३१ श्लोक। गजच्छाया, ग्रहण, मेष और तुलाकी संक्रान्ति तथा मकर और कर्ककी संक्रान्तिमें श्राद्ध करनेसे अनन्तफल मिलताहै। गौतमस्मृति–१५ अध्याय–१ अङ्क। अमावास्यामें अथवा कृष्णपक्षकी पञ्चमीआदि तिथियोंमें या जब श्राद्धके योग्य द्रव्य, देश तथा ब्राह्मण मिलें तबही पितरोंके लिये श्राद्ध करना चाहिये। वसिष्ठस्मृति–११ अध्याय–१४ अङ्क। कृष्णपक्षमें चतुर्थीतिथिके पश्चात् पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये। ४० अङ्क। सावनकी पूर्णमासी; अगहनकी पूर्णमासी; अगहन, पूस और माघके कृष्णपक्षकी नवमी और जब श्राद्धयोग्य द्रव्य, देश तथा ब्राह्मण मिलें तब ही पितरोंके निमित्त श्राद्ध करना चाहिये।

☙ बृहद्विष्णुस्मृति—७८ अध्यायके ३६ से ५० अङ्कतक प्रायः ऐसा ही है। शौनकस्मृति— भादोंके कृष्णपक्षमें और मास मासमें शस्त्रद्वारा मरेहुएका श्राद्ध करना चाहिये (२)।

● बृहद्विष्णुस्मृति—७८ अध्यायके ७ से ३५ अङ्कतक प्रायः ऐसा ही है।

पितरोंके श्राद्धमें तत्पर होनेसे मनुष्य परमगति पातेहैं जैसे काठ मथनेसे उसमें अग्निकी स्थिति दखि-पड़तीहै वैसे ही श्राद्धदान करनेसे निःसन्देह धर्मकी बढ़ती देखनेमें आतीहै ॥ ३६१-३६२ ॥

सर्वशास्त्रार्थगमनं सर्वतीर्थावगाहनम्। सर्वयज्ञफलं विद्याच्छ्राद्धदानान्न संशयः ॥ ३६३ ॥
महापातकसंयुक्तो यो युक्तश्चोपपातकैः। घनैर्मुक्तो यथा भानू राहुमुक्तश्च चन्द्रमाः ३६४ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वं पापं विलंघयेत्। सर्वं सौख्यमयं प्राप्तः श्राद्धदानान्न संशयः ॥ ३६५ ॥
सर्वेषामेव दानानां श्राद्धदानं विशिष्यते। मेरुतुल्यं कृतं पापं श्राद्धदानं विशोधनम् ॥३६६ ॥
श्राद्धं कृत्वा तु मर्त्यो वै स्वर्गलोके महीयते ॥ ३६७ ॥

श्राद्धकरनेसे निःसन्देह सम्पूर्ण शास्त्र जानने, सब तीर्थोंमें स्नान करने और सम्पूर्ण यज्ञ करनेका फल प्राप्त होताहै ॥३६३॥ महापातकी और उपपातकी मनुष्य भी श्राद्धकरनेसे मेघसे निकले हुये सूर्य और राहुसे छूटेहुए चन्द्रमाके समान पापसे मुक्त होतेहैं ॥ ३६४ ॥ श्राद्धकरनेवाला निःसन्देह सब पापोंसे छूटजाताहै, सब पापोंसे पार होजाताहै और सब सुखोंको पाताहै ॥ ३६५ ॥ सम्पूर्ण दानोंमें श्राद्धदान श्रेष्ठ है; मेरुके समान पापसे श्राद्धदान उद्धार करदेताहै ॥ ३६६ ॥ श्राद्धकरनेवाला मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजित होताहै ॥ ३६७॥

(११) कात्यायनस्मृति-१६ खण्ड ।

पिण्डान्वाहार्य्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते। वासरस्य तृतीयांशे नातिसन्ध्यासमीपतः ॥ १ ॥
वर्द्धमानाममावस्यां लभेच्चेदपरेऽहनि। यामांस्त्रीनधिकान्वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत् ॥ १० ॥

अमावास्याके दिन दिनके तीसरे पहरमें पिण्डान्वाहार्य्यके श्राद्ध करना चाहिये; सन्ध्याके निकटमें नहीं ॥ १ ॥ यदि चतुर्दशीके अगले दिन तीनपहर अथवा उससे अधिक अमावास्या होवे तो उसीदिन श्राद्ध करना चाहिये ॥ १० ॥

(१७) दक्षस्मृति-२ अध्याय ।

देवकार्याणि पूर्वाह्णे मनुष्याणां तु मध्यमे। पितॄणामपराह्णे तु कार्याण्येतानि यत्नतः ॥ २६ ॥

देवकार्य पूर्वाह्णमें, मनुष्यकार्य अर्थात् अतिथियज्ञआदि कर्म मध्यदिनमें और पितरकार्य अपराह्णमें यत्नपूर्वक करना चाहिये ❀ ॥ २६ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति--११ अध्याय ।

दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभवति भास्करः। स कालः कुतपो नाम पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ ३३ ॥

दिनके आठवें भाग (८ वें मुहूर्त) में सूर्यका तेज मन्द होताहै, उसको कुतपकाल कहतेहैं; उस समय श्राद्ध करनेसे पितरोंकी अक्षय तृप्ति होतीहै ۞ ॥ ३३ ॥

(२१) प्रजापतिस्मृति ।

वृद्धौ क्षयेऽह्नि ग्रहणे युगादौ महालये श्राद्धममासु तीर्थे। सूर्ये क्रमे पर्वसु वैधृतौ च रुचौ व्यतीपातगतेष्टकासु ॥ १७ ॥ द्रव्यस्य संपत्सु मुनीन्द्रसंगे काम्येषु मन्वादिषु सद्व्रते स्यात्। छायासु मातङ्गभवासु नित्यं श्राद्धस्य कालः स च सर्वदोक्तः ॥ १८ ॥

पुत्रउत्पत्तिके समय, मृत्युकी तिथिमें, ग्रहणमें, युगादि तिथियोंमें आश्विनके; कृष्णपक्षमें, अमावस्यामें, तीर्थमें, संक्रान्तिमें, पर्वमें, वैधृतियोगमें, व्यतीपातयोगमें, अगहन, पूस और माघके कृष्णपक्षकी अष्टमीमें द्रव्य तथा सत्पात्र ब्राह्मण मिलजानेपर, श्राद्धकी इच्छा होनेपर, मन्वादि तिथियोंमें और गजच्छायामें श्राद्ध करना चाहिये ۞ ॥ १७-१८ ॥

वृद्धौ प्राप्ते च यः कुर्याच्छ्राद्धं नान्दीमुखं पुमान्। तस्याऽऽरोग्यं यशः सौख्यं विवर्धन्ते धनप्रजाः १९
श्राद्धं कृतं येन महालयेऽस्मिन्पित्रोः क्षयाहे ग्रहणे गयायाम्।

❀ देवलस्मृति-देवकर्म पूर्वाह्णमें, पितृकर्म अपराह्णमें, एकोद्दिष्ट मध्याह्नमें और वृद्धिश्राद्ध प्रातःकालमें करे (५) ।

۞ शातातपस्मृति--१०९ श्लोक और लघुहारीतस्मृति-९९ श्लोकमें ऐसा ही है; लघुहारीतस्मृतिके १०९ श्लोकमें लिखा है कि पण्डितलोग कहतेहैं कि ७ मुहूर्त्तके ऊपर और ९ मुहूर्तके भीतरका समय कुतपकाल कहलाताहै । प्रजापतिस्मृति-१५९ श्लोक । सदा १५ मुहूर्त्तका दिन होताहै उसका आठवां मुहूर्त्त कुतपकाल कहलाता है । १६० श्लोक । यदि वार्षिकश्राद्धमें मृत्युकी तिथि दोदिन पडे तो जिस दिनमें कुतपकाल हो उसी दिन श्राद्ध करना चाहिये ।

۞ लघुआश्वलायनस्मृति-२४ श्राद्धोपयोगी प्रकरणके २३-२५ श्लोकमें प्रायः ऐसा है ।

किमश्वमेधैः पुरुषैरनेकैः पुण्यैरिमैरन्यतमैः कृतैः किम् ॥ २० ॥
दर्शश्राद्धं च यः कुर्याद् ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः । पितरस्तेन तुष्टा वै प्रयच्छन्ति यथेप्सितम् ॥२१॥

पुत्र उत्पन्न होनेपर नान्दीश्राद्ध करनेसे शरीर आरोग्य होताहै, यश और सुख मिलताहै तथा धन और प्रजाकी वृद्धि होतीहै ॥ १९ ॥ आश्विनके कृष्णपक्षमें, मातापिताके मरनेकी तिथिमें, ग्रहणमें और गयामें श्राद्ध करनेसे अश्वमेधआदि पुण्यकर्म करनेकी आवश्यकता नहीं रहतीहै ॥ २० ॥ जो मनुष्य ब्रह्मवादी ब्राह्मणके सहित अमावास्यामें श्राद्ध करताहै उसके पितर संतुष्ट होकर इच्छित फल देतेहैं ॥ २१ ॥

माघे पञ्चदशी कृष्णा नभस्ये च त्रयोदशी । तृतीया माधवे शुक्ला नवम्यूर्जे युगादयः ॥ २२ ॥
भाद्रे कलिर्द्वापरश्चैव माघे त्रेता तृतीया नवमी कृते च ।
युगादयः पुण्यतमा इमाश्च दत्तं पितॄणां किल चाक्षयं स्यात् ॥ २३ ॥

भादोवदी १३ को कलियुगका, माघवदी १५ को द्वापरका, वैशाखसुदी ३ को त्रेताका और कार्तिक सुदी ९ को सत्ययुगका जन्म हुआथा, इसलिये ये युगादि तिथि कही जातीहैं, इन तिथियोंमें पितरोंको पिण्ड आदि देनेसे उनकी अक्षयतृप्ति होतीहै ॥ २२-२३ ॥

संक्रान्तौ च व्यतीपाते मन्वादिषु युगादिषु । श्रद्धया स्वल्पमात्रं च दत्तं कोटिगुणं भवेत् ॥ २५ ॥
छायासु सोमोद्भवजासु पुण्यं देवार्चनं गोतिलभूप्रदानम् ।
करोति यो वै पितृपिण्डदानं दूरे न तस्यास्ति विभोर्विमानम् ॥ २७ ॥

संक्रांति, व्यतीपात, मन्वादि तिथि और युगादि तिथियोंमें श्रद्धापूर्वक थोड़े दान देनेसे भी कोटिगुणा फल प्राप्त होताहै ॥ २५ ॥ चन्द्रग्रहणमें देवार्चन करने; गौ, तिल और भूमिदान देने और पितरोंको पिण्डदान करनेसे स्वर्गीय विमान मिलताहै ॥ २७ ॥

श्राद्धान्यनेकशः सन्ति पुराणोक्तानि वैरुचे । फलप्रदानि सर्वाणि तेषामग्र्यो महालयः ॥ ३७ ॥

फलोंको देनेवाले अनेकप्रकारके श्राद्ध पुराणोंमें कहे गयेहैं, उनमें आश्विनके कृष्णपक्षका श्राद्ध मुख्य है ॥ ३७ ॥

श्राद्ध करनेका स्थान ३.

(१) मनुस्मृति-३ अध्याय ।

अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतीरेषु चैव हि । विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा ॥ २०७ ॥

स्वाभाविक पवित्र वनआदि देशोंमें नदीआदिके किनारेपर तथा एकान्त स्थानमें श्राद्ध करनेसे पितरगण सदा सन्तुष्ट होतेहैं ॥ २०७ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१अध्याय ।

यद्ददाति गयास्थश्च सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥ २६१ ॥

गयातीर्थमें पितरोंको पिण्ड देनेसे अनन्त कालतक उनकी तृप्ति होतीहै ॥ २६१ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

कांक्षन्ति पितरः सर्वे नरकांतरभीरवः । गयां यास्यति यः पुत्रस्सनस्त्राता भविष्यति ॥ ५६ ॥
महानदीमुपस्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः । अक्षयाँल्लभते लोकान्कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ५९ ॥

अन्य नरकोंसे डरतेहुए पितरगण ऐसी इच्छा करतेहैं कि जो पुत्र गयामें जायगा वह हमारा रक्षक होगा ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य फल्गुनदीमें स्नान करके पितर और देवताओंका तर्पण करताहै वह अक्षयलोकोंमें जाताहै और अपने कुलका उद्धार करताहै ॥ ५९ ॥

(६) उशनस्मृति-५ अध्याय ।

दक्षिणाप्रवणं स्निग्धं विभक्तशुभलक्षणम् । शुचिदेशं विविक्तञ्च गोमयेनोपलेपयेत् ॥ १३ ॥
नदीतीरेषु तीर्थेषु स्वभूमौ गिरिसानुषु । विविक्तेषु च तृप्यन्ति दत्तेन पितरस्तथा ॥ १४ ॥
परस्य भूमिभागे तु पितॄणां वै न निर्वपेत् । स्वामित्वाद्विनिहन्येत मोहाद्यत्क्रियते नरैः ॥ १५ ॥
अटव्यः पर्वताः पुण्यास्तीर्थान्यायतनानि च । सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न हि तेषु परिग्रहः ॥ १६ ॥

❀ उशनसस्मृति-३ अध्यायके १३०-१३२ श्लोकमें; बृहस्पतिस्मृतिके २०-२१ श्लोकमें और लिखितस्मृतिके १०-१२ श्लोकमें भी गयाका श्राद्ध फलदायक लिखाहै ।

श्राद्धके लिये दक्षिणकी ओर ढालुआ, चिकना, शुभलक्षणयुक्त, पवित्र, था निर्जनस्थान गोबरसे लिपवाना चाहिये ॥ १३ ॥ नदीके तीर तीर्थस्थान अथवा अपनी भूमिमें पवित्र तथा निर्जनस्थानमें श्राद्ध करनेसे पितरगण संतुष्ट होतेहैं ॥ १४ ॥ दूसरेकी भूमिमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये; क्योंकि मोहवश ऐसे स्थानमें श्राद्ध करनेसे उसपर दूसरेका स्वामित्व होनेके कारण श्राद्धका फल नहीं मिलताहै ॥ १५ ॥ पवित्र वन, पवित्र पर्वत, तीर्थस्थान और यज्ञशाला; ये सब किसीके नहीं कहेजातेहैं, इनपर किसीका अधिकार नहीं है ॥ १६ ॥

(१८) शङ्खस्मृति-१४ अध्याय ।

यद्ददाति गयास्थश्च प्रभासे पुष्करे तथा । प्रयागे नैमिषारण्ये सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥ २७ ॥
गङ्गायमुनयोस्तीरे पयोष्ण्यमरकण्टके । नर्मदायां गयातीरे सर्वमानन्त्यमुच्यते ॥ २८ ॥
वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे भृगुतुङ्गे महालये । सप्तवेण्यृषिकूपे च तदप्यक्षयमुच्यते ॥ २९ ॥

गया, प्रभास, पुष्कर, प्रयाग, नैमिषारण्य, अमरकण्टक, काशी, कुरुक्षेत्र और भृगुतुङ्ग तीर्थमें और महालयमें तथा गङ्गा, यमुना, पयोष्णी, नर्मदा, सप्तवेणी और ऋषिकूपके तीरपर पितरोंके निमित्त जो कुछ दियाजाताहै उसका अक्षय फल होताहै ॥ २७-२९ ॥

(१९) लिखितस्मृति ।

गयाशिरे तु यत्किञ्चिन्नाम्ना पिण्डन्तु निर्वपेत् । नरकस्थो दिवं याति स्वर्गस्थो मोक्षमाप्नुयात् १२

गयामें जिसके नामसे पिण्ड दियाजाताहै वह यदि नरकमें रहताहै तो स्वर्गमें चलाजाताहै और स्वर्गमें रहताहै तो मोक्ष पाताहै ॥ १२ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति-११ अध्याय ।

नन्दन्ति पितरस्तस्य सुवृष्टेरिव कर्षकाः । यद्गयास्थो ददात्यन्नं पितरस्तेन पुत्रिणः ॥ ३९ ॥

जैसे अच्छी वर्षा होनेसे कृषकलोग प्रसन्न होतेहैं वैसे ही गयामें जाकर पिण्डदान करनेसे पितर आनन्दित होतेहैं और उससे अपनेको पुत्रवान् मानतेहैं ॥ ३९ ॥

(२१) प्रजापतिस्मृति ।

सरित्समुद्रतोयैक्ये वापीकूपसरित्तटे । देवजुष्टे च संप्राप्ते देशे श्राद्धे गृहान्तरे ॥ ५३ ॥
धात्रीबिल्ववटाश्वत्थमुनिचैत्यगजान्विना । श्राद्धं छायासु कर्त्तव्यं प्रासादाद्रौ महावने ॥ ५४ ॥

नदी और समुद्रके सङ्गमके पास; बावली, कूप अथवा नदीके तटमें; देवमन्दिरमें; श्राद्धके देशमें; घरके भीतर; आंवरा, बेल, वट, पीपल, अगस्त अथवा प्रसिद्धवृक्षकी छायामें या पर्वतपर; अथवा महावन तथा प्रासादमें श्राद्ध करना चाहिये ॥ ५३-५४ ॥

श्राद्धके योग्य ब्राह्मण ४.

(१) मनुस्मृति-३ अध्याय ।

श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि दातृभिः । अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महाफलम् ॥ १२८ ॥
एकैकमपि विद्वांसं दैवे पित्र्ये च भोजयेत् । पुष्कलं फलमाप्नोति नामन्त्रज्ञान्बहूनपि ॥ १२९ ॥
दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम् । तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः ॥ १३० ॥
सहस्रं हि सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते । एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतः सर्वानर्हति धर्मतः ॥ १३१ ॥
ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवींषि च । न हि हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरेणैव शुद्ध्यतः ॥१३२॥
यावतो ग्रसते ग्रासान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् । तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलर्ष्ट्ययोगुडान् ॥ १३३ ॥
ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठास्तथापरे । तपःस्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथापरे ॥ १३४ ॥
ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः । हव्यानि तु यथान्यायं सर्वेष्वेव चतुर्ष्वपि ॥ १३५ ॥
अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्वेदपारगः।अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्वेदपारगः ॥१३६॥
ज्यायांसमनयोर्विद्याद्यस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता । मन्त्रसंपूजनार्थं तु सत्कारमितरोऽर्हति ॥ १३७ ॥
यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वृचं वेदपारगम् । शाखान्तगमथाध्वर्युं छन्दोगं तु समाप्तिकम् ॥ १४५ ॥
एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः । पितॄणां तस्य तृप्तिः स्याच्छाश्वती साप्तपौरुषी ॥१४६ ॥

वेद पढ़ेहुए ब्राह्मणको पितर तथा देवताओंके निमित्त भोजन कराना चाहिये; क्योंकि ऐसे पूज्य ब्राह्मणको देनेसे दाताको महान् फल होताहै ॥ १२८ ॥ देव और पितरके काममें एकएकभी विद्वान् ब्राह्मणको खिलानेसे महाफल मिलताहै; किन्तु बहुतसे भी वेदहीन ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे कुछ फल नहीं होताहै ॥ १२९ ॥ वेदपारग ब्राह्मणको दूरसे खोजलाना चाहिये; क्योंकि हव्य कव्य देनेके लिये वह तीर्थके समान (पवित्र) अभ्यागत कहागयाहै ॥ १३० ॥ एक वेद पढेहुए ब्राह्मणको भोजन करानेसे १० लाख वेदहीन ब्राह्मणोंको खिलानेके समान फल मिलताहै ॥ १३१ ॥ ज्ञानमें श्रेष्ठ ब्राह्मणको ही देवतोंके लिये हव्य और पितरोंके लिये कव्य देना चाहिये; मूर्खोंको नहीं; क्योंकि रुधिरसे भींगाहुआ हाथ रुधिरहीसे धोनेपर शुद्ध नहीं होताहै ॥ १३२ ॥ मूर्खब्राह्मण हव्यकव्यके जितने ग्रास भोजन करताहै उसको मरनेपर उतने ही तप्तकियेहुए लोहेके पिण्ड खाने पड़तेहैं ॥ १३३ ॥ ब्राह्मणोंमें आत्मज्ञानी, तपस्वी, तप और अध्ययन करनेवाले और यज्ञादिकर्म करनेवाले; ये ४ प्रकारके ब्राह्मण होतेहैं; पितरोंके उद्देश्यसे कव्य आत्मज्ञानी ब्राह्मणको यत्नपूर्वक देवे और देवकार्यका हव्य इन चारों प्रकारके ब्राह्मणोंको यथाविधि देना चाहिये ॥ १३४–१३५ ॥ वेदहीन ब्राह्मणके वेदपारग पुत्रसे वेदपारग ब्राह्मणका वेदहीन पुत्र श्रेष्ठ है; किन्तु वेदहीन पिताका वेदपारग पुत्र वेदकी पूजाके लिये सत्कारके योग्य है ॥ १३६–१३७ ॥ ऋग्वेदको समाप्त कियेहुए ऋग्वेदी, शाखाको समाप्त कियेहुए यजुर्वेदी तथा सम्पूर्ण सामवेदको जाननेवाले सामवेदीको यत्नपूर्वक श्राद्धमें भोजन करावे ॥ १४५ ॥ जिसके श्राद्धमें इनमेंसे एक ब्राह्मण भी सत्कारपूर्वक भोजन करताहै उसके पितृआदि सात पुरुषोंकी अक्षयतृप्ति होतीहै ॥ १४६ ॥

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः । अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥ १४७ ॥
मातामहं मातुलं च स्वस्रीयं श्वशुरं गुरुम् । दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत्॥१४८॥
न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् । पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥ १४९ ॥

हव्य और कव्य देनेके लिये ऊपर कहेहुए ब्राह्मण मुख्य हैं, उनके नहीं मिलनेपर नीचे लिखीहुई विधि है, जिसको सज्जनोंने सदा किया है ॥ १४७ ॥ श्राद्ध करनेवाले (ब्राह्मण) को उचित है कि अभावकालमें नाना, मामा, भानजा, श्वशुर, गुरु, नाती, दामाद, बन्धु अर्थात् मौसीके पुत्र, या फूफूके पुत्र, ऋत्विक् और यज्ञकरानेवाले (ब्राह्मण) को भोजन करादेवे ॥ १४८ ॥ धर्मज्ञ मनुष्यको उचित है कि (श्राद्धके) देवकार्यमें ब्राह्मणकी बहुत परीक्षा नहीं करे; किन्तु पितृकार्यमें यत्नपूर्वक परीक्षा करे ॥१४९॥

अपाङ्क्त्योपहता पङ्क्तिः पाव्यते यैर्द्विजोत्तमैः । तान्निबोधत कार्त्स्न्येन द्विजाग्र्यान्पङ्क्तिपावनान् १८३॥
अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वत्र वचनेषु च । श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ॥ १८४ ॥
त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् । ब्रह्मदेयात्मसंतानो ज्येष्ठसामग एव च ॥ १८५ ॥
वेदार्थवित्प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः । शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः ॥ १८६ ॥

जिन पंक्तिपावन ब्राह्मणोंसे पंक्तिहीन ब्राह्मणोंसे दूपितपंक्ति भी पवित्र होजाती है, उनका वृत्तान्त मैं पूरीरीतिसे कहताहूं ॥ १८३ ॥ जो सम्पूर्णवेदोंके जाननेमें अग्रगण्य हैं, वेदाङ्गोंके जाननेमें श्रेष्ठ हैं और वेद पढ़नेवालोंके घरमें उत्पन्न हुएहैं उन्हें पंक्तिपावन कहतेहैं ॥ १८४ ॥ जो यजुर्वेदका त्रिणाचिकेतभाग पढ़ेहुए हैं, पञ्चाग्निवाले हैं, ऋग्वेद और यजुर्वेदका त्रिसुपर्णभाग पढ़ेहुए हैं, छवों वेदाङ्ग जानतेहैं, ब्राह्मविवाहसे विवाहीहुई स्त्रीके पुत्र हैं, सामवेदका अरण्यकभाग गातेहैं, वेदका अर्थ जानतेहैं, प्रवक्ता और ब्रह्मचारी हैं, बहुत दान देतेहैं और एक सौ वर्षकी अवस्थाके हैं, वे ब्राह्मण पंक्तिपावन कहेजातेहैं ॥ १८५–१८६ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय ।

अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु श्रोत्रियो ब्रह्मविद्युवा । वेदार्थविज्ज्येष्ठसामा त्रिमधुस्त्रिसुपर्णिकः ॥ २१९ ॥
स्वस्रीयऋत्विग्जामातृयाज्यश्वशुरमातुलाः । त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसम्बन्धिबान्धवाः ॥२२०॥
कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाः पञ्चाग्निर्ब्रह्मचारिणः । पितृमातृपराश्चैव ब्राह्मणाः श्राद्धसंपदः ॥ २२१ ॥

सब वेदोंको जाननेमें अग्रगण्य, श्रोत्रिय, ब्रह्मज्ञानी, युवा, वेदके अर्थका जाननेवाला, ज्येष्ठसामवेदको पढ़नेवाला, ऋग्वेदका त्रिमधुभाग और ऋग्वेद और यजुर्वेदका त्रिसुपर्णभाग पढ़नेवाला, भानजा, ऋत्विक् दामाद, यज्ञ करानेयोग्य, श्वशुर, मामा यजुर्वेदका त्रिणाचिकेतभाग पढ़नेवाला, नाती, शिष्य, सम्बन्धी, बान्धव, अपने धर्ममें निष्ठा रखनेवाला, तपस्वी, पञ्चाग्निवाला, ब्रह्मचारी और मातापिताके भक्त; इतने ब्राह्मण श्राद्धको सफल करनेवाले हैं ॥ २१९–२२१ ॥

आगे उशनस्मृतिके ४ अध्यायमें देखिये ।

शङ्खस्मृति–१४ अध्यायके १ श्लोकमें इस श्लोकके समान है ।

पंक्तिपावन ब्राह्मणोंका विशेष वर्णन ब्राह्मणके प्रकरणमें है ।

(३) अत्रिस्मृति।

योगस्थैर्लोचनैर्युक्तः पादार्थं च प्रपश्यति। लौकिकज्ञैश्च शास्त्रोक्तं पश्येच्चैषो धरोत्तर ॥ ३५२ ॥
वेदैश्च ऋषिभिर्गीतं दृष्टिमाञ्छास्त्रवेदवित्। व्रतिनं च कुलीनं च श्रुतिस्मृतिरतं सदा ॥ ३५३ ॥
तादृशं भोजयेच्छ्राद्धे पितॄणामक्षयं भवेत्। यावन्तो ग्रसतो ग्रास न्पितॄणां दीप्ततेजसाम् ॥ ३५४॥
पितापितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। नरकस्था विमुच्यन्ते ध्रुवं यान्ति त्रिविष्टपम् ॥ ३५५ ॥
तस्माद्विप्रं परीक्षेत श्राद्धकाले प्रयत्नतः ॥३५६ ॥

योगी, कुदृष्टि नहीं करनेवाला, सदाचार युक्त, शास्त्रमें कहेहुए विधिनिषेधको देखनेवाला, ज्ञानवान्, शास्त्र और वेदको जाननेवाला, व्रती, कुलीन और वेद और शास्त्रमें सदा तत्पर रहनेवाला; ऐसे ब्राह्मणोंको श्राद्धमें भोजन करानेसे पितरोकी अक्षयतृप्ति होतीहै ॥ ३५२-३५४ ॥ जितने ग्रास श्राद्धमें पूर्वोक्त ब्राह्मण खाताहै उतनेही प्रकाशमान पितर अर्थात् पिता, पितामह और प्रपितामह शीघ्रही नरकसे निकलकर स्वर्गमें चलेजातेहै, इसलिये श्राद्धके समय यत्नपूर्वक ब्राह्मणकी परीक्षा करना चाहिये ॥ ३५४-३५६ ॥

(६क) उशनस्मृति-३ अध्याय।

सन्निकृष्टमतिक्रम्य श्रोत्रियं यः प्रयच्छति। स तेन कर्मणा पापी दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ ११६ ॥
यदि स्यादधिको विप्रः शीलविद्यादिभिस्स्वयम्। तस्मै यत्नेन दातव्यमतिक्रम्यापि सन्निधिम् ॥११७॥

जो मनुष्य निकट रहनेवाले वेदपाठी ब्राह्मणको छोड़करके मूर्ख ब्राह्मणको श्राद्धमें बुलाताहै उसके उस पापसे उसके ७ पुरुषे तक दग्ध होतेहै ॥ ११६ ॥ श्राद्धकर्ताको उचित है कि यदि दूर रहनेवाला ब्राह्मण निकट रहनेवालेब्राह्मणसे शील, विद्याआदि गुणोमे श्रेष्ठ होवे तो निकट रहनेवाले ब्राह्मणको छोड़ करके दूर रहनेवाले ब्राह्मणको यत्नपूर्वक दान देवे ॥ ११७ ॥

४ अध्याय।

भोजयेद्योगिनं पूर्वं तत्त्वज्ञानरतं परम्। अलाभे नैष्ठिकं दान्तमुपकुर्वाणकन्तु वा ॥ ९ ॥
तदलाभे गृहस्थस्तु मुमुक्षुः संगवर्जितः। सर्वालाभे साधकं वा गृहस्थं वा विभोजयेत् ॥ १० ॥
एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः। अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयस्तदा सद्भिरनुष्ठितः ॥ १३ ॥
मातामहं मातुलं च स्वस्रेयं श्वशुरं गुरुम्। दौहित्रं विड्भुं सर्वमग्निकल्पांश्च भोजयेत् ॥ १४ ॥

श्राद्धमे पहिले योगियोंको उनके पश्चात् तत्त्वज्ञानियोंको, उनके अभावमे नैष्ठिक अथवा उपकुर्वाणक ब्रह्मचारियोको और उनके नहीं मिलनेपर मुमुक्षु और संगवर्जित गृहस्थोंको भोजन कराना चाहिये; स्वार्थी और लोभी गृहस्थको कभी नहीं खिलाना चाहिये ॥ ९-१० ॥ हव्य कव्य देनेका यही प्रथम कल्प है, इसके अभावमें नीचे लिखीहुई विधि है, जिसको सज्जनोंने कियाहै, कि नाना, मामा, भांजा, श्वशुर, गुरु और नाती यदि पण्डित और ब्रह्मतेजसे युक्त होवें तो इनको श्राद्धमें भोजन करावे ॥ १३-१४ ॥

(१३क) बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-५ अध्याय।

यत्र वेदास्तपो यत्र यत्र वृत्तं द्विजाग्रजे। पितृश्राद्धेषु तं यत्नाद्विद्वान्विप्रं समर्चयेत् ॥ १५ ॥
वेदशास्त्रा विच्छान्तः शुचिर्धर्ममनाः सदा। गायत्रीब्रह्मचिन्ताकृत्पितृश्राद्धेषु पावनः ॥ १६ ॥
रथन्तरबृहज्ज्येष्ठसामवित्रिसुपर्णकः। त्रिमधुश्चापि यो विप्रः पितृश्राद्धे स पूजितः ॥ १७ ॥
कृष्येकवृत्तिजीवी यो भक्तो मात्रादिकेषु च। पट्कर्मनिरतः पूज्यो हव्यकव्येषु सर्वदा ॥ २२ ॥

विद्वानको उचित है कि जिस ब्राह्मणमें वेद, तपस्या और सद्वृत्ति है उसीको श्राद्धमें पूजे ॥१५ ॥ वेद और शास्त्रको जाननेवाला, शान्त, शुचि धर्ममे रत और गायत्री और ब्रह्मका चिन्तन करनेवाला ब्राह्मण पितृश्राद्धमें पावन है ॥ १६ ॥ रथन्तर बृहज्ज्येष्ठ सामको जाननेवाला, त्रिसुपर्ण और त्रिमधुको जाननेवाला ब्राह्मण पितृश्राद्धमें पूजने योग्य है ॥ १७ ॥ जो ब्राह्मण केवल कृषिकर्मसे जीविका करताहै; किन्तु माता पिताका भक्त है और ६ कर्मों (वेदपढना, वेदपढाना, यज्ञकरना, यज्ञकराना, दानदेना और दानलेना) में तत्पर है वह सदा देवकर्म और पितरकर्ममें पूज्य है ॥ २२ ॥

(२१) प्रजापतिस्मृति।

ब्रह्मकर्मरताः शान्ता अपापा अग्निसंश्रिताः। कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठा वेदार्थज्ञाः कुलोद्भवाः ॥ ७० ॥
मातृपितृपराश्चैव ब्राह्मवृत्त्युपजीविनः। अध्यापको ब्रह्मविदो ब्राह्मणाः श्राद्धसंपदि ॥ ७१ ॥

वेद पढ़नेमें तत्पर, शान्त स्वभाववाला, पापरहित, अग्निहोत्री, अपने कर्ममें तत्पर, तपस्वी, वेदार्थ जाननेवाला, कुलीन अर्थात् वेदाभ्यासियोंके कुलमें उत्पन्न, मातापिताका भक्त, ब्राह्मणकी वृत्तिसे जीविका चलानेवाला और वेद पढ़ानेवाला ये ब्राह्मण श्राद्धको सफल करनेवाले हैं ॥ ७०-७१ ॥

(२४) लघुआश्वलायनस्मृति-श्राद्धोपयोगीप्रकरण।

विप्रान्निमन्त्रयेच्छ्राद्धे बहृचान्वेदपारगान्। तदभावे तु चैवान्यशाखिनो वाऽपि चैव हि ॥ १९ ॥
रोगादिरहितो विप्रो धर्मज्ञो वेदपारगः। भुञ्जीयादमलं श्राद्धे साग्निकः पुत्रवानपि ॥ २० ॥

ऋग्वेदपारग ब्राह्मणोंको उनके नहीं मिलनेपर अन्य शाखावाले ब्राह्मणोंको श्राद्धमें निमन्त्रण देना चाहिये ॥ १५ ॥ रोगआदिसे रहित, धर्मज्ञ, वेदपारग, अग्निहोत्री और पुत्रवाले ब्राह्मणको श्राद्धमें भोजन कराना चाहिये ॥ २० ॥

श्राद्धके अयोग्य ब्राह्मण ५.

(१) मनुस्मृति-३ अध्याय।

न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः। नारिं न मित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेद्विजम् १३८॥
यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च। तस्य प्रेत्य फलं नास्ति श्राद्धेषु च हविःषु च॥१३९॥

श्राद्धमें मित्रताके कारण मित्रको नहीं खिलाना चाहिये; अन्यप्रकारसे धन देकर मित्रको मित्रता दिखाना चाहिये; जो शत्रु अथवा मित्र नहीं हैं, ऐसे ब्राह्मणोंको श्राद्धमें भोजन कराना चाहिये ॥१३८॥ जिसके श्राद्ध अथवा यज्ञमें मित्र ही भोजन करतेहैं उसको श्राद्ध तथा यज्ञका फल परलोकमें नहीं मिलताहै * ॥ १३९ ॥

यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम्। तथाऽनृचे हविर्दत्त्वा न दाता लभते फलम् ॥ १४२ ॥
दातॄन्प्रतिग्रहीतॄंश्च कुरुते फलभागिनः। विदुषे दक्षिणां दत्त्वा विधिवत्प्रेत्य चेह च ॥ १४३ ॥

जैसे ऊपर भूमिमें बीज बोनेसे कृपकको कुछ लाभ नहीं होता वैसे ही मूर्ख ब्राह्मणको हवि भोजन करानेसे दाताको कुछ फल नहीं मिलताहै ॥ १४२ ॥ विद्वान् ब्राह्मणको विधिपूर्वक दक्षिणा देनेसे दाता और दान लेनेवाला परलोक और इसी लोकमें फल भोगतेहैं ॥ १४३ ॥

ये स्तेनपतितक्लीवा ये च नास्तिकवृत्तयः। तान्हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ॥ १५० ॥
जटिलं चानधीयानं दुर्बलं कितवं तथा। याजयन्ति च ये पूगांस्तांश्च श्राद्धे न भोजयेत् ॥ १५१ ॥
चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा। विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ॥१५२॥
प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनखी श्यावदन्तकः। प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताग्निर्वार्द्धुषिस्तथा ॥ १५३ ॥
यक्ष्मी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः। ब्रह्मद्विट्परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च ॥ १५४ ॥
कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरेव च। पौनर्भवश्च काणश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ १५५ ॥
भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितस्तथा। शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वाग्दुष्टः कुण्डगोलकौ ॥ १५६ ॥
अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा। ब्राह्मैर्यौनैश्च संबन्धैः संयोगं पतितैर्गतः ॥ १५७ ॥
अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी। समुद्रयायी बन्दी च तैलिकः कूटकारकः ॥ १५८ ॥
पित्रा विवदमानश्च कितवो मद्यपस्तथा। पापरोग्यभिशस्तश्च दाम्भिको रसविक्रयी ॥ १५९ ॥
धनुः शराणां कर्त्ता च यश्चाग्रेदिधिषूपतिः। मित्रध्रुक् द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ॥ १६० ॥
भ्रामरी गण्डमाली च श्वित्र्यथो पिशुनस्तथा। उन्मत्तोऽन्धश्च वर्ज्याः स्युर्वेदनिन्दक एव च॥१६१॥
हस्तिगोश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रैर्यश्च जीवति। पक्षिणां पोषको यश्च युद्धाचार्यस्तथैव च ॥ १६२ ॥
स्रोतसां भेदको यश्च तेषां चावरणे रतः। गृहसंवेशको दूतो वृक्षरोपक एव च ॥ १६३ ॥
श्वक्रीडी श्येनजीवी च कन्यादूषक एव च। हिंस्रो वृषलवृत्तिश्च गणानां चैव याजकः ॥ १६४ ॥
आचारहीनः क्लीवश्च नित्यं याचनकस्तथा। कृषिजीवी श्लीपदी च सद्भिर्निन्दित एव च ॥१६५॥
औरभ्रिको माहिषिकः परपूर्वापतिस्तथा। प्रेतनिर्यातकश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ १६६ ॥
एतान्विगर्हिताचारानपाङ्क्तेयान्द्विजाधमान्। द्विजातिप्रवरो विद्वानुभयत्र विवर्जयेत् ॥ १६७ ॥
ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति। तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते ॥ १६८ ॥

---

* मनुस्मृति—३ अध्याय-१४४ श्लोक। विद्वान्‌ब्राह्मण नहीं मिलनेपर मित्रको भोजन करावे; किन्तु विद्वान् शत्रुको भी नहीं खिलावे क्योंकि उसके भोजन करानेका फल परलोकमें नहीं मिलताहै।

भगवान् मनुने कहा है कि चोर,पतित, नपुंसक अथवा नास्तिक ब्राह्मणको देवकार्य अथवा पितरकार्यमें नहीं खिलावे ॥ १५० ॥ जटा धारण करनेवाले, वेदहीन, रोगी, जुआरी और बहुत लोगोंको यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंको श्राद्धमें नहीं भोजन करावे ॥१५१॥ वैद्य, पुजारी, मांस बेंचनेवाले, वाणिज्यसे जीविका करनेवालेको देवपितृकार्यमें परित्याग करना चाहिये ॥१५२॥ गांवके सेवक, राजाके सेवक, कुनखी, काले दांतवाले, गुरुके विरोधी, अग्निहोत्र त्यागदेनेवाले, व्याज लेनेवाले, क्षयी रोगवाले, पशुपालन करनेवाले, बड़े भाईके क्वांरे रहतेहुए अपना विवाह करलेनेवाले, पञ्चमहायज्ञोंको नहीं करनेवाले, ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवाले, छोटे भाईका विवाह होजानेपर क्वांरे रहनेवाले, समूहलोगोंसे इकट्ठा कियेहुए धनसे निर्वाह करनेवाले, नर्तकआदि शीलरहित ब्राह्मण, स्त्रीसंसर्गसे ब्रह्मचर्य खोनेवाले ब्रह्मचारी, वृषलीके पति, पुनर्भूस्त्रीके पुत्र, काणा और किसीकी रखेलिनीके पतिको श्राद्धमें नहीं बुलाना चाहिये ॥ १५३-१५५॥ वेतनलेकर पढानेवाले, वेतनदेकर पढनेवाले, शूद्रके शिष्य,शूद्रके गुरु,सदा कठोरवचन बोलनेवाले, पिताके जीतेहुए जारसे उत्पन्नहुए, पिताके मरजानेपर जारसे जन्मेहुए,विना किसी कारणके पिता,माता, अथवा गुरुको त्यागनेवाले और पतितके साथ सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मणको श्राद्धमें त्याग देवे ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ घर जलानेवाले, विष देनेवाले पतिके जीतेहुए जारसे उत्पन्न पुत्रका अन्न खानेवाले, सोमलता बेंचनेवाले, समुद्रमें यात्रा करनेवाले, राजाआदिकी स्तुति करनेवाले, तेलके लिये तिलआदि पेरनेवाले, तौल अथवा लेखके विषयमें जाल करनेवाले, पितासे झगड़ा करनेवाले, जुआड़ी, मद्य पीनेवाले, कुष्ठआदि पापरोगी दोषी, दाम्भिक, रस बेंचनेवाले, धनुषबाण बनानेवाले, अग्रेदिधिषूपति *, मित्रसे बुराई करनेवाले, जूआ खेलाकर जीविका करनेवाले, अपने पुत्रके पढ़ायेहुए पिता, मृगी रोगसे युक्त, गण्डमालारोगसे युक्त, श्वेतकुष्ठी, चुगुल, उन्मत्त, अन्धा और वेदनिन्दक ब्राह्मणको श्राद्धमें नहीं बुलाना चाहिये ॥ १५८-१६१ ॥ हाथी, बैल, घोड़े, और ऊंटकी शिक्षा करके जीविका चलानेवाले, ज्योतिषी, पक्षियोंको पालनेवाले, शस्त्रविद्याके शिक्षक, नहरआदिकी धाराको बहादेने अथवा रोकदेनेवाले, वास्तुविद्यासे जीविका करनेवाले, दूतका काम करनेवाले, वृक्ष लगानेका काम करनेवाले, क्रीड़ाके लिये कुत्ते पालनेवाले, बाजसे जीविका करनेवाले, कन्यासे मैथुन करनेवाले, हिंसा करनेवाले, शूद्रवृत्तिवाले और गणोंका यज्ञ करानेवाले, ब्राह्मणको श्राद्धमें नहीं खिलाना चाहिये ॥ १६२-१६४ ॥ आचारसे हीन, धर्मकार्यमें उत्साहरहित नित्य याचना करनेवाले, खेती करनेवाले, हाथीपांव वाले, साधुओंसे निन्दित, मेढ़े और भैंसे पालनेवाले, विवाहीहुई स्त्रीसे विवाह करनेवाले और मूल्य लेकर मुर्दे ढोनेवाले ब्राह्मणोंको श्राद्धमें यत्नपूर्वक त्याग देना चाहिये ॥ १६५-१६६ ॥ द्विजोंमें श्रेष्ठ विद्वान्ब्राह्मणोंको उचित है कि निन्दित आचारवाले, पंक्तिमें बैठनेके अयोग्य इन अधमब्राह्मणोंको देव और पितृकार्यमें परित्याग कर देवे ॥ १६७ ॥ वेदहीन, ब्राह्मण फूसकी आगके समान है,उसको हव्य आदि नहीं देना चाहिये; क्योंकि भस्ममें कोई होम नहीं करताहै१६८॥

अपाङ्क्तदाने यो दातुर्भवत्यूर्ध्वं फलोदयः । दैवे हविषि पित्र्ये वा तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १६९ ॥
अव्रतैर्यद्द्विजैर्भुक्तं परिवेत्रादिभिस्तथा । अपाङ्क्तैर्यदन्यैश्च तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥ १७० ॥
तौ तु जातौ परक्षेत्रे प्राणिनौ प्रेत्य चेह च । दत्तानि हव्यकव्यानि नाशयेते प्रदायिनाम् ॥ १७५ ॥
अपाङ्क्त्यो यावतः पाङ्क्त्यान् भुञ्जानाननुपश्यति । तावतां न फलं प्रेत्य दाता प्राप्नोति बालिशः १७६
वीक्ष्यान्धो नवतेः काणः षष्टेः श्वित्री शतस्य तु । पापरोगी सहस्रस्य दातुर्नाशयते फलम् ॥१७७॥

देव अथवा पितरके काममें पङ्क्तिदूषक ब्राह्मणोंको खिलानेस दाताको परलोकमें जो फल मिलताहै सो मैं सम्पूर्ण कहताहूं ॥ १६९ ॥ ब्रह्मचर्यव्रतसे हीन, परिवेत्ता आदि और अन्य पङ्क्तिदूषक ब्राह्मणोंका भोजन राक्षसोंको प्राप्त होताहै ॥ १०७ ॥ दूसरेकी स्त्रीमें जन्मेहुए कुण्ड और गोलकको हव्य कव्य देनेसे दाताको इसलोक अथवा परलोकमें कुछ फल नहीं मिलताहै॥ १७५ ॥ पंक्तिहीन ब्राह्मण जितने लोगोंको पांतिमें भोजन करतेहुए देखताहै उतने लोगोंके भोजन करनेका फल मूर्ख दाताको कुछ नहीं मिलता ॥ १७६ ॥ ब्राह्मणोंको भोजन करतेहुए जब अन्धा देखताहै अर्थात् देखनेयोग्य स्थानमें बैठताहै तब ९० ब्राह्मणके भोजनका फल; जब काणा देखताहै तब ६० ब्राह्मणके खानेका फल; जब श्वेतकुष्ठी देखताहै तब १०० ब्राह्मणके भोजनका फल और जब पापरोगी ब्राह्मण देखताहै तब १००० ब्राह्मणके भोजनका फल दाताको नहीं मिलता ॥ १७७ ॥

यावतः संस्पृशेदङ्गैर्ब्राह्मणाञ्छूद्रयाजकः । तावतां न भवेद्दातुः फलं दानस्य पौर्तिकम् ॥ १७८ ॥
सोमविक्रयिणे विष्ठा भिषजे पूयशोणितम् । नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं तु वार्धुषौ ॥ १८० ॥
यत्तु वाणिजके दत्तं नेह नामुत्र तद्भवेत् । भस्मनीव हुतं हव्यं तथा पौनर्भवे द्विजे ॥ १८१ ॥
इतरेषु त्वपाङ्क्त्येषु यथोद्दिष्टेषु साधुषु । मेदोसृङ्मांसमज्जास्थि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥ १८२ ॥

---

* जब बड़ी बहिनके नहीं विवाहे जानेपर छोटी बहिन विवाही जातीहै तब वह अग्रेदिधिषु कहातीहै।

शूद्रको यज्ञ करानेवाला ब्राह्मण पांतिमें जितने ब्राह्मणोंका अङ्ग स्पर्श करताहै दाताको उतने ब्राह्मणोंके खिलानेका फल नष्ट होजाताहै ॥ १७८ ॥ सोमलता बेंचनेवाले ब्राह्मणको दियाहुआ पदार्थ दाताके लिये विष्ठाके समान; चिकित्सकको दियाहुआ पदार्थ पीब और रुधिरके तुल्य है; पुजारीको और वार्धुषिक ब्राह्मणको दियाहुआ पदार्थ निष्फल होताहै ॥१८०॥ वाणिज्य करनेवाले तथा पौनर्भव ब्राह्मणको हव्य-कव्य देनेसे भस्ममें डालीहुई आहुतिके समान इस लोक तथा परलोकमें उसका कुछ फल नहीं मिलताहै ॥ १८१ ॥ इनके सिवाय ऊपर कहेहुए पांतिहीन असाधु ब्राह्मणोंको जो पदार्थ भोजन करायेजातेहैं उनको विद्वान् लोग, मेद, रुधिर, मांस, मज्जा और हड्डीके समान समझतेहैं ॥ १८२॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति १ अध्याय।

रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः काणः पौनर्भवस्तथा। अवकीर्णी कुण्डगोलौ कुनखी श्यावदन्तकः॥२२२॥
भृतकाध्यापकः क्लीबः कन्यादूष्यभिशस्तकः। मित्रध्रुक्पिशुनः सोमविक्रयी परिविन्दकः ॥ २२३ ॥
मातापितृगुरुत्यागी कुण्डाशी वृषलात्मजः। परपूर्वापतिः स्तेनः कर्मदुष्टाश्च निन्दिताः ॥ २२४ ॥

रोगी, हीन अङ्गवाले, अधिक अङ्गवाले, काना, पुनर्भू स्त्रीके पुत्र, व्रतसे नष्ट ब्रह्मचारी, पिताके जीतेहुए जारसे उत्पन्न पुत्र, पिताके मरनेपर जारसे जन्मेहुए पुत्र, कुनखी, कालेदांतवाले, वेतन लेकर पढ़ानेवाले, नपुंसक, कन्याको दूषित करनेवाले, महापातकयुक्त; मित्रद्रोही, चुगुल, सोमलता बेंचनेवाले, परिवेत्ता, माता, पिता अथवा गुरुके त्यागनेवाले, कुण्डका अन्न खानेवाले, वृषलके पुत्र, स्त्रीके दूसरे विवाहके पति, चोर और शास्त्रविरुद्ध कर्म करनेवाले ब्राह्मण श्राद्धकर्ममें निन्दित हैं ॥ २२२—२२४ ॥

(३) अत्रिस्मृति।

अतः परं प्रवक्ष्यामि श्राद्धकर्मणि ये द्विजाः। पितॄणामक्षयं दानं दत्तं येषां तु निष्फलम् ॥ ३४२ ॥
न हीनाङ्गो न रोगी च श्रुतिस्मृतिविवर्जितः। नित्यं चानृतवादी च वणिक् श्राद्धे न भोजयेत्॥३४३॥
हिंसारतं च कपटं उपगुह्य श्रुतं च यः। किङ्करं कपिलं काणं श्वित्रिणं रोगिणं तथा ॥ ३४४ ॥
दुश्चर्माणं शीर्णकेशं पाण्डुरोगं जटाधरम्। भारवाहितरौद्रं च द्विभार्यं वृषलीपतिम् ॥ ३४५ ॥
भेदकारी भवेच्चैव बहुपीडाकरोपि वा। हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्तथा ॥ ३४६ ॥
बहुभोक्ता दीनमुखो मत्सरी क्रूरबुद्धिमान्। एतेषां नैव दातव्यः कदाचित्तु प्रतिग्रहः ॥ ३४७ ॥
अथचेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूषणैः। अदुष्यन्तं यमः प्राह पंक्तिपावन एव सः ॥ ३४८ ॥

श्राद्धकर्ममें पितरोंके लिये जिन ब्राह्मणोंको दान देनेसे अक्षय फल होताहै और जिनको देनेसे कुछ भी फल नहीं होता उनको मैं कहताहूं ॥ ३४२ ॥ हीनअङ्गवाले, रोगी, वेद तथा धर्मशास्त्रको नहीं जाननेवाले, सदा झूठ बोलनेवाले और वाणिज्य करनेवाले ब्राह्मणोंको श्राद्धमें नहीं खिलाना चाहिये ॥ ३४३ ॥ हिंसामें तत्पर कपटी, वेदको छोड़कर दास बननेवाले, पीले रंगवाले, काना, श्वेतकुष्ठी, रोगी, चर्मरोगी, विना केशवाले, पाण्डुरोगी, जटा धारण करनेवाले, बोझा ढोनेवाले, भयङ्कर रूपवाले, दो स्त्री रखनेवाले, वृषलीपति, झगड़ा लगानेवाले, बहुतलोगोंको पीड़ा देनेवाले, हीन अङ्गवाले अथवा अधिक अङ्गवाले ब्राह्मणोंको श्राद्धमें नहीं बुलाना चाहिये ॥ ३४४-३४६ ॥ बहुत भोजन करनेवाले, सदा मुख मलिन रखनेवाले, मत्सरी अर्थात् दूसरेके गुणोंमें दोषोंको देखनेवाले और कठोरबुद्धिवालेको श्राद्धमें कभी कुछ नहीं देना चाहिये ॥३४७॥ जो ब्राह्मण वेद पढ़ेहुए हैं उनके शरीरमें पंक्तिदूषकके चिह्न होनेपर भी उनको यमने शुद्ध कहाहै, वे पंक्तिको पवित्र करनेवाले हैं ❀ ॥ ३४८ ॥

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे प्रकीर्त्तिते। काणः स्यादेकहीनोपि द्वाभ्यामंधः प्रकीर्त्तितः॥३४९॥
न श्रुतिर्न स्मृतिर्यस्य न शीलं न कुलं यतः। तस्य श्राद्धं न दातव्यं त्वन्धकस्यात्रिरब्रवीत् ॥३५० ॥

वेद और धर्मशास्त्र ये ब्राह्मणोंके दो नेत्र हैं, जो इनमेंसे एकको नहीं जानता वह काणा और दोनोंको नहीं जानता वह अन्धा कहाजाता है ॥ ३४९ ॥ जो ब्राह्मण वेद नहीं जानता, शास्त्र नहीं जानता, जिसमें शील नहीं है और जो पण्डितोंके वंशमें उत्पन्न नहीं है, उस अन्धेको श्राद्धमें कुछ नहीं देना ऐसा अत्रिने कहाहै ॥ ३५० ॥

(६ क) उशनस्मृति-४ अध्याय।

यश्च वेदस्य वेदी च विच्छिद्येत त्रिपूरुषम् ॥१९॥
स वै दुर्ब्राह्मणो ज्ञेयः श्राद्धादौ न कदाचन। शूद्रप्रेष्योद्धृतो राज्ञो वृषलो ग्रामयाजकः ॥ २० ॥

❀ वृहद्यमस्मृति-३ अध्यायके ४१ श्लोकमें, लघुशङ्खस्मृतिके २२ श्लोकमें और वसिष्ठस्मृति-११ अध्यायके १७ श्लोकमें भी ३४८ श्लोकके समान है।

वधबन्धोपजीवी च षडेते ब्रह्मबन्धवः । दत्त्वा तु वेदानत्यर्थं पतितान्मनुरब्रवीत् ॥ २१ ॥
वेदविक्रयिणश्चैते श्राद्धादिषु विगर्हिताः । श्रुतिविक्रयिणो यत्र परपूर्वाः समुद्रगाः ॥ २२ ॥
असमानान्याजयन्ति पतितास्ते प्रकीर्त्तिताः । असंस्तुताध्यापका ये भृतकान् पाठयन्ति ये ॥ २३ ॥
अधीयीत तथा वेदान् भृतकास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ २४ ॥

अनाश्रमी यो द्विजः स्यादाश्रमी स्यान्निरर्थकः ॥ २६ ॥

मिथ्याश्रमी च विप्रेन्द्रा विज्ञेयाः पंक्तिदूषकाः । दुश्चर्मा, कुनखी कुष्ठी श्वित्री च श्यावदन्तकः २७
क्रूरो वाणिजिकश्चैव स्तेनः क्लीबोऽथ नास्तिकः । मद्यपो वृषलीसक्तो वीरहा दिधिषूपतिः ॥ २८ ॥
अगारदाही कुण्डाशी सोमविक्रयिणो द्विजाः । परिवेत्ता तथा हिंस्रः परिवित्तिर्निराकृतिः ॥ २९ ॥
पौनर्भवः कुसीदी च तथा नक्षत्रदर्शकः । गीतवादित्रशीलश्च व्याधितः काण एव च ॥ ३० ॥
हीनांगश्चातिरिक्तांगो अवकीर्णी तथैव च । कन्याद्रोही कुण्डगोलौ अभिशस्तोऽथ देवलः ॥ ३१ ॥
मित्रध्रुक् पिशुनश्चैव नित्यं नार्य्या निकृन्तनः । मातापितृगुरुत्यागी दारत्यागी तथैव च ॥ ३२ ॥
अनपत्यः कूटसाक्षी पाचको रोगजीवकः । समुद्रयायी कृतघ्नः रथ्यासमयभेदकः ॥ ३३ ॥
वेदनिन्दारतश्चैव देवनिन्दारतस्तथा । द्विजनिन्दारतश्चैव ते वर्ज्याः श्राद्धकर्मसु ॥ ३४ ॥

जिस ब्राह्मणके ३पुरुतसे वेदका पढ़ना और यज्ञवेदीका उपवेशन छूटगया है वह निन्दित है, उसको श्राद्धमे कभी नहीं बुलाना चाहिये । शूद्रका दास पिताआदिका अपमान करनेवाला,धर्मको रोकनेवाला, राजाका दास, सब लोगोको यज्ञ करानेवाला, वध और बन्धनके काम करके निर्वाह करनेवाला, ये ६ प्रकारके ब्राह्मण बहुत निन्दित हैं; वेददान करनेपर भी मनुने इनको पतित कहाहै ॥१९–२१॥ वेदवेंचनेवाले, पुनर्भू स्त्रीका पति और समुद्रमें यात्रा करनेवाले ब्राह्मण श्राद्धकर्ममें निन्दित है ॥ २२ ॥ जो ब्राह्मण विना विचारकिये सब लोगोंको यज्ञ करातेहै वह पतित कहेजातेहैं; जो अपरिचितको वेद पढ़ातेहै, वेतनदेकर पढ़तेहैं, वेतनलेकर वेद पढातेहै वे भृतक कहेजातेहै ॥ २३–२४ ॥ चारो आश्रमोसे बाहर रहनेवाले अथवा निरर्थक आश्रमी वा मिथ्या आश्रमी ब्राह्मणको पंक्तिदूषक ब्राह्मण जानना चाहिये ॥ २६–२७ ॥ चर्मरोगी, कुनखी, कोढ़ी, श्वेतकुष्ठी, काले दांतवाले, क्रूर, वाणिज्य करनेवाले, चोर, नपुंसक, नास्तिक, मद्य पीनेवाले, वृषलीमें आसक्त रहनेवाले, वीरघाती, दिधिपूपति, घर जलानेवाले, कुण्डका अन्न खानेवाले, सोम वेचनेवाले; परिवेत्ता, हिंसक, परिवित्ति, पञ्चमहायज्ञ नहीं करनेवाले, पौनर्भव, व्याज लेनेवाले; ज्योतिपी,गाने बजाने वाले, रोगी और काने ब्राह्मणोको श्राद्धमें नहीं बुलाना चाहिये ॥ २७–३० ॥ हीनअङ्गवाले, अधिकअङ्गवाले, ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट ब्रह्मचारी, कन्या, दूषक, कुण्ड, गोलक, प्रायश्चित्तयोग्य दोषी, पुजारी, मित्रद्रोही, चुगुल, सदा लोगोको क्लेश देनेवाले, माता, पिता, गुरु अथवा भार्याको त्याग देनेवाले, सन्तानहीन, झूठी साक्षी देनेवाले, रसोईदार, वैद्य, समुद्रमें यात्रा करनेवाले, कृतघ्न, मार्ग तोड़नेवाले, वेदनिन्दक, देवनिन्दक और ब्राह्मणोकी निन्दा करनेवाले, ब्राह्मण श्राद्धमे वर्जित है ॥ ३१–३४ ॥

(८क) बृहद्यमस्मृति–३ अध्याय ।

श्वित्री कुष्ठी तथा शूली कुनखी श्यावदन्तकः । रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः पिशुनो मत्सरी तथा॥३४॥
दुर्भगो हि तथा षण्ढः पाखण्डी वेदनिन्दकः । हैतुकः शूद्रयाजी च अयाज्यानां च याजकः ॥३५ ॥
नित्यं प्रतिग्रहे लुब्धो याचको विषयात्मकः । श्यावदन्तोऽथ वैद्यश्च असदालापकस्तथा ॥ ३६ ॥
एते श्राद्धे च दाने च वर्जनीयाः प्रयत्नतः । तथा देवलकश्चैव भृतको वेदविक्रयी ॥ ३७ ॥
एते वर्ज्याः प्रयत्नेन एवमेव यमोऽब्रवीत् । निराशाः पितरस्तस्य भवन्ति ऋणभा[illegible] ॥ ३८ ॥

श्वेतकुष्ठी, शूलरोगवाले, कुनखी, काले दन्तवाले, रोगी, हीनअङ्गवाले, अधिकअङ्गवाले, चुगुल, मत्सरी, भाग्यहीन, नपुंसक, पाखंडी, वेदनिन्दक, वेद विरुद्ध तर्क करनेवाले, शूद्रको यज्ञ करानेवाले, अनधिकारीको यज्ञ करानेवाले, नित्य दान लेनेमें आसक्त, नित्य याचना करनेवाले, विषमी, वैद्य और झूठ बोलनेवाले ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक श्राद्ध तथ दानसे अलग रखना चाहिये ॥ ३४—३७ ॥ पुजारी, सेवावृत्तिवा और वेद वेचनेवाले ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक श्राद्धमें त्यागदेना चाहिये; ऐसा यमने कहाहै; इनको खिलानेसे पितर-लोग निराश होकर चलेजातेहै; श्राद्ध करनेवाला ऋणी रहजाता है ॥ ३७—३८ ॥

(१८) गौतमस्मृति–१५ अध्याय ।

न भोजयेत्स्तेनक्लीबपतितनास्तिकतद्वृत्तिवीरहाग्रेदिधिषूदिधिषूपतिस्त्रीग्रामयाजकाजपालोत्सृष्टा-ग्निमद्यपकुचरकूटसाक्षिप्रातिहारिकानूपपतिर्यस्य च कुण्डाशी सोमविक्रय्यगारदाही गरदावकी-

र्णिगणप्रेष्योगम्यागामिहिंस्रपरिवित्तिपरिवेत्तृपर्याहितपर्याधातृत्यक्तात्मदुर्बलाः कुनखिश्यावदन्तश्वित्रिपौनर्भवकितवाजपराजप्रेष्यप्रतिरूपकशूद्रापतिनिराकृतिकिलासिकुसीदिवाणिक्शिल्पोपजीविज्यावादित्रतालनृत्यगीतशीलान्पित्रा चाकामेन विभक्ताञ्शिष्यांश्चैके सगोत्रांश्च ॥ २ ॥

चोर, नपुंसक, पतित, नास्तिक, नास्तिकताके कामोंसे जीविका करनेवाले, वीरघाती, अग्रेदिधिपू, दिधिपूपति * स्त्रीको यज्ञ करानेवाले, गांवभरके लोगोंको यज्ञ करानेवाले, बकरे पालनेवाले, अग्निहोत्र त्यागनेवाले, मद्य पीनेवाले, आचारहीन, झूठी साक्षी देनेवाले, दूतके काम करनेवाले, उपपतिवाली स्त्रीके पति, कुण्डका अन्न भोजन करनेवाले, सोम बेंचनेवाले, घर जलानेवाले, विष देनेवाले, ब्रह्मचर्यव्रतसे भ्रष्ट ब्रह्मचारी, समूहलोगोंके दूत, अगम्यास्त्रीसे गमन करनेवाले, हिंसा करनेवाले, परिवित्ति, परिवेत्ता, सब प्रकारके दान लेनेवाले, अपने दुर्बल पुत्रादिकोंको त्यागनेवाले, कुनखी, काले दांतवाले, श्वेतकुष्ठी, पौनर्भव, जुआरी, बकरी चरानेवाले, राजाके दूत, बहुरूपिया, शूद्राके पति, पञ्चमहायज्ञ नहीं करनेवाले, किलासि (एक प्रकारका कुष्ठी), व्याज लेनेवाले, वाणिज्य अथवा शिल्पसे जीविका करनेवाले, धनुष, ताल, नृत्य तथा गीतमें तत्पर रहनेवाले और पिताकी विना इच्छासे धन बांटकर अलग रहनेवाले ब्राह्मणोंको श्राद्धमें नहीं खिलाना चाहिये; कोई आचार्य कहतेहैं कि अपने शिष्योंको और गोत्रके लोगोंको भी नहीं भोजन कराना चाहिये (**) ॥ २ ॥

---

* जो पुरुष कामवश होकर विना नियुक्त हुए अपने मृतभाईकी भार्यामें आसक्त होताहै उसको दिधिपूपति कहतेहैं;—मनुस्मृति—३ अध्या —१७३ श्लोक । जब बड़ी बहिनके नहीं विवाहे जानेपर छोटी बहिन विवाहीजातीहै तब छोटी बहिन अग्रेदिधिपु और बड़ी बहिन दिधिषू कहलाती है;—देवलस्मृति ।

(**) मनु, याज्ञवल्क्य, उशन, बृहद्यम और गौतमस्मृतिमें है कि काले दांतवाले, कुनखी और नपुंसक ब्राह्मणको श्राद्धमें नहीं खिलावे । मनु, याज्ञवल्क्य, उशन और गौतमस्मृतिमें है कि कुण्डका अन्न खानेवाले, चोर, परिवेत्ता, पौनर्भव, सोम बेंचनेवाले और अवकीर्णि ब्राह्मणको; मनु, याज्ञवल्क्य और उशनमें है कि काने ब्राह्मणको; मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि और उशनस्मृतिमें है कि कुण्डब्राह्मणको; मनु, याज्ञवल्क्य और उशनमें है कि कन्यादूषक, गोलक, प्रायश्चित्तकरने योग्य, परपूर्वाके पति और मित्रद्रोही ब्राह्मणको; मनु, याज्ञवल्क्य, उशन और बृहद्यममें है कि चुगुल ब्राह्मणको; मनु, याज्ञवल्क्य और उशनमें है कि पिताको त्यागनेवाले वेतन लेकर पढ़ानेवाले, वेतन देकर पढ़नेवाले और माताको त्यागनेवाले ब्राह्मणको; मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, उशन और गौतममें है कि वृषलीपतिको; मनु, याज्ञवल्क्य और अत्रिस्मृतिमें है कि मूर्ख ब्राह्मणको; मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, उशन और बृहद्यममें है कि रोगी ब्राह्मणको; मनु; याज्ञवल्क्य और गौतममें है कि आचारहीन ब्राह्मणको श्राद्धमें नहीं खिलाना चाहिये । मनु और अत्रिस्मृतिमें है कि कठोरवचन बोलनेवाले, गांवभरके काम करनेवाले और जटाधारी ब्राह्मणको; मनु, अत्रि, उशन और गौतमस्मृतिमें है कि वाणिज्यकरनेवाले ब्राह्मणको; मनु, अत्रि, बृहद्यम और गौतममें है कि श्वेतकुष्ठी ब्राह्मणको श्राद्धमें नहीं भोजन कराना चाहिये । मनु और उशनस्मृतिमें है कि गुरुको त्यागनेवाले, ज्योतिषी और पतितके संसर्गी ब्राह्मणको; मनु, उशन और गौतममें है कि परिवित्ति, नाचने गानेवाले, घर जलानेवाले, नास्तिक वार्द्धुषिक तथा व्याज लेनेवाले और मद्य पीनेवाले ब्राह्मणको; मनु, उशन और बृहद्यममें है कि पुजारी और शूद्रको यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणको; मनु, उशन, बृहद्यम और गौतममें है कि विना विचार किये बहुत लोगोंको यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणको; मनु और उशनमें है कि ब्राह्मणोंके द्वेषी, शूद्रके शिष्य और समुद्रमें यात्रा करनेवाले ब्राह्मणको मनु, उशन और बृहद्यममें है कि वेदके निन्दा करनेवाले ब्राह्मणको; मनु, उशन और गौतममें है कि राजाकी सेवा करनेवाले और पञ्च महायज्ञ नहीं करनेवाले ब्राह्मणको श्राद्धमें नहीं खिलाना । मनु, उशन, बृहद्यम और गौतममें है कि नित्य याचना करनेवाले और वैद्य ब्राह्मणको; मनु और गौतममें है कि जूआ खेलनेवाले, पतित, विष देनेवाले; अग्रे दिधिषूपति और उपपतिवाली स्त्रीके पति, दूतका काम करनेवाले और अग्निहोत्र त्यागनेवाले ब्राह्मणको श्राद्धमें नहीं भोजन कराना चाहिये । मनुमें है कि कुत्ते पालनेवाले, खेती करनेवाले, गुरुके विरोधी, गण्डमाला रोगवाले, वास्तुविद्यासे जीविका करनेवाले, जाल करनेवाले जूआ खेलाकर जीविका करनेवाले, तेलके लिये तिलआदि पेरनेवाले, दाम्भिक, धनुषबाण बनानेवाले, नहरआदि तोड़नेवाले, पशुपालक, पितासे झगडा करनेवाले, पापरोगी, पुत्रके शिष्य, पिता, पक्षी पालनेवाले, समूहलोगोंके अन्नसे जीनेवाले, स्तुति करनेवाले, वृक्ष लगाकर जीविका करनेवाले बाजको पालकर जीविका करनेवाले, मांस बेंचनेवाले, मृगी रोगवाले, मेंढे और भैंसे पालनेवाले, वेतन लेकर, मुर्दे ढोनेवाले, रस बेंचनेवाले, शूद्रके गुरु, शूद्रवृत्तिवाले, शस्त्रविद्या सिखानेवाले, हाथीपांव रोगवाले, हाथी, घोड़े आदि पशुको सिखानेवाले, क्षयी रोगवाले, अन्धा, ब्रह्मचर्यव्रतसे हीन और उन्मत्त ब्राह्मणोंको श्राद्धमें नहीं बुलाना चाहिये । याज्ञवल्क्य, अत्रि, उशन और बृहद्यममें है कि हीन अङ्गवाले और अधिक अङ्गवालेको; अत्रि और बृहद्यममें है कि सदा झूंठ बोलनेवाले और मत्सरी ब्राह्मणको; अत्रि, उशन और गौतममें है कि हिंसा करनेवाले ब्राह्मणको; अत्रि और उशनमें है कि चर्मरोगी ब्राह्मणको; उशन और गौतममें

श्राद्धमें निषेध ६.

(१) मनुस्मृति -३ अध्याय ।

चाण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च । रजस्वला च षण्ढश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान् ॥ २३९ ॥
होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्ष्यते । दैवे कर्मणि पित्र्ये वा तद्गच्छत्ययथातथम् ॥ २४० ॥
घ्राणेन सूकरो हन्ति पक्षवातेन कुक्कुटः । श्वा तु दृष्टिनिपातेन स्पर्शेनावरवर्णजः ॥ २४१ ॥
खञ्जो वा यदि वा काणो दातुः प्रेष्योऽपि वा भवेत् । हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्पुनः २४२

श्राद्ध करनेवालेको ऐसा प्रवन्ध करना चाहिये कि जिसमें भोजन करतेहुए ब्राह्मणोंको चाण्डाल, सूअर, मुर्गा, कुत्ता, रजस्वलास्त्री अथवा नपुंसक नहीं देखसकें; क्योंकि देव अथवा पितरोंके कार्यमें होम, दान, भोजन, आदि जो कुछ इनसे देखाजाताहै वह निष्फल होताहै ॥ २३९-२४० ॥ सूअरके सूंघनेसे, मुर्गेके पांखकी हवासे, कुत्तेके देखनेसे और नीचजातिके छूनेसे श्राद्धादिके अन्नका फल नष्ट होताहै ॥ २४१ ॥ श्राद्धकर्ताको उचित है कि यदि लंगड़ा, काना, अङ्गहीन, अथवा अधिकअङ्गवाला उसका सेवक होवे तौ भी उसको श्राद्धके स्थानसे अलग करदेवे ॥ २४२ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते । श्वानविष्ठासमं भुंक्ते दाता च नरकं व्रजेत् ॥ १५० ॥
इतरेण तु पात्रेण दीयमानं विचक्षणः । न दद्याद्वामहस्तेन आयसेन कदाचन ॥ १५१ ॥
मृन्मयेषु च पात्रेषु यः श्राद्धे भोजयेत्पितॄन् । अन्नदाता च भोक्ता च तावेव नरकं व्रजेत् ॥ १५२ ॥
अभावे मृन्मये दद्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः । तेषां वचः प्रमाणं स्याद्यदन्नं चातिरिक्तकम् ॥ १५३ ॥
सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषु च । भिक्षादातुर्न धर्मोऽस्ति भिक्षुर्भुंक्ते तु किल्बिषम् ॥ १५४ ॥

श्राद्धमें लोहेके वर्तनसे अन्न परोसनेसे वह अन्न खानेवालोंके लिये कुत्तेकी विष्ठाके समान होताहै और भोजन करानेवाला दाता नरकमें जाताहै ॥ १५० ॥ बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि अन्यपात्रका अन्न

--है कि वीरघाती, दिधिषूपति और झूठी साक्षी देनेवाले ब्राह्मणोंको श्राद्धमें नहीं खिलाना चाहिये । अत्रिस्मृतिमें है कि कपटी, पीले वर्णवाले, पाण्डुरोगी, बोझा ढोनेवाले, भयंकर रूपवाले, दो स्त्री रखनेवाले, झगड़ा लगानेवाले, बहुत लोगोंको पीड़ा देनेवाले, बहुत भोजन करनेवाले, सदा मुखको मलीन रखनेवाले और केशरहित ब्राह्मणोंको श्राद्धमें नहीं भोजन कराना चाहिये । उशनस्मृतिमें है कि वधबन्धसे जीविका करनेवाले, अपरिचितको पढ़ानेवाले, चारों आश्रमोंसे बाहर रहनेवाले, मिथ्याआश्रमी, कोढ़ी, क्रूर, भार्याको त्यागनेवाले, सन्तानहीन, रसोईदार,कृतघ्न, मार्ग बन्द करनेवाले और देवताके निन्दा करनेवाले ब्राह्मणोंको श्राद्धमें त्यागदेना चाहिये । बृहद्यमस्मृतिमें है कि शूलरोगवाले, भाग्यहीन, विषयी, सेवावृत्तिवाले, वेद बेंचनेवाले और पाखंडी ब्राह्मणोंको श्राद्धमें नहीं खिलाना चाहिये । गौतमस्मृतिमें है कि स्त्रीको यज्ञ करानेवाले, बकरा पालनेवाले,बहुत लोगोंके दूत, अगम्या स्त्रीसे गमन करनेवाले, दुर्बल पुत्रआदिको त्यागनेवाले, बहुरूपिया और पिताकी विना इच्छासे धन बांटकर अलग रहनेवाले ब्राह्मणोंको श्राद्धमें नहीं भोजन कराना चाहिये बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-५ अध्यायके ५से १३श्लोक तक लिखाहै कि काना, पुनर्भूस्त्रीसे उत्पन्न, रोगी, चुगुल, वार्धुषिक, कृतघ्न, मत्सरी,क्रूर, मित्रद्रोही,कुनखी, श्वेतकुष्ठी, काले दांतवाले, अवकीर्णी, हीन अङ्गवाले, अधिक अंगवाले परिवेत्ता, नपुंसक, दोषी, कुवचन बोलनेवाले, मूल्य लेकर वेद पढानेवाले,कन्याको दूषितः करनेवाले, वाणिज्य करनेवाले, अग्निहोत्र नहीं करनेवाले, सोम बेंचनेवाले, स्त्रीके वशमें रहनेवाले, सन्तानहीन, कुण्डका अन्न खानेवाले, कुण्ड, गोलक, पितामाताको त्यागनेवाले, चोर, वृपलीपति, वृषलीपतिके पुत्र, अनुक्तवृत्तिवाले, विना जानेहुए, परपूर्वाके पति, बकरा पालन करनेवाले, भैंस पालनेवाले, दुष्टकर्मवाले, निन्दित, असत्प्रतिग्रह लेनेवाले, नित्य दान लेनेवाले, ज्योतिषी और दूतके काम करनेवाले ब्राह्मण पितृकार्यमें वर्जित हैं । तेल पेरनेवाल, बहुत लोगोंको यज्ञ करानेवाले, याचक, बकवृत्ति, काकवृत्ति, बिडालवृत्ति, शूद्रवृत्ति, वाग्दुष्ट बालदुष्ट, सदा अप्रियबोलनेवाले, जूए आदिमें आसक्त, बहुत बोलनेवाले, आचाररहित और पितामातासे, अलग रहनेवाले, ब्राह्मण विद्वान् होनेपर भी पितृकार्यमें पूजनीय नहीं हैं ।

उशनस्मृति-५ अध्यायके ३१-३३ श्लोक । श्राद्धकर्त्ताको चाहिये कि हीनअङ्गवाले, पतित, कोढ़ी-पुक्कस. नाकसे दुर्गन्ध निकलनेवाले, मुर्गे; सूअर और कुत्तेको श्राद्धसे दूर रक्खे; भयङ्कररूपवाले, अपवित्र, म्लेच्छ और रजस्वलास्त्रीका स्पर्श नहीं करे; नीलवस्त्र और कषायवस्त्र तथा पाखण्डीमनुष्यको परित्याग करे ।

लघुशङ्खस्मृति-२७ श्लोकमें ऐसा ही है । प्रजापतिस्मृति-११३--११४ श्लोक । लोहेके वर्तनमें पकायाहुआ अन्न काकके मांसके समान है जो उसको खाताहै वह चान्द्रायणव्रत करे;किन्तु केवल श्राद्धकर्ममें-

भी बांये हाथसे अथवा लोहेके वर्त्तनसे कभी नही परोसे ॥ १५१ ॥ श्राद्धके समय मिट्टीके पात्रोंमे पितृ-ब्राह्मणोंको खिलानेसे दाता और भोजन करनेवाला, दोनों नरकमें जातेहै ॐ ॥ १५२ ॥ यदि भोजनयोग्य अन्य कोई पात्र नही मिले तो ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर मिट्टीके बर्त्तनमे ही ब्राह्मण भोजन करावे; क्योंकि उनका वचन प्रमाण है ॐ अतिरिक्त अन्न सोने, लोहे, ताम्बे, कांसे अथवा रूपेके बर्त्तनमें भिक्षुकको देनेसे दाताको कुछ धर्म नही होताहै और भिक्षुक उसके खानेसे पापके भागी होतेहै ॥ १५३–१५४ ॥

(१० क) बृहद्विष्णुस्मृति–७९ अध्याय ।

अथ न नक्तं गृहीतेनोदकेन श्राद्धं कुर्यात् ॥ १ ॥ उग्रगन्धीन्यगन्धीनि कण्टकिजातानि रक्तानि च पुष्पाणि ॥ ५ ॥ शुक्लानि सुगन्धीनि कण्टकिजातान्यपि जलजानि रक्तान्यपि दद्यात् ॥ ६ ॥ वसां मेदश्च दीपार्थे न दद्यात् ॥ ७ ॥ घृतं तैलं वा दद्यात् ॥ ८ ॥ न प्रत्यक्षलवणं दद्यात् ॥ १२ ॥ हस्तेन च घृतव्यञ्जनादि ॥ १३ ॥ पिप्पलीमुकुन्दकभूस्तृणशिग्रुसर्षपसुरसासर्जकसुवर्च्चलकूष्माण्डालाबुवार्ताकपालक्योपोदकीतण्डुलीयककुसुम्भपिण्डालुकमहिषीक्षीराणि वर्जयेत् ॥१७॥ राजमाषमसूरपर्युषितकृतलवणानि च ॥ १८ ॥

रातके लायेहुए जलसे श्राद्ध नही करे ॥१॥ उत्कटगन्धवाला, विना गन्धका, कांटेदारवृक्षका और लाल रङ्गका फूल श्राद्धकर्ममें निषिद्ध है; किन्तु सफेदरङ्गका और गन्धवाला फूल कांटेदार वृक्षके होनेपर भी और कमलका फूल लालरङ्गका होनेपर भी निषिद्ध नहीं है ॐ ॥ ५–६ ॥ वसा अथवा मेदसे दीप नहीं जलावे; घी अथवा तेलसे जलावे ॥ ७–८ ॥ खाली नोन नहीं परोसे ॥ १२ ॥ हाथसे घी अथवा व्यञ्जन नही देवे ॐ ॥ १३ ॥ पिप्पली, मुकुन्दक, भूस्तृण, शिग्रु, (संहिजना), सरसो, सुरसा, सर्जक, सुवर्चल, कुंहड़ा, लौकी, बैगन, पालकी, उपोदकी तण्डुलीयक, कुसुम्भ, सलगम और भैसका दूध श्राद्धके काममें नहीं लगावे ॥ १७ ॥ राजमाष (सफेदउरिद) मसूर, वासी पदार्थ और बनायाहुआ लवण श्राद्धके काममें वर्जदेवे ॐ ॥ १८ ॥

(११) कात्यायनस्मृति–१७ खण्ड ।

आसुरेण तु पात्रेण यस्तु दद्यात्तिलोदकम् । पितरस्तस्य नाश्नन्ति दश वर्षाणि पञ्च च ॥ ९ ॥ कुलालचक्रनिष्पन्नमासुरं मृन्मयं स्मृतम् । तदेव हस्तघटितं स्थाल्यादि दैविकं भवेत् ॥ १० ॥

—यह निषेध है, अन्यत्र नही । श्राद्धके समय ताम्बेके बर्तनमें गौका दूध और लोहेके वर्तनमें अन्न नही पकावे परन्तु ताम्बेके वर्त्तनमें घी और लोहेके वर्त्तनमे तेल युक्त पदार्थ पकानेमें दोष नही है ।

ॐ लघुशङ्खस्मृतिके २५ श्लोकमें इस श्लोकके समान है । लिखितस्मृतिके ५४ श्लोकमें है कि श्राद्धके समय मिट्टीके पात्रोंमे पितृब्राह्मणोंको भोजन करानेसे दाता, पुरोहित और भोजनकरनेवाला; ये तीनों नरकमें जातेहै । उशनस्मृति—५ अध्याय–६० श्लोक और वृद्धशातातपस्मृति–५० श्लोकमे भी ऐसा है ।

ॐ लिखितस्मृति–५५ श्लोक । यदि श्राद्ध ब्राह्मणभोजन करानेके लिये योग्य बर्तन नहीं मिले तो ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर मिट्टीके पात्रमें ही भोजन करादेवे । मिट्टीके पात्रपर घी छिड़क देनेसे वह पवित्र होजाताहै ।

ॐ शंखस्मृति–१४ अध्यायके १५–१६ श्लोक । श्राद्धकर्ममें उत्कट गन्धवाला, विना गन्धवाला, पूज्य वृक्षका और लालरंगका फूल वर्जितहै; किन्तु जलमें उत्पन्न कमलआदिका लालफूल विशेष फलदायक है ।

ॐ लघुशंखस्मृति–२६ श्लोक । हाथसे घी, तेलआदि चिकनीवस्तु, वा नोन अथवा व्यञ्जन देनेसे दाताको कुछ फल नही मिलताहै और खानेवाले पाप भोजन करनेके दोषी होतेहै । उशनस्मृति–५ अध्याय ५८ श्लोक । हाथसे कोई वस्तु नही परोसे तथा खाली नोन नहीं देवे ।

ॐ शंखस्मृति–१४ अध्यायके १९–२१ श्लोक । भूस्तृण, सरसो, शिग्रु (सहिजना), पालकी, सिन्धुक, कुम्हड़ा, लौकी, बैगन, कचनार, पिपली, मिरच, सलगम, बनाया नोन, बांसका अग्रभाग, सफेद उरदी, मसूर, कोदो, कोरदूषक और वृक्षका लाल गोंद श्राद्धकर्ममें वर्जित है । प्रजापतिस्मृति—१२६–१२९ श्लोक । सांवा, कोदो, कांगुन, कलञ्जा, सफेद उर्दी, निष्पावक, कदम्ब, करैयाका फल, बैंगन, कुम्हड़ा; धुंगची, कैत, लौकी, अमचुर, करजीरा, घेकुआर, सरसों और राईको तेल वर्जित है । बकरी और भेड़ीका, दूध, दही, घी तथा मट्ठा और भैसका दही तथा दूध यत्नपूर्वक श्राद्धमें त्याग दे । उशनस्मृति–३ अध्याय १४३–१४५ श्लोक । पिप्पली, क्रमुक, मसूर, कश्मल, लौका, बैंगन, भूस्तृण, सुरस, कूट भद्रमूल, तण्डुलीयक सफेद उर्दी, भैसका दूध, कोदो, कचनार, स्थलपाक और आमरी श्राद्धकर्ममें वर्जित है ।

जो मनुष्य आसुरपात्रसे तिलोदक देताहै उसके घर १५ वर्षतक पितरलोग नहीं खातेहैं ॥ ९ ॥ कुम्हारके चाकसे बनेहुए मिट्टीके पात्रको आसुरपात्र और हाथसे बनेहुए थाली आदि मिट्टीके पात्रको देवताओंके पात्र कहतेहैं ॥ १० ॥

(२९) बौधायनस्मृति--२ प्रश्न-८ अध्याय ।

काषायवासाः कुरुते जपहोमप्रतिग्रहान् । न तद्देवगमं भवति हव्यकव्येषु यद्धविः ॥ २४ ॥

गेरुआवस्त्र धारण करके जप, होम तथा प्रतिग्रह करनेसे और हव्य तथा कव्यकी हवि देनेसे वे देवताओंको प्राप्त नहीं होतीहै ॥ २४ ॥

श्राद्धकर्ताका धर्म और श्राद्धकी विधि * ७.

(१) मनुस्मृति--३ अध्याय ।

पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान् । पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥१२२॥
पितॄणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः । तच्चामिषेण कर्त्तव्यं प्रशस्तेन प्रयत्नतः ॥ १२३ ॥
तत्र ये भोजनीयाः स्युर्ये च वर्ज्या द्विजोत्तमाः । यावन्तश्चैव यैश्चान्नैस्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥१२४॥
द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा । भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे ॥ १२५ ॥
सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसंपदः । पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम् । १२६ ॥
प्रथिता प्रेतकृत्यैषा पित्र्यं नाम विधुक्षये । तस्मिन्युक्तस्येति नित्यं प्रेतकृत्यैव लौकिकी ॥ १२७ ॥

अग्निहोत्री ब्राह्मणको उचित है कि पितृयज्ञ समाप्त करके प्रतिमासमें अमावास्याके दिन पिण्डसे युक्त "अन्वाहार्यक श्राद्ध" करे (क) ॥ १२२॥ पितरोंके मासिकश्राद्धको बुद्धिमान्लोग अन्वाहार्य श्राद्ध कहतेहैं वह यत्नपूर्वक दुर्गन्धरहित मांससे करना चाहिये (ख) ॥ १२३ ॥ उस श्राद्धमें जिन ब्राह्मणोंको खिलाना चाहिये और जो ब्राह्मण वर्जित हैं और जितनी संख्याके तथा जो अन्न खिलानेको कहागया है उन सबको पूरी रीतिसे कहतेहैं ॥ १२४ ॥ देवकार्यमें २ और पितृकार्यमें ३ अथवा दोनों कार्योंमें एकएक ही ब्राह्मण खिलाना चाहिये; धनवान् होनेपर भी इससे अधिक ब्राह्मणको नहीं भोजन करावे; क्योंकि बहुतब्राह्मणोंको खिलानेसे सत्क्रिया, देश, काल, शुद्धता और सुपात्रब्राह्मणका लाभ; इन पांचोंका नियम भङ्ग होजाता है, इसलिये ब्राह्मणभोजनका विस्तार नहीं करे (ग) ॥ १२५—१२६ ॥ इस श्राद्धको अमावास्यामें करनेसे पितरोंका उपकार होताहै और श्राद्ध करनेवालेकी सन्तति और सम्पत्तिकी वृद्धि होतीहै ॥ १२७ ॥

पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते । निमन्त्रयेत त्र्यवरान्सम्यग्विप्रान्यथोदितान् ॥ १८७ ॥
निमन्त्रितो द्विजः पित्र्ये नियतात्मा भवेत्सदा । न च च्छन्दांस्यधीयीत यस्य श्राद्धं च तद्भवेत् १८८

श्राद्धकर्त्ताको उचित है कि श्राद्धके दिनसे एक दिन पहिले अथवा उसी दिन सत्कारपूर्वक ३ योग्य ब्राह्मणोंको निमन्त्रण करे ॥ १८७ ॥ निमन्त्रित हुए ब्राह्मणोंको और श्राद्ध कर्त्ताको चाहिये कि श्राद्धके दिन रात नियमसे रहे और वेदका पाठ नहीं करे ॥ १८८ ॥

राजतैर्भाजनैरेषामथो वा राजतान्वितैः । वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते॥ २०२ ॥
देवकार्याद्द्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यते । दैवं हि पितृकार्यस्य पूर्वमाप्यायनं श्रुतम् ॥ २०३ ॥
तेषामारक्षभूतं तु पूर्वं दैवं नियोजयेत् । रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्राद्धमारक्षवर्जितम् ॥ २०४ ॥
दैवाद्यन्तं तदीहेत पित्राद्यन्तं न तद्भवेत् । पित्राद्यन्तं त्वीहमानः क्षिप्रं नश्यति सान्वयः ॥ २०५ ॥

रूपाके पात्रसे अथवा रूपा मिलाहुआ अन्य धातुके पात्रसे श्रद्धापूर्वक जल भी देनेसे पितरोंकी अक्षय तृप्ति होतीहै ॥ २०२ ॥ द्विजातियोंको उचित है कि देवकार्यसे अधिक पितृकार्य करें; क्योंकि देवकार्य पितृकार्यका अङ्गस्वरूप पूर्वपोषक मात्र कहके शास्त्रमें वर्णित है ॥ २०३ ॥ देवकार्य पितृकार्यका रक्षक है;

---

* मृत्युके श्राद्धका वर्णन अशौचप्रकरणके प्रेतकर्मके विधानमें देखिये ।

(क) कात्यायनस्मृति--२७खण्ड-१ श्लोक । जिस कर्मके आदिमें आभ्युदयिकश्राद्ध होताहै और अन्तमें दक्षिणा दीजाती है और अमावसको दूसरा श्राद्ध होताहै उसको अन्वाहार्य कहतेहैं ।

(ख) पुलस्त्यस्मृति--नीवारआदि मुनियोंके अन्नसे श्राद्ध करना ब्राह्मणके लिये, मांससे श्राद्ध करना क्षत्रिय और वैश्यके लिये और सहतसे श्राद्ध करना शूद्रके लिये प्रधान श्राद्ध कहागया है और शास्त्रोक्त श्राद्ध सब वर्णोंके लिये हैं ॥ (१)

(ग) बौधायनस्मृति--२ प्रश्न-८ अध्यायके २९-३० श्लोक और वसिष्ठस्मृति-११ अध्यायके २४-२५ श्लोकमें सब श्राद्धोंके लिये ऐसा ही लिखाहै ।

इसीलिये पितृकार्यमें विश्वेदेव आवाहनआदि देवकार्य पहिले कियाजाताहै; यदि इस प्रकारसे श्राद्धकी रक्षा नहीं की जातीहै तो राक्षस लोग उसको भ्रष्ट करतेहैं ॥ २०४ ॥ श्राद्धके आदिमें विश्वेदेवका आवाहन और अन्तमें उनका विसर्जन कियाजाता है; जो मनुष्य श्राद्धके आदि और अन्तमें देवकार्य नहीं करके पितरकार्य करताहै वह श्राद्धमें विघ्न होजानेके कारण अपने कुटुम्ब सहित नष्ट होजाताहै ॥ २०५ ॥

शुचिं देशं विविक्तं च गोमयेनोपलेपयेत् । दक्षिणाप्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥ २०६ ॥
अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतीरेषु चैव हि । विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा ॥ २०७ ॥

श्राद्धकार्यके लिये पवित्र और एकान्तस्थानको गोबरसे लिपवाकरके उसको यत्नपूर्वक दक्षिणकी ओर ढालुआ करना चाहिये ॥ २०६ ॥ स्वाभाविक पवित्र नदीआदिके किनारेपर तथा एकान्तस्थानमें श्राद्धकरनेसे पितरगण सदा सन्तुष्ट होतेहैं ॥ २०७ ॥

आसनेषूपक्लृप्तेषु बर्हिष्मत्सु पृथक्पृथक् । उपस्पृष्टोदकान्सम्यग्विप्रांस्तानुपवेशयेत् ॥ २०८ ॥
उपवेश्य तु तान्विप्रानासनेष्वजुगुप्सितान् । गन्धमाल्यैः सुरभिभिरर्चयेद्देवपूर्वकम् ॥ २०९ ॥
तेषामुदकमानीय सपवित्रांस्तिलानपि । अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो ब्राह्मणो ब्राह्मणैः सह ॥ २१० ॥
अग्नेः सोमयमाभ्यां च कृत्वाप्यायनमादितः । हविर्दानेन विधिवत्पश्चात्संतर्पयेत्पितॄन् ॥ २११ ॥
अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् । यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ॥ २१२ ॥
अक्रोधनान्सुप्रसादान्वदन्त्येतान्पुरातनान् । लोकस्याप्ययने युक्ताञ्छ्राद्धदेवान्द्विजोत्तमान् ॥२१३ ॥
अपसव्यमग्नौ कृत्वा सर्वमावृत्य विक्रमम् । अपसव्येन हस्तेन निर्वपेदुदकं भुवि ॥ २१४ ॥
त्रींस्तु तस्माद्धविःशेषात्पिण्डान्कृत्वा समाहितः । औदकेनैव विधिना निर्वपेद्दक्षिणामुखः ॥ २१५ ॥
न्युप्य पिण्डांस्ततस्तांस्तु प्रयतो विधिपूर्वकम् । तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्याल्लेपभागिनाम् ॥ २१६॥
आचम्योदक्परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून् । षड्ऋतूंश्च नमस्कुर्यात्पितॄनेव च मन्त्रवित् ॥ २१७ ॥
उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः । अवजिघ्रेच्च तान्पिण्डान्यथान्युप्तान्समाहितः ॥ २१८ ॥
पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकां मात्रां समादायानुपूर्वशः । तानेव विप्रानासीनान्विधिवत्पूर्वमाशयेत् ॥ २१९ ॥

श्राद्धकरनेवालेको उचित है कि उस स्थानमें कुशों सहित अलग अलग बिछायेहुए सुन्दर आसनोंपर आचमन आदिसे शुद्धहुए ब्राह्मणोंको एकएक करके बैठावे ॥ २०८ ॥ उन अनिन्दित ब्राह्मणोंको आसनोंपर बैठाकरके केशरआदि सुगन्ध; फूल माला और धूपसे पहिले देवकर्मके ब्राह्मणोंको और पीछे पितरकर्मके ब्राह्मणोंको पूजे ॥ २०९ ॥ ब्राह्मणोंके लिये कुशा और तिलमिश्रित अर्घजल इकट्ठा करके सबकी आज्ञा लेकर इसभांति अग्निमें होम करे ॥ २१० ॥ पहिले अग्नि; चन्द्रमा और यमको विधिपूर्वक हविसे प्रसन्न करके पीछे पितरोंको तृप्त करे ॥ २११ ॥ यदि अग्नि नहीं होवे तो ब्राह्मणके हाथमें ही आहुति देवे; क्योंकि वेद जाननेवाले ब्राह्मण कहतेहैं कि अग्निके समान ब्राह्मण हैं ॥ २१२ ॥ ऋषियोंने क्रोधरहित; प्रसन्नमुख; विद्यावृद्ध और लोगोंके कल्याण करनेमें तत्पर ब्राह्मणोंको श्राद्ध कर्मके पात्र कहाहै ॥ २१३ ॥ होम करनेके सामानको क्रमसे दाहिनी ओर धरके पीछे दाहिने हाथसे पिण्ड धरनेको भूमिमें जल छिड़के ॥ २१४ ॥ श्राद्धकर्ताको उचित है कि श्राद्धके होमसे बचेहुए अन्नसे ३ पिण्ड बनावे और जलदानकी ही बिधिसे दक्षिणकी ओर मुख करके सावधानचित्तसे उनको कुशके ऊपर रक्खे ॥ २१५ ॥ अपने गृह्यमें कहीहुई विधिसे कुशोंके ऊपर पिण्डदान करके लेपभागी अर्थात् अपने प्रपितामहके पिताआदि तीन पुरुषोंकी तृप्तिके लिये कुशासे हाथ पोंछे ॥ २१६॥ उत्तरमुख हो आचमन करके धीरे २ तीन प्रणायाम और वसन्तआदि ६ ऋतुओंको नमस्कार करे और दक्षिणमुख होकर मन्त्रयुक्त पितरोंको नमस्कार करे ॥ २१७ ॥ पिण्डके पास रक्खेहुए पात्रमेंका शेष जल धीरे धीरे तीनों पिण्डोंके समीपमें गिरावे और जिस क्रमसे पिण्ड रक्खेगये थे उसी क्रमसे उठाउठाकर प्रत्येक पिण्डको सावधान होकर सूंघे ॥ २१८ ॥ पिताके पिण्डके क्रमसे तीनों पिण्डोंमेंसे थोड़ाथोड़ा भाग लेकर पहिले बैठाएहुए ब्राह्मणोंका भोजन करावे ॥ २१९ ॥

ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् । विप्रवद्वापि तं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् ॥ २२० ॥
पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः । पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम्॥२२१॥
पितामहो वा तच्छ्राद्धं भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः । कामं वा समनुज्ञातः स्वयमेव समाचरेत् ॥ २२२ ॥
तेषां दत्त्वा तु हस्तेषु सपवित्रं तिलोदकम् । तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत स्वधैषामस्त्विति ब्रुवन् ॥ २२३॥
पाणिभ्यां तूपसंगृह्य स्वयमन्नस्य वर्द्धितम् । विप्रान्तिके पितॄन्ध्यायञ्छनकैरुपनिक्षिपेत् ॥ २२४ ॥
उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते । तद्विप्रलुम्पन्त्यसुराः सहसा दुष्टचेतसः ॥ २२५ ॥

गुणांश्च सूपशाकाद्यान्पयोदधिघृतं मधु । विन्यसेत्प्रयतः पूर्वं भूमावेव समाहितः ॥ २२६ ॥
भक्ष्यं भोज्यं च विविधं मूलानि च फलानि च । हृद्यानि चैव मांसानि पानानि सुरभीणि च२२७
उपनीय तु तत्सर्वं शनकैः सुसमाहितः । परिवेषयेत प्रयतो गुणान्सर्वान्प्रचोदयन् ॥ २२८ ॥
नास्रमापातयेज्जातु न कुप्येन्नानृतं वदेत् । न पादेन स्पृशेदन्नं न चैतदवधूनयेत् ॥ २२९ ॥
अस्रं गमयति प्रेतान्कोपोऽरीननृतं शुनः । पादस्पर्शस्तु रक्षांसि दुष्कृतीनवधूननम् ॥ २३० ॥
यद्यद्रोचेत विप्रेभ्यस्तत्तद्दद्यादमत्सरः । ब्रह्मोद्याश्च कथाः कुर्यात्पितॄणामेतदीप्सितम् ॥ २३१ ॥
स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि । आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च२३२
हर्षयेद्ब्राह्मणांस्तुष्टो भोजयेच्च शनैःशनैः । अन्नाद्येनासकृच्चैतान्गुणैश्च परिचोदयेत् ॥ २३३ ॥

पिताके जीवित रहनेपर मरेहुए पितामहआदि (तीनपुरुषों) का श्राद्ध करे अथवा पितृब्राह्मणके स्थानमें जीवित पिताको ही खिलादेवे ॥ २२० ॥ यदि पिता मरगये होवें; किन्तु पितामह जीतेहों तो पिताको पिण्ड देनेके बाद प्रपितामहको पिण्ड देवे अथवा पितामहके ब्राह्मणके स्थानमें जीवितपितामह स्वयं भोजन करे; ऐसा मनुने कहा है अथवा पौत्र उनकी आज्ञा लेकर स्वयं ही अपनी इच्छानुसार श्राद्धका काम पूरा करे, ❀ ॥ २२१-२२२ ॥ श्राद्धकरनेवालेको चाहिये कि उन ब्राह्मणोंके हाथमें पवित्रसहित तिल और जलको देकर स्वधा अस्तु इत्यादि मंत्रोंको पढ़ताहुआ ऊपर कहेहुए पिण्डोंके अग्रभागोंको क्रमसे देवे; उसके बाद अन्नसे पूर्णपात्र दोनों हाथोंसे उठाकर पितरोंका स्मरण करताहुआ ब्राह्मणोंके निकट रक्खे ॥ २२३--२२४ ॥ जो अन्न एकहाथसे ब्राह्मणोंके पास पहुंचायाजाताहै, दुष्ट असुर लोग हठात् उसको हरण करलेतेहैं ॥ २२५ ॥ श्राद्धकर्ताको उचित है कि दाल; शाक आदि व्यञ्जन, दूध, दही, घी, और मधु; लड्डूआदि भक्ष्य; खीरआदि भोज्यपदार्थ; विविधप्रकारके मूल तथा फल, सुन्दर मांस ⊛ और गन्धयुक्त जलको सावधानहोकर एकाग्रचित्तसे लाकर ब्राह्मणोंके पास भूमिपर रक्खे; पश्चात् उन लोगोंको परोसे और परोसनेके समय उन वस्तुओंका गुण कहे ॥ २२६--२२८ ॥ परोसनेके समय रोवे नहीं, क्रोध नहीं करे, झूठ नहीं बोले, अन्नको पैरसे नहीं छूवे तथा अन्नके पात्रको नहीं उछाले ॥ २२९ ॥ उससमय रोनेसे अन्न प्रेतोंको प्राप्त होताहै, क्रोध करनेसे वह अन्न शत्रुओंको मिलताहै, झूठ बोलनेसे कुत्तोंको प्राप्त होताहै, पैरसे स्पर्श करनेसे राक्षस खाजातेहैं और अन्नके पात्रको उछालनेसे वह अन्न पापीपुरुषोंको पहुंचता है ॥ २३० ॥ जो जो भोजनकी वस्तु ब्राह्मणोंको अच्छी लगे वही वस्तु कुटिलताको छोड़कर परोसे और वेदसम्बन्धी बात कहे; यह पितरोंको वाञ्छित है ॥ ॥ २३१ ॥ वेद, धर्मशास्त्र, सौपर्ण, मैत्रावरुणआदि आख्यान; महाभारतआदि इतिहास, पुराण और श्रीसूक्त, शिवसूक्तआदि खिल ब्राह्मणोंको सुनावे ॥ २३२ ॥ प्रसन्नचित्त होकर प्रियवचनोंसे ब्राह्मणोंको प्रसन्न करे; धीरे २ उनको भोजन करावे और भोजनके पदार्थोंका गुण कहकर वारम्वार उनसे फिर लेनेको कहे॥२३३॥

व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत् । कुतपं चासने दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम्॥ २३४ ॥
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः । त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम्॥२३५॥

ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित भी निज पुत्रीके पुत्रको यत्नपूर्वक श्राद्धमें भोजन करावे; बैठनेको नैपाली कम्बल दे और श्राद्धस्थानमें तिल छिड़कदेवे ॥ २३४ ॥ श्राद्धकर्ममें पुत्रीका पुत्र, कम्बल और तिल, ये तीन

❀ कात्यायनस्मृति--१६ खण्ड । पिताके जीवित रहनेपर पुत्रको पितृकर्म करनेका अधिकार नहीं है; क्योंकि वेदमें लिखाहै कि जीतेहुएका उल्लङ्घन करके अर्थात् जीवित पिताको छोड़के पितामहादिको कुछ नहीं देवे ॥ १२ ॥ पितामहके जीवित रहतेहुए यदि पिता मरगया हो तो पिताको पिण्ड देवे; प्रपितामहके रहतेहुए यदि पिता और पितामह मरगये हों तो दोनोंका श्राद्ध करे ॥ १३ ॥ यदि पिता, पितामह और प्रपितामह तीनों मरगये हों तो तीनोंको तीन पिण्ड देवे ॥ १४ ॥ दूसरे वेदमें है कि द्विज जीतेहुएका उल्लङ्घन करके मरेहुएको अन्न और जल देवें; जिसका पिता जीवित है वह अपने पिताके पितरोंको श्राद्ध करे ॥ १५ ॥ यदि पिताके मरनेके बाद पितामहकी मृत्यु हो तो पोता एकादशाहआदि सोलहश्राद्ध करे; किन्तु यदि पितामहका कोई अन्य पुत्र होय तो पोता श्राद्ध नहीं करे ॥ १६—१७ ॥ १८ खण्ड-२१ श्लोक । जबतक पुत्रोंका विवाह नहीं हो तबतक पिता अपने पुत्रोंके नामकरण आदि संस्कारोंमें अपने पितरोंको पिण्ड देवे; विवाह होजानेपर पुत्र भी पितरोंको पिण्ड दे; पिताके मरजानेपर जो अधिकारी हो वही पिण्ड देवे । देवलस्मृति-५९-६० श्लोक । यदि माता अथवा पिता म्लेच्छ होगये हों तो देवलके वचनानुसार पुत्र श्राद्धके समय म्लेच्छ माता या पिताको छोड़कर पितामह आदिको पिण्ड देवे ।

⊛ प्रजापतिस्मृति—१५२ श्लोक । ब्रह्माने मांसके स्थानमें उर्दी नियत कियाहै, पितरलोग उसीसे तृप्त होतेहैं, विना उर्दीका श्राद्ध नहीं करना चाहिये ।

परमपवित्र हैं और पवित्र रहना; क्रोधरहित होना और शीघ्रता न करना; ये तीन काम प्रशंसाके योग्य हैं ※ ॥ २३५ ॥

ब्राह्मणं भिक्षुकं वापि भोजनार्थमुपस्थितम्। ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः शक्तितः प्रतिपूजयेत् ॥ २४३ ॥

श्राद्धकर्ताको उचित है कि ब्राह्मणभोजनके समय यदि ब्राह्मण अथवा भिक्षुक भोजनके लिये आजावें तो निमन्त्रित ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर अपनी शक्तिके अनुसार उनका सत्कार करे ॥ २४३ ॥

सार्ववर्णिकमन्नाद्यं संनीयाप्लाव्य वारिणा। समुत्सृजेद्भुक्तवतामग्रतो विकिरन्भुवि ॥ २४४ ॥
असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम्। उच्छिष्टं भागधेयं स्याद्दर्भेषु विकिरश्च यः ॥ २४५॥
उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च। दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥ २४६ ॥

व्यञ्जनआदि मिलेहुए ब्राह्मणोंके जूठे अन्नको एकत्र करके जलसे धोकर भोजनकियेहुए ब्राह्मणोंके आगे भूमिपर कुशाके ऊपर फैलादेवे;वह अन्न अग्निसंस्कारके अयोग्य मृत बालक तथा विना अपराध कुलकी स्त्रियोंको त्यागनेवालोंको प्राप्त होताहै ॥ २४४–२४५ ॥ जो श्राद्धकी भूमिमें पिण्ड बनाये अन्नका शेष गिरताहै वह आलसरहित सच्चे सेवकोंका भाग कहागया है ※ ॥ २४६ ॥

आसपिण्डक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु। अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥ २४७ ॥
सह पिण्डक्रियायां तु कृतायामस्य धर्मतः। अनयैवावृता कार्यं पिण्डनिर्वपणं सुतैः ॥ २४८ ॥

मरेहुए द्विजातिका श्राद्ध सपिण्डीकरणके पहिले विना विश्वेदेवका करे एक ब्राह्मण भोजन करावे और एक पिण्ड दे ॥ २४७ ॥ मृत मनुष्यके पुत्रोंको उचित है कि पिताका सपिण्डीकरण धर्मपूर्वक समाप्त होजानेपर पार्वणश्राद्धकी विधिसे मृताहआदि तिथियोंमें पिण्डदान करे ॥ २४८ ॥

श्राद्धं भुक्त्वा य उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति। स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः॥२४९॥

जो मनुष्य श्राद्ध भोजनका जूठा अन्न शूद्रको देताहै वह मूर्ख अधोमुख होकर कालसूत्र नामक नरकमें पड़ताहै ※ ॥ २४९ ॥

पृष्ट्वा स्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः। आचान्तांश्चानुजानीयादभितो रम्यतामिति ॥ २५१ ॥
स्वधास्त्वित्येव तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम्। स्वधाकारः परा ह्याशीः सर्वेषु पितृकर्मसु ॥ २५२ ॥
ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत्। यथा ब्रूयुस्तथाकुर्यादनुज्ञातस्ततो द्विजैः ॥ २५३ ॥
पित्र्ये स्वदितमित्येव वाच्यं गोष्ठे तु सुश्रुतम्। संपन्नमित्यभ्युदये दैवे रुचितमित्यपि ॥ २५४ ॥

ब्राह्मणोंको तृप्तहुआ जानकर भोजन होचुका ऐसा पूँछकर उनको आचमन करावे; आचमन करनेपर उनको विश्राम करनेके लिये कहै ॥ २५१ ॥ ब्राह्मणलोग श्राद्धकर्तासे स्वधास्तु कहैं; सब पितृकार्योंमें स्वधा शब्दका उच्चारण ही परम आशीर्वाद समझाजाताहै ॥ २५२ ॥ श्राद्धकर्त्ताको उचित है कि ब्राह्मणभोजनसे बचाहुआ अन्न जिसको देनेको ब्राह्मणलोग कहैं उसको देवे ॥ २५३ ॥ माता पिताके एकोद्दिष्टश्राद्धमें "स्वदितम्" अर्थात् अच्छा भोजनहुआ, गोष्ठिश्राद्धमें "सुश्रुतम्" अर्थात् अच्छा श्रवणकिया, आभ्युदयिक श्राद्धमें "सम्पन्नम्" अर्थात् अच्छाहुआ, देवकर्ममें "रुचितम्" ऐसा वचन कहे ॥ २५४ ॥

अपराह्णस्तथा दर्भा वास्तुसंपादनं तिलाः। सृष्टिर्मृष्टिर्द्विजाश्चाग्र्याः श्राद्धकर्मसु संपदः ॥ २५५ ॥
दर्भाः पवित्रं पूर्वाह्णो हविष्याणि च सर्वशः। पवित्रं यच्च पूर्वोक्तं विज्ञेया हव्यसंपदः ॥ २५६ ॥
मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम्। अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते ॥ २५७ ॥

अपराह्णकाल, कुशा, श्राद्धके स्थानआदिकी शुद्धि, तिल, प्रसन्नमनसे अन्नादि दान, अन्नआदिकी शुद्धि और पंक्तिपावनब्राह्मण श्राद्धकी सम्पत्ति हैं अर्थात् ये सब श्राद्धमें अवश्य होना चाहिये ॥ २५५ ॥ कुशा,

---

※ वसिष्ठस्मृति–११ अध्यायके ३२ श्लोकमें और शातातपस्मृतिके १०७ श्लोकमें इस श्लोकके समान है।

※ वसिष्ठस्मृति—११ अध्याय। श्राद्धके ब्राह्मणभोजनका जूठा अन्न सूर्यके अस्त होनेसे पहिले नहीं उठावे; क्योंकि उसमें अमृतकी धारा झरतीहैं, उनको वे पितर पीतेहैं जिनको जलदान नहीं कियागया है ॥ १८ ॥ जबतक सूर्य अस्त नहीं हो तबतक श्राद्धके जूठेको उठाकरके स्थानकी शुद्धि नहीं करे क्योंकि उससे अक्षयदूधकी धारा पंक्तिभागी पितरोंको प्राप्त होतीहै ॥ १९ ॥ अपने वंशका जो मनुष्य उपनयनसंस्कारसे पहिले मरजातेहैं उनका भाग ब्राह्मणभोजनका जूठा और उच्छेषण है, ऐसा मनुने कहाहै ॥ २० ॥ जो पिण्ड बनाये अन्नका शेष लेप भूमिपर गिरताहै उसको उच्छेषण कहतेहैं; जो मनुष्य सन्तानहीन अथवा अल्पायु होकर मराहो उसको वह देना चाहिये ॥ २१ ॥

※ वृद्धशातातपस्मृति–५१ श्लोक। जो मनुष्य श्राद्धभोजनका जूठा अन्न शूद्रको देताहै वह घोर नरकमें जाताहै और पशु पक्षीकी योनिमें जन्म लेताहै।

मन्त्र, पूर्वाह्णकाल, सब प्रकारकी हविष्य और पूर्वोक्त पवित्र वस्तुसंपादनादि देवकर्मकी सम्पत्ति हैं ॥ २५६ ॥ नीवारआदि मुनियोंके अन्न, दूध, सोमलताका रस, दुर्गन्धआदि रहित मांस और विना बनायाहुआ (सेन्धा-आदि) नोन; ये सब स्वाभाविक हवि कहेजातेहैं ॥ २५७ ॥

एवं निर्वपणं कृत्वा पिण्डांस्तांस्तदनन्तरम् । गां विप्रमजमग्निं वा प्राशयेदप्सु वा क्षिपेत् ॥ २६० ॥
पिण्डनिर्वपणं केचित्परस्तादेव कुर्वते । वयोभिः खादयन्त्यन्ये प्रक्षिपन्त्यनलेऽप्सु वा ॥ २६१ ॥

श्राद्धकर्त्ताको उचित है कि कार्यके अन्तमें सब पिण्ड गौ, ब्राह्मण अथवा बकरीको खिलादेवे या अग्निमें अथवा जलमें डालदेवे * ॥ २६० ॥ कोई २ आचार्य पहिले ब्राह्मणोंको भोजन कराके पीछे पिण्डदान करते हैं, कोई पक्षियोंको पिण्ड खिलातेहैं और कोई पिण्डको अग्नि अथवा जलमें डालदेते हैं ॥ २६१ ॥

पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा । मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक् सुतार्थिनी ॥ २६२ ॥
आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम् । धनवन्तं प्रजावन्तं सात्त्विकं धार्मिकं तथा ॥ २६३ ॥

यदि पतिव्रता, धर्मपत्नी और पितरोंकी पूजामें तत्पर रहनेवाली स्त्री पुत्रकी इच्छा करे तो उसको पितामहका पिण्ड खिलाना चाहिये; उसके खानेसे उसको बड़ी अवस्थावाला, यशस्वी, बुद्धिमान्, धनवान्, पुत्रवान्, सत्त्वगुणी; और धार्मिक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ २६२–२६३ ॥

प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिप्रायं प्रकल्पयेत् । ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्त्वा बान्धवानपि भोजयेत् ॥२६४॥
उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः । ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥२६५ ॥

श्राद्धकर्ताको उचित है कि उसके पश्चात् दोनों हाथ धोकर और आचमन करके अपनी ज्ञातियोंको भोजन करावे और उनके भोजन करानेके बाद माताके पक्षवालोंको भी खिलावे ॥ २६४ ॥ ब्राह्मणलोगोंके चलेजानेपर उनका जूठास्थान साफ करे; उसके बाद श्राद्धकर्म समाप्त होजानेपर बलिवैश्वदेव, होम आदि नित्यकर्म करे; यही धर्मव्यवस्था है ॥ २६५ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय ।

अमावास्याष्टकावृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम् । द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत्सूर्यसंक्रमः २१७ ॥
व्यतिपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः । श्राद्धं प्रतिरुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ॥ २१८॥
निमन्त्रयेत पूर्वेद्युर्ब्राह्मणानात्मवाञ्छुचिः । तैश्चापि संयतैर्भाव्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ २२५ ॥
अपराह्णे समभ्यर्च्य स्वागतेनागतांस्तु तान् । पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत् ॥ २२६ ॥
युग्मान्दैवे यथाशक्ति पित्र्येऽयुग्मांस्तथैव च । परिस्तृते शुचौ देशे दक्षिणाप्रवणे तथा ॥ २२७॥
द्वौ दैवे प्राक् त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव वा । मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदेविकम् ॥ २२८ ॥
पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थं कुशानपि । आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा ॥ २२९ ॥
यवैरन्ववकीर्याथ भाजने सपवित्रके । शन्नोदेव्या पयः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा ॥ २३० ॥
यादिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेत् । दत्त्वोदकं गन्धमाल्यं धूपदानं सदीपकम् ॥ २३१ ॥
तथाच्छादनदानं च करशौचार्थमम्बु च । अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणामप्रदक्षिणम् ॥ २३२ ॥
द्विगुणांस्तु कुशान्दत्त्वा ह्युशंतस्त्वेत्यृचा पितॄन् । आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायांतु नस्ततः ॥२३३॥
अपहता इति तिलान्विकीर्य च समन्ततः । यवार्थास्तु तिलैः कार्याः कुर्यादर्घ्यादि पूर्ववत् ॥२३४॥
दत्त्वार्घ्यं संस्रवांस्तेषां पात्रे कृत्वाभिधानतः । पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः॥२३५॥
अग्नौ करिष्यन्नादाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम् । कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो हुत्वाग्नौ पितृयज्ञवत् ॥ २३६ ॥
हुतशेषं प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहितः । यथालाभोपपन्नेषु रौप्येषु च विशेषतः ॥ २३७ ॥
दत्त्वान्नं पृथिवीपात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम् । कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत् ॥ २३८ ॥
सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इति त्र्यृचम् । जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेपि वाग्यताः॥२३९॥
अन्नमिष्टं हविष्यं च दद्यादक्रोधनोऽत्वरः । आतृप्तेस्तु पवित्राणि जप्त्वा पूर्वजपं तथा ॥ २४० ॥
अन्नमादाय तृप्ताःस्थ शेषं चैवानुमान्य च । तदन्नं विकिरेद्भूमौ दद्याच्चापः सकृत्सकृत् ॥ २४१ ॥
सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः । उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान् दद्याद्वै पितृयज्ञवत् ॥ २४२ ॥
मातामहानामप्येवं दद्यादाचमनं ततः । स्वस्ति वाच्यं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च ॥ २४३ ॥
दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत् । वाच्यतामित्यनुज्ञातः प्रकृतेभ्यः स्वधोच्यताम्॥२४४॥

---

* याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्यायके २५७ श्लोकमें ऐसा ही है।

ब्रूयुरस्तु स्वधेत्युक्ते भूमौ सिंचेत्ततो जलम्। विश्वेदेवाश्च प्रीयंतां विप्रैश्चोक्तमिदं जपेत्॥ २४५॥
दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च। श्रद्धा च नो माव्यगमद्बहु देयं च नोऽस्त्विति॥२४६॥
इत्युक्त्वोक्त्वा प्रिया:वाचः प्रणिपत्य विसर्जयेत्। वाजेवाज इति प्रीतः पितृपूर्वं विसर्जनम्॥२४७॥
यस्मिंस्ते संस्रवाः पूर्वमर्घ्यपात्रे निवेशिताः। पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा विप्रान् विसर्जयेत्॥ २४८॥
प्रदक्षिणमनुव्रज्य भुञ्जीत पितृसेवितम्। ब्रह्मचारी भवेत्तां तु रजनीं ब्राह्मणैः सह॥ २४९॥

अमावास्या, अष्टका, पुत्रजन्मआदि वृद्धि, कृष्णपक्ष, मकर और कर्ककी संक्रान्ति, द्रव्यप्राप्ति, उत्तम ब्राह्मणोंकी प्राप्ति, मेष और तुलाकी संक्रान्ति, सूर्यकी बारहो संक्रान्ति, व्यतिपातयोग, गजच्छायायोग, चन्द्र॰ ग्रहण, सूर्यग्रहण और श्राद्धमें श्रद्धा; ये सब श्राद्धकरनेके समय कहेगयेहैं॥ २१७–२१८॥ श्राद्धसे एकदिन पहिले योग्य ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देवे और उसदिनसे जितेन्द्रिय तथा पवित्र रहे; निमन्त्रित ब्राह्मणोंको भी मन, वचन तथा कर्मसे संयमसे रहना चाहिये॥ २२५॥ श्राद्धकर्ता निमन्त्रित ब्राह्मणोंको अपराह्णकालमें स्वागत करके और हाथ शुद्ध करके उनको आचमन कराकर आसनोंपर बैठावे॥२२६॥ देवकार्यमें युग्म और पितृका॰ र्यमें अयुग्म ब्राह्मणोंको यथाशक्ति बैठावे;आच्छादित,पवित्र और दक्षिणको ढालुआ भूमिपर श्राद्ध करे॥२२७॥ विश्वेदेवोंकी ओर २ ब्राह्मण पूर्वाभिमुख और पितरोंकी ओर ३ ब्राह्मण उत्तराभिमुख अथवा दोनों ओर एक एक ब्राह्मण बैठावे और इसी प्रकार मातामह आदिके श्राद्धमें भी ब्राह्मणोंको बैठावे अथवा पितृश्राद्ध और मातृश्राद्धमें विश्वेदेवोंका काम एकही ब्राह्मणसे करालेवे ❀॥ २२८॥ ब्राह्मणोंको हाथ धुलाकर बैठनेके लिये कुशा देवे और उनसे आज्ञा लेकर "विश्वेदेवास" मन्त्रसे विश्वेदेवोंका आवाहन करे॥ २२९॥ यव प्रक्षेप करनेके पश्चात् पवित्री सहित अर्घपात्रमें "शन्नो देवी" मन्त्रसे जल और "यवोसि" मन्त्रसे यव डाले ॥२३०॥ "या दिव्या" मन्त्रसे ब्राह्मणोंके हाथमें अर्घ्यको छोड़े; उसके बाद जल, चन्दन, माला, धूप और दीप देवे॥२३१॥ आच्छादनके लिये वस्त्र और हाथ धोनेको जल देकर फिर अपसव्य हो पितरोंको वामावर्त्तसे आसनके लिये दोहरे कुशाओंको देकर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे"उशन्त"इत्यादि ऋचोंसे पितरोंका आवाहन करे और "आयन्तु नः" इत्यादि मन्त्रोंको जपे॥२३२–२३३॥"अपहता" मन्त्रसे चारों ओर तिल छिड़के;यवके स्थानमें तिलसे काम लेवे, अर्घ्य आदि पहिलेके समान करे॥२३४॥ब्राह्मणोंके हाथमें अर्घ्य देवे और उनके हाथसे जो जल चुवे उसको पात्रमें करके "पितृभ्यः स्थानमसि" मन्त्रसे उस पात्रको औंधादेवे॥ २३५॥ घी मिलेहुए अन्नको लेकर अग्नौकरणके लिये ब्राह्मणोंसे पूछे, जब वे लोग आज्ञा देवें तब पितृयज्ञके विधानसे अग्निमें होम करे॥२३६॥ होमसे बचेहुए अन्नको एकाग्रचित्त होकर पात्रमें विशेष करके रूपाके पात्रमें रक्खे॥ २३७॥ पात्रमें अन्नको रखकर "पृथिवीपात्रम्" मन्त्रसे पात्रका अभिमन्त्रण करके"इदं विष्णुः" मन्त्रसे अन्नके ऊपर ब्राह्मणके अंगूठेका स्पर्श करावे॥ २३८॥ व्याहृतियों सहित गायत्री और "मधुवाता" इन तीन ऋचाओंका जप करके ब्राह्मणोंसे कहे कि सुखसे भोजन करो; वे लोग मौन होकर भोजन करें॥ २३९॥ श्राद्धकर्ताको चाहिये कि क्रोध और शीघ्रताको छोड़कर प्रिय और हविष्य अन्नको तृप्तिपर्यन्त देवे और पवित्र मन्त्रोंको जपकर पूर्वोक्त प्रकारसे गायत्री आदिको जपे॥ २४०॥ अन्न लेकर ब्राह्मणोंसे पूछे कि आप लोग तृप्त हुए? जब वे लोग कहें कि तृप्त होगये तब उनकी आज्ञासे बचेहुए अन्नको कुशा रखकर भूमिपर विकिरा देवे,फिर मुखशुद्धिके लिये ब्राह्मणोंको एकएक बार जलदेवे॥ २४१॥ तिलसहित सब अन्नको लेकर दक्षिणमुख होकर उच्छिष्टके समीपमें ही पितृयज्ञके समान पिण्ड देवे॥२४२॥ इसी प्रकारसे (आवाहनसे पिण्डपर्यन्त) मातामह आदिका भी पिण्डकर्म करे; ब्राह्मणोंको आचमन करावे; ब्राह्मण उस समय कहें कि स्वस्ति हो और अक्षय हो॥ २४३॥ श्राद्ध करनेवाला ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा देवे और उनसे कहे कि पिता आदि और मातामह आदिको दियाहुआ स्वधा होय अर्थात् उनको पहुंचे॥ २४४॥ जब ब्राह्मण कहदेवे कि स्वधा हो तब भूमिपर जल छिड़के और कहे कि विश्वेदेवा प्रसन्न होवें, जब ब्राह्मणभी ऐसाही कहदेवें तब ऐसा कहे कि हमारे कुलमें दाता, वेद और सन्ततिकी बढ़ती होवे; पितृकर्मसे हमारी श्रद्धा दूर नहीं होवे और

❀ शंखस्मृति–१४ अध्यायके ९—१० श्लोक। देवकार्यमें पूर्वाभिमुख २ ब्राह्मणोंको और पितृकार्यमें उत्तराभिमुख ३ ब्राह्मणोंको अथवा दोनों जगह एकएक ब्राह्मणको विधिपूर्वक भोजन करावे या पितृकार्यमें एकही पंक्तिपावन ब्राह्मणको खिलाकर देवकार्यके निमित्त बनेहुए नैवेद्यको पश्चात् अग्निमें डालदेवे। गौतमस्मृति १५ अध्याय १ अंक। श्राद्धमें अपने उत्साहके अनुसार नवसे कम विषम संख्याके (१, ३, ५ अथवा ७) अच्छे वचन, रूप, अवस्था और स्वभाववाले श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको भोजन करावे; कोई आचार्य कहतेहैं कि ऐसे गुणवान् युवा ब्राह्मणको पहिले देवे। वसिष्ठस्मृति–११ अध्यायके २६–२८ श्लोक। अथवा वेदपारग, शास्त्राभ्यासी, सौम्य स्वभाववाला और कुलक्षणोंसे रहित एकही ब्राह्मणको खिलावे; यदि पितृकार्यमें एकही ब्राह्मणको भोजन करावे तो पकायेहुए सब अन्नोंमेंसे एक पात्रमें परोसकर विश्वेदेवोंके निमित्त देवमन्दिरमें रखकर श्राद्ध करे; पीछे उस अन्नको अग्निमें होम करदेवे अथवा ब्रह्मचारीको देदेवे।

दान देने योग्य बहुत पदार्थ हमको होवें ॥२४५-२४६॥ इसके पश्चात् प्रियवचन कहकर "वाजेवाजे" इस ऋचाको पढ़कर पहिले पितरोंका उसके बाद विश्वेदेवोंका विसर्जन करे ॥२४७॥ जिस अर्घसम्बधि पितृपात्रको ब्राह्मणोंके हाथसे गिरेहुए जलसहित औंधादिया था उसको उत्तान करके ब्राह्मणोंका विसर्जन करे ॥२४८॥ ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करके और उनको अपनी सीमातक पहुंचाकर श्राद्धका बचाहुआ अन्न भोजन करे। उस रातमें श्राद्धकर्त्ता और श्राद्धके ब्राह्मणोंको ब्रह्मचारी रहना चाहिये ॥ २४९ ॥

एवं प्रदक्षिणावृत्को वृद्धौ नान्दीमुखान्पितॄन् । यजेत दधिकर्कंधुमिश्रान् पिण्डान् यवैः क्रियाः २५०
एकोद्दिष्टं देवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम् । आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् ॥ २५१ ॥
उपतिष्ठतामक्षय्यस्थाने विप्रविसर्जने । अभिरम्यतामिति वदेद्ब्रूयुस्तेभिरताः स्म ह ॥ २५२ ॥

इसी प्रकारसे पुत्रजन्म आदि होनेपर नान्दीमुख पितरोंकी पूजा दक्षिणावर्तसे करे, दही और बेरसे मिश्रित पिण्ड देवे और तिलका काम यवसे करे॥ २५० ॥ एकोद्दिष्ट अर्थात् एकके उद्देशसे होनेवाले श्राद्धमें विश्वेदेव नहीं होतेहैं, एकही अर्घ्य होताहै और एकही पवित्री होतीहै; आवाहन तथा अग्नौकरण होम नहीं होता और सब कर्म अपसव्यसे कियेजातेहैं ॥ २५१ ॥ इस श्राद्धमें अक्षय्यके स्थानमें, "उपतिष्ठताम्"और ब्राह्मणोंके विसर्जनमें "अभिरम्यताम्" कहना चाहिये और ब्राह्मणोंको कहना चाहिये कि "अभिरताः स्मः" ॥ २५२ ॥

गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् । अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसिञ्चयेत् ॥ २५३ ॥
ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत् । एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥ २५४ ॥
अर्वाक् सपिण्डीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत् । तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजे ॥ २५५ ॥
मृतेहनि तु कर्त्तव्यं प्रतिमासन्तु वत्सरम् । प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेहनि ॥ २५६ ॥

अर्घ्य लिये चन्दन, जल और तिलके सहित ४ पात्र बनावे और प्रेतपात्रसे पितरोंके पात्रमें "ये समाना" इन दो ऋचाओंसे जल सींचे; बाकी कर्म पूर्वके समान करे; सपिण्डीकरण और एकोद्दिष्ट श्राद्ध स्त्रीका भी होताहै ॥ २५३-२५४ ॥ यदि किसीका सपिण्डीकरण वर्ष दिनसे पहिले होवे तो भी वह वर्ष दिनतक (प्रतिदिन अथवा प्रति मास) ब्राह्मणको जलपूर्ण घड़ा और अन्न देवे ॥ २५५ ॥ मासिक श्राद्ध प्रति मास मरनेकी तिथिमें, वार्षिक श्राद्ध प्रतिवर्ष मरनेके महीने और तिथिमें और आद्यश्राद्ध मरनेके ११ वें दिन (ब्राह्मण) करे ❀ ॥ २५६ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

तीर्थस्नानं महादानं यच्चान्यत्तिलतर्पणम् । अब्दमेकं न कुर्वीत महागुरुनिपाततः ॥ ३९३ ॥
गङ्गा गया त्वमावास्या वृद्धिश्राद्धे क्षयहानि । मघापिण्डप्रदानं स्यादन्यत्र परिवर्जयेत् ॥ ३९४ ॥

पिताके मरनेपर एक वर्षतक तीर्थस्नान, महादान और तिलोंसे अन्य किसीका तर्पण नहीं करे ॥३९३॥ गङ्गा, गया अथवा अमावास्यामें तथा वृद्धिश्राद्ध, मृत्युकी तिथिका श्राद्ध और मघा नक्षत्रका श्राद्ध एक वर्षके भीतर भी करे; अन्य कर्मोंको त्याग देवे ॥ ३९४ ॥

(६क) उशनस्मृति-३ अध्याय ।

कर्मारम्भेषु सर्वषु कुर्यादभ्युदयं ततः ॥ ११४ ॥
पुत्रजन्मादिषु श्राद्धं पर्वाणां पार्वणं स्मृतम् । अहन्यहनि नित्य स्यात्काम्यं नैमित्तिकं पुनः॥११५॥

पुत्रजन्म आदिके समय कर्मके आरम्भमें जो श्राद्ध कियाजाताहै उसको अभ्युदयिक श्राद्ध; पर्वके समय जो कियाजाताहै उसको पार्वण श्राद्ध; प्रतिदिन जो कियाजाताहै उसको नित्यश्राद्ध; स्वर्गादिकी इच्छासे जो कियाजाताहै उसको काम्यश्राद्ध और गजच्छाया आदिमें जो कियाजाताहै उसको नैमित्तिक श्राद्ध कहतेहैं ⊛ ॥ ११४-११५ ॥

व्रीहिभिश्च यवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा । श्यामाकैश्च तु वै शाकैर्नीवारैश्च प्रियङ्गुभिः ॥ १३४ ॥
गोधूमैश्च तिलैर्मुद्गैर्माषैः प्रीणयते पितॄन । मिष्टान्फलरसानिक्षून्मृदुकाञ्छस्यदाडिमान् ॥ १३५ ॥
विदार्याश्च करण्डाश्च श्राद्धकाले प्रदापयेत् । लाजान्मधुयुतान्दद्यात्सक्तून् शर्करया सह ॥ १३६ ॥

❀ वृद्धशातातपस्मृतिके ४० श्लोकमें इस श्लोकके समान है ।

⊛ यमस्मृति-८२ श्लोक । पण्डित लोग नित्य, नैमित्तिक, काम्य वृद्धि (आभ्युदयिक) और पार्वण ये ५ प्रकारके श्राद्ध कहतेहैं ।

धान, यव, उर्दी, जल, मूल, फल, सांवा, शाक, तिन्नी, कांगुन, गेंहू, तिल, मूंग और माषसे पितरोंको तृप्त करे ॥ १३४—१३५ ॥ मीठे फलका रस, ऊख, कोमल शस्य, अनार, विदारीकन्द, करण्ड, मधुके सहित धानका लावा और शक्करके सहित दही श्राद्धके समय देवे ❀ ॥ १३५–१३६ ॥

९ अध्याय।

अपि मूलफलैर्वापि प्रकुर्यान्निर्द्धनो द्विजः। तिलोदकैस्तर्पयित्वा पितॄन्स्नात्वा द्विजोत्तमः ॥ ८१ ॥

निर्धन ब्राह्मण फल अथवा मूलसेही श्राद्ध करे और स्नान करके जल और तिलसे पितरोंका तर्पण करे ८१

(८ क) बृहद्यमस्मृति–५ अध्याय।

अनेके यस्य ये पुत्राः संसृष्टा हि भवन्ति च। ज्येष्ठेन हि कृतं सर्वं सफलं पैतृकं भवेत् ॥ १४ ॥
वैदिकं च तथा सर्वं भवत्येव न संशयः। पृथक् पिण्डं पृथक् श्राद्धं वैश्वदेवादिकं च यत् ॥ १५ ॥
भ्रातरश्च पृथक्कुर्युर्नाविभक्ताः कदाचन। अपुत्रस्य च पुत्राः स्युः कर्त्तारः सांपरायणाः ॥ १६ ॥
सफलं जायते सर्वमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥ १७ ॥

जिसको अनेक पुत्र हैं और वे एकत्रित रहतेहों तो उसका पितृकर्म ज्येष्ठ पुत्रके ही करनेसे सफल होताहै; इसी भांति वैदिक कर्म (अग्निहोत्र आदि) भी ज्येष्ठके करनेसे निःसन्देह सफल होताहै ॥ १४–१५॥ सब भाई अलग अलग पिण्डदान, श्राद्ध और विश्वेदेवादिक कर्म करें; किन्तु यदि धनका विभाग नहीं हुआ होवे तो अलग अलग कभी नहीं करें अर्थात् ज्येष्ठ भाईही करे। शातातप कहतेहैं कि पुत्रहीन मनुष्यका श्राद्ध उसके भाईके पुत्र आदिके करनेसे सफल होताहै ✿ ॥ १५–१७ ॥

(११) कात्यायनस्मृति–१६ खण्ड।

मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः। द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयन्तु पितुः पितुः ॥ २३ ॥

पुत्रिकाके पुत्रको उचित है कि पहिला पिण्ड अपनी माताको, दूसरा पिण्ड नानाको और तीसरा पिण्ड नानाके पिताको देवे ◎ ॥ २३ ॥

(१६) लिखितस्मृति।

सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं प्रतिसंवत्सरं द्विजः। मातापित्रोः पृथक् कुर्यादेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि ॥ १७ ॥
वर्षेवर्षे तु कर्तव्यं मातापित्रोस्तु सन्ततम्। अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकन्तु निर्वपेत् ॥ १८ ॥
संक्रान्तावुपरागे च पर्वण्यपि महालये। निर्वाप्यास्तु त्रयः पिण्डा एकतस्तु क्षयेऽहनि ॥ १९ ॥
एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते द्विजः। अकृतं तद्विजानीयात्स मातापितृघातकः ॥ २० ॥
अमावास्यां क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथ वा यदि। सपिण्डीकरणादूर्ध्वं तस्योक्तः पार्वणो विधिः ॥२१ ॥

सपिण्डी करणके पीछे प्रति वर्ष माता पिताके मरनेके दिनमें द्विज पृथक् पृथक् एकोदिष्ट श्राद्ध करें ॥ १७ ॥ उस श्राद्धमें विश्वेदेवको छोड़कर एक ब्राह्मण खिलावे और केवल एक पिण्ड देवे ॥ १८ ॥ संक्रांति, ग्रहण, अमावास्या और आश्विनके कृष्णपक्षके पार्वण श्राद्धमें ३ पिण्ड और मातापिताकी मरनेकी तिथिमें एक पिण्ड देवे ॥ १९ ॥ जो मनुष्य मातापिताकी मृत्युकी तिथिमें एकोदिष्ट श्राद्ध नहीं करके पार्वण श्राद्ध करताहै, उसका श्राद्ध निष्फल होताहै और उसको माता पिताके वध करनेका पाप लगताहै ※ ॥ २०॥ यदि कोई अमावास्या अथवा आश्विनके कृष्ण पक्षमें मरजावे तो उसके निमित्त सपिण्डीकरण करनेके पश्चात् पार्वण श्राद्ध करना चाहिये ॥ २१ ॥

अनग्निको यदा विप्रः श्राद्धं करोति पार्वणम् ॥ ३० ॥
तत्र मातामहानां च कर्तव्यमभयं सदा। अपुत्रा ये मृताः केचित्पुरुषा वा स्त्रियोपि वा ॥ ३१ ॥

❀ उशनस्मृति–५ अध्यायमें विस्तारपूर्वक श्राद्धका विधान है। शंखस्मृति—१४ अध्यायके १७–१८ श्लोक। पिण्डके पास घी अथवा तिलके तेलसे दीप जलावे, घी और मधुसे युक्त गुग्गुलका धूप और पीसकरके केशर और चन्दन देवे। २२–२३ श्लोक। आम, आंवरा, ऊख, दाख, दही, अनार, विदारीकन्द, केला, मधु सहित धानका लावा, शक्कर सहित सत्तू; सिंगाड़ा और विसेतक यत्नपूर्वक श्राद्धमें ब्राह्मणोंको खिलावे।

✿ बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–५ अध्याय–४३ श्लोक। अपुत्र पुरुषके भाईका पुत्र उसके पुत्रके समान है; वही उसका पिण्ड इत्यादि क्रिया करे।

◎ लघुशंखस्मृति–२१ श्लोक और लिखितस्मृति ५३ श्लोकमें भी ऐसा है। कात्यायनस्मृतिके १ खण्डसे ५ खण्डतक श्राद्धकी विधि है।

※ जो एकके लिये किया जाताहै उसको एकोदिष्ट श्राद्ध और जो अनेक पितरोंके लिये कियाजाताहै उसको पार्वण श्राद्ध कहतेहैं।

तेभ्य एव प्रदातव्यमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् । यस्मिन्राशिगते सूर्ये विपत्तिः स्याद्द्विजन्मनः ॥ ३२ ॥
तस्मिन्नहनि कर्त्तव्यं दानपिण्डोदकक्रियाः । वर्षवृद्ध्यभिषेकादि कर्तव्यमधिकेन तु ॥ ३३ ॥
अधिमासे तु पूर्वं स्याच्छ्राद्धं संवत्सरादपि ॥ ३४ ॥

अग्निहोत्रसे रहित ब्राह्मण यदि पार्वण श्राद्ध करे तो नाना आदिको भी पिण्ड देवे ॥ ३०-३१ ॥ जो पुरुष अथवा स्त्री सन्तानहीन मरगई है, उनका एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये; पार्वण नहीं ॥ ३१-३२ ॥ जिस राशिके सूर्यमें द्विजकी मृत्यु हो उसी राशिके उसी दिनमें दान, पिण्डदान और तर्पण करे ॥ ३२-३३ ॥ वर्षकी वृद्धिमें स्नान आदि अधिकके साथ अधिक करे; मलमास आजानेपर वर्षपूर्तिसे पहिले भी श्राद्ध करे ॥ ३३—३४ ॥

श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे यस्तु भुञ्जीत विह्वलः । पतन्ति पितरस्तस्य लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ५६ ॥
श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च अध्वानं योऽधिगच्छति । भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं पांसुभोजनाः॥५७॥

जो मनुष्य श्राद्ध करके लोभसे व्याकुल हो (उस दिन अथवा उस रातमें) दूसरेके श्राद्धमें भोजन करताहै उसके पितर पिण्डोदक क्रियासे रहित होकर नरकमें जातेहैं ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य स्वयं श्राद्ध करके अथवा दूसरेके श्राद्धमें खाकर दूरतक मार्गमें चलताहै, उसके पितर एक महीनेतक धूल भोजन करतेहैं॥५७॥

(१८) गौतमस्मृति-१५ अध्याय ।

पुत्राभावे सपिण्डा मातृसपिण्डाः शिष्याश्च दद्युस्तदभावे ऋत्विगाचार्यौ ॥ १ ॥

पुत्रके नहीं रहनेपर सपिण्डी माताके सपिण्डी अथवा शिष्य और इनके नहीं रहनेपर ऋत्विक् अथवा आचार्य श्राद्ध करें ॥ १ ॥

श्वचण्डालपतितवेक्षणे दुष्टं तस्मात्परिश्रिते दद्यात्तिलैर्वा विकिरेत्पङ्क्तिपावनो वा शमयेत् ॥ ४ ॥

कुत्ते, चाण्डाल अथवा पतित लोगोंके देखनेसे श्राद्ध दूषित होजाताहै, इस लिये घेरेहुए एकान्त स्थानमें पिण्डदान करे अथवा श्राद्धके स्थानकी चारों ओर तिल छिड़कदेवे अथवा श्राद्धमें पंक्तिपावन ब्राह्मणके रहनेपर भी श्राद्धका दोष शान्त होजाताहै ॥ ४ ॥

(२१) प्रजापतिस्मृति ।

अष्टकासु च सर्वासु साग्निकैर्नवदैवतम् । पित्राद्यं मातृमध्यं च कर्तव्यं न निरग्निकैः ॥ ३१ ॥
महायज्ञरताः शान्ता लौकिकाग्निं च रक्षयेत् । धर्मशास्त्रोक्तमार्गी यः स साग्निकसमो मतः ॥३२॥

अष्टकाओंमें श्राद्ध करनेका अधिकार केवल अग्निहोत्रीका है; यह श्राद्ध ९ दैवतका होताहै; प्रथम पिता, पितामह और प्रपितामहका; उसके पश्चात् माता, मातामही और प्रमातामहीका और उसके बाद मातामह प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहका ॥ ३१ ॥ पञ्चमहायज्ञ करनेवाले, शांत स्वभाववाले, लौकिकाग्निकी रक्षा करनेवाले और धर्मशास्त्रके मार्गसे चलनेवाले मनुष्य भी अग्निहोत्रीके समान हैं ॥ ३२ ॥

स्वगोत्रा सुभगा नारी भ्रातृभर्तृसुतान्विता । गुरुशुश्रूषणोपेता पित्रन्नं कर्तुमर्हति ॥ ५७ ॥
आचार्यानी मातुलानी पितृमातृष्वसा स्वसा । एता ह्यविधवाः कुर्युः पितृपाकं सुतास्नुषा ॥५८ ॥
बहुप्रजास्तु या नार्यो भ्रातृवत्यः कुलोद्भवाः । पञ्चाशत्परितोऽब्दानां यदि वा विधवा अपि ॥ ५९ ॥
पितृव्यभ्रातृजायाश्च मातरः पितृमातरः । पाकं कुर्युः सदा पित्र्यं मृदुशीला च गोत्रिणी ॥ ६० ॥
भ्राता पितृव्यो भ्रातृव्यः स्वसृपुत्रः स्वयं पचेत् । पित्रन्नं च सुतः शिष्यो दौहित्रो दुहितुः पतिः६२॥

गोत्रकी, सौभाग्यवती, भाईवाली, पतिवाली, पुत्रवती और श्रेष्ठोंकी सेवा करनेवाली स्त्री श्राद्धमें ब्राह्मण भोजनका पाक बनावे ॥५७॥ आचार्यकी भार्या, मामी, फूफू, मौसी, बहिन, पुत्री और पतोहू यदि विधवा नहीं होवें तो श्राद्धमें पाक बनावें ॥५८॥ बहुपुत्रवती, भाईवाली, कुलीन और ५० वर्षसे अधिक अवस्थाकी स्त्री विधवा होनेपर भी श्राद्धके पाकको बनासकतीहै ॥ ५९ ॥ चाची, भौजाई, माता, दादी और अच्छी स्वभाववाली गोत्रकी स्त्री श्राद्धका पाक बनावे ॥ ६० ॥ भाई, चाचा, भतीजा, भानजा, पुत्र, शिष्य, दौहित्र और दामाद पितरोंके पाक बनानेके अधिकारी हैं ॥ ६२ ॥

पितरश्च पितामहास्तथा च प्रपितामहाः । एवं पार्वणसंज्ञा च तथा मातामहेष्वपि ॥ १८१ ॥
एषां पत्न्यः क्रमाज्ज्ञेयास्तिस्रस्तिस्रश्च पार्वणे । उक्तानि चत्वार्येतानि पार्वणानि च पञ्चमम् ॥१८२॥
वृद्धौ द्वादशदैवत्याश्च चैवान्वष्टकासु च । षड् दर्शे त्रीणि यज्ञे च एक एव क्षयेऽहनि ॥ १८३ ॥
अन्वष्टकासु नवभिः पिण्डैः श्राद्धमुदाहृतम् । पित्रादौ मातृमध्यस्थं ततो मातामहान्तिकम् ॥ १९१॥
मातरः प्रथमं पूज्याः पितरश्च ततः परम् । मातामहाश्च तदनु वृद्धिश्राद्धे त्वयं क्रमः ॥ १९३ ॥

१ पिता, पितामह, प्रपितामह, २ मातामह, प्रमातामह और वृद्ध प्रमातामह; ३ माता पितामही और प्रपितामही और ४ मातामही प्रमातामही और वृद्ध प्रमातामही इन ४ पंक्तिको पार्वण कहतेहैं पांचवीं पंक्ति पार्वण नहीं है ॥ १८१-१८२ ॥ वृद्धिश्राद्धभी पूर्वोक्त ६ पितर और ६ उनकी स्त्रियोंका होताहै; किन्तु अष्टकाके बादकी नवमीका श्राद्ध इन १२ का नहीं होता; अमावास्याका श्राद्ध ६ दैवत्य अर्थात् पिता, पितामह और प्रपितामहका; माता पितामही और प्रपितामहीका, यज्ञका श्राद्ध ३ दैवत्य अर्थात् पिता, पितामह और प्रपितामहका और मरनेकी तिथिका श्राद्ध केवल मृत मनुष्यका होताहै * ॥ १८३ ॥ अष्टकाके बादकी नवमीका श्राद्ध ९ पिण्डोंसे ९ पितरोंका होताहै, आदिमें पिता, पितामह और प्रपितामहका; मध्यमें माता, पितामही और प्रपितामहीका और अन्तमें मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहका ॥१९१॥ नान्दीश्राद्धमें प्रथम माता,पितामही (दादी) और प्रपितामहीका, उसके बाद पिता, पितामह और प्रपितामहका और उसके पश्चात् (सपत्नीक) मातामह (नाना), प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहका श्राद्ध होताहै † ॥१९२ ॥

(२४) लघुआश्वलायनस्मृति-१८ नान्दीश्राद्धप्रकरण ।

आधाने पुंसि सीमन्ते जातनामनि निष्क्रमे । अन्नप्राशनके चौले तथा चैवोपनायने ॥ १ ॥
ततश्चैव महानाम्नि तथैव च महाव्रते । अथोपनिषद्गोदाने समावर्तनकेषु च ॥ २ ॥
विवाहे नियतं नान्दीश्राद्धमेतेषु शस्यते ॥ ३ ॥

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन महानाम्निव्रत, महाव्रत, उपनिषद्व्रत,केशान्त समावर्त्तन और विवाहके समय निश्चय करके नान्दीश्राद्ध करना चाहिये ‡ ॥ १-३ ॥

(३०) प्रेतकर्मप्रकरण ।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यत्र कामप्रचोदितम् । सूतके मृतकै चैव नैव कुर्यात्कथञ्चन ॥ ७९ ॥

सूतक अथवा मृत्युके अशौचमें नित्य, नैमित्तिक और काम्यश्राद्ध कभी नहीं करना चाहिये § ॥ ७९॥

श्राद्धमें खानेवाले ब्राह्मणका धर्म ८.

(१) मनुस्मृति-३ अध्याय ।

निमन्त्रितो द्विजः पित्र्ये नियतात्मा भवेत्सदा । न च च्छन्दांस्यधीयीत यस्य श्राद्धं च तद्भवेत् १८८
निमन्त्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान्द्विजान् । वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥ १८९ ॥
केतितस्तु यथान्यायं हव्यकव्ये द्विजोत्तमः । कथंचिदप्यतिक्रामन्पापः सूकरतां व्रजेत् ॥ १९० ॥
आमंत्रितस्तु यः श्राद्धे वृषल्या सह मोदते । दातुर्यद्दुष्कृतं किंचित्तत् सर्वं प्रतिपद्यते ॥ १९१ ॥

श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणोंको उचित है कि भोजन करनेके दिन तथा उस दिनकी रातमें नियमसे रहे और वेद नहीं पढ़े; श्राद्ध करनेवालेको भी इसी नियमसे रहना चाहिये ॥ १८८ ॥ निमन्त्रित ब्राह्मणोंके शरीरमें अदृश्यरूपसे पितरगण स्थित होतेहैं, वे लोग प्राण वायुके समान उनके चलनेपर चलतेहैं और बैठनेपर बैठतेहैं ॥ १८९ ॥ जो ब्राह्मण देवकर्म तथा पितृकर्ममें शास्त्रके अनुसार निमन्त्रित होकर उसमें कलह आदि अयोग्य काम करताहै वह उस पापसे मरनेपर सूअर होताहै ॥ १९० ॥ जो ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रित होकर शूद्रासे गमन करताहै, उसको दाताका सब पाप लगताहै ॥ १९१ ॥

अत्युष्णं सर्वमन्नं स्याद्भुञ्जीरंस्ते च वाग्यताः । न च द्विजातयो ब्रूयुर्दात्रा पृष्टा हविर्गुणान् ॥२३६ ॥
यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः । पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ २३७ ॥
यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद्भुङ्क्ते दक्षिणामुखः । सोपानत्कश्च यद्भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥ २३८ ॥

---

* कात्यायनस्मृति--२४ खण्ड-१४ श्लोक । अर्घा सहित आद्यश्राद्ध, वर्षांतक षोडश श्राद्ध और प्रति वर्षके वार्षिक श्राद्धको छोड़कर शेष पार्वणादि श्राद्धोंमें छः छः पिण्ड देना चाहिये यह मर्यादा है ।

† प्रजापतिस्मृतिमें सर्वत्र श्राद्धका ही वर्णन है ।

‡ कात्यायनस्मृति--१ खण्डके ११-१३ श्लोक । नान्दीमुखश्राद्धमें गणेशके सहित गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातृ, लोकमातृ, धृति, पुष्टि, तुष्टि और आत्मदेवता; इन १६ मातृकाओंको पूजना चाहिये ।

§ लघुआश्वलायनस्मृतिके २३ वें श्राद्धप्रकरण और २४ वें श्राद्धोपयोगी प्रकरणमें विस्तारसे श्राद्धका विधान है ।

श्राद्धमें भोजनका अन्न खूब गरम रहे; ब्राह्मण लोग मौन होकर भोजन करें; यजमानके पूछनेपर भी भोजनकी वस्तुओंके गुण दोषको वचनसे नहीं कहे; क्यों कि जबतक अन्न गरम रहताहै, ब्राह्मण लोग चुपचाप भोजन करतेहैं और भोजनकी वस्तुओंके गुण दोष नहीं कहेजाते तभीतक पितरलोग ब्राह्मणोंके मुखसे भोजन करतेहैं ❀॥ २३६—२३७ ॥ श्राद्धके समय शिरमें वस्त्र बान्धकर, दक्षिण ओर मुख करके अथवा जूता पहनकर भोजन करनेसे उस अन्नको राक्षस खालेतेहैं, वह पितरोंको नहीं प्राप्त होताहै ॥ २३८॥

(५ क) लघुहारीतस्मृति।

पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम् । दानं प्रतिग्रहो होमः श्राद्धभुगष्ट वर्जयेत् ॥ ७५ ॥
अध्वनीनो भवेदश्वः पुनर्भोक्ता तु वायसः । कर्मकृज्जायते दासो दरिद्रत्व प्रतिग्रहे ॥ ७६ ॥
होमं कृत्वा तु रोगी स्यात्सूकरो मैथुनी भवेत् । पाठादायुःक्षयं याति दानं निष्फलतामियात्॥७७॥
एकोद्दिष्ट तु योऽश्नीयाद्गन्धो लेपनमेव च । विप्रस्य विदुषो देहे तावद्ब्रह्म न कीर्त्तयेत् ॥ ७८ ॥

दुबारा भोजन करना, मार्ग चलना, बोझा ढोना, विद्या पढ़ना, मैथुन करना, दान देना, दान लेना और होम करना ये काम श्राद्धमें भोजन करनेवालेको नहीं करना चाहिये ❁ ॥ ७५ ॥ श्राद्धमें भोजन करके मार्गमें चलनेवाला घोड़ा, दुबारा भोजन करनेवाला काक, बोझा ढोनेवाला दास, दान लेनेवाला दरिद्री होम करनेवाला रोगी, मैथुन करनेवाला सूअर और विद्या पढ़नेवाला आयुहीन होताहै और देनेवालेका दान निष्फल होजाताहै ✤ ॥ ७६—७७ ॥ एकोद्दिष्ट श्राद्धमें भोजन करनेवाले विद्वान् ब्राह्मणको उचित है कि जबतक चन्दन आदि लेपका गन्ध उसके शरीरमें रहे तबतक वेद नहीं पढ़े ॥ ७८ ॥

(६ क) उशनस्मृति-५अध्याय ।

आमंत्रिताश्च ये विप्रा श्राद्धकाल उपस्थिते । वसेरन्नियताः सर्वे ब्रह्मचर्यपरायणाः ॥ ५ ॥
अक्रोधनोऽत्वरो यत्र सत्यवादी समाहितः । भयमैथुनमध्वानं श्राद्धभुग्वर्जयेज्जपम् ॥ ६ ॥
आमंत्रितो ब्राह्मणो वै योऽन्यस्मै कुरुते क्षणम् । आमंत्रयित्वा यो मोहादन्यं वामंत्रयेद्द्विजः ।
स तस्मादधिकः पापी विष्ठाकीटा हि जायते ॥ ७ ॥
श्राद्धे निमन्त्रितो विप्रो मैथुनं योऽधिगच्छति । ब्रह्महत्यामवाप्नोति तिर्यग्योनिषु जायते ॥ ८ ॥
निमन्त्रितश्च यो विप्रो अध्वानं याति दुर्मतिः । भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं पांशुभोजनाः ॥९॥
निमन्त्रितश्च यः श्राद्धे प्रकुर्यात्कलहं द्विजः । भवन्ति तस्य तन्मासं पितरो मलभोजनाः ॥ १० ॥

श्राद्धमें निमन्त्रित हुए ब्राह्मणोंको उचित है कि ब्रह्मचर्य और नियमसे रहे; क्रोध और शीघ्रता नहीं करे और सत्य बोले; भोजन करके उस दिन भय अथवा मैथुन नहीं करे,किसी दूर स्थानमें नहीं जावे तथा जप नहीं करे ॥ ५—६ ॥ जो ब्राह्मण निमन्त्रण लेकर श्राद्धकर्त्ताके घर भोजन नहीं करताहै उसको बड़ा पाप लगताहै और जो श्राद्धकर्त्ता निमन्त्रण देकर ब्राह्मणको नहीं खिलाताहै वह उससे भी अधिक पापी है; वह मरनेपर विष्ठाका कीड़ा होताहै ॥७॥ जो ब्राह्मण श्राद्धमें भोजन करके मैथुन करताहै उसको ब्रह्महत्याका पाप लगताहै और मरनेपर वह कीट पतङ्गकी योनिमें जन्म लेताहै ॥ ८ ॥ जो मतिहीन ब्राह्मण श्राद्धमें खाकर दूर स्थानमें जाताहै उसके पितर उस महीनेमें केवल धूल खाकर रहतेहैं ॥९॥ जो ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रित होकर कलह करताहै, उसके पितरलोग उसमहीनेमें केवल मल खाकर रहतेहैं ॥ १० ॥

अशौचप्रकरण १९.

जन्मका अशौच १.

(१) मनुस्मृति--५ अध्याय ।

यथेदं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते । जननेऽप्येवमेव स्यान्निपुणं शुद्धिमिच्छताम् ॥ ६१ ॥

❀ वसिष्ठस्मृति-११ अध्यायके २९—३० श्लोक । जबतक भोजनका अन्न गरम रहताहै, जबतक निमन्त्रित ब्राह्मण मौन होकर भोजन करतेहैं और जबतक भोज्य पदार्थके गुण नहीं कहेजाते तभी तक पितर लोग ब्राह्मणोंद्वारा भोजन करतेहैं । जबतक पितरगण तृप्त न हों अर्थात् ब्राह्मण लोग भोजन नहीं करचुकें तबतक वे लोग भोजनके पदार्थोंके गुण वर्णन नहीं करें; भोजन करलेनेके पश्चात् कहे कि हविष्य बहुत उत्तम बनाहै । बृहद्यमस्मृति-३ अध्यायके २७—२८ श्लोक और शातातपस्मृतिके १०३—१०४ श्लोकमें भी ऐसा है ।

❁ लघुशंखस्मृति—२९ श्लोक और लिखितस्मृति—५८ श्लोकमें भी ऐसा है ।

✤ लिखितस्मृति—५८—५९ श्लोक । श्राद्धमें भोजन करके मार्ग चलनेवाला घोडा, दुबारा भोजन करनेवाला काक, बोझा ढोना आदि काम करनेवाला दास और स्त्रीसे मैथुन करनेवाला सूअर होताहै ।

जो लोग पूर्ण शुद्धिकी इच्छा रखतेहैं उनके लिये जैसा अशौच माननेको सपिण्ड मनुष्यकी मृत्यु होनेपर कहागया है वैसाही अशौच सपिण्डके जन्म लेनेपर भी जानो ॥ ६१ ॥

सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् । सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥ ६२ ॥
जन्मन्येकोदकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ७१ ॥

मृताशौचमें अस्पृश्यरूप अशौच सबको एक समान होताहै; किन्तु जन्मका अस्पृश्यरूप अशौच केवल माता पिताको लगताहै, उसमें भी स्नान करनेपर पिता स्पर्श करनेयोग्य होजाताहै ※ ॥ ६२ ॥ जन्म सूतकमें सात पीढ़ीके बादके लोग ३ रातपर शुद्ध होजातेहैं ॥ ७१ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय।

पित्रोस्तु सूतकम्मातुस्तदसृग्दर्शनाद्ध्रुवम् । तदहर्न प्रदुष्येत पूर्वेषां जन्मकारणात् ॥ १९ ॥

जन्मके अशौचमें माता और पिताको, विशेष करके माताको नहीं छूना चाहिये; क्योंकि माताको रुधिर देख पड़ताहै, बालकके जन्मके दिन श्राद्ध आदि करनेमें कुछ दोष नहीं होता; क्योंकि पिताही बालक रूपसे उत्पन्न होताहै ॥ १९ ॥

(६ क) उशनस्मृति–७ अध्याय।

जाते कुमारे तदहः आमं कुर्यात्प्रतिग्रहम् । सुवर्णधान्यगोवासस्तिलान्नगुडसर्पिषः ॥ ४ ॥
फलानीक्षुश्च शाकश्च लवणं काष्ठमेव च । तोयं दधि घृतं तैलमौषधं क्षीरमेव च ॥ ५ ॥
अशौचिनो गृहाद् ग्राह्यं शुष्कान्नञ्चैव नित्यशः ॥ ६ ॥

पुत्र उत्पन्न होनेपर उसके घरसे उस दिन सोना, धान्य, गौ, वस्त्र, तिल, कच्चा अन्न, गुड़ और घी दान लेना चाहिये ॥ ४ ॥ अशौचवालेके घरसे नित्यही फल, ऊख, शाक, नोन, काठ, जल, दही, घी, तेल, औषध, दूध और सूखा अन्न लेना चाहिये ✻ ॥ ५–६ ॥

(१०) संवर्तस्मृति।

जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते ॥ ४२ ॥
माता शुद्ध्येद्दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः । होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्कान्नेन फलेन वा ॥ ४३ ॥

पुत्र उत्पन्न होनेपर पिताको वस्त्रोंसहित स्नान करना चाहिये; माता १० दिन पर शुद्ध होतीहै; किन्तु पिता स्नान करनेपर स्पर्श करनेयोग्य होजाताहै ॥ ४२–४३ ॥

पञ्चयज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृत्युजन्मनोः । दशाहात्तु परं सम्यग्विप्रोऽधीयीत धर्मवित् ॥ ४४ ॥

जन्म सूतकमें सूखे अन्न अथवा फलसे होम करे; जन्मके अशौचमें और मरणके अशौचमें पञ्चयज्ञ नहीं करे; धर्मका जाननेवाला ब्राह्मण १० दिनके बाद सम्यक् प्रकार वेद पढ़े ॥ ४३–४४ ॥

(१३) पाराशरस्मृति–३ अध्याय।

जातौ विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥
एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः । त्र्यहात्केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥ ५ ॥

जन्मके अशौचमें ब्राह्मण १० दिनमें, क्षत्रिय १२ दिनमें, वैश्य १५ दिनमें और शूद्र १ मासमें शुद्ध होताहै ॥ ४ ॥ अग्निहोत्री और वेदज्ञ ब्राह्मण १ दिनमें, केवल वेदज्ञ ब्राह्मण ३ दिनमें और अग्निहोत्र तथा वेद, इन दोनोंसे हीन ब्राह्मण १० दिनमें शुद्ध होतेहैं ⊛ ॥ ५ ॥

※ पाराशरस्मृति–३ अध्यायके ३६ श्लोकमें ऐसाही है और २५ श्लोकमें है कि जन्मके अशौच-में यदि पिता सूतिकागृहका स्पर्श नहीं करेगा तो स्नान करनेही से वह शुद्ध होजायगा; किन्तु माता १० दिनपर शुद्ध होगी। २७ श्लोकमें है कि वेदके छवों अङ्गोंको जाननेवाला ब्राह्मण भी यदि अपनी प्रसूता स्त्रीका संपर्क करेगा तो उसको सूतक लगेगा। वसिष्ठस्मृति–४ अध्याय–२११ श्लोक। जन्मसूतकमें पुरुष यदि सूतिकासे संसर्ग नहीं रक्खे तो वह अशुद्ध नहीं होताहै, क्योंकि जन्मसूतकमें रज अशुद्ध है जो पुरुषमें नहीं रहताहै।

✻ वृद्धशातातपस्मृति–१९ अङ्क। बालक उत्पन्न होनेके समय नाड़ काटनेसे पहिले उसके घरसे गुड़, घी, सोना, वस्त्र और प्रावरण दान लेनेसे दोष नहीं लगता; एक आचार्यका मत है कि उस दिन लेनेमें दोष नहीं होता। वृद्धयाज्ञवल्क्यस्मृति–बालकके जन्म होनेके दिन उसके घरसे ब्राह्मण सोना, भूमि, गौ, घोड़ा, बकरी, वस्त्र, शय्या और आसन आदि लेवे; किन्तु उसके घरका पकाहुआ अन्न नहीं खावे; जो मोहवश होकर खाताहै वह चान्द्रायण व्रत करे (२–३) ॥

⊛ आ स्मृतिके ८२ और ४ श्लोकमें ऐसाही है (जहां एक दिन लिखा है वहां दिन रात और जहां १० दिन लिखाहै वहां १० दिन रात समझना चाहिये)।

(१७) दक्षस्मृति-६ अध्याय ।

वर्णानामानुलोम्येन स्त्रीणामेको यदा पतिः । दश षट् त्र्यहमेकाहः प्रसवे सूतकं भवेत् ॥ १७ ॥
स्वस्थकाले त्विदं सर्वमशौचं परिकीर्त्तितम् । आपद्गतस्य सर्वस्य सूतकेऽपि न सूतकम् ॥ १८ ॥

यदि एक पतिकी अनुलोम क्रमसे अनेक भार्या होंगी तो ब्राह्मणीके प्रसवमें १० दिन, क्षत्रियाके प्र वमें ६ दिन, वैश्याके प्रसवमें ३ दिन और शूद्राके प्रसवमें १ दिन पतिको सूतक लगेगा ॥ १७ ॥ यह सब सूतकका विधान स्वस्थ दशाके लिये कहाहै; आपत्कालमें सूतकमें भी सूतक नही लगताहै ॥ १८ ॥

(२८) मार्कण्डेयस्मृति ।

रक्षणीया तथा षष्ठी नि [illegible] तत्र विशेषतः । रात्रौ जागरणं कार्यं जन्मदानां तथा बलिः ॥
पुरुषाः शस्त्रहस्ताश्च नृत्यगीतैश्च योषितः । रात्रौ जागरणं कुर्युर्दशम्यां चैव सूतके ॥

सूतकमें छठी रात्रिकी विशेष रक्षा करे, रात्रिमें जागे और जन्मदा नाम देवताको बलि देवे । पुरुष हाथमें शस्त्र रक्खे और स्त्री नृत्य और गीतसे रातमें जागे; ये सब कर्म दशवें दिनकी रातमें करे ।

बालककी मृत्युका अशौ[illegible] २.

(१) मनुस्मृति-५ अध्याय ।

रा त्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्ध्यति । राजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ६६ ॥
नृणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता । निर्वृत्तचूडकानान्तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ६७ ॥
ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः । अलंकृत्य शुचौ भूमावस्थिसञ्चयनादृते ॥ ६८ ॥
नास्य कार्योऽग्निसंस्कारो न च कार्योदकक्रिया । अरण्ये काष्ठवत्त्यक्त्वा क्षपेयुस्त्र्यहमेव च ॥६९॥
नात्रिवर्षस्य कर्त्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया । जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥ ७० ॥

गर्भस्राव होजानेपर (तीसरे महीनेसे छठे महीने तक) जितने महीनेका गर्भ गिरता है उतनी रात पर शुद्धि होतीहै; ※ रजस्वला स्त्री रजस्राव बन्द होनेपर स्नान करनेसे शुद्ध होतीहै ॥ ६६ ॥ विना मुण्डन कियेहुए बालकके मरनेपर एक रातमें और मुण्डन होनेके बाद (जनेऊ होनेसे पहिले) बालककी मृत्यु होनेपर ३ रातमे (सपिण्ड लोग) शुद्ध होतेहै ॥ ६७ ॥ जब २ वर्षसे कम अवस्थाका बालक मरजावे तो उसके बान्धवोंको उचित है कि उसको माला, चन्दन आदिसे अलंकृत करके गांवसे बाहर पवित्र भूमिमें गाड़ देवें; उसका अस्थिसञ्चयन नही करें; उसका अ[illegible] दाह अथवा जलदान कुछ नही करें; उसको वनमें काठके समान त्याग देवें और ३ राततक अशौच माने ॥ ६८-६९ ॥ ३ वर्षसे कम (दो वर्षसे अधिक) अवस्थाके बालककी मृत्यु होनेपर बान्धव लोग उसका जलदान नही करें अथवा दांत जमने तथा नामकरण होने बाद उसके मरनेपर जलदान करें ⊙ ॥ ७० ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय ।

ऊनद्विवर्षं निखनेन्न कुर्यादुदकं ततः । आश्मशानादनुव्रज्य इतरो ज्ञातिभिर्मृतः ॥ १ ॥
यमसूक्तं तथा गाथां जपद्भिर्लौकिकाग्निना । स दग्धव्य उपेतश्चेदाहिताग्न्यावृतार्थवत् ॥ २ ॥

※ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय-२० श्लोक, शङ्खस्मृति—१५ अध्याय-४ श्लोक, गौतमस्मृति-१४ अध्यायके-१ अङ्क, बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-५ अध्याय,-१३६ अङ्क, यमस्मृति-७७ श्लोक और पाराशर स्मृति-३ अध्याय-१६ श्लोकमें भी ऐसा है; यमस्मृतिके ७६ श्लोकमें है कि एक मासका गर्भ गिरजानेपर ३ दिनका अशौच होताहै और पाराशर स्मृतिके १७ श्लोकमें है कि जो गर्भ ४ मासके भीतर गिरजाताहै उसको गर्भस्राव, पांचवें अथवा छठे मासमे गिरताहै उसे गर्भपात कहतेहैं; उसके बाद जो गिरता है वह प्रसव कहलाताहै, उसका सूतक १० दिन रहता है । मरीचिस्मृति (४) मे पाराशरस्मृतिके १७ श्लोकके समान है ।

❀ शङ्खस्मृति १५ अध्याय-५ श्लोकमेंभी ऐसा है ।

⊙ बौधायनस्मृति-प्रथम प्रश्न-५ अध्याय,-१०९ अङ्क ।७ महीनेके भीतर अथवा दांत निकलनेसे पहिले बालकके मरजानेपर केवल स्नान करनेसे शुद्धि होजातीहै; ३ वर्षसे कम अवस्थाके बालकके मरनेपर प्रेतका जलदान या पिण्डदान नही होताहै । वसिष्ठस्मृति—४ अध्याय-२९ अङ्क । २ व[illegible]से कम [illegible]वस्थाके बालकके मरनेपर अथवा गर्भपात होनेपर ३ दिनमें सपिण्डोंकी शुद्धि होतीहै; पर गौतमका मत है कि तत्काल शुद्धि कर लेना चाहिये (आगे याज्ञवल्क्य स्मृतिमें देखिये) ।

ऊनद्विवर्ष उभयोः सूतकस्मातुरेव हि ॥ १८ ॥

२ वर्षसे कम अवस्थाका बालक मरजावे तो उसको भूमिमें गाड़ देना चाहिये; उसके लिये जलदान अर्थात् तिलाञ्जली देनेकी आवश्यकता नहीं है, किन्तु उससे अधिक अवस्थाका बालक मरे तो उसकी जातिके लोगोंको चाहिये कि उसके साथ श्मशान तक जावें; यमसूक्त और यमगाथा मन्त्रका जप करें ॐ और लौकिक अग्निसे उसको जलावें; यदि बालकका जनेऊ हो चुका होवे तो अग्निहोत्रीकी प्रक्रियासे लौकिकाग्निसे ही उसका दाह करें ॥ १-२ ॥ दो वर्षसे कम अवस्थाके बालकके मरनेपर माता और पिताको बालकके जन्मके समय केवल माताके ही अशौच होताहै ॥ १८ ॥

आदन्तजन्मनः सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता। त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् ॥ २३ ॥

दांत निकलनेसे पहिले (ब्राह्मणके) बालकके मरने पर उसी क्षण तक, मुण्डनसे पहिले मरनेपर १ राततक, मुण्डनके बाद यज्ञोपवीतसे पहिले मरनेपर ३ राततक और यज्ञोपवीतके बाद मरनेपर १० राततक अशौच रहताहै ☙ ॥ २३ ॥

(३) अत्रिस्मृति।

वालस्त्वंतर्दशाहे तु पञ्चत्वं यदि गच्छति। सद्य एव विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नैव सूतकम् ॥ ९३ ॥
कृतचूडे प्रकुर्वीत उदकं पिण्डमेव च। स्वधाकारं प्रकुर्वीत नामोच्चारणमेव च ॥ ९४ ॥

जो बालक जन्मसे १० दिनके भीतर मरजाताहै उसके जन्म अथवा मृत्युका अशौच नहीं मानना चाहिये ☉ ॥ ९३ ॥ जो बालक मुण्डनसे पीछे मरजाताहै उसका नाम और स्वधा शब्द उच्चारण करके उसको जलदान और पिण्डदान देना चाहिये ॥ ९४ ॥

(६क) उशनस्मृति-६ अध्याय।

आदन्तात्सोदरः सद्य आचौलादेकरात्रकम् ॥ २६ ॥
आप्रदानात्त्रिरात्रं स्याद्दशमन्तु ततः परम् ॥ २७ ॥

दांत निकलनेसे पहिले पुत्र तथा कन्याके मरजानेपर उसके पिताके कुलको अशौच नहीं लगता है; दांत निकलनेके पश्चात् मुण्डनसे पहिले कन्याके मरनेपर १ रात और मुण्डनके बाद विवाहसे पहिले मरनेपर ३ रात अशौच रहताहै ✠ और विवाहके पश्चात् (ब्राह्मणकी) कन्याके मरनेपर (उसके पतिके कुलको) १० रात तक अशौच लगताहै ॥ २६-२७ ॥

(१५) शङ्खस्मृति-१५ अध्याय।

अनूढानां तु कन्यानां तथैव शूद्रजन्मनाम्। अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशाद्वत्सरात्परम् ॥ ६ ॥
मृत्युं समधिगच्छेच्चेन्मासात्तस्यापि बान्धवाः। शुद्धिं समधिगच्छेयुर्नात्र कार्या विचारणा ॥ ७ ॥

विना विवाहीहुई कन्या और विना विवाहेहुए शूद्रके मरनेपर उनके बान्धव ३ दिन पर शुद्ध हो जातेहैं; किन्तु १६ वर्षके बाद विना विवाहहुए शूद्रके मरनेपर वे १ मासमें शुद्ध होतेहैं; इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ ६-७ ॥

(२९) बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-५ अध्याय।

आदन्तजननाद्वाऽपि दहनं च न कारयेत्। अप्रत्तासु च कन्यासु प्रत्तास्वेकेह कुर्वते ॥ ११० ॥

ॐ ये दोनों यम देवताके वेदोक्त मन्त्र हैं।

☙ वृहद्विष्णुस्मृति—२२ अध्यायके २६-३० अङ्कमें; उशनस्मृति-६ अध्यायके १३ श्लोकमें, पाराशर-स्मृति-३ अध्यायके १९ श्लोकमें और शङ्खस्मृति-१५ अध्यायके ४-५ श्लोकमें भी ऐसा है।

☉ वृद्धमनुस्मृति-दश दिनके भीतरका बालक मर जावे तो उसके मृत्युका अशौच नहीं होताहै, किन्तु जन्मका अशौच होताहै (४)।

✠ मनुस्मृति-५ अध्याय—७२ श्लोक। विना विवाहीहुई कन्याके मरने पर उसके बान्धव ३ दिनमें शुद्ध होतेहैं। वसिष्ठस्मृति—४ अध्याय-१८ अङ्क। विना विवाहीहुई स्त्रीकी मृत्यु होनेपर उसके पिताके कुलके ३ पीढ़ीतकके लोगोंको ३ दिन अशौच रहताहै। वृहद्विष्णुस्मृति-२२ अध्यायके ३२—३३ अङ्क। विवाहके बाद स्त्रीके मरनेपर उसके पिताके कुलको अशौच नहीं लगेगा; किन्तु यदि पिताके घरमें कन्याकी सन्तान उत्पन्न होगी अथवा कन्या मरजायगी तो पिताको ३ रात अशौच लगेगा। शंखस्मृति-१५ अध्याय १४ श्लोक। विवाही कन्या पिताके घर मर जायगी तो पिताको ३ रात अशौच होगा। बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-५ अध्याय-१११ श्लोक। विवाहीहुई कन्याके मरनेपर उसके बान्धव ३ दिनमें शुद्ध होतेहैं।

दांत निकलनेसे पहिले बालक मरजावे और विवाहसे पहिले कन्या मरजावे तो उसको नहीं जलाना चाहिये; एक महर्षिका मत है कि विवाह होजानेपर यदि कन्या पिताके घर मरे तो उसका दाह करना चाहिये ॥ ११० ॥

मृत्युका अशौच, उसकी अवधि और अन्य वर्णका अशौच ३.

(१) मनुस्मृति—५ अध्याय ।

प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिं तथैव च । चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुपूर्वशः ॥ ५७ ॥
दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते । अशुद्धा बान्धवाः सर्वे सूतके च तथोच्यते ॥ ५८ ॥
दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते । अर्वाक् सञ्चयनादस्थ्नां त्र्यहमेकाहमेव च ॥ ५९ ॥

चारो वर्णोंकी प्रेतशुद्धि और द्रव्यशुद्धिका विधान यथाक्रमसे कहताहूं; सुनो ! ॥ ५७ ॥ दांत उत्पन्न होनेपर तथा दांत होनेके पश्चात् और मुण्डन तथा यज्ञोपवीत होनेपर मनुष्य मरजातेहैं तो सम्पूर्ण बान्धव अशुद्ध होतेहैं और बालकोंके उत्पन्न होनेपर भी इसी प्रकारका अशौच होताहै ॥ ५८ ॥ सपिण्डके मरनेपर (ब्राह्मणको) १० दिन तक अथवा अस्थि संचयके पहिले किम्वा ३ दिन वा १ दिन अशौच रहताहै ॥५९॥

सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते । समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥ ६० ॥

सातवीं पीढ़ीमें सपिण्डता दूर होजातीहै; परन्तु समानोदक भाव (जल सम्बन्ध) जन्म और नामके ज्ञात नहीं रहनेपर, अर्थात् जब यह नहीं जानपड़ता कि इनका जन्म हमारे कुलमें है तब दूर होताहै ❀॥६०॥

अह्ना चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः । शवस्पृशो विशुध्यन्ति त्र्यहादुदकदायिनः ॥ ६४ ॥
गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् । प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ६५ ॥
स ब्रह्मचारिण्येकाहमतीते क्षपणं स्मृतम् ॥ ७१ ॥

मृत्युके अशौचमें सपिण्डवाले १० रातपर और समानोदक वाले ३ दिन पर शुद्ध होतेहैं ॥ ६४ ॥ गुरुका प्रेतकर्म करनेवाला असपिण्ड शिष्य भी सपिण्डोंके समान १० रातपर शुद्ध होताहै ॥ ६५ ॥ सहपाठी ब्रह्मचारीके मरनेपर १ रातपर शुद्धि होतीहै ॥ ७१ ॥

त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति । तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ॥ ८० ॥

आचार्यके मरनेपर ३ राततक और आचार्यके पुत्र अथवा स्त्रीके मरनेपर १ राततक अशौच रहताहै ८०

श्रोत्रिये तूपसंपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् । मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ॥ ८१ ॥
प्रेते राजनि सज्योतिर्यस्य स्याद्विषये स्थितः । अश्रोत्रिये त्वहः कृत्स्नमनूचाने तथा गुरौ ॥ ८२ ॥

❀ वृद्धमनुस्मृति--सातवीं पीढीमें सपिण्डता दूर होतीहै और चौदहवीं पीढीतक समानोदक भाव रहताहै; किन्तु कोई कहताहै कि जन्म और नामके ज्ञात नहीं रहनेपर दूर होताहै चौदह पीढीके बाद वाले गोत्र कहातेहैं (२–३)। अत्रिस्मृति--८५ श्लोक । एक वंशमें उत्पन्न ७ पीढ़ियों तक सपिण्डसंज्ञा होतीहै, इनको ही पिण्डदान जलदान और मृतकके अशौचका अधिकार है । उशनस्मृति ६ अध्याय–५२ श्लोक मनुके ६० श्लोकके समान है और ५३ श्लोकमें है कि पिता, पितामह और प्रपितामह ये ३; लेपभागी अर्थात् प्रपितामहका पिता, पितामह और प्रपितामह ये ३ और जिससे गिना जाताहै वह १; यही ७ सपिण्ड हैं ५४–५५ श्लोकमें है कि एक पुरुषके वीर्यसे अनेक वर्णोंकी स्त्रियोंमें उत्पन्न पुत्रोंकी परस्पर सपिण्डता ३ पीढी तक होतीहै । वसिष्ठस्मृति--४ अध्याय–१७ अङ्क । ७ पीढीके मनुष्योंमें सपिण्डता मानी जातीहै । बौधायनस्मृति –१ प्रश्न–५ अध्यायके ११३–११४ श्लोक । प्रपितामह, पितामह, पिता, स्वयं आप, सहोदर भाई, सवर्ण स्त्रीके पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र ये सब सपिण्ड हैं;प्रपौत्रके पुत्र तथा पौत्र नहीं;किन्तु यदि ये अलग नहीं रहतेहोवें तो वे भी सपिण्ड कहेजातेहैं और धन बांटकर अलग रहतेहैं तो सकुल्य कहलातेहैं । लघुआश्वलायनस्मृति–२० प्रेतकर्म प्रकरणके ८२–८४ श्लोक । पिता आदि ३ अर्थात् पिता, पितामह और प्रपितामह; उनके पूर्वज ३ अर्थात् प्रपितामहका पिता. पितामह और प्रपितामह और सातवां स्वयं आप; इन्हींको पण्डित लोग सपिण्ड कहतेहैं । सपिण्ड, सोदक और सगोत्र; इनको एक एकके क्रमसे एक एक की ७ पीढीको सपिण्ड जानना ।

☙ उशनस्मृति—६ अध्यायके ३१ श्लोक और शङ्खस्मृति–१५ अध्यायके १४ और १५ श्लोकमें ऐसाही है ।

श्रोत्रियकी मृत्यु होनेपर उसके साथ बसनेवालेको ३ राततक और मामा,शिष्य, ऋत्विक् तथा असपिण्ड बान्धवके मरनेपर दो दिनोंके सहित एक रात अशौच होताहै ॥ ८१ ॥ अपने देशका राजा यदि दिनमें मरे तो सूर्यास्त होने तक और रातमें मरे तो तारा गणोंके रहनेतक अशौच मानना चाहिये ॐ वेदहीन ब्राह्मणके मरनेपर (उसके साथ बसनेवालेको) और उपाध्यायके मरने पर भी ऐसाही अशौच रहताहै ॥८२॥

शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥ ८३ ॥

ब्राह्मण १० दिनमें, क्षत्रिय १२ दिनमें, वैश्य १५ दिनमें और शूद्र १ मासमें शुद्ध होतेहैं ✽ ॥ ८३ ॥

असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत्। विशुध्यति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बान्धवान् ॥१०१ ॥
यद्यन्नमत्ति तेषां तु दशाहेनैव शुध्यति। अनदन्नन्नमह्नैव न चेत्तस्मिन्गृहे वसेत् ॥ १०२ ॥

जो ब्राह्मण असपिण्ड मृतकको और मामा आदिबान्धवोंको दाह अपने बन्धुके समान करताहै वह ३ रातमें शुद्ध होताहै ॥ १०१ ॥ मृतकके सपिण्डका अन्न खानेपर उसको १० दिनोंतक अशौच लगताहै; यदि उसका अन्न नहीं खावे तथा उसके घरमें भी नहीं बसे तो एक दिनमें और उनके घरमें रहै किन्तु उनका अन्न नहीं खावे तो पूर्वोक्त ३ रातमें शुद्ध होताहै ॥ १०२ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय।

अहस्त्वदत्तकन्यासु बालेषु च विशोधनम्। गुर्वन्तेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषु च ॥ २४ ॥
अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ॥ २५ ॥

बिना विवाही कन्या, बालक, गुरु (उपाध्याय), अन्तेवासी शिष्य, मामा, श्रोत्रिय, अनौरस (दत्तक-आदि) पुत्र और अन्य पुरुषमें आसक्त भार्याके मरनेपर एक दिन अशौच रहताहै ✽ ॥ २४–२५ ॥

(४ क) बृहद्विष्णुस्मृति–२२ अध्याय।

पत्नीनां दासानामानुलोम्येन स्वामिनस्तुल्यमाशौचम् ॥१८॥ मृते स्वामिन्यात्मीयम् ॥ १९ ॥

हीन वर्णकी पत्नी और दासोंको (स्वामीके अशौचके समय) स्वामीके समान अशौच होगा ॥ १८ ॥ स्वामीकी मृत्यु होजानेपर अपने वर्णके तुल्य अशौच लगेगा ✽ ॥ १९ ॥

ॐ याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–२५ श्लोक और शङ्खस्मृति–१५ अध्याय १५ श्लोक। अपने देशके राजाकी मृत्यु होनेपर एकही दिनमें शुद्धि होतीहै। प्रचेतास्मृति––ऋत्विज और यज्ञ करानेवालेको मरनेक अशौच तीन रात रहताहै (३)। जाबालिस्मृति–माताके बन्धु, मित्र और राजाकी मृत्युका अशौच एक दिन रहताहै (१)।

✽ अत्रिस्मृतिके ८४ श्लोक, बृहद्विष्णुस्मृति––२२ अध्यायके १–३ अङ्क, उशनस्मृति–६ अध्यायके ३४ श्लोक और संवर्तस्मृतिके ३७–३८ श्लोकमें ऐसाही है; किन्तु याज्ञवल्क्यस्मृति––३ अध्यायके २२ श्लोकमें है कि क्षत्रियको १२ दिन, वैश्यको १५ दिन शूद्रको ३० दिन तथा न्यायवर्ती शूद्रको १५ दिन अशौच रहताहै और वसिष्ठस्मृति–४ अध्यायके २४ श्लोकमें है कि १० रातमें ब्राह्मण, १ पक्षमें क्षत्रिय, २० रातमें वैश्य और १ मासमें शूद्र अशौचसे शुद्ध होताहै। पाराशरस्मृति–३ अध्यायके १–२ श्लोक। मरणके सूतकमें ब्राह्मण ३ दिनमें, क्षत्रिय १२ दिनमें, वैश्य १५ दिनमें और शूद्र १ मासमें शुद्ध होतेहैं। ६ श्लोक। संस्कारहीन तथा सन्ध्योपासनासे रहित नाम धारण करनेवाले ब्राह्मण १० दिनमें शुद्ध होतेहैं। शंखस्मृति–१५ अध्याय–१ श्लोक। अग्निहोत्री और वेदज्ञ ब्राह्मण अपने सपिण्डीके जन्म या मरणके अशौचमें ३ दिनपर शुद्ध होतेहैं।

✽ बृहद्विष्णुस्मृति––२२ अध्याय–४२ श्लोक और४३अङ्क। अनौरस पुत्र और परपूर्वा भार्याका जन्म अथवा मरणका अशौच १ रात रहताहै। शंखस्मृति––१५ अध्याय–१३ श्लोक। अनौरस पुत्र, अन्य पुरुषमें आसक्त भार्या और परपूर्वा भार्याके मरनेपर ३ दिन अशौच रहताहै। मरीचिस्मृति––परपूर्वा भार्या और उनके पुत्रोंके जन्म तथा मृत्युका अशौच तीन रात रहताहै (१)

✽ देवलस्मृति––६ श्लोक और अत्रिस्मृति––८७ श्लोकमें भी ऐसा है; किन्तु उनमें दासके स्थानमें दासी लिखाहै। उशनस्मृति–६ अध्यायके ३५ श्लोकमें है कि ब्राह्मणके अशौचके समय ब्राह्मणका सेवक १० दिनपर शुद्ध होगा। बृहद्यमस्मृति–३ अध्याय–५५ श्लोक। दासको अपने स्वामीके समान अशौच होताहै। अत्रिस्मृति––८९ श्लोक। सौतके पुत्रका जन्म अथवा मरण होनेपर एक समयमें व्याही हुई और एक घरमें अन्न खानेवाली असवर्णा माताओंको पतिके समान अशौच होगा; किन्तु यदि ये सब अलग अलग रहती होंगी अथवा अलग अलग व्याहीगई होंगी तो अपने अपने वर्णके तुल्य अशौच लगेगा।

हीनवर्णानामधिकवर्णेषु सपिण्डेषु तथाशौचव्यपगमे शुद्धिः ॥ २० ॥ ब्राह्मणस्य क्षत्रविट्शूद्रेषु सपिण्डेषु षड्रात्रत्रिरात्रैकरात्रैः ॥ २१ ॥ क्षत्रियस्य विट्शूद्रयोः षड्रात्रत्रिरात्राभ्याम् ॥२२ ॥ वैश्यस्य शूद्रेषु षड्रात्रेण ॥ २३ ॥

उच्च वर्णके सपिण्डके अशौचमें नीच वर्णके सपिण्डोंकी शुद्धि उच्च वर्णके साथ ही होगी अर्थात् क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने वैमात्रेय भ्राता ब्राह्मणके मरनेपर दश रातपर;वैश्य और शूद्र अपने वैमात्रेय भाई क्षत्रियके अशौचमें १२ रातपर और शूद्र अपने वैमात्रेय भ्राता वैश्यके अशौचमें १५ दिनपर शुद्ध होगा ॥ २० ॥ ब्राह्मण अपने सपिण्ड क्षत्रियके जनन मरणमें ६ रातपर, सपिण्ड वैश्यके जनन मरणमें ३ रातपर और सपिण्ड शूद्रके जनन मरणमें १ रातपर शुद्ध हो जायगा ॥ २१ ॥ क्षत्रिय अपने सपिण्ड वैश्यके जनन मरणमें ६ रातपर और सपिण्डें शूद्रके जनन मरणमें ३ रातपर शुद्ध होगा ॥ २२ ॥ वैश्य अपने सपिण्ड शूद्रके जनन मरणकी अशौचमें ६ रातपर शुद्ध होजायगा ॥ २३ ॥

आचार्यमातामहे च व्यतीते त्रिरात्रेण ॥ ४१ ॥

आचार्य और नानाकी मृत्युका अशौच ३ रात रहताहै ॥ ४१ ॥

(१०) संवर्तस्मृति ।

ततः संचयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते । चतुर्थेऽहनि विप्रस्य षष्ठे वै क्षत्रियस्य च ॥ ४० ॥
अष्टमे दशमे चैव स्पर्शः स्याद्वैश्यशूद्रयोः । जातस्यापि विधिर्दृष्ट एष एव महर्षिभिः ॥ ४१ ॥

अस्थिसंचयनके पीछे किसीके शरीरका स्पर्श करे; चौथे दिन ब्राह्मणका, छठे दिन क्षत्रियका आठवें दिन वैश्यका और दशवें दिन शूद्रका स्पर्श करना कहाहै; महर्षियोंने जन्मके अशौचमें भी यही विधि देखीहै ॥ ४०-४१ ॥

(१३) पाराशरस्मृति-३ अध्याय ।

एकपिण्डास्तु दायादाः पृथग्दारनिकेतनाः । जन्मन्यपि विपत्तौ च तेषां तत्सूतकं भवेत् ॥ ८ ॥
तावत्तत्सूतकं गोत्रे चतुर्थपुरुषेण तु । दायाद्विच्छेदमाप्नोति पञ्चमो वात्मवंशजः ॥ ९ ॥
चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षण् निशाः पुंसि पञ्चमे । षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे तु दिनत्रयात् ॥ १० ॥

जो मनुष्य सपिण्ड और धनका भागी है उसको स्त्री तथा निवास स्थान अलग रखनेपर भी जन्म और मरणका अशौच लगताहै ॥ ८ ॥ चौथी पीढ़ीतक गोत्रका पूरा अशौच होताहै; क्योंकि पांचवीं पीढ़ीवाले धनमें भाग नहीं पातेहैं; वे वंशज कहलातेहैं ॥ ९ ॥ चौथी पीढीतक १० रात, पांचवीं पीढीमें ६ रात, छठी पीढीमें ४ रात और सांतवीं पीढीमें ३ रात अशौच रहताहै ॥ १० ॥

(१६) लिखितस्मृति ।

मरणारब्धमाशौचं संयोगो यस्य नाग्निभिः । आदाहात्तस्य विज्ञेयं यस्य वैतानिको विधिः ॥८८॥

अग्निहोत्रसे रहित द्विजका अशौच उसके मरनेके समयसे और अग्निहोत्रीका अशौच उसके जलानेके समयसे होताहै ॥ ८८ ॥

उशनस्मृति-६ अध्यायके ३५-३९ श्लोकमें, लघुहारीतके ८२—८४ श्लोकमें और शंखस्मृति-१५ अध्यायके १७-२० श्लोकमें भी ऐसा है और आपस्तम्बस्मृति—९ अध्यायके १२-१३ श्लोकमें वृहद्विष्णुके ३१ अङ्कके समान है ।

शंखस्मृति—१५ अध्याय-१४ श्लोकमें ऐसाही है ।

लघुहारीतस्मृतिके ८५-८६ श्लोक । सब वर्णके मनुष्य जन्मके अशौच अथवा मरणके अशौचमें अशौचका एक तिहाई भाग बीत जानेपर स्पर्श करने योग्य होजातेहैं; किन्तु नियमित समयपर शुद्ध होतेहैं । ब्राह्मण ३ रातपर, क्षत्रिय ४ रातपर, वैश्य ५ रातपर और शूद्र १० रातपर स्पर्शकरने योग्य होतेहैं; १० रातपर ब्राह्मणका अन्न और इसी भांति शुद्ध होनेपर क्षत्रिय आदिका अन्न खाना चाहिये ।

अत्रिस्मृतिके ८५-८६ श्लोक । सब सपिण्डोंमें सात पीढीतक गोत्रज होताहै उसको पिण्डदान, जलदान और मुर्देके अशौचका अधिकार है । चौथी पीढीतक (ब्राह्मणका) १० रात, पांचवी पीढीमें ६ दिन, छठी पीढीमें ३ रात और सांतवीं पीढीमें १ दिन अशौच रहताहै । लिखितस्मृति—८७ श्लोक । छठी पीढीमें १ दिनका, पांचवीं पीढीमें २ दिनका, चौथी पीढ़ीमें ७ रातका और तीसरी पीढीमें १० दिनका सूतक लगताहै ।

उशनस्मृति-६ अध्यायके ५१ श्लोकमें ऐसाही है । पैठीनसिस्मृति । अग्निहोत्रसे रहित द्विजका अशौच उसके मरनेके दिनसे और विदेशमें मरेहुए अग्निहोत्रीका अशौच दाहके दिनसे होताहै (४) ।

(१७) दक्षस्मृति--६ अध्याय।

आशौचं तु प्रवक्ष्यामि जन्ममृत्युनिमित्तकम्। यावज्जीवं तृतीयन्तु यथावदनुपूर्वशः॥ १ ॥
सद्यः शौचं तथैकाहो द्वित्रिचतुरहस्तथा। दशाहो द्वादशाहश्च पक्षो मासस्तथैव च ॥ २ ॥
मरणांतं तथा चान्यद्दश पक्षास्तु सूतके। उपन्यासक्रमेणैव वक्ष्याम्यहमशेषतः ॥ ३ ॥
ग्रन्थार्थं यो विजानाति वेदमङ्गैः समन्वितम्। सकल्पं सरहस्यं च क्रियावांश्चेन्न सूतकी ॥ ४ ॥
राजर्त्विग्दीक्षितानां च बाले देशांतरे तथा। व्रतिनां सत्रिणां चैव सद्यः शौचं विधीयते ॥ ५ ॥
एकाहस्तु समाख्यातो योऽग्निवेदसमन्वितः। हीने हीनतरे चैव द्वित्रिश्चतुरहस्तथा ॥ ६ ॥
जातिविप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥
अस्नात्वाचम्य जप्त्वा च दत्त्वा हुत्वा च भुञ्जते। एवं विधस्य सर्वस्य यावज्जीवं हि सूतकम् ॥ ८ ॥
व्याधितस्य कदर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा। क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ ९ ॥
व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः। श्रद्धात्यागविहीनस्य भस्मान्तं सूतकं भवेत् ॥ १० ॥
न सूतकं कदाचित्स्याद्यावज्जीवं तु सूतकम्। एवं गुणविशेषेण सूतकं समुदाहृतम् ॥ ११ ॥
स्वस्थकाले त्विदं सर्वमशौचं परिकीर्तितम्। आपद्गतस्य सर्वस्य सूतकेपि न सूतकम् ॥ १८ ॥

अशौच ३ प्रकारका है;जन्मका अशौच, मृत्युका अशौच और जीवन पर्यन्तका अशौच क्रमसे तीनोंको कहताहूं ॥ १ ॥ अशौचका समय १० प्रकारका है;-सद्यः अशौच, १ दिनका, २ दिनका, ३ दिनका, ४ दिनका, १० दिनका, १२ दिनका, १५ दिनका, १ मासका और मरणपर्यन्तका; इन सबको क्रमसे मैं कहताहूं ॥ २-३ ॥ जो ग्रन्थोंके अर्थको और अङ्गों सहित और कल्प तथा रहस्य सहित वेदको जानताहै और वेदोक्त कर्म करताहै उसको अशौच नहीं लगता॥४॥ राजा,ऋत्विक,दीक्षित, बालक, देशान्तरमें रहनेवाले व्रती और सत्रीको सद्यः शौच होताहै ॥ ५ ॥ अग्निहोत्री और वेदसम्पन्न ब्राह्मणको १ दिन, उससे हीनको २ दिन, उससे हीनको ३ दिन और उससे भी हीनको ४ दिनतक अशौच लगताहै ॥६॥ जाति मात्र ब्राह्मणको १० दिन, क्षत्रियको १२ दिन, वैश्यको १५ दिन और शूद्रको १ मास अशौच रहताहै ॥ ७ ॥ विना स्नान, आचमन, जप, दान और होम कियेहुए भोजन करनेवालोंको तथा रोगी, कदर्य, सदा ऋणग्रस्त, क्रियाहीन, मूर्ख, स्त्रीके वशमें रहनेवाले, जुआ आदि व्यसनमें आसक्त, सदा परके आधीन रहनेवाले और श्राद्धहीनको चितामें भस्म होनेतक अशौच रहताहै ❀ ॥ ८-१० ॥ किसीको कभी नहीं अशौच लगता और किसीको मरण पर्यन्त अशौच रहताहै इस प्रकार गुणकी विशेषतासे अशौच कहागयाहै ॥ ११ ॥ ये सब अशौच स्वस्थ कालके लिये कहे गये हैं; आपत्कालमें अशौचके समय भी अशौच नहीं होताहै ॥ १८ ॥

सद्यः अशौच ४.

(१) मनुस्मृति--५ अध्याय।

न राज्ञामघदोषोऽस्ति व्रतिनां न च सत्रिणाम्। ऐन्द्रस्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा ॥९३ ॥
राज्ञामहात्मिके स्थाने सद्यः शौचं विधीयते। प्रजाना परिरक्षार्थमासनं चात्र कारणम् ॥ ९४ ॥

राजाको व्रती अर्थात् चान्द्रायण आदि व्रत करनेवालेको और सदा अन्नदान करनेवालेको अशौच नहीं लगताहै; क्योंकि राजा इन्द्रके स्थानपर स्थित रहतेहैं और व्रती तथा सत्री ब्रह्मके समान निष्पाप हैं ✿ ॥ ९३ ॥ महात्म्य युक्त राजासनपर बैठेहुए राजाके लिये तत्काल शुद्धि कही गई है; प्रजाओंकी रक्षाके लिये राजासनपर बैठनेके कारणसे ही उसको अशौच नहीं लगता है ॥ ९४ ॥

❀ अत्रिस्मृतिके १००-१०१ श्लोक दक्षस्मृतिके ९-१० श्लोकके समान हैं। शंखस्मृति-१५ अध्याय ८ श्लोक। जब विना व्याहीहुई कन्या पिताके घर रजस्वला होतीहै तब उसके मरनेपर उसका अशौच कभी नहीं छूटताहै।

✿ वसिष्ठस्मृति-१९ अध्याय-३४ श्लोकमें, याज्ञवल्क्यस्मृति ३ अध्यायके-२७-२८ श्लोकमें; और उशनस्मृति--६ अध्यायके ५६--५७ श्लोकमें भी ऐसा है। बृहद्विष्णुस्मृति-२२ अध्यायके ४७-४९ अङ्क। राजकर्म करनेके समय राजाको, व्रतके समय व्रतीको और अन्नसत्र अर्थात् सदावर्तमें सत्री अर्थात् सदावर्तवालेको अशौच नहीं लगता है। उशनस्मृति--६ अध्याय-५६ श्लोक। राजाके भृत्यको अशौच नहीं होता। शंखस्मृति-१५ अध्याय-२३ श्लोक। राजा, व्रती और राजाज्ञाकारीको अशौच नहीं लगताहै गौतमस्मृति-१४ अध्याय-१ अङ्क। राजकार्योंकी हानि नहीं हो इस लिये राजाको अशौच नहीं लगताहै। दक्षस्मृति-६ अध्याय-५ श्लोक। राजा, व्रती और सत्रीको सद्यः अशौच होताहै।

डिम्भाहवहतानां च विद्युता पार्थिवेन च । गोब्राह्मणस्य चैवार्थे यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥ ९५ ॥

राजरहित युद्धमें मारे जानेपर, बिजली अथवा राजदण्डसे मृत्यु होनेपर, गौ अथवा ब्राह्मणकी रक्षाके लिये प्राण त्यागने पर और जिसके लिये राजाकी इच्छा हो कि इसको अशौच नहीं हो; इनके स्वजनोंको अशौच नहीं लगताहै ❀ ॥ ९५ ॥

लोकेशाधिष्ठितो राजा नास्याशौचं विधीयते । शौचाशौचं हि मर्त्यानां लोकेशप्रभवाप्ययम् ॥९७॥

इन्द्रादि लोकपालगण राजाके शरीरमें स्थित रहतेहैं, इस लिये उसे अशौच नहीं लगता; क्योंकि लोकपालोंसेही मनुष्योंको शौच तथा अशौच हुआकरताहै ॥ ९७ ॥

उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च । सद्यः संतिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः ॥ ९८ ॥

जो क्षत्रधर्मके अनुसार सम्मुख संग्राममें शस्त्रसे मरताहै वह यज्ञोंके करनेका फल पाताहै और उसके मरनेका अशौच उसी समय समाप्त होजाताहै ▣ ॥ ९८ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय ।

ऋत्विजां दीक्षितानां च यज्ञियं कर्म कुर्वताम् । सत्रिव्रतिब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदां तथा ॥ २८ ॥
दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे । आपद्यपि हि कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते ॥ २९ ॥

ऋत्विक्, यज्ञमें दीक्षित, यज्ञके कर्म करनेवाले, अन्नसत्र (सदावर्त) में प्रवृत्त, व्रती (चान्द्रायण आदि व्रत करनेवाले), ब्रह्मचारी, दाता (नित्य दान करनेवाले) और वेदविद् (वेद और धर्मशास्त्रको भली भांति जाननेवाले ब्राह्मण) को अशौच नहीं लगताहै ॥२८॥ दान, विवाह, यज्ञ, संग्राम, देशोपद्रव और अति कष्टदायक आपत्कालके समय अशौच नहीं होता ✾ ॥ २९ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

ब्रह्मचारी यतिश्चैव मन्त्रे पूर्वकृते तथा । यज्ञे विवाहकाले च सद्यः शौचं विधीयते ॥ ९५ ॥

ब्रह्मचारी, संन्यासी और अशौचके पहिले मन्त्रके जपका संकल्प करनेवालेको तथा यज्ञ और विवाहके समय अशौच नहीं लगताहै ۞ ॥ ९५ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय-२७ श्लोक । गौ अथवा ब्राह्मणके लिये मरने पर, संग्राममें मृत्यु होनेपर और जिसके लिये राजाकी इच्छा हो कि इसको अशौच नहीं लगे; इनके स्वजनोंको अशौच नहीं होताहै । वृहद्विष्णुस्मृति-२२ अध्याय-५१ अङ्क । राजाकी इच्छा होनेपर राजाज्ञाकारीको अशौच नहीं लगता । पाराशरस्मृति--३ अध्याय--३१ श्लोक । ब्राह्मणकी रक्षाके लिये अथवा गौके उद्धारके लिये मरजानेपर अथवा संग्राममें मृत्यु होनेपर उसके स्वजनोंको १ रात अशौच रहताहै ।

▣ वृहद्विष्णुस्मृति--२२ अध्याय-४६ अङ्क । संग्राममें मरनेवालेका अशौच किसीको नहीं लगताहै ।

✾ उशनस्मृति—६ अध्यायके ५६ और ५८ श्लोक । नियमी, वेदविद्, ब्रह्मचारी और निरन्तर दान करनेवालेको तथा यज्ञ, विवाह, देवयाग (देवपूजा), दुर्भिक्ष और उपद्रवके समय उसी समय शुद्धि हो जातीहै । वृहद्विष्णुस्मृति--२२ अध्यायके ५२-५४ अङ्क । देवप्रतिष्ठा और विवाहके कार्य आरम्भ हो जानेपर, देशोपद्रवके समय और कष्टजनक विपत्कालमें अशौच नहीं लगता । दक्षस्मृति-६ अध्याय-५ श्लोक और शातातपस्मृति--१२३ श्लोक । यज्ञमें दीक्षित मनुष्य और कर्मकरातेहुए ऋत्विक्को अशौच नहीं होताहै । अत्रिस्मृति-९६ श्लोक आपस्तम्बस्मृति-१० अध्यायके १५-१६ श्लोक, पाराशरस्मृति--३ अध्याय-२९ श्लोक और दक्षस्मृति-६ अध्याय-१९ श्लोक । विवाह, उत्सव अथवा यज्ञका कार्य आरम्भ होजानेपर यदि जन्म अथवा मरणका अशौच होजावेगा तो पहिलेके सङ्कल्प कियेहुए कामोंके करनेमें कुछ दोष नहीं होगा । दक्षस्मृति—६ अध्याय-२० श्लोक । यज्ञ, विवाह और देवयागके समय जन्म मरणका अशौच नहीं होताहै । लघुआश्वलायनस्मृति-१५ विवाहप्रकरणके ७२-७४ श्लोक । विवाह, उत्सव, यज्ञ, देवकर्म और पितृकर्ममें क्रिया आरम्भ होजानेपर उसकी समाप्तितक अशौच नहीं लगताहै; ऐसा पण्डित लोग कहतेहैं यज्ञमें ब्राह्मणोंका वरण; व्रत और सत्रमें संकल्प; विवाहमें नान्दीश्राद्ध और श्राद्धमें पाकका काम क्रियाका आरम्भ समझा जाताहै । वृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र--६ अध्याय, १०-११ श्लोक । दान, विवाह, यज्ञ, संग्राम और देशोपद्रवके समय तथा नित्य दान करनेवाले; व्रती और सदावर्तवालेको अशौच नहीं होताहै । १८ श्लोक दुर्भिक्ष; देशोपद्रव और विपत्कालमें सद्यः शौच कहागयाहै । पैठीनसिस्मृति --विवाह, यज्ञ, यात्रा और तीर्थमें अशौच नहीं होता; यज्ञ आदि कर्म करे ।

۞ शङ्खस्मृति—१५ अध्याय-२२ श्लोक और शातातपस्मृति—१२३ श्लोक । संन्यासी और ब्रह्मचारीको अशौच नहीं लगताहै ।

(६क) उशनस्स्मृति–६ अध्याय।

नैष्ठिकानां वनस्थानां यतिनां ब्रह्मचारिणाम्। नाशौचं विद्यते सद्भिः पतिते च तथा मृते ॥ ६१ ॥

नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी और पतित मनुष्यके मरनेपर उनके सपिण्डोंको अशौच नहीं लगताहै; ऐसा पण्डित लोग कहतेहैं ॥ ६१ ॥

(१३) पाराशरस्मृति–३ अध्याय।

शिल्पिनः कारुका वैद्या दासीदासाश्च नापिताः। राजानः श्रोत्रियाश्चैव सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः॥२२

शिल्पी (बढ़ई, लोहार आदि), कारुक (चित्रकार, सोनार आदि), वैद्य, दासी, दास, नाई राजा और श्रोत्रिय ब्राह्मण (अपने अपने कार्यके लिये) अशौचके आरंभमें ही शुद्ध होजातेहैं * ॥२२॥

सव्रतो मन्त्रपूतश्च आहिताग्निश्च यो द्विजः। राज्ञश्च सूतकं नास्ति यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥२३॥

व्रती, वेदमन्त्रसे पवित्र रहनेवाले, अग्निहोत्री ब्राह्मण, राजा और जिसको नहीं अशौच होना राजा चाहे उसको अशौच नहीं लगताहै † ॥ २३ ॥

उद्यतो निधने दाने आर्तो विप्रो निमन्त्रितः। तदैव ऋषिभिर्दृष्टं यथाकालेन शुद्ध्यति ॥२४॥

असाध्य रोगी, दान देनेमें तत्पर और आर्त मनुष्य और निमन्त्रित ब्राह्मण; ये यथासमयमें शुद्ध हो जातेहैं; ऐसा ऋषियोंने देखा है ‡ ॥ २४ ॥

(१८) गौतमस्मृति–१४ अध्याय।

बालदेशान्तरितप्रव्रजितासपिण्डानां सद्यः शौचं राज्ञां च कार्यविरोधाद् ब्राह्मणस्य च स्वाध्यायानिवृत्त्यर्थम् ॥ १ ॥

बालक, देशान्तरमें रहनेवाले, सन्यासी और किसी असपिण्डके मरनेपर; उनके स्वजनोंको अशौच नहीं लगता; राजकार्योंकी हानि नहीं हो इसलिये राजाको और वेदाध्ययनका नियम भङ्ग नहीं होवे इस लिये नित्य नियमसे वेदाध्ययन करनेवाले ब्राह्मणको अशौच नहीं होताहै, उसी समय शुद्धि होजातीहै § ॥ १ ॥

(२०क) वृद्धवसिष्ठस्मृति।

भगिन्यांसंस्कृतायां तु भ्रातर्यपि च संस्कृते। मित्रे जामातरि प्रेते दौहित्रे भागिनीसुते ॥
श्यालके तत्सुते चैव सद्यः स्नानेन शुध्यति।

विवाहीहुई बहन, असंस्कृत भाई, मित्र, दामाद, दौहित्र, भानजा, शाले और शालेके पुत्रके मरनेमें स्नान मात्रसे उसी समय शुद्धि होती है।

प्रेतक्रियानिषेध ५.

(१) मनुस्मृति–५ अध्याय।

वृथा संकरजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम्। आत्मनस्त्यागिनां चैव निवर्तेतोदकक्रिया ॥ ८९ ॥
पाखण्डमाश्रितानां च चरन्तीनां च कामतः। गर्भभर्तृद्रुहां चैव सुरापीनां च योषिताम् ॥ ९० ॥

नीचवर्ण पुरुषसे उच्चवर्णकी कन्यामें उत्पन्न वर्णसंकर, संन्यासी और आत्मघात करनेवालेके मरनेपर उनकी जलदान क्रिया नहीं करना चाहिये ॥ ८९ ॥ पाखण्डी पुरुष और व्यभिचारिणी, गर्भपात करने-

---

* उशनस्मृति—६ अध्याय–५५ श्लोक। कारुक, शिल्पी, वैद्य, दासी और दासको अशौच नहीं लगताहै। प्रचेतास्मृतिमें भी ऐसा है (४)। शंखस्मृति—१५ अध्याय–२२ श्लोक। कारुकको अशौच नहीं लगताहै। बृहद्विष्णुस्मृति—२२ अध्याय ५० श्लोक। कारुकको कारुकर्ममें अशौच नहीं लगताहै।

† अत्रिस्मृतिके ८३ श्लोकमें इस श्लोकसे केवल इतना भेद है कि जिसके अशौच नहीं होनेको ब्राह्मण चाहे उसको अशौच नहीं लगताहै। दक्षस्मृति—६ अध्याय–२० श्लोक। अग्निहोत्रीको अग्निहोत्रके समय जन्म मरणका अशौच नहीं लगताहै। लघुआश्वलायनस्मृति—२० प्रेतकर्मविधि प्रकरणके ९० श्लोक अग्निहोत्रीको अशौच नहीं लगता।

‡ लघुआश्वलायनस्मृति—२० प्रेतकर्मविधि प्रकरणके ९०–९१ श्लोक। निमन्त्रित ब्राह्मणको अशौच नहीं होता; श्राद्धमें जिस ब्राह्मणका चरण धोआजाताहै वह जबतक वहांसे घरके लिये विदा नहीं होता तबतक उसको कोई अशौच नहीं लगताहै।

§ लघुआश्वलायनस्मृति—२० प्रेतकर्मविधि प्रकरण–९० श्लोक। वेद पढनेमें निरत ब्राह्मणको अशौच नहीं होताहै। दक्षस्मृति—६ अध्याय–५ श्लोक। बालक तथा देशान्तरमें रहनेवालेको सद्यः शौच होताहै।

वाली, पतिका वध करनेवाली तथा सुरा पीनेवाली स्त्रियोंकी मृत्यु होनेपर उनकी उदकक्रिया नहीं करना चाहिये ॐ ॥ ९० ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय ।

हतानां नृपगोविप्रैरन्वक्षं चात्मघातिनाम् ॥ २१ ॥

और ब्राह्मण द्वारा वधहुए तथा आत्मघात करके मरेहुएका अशौच उसी समय निवृत्त होजाताहै अर्थात् नहीं लगताहै; क्रिया करनेकी आवश्यकता नहीं है @ ॥ २१ ॥

(१०) संवर्तस्मृति ।

गोविप्रप्रहते चैव तथा चैवात्मघातिनि ॥ १७७ ॥

नैवाश्रुपतनं कार्यं सद्भिः श्रेयोभिकांक्षिभिः । एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा ॥ १७८ ॥
कृत्वा चोदकदानं तु चरेच्चांद्रायणव्रतम् । तच्छवं केवलं स्पृष्ट्वा अश्रु नो पातितं यदि ॥ १७९ ॥
पूर्वकेष्वपकारी चेदेकाहं क्षपणं तथा। महापातकिनां चैव तथा चैवात्मघातिनाम् ॥ १८० ॥
उदकं पिण्डदानं च श्राद्धं चैव हि यत्कृतम् । नोपतिष्ठति तत्सर्वं राक्षसैर्विप्रलुप्यते ॥ १८१ ॥
चाण्डालैस्तु हता ये तु द्विजा दंष्ट्रिसरीसृपैः । श्राद्धं तेषा न कर्तव्यं ब्रह्मदण्डहताश्च ये ॥ १८२ ॥

अपना कल्याण चाहनेवाले सज्जनको उचित है कि गौ अथवा ब्राह्मणसे मरेहुए या आत्मघात करके मरेहुएके लिये रोदन भी नहीं करे ॥ १७७–१७८ ॥ जो मनुष्य इस प्रकारसे मरेहुएकी देहको श्मशानमें लेजाताहै, जलाताहै अथवा उसको जलदान करताहै वह अपनी शुद्धिके लिये चान्द्रायण व्रत करे; किन्तु जो केवल उसका स्पर्श करताहै, उसके लिये रोदन नहीं करता तथा जो पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करनेमें असमर्थ है वह एक रात उपवास करे ॥ १७८–१८० ॥ महापातकी और आत्मघातीके लिये जो जलदान पिण्डदान और श्राद्ध कियाजाताहै वह सब उनको नहीं मिलता है क्योंकि उसे राक्षस नष्ट करदेतेहैं॥१८०–१८२॥ जो द्विज चाण्डालके वध करनेसे, बाघ आदि दांतवाले जीवके मारनेसे, सर्पके काटनेसे, अथवा ब्राह्मणके दण्ड (शाप) से मर जातेहैं उनका श्राद्ध नहीं करना चाहिये ※ ॥ १८२ ॥

ॐ याज्ञवल्क्यस्मृति––३ अध्याय–६ श्लोक । पाखण्डी, चारों आश्रमोंसे बाहर रहनेवाले और चोर पुरुष, पतिका वध करनेवाली, व्यभिचारिणी तथा सुरा पीनेवाली स्त्रियां और आत्मघात करनेवाले; इनके मरनेपर इनका अशौच नहीं माने और इनको जलदान नहीं देवे ।

@ मनुस्मृति—५ अध्याय--९५ श्लोक; बृहद्विष्णुस्मृति२२ अध्याय–४६ श्लोक और उशनस्मृति—६ अध्याय–५९ श्लोक । राजदण्डसे मरनेवालेका अशौच उसी समय निवृत्त होजाताहै ।

※ याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–२१ श्लोक । गौ या ब्राह्मणसे अथवा आत्मघात करके मरेहुएका अशौच नहीं मानना चाहिये । अत्रिस्मृति–२६१ श्लोक । शंखके वचनानुसार गौ और ब्राह्मणसे मारेगयेहुएका अग्निसे दाह नहीं करना चाहिये । उशनस्मृति–६ अध्यायके ५९--६० श्लोक । गौ ब्राह्मणसे, सर्पके काटनेसे और विष खाकर मरनेवालोंका अशौच नहीं मानना चाहिये । शंखस्मृति--१५ अध्याय--२१ श्लोक । आत्मघातीका अशौच किसीको नहीं लगता । बृहद्विष्णुस्मृति–२२ अध्यायके ५५ और ५७--६० अङ्क । आत्मघाती मनुष्य अशौच और जलका भागी नहीं है । फासी लगाकर मरनेवालेके फांस (रस्सी) को काटनेवाले, दाहादि संस्कार करनेवाले और उसके लिये रोनेवाले तप्तकृच्छ्र व्रत करनेपर शुद्ध होतेहैं; किन्तु सब बान्धव मिलकर रोदन करनेवाले स्नानकरनेसे शुद्ध होजातेहैं । पाराशरस्मृति–४ अध्याय । जो स्त्री अथवा पुरुष अत्यन्त मान, क्रोध, स्नेह अथवा भयसे फांसी लगाकर मरजातेहैं वे पीव और रुधिरसे भरेहुए नरकमें ६० हजार वर्षतक रहतेहैं ॥ १--२ ॥ उनके सपिण्डोंको उचित है कि उनका अशौच नहीं माने, उनको जलाञ्जली नहीं देवें, उनका अग्निदाह नहीं करें तथा उनके लिये रोदन नहीं करें; क्योंकि जो मनुष्य उनके शरीरको श्मशानमें लेजातेहैं या जलातेहैं अथवा फांसको काटतेहैं वे तप्तकृच्छ्र करनेपर शुद्ध होतेहैं; ऐसा प्रजापतिने कहाहै ॥ ३--४ ॥ जो मनुष्य गौसे मारागया हो, फांसी लगाकर मरा हो या ब्राह्मणसे मारागया हो जो ब्राह्मण उसका स्पर्श करे; उसकी देहको श्मशानमें लेजाय अथवा अग्निमें दाह करे; उसके संग श्मशानमें जाय अथवा फासी काटे वह तप्तकृच्छ्र व्रतसे शुद्ध होकर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और बैलके सहित एक गौ ब्राह्मणोंको दक्षिणा देवे ॥५—६॥ लिखितस्मृति । जो मनुष्य सर्पके काटनेसे, ब्राह्मणसे, सींगवाले पशुके मारनेसे, दांतवाले जीवके काटनेसे अथवा आत्मघात करके मरजाताहै उसका श्राद्ध नहीं करना चाहिये ॥ ६४ ॥ जो ब्राह्मण गौके मारनेसे फांसी लगाकर अथवा ब्राह्मणद्वारा मरेहुए मनुष्यके शरीरका स्पर्श करताहै वह मरनेपर गौ, बकरा या घोडा होताहै ॥ ६५ ॥ जो इनको जलाताहै अथवा फांसी लगानेवालेके फांसको काटताहै वह तप्तकृच्छ्र करनेपर शुद्ध होताहै; ऐसा मनुप्रजापतिने कहाहै ॥ ६६॥ वसिष्ठस्मृति--२३ अध्याय—

(१५) शङ्खस्मृति-१५ अध्याय ।

भृग्वग्न्यनशनाम्भोभिर्मृतानामात्मघातिनाम् । पतितानां च नाशौचं शस्त्रविद्युद्धताश्च ये ॥२१॥

पर्वत आदि ऊंचे स्थानसे गिरकर, अग्निमे जलकर, निराहार रहकर, जलमें डूबकर, आत्मघात करके (फांसीलगाकर), पतित होकर, शस्त्रसे सिर काटकर और बिजली गिरनेसे मरनेवालोंका अशौच नहीं मानना चाहिये * ॥ २१ ॥

(२२) देवलस्मृति ।

मात" म्लेच्छत्वमागच्छेत्पितरो वा कथञ्चन । असूतकं च नष्टस्य देवलस्य वचो यथा ॥ ५९ ॥
मातरं च परित्यज्य पितरं च तथ" सुतः । ततः पितामहं चैव शेषपिण्डं तु निर्वपेत् ॥ ६० ॥

यदि माता अथवा पिता म्लेच्छ होजावे तो देवलके वचनानुसार उनके मरनेपर उनका अशौच नहीं माने; कभी श्राद्ध करे तो उनको छोडकर पितामह आदिको पिण्ड देवे ॥ ५९-६० ॥

(१९ क) दूसरी शातातपस्मृति-६ अध्याय ।

अश्वशूकरशृंग्यद्रिद्रुमादिशकटेन च । भृग्वग्निदारुशस्त्रश्मविषोद्बन्धनजैर्मृताः ॥ १ ॥
व्याघ्राहिगजभूपालचोरै रवृकाहताः । काष्ठशल्यमृता ये च शौचसंस्कारवर्जिताः ॥ २ ॥
विसूचिकान्नकवलदवातीसारतो मृताः । डाकिन्यादिग्रहैर्ग्रस्ता विद्युत्पातहताश्च ये ॥ ३ ॥
अस्पृश्या अपवित्राश्च पतिताः पुत्रवर्जिताः । पञ्चत्रिंशत्प्रकारैश्च नाप्नुवंति गतिं मृताः ॥ ४ ॥

जो मनुष्य (१) घोड़ेसे गिरकर, (२) सूअरके दांतसे, (३) पशुके सींगसे, (४) पर्वतसे गिरकर, (५) वृक्षादिसे गिरकर या दबकर, (६) गाड़ीसे दबकर, (७) ऊंचे स्थानसे गिरकर, (८) अग्निमें जलकर, (९) दारूसे, (१०) शस्त्रसे घात करके, (११) पत्थरकी चोटसे, (१२) विष खाकर, और (१३) फांसी लगाकर मरतेहैं; ॥ १ ॥ जो मनुष्य (१४) बाघके मारनेसे, (१५) सांपके काटनेसे (१६) हाथीके मारनेसे, (१७) राजदण्डसे, (१८) चोरके मारनेसे, (१९) शत्रुके मारनेसे, (२०) भेडियाके मारनेसे, (२१) काठसे, (२२) कांटेसे, (२३) विना शौच कियेहुए, (२४) विना संस्कार हुए मरजातेहैं; ॥ २ ॥ जो मनुष्य (२५) विसूचिका अर्थात् महामारी रोगसे, (२६) गलेमें ग्रास अटक जानेसे, (२७) वनदाढ़ामें जलकर, (२८) अतिसार रोगसे, (२९) डाकिनी आदिके मारनेसे, (३०)

—आत्मघात करनेवालेके सपिण्डोंको उचित है कि उसका प्रेतकर्म नही करें ॥ ११ ॥ जो मनुष्य काठ या मिट्टीसे दबकर, जलमें डूबकर, पत्थरसे दबकर, शस्त्रसे शिर काटकर, विष खाकर और फांसी लगाकर मरजातेहैं वे आत्मघाती कहलातेहैं ॥ १२ ॥ और प्रमाण कहतेहैं ॥ १३ ॥ जो द्विज स्नेहवश होकर आत्मघातीकी प्रेतक्रिया करताहै वह तप्तकृच्छ्के सहित चान्द्रायण व्रत करे ॥ १४ ॥

* मनुस्मृति-५ अध्याय-९५ श्लोक । बिजलीसे मरनेवालेका अशौच नही मानना चाहिये । वृहद्विष्णुस्मृति-२२ अध्याय-४६ अङ्क । पर्वत आदि ऊंचे स्थानसे गिरकर, अग्निमे जलकर, निराहार रहकर, जलमें डूबकर और बिजली गिरनेसे मरनेवालोंका अशौच किसीको नही लगता अर्थात् इनकी प्रेतक्रिया नहीं करनी चाहिये । ७५ अङ्क । पतित मनुष्य अशौच और जलदानका भागी नही है । अत्रिस्मृति-२६१ श्लोक । पतित मनुष्यका अग्निदाह नहीं करना चाहिये । २१५-२१७ श्लोक । जिस वृद्ध मनुष्यका शौचाशौचका ज्ञान नहीं है और जिसने चिकित्सा करना छोड़दिया है, वह यदि पर्वत आदि ऊंचे स्थानसे गिरकर, अग्निमें जलकर, निराहार रहकर अथवा जलमें डूबकर आत्मघात करे तो उसका अशौच ३ रात मानना चाहिये; दूसरे दिन अस्थिसञ्चयन और तीसरे दिन जलदान करके चौथे दिन उसका श्राद्ध करना चाहिये । उशनस्मृति ६ अध्यायके ५९-६० श्लोक । ऊंचे स्थानसे गिरकर, अग्निमें जलकर, निराहार रहकर जलमें डूबकर और बिजली गिरनेसे मरनेवालोका अशौच नही मानना चाहिये । ७ अध्याय-१-३ श्लोक । पतित मनुष्यका अग्निदाह, अस्थिसञ्चयन, उसके लिये रोदन, उसका पिण्डदान और श्राद्ध नही करना चाहिये । जो मनुष्य आगमे जलकर या विष खाकर आत्मघात करताहै उसका अशौच नही माने तथा उसको जलाञ्जली नहीं देवे; किन्तु यदि कोई अनजानमें आगमें जलजावे अथवा विष खाकर मरजावे तो उसका अशौच माने तथा उसको जल देवे । वृद्धशातातपस्मृति-३२ श्लोक । यदि कोई अज्ञानसे आगमें जलजावे या जल आदिसे मरजावे तो उसका अशौच मानना चाहिये तथा उसकी जलदानादि क्रिया करनी चाहिये । वृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-६ अध्याय, ५०-५२ श्लोक । सर्प, सींगवाले पशु, जल अथवा अग्निसे या आत्मघात करके मरेहुए मनुष्यको अग्निमे नही जलावे; किन्तु उसको भूमिमे गाडदेवे; उसकी उदकक्रियादि नही करे; ६ मासके बाद उसकी दाहादि क्रिया करे, ऐसा पाराशरने कहा है ।

ग्रहग्रस्त होकर और (३१) बिजली गिरनेसे मरतेहैं; ॥ ३ ॥ जो मनुष्य (३२) स्पर्श करनेके अयोग्य रहकर, (३३) अपवित्र होकर, (३४) पतित होकर और (३५) पुत्रहीन रहकर मर जातेहैं, इन ३५ प्रकारके मनुष्योंकी अच्छी गति नहीं होतीहै ॥४॥

व्याघ्रेण हन्यते जन्तुः कुमारीगमनेन च । विषदश्चैव सर्पेण गजेन नृपदुष्टकृत् ॥ ९ ॥
राज्ञा राजकुमारघ्नश्चोरेण पशुहिंसकः । वैरिणा मित्रभेदी च बकवृत्तिर्वृकेण तु ॥ १० ॥
गुरुघाती च शय्यायां मत्सरी शौचवर्जितः । द्रोही संस्काररहितः शुना निक्षेपहारकः ॥ ११ ॥
नरो विहन्यतेऽरण्ये शूकरेण च पाशिकः । कृमिभिः कृतवासाश्च कृमिणा च निकृन्तनः ॥ १२ ॥
शृङ्गिणा शंकरद्रोही शकटेन च सूचकः । भृगुणा मेदिनीचौरो वह्निना यज्ञहानिकृत् ॥ १३ ॥
दवेन दक्षिणाचोरः शस्त्रेण श्रुतिनिन्दकः । अश्मना द्विजनिन्दाकृद्विषेण कुमतिप्रदः ॥ १४ ॥
उल्लंघनेन हिंस्रः स्यात्सेतुभेदी जलेन तु । द्रुमेण राजदन्तिहृदतिसारेण लोहहृत् ॥ १५ ॥
गोग्रासहृद्विषूचिक्या कवलेन द्विजान्नहृत् । भ्रामेण राजपत्नीहृदतिसारेण निष्क्रियः ॥ १६ ॥
डाकिन्याद्यैश्च म्रियते सदर्प कार्यकारकः । अनध्यायेऽप्यधीयानो म्रियते विद्युता तथा ॥ १७ ॥
अस्पृश्यस्पर्शसङ्गी च वान्तमाश्रित्य शास्त्रहृत् । पतितोऽपत्यविक्रेतानपत्यो द्विजवस्त्रहृत् ॥ १८ ॥

(१) कुमारी कन्यासे गमन करनेवाला, दूसरे जन्ममें बाघसे माराजाताहै, (२) विष देनेवाला सांपके काटनेसे, (३) राजाके सङ्ग दुष्टता करनेवाला हाथीसे, (४) राजपुत्रका वध करनेवाला राज दण्डसे, (५) पशुका वध करनेवाला चोरके मारनेसे, (६) मित्रसे भेद रखनेवाला शत्रुके वध करनेसे और (७) बकवृत्ति मनुष्य दूसरे जन्ममें भेड़ियाके काटनेसे मरताहै ॥ ९-१० ॥ (८) गुरुका वध करनेवाला शय्यापर, (९) मत्सरवाला मनुष्य शौचहीन रहकर, (१०) लोगोंसे द्रोह करनेवाला संस्कारहीन दशामें, (११) धरोहर हरण करनेवाला कुत्तेके काटनेसे, (१२) फांसीसे मनुष्यका वध करनेवाला वनशूकरके मारनेसे और (१३) कीडोंका वध करके वस्त्र बनानेवाला दूसरे जन्ममें कीडोंके काटनेसे मरजाताहै ॥ ११-१२ ॥ (१४) शङ्करका द्रोही सींगवाले पशुके मारनेसे, (१५) निन्दक मनुष्य गाड़ीसे दबकर, (१६) भूमि हरण करनेवाला ऊंचे स्थानसे गिरकर, (१७) यज्ञमें विघ्न करनेवाला आगमें जलकर, (१८) दक्षिणा चोरानेवाला वनदाढ़ामें जलकर, (१९) वेदकी निन्दा करनेवाला शस्त्रकी चोटसे, (२०) ब्राह्मणकी निन्दा करनेवाला पत्थरकी चोटसे और (२१) बुरे कामको सिखानेवाला दूसरे जन्ममें विष खानेसे मरताहै ॥१३-१४॥ (२२) हिंसा करनेवाला फांसीसे, (२३) पुल तोड़नेवाला जलमें डूबकर, (२४) राजाके हाथीको चोरानेवाला वृक्षसे गिरकर, (२५) लोहा चोरानेवाला अतिसार रोगसे,(२६)राजाकी गौग्रास हरण करनेवाला महामारी रोगसे(२७) ब्राह्मणका अन्न हरण करनेवाला ग्रासके अटक जानेसे, (२८)बाला स्त्रीका हरण करनेवाला भ्रम रोगसे और (२९) क्रियाहीन मनुष्य दूसरे जन्ममें अतिसार रोगसे मरताहै ॥ १५-१६ ॥ (३०) अहङ्कारसे काम करनेवाला डाकिनी आदिके मारनेसे, (३१) अनध्यायमें पढनेवाला बिजलीके गिरनेसे, (३२) स्पर्शके अयोग्य मनुष्यका संग करनेवाला मल मूत्रादिसे लिप्त होकर, (३३) शास्त्रको चोरानेवाला वमन रोगसे, (३४) अपनी सन्तानको बेंचनेवाला पतित होकर आर (३५) ब्राह्मणका वस्त्र चोरानेवाला दूसरे जन्ममें सन्तानहीन रहकर मरजाताहै ॥ १७-१८ ॥

अथ तेषां क्रमेणैव प्रायश्चित्तं विधीयते । कार्येन्निष्कमात्रं तु पुरुषं प्रेतरूपिणम् ॥ १९ ॥
चतुर्भुजं दण्डहस्तं महिषासनसंस्थितम् । पिष्टैः कृष्णतिलैः कुर्यात्पिण्डं प्रस्थप्रमाणतः ॥ २० ॥
मध्वाज्यशर्करायुक्तं स्वर्णकुण्डलसंयुतम् । अकालमूलं कलशं पञ्चपल्लवसंयुतम् ॥ २१ ॥
कृष्णवस्त्रसमाच्छन्नं सर्वौषधिसमन्वितम् । तस्योपरि न्यसेद्देवं पात्रं धान्यफलैर्युतम् ॥ २२ ॥
सप्तधान्यन्तु सफलं तत्र तत्संमुखं न्यसेत् । कुम्भोपरि च विन्यस्य पूजयेत्प्रेतरूपिणम् ॥ २३ ॥
कुर्यात्पुरुषसूक्तेन प्रत्यहं दुग्धतर्पणम् । षडङ्गं च जपेद्रुद्रं कलशे तत्र वेदवित् ॥ २४ ॥
यमसूक्तेन कुर्वीत यमपूजादिकं तथा । गायत्र्याश्चैव कर्तव्यो जपः स्वात्मविशुद्धये ॥ २५ ॥
ग्रहशान्तिकपूर्वं च दशांशं जुहुयात्तिलैः । अज्ञातनामगोत्राय प्रेताय सतिलोदकम् ॥ २६ ॥
प्रदद्यात्पितृतीर्थेन पिण्डं मन्त्रमुदीरयेत् । इमं तिलमयं पिण्डं मधुसर्पिस्समन्वितम् ॥ २७ ॥
ददामि तस्मै प्रेताय यः पीडां कुरुते मम । सजलान्कृष्णकलशांस्तिलपात्रसमन्वितान् ॥ २८ ॥
द्वादशप्रेतमुद्दिश्य दद्यादेकं च विष्णवे । ततोऽभिषिञ्चेदाचार्यो दम्पती कलशोदकैः ॥ २९ ॥
शुचिर्वरायुधधरो मन्त्रैर्वरुणदैवतैः । यजमानस्ततो दद्यादाचार्याय सदक्षिणाम् ॥ ३० ॥
ततो नारायणबलिः कर्तव्यः शास्त्रनिश्चयात् । एष साधारणविधिरगतीनामुदाहृतः ॥ ३१ ॥

अब क्रमसे उनका प्रायश्चित्त कहताहूं;—उनके प्रायश्चित्त करनेवालोंको उचित है कि ४ भर (सोने) का चार भुजाओंसे युक्त हाथमें दण्ड लियेहुए और भैंसेपर चढ़ेहुए प्रेतरूपी यमराजकी प्रतिमा बनावे; एक प्रस्थ प्रमाण पिसान और तिलका, जिसमें मधु, घी और गुड़ मिलेहो, एक पिण्ड बनावे; उसपर सोनेका कुण्डल रक्खे ॥ १९–२१ ॥ एक कलश, जिसमें काला चिह्न न हो, स्थापित करके उसके मुखमें पञ्च-पल्लव रखदेवे, कलशको नील वस्त्रसे आच्छादित करे; उसमें सब औषधियोंको डाले और उसके ऊपर सप्त धान्य और फलोंके सहित एक पात्र रक्खे; पात्रके ऊपर प्रेतरूपी यमराजकी प्रतिमाको रखकर उसकी पूजा करे ॥ २१–२३ ॥ प्रति दिन पुरुषसूक्त मन्त्र पढकर दूधसे यमराजका तर्पण करे; वेद जाननेवाले ब्राह्मणसे कलशके निकट षडङ्गसहित रुद्रका जप करावे ॥ २४ ॥ वेदोक्त यमसूक्तसे यमकी पूजा आदि करे; अपने आत्माकी शुद्धिके लिये गायत्रीका जप करे; ॥ २५ ॥ ग्रहशान्ति करके तिलसे दशांश होम करे; अज्ञात नाम गोत्र प्रेतको पितृतीर्थ अर्थात् अंगूठे और तर्जनी अंगुलीके मध्यसे तिलोदकके सहित पूर्वोक्त पिण्ड देवे;उस समय यह मन्त्र पढ़े कि मैं उस प्रेतको जो मुझको भी दुःख देताहै, मधु और घीसे मिलाहुआ तिलका यह पिण्ड देताहूं ॥ २६–२८ ॥ उसके बाद जलसे पूर्ण नील रंगके १२ कलश, जिनपर तिल भरेहुए पात्रके रक्खेहुए होवें, प्रेतके लिये और १ कलश विष्णुके नामसे दान करे ॥ २८–२९ ॥ उसके पश्चात् आचार्यको चाहिये कि इस मन्त्रको पढ़कर कि हे श्रेष्ठ आयुध धारण कियेहुए वरुणदेवता पवित्र करो, स्त्रीके सहित यजमानको कलशके जलसे स्नान करावे और यजमान आचार्यको दक्षिणा देवे और शास्त्रके विधानसे नारायणकी पूजा करे ॥ ३०–३१ ॥

विशेषस्तु पुनर्ज्ञेयो व्याघ्रादिनिहतेष्वपि । व्याघ्रेण निहते प्रेते परकन्यां विवाहयेत् ॥ ३२ ॥

जिनकी सुगति नहीं होतीहै उनकी यह साधारण विधि कहीगई; अब बाघ आदिसे मरेहुए लोगोंके विषयमें एक एक करके विधान दिखातेहैं ॥ ३१–३२ ॥

सर्पदंशे नागबलिर्देयः सर्वेषु काञ्चनम् । चतुर्निष्कमितं हेमगजं दद्याद्गजैर्हते ॥ ३३ ॥
राज्ञा विनिहते दद्यात्पुरुषन्तु हिरण्मयम् । चोरेण निहते धेनुं वैरिणा निहते वृषम् ॥ ३४ ॥
वृकेण निहते दद्याद्यथाशक्ति च काञ्चनम् । शय्यामृते प्रदातव्या शय्या तूलीसमन्विता ॥ ३५ ॥
निष्कमात्रं सुवर्णस्य विष्णुना समधिष्ठिता । शौचहीने मृते चैव द्विनिष्कस्वर्णजं हरिम् ॥ ३६ ॥
संस्कारहीने च मृते कुमारं च विवाहयेत् । शुना हते च निक्षेपं स्थापयेन्निजशक्तितः ॥ ३७ ॥
शूकरेण हते दद्यान्महिषं दक्षिणान्वितम् । कृमिभिश्च मृते दद्याद् गोधूमान्नं द्विजातये ॥ ३८ ॥
शृङ्गिणा च हते दद्याद्वृषभं वस्त्रसंयुतम् । शकटेन मृते दद्यादश्वं सोपस्करान्वितम् ॥ ३९ ॥
भृगुपाते मृते चैव प्रदद्याद्धान्यपर्वतम् । अग्निना निहते दद्यादुपानहं स्वशक्तितः ॥ ४० ॥
दवेन निहते चैव कर्त्तव्या सदने सभा । शस्त्रेण निहते दद्यान्महिषीं दक्षिणान्विताम् ॥ ४१ ॥
अश्मना निहते दद्यात्सवत्सां गां पयस्विनीम् । विषेण च मृते दद्यान्मेदिनीं क्षेत्रसंयुताम् ॥ ४२ ॥
उद्बन्धनमृते चापि प्रदद्याद् गां पयस्विनीम् । मृते जलेन वरुणं हैमं दद्यात्त्रिनिष्ककम् ॥ ४३ ॥
वृक्षं वृक्षहते दद्यात्सौवर्णं स्वर्णसंयुते । अतिसारमृते लक्षं सावित्र्या संयतो जपेत् ॥ ४४ ॥
डाकिन्यादिमृते चैवं जपेद्रुद्रं यथोचितम् । विद्युत्पातेन निहते विद्यादानं समाचरेत् ॥ ४५ ॥
अस्पर्शे च मृते कार्यं वेदपारायणं तथा । सुशास्त्रपुस्तकं दद्याद्धान्तमाश्रित्य संस्थिते ॥ ४६ ॥
पातित्येन मृते कुर्यात्प्राजापत्यानि षोडश । मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवतिं चरेत् ॥ ४७ ॥
निष्कत्रयमितं स्वर्णं दद्यादश्वं हयाहते । कपिना निहते दद्यात्कपिं कनकनिर्मितम् ॥ ४८ ॥
विसूचिकामृते स्वादु भोजयेच्च शतं द्विजान् । तिलधेनुः प्रदातव्या कण्ठेन्नकवलैर्मृते ॥ ४९ ॥
केशरोगमृते चापि अष्टौ कृच्छ्रान्समाचरेत् । एवं कृते विधानेन विदध्यादौर्ध्वदेहिकम् ॥ ५० ॥
ततः प्रेतत्वनिर्मुक्ताः पितरस्तर्पितास्तथा । दद्युः पुत्रांश्च पौत्रांश्च आयुरारोग्यसम्पदः ॥ ५१ ॥

(१) बाघसे मरेहुए मनुष्यके उद्धारके लिये दूसरेकी कन्याका विवाह करादेवे, (२) सांपके काटनेसे मरेहुएके उद्धारके लिये सब बलियोंमें कुछ कुछ सोना रखकर सांपोंके लिये बलि देवे, (३) हाथी द्वारा मरे-हुएके उद्धारके लिये १६ भर सोनेका हाथी दान करे ॥ ३२–३३ ॥ (४) राजदण्डसे मरेहुएके लिये सोनेका पुरुष बनाकर दान करे, (५) चोरसे मारेगयेहुए मनुष्यके उद्धारके लिये ब्याईहुई गौ दान करे, (६) शत्रुसे मारेगयेहुए मनुष्यके उद्धारके लिये बैल दान करे, (७) भेड़िया द्वारा मारेगयेहुएके उद्धारके लिये यथाशक्ति सोना दान करे, (८) खटियापर मरेहुए मनुष्यके उद्धारके निमित्त ४ भर सोनेकी विष्णुकी प्रतिमाको तोशक तकिये सहित शय्यापर बैठा करके दान करे, (९) अशुद्ध दशामें मरनेवालेके उद्धारके

लिये ८ भर सोनेकी विष्णुकी प्रतिमा दान करे ॥ ३४–३६ ॥ (१०) संस्कारहीन रहकर मरनेवालेके उद्धारके लिये कुमार लड़केका विवाह करादेवे, (११) कुत्तेके काटनेसे मरनेवालेके उद्धारके लिये अपनी शक्तिके अनुसार धर्मके लिये किसीके पास द्रव्य रखदेवे ॥ ३७ ॥ (१२) सूअरसे मरेहुएके उद्धारके लिये दक्षिणाके सहित भैंसा दान करे, (१३) कीड़ेके काटनेसे मरनवालेके उद्धारके लिये ब्राह्मणको गेहू दान करे ॥ ३८ ॥ (१४) सींगवाले पशुसे मरेहुएके उद्धारके लिये वस्त्रके सहित बैल दानकरे, (१५) गाड़ीसे मरजानेवालेके उद्धारके लिये जीन आदि सामग्री सहित घोड़ा दानकरे ॥ ३९ ॥ (१६) ऊंचे स्थानसे गिरकर मरजानेवालेके उद्धारके लिये अन्नका पर्वत बनाकर दानकरे, (१७) आगसे मरनेवालेके उद्धारके लिये शक्तिके अनुसार जूता दानकरे ॥ ४० ॥ (१८) दावाग्निसे मरनेवालेके उद्धारके लिये सभागृह बनादेवे, (१९) शस्त्रसे मरजानेवालेके उद्धारके लिये दक्षिणासहित भैंस दानकरे ॥ ४१ ॥ (२०) पत्थरसे मरनेवालेके उद्धारके लिये बछड़े सहित दुग्धवती गौ दान देवे, (२१) विषसे मरेहुएके उद्धारके लिये खेती योग्य भूमि दान करे (२२) फांसीसे मरेहुएके उद्धारके अर्थ दूध-देनेवाली गौ दान करे, (२३) जलसे मरनेवालेके उद्धारके लिये १२ भर सोनेकी वरुणकी प्रतिमा बनाकर दान करे ॥४२–४३॥(२४),वृक्षसे मरनेवालेके उद्धारके लिये सोनाके सहित सोनेका वृक्ष दान करे,(२५)अतिसार रोगसे मरनेवालेके उद्धारके लिये नियम युक्त होकर १ लाख गायत्रीका जप करे ॥ ४४ ॥ (२६) डाकिनी आदिकी बाधासे मरनेवालेके उद्धारके लिये विधिपूर्वक रुद्रका जप करे, (२७) बिजली गिरनेसे मरने वालेके उद्धारके लिये विद्या दान करे ॥ ४५ ॥ (२८) स्पर्श करनेके अयोग्य होकर मरनेवालेके उद्धारके लिये वेदका पारायण करे, (२९) वमन रोगसे मरजानेवालेके उद्धारके लिये अच्छे शास्त्रकी पुस्तक दान करे ॥ ४६ ॥ (३०) पतित होकर मरनेवालेके उद्धारके लिये सोलह प्राजापत्य व्रत करे, (३१) सन्तान हीन होकर * मरनेवालेके उद्धारके लिये ९० कृच्छ्र (प्राजापत्य) करे, (३२) घोड़ेसे मरनेवालेके उद्धारके लिये १२ भर सोनेका घोड़ा दान करे, (३३) वानरके काटनेसे मरनेवालेके उद्धारके लिये सोनेका वानर दान करे ॥ ४७–४८ ॥ (३४) महामारीसे मरनेवालेके उद्धारके लिये एकसौ ब्राह्मणोंको स्वादिष्ट अन्न भोजन करावे और (३५) कण्ठमें ग्रास अटककर मरजानेवालेके उद्धारके लिये तिलधेनु दान करे और केश रोगसे मरजानेवालेके उद्धारके लिये आठ कृच्छ्र करे ॥ ४९–५० ॥ ऐसा करके मृतकका श्राद्धादि कर्म करना चाहिये; ऐसा करनेसे मृतक प्रेतयोनिसे छूटताहै और पितर लोग तृप्त होकर पुत्र, पौत्र, आयु, आरोग्यता और सम्पत्तिकी वृद्धि करतेहैं ॥ ५०—५१ ॥

(१३ क) बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–९ अध्याय।

अथान्यत्पापमृत्यूनां शुद्ध्यर्थं पापमुच्यते। कृतेन तेन येषां तु प्रदत्तमुपतिष्ठति ॥ २९९ ॥
शृङ्गिदन्त्युरगव्यालनीरास्युद्धन्धनैस्तथा। विद्युन्निर्घातवृक्षैश्च विप्रैश्चैवात्मना हताः ॥ ३०० ॥
व्रणसञ्जातकीटैश्च म्लेच्छैश्चैव हता नराः। पापमृत्यव एते वै शुभगत्यर्थ मुच्यते ॥ ३०१ ॥
नारायणो बलिः कार्यो विधानं तस्य कथ्यते। ऊर्ध्वं षण्मासतः कुर्यादेके ऊर्ध्वं तु वत्सरात्॥३०२॥
तेषां पापव्यपोहार्थं कार्यो नारायणो बलिः। धौतवासाः शुचिः स्नात एकादश्यामुपोषितः॥३०३॥
शुक्लपक्षे तु संपूज्य विष्णुमीशं यमं तथा। नदीतीरं शुचिर्गत्वा प्रदद्याद्दश पिण्डकान् ॥ ३०४ ॥
क्षौद्राज्यतिलसंयुक्तान्हविषा दक्षिणामुखः। अभ्यर्च्य पुष्पधूपाद्यैस्तन्नामगोत्रपूर्वकान् ॥ ३०५ ॥
विष्णुध्यानमनाः कुर्यात्ततस्तानम्भसि क्षिपेत्। निमन्त्रयेत विप्रांश्च पञ्च सप्ताथ वा नव ॥३०६ ॥
द्वादश्यां कृतपे स्नातान्धौतवस्त्रान्समागतान्। कृष्णाराधनकृद्भक्त्या पादप्रक्षालिताञ्छुभान्॥३०७॥
दक्षिणाप्रवणे देशे शुचींस्तानुपवेशयेत्। द्वौ दैवे तु त्रयः पित्र्ये प्राङ्मुखोदङ्मुखान्द्विजान्॥३०८॥
आसनावाहनाद्यं च कुर्यात्पार्वणवद्विजा। भोजयेद्भक्ष्यभोज्यैश्च क्षौद्रैक्षवाज्यपायसैः ॥ ३०९ ॥
तृप्तांस्तानथ विप्रेशांस्तृप्तिं पृच्छेद्यथाविधि। साज्येन तिलमिश्रेण हविष्येण च तान्पुनः ॥ ३१० ॥
पञ्च पिण्डान्प्रदद्याद्वै दैवं रूपमनुस्मरन्। विष्णुब्रह्मशिवेभ्यश्च त्रीन्पिण्डांश्च यथाक्रमम् ॥ ३११ ॥
यमाय सानुगायाथ चतुर्थं पिण्डमुत्सृजेत्। मृतं संचिन्त्य मनसा गोत्रनामकपूर्वकम् ॥ ३१२ ॥

---

* मनुस्मृति–९ अध्यायके १८२–१८३ श्लोकमें, बृहद्विष्णुस्मृति–१५ अध्यायके ४०-४१ श्लोकमें और वसिष्ठस्मृति–१७ अध्यायके १०–११ श्लोकमें है कि सहोदर भाईकी सन्तान रहनेपर पुरुष निःसन्तान नहीं समझाजाताहै और सौतकी सन्तान रहनेपर स्त्री सन्तानहीन नहीं कहीजातीहै।

विष्णुं स्मृत्वा क्षिपेत्पिण्डान्पञ्च पञ्च ततः पुनः । दक्षिणाभिमुखो भूत्वा निर्वपेत्पञ्च पिण्डकान् ॥
आचम्य ब्राह्मणान्पश्चात्प्रोक्षणादिकमाचरेत् ॥ ३१३ ॥
हिरण्येन च वासोभिर्गोभिर्भूम्या च तान्द्विजान् । प्रणम्य शिरसा पश्चाद्विनयेन प्रसादयेत् ॥३१४॥
तिलोदकं करे कृत्वा प्रेतं संस्मृत्य चेतसा । गोत्रपूर्वं क्षिपेत्पाणौ बुद्धौ विष्णुं निवेश्य च ॥३१५॥
बहिर्गत्वा तिलाम्भस्तु तस्मै दद्यात्समाहितः । मित्रभृत्यैर्निजैः सार्धं पश्चाद् भुञ्जीत वाग्यतः॥३१६॥
एवं विष्णुमते स्थित्वायोदद्यात्पापमृत्यवे । समुद्धरति तं प्रेतं पराशरवचो यथा ॥ ३१७ ॥
सर्वेषां पापमृत्यूनां कार्यो नारायणो बलिः । तस्मादूर्ध्वं च तेभ्यो वै प्रदत्तमुपतिष्ठति ॥ ३१८ ॥

पापमृत्युकी शुद्धिके लिये दूसरा उपाय कहता जिसके करनेसे उनको दियेहुए पिण्डादि उनको मिलताहै ॥ २९९ ॥ सींगवाले पशु, हाथी, सर्प, बाघ, जल, अग्नि, फांसी, बिजली, वृक्ष, ब्राह्मण, आत्मघात, घावसे उत्पन्न कीट और म्लेच्छसे मरेहुए मनुष्य पापमृत्यु कहेजातेहैं उनकी सुगति होनेका उपाय कहताहूं ॥ ३००–३०१ ॥ उनके पापके नाशके लिये उनकी मृत्युसे ६ मास अथवा एक वर्षके बाद नारायणबलि करना चाहिये उसका विधान कहताहूं ॥ ३०२–३०३ ॥ स्नान करके धोयेहुए वस्त्र पहने, शुक्लपक्षकी एकादशीमें उपवासकर विष्णु, शिव और यमकी पूजा करे पश्चात् नदीके किनारे जाकर दक्षिण मुख होकर मधु, घी और तिलसे युक्त १० पिण्ड प्रेतको देवे और मनमें विष्णुका ध्यान करताहुआ नाम और गोत्रका उच्चारण करके पुष्पधूपादिसे पूजन करे, उसके बाद पिण्डोंको जलमें डालदेवे ॥ ३०३–३०६ ॥ पांच सात अथवा नव ब्राह्मणोंका निमन्त्रण करे, द्वादशीमें कुतप कालमें स्नान करके धोयेहुए वस्त्रोंको पहने, आयेहुए ब्राह्मणोंका भक्तिपूर्वक चरण धोकर उनको दक्षिणाको ढालआ पवित्र स्थानमें बैठावे, दैवस्थानमें पूर्व मुखसे २ ब्राह्मणोंको और पितृस्थानमें उत्तर मुखसे ३ ब्राह्मणोंको बैठादेवे ॥ ३०६–३०८ ॥ द्विजको उचित है कि पार्वण श्राद्धके समान आसन देवे और आवाहन आदि करे, मधु, शर्करा, घी, पायस इत्यादि और लड्डू, मण्डा आदि भक्ष्य तथा भात, दाल आदि भोज्य पदार्थ ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ ३०९ ॥ तृप्त ब्राह्मणोंसे विधिपूर्वक तृप्त होनेका प्रश्न करे; घी, तिल और हविष्यसे युक्त ५ पिण्डोंको दैव रूप स्मरण करके देवे; विष्णु, ब्रह्मा और शिवको क्रमसे ३ पिण्ड दे ॥ ३१०–३११ ॥ चौथा पिण्ड अनुचरोंके सहित यमको देवे; गोत्र और नाम उच्चारण पूर्वक मृतकका चिन्तन करके विष्णुका स्मरण करताहुआ फिर मृतक और विष्णुको पांच पांच पिण्ड दे; इनमें दक्षिण मुख होकर मृतकको ५ पिण्ड देवे, उसके पश्चात् ब्राह्मणोंको आचमन कराके पादप्रक्षालनादि करे ॥ ३१२–३१३ ॥ सोना, वस्त्र, गौ और भूमि ब्राह्मणोंको देकर प्रणाम करे; पश्चात् विनय करके उनको प्रसन्न करे तिलोदक हाथमें लेकर ॥ ३१४ ॥ प्रेतका स्मरण करताहुआ गोत्रका उच्चारण करके मनमें विष्णुका ध्यानकर तिलसहित जल हाथमें डाले ॥ ३१५ ॥ बाहर जाकर तिलोदक प्रेतको देवे; उसके बाद अपने मित्र और भृत्योंके साथ मौन होकर भोजन करे ॥ ३१६ ॥ जो मनुष्य महर्षि पाराशरके कथनानुसार इसप्रकार विष्णुमतमें रहकर पापमृत्यु मनुष्यको पिण्ड देताहै वह उस प्रेतका उद्धार करताहै ॥ ३१७ ॥ ऊपर लिखेहुए सींगवाले पशु इत्यादिसे मरेहुए सब प्रकारके पापमृत्युके लिये नारायणबलि करना चाहिये; उसके बाद पिण्डादि जो कुछ उनको दिया जाताहै सब उनको मिलताहै ॥ ३१८ ॥

एक समयमें दो अशौच ६.

(१) मनुस्मृति–५ अध्याय ।

अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी । तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम् ॥ ७९ ॥

यदि १० दिनके भीतर फिर मरणका दूसरा अशौच होजावे अथवा बालकके जन्मसे १० दिनके भीतर फिर अन्य बालक जन्मे तो पहिले अशौचके १० दिनतक ब्राह्मणका अशौच रहेगा अर्थात् प्रथमके अशौचके साथ पीछेका अशौच समाप्त हो जायगा * ॥ ७९ ॥

(६ क) उशनस्मृति–६ अध्याय ।

सूतके यदि सूतिश्च मरणे वा गतिर्भवेत् ॥ १९ ॥

---

* याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय–२० श्लोक, यमस्मृति—७५–७६ श्लोक, पाराशरस्मृति—३ अध्याय–३० श्लोक, वसिष्ठस्मृति—४ अध्याय–२२ अङ्क, उशनस्मृति—६ अध्याय–१९–२० श्लोक, दक्षस्मृति—६ अध्यायके १४–१५ श्लोक, बृहद्विष्णुस्मृति—२२ अध्यायके ३४ और ३७ अङ्क और गौतम स्मृति—१४ अध्यायके १ अंकमें भी ऐसा है ।

शेषेणैव भवेच्छुद्धिरहःशेषे द्विरात्रकम् । मरणोत्पत्तियोगे तु मरणेन समाप्यते ॥ २० ॥
अघवृद्धिमदाशौचमूर्द्धं चेत्तेन शुध्यति ॥ २१ ॥

यदि जन्मके अशौचमें जन्मका दूसरा अशौच अथवा मरणके अशौचमें मरणका दूसरा अशौच हो जाताहै तो पहिले अशौचके बाकी दिनोंमें दूसरा अशौच छूटजाताहै; किन्तु यदि पहिले अशौचका केवल एक दिन शेष रहनेपर दूसरा अशौच होताहै तो पहिले अशौचके अन्तकेसे दिन २ रात बाद शुद्धि होतीहै ॥ १९-२० ॥ यदि मरणके अशौचके भीतर जन्मका अशौच अथवा जन्मके अशौचमें मरणका अशौच होताहै तो मरणके अशौचके अन्तके दिन अशौच छूटताहै; जब पहिले अशौचमें उससे बड़ा दूसरा अशौच होताहै तब पिछले अशौचके साथ पहिलेकी शुद्धि होतीहै ॥ २०-२१ ॥

(१५) शङ्खस्मृति-१५ अध्याय ।

समानं खल्वशौचं तु प्रथमेन समापयेत् । असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा ॥ १० ॥

एक समान २ अशौच अर्थात् जन्मसूतकमें जन्मसूतक अथवा मरणसूतकमें मरणसूतक होनेपर पहिले अशौचके साथ दूसरा अशौच समाप्त होजाताहै; किन्तु छोटा-बड़ा २ अशौच अर्थात् मरण अशौचमें जन्मका अशौच या जन्मके अशौचमें मरणका अशौच होनेपर दूसरे (पीछेवाले) अशौचके साथ पहिला अशौच छूटताहै; ऐसा धर्मराजने कहाहै ॥ १० ॥

विदेशमें मरेहुएका अशौच ७.

(१) मनुस्मृति-५ अध्याय ।

सन्निधावेष वैकल्पः शावाशौचस्य कीर्तितः । असन्निधावयं ज्ञेयो विधिः संबन्धिबान्धवैः ॥ ७४ ॥

समीपके मृतकको अशौचकी विधि कहीगई; अब विदेशमें मरेहुए सम्बन्धी और बान्धवोंके अशौचकी विधि कहताहूं ॥ ७४ ॥

विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् । यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥ ७५ ॥
अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् । संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुद्ध्यति ॥ ७६ ॥
निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च । सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः ॥ ७७ ॥
बाले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे च संस्थिते । सवासा जलमाप्लुत्य सद्य एव विशुध्यति ॥७८॥

विदेशमें मरेहुए (ब्राह्मण) का समाचार यदि १० दिनके भीतर सुने तो १० दिनमें जितने दिन बाकी होवें उतने दिनतक और यदि १० दिनके बाद मरनेकी खबर मिले तो ३ राततक (सपिण्डको) अशौच रहताहै और यदि १ वर्षके पीछे मृत्युका समाचार मिले तो केवल स्नान करके वह शुद्ध होताहै ॥७५-७६॥ १० दिनके पश्चात् सपिण्ड मनुष्यकी मृत्यु अथवा पुत्र जन्मकी खबर सुननेपर वस्त्रोंसहित स्नान करने पर मनुष्य (स्पर्शयोग्य) शुद्ध होजाताहै ॥ ७७ ॥ विदेशमें रहनेवाले बालक अथवा असपिण्ड (समानोदक) के मरनेका समाचार सुननेपर वस्त्रोंसहित स्नान करनेसे उसी समय शुद्धि होजातीहै ॥७८॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय ।

प्रोषिते कालशेषः स्यात्पूर्णे दत्त्वोदकं शुचिः ॥ २१ ॥

विदेशमें मरेहुए (सपिण्ड) का समाचार यदि अशौचके नियमित समयके भीतर सुननेमें आवे तो अशौचके जितने दिन बाकी होवें उतने दिनतक अशौच माने और यदि अशौचका समय बीत जानेपर मरनेकी खबर मिले तो स्नान और जलदान करके उसी समय शुद्ध होजावे ॥ २१ ॥

गौतमस्मृति—१४ अध्याय-१ अंक, वसिष्ठस्मृति—४ अध्याय-२३ अंक और वृहद्विष्णुस्मृति—२२ अध्यायके ३५-३६ अंक । यदि पहिले अशौचकी १ रात बाकी रहनेपर दूसरा अशौच होताहै तो पहिले अशौचके अन्तिम दिनसे २ रात बाद और यदि पहिले अशौचके अन्तिम दिनमें प्रातःकाल दूसरा अशौच होजाताहै तो उस दिनसे ३ रात बाद दोनों अशौचोंकी शुद्धि होतीहै अर्थात् ३ रात अशौचका समय बढादेना चाहिये ।

दक्षस्मृति—६ अध्याय-१२ श्लोकमें ऐसाही है । लिखितस्मृति—८६ और लघुहारीतस्मृति-८० श्लोक । यदि मरणके अशौचमें जन्मका अशौच होजाताहै तो मरणके अशौचके साथ जन्मका अशौच छूटताहै; किन्तु जन्मके अशौचमें मरणका अशौच होनेपर मरणका अशौच अपने पूरे दिनपर निवृत्त होताहै ।

उशनस्मृति—६ अध्यायके २१-२३ श्लोक और शंखस्मृति—१५ अध्यायके ११-१२ श्लोकमें ऐसाही है । (यहां ब्राह्मणके लिये १० दिन लिखाहै, इसी प्रकार क्षत्रियके लिये १२ दिन, वैश्यके लिये १५ दिन और शूद्रके लिये १ मास जानना चाहिये)

(१३) पाराशरस्मृति–३ अध्याय।

दशरात्रेष्वतीतेषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते। ततः संवत्सरादूर्ध्वं सचैलं स्नानमाचरेत् ॥ ११ ॥
देशान्तरमृतः कश्चित्सगोत्रः श्रूयते यदि। न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥ १२ ॥
आत्रिपक्षात्रिरात्रं स्यादाषण्मासाच्च पक्षिणी। अहः संवत्सरादर्वाक् सद्यः शौचं विधीयते ॥ १३ ॥

१० रात बीतजानेपर सपिण्डके मरनेकी खबर सुन ३ रातमें (ब्राह्मण) की शुद्धि होतीहै और १ वर्षबाद सुननेपर वस्त्रोंके सहित स्नानकरनेसे उसी समय शुद्धि होजातीहै ॥ १ ॥ जब सगोत्री मनुष्यके देशान्तरमें मरनेका सम्वाद सुनाजाताहै तब न तो ३ रात और न एकरात अशौच रहताहै; किन्तु उसी समय स्नान करनेपर शुद्धि होजातीहै ॥ १२ ॥ डेढ़ महीनेतक (सपिण्डके) मरनेकी खबर सुने तो ३ रात, छ महीनेतक सुने तो दो दिनोंके सहित १ रात और वर्षदिनतक सुने तो १ दिन अशौच माने और १ वर्षके बाद सुने तो उसी समय शुद्ध होजावे ❀ ॥ १३ ॥

(८ क) बृहद्यमस्मृति–५ अध्याय।

कन्याप्रदानसमये श्रुतवान्पितरं मृतम् ॥ १० ॥
कन्यादानं च तत्कार्यं वचनाद्भवति क्षमः। पितुः पात्रादिकं कर्म पश्चात्सर्वं यथाविधि ॥ ११ ॥

कन्याके विवाहका काम आरम्भ होजानेपर यदि पुत्र अपने पिताके मरजानेकी खबर सुने तो उसको चाहिये कि कन्यादानको समाप्त करके उसके बाद विधिपूर्वक पिताका श्राद्ध आदि कर्म करे ॥ १०–११ ॥

अशौचीसे संसर्ग करनेवालोंकी शुद्धि ८.

(१) मनुस्मृति–५ अध्याय।

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च। स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥ १०३ ॥

जो मनुष्य (सपिण्डसे भिन्न) अपनी जाति अथवा अन्य जातिके मुर्देके साथ श्मशानमें जाताहै वह वस्त्रोंके सहित स्नान करके अग्निका स्पर्श करने और घी खानेपर शुद्ध होताहै ❀ ॥ १०३ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय।

ब्राह्मणेनानुगन्तव्यो न शूद्रो न द्विजः क्वचित्। अनुगम्याम्भसि स्नात्वा स्पृष्ट्वाग्निं घृतभुक्शुचिः२६॥

ब्राह्मणको उचित है कि (असपिण्ड) द्विज अथवा शूद्रके मुर्देके साथ श्मशानमें नहीं जावे; किन्तु यदि जावे तो जलमें स्नान करके अग्निका स्पर्श और घी भोजन करके शुद्ध होवे ॥ २६ ॥

(६ क) उशनस्मृति–६ अध्याय।

यस्तैः सहान्नं कुर्याच्च यानादीनि तु चैवं हि। ब्राह्मणे वा परे वापि दशाहेन विशुध्यति ॥ ४८ ॥
यस्तेषामन्नमश्नाति स तु देवोऽपि कामतः। तदा शौचनिवृत्तेषु स्नानं कृत्वा विशुध्यति ॥ ४९ ॥
यावत्तदन्नमश्नाति दुर्भिक्षाभिहतो नरः। तावन्त्यन्यान्यशुद्धिः स्यात्प्रायश्चित्तं ततश्चरेत् ॥ ५० ॥

ब्राह्मण अथवा अन्य वर्णका मनुष्य जो कोई अशौचीके सहित अन्न भोजन या एकत्र यानादि व्यवहार करेगा वह १० दिनपर अर्थात् अशौचीके शुद्ध होनेपर शुद्ध होगा ॥ ४८ ॥ जो जान करके अशौचवालेके घर अन्न खाताहै वह देवता होनेपर भी अशौचवालेके शुद्ध होनेपर स्नान करके शुद्ध होताहै; किन्तु जो दुर्भिक्षसे पीड़ित होकर प्राणरक्षाके लिये अशौचवालेके घर जितने दिन भोजन करताहै वह उतने दिनतक अशुद्ध रहताहै, उसके बाद स्नान आदि प्रायश्चित्त करके शुद्ध होजाताहै ॥ ४९–५० ॥

(९) आपस्तम्बस्मृति–९ अध्याय।

जन्मप्रभृतिसंस्कारे श्मशानान्ते च भोजनम् ॥ २१ ॥
असपिण्डैर्न कर्तव्यं चूडाकार्ये विशेषतः ॥ २२ ॥

❀ वृद्धवसिष्ठस्मृति–३ महीनेसे पहिले (माता पितासे भिन्न पुरुष), सपिण्डके मरनेकी खबर सुने तो ३ रात, ६ महीनेसे पहिले सुने तो रातके सहित २ दिन और ९ माससे पहिले सुने तो १ दिन अशौच माने और इससे अधिक दिनमें सुने तो स्नान करके शुद्ध होवे (१) पैठीनसिस्मृति–यदि पुत्र परदेशमें माता पिताके मरनेकी खबर सुने तो १० दिन अशौच माने (३)।

❀ पाराशरस्मृति–३ अध्यायके४४ श्लोकमें ऐसाही है और कात्यायनस्मृति–२२ खण्डके १० श्लोकमें है कि मुर्देके साथ श्मशानमें जानेवाले मुर्देके बान्धवोंसे अन्य मनुष्य स्नान करके अग्निका स्पर्श और घी खानेपर शुद्ध होजातेहैं (आगे प्रेतकर्मप्रकरणकी टिप्पणीमें याज्ञवल्क्यस्मृतिका १२–१४ श्लोक देखिये)।

जातकर्म आदि संस्कारके समय,प्रेतकर्ममें और विशेष करके चूड़ाकरणके समय असपिण्डके घर भोजन नहीं करना चाहिये ॥ २१-२२ ॥

(१३) पाराशरस्मृति-३ अध्याय।

संपर्काद्दुष्यते विप्रो जनने मरणे तथा। संपर्काच्च निवृत्तस्य न प्रेतं नैव सूतकम् ॥ २१ ॥

ब्राह्मण असपिण्डके मृत्यु तथा जन्मके अशौचमें केवल सम्पर्कसेही दूषित होताहै; यदि वह अशौचवालेसे सम्पर्क नहीं रक्खे तो उसको मरणका अथवा जन्मका अशौच नहीं लगताहै ॥ २१ ॥

अनाथब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः। पदेपदे यज्ञफलमानुपूर्व्याल्लभन्ति ते ॥ ४१ ॥

न तेषामशुभं किञ्चित्पापं वा शुभकर्मणाम्। जलावगाहनात्तेषां सद्यः शौचं विधीयते ॥ ४२ ॥

असगोत्रमबन्धुश्च प्रेतीभूतद्विजोत्तमम्। वहित्वा च दहित्वा च प्राणायामेन शुध्यति ॥ ४३ ॥

जो द्विजाति अनाथ ब्राह्मणके मृत शरीरको ढोकर श्मशानमें लेजातेहैं वे पद पद पर यज्ञ करनेका फल पातेहैं; उन शुभ कर्म करनेवालोंको न तो कुछ दोष लगताहै न अशुभ होताहै; वे लोग जलमें स्नान करनेसे उसी समय शुद्ध होजातेहैं ❀ ॥ ४१-४२ ॥ जो ब्राह्मण अन्य गोत्र और अबान्धव मृतकको ढोताहै और जलाताहै वह प्राणायाम करनेपर शुद्ध होजाताहै ✿ ॥ ४३ ॥

(१५) शङ्खस्मृति-१५ अध्याय।

पराशौचे नरो भुक्त्वा कृमियोनौ प्रजायते। भुक्त्वान्नं म्रियते यस्य तस्य योनौ प्रजायते ॥ २४ ॥

जो मनुष्य अन्यके अशौचमे अर्थात् उसके शुद्ध होनेसे पहिले उसके घर भोजन करताहै वह कीड़ेकी योनिमें जन्म लेताहै और जो जिसका अन्न खाकर अर्थात् पेटमें उसका अन्न रहनेपर मरजाताहै वह उसीकी जातिमें जन्मताहै ॥ २४ ॥

(०) वसिष्ठस्मृति-४ अध्याय।

अनिर्दशाहे पक्वान्नं नियोगाद्यस्तु भुक्तवान्। कृमिर्भूत्वा स देहान्ते तद्विष्ठामुपजीवति ॥ २७ ॥

द्वादशमासान्द्वादशार्द्धमासान्वाऽनश्नन्संहितामधीयानः पूतो भवतीति विज्ञायते ॥ २८ ॥

जो ब्राह्मण अशौचवाले ब्राह्मणके घर १० दिनके भीतर निमन्त्रित होकर पकाहुआ अन्न खाताहै वह मरनेपर कीड़ा होकर अशौचवालेकी विष्ठासे जीताहै ❁ ॥ २७ ॥ वह मनुष्य १२ मास अथवा ६ मास अन्नको छोड़के (केवल दूध पीकर) वेदकी संहिताका पाठ करनेपर शुद्ध होजाताहै; ऐसा शास्त्रसे जाना गयाहै ॥ २८ ॥

प्रेतकर्मका विधान, कर्म करनेवालोंका धर्म और प्रेतकर्मके अधिकारी ९.

(१) मनुस्मृति-५ अध्याय।

अक्षारलवणान्नाः स्युर्निमज्जेयुश्च ते त्र्यहम्। मांसाशनं च नाश्नीयुः शयीरंश्च पृथक् क्षितौ ॥७३॥

मृत्युका अशौच होनेपर बनायाहुआ नमक नहीं खावे, ३ दिन नदी आदिमें स्नान करे, मांस नही खावे और भूमिपर अलग शयन करे ॥ ७३ ॥

न वर्धयेदघाहानि प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः। न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ ८४ ॥

अशौचकी दिनसंख्या नही बढ़ाना चाहिये; अशौचके समय (श्रौत) अग्निहोत्रका कार्य बन्द नहीं करे; क्योंकि अग्निहोत्र कार्य करनेके समय सपिण्ड मनुष्य अशुद्ध नही होताहै ॥ ८४ ॥

दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत्। पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथायोगं द्विजन्मनः ॥ ९२ ॥

❀ बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-६ अध्यायके २५-२६ श्लोकमे भी ऐसा है। वृद्धविष्णुस्मृति-१९ अध्याय ५ अङ्क। जो ब्राह्मण अनाथ ब्राह्मणके मृत शरीरको श्मशानमें लेजाकर उसका दाह करताहै वह स्वर्गलोकमें जाताहै।

✿ बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-६ अध्याय-२७ श्लोक। जो द्विज असगोत्र और असम्बन्ध मृत द्विजको ढोताहै और जलाता है वह स्नान करनेसे शुद्ध होताहै।

❁ क्षत्रियके अशौचमें १२ दिनके भीतर, वैश्यके अशौचमें १५ दिनके भीतर और शूद्रके अशौचमें १ मासके भीतर खानेवालेकी यही गति जानना चाहिये।

पुरके दक्षिण द्वारसे शूद्रका मुर्दा, पश्चिमके द्वारसे वैश्यका मुर्दा, उत्तरके द्वारसे क्षत्रियका मुर्दा और पूर्वके द्वारसे ब्राह्मणका मुर्दा निकालना चाहिये ॥ ९२ ॥

विप्रः शुध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधम्। वैश्यः प्रतोदं रश्मिन्वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ॥ ९९ ॥

अशौचकी क्रियाके अन्तमें ब्राह्मण जल स्पर्श करनेपर, क्षत्रिय वाहन तथा शस्त्र छूनेपर, वैश्य हलका पैना अथवा जोतेको स्पर्श करनेपर और शूद्र लाठी छूनेपर शुद्ध होताहै ॥ ९९ ॥

न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत्। अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता॥१०४॥

ब्राह्मणको उचित है कि ब्राह्मणोंके रहनेपर शूद्रोंसे अपने मुर्देको नहीं उठवावे; क्योंकि शूद्रके स्पर्शसे दूषित होनेपर शरीरकी आहुति स्वर्गके लिये हित नहीं होताहै ॥ १०४ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय।

स दग्धव्य उपेतश्चेदाहिताग्न्यावृतार्थवत्॥ २ ॥

सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयोऽभ्युपयन्त्यपः। अपनः शोशुचदघमनेन पितृदिङ्मुखाः ॥ ३ ॥

एवम्मातामहाचार्यप्रेतानामुदकक्रियाः। कामोदकं सखिप्रत्तास्वस्रीयश्वशुरर्त्विजाम् ॥ ४ ॥

सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकन्नामगोत्रेण वाग्यताः। न ब्रह्मचारिणः कुर्युरुदकम्पतितास्तथा ॥ ५ ॥

यदि बालकका जनेऊ होचुका होवे तो अग्निहोत्रीकी प्रक्रियासे लौकिकाग्निसे ही उसका दाह करे ॥२॥ जातिके मनुष्य सातवें दिन अथवा दशवें दिनसे पहिले (अयुग्मदिनमें) जलके पास दक्षिण मुख होकर "जल हमको पवित्र करो" इस मन्त्रको पढ़तेहुए जलदान करें ❀ ॥ ३ ॥ इसी प्रकारसे नाना और आचार्य प्रेतको भी जल देवे; जिसकी इच्छा होवे वह मित्र, विवाही हुई कन्या, भानजा, श्वशुर तथा ऋत्विक्को भी जल दान करे ॥ ४ ॥ जलदान करनेवाले प्रेतका नाम और गोत्र उच्चारण करके मौन होकर एक बार जल देवे; ब्रह्मचारी और पतित जलदान नहीं करें ॥ ५ ॥

क्रीतलब्धाशना भूमौ स्वपेयुस्ते पृथक्पृथक्। पिण्डयज्ञावृता देयम्प्रेतायान्नन्दिनत्रयम् ॥ १६ ॥

जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये ॥ १७ ॥

अशौचवालेको उचित है कि मोल लेकर (अपना) अन्न भोजन करे, भूमिपर अलग अलग सोवे, अपसव्य होकर ३ दिन मृतकको पिण्ड देवे ※ ॥ १६ ॥ एक दिन मिट्टीके पात्रमें जल और दूध मृतकके लिये आकाशमें (किसी आधारपर) रक्खे ॥ १७ ॥

(३) अत्रिस्मृति।

गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अन्तस्थः शवदूषिताम्। प्रयोज्यं मृन्मयं भाण्डं सिद्धमन्नं तथैव च ॥ ७६ ॥

गृहान्निष्क्रम्य तत्सर्वं गोमयेनोपलेपयेत्। गोमयेनोपलिप्याथ छागेनाघ्रापयेत्पुनः ॥ ७७ ॥

ब्राह्मैर्मन्त्रैस्तु पूतं तु हिरण्यकुशवारिभिः। तेनैवाभ्युक्ष्य तद्वेश्म शुध्यते नात्र संशयः ॥ ७८ ॥

जिस घरमें मनुष्य मरजाताहै उस घरकी शुद्धिका विधान कहताहूं,–उस घरके मिट्टीके वर्त्तन और पकी हुई रसोई त्यागदेवे ॥ ७६ ॥ उन वस्तुओंको घरसे निकालकर घरको गोबरसे लीपके बकरीसे सुंघावे ॥ ७७ ॥ सोनाका जल और कुशाका जल छिड़ककर वेदके मन्त्रोंसे घरको पवित्र करे; ऐसा करनेसे निःसन्देह घर शुद्ध होजाताहै ॥ ७८ ॥

(६क) उशनस्मृति–७ अध्याय।

पञ्चमे नवमे चैव तथैवैकादशेऽहनि। अयुग्मान्भोजयेद्विप्रान्नवश्राद्धन्तु तद्विदुः ॥ १२ ॥

पांचवें, नवें और ग्यारहवें दिन अयुग्म ब्राह्मणोंको भोजन करावे, इसीको पण्डितलोग नवश्राद्ध कहतेहैं ☙ ॥ १२ ॥

❀ संवर्तस्मृति--३८–३९ श्लोक। पहिले, तीसरे, सातवें और नवें दिन अपने गोत्रके लोगोंके सहित स्नान करके प्रेतको जल देना चाहिये। गौतमस्मृति--१४ अध्याय--१ अङ्क। सूतक माननेवाले लोग पहिले तीसरे, पांचवें, सातवें और नववें दिन प्रेतको जल देवें। दूसरी देवलस्मृति--दसवें दिन ग्रामसे बाहर स्नान करे उसी दिन वस्त्र त्याग देवे तथा शिरका केश और दाढी मूँछ तथा नख मुण्डन करादेवे (६)

※ प्रचेतास्मृति—जिसका संस्कार न हुआहो उसका पिण्ड भूमिपर और जिसका संस्कार हो चुकाहो उसका पिण्ड कुशाओंपर रखे (२)

☙ लघुहारीतस्मृति--१०८ श्लोक। चौथे, पांचवें, नवें और ग्यारहवें दिन प्राणिओंको जो अन्न दिया जाताहै, उसीको नवश्राद्ध कहतेहैं।

(८) यमस्मृति ।

एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः । मुच्यते प्रेतलोकात्सः स्वर्गलोके महीयते ॥ ८९ ॥

जिस मृतकका ग्यारहवें दिन वृषोत्सर्ग होताहै वह प्रेतलोकसे निवृत्त होकर स्वर्गलोकमें जाताहै ॥ ८९॥

(११) कात्यायनस्मृति-२१ खण्ड ।

स्वयं होमासमर्थस्य समीपमुपसर्पणम् । तत्राप्यशक्तस्य ततः शयनाच्चोपवेशनम् ॥ १ ॥
हुतायां सायमाहुत्यां दुर्बलश्चेद्गृही भवेत् । प्रातर्होमस्तदैव स्याज्जीवेच्चेत्स पुनर्न वा ॥ २ ॥
दुर्बलं स्नापयित्वा तु शुद्धचैलाभिसंवृतम् । दक्षिणाशिरसं भूमौ बर्हिष्मत्यां निवेशयेत् ॥ ३ ॥
घृतेनाभ्यक्तमाप्लाव्य सवस्त्रमुपवीतिनम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सुमनोभिर्विभूषितम् ॥ ४ ॥
हिरण्यशकलान्यस्य क्षिप्त्वा छिद्रेषु सप्तसु । मुखेष्वथापिधायैनं निर्हरेयुः सुतादयः ॥ ५ ॥
आमपात्रेऽन्नमादाय प्रेतमग्निपुरःसरम् । एकोऽनुगच्छेत्तस्यार्द्धमर्द्धं पथ्युत्सृजेद्भुवि ॥ ६ ॥
अर्धमादहनं प्राप्त असीनो दक्षिणामुखः । सव्यं जान्वाच्य शनकैः सतिलं पिण्डदानवत् ॥ ७ ॥
अथ पुत्रादिराप्लुत्य कुर्याद्दारुचयं महत् । भूप्रदेशे शुचौ देशे पश्चाच्चित्यादिलक्षणे ॥ ८ ॥
तत्रोत्तानं निपात्यैनं दक्षिणाशिरसं मुखे । आज्यपूर्णां स्रुचं दद्याद्दक्षिणाग्रां नसि स्रुवम् ॥ ९ ॥
पादयोरधरां प्राचीमरणीमुरसीतराम् । पार्श्वयोः शूर्पचमसे सव्यदक्षिणयोः क्रमात् ॥ १० ॥
मुशलेन सह न्युब्जमन्तरूर्वोरुलूखलम् । चात्रौविलीकमत्रैवमनश्रुनयनो विभीः ॥ ११ ॥
अपसव्येन कृत्वैतद्वाग्यतः पितृदिङ्मुखः । अथाग्निं सव्यजान्वक्तो दद्याद्दक्षिणतः शनैः ॥ १२ ॥
अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति यजुरीरयन् ॥ १३ ॥
एवं गृहपतिर्दग्धः सर्वं तरति दुष्कृतम् । यश्चैनं दाहयेत्सोपि प्रजां प्राप्नोत्यनिन्दिताम् ॥ १४ ॥
यथा स्वायुधधृक्पान्थो ह्यरण्यान्यपि निर्भयः । अतिक्रम्यात्मनोभीष्टं स्थानमिष्टं च विन्दति॥१५॥
एवमेषोऽग्निमान्यज्ञपात्रायुधविभूषिताः । लोकानन्यानतिक्रम्यपरं ब्रह्मैव विन्दति ॥ १६ ॥

यदि अग्निहोत्रीको (मरनेके समय) स्वयं होम करनेका सामर्थ्य नहीं होय तो अग्निके निकट जाबैठे; यदि समीपमें भी नहीं जासके तो शय्यासे उतरकर नीचे बैठे ॥ १ ॥ यदि सायंकालके होम करनेके पश्चात गृहस्थ मरनेके समान होजाय तो प्रातःकालका होम उसी समय होजाय; यदि वह प्रातःकालतक जीता रहेगा तो प्रातःकालका होम फिर होगा, नहीं तो नहीं ॥ २ ॥ उसके मरनेके समय उसको स्नान कराके शुद्धवस्त्र पहनावे और दक्षिण ओर सिर करके कुश बिछाई भूमिपर लिटादेवे॥३॥ मरजानेपर उसकी देहमें घी लगाकर सवस्त्र स्नान करावे; नये जनेऊ पहनावे; सब अङ्गोंपर चन्दन छिड़ककर उसको फूलोंसे विभूषित करे ॥ ४ ॥ सातों छिद्रों (मुख, नाक, कान और आंखों) में सोनेके टुकड़े डालकर और मुखको वस्त्रसे ढांककर उसके पुत्रादि उसको श्मशानमें लेजावें ॥ ५ ॥ अग्निहोत्रीकी आगको मृतककी रथीके आगे २ और कच्चे मिट्टीके वर्त्तनमें अन्नको पीछे पीछे लेजावे,उसमेंसे आधा अन्न मार्गमें भूमिपर छोड़े और आधा अन्न श्मशानमें लेजावे; वहां दक्षिणको मुख करके और बांई जंघाको नीचे नवाकर तिलसहित उस अन्नको पिण्डदानके समान धीरेधीरे भूमिपर छोड़देवे ॥ ६-७ ॥ चिताके योग्य पवित्र स्थानमें पुत्र आदि स्नान करके लकड़ीकी बड़ी चिता बनावें ॥८॥मृतकको दक्षिण शिर करके चितापर उत्तान सुतादेवे; दक्षिणको अग्रभाग करके घीसे भरी स्रुक्को उसके मुखपर, घीसे भरे स्रुवको नाकपर अधरा अरणीको पूर्वाग्रकरके दोनों पांवोंपर, उत्तरा अरणीको छातीपर, शूर्पको बांइ पंजड़ीपर, चमसको दाहनी पंजड़ीपर और मुशल,औंधी,ओखली, चात्र और ओविलीको जंघाओंके बीचमें रखदेवे; उस समय रोदन नहीं करे; निर्भय रहे ॥ ९-११ ॥ दक्षिण ओर मुख करके मौन होकर जनेऊको अपसव्य होकर और बांई जंघाको नवाकर चितामें दक्षिणकी ओर धीरेसे अग्नि जलावे ॥ १२ ॥ उस समय ऊपर लिखेहुए अस्मात्त्वमधिगत इत्यादि यजुर्वेदके मन्त्रको पढे ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे जलाये-जानेसे गृहस्थ सब पापोंसे छूटजाताहै और जलानेवाला अनिन्दित सन्तान प्राप्त करताहै ॥ १४ ॥ जैसे मार्गमें चलनेवाला अपने शस्त्रोंको साथमें रखनेसे निर्भय रहकर वनोंको पारकर अपने इच्छित स्थानमें पहुंच-जाताहै और अपने मनोरथको प्राप्त होताहै वैसेही अग्निहोत्री ब्राह्मण अपने यज्ञपात्रादिरूप शस्त्रोंसे भूषित होकर स्वर्गादि लोकोंको लांघकर परब्रह्मको प्राप्त करताहै ॥ १५-१६ ॥

लिखितस्मृति--९ श्लोकमें और लघुशंखस्मृति-९ श्लोकमें ऐसाही है । मार्कण्डेयस्मृति-मृत मनुष्य प्रेतलोकमें एक वर्ष वसतेहैं वहां प्रतिदिन क्षुधा तृषा होतीहै (१) ।

वृद्धयाज्ञवल्क्यस्मृति--अग्निहोत्रीका दाह तीन अग्नियोंसे, अग्निहोत्रसे हीनका दाह एक अग्निसे और अन्य मनुष्योंका दाह लौकिक अग्निसे करे (१)

२२ खण्ड ।

अथानवेक्ष्य च चितां सर्व एव शवस्पृशः । स्नात्वा सचैलमाचम्य दद्युरस्योदकं स्थले ॥ १ ॥
गोत्रनामानुवादान्ते तर्पयामीत्यनन्तरम् । दक्षिणाग्रान्कुशान्कृत्वा सतिलन्तु पृथक्पृथक् ॥ २ ॥

मृतकके स्पर्श करनेवाले उसके पश्चात् चिताको नहीं देखतेहुए वस्त्रोंके सहित स्नान करके आचमन करें और प्रेतके लिये स्थलपर जल देवें ॥ १ ॥ प्रेतका गोत्र और नाम कहकर अन्तमें "तर्पयामि" कहे और कुशाके अग्रभागको दक्षिण ओर करके सबलोग पृथक् पृथक् तिलसहित जल देवें ॥ २ ॥

एवं कृतोदकान्सम्यक्सर्वाञ्शाद्वलसंस्थितान् । आप्लुत्य पुनराचान्तान्वदेयुस्तेऽनुयायिनः ॥ ३ ॥
मा शोकं कुरुतानित्ये सर्वस्मिन्प्राणधर्मिणि । धर्मं कुरुत यत्नेन यो वः सह गमिष्यति ॥ ४ ॥
मानुष्ये कदलीस्तम्भे निःसारे सारमार्गणम् । यः करोति स संमूढो जलबुद्बुदसन्निभे ॥ ५ ॥
गन्त्री वसुमती नाशमुदधिर्दैवतानि च । फेनप्रख्यः कथन्नाशं मर्त्यलोको न यास्यति ॥ ६ ॥
पञ्चधा संभृतः कायो यदि पञ्चत्वमागतः । कर्मभिः स्वशरीरोत्थैस्तत्र का परिदेवना ॥ ७ ॥
सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः । संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥८॥
श्लेष्माश्रुबान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः । अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्याः प्रयत्नतः ॥ ९ ॥
एवमुक्त्वाव्रजेयुस्ते गृहांल्लघुपुरःसराः । स्नानाग्निस्पर्शनाज्याशैः शुध्येयुरितरे कृतैः ॥ १० ॥

स्नान और आचमन करके हरेघासयुक्त भूमिपर बैठके मृतकके पुत्रादिकोंको इस भांति उपदेश करे ॥ ३ ॥ सब प्राणी अनित्य हैं इस लिये शोक मत करो; किन्तु यत्नपूर्वक धर्म करो, जो धर्म तुम्हारे साथ चलेगा ॥ ४ ॥ मनुष्यका शरीर कदलीके खंभेके समान साररहित और जलके बुलबुलेके समान शीघ्र नष्ट होनेवाला है, जो इसको स्थिर जानताहै वह मूर्ख है ॥ ५ ॥ जब पृथ्वी, समुद्र और देवताभी नष्ट होनेवालेहैं तब जलके फेनके तुल्य लीन होनेवाले मृत्युलोकके मनुष्योंका नाश क्यों नहीं होगा ? ॥६ ॥ यदि पञ्चभूतोंसे बनाहुआ शरीर अपने कियेहुए कर्मोंके कारण नष्ट होजावे तो इसमें शोक करनेका कौन प्रयोजन है ? ॥ ७ ॥ संसारमें संचयका अन्त नाश, ऊपर चढ़नेवालोंका अन्त गिरना, संयोगका अन्त वियोग और जीवनका अन्त मरण है ॥ ८ ॥ जो रोदन करनेके समय कफ और आंसु बान्धव लोग गिरातेहैं, उसको परवश होकर प्रेतको खाना पड़ताहै, इसलिये रोना उचित नहीं है; किन्तु यत्नपूर्वक प्रेतका कर्म करना चाहिये ❀ ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् बालकोंको आगे करके सब लोगोंको गृहमें प्रवेश करना चाहिये; मृतकके साथ जानेवालोंमें जो लोग मृत मनुष्यके कुटुम्बी नहीं हैं वे लोग स्नान और अग्निका स्पर्श करने और घी चाटनेपर उसी दिन शुद्ध होजातेहैं ✠ ॥ १० ॥

२३ खण्ड ।

अनयैवावृता नारी दग्धव्या या व्यवस्थिता । अग्निप्रदानमन्त्रोस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः ॥ ७ ॥
अग्निनैव दहेद्भार्यां स्वतन्त्रा पतिता न चेत् । तदुत्तरेण पात्राणि दाहयेत्पृथगन्तिके ॥ ८ ॥

अग्निहोत्रीकी स्त्री यदि अपने धर्ममें स्थित हो तो उसके मरजानेपर उसका दाहकर्म इसी प्रकारसे करे; किन्तु उसके लिये अग्नि देनेका मन्त्र नहीं पढ़े, यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ७ ॥ भार्या यदि स्वतंत्र अथवा पतित नहीं होवे तो अग्निहोत्रके अग्निसे ही उसको जलावे; किन्तु जलानेके समय अग्निहोत्रके पात्रोंको उसकी चितासे उत्तर पासमें अलग जलादेवे ◎ ॥ ८ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्यायके ७–११ श्लोकमें ऐसाही है ।

✠ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्यायके १२–१४ श्लोक । ऐसी बातें सुनकर मृतकके पुत्रादि लोग बालकोंको आगे करके घर जावें; घरके द्वारपर जाकर निम्बके पत्ते दांतसे काटके आचमन करें और अग्नि, जल, गोबर तथा पीले सरसोंको स्पर्शकर और पत्थरपर पांव रखकर धीरे धीरे घरमें प्रवेश करें । अन्य लोग जो अपनी इच्छासे मृतकका स्पर्श करतेहैं वे इसी भांतिसे प्रवेश आदि कर्म करने और स्नान तथा प्राणायाम करनेसे उसी क्षण शुद्ध होजातेहैं ।

◎ मनुस्मृति—५ अध्यायके १६७–१६८ श्लोक । धर्मज्ञ द्विजातिको उचित है कि यदि उसके जीतेहुए उसकी सवर्णा पतिव्रता स्त्री मरजाय तो अग्निहोत्रके अग्निसे यज्ञके पात्रोंके सहित उसको जलावे और अपना दूसरा विवाह करके फिर अग्निहोत्र ग्रहणकरे । गोभिलस्मृति ३ प्रपाठकके ५–६ श्लोकमें ऐसाही है और ७ श्लोकमें है कि पहिली स्त्रीके जीवित रहते जो दूसरी पत्नीका अग्निहोत्र अग्नियोंसे दाह करताहै वह ब्रह्मघातीके तुल्य है और ११ श्लोकमें है कि पहिली भार्याके जीवित रहते जो दूसरी पत्नीको अग्निहोत्रके अग्निसे जलाताहै वह मरनेपर उस स्त्रीकी भार्या होताहै और वह स्त्री उसका पति होतीहै ।

अपरेद्युस्तृतीये वा अस्थ्नां सञ्चयनं भवेत् । यस्तत्र विधिरादिष्ट ऋषिभिः सोधुनोच्यते ॥ ९ ॥
स्नानान्तं पूर्ववत्कृत्वा गव्येन पयसा ततः । सिञ्चेदस्थीनि सर्वाणि प्राचीनावीत्यभाषयन् ॥ १० ॥
शमीपलाशशाखाभ्यामुद्वृत्योद्धृत्य भस्मनः । आज्येनाभ्यज्य गव्येन सेचयेद्गन्धवारिणा ॥ ११ ॥
मृत्पात्रसंपुटं कृत्वा सूत्रेण परिवेष्ट्यच । श्वभ्रं खात्वा शुचौ भूमौ निखनेद्दक्षिणामुखः ॥ १२ ॥
पूरयित्वावटं पङ्कपिण्डशैवालसंयुतम् । दत्त्वोपरि समं शेषं कुर्यात्पूर्वाह्णकर्मणा ॥ १३ ॥
एवमेवागृहीताग्नेः प्रेतस्य विधिरिष्यते । स्त्रीणामिवाग्निदानं स्यादथातोऽनुक्तमुच्यते ॥ १४ ॥

दूसरे अथवा तीसरे दिन अस्थिसञ्चयन कर्म होताहै; उसका विधान ऋषियोंके कथनानुसार मैं कहताहूं ※ ॥ ९ ॥ पूर्वके समान स्नानपर्यन्त कर्म करके गौका दूध सब हड्डियोंपर छिड़के, अपसव्य रहे, मौन धारण करे, शमी और पलाशकी शाखाद्वारा भस्ममेंसे अस्थियोंको निकालकर उनपर गौका घी और गन्धयुक्त जल छिड़के ॥ १०–११ ॥ उसके बाद मिट्टीके पात्रमें अस्थियोंको बन्द करके पात्रको सूतसे लपेटकर बान्धे; पवित्र भूमिमें गड्हा खोदकर दक्षिण ओर मुख करके अस्थिके पात्रको उसमें रखदेवे और सेवार घास सहित मिट्टीके पिण्डद्वारा गड्हेको भरकर मिट्टीसे उसको भूमिके बराबर करदेवे; यह कर्म पूर्वाह्णमें करे ✤ ॥ १२–१३ ॥ अग्निहोत्रसे हीन पुरुषके प्रेतकर्मका भी यही विधान है; किन्तु स्त्रियोंके समान विना अग्निदानका मन्त्र पढ़ेहुए उसको जलाना चाहिये; अब जो नहीं कहाहै उसको कहतेहै ॥ १४ ॥

२४ खण्ड ।

सूतके कर्मणां त्यागः सन्ध्यादीनां विधीयते । होमः श्रौते तु कर्तव्यः शुष्कान्नेनापि वा फलैः ॥१॥
अकृतं होमयेत्स्मार्ते तदभावे कृताकृतम् । कृतं वा होमयेदन्नमन्वारम्भविधानतः ॥ २ ॥

अशौचमें सन्ध्या आदि कर्मोंको नहीं करे; किन्तु वैदिक होमको सूखे अन्न अथवा फलोंसे करे ◎ ॥ १ ॥ स्मार्त अग्निमें अकृत अन्न अकृत नहीं मिलनेपर कृताकृत अन्नसे और इसके नहीं मिलनेपर कृत अन्नसे अन्वारम्भ विधिसे (ब्रह्मासे मिलकर) आहुति देवे ॥ २ ॥

कृतमोदनसक्त्वादि तण्डुलादि कृताकृतम् । व्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति हव्यं त्रिधा बुधैः ॥ ३ ॥
सूतके च प्रवासेषु चाशक्तौ श्राद्धभोजने । एवमादिनिमित्तेषु होमयेदिति योजयेत् ॥ ४ ॥

भात और सत्तू आदिको कृत अन्न, चावल आदिको कृताकृत अन्न और धान आदिको अकृत अन्न कहतेहैं; ये तीन प्रकारका हव्य विद्वानोंने कहाहै ॥ ३ ॥ अशौचमें, परदेशमें, असमर्थ होनेपर और श्राद्धका अन्न भोजन करनेपर इत्यादि निमित्त उपस्थित होनेपर इस प्रकारसे होम करना चाहिये ॥ ४ ॥

श्राद्धमग्निमतः कार्यं दाहादेकादशेऽहनि । प्रत्याब्दिकं तु कुर्वीत प्रमीताहनि सर्वदा ॥ ७ ॥
द्वादशप्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिके तथा । सपिण्डीकरणं चैव एतद्वै श्राद्धषोडशम् ॥ ८ ॥
एकाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः । न्यूनाः संवत्सरश्चैव स्यातां षाण्मासिके तदा ॥९ ॥
यानि पञ्चदशाद्यानि अपुत्रस्येतराणि तु । एकस्मिन्नह्नि देयानि सपुत्रस्यैव सर्वदा ॥ १० ॥

※ यमस्मृति–८७–८८ श्लोक । हितकारी बन्धुओंको चाहिये कि पहिले, दूसरे, तीसरे अथवा चौथे दिन अस्थिसञ्चयन करें । चौथे दिन ब्राह्मणका, पांचवे दिन क्षत्रियका, सातवें दिन वैश्यका और नवें दिन शूद्रका अस्थिसञ्चयन करना चाहिये । संवर्तस्मृति–३९–४० श्लोक और दक्षस्मृति–६ अध्याय–१६ श्लोक । द्विज चौथे दिन अस्थिसञ्चयन करे; अस्थिसञ्चयनके बाद वे अङ्गस्पर्शके योग्य होजातेहैं । उशनस्मृति ७ अध्याय—११ श्लोक । सब बान्धवोंके सहित सस्थिसञ्चयन करे, उस दिन श्रद्धापूर्वक कमसे कम ३ अयुग्म ब्राह्मणोंको खिलावे ।

✤ लिखितस्मृति–७ श्लोक और लघुशङ्खस्मृति–७ श्लोक । मनुष्यकी हड्डी जबतक अर्थात् जितने वर्षतक गङ्गाके जलमें रहतीहै वह उतने हजार वर्षतक स्वर्गलोकमें पूजित होताहै । वृहद्विष्णुस्मृति–१९ अध्यायके १०–१२ अङ्क । चौथे दिन अस्थिसञ्चयन करे; सञ्चित अस्थि गङ्गामें डालदेवे पुरुषकी जितनी हड्डियां गङ्गामे रहतीहै वह उतने ही सहस्र वर्ष स्वर्गभोग करताहै ।

◎ गोभिलस्मृति–३ प्रपाठक–६० श्लोकमें ऐसाही है । मनुस्मृति–५ अध्याय–८४ श्लोक । अशौचके समय वैदिक अग्निहोत्रका कार्य बन्द नहीं करे; क्योंकि अग्निहोत्रके समय सपिण्ड मनुष्य भी अशुद्ध नहीं होताहै । याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–१७ श्लोक । अशौचके समय श्रुतिकी आज्ञानुसार नित्यकर्मका अग्निहोत्र करते रहे । अत्रिस्मृति—९२ श्लोक । मरण अथवा जन्मके अशौचमें पञ्चमहायज्ञ नहीं करे; किन्तु सूखा अन्न अथवा फलसे नित्यका होम करे । संवर्तस्मृति–३५–३६ श्लोक । जन्म या मरणके अशौचमें पञ्चमहायज्ञ नहीं करे ।

नयोषायाः पतिर्दद्यादपुत्राया अपि क्वचित् । न पुत्रस्य पिता दद्यान्नानुजस्य तथाग्रजः ॥ ११ ॥
एकादशेऽह्नि निर्वर्त्य अर्वाग्दर्शाद्यथाविधि । प्रकुर्वीताग्निमान्पुत्रो मातापित्रोः सपिण्डताम् ॥ १२ ॥
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं न दद्यात्प्रतिमासिकम् । एकोद्दिष्टेन विधिना दद्यादित्याह गौतमः ॥ १३ ॥

अग्निहोत्रीका श्राद्ध मृतकके जलानेके दिनसे ग्यारहवें दिन और प्रतिवर्ष मरनेके दिनमें करे ॥ ७ ॥ एक वर्ष तक बारह मासका १२ श्राद्ध, ग्यारहवें दिनका १ आद्य श्राद्ध, २ षाण्मासिक श्राद्ध और १सपिण्डीकरण श्राद्ध; यही १६ श्राद्ध हैं इनमेंसे एक षाण्मासिक श्राद्ध मरनेके दिनसे छः महीनेसे एक अथवा तीन दिन पहिले और दूसरा षाण्मासिक श्राद्ध मरनेके दिनसे बारह महीनेसे एक अथवा तीन दिन पहिले करना चाहिये ॥ ८-९ ॥ इनमेंसे पहिलेके १५ श्राद्ध पुत्रहीन पुरुषके लिये एक ही दिन अर्थात् ग्यारहवें दिन करदे और पुत्रवान्के लिये समय समयपर करे ॥ १० ॥ पति अपनी अपुत्रा स्त्रीको पिता अपने पुत्रको और बड़े भाई अपने छोटे भाईको पिण्ड नहीं देवे ॥ ११ ॥ अग्निहोत्री पुत्र मातापिताकी सपिण्डी-ग्यारहवें दिन करे; यदि इसके भीतर अमावास्या आजावे तो उससे पहिले नव श्राद्धादि सब कर्म यथाविधि करके ग्यारहवें दिन सपिण्डी करे ॥ १२ ॥ सपिण्डी करनेके बाद प्रति महीनेमें एकोद्दिष्ट श्राद्ध नहीं करे; किन्तु महर्षि गौतम कहतेहैं कि करना चाहिये ॥ १३ ॥

(१३) पाराशरस्मृति-६ अध्याय ।

आहिताग्निर्द्विजः कश्चित्प्रवसेत्कालचोदितः ॥ १३ ॥
देहनाशमनुप्राप्तस्तस्याऽग्निर्वसते गृहे । प्रेताग्निहोत्रसंस्कारः श्रूयतां मुनिपुङ्गवाः ॥ १४ ॥
कृष्णाजिनं समास्तीर्य कुशैस्तु पुरुषाकृतिम् । षट्शतानि शतं चैव पलाशानां च वृन्ततः ॥ १५ ॥
चत्वारिंशच्छिरे दद्याच्छतं कण्ठे तु विन्यसेत् । बाहुभ्यां दशकं दद्यादंगुलीषु दशैव तु ॥ १६ ॥
शतं तु जघने दद्याद्द्विशतं तूदरे तथा । दद्यादष्टौ वृषणयोः पञ्च मेढ्रे तु विन्यसेत् ॥ १७ ॥
एकविंशतिमूरुभ्यां द्विशतं जानुजंघयोः । पादांगुष्ठेषु दद्यात्षट् यज्ञपात्रं ततो न्यसेत् ॥ १८ ॥
शम्यां शिश्ने विनिक्षिप्य अरणिं मुष्कयोरपि । जुहूं च दक्षिणे हस्ते वामे तूपभृतं न्यसेत् ॥ १९ ॥
पृष्ठे तूलूखलं दद्यात्पृष्ठे च मुसलं न्यसेत् । उरसि क्षिप्य दृषदं तण्डुलाज्यतिलान्मुखे ॥ २० ॥
श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीं च चक्षुषोः । कर्णे नेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलं न्यसेत् ॥ २१ ॥
अग्निहोत्रोपकरणमशेषं तत्र विन्यसेत् । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्येकाहुतिं सकृत् ॥ २२ ॥
दद्यात्पुत्रोथ वा भ्राताप्यन्यो वापि च बान्धवः । यथादहनसंस्कारस्तथा कार्यं विचक्षणैः ॥ २३ ॥
ईदृशं तु विधिं कुर्याद्ब्रह्मलोकगतिः स्मृता । दहन्ति ये द्विजास्तं तु ते यान्ति परमां गतिम् ॥ २४ ॥
अन्यथा कुर्वते कर्म त्वात्मबुद्ध्या प्रचोदिताः । भवन्त्यल्पायुषस्ते वै पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ २५ ॥

हे मुनिश्रेष्ठलोग ! यदि अग्निहोत्री ब्राह्मण विदेशमें मरजावे और उसके घरमें अग्नि विद्यमान होवे तो उस प्रेतका अग्निसंस्कार जिस प्रकारसे होगा वह सुनो ॥ १३-१४ ॥ उसके कर्म करनेवाले (चिताकी भूमिपर) काली मृगछाला बिछाकर उसके ऊपर कुशाओंसे मृत पुरुषका आकार बनावें; उसके अङ्गोंपर इस प्रकारसे डंडी सहित सात सौ पलाशके पत्तोंको लगावें ॥ १५ ॥ ४० शिरमें, १०० कण्ठमें. १० दोनों बांहोंमें, १० अंगुलियोंमें, १०० जघनमें २०० उदरमें, ८ अण्डकोशोंमें, ५ लिङ्गमें,२१ ऊरुमें, २००जानु

गोभिलस्मृति--तीसरे प्रपाठकके ६६--६८ श्लोकमें ऐसाही है;किन्तु लिखितस्मृतिके १५--१६श्लोकमें १ नवश्राद्ध, १ त्रिपाक्षिक श्राद्ध, १२ मासके १२ श्राद्ध,१ षाण्मासिक श्राद्ध और १ आब्दिक श्राद्ध ये१६ श्राद्ध लिखेगयेहैं । और लिखाहै कि जिसके ये १६ एकोद्दिष्ट श्राद्ध नहीं कियेजातेहैं, सैकडों श्राद्ध करनेसे उसका प्रेतत्व नहीं छूटताहै । वृद्धशातातपस्मृति--४० श्लोक । मृतक (ब्राह्मण) के मरनेकी तिथिमें १ वर्षतक प्रति मासमें; उसके बाद प्रतिवर्षमें श्राद्ध करे और मरनेके ११ वें दिन आद्यश्राद्ध करे ।

बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-५ अध्याय--४६ श्लोक । धर्मज्ञोंने कहाहै कि जेठे भाई छोटे भाईका तथा छोटे भाई बड़े भाईका श्राद्ध विना वैश्वदेवका करे ।

मनुस्मृति-३ अध्यायके २४७-२४८ श्लोक । शीघ्र मरेहुए द्विजातिका श्राद्ध सपिण्डीकरणतक विना वैश्वदेवका करे, एक ब्राह्मण भोजन करावे और एक पिण्ड देवे । पिताका सपिण्डीकरण धर्मपूर्वक समाप्त होजानेपर मृताह आदि तिथियोंमें पार्वणके विधिसे उसको पिण्ड देवे ।

पाराशरस्मृति-३ अध्यायके १३-१४-१५श्लोक । यदि देशान्तरमें गयाहुआ ब्राह्मण कालवश मर जाय और उसके मरनेकी तिथि मालूम नहीं होवे तो कृष्णपक्षकी अष्टमी, अमावास्या अथवा एकादशीमें उसका जलदान, पिण्डदान और श्राद्ध करना चाहिये ।

और जघाओंमें, ६पत्तेपादके अंगूठोंमें लगावे; अनन्तर यज्ञके पात्रोंको नीचे लिखी रीतिसे रक्खे ॥ १६--१८ ॥ शम्या नामक यज्ञपात्रको लिङ्गपर, अरणीको अण्डकोशोंपर, जुहूको दहिने हाथपर, उपभृतको बांये हाथपर, मूसल और ऊखलको पीठपर, शिलको छातीपर, चावल, घी और तिलको मुखपर, प्रोक्षणीपात्रको कानोंपर और आज्यस्थालीको नेत्रोंपर रक्खे और कान, नेत्र, मुख और नाकोंमें सोनेके टुकड़ोंको रखदेवे ॥१९–२१॥ अग्निहोत्रकी शेष सब सामग्री चितापर धरदेवे; मृत मनुष्यका पुत्र, भाई अथवा अन्य बान्धव "असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा" इस मन्त्रसे घीकी एक आहुति देवे, फिर जैसा दहनसंस्कार होताहै वैसा विद्वान् करे ॥ २२–२३ ॥ उस प्रकारसे पूतला दाह करनेसे मृत पुरुषको ब्रह्मलोक मिलताहै और जलानेवाला द्विज परम गतिको प्राप्त करताहै ॥ २४॥ जो लोग अपनी इच्छानुसार अन्य रीतिसे कर्म करतेहैं वे अल्पायु होतेहैं और अपवित्र नरकमें जातेहैं ❀ ॥ २५ ॥

(१६) लिखितस्मृति ।

त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते । अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणस्तु विधीयते ॥ २२ ॥

त्रिदण्ड ग्रहण करनेवाला संन्यासी मरनेपर प्रेत नहीं होताहै, इस लिये उसके घरके पुत्रादि उसके मरनेपर उसका प्रेतकर्म नहीं करें, किन्तु ग्यारहवें दिन उसका पार्वणश्राद्ध करें ۞ ॥ २२ ॥

(२४) लघुआश्वलायनस्मृति–२० प्रेतकर्मविधिप्रकरण ।

प्रेतकर्मौरसः पुत्रः पित्रोः कुर्याद्यथाविधि । तदभावेऽधिकारी स्यात्सपिण्डो वाऽन्यगोत्रजः ॥ १ ॥
दहनादिसपिण्डान्तं कुर्याज्ज्येष्ठोऽनुजैः सह । ज्येष्ठश्चेत्संनिधौ न स्यात्कुर्यात्तदनुजोऽपि वा ॥ ३ ॥
ईषद्वस्त्रावृतं प्रेतं शिखासूत्रसमन्वितम् । दहेन्मन्त्रविधानेन नैव नग्नं कदाचन ॥ ४ ॥
प्रथमेऽहनि कर्ता स्याद्यो दद्यादग्निमौरसः । सर्वं कुर्यात्सपिण्डान्तं नान्योऽन्यद्दहनं विना ॥ ५ ॥
स्वगोत्रो वाऽन्यगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् । प्रथमेऽहनि यो दद्यात्स दशाहं समापयेत्॥६॥
अपुत्रश्चेन्मृतश्चैवं विधिरुक्तो महर्षयः । दाहं पुत्रवतः कुर्यात्पुत्रश्चेत्संनिधौ भवेत् ॥ ७ ॥
पुत्रं विनाऽग्निदोऽन्यश्चेदसगोत्रो यदा भवेत् । कुर्याद्दशाहमाशौचं स चापि हि सपिण्डवत् ॥ ८ ॥
पुत्राभावेऽग्निदः कुर्यात्सकलं प्रेतकर्म च । तस्मात्पुत्रवतोऽन्यश्चेद्विना दाहाग्निसञ्चयम् ॥ ९ ॥
अस्थिसञ्चयनादर्वाग्ज्येष्ठश्चेदागतः सुतः । वासो धृत्वाऽऽदितः कर्म ज्येष्ठः कुर्याद्यथाविधि ॥ १० ॥
अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वं ज्येष्ठश्चेवाऽऽगतोऽपि चेत् । कुर्यादग्निप्रदः पुत्रो दशाहान्तं स कर्म च ॥ ११ ॥

माता पिताका विधिपूर्वक प्रेतकर्म करनेका अधिकारी औरस पुत्र, औरसके नहीं रहनेपर सपिण्ड मनुष्य और सपिण्डके नहीं होनेपर अन्य गोत्रवाले होतेहैं॥१॥दाहसे सपिण्डीकरणतक सब प्रेतकर्म अपने छोटे भाइयोंके सहित ज्येष्ठ पुत्र करे; किन्तु यदि ज्येष्ठ पुत्र समीपमें नहीं होवे तो छोटा पुत्रही करे ❃ ॥३॥ छोटा वस्त्र पहना कर शिखा सूत्रके सहित मन्त्रके विधानसे मृतकको जलावे; नग्न अवस्थामें कभी नहीं ॥ ४ ॥ जो प्रथम दिन मृतकका कार्य करताहै अथवा जो औरस पुत्र मृतकको जलाताहै वही सपिण्डीकरणतक सब कर्म करे; अन्य कोई विना दहन कियेहुए उसका कर्म नहीं करे ॥ ५ ॥ सगोत्री, अन्यगोत्री, स्त्री अथवा पुरुष जो पहिले दिन प्रेतको पिण्ड देताहै वही १० दिन तक (मृतक ब्राह्मणको) पिण्ड देवे ॥ ६ ॥ महर्षियों ! कहाहै कि पुत्रहीन मनुष्यकी मृत्युमें भी यही विधि कहीगयी है;पुत्रवान् मनुष्यका पुत्र यदि समीपमें होवे तो उसीको दाहकर्म करना चाहिये ॥ ७ ॥ पुत्रसे भिन्न असगोत्री मनुष्य यदि मृतकका अग्निसंस्कार करे तो वह भी सपिण्डके समान १० दिनतक अशौचका कर्म करे ॥ ८ ॥ जब अन्य कोई पुत्रहीन मनुष्यका प्रेतकर्म करे तो वह प्रेतकर्म समाप्तितक सब कर्म करतारहे; किन्तु जब अन्य कोई पुत्रवान् मनुष्यका प्रेतकर्म करे तो उसको दाहाग्नि सञ्चय छोड़कर अन्य कर्म करना उचित हैं ॥ ९ ॥ यदि अस्थिसञ्चयनसे पहिले मृतकका बड़ा पुत्र आजावे तो वह नये वस्त्र धारण करके यथाविधि आदिसे सब कर्म करे ॥ १० ॥ यदि छोटे पुत्रके अस्थिसञ्चयन करनेपर बड़ा पुत्र आजावे तो छोटा पुत्रही १० दिनतक कर्म समाप्त करे ॥ ११ ॥

❀ कात्यायनस्मृति---२३ खण्डके २–३ श्लोक । जो अग्निहोत्री परदेशमें मरजाताहै उसके पुत्रादिकों-को उचित है कि उसकी हड्डियोंपर घी छिड़कके ऊनी वस्त्रसे आच्छादित करें और चितापर यज्ञके पात्रोंको रखके पूर्वोक्त विधानसे उसको जलावें; यदि हड्डियां नहीं मिलें तो शरीरमे जितनी हड्डियां होतीहैं उतने पत्तोंसे मनुष्यका पूतला बनाकर यथोक्त विधानसे जलावे और तभीसे अशौचका विधान करे ।

۞ लघुशंखस्मृति—१८ श्लोकमें ऐसाही है ।

❃ मरीचिस्मृति । जब जेठा पुत्र अपने सब भाइयोंकी अनुमतिसे विभक्त द्रव्यसे भी पिताको पिण्ड देताहै तब वह सब भाइयोंका दिया समझाजाताहै (३) ।

पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रः स्त्री भ्राता तज्जश्च दत्तकः। प्रेतकार्येऽधिकारी स्यात्पूर्वाभावेऽथ गोत्रजः ॥२०॥
कृत्वाऽऽदौ वपनं स्नानं शुद्धाम्बरधरः शुचिः। धृत्वा चैवाऽऽदिकं वासः प्रेतकार्यं समाचरेत् ॥ २१॥

पुत्र, पुत्रके नहीं रहनेपर पौत्र, पौत्रके नहीं रहनेपर प्रपौत्र, इसके नहीं रहनेपर भार्या, इसके नहीं रहनेपर भाई, भाईके नहीं रहनेपर भतीजा, भतीजेके नहीं रहनेपर दत्तक पुत्र, इसके भी नहीं रहनेपर गोत्रवाले मृतकके प्रेतकर्म करनेके अधिकारी हैं * ॥ २० ॥ प्रेतकर्म करनेवाला प्रथम मुण्डन कराके स्नान करके शुद्ध वस्त्रोंको धारण करे और अन्ततक उन्हीं वस्त्रोंसे प्रेतक्रिया करतारहे ॥ २१ ॥

प्रपितामहपर्यन्तं प्रेतस्यैव सुतादयः। सपिण्डीकरणं कुर्युस्ततूर्ध्वं न हि सर्वथा ॥ ३६ ॥
पितुः सपिण्डनं कुर्यात्त्रिभिः पितामहादिभिः। तदेव हि भवेच्छस्तं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ३७ ॥
पिता विपद्यते चैव विद्यमाने पितामहे। तत्र देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामहपूर्वकाः ॥ ३८ ॥
पिण्डौ दत्त्वा तु द्वावेव पितुः पितामहस्य च। ततस्तु तत्पितुश्चैकं प्रेतस्यैकं विधीयते ॥ ३९ ॥
त्रयाणामपि पिण्डानामेकेनापि सपिण्डने। पितृत्वमश्नुते प्रेत इति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ४० ॥
पितामहस्तथा वाऽपि विद्यते प्रपितामहः। तृतीयस्यैव ते देयास्त्रयः पिण्डाः सपिण्डने ॥ ४१ ॥
प्रेतस्य पितरश्चैव विद्यन्तेऽपि त्रयो यदि। षोडशश्राद्धपर्यन्तं कुर्यात्सर्वं यथाविधि ॥ ४२ ॥
पितॄणां मध्य एकश्चेन्म्रियते चेत्सपिण्डनम्। सह कुर्यात्तदाऽन्येन नान्यथा मुनयो विदुः ॥४३॥
सपिण्डीकरणं न स्याद्यावन्नोपनयादिकम्। अब्दादूर्ध्वं न दुष्येत केचिदाहुर्ऋतुत्रयात् ॥ ४४ ॥
यथा पितुस्तथा मातुः सपिण्डीकरणे विधिः। स यथा स्यादपुत्रायाः पत्या सह सपिण्डने ॥४६॥
जीवत्स्वेव हि पुत्रेषु प्रेतश्राद्धानि यानि च। स्नेहेन वाऽर्थलाभेन कुरुतेऽन्यो वृथा भवेत् ॥ ४८ ॥
येन केनापि पुत्रेण कृतं चेदौरसो न चेत्। सपिण्डीकरणे चैव शस्तं स्यान्मुनयो विदुः ॥ ४९ ॥

पुत्रादिकोंको उचित है कि प्रेतके प्रपितामह तक सपिण्डीकरण (श्राद्ध) करे; उसके ऊपरके पितरका कभी नहीं ॥ ३६ ॥ ऋषियोंने कहाहै कि पिताका सपिण्डीकरण अपने पितामह आदि ३ अर्थात् पितामह, प्रपितामह और वृद्ध प्रपितामहके साथ करना उत्तम है ॥ ३७ ॥ यदि पिता मरजावे और पितामह जीते होवें तो प्रपितामह आदिको ३ पिण्ड देवे ॥ ३८ ॥ यदि पितामह नहीं जीते हों तब एक पिण्ड प्रेतके पिताको, एक पिण्ड उसके पितामहको और एक पिण्ड उसके प्रपितामहको और एक पिण्ड प्रेतको देवे ॥ ३९ ॥ सपिण्डीकरणमें तीनों पिण्डोंको प्रेतपिण्डमें मिलानेसे प्रेत पितृत्वको प्राप्त होताहै; ऐसी धर्मकी व्यवस्था है ॥ ४० ॥ यदि पितामह और प्रपितामह जीते होवें तो पिताके सपिण्डीकरणमें वृद्धप्रपितामहकोही ३ पिण्ड देवे ॥ ४१ ॥ यदि प्रेतके तीनों पितर अर्थात् पिता, पितामह और प्रपितामह जीतेहोवें तो (सपिण्डी करणको छोडकर) यथाविधि सोलहों श्राद्ध करे ॥ ४२ ॥ मुनियोंने कहाहै कि इन ३ पितरोंमेंसे यदि १ मर गया होवे तो प्रेतका सपिण्डीकरण जीतेहुएको छोड़कर मरेहुएके साथ करना चाहिये ॥ ४३ ॥ जिस मृतकका उपनयन आदि संस्कार नहीं हुआहोवे उसका सपिण्डीकरण नहीं करना चाहिये; किन्तु कोई कोई कहतेहैं कि १ वर्ष अथवा ६ मासके बाद मरेहुएका सपिण्डीकरण करनेमें दोष नहीं है ॥ ४४ ॥ पिताके सपिण्डीकरणके समान माताका सपिण्डीकरण करना चाहिये और पुत्रहीन स्त्रीका सपिण्डीकरण उसके पतिके साथ होना, चाहिये ☫ ॥ ४६ ॥ पुत्रके विद्यमान रहतेहुए यदि अन्य कोई स्नेह अथवा द्रव्यके लोभसे प्रेतकर्म करताहै तो वह कर्म निष्फल होजात है ॥ ४८ ॥ मुनियोंने कहाहै कि औरस पुत्र न हो तो भिन्न पुत्रोंको भी सपिण्डी करनेका अधिकार है ॥ ४९ ॥

खट्वोपर्यन्तरिक्षे वा विप्रश्चेन्मृत्युमाप्नुयात्। तस्याब्दमाचरेदेकं तेन पूतो भवेत्तथा ॥ ५५ ॥
प्रायश्चित्तं विना यस्तु कुरुते दहनक्रियाम्। निष्फलं प्रेतकार्यं स्याद्वदन्त्येवं महर्षयः ॥ ५६ ॥

---

* उशनस्मृति—७ अध्याय–३१ श्लोक। पिता माताका पिण्डदान आदि कार्य पुत्र करे, पुत्रके अभावमें भार्या और भार्याके नहीं रहनेपर सहोदर भाई करे। बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—५ अध्याय। निःसन्तान स्त्रीका श्राद्ध पति और निःसन्तान पतिका श्राद्ध स्त्री करे; क्यों कि दोनोंकी एकता है ॥ ४५ ॥ पिताकी पिण्डदानादि क्रिया पुत्र करे; पुत्र (पौत्र आदि) न होय तो उसकी स्त्री और स्त्री भी नहीं हो तो उसका भाई करे ॥ ४७ ॥

☫ लिखितस्मृति—२३–२५ श्लोक। एक वर्षसे प्रथम जिसका सपिण्डीकरण कहाहै उसके लिये भी प्रतिदिन द्विज जलसे भरा घट दान करे। स्त्रीकी सपिण्डीकरण एक मात्र पतिके पिण्डके साथ ही करना चाहिये; किन्तु यदि स्त्रीका पति जीवित हो तो उसकी सासके पिण्डमें उसका पिण्ड मिलावे और यदि स्त्रीकी सासभी जीती हो तो स्त्रीकी सासकी सासके पिण्डमें स्त्रीका पिण्ड मिलावे।

जो ब्राह्मण खाटके ऊपर अथवा अन्तरिक्षमें अर्थात् मचान आदिपर मरजाताहै पुत्रादिके अब्द प्रायश्चित्त करनेपर वह शुद्ध होताहै; महर्षिलोग कहतेहैं कि विना प्रायश्चित्त किये हुए प्रेतकर्म करनेसे वह कर्म निष्फल होजाताहै ※ ॥ ५५-५६ ॥

शुद्धाशुद्धप्रकरण २०.

शुद्ध १.

(१) मनुस्मृति-५ अध्याय।

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन्। अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥ १२७ ॥

जिस वस्तुकी अशुद्धता नहीं मालूम होवे, जो शङ्का होनेपर जलसे धोईगई होवे और जिसको श्रेष्ठ लोग पवित्र कहते होवें, इन तीनोंको देवताओंने ब्राह्मणोंके लिये शुद्ध कहाहै ※ ॥ १२७ ॥

आपः शुद्धा भूमिगता वैतृष्ण्यं यासु गोर्भवेत्। अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः ॥ १२८॥

जितने जलसे १ गौकी प्यास दूर होतीहै उतनाभी जल यदि पवित्र भूमिपर होवे और उसमें अशुद्ध-वस्तु नहीं होवे तथा उसका गन्ध, वर्ण और रस नहीं बिगड़ा हो तो वह शुद्ध है ⊙ ॥ १२८ ॥

नित्यशुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितम्। ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः॥१२९॥

कारीगरोंके हाथ, बेचनेके लिये दूकानमें पसारीहुई वस्तुएं और ब्रह्मचारीके पासकी भिक्षा; ये सब सदा पवित्र रहतेहैं अर्थात् नाई आदि कारीगरोंका हाथ अशौच होनेपरभी, दूकानकी मिठाई आदि अनेक लोगोंसे स्पर्श होनेपर भी और ब्रह्मचारीकी भिक्षा मार्गसे लेजानेपर भी शुद्ध रहतीहै ◎ ॥ १२९ ॥

नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां शकुनिः फलपातने। प्रस्रवे च शुचिर्वत्सः श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥ १३०॥
ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः ॥ १३२ ॥

स्त्रियोंका मुख सदा पवित्र है, फल गिरानेके समय पक्षियोंका मुख, दूध दूहनेके समय बछड़ेका मुख और मृग पकड़नेके समय कुत्तेका मुख पवित्र रहताहै ▦ ॥ १३० ॥ नाभीसे ऊपरकी इन्द्रियोंके छिद्र सदा पवित्र हैं ॥ १३२ ॥

मक्षिका विप्रुषश्छाया गौरश्वः सूर्यरश्मयः। रजो भूर्वायुरग्निश्च स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥ १३३ ॥

मक्खी, मुखसे निकलेहुए छोटे कण, परछाहीं, गौ, घोड़ा, सूर्यकी किरण, धूली, भूमि, पवन और अग्नि; ये सब अपवित्रका स्पर्श करनेपरभी शुद्ध रहतेहैं ※ ॥ १३३ ॥

नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गे पतन्ति याः। न श्मश्रूणि गतान्यास्यं न दन्तान्तरधिष्ठितम्॥१४१॥

मुखसे जलके बूंद शरीरपर गिरनेसे शरीर जूठा नहीं होताहै, मुखमें जानेसे दाढ़ी और मूंछके बाल अशुद्ध नहीं होते और दांतोंमें लगेहुए अन्नके किनकोंसे मुख अशुद्ध नहीं होता ※ ॥ १४१ ॥

※ पाराशरस्मृति—१२ अध्यायके ५९-६१ श्लोक। जो मनुष्य नाभीसे ऊपर उच्छिष्ट होके या नाभीसे नीचे भागमें अशुद्ध होकर या अन्तरिक्षमें अर्थात् भूमिसे ऊपर मचान आदिपर अथवा सूतकमें मरताहै उसके कर्म करनेवाले ३ कृच्छ्र करें। दस हजार गायत्रीका जप, दो सौ प्राणायाम, पवित्र तीर्थमें शिर भिंगाकर १२ बार स्नान और २ योजन तीर्थयात्रा करना १ कृच्छ्रके समान है।

※ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय-१९१ श्लोक, वृहद्विष्णुस्मृति-२३ अध्याय ४७ श्लोक, वसिष्ठ-स्मृति-१४ अध्याय २१ श्लोक और बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-५ अध्याय, ६४ श्लोकमें भी ऐसा लिखाहै।

⊙ याज्ञवल्क्य-१ अध्याय-१९२ श्लोक, अत्रिस्मृति-२३५ श्लोक, वृहद्विष्णुस्मृति-२३ अध्याय-४३ श्लोक, वसिष्ठस्मृति-३ अध्याय-४६ श्लोक और बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-५ अध्याय,-६५ श्लोकमें भी ऐसा है; शङ्खस्मृति-१६ अध्यायके १२-१३ श्लोकमें शिलापर स्थित जलको भी भूमिके जलके समान शुद्ध लिखाहै

◎ याज्ञवल्क्य-१ अध्याय-१८७ श्लोक, वृहद्विष्णु-२३ अध्याय-४८ श्लोक और बौधायनस्मृति १ प्रश्न-५ अध्याय,-५६ श्लोकमें भी ऐसा है।

▦ वृहद्विष्णुस्मृति—२३ अध्याय-४९ श्लोकमें ऐसा ही है। शङ्खस्मृति-१६ अध्यायके १६ श्लोकमें है कि रातमें शयनके समय स्त्रीका मुख, गौ दुहनेके समय बछड़ेका मुख, वृक्षपरपक्षीका मुख और शिकारमें कुत्तेका मुख शुद्ध है। बौधायनस्मृति—१ प्रश्न-५ अध्यायके ५७ श्लोकमें विशेष यह है कि रतिके समय स्त्रीका मुख पवित्र है।

※ याज्ञवल्क्य-१ अध्यायके १९३ श्लोकमें भी ऐसा है; वृहद्विष्णुस्मृति-२३ अध्यायके ५२ श्लोकमें हाथी और बिलारको भी ऐसा ही शुद्ध लिखाहै।

※ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्यायके १९५ श्लोक और वृहद्विष्णुस्मृति-२३ अध्यायके ५३ श्लोकमें ऐसा ही है। गौतमस्मृति-१ अध्यायके २०-२१ अङ्क। यदि जीभसे स्पर्श नहीं होवे तो दांतोंमें लगेहुए जूठे अन्न-

स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचमयतः परान्। भौमिकैस्ते समा ज्ञेया न तैराप्रयतो भवेत् ॥१४२॥

दूसरेको आचमन करानेके समय आचमनके जलके बूंद पैरपर गिरनेसे अशुद्धि नहीं होतीहै; वे बूंद भूमिके जलके समान पवित्र हैं ॥ ❀ ॥ १४२ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय।

अजाश्वयोर्मुखं मेध्यं न गोर्न नरजा मलाः ॥ १९४ ॥

बकरे और घोड़ेका मुख शुद्ध है; गौका मुख और मनुष्यके शरीरका मल अशुद्ध है ❀ ॥ १९४ ॥

(३) अत्रिस्मृति।

गोकुले कन्दुशालायां तैलचक्रेक्षुयन्त्रयोः ॥ १८८ ॥

अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीणां च व्याधितस्य च ॥ १८९ ॥

नापो मूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा ॥ १९० ॥

गोशालाएं, भड़भूजा-और हलवाईके घर, तेलके कोल्हू, ऊखके कोल्हू, स्त्री और रोगी मनुष्यमें शुद्धताका विचार नहीं करना चाहिये अर्थात् ये सब सदा शुद्ध हैं ॥१८८—१८९॥ नदी आदिका जल विष्ठा मूत्रसे और अग्नि अपवित्र वस्तु जलानेसे अशुद्ध नहीं होताहै ⊙ ॥ १९० ॥

गोदोहने चर्मपुटे च तोयं यन्त्राकरे कारुकशिल्पिहस्ते ॥ २२८ ॥

स्त्रीबालवृद्धाचरितानि यान्यप्रत्यक्षदृष्टानि शुचीनि तानि।

प्राकाररोधे विषमप्रदेशे सेवानिवेशे भवनस्य दाहे ॥ २२९ ॥

गौ दुहनेके बर्तनका; चामकी मोटिका यन्त्र और खानका, कारुक और शिल्पीके हाथका; ❀ स्त्री,बालक और वृद्धसे आचरितका; और बिना देखाहुआ ये सब जल शुद्ध हैं ॥ २२८–२२९ ॥

अवारब्धयज्ञेषु महोत्सवेषु तेष्वेव दोषा न विकल्पनीयाः।

प्रपास्वरण्ये घटकस्य कूपे द्रोण्यां जलं कोशविनिर्गतं च ॥ २३० ॥

नगर घेरे जानेके समय, संकटके देशमें, सेवाके समय, घरमें आग लगनेके समय असंपूर्ण यज्ञके समय और बड़े उत्सवके समय जलमें और पानीशाले, वन, कूपके रहट और द्रोणीके जल तथा हौदसे निकलतेहुए जलमें दोषकी शंका नहीं करना चाहिये ◎ ॥ २२९–२३० ॥

चर्मभाण्डस्तु धाराभिस्तथा यन्त्रोद्धृतं जलम् ॥ २३६ ॥

आकराद् गतवस्तूनि नाशुचीनि कदाचन ॥ २३७ ॥

आकराः शुचयः सर्वे वर्जयित्वा सुरालयम्। भृष्टाभृष्टयवाश्चैव तथैव चणकाः स्मृताः ॥ २३८ ॥

–दांतोंके समान शुद्ध है किन्तु किसी आचार्यका मत है कि जबतक दांतोंसे अलग नहीं होवे तबतक दांतोंके समान है और दांतोंसे अलग होनेपर मुखके लारके तुल्य है, दांतोंसे अलग होजानेपर उसको निगल जाना चाहिये। २३ अङ्क। मुखसे लारके बूंद शरीरपर गिरनेसे शरीर अशुद्ध नहीं होताहै। वसिष्ठस्मृति ३ अध्याय–४० श्लोक। विधिपूर्वक आचमन करलेनेपर यदि दांतोंमें या मुखमें अन्नका किनका रहजावेगा तो उसका मुख जूठा नहीं समझा जायगा; उसको निगलजानेसे ही वह शुद्ध होजायगा।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय--१९५ श्लोक। बृहद्विष्णुस्मृति-२३ अध्याय--५४ श्लोक, वसिष्ठस्मृति ३ अध्याय ४१ श्लोक, बौधायनस्मृति-१ प्रश्न--५ अध्याय,--१०५ श्लोक और उशनस्मृति--२ अध्यायके ३८--२९ श्लोकमें ऐसाही है।

❀ बृहद्विष्णुस्मृति--२३ अध्याय--४० श्लोक और शंखस्मृति-१६ अध्याय १४ श्लोकमें भी ऐसा है।

⊙ वसिष्ठस्मृति—२८ अध्यायके १ श्लोकमें इस श्लोकके समान है।

❀ चित्रकार, सोनार आदिको कारुक और बढ़ई लोहार आदिको शिल्पी कहतेहैं।

◎ बाग अथवा खेत पटानेके लिये लोग कूंएमें रहट लगातेहैं; कूपके ऊपर चर्खी बनातेहैं, सैकड़ों मटुकियोंका एक हार कूपकी चर्खीसे पानीतक लटकादेतेहैं, बैलोंसे चर्खीको घुमातेहैं, क्रमसे जैसे जैसे एक एक मटुकीमें कूपका जल भरताहै वैसे वैसे एक एक मटुकीका पानी कूपके ऊपर गिरकर खेतमें चला जाताहै। जिस काठ या बांसके पात्रसे नदी आदिका जल निकालकर नीचेसे ऊपर चढ़ाके खेत पटाते हैं उसको द्रोणी या दोन कहतेहैं। आपस्तम्बस्मृति-२ अध्यायके १–२ श्लोक। पानीशाला, वन, पर्वत और द्रोणीका जल तथा हौदसे निकलताहुआ जल पवित्र है।

चामके मशकका जल, धाराका जल और यन्त्रसे निकालाहुआ जल पवित्र है ॥ २३६ ॥ खानियोंसे निकलीहुई वस्तुएं सदा शुद्ध हैं; मदिराके स्थानको छोड़कर सब खान पवित्र हैं ❀ ॥ २३७-२३८ ॥

खर्जूरं चैव कर्पूरमन्यद्भृष्टतरं शुचिः ॥ २३९ ॥

भूंजेहुएभी जव और चने पवित्र हैं तथा खजूर और कपूर और भूंजेहुए अन्य पदार्थ भी शुद्ध हैं २३८-२३९

अदुष्टाः सततं धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ॥ २४० ॥

सदा गिरतीहुई धारा और वायुसे उड़ीहुई धूली पवित्र है ❀ ॥ २४० ॥

बहूनामेकलग्नानामेकश्चेदशुचिर्भवेत् । अशौचमेकमात्रस्य नेतरेषां कथञ्चन ॥ २४१ ॥

बहुतसे इकट्ठे मनुष्योंमेंसे एकके अशुद्ध होनेसे केवल एक ही अपवित्र होताहै; अन्य नहीं ❀ ॥२४१॥

देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च । उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते ॥ २४७ ॥

देवयात्रा, विवाह, यज्ञ और सम्पूर्ण उत्सवोंके समय स्पर्शका दोष नहीं लगताहै ❀ ॥ २४७ ॥

आर्द्रमांसं घृतं तैलं स्नेहाश्च फलसंभवाः । अन्त्यभाण्डस्थितास्त्वेते निष्क्रान्ताः शुद्धिमाप्नुयुः २४९

गीला मांस, घी, तेल और नारियल आदि फलोंका तेल; ये सब अन्त्यज जातिके पात्रमें रहनेपर भी उससे निकाललेनेपर शुद्ध होजातेहैं ❀ ॥ २४९ ॥

(७क) लघुहारीतस्मृति ।

दधिसर्पिःपय क्षौद्रंभाण्डे दोषो न विद्यते । मार्जारश्चैव दर्वी च मारुतश्च सदा शुचिः ॥ ४३ ॥

दही, घी, दूध और मधुके भाण्ड अशुद्ध नहीं होतेहैं; बिलार, दर्वी (यज्ञपात्र विशेष) और पवन सदा पवित्र हैं ॥ ४३ ॥

उदकं च तृणं भस्म द्वारः पन्थास्तथैव च । एभिरन्तरितं कृत्वा पङ्क्तिदोषो न विद्यते ॥ ७४ ॥

जल, तृण, भस्म, द्वार तथा मार्गको भोजनकी पंक्तिके मध्यमें करदेनेसे एक पंक्तिका भेद छूटजाताहै॥७४॥

(८) यमस्मृति ।

स्वभावयुक्तमव्याप्तममेध्येन सदा शुचि । भाण्डस्थं धरणीस्थं वा पवित्रं सर्वदा जलम् ॥ ९५ ॥

जिस जलमें अपवित्र वस्तु नहीं मिली होवे, ऐसा स्वाभाविक जल चाहे भाण्डमें हो अथवा भूमिपर हो सदा शुद्ध है ॥ ९५ ॥

(९) आपस्तम्बस्मृति-१अध्याय ।

स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन ॥ ३ ॥

स्त्री, वृद्ध और बालक; ये कभी अशुद्ध नहीं होतेहैं ❀ ॥ ३ ॥

आत्मा शय्या च वस्त्रं च जायापत्यं कमण्डलुः । आत्मनः शुचीन्येतानि परेषामशुचीनि तु ॥ ४ ॥

शरीर, शय्या, वस्त्र, भार्या, सन्तान और कमण्डलु; ये सब अपनेही पवित्र हैं; दूसरेके पवित्र नहीं हैं ❀ ॥४॥

❀ वृहद्विष्णुस्मृति—२३ अध्याय-४८ श्लोक । सब खान शुद्ध हैं । शङ्खस्मृति—१६ अध्याय-१३ श्लोक । नदीका जल और खान सदा पवित्र है । बौधायनस्मृति—१ प्रश्न-५ अध्याय,-५८ श्लोक । सुराकी खानको छोड़कर सब खान पवित्र हैं ।

❀ आपस्तम्बस्मृति—२ अध्याय-३ श्लोक, पाराशरस्मृति—७ अध्याय-३६ श्लोक और बौधायन-१ प्रश्न-५ अध्यायके ५८ श्लोकमें ऐसाही है ।

❀ शातातपस्मृति-१३८ श्लोकमें ऐसाही है । वृद्धशातातपस्मृति—३६ श्लोकमें है कि शुद्ध कियेहुए पात्रोंमेंसे एकके अशुद्ध होनेसे वही अशुद्ध होताहै अन्य नहीं ।

❀ वृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—६ अध्याय-२९७ श्लोक । विवाह, उत्सव, यज्ञ, संग्राम, नदी बाढ़ (तलाव) और पलायनके समय तथा वनमें स्पर्शका दोष नहीं होताहै ।

❀ लिखितस्मृति—६७ श्लोकमें है कि कच्चा मांस, घी, मधु और नारियल आदि फलोंका तेल अन्त्यज जातिके पात्रमें रहनेपर और लघुशंखस्मृति ८९ श्लोक और वृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र—६ अध्याय-३२१ श्लोकमें है कि ये सब म्लेच्छके बर्त्तनमें रहनेपर भी उससे निकाल लेनेपर शुद्ध होजातेहैं ।

❀ पाराशरस्मृति—७ अध्यायके ३७ श्लोकमें ऐसाही है । वृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—६ अध्याय-२९५ श्लोक स्त्री, बालक, वृद्ध और आत्मा; ये सब अपनेही पवित्र हैं अन्यके नहीं । ३०१ श्लोक । पुरुषको रात्रिमें, मार्गमें और असहाय अवस्थामें और स्त्रीको सर्वदा शुद्धि विहित है ।

❀ शङ्खस्मृति—१६ अध्यायके १५ श्लोक और बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-५ अध्यायके ६१ श्लोकमें भी ऐसाही है; शंखस्मृतिमें लिखाहै कि जनेऊ भी अपनाही पवित्र है ।

(११) कात्यायनस्मृति–२६ खण्ड।

व्रीहयः शालयो मुद्गा गोधूमाः सर्षपास्तिलाः। यवाश्चौषधयः सप्त विपदं घ्नन्ति धारिताः ॥१३॥
धान, साठीचावल, मूंग, गेहूं, सरसों, तिल और यव; इन ७औषधियोंको रखनेसे विपद् दूर होतीहै १३

(१३) पाराशरस्मृति–७ अध्याय।

मार्जारमक्षिकाकीटपतङ्गकृमिदर्दुराः ॥ ३२ ॥
मेध्यामेध्यं स्पृशन्तो ये नोच्छिष्टान्मनुरब्रवीत्। महीं स्पृष्ट्वा गतं तोयं याश्चाप्यन्योन्यविप्रुषः॥३३॥
बिलार, मक्खी, कीट, पतङ्ग, कृमि और मेढ़क; ये सब पवित्र और अपवित्र वस्तुका स्पर्श करतेहैं; किन्तु इनके स्पर्शसे कोई वस्तु जूठी नहीं होतीहै; ऐसा भगवान् मनुने कहाहै ❀ ॥ ३२–३३ ॥
भुक्तोच्छिष्टं तथा स्नेहं नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत्। ताम्बूलेक्षुफलान्येव भुक्तस्नेहानुलेपने ॥ ३४ ॥
भूमिपर बहताहुआ जल, परस्पर बोलनेसे निकलेहुए थूकके बूंद, भोजनके चौकेसे बचेहुए घी, तेल आदि चिकना पदार्थ जूठ नहीं होतेहैं, ऐसा मनुने कहाहै ॥ ३३–३४ ॥
मधुपर्के च सोमे च नोच्छिष्टं धर्मतो विदुः ॥ ३५ ॥
पान, ऊख, फल, बर्ताहुआ तेल, घी और उबटन आदि अनुलेपन और मधुपर्क तथा सोमरस; ये सब धर्मके अनुसार जूठे नहीं होतेहैं ⊙ ॥ ३४–३५ ॥

(१९ ख) वृद्धशातातपस्मृति।

उच्छिष्टं संस्पृशेद्यस्तु स्त्वेक एव स दुष्यति। तं स्पृष्ट्वाऽन्यो न दुष्येत सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥ ३५ ॥
सब वर्णोंके मनुष्योंके लिये यही विधि है कि जो मनुष्य जूठेका स्पर्श करताहै केवल वही अपवित्र होताहै; उसका स्पर्श करनेवाला नहीं ॥ ३५ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति–२२ अध्याय।

सर्वे शिलोच्चयाः सर्वाः स्रवन्त्यः पुण्या ह्रदास्तीर्थान्यृषिनिवासगोष्ठपरिस्कन्धा इति देशाः ॥ ७ ॥
सब पर्वत, नदी, तालाव, तीर्थ, ऋषियोंके निवासस्थान, गोशालाएं और (वट, पीपल आदिके) बड़े वृक्ष; ये सब पवित्र देश हैं ॥ ७ ॥

२८ अध्याय।

अजाश्वा मुखतो मेध्या गावो मेध्यास्तु पृष्ठतः। ब्राह्मणाः पादतो मेध्याः स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वतः९॥
बकरे और घोड़ेका मुख, गौके मल मूत्रके स्थान, ब्राह्मणके पद और स्त्रीका सर्वाङ्ग शुद्ध हैं ॥ ९ ॥

(२५) बौधायनस्मृति–२ प्रश्न–३ अध्याय।

रथाश्वगजधान्यानां गवां चैव रजः शुभम् ॥ ६१ ॥
रथ, घोड़े, हाथी, धान्य और गौकी धूली शुद्ध है ॥ ६१ ॥

अशुद्ध २.

(१) मनुस्मृति–५ अध्याय।

ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः। यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैव मलाश्च्युताः१३२॥
वसा शुक्रमसृङ् मज्जा मूत्रं विट् घ्राणकर्णविट्। श्लेष्माश्रुदूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः१३५॥

❀ वसिष्ठस्मृति––३ अध्याय–४५ श्लोक। मश और मक्खी नीलका स्पर्श करके खानेकी वस्तुपर बैठजातीहैं तो उससे वह वस्तु अशुद्ध नहीं होतीहै। १४ अध्याय–२३ श्लोक। बिलारके मुख लगानेसे भोजनका पदार्थ जूठा नहीं होताहै।

⊙ शातातपस्मृतिके १३४ श्लोकमें है कि दांतसे फल मूल काटनेसे; दूसरेके भोगेहुए उबटना, चन्दन आदिका बचाहुआ भाग देहमें लगानेसे और पान तथा ऊख खानेसे द्विज जूठा नहीं होताहै। उशनस्मृति–– २ अध्यायके २९–३० श्लोक। मधुपर्क, सोम, पान, फल, मूल और ऊख भक्षणमें अशुद्धता नहीं होती, ऐसा महर्षि उशनाने कहाहै। लघुहारीतस्मृति–––३९–श्लोक। पान, तीते तथा कसैले पदार्थ, बर्ताहुआ तेल घी और उबटन आदि अनुलेपन, मधुपर्क और सोमरस जूठे नहीं होतेहैं ऐसा मनुने कहाहै।

नाभीसे ऊपरकी इन्द्रियोंके छिद्र सदा पवित्र हैं; किन्तु नीचेकी इन्द्रियोंके छिद्र और शरीरसे निकलेहुए मल अशुद्ध हैं ❀ ॥ १३२ ॥ चर्बी, वीर्य, रुधिर, मस्तकके भीतरकी चर्बी, मूत्र, विष्ठा, नाककी मैल, कानकी मैल; कफ, आंखका जल आंखकी मैल और पसीना; यही १२ शारीरिक मल हैं ⚘ ॥ १३५ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय ।

अजाश्वयोर्मुखं मेध्यं न गोर्न नरजा मलाः ॥ १९४ ॥

बकरे और घोड़का मुख शुद्ध है; किन्तु गौका मुख और मनुष्यके शरीरके मल अशुद्ध हैं ⚘ ॥१९४॥

(३) अत्रिस्मृति ।

अजा गावो महिष्यश्च अमेध्यं भक्षयन्ति याः ॥ २९७ ॥
दुग्धं हव्ये च कव्ये च गोमयं न विलेपयेत् । ऊनस्तनीमधिकां वा या च स्वस्तनपायिनी ॥ २९८॥
तासां दुग्धं न होतव्यं हुतं चैवाहुतं भवेत् ॥ २९९ ॥

जो बकरी, गौ अथवा भैंस विष्ठा आदि अपवित्र वस्तु खातीहैं उनका दूध देवता और पितरोंके कार्यमें नहीं लगाना चाहिये और उनके गोबरसे भूमि नहीं लीपना चाहिये ॥ २९७-२९८ ॥ जिनके थन कम अथवा अधिक हैं अथवा जो अपने थनोंको आप पीलेतीहैं उनके दूधसे, अर्थात् दूधसे बने खीर तथा घीसे, होम नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह होम निष्फल होजाताहै ॥ २९८-२९९ ॥

दीपशय्यासनच्छाया कार्पासं दन्तधावनम् । अजारेणुस्पृशं चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ ३९० ॥

दीप, शय्या और आसनकी छाया; कपासके पेड़की दतौन और बकरीकी धूलका स्पर्श, ये सब इन्द्रकी भी लक्ष्मीको हरलेतेहैं ॥ ३९० ॥

(९) आपस्तम्बस्मृति-९ अध्याय ।

उपनीतं यदा त्वन्नं भोक्तारं समुपस्थितम् ॥ १३ ॥
अपीतवत्सुमुत्सष्टं न दद्यान्नैव होमयेत् ॥ १४ ॥

किसीके पास उसके खानेके लिये अन्न लाया जावे, यदि वह उसको नहीं खावे तो उस अन्नको न तो किसीको खिलाना चाहिये न उससे होम करना चाहिये ॥ १३—१४ ॥

(१३) पाराशरस्मृति-३ अध्याय ।

अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी नवसूतिका । दशरात्रेण संशुद्ध्येद् भूमिस्थं च नवोदकम् ॥ ७ ॥

प्रसूता बकरी, गौ, भैंस और ब्राह्मणी तथा भूमिपर स्थित नया जल; ये सब १० रातपर शुद्ध होतेहैं॥७॥

(१९क) लघुशङ्खस्मृति ।

शूर्पवातनखाग्रान्तकेशवन्धपटोदकम् । मार्जनीरेणुसंस्पर्शो हन्ति पुण्यं दिवा कृतम् ॥ ६९ ॥

सूपकी हवा, नखाग्रके जल, केशबन्धके जल, वस्त्रके जल और झाडूकी धूलका स्पर्श होनेसे दिन-भरका पुण्य नाश होजाताहै ❁ ॥ ६९ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति-३ अध्याय ।

न वर्णगन्धरसदुष्टाभिर्याश्च स्युरशुभागमाः ॥ ३६ ॥

जिस जलका रूप, गन्ध अथवा रस बिगडगया होवे अथवा जो अपवित्र मार्गसे आताहो उस जलसे आचमन आदि नहीं करना चाहिये ॥ ३६ ॥

(२९) बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-५ अध्याय ।

चैत्यवृक्षं चितिं यूपं चण्डालं वेदविक्रयम् । एतानि ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत् ॥ ६० ॥

चिताके स्थानका वृक्ष, चिताका स्मरण स्तंभ, चाण्डाल और वेदबेंचनेवाले ब्राह्मण; इनका स्पर्श करनेपर ब्राह्मण वस्त्रोंके सहित स्नान करे ◎ ॥ ६० ॥

❀ वृहद्विष्णुस्मृति-२३ अध्याय-५१ श्लोकमें ऐसाही है ।

⚘ अत्रिस्मृति-३१ श्लोकमें नाककी मैल और आंखके जलके स्थानमें नख और हड्डी है ।

⚘ वृहद्विष्णुस्मृति-२३ अध्याय-४० श्लोक और शंखस्मृति-१६ अध्याय-१४ श्लोकमें भी ऐसा है ।

❁ अत्रिस्मृतिके ३१५—३१६ श्लोकमें प्रायः ऐसा है ।

◎ शातातपस्मृति-१२५ श्लोकमें भी ऐसा है ।

२ प्रश्न-३ अध्याय ।

अप्रशस्तं समूहन्याः श्वाजाविखरवाससाम् ॥ ६१ ॥

झाड़ू, कुत्ते, बकरी, भेड़, गदहे और वस्त्रकी धूली अशुद्ध है ॥ ६१ ॥

भक्ष्य वस्तु ❋ ३.

(१) मनुस्मृति-५ अध्याय ।

यत्किञ्चित्स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम् । तत्पर्युषितमप्याद्यं हविःशेषं च यद्भवेत् ॥ २४ ॥
चिरस्थितमपि त्वाद्यमस्नेहाक्तं द्विजातिभिः । यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रियाः ॥ २५ ॥

द्विजातियोंको उचित है कि घी तेल आदि चिकने पदार्थसे युक्त अनिन्दित भक्ष्य अथवा भोज्य पदार्थ बासी होनेपर भी भोजन करे; हविके शेष भागको बासी होनेपर भी खावे और घी तेल आदि चिकने पदार्थसे रहित यव, गेहूं अथवा दूधकी वस्तुओंको कई दिनोंकी बासी होनेपर भी भोजन करे ☙ ॥२४-२५॥

यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येष दैवो विधिः स्मृतः । अतोऽन्यथा प्रवृत्तिस्तु राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ३१॥

यज्ञकी पूर्णताके लिये यज्ञाङ्गभूत मांसका खाना दैवविधि कहातीहै; किन्तु विना यज्ञका मांसभक्षण करना राक्षसीविधि कहीजातीहै ॥ ३१ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय ।

भक्ष्याः पञ्चनखाः सेधा गोधाकच्छपशल्लकाः । शशश्च मत्स्येष्वपि हि सिंहतुण्डकरोहिताः ॥ १७७॥
तथा पाठीनराजीवसशल्काश्च द्विजातिभिः ॥ १७८ ॥
प्राणात्यये तथा श्राद्धे प्रोक्षितं द्विजकाम्यया । देवान्पितॄन्समभ्यर्च्य खादन्मांसं न दोषभाक्१७९॥
वसेत्स नरके घोरे दिनानि पशुरोमभिः। संमितानि दुराचारो यो हन्त्यविधिना पशून् ॥ १८०॥

पञ्चनखवाले जीवोंमें सेधा (जिसको श्वाविध, और सेंधुआर भी कहतेहैं) गोह, कछुआ, साहिल और खरगोश और मछलियोंमें सिंहतुण्ड, रोहू, पढिना, राजीव और सशल्क ये सब द्विजातियोंके खाने-योग्य हैं ⚜ ॥ १७७-१७८ ॥ विना मांस खाये जीनेकी आशा नहीं रहनेपर, श्राद्धमें, यज्ञमें और ब्राह्मणकी इच्छासे पितर तथा देवको अर्पण कर मांस खानेमें दोष नहीं है ◎ ॥ १७९ ॥ जो दुराचारी मनुष्य विना अथवा यज्ञके पशुओंको मारताहै वह पशुओंके शरीरमें जितने रोएं रहतेहैं उतने दिनोंतक घोर नरकमें बसताहै ॥ १८० ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

अन्त्यजस्य तु ये वृक्षा बहुपुष्पफलोपगाः ॥ २०१ ॥
उपभोग्यास्तु ते सर्वे पुष्पेषु च फलेषु च ॥ २०२ ॥

❋ शुद्धके प्रकरणमें देखिये ।

☙ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय-१६९ श्लोक बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—६ अध्याय-३१७ श्लोक और लघुआश्वलायनस्मृति १ आचारप्रकरण-१७० श्लोक । घी, तेल आदि किसी चिकनी वस्तुसे युक्त बहुत समयका बासी अन्न भी खाना चाहिये और घी, तेल आदिसे रहित भी यव, गेहूं अथवा गोरसकी बासी वस्तुएं भोजन करना चाहिये ।

⚜ मनुस्मृति-५ अध्यायके १६ और १८ श्लोकमें भी ऐसा है; किन्तु वहां पञ्चनखवालोंमें गेंडा भी भक्ष्य लिखाहै और लिखाहै कि केवल यज्ञ और श्राद्धमें इनका मांस खाना चाहिये; १५ श्लोकमें है कि मछलियां सबका मांस खातीहैं इसलिये मछली नहीं खाना चाहिये; गौतमस्मृति—१७ अध्यायके १ अङ्कमें भी पञ्चनखवालोंमें गेंडा भक्ष्य लिखाहै । शङ्खस्मृति-१७ अध्यायके२२ श्लोकमें सेधा का नाम नहीं है,उसके स्थानपर गेंडाका नाम है और लिखाहै कि इनको मारकर१ वर्ष व्रत करे । वसिष्ठस्मृति-१४अध्यायके३०अङ्कमें याज्ञवल्क्यमें लिखेहुए ५ पञ्चनखोंको भक्ष्य लिखाहै । ३५ श्लोकमें लिखाहै कि गेंडा और बनैले सूअरके भक्षण करनेके विषयमें ऋषियोंका मतभेद है अर्थात् कोई भक्ष्य औरं कोई अभक्ष्य कहतेहैं । (मांस खाना निषिद्ध तथा निन्दित है; किन्तु जो विना खाये नहीं रहता उसके लिये ऐसा लिखाहै) ।

◎ मनुस्मृति-५ अध्याय-२७ श्लोकमें भी प्रायः इस श्लोकके समान है । बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-४ अध्याय, ३२१-३२२ श्लोक । श्राद्धकालमें भी स्वयं पशुको नहीं मारे कच्चे मांस खानेवाले बाघ, बाज आदि तथा कुत्ते आदिके मारेहुए पशु आदिका मांस ग्रहण करे । मनुस्मृति-५ अध्याय-१३१ श्लोक । कुत्ते, कच्चे मांस खानेवाले (बाघ, बाज आदि), चाण्डाल और डाकूके मारेहुए जीवोंका मांस पवित्र है ।

अत्यज जातियोंके वृक्षोंके, जिनमें बहुत फल फूल होतेहोवें, फलफूलोंके भोगनेमें दोष नहीं है ❀ ॥ २०१—२०२ ॥

आरनालं तथा क्षीरं कन्दुकं दधि सक्तवः । स्नेहपक्वं च तक्रं च शूद्रस्यापि न दुष्यति ॥२४८ ॥

कांजी, दूध, भूंजाहुआ अन्न, दही, सत्तू, घी अथवा तेलसे पकेहुए पदार्थ और मट्ठा शूद्रके घरका भी खानेमें दोष नहीं है ॥ २४८ ॥

(९) आपस्तम्बस्मृति–८ अध्याय ।

आममांसं मधु घृतं धानाः क्षीरं तथैव च ॥ १७ ॥

गुडस्तक्ररसा ग्राह्या निवृत्तेनापि शूद्रतः । शाकमांसं मृणालानि तुम्बरुः सक्तवस्तिलाः ॥ १८ ॥

रसाः फलानि पिण्याकं प्रतिग्राह्या हि सर्वतः ॥ १९ ॥

कच्चा मांस, मधु, घी, भूंजा जव, दूध, गुड़, मट्ठा और ऊख आदिका रस शूद्रसेभी लेले ॥१७–१८ ॥ शाक, मांस, कमलकी जड़, तूम्बी, सत्तू, तिल, रस, फल और खली सबसे लेलेवे ॥ १८–१९ ॥

(१४) व्यासस्मृति–३ अध्याय ।

द्विजभोज्यानि गव्यानि माहिष्याणि पयांसि च ॥ ५९ ॥

द्विजोंके खानेयोग्य गौ और भैंसके दूध हैं ॥ ५९ ॥

(१९) शातातपस्मृति ।

खलक्षेत्रगतं धान्यं वापीकूपगतं जलम् । अभोज्यादपि तद् ग्राह्यं यच्च गोष्ठगतं पयः ॥ १२८ ॥

खलिहानका अन्न, बावली और कूपका जल और गोशालेका दूध अभोज्य होवे तो भी ग्रहण करना चाहिये ※ ॥ १२८ ॥

(२४) लघ्वाश्वलायनस्मृति–१ आचारप्रकरण ।

अपूपसक्तवो धानास्तक्रं दधि घृतं मधु । एतत्पण्येषु भोक्तव्यं भाण्डलेपो न चेद्भवेत् ॥ १७१ ॥

दूकानका मालपूआ, सत्तू, भूंजाजव, मट्ठा, दही, घी और मधु यदि अपवित्र बर्त्तनमें नहीं रक्खे होवें तो खाना चाहिये ◎ ॥ १७१ ॥

अभक्ष्यवस्तु ❁ ४.

(१) मनुस्मृति–५ अध्याय ।

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च । अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च ॥ ५॥

लोहितान्वृक्षनिर्यासान्वृश्चनप्रभवांस्तथा । शेलुं गव्यं च पेयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

लहसुन, गाजर, पियाज, वर्षाकालमें वृक्ष तथा भूमिपर जमनेवाला छाता और विष्ठा आदि अपवित्र वस्तुसे उत्पन्न शाक आदि द्विजातियोंके लिये अभक्ष्य हैं ॥ ५ ॥ वृक्षका लाल गोंद, वृक्ष काटनेपर निकलेहुए रस, बहुवारक फल और नई ब्याई हुई गौके दूधकी पेउसी यत्नपूर्वक त्यागदेवे ✤ ॥ ६ ॥

अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा । आविकं सन्धिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः ॥ ८ ॥

आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां माहिषं विना । स्त्रीक्षीरं चैव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि चैव हि ॥ ९ ॥

दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु सर्वं च दधिसंभवम् । यानि चैवाभिषूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥ १० ॥

❀ बौधायनस्मृति–१ प्रश्न–५ अध्याय,–५९ श्लोक । अपवित्र स्थानके वृक्षोंके, जिनमें बहुत फल फूल होतेहैं, फल फूल दूषित नहीं हैं ।

※ बौधायनस्मृति—१ प्रश्न–५ अध्यायके ६३ श्लोकमें ऐसाही है ।

◎ मनुस्मृति—५ अध्याय–१२९ श्लोक, याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय–१८७ श्लोक, वृहद्विष्णुस्मृति–२३ अध्याय-४८ श्लोक, आपस्तम्बस्मृति—२ अध्याय–१ श्लोक, शङ्खस्मृति—१६ अध्याय–१४ श्लोक, वसिष्ठस्मृति—३ अध्याय-४५ श्लोक,और बौधायनस्मृति—१प्रश्न-५अध्याय,–५६श्लोकमें लिखाहै कि बेंचनेके लिये दूकानमें पसारीहुई वस्तुएं सदा पवित्र रहतीहैं ।

❁ प्रायश्चित्तप्रकरणके अभक्ष्यभक्षणमें भी देखिये ।

✤ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्यायके १७१ और १७६ श्लोक और वसिष्ठस्मृति--१४ अध्यायके २८ अङ्कमें भी ऐसा है; किन्तु बहुवारक और पेउसीका नाम नहीं है । व्यासस्मृति—३ अध्यायके ६०–६१ श्लोक । पियाज, गाजर और लाल गोंद अभक्ष्य है । गौतमस्मृति—१७ अध्याय--१ अङ्क । लाल गोंद और वृक्षका रस अभक्ष्य है ।

दशदिनके भीतरकी व्याईहुई गौ (बकरी और भैंस) का दूध; ऊंटनीका दूध और घोड़ी आदि एक खुरवाले पशुका दूध; भेड़का दूध; और रजस्वला और वत्सहीना गौका दूध नहीं पीना चाहिये ॥ ८॥ भैंसको छोड़कर किसी वनैले पशुका दूध; स्त्रीका दूध और सडाकर खट्टा किया पदार्थ अर्थात् कांजी नहीं पीना चाहिये; किन्तु शुक्त पदार्थोंमें दही खानेयोग्य है; दहीसे बनेहुए मट्ठा आदि और उत्तम फूल, मूल, फल तथा जलसे बनीहुई कांजी पीना चाहिये * ॥ ९ ॥ १० ॥

क्रव्यादाञ्छकुनान्सर्वांस्तथा ग्रामनिवासिनः। अनिर्दिष्टांश्चैकशफांष्टिट्टिभं च विवर्जयेत् ॥ ११ ॥
कलविङ्कं प्लवं हंसं चक्राङ्गं ग्रामकुक्कुटम्। सारसं रज्जुवालं च दात्यूहं शुकसारिके ॥ १२ ॥
प्रतुदाञ्जालपादांश्च कोयष्टिनखविष्किरान्। निमज्जतश्च मत्स्यादान्शौनं वल्लूरमेव च ॥ १३ ॥
बकं चैव बलाकांश्च काकोलं खञ्जरीटकम्। मत्स्यादान्विड्वराहांश्च मत्स्यानेव च सर्वशः ॥ १४ ॥
यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसाद उच्यते। मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान्विवर्जयेत् १५॥
न भक्षयेदेकचरानज्ञातांश्च मृगद्विजान्। भक्ष्येष्वपि समुद्दिष्टान्सर्वान्पञ्चनखांस्तथा ॥ १७ ॥

कच्चे मांस खानेवाले (गीध आदि) पक्षी; गांवमें निवास करनेवाले (कबूतर, आदि) पक्षी; घोड़े आदि एक खुरवाले पशु और टिटहरी पक्षी नहीं खावे॥११॥गौरैया, पनडुब्बी, हंस, चकवा, गांवके मुर्गे, सारस, रज्जुवाल, चातक, तोता और मैना अभक्ष्य हैं ॥ १२ ॥ चोंचसे फोरकर खानवाले (कठफोरा आदि), पंजोंमें महीन खालके जाल रखनेवाले (बत्तक आदि), कोयष्टी, (क्रौंच) पक्षी, पंजोंसे कुरेदि कुरेदि खानेवाले पक्षी, जलमें डूबकर मछलियोंको पकड़नेवाले पक्षी, कसाईके घरका मांस और सूखा मांस नहीं खाना चाहिये॥१३॥ बगुला, बलाक, (बगुला विशेष) काकोल, (द्रोणकाक) खंजरीट और मछलियोंको खानेवाले पक्षी विष्ठाखानेवाले सूअर और सब प्रकारकी मछलियोंका मांस अभक्ष्य है ॥ १४ ॥ जो जिसका मांस खाताहै उसको उसका मांसाहारी कहतेहैं (जैसे बिलाड़ मूसका भक्षण करनेवाला कहलाताहै); किन्तु मछलियसब जीवोंका मांस खातीहैं इस लिये मछली नहीं खाना चाहिये ॥ १५ ॥ अकेले चरनेवाले सर्प आदि, विना जानेहुए पशु पक्षी और सम्पूर्ण पञ्चनखवाले (वानर आदि) अभक्ष्य हैं ※ ॥ १७ ॥

नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञोऽनापदि द्विजः। जग्ध्वा ह्यविधिना मांसं प्रेत्य तैरद्यतेऽवशः ॥ ३३ ॥
न तादृशं भवत्येनो मृगहन्तुर्धनार्थिनः। यादृशं भवति प्रेत्य वृथा मांसानि खादतः ॥ ३४ ॥
यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वेह मारणम्। वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि ॥ ३८ ॥

विधिको जाननेवाले द्विजको उचित है कि विना आपत्कालके, देवता पितर आदिको अर्पण किये विना मांस कभी नहीं खावे; क्योंकि विधिहीन अर्थात् विना यज्ञादिके मांस खानेसे जिस जीवका मांस वह खाताहै मरनेपर अवश होकर उस जीवद्वारा वह भक्षणकियाजाताहै ॥ ३३ ॥ वृथा भोजन अर्थात् विना यज्ञादि कियेहुए मांस भोजन करनेवाले मरनेपर जैसे दुःख भोगतेहैं धनके लिये मृगोंके मारनेवाले व्याध

---

* याज्ञवल्क्य स्मृति—१ अध्याय १७० श्लोकमें भी ऐसा है; परन्तु कांजीका नाम नहीं है । गौतम, स्मृति—१७ अध्यायके १ अङ्कमें भी याज्ञवल्क्यके समान है और लिखाहै कि व्यानेसे १० दिन तक गौ, बकरी अथवा भैंसका दूध नहीं पीना चाहिये, भेड़ ऊंटनी तथा एक खुरवाली घोड़ी आदिका दूध कभी नहीं पान करे; रजस्वला, दो बच्चेवाली अथवा विना बच्चेवाली गौ, बकरी तथा भैंसका दूध नहीं पीवे और दहीको छोड़कर कांजी नहीं भक्षण करे । वसिष्ठस्मृति—१४ अध्याय–२९ अङ्क । रजस्वला, विना बच्चेवाली तथा १० दिनसे कमकी व्याईहुई गौ, भैंस अथवा बकरीका दूध अभक्ष्य है । व्यासस्मृति—३ अध्याय–६० श्लोक । १० दिनसे कमकी व्याईहुई, रजस्वला अथवा विना बच्चेवाली (गौ, भैंस) का दूध नहीं पीना चाहिये ।

※ याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्यायके १७२—१७६ श्लोकमें भी ऐसा है; किन्तु इनमेंसे मैना और अकेले चरनेवाले जीवका नाम नहीं है और कुरर (उत्क्रोश), नीलकण्ठ तथा रक्तपाद पक्षीभी अभक्ष्य लिखाहै। गौतमस्मृति–१७ अध्यायके १–२ अङ्कमें है कि टिटहरी, गौरैया, पनडुब्बी, हंस, चकवा, मुर्गा, बगुला, बलाक, (बगुलाविशेष) विष्ठाखानेवाले सूअर, चोंचसे फोरकर खानेवाले, पञ्जोंमें महीन खालके जाल रखनेवाले और पञ्जोंसे कुरेदि कुरेदि खानेवाले पक्षी और सब प्रकारकी मछलियां अभक्ष्य हैं तथा काक, कङ्क, गीध, बाज, लाल चोंचवाले और रातमें चरनेवाले (उल्लूक आदि) पक्षी; और दोनों ओर दांतवाले तथा बड़े बड़े बालवाले पशुभी अभक्ष्य हैं । वसिष्ठस्मृति–१४ अध्यायके ३७ अङ्कमें है कि कच्चे मांस खानेवाले गांवमें बसनेवाले (कबूतर, आदि), टिटहरी, गौरैया, पनडुब्बी, हंस, चकवा, मुर्गा, तोता, मैना, बगुला बलाक और खञ्जरीट पक्षी अभक्ष्य हैं और काक, गीध, बाज, रातमें चरनेवाले (उल्लूक आदि) भास; पारावत, (परेवा) कबूतर, क्रौञ्च, चमगीदड़, हारील और कोकिल पक्षी भी अभक्ष्य हैं ।

वैसा दुःख नहीं भोगते ॥ ३४ ॥ पशुके शरीरमें जितने रोम होतेहैं, वृथा पशु मारनेवाला उतने जन्मतक वध कियाजाताहै ❀ ॥ ३८ ॥

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि । अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥ ४१ ॥
एष्वर्थेषु पशून्हिंसन्वेदतत्त्वार्थविद्द्विजः । आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥ ४२ ॥
गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान्द्विजः । नावेदविहितां हिंसामापद्यपि समाचरेत् ॥ ४३ ॥
या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे । अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥ ४४ ॥
योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया । स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते ॥ ४५ ॥
यो बन्धनवधक्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति । स सर्वस्य हितं प्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ ४६ ॥
यद्ध्यायति यत्कुरुते धृतिं बध्नाति यत्र च । तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किञ्चन ॥ ४७ ॥
नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् । न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ४८॥
समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् । प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥ ४९ ॥
न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा पिशाचवत् । स लोके प्रियतां याति व्याधिभिश्च न पीड्यते ५०॥

मनुने कहाहै कि मधुपर्क, यज्ञ और पितृकार्य तथा देवकार्यके लिये पशुको मारना चाहिये; अन्य किसी कार्यके लिये नहीं, वेदतत्त्वके जाननेवाले द्विज इन कार्योंके लिये पशुवध करके अपनेको तथा पशुओंको उत्तम स्थानमें पहुंचातेहैं ॥ ४१-४२ ॥ आत्मवान् द्विजको उचित है कि गुरुके गृहमें, गृहस्थाश्रममें अथवा वनमें रहनेके समय विपद् पड़ने पर भी वेदविरुद्ध हिंसा नहीं करे ॥ ४३ ॥ वेदमें कहीहुई हिंसाको इस स्थावर जङ्गमरूप जगत्में अहिंसा जानना चाहिये; क्योंकि वेदसे ही धर्मका प्रकाश हुआहै ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य अपने सुखके लिये अहिंसक जीवोंको मारताहै वह इस लोक अथवा परलोकमें कभी सुख नहीं पाताहै और जो मनुष्य प्राणियोंका बन्धन तथा वध करके उनको क्लेश नहीं देताहै; किन्तु सबके हितकी इच्छा करताहै वह अत्यन्त सुख भोगताहै ॥ ४५-४६ ॥ जो मनुष्य किसी जीवकी हिंसा नहीं करताहै वह जो कुछ ध्यान या धर्म करताहै और जिस विषयमें मन लगाताहै उसका सब काम सहजमें ही सिद्ध होजाताहै ॥ ४७ ॥ विना जीवहिंसाके कभी मांस नहीं मिलताहै और जीव वध करनेसे स्वर्ग नहीं मिलता, इसलिये मांस नहीं खाना चाहिये ॥ ४८ ॥ मांसकी उत्पत्ति और जीवके वध बन्धनकी पीडापर विशेष रूपसे विचार करके भक्ष्य और अभक्ष्य सब प्रकारके मांस खानेसे निवृत्ति होना उचित है ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य विधिको छोड़कर पिशाचकी भांति मांस नहीं खाता वह लोकका प्यारा होताहै और रोगोंसे पीड़ित नहीं होता ❀ ॥ ५० ॥

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी । संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥ ५१ ॥

पशुवधकी अनुमति देनेवाला, पशुके अङ्गोंका विभाग करनेवाला, पशुवध करनेवाला, मांस मोल लेनेवाला, मांस बेंचनेवाला, मांस रींधनेवाला, मांस परोसनेवाला और मांस खानेवाला; ये सब लोग घातक हैं ❀ ॥ ५१ ॥

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति । अनभ्यर्च्य पितॄन्देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् ॥ ५२ ॥

जो मनुष्य पितरकार्य और देवकार्यके विना दूसरे जीवके शरीरके मांससे अपने शरीरका मांस बढ़ानेकी इच्छा करताहै उसके समान कोई पापी नहीं है ❀ ॥ ५२ ॥

मां स भक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् । एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ५५ ॥

बुद्धिमान् लोग कहतेहैं कि मांसशब्दका यही अर्थ है कि मैं इस लोकमें जिसका मांस खाताहूं परलोकमें वह मुझको खायगा ❀ ॥ ५५ ॥

❀ बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-४ अध्याय-३१९-३२० श्लोक । विधिपूर्वक श्राद्ध करके मांस भक्षण करे; धर्मज्ञ मनुष्य भोजन विना मरजावे; किन्तु विधिहीन मांस नहीं खावे; क्योंकि जो विधिहीन मांस भोजन करताहै वह जितने पशुके अङ्गमें रोम होतेहैं उतने वर्षतक नरकमें रहताहै ।

❀ बृहद्विष्णुस्मृति-५१ अध्यायके ६४-७३ श्लोकमें ऐसाही है । मनुस्मृति-५ अध्यायके ५३-५४ श्लोक । जो मनुष्य एकसौ वर्षतक प्रतिवर्ष अश्वमेध यज्ञ करताहै और जो मनुष्य मांस नहीं खाताहै,-इन दोनोंको समान फल मिलताहै । पवित्र फल मूल तथा नीवार आदि मुनिअन्न खानेवालेको वह फल नहीं मिलता जो फल मांस नहीं खानेवालेको प्राप्त होताहै । बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-४ अध्याय-३२५ श्लोकमें मनुस्मृतिके ५३ श्लोकके समान है ।

❀ बृहद्विष्णुस्मृति-५१ अध्यायके ७४ श्लोकमें ऐसा ही है ।

❀ बृहद्विष्णुस्मृति-५१ अध्यायके ७५ श्लोकमें ऐसा ही है ।

❀ बृहद्विष्णुस्मृति-५१ अध्यायके ७८ श्लोकमें ऐसा ही है

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय।

अनर्चितं वृथा मांसं केशकीटसमन्वितम। शुक्तं पर्युषितोच्छिष्टं श्वस्पृष्टं पतितेक्षितम्॥ १६७॥
उदक्यारपृष्टसंघुष्टं पर्यायान्नं च वर्जयेत्। गोघ्रातं शकुनोच्छिष्टं पदा स्पृष्टं च कामतः॥ १६८॥

अनादरसे दियाहुआ अन्न; विना यज्ञका मांस; केश और कीड़ेसे युक्त अन्न; कांजी, बासी, जूठा, कुत्तेसे छुआहुआ, पतितसे देखाहुआ, रजस्वला स्त्रीसे छुआहुआ, "कोई खानेवाला हो तो आवे" ऐसा पुकारकर दियाहुआ, दूसरेका अन्न दूसरेके नामसे दियाहुआ, गौका सूंघाहुआ, पक्षियोंका जूठा और जानकरके पांवसे छुआहुआ अन्न नहीं खाना चाहिये ❀॥ १६७–१६८॥

(१३ क) बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–६ अध्याय।

दुग्धं सलवणं सक्तून्सदुग्धान्निशि सामिषान्। दन्तच्छिन्नान्सकृद्दन्तान्पृथक् पीतजलानपि॥७४॥
योद्यादुच्छिष्टमाज्यं तु पीतशेषं जलं पिबेत्। एकैकशो विशुद्ध्यर्थं विप्रश्चान्द्रायणं चरेत्॥ ७५॥

जो ब्राह्मण नोनके साथ दूध, दूधके सहित सत्तू, रातमें मांसके साथ सत्तू या दांतसे काटकर फल आदि खाताहै तथा पीकरके दांतसे अलग कियाहुआ जल, जूठा घी अथवा एक बार पीकर छोडदियाहुआ जल पीताहै वह चान्द्रायण व्रत करे॥ ७४–७५॥

(१४) व्यासस्मृति–३ अध्याय।

पलाण्डुं श्वेतवृन्ताकं रक्तमूलकमेव च॥ ६०॥
गृञ्जनारुणवृक्षासृग्जन्तुगर्भफलानि च। अकालकुसुमादीनि द्विजो जग्ध्वैन्दवं चरेत्॥ ६१॥

पियाज, सपेद बैगन, शलगम, गाजर, वृक्षका लाल गोंद, गूलरका फल और विना समयका फूल आदि द्विजको नहीं खाना चाहिये; जो खाताहै वह चान्द्रायण व्रत करे ☙॥ ६०–६१॥

(२०) वसिष्ठस्मृति–१४ अध्याय।

उच्छिष्टमगुरोरभोज्यं स्वमुच्छिष्टोपहतं च॥ १७॥

गुरुसे भिन्नका जूठा, अपना जूठा और जूठेसे स्पर्श हुआ अन्न नहीं खाना चाहिये॥ १७॥

द्रव्यशुद्धि ५.

(१) मनुस्मृति–५ अध्याय।

एष शौचस्य वः प्रोक्तः शारीरस्य विनिर्णयः। नानाविधानां द्रव्याणां शुद्धेः शृणुत निर्णयम्॥११०॥
तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च। भस्मनाद्भिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः॥ १११॥

यह शरीरसम्बन्धी शौचका निर्णय मैंने कहा; अब अनेक प्रकारके द्रव्योंकी शुद्धिका विधान सुनो! ॥ ११०॥ सोना आदि धातु, सब प्रकारके मणि और पत्थरकी सम्पूर्ण वस्तु अशुद्ध होनेपर अशुद्धतानुसार कोई राख और जलसे कोई केवल जलसे और कोई मिट्टी और जलसे शुद्ध होतीहै; ऐसा बुद्धिमान् लोग कहतेहैं ◎॥ १११॥

निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुद्ध्यति। अब्जमश्ममयं चैव राजतं चानुपस्कृतम्॥ ११२॥
अपामग्नेश्च संयोगाद्धैमं रौप्यं च निर्बभौ। तस्मात्तयोः स्वयोन्यैव निर्णेको गुणवत्तरः॥ ११३॥

❀ मनुस्मृति–४ अध्यायके २०७–२१३ श्लोकमें भी ऐसा है। गौतमस्मृति–१७ अध्यायके १ अङ्कमें है कि केश या कीटसे युक्त अन्न, भ्रूणघातीका देखाहुआ, रजस्वलाका छुआ, काले पक्षीके पदसे मर्दाहुआ, गौका सूंघाहुआ और बासी अन्न अभक्ष्य है तथा भावदुष्ट और फिरसे पकायाहुआ अन्नभी अभक्ष्य है।

☙ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय–१७१ श्लोक। शिग्रु (सहजना) अभक्ष्य है।

◎ गौतमस्मृति—१ अध्याय–१५ अङ्क और वसिष्ठस्मृति—३ अध्यायके ४८–४९ अङ्क धातुके पात्र और मणि मांजनेसे शुद्ध होतेहैं। बौधायनस्मृति—१ प्रश्न–५ अध्यायका ३४ और ४६ अङ्क। धातुका जूठा पात्र गोबर, मिट्टी अथवा भस्मसे मांजने पर शुद्ध होताहै; धातुके समान मणिकी शुद्धि होतीहै। ६ अध्याय–३९–४१ अङ्क। यदि धातुके पात्रमें मूत्र, विष्ठा, रुधिर या वीर्य लगजावे तो गलाकर फिरसे बनावे वा ७ रात गोमूत्रमें अथवा बड़ी नदीमें रखकर शुद्ध करलेवे। पाराशरस्मृति—७ अध्याय–२८ श्लोक। जलसे धोनेपर मणि शुद्ध होताहै। शंखस्मृति—१६ अध्याय–४ श्लोक। मुक्ता, मणि और मूंगा जलसे धोनेपर शुद्ध होजाताहै।

जूठा नहीं लगाहुआ सोनेका पात्र; सींप आदि जलसे उत्पन्न वस्तु; पत्थरकी वस्तु और रेखासे रहित चान्दीका पात्र ये सब जलसे धोनेपर शुद्ध होजातेहैं ❀ ॥ ११२ ॥ जल और अग्निके संयोगसे सोना और रूपा उत्पन्न हुआहै, इस लिये निज उत्पत्ति स्थान जल और अग्निसे ये दोनों शुद्ध होतेहैं ॥ ११३ ॥

ताम्रायःकांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च । शौचं यथार्हं कर्त्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः ॥११४॥

ताम्बे, लोहे, कांसे, पीतल रांगे और सीसेके पात्र अशुद्धतानुसार राख, खट्टे जल तथा केवल जलसे शुद्ध करे ◎ ॥ ११४ ॥

द्रवाणां चैव सर्वेषां शुद्धिराप्लवनं स्मृतम् । प्रोक्षणं संहतानां च दारवाणां च तक्षणम् ॥ ११५ ॥

घी, तेल आदि सब प्रकारके द्रव पदार्थ कुछ बहादेनेसे, कड़ा पदार्थ जल छिड़क देनेपर और काठकी चीजें छीलनेपर शुद्ध होतीहैं ❦ ॥ ११५ ॥

मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि । चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥ ११६ ॥

चरूणां स्रुक्स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा । स्फ्यसूर्पशकटानां च मुसलोलूखलस्य च ॥ ११७॥

यज्ञके समय यज्ञपात्र हाथसे पोंछनेसेही शुद्ध होतेहैं; चमस और ग्रह जलसे धोनेपर शुद्ध होजातेहैं और चिकनाईसे युक्त यज्ञकी चरुस्थाली, स्रुक, स्रुवा, स्फ्य, सूप, शकट, मूसल और ऊखली गर्म जलसे धोनेपर शुद्ध होतीहै ✿ ॥ ११६—११७ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्यायके १८२–१८३ श्लोकमें भी ऐसा है। शंखस्मृति–१६ अध्यायके २–५ श्लोकमें है कि सोने तथा रूपेके पात्रमें यदि मदिरा, मूत्र आदि लगजावे तो फिरसे बनवावे और अन्य प्रकारसे अशुद्ध होवे तो जलसे धोकर शुद्ध करलेवे; जलसे उत्पन्न वस्तु और पत्थरके भाण्ड जलसे धोकर शुद्ध करे। अङ्गिरास्मृति—४४ श्लोक और आपस्तम्बस्मृति—८ अध्याय–३ श्लोक। पवन और चन्द्रमा तथा सूर्यके किरणसे सोने और रूपेके पात्र शुद्ध होतेहैं। पाराशरस्मृति—७ अध्यायके २७–२८ श्लोक। रूपे और सोनेके भाजन जलसे धोनेपर और पत्थरके वर्तन फिरसे घिसनेपर शुद्ध होजातेहैं। गौतमस्मृति–१ अध्याय–१६ अङ्क। पत्थरके पात्र (बहुत अशुद्ध होनेपर) भस्मसे मांजनेसे शुद्ध होतेहैं। वसिष्ठस्मृति—३ अध्याय–४९ और ५७ श्लोक। भस्मसे मांजनेपर पत्थर और जलसे धोनेपर सोने तथा रूपेके पात्र शुद्ध होतेहैं। बौधायनस्मृति—१ प्रश्न–५ अध्याय–३५ और ४६ अङ्क। खटाईसे रूपे और सोनेके पात्र और गोबर, मिट्टी या भस्मसे पत्थरके पात्र शुद्ध होजातेहैं।

◎ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय–१९० श्लोक। रांगे, सीसे और ताम्बेके पात्र अशुद्धताके अनुसार भस्म, खट्टा जल अथवा केवल जलसे और कांसे तथा लोहेके पात्र भस्म और जलसे शुद्ध होतेहैं। शंखस्मृति—१६ अध्याय–२–४ श्लोक। यदि ताम्बेके पात्रमें सुरा, मूत्र आदि लगजावे तो वह फिरसे बनानेपर और अन्य प्रकारसे अशुद्ध होवे तो केवल जलसे धोनेपर शुद्ध होताहै; ताम्बे, सीसे और रांगेके पात्र खटाईसे और कांसे तथा लोहेके पात्र भस्मसे शुद्ध होतेहैं। अङ्गिरास्मृति—४१ श्लोक और वसिष्ठस्मृति ३ अध्याय–५४ श्लोक। कांसेके पात्र भस्मसे और ताम्बेके पात्र खटाईसे शुद्ध होतेहैं। आपस्तम्बस्मृति—८ अध्यायके १–२ श्लोक और पाराशरस्मृति—७ अध्यायके २४–२५श्लोक। यदि कांसेके पात्रमें सुरा आदि अपवित्र वस्तु नहीं लगीहो तो वह भस्मसे मांजनेपर शुद्ध होताहै; किन्तु यदि उसमें सुरा, विष्ठा अथवा मूत्र लगाहो तो आगमें तपाने अथवा रेतवानेसे वह पवित्र होताहै। गौके सूंघे हुए, शूद्रके जूठे या कुत्ते अथवा काकके स्पर्श कियेहुए कांसेके पात्र १० बार भस्मसे मांजनेपर शुद्ध होतेहैं। २६ श्लोक। कांसेके पात्रमें कुल्ला करनेसे अथवा पांव धोनेसे ६ मास भूमिमें गाडनेपर वह शुद्ध होताहै। २७ श्लोक। लोहे और सीसेके पात्र आगमें तपानेसे शुद्ध होतेहैं। ३ श्लोक। कांसेका पात्र भस्मसे और ताम्बेका पात्र खटाईसे पवित्र होताहै।

❦ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्यायके १८४–१८५ और १९० श्लोकमेंभी ऐसा है। पाराशरस्मृति–६ अध्यायके ७४–७५ श्लोक। घी, तेल आदि चिकना पदार्थ और दूध आदि गोरसकी शुद्धि कैसी होगी? उनमेंसे थोड़ासा गिरादेवे; चिकने पदार्थकी शुद्धि छाननेसे और गोरसकी शुद्धि अग्निकी ज्वालामें तपानेसे कहीगईहै। वसिष्ठस्मृति—१४ अध्याय -२३ श्लोक। द्रव पदार्थमें (तेल, कढ़ी आदि) कुछ बहा देनेसे और कड़ा पदार्थ (रोटी आदि) जल छिडकदेनेसे शुद्ध होतेहैं। शंखस्मृति—१६ अध्याय–९ श्लोक, गौतमस्मृति—१ अध्याय–१५ अङ्क, पाराशरस्मृति—७ अध्याय–१ श्लोक, वसिष्ठस्मृति—३ अध्याय–४८ अंक और बौधायनस्मृति—१ प्रश्न–५ अध्याय,–३७ अंक। काठकी वस्तु छीलनेसे शुद्ध होतीहै।

✿ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्यायके १८२–१८५ श्लोकमें भी ऐसा है। पाराशरस्मृति—७ अध्यायके २–३ श्लोक। यज्ञके समय यज्ञके पात्र हाथसे मलनेसे शुद्ध होजातेहैं; यज्ञका चमस और ग्रह जलसे धोनेपर और चरुस्थाली, स्रुक और स्रुवा गरम जलसे धोनेपर शुद्ध होतेहैं। शंखस्मृति—१६ अध्याय–६ श्लोक। यज्ञके समय यज्ञके पात्र हाथसे मांजनेपर शुद्ध होजातेहैं; किन्तु घी आदि चिकनी वस्तु लगेहुए पात्र गरम जलसे शुद्ध होतेहैं।

अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम्। प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ॥ ११८॥

बहुत धान्य और बहुत वस्त्रोंकी शुद्धि उनपर जल छिड़कदेनेसे और थोड़े धान्य तथा थोड़े वस्त्रकी तो शुद्धि जलसे धोनेपर होतीहै * ॥ ११८ ॥

चैलवच्चर्मणां शुद्धिर्वैदलानां तथैव च। शाकमूलफलानां च धान्यवच्छुद्धिरिष्यते ॥ ११९ ॥

चर्म और बेंत या बांससे बनीहुई वस्तुकी शुद्धि वस्त्रके समान और शाक, मूल (अदरक आदि) तथा फलकी शुद्धि धान्यके समान होतीहै ‡ ॥ ११९ ॥

कौशेयाविकयोरूषैः कुतपानामरिष्टकैः। श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः ॥ १२० ॥

रेशमी वस्त्र और भेड़के रोमका वस्त्र खारी मिट्टीसे, शाल आदि ऊनी वस्त्र रीठीसे, वृक्षके छालका वस्त्र बेलके फलसे और तीसीके सूतका वस्त्र सफेद सरसोंसे शुद्ध होतेहैं § ॥ १२० ॥

क्षौमवच्छंखशृङ्गाणामस्थिदन्तमयस्य च। शुद्धिर्विजानता कार्या गोमूत्रेणोदकेन वा ॥ १२१ ॥

शंख, सींग, हड्डी और दांतकी चीजें सफेद सरसों अथवा गोमूत्र और जलसे शुद्ध होजातीहैं ॥ १२१॥

---

* याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय–१८२ और १८४ श्लोक। वस्त्र जलसे धोनेपर शुद्ध होताहै; बहुतसे धान्य तथा बहुतसे वस्त्रोंकी शुद्धि जल छिड़क देनेसे होजातीहै । पाराशरस्मृति–६ अध्यायके ७०–७१ श्लोक। बत्तीस प्रस्थ (सेर) का द्रोण और २ प्रस्थका आढ़क कहागयाहै; इस द्रोण और आढ़कके अन्नको श्रुति और स्मृतिके ज्ञाता पण्डित जानतेहैं। ७१–७३–श्लोक। यदि थोड़े अन्नको काक अथवा कुत्ते चाटदेवें या गौ अथवा गदहे सूंघदेवें तो उसको त्यागदेवे; किन्तु यदि वह अन्न १ द्रोण अथवा १ आढक होवे तो उसके चाटने या सूंघनेके स्थानका थोड़ा अन्न निकालकर फेंकदेवे और बाकीको सोना धोआहुआ जल छिड़ककर आगसे सेंके तब उसकी शुद्धि होतीहै। ७ अध्याय २९ श्लोक। धान्य झाड़देनेसे और वस्त्र जल छिड़क देनेसे शुद्ध होताहै। शङ्खस्मृति–१६ अध्यायके ८–९ श्लोक। वस्त्र जलसे धोनेपर और अन्नादिकी ढेर जल छिड़कदेनेपर शुद्ध होतीहै । वशिष्ठस्मृति–१४ अध्यायके २२—२३–श्लोक। देवद्रोणी, विवाह अथवा यज्ञके समय यदि अन्नको काक या कुत्ता चाटदेवे तो उसमेंसे उस अन्नको निकालकर बाकीका संस्कार करलेवे। गौतमस्मृति—१ अध्याय–१५ अङ्क। सूतका वस्त्र धोनेसे शुद्ध होताहै। बौधायनस्मृति १ प्रश्न–६ अध्यायके ११—१२ अङ्क। यदि वस्त्रमें मूत्र, विष्ठा, रुधिर या वीर्य लगजावे तो मिट्टी और जलसे शुद्ध करे।

‡ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय–१८२ श्लोक। शाक, मूल, फल, बेंत आदि और चर्म जलसे धोनेपर शुद्ध होतेहैं। शंखस्मृति—१६ अध्यायके ५ श्लोकमें भी ऐसा है। पाराशरस्मृति–७ अध्याय–३० श्लोक। फल और चर्म जल छिड़कदेनेसे शुद्ध होजातेहैं। गौतमस्मृति–१ अध्यायके १५–१६ अङ्क। बेंत आद और चर्म जलसे धोनेपर शुद्ध होतेहैं; किन्तु अत्यन्त अशुद्ध होनेपर त्यागदेना चाहिये। वसिष्ठस्मृति ३ अध्यायके ४८–४९ अङ्क। बेंत आदि और चर्म जलसे धोनेपर शुद्ध होजातेहैं।

§ याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्यायके १८६–१८७ श्लोक। रेशमी और भेड़के रोमका वस्त्र खारी मिट्टी, जल और गोमूत्रसे; वृक्षके छालका वस्त्र बेलके फलसे, शाल आदि ऊनी वस्त्र रीठीसे और तीसीके सूतका वस्त्र सफेद सरसोंके चूर्णसे शुद्ध होताहै। अङ्गिरास्मृति–४४–४५ श्लोक और आपस्तम्बस्मृति–८ अध्यायके ३—४ श्लोक। रज, वीर्य अथवा मुर्देके स्पर्शसे भेड़के रोमका कम्बल अशुद्ध होताहै; किन्तु उसका जितना अंश दूषित होवे उतना जल और मिट्टीसे धोदेनेसे शुद्ध होजाताहै। पाराशरस्मृति—७ अध्यायके २९—३० श्लोक। तीसीके सूतका वस्त्र और शाल आदि ऊनी वस्त्र (थोड़ा अशुद्ध होनेपर) जल छिड़कदेनेसे पवित्र होजाताहै। वसिष्ठस्मृति—३ अध्याय—५० अङ्क। तीसीके सूतका वस्त्र (बहुत अशुद्ध होनेपर) सफेद सरसोंकी कांजीसे शुद्ध होताहै। बौधायनस्मृति—१ प्रश्न–५ अध्यायके ४१—४३ अङ्क। शाल आदि रीठीसे, कम्बल (थोड़ा अशुद्ध होनेपर) सूर्यके किरणोंके लगनेसे और तीसीके सूतका वस्त्र सफेद सरसोंकी कांजीसे शुद्ध होजाताहै। देवलस्मृति ऊन, रेशम, बकरीके रोएं, पट्टतीसीके छाल और दुकूलके वस्त्र अल्पशुद्धिवाले होतेहैं इसलिये सुखाने और जल छिड़कदेनेसे शुद्ध होजातेहैं (१)। यदि वेही वस्त्र अपवित्र हों तो अन्नकी खली, फलके रस और खारसे धोवे (२)।

बौधायनस्मृति—१ प्रश्न–५ अध्यायके ४७–४८ अङ्क। हड्डीकी वस्तु छीलनेसे और शङ्ख, सींग, सीप और दांतकी वस्तु सफेद सरसोंकी कांजीसे शुद्ध होतीहैं । पाराशरस्मृति–७ अध्यायके २७–२८ श्लोक। दांत, हड्डी और सींगके बर्तन तथा शङ्ख (थोड़ा अशुद्ध होनेपर) जलसे धोनेपर शुद्ध होतेहैं। वसिष्ठस्मृति–३ अध्यायके ४८–४९ अङ्क और गौतमस्मृति–१ अध्याय–१६ अङ्क शंख और सींप भस्मसे मांजनेपर और हड्डीकी वस्तु छीलनेपर शुद्ध होतीहैं। याज्ञवल्क्यस्मृति– अध्याय–१८५ श्लोक। सींग और हड्डीकी वस्तु गौकी पूंछके बालोंसे झाड़नेपर शुद्ध होजातीहै। शंखस्मृति–१६ अध्याय–१० श्लोक। सींग और दांतकी वस्तु सरसोंकी कांजीसे सींगवाले पशुकी हड्डीकी वस्तु गौकी पूंछके बालोंसे झाड़नेपर शुद्ध होतीहै।

प्रोक्षणात्तृणकाष्ठं च पलालं चैव शुद्धयति । मार्जनोपाञ्जनैर्वेश्म पुनःपाकेन मृन्मयम् ॥ १२२ ॥
मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा ष्ठीवनैः पूयशोणितैः । संस्पृष्टं नैव शुद्धयेत पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ १२३ ॥

तृण, काठ और पुआर जल छिड़कदेनेसे; घर झाड़ने और लीपनेसे और मिट्टीके बर्त्तन फिरसे पकानेसे शुद्ध होतेहैं; किन्तु मदिरा, मूत्र, विष्ठा, थूक, पीब अथवा रुधिरसे अपवित्रहुए मिट्टीके बर्तन फिरसे पकानेपर भी शुद्ध नहीं होतेहैं ❀ ॥ १२२-१२३ ॥

संमार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च । गवां च परिवासेन भूमिः शुध्यति पञ्चभिः ॥ १२४ ॥

झाड़ूसे बुहारने,जल आदि लीपने, छिड़कने, छीलने और गौके बसाने इन ५ प्रकारोंसे भूमि शुद्ध होतीहै ◎ ॥१२४ ॥

पक्षिजग्धं गवाघ्रातमवधूतमवक्षुतम् । दूषितं केशकीटैश्च मृत्प्रक्षेपेण शुद्धयति ॥ १२५ ॥

पक्षियोंसे जूठीहोनेपर, गौके सूंघनेपर, पैरसे छुईजानेपर, छींककी बूंदें पड़नेपर अथवा केश वा कीड़ेसे दूषित होनेपर मिट्टी डालदेनेसे अन्न शुद्ध होजाताहै ▦ ॥ १२५ ॥

यावन्नापैत्यमेध्याक्ताद्गन्धो लेपश्च तत्कृतः । तावन्मृद्वारि चादेयं सर्वासु द्रव्यशुद्धिषु ॥ १२६ ॥

जिस वस्तुमें विष्ठा मूत्रादि अपवित्र वस्तु लगी होवें उसका लेप तथा दुर्गन्ध जबतक नहीं दूर होवे तबतक मिट्टी और जलसे उसको मांजना चाहिये ✿ ॥ १२६ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-१अध्याय ।

रथ्याकर्दमतोयानि स्पृष्टान्यन्त्यश्ववायसैः । मारुतेनैव शुध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च ॥ १९७ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—१अध्याय–१८८श्लोक । गृह अशुद्धताके अनुसार बुहारने तथा लीपनेसे शुद्ध होताहै। शंखस्मृति—१६ अध्याय–८श्लोक । गृह बुहारनेसे शुद्ध होताहै । पाराशरस्मृति–७अध्याय–३१ श्लोक । तृण और काठ जल छिड़कदेनेसे शुद्ध होजाताहै बौधायनस्मृति–१प्रश्न–६अध्यायके२२–२६ अंक । अपवित्र भूमिपर रक्खेहुए तृण धोनेसे और अज्ञात अपवित्र तृण जल छिड़कदेनेसे शुद्ध होताहै, इसी प्रकारसे छोटी लकड़ियां शुद्ध होतीहैं; बड़ा काठ धोकर सुखानेसे और काठोंकी ढेर जल छिड़कदेनेसे शुद्ध होतीहै । याज्ञवल्क्य-स्मृति–१ अध्याय–१८७ श्लोक, पाराशरस्मृति–७अध्याय–२९ श्लोक और गौतम–१ अध्याय–१५ अङ्क । मिट्टीका बर्त्तन फिरसे पकानेपर शुद्ध होताहै । शंखस्मृति—१६ अध्यायके १–२ श्लोक और वसिष्ठस्मृति-३ अध्याय—४८ और ५५ अङ्क । मिट्टीका बर्त्तन दुबारा पकानेसे शुद्ध होताहै; परन्तु मदिरा, मूत्र, विष्ठा, थूक, पीब या रुधिर लगाहुआ मिट्टीका बर्त्तन दुबारा पकानेसे शुद्ध नहीं होता । बौधायनस्मृति—१ प्रश्न-५ अध्यायके ४९–५० अङ्क । मिट्टीके बर्त्तनमें आंखका मल, नाकका मल, मूत्र, विष्ठा अथवा रुधिर लगजावे या मुर्देसे स्पर्श होजाय तो उसको त्यागदेना चाहिये । ६ अध्याय–३४–३६ अङ्क । यदि मिट्टीके बर्त्तनमें विशेषरूपसे जूठा लगगया हो तो उसको तोड़देवे; सामान्यरूपसे जूठा लगाहो तो आगमें पकाकर शुद्ध करलेवे और मूत्र, विष्ठा, रुधिर, वीर्य आदि लगगया हो तो त्यागदेवे ।

◎ याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय–१८८ श्लोक । भूमि अशुद्धताके अनुसार बुहारने, आगसे तपाने, समय बीतने, गौके बैठने, जल छिड़कदेने, छीलने अथवा लीपनेसे शुद्ध होतीहै। पाराशरस्मृति—६ अध्याय–४२ श्लोक । दुबारा लीपने, छीलने, होम जप करने तथा ब्राह्मणोंके बैठनेसे भूमिकी अशुद्धता दूर होतीहै। वसिष्ठस्मृति—३ अध्यायके ५१–५२ अङ्क और ५३ श्लोक । बुहारने, जल छिड़कने, लीपदेने अथवा छीलकर अशुद्ध अंशको निकालदेनेसे भूमि शुद्ध होजातीहै; इसपर श्लोक कहतेहैं; छीलने, आगसे तपाने, वर्षा बरसने, गौओंके बैठने और लीपने; इन ५ प्रकारसे भूमि शुद्ध होतीहै । शंखस्मृति—१६ अध्याय–८ श्लोक और गौतमस्मृति—१ अध्याय–१६ अङ्क । भूमि छीलनेसे शुद्ध होतीहै ॥

▦ याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय–१८९ श्लोक । गौके सूंघेहुए और केश, मक्खी तथा कीटसे दूषित अन्नमें (अशुद्धताके अनुसार) जल, भस्म अथवा मिट्टी डालकर शुद्ध करलेना चाहिये । पाराशरस्मृति—६ अध्यायके ६४–६५ श्लोक । यदि अन्नमें कीड़े मिलगयेहों अथवा मक्खी या केश पड़गयेहों तो उस अन्नको जलसे स्पर्श करके उसमें भस्म डालदेवे । ११ अध्याय ६ श्लोक । यदि अन्नको सर्प, नेवला या बिलार जूठा करदेवे तो तिलमिश्रित कुशाका जल छिड़कदेनेसे वह निःसन्देह शुद्ध होजाताहै । वसिष्ठस्मृति—१४ अध्यायके १८–१९ अङ्क । जिस भोजनमें केश या कीड़े पड़गयेहों तो उसमेंसे केशों और कीड़ोंको निकालकर उसमें जल और भस्म डालके मन्त्रोंसे पवित्र करके भोजन करे । लघुहारीतस्मृति—३७ श्लोक । यदि भोजनके अन्नमें मक्खी अथवा केश पड़गयेहों तो अन्नमेंसे उसको निकालकर अन्नको जलसे स्पर्श करके उसमें कुछ भस्म डालकर भोजन करे ।

✿ याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्यायके १९१ श्लोकमें भी ऐसा है ।

गलीका कीचड़ और जल तथा पक्के ईंटोंसे बनाहुआ घर यदि अन्त्यज जाति, कुत्ते अथवा काकसे छुएजातेहैं तो वे पवनसेही शुद्ध होतेहैं ॥ १९७ ॥

(३) अत्रिस्मृति।

वापीकूपतडागानां दूषितानां च शोधनम् ॥ २२६ ॥
उद्धरेद्घटशतं पूर्ण पञ्चगव्येन शुध्यति। अस्थिचर्मावसिक्तेषु खरश्वानादिदूषिते ॥ २२७ ॥
उद्धरेदुदकं सर्वं शोधनं परिमार्जनम् ॥ २२८ ॥

यदि बावली, कूआ अथवा तड़ाग किसी अशुद्ध वस्तुसे अपवित्र होजावे तो उसमेंसे एकसौ पूर्ण घड़ा जल निकालकर उसमें पञ्चगव्य डालके उसको शुद्ध करलेवे; किन्तु यदि उसमें हड्डी अथवा चाम पड़गया होवे या गदहे अथवा कुत्ते आदिसे वह दूषित हुआ हो तो उसका सब जल निकालकर उसको शुद्ध करे ॥ २२६-२२८ ॥

(७) अङ्गिरास्मृति।

भूमौ निःक्षिप्य षण्मासमत्यन्तोपहतं शुचि ॥ ४२ ॥

अत्यन्त अशुद्ध हुई वस्तु (पात्रआदि) ६ मासतक भूमिमें गाड़नेसे शुद्ध होजातीहै ॥ ४२ ॥

(१३) पाराशरस्मृति-७ अध्याय।

मुञ्जोपस्करशूर्पाणां शाणस्य फलचर्मणाम् ॥ ३० ॥
तृणकाष्ठस्य रज्जूनामुदकाभ्युक्षणं मतम्। तूलिकाद्युपधानानि रक्तवस्त्रादिकानि च ॥ ३१ ॥
शोषयित्वार्कतापेन प्रोक्षणाच्छुद्धतामियुः ॥ ३२ ॥

मूंजकी वस्तु, सूप, शणकी वस्तु, (फल, चर्म, तृण, काठ) और रस्सीकी शुद्धि जलसे होतीहै ॥ ३०—३१ ॥ रूई आदिके तकिये तथा लाल वस्त्रादि सूर्यके घाममें सुखाकर जल छिड़कदेनेसे शुद्ध होजातेहैं ॥ ३१-३२ ॥

(१९) शङ्खस्मृति-१६ अध्याय।

निर्यासानां गुडानां च लवणाना तथैव च। कुसुम्भकुंकुमानां च ऊर्णाकार्पासयोस्तथा ॥ ११ ॥
प्रोक्षणात्कथिता शुद्धिरित्याह भगवान्यमः ॥ १२ ॥

गोंद, गुड़, नोन, कुसुम्भ, कुंकुम, ऊन और कपास; ये सब जल छिड़कदेनेसे शुद्ध होजातेहैं; ऐसा भगवान् यमने कहाहै ॥ ११-१२ ॥

(२९) बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-५ अध्याय।

वैणवानां गोमयेन ॥३८॥ फलमयानां गोवालरज्ज्वा ॥३९॥ कृष्णाजिनानां बिल्वतण्डुलैः ॥४०॥

बांसके पात्र गोबरसे, फलके पात्र (तुम्बा, नारियल आदि) गोवालकी रस्सीसे और काली मृगछाला बेल और चावलसे शुद्ध होतीहैं ॥ ३८-४० ॥

आसनं शयनं यानं नावः पथि तृणानि च। श्वचाण्डालपतितस्पृष्टं मारुतेनैव शुध्यति ॥ ६२ ॥

आसन, शय्या, सवारी, नाव अथवा मार्गका तृण ये सब यदि कुत्ते, चाण्डाल या पतितसे छुएजातेहैं तो वायुके लगनेसेही शुद्ध होजातेहैं ॥ ६२ ॥

६ अध्याय।

मधूदके पयोविकारे पात्रात्पात्रान्तरानयने शौचम् ॥ ४९ ॥ एवं तैलसर्पिषी उच्छिष्टं समन्वारब्धे उदकेऽवधायोपयोजयेत् ॥ ५० ॥

पाराशरस्मृति—७ अध्यायके ३५—३६ श्लोकमें है कि ये सब पवन और सूर्यके किरणोंसे शुद्ध होजातेहैं।

संवर्तस्मृति-१९२ श्लोक और पाराशरस्मृति-७ अध्याय-५ श्लोकमें ऐसाही है।

आपस्तम्बस्मृति-२ अध्यायके ८ और ११ श्लोकमें अत्रिस्मृतिके समान है।

याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्यायके १८२-१८३ श्लोक, गौतमस्मृति—१ अध्याय-१६ अङ्क और वसिष्टस्मृति-३ अध्याय-४९ अङ्क। जलसे धोनेपर रस्सी शुद्ध होतीहै।

याज्ञवल्क्यस्मृति—१ अध्याय-१८५ श्लोक, शङ्खस्मृति-१६ अध्याय-१० श्लोक। और वसिष्ठस्मृति—३ अध्याय-५० अङ्क। फलके पात्र गौके पूंछके बालोंसे मलनेपर शुद्ध होतेहैं। पाराशरस्मृति-७ अध्यायके २९-३० श्लोक। बांस जल छिड़क देनेसे शुद्ध होताहै।

मधु, जल, दूध और उसका विकार दही, घी आदि एक पात्रसे दूसरे पात्रमें करदेनेसे शुद्ध होजातेहैं ॥ ४९ ॥ इसी प्रकारसे तेल और घीके बर्तन जूठेसे स्पर्श होनेपर जलमें रखनेसे शुद्ध होतेहैं ॥ ५० ॥

प्रायश्चित्तप्रकरण २१.

प्रायश्चित्तके विषयकी अनेक बातें १.

(१) मनुस्मृति-११ अध्याय।

अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितञ्च समाचरन्। प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥४४ ॥
अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः। कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात् ॥ ४५ ॥
अकामतः कृतम्पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति। कामतस्तु कृतम्मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः ॥ ४६ ॥
प्रायश्चित्तीयताम्प्राप्य दैवात्पूर्वकृतेन वा। न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रायश्चित्तेऽकृते द्विजः ॥ ४७ ॥

शास्त्रोक्त कर्म नहीं करनेसे, निन्दित कार्यमें प्रवृत्त होनेसे और इन्द्रियोंके विषयमें बहुत आसक्त होनेसे मनुष्य प्रायश्चित्त करनेयोग्य होताहै ॥ ४४ ॥ पण्डित लोग कहतेहैं कि अनिच्छासे कियेहुए पापकाही प्रायश्चित्त होताहै और कोई कोई वेदका प्रमाण देकर कहतेहैं कि जानकरके कियाहुआ पापभी प्रायश्चित्त करनेसे छूट जाताहै ॥ ४५ ॥ अनिछासे कियेहुए पाप वेदके अभ्याससे छूटजातेहैं, किन्तु मोहवश होकर जानकरके कियेहुए पापोंके छुड़ानेके लिये अनेक प्रकारके प्रायश्चित्त हैं ॥४६ ॥ जो द्विज इस जन्ममें प्रमादसे कियेहुए पापका अथवा पूर्वजन्मके पापका (क्षयी रोग आदिके सूचित होनेपर) प्रायश्चित्त नहीं करताहै वह श्रेष्ठ लोगोंके साथ संसर्ग करनेयोग्य नहीं होताहै ॥ ४७ ॥

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥ ५५ ॥

ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नी गमन और इन पापियोंके साथ संसर्ग; यही ५ महापातक कहे-जातेहैं ॥ ५५ ॥

गोवधोऽयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः। गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च ॥६०॥
परिवित्तितानुजेऽनूढे परिवेदनमेव च। तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ॥ ६१ ॥
कन्याया दूषणं चैव वार्धुष्यं व्रतलोपनम्। तडागारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः ॥ ६२ ॥
व्रात्यता बान्धवत्यागो भृत्याध्यापनमेव च। भृत्या चाध्ययनादानमपण्यानां च विक्रयः ॥ ६३ ॥
सर्वाकरेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्त्तनम्। हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारो मूलकर्म च ॥ ६४ ॥
इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम्। आत्मार्थं च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा ॥ ६५ ॥
अनाहिताग्नितास्तेयमृणानामनपक्रिया। असच्छास्त्राधिगमनं कौशीलव्यस्य च क्रिया ॥ ६६ ॥
धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम्। स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम् ॥ ६७ ॥

गोहत्या करना, अयोग्य मनुष्यको यज्ञ कराना, परकी स्त्रीसे गमन करना, अपनको बेंचना, गुरु, माता, पिता, ब्रह्मयज्ञ, अग्नि और पुत्रका त्याग करना ॥ ६० ॥ परिवित्ति और परिवेत्ता होना, इन दोनोंमेंसे किसीको कन्या देना, इनमेंसे किसीको यज्ञ कराना ॥ ६१ ॥ कन्याको दूषित करना, व्याजसे जीविका करना व्रतभङ्ग करना, तड़ाग, बाग, अपनी स्त्री अथवा सन्तानको बेंचना ॥ ६२ ॥ समयके भीतर जनेऊ नहीं लेना, बान्धवोंका त्याग करना, वेतन लेकर विद्या पढ़ाना, वेतन देकर विद्या पढ़ना, नहीं बेंचनेयोग्य वस्तुको बेंचना ॥ ६३ ॥ सुवर्ण आदिकी खानिका काम करना, बड़े यन्त्रमें काम करना, औषधीका नाश

याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्यायके २१९ श्लोकमें ऐसाही है।

वसिष्ठस्मृति—२० अध्यायके १-२ अंक। अनिच्छासे कियेहुए अपराधका प्रायश्चित्त होताहै किन्तु कोई आचार्य कहतेहैं कि इच्छापूर्वक कियेहुए पापकाभी प्रायश्चित्त है। याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय-२२६ श्लोक। अज्ञानसे पाप करनेवाला मनुष्य प्रायश्चित्त करनेपर शुद्ध होताहै और जानकर पाप करनेवाला प्रायश्चित्त करनेसे धर्मशास्त्रके वचनोंसे इस लोकमें व्यवहार करनेयोग्य होजाताहै।

याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय-२२१ श्लोक। जो मनुष्य सदा पापमें रतः रहताहै और प्रायश्चित्त तथा पश्चात्ताप नहीं करताहै वह दारुण कष्ट देनेवाले नरकोंमें पडताहै।

याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय-२३७ श्लोक, संवर्तस्मृति—११२-११३ श्लोक और उशनस्मृति—८ अध्याय-१ श्लोकमें ऐसाही है; । बृहद्विष्णुस्मृति—३५ अध्यायके १-२ अंकमेंभी ऐसा है;- किन्तु उसमें चोरीके स्थानमें ब्राह्मणका सुवर्ण चोरी करना लिखाहै।

व्याजसे जीविका करना ब्राह्मण और क्षत्रियके लिये निषेध है; वैश्यके लिये नहीं; वैश्यप्रकरणमें देखिये।

करना अथवा स्त्रीको वेश्या बनाकर जीविका करना, मारण, वशीकरण आदि अभिचारकर्म करना ॥ ६४ ॥ जलानेके लिये हरित वृक्षोंको काटना, अपने लिये (विना देव पितरके उद्देशसे) पाक करना, निन्दित अन्न खाना ॥ ६५ ॥ अग्निहोत्र नहीं करना, चोरी करना, ऋणोंको नहीं चुकाना, असत् शास्त्रको पढ़ना, नाचना, गाना और बजाना ॥ ६६ ॥ अन्नकी; ताम्बा, लोहा आदि धातुकी; अथवा पशुकी चोरी करना; मद्य पीनेवाली स्त्रीसे गमन करना; स्त्री, शूद्र, वैश्य या क्षत्रियका वध करना और नास्तिक होना; ये सब उपपातक हैं ※ ॥ ६७ ॥

ब्राह्मणस्य रुजःकृत्या घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः । जैह्म्यं च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम् ॥ ६८ ॥
खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा । संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च ॥ ६९ ॥
निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम् । अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम् ॥ ७० ॥
कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम् । फलैधःकुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम् ॥ ७१ ॥

ब्राह्मणको दण्ड आदिसे मारकरके रोगी बनाना, मदिरा, लहसुन आदि दुर्गन्ध वस्तुओंका सूंघना, कुटिलता और पुरुषमैथुन करना जातिभ्रंशकर पाप हैं अर्थात् इनसे जाति भ्रष्ट होजातीहै ※ ॥ ६८ ॥ गदहा, घोड़ा, ऊंट, मृग, हाथी, बकरा, भेड़ा, मछली, सर्प और भैंसा; इनमेंसे किसीका वध करना संकरीकरण पाप कहाताहै ॥ ६९ ॥ निन्दित मनुष्योंसे दान लेना, वाणिज्य करना, शूद्रकी सेवा करना अथवा झूठ बोलना अपात्रीकरण पाप है अर्थात् इनसे (ब्राह्मणका) पात्रत्व नष्ट होजाताहै ※ ॥ ७० ॥ कृमि, कीट और पक्षीका वध करना, मद्यके पात्रमें लाईहुई वस्तु खाना, फल, काठ तथा फूलकी चोरी करना और थोड़ीसी हानि होनेपर अधीर होजाना मलावह पाप हैं अर्थात् ये मलीन करदेतेहैं ॥ ७१ ॥

एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः । अवकीर्णिवर्ज्यं शुद्ध्यर्थं चान्द्रायणमथापि वा ॥ ११८ ॥
कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजन्मनः । अतिक्रमं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः ॥ १२१ ॥

अवकीर्णीके अतिरिक्त अन्य उपपातकी द्विज ऐसाही अर्थात् ऊपर लिखेहुए गोहत्याका प्रायश्चित्त अथवा चान्द्रायण व्रत करें ॥ ११८ ॥ इच्छापूर्वक किसी स्त्रीमें वीर्यपात करनेवाले ब्रह्मचारीको धर्म जाननेवाले ब्रह्मवादी लोग अवकीर्णी कहतेहैं ※ ॥ १२१ ॥

जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया । चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया ॥ १२५ ॥

जानकरके जातिभ्रंशकर पाप करनेवाले सान्तपन व्रत और अज्ञानसे करनेवाले प्राजापत्य व्रत करें ※ ॥ १२५ ॥

पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैर्बहिः । निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ ॥ १८३ ॥
दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्पदा । अहोरात्रमुपासीरन्नशौचं बान्धवैः सह ॥ १८४ ॥
निवर्तेरंश्च तस्मात्तु सम्भाषणसहासने । दायाद्यस्य प्रदानं च यात्रा चैव हि लौकिकी ॥ १८५ ॥
प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम् । तेनैव सार्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥ १८७ ॥
सत्वप्सु तं घटं प्रास्य प्रविश्य भवनं स्वकम् । सर्वाणि ज्ञातिकार्याणि यथापूर्वं समाचरेत् ॥ १८८ ॥

पतितके सपिण्ड और बान्धवोंको उचित है कि यदि वह प्रायश्चित्त नहीं करे तो उसकी जीवित दशामेंही निन्दित दिनमें गांवसे बाहर सन्ध्याके समय जाति, ऋत्विक् और गुरुजनोंके निकट प्रेतकर्मके समान उसकी उदकक्रिया करें ॥ १८३ ॥ जलसे भरेहुए घड़ेको दासीद्वारा लातसे फेंकवादेवें; एक दिन और एक रात अशौच मानें ॥ १८४ ॥ तबसे उस पतितके साथ बोलना, एक आसनपर बैठना, उसको भाग देना और उससे लोकव्यवहारका सम्बन्ध छोड़देवें ॥ १८५ ॥ यदि वह पतित शास्त्रोक्तविधिसे प्रायश्चित्त करे तो उसके बान्धव आदि पवित्र जलाशयमें उसके साथ स्नान करके जलसे भरेहुए नवीन घड़ेको जलमें

※ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्यायके २३४–२४२ श्लोकमें नोन बनाना, हिंसा करनेवाले यन्त्राका बनाना, हीन जातिसे मित्रता करना, नीच जातिकी स्त्रीसे मैथुन करना, चारों आश्रमोंसे बाहर रहना और परके अन्नसे पुष्ट होनाभी उपपातकमें लिखाहै (इनमेंसे बहुतसे उपपातक केवल ब्राह्मणके लिये, बहुतसे सब द्विजोंके लिये और बहुतसे उपपातक चारोवर्णोंके लिये हैं; ब्याजसे जीविका करना वैश्यके लिये पाप नहीं है।)

※ बृहद्विष्णुस्मृति—३८ अध्यायके १–६ अङ्कमें ऐसाही है।

※ बृहद्विष्णुस्मृति—४० अध्यायके १ श्लोकमें इस ७० श्लोकके समान है।

※ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय २६५ श्लोकमें है कि सब उपपातकियोंकी शुद्धि गोवधका प्रायश्चित्त या चान्द्रायण व्रत करनेसे अथवा एक मास दूध पीकर रहनेसे या पराक व्रत करनेसे होतीहै । बृहद्विष्णुस्मृति—३७ अध्यायके–३५ श्लोक । उपपातकी मनुष्य चान्द्रायण या पराक व्रत अथवा गोमेध यज्ञ करनेसे शुद्ध होतेहैं।

※ बृहद्विष्णुस्मृति–३८ अध्यायके ७ श्लोकमें ऐसाही है।

फेंके ॥ १८७ ॥ पतित मनुष्यको उचित है कि पहिले कहेहुए घड़ेको जलमें डालकर अपने घर आवे और पहिलेके समान अपने वर्णके कर्मोंको करे ॥ १८८ ॥

एतदेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि । वस्त्रान्नपानं देयन्तु वसेयुश्च गृहान्तिके ॥ १८९ ॥

पतित स्त्रीके लिये भी उसके पति आदि इसीप्रकारसे करें; किन्तु उसको त्यागनेपर उसको अन्न, वस्त्र और घरके समीप रहनेका स्थान देवें ॥ १८९ ॥

एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थं किञ्चित्सहाचरेत् । कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥ १९० ॥
बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मतः । शरणागतहन्तॄंश्च स्त्रीहन्तॄंश्च न संवसेत् ॥ १९१ ॥

प्रायश्चित्त नहीं करनेवाले पापीके साथ किसी प्रकारका संसर्ग नहीं रखना चाहिये; किन्तु उसके प्रायश्चित्त करनेपर उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिये ॥ १९० ॥ बालकका वध करनेवाला, उपकारको नहीं माननेवाला, शरणागतघाती और स्त्रीका वध करनेवाला; ये लोग यदि धर्मपूर्वक प्रायश्चित्त करके शुद्ध हों तो भी इनके साथ संसर्ग नहीं करना चाहिये ॥ १९१ ॥

एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैनसः । अनाविष्कृतपापांस्तु मन्त्रैर्होमैश्च शोधयेत् ॥ २२७ ॥
ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेन च । पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि ॥ २२८ ॥
यथायथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वानुभाषते । तथातथा त्वचेवाहिस्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ २२९ ॥
यथायथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति । तथातथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ २३० ॥
कृत्वा पापं हि सन्तप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते । नैवं कुर्यांपुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः ॥ २३१ ॥

द्विजातियोंको उचित है कि लोकसमाजमें विदित पापोंको पूर्वोक्त चान्द्रायण आदि व्रतोंसे छुड़ावे और गुप्त पापोंको मन्त्र और होमसे दूर करे ॥ २२७ ॥ लोकसमाजमें अपने पापोंको कहनेसे, पश्चात्ताप, तपस्या तथा वेदाध्ययन करनेसे और आपत्कालमें दान देनेसे पापी पापोंसे छूटजाताहै ॥ २२८ ॥ पापी मनुष्य ज्यों ज्यों अपने आपको लोगोंसे कहताहै त्यों त्यों वह पापसे छूटताहै और ज्यों ज्यों पश्चात्ताप करताहै त्यों त्यों उसका शरीर पापसे मुक्त होताहै ॥ २२९-२३० ॥ जो मनुष्य पापकरनेके बाद पश्चात्ताप करताहै और संकल्प करताहै कि मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूंगा वह उस पापसे छूटजाताहै ॥ २३१ ॥

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम् । सर्वन्तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ २३९ ॥
महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्यकारिणः । तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्बिषात्ततः ॥ २४० ॥
वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा । नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥ २४६॥

जो कुछ दुष्कर, दुस्तर, दुर्लभ तथा दुर्गम कार्य हैं वे सब तपस्यासे पूरे होतेहैं; तपस्याको कोई अतिक्रमण (उल्लङ्घन) नहीं करसकता ॥ २३९ ॥ महापातकी और अन्य अयोग्य कर्म करनेवाले मनुष्य अच्छी प्रकार तपस्या करनेसेही पापोंसे छूटजातेहैं ॥ २४० ॥ प्रतिदिन तथाशक्ति वेदपाठ और पञ्चमहायज्ञोंके करनेसे और सदा क्षमावृत्ति रखनेसे (गुप्त) महापातकभी नाश होजातेहैं ॥ २४६ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय ।

कालोऽग्निः कर्म मृद्वायुर्मनो ज्ञानन्तपो जलम् । पश्चात्तापो निराहारः सर्वेमी शुद्धिहेतवः ॥ ३१ ॥
अकार्यकारिणां दानं वेगो नद्याश्च शुद्धिकृत् । शोध्यस्य मृच्च तोयं च संन्यासो वै द्विजन्मनाम् ॥ ३२ ॥
तपो वेदविदां क्षान्तिर्विदुषां वर्ष्मणो जलम् । जपः प्रच्छन्नपापानां मनसः सत्यमुच्यते ॥ ३३ ॥
भूतात्मनस्तपोविद्ये बुद्धेर्ज्ञानं विशोधनम् । क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धिः परमा मता ॥ ३४ ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति--३ अध्यायके २९५-२९६ श्लोकमें और वसिष्ठस्मृति--१५ अध्यायके १०-१२ अंकमें प्रायः ऐसा है । गौतमस्मृति--३१ अध्यायके १ अङ्कसे ५ अंकतक भी प्रायः ऐसा है; वहां लिखाहै कि यदि पिता राजाका वध करे, शूद्रको यज्ञ करावे, वेदको डुबावे, भ्रूणहत्या करे अन्त्यावसायीके साथ वसे अथवा उसकी स्त्रीसे संभोग करे तो पुत्र उसको त्यागकर इसी प्रकारसे उसका कर्म करे ।

याज्ञवल्क्यस्मृति--३ अध्यायके २९७ श्लोकमें ऐसाही है और २९८ श्लोकमें है कि नीच जातिसे गमन करने, गर्भ गिराने और पतिका वध करनेसे स्त्रियां विशेष पतित होतीहैं ।

याज्ञवल्क्य--३ अध्यायके २९९ श्लोक और बृहद्विष्णुस्मृति--५४ अध्यायके ३२ श्लोकमें १९१ श्लोकके समान है ।

पाराशरस्मृति--८ अध्याय-६ श्लोक । पाप करके उसको छिपाना नहीं चाहिये; क्योंकि छिपायापाप बढ़ताहै, इस लिये पाप छोटा हो अथवा बड़ा होवे धर्मसभाके पण्डितोंसे कहदेवे ।

समय, अग्नि, कर्म, मिट्टी, पवन, मन, ज्ञान, तप, जल, पश्चात्ताप और उपवास; ये सब शुद्धिके हेतु हैं ॥ ३१ ॥ अयोग्य कार्य करनेवाले दानसे, नदी धारासे; अशुद्ध वस्तु मिट्टी और जलसे; द्विज संन्याससे; वेद जाननेवाले तपस्यासे; विद्वान् मनुष्य क्षमासे; शरीर जलसे; गुप्त पाप करनेवाले जपसे और मन सचाईसे शुद्ध होताहै ॥ ३२-३३ ॥ भूतात्मा तप और विद्यासे; बुद्धि ज्ञानसे और क्षेत्रज्ञ ईश्वरके ज्ञानसे पवित्र होताहै ❀ ॥ ३४ ॥

(८ क) वृहद्यमस्मृति-२ अध्याय।

प्रायश्चित्तमुपक्रम्य कर्ता यदि विपद्यते। पूतस्तदहरेवापि इह लोके परत्र च ॥ ७ ॥

जब पापी मनुष्य प्रायश्चित्त व्रत करतेहुए मरजाताहै तब वह इस लोक और परलोकमें भी शुद्ध होजाताहै ॥ ७ ॥

(९) आपस्तम्बस्मृति-३ अध्याय।

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः। प्रायश्चित्तार्द्धमर्हंति स्त्रियो व्याधित एव च ॥ ६ ॥
न्यूनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षाधिकस्य च। चरेद्गुरुः सुहृद्वापि प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ ७ ॥

अस्सी वर्षका बूढ़ा सोलह वर्षसे कम अवस्थाका बालक स्त्री और रोगी मनुष्य आधे प्रायश्चित्तके योग्य होतेहैं ✿ ॥ ६ ॥ ग्यारह वर्षसे कम और पांच वर्षसे अधिक अवस्थाके बालकके कियेहुए पापका प्रायश्चित्त उसके गुरु अथवा सुहृद् करें ❁ ॥ ७ ॥

अथैतैः क्रियमाणेषु येषामार्तिः प्रदृश्यते। शेषसम्पादनाच्छुद्धिर्विपत्तिर्न भवेद्यथा ॥ ८ ॥
क्षुधाव्याधितकायानां प्राणो येषां विपद्यते। येन रक्षन्ति वक्तारस्तेषां तत्किल्बिषं भवेत् ॥ ९ ॥
पूर्णेऽपि कालनियमे न शुद्धिर्ब्राह्मणैर्विना। अपूर्णेष्वपि कालेषु शोधयन्ति द्विजोत्तमाः ॥ १० ॥

ऐसे बालकके स्वयं प्रायश्चित्त करनेपर यदि बीचमें उसको कष्ट जानपड़े तो शेष प्रायश्चित्तको गुरु आदि करें या जिस भांति प्रायश्चित्त करनेसे उसको कष्ट नहीं होवे बाकी प्रायश्चित्त उससे वैसाही करावें ॥ ८ ॥ जब प्रायश्चित्त करनेवाला क्षुधासे पीडित होकर मरजाताहै तब उसके प्राणोंकी नहीं रक्षा करनेवाले (उसकी शक्तिके अनुसार प्रायश्चित्त नहीं बतानेवाले) उपदेशकको उसका पाप लगजाताहै ॥ ९ ॥ प्रायश्चित्तके व्रतका नियमित समय पूरा होजानेपर भी विना ब्राह्मणोंके कहे शुद्धि नहीं होतीहै और समय नहीं पूरा होनेपरभी "व्रत पूरा होगया" ऐसा ब्राह्मणके कहदेनेसे शुद्धि होजातीहै ॥ १० ॥

(१०) संवर्तस्मृति।

सप्तव्याहृतिभिः कार्यो द्विजैर्होमो जितात्मभिः। उपपातकशुद्ध्यर्थं सहस्रपरिसंख्यया ॥ २१५ ॥
महापातकसंयुक्तो लक्षहोमं सदा द्विजः। मुच्यते सर्वपापेभ्यो गायत्र्या चैव पावितः ॥ २१६ ॥

मनको जीतनेवाले द्विजको उचित है कि गोवध आदि उपपातककी शुद्धिके लिये सात व्याहृति मन्त्रसे एक हजार आहुति दे और ब्रह्मघाती आदि महापातकी गायत्रीमन्त्रसे एक लाख आहुति देवे; गायत्रीसे पवित्र कियाहुआ द्विज सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ २१५-२१६ ॥

(१३) पाराशरस्मृति-११ अध्याय।

सर्वेषामेव पापानां संकरे समुपस्थिते ॥ ९६ ॥
शतं सहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधनम्परम् ॥ ९७ ॥

❀ मनुस्मृति—५ अध्यायके १०५-१०९ श्लोकमें भी ऐसा है ॥

✿ वृहद्विष्णुस्मृति—५४ अध्याय-३३ श्लोक, लघुहारीतस्मृति—३ श्लोक, अङ्गिरास्मृति—३३ श्लोक और वृहद्यमस्मृति—३ अध्याय-३ श्लोकमें ऐसाही है।

❁ वृहद्यमस्मृति-३ अध्यायके १-२ श्लोक। ग्यारह वर्षसे कम और पांचवर्षसे अधिक अवस्थाके बालकके कियेहुए पापका प्रायश्चित्त उसका भाई या पिता अथवा अन्य बान्धव करे; इससे कम अवस्थाके बालकको पाप नहीं लगताहै इसलिये उसको न तो राजा दण्ड देताहै और न प्रायश्चित्त करना पडताहै। अङ्गिरास्मृति-३२ श्लोक। असमर्थ बालकके बदलेमें पिता अथवा गुरुके प्रायश्चित्त करनेपर वह पापोंसे शुद्ध होजाताहै। लघुहारीतस्मृति-३४-३५ श्लोक। यदि असमर्थ बालकके बदलेमें उसकी माता या उसका पिता प्रायश्चित्त करे तो वह शुद्ध होजाताहै; गर्भाधानसे ५ वर्षकी अवस्थाके बालकको इच्छाचारी कहतेहैं उसके कियेहुए पापके प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता नहीं है।

एक समयमें सब प्रकारके पापका मेल होजानेपर एक लाख गायत्रीके जपनेका अभ्यास करनेसे श्रेष्ठ शुद्धि होतीहै ॥ ५६-५७ ॥

१२ अध्याय।

चान्द्रायणं यावकश्च तुलापुरुष एव च ॥ ७८ ॥
गवाश्चैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ७९ ॥

चान्द्रायण, यावक और तुलापुरुष व्रत और गौका अनुगमन करनेसे सब पापोंका नाश होताहै ॥ ७८-७९ ॥

(१६) शङ्खस्मृति-१२ अध्याय।

शतं जप्त्वा तु सा देवी दिनपापप्रणाशिनी। सहस्रं जप्त्वा तु तथा पातकेभ्यः समुद्धरेत् ॥ २ ॥
दशसहस्रं जप्त्वा तु सर्वकल्मषनाशिनी। सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ ३ ॥

एक सौ बार गायत्री जपनेसे दिनभरका पाप नष्ट होताहै, एक हजार बार गायत्री जपनेसे पापोंसे उद्धार होताहै और दशहजार बार गायत्री जपनेसे सब पापोंका नाश होजाताहै ॥ २-३ ॥ एक लाख गायत्रीका जप करनेसे सोना चोरानेवाला, ब्रह्महत्या करनेवाला, गुरुपत्नीसे गमन करनेवाला अथवा सुरा पीनेवाला ब्राह्मण निःसन्देह शुद्ध होताहै * ॥ ३-४ ॥

सुरापश्च विशुद्ध्येत लक्षजप्यान्न संशयः। प्राणायामत्रयं कृत्वा स्नानकाले समाहितः ॥ ४ ॥
अहोरात्रकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते। सव्याहृतीकाः सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश ॥ ५ ॥
अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥ ६ ॥
गायत्र्ययुतहोमाच्च सर्वपापैः प्रमुच्यते। पापात्मा लक्षहोमेन पातकेभ्यः प्रमुच्यते ॥ १० ॥

स्नानके समय सावधानीसे ३ प्राणायाम करनेसे उसी समय दिन रातका पाप नष्ट होजाताहै ॥ ४-५ ॥ एक महीनेतक प्रतिदिन व्याहृति और ओंकारसहित १६ प्राणायाम करनेसे भ्रूणघाती भी शुद्ध होताहै ॥ ५-६ ॥ १० हजार गायत्रीका होम करनेसे सब पाप नाश होतेहैं और १ लाख गायत्रीका होम करनेसे पापात्मा अर्थात् भारी पापीभी पापोंसे छूटजाताहै ॥ १० ॥

१७ अध्याय।

नित्यं त्रिषवणस्नायी कृत्वा पर्णकुटीं वने। अधःशायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः ॥ १ ॥
ग्रामं विशेच्च भिक्षार्थं स्वकर्म परिकीर्तयन्। एककालं समश्नीयाद्वर्षे तु द्वादशे गते ॥ २ ॥
हेमस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः। व्रतेनैतेन शुद्ध्यन्ते महापातकिनस्त्विमे ॥ ३ ॥

वनमें कुटी बनाकर रहे, नित्य ३ वार स्नान करे, भूमिपर सोवे जटा धारण करे, पत्ते, मूल और फल भोजन करे, अपने पापको कहतेहुए भिक्षाके लिये गावमें जावे और नित्य एक वार भोजन करे; इस प्रकारसे १२ वर्ष व्रत करनेसे सोना चोरानेवाले, सुरा पीनेवाले, ब्रह्मघाती और गुरुकी पत्नीसे गमन करनेवाले सब महापातकी शुद्ध होजातेहैं ॥ १-३ ॥

(१८) गौतमस्मृति-१९ अध्याय।

संवत्सरः षण्मासाश्चत्वारस्त्रयो द्वावेकश्चतुर्विंशत्यहो द्वादशाहः। षडहस्त्र्यहोऽहोरात्र इति काला एतान्येवानादेशे विकल्पेन क्रियेरन् ॥ ७ ॥ एनस्सु गुरुषु गुरूणि लघुषु लघूनि कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति सर्वप्रायश्चित्तम् ॥ ८ ॥

जहां प्रायश्चित्तका कोई समय नियत नहीं किया हो वहां १ वर्ष, ६ मास, ४ मास, ३ मास, २ मास, १ मास, २४ दिन, १२ दिन, ६ दिन, ३ दिन अथवा १ दिनरात प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ७ ॥ बड़े बड़े पापोंमें अधिक दिनोंतक और छोटे छोटे पापोंमें थोड़े दिनोंतक प्रायश्चित्त करना चाहिये; कृच्छ्र अति कृच्छ्र और चान्द्रायण व्रत सब पापोंके प्रायश्चित्त हैं ॥ ८ ॥

२७ अध्याय।

प्रथमं चरित्वा शुचिः पूतः कर्मण्यो भवति द्वितीयं चरित्वा यत्किञ्चिदन्यन्महापातकेभ्यः पापं

---

* चतुर्विंशति-का मत है कि एक किरोड़ गायत्रीको जपनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्यासे, अस्सी लाख गायत्रीका जप करनेवाला सुरापानके पापसे, सत्तरलाख गायत्री जपनेवाला सुवर्णचोरीके पाससे और साठ लाख वार गायत्री जपनेवाला गुरुपत्नीगमनके पापसे छूटताहै (१-२)।

कुरुते तस्मान्मुच्यते तृतीयं चरित्वा सर्वस्मादेनसो मुच्यते । अथैतांस्त्रीन्कृच्छ्रांश्चरित्वा सर्वेषु वेदेषु स्नातो भवति सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति यश्चैवं वेद यश्चैवं वेद ॥ ६ ॥

(ऊपर लिखा हुआ) प्राजापत्य व्रत करनेवाला मनुष्य पवित्र होकर कर्म करनेयोग्य हो जाताहै; ✻ ...तिकृच्छ्र करनेवाला महापातकोंको छोड़कर अन्य पातकोंसे छूटजाताहै और कृच्छ्रातिकृच्छ्र करनेवाला मनुष्य ...ब पातकोंसे विमुक्त होताहै और इन तीनों व्रतोंका करनेवाला अतिपवित्र होकर सब वेदोंके पढ़नेका फल ...ताहै और सब देवता उसको जानतेहैं और कृपा दृष्टिसे देखतेहैं ॥ ६ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति-२० अध्याय।

गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् । इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥ ३ ॥

सीधे सच्चे लोगोंको दण्ड देनेवाले गुरु, दुष्टोंको दण्ड देनेवाले राजा और गुप्त पाप करनेवालोंको दण्ड देनेवाले वैवस्वत यमराज हैं ॥ ३ ॥

(२६) बौधायनस्मृति-३ प्रश्न-९ अध्याय।

अथातः पवित्रातिपवित्रस्याघमर्षणस्य कल्पं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

तीर्थं गत्वा स्नातः शुचिवासा उदकान्ते स्थण्डिलमुद्धृत्य सकृत्क्लिन्नेन वाससासकृत्पूर्णेन पाणिनाऽऽदित्याऽभिमुखोऽघमर्षणं स्वाध्यायमधीयीत ॥ २ ॥ प्रातः शतम्मध्याह्ने शतमपराह्णे शतमपरिमितं वा ॥ ३ ॥ उदितेषु नक्षत्रेषु प्रसृतयावकम्प्राश्नीयात् ॥ ४ ॥

अब अतिपवित्र अघमर्षणका विधान मैं कहताहूं ॥ १॥ इस विधानको करनेवाला तीर्थमें जाकर स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण करे; ओदा वस्त्र धारण कियेहुए एक बार अञ्जलीमें जल भरके सूर्यके सम्मुख अघमर्षण मन्त्रको पढ़े ॥ २ ॥ इस प्रकारसे प्रातःकाल मध्याह्नकाल और अपराह्णकालमें एक एक सौ अथवा संख्या रहित मन्त्र पढ़े ॥ ३ ॥ रातमें नक्षत्रके उदय होनेपर यवका एक पसर काढ़ा पीवे ॥ ४ ॥

ज्ञानकृतेभ्योऽज्ञानकृतेभ्यश्चोपपातकेभ्यः सप्तरात्रात्प्रमुच्यते ॥ ५ ॥ द्वादशरात्राद्भ्रूणहननं गुरुतल्पगमनं सुवर्णस्तैन्यं सुरापानमिति च वर्जयित्वैकविंशतिरात्रात्तान्यपि तरति तान्यपि जयति ॥ ६ ॥

इस प्रकारसे ७ रात करनेपर जानकर अथवा अनजानमें कियेहुए उपपातक नाश होजातेहैं; १२ रात करनेपर ब्रह्महत्या, गुरुपत्नीगमन, सोना चोरी और सुरापानको छोड़कर अन्य सब पाप छूट जातेहैं; किन्तु २१ रात इस प्रकारसे करनेसे ये सब पाप भी नाश होजातेहैं; करनेवालेकी जय होतीहै ॥ ५-६ ॥

४ प्रश्न-२ अध्याय।

विधिना येन मुच्यन्ते पातकेभ्योऽपि सर्वशः ॥ ६ ॥

प्राणायामान्पवित्राणि व्याहृतीः प्रणवं तथा । जपेदघमर्षणं सूक्तं पयसा द्वादश क्षपाः ॥ ७ ॥

त्रिरात्रं वायुभक्षो वा क्लिन्नवासाः प्लुतः शुचिः । प्रतिषिद्धांस्तथाऽऽचारानभ्यस्यापि पुनःपुनः ॥८॥

वारुणीभिरुपस्थाय सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९ ॥

जिस विधिके करनेसे सब पापोंका नाश होताहै उसको कहताहूं; पवित्र व्याहृति और प्रणवयुक्त प्राणायाम तथा अघमर्षण सूक्तका जप करतेहुए १२ दिनतक दूध पीकर रहना चाहिये ॥ ६-७ ॥ जिस मनुष्यने वारम्वार निषिद्ध आचारका अभ्यास कियाहै वह भींगाहुआ वस्त्र पहनकर वरुणके मन्त्रोंसे स्तुति करतेहुए ३ रात निराहार रहनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ८-९ ॥

(१३ क) बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-६ अध्याय।

महापातकशुद्ध्यर्थं सर्वा निष्कृतयो नरैः । नृपग्रामेशविदितैः कुर्वाणैः शुद्धिराप्यते ॥ २०४ ॥

महापातककी शुद्धिके लिये सब प्रायश्चित्त राजा अथवा गांवके स्वामीको जनाकर करनेसे शुद्धि होतीहै ॥ २०४ ॥

(२७) चतुर्विंशति।

प्रायश्चित्तं यदाम्नातं ब्राह्मणस्य महर्षिभिः । पादोनं क्षत्रियः कुर्यादर्द्धं वैश्यः समाचरेत् ॥

शूद्रः समाचरेत्पादमशेषेष्वऽपि पाप्मसु ।

✻ चतुर्विंशतिका मत है कि-जिस पापका प्रायश्चित नहीं कहागयाहै उस लघु दोषमें प्राजापत्य व्रत करे (३) ।

चतुर्विंशतिका मत है कि बुद्धिमानोंने जो ब्राह्मणके लिये प्रायश्चित्त कहाहै उसका तीन पाद क्षत्रिय, आधा वैश्य और एक पाद शूद्र सब पापोंमें करे ॥

व्यवस्थादेनेवाली धर्मसभा २.

(१) मनुस्मृति–१२ अध्याय ।

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत् । यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशङ्कितः॥१०८॥
धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः । ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ १०९ ॥

जिन धर्मोंका विधान इस स्मृतिमें नहींहै उनके सम्बन्धमें जो शिष्ट ब्राह्मण लोग कहें अशङ्कित भावसे उसीको धर्म मानना चाहिये ॥ १०८॥ जिन ब्राह्मणोंने ब्रह्मचर्य आदि धर्मसे युक्त होकर वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र आदिके सहित वेद पढ़ाहै और वेदके अर्थका उपदेश करतेहैं उन्हींको शिष्ट ब्राह्मण जानना चाहिये ॥१०९॥

दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् । त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥ ११० ॥

दशावरा नामवाली अथवा त्र्यवरा नामवाली धर्मसभा जिस धर्मका जो निर्णय करदेवे उसको हटाना नहीं चाहिये ॥ ११० ॥

त्रैविद्यो हेतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः । त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥ १११ ॥
ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च । त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥ ११२ ॥

३ तीनों वेदोंके जाननेवाले, १ न्यायशास्त्रका जाननेवाला, १ मीमांसात्मक तर्कोंको जाननेवाला, १ निरुक्तको जाननेवाला; १ धर्मशास्त्रोंको जाननेवाला, १ ब्रह्मचारी १ गृहस्थ और १ वानप्रस्थ; इन १० द्विजोंकी दशावरा धर्मसभा होतीहै ॥ १११ ॥ धर्मसंशय निर्णयके लिये १ ऋग्वेदी, १ यजुर्वेदी और १ सामवेदी; इन ३ ब्राह्मणोंकी त्र्यवरा धर्मसभा होतीहै ॥ ११२ ॥

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्द्विजोत्तमः । स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥ ११३॥

एक वेदविद् श्रेष्ठ ब्राह्मण जो व्यवस्था देवे उसीको परमधर्म मानना चाहिये; किन्तु दश हजार मूर्ख ब्राह्मणोंकी दीहुई व्यवस्थाको नहीं ॥ ११३ ॥

अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् । सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वन्न विद्यते ॥ ११४ ॥

व्रत और वेदविद्यासे हीन केवल ब्राह्मण कहकर जीविका करनेवाले एक हजार ब्राह्मणोंके इकट्ठे होनेपर भी धर्मसभा नहीं बन सकतीहै ॥ ११४ ॥

यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः । तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति ॥ ११५ ॥

तमोभूत, मूर्ख और धर्मशास्त्रको नहीं जाननेवाले लोग जिस मनुष्यको प्रायश्चित्त आदिका उपदेश करतेहैं उसका सब पाप सौगुना होकर उपदेश करनेवालोंको लगजाताहै ॥ ११५ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–३अध्याय ।

देशं कालं वयः शक्तिम्पापं चावेक्ष्य यत्नतः । प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद्यत्र चोक्ता न निष्कृतिः२९४

पाराशरस्मृति–८ अध्याय–३५ श्लोक, वसिष्ठस्मृति–३ अध्याय–२३ श्लोक और बौधायनस्मृति–१ प्रश्न–१ अध्याय–९ श्लोक । चारोवेदोंको जाननेवाले, १ न्यायशास्त्रका जाननेवाला, १ वेदाङ्गोंको जाननेवाला, १ धर्मशास्त्रोंको जाननेवाला, १ ब्रह्मचारी १ गृहस्थ और १ वानप्रस्थ; इन १० द्विजोंकी दशावरा धर्मसभा होतीहै । गौतमस्मृति–२९ अध्याय–१० अंक । ४ चारोंवेदोंको आद्योपान्त जाननेवाले, चारों आश्रमोंमेंसे पहिलेके तीन आश्रमोंके ३ द्विज अर्थात् १ ब्रह्मचारी, १ गृहस्थ और १ वानप्रस्थ, और ३ द्विज पृथक् पृथक् धर्मको जाननेवाले अर्थात् नैयायिक, वेदांगोंको जाननेवाला और धर्मशास्त्री; इन १० विद्वानोंकी दशावरा धर्मसभा कहलातीहै ।

अत्रिस्मृति—१३९–१४० श्लोक । वेद और शास्त्र पढ़ेहुए और शास्त्रके अर्थ बतानेवाले ब्राह्मणको वेदविद् कहते हैं ।

पाराशरस्मृति—८ अध्याय–१२ श्लोक, वसिष्ठस्मृति–३ अध्याय–७ श्लोक और बौधायनस्मृति–१ प्रश्न–१ अध्यायके १७ श्लोकमें ऐसा ही है ।

पाराशरस्मृति––८ अध्याय–१३ श्लोकमें और वसिष्ठस्मृति––३ अध्यायके ८ श्लोकमें ऐसाही है । पाराशरस्मृति––१४ श्लोक और वृद्धशातातपस्मृति––३० श्लोक । जब प्रायश्चित्त बतानेवाला विना धर्मशास्त्र जानेहुए पापीको प्रायश्चित्त बताताहै तब पापी शुद्ध होजाताहै और उसका पाप प्रायश्चित्त बतानेवालेको लगताहै ।

देश, काल, पापीकी अवस्था, शक्ति और पापको यत्नपूर्वक देखकर जिन पापोंका प्रायश्चित्त नहीं कहा गयाहै उसकी कल्पना करलेवे ॥ २९४ ॥

(८) यमस्मृति।

श्रौतस्मार्तविहितं प्रायश्चित्तं वदन्ति ये। तान्धर्मविघ्नकर्तृंश्च राजा दण्डेन पीडयेत् ॥ ५९ ॥
न चेत्तान्पीडयेद्राजा कथञ्चित्काममोहितः। तत्पापं शतधा भूत्वा तमेव परिसर्पति ॥ ६० ॥

राजाको उचित है कि जो मनुष्य किसी पापीको वेद और धर्मशास्त्रके विरुद्ध प्रायश्चित्त बतावे तो उसको दण्ड देवे; जो राजा मोहवश होकर ऐसे मनुष्यको दण्डित नहीं करताहै उसपर उस पातकीका पाप सौगुना होकर लगजाताहै ॥ ५९-६० ॥

(१३) पाराशरस्मृति-८ अध्याय।

चत्वारो वा त्रयो वापि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः। स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु सहस्रशः ॥ १५ ॥
प्रमाणमार्गं मार्गन्तो ये धर्मं प्रवदन्ति वै। तेषामुद्विजते पापं सद्भूतगुणवादिनाम् ॥ १६ ॥
यथाश्मनि स्थितं तोयं मारुतार्केण शुष्यति। एवं परिषदादेशान्नाशयेत्तद्गदुष्कृतम् ॥ १७ ॥
नैव गच्छति कर्तारन्नैवगच्छति पर्षदम्। मारुतार्कादिसंयोगात्पापन्नश्यति तोयवत् ॥ १८ ॥

चार अथवा तीन वेदपारग ब्राह्मण जिसको धर्म कहें उसीको धर्म जानना चाहिये; किन्तु अन्य एक हजार ब्राह्मणोंके कहे हुएको नहीं ॥ १५ ॥ जब सत्यवादी और गुणवान् पण्डितलोग प्रमाणके मार्गको ढूंढकर व्यवस्था देतेहैं तब पाप कंपनेलगताहै ॥ १६ ॥ जैसे पत्थरके ऊपरका जल पवन और सूर्यसे सूख जाताहै वैसेही धर्मसभाकी आज्ञासे पाप नष्ट होताहै ॥ १७ ॥ वह पाप न तो पापी पर रहताहै और न धर्मसभाके सभ्योंपर; किन्तु जैसे पवन और सूर्यके संयोगसे जल सूख जाताहै वैसे नष्ट होताहै ॥ १८ ॥

चत्वारो वा त्रयो वापि वेदवन्तोऽग्निहोत्रिणः। ब्राह्मणानां समर्था ये परिषत्सा विधीयते ॥ १९॥
अनाहिताग्नयो येन्ये वेदवेदाङ्गपारगाः। पञ्च त्रयो वा धर्मज्ञाः परिषत्सा प्रकीर्तिता ॥ २० ॥
मुनीनामात्मविद्यानां द्विजानां यज्ञयाजिनाम्। वेदव्रतेषु स्नातानामेकोपि परिषद्भवेत् ॥ २१ ॥
पञ्चपूर्वम्मया प्रोक्तास्तेषां चासम्भवे त्रयः। स्ववृत्तिपरितुष्टा ये परिषत्सा प्रकीर्तिता ॥ २२ ॥
अत ऊर्द्ध्वन्तु ये विप्राः केवलन्नामधारकाः। परिषत्त्वं न तेष्वस्ति सहस्रगुणितेष्वपि ॥ २३ ॥

वेद जाननेवाले, अग्निहोत्री और ब्राह्मणोंमें समर्थ ४ अथवा ३ ब्राह्मणोंकी सभाको परिषत् (धर्मसभा) कहतेहैं ॥ १९ ॥ जो अग्निहोत्री नहीं हैं; किन्तु सम्पूर्ण वेद और वेदाङ्गोंको जानतेहैं और धर्मके मर्मको जाननेवाले हैं; ऐसे ५ अथवा ३ ब्राह्मणोंकी भी परिषत् कहलातीहै ॥ २० ॥ मुनि, आत्मज्ञानसम्पन्न, द्विजोंको यज्ञ करानेवाले और वेदव्रतपरायण स्नातक; ऐसे १ ब्राह्मणकी भी धर्मसभा होतीहै ॥२१॥ मैंने पहिले ५ ब्राह्मणोंकी सभाको परिषत् कहाहै; यदि वे पांच नहीं मिलें तो अपनी वृत्तिमें परितुष्ट ३ पण्डितकी सभाभी परिषत् कहातीहै ॥ २२ ॥ इनसे भिन्न केवल ब्राह्मणके नामको धारण करनेवाले सहस्रगुणा ब्राह्मणोंके इकट्ठे होनेपर भी धर्मसभा नहीं बन सकतीहै ॥ २३ ॥

धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः। क्रीडार्थमपि यद्ब्रूयुः स धर्मः परमः स्मृतः ॥ ३४ ॥

धर्मशास्त्ररूपी रथमें बैठाहुआ और वेदरूपी तलवारको धारण कियाहुआ ब्राह्मण साधारण विचारसेभी जिस व्यवस्थाको देदेताहै वह भी उत्तम धर्म कहाजाताहै ॥ ३४ ॥

राज्ञश्चानुमते स्थित्वा प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्। स्वयमेव न कर्तव्यं कर्त्तव्या स्वल्पनिष्कृतिः ॥ ३६ ॥
ब्राह्मणास्तानतिक्रम्य राजा कर्तुं यदीच्छति। तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमनुगच्छति ॥ ३७ ॥

मनुस्मृति--११ अध्याय-२१० श्लोक। जिन पापोंका प्रायश्चित्त नहीं कहागयाहै उनके छोड़ानेके लिये पापीकी शक्ति और पापकी अवस्था देकर प्रायश्चित्तकी कल्पना करना चाहिये।

वसिष्ठस्मृति--३ अध्यायके ६ श्लोकमें ऐसाही है। बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-१ अध्याय,-१०श्लोक। पांच, तीन अथवा एक अनिन्दक ब्राह्मण धर्म कहनेवाले होतेहैं, इनसे भिन्न एक हजार भी ब्राह्मण इकट्ठे होनेपर धर्मप्रवक्ता नहीं होसकते।

याज्ञवल्क्यस्मृति- १ अध्याय ९ श्लोक। वेद और धर्मशास्त्रको जाननेवाले ४ अथवा तीनों वेदोंको जाननेवाले ३ ब्राह्मणोंकी धर्मसभा होतीहै और आत्मज्ञानियोंमें उत्तम १ ब्राह्मणका वचनभी धर्म कहलाताहै।

शातातपस्मृति-१७१ श्लोकमें और बौधायनस्मृति-१ प्रश्न १ अध्यायके १४ श्लोकमें ऐसाही है।

धर्मसभाके ब्राह्मणोंको उचित है कि राजाकी अनुमति लेकर पापीको प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देवे; आपही प्रायश्चित्तका निर्णय नहीं करदेवे; किन्तु छोटे छोटे पातकोंकी व्यवस्था विना राजाकी अनुमतिके भी देदेवे ॥ ३६॥ जब राजा ब्राह्मणोंकी विना अनुमति लियेहुए अपनी इच्छासे पापीको व्यवस्था देताहै तब पातकीका पाप सौगुना होकर राजाको लगजाताहै ॥ ३७ ॥

(१६) शङ्खस्मृति-१७ अध्याय ।

आलोच्य धर्मशास्त्राणि समेत्य ब्राह्मणैः सह ॥ ६६ ॥
प्रायश्चित्तं द्विजो दद्यात्स्वेच्छया न कदाचन ॥ ६७ ॥

ब्राह्मणको उचित है कि अनेक ब्राह्मणोंके साथ धर्मशास्त्रोंको देखकर विचारके सहित प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देवे; अपनी इच्छासे नहीं ॥ ६६-६७ ॥

(१९) शातातपस्मृति ।

दुर्बलेऽनुग्रहः प्रोक्तस्तथैव बालवृद्धयोः । अतोऽन्यथा भवेद्दोषस्तस्मान्नाऽनुग्रहः स्मृतः ॥ १६७॥
स्नेहाद्वा यदि वा मोहाद्भयादज्ञानतोऽपि वा । कुर्वन्त्यनुग्रहं ये तु तत्पापं तेषु गच्छति ॥ १६८ ॥

प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देनेवालेको उचित है कि दुर्बल, बालक और वृद्धपर अनुग्रह करे अर्थात उसको सुगम प्रायश्चित्त बतावे; किन्तु अन्यपर अनुग्रह नहीं करे; क्योंकि अन्यपर अनुग्रह करनेसे दोष होताहै; किसी पातकीपर स्नेह, मोह, भय अथवा अज्ञानसे अनुग्रहकरनेपर उस पातकीका पाप अनुग्रह करनेवालेको ही लगजाताहै ॥ १६७-१६८ ॥

(२६) बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-१ अध्याय ।

शरीरं बलमायुश्च वयः कालं च कर्म च । समीक्ष्य धर्मविद् बुद्ध्या प्रायश्चित्तानि निर्दिशेत् ॥ १६ ॥

धर्मशास्त्रके जाननेवालेको उचित है कि प्रायश्चित्ती मनुष्यके शरीर, बल, अवस्था, काल तथा कर्मको देख और विचारकर प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देवे ॥ १६ ॥

मनुष्यवधका प्रायश्चित्त २.

(१) मनुस्मृति--११ अध्याय ।

अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् । गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ॥ ५६ ॥

अपनेको श्रेष्ठ जाननेके लिये झूठ बोलना, राजाके पास चुगुली करना और गुरुको झूठा दोष लगाना ब्रह्महत्याके समान पाप है ॥ ५६ ॥

स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम् ॥ ६७ ॥

स्त्री, शूद्र, वैश्य और क्षत्रियका वध करना और नास्तिक होना; ये सब उपपातक हैं ॥ ६७ ॥

ब्रह्महा द्वादश समाः कुटीं कृत्वा वने वसेत् । भैक्ष्याश्यात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ७३॥
लक्ष्यं शस्त्रभृता वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मनः । प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाक्शिराः ७४॥

ब्राह्मणवध करनेवालेको उचित है कि अपनी शुद्धिके लिये भिक्षाका अन्न भोजन करतेहुए और ध्वजाके समान मृतकका शिर लियेहुए वनमें कुटी बनाकर १२ वर्षतक निवास करे ॥ ७३ ॥ अथवा

याज्ञवल्क्यस्मृति---३ अध्याय--२२८ श्लोक । गुरुको झूठा दोष लगाना, वेदकी निन्दा करना, मित्रका वध करना और पढ़ेहुए शास्त्रको भुलादेना ब्रह्महत्याके समान है ।

याज्ञवल्क्यस्मृति---३ अध्यायके २३६ श्लोक भी प्रायः ऐसा है ।

याज्ञवल्क्यस्मृति---३ अध्यायके २४३ श्लोक, बृहद्विष्णुस्मृति---५० अध्यायके १-६ अंक और गौतमस्मृति---२३ अध्यायके २ अंकमें प्रायः ऐसा है । उशनस्मृति-८ अध्यायके ५ श्लोकमें ऐसाही है और ६-७ श्लोकमें है कि ब्राह्मणके घर अथवा देवालयमें नहीं जावे; अपने पापको कहतेहुए नित्य ७ घरसे भिक्षा लाकर भोजन करे । संवर्त्तस्मृतिके ११३-११८ श्लोकमें यह भी लिखाहै कि ब्राह्मणवध करनेवाला वनमें मूल, फल खावे, इनके नहीं मिलने पर गांवमें जाकर चारो वर्णोंसे भिक्षा मांगलावे और सब जीवोंके हितमें तत्पर रहे । शातातपस्मृतिके २ अंकमें है कि ब्राह्मणवध करनेवाला मृतकको खोंपड़ी लेकर अपने पापको कहतेहुए १२ वर्षतक तीर्थोंमें भ्रमण करनेसे शुद्ध होताहै । बौधायनस्मृति---दूसरा प्रश्न-१ अध्यायके २-३ अंकमें है कि कपाल और खट्वाङ्ग हाथमें लेकर गदहेके चामको ओढ़कर वनकी कुटीमें १२ वर्ष रहे, मुर्देका सिर ध्वजाके समान रक्खे और अपने पापको कहतेहुए ७ घरसे भिक्षा मांगकर प्राणकी रक्षाकरे, यदि भिक्षा नहीं मिले तौ निराहार रहजावे ।

अपनी शुद्धिके लिये स्वेच्छा पूर्वक चतुर शस्त्रधारीका निशाना बने अथवा नीचे मुख करके जलतीहुई आगमें ३ बार गिरे ❀ ॥ ७४ ॥

यजेत वाश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा। अभिजिद्विश्वजिद्भ्यां वा त्रिवृताग्निष्टुतापि वा ॥ ७५ ॥
जपन्वान्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत्। ब्रह्महत्यापनोदायमितभुङ्नियतेन्द्रियः ॥ ७६ ॥
सर्वस्वं वेदविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत्। धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥ ७७ ॥
हविष्यभुग्वाऽनुसरेत्प्रतिस्रोतः सरस्वतीम्। जपेद्वा नियताहारस्त्रिर्वै वेदस्य संहिताम् ॥ ७८ ॥
कृतवापनो निवसेद्ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा। आश्रमे वृक्षमूले वा गोब्राह्मणहिते रतः ॥ ७९ ॥
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत्। मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्य च॥८०॥

अथवा अश्वमेध, स्वर्जिता, गोसव (गोमेध), अभिजित्, विश्वजित्, त्रिवृत् या अग्निष्टुत, यज्ञ करे ❀ ॥ ७५ ॥ अथवा ब्रह्महत्या दूर होनेके लिये किसी एक वेदको जपताहुआ अल्पाहारी और जितेन्द्रिय होकर एकसौ योजन तक जावे ॥ ७६ ॥ अथवा वेद जाननेमें प्रवीण ब्राह्मणको सर्वस्व दान करदेवे अथवा उसके योग्य जीवन पर्यन्तके निर्वाहके योग्य उसको धन अथवा सामग्रियोंके सहित गृह देवे ❀ ॥ ७७ ॥ अथवा नीवार आदिके हविष्यान्न भोजन करतेहुए सरस्वती नदीके उत्पत्ति स्थानसे उसके अन्त तक जावे अथवा थोड़ा भोजन करतेहुए वेदकी सम्पूर्ण संहिताको ३ बार पढ़े ❀ ॥ ७८ ॥ अथवा नख, केश, दाढ़ी और मूंछ मुड़वाके गौ और ब्राह्मणके हितमें तत्पर रहकर गांवके अन्तमें या गौओंके स्थानमें या आश्रममें अथवा वृक्षके मूलके पास निवास करे ॥ ७९ ॥ ब्राह्मण अथवा गौकी रक्षाके लिये शीघ्र प्राण त्याग करे; गौ ब्राह्मणकी रक्षा करनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाताहै ❀ ॥ ८० ॥

त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमवजित्य वा। विप्रस्य तन्निमित्ते वा प्राणालाभे विमुच्यते ॥ ८१ ॥

अथवा डाकुओं द्वारा ब्राह्मणका सर्वस्व हरण होनेपर डाकुओंसे ३ बार युद्ध करे या एकही बार युद्ध करके ब्राह्मणका धन छीन लावे अथवा ब्राह्मणको अपने धनके लिये डाकुओंसे लड़कर प्राण देनेके लिये तैयार देखकर उसको अपने घरसे इतना द्रव्य देकर उसका प्राण बचावे ❀ ॥ ८१ ॥

एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः। समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ८२ ॥
शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे। स्वमेनोऽवभृथस्नातो हयमेधे विमुच्यते ॥ ८३ ॥
धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राजन्य उच्यते। तस्मात्समागमे तेषामेनो विख्याप्य शुध्यति ॥ ८४ ॥
तेषां वेदविदो ब्रूयुस्त्रयोऽप्येनःसु निष्कृतिम्। सा तेषां पावनाय स्यात्पवित्रा विदुषां हि वाक्॥८६॥
अतोन्यतममास्थाय विधिं विप्रः समाहितः। ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया ॥ ८७ ॥

❀ गौतमस्मृति—२३ अध्यायके १ अंकमें ऐसा ही है। याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्यायके २४७–२४८ श्लोक। लोम आदि मज्जातक अपने शरीरको क्रमसे लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि मन्त्र पूर्वक अग्निमें होम करनेसे अथवा संग्राममें योद्धाओंका निशाना बनकर मर जाने या घायल होकर बच जानेसे ब्रह्मघाती शुद्ध होजाताहै। उशनस्मृति–८ अध्याय–८ श्लोक। ब्रह्मघाती उपवास करके अथवा ऊंचे स्थानसे गिरकर या जलतीहुई आग अथवा जलमें प्रवेश करके प्राण त्यागकरे।

❀ बौधायनस्मृति–दूसरा प्रश्न–१अध्याय,–४ अंक। ब्रह्मघाती अश्वमेध, गोसव अथवा अग्निष्टुत् यज्ञकरे या अश्वमेध यज्ञमें यज्ञान्त स्नान करे।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–२५० श्लोक। सुपात्र ब्राह्मणको जीवनपर्यन्तके निर्वाहके योग्य धन देनेसे ब्रह्महत्या छूट जातीहै। उशनस्मृति–८ अध्याय–११ श्लोक। वेदविद् ब्राह्मणको सर्वस्व दानकर देनेसे अथवा सेतुबन्धका दर्शन करनेसे ब्रह्महत्या छूटतीहै।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्यायके २४९ श्लोकमें ७८ श्लोकके समान है।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–२४४ श्लोक। ब्राह्मण अथवा १२ गौओंके प्राणकी रक्षा करनेसे ब्रह्मघाती शुद्ध होताहै। २४५ श्लोक। चिर कालके रोगी अथवा कठिन रोगसे पीड़ित ब्राह्मण या गौको राहमें देखकर उसको आरोग्य करदेनेसे ब्रह्मघाती शुद्ध होजाताहै। उशनस्मृति–८ अध्याय–९ श्लोक। गौ अथवा ब्राह्मणकी रक्षाके लिये प्राण त्याग करनेसे ब्रह्मघाती शुद्ध होताहै। पाराशरस्मृति–८ अध्याय ४३ श्लोक। गौ और ब्राह्मणके लिये प्राण त्यागनेवाले अथवा इनके प्राणकी रक्षा करनेवाले मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे भी छूट जाताहै। गौतमस्मृति–२३ अध्याय–२ अंक। किसी ब्राह्मणको मृत्युसे बचानेपर ब्रह्महत्या छूट जातीहै।

❀ गौतमस्मृति–२३ अध्यायके २ अंकमें ऐसा ही है। याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–२४६–श्लोक। ब्राह्मणका सर्वस्व धन हरण होनेके समय उसको बचानेके लिये मरजानेसे अथवा चोरोंके शस्त्रोंसे घायल होजानेसे ब्रह्मघाती मनुष्य शुद्ध होताहै।

इसी प्रकारसे सदा दृढ़व्रत और ब्रह्मचर्य भावसे १२ वर्ष रहनेपर ब्रह्महत्याका पाप छूट जाताहै ॥ ८२ ॥ अथवा अश्वमेध यज्ञमें ऋत्विक् ब्राह्मण और यजमान क्षत्रिय रहनेपर उनसे अपना पाप सुनाकर यज्ञान्त स्नान करनेसे ब्रह्महत्याका पाप छूटताहै ॥ ८३ ॥ धर्मका मूल ब्राह्मण और अग्रभाग क्षत्रिय है इस लिये उनके समागममें अपना पाप कहकर यज्ञान्त स्नान करनेसे शुद्धि होतीहै ॥ ८४ ॥ तीन वेदवित् ब्राह्मण जो प्रायश्चित्त कहतेहैं उसीके करनेसे पापी शुद्ध होजाताहै; क्योंकि विद्वानोंकी वाणी पवित्र करनेवाली है ॥ ८६ ॥ ऊपर कहेहुए प्रायश्चित्तोंमेंसे सावधान होकर एक प्रायश्चित्त करनेसे ब्राह्मण ब्रह्महत्याके पापसे छूट जातेहैं ॥ ८७ ॥

हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् । राजन्यवैश्यौ चेजानावात्रेयीमेव च स्त्रियम् ॥ ८८ ॥
उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य गुरुं तथा । अपहृत्य च निक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम् ॥ ८९ ॥

विना जानेहुए गर्भको गिरानेवाला, यज्ञ करतेहुए क्षत्रिय अथवा वैश्यका वध करनेवाला और ऋतु-स्नान कीहुई स्त्रीकी हत्या करनेवाला ऐसाही प्रायश्चित्त करे ॥ ८८ ॥ झूठी साक्षी देनेवाला गुरुका मिथ्या अपवाद करनेवाला, धरोहरकी वस्तु हरण करलेनेवाला और स्त्री तथा मित्रका वध करनेवाला ऐसाही प्रायश्चित्त करे ※ ॥ ८९ ॥

इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम् । कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते ॥ ९० ॥

अनिच्छासे ब्राह्मणवध करनेवालोंके लिये ये सब प्रायश्चित्त कहेगयेहैं; जान करके ब्रह्महत्या करने-वालोंके लिये नहीं ※ ॥ ९० ॥

तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः । वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ॥ १२७ ॥

ज्ञानपूर्वक अपने धर्ममें निरत क्षत्रियके वधमें ब्रह्महत्याका चौथाई प्रायश्चित्त, ऐसेही वैश्यवधमें ब्रह्म-हत्याका अठवां भाग प्रायश्चित्त और शूद्रवधमें ब्रह्महत्याका सोलहवां भाग प्रायश्चित्त कहाहै ॥ १२७ ॥

अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः । वृषभैकसहस्रा गा दद्यात्सुचरितव्रतः ॥ १२८ ॥
त्र्यब्दं चरेद्वा नियतो जटी ब्रह्महणो व्रतम् । वसन्दूरतरे ग्रामाद्वृक्षमूलनिकेतनः ॥ १२९ ॥
एतदेव चरेदब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः । प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकशतं गवाम् ॥ १३० ॥
एतदेव व्रतं कृत्स्नं षण्मासाञ्छूद्रहा चरेत् । वृषभैकादशा वापि दद्याद्विप्राय गाः सिताः ॥ १३१ ॥

अज्ञानसे क्षत्रियवध करनेवाला ब्राह्मण १ बैल और १ हजार गौ उत्तम ब्राह्मणको दान करे अथवा जटा धारण करके नियम युक्त हो गांवसे दूर वृक्षके नीचे निवास करतेहुए ३ वर्षतक ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करे ॥ १२८-१२९ ॥ अज्ञानसे स्ववृत्तिमें निरत वैश्यको मारनेवाला ब्राह्मण १ वर्ष तक ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करे अथवा १ सौ गौ दान देवे ॥ १३० ॥ अज्ञानसे शूद्रवध करनेवाला ब्राह्मण ६ मास ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करे अथवा १ बैल और १० शुक्लवर्णकी गौ ब्राह्मणको दान देवे ※ ॥ १३१ ॥

※ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय–२४४ श्लोक, उशनस्मृति–८ अध्याय-१० श्लोक और गौतमस्मृति २३ अध्याय–२ अंक । अश्वमेध यज्ञका यज्ञान्त स्नान करनेसे ब्रह्मघाती मनुष्य शुद्ध होजाताहै ।

※ शङ्खस्मृति—१७ अध्यायके ४–६ श्लोकमें भी ऐसा है वहां स्त्रीके स्थानमें अग्निहोत्रीकी स्त्री लिखाहै और लिखा है कि शरणागत मनुष्यको त्यागनेवाला भी ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करे । याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–२२८ श्लोक । गुरुको झूठा दोष लगाना और मित्रका वध करना ब्रह्महत्याके समान है । २५१श्लोक । यज्ञ करतेहुए क्षत्रिय अथवा वैश्यका वध करनेवाला ब्रह्महत्याके समान प्रायश्चित्त करे; जिस वर्णके गर्भका पात करे उसी वर्णके मनुष्यके वधका प्रायश्चित्त और जिस वर्णकी ऋतुस्नान कीहुई स्त्रीको मारे उसीवर्णके मनुष्यके वधका प्रायश्चित्त करे । पाराशरस्मृति–१२अध्याय–७२ श्लोक । जिस स्त्रीको शीघ्र सन्तान होनेवाली है उसको वध करनेवालेको ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करना चाहिये । गौतमस्मृति–२३ अध्याय–३ अंक । ऋतु-स्नान कीहुई स्त्रीको वध करनेवाला तथा विना जानेहुए गर्भको गिरानेवाला ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करे । बौधायनस्मृति–दूसरा प्रश्न–१ अध्यायके १२–१३ अंक । स्त्री वध करनेवाला शूद्रवधके समान एक वर्षतक और ऋतुस्नान कीहुई स्त्रीको वध करनेवाला ब्रह्महत्याके समान प्रायश्चित्त करे ।

※ बौधायनस्मृति–दूसरा प्रश्न–१ अध्याय—६-७ श्लोकमें भी ऐसा है ।

※ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्यायके २६६–२६७ श्लोकमें प्रायः ऐसा है । गौतमस्मृति २३ अध्यायक ४–६ अंक । क्षत्रियवध करनेवाला ब्राह्मण ब्रह्मचर्य रहकर ६ वर्षतक ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करके १ बैलके साथ एक हजार गौदान करे; इसी प्रकारसे वैश्यवध करनेवाला ब्राह्मण ३ वर्षतक प्रायश्चित्त करके १ बैलके साथ एकसौ गौ दान देवे और शूद्रवध करनेवाला ब्राह्मण १ वर्षतक प्रायश्चित्त करके १ बैलके साथ १० गौ दान करे । वसिष्ठस्मृति—२०अध्याय–४१ अङ्क । क्षत्रियवध करनेवाला ८वर्ष तक,वैश्यवध करने—

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय ।

चरेद्व्रतमहत्वापि घातार्थं चेत्समागतः । द्विगुणं सवनस्थे तु ब्राह्मणे व्रतमादिशेत् ॥ २५२ ॥

यदि किसीको वध करनेके लिये आया हुआ मनुष्य किसी कारणसे उसको नहीं मारे तौ भी वह वध करनेका प्रायश्चित्त करे; यदि सोमयज्ञ करतेहुए ब्राह्मणको मारे तो ब्रह्महत्याका दूना प्रायश्चित्त करे ॥२५२ ॥

चान्द्रायणं चरेत्सर्वानवकृष्टान्निहत्य तु । शूद्रोऽधिकारहीनोपि कालेनानेन शुद्ध्यति ॥ २६२ ॥

सूत, मागध आदि प्रतिलोमज जातिके वध करनेवाले चान्द्रायण व्रत करें । जप, तप आदिके अधिकारसे हीन शूद्र भी नियत समयमें प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ २६२ ॥

दुर्वृत्तब्रह्मविट्क्षत्रशूद्रयोषाः प्रमाप्य तु । दृतिन्धनुर्बस्तमविं क्रमाद्दद्याद्विशुद्धये ॥ २६८ ॥
अप्रदुष्टां स्त्रियं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥ २६९ ॥

दुष्टाचारिणी ब्राह्मणीका वध करनेवाला चमड़ेका मशक दान करनेपर, व्यभिचारिणी क्षत्रियाका वध करनेवाला धनुष दान देनेपर, दुष्टाचारिणी वैश्याका वध करनेवाला बकरा दान करनेपर और दुष्टाचारिणी शूद्राका वध करनेवाला भेड़ा दान देनेपर शुद्ध होताहै ❀ ॥ २६८ ॥ अत्यन्त दुष्टा न हो ऐसी स्त्रीका वध करनेवाला शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे ▦ ॥ २६९ ॥

क्रियमाणोपकारे तु मृते विप्रे न पातकम् । विपाके गोवृषाणां च भेषजान्नक्रियासु च ॥ २८४ ॥

उपकारके लिये औषध आदि करने अथवा अन्न खिलानेसे ब्राह्मण या गौ बैल मर जावे तो औषध आदि तथा अन्न देनेवालेको कुछ दोष नहीं लगता ◌ ॥ २८४ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

शठं च ब्राह्मणं हत्वा शूद्रहत्याव्रतञ्चरेत् ॥ २८९ ॥
निर्गुणं च गुणी हत्वा पराकं व्रतमाचरेत् ॥ २९० ॥

मूर्ख ब्राह्मणको वध करनेवाला शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे ॥ २८९ ॥ यदि विद्वान् पुरुष मूर्खको मारडाले तो पराक व्रत करे ◈ ॥ २९० ॥

(१३) पाराशरस्मृति-६ अध्याय ।

शिल्पिनं कारुकं शूद्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत् । प्राजापत्यद्वयं कृत्वा वृषैकादशदक्षिणा ॥ १६ ॥
वैश्यं वा क्षत्रियं वापि निर्दोषं योऽभिघातयेत् । सोतिकृच्छ्रद्वयं कुर्याद्गोविंशं दक्षिणां ददेत् ॥ १७॥
वैश्यं शूद्रं क्रियासक्तं विकर्मस्थं द्विजोत्तमम् । हत्वा चान्द्रायणं कुर्यात्त्रिंशद्गाश्चैव दक्षिणाः॥ १८ ॥

बढ़ई, लोहार आदि शिल्पी, चित्रकार आदि कारुक तथा शूद्र अथवा स्त्रीका वध करनेवाला २ प्राजापत्य व्रत करके ११ बैल दान करे ॥१६॥ जो निर्दोष वैश्य अथवा क्षत्रियका वध करताहै वह २ अतिकृच्छ्र व्रत करके २० गौ दान देवे ॥ १७ ॥ जो क्रियामें तत्पर वैश्य या शूद्रको अथवा क्रियाहीन ब्राह्मणको मारे वह चान्द्रायणव्रत करके ३० गौ दक्षिणा देवे ॥ १८ ॥

–वाला ६ वर्षतक और शूद्रवध करनेवाला ३ वर्ष तक ब्रह्महत्याका व्रत करे । बौधायनस्मृति—२ प्रश्न–१ अध्यायके ९–११ अंक । क्षत्रियवध करनेवालेको ९ वर्षतक, वैश्यवध करनेवालेको ३ वर्षतक और शूद्रवध करनेवालेको १ वर्षतक ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करना चाहिये । संवर्त्तस्मृति—१२९–१३२ श्लोक । क्षत्रियवध करनेवाला सावधान होकर ३ कृच्छ्र करनेसे, अज्ञान वश होकर वैश्यका वध करनेवाला कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत करनेसे और शूद्रवध करनेवाला ब्राह्मण विधिपूर्वक तप्तकृच्छ्र करनेसे शुद्ध होताहै ।

❀ मनुस्मृति—११ अध्यायके १३९ श्लोकमें भी ऐसा है ।

▦ गौतमस्मृति—२३ अध्याय–६ अंक । ऋतुस्नान कीहुई स्त्रीको छोड़कर अन्य स्त्रीके वध करनेवाला ब्राह्मण शूद्रवधका प्रायश्चित्त करे । प्रचेतास्मृति—ऋतुमतीको छोड़कर अन्य ब्राह्मणीको मारनेवाला एक वर्ष अथवा ६ मासतक कृच्छ्र करे, क्षत्रियावध करनेवाला ६ मास अथवा ३ मासतक, वैश्याको मारनेवाला३मास अथवा १$\frac{1}{2}$ मास तक और शूद्रावध करनेवाला १$\frac{1}{2}$ मास वा २२$\frac{1}{2}$ दिन तक कृच्छ्र करे (७)

◌ लघुहारीतस्मृतिके २८ श्लोकमें भी ऐसा है । आपस्तम्बस्मृति—१ अध्याय–९ श्लोक । यदि स्तनपान करानेसे बालक या भोजन करानेसे अथवा चिकित्सा करनेसे ब्राह्मण मर जावेगा तो किसीको कुछ दोष नहीं लगेगा ।

◈ षट्त्रिंशत्का मत है कि नपुंसक ब्राह्मणका वध करके शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे वा चान्द्रायण अथवा दो पराकव्रत करे (१) ।

चाण्डालं हतवान् कश्चिद् ब्राह्मणो यदि कंचन । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं गोद्वयं दक्षिणां ददेत् ॥१९॥
क्षत्रियेणापि वैश्येन शूद्रेणैवेतरेण च । चाण्डालस्य वधे प्राप्ते कृच्छ्रार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २० ॥
चोरः श्वपाकश्चाण्डालो विप्रेणाभिहतो यदि । अहोरात्रोषितः स्नात्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥ २१ ॥

चाण्डालका वध करनेवाला ब्राह्मण प्राजापत्य कृच्छ्र करके २ गौदान करनेसे और चाण्डालका वध करनेवाला क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र या कोई वर्णसंकर आधा कृच्छ्र करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १९-२० ॥ चोर श्वपाक अथवा चोर चाण्डालका वध करनेवाला ब्राह्मण दिनरात निराहार रहकर स्नान करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ २१ ॥

१२ अध्याय ।

चतुर्वेदोपपन्नस्तु विधिवद्ब्रह्मघातके ॥ ६२ ॥
समुद्रसेतुगमनं प्रायश्चित्तं समादिशेत् । सेतुबन्धपथे भिक्षां चातुर्वर्ण्यात्समाचरेत् ॥ ६३ ॥
वर्जयित्वा विकर्मस्थाञ्छत्रोपानहवर्जितः । अहं दुष्कृतकर्मा वै महापातककारकः ॥ ६४ ॥
गृहद्वारेषु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः । गोकुलेषु वसेच्चैव ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ६५ ॥
तपोवनेषु तीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषु च । एतेषु ख्यापयन्नेनः पुण्यं गत्वा तु सागरम् ॥ ६६ ॥
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् । रामचन्द्रसमादिष्टं नलसंचयसंचितम् ॥ ६७ ॥
सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति । सेतुं दृष्ट्वा विशुद्धात्मा त्ववगाहेत सागरम् ॥ ६८ ॥
यजेत वाश्वमेधेन राजा तु पृथिवीपतिः । पुनः प्रत्यागतो वेश्मवासार्थमुपसर्पति ॥ ६९ ॥
सपुत्रः सहभृत्यश्च कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । गाश्चैवैकशतं दद्याच्चातुर्विद्येषु दक्षिणाम् ॥ ७० ॥
ब्राह्मणानां प्रसादेन ब्रह्महा तु विमुच्यते । विन्ध्यादुत्तरतो यस्य संवासः परिकीर्त्तितः ॥ ७१ ॥
पराशरमतं तस्य सेतुबन्धस्य दर्शनात् ॥ ७२ ॥

विधिपूर्वक चारों वेदोंको जानने वाला यदि ब्रह्महत्या करे तो उसको सेतुबन्ध जानेके लिये प्रायश्चित्त बतावे ॥ ६२-६३ ॥ ब्रह्महत्यारेको उचित है कि सेतुबन्धकी राहमें कुकर्मी मनुष्योंको छोड़कर चारो वर्णोंसे भिक्षा मांगे; छाता और जूता त्याग देवे, भिक्षा मांगनेके समय कहे कि मैं महापातकी ब्रह्मघाती हूं, तुह्मारे घर भिक्षाके लिये आयाहूं ॥ ६३-६५ ॥ गोशालाएं, गांव, नगर, तपोवन तथा तीर्थमें अथवा नदीकी धाराके पास निवास करताहुआ और अपने पापको कहता हुआ पवित्र समुद्रके किनारे जावे ॥ ६५-६६ ॥ रामचन्द्रकी आज्ञासे नल बानरके बनायेहुए १० योजन चौड़े और १०० योजन लम्बे समुद्रके सेतुको देखकर ब्रह्महत्याको दूर करे और सेतुको देखकर पवित्र हो समुद्रमें स्नान करे ॥६७-६८॥ यदि पृथ्वीका पति राजा ब्रह्महत्या करे तो वह अश्वमेध यज्ञ करके रहनेके लिये घरमें आवे, पुत्र और भृत्योंसहित ब्राह्मणोंको भोजन करावे और चारो वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंको एक सौ गौ दक्षिणा देवे; ब्राह्मणोंकी प्रसन्नतासे वह ब्रह्महत्यासे छूट जाताहै ॥ ६९-७१ ॥ जो विन्ध्याचल पर्वतसे उत्तर बसताहै उसके लिये पाराशर ऋषिने सेतुबन्धका दर्शन कहाहै ॥ ७१-७२ ॥

(१५) शङ्खस्मृति-१७ अध्याय ।

नित्यं त्रिषवणस्नायी कृत्वा पर्णकुटीं वने । अधःशायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः ॥ १ ॥
ग्रामं विशेच्च भिक्षार्थं स्वकर्म परिकीर्तयन् । एककालं समश्नीयाद्वर्षे तु द्वादशे गते ॥ २ ॥
हेमस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः । व्रतेनैतेन शुध्यन्ते महापातकिनस्त्विमे ॥ ३ ॥

वनमें पत्तोंकी कुटी बनाकर रहे, नित्य ३ बार स्नान करे, भूमिपर सोवे, जटा धारण करे, पत्ता, मूल और फल भोजन करे, अपने पापको कहताहुआ भिक्षाके लिये गांवमें जावे और नित्य एक बार भोजन करे; इस प्रकारसे १२ वर्ष व्रत करनेसे सोना चोरानेवाले, सुरा पीनेवाले, ब्रह्महत्या करनेवाले और गुरुकी पत्नीसे गमन करनेवाले महापातकी शुद्ध होजातेहैं ॥ १-३ ॥

व्रतस्थं च द्विजं हत्वा पार्थिवं च कृताश्रमम् । एतदेव व्रतं कुर्याद्द्विगुणं च विशुद्धये ॥ ७ ॥
क्षत्रियस्य च पादोनं वदेर्द्धं वैश्यघातने । अर्द्धमेव सदा कुर्यात्स्त्रीवधे पुरुषस्तथा ॥ ८ ॥
पादन्तु शूद्रहत्यायामुदक्यागमने तथा ॥ ९ ॥

व्रतमें स्थित ब्राह्मण और राजकार्यमें तत्पर राजाके वध करनेवाले अपनी शुद्धिके लिये इससे दूना (२४) वर्ष व्रत करें, ॥ ७ ॥ क्षत्रियवध करनेवाले इसकी तीन चौथाई, वैश्य तथा स्त्रीको वध

करनेवाला इसका आधा और शूद्रवध करनेवाले तथा रजस्वला स्त्रीसे गमन करनेवाले इसका चौथाई व्रत करें ※ ॥ ८–९ ॥

क्षत्रियस्तु रणे दत्त्वा पृष्ठं प्राणपरायणः ॥ ५३ ॥
संवत्सरं व्रतं कुर्याच्छित्त्वा वृक्षं फलप्रदम् ॥ ५४ ॥

जो क्षत्रिय रणमें प्राणकी रक्षाके लिये पीठ दिखाकर भागताहै वह (ऊपरके एक और दो श्लोकमें लिखेहुए नियमसे) १ वर्ष व्रत करे और जो मनुष्य फलदार वृक्षको काटताहै वह (नीचेके श्लोकमें लिखेहुए) १ दिन व्रत करे ॥ ५३–५४ ॥

गोवधका प्रायश्चित्त ४.

(१) मनुस्मृति–११ अध्याय।

उपपातकिनस्त्वेवमेभिर्नानाविधव्रतः ॥ १०८ ॥

उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत्। कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥ १०९ ॥
चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणम्मितम्। गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ॥ ११० ॥
दिवानुगच्छेद्गास्तास्तु तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत्। शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत् ॥१११॥
तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत्। आसीनासु तथासीनो नियतो वीतमत्सरः ॥ ११२ ॥
आतुरामभिशस्तां वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः। पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत् ॥ ११३ ॥
उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम्। न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥११४॥
आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेऽथ वा खले। भक्षयन्तीं न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥ ११५॥
अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति। स गोहत्याकृतम्पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥ ११६ ॥
वृषभैकादशा गाश्च दद्यात्सुचरितव्रतः। अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ॥ ११७ ॥

उपपातकी लोग अपने पापको छोडानेके लिये नीचे लिखेहुए अनेक प्रकारके व्रत करें ॥ १०८ ॥ गोवध करनेवाला उपपातकी सम्पूर्ण बाल मुण्डन करवाके उस गौका चाम ओढ़ेहुए और एकमास जवको पीतेहुए गोशालामें निवास करे ॥ १०९ ॥ उसके पश्चात् दो मास जितेन्द्रिय होकर नित्य गोमूत्रसे स्नान करे और एक दिन उपवास करके दूसरे दिनकी रातमें विना कृत्रिम नोनके परिमितका भोजन करे ॥ ११० ॥ दिनमें गौओंके साथ साथ चले, खड़े होकर उनके खुरसे उड़तीहुई धूलको पान करे, उनकी सेवा करे उनको प्रणाम करे और रातमें वीरासनसे बैठकर उनकी रक्षा करे ॥ १११ ॥ गौओंके उठनेपर उठे, चलनेपर उनके पीछे पीछे चले और उनके बैठनेपर स्वयं बैठे और निष्कपट होकर सदा उनकी सेवा करे ॥ ११२ ॥ रोग, चोर, बाघ आदिके भय होनेपर तथा कीचड़में फंसनेपर सब उपाय करके गौओंको बचावे ॥ ११३ ॥ गर्मी, वर्षा और सर्दी होनेपर तथा प्रबल वायुके बहनेपर अपनी शक्तिके अनुसार विना गौओंकी रक्षा कियेहुए कभी अपनी रक्षा नहीं करे ॥११४ ॥ अपने अथवा दूसरेके घर, खेत या खलिहानमें शस्य खातीहुई गौको और दूध पीतेहुए बछड़ेको देखकर किसीसे नहीं कहे ॥११५॥ जो इस प्रकारसे गौओंकी सेवा करताहै वह ३ महीनेमें गोहत्याके पापसे छूट जाताहै ॥ ११६ ॥ सम्यक् प्रकारसे प्रायश्चित्त करनेवाला १० गाय और १ बैल दक्षिणा भी देवे; यदि इतना नहीं देसके तो वेदविद् ब्राह्मणको अपना सर्वस्व दान कर देवे ॥ ११७ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय।

पञ्चगव्यं पिबेद् गोघ्नो मासमासीत संयमः। गोष्ठेशयो गोनुगामी गोप्रदानेन शुध्यति ॥ २६३॥
कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रं च चरेद्वापि समाहितः। दद्यात्त्रिरात्रं चोपोष्य वृषभैकादशास्तु गाः ॥ २६४॥

गोवध करनेवाला पञ्चगव्य पीकर एक मास संयमसे रहे, गौशालामें शयन करे, दिनमें गौओंके पीछे पीछे चले और गौदान करे; ऐसा करनेसे वह शुद्ध हो जाताहै ॥ २६३ ॥ सावधानीसे कृच्छ्र अथवा अतिकृच्छ्र व्रत करे या ३ रात उपवास करके एक बैल और १० गौ दान देवे (☉) ॥ ॥ २६४ ॥

※ बृहद्विष्णुस्मृति––५० अध्यायके ११–१४ अंक। राजाका वध करनेवाला ब्रह्महत्याका दूना (२४ वर्ष) व्रत करे। क्षत्रियवध करनेवाला ९ वर्ष, वैश्यवध करनेवाला ६ वर्ष और शूद्रवध करनेवाला ३ वर्ष ब्रह्महत्याका व्रत करके शुद्ध होवे।

(☉) गोहत्याके पापके अनुसार छोटे बड़े ४ प्रकारके प्रायश्चित्त कहेगयेहैं। कश्यपस्मृति–गोवध करनेवाला एक मासतक उसके चर्मको ओढ़ेहुए गोशालामें सोवे, त्रिकाल स्नान करे और नित्य पञ्चगव्य पान करे (२)। छठे कालमें दूधको पीवे, गमन करतीहुई गौओंके पीछे गमन करे, वे बैठें तो बैठजावे, अत्यन्त विषम भूमिमें न उतारे, अल्प जलमें जल नहीं पिलावे और अन्तमें ब्राह्मणोंको खिलाकर तिलधेनु देवे (३)।

(१०) संवर्तस्मृति ।

गोघ्नः कुर्वीत संस्कारं गोष्ठे गोरूपसन्निधौ । तत्रैव क्षितिशायी स्यान्मासार्द्धं संयतेन्द्रियः ॥१३३॥
स्नानं त्रिषवणं कुर्यान्नखलोमविवर्जितः । सक्तुयावकपिण्याकपयोदधि शकृन्नरः ॥ १३४ ॥
एतानि क्रमशोऽश्नीयाद्द्विजस्तत्पापमोक्षकः । गायत्रीञ्च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ॥१३५॥
पूर्णे चैवार्द्धमासे च स विप्रान्भोजयेद्द्विजः । भुक्तवत्सु च विप्रेषु गां च दद्याद्विचक्षणः ॥ १३६ ॥

गोवध करनेवाला गोशालामें गौओंके समीप अपना संस्कार करे और गोशालामें ही जितेन्द्रिय होकर १५ दिन भूमिपर सोवे ॥ १३३ ॥ पापसे मुक्ति चाहनेवाला द्विज त्रिकाल स्नान करे, नख और लोमको नहीं रक्खे, सत्तू, यावक, तिलकी खली, दूध, दही और गोबर क्रमसे भोजन करे और नित्य यथाशक्ति गायत्री तथा अन्य पवित्र मन्त्रोंको जपे ॥१३४-१३५॥ पंद्रह दिन बीत जानेपर वह ब्राह्मणोंको भोजन कराके गोदान देवे ॥ १३६ ॥

(१३) पाराशरस्मृति-८अध्याय ।

सशिखं वपनं कृत्वा त्रिसन्ध्यमवगाहनम् । गवां मध्ये वसेद्रात्रौ दिवा गाश्चाप्यनुव्रजेत् ॥ ३९ ॥
उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् । न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥४०॥
आत्मनो यदि वाऽन्येषां गृहे क्षेत्रेऽथ वा खले । भक्षयन्तीं न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥ ४१ ॥
पिबन्तीषु पिबेत्तोयं संविशन्तीषु संविशेत् । पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वप्राणैः समुद्धरेत् ॥ ४२ ॥
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा यस्तु प्राणान्परित्यजेत् । मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोब्राह्मणस्य च ॥ ४३॥

शिखा सहित मुण्डन करावे, त्रिकाल स्नान करे, रातमें गौओंके बीचमें निवास करे, दिनमें गौओंके पीछे पीछे चले ॥ ३९ ॥ घाम, वर्षा, जाड़ा और वायुसे अपनी शक्तिके अनुसार गौओंकी रक्षा करके तब अपनी रक्षाका उपाय करे ॥ ४० ॥ अपने अथवा अन्यके गृह, खेत या खलिहानमें खातीहुई गौको देखनेपर नहीं बतावे तथा दूध पीतेहुए बछड़ेको देखकर किसीसे नहीं कहे ॥ ४१ ॥ गौओंके जल पीनेपर आप जल पीवे, उनके बैठनेपर बैठे और पाकमें फंसीहुई गौको जी जानसे उद्धार करे ॥ ४२ ॥ गौ अथवा ब्राह्मणके लिये प्राणत्याग करनेवाला और इनके प्राणकी रक्षा करनेवाला ब्रह्महत्याके पापसे भी छूट-जाताहै ॥ ४३ ॥

गोवधस्यानुरूपेण प्राजापत्यं विनिर्दिशेत् । प्राजापत्यं ततः कृच्छ्रं विभजेत्तच्चतुर्विधम् ॥ ४४ ॥
एकाहमेकभक्ताशी एकाहं नक्तभोजनः । अयाचितश्चैकमहरेकाहम्मारुताशनः ॥ ४५ ॥
दिनद्वयञ्चैकभक्तो द्विदिनन्नक्तभोजनः । दिनद्वयमयाची स्याद्द्विदिनम्मारुताशनः ॥ ४६ ॥
त्रिदिनञ्चैकभक्ताशी त्रिदिनं नक्तभोजनः । दिनत्रयमयाची स्यात्त्रिदिनम्मारुताशनः ॥ ४७ ॥
चतुरहं त्वेकभक्ताशी चतुरहन्नक्तभोजनः । चतुर्दिनमयाची स्याच्चतुरहम्मारुताशनः ॥ ४८ ॥

प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देनेवाले गोवध * के पापके अनुसार प्राजापत्य व्रत करनेको कहें; प्राजापत्यको ४ भागमें बांटे ॥ ४४ ॥ एक दिन दिनमें एक वार, एकदिन रातमें एक बार और एक दिन विना मांगे मिलेहुए अन्न भोजन करे और एक दिन निराहार रहे; उसको एक पाद प्राजापत्य कहतेहैं ॥ ४५ ॥ इसी प्रकारसे दो दो दिन रहनेसे दो पाद अर्थात् आधा प्राजापत्य, तीन तीन दिन रहनेसे तीन पाद प्राजापत्य और चार चार दिन रहनेसे पूरा प्राजापत्य होताहै ॥ ४६-४८ ॥

प्रायश्चित्ते ततस्तीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । विप्राणां दक्षिणान्दद्यात्पवित्राणि जपेद्द्विजः ॥ ४९ ॥
ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु गोघ्नः शुध्येन्न संशयः ॥ ५० ॥

द्विजको उचित है कि प्रायश्चित्तके पश्चात् ब्राह्मणोंको खिलावे, उनको दक्षिणा देवे और पवित्र मन्त्रोंको जपे; ब्राह्मणभोजनके पश्चात् गोहत्यारा निःसन्देह शुद्ध होजाताहै ॥ ४९-५० ॥

९ अध्याय ।

गवां संरक्षणार्थाय न दुष्येद्रोधबन्धयोः । तद्वधं तु न तं विद्यात्कामाकामकृतं तथा ॥ १ ॥
दण्डादूर्ध्वं यदान्येन प्रहाराद्यदि पातयेत् । प्रायश्चित्तं तदा प्रोक्तं द्विगुणं गोवधे चरेत् ॥ २ ॥

रक्षाके लिये रोकने अथवा बान्धनेसे गौ मरजातीहै तो गोहत्याका दोष नहीं लगताहै, उस अवस्थामें वह कामकृत या अकामकृत गोवध नहीं कहा जासकता ॥ १ ॥ दण्डसे भिन्न यदि किसी औजार से गौको मारकर गिरादेवे तो वह गोवधका दूना प्रायश्चित्त करे (@)॥ २ ॥

---

* गो शब्दसे गाय और बैल दोनों जानना चाहिये ।

(@) अङ्गिरास्मृतिके २९ श्लोकमें इस श्लोकके समान है ।

रोधबन्धनयोक्त्राणि घातश्चेति चतुर्विधम्। एकपादं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत्॥ ३ ॥
योक्त्रेषु तु त्रिपादं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने। गोचरे वा गृहे वापि दुर्गेष्वप्यसमस्थले ॥ ४ ॥
नदीष्वथ समुद्रेषु खातेष्वथ दरीमुखे। दग्धदेशे मृता गावः स्तम्भनाद्रोध उच्यते ॥ ५ ॥
योक्त्रदामकडोरैश्च कण्ठाभरणभूषणैः। गृहे चापि वने वापि बद्धा स्याद्गौर्मृता यदि ॥ ६ ॥
तदेव बन्धनं विद्यात्कामाकामकृतं च यत्। हले वा शकटे पंक्तौ भारे वा पीडितो नरैः॥ ७ ॥
गोपतिर्मृत्युमाप्नोति योक्त्रो भवति तद्वधः। मत्तः प्रमत्त उन्मत्तश्चेतनो वाऽप्यचेतनः॥ ८ ॥
कामाकामकृतक्रोधो दण्डैर्हन्यादथोपलैः। प्रहता वा मृता वापि तद्धि हेतुर्निपातने ॥ ९ ॥

रोकने, बान्धने, जूएमें जोडने और मारने; इन ४ प्रकारसे गोहत्या होतीहै; यदि रोकनेके दोषसे गौ मरजावे तो एक पादप्रायश्चित्त, बान्धनेके कारणसे मरजावे तो आधा प्रायश्चित्त जूएमें जोडनेके कारणसे मरजावे तो तीन पाद प्रायश्चित्त और मारनेसे मरजावे तो (८ अध्यायमें कहाहुआ) पूरा प्रायश्चित्त करना चाहिये ❀ ॥ ३-४ ॥ गौओंके चरनेके वाड़ेमें, घरमें, बन्द स्थानमें, ऊंची नीची जगहमें, नदीमें, समुद्रमें, गड्ढेमें, गुफाके मुखमें अथवा जलेहुए देशमें रोकनेसे गौ मरे तो उसे रोध कहतेहैं ॥ ४-५ ॥ जोतकी रस्सी, घटारोंकी रस्सी अथवा कण्ठकी शोभाके लिये बान्धीहुई रस्सीसे ज्ञान अथवा अज्ञानसे घर या वनमें गौ मरे तो उसको बन्धन जानना चाहिये ॥ ६-७ ॥ यदि हलमें या गाड़ीमें अथवा बैलोंकी पांतिमें बान्धनेपर या बोझा लादनेसे मनुष्योंसे पीडाको प्राप्तहुआ बैल मरजाय तो उस वधको योक्त्र कहाहै ॥ ७-८ ॥ यदि मत्त, प्रमत्त या उन्मत्त मनुष्य चेतन अथवा अचेतन दशामें ज्ञान या अज्ञानसे क्रोध करके दण्ड अथवा पत्थर द्वारा गौको मारडाले तो उसको मरणका कारण कहतेहैं ॥ ८-९ ॥

अङ्गुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रः प्रमाणतः। आर्द्रस्तु सपलाशश्च दण्ड इत्यभिधीयते ॥ १० ॥
मूर्च्छितः पतितो वापि दण्डेनाभिहतः स तु। उत्थितस्तु यदा गच्छेत्पञ्च सप्त दशाथ वा ॥ ११ ॥
ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वापि पिबेद्यदि। पूर्वव्याध्युपसृष्टश्चेत्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ १२ ॥

अंगूठेके समान मोटे, बाहुके समान लम्बे, ओदे और पल्लवोंके सहित वृक्षके डाढ़को दण्ड कहतेहैं ✻ ॥ १० ॥ यदि दण्डकी ताड़नासे गौ बैल मूर्छित होजावें या गिरपड़ें; किन्तु पीछे उठकर पांच, सात अथवा दश पैर चलदेवें या एक ग्रास खालेवें अथवा पानी पीलेवें तो पूर्वकी किसी व्याधिसे उनके मरजानेपर प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ेगा ◎ ॥ ११-१२ ॥

पिण्डस्थे पादमेकन्तु द्वौ पादौ गर्भसम्मिते। पादोनं व्रतमुद्दिष्टं हत्वा गर्भमचेतनम् ॥ १३ ॥

गौको मारनेसे यदि उसके गर्भका पिण्ड गिरजावे तो चौथाई व्रत, देहका आकार गिरजावे तो आधा व्रत और पूरा शरीर बनजानेपर अचेतन गर्भ गिरजावे तो प्रायश्चित्तका तीन पाद: व्रत करना चाहिये ✿ ॥ १३ ॥

❀ आपस्तम्बस्मृति—१ अध्यायके १५-१६ श्लोक। और लघुशङ्खस्मृति ५५-श्लोकमें भी ऐसा है। अङ्गिरास्मृति-२५-२६ श्लोक। भोजन कराने, जल पिलाने या औषध देनेके दोषसे गौ मरजाय तो एक पाद प्रायश्चित्त और भूषणके लिये गलेमें घण्टा बांधनेके दोषसे मरे तो आधा प्रायश्चित्त करे। २७ श्लोक दमन करने, बान्धने, या रोकनेके लिये मारनेसे यदि गौ मरजाय तो गोहत्याका तीनपाद व्रत करे यमस्मृति-४५ श्लोक। यदि बान्धने, रोकने, या पालन पोषण करनेसे रोगयुक्त होकर गौ मरजावे तो उनके बान्धने, रोकने अथवा पालन पोषण करनेवाले दोषी नहीं होतेहैं। आपस्तम्बस्मृति-१ अध्याय। गलेमें घण्टा बान्धनेके दोषसे गौ मरजाय तो गो हत्याका आधा व्रत करे; क्योंकि वह उसके भूषणके लिये पहिराया गया था। वशमें करने अथवा रोकनेके लिये जोड़ने या खूंटे सींकर अथवा रस्सीमें बान्धनेके कारणसे गौ मरजाय तो तीन पाद व्रत और पत्थर, लाठी या अन्य किसी शस्त्रसे बलपूर्वक मारनेसे मरे तो गोहत्याका पूरा व्रत करना चाहिये ॥ १६-१९ ॥ ब्राह्मण प्राजापत्य, क्षत्रिय तीन पाद प्राजापत्य, वैश्य आधा प्राजापत्य और शूद्र एक पाद प्राजापत्य व्रत करे ॥ १९-२० ॥ संवर्तस्मृति—१३७ श्लोक। रोकने या बान्धनेके दोषसे अथवा अयोग्य चिकित्सा करनेके कारण एक मनुष्यसे बहुतसी गौ मरजांय तो वह दूना व्रत करे।

✻ अङ्गिरास्मृतिके २८ श्लोक और यमस्मृतिके ४१ श्लोकमें भी ऐसा है।

◎ यमस्मृतिके ४६-४७ श्लोकमें इन दो श्लोकोंके समान है।

✿ यमस्मृतिके ४३श्लोकमें ऐसा ही है। षट्त्रिंशत्का मत है कि उत्पन्नमात्र गर्भके हतनेमें एक पाद दृढ़ताको प्राप्तहुए गर्भके हतनेमें दो पाद अचेतन गर्भको हतनेमें ३ पाद और अङ्ग प्रत्यङ्गसे पूर्ण चेतनायुक्त गर्भके हतनेमें दूना व्रत करना चाहिये (८-९)।

पादेऽङ्गरोमवपनं द्विपादे श्मश्रुणोऽपि च । त्रिपादे तु शिखावर्जं सशिखं तु निपातने ॥ १४ ॥

एकपाद प्रायश्चित्तमें अङ्गके रोम, दो पाद प्रायश्चित्तमें दाढ़ी मूंछ, तीन पाद प्रायश्चित्तमें शिखाको छोड़ कर और पूरे प्रायश्चित्तमें शिखा सहित मुण्डन करावे ❀ ॥ १४ ॥

पादे वस्त्रयुगञ्चैव द्विपादे कांस्यभाजनम् । त्रिपादे गोवृषं दद्याच्चतुर्थे गोद्वयं स्मृतम् ॥ १५ ॥

चौथाई प्रायश्चित्त करनेमें २ वस्त्र, आधा प्रायश्चित्त करनेमें कांसेका पात्र, तीन चौथाई प्रायश्चित्त करनेमें एक बैल और पूरा प्रायश्चित्तके समय दो गौ दक्षिणा देना चाहिये ॥ १५ ॥

निष्पन्नसर्वगात्रेषु दृश्यते वा सचेतनः । अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णो द्विगुणं गोव्रतं चरेत् ॥ १६ ॥

जिसका हाथ गोड़ आदि अङ्ग और नख रोम आदि प्रत्यङ्गसे युक्त सचेतन गर्भ जान पड़ता होवे तो उस गौका वध करनेवाला गोवधका दूना प्रायश्चित्त करे ✠ ॥ १६ ॥

पाषाणेनैव दण्डेन गावो येनाभिघातिताः । शृङ्गभङ्गे चरेत्पादं द्वौ पादौ नेत्रघातने ॥ १७ ॥

लाङ्गूले पादकृच्छ्रन्तु द्वौ पादावस्थिभञ्जने । त्रिपादं चैव कर्णे तु चरेत्सर्वन्निपातने ॥ १८ ॥

पत्थर अथवा दण्डसे मारनेपर गौकी सींग टूट जावे तो चौथाई व्रत, नेत्र फूट जावे तो आधा व्रत, पूंछ टूट जावे तो चौथाई व्रत, हाड़ टूट जावे तो आधा व्रत, कान टूट जावे तो तीन चौथाई व्रत और मारनेसे गौ मर जावे तो पूरा व्रत करे ॥ १७–१८ ॥

शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च कटिभङ्गे तथैव च । यदि जीवति षण्मासान्प्रायश्चितं न विद्यते ॥ १९ ॥

व्रणभङ्गे च कर्तव्यः स्नेहाभ्यङ्गस्तु पाणिना । यवसश्चोपहर्तव्यो यावद् दृढबलो भवेत् ॥ २० ॥

यावत्सम्पूर्णसर्वाङ्गस्तावत्तं पोषयेन्नरः । गोरूपं ब्राह्मणस्याग्रे नमस्कृत्वा विसर्जयेत् ॥ २१ ॥

यद्यसम्पूर्णसर्वाङ्गो हीनदेहो भवेत्तदा । गोघातकस्य तस्यार्द्धं प्रायश्चितं विनिर्दिशेत् ॥ २२ ॥

सींग, हाड़ अथवा कटि टूट जानेपर यदि ६ महीनेतक गौ जीजातीहै तो पूर्वोक्त प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता है ॥ १९ ॥ गौ बैलके घाव अथवा टूटेहुए अङ्गपर हाथसे तेल, घी आदि दवा लगाकर उनको आरोग्य करे; बैल जबतक बलवान् नहीं होवे तब तक उसको घास खिलावे; उससे काम नहीं लेवे ॥ २० ॥ जबतक उसका सब अंग ठीक नहीं होजावे तबतक उसका पोषण करे, फिर नमस्कार करके ब्राह्मणके आगे उसको छोड़ देवे ॥ २१ ॥ यदि उसका सब अंग ठीक नहीं होवे; वह हीनअंग होजावे तो मारनेवालेको आधा प्रायश्चित्त बताना चाहिये ॥ २२ ॥

काष्ठलोष्टकपाषाणैः शस्त्रेणैवोद्धतो बलात् । व्यापादयति यो गान्तु तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥२३॥

चरेत्सान्तपनं काष्ठे प्राजापत्यन्तु लोष्टके । तप्तकृच्छ्रन्तु पाषाणे शस्त्रेणैवातिकृच्छ्रकम् ॥ २४ ॥

पञ्च सान्तपने गावः प्राजापत्ये तथा त्रयः । तप्तकृच्छ्रे भवन्त्यष्टावतिकृच्छ्रे त्रयोदश ॥ २५ ॥

प्रमापणे प्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम् । तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः ॥ २६ ॥

काठ, ढेला, पत्थर या हथियारसे बलपूर्वक गोवध करनेवालोंके लिये इस प्रकार प्रायश्चित्त है ॥ २३ ॥ काठसे गोवध करनेवाला सान्तपन व्रत, ढेलेसे मारनेवाला प्राजापत्य, पत्थरसे मारनेवाला तप्तकृच्छ्र और शस्त्रसे वध करनेवाला अतिकृच्छ्र व्रत करे ◎ ॥ २४ ॥ सान्तपन करनेमें ५ गौ, प्राजापत्यमें ३ गौ, तप्तकृच्छ्रमें ८ गौ और अतिकृच्छ्र व्रतमें १३ गौ दक्षिणा देवे ॥२५॥ जिस प्राणीके वधका प्रायश्चित्त किया जावे उसीके समान प्राणी दान करे अथवा उस प्राणीका जितना मूल्य होवे उतना दान देवे, ऐसा मनुने कहाहै ॥ २६ ॥

अन्यत्राङ्कनलक्ष्मभ्यां वहने दोहने तथा । सायं संगोपनार्थं च न दुष्येद्रोधबन्धयोः ॥ २७ ॥

अतिदाहेऽतिवाहे च नासिकाभेदने तथा । नदीपर्वतसंचारे प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ २८ ॥

अतिदाहे चरेत्पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत् । नासिक्ये पादहीनन्तु चरेत्सर्वन्निपातने ॥ २९ ॥

दहनात्तु विपद्येत अनड्वान्योक्त्रयन्त्रितः । उक्तम्पराशरेणैव ह्येकम्पादं यथाविधि ॥ ३० ॥

रोधनं बन्धनं चैव भारः प्रहरणन्तथा । दुर्गप्रेरणयोक्त्रं च निमित्तानि वधस्य षट् ॥ ३१ ॥

❀ आपस्तम्बस्मृति–१ अध्यायके ३२–३३ श्लोक, यमस्मृतिके ५३ श्लोक और लघुशङ्खस्मृति–५३ श्लोकमें भी ऐसा है।

✠ यमस्मृतिके ४४ श्लोकमें प्रायः ऐसाही है।

◎ यमस्मृतिके ४८–४९ श्लोकमें ऐसाही है। अत्रिस्मृति—२२१–२२३ श्लोक। काठ, ढेला अथवा पत्थरसे गोवध करनेवाला सान्तपन कृच्छ्र मुक्केसे गोवध करनेवाला प्राजापत्य व्रत और लोहेकी वस्तुसे गोवध करनेवाला अतिकृच्छ्र व्रत करे और प्रायश्चित्तके अन्तमें ब्राह्मण भोजन कराके बैलके सहित एक गौ ब्राह्मणको दक्षिणा देवे।

अङ्कित करने और चिह्न लगानेको छोड़कर जोतने, दुहने और रक्षाके लिये सायंकालमें गौओंको रोकने तथा बान्धनेमें दोष नहीं है ॥ २७ ॥ अत्यन्त दागदेने, अत्यन्त जोतने, नाक छेदने, नदीमें घुसाने अथवा पर्वतपर चढ़ानेके कारण यदि गौ मरजाय तो नीचे लिखेहुए प्रायश्चित्त बताना चाहिये ॥ २८ ॥ दागनेसे गौ बैल मरजावे तो एक पाद, जोतनेसे बैल मरजावे तो आधा, नाक छेदनेसे गौ बैल मरजावे तो तीन चौथाई और मारनेसे मरजावे तो पूरा प्रायश्चित्त करे ❀ ॥ २९ ॥ यदि रस्सीसे बांधाहुआ बैल दागनेसे मरजावे तो पराशरके कथनानुसार चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ३० ॥ रोकना, बान्धना, बोझा लादना, लकड़ी आदिसे मारना, नदी, पर्वत आदि कठिन जगहमें घुसाना और जोतना, ये ६ गोवधके कारण हैं ॥ ३१ ॥

बन्धपाशगुप्ताङ्गो म्रियते यदि गोपशुः। भवने तस्य पापः स्यात्प्रायश्चित्तार्द्धमर्हति ॥ ३२ ॥
न नारिकेलैर्न च शाणवालैर्न चापि मौञ्जैर्न च वल्कशृङ्खलैः। एतैस्तु गावो न निबन्धनीया बद्ध्वा तु तिष्ठेत्परशुं गृहीत्वा ॥ ३३ ॥
कुशैः काशैश्च बध्नीयाद्गोपशुं दक्षिणामुखम्। पाशलग्नाग्निदग्धेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३४ ॥
यदि तत्र भवेत्काण्डं प्रायश्चित्तं कथम्भवेत्। जपित्वा पावनीं देवीं मुच्यते तत्र किल्बिषात्॥३५॥

यदि रस्सीकी फांसी लगकर मनुष्यके घरमें बांधाहुआ बैल मरजावे तो उसके घरमें पाप लगताहै, इस लिये उसको आधा प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ३२ ॥ नारियलकी, शणकी, बालकी, मूंजकी अथवा वल्कलकी रस्सीसे या लोहेके सींकड़ेसे गौको नहीं बांधना चाहिये; यदि इनसे बांधे तो गौओंकी रक्षाके लिये हाथमें परशा लेकर उनके पास खड़ा रहे ॥ ३३ ॥ कुश तथा काशकी रस्सीसे दक्षिणको मुख करके गौको बान्धना चाहिये; इस अवस्थामें यदि रस्सीकी फांसीसे अथवा आग लगजानेसे जलकर गौ मरजाती है तो प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता है ☸ ॥ ३४ ॥ यदि गोशालामें सरपता रक्खा होवे तो प्रायश्चित्त कैसा होगा ? ऐसी अवस्थामें पवित्र गायत्रीका जप करनेसे पाप छूट जाताहै ॥ ३५ ॥

प्रेरयन् कूपवापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन्। गवाशनेषु विक्रीणंस्ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥ ३६ ॥
आराधितस्तु यः कश्चिद्भिन्नकक्षो यदा भवेत्। श्रवणं हृदयं भिन्नं मग्नं वा कूपसंकटे ॥ ३७ ॥
कूपादुत्क्रमणे चैव भग्नो वा ग्रीवपादयोः। स एव म्रियते तत्र त्रीन्पादांस्तु समाचरेत् ॥ ३८ ॥

कुंआ या बावलीमें घुसानेकी प्रेरणा करनेसे अथवा वृक्षके काटनेके समय वहां लेजानेपर वृक्षके गिरजानेसे गौ मरजातीहै या गोभक्षकके हाथ गौ बेंचीजातीहै तो गोहत्या लगतीहै ॥ ३६ ॥ यदि काम करतेहुए बैलका कोख फटजाय, कान टूटजाय, हृदय फटजाय, वह कूपमें डूबजाय अथवा कुंएसे निकालनेके समय उसकी गर्दन या टांग टूट जाय; और इन कारणोंसे बैल मर जाय तो तीन चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ३७-३८ ॥

कूपखाते तटीबन्धे नदीबन्धे प्रपासु च। पानीयेषु विपन्नानां प्रायश्चित्तन्न विद्यते ॥ ३९ ॥
कूपखाते तटीखाते दीर्घखाते तथैव च। अन्येषु धर्मखातेषु प्रायश्चित्त न विद्यते ॥ ४० ॥
वेश्मद्वारे निवासेषु यो नरः खातमिच्छति। स्वकार्ये गृहखातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४१ ॥
निशि बन्धनिरुद्धेषु सर्पव्याघ्रहतेषु च। अग्निविद्युद्विपन्नानां प्रायश्चित्तन्न विद्यते ॥ ४२ ॥
ग्रामघाते शरौघेण वेश्मभङ्गनिपातने। अतिवृष्टिहतानां च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४३ ॥
संग्रामेऽपहतानां च ये दग्धा वेश्मकेषु च। दावाग्निग्रामघातेषु प्रायश्चित्तन्न विद्यते ॥ ४४ ॥
यन्त्रिता गौश्चिकित्सार्थे गूढगर्भविमोचने। यत्ने कृते विपद्येत प्रायश्चित्तन्न विद्यते ॥ ४५ ॥

कूप, गड़हे या पोखरेमें, बान्धपर, नदीके बान्धपर अथवा पानीशालाके कुण्डमें पानी पिलानेके लिये गौ बैलको लेजानेपर यदि किसी प्रकारसे उसकी मृत्यु होजाय तो प्रायश्चित्त नहीं लगेगा ॥ ३९ ॥ कूंएके समीप खोदेहुए गड़हेमें, पोखरेके समीपके गड़हेमें, झीलमें और इनसे भिन्न धर्मार्थ खोदेहुए गड़हेमें भी इस प्रकारसे गौ बैलके मरनेपर प्रायश्चित्त नहीं लगताहै ॥ ४० ॥ घरके द्वारपर, गोशालामें अथवा किसी अपने कामके लिये घरके भीतर कोई गढ़ा खोदा हो, यदि उनमें गिरकर गौ वा बैल मरजावे तो प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ४१ ॥ रातमें बांधने या रोकनेपर अथवा सर्पके काटने, बाघके मारने, आग लगजाने या बिजली

❀ अत्रिस्मृति—२१८-२१९ श्लोक और आपस्तम्बस्मृति—१ अध्यायके २३-२४ श्लोक। अत्यन्त दुहने, अत्यन्त जोतने, नाक छेदने अथवा नदीमें या पर्वतपर रोक रखनेसे गौ बैल मरजाय तो तीन पाद प्रायश्चित्त करना चाहिये।

☸ आपस्तम्बस्मृति—१ अध्यायके २४-२५ श्लोक। नारियल, बाल या मूंजकी रस्सी अथवा चामसे गौको नहीं बान्धना चाहिये; क्योंकि इनसे बान्धनेपर वे परवश होजातीहैं; कुश और काशकी रस्सीसे दक्षिणको मुख करके वृषभको बान्धना चाहिये।

गिरनेसे गौ बैल मरजावें तो प्रायश्चित्त नहीं करे ॥ ४२ ॥ गांवपर आक्रमण होनेके समय बाण चलनेसे, घरके गिरजानेसे अथवा अतिवृष्टि होनेसे गौ बैल मरजातेहैं तो प्रायश्चित्त करनेका प्रयोजन नहीं होताहै ॥ ॥ ४३ ॥ संग्राममें, घरमें आग लगजानेपर, वनमें लगीहुई आगसे अथवा गांवके नाशके समय गौ बैलके मरनेपर किसीको प्रायश्चित्त नहीं लगताहै ॥ ४४ ॥ दवा करनेके लिये रस्सीसे बान्धनेपर या अटकेहुए गर्भके निकालनेके लिये उद्योग करनेपर गौ मरजातीहै तो प्रायश्चित्तका प्रयोजन नहीं होताहै ※ ॥ ४५ ॥

व्यापन्नानां बहूनां च रोधने बन्धनेपि वा । भिषङ्मिथ्याप्रचारेण प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४६ ॥

थोड़ी जगहमें बहुतसी गौओंके रोकने या बान्धनेके कारणसे अथवा वैद्यके अन्यथा चिकित्सा करनेसे गौ मरजावे तो प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ४६ ॥

गोवृषाणां विपत्तौ च यावन्तः प्रेक्षका जनाः । अनिवारयतां तेषां सर्वेषां पातकं भवेत् ॥ ४७ ॥

जो लोग गौ बैलको विपत्में फंसेहुए देखकर निवारण नहीं करतेहैं उनको पातकः लगताहै ॥ ४७ ॥

एको हतो यैर्बहुभिः समेतैर्न ज्ञायते यस्य हतोभिघातात् । दिव्येन तेषामुपलभ्य हंता निवर्त्तनीयो नृपसन्नियुक्तैः ॥ ४८ ॥

एका चेद्बहुभिः काचिद्दैवाद् व्यपादिता क्वचित् । पादं पादन्तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥ ४९॥

जब एकको इकट्ठेहुए बहुत लोगोंने मारा हो, पर यह नहीं जानपड़े कि किसके चोटसे यह मराहै तब अग्निपरीक्षा आदि शपथसे अपराधीको पहचानकर राजा दण्ड देवे ॥ ४८ ॥ यदि दैवयोगसे एक गौको बहुत लोगोंने मिलकर मारा होवे तो सब लोग पृथक् पृथक् गोहत्याका चौथाई प्रायश्चित्त करें ※ ॥ ४९ ॥

हते तु रुधिरं दृश्यं व्याधिग्रस्तः कृशो भवेत् । लाला भवति दृष्टेषु एवमन्वेषणं भवेत् ॥ ५० ॥

ग्रासार्थं चोदितो वापि अध्वानं नैव गच्छति । मनुना चैवमेकेन सर्वशास्त्राणि जानता ॥ ५१ ॥

प्रायश्चित्तं तु तेनोक्तं गोघ्नश्चान्द्रायणं चरेत् । केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥ ५२ ॥

जब गौके शरीरमें रुधिर देख पड़े वह रोगी या दुर्बल हो जाय, उसके दाढ़ोंमेंसे लार गिरने लगे अथवा वह ग्रासके लिये बाहर निकलने पर मार्गमें नहीं चले तब जानना चाहिये कि किसीने इसको मारा है ॥ ५०-५१ ॥ सब शास्त्रोंको जाननेवालोंमें मुख्य मनुजीने गोहत्यारेके लिये चान्द्रायण व्रत प्रायश्चित्त कहाहै ॥ ५१-५२ ॥

द्विगुणे व्रत आदिष्टे दक्षिणा द्विगुणा भवेत् । राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ॥५३ ॥

अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् । यस्य न द्विगुणन्दानं केशश्च परिरक्षितः ॥ ५४ ॥

तत्पापं तस्य तिष्ठेत त्यक्त्वा च नरकं व्रजेत् । यत्किंचित्क्रियते पापं सर्वं केशेषु तिष्ठति ॥ ५५ ॥

यदि कोई मनुष्य प्रायश्चित्तके समय अपने केशोंको रखना चाहे तो वह दूना प्रायश्चित्त करै और दूनी दक्षिणा देवे ॥ ५२-५३ ॥ राजा या राजाके पुत्र अथवा बहुत वेद शास्त्रोंको जानने वाले ब्राह्मणको विना मुण्डनका प्रायश्चित्त बताना चाहिये ※ ॥ ५३-५४ ॥ यदि दोषी मनुष्य बालोंको रखकर दूना दान नहीं देवे तो उसका पाप नहीं छूटताहै और वह देह त्यागनेपर नरकमें जाताहै जो कुछ पाप किया जाताहै वह सब बालोंमें टिकताहै ॥ ५४-५५ ॥

※ यमस्मृति-५० श्लोक, संवर्तस्मृति-१४० श्लोक और लघुशङ्खस्मृति-६१ श्लोक । औषध, घी, तेल आदि चिकनी वस्तु अथवा भोजनकी वस्तु देनेसे यदि गौ अथवा ब्राह्मणको कष्ट या उनका मरण होजाय तो प्रायश्चित्त नहीं लगेगा । यमस्मृति-५१-५२ श्लोक । औषधके लिये तेल पिलाने, औषध खिलाने अथवा कांटा निकालनेसे गौ ब्राह्मणको कष्ट अथवा उनका मरण होजाय तो प्रायश्चित्त नहीं करना होगा । गलेमें रस्सी बान्धने, औषध देने, सन्ध्याके समय रक्षाके लिये रोक रखने अपना बान्ध रखनेसे गौके बछड़ेको कष्ट या उनका मरण हो तो दोष नहीं लगेगा । आपस्तम्बस्मृति-१ अध्यायके ३१-३२ श्लोक, संवर्तस्मृति-१३९ श्लोक और लघुशङ्खस्मृति-६० श्लोक । चिकित्साके लिये वशमें करनेपर अथवा मराहुआ गर्भ निकालनेके उद्योग करनेसे यदि गौ मरजाय तो प्रायश्चित्त नहीं लगेगा । आपस्तम्बस्मृति-१ अध्यायके ११-१२ श्लोक । यदि रक्षाके लिये औषध, नोन, घी, तेल आदि चिकनी वस्तु या पुष्टकारक भोजन देनेसे कोई प्राणी मरजाय तो देनेवालेको प्रायश्चित्त नहीं लगेगा; किन्तु प्रमाणसे अधिक नहीं देना चाहिये, यदि अधिक देनेके कारण प्राणी मरजायगा तो कृच्छ्र (व्रत) करना होगा ।

※ आपस्तम्बस्मृति-१ अध्यायके ३०-३१ श्लोक, संवर्त्तस्मृतिके १३८ श्लोक और लघुशङ्खस्मृतिके ५४ श्लोकमें इस श्लोकके समान है ।

※ यमस्मृतिके ५६-५७ श्लोक और लघुशङ्खस्मृतिके ५७-५८ श्लोकमें भी ऐसा है ।

(१९) शातातपस्मृति।

गोघ्नस्त्रीन्मासान् प्राजापत्यं कुर्याद्ध गोमतीं च जपेद्विद्याम् ॥ २६ ॥

गोवध करनेवाला ३ मास प्राजापत्य व्रत करके गोमती सूक्तका जप करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ २६ ॥

(२५) बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-१० अध्याय।

शूद्रवधेन स्त्रीवधो गोवधश्च व्याख्यातोऽन्यत्राऽऽत्रेय्या वधात् ॥ २५ ॥

धेन्वनडुहोश्च वधे धेन्वनडुहोरन्ते चान्द्रायणं चरेत् ॥ २६ ॥

स्त्रीवध अथवा गोवध करनेवालेके लिये शूद्रवधका प्रायश्चित्त करनेको कहा गयाहै; ऋतु स्नान कीहुई स्त्रीके वधको छोडके ॥ २५ ॥ गोवध करनेवाला गोदान करके और बैलवध करनेवाला बैल दान करके चान्द्रायण व्रत करे ॥ २६ ॥

पशु, पक्षी, कृमि, कीट आदि वध और वृक्ष, लता आदि नाशका प्रायश्चित्त ५.

(१) मनुस्मृति-११ अध्याय।

खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा। संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च ॥ ६९ ॥

गदहे, घोड़े, ऊंट, मृग, हाथी, बकरे, भेड़े, मछली, सांप अथवा भैंसेका वध करना संकरीकरण पाप है अर्थात् इनके वध करनेसे मनुष्य संकर होजातेहैं ॥ ६९ ॥

कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम्। फलैधःकुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम् ॥ ७१ ॥

कृमि, कीट (कृमि चिउंटी आदि छोटे कीड़े और कीट मक्खी आदि बड़े कीट) तथा पक्षियोंका वध करना; मद्य मिलीहुई वस्तुको खाना; फल, काठ तथा फूलकी चोरी करना और शीघ्र अधीर होजाना; ये सब मलिनीकरण अर्थात् मनुष्यको मलिन करनेवाले पाप हैं ॥ ७१ ॥

संकरापात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम्। मलिनीकरणीयेषु तप्तः स्याद्यावकैस्त्र्यहम् ॥ १२६ ॥

संकरीकरण और अपात्रीकरण पाप करनेवाले एक मास चान्द्रायण व्रत करनेसे और मलिनीकरण पाप करनेवाले यवके काढ़ेको पीकर ३ रात रहनेसे शुद्ध होतेहैं ॥ १२६ ॥

मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेव च। श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥ १३२ ॥

पयः पिबेत्त्रिरात्रं वा योजनं वाऽध्वनो व्रजेत्। उपस्पृशेत्स्रवन्त्यां वा सूक्तं वाब्दैवतं जपेत् ॥ १३३ ॥

बिलार, नेवल, नीलकण्ठ, मेढ़क, कुत्ते, गोह, उल्लूक अथवा काकवध करनेवाले शूद्रवधके समान प्रायश्चित्त करें ॥ १३२ ॥ अथवा ३ रात दूध पीकर रहें या ३ रात चार कोस भ्रमण करें अथवा तीन रात नदीमें स्नान करें या ३ रात आपोहिष्ठा आदि सूक्त जपें ॐ ॥ १३३ ॥

ॐ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय–२७० श्लोक और अत्रिस्मृतिके २२४–२२५ श्लोक। बिलार, नेवल, मेढ़क, कुत्ते और गोहका वध करनेवाले ३ दिन दूध पीकर रहें अथवा पादकृच्छ्र करें। बृहद्विष्णुस्मृति-५० अध्यायके ३०–३२ अङ्क। बिलार, नेवल, मेढ़क, कुत्ते, गोह, उल्लूक अथवा काकका वध करनेवाला, ३ रात उपवास करे। उशनस्मृति ९ अध्यायके ७–८ श्लोक। मेढ़क, नेवल, काक, कुत्ते अथवा बिलारका वध करनेवाला ३ रात दूध पीकर रहे अथवा ३ रात चार कोस भ्रमण करे। पाराशरस्मृति—६ अध्यायके ४–१० श्लोक। काकवध करनेवाला दोनों सन्ध्याओंमें जलके बीच प्राणायाम करनेसे शुद्ध होताहै उल्लूकवध करनेवाला दिन भर पका अन्न नहीं खावे और ३ काल उपवास करे, नीलकण्ठ और बिलार अथवा गोहवध करनेवाला दिनरात निराहार रहे। संवर्त्तस्मृतिके १४६–१५० श्लोक। काक अथवा नीलकण्ठका वध करनेवाला ३ दिन उपवास करे, उल्लूकवध करनेवाला एक रात निराहार रहे और मेंढ़क वा बिलारवध करनेवाला ३ उपवास करके ब्राह्मणभोजन करावे। गौतमस्मृति—२३ अध्याय–७ अङ्क। मेंढ़क, नेवल अथवा काकका वध करनेवाला शूद्रवधका प्रायश्चित्त करे। बौधायनस्मृति—१ प्रश्न–१० अध्याय,–२८ अङ्क। काक, उल्लूक मेंढ़क, कुत्ता और नेवल वध करनेवाले शूद्रवधका प्रायश्चित्त करे। शातातपस्मृति—१६ अङ्क। काक, कुत्ते, मेंढ़क अथवा नेवलको वध करनेवाला प्राजापत्य व्रत करे। (जानकर तथा अनजानमें कियेहुए छोटे बड़े पापोंके अनुसार प्रायश्चित्तकी कल्पना करना चाहिये)।

अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तम: । पलालभारकं षण्ढे सैसकं चैकमाषकम् ॥ १३४ ॥
घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणन्तु तित्तिरौ । शुके द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायणम् ॥ १३५ ॥
हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च । वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम् ॥ १३६ ॥

सांप वध करनेवाला लोहेका चोखा दण्ड ब्राह्मणको देवे, नपुंसक सर्प (डोंड सांप) वध करनेवाला एक बोझा पुआर और एक मासा सीसा दान करे ❀ ॥१३४॥सूअर वध करनेवाला घीसे भराहुआ घड़ा दान देवे; तित्तिर वध करनेवाला १ द्रोण तिल, तोता वध करनेवाला २ वर्षका बछड़ा और क्रौंच पक्षी वध करनेवाला ३ वर्षका बछड़ा दान करे ◎ ॥१३५॥ हंस, बलाका (बगुलाका भेद), बगुला, मयूर, वानर, बाज अथवा भास वध करनेवाला ब्राह्मणको १ गौ दान देवे ◎ ॥ १३६ ॥

वासो दद्याद्धयं हत्वा पञ्च नीलान्वृषान्गजम् । अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम् ॥ १३७ ॥

घोडा वध करनेवाला वस्त्र, हाथी वध करनेवाला ५ नील वृषभ बकरा, अथवा भेड़ा वध करनेवाला एक बैल और गदहावध करनेवाला १ वर्षका बछड़ा दान करे ❀ ॥१३७॥

❀ गौतमस्मृति—२३ अध्यायके १० अङ्कमें ऐसा ही है। वृहद्विष्णुस्मृति—५० अध्यायके ३४-३५ अङ्क। सर्पवध करनेवाला लोहेका चोखा दण्ड और नपुंसक सर्पका वध करनेवाला एक भार पुआर दान-करे। याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय-२७३ श्लोक। सर्प वध करनेवाला लोहेका दण्ड दान देवे और नपुंसक सर्प वध करनेवाला रांगा और सीसा दानकरे। पाराशरस्मृति—६ अध्याय-९ श्लोक। सांप, अजगर अथवा डोंड़ सर्पका वध करनेवाला ब्राह्मणको खिचड़ी खिलाकर लोहेका दण्ड दक्षिणा देवे। उशनस्मृति-९ अध्याय-९ श्लोक। सर्पवध करनेवाला लोहेका चोखा दण्ड दानकरे। संवर्त्तस्मृति—१५० श्लोक। सर्पवध करनेवाला ३ रात उपवास करके ब्राह्मणको खिलावे। शङ्खस्मृति-१७ अध्याय-११ श्लोक। सर्पवध करनेवाला ७ दिन ब्रह्महत्याका व्रत करे।

◎ याज्ञवल्क्यस्मृति-३अध्यायके२७१-२७३और २७४ श्लोक और वृहद्विष्णुस्मृति-५०अध्यायके ३६-३९ अङ्कमें ऐसा ही है। उशनस्मृति-९ अध्यायका १० श्लोक प्रायः ऐसा ही है। संवर्त्तस्मृति-१४४ और १४७ श्लोक। सूकर वध करनेवाला ३ रात उपवास करे, और तित्तिर, तोता या क्रौंच वध करनेवाला १ रात निराहार रहे। पाराशरस्मृति-६ अध्याय-२, ३, ४ और १४ श्लोक। क्रौंच वध करनेवाला एक रात उपवास करे, तोता वध करनेवाला दिनभर निराहार रहे, तित्तिर वध करनेवाला दोनों सन्ध्याओंमें जलके भीतर प्राणायाम करे और सूअर वध करनेवाला एक रात उपवास करके विना जोतीहुई भूमिका अन्न भोजन करे। गौतमस्मृति-२३ अध्याय-१० अङ्क। सूअर वध करनेवाला घीसे भराहुआ घड़ा दान देवे।

◎ वृहद्विष्णुस्मृति—५० अध्यायके ३३ अङ्कमें ऐसाही है। याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय २७२ श्लोक। हंस, मयूर, वानर, बाज या भासका वध करे तो एक गौ दान देवे। उशनस्मृति—९ अध्याय ११, श्लोक। हंस, बलाका, बगुला, वानर अथवा भासका वध करनेवाला एक गौदान करे संवर्त्तस्मृति १४३,१४६ और १४७ श्लोक। वानर वध करे तो ७ रात निराहार रहे; हंस बलाका, मयूर या भासका वध करे तो ३ रात उपवास करे और बाजको मारे तो १ रात निराहार रहे। पाराशरस्मृति—६ अध्याय २, ३, ५, ८, और १३ श्लोक। हंस वध करनेवाला १ रात और बलाका तथा बगुलाका वध करनेवाला दिन भर भोजन नहीं करे; बाजको मारनेवाला दिन भर पकाया अन्न नहीं खावे और रातभर निराहार रहे; भास वध करनेवाला एक रात उपवास करे और वानर वध करे तो ३ रात निराहार रहकर ब्राह्मण भोजन करावे। बौधायनस्मृति-१ प्रश्न १० अध्याय, २८ अंक। हंस, मयूर अथवा भासका वध कर-नेवाला शूद्रवधका प्रायश्चित्त करे।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय २७१ और २७३ श्लोक। घोड़ा वध करनेवाला वस्त्र; हाथी वध करनेवाला ५ नील वृषभ और बकरा, भेड़ा अथवा गदहा वध करनेवाला ३ वर्षका बछड़ा दान करे। वृहद्विष्णुस्मृति ५० अध्यायके २५-२८ अंक। घोड़ेका वध करे तो वस्त्र, हाथीका वध करे तो ५ नील वृषभ और गदहा बकरा या भेड़ा वध करे तो १ वर्षका बछड़ा दान देवे पाराशरस्मृति ६ अध्याय १२ और १४ श्लोक। घोड़ा अथवा हाथी वध करनेवाला ७ उपवास करके ब्राह्मणको खिलावे और बकरा या भेड़ा वध करनेवाला एक उपवास करके विना हलसे जोतीहुई भूमिका अन्न भोजन करे। वृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र ६ अध्याय १६१ श्लोक। भेड़ अथवा बकरा वध करनेवाला एक बैल दान करे संवर्त्तस्मृति—१४३—१४४ श्लोक। घोड़े या हाथीका वध करे तो ७ रात निराहार रहे और गदहेको मारे तो ३ उपवास करे। अत्रिस्मृति २२३व २२४ श्लोक। घोड़े, हाथी अथवा गदहेका वध करनेवाला शूद्रवधका प्रायश्चित्त करे। उशनस्मृति ९ अध्याय ८ श्लोक। घोडेको मारे तो १२ दिन प्राजापत्य व्रत करे

क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् । अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् ॥१३८॥

कच्चे मांस खानेवाले (बाघ आदि) मृगोंका वध करनेवाला दुग्धवती गौ; कच्चे मांस नहीं खानेवाले (हरिन आदिका) वध करनेवाला १ बछिया और ऊंट वध करनेवाला १ रत्ती सोना दान देवे ❀ ॥ १३८ ॥

दानेन वधनिर्णेकं सर्पादीनामशक्नुवन् । एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये ॥ १४० ॥

जो द्विज ऊपर कहीहुई रीतिसे सांप आदिमेंसे किसीका वध करके दान नहीं कर सके वह कृच्छ्र (प्राजापत्य) व्रत करे ❀ ॥ १४० ॥

अस्थिमतां तु सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे । पूर्णे चानस्यनस्थ्नां तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥ १४१ ॥
किंचिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे । अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥१४२॥

हड्डीवाले जीव (गिर्गिट आदि) एक हजार और विना हड्डीवाले जीव (खटमल आदि) एक गाड़ी वध करनेवाले मनुष्य शूद्र हत्या करनेका प्रायश्चित करे ॥ १४१ ॥ यदि हड्डीवाले एक जीवको वध करे तो ब्राह्मणको कुछ दान देकर और विना हड्डीवाले एक जीवको मारे तो केवल प्राणायाम करके शुद्ध हो जावे ❀ ॥ १४२ ॥

फलदानान्तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्छतम् । गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम् ॥१४३॥
अन्नाद्यजानां सत्त्वानां रसजानां च सर्वशः । फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम् ॥ १४४ ॥
कृष्टजानामोषधीनां जातानां च स्वयं वने । वृथालम्भेऽनुगच्छेद्गां दिनमेकम्पयोव्रतः ॥ १४५ ॥

फल देनेवाले वृक्ष (आम आदि), गुल्म (ऊख, सरपता आदि), वल्ली, लता (गुरूचि आदि) अथवा पुष्पित वीरुध (कुम्हड़े आदिकी लता काटनेवाले एकसौ वार गायत्री आदि ऋचाको जपें ॥ १४३ ॥ अन्न, रस, फल अथवा फूलमें उत्पन्न जन्तुके वध करनेका पाप घी खानेसे छूटता है ॥ १४४ ॥ भूमि जोतनेसे उत्पन्न धान आदि औषधीको या वनमें स्वयं उत्पन्न नीवार आदिको विना कारण काटनेवाला दूधके आहारसे रहकर एक दिन गौओंके साथसाथ फिरे ❀ ॥ १४५ ॥

(१३) पाराशरस्मृति--६ अध्याय ।

क्रौंचसारसहंसांश्च चक्रवाकं च कुक्कुटम् । जालपादं च शरभं हत्वाऽहोरात्रतः शुचिः ॥ २ ॥

सारस, चकवा, मुर्गा, जालपाद (पंजेमें जालके समान महीन खाल रखनेवाले बत्तक आदि), शरभ (८ पदका मृगेन्द्र), [क्रौंच और हंस] ▦; इनको वध करनेवाले एक दिनरात उपवास करनेपर शुद्ध होतेहैं ❀ ॥ २ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति३ अध्यायके २७२–२७३ श्लोक, उशनस्मृति९ अध्यायके १२ श्लोक और बृहद्विष्णुस्मृति ५० अध्यायके ३९–४० और ४१ अंकमेंभी ऐसा है, बृहद्विष्णुस्मृतिमें है कि ऊंट वध करनेवाला १ रत्ती सोना देवे । संवर्तस्मृति—१४३ श्लोक । ऊंट वध करे तो ७ रात निराहार रहे । पाराशरस्मृति ६ अध्याय १२ श्लोक । ऊंट वध करनेवाला ७ रात उपवास करके ब्राह्मण भोजन करानेपर शुद्ध होताहै । अत्रिस्मृति २२३ श्लोक । ऊंट वध करनेवाला शूद्र वधका प्रायश्चित्त करे ।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति ३अध्यायके २७४ श्लोकमें भी ऐसा है।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्यायके २६९ और २७५ श्लोक, बृहद्विष्णुस्मृति ५० अध्यायके ४६--४७ श्लोक और गौतमस्मृति २३ अध्यायके ८–९ अङ्कमें भी ऐसा है । शङ्खस्मृति १७ अध्याय १२ श्लोक । हड्डी-वाले एक हजार जीव और विना हड्डीवाले एक गाडी जीवोंको मारनेवाला एक वर्षतक ब्रह्म-हत्याका प्रायश्चित्त करे । उशनस्मृति ९ अध्यायके १३ श्लोक और संवर्तस्मृतिके १५१ श्लोकमें मनुस्मृतिके १४२ श्लोकके समान है ।

❀ बृहद्विष्णुस्मृति–५०अध्यायके ४८–५०श्लोकमें ऐसा ही है।याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्यायके२७५-२७६ श्लोकमें प्रायः ऐसा है । उशनस्मृति–९ अध्यायके १४ श्लोकमें मनुस्मृतिके १४३ श्लोकके समान है । शंखस्मृति–१७ अध्याय–५१ और ५३ श्लोक । गुल्म या लता छेदन करनेवाला ३ रात और फलदार वृक्ष छेदन करनेवाला एक वर्ष व्रत करे ।

▦ जिनका वर्णन दूसरी जगह हो चुका है वे [ ] ऐसे कोष्ठके भीतर लिखे गयेहैं ।

❀ संवर्त्तस्मृति–१४६–१४८ श्लोक । सारस वध करनेवाला ३ दिन निराहार रहे; चकवा, जालपाद अथवा मुर्गेका वध करे तो १ रात उपवास करे । बृहद्विष्णुस्मृति–५०अध्याय–३३अङ्क । चकवा वध करनेवाला ब्राह्मणको १ गौ देवे । बौधायनस्मृति–१ प्रश्न–१०अध्याय,–२८अंक । चकवाको मारे तो शूद्रवधका प्रायश्चित्त करे । अत्रिस्मृति--२२३--२२४ श्लोक । शरभका वध करनेवाला शूद्र वधका प्रायश्चित्त करे ।

बलाकाटिट्टिभौ वापि शुकपारावतावऽपि । अटीनवकघाती च शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥ ३ ॥

टिटहरी; पारावत (कबूतर), अटीनवक (एकप्रकारका बगुला) [बलाका और तोता]; इनके वध करनेवाले दिनभर निराहार रहकर रातमें भोजन करनेसे शुद्ध होतेहैं ❀ ॥ ३ ॥

वृककाककपोतानां सारीतित्तिरघातकः । अन्तर्जल उभे सन्ध्ये प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

वृक पक्षी, कपोत (कबूतरविशेष), मैना, [काक और तित्तिर] इनका वध करनेवाले दोनों सन्ध्या-ओंमें जलमें प्राणायाम करनेसे शुद्ध होजातेहैं ❁ ॥ ४ ॥

गृध्रश्येनशशादीनामुलूकस्य च घातकः । अपक्काशी दिनं तिष्ठेत्त्रिकालं मारुताशनः ॥ ५ ॥

गीध, खरहे, [बाज अथवा उल्लूक] का वध करनेवाला दिन भर पक्का अन्न नहीं खावे और तीन काल उपवास करे ✿ ॥ ५ ॥

वल्गुलीचटकानां च कोकिलाखञ्जरीटकान् । लावकान् रक्तपादांश्च शुध्यते नक्तभोजनात् ॥ ६ ॥

वल्गुली, गौरैया, कोइल, खञ्जरीट, लावक अथवा लाल पगवाले पक्षीको मारनेवाला दिनभर निराहार रहकर रातमें भोजन करनेसे शुद्ध होताहै ✾ ॥ ६ ॥

कारण्डवचकोराणां पिङ्गलाकुररस्य च । भारद्वाजादिकं हत्वा शिवं संपूज्य शुद्ध्यति ॥ ७ ॥

कारण्डव, चकोर, पिंगला (छोटा उल्लू), कुररी अथवा भारद्वाज (व्याघ्राट) आदिका वध करने-वाला शिवकी पूजा करनेसे शुद्ध होजाताहै ✽ ॥ ७ ॥

शिशुमारं तथा गोधां हत्वा कूर्मं च शल्लकम् । वृन्ताकफलभक्षी वाप्यहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ १० ॥

सोंस, कछुए, शाहिल और (गोह)का वध करनेवाले दिन रात निराहार रहनेसे शुद्ध होतेहैं ❋ ॥ १० ॥

वृकजम्बुकऋक्षाणां तरक्षूणां च घातकः । तिलप्रस्थं द्विजे दद्याद्वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ ११ ॥

भेडिया, सियार, भालू अथवा तरक्षू (चीता) का वध करे तो ब्राह्मणको एक सेर तिल देवे और ३ दिन उपवास करे ❖ ॥ ११ ॥

गजस्य चतुरङ्गस्य महिषोष्ट्रनिपातने । शुद्ध्यते सप्तरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥ १२ ॥

भैंसे [हाथी, घोड़े अथवा ऊंट] का वध करनेवाला ७ रात उपवास करके ब्राह्मणको भोजन करानेपर शुद्ध होतेहैं ❃ ॥ १२ ॥

कुरङ्गवानरं सिंहं चित्रं व्याघ्रं च घातयेत् । शुद्ध्यते स त्रिरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥ १३ ॥

कुरङ्ग, मृग, सिंह, चित्र मृग, बाघ और [बानर] का वध करनेवाले ३ उपवास करके ब्राह्मणको भोजन करानेसे शुद्ध होतेहैं ▣ ॥ १३ ॥

(४ क) बृहद्विष्णुस्मृति–५० अध्याय ।

हत्वा मूषकमन्यतमसुपोषितः कृसरान्नं भोजयित्वा लोहदण्डं दक्षिणां दद्यात् ॥ ३१ ॥

अनुक्तमृगवधे त्रिरात्रं पयसा वर्त्तेत ॥ ४२ ॥

❀ संवर्त्तस्मृति—१४७–१४८ श्लोक । पारावत अथवा टिटहरी वध करे तो एक रात निराहार रहे । उशनस्मृति—९ अध्याय–११ श्लोक । टिटहरीको वध करे तो ब्राह्मणको एक गौ दान देवे । बौधायनस्मृति—१प्रश्न–१० अध्याय,–२८ अङ्क । टिटहरीको मारनेवाला शूद्रवधका प्रायश्चित्त करे ।

❁ संवर्त्तस्मृति—१४७–१४८ श्लोक । मैना वध करनेवाला एकरात निराहार रहे ।

✿ संवर्त्तस्मृति—१४७–१४८ श्लोक । गीध वध करनेवाला एकरात उपवास करे ।

✾ संवर्तस्मृति—१४८ श्लोक । कोइल वध करे तो एक रात निराहार रहे ।

✽ संवर्तस्मृति—१४६ श्लोक । कराण्डव वध करनेवाला ३ दिन उपवास करे ।

❋ शंखस्मृति—१७अध्याय–२२श्लोक । गोह, कछुए, शाहिल, गेंडे और खरहे भक्ष्य हैं; किन्तु इनको वध करनेवाले (ऊपरके श्लोकमें लिखाहुआ) एक वर्ष तक ब्रह्महत्याका व्रत करें । बृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र–६ अध्याय–१६६ श्लोक । खरगोश, गोह शाहिल अथवा कछुएका वध करनेवाला दिनरात उपवास करनेसे शुद्ध होताहै ।

❖ संवर्त्तस्मृति–१४४ श्लोक । भालूका वध करनेवाला ३ रात उपवास करनेपर शुद्ध होताहै ।

❃ संवर्तस्मृति–१४३ श्लोक । भैंस वध करनेवाला द्विज ७ रात निराहार रहे ।

▣ अत्रिस्मृति–२२३–२२४ श्लोक । सिंह अथवा शार्दूलका वध करनेवाला शूद्रवधका प्रायश्चित्त करे संवर्त्तस्मृति–१४४ श्लोक । बाघ या सिंहका वध करे तो तीन रात निराहार रहे ।

चूहेका वध करे तो एक रात उपवास करके ब्राह्मणको खिचडी खिलावे और लोहेका दण्ड दक्षिण देवे ॥ ३१ ॥ अनुक्त मृगका वध करनेवाला केवल दूध पीकर ३ रात रहे ॥ ४२ ॥

(१९) शङ्खस्मृति-१७ अध्याय ।

पशून्हत्वा तथा ग्राम्यान् मासं कृत्वा विचक्षणः । आरण्यानां वधे तद्वत्तदर्धन्तु विधीयते ॥१०॥

गांवमें रहनेवाले पशुका वध करनेवाला एक महीने तक और बनैले पशुको मारनेवाला पंद्रह दिन तक ब्रह्महत्याका व्रत करे ॥ १० ॥

हत्वा द्विजं तथा सर्पं जलेशयबिलेशयान् । सप्तरात्रं तथा कुर्याद्व्रतं ब्रह्महणस्तथा ॥ ११ ॥

पक्षी, सर्प, जलमें रहनेवाले मछली आदि जीव अथवा बिलमें रहनेवाले चूहे आदि जीवका वध करनेवाला ७ दिन ब्रह्महत्याका व्रत करे ॥ ११ ॥

मांस भक्षणका प्रायश्चित्त ६.

(१) मनुस्मृति-११ अध्याय ।

शुष्काणि भुक्त्वा मांसानि भौमानि कवकानि च । अज्ञातं चैव सूनास्थमेतदेव व्रतं चरेत् ॥ १५६ ॥

सूखा मांस, भूमिपर जमाहुआ कवक, विना जाने हुए जानवरका मांस अथवा कसाईके घरका मांस खानेवाला ऊपरके श्लोकमें लिखा हुआ चन्द्रायण व्रत करे ॥ १५६ ॥

क्रव्यादसूकरोष्ट्राणां कुक्कुटानां च भक्षणे । नरकाकखराणां च तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥ १५७ ॥

कचे मांस खानेवाले पशु या पक्षीका मांस; सूअर, ऊंट, मुर्गे; मनुष्य काक अथवा गदहेका मांस खानेवाला मनुष्य तप्तकृच्छ्र व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १५७ ॥

(४ क) बृहद्विष्णुस्मृति-५१ अध्याय ।

लशुनपलाण्डुगृञ्जनैतद्गन्धिविड्वराहग्राम्यकुक्कुटवानरगोमांसभक्षणे च ॥ ३ ॥

वानर या गौका मांस [लहसुन, प्याज, गाजर या इनके गन्धयुक्त पदार्थ, विष्ठा खानेवाले सूअर अथवा मुर्गे] खानेवाला १ अङ्कमें लिखाहुआ चान्द्रायण व्रत करे ॥ ३ ॥

पाराशरस्मृति-६ अध्याय-९श्लोक । चूहेका वध करनेवालेको उचित है कि ब्राह्मणको खिचडी खिलाकर लोहेका दण्ड दक्षिणा देवे । संवर्त्तस्मृति-१५० श्लोक । चूहेको मारे तो ३ रात उपवास करके ब्राह्मणभोजन करावे । शातातपस्मृति-१६ अङ्क । चूहेका वध करनेवाला प्राजापत्य व्रत करे । गौतमस्मृति २३अध्याय-७ अंक । चूहेका वध करनेवाला शूद्रवधका प्रायश्चित्त करे ।

संवर्त्तस्मृति-१४५ श्लोक और पाराशरस्मृति-६ अध्याय-१५ श्लोक । वनमें चरनेवाले मृगोंमेंसे किसीका वध करनेवाला जातवेदस मन्त्रको जपताहुआ दिन रात खड़े रहकर उपवास करे ।

याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय—२७० श्लोक और अत्रिस्मृति-२२४-२२५ श्लोक । पक्षीका वध करनेवाला नित्य एक बार दूध पीकर ३ दिन रहे अथवा पादकृच्छ्र व्रत करे । बृहद्विष्णुस्मृति-५० अध्याय ३२ अंक । मछलीको मारनेवाला ३ रात उपवास करे ।

बृहद्विष्णुस्मृति-५१ अध्याय-२६-२७अंक । सूखा मांस विना जानेहुए जानवरका मांस या कसाई के घरका मांस खानेवाला चान्द्रायण व्रत करे ।

मनुस्मृति—५ अध्यायके १९-२० श्लोक । विष्ठा खानेवाले सूअर या मुर्गेका मांस जानकर खानेवाले द्विज पतित हो जातेहैं; अनजानमें खानेवालेको कृच्छ्रसातपन या यतिचान्द्रायण व्रत करना चाहिये । याज्ञवल्क्यस्मृति-१अध्याय१७६श्लोक । विष्ठा खानेवाले सूअर अथवा मुर्गेका मांस जानकर खावे तो चान्द्रायण व्रत करे । बृहद्विष्णुस्मृति-५१ अध्याय-२, ३,२६ और २८ अङ्क विष्ठा खानेवाले सूअर, मुर्गे,ऊंट, काक अथवा गदहेका मांस खानेवाला चान्द्रायण व्रत और कचे मांस खानेवाला, पशुपक्षीका मांस खानेवाला तप्तकृच्छ्र व्रत करे । शंखस्मृति-१७ अध्यायके २०-२१ श्लोक । मनुष्य, विष्ठा खानेवाले सूअर, गदहे, ऊंट, कच्चेमांस खानेवाले जीव अथवा मुर्गेका मांस खानेवाला एक वर्षतक ब्रह्महत्याका व्रत करे । संवर्तस्मृति-१९६ और २०० श्लोक । मुर्गे अथवा विष्ठा खानेवाले सूअरका मांस द्विज खावे तो सान्तपन व्रत करे और मनुष्यका मांस खावे तो चान्द्रायण करे । गौतमस्मृति—२४ अध्याय-२ अङ्क । ग्रामसूकर, ऊंट, मुर्गे या गदहेका मांस खानेवाला तप्तकृच्छ्र व्रत करे । उशनस्मृति-९ अध्यायके ३०-३१ श्लोक । मुर्गेका मांस खालेवे तो प्राजापत्य व्रत करे ।

संवर्तस्मृति-२०० श्लोक और पाराशरस्मृति-११ अध्याय-१ श्लोक । यदि ब्राह्मण गोमांस खालेवे तो चान्द्रायण व्रत करे । यमस्मृति-३० श्लोक । गोमांस भक्षण करनेवाला ब्राह्मण तप्तकृच्छ्र व्रत-

कलविङ्कप्लवचक्रवाकहंसरज्जुदालसारसदात्यूहशुकसारिकाबकबलाकाकोकिलखञ्जरीटाशने त्रिरात्रमुपवसेत् ॥ २९ ॥

गवरा, पनडुब्बी, चकवा, हंस, रज्जुदाल, सारस, चातक, तोता, मैना, बगुला, बलाका, कोकिल, अथवा खञ्जरीटका मांस खावे तो ३ रात उपवास करे ❀ ॥ २९ ॥

एकशफोभयदान्ताशने च ॥ ३० ॥

एक खुरवाले (घोड़े आदि) तथा दोनों ओरके दांतोंसे खानेवाले (बकरे आदि) पशुका मांस खानेवाला भी ३ रात निराहार रहे ◎ ॥ ३० ॥

तित्तिरकपिञ्जललावकवर्त्तिकामयूरवर्जं सर्वपक्षिमांसाशने चाहोरात्रम् ॥ ३१ ॥

तित्तिर, कपिञ्जल, लवा, वर्त्तिका और मयूरसे भिन्न सब पक्षियोंके मांस खानेवाले दिनरात उपवास करें ॥ ३१ ॥

कीटाशने दिनमेकं ब्रह्मसुवर्च्चलां पिबेत् ॥ ३२ ॥

कीट भोजन करलेवे तो ब्राह्मी शाकका रस पीकर दिन भर रहे ॥ ३२ ॥

(६क) उशनस्स्मृति-९ अध्याय ।

नकुलोलकमार्जारं जग्ध्वा सान्तपनं चरेत् । श्वानं जग्ध्वाथ कृच्छ्रेण शुभर्क्षेण च शुध्यति ॥ २३ ॥

नेवल, उल्लू और बिलारका मांस खानेवाले सान्तपन व्रत करें, कुत्तेका मांस खानेवाला कृच्छ्र करके शुभ नक्षत्रके दर्शन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २३ ॥

रक्तपादांस्तथा जग्ध्वा सप्ताहं चैतदाचरेत् । मृतमांसं वृथा चैवमात्मार्थं वा यथाकृतम् ॥ २९ ॥
भुक्त्वानसिश्चैरेदेतत्तत्पापस्यापनुत्तये । कपोतं कुञ्जरं शिग्रु कुक्कुटं रजकां तथा ॥ ३० ॥

रक्तपादका मांस, मृतक जीवका मांस, विना यज्ञादिका वृथा मांस अथवा अपने लिये पकाया हुआ मांस खावे तो अपनी शुद्धिके लिये (२८ श्लोकमें लिखे हुए) गोमूत्र और उबाला हुआ यवका रस पीकर ७ दिन रहकर शुद्ध होय ⚘ ॥ २९-३० ॥

प्राजापत्यं चरेज्जग्ध्वा तथा कुम्भीरमेव च ॥ ३१ ॥

कपोत (कबूतर), कुञ्जर (हाथी), रजका कुम्भीर [शिग्रुवा मुर्गे] का मांस खानेवाला प्राजापत्य व्रत करे ▦ ॥ ३०-३१ ॥

(१३) पाराशरस्मृति-११ अध्याय ।

मण्डूकं भक्षयित्वा तु मूषिकामांसमेव च । ज्ञात्वा विप्रस्त्वहोरात्र यावकान्नेन शुद्धयति ॥ १२ ॥

मेंढक अथवा मूसेका मांस खानेवाला ब्राह्मण जान लेनेपर उबालाहुआ यवका रस पीकर दिनरात रहनेसे शुद्ध होता है ✿ ॥ १२ ॥

-करके मौर्वी सूत्रके होम करनेसे शुद्ध होताहै । बृहद्यमस्मृति-२ अध्यायके ३-४ श्लोक । गोमांस भक्षण करनेवाला ब्राह्मण तप्तकृच्छ्र व्रत करके मौंजीहोम करनेपर शुद्ध होजाताहै और गोमांस भक्षण करनेवाले क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा अनुलोमज वर्णसंकर चान्द्रायण व्रत करें ।

❀ उशनस्स्मृति-९ अध्याय-२४, २५, २७ और २८ श्लोक । हंस, बलाका, चकवा, सारस या तोताका मांस खानेवाला १२ दिन निराहार रहे; कोइलका मांस खानेवाला एक मासतक गोमूत्र और उबालाहुआ यवका रस पीकर रहनेसे शुद्ध होताहै । शंखस्मृति-१७ अध्यायके २३-२४ श्लोक । हंस खञ्जरीट, बलाका, तोता, मैना, चकवा अथवा पनडुब्बीका मांस खानेवाला एक मासतक ब्रह्महत्याका व्रत करे और फिर इनमेंसे किसीका मांस नहीं खावे ।

◎ शङ्खस्मृति-१७ अध्याय २८ श्लोक । दोनों ओरके दांतोंसे खानेवाले (बकरे आदि) तथा एक खुर वाले (घोड़े आदि) का मांस खानेवाला १५ दिनतक ब्रह्महत्याका व्रत करे ।

⚘ शंखस्मृति—१७ अध्याय—२६ और २८-२९ श्लोक । रक्तपाद पक्षीका मांस खानेवाला ७ दिन तक ब्रह्म हत्याका व्रत करे । विना यज्ञादिकका वृथा मांस मृतकका मांस खावे तो १५ दिन ब्रह्महत्याका व्रत करे ।

▦ शंखस्मृति-१७ अध्याय-२१ श्लोक । हाथीका मांस खानेवाला एक वर्षतक ब्रह्म हत्याका व्रत करे ।

✿ उशनस्स्मृति—९ अध्यायके २७—२८ श्लोक । मेंडकका मांस खानेवाला एक मासतक गोमूत्र और उबाला हुआ यवका रस पीकर रहनेसे शुद्ध होताहै । शंखस्मृति-१७ अध्याय २४ श्लोक । मेंडकका मांस खालेवे तो एक मास तक ब्रह्महत्याका व्रत करे और फिर उसका मांस नहीं खावे ।

(१६) शङ्खस्मृति-१७ अध्याय।

गोधेयकुञ्जरोष्ट्रं च सर्वं पाञ्चनखं तथा। क्रव्यादं कुक्कुटं ग्राम्यं कुर्यात्संवत्सरव्रतम् ॥ २१ ॥
हंसं मद्गुरकं काकं काकोलं खञ्जरीटकम्। मत्स्यादांश्च तथा मत्स्यान्बलाकं शुकसारिके ॥ २३ ॥
चक्रवाकं प्लवं कोकं मण्डूकं भुजगं तथा। मासमेकं व्रतं कुर्यादितश्चैव न भक्षयेत् ॥ २४ ॥

गोहके बच्चे, सम्पूर्ण पञ्चनखवाले [हाथी, ऊंट, कच्चे मांस खानेवाले जीव या मुर्गे] का मांस खानेवाला एक वर्ष तक ब्रह्महत्याका व्रत करे ॥ २१ ॥ मद्गुर, काक, काकोल, मछलीको खानेवाली मछली, कोक, सर्प [हंस, खञ्जरीट, बलाक, तोता या मैना, चकवा, पनडुब्बी या मेंढक] का मांस खानेवाला एक महीनेतक ब्रह्महत्याका व्रत करे और फिर इनका मांस नहीं खावे ॐ ॥ २३-२४ ॥

जलेचरांश्च जलजान् मुखाग्रनखविष्किरान्। रक्तपादाञ्जालपादान् सप्ताहं व्रतमाचरेत् ॥ २६ ॥

जलमें विचरनेवाले, जलमें उत्पन्न होनेवाले चोंच तथा नखसे खोदनेवाले, जालके समान पैरवाले, [और रक्तपाद] पक्षीका मांस खानेवाले ७ दिन तक ब्रह्महत्याका व्रत करें ॐ ॥ २६ ॥

भुक्त्वा चैवोभयदतं तथैकशफदंष्ट्रिणः। तथा भुक्त्वा तु मांसं वै मासार्द्धं व्रतमाचरेत् ॥ २८ ॥
स्वयं मृतं वृथा मांसं माहिषं त्वाजमेव च ॥ २९ ॥

[स्वयं मरे हुए जीवका मांस, भैंसे] तथा बकरेका मांस [वृथा मांस, दोनों ओरके दांतोंसे खानेवाले, एक खुरवाले अथवा एक दांतवाले पशुका मांस] खानेवाले १५ दिनतक ब्रह्महत्याका व्रत करें ॥ २८-२९ ॥

अभक्ष्य भक्षणका प्रायश्चित्त ७.

(१) मनुस्मृति-५ अध्याय।

छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम्। पलाण्डुं गृञ्जनं चैव मत्या जग्ध्वा पतेद् द्विजः ॥१९ ॥
अमत्यैतानि षड् जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत्। यतिचान्द्रायणं वापि शेषेषूपवसेदहः ॥ २० ॥

छत्राक अर्थात् वर्षाकालमें काठ तथा भूमिपर उत्पन्न छत्ता, लहशुन, पियाज, गाजर [विष्ठा खानेवाले सूअर और गांवके मुर्गेका मांस] जानकर खानेवाले द्विज पतित होजातेहैं; किन्तु अज्ञानसे इन छवोंको खानेवाले कृच्छ्रसान्तपन अथवा यतिचान्द्रायण व्रत करें, इनसे भिन्न (लाल गोंद आदि) खानेवाले एक दिन निराहार रहें ॐ ॥ १९-२० ॥

११ अध्याय।

ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः। गर्हितान्नाद्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट् ॥ ५७ ॥

ॐ उशनस्मृति-९ अध्यायके २५-२८ श्लोक। मछलीका मांस खानेवाला १२ दिनतक निराहार रहे; सर्पका मांस खानेवाला एक मासतक गोमूत्र और उबालाहुआ यवका रस पीकर रहनेसे शुद्ध होताहै।

ॐ उशनस्मृति-९ अध्यायके २५-२६ श्लोक। जालके समान पैरवाले (बत्तक आदि) पक्षीका मांस खालेवे तो १२ दिन निराहार रहे। २८-२९ श्लोक। जलमें विचरनेवाले तथा जलमें उत्पन्न होनेवाले पक्षीका मांस खानेवाला ७ दिन तक गोमूत्र और उबाला यवका रस पीकर रहे।

ॐ याज्ञवल्क्यस्मृति-१ अध्याय-१७६ श्लोक। पियाज, छत्राक, लहशुन अथवा गाजर खानेवाला चान्द्रायण व्रत करे। बृहद्विष्णुस्मृति-५१ अध्यायके २-३ और ३४ अङ्क। लहशुन, पियाज या गाजर खावे तो चान्द्रायण व्रत करे और छत्राक तथा कवक छत्राक भेद खालेवे तो सान्तपन व्रत करे। पाराशरस्मृति-११ अध्यायके १०-११ श्लोक। लहशुन, गाजर, पियाज अथवा छत्राक अज्ञानसे खानेवाला द्विज ३ रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेपर शुद्ध होताहै। संवर्त्तस्मृति--१९६ श्लोक। पियाज, लहशुन या छत्राक खानेवाला द्विज सांतपन व्रत करे। उशनस्मृति--९ अध्याय-३१ और ३३ श्लोक। पियाज या लहशुन खानेवाला चान्द्रायण व्रत और गाजर खानेवाला प्राजापत्य व्रत करे। शंखस्मृति-१७ अध्यायके २०-२१ श्लोक। पियाज, लहशुन अथवा छत्राक खानेवाला एक वर्षतक ब्रह्महत्याका व्रत करे। शातातपस्मृति-९ अंक। लहशुन, पियाज या गाजर खावे तो तप्तकृच्छ्र व्रत करे। वसिष्ठस्मृति-१४ अध्याय-२८ अंक। लहशुन, पियाज, गाजर, छत्राक, वृक्षका गोंद अथवा वृक्ष काटनेसे निकला हुआ रस भक्षण करनेवाला कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत करे। सुमन्तुस्मृति-लहसुन, पियाज, गाजर अथवा कवक खानेवाला आठ सहस्र गायत्रीको जप कर मस्तकपर जल डाले (६) ये सब और इनके समान दूसरे पदार्थभी वैद्यकी क्रियामें रोगीको खिलानेमें दोष नहीं है (७)।

अभ्यासको छोड़कर पढ़ेहुए वेदको भूलजाना, वेदकी निन्दा करना, झूठी साक्षी देना, मित्र वध करना, अयोग्य मांस आदि निषिद्ध वस्तु भक्षण करना और विष्ठा आदि अभक्ष्य वस्तु खाना, ये६ सुरापानके समान पातक हैं ※ ॥ ५७ ॥

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत् । तया सकाये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः ॥ ९१॥
गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा । पयो घृतं वा मरणाद् गोशकृद्रसमेव वा ॥ ९२ ॥
कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि । सुरापानापनुत्त्यर्थं बालवासा जटी ध्वजी ॥ ९३ ॥

मोहवश होकर सुरा पीनेवाला द्विज अग्निके समान जलतीहुई सुराको पीकर जलजानेसे शुद्ध होताहै ☙ ॥ ९१ ॥ अथवा अग्निवर्ण तप्त गोमूत्र, जल, दूध, घी या गोबरका रस पीकर शरीर त्याग करे ॥ ९२ ॥ सुरापान दोष निवृत्तिके लिये रोमके वस्त्र पहनेहुए, जटा धारण कियेहुए, चिह्नके लिये सुरापात्र लियेहुए, नित्य रातमें एकबार चावलके कणें अथवा तिलकी खली खातेहुए १ वर्षतक व्रत करे ❦ ॥९३ ॥

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते । तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥ ९४ ॥

सुरा अन्नका मल है, मल पापको कहते हैं, इस लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सुरा पान नहीं करें ॥ ९४ ॥

गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा । यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥९५॥

गुडसे बनी हुई, चावलके पिसानसे बनी हुई और मधुसे बनी हुई, ये ३ प्रकारकी सुरा होती है तीनों एकही समान हैं, श्रेष्ठ द्विजोंको तीनोंमेंसे किसीको नहीं पीना चाहिए ⊙ ॥ ९५ ॥

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् । तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति ॥ ९८ ॥

जिस ब्राह्मणका शरीरस्थ वेद एक बार भी सुरासे भींगता है उसका ब्राह्मणत्व दूर हो जाता है, वह शूद्र भावको प्राप्त होताहै ॥ ९८ ॥

अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्धयति । मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमिति स्थितिः ॥१४७॥

अज्ञानसे सुरा पीनेवाला फिरसे उपनयन संस्कार होनेपर शुद्ध होता है, किन्तु जानकर पीनेवालेके लिए मर जानाही प्रायश्चित्त है; ऐसी धर्मशास्त्रकी मर्यादा है ▩ ॥ १४७ ॥

※ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय-२२९ श्लोक । निषिद्ध वस्तु भक्षण करना, अपनी बड़ाईके लिये झूठ बोलना और रजस्वला स्त्रीका मुख चूमना सुरापान करनेके समान हैं ।

☙ प्रचेतास्मृति-सुरा पीनेवाला लोहे अथवा ताम्बेके पात्रसे अग्निवर्ण सुराको पीवे (५) ।

❦ याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्यायके २५३-२५४ श्लोक । सुरापीनेवाला अग्निके समान तप्त करके सुरा, जल, घी, गोमूत्र अथवा दूध पीकर मरजानेसे शुद्ध होताहै अथवा रोमके वस्त्र और जटा धारण करके ब्रह्महत्याका व्रत (१२ वर्ष) करे अथवा तिलकी खली या चावलके कणें रातमें १ बार खातेहुए ३ वर्ष व्रत करे । उशनस्मृति-८ अध्यायके १२-१३ श्लोक । सुरा पीनेवाला ब्राह्मण अग्निक समान तप्त सुरा पान करके जलजानेपर शुद्ध होताहै अथवा अग्निके समान तप्त गोमूत्र, गोबरका रस, दूध, घी या जल पीकर मर जानेसे सुरापानके पापसे मुक्त होताहै । संवर्तस्मृति-१२०-१२२ श्लोक । सुरापान करनेवाला पापसे छूटनेके लिये तप्त सुरापान करे अथवा अग्निवर्ण गोमूत्र, गोबर, घी अथवा दूध पीवे अथवा सब वासनाको त्याग कर १ वर्षतक चावलका कण खाकर व्रत करे अथवा ३ चान्द्रायण व्रत करे । वसिष्ठस्मृति-२० अध्याय-२५ अंक । अभ्याससे (बहुत दिनोंतक) सुरा पीनेवाला द्विज अग्निवर्ण सुरा पीकर मरजानेपर शुद्ध होताहै । बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-१ अध्यायके २१-२२ अंक । सुरा पीवे तो तप्त सुरासे शरीरको जला देवे । यमस्मृति-३० श्लोक । मद्य पीनेवाला ब्राह्मण तप्तकृच्छ्र व्रत करके मौर्वी सूत्रके होमसे शुद्ध होताहै । पाराशरस्मृति-१२ अध्यायके ७३-७४ श्लोक । सुरापीनेवाला द्विज समुद्रमें जानेवाली नदीके किनारे जाकर चान्द्रायण व्रत करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे और एक बैल सहित एक गौ ब्राह्मणको दक्षिणा देवे । प्रचेतास्मृति-सुरा पीनेवाला चीर और वल्कलोंको धारण करके ब्रह्महत्याका व्रत करे (६)

⊙ संवर्तस्मृतिके ११९ श्लोकमें ऐसाही है ।

▩ अत्रिस्मृति—२०७—२०८ श्लोक । प्रमादसे एक बार मदिरा या सुरा पीनेवाला ब्राह्मण १० रात तक गोमूत्र और यवका काढा पीकर रहनेसे शुद्ध हो जाता है । गौतमस्मृति—२४ अध्याय-१ अंक । जान करके सुरा पीनेवाला ब्राह्मण तप्त सुरा पीकर प्राण त्यागनेसे और अनजानमें सुरा पीनेवाला तप्त कृच्छ्र व्रत करके फिरसे उपनयन होनेपर शुद्ध होताहै । वसिष्ठस्मृति-२० अध्याय २२ अंक । अज्ञानसे सुरा अथवा मद्य पीनेवाला कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत करके घृतपान करनेसे और उपनयन संस्कार होनेपर शुद्ध हो जाता है । बौधायनस्मृति-२ प्रश्न—१अध्याय-२२ अंक । अज्ञानसे सुरा पीनेवाला ३ मासतक ब्रह्महत्याका व्रत करे और फिरसे उपनयन संस्कार करावे ।

अपः सुराभाजनस्था मद्यभाण्डस्थितास्तथा। पञ्चरात्रं पिबेत्पीत्वा शङ्खपुष्पीश्रृतं पयः ॥ १४८ ॥

सुरा या ❀ मद्यके पात्रका जल पीनेवाला ५ रात तक शङ्खपुष्पी औषधी मिश्रित दूध पीकर रहे ▩ ॥ १४८ ॥

स्पृष्ट्वा दत्त्वा च मदिरां विधिवत्प्रतिगृह्य च। शूद्रोच्छिष्टाश्च पीत्वापः कुशवारि पिबेत् त्र्यहम्॥१४९॥

मदिरा छूनेवाला, उसको दान लेनेवाला, उसको दान देनेवाला या शूद्रका जूठा जल पीनेवाला३ दिन कुशाका जल पीकर रहे ॥ १४९ ॥

विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः। प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१५५ ॥

गांवके सूअर, गदहा, ऊंट; शिआर, वानर अथवा काकके मूत्र अथवा विष्ठा भक्षण करनेवाला द्विज चान्द्रायण व्रत करे ◎ ॥ १५५ ॥

विडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वापि नकुलस्य च। केशकीटावपन्नं च पिबेद्ब्रह्मसुवर्चलाम् ॥ १६० ॥

बिलार, काक, मूंसा, कुत्ते अथवा नेवलके जूठेको खानेवाला तथा केश या कीटसे युक्त अन्न भोजन करनेवाला ब्राह्मी औषधीका काढा पीवे ✽ ॥ १६० ॥

(२ क) वृद्धयाज्ञवल्क्यस्मृति।

यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ। तयोरन्नं न भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

यति और ब्रह्मचारी अन्यके पकाएहुए अन्न खातेहैं उनका अन्न खावे तो चान्द्रायण व्रत करे।

(३) अत्रिस्मृति।

शङ्कास्थाने समुत्पन्ने भक्ष्यभोज्यविवर्जिते। आहारशुद्धिं वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ ५९ ॥

अक्षारलवणां रूक्षां पिबेद्ब्राह्मीं सुवर्चसम्। त्रिरात्रं शङ्खपुष्पीं वा ब्राह्मणः पयसा सह ॥ ६० ॥

यदि भक्ष्य और भोज्यसे ✤ हीन देशमें प्राण जानेकी शंका होनेपर अभक्ष्यभक्षण करलेवे तो उस भोजनकी शुद्धि कहताहूं, मेरे कहेहुए वाक्यको सुनो ॥ ५९ ॥ ब्राह्मण ३ राततक क्षार लवणसे रहित रूखी तेजस्कर ब्राह्मी औषधी अथवा दूधके सहित शंखपुष्पी औषधीका पान करे ✤ ॥ ६० ॥

ब्राह्मणानां यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः। दिनद्वयन्तु गायत्र्या जपं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ ७० ॥

क्षत्रियान्नं यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः। त्रिरात्रेण भवेच्छुद्धिर्यथा क्षत्रे तथा विशि ॥ ७१ ॥

अभोज्यान्नन्तु भुक्तान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव वा। जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पिबेत् ॥७२॥

❀ मनुस्मृति–११अध्याय–९५श्लोक। गुडसे बनी हुई, चावलके पिसानसे बनी हुई और मधुसे बनी हुई ये ३ प्रकारकी सुरा होतीहैं। पुलस्त्यस्मृति। पानस, द्राक्ष, माधूक, खार्जूर, ताल, ऐक्षव, मधूत्थ, सैर, आरिष्ट, मैरेय और नालिकेरज इन ११ मदिराओंको समान जानो और बारहवां जो सुरा मद्य है उसको सब से अधम कहा है (४–५)।

▩ अत्रिस्मृति–२००–२०१श्लोक। मदिरासे स्पर्श हुए घडेका जल पीनेवाला द्विज एक पाद प्राजापत्य व्रत करके फिरसे उपनयन संस्कार करानेसे शुद्ध होताहै। बृहद्विष्णुस्मृति–५१ अध्याय–२३ अंक। सुराके भाण्डका जल पीनेवाला ७ रात तक शंखपुष्पी औषधी मिश्रित दूध पान करे। बौधायनस्मृति–२ प्रश्न–१अध्याय-२६ श्लोक। सुराके भाण्डका वासी जल पीनेवाला शंखपुष्पीको दूधमें पकाकर ६ दिन पीवे। शाता-तपस्मृति–१९ अंक। सुराके भाण्डका जल पीनेवाला यदि उसको उगल देवे तो एक दिन रात निराहार रहकर घी खानेसे शुद्ध हो जायगा। वसिष्ठस्मृति–२० अध्याय–२४ अंक। यदि कोई द्विज मद्यके पात्रमें रक्खे हुए जलको पीले तो कमल, गूलर, बेल और पलाशके पत्तोंका जल पीकर ३ रात रहनेसे वह शुद्ध हो जाता है।

◎ संवर्तस्मृति–१९७ श्लोक। कुत्ते; बिलार, गदहे, ऊंट, वानर, सियार या काकके मूत्र या विष्ठा खानेवाला चान्द्रायण व्रत करे।

✽ अत्रिस्मृतिके२९२–२९३ श्लोकमें ऐसा ही है। संवर्तस्मृति–१९५श्लोक। बिलार या मूसेका जूठा खानेवाला द्विज पञ्चगव्य पान करे। शंखस्मृति–१७ अध्यायके ४६–४७ श्लोक। केश, कीट, मूस, वानर मक्खी अथवा मच्छरसे दूषित पदार्थ खानेवाले ३ राततक (ब्रह्महत्याका) व्रत करें।

✤ भक्ष्य लड्डु आदि, भोज्य भात दाल आदि।

✤ वसिष्ठस्मृति—२७ अध्यायके १०–११ श्लोकमें ऐसा ही है और १२ श्लोकमें है कि पलाश बेल, कमल और गूलरके पत्ते और कुशाका काढ़ा पीकर ३ दिन रहनेसे भी वह शुद्ध होताहै।

अज्ञानसे ब्राह्मणके जूठेको खालेनेवाला ब्राह्मण २ दिन गायत्री जपनेसे और अज्ञानसे क्षत्रिय अथवा वैश्यका जूठा खानेवाला ब्राह्मण ३ रात गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ७०-७१ ॥ अभोज्य अन्न, स्त्रीका जूठा, शूद्रका जूठा अथवा अभक्ष्य मांस खानेवाला ब्राह्मण ७ रात यवका रस पीकर रहे ❀ ॥ ७२ ॥

असंस्पृष्टेन संस्पृष्टः स्नानं तेन विधीयते । तस्य चोच्छिष्टमश्नीयात्सण्मासान् कृच्छ्रमाचरेत् ॥७३ ॥

स्पर्श करनेके अयोग्य मनुष्यका स्पर्श करनेवाला स्नान करके शुद्ध होवे और उसका जूठा खानेवाला ६ मासतक कृच्छ्र व्रत करे ॥ ७३ ॥

चाण्डालभाण्डे यत्तोयं पीत्वा चैव द्विजोत्तमः । गोमूत्रयावकाहारः सप्तत्रिंशदहान्यपि ॥ १७१ ॥

चाण्डालके भाण्डका जल पीनेवाला ब्राह्मण ३७ दिन तक गोमूत्र और यवका रस पीकर रहे◎॥१७१॥

चाण्डालान्नं यदा भुङ्क्ते चातुर्वर्ण्यस्य निष्कृतिः । चान्द्रायणं चरेद्विप्रः क्षत्रः सान्तपनं चरेत्॥१७३॥
षड्रात्रमाचरेद्वैश्यः पञ्चगव्यं तथैव च । त्रिरात्रमाचरेच्छूद्रो दानं दत्त्वा विशुध्यति ॥ १७४ ॥

यदि चाण्डालका अन्न चारों वर्ण खालेवें तो उनका यह प्रायश्चित्त है, ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत करनेसे, क्षत्रिय सान्तपन व्रत करनेसे, वैश्य ६ रात व्रत करके पञ्चगव्य भक्षण करनेसे और शूद्र ३ रात व्रत करके कुछ दान देनेसे शुद्ध हो जातेहैं ❀❀ ॥ १७३-१७४ ॥

❀ शंखस्मृति—१७ अध्याय,-४३-४४ श्लोक । शूद्रका जूठा खानेवाला ब्राह्मण एकमास तक, वैश्यका जूठा खानेवाला १५ दिनतक, क्षत्रियका जूठा खानेवाला ७ दिनतक और ब्राह्मणका जूठा खानेवाला ब्राह्मण १ दिन ब्रह्महत्याका व्रत करे । वृहद्विष्णुस्मृति-५१ अध्यायके ४९-५६ अंक । ब्राह्मण यदि शूद्रका जूठा खावे तो ७ रात, वैश्यका जूठा खावे तो ५ रात, क्षत्रियका जूठा खावे तो ३ रात और ब्राह्मणका जूठा खावे तो १ दिन दूध पीकर रहे; क्षत्रिय यदि शूद्रका जूठा खावे तो ५ रात और वैश्यका जूठा खावे तो ३ रात और वैश्य यदि शूद्रका जूठा खावे तो३रात दूध पान करके रहे । मनुस्मृति—११ अध्यायके१५३ श्लोकमें ७२ श्लोकके समान है। संवर्त्तस्मृति—१९५ श्लोक । और शातातपस्मृति-११ अंक । शूद्रका जूठा खानेवाला द्विज तीन रात निराहार रहनेपर शुद्ध होताहै । आपस्तम्बस्मृति—५ अध्यायके-५-९ श्लोक । अज्ञानसे ब्राह्मणका जूठा खानेवाला ब्राह्मण एक दिन रात गायत्री जपनेसे और अज्ञानसे वैश्यका जूठा खानेवाला द्विज ३ राततक शंखपुष्पी औषधीका रस और दूध पीकर रहनेसे शुद्ध होताहै।यदि कभी ब्राह्मणीके संग उच्छिष्टको ब्राह्मण खा लेवे तो उसमें विद्वान् लोग कभी दोष नहीं मानतेहैं यदि अन्य स्त्रीका जूठा खा लेवे स्पर्श करे तो प्राजापत्य व्रतसे उसकी शुद्धि होतीहै, ऐसा भगवान् अङ्गिराने कहाहै ।

◎ लघुहारीतस्मृति--१६ श्लोक । यदि ब्राह्मण किसी चाण्डालका पानी पीलेता है तो ६ रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेपर वह शुद्ध होताहै । पाराशरस्मृति-६ अध्याय,-२७-२९ श्लोक । यदि द्विज किसी चाण्डालके घड़ेका जल पीलेवे और उसको उसी समय उगल देवे तो प्राजापत्य व्रत करे । यदि उसको नहीं उगले, वह पच जाय तो प्राजापत्य व्रत नहीं किन्तु सान्तपन करे (यहां सान्तपन शब्दसे महासान्तपन जानना चाहिये; क्योंकि सान्तपन व्रत प्राजापत्यव्रतसे सुगम है) । ब्राह्मण, सान्तपन, क्षत्रिय प्राजापत्य, वैश्य आधा प्राजापत्य और शूद्र एक पाद प्राजापत्य करे । लिखितस्मृतिके ८०-८२ श्लोक और लघुशंखस्मृतिके ४३-४५ श्लोकमें ऐसा ही है । अङ्गिरास्मृतिके ५-६ श्लोक और आपस्तम्बस्मृति-४ अध्यायके१-२श्लोकमें पाराशरस्मृतिके २९ श्लोकके समान है। दूसरी देवलस्मृति--अज्ञानसे चाण्डालके कूप अथवा भाण्डके जलको पीनेवाला द्विज तीन दिनमें और शूद्र एक दिनमें शुद्ध होताहै (८) ।

❀❀ पराशरस्मृति-११ अध्याय १-३ श्लोक । यदि चाण्डालका अन्न ब्राह्मण खाले तो चान्द्रायण व्रत क्षत्रिय अथवा वैश्य खालेवे तो आधा चान्द्रायण और शूद्र खाले तो प्राजापत्य व्रत करे;शूद्र पञ्चगव्य पीवे और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य ब्रह्मकूर्च पान करे, ब्राह्मण आदि चारों वर्ण क्रमसे एक, दो, तीन और चार गौ दान देवे । अत्रिस्मृति-२६० श्लोक । शातातपने कहा है कि चाण्डालके घर भोजन करनेवाला १५ दिन केवल जलके आहारसे रहे । वसिष्ठस्मृति-२० अध्याय १८-१९ अंक । चाण्डालका अन्न खानेवाला ३ मास कृच्छ्र करके फिरसे उपनयन संस्कार करावे । लिखितस्मृति—७० श्लोक । अनजानमें चाण्डालके घर खानेवाला १५ दिनतक और जानकरके खानेवाला १ मासतक केवल जल पीकर रहे । उशनस्मृति ९ अध्याय४१श्लोक । जान करके चाण्डालका अन्न खानेवाला द्विज चान्द्रायण व्रत करे । वृहद्विष्णुस्मृति-५१ अध्यायके ५७—५८ अंक । चाण्डालका कच्चा अन्न खानेवाला ३ रात उपवास करे और उसका पका हुआ अन्न खानेवाला पराक व्रत करे । यमस्मृति-२६ श्लोक और संवर्तस्मृति-२०१ श्लोक । यदि ब्राह्मण अज्ञानवश चाण्डालका अन्न खालेताहै तो १५ दिनतक गोमूत्र और यवका काढ़ा पीकर रहनेसे शुद्ध होताहै ।

चाण्डालेन तु संस्पृष्टं यस्तोयमपिबति द्विजः ॥ २०२ ॥

कृच्छ्रपादेन शुध्येत आपस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ॥ २०३ ॥

चाण्डालका स्पर्श किया हुआ जल पीनेवाला द्विज चौथाई प्राजापत्य व्रत करनेसे शुद्ध होताहै; ऐसा आपस्तम्ब मुनिने कहा है ॥ २०२-२०३ ॥

मद्यपस्य निषादस्य यस्तु भुङ्क्ते द्विजोत्तमः ॥ २०८ ॥

गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेण शुध्यति ॥ २०९ ॥

जो ब्राह्मण मद्य पीनेवाले मनुष्य अथवा निषादका अन्न भोजन करताहै वह १ रात तक गोमूत्र और यावकके आहारसे रहनेपर शुद्ध होताहै ॥ २०८—२०९ ॥

अज्ञानात्पिबते तोयं ब्राह्मणः शूद्रजातिषु। अहोरात्रोषितः स्नात्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ २५० ॥

अज्ञानसे शूद्रजातिका जल पीनेवाला ब्राह्मण दिन रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेपर शुद्ध होता है ॥ ▦ ॥ २५० ॥

कृच्छ्रार्द्धं पतितस्यैव सकृद्भुक्त्वा द्विजोत्तमः। अविज्ञानाच्च तद्भुक्त्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥२५९॥

पतितानां यदा भुक्तं भुक्तं चाण्डालवेश्मनि। मासार्द्धं तु पिबेद्वारि इति शातातपोऽब्रवीत् ॥ २६० ॥

पतितान्नमादाय भुक्त्वा वा ब्राह्मणो यदि। कृत्वा तस्य समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं विनिर्दिशेत् ॥२६३॥

जो ब्राह्मण एक बार पतितका अन्न खालेताहै वह आधा प्राजापत्य व्रत और जो अज्ञानसे खाताहै वह कृच्छ्रसान्तपन व्रत करे ॥२५९॥ महर्षिशातातपने कहाहै कि जो पतितका अन्न खाताहै [या चाण्डालके घर भोजन करताहै] वह १५ दिनतक केवल जलको पीकर रहे ॥ २६० ॥ पतितका अन्न लेनेवाला अथवा खानेवाला ब्राह्मण उसको त्यागकर अतिकृच्छ्र व्रत करे ※ ॥ २६३ ॥

नवश्राद्धे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकेऽब्दिके ॥ ३०३ ॥

पतन्ति पितरस्तस्य यो भुङ्क्तेनापदि द्विजः। चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा ॥ ३०४ ॥

त्रिपक्षे चातिकृच्छ्रं स्यात् षण्मासे कृच्छ्रमेव च। आब्दिके पादकृच्छ्रं स्यादेकाहः पुनराब्दिके ॥३०५॥

जो ब्राह्मण विना आपत्कालके नवश्राद्ध (पांचवें, नवें और ग्यारहवें दिनके श्राद्ध), त्रिपाक्षिक श्राद्ध, षाण्मासिक श्राद्ध, मासिक श्राद्ध अथवा वार्षिक श्राद्धमें भोजन करताहै उसके पितर नरकमें गिरतेहैं ॥३०३-३०४॥ नवश्राद्धमें खानेवाला चान्द्रायण, मासिक श्राद्धमें खानेवाला पराक व्रत, त्रिपाक्षिक श्राद्धमें खानेवाला अतिकृच्छ्र व्रत, षाण्मासिक श्राद्धमें खानेवाला कृच्छ्र (प्राजापत्य), वार्षिक श्राद्धमें खानेवाला पादकृच्छ्र और दूसरे वार्षिक श्राद्धमें खानेवाला ब्राह्मण एक दिनका व्रत करे ※ ॥ ३०५ ॥

(४ क) बृहद्विष्णुस्मृति—५१ अध्याय।

यवगोधूमपयोविकारं स्नेहाक्तं शुक्तं खाण्डवं च वर्जयित्वा पर्युषितं तत् प्राश्योपवसेत् ॥ ३९ ॥

※ उशनस्मृति—९ अध्याय—४९ श्लोक। चाण्डालका स्पर्श किया हुआ जल पीनेवाला ब्राह्मण ३ रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेपर शुद्ध होताहै।

▦ पाराशरस्मृति—११ अध्याय, ४—५ श्लोक। यदि ब्राह्मण अज्ञानसे विना आपत्कालमें शूद्रका अन्न खालेवे तो जानलेनेपर कृच्छ्र व्रत करके पवित्र ब्रह्मकूर्च पीवे। २१ श्लोक। आपत्कालमें यदि ब्राह्मण शूद्रके घर खालेवे तो मनमें पश्चात्ताप करनेसे अथवा एक बार द्रुपदा मन्त्र जपनेसे शुद्ध होजाताहै। शंखस्मृति—१७ अध्याय ३६ और ४० श्लोक। शूद्रका अन्न खानेवाला ब्राह्मण एक मास ब्रह्महत्याका व्रत करे (कैसे शूद्रोंका अन्न ब्राह्मणको खाना चाहिए वह ब्राह्मणप्रकरणमें देखिये)। क्रतुस्मृति—शूद्रके हाथसे भोजन करनेवाला अथवा पानी पीनेवाला दिन रात निराहार रहकर पञ्चगव्य पीनेपर शुद्ध होताहै ॥ १ ॥

※ लिखितस्मृति—७० श्लोक। अनजानमें पतितका अन्न खानेवाला १५ दिनतक और जान करके खानेवाला १ मासतक केवल जल पीकर रहे। वसिष्ठस्मृति—२० अध्याय, १८—१९ अङ्क। पतितका अन्न खाने वाला ३ मास कृच्छ्र करके फिरसे उपनयन संस्कार करावे।

※ लिखितस्मृतिके ६२—६३ श्लोकमें प्रायः ऐसा है। आपस्तम्बस्मृति—९ अध्याय, २२—२४ श्लोक। नवश्राद्ध, पहला गर्भाधान संस्कार, सीमन्तोन्नयन संस्कार और मृत्युके श्राद्धमें खानेवाले चान्द्रायण व्रत करें। अङ्गिरास्मृति—६४—६५ श्लोक। नवश्राद्ध, सूतक और स्त्रीके प्रथम गर्भाधानका अन्न खानेवाले चान्द्रायण व्रत करें।

यव गेहूँसे बनी रोटी आदि; दूधसे बनेहुए दही, पेड़े आदि; घी, तेल आदि चिकनी वस्तुसे बनेहुए दूसरे अन्नोंके पदार्थ; दहीकी कांजी और गुड़से बनी इन वस्तुओंको; छोड़कर बासी वस्तु खानेवाले मनुष्य एकरात उपवास करें ※ ॥ ३५ ॥

गोऽजामहिषीवर्जं सर्वपयांसि च ॥ ३८ ॥ अनिर्दशाहानि तान्यपि ॥ ३९ ॥ स्यन्दिनीसन्धिनी-विवत्साक्षीरं च ॥ ४० ॥ अमेध्यभुजश्च ॥ ४१ ॥

गौ, भैंस और बकरीके सिवाय अन्य किसी प्राणीका दूध; दश दिनके भीतरके व्याईहुई गौ, भैंस अथवा बकरीका दूध; या स्तनसे दूध गिरानेवाली, रजस्वला, वत्सहीना या अपवित्र वस्तु खानेवली गौ, भैंस अथवा बकरीका दूध पीनेवाला एक रात निराहार रहे ※ ॥ ३८-४१ ॥

(७) अङ्गिरास्मृति ।

अन्त्यानामपि सिद्धान्नं भक्षयित्वा द्विजातयः । चान्द्रं कृच्छ्रं तदर्धन्तु ब्रह्मक्षत्रविशां विदुः ॥ २ ॥
रजकश्चर्मकश्चैव नटो बुरुड एव च । कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते चान्त्यजाः स्मृताः ॥ ३ ॥
अन्त्यजानां गृहे तोयं भाण्डे पर्युषितं च यत् । तद्विजेन यदा पीतं तदैव हि समाचरेत् ॥ ४ ॥
अज्ञानात्पिबते तोयं ब्राह्मणस्त्वन्त्यजातिषु । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥ ७ ॥

अन्त्यज जातिके पकायेहुए अन्नको खालेनेपर ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत, क्षत्रिय प्राजापत्य व्रत और वैश्य आधा कृच्छ्र करे ॥ २ ॥ धोबी, चमार, नट, बुरुड (बंसफोर) कैवर्त्त, मेद (व्याधविशेष) और भील ये ७ अन्त्यज कहलाते हैं ॥ ३ ॥ यदि अन्त्यजके घरका जल अथवा भाण्डका बासी जल द्विज पीलेवे तो उसी समय उसका प्रायश्चित्त करे ॥ ४ ॥ अज्ञानसे अन्त्यजका जल पीनेवाला ब्राह्मण एक दिनरात निराहार रहकर पञ्चगव्य पीनेपर शुद्ध होता है ※ ॥ ७ ॥

※ संवर्त्तस्मृति—१९८ श्लोक । बासी अन्न खानेवाला द्विज पञ्चगव्य पान करे ।

※ उशनस्मृति—९ अध्याय, ३६-३८ श्लोक । दशदिनसे कमकी व्याईहुई, गर्भिणी अथवा बिना बछड़ेकी, गौ, भैंस या बकरीका दूध पीनेवाला १५ दिनतक गोमूत्र और यवका काढ़ा पीकर रहनेसे और इनके दूधसे बनेहुए दही, घी, पेड़े आदिको खानेवाला ७ रात इसी प्रकारसे रहनेपर शुद्ध होताहै । शङ्ख-स्मृति-१७ अध्याय, २९-३१ श्लोक । बिना बछड़ेवाली, रजस्वला अथवा अपवित्र वस्तु खानेवाली गौका दूध पीनेवाला १५ दिनतक और ऐसी गौके दूधसे बनेहुए दही, घी आदि पदार्थ खानेवाला ७ दिनतक ब्रह्मह-त्याका व्रत करे । पाराशरस्मृति-११ अध्याय-१०-११ श्लोक । जो द्विज अज्ञानसे तत्काल व्याईहुई गौ आदिका फटाहुआ दूध तथा ऊंटनी या भेड़ीका दूध पीताहै वह ३ रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै । अत्रिस्मृति-९० श्लोक । ऊटनी या भेड़ीका दूध पीनेवाला चान्द्रायण व्रत करे । २३३-२३४ श्लोक। ऊंटनी, गदही या मनुष्यकी स्त्रीका दूध यदि ब्राह्मण पीवे तो तप्तकृच्छ्र व्रत करे । शातातपस्मृति-१० अङ्क । उंटनी, गदही अथवा मनुष्यकी स्त्रीका दूध पीनेवाला प्राजापत्य व्रतकरके फिरसे उपनयन संस्कार करावे । संवर्त्तस्मृति—१९३ श्लोक । मनुष्यकी स्त्रीका, भेड़ीका अथवा रजस्वला गौका दूध पान करे तो ३ रात उपवास करके ब्राह्मणोंको खिलावे।पैठीनसिस्मृति । भेड,गदही,ऊंटनी या मनुष्यकी स्त्रीका दूध पीनेवाला मनुष्य तप्तकृच्छ्र करके फिर उपनयन संस्कार करावे, व्यानेसे दश दिनके भीतरकी गौ अथवा भैंसका दूध पीनेवाला ६ रात उपवास करे और बकरीको छोडकर सम्पूर्ण दो स्तनवालियोंके दूध पीनेवाले यही प्रायश्चित्त करें (५)

※ आपस्तम्बस्मृति-५ अध्याय ९-१० श्लोक । अन्त्यजके खानेसे बचेहुए अन्नको खालेनेपर ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत, क्षत्रिय अर्द्धकृच्छ्र और वैश्य पादकृच्छ्र करे । ९ अध्याय, ३१—३२ श्लोक । धोबी, व्याध, नट, वेण अथवा चमारका अन्न खानेवाला ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत करनेपर शुद्ध होताहै । अत्रिस्मृति १७२ श्लोक । अज्ञानसे अन्त्यजका स्पर्श किया पका हुआ अन्न खानेवाला ब्राह्मण आधा प्राजापत्य व्रत करे । यमस्मृति-३३-३४ श्लोक । जानकरके अन्त्यजके घर भोजन, इनकी स्त्रियोंसे गमन, इनका जल पान और इनका दान ग्रहण करनेवाला १ वर्ष कृच्छ्र करे और अज्ञानसे करनेपर २ चान्द्रायण व्रत करे । संवर्तस्मृति-१८९ और १९९ श्लोक । अन्त्यज जातिके अपनायेहुए तीर्थ, तड़ाग अथवा नदीका जल अज्ञानसे पीनेवाला मनुष्य पञ्चगव्य पान करनेसे शुद्ध होताहै अन्त्यजके बर्त्तनमें खानेवाला १५ दिनतक गोमूत्र और यवके काढ़ा पीकर रहनेसे शुद्ध होजाताहै । पाराशरस्मृति—६ अध्याय, ३०—३१ श्लोक। प्रमादसे अन्त्यज जातिके भाण्डका जल, दही अथवा दूध पीनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य उपवास करके ब्रह्मकूर्च पान करनेसे और शूद्र उपवास करके यथाशक्ति दान देनेसे शुद्ध होतेहैं ।

(९) आपस्तम्बस्मृति-२ अध्याय।

अन्यैस्तु खानिताः कूपास्तडागानि तथैव च। एषु स्नात्वा च पीत्वा च पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ५॥

विना उत्सर्गहुए दूसरेके खोदवायेहुए कूप अथवा तडागमें स्नान करनेवाला अथवा जल पीनेवाला पञ्चगव्य पीनेपर शुद्ध होताहै ॥ ५॥

यस्तु कूपात्पिबेत्तोयं ब्राह्मणः शवदूषितात्। कथं तत्र विशुद्धिः स्यादिति मे संशयो भवेत् ॥ १२ ॥
अक्लिन्नेन च भिन्नेन केवलं शवदूषिते। पीत्वा कूपादहोरात्रं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ १३ ॥
क्लिन्ने भिन्ने शवे चैव तत्रस्थं यदि तत्पिबेत्। शुद्धिश्चान्द्रायणं तस्य तप्तकृच्छ्रमथापि वा ॥ १४ ॥

मुर्देसे दूषित कूपके जलको पीनेवाले ब्राह्मणकी शुद्धि कैसे होगी, यह मुझको संशय होता है ॥ १२ ॥ जिस मुर्देके अङ्गसे रुधिर नहीं निकलताहै या उसका कोई अङ्ग टूटा नहींहै उस मुर्देसे दूषित कूपका जल पीनेवाला एक दिन रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ १३ ॥ जिस मुर्देके अङ्गसे रुधिर गिरताहै या उसका कोई अङ्ग टूटगयाहै उससे दूषित कूपका जल पीनेवाला चान्द्रायण अथवा तप्तकृच्छ्र करनेपर शुद्ध होताहै @ ॥ १४ ॥

५ अध्याय।

श्वकाकोच्छिष्टगोच्छिष्टे प्राजापत्यविधिः स्मृतः ॥ ११ ॥

कुत्ते, काक अथवा गौका जूठा खानेवाला प्राजापत्य व्रत करे ※ ॥ ११ ॥

❀ मनुस्मृति-४ अध्याय-२०१-२०२ श्लोक। विना उत्सर्ग किये दूसरेके कूप वा अन्य जलाशयमें स्नान नहीं करे जो स्नान करताहै वह उसके पापके चौथाई भागका भागी होताहै। याज्ञवल्क्यस्मृति १ अध्याय-१५९ श्लोक। विना ५ पिण्डी मिट्टी निकालेहुए दूसरेके जलाशयमें स्नान नहीं करे, किन्तु नदी, देवखात, झील और झरनेमें विना मिट्टी निकाले स्नान करे।

@ अत्रिस्मृति-२०३-२०६ श्लोक। खंखार, जूता, विष्ठा, मूत्र, स्त्रीके रज अथवा मदिरासे अपवित्रहुए कूपके जलको पीलेनेपर ब्राह्मण तीन दिन, क्षत्रिय २ दिन और वैश्य १ दिन अर्थात् एक दिनरात उपवास करनेसे और शूद्र दिनभर निराहार रहकर रातमें खानेसे शुद्ध होतेहैं। ऐसे कूपका जल पीलेनेपर यदि ब्राह्मण उसी समय वमन कर दे तो वस्त्रोंसहित स्नान करे यदि वह जल पेटमें बासी होजाय तो एक दिनरात निराहार रहे और यदि अधिक समय बीतजाय तो ३ दिन उपास करे। २३१-२३३ श्लोक। वीर्य, विष्ठा या मूत्र पड़ेहुए कूपका जल पीनेवाला ३ रात उपवास करनेपर और ऐसा वीर्यादि पड़े हुए घड़ेका जल पीनेवाला सान्तपन व्रत करनेपर शुद्ध होताहै। जिस मुर्देके अङ्गसे रुधिर गिरताहै या उसका कोई अंग टूटगयाहै उससे दूषित कूपका जल अज्ञानसे पीनेवाला ब्राह्मण तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त करे। वृहद्विष्णुस्मृति-५४ अध्याय,-५ अंक। पञ्चनखी मुर्देसे दूषित या अत्यन्त अशुद्ध कूपका जल पीनेपर ब्राह्मण ३ रात क्षत्रिय २ रात, वैश्य १ रात और शूद्र दिनभर उपवास करे। संवर्त्तस्मृति-१८८ श्लोक। चाण्डाल-के भांडसे स्पृष्ट कूपका जल पीनेवाला ३ राततक गोमूत्र और यावक पीकर रहनेसे शुद्ध होताहै। १९१ श्लोक। विष्ठा या मूत्र पड़ेहुए कूपका जल पीनेपर ३ रात उपवास करनेसे और विष्ठा या मूत्र पड़ेहुए घड़ेका जल पीनेपर सान्तपन व्रत करनेसे द्विजातिलोग शुद्ध होतेहैं। पाराशरस्मृति-६ अध्याय, २५-२६ श्लोक। चाण्डालकी खोदीहुई बावलीका जल अज्ञानसे पीनेवाला दिनभर निराहार रहनेसे और जानकर पीनेवाला एक दिनरात उपवास करनेसे शुद्ध होताहै। चाण्डालके भाण्डसे स्पृष्ट कूपका जल पीनेवाला ३ रात तक गोमूत्र और यवका काढ़ा पीकर रहनेसे शुद्ध होताहै। ११ अध्याय-४२-४६ श्लोक। जिस कूपमें कुत्ता, सियार, वानर, हड्डी, चाम, मनुष्य, काक, ग्रामसूकर, गदहा, ऊंट, नीलगाय, हाथी, मयूर, गेंडा, बाघ, भालू अथवा सिंह डूबजाताहै उस कूपका जल पीनेपर या निषिद्ध तालावका जल पीलेनेपर ब्राह्मण ३ रात, क्षत्रिय २ रात, वैश्य १ रात और शूद्र दिनभर निराहार रहनेसे शुद्ध होता है। आपस्तम्बस्मृति—३ अध्याय-५ श्लोक। बालक, वृद्ध, रोगी और वायुसे पीड़ित गर्भवती स्त्रीको दिनभर उपवास करनेकी और बालकोंको दो पहर उपवास करनेकी व्यवस्था देनी चाहिये।

※ संवर्त्तस्मृति १९४ श्लोक। कुत्ते, काक या गौका जूठा खानेवाला द्विज ३रात उपवास करे। शङ्ख-स्मृति-१७ अध्याय-४६ श्लोक। काकका जूठा अथवा गौका सूंघाहुआ अन्न खानेवाला द्विज १५ दिनतक ब्रह्महत्याका व्रत करे। अत्रिस्मृति-८० श्लोक। कुत्तेको छूनेवाला स्नान करे और उसका जूठा खानेवाला यत्न पूर्वक कृच्छ्र करे। उशनस्मृति-९ अध्याय-४६ श्लोक। कुत्तेका जूठा अन्न खानेवाला या उसका जूठा पानी पीनेवाला द्विज ३ रात गोमूत्रसहित यवका काढ़ा पीकर रहनेसे शुद्ध होताहै।

९ अध्याय ।

मातृघ्नश्च पितृघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः ॥ ३० ॥
विशेषाद् भुक्तमेतेषां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ३१ ॥

माता, पिता अथवा ब्राह्मणका वध करनेवालेका अन्न या गुरुपत्नीसे गमन करनेवालेका अन्न विशेष करके खानेवाला चान्द्रायण व्रत करे ॥ ३०-३१ ॥

(१०) संवर्तस्मृति ।

चाण्डाले संकरे विप्रः श्वपाके पुक्कसेपि वा । गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुध्यति ॥ २०१ ॥

वर्णसंकर, श्वपाक, पुक्कस, अथवा [चाण्डाल] का अन्न खानेवाला ब्राह्मण १५ दिनतक गोमूत्र और यवका काढ़ा पीकर रहनेसे शुद्ध होताहै ❀ ॥ २०१ ॥

(१३) पाराशरस्मृति-११ अध्याय ।

शूद्रान्नं सूतकस्यान्नमभोज्यस्यान्नमेव च । शङ्कितं प्रतिषिद्धान्नं पूर्वोच्छिष्टं तथैव च ॥ ४ ॥
यदि भुक्तं तु विप्रेण अज्ञानादापदापि वा । ज्ञात्वा समाचरेत्कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्चं तु पावनम् ॥ ५ ॥

यदि ब्राह्मण अज्ञानसे अथवा आपत्कालमें अभोज्य अन्न, अपवित्रके शङ्कावाला अन्न, निषिद्ध लोगोंका अन्न, [शूद्रका अन्न, सूतकका अन्न या पहिलेका जूठा अन्न] खालेवे तो जानलेनेपर कृच्छ्र करके पवित्र ब्रह्मकूर्चको पीवे ❀ ॥ ४-५ ॥

शूद्रोप्यभोज्यं भुक्त्वान्नं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति । क्षत्रियो वापि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥

यदि शूद्र अभोज्य अन्न खालेवे तो पञ्चगव्य पान करनेसे और क्षत्रिय अथवा वैश्य अभोज्य अन्न खालेवे तो प्राजापत्य व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ७ ॥

एकपङ्क्त्युपविष्टानां विप्राणां सह भोजने । यद्येकोपि त्यजेत्पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥ ८ ॥
मोहाद् भुञ्जीत यस्तत्र पङ्क्तावुच्छिष्टभोजने । प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रः कृच्छ्रं सान्तपनं तथा ॥ ९ ॥

एक पांतिमें भोजन करतेहुए ब्राह्मणोंमेंसे यदि एक ब्राह्मण भोजन त्यागकर जूठे मुखसे उठजावे तो सब ब्राह्मणोंको अपने अपने पात्रका अन्न त्यागदेना चाहिये; जो ब्राह्मण अज्ञानवश होकर उस जूठे अन्नको खाताहै वह कृच्छ्र सान्तपन व्रत प्रायश्चित्त करे ❀ ॥ ८-९ ॥

अज्ञानाद् भुञ्जते विप्राः सूतके मृतकेपि वा । प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णे वर्णे विनिर्द्दिशेत् ॥ १७ ॥
गायत्र्यष्टसहस्रेण शुद्धिः स्याच्छूद्रसूतके । वैश्ये पञ्चसहस्रेण त्रिसहस्रेण क्षत्रिये ॥ १८ ॥
ब्राह्मणस्य यदा भुङ्क्ते द्वे सहस्रं तु दापयेत् । अथवा वामदेव्येन साम्ना चैकेन शुद्ध्यति ॥ १९ ॥

जो ब्राह्मण अज्ञानसे जन्म अशौच अथवा मृत्युके अशौचमें भोजन करतेहैं उनका वर्ण वर्णके लिये प्रायश्चित्त कैसे होंगे ॥ १७ ॥ ब्राह्मण शूद्रके अशौचमें खानेपर ८ हजार गायत्री जपनेसे, वैश्यके अशौचमें खानेपर ५ हजार गायत्री जपनेसे, क्षत्रियके अशौचमें भोजन करनेपर ३ हजार गायत्री जपनेसे और ब्राह्मणके अशौचमें खानेपर २ हजार गायत्री जपनेसे अथवा एकवार वामदेव्य सामका गान करनेसे शुद्ध होजाताहै ❀ ॥ १८-१९ ॥

❀ यमस्मृति-२८ श्लोक । जान करके पुक्कसका अन्न खानेवाला और उसकी स्त्रीसे गमन करनेवाला एक वर्षतक कृच्छ्र करे और अज्ञानसे ऐसा करनेवाला दो चान्द्रायण व्रत करे ।

❀ मनुस्मृति--११ अध्याय--१६१ श्लोक । अपनी शुद्धि चाहनेवाले मनुष्य अभोज्य अन्न नहीं खावें यदि अनजानमें खालेवें तो उसी समय उसको उगलदेवें, नहीं तो शीघ्रही प्रायश्चित्त करें । संवर्त्तस्मृति--२२३; श्लोक । अभोज्य अन्न खानेवाला ८ हजार गायत्रीजपनेसे शुद्ध होताहै।आपस्तम्बस्मृति-१० अध्याय,१३-१४ श्लोक । अभक्ष्य भक्षण करनेवाला चान्द्रायण व्रत अथवा इसके ऊपरके श्लोकमें कहेहुए प्राजापत्य व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ।

❀ मार्कण्डेयस्मृति । जो ब्राह्मण पंक्तिसे बाह्यकी पंक्तिमें भोजन करताहै वह दिनरात निराहार रहकर पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै (४) । क्रतुस्मृति । जो द्विज कदाचित् उच्छिष्ट पंक्तिमें भोजन करताहै वह दिनरात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेपर शुद्ध होताहै (३) ।

❀ शातातपस्मृति—१२१-१२२ श्लोक । अज्ञानसे शूद्रके अशौचमें खानेवाला ब्राह्मण ८ हजार गायत्री जपनेसे, वैश्यके अशौचमें खानेवाला ५ हजार गायत्री जपनेसे और क्षत्रियके अशौचमें खानेवाला ब्राह्मण ३ हजार गायत्री जपनेसे शुद्ध होताहै ।

परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च ॥ ४६ ॥
अपचस्य च भुक्त्वान्नं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ ४७ ॥
गृहीत्वाग्निं समारोप्य पञ्चयज्ञान्न निर्वपेत् ॥ ४८ ॥
परपाकनिवृत्तोसौ मुनिभिः परिकीर्त्तितः । पञ्चयज्ञान्स्वयं कृत्वा परान्नेनोपजीवति ॥ ४९ ॥
सततम्प्रातरुत्थाय परपाकरतस्तु सः । गृहस्थधर्मी यो विप्रो ददातिपरिवर्जितः ॥ ५० ॥
ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचः परिकीर्त्तितः ॥ ५१ ॥

परपाकनिवृत्त, परपाकरत और अपचके अन्न खानेवाले ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत करें ॥ ४६-४७ ॥ जो अग्निस्थापन करके पञ्चमहायज्ञ नहीं करताहै मुनियोंने उसको "परपाकनिवृत्त" कहाहै ॥ ४८-४९ ॥ जो नित्य प्रातःकाल उठकर स्वयं पञ्चयज्ञ करके अन्यके पकायेहुए अन्नको खाताहै, वह "परपाकरत" कहा जाताहै ॥ ४९-५० ॥ जो ब्राह्मण गृहस्थधर्मी होकर देवता, मनुष्य आदि किसीको कुछ नहीं देताहै, धर्मज्ञ ऋषियोंने उसको अपच कहाहै ॥ ५०-५१ ॥

१२ अध्याय ।

विण्मूत्रस्य च शुद्ध्यर्थं प्राजापत्यं समाचरेत् । पञ्चगव्यं च कुर्वीत स्नात्वा पीत्वा शुचिर्भवेत् ॥ ४ ॥

विष्ठा मूत्र खालेनेवाला अपनी शुद्धिके लिये प्राजापत्य व्रत और स्नान करके पञ्चगव्य पीवे ❀ ॥ ४ ॥

दुराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च । अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्यादिनमेकमभोजनम् ॥ ५७ ॥
सदाचारस्य विप्रस्य तथा वेदाङ्गवेदिनः । भुक्त्वान्नम्मुच्यते पापादहोरात्रान्तरान्नरः ॥ ५८ ॥

दुराचारी और निषिद्ध आचरणवाले ब्राह्मणका अन्न भोजन करके द्विज एक दिन निराहार रहे ॥ ५७ ॥ सदाचारसे युक्त और वेदाङ्ग जाननेवाले ब्राह्मणका अन्न खानेवाला मनुष्य एक दिन रातके भीतर निःपाप होजाताहै ॥ ५८ ॥

(१९) शङ्खस्मृति-१७ अध्याय ।

शूद्रान्नं ब्राह्मणो भुक्त्वा तथा रङ्गावतारिणः । चिकित्सकस्य क्षुद्रस्य तथा स्त्रीमृगजीविनः ॥३६ ॥
षण्ढस्य कुलटायाश्च तथा बन्धनचारिणः । वृद्धस्य चैव चोरस्य अवीरायाः स्त्रियस्तथा ॥ ३७ ॥
चर्मकारस्य वेनस्य क्लीबस्य पतितस्य च । रुक्मकारस्य धूर्त्तस्य तथा वार्द्धुषिकस्य च ॥ ३८ ॥
कदर्यस्य नृशंसस्य वेश्यायाः कितवस्य च । गणान्नम्भूमिपालान्नमन्नं चैव श्वजीविनाम ॥ ३९ ॥
मौञ्जिकान्नं सूतिकान्नं भुक्त्वा मासं व्रतञ्चरेत् । शूद्रस्य सततम्भुक्त्वा षण्मासान्व्रतमाचरेत् ॥ ४० ॥

शूद्र, नाटक करनेवाले, चिकित्सक, क्षुद्र मनुष्य, स्त्रीसे अथवा मृगोंसे जीविका करनेवाले, नपुंसक, कुलटा स्त्री, बन्धनचारी, बंधुआ, चोर पतिपुत्र हीन स्त्री, [चमार, वेण, कादर, पतित], ☞ सोनार, धूर्त्त, ब्याजलेनेवाले ब्राह्मण, कृपण, निर्दयी, वेश्या, जुआड़ी, दलबद्ध मनुष्य, राजा, शिकारी कुत्तेसे जीविका करनेवाले, मुञ्जका व्यापार करनेवाले अथवा सूतिकाका अन्न खानेवाले (ब्राह्मण) एक मास तक ब्रह्महत्याका व्रत करें ☙ ॥ ३६-४० ॥

❀ आपस्तम्बस्मृति-५ अध्याय-१० श्लोक । विष्ठा या मूत्र खालेनेवाला ब्राह्मण तप्तकृच्छ्र व्रत करे । संवर्त्तस्मृति—१९४ श्लोक । विष्ठा या मूत्र भक्षण करलेनेवाला प्राजापत्य व्रत करे । वसिष्ठस्मृति—२० अध्याय,-२२-२३ अङ्क । मूत्र, विष्ठा अथवा वीर्य खालेनेवाला कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत और घी भोजन करके फिर उपनयन सस्कार करानेपर शुद्ध होताहै । वृहद्यमस्मृति-३ अध्याय, ६२-६३श्लोक । जो मनुष्य खाने, पीने या चाटनेके अयोग्य पदार्थ अथवा विष्ठा, मूत्र या वीर्यको भक्षण करलेताहै वह कमल, गूलर, बेल, पीपल और पलाशके पत्ते और कुशाके काढ़ाको पीकर पञ्चगव्य पान करनेसे शुद्ध होजाताहै । आपस्तम्बस्मृति-९ अध्याय, ५-६ श्लोकमें इस काढ़ाको पीकर ६ राततक रहनेको लिखाहै । मनुस्मृति-११ अध्याय-१५१ श्लोक, याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय-२५५ श्लोक, उशनस्मृति-९ अध्याय-४२ श्लोक और बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-१ अध्याय,--२५ श्लोक । अनजानमें विष्ठा या मूत्रको अथवा सुरासे स्पर्श हुई वस्तुको खानेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्यको फिरसे उपनयन संस्कार होना चाहिये । मनुस्मृति-११अध्याय--१५२श्लोक, अत्रिस्मृति७४-७५ श्लोक और पाराशरस्मृति--१२ अध्याय,-२--३ श्लोक । द्विजोंका फिरसे संस्कार होनेके समय मुण्डन, मेखला, दण्ड भिक्षा और व्रतकी आवश्यकता नहीं है ।

☞ जिनका वर्णन दूसरी जगह हो चुकाहै वे [ ] ऐसे कोष्ठमें लिख गयेहैं ।

☙ शातातपस्मृति—११६ श्लोक । दलबद्ध मनुष्यका अन्न, वेश्याका अन्न, बहुत लोगोंके घरसे याचना करके इकट्ठे कियेहुए अन्न और स्त्रीके प्रथम गर्भके संस्कारका अन्न खानेवाला चान्द्रायण व्रत करे ।

वैश्यस्य तु तथा भुक्त्वा त्रीन् मासान्व्रतमाचरेत् । क्षत्रियस्य तथा भुक्त्वा द्वौ मासौ व्रतमाचरेत् ४१
ब्राह्मणस्य तथा भुक्त्वा मासमेकं व्रतं चरेत् ॥ ४२ ॥

सदा शूद्रका अन्न खानेवाला ६ मास तक, सदा वैश्यका अन्न खानेवाला ३ मास तक, सदा क्षत्रियका अन्न खानेवाला २ मास तक और सदा ब्राह्मणका अन्न खानेवाला (ब्राह्मण) १ मास तक ब्रह्महत्याका व्रत करे ॥ १४०-४२ ॥

(१९) शातातपस्मृति ।

पक्वं वा यदि वा चाऽमं यस्य नाश्नाति वै द्विजः । भुक्त्वा दुरात्मनस्तस्य द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्॥१९॥

जिस दुरात्मा मनुष्यके घरकी पकीहुई अथवा कच्ची वस्तु द्विज भोजन नहीं करतेहैं यदि उसके घर खालेवे तो चान्द्रायण व्रत करे ॥ १९ ॥

(२ क) वृद्धयाज्ञवल्क्यस्मृति ।

शृंगास्थिदंतजैः पात्रैः शंखशुक्तिकपर्दकैः । पीत्वा नवोदकं चैव पंचगव्येन शुद्धयति ॥

सींग, अस्थि, दांत, शङ्ख, सीपि अथवा कौडीके पात्रमें या नवीन जलको पीनेवाला पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै ।

विवश होकर धर्मसे भ्रष्ट होनेका प्रायश्चित्त ८.

(३) अत्रिस्मृति ।

राजान्यैः श्वपचैर्वापि बलाद्विचलितो द्विजः । पुनः कुर्वीत संस्कारं पश्चात्कृच्छ्रत्रयं चरेत् ॥ ७९ ॥

जिस द्विजको राजा अथवा अन्य श्वपच आदि बल पूर्वक धर्मसे चलायमान करदेवे वह अपना फिरसे संस्कार करानेके पश्चात् ३ कृच्छ्र (प्राजापत्य व्रत) करे ॥ ७९ ॥

(२२) देवलस्मृति ।

अपेयं येन सम्पीतमभक्ष्यं चापि भक्षितम् । म्लेच्छैर्नीतेन विप्रेण अगम्यागमनं कृतम् ॥ ७ ॥
तस्य शुद्धिम्प्रवक्ष्यामि यावदेकन्तु वत्सरम् । चान्द्रायणन्तु विप्रस्य सपराकम्प्रकीर्तितम् ॥ ८ ॥
पराकमेकं क्षत्रस्य पादकृच्छ्रेण संयुतम् । पराकार्द्धन्तु वैश्यस्य शूद्रस्य दिनपञ्चकम् ॥ ९ ॥
नखलोमविहीनानां प्रायश्चितम्प्रदापयेत् । चतुर्णामपि वर्णानामन्यथाऽशुद्धिरस्ति हि ॥ १० ॥
प्रायश्चित्तविहीनन्तु यदा तेषां कलेवरम् । कर्तव्यस्तत्र संस्कारो मेखलादण्डवर्जितः ॥ ११ ॥
संस्कारान्ते च विप्राणां दानं धेनुश्च दक्षिणा । दातव्यं शुद्धिमिच्छद्भिरश्वगोभूमिकाञ्चनम् ॥ १३ ॥
अथ संवत्सरादूर्ध्वं म्लेच्छैर्नीतो यदा भवेत् । प्रायश्चित्ते तु संचीर्णे गङ्गास्नानेन शुध्यति ॥ १५ ॥

जो ब्राह्मण म्लेच्छके वशमें होकर नहीं पीनेयोग्य वस्तु पीताहै, नहीं खाने योग्य वस्तु खाताहै तथा नहीं गमन करने योग्य स्त्रीसे गमन करताहै वह एकवर्षतक घर आनेपर पराक व्रतके साथ चान्द्रायण व्रत करनेपर शुद्ध होताहै ॥ ७-८ ॥ इस अवस्थामें क्षत्रिय पादकृच्छ्रके सहित एक पराक व्रत करनेपर, वैश्य आधा पराक व्रत करनेपर और शूद्र ५ दिन (पराक) व्रत करनेपर शुद्ध होजाताहै ॥ ९ ॥ चारो वर्ण प्रायश्चित्त करनेसे पहिले ही लोम और नख छेदन करवा लेवें; द्विज प्रायश्चित्तसे शुद्ध होनेपर विना मेखला दण्डका उपनयन संस्कार करावे ॥ १०-११ ॥ संस्कारके अन्तमें ब्राह्मणको व्याईहुई गौ दक्षिणा और अपनी शुद्धिके लिये घोड़ा, गौ, भूमि और सोना देवे ॥ १३ ॥ जो एक वर्षसे अधिक म्लेच्छके वशमें रहताहै वह "संचीर्ण" प्रायश्चित्त करके गङ्गा स्नान करनेपर शुद्ध होताहै ॥ १५ ॥

बलाद्दासीकृता ये च म्लेच्छचाण्डालदस्युभिः । अशुभं कारिताः कर्म गवादिप्राणहिंसनम् ॥ १७॥
उच्छिष्टमार्जनं चैव तथा तस्यैव भोजनम् । खरोष्ट्रविड्वराहाणामामिषस्य च भक्षणम् ॥ १८ ॥
तत्स्त्रीणां च तथा सङ्ग ताभिश्च सह भोजनम् । मासोषिते द्विजातौ तु प्राजापत्यं विशोधनम् ॥ १९ ॥
चान्द्रायणं त्वाहिताग्नेः पराकस्त्वथ वा भवेत् । चान्द्रायणं पराकं च चरेत्संवत्सरोषितः ॥ २० ॥
संवत्सरोषितः शूद्रो मासार्धं यावकम्पिबेत् । मासमात्रोषितः शूद्रः कृच्छ्रपादेन शुध्यति ॥ २१ ॥
ऊर्ध्वं संवत्सरात् कल्प्यं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमैः । संवत्सरैश्चतुर्भिश्च तद्भावमधिगच्छति ॥ २२ ॥

जिन द्विजातियोंको म्लेच्छ, चाण्डाल अथवा डाकू बलात्कारसे पकड़कर अपना दास बनालेतेहैं और वे लोग उनके साथ १ मास रहकर अशुभकर्म, गौ आदि प्राणियोंकी हिंसा, जूठा बर्त्तन साफ, जूठा भोजन, गदहे, ऊंट तथा ग्राम सूकरका मांस भक्षण, उनकी स्त्रियोंसे मैथुन और उनके साथ भोजन

करतेहैं तो वे घर आनेपर प्राजापत्य व्रत करनेसे शुद्ध हो जातेहैं ; अग्निहोत्री ब्राह्मण चान्द्रायण अथवा पराक व्रत करनेपर शुद्ध होताहै ॥ १७–२० ॥ म्लेच्छ आदिके वशमें एकवर्ष तक रहकर ऊपर कहे हुए कामोंको करनेवाले द्विजाति चान्द्रायण और पराक व्रत करनेसे पवित्र होतेहैं और शूद्र १५ दिन उबालेहुए यवका काढ़ा पीकर रहनेपर और केवल एक मासतक ऊपर कहेहुए अशुभ आदि कर्म करनेवाले शूद्र पादकृच्छ्र करनेसे शुद्ध होजातेहैं ॥ २०–२१ ॥ प्रायश्चित्त बतानेवाले ब्राह्मणको चाहिए कि एक वर्षसे अधिक म्लेच्छ आदिके वशमें रहकर ऊपर कहेहुए कामोंको करनेवालेके प्रायश्चित्तकी कल्पना करलेवे; किन्तु ४ वर्षतक उनके वशमें रहनेवाले उनके समान होजातेहैं ॥ २२ ॥

बलान्म्लेच्छैस्तु यो नीतस्तस्य शुद्धिस्तु कीदृशी । संवत्सरोषिते विप्रे शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु ॥ २६ ॥
पराकं वत्सरार्धे च पराकार्द्धं त्रिमासिके । मासिके पादकृच्छ्रश्च नखरोमविवर्जितः ॥ २७ ॥

जिनको म्लेच्छ लोग बलसे पकड़कर अपने वशमें रखतेहैं; छूटनेपर उनकी शुद्धि इस भांति होतीहै, उनके वशमें १ वर्ष रहनेवाले ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत करनेपर, ६ मास रहनेवाले ब्राह्मण पराक व्रत करनेपर, ३मास रहनेवाले ब्राह्मण आधा पराक करनेपर और १ मास रहनेवाले ब्राह्मण पादकृच्छ्र करनेपर शुद्ध होतेहैं; नख और लोमोंको कटवा देनाचाहिये ॥ २६—२७ ॥

पादोनं क्षत्रियस्योक्तमर्धं वैश्यस्य दापयेत् । प्रायश्चित्तं द्विजस्योक्तं पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २८ ॥
प्रायश्चित्तावसाने तु दोग्ध्री गौर्दक्षिणा मता । तथाऽसौ तु कुटुम्बान्ते ह्युपविष्टो न दुष्यति ॥ २९ ॥

क्षत्रियको तीन पाद, वैश्यको आधा और शूद्रको चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ २८ ॥ प्रायश्चित्तके अन्तमें दूध देनेवाली गौ दक्षिणा देनी चाहिये; ऐसा करनेसे प्रायश्चित्त करनेवाले अपने कुटुम्बमें मिलनेयोग्य होजातेहैं ॥ २९ ॥

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाऽप्यूनषोडशः । प्रायश्चित्तार्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च ॥ ३० ॥
ऊनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षात्परस्य च । प्रायश्चित्तं चरेद्भ्राता पिता वाऽन्योऽपि बान्धवः ॥ ३१ ॥

८० वर्षके बूढ़े, १६ वर्षसे कम अवस्थाके बालक, स्त्रियां और रोगी मनुष्य अपनी जातिके प्रायश्चित्तके आधा प्रायश्चित्त करनेसेही शुद्ध होतेहैं ॥ ३० ॥ ११ वर्षसे कम और ५ वर्षसे अधिक बालकका प्रायश्चित्त उनके, भाई पिता अथवा किसी अन्य उनके पालन करनेवाले करें ॥ ३१ ॥

म्लेच्छान्नं म्लेच्छसंस्पर्शो म्लेच्छेन सह संस्थितिः । वत्सरं वत्सरादूर्ध्वं त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥ ४४ ॥
म्लेच्छैर्हृतानां चौरैर्वा कान्तारेषु प्रवासिनाम् । भुक्त्वा भक्ष्यमभक्ष्यं वा क्षुधार्तेन भयेन वा ॥ ४५ ॥
पुनः प्राप्य स्वकं देशं चातुर्वर्ण्यस्य निष्कृतिः । कृच्छ्रमेकं चरेद्विप्रस्तदर्धं क्षत्रियश्चरेत् ।
पादोनं च चरेद्वैश्यः शूद्रः पादेन शुध्यति ॥ ४६ ॥

एक वर्ष अथवा उससे अधिक म्लेच्छका अन्न भोजन, म्लेच्छका संस्पर्श और म्लेच्छके साथ निवास करनेवाले ३ रात निराहार रहनेपर शुद्ध होतेहैं ॥ ४४ ॥ जिन वनवासी मनुष्योंको म्लेच्छ अथवा चोर पकड़लेजातेहैं वे यदि भयसे अथवा क्षुधासे पीड़ित होकर अभक्ष्यवस्तु भक्षण करतेहैं तो अपने घर आकर प्रायश्चित्त करके इस प्रकारसे शुद्ध होतेहैं; ब्राह्मण १ कृच्छ्र (प्राजापत्य), क्षत्रिय उसका आधा, वैश्य क्षत्रियके प्रायश्चित्तका तीन पाद और शूद्र एक पाद प्रायश्चित्त करे ॥ ४५–४६ ॥

गृहीतो यो बलान्म्लेच्छैः पञ्च षट् सप्त वा समाः । दशादिविंशतिं यावत्तस्य शुद्धिर्विधीयते ॥ ५३ ॥
प्राजापत्यद्वयन्तस्य शुद्धिरेषा विधीयते । अतः परं नास्ति शुद्धिर्यस्तु म्लेच्छैः सहोषितः ॥ ५४ ॥

जिसको म्लेच्छ बलसे पकड़कर अपने आधीन रखताहै उसकी शुद्धि पांच, छ, सात, वर्षसे लेकर तथा बीस वर्षतक २ प्राजापत्य व्रत करनेपर होतीहै, उसके पश्चात् नहीं ॥ ५३–५४ ॥

पञ्च सप्ताष्ट दश वा द्वादशाहोपि विंशतिः । म्लेच्छैर्नीतस्य विप्रस्य पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥ ८० ॥

पांच, सात, आठ, दश, बारह, अथवा बीस दिनतक म्लेच्छके वशमें रहनेवाला ब्राह्मण पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ८० ॥

अशुद्ध स्पर्शका प्रायश्चित्त ९.

(१) मनुस्मृति—५ अध्याय।

दिवाकीर्तिमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा । शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति ॥ ८५ ॥

चाण्डाल, ऋतुमती स्त्री, पतित, सूतिका स्त्री, मुर्दा और मुर्दा छूनेवाला इनको छूनेवाले स्नान करने शुद्ध होतेहैं * ॥ ८५ ॥

---

* याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–३० श्लोक । ऋतुमती स्त्री अथवा पतित आदि अशुद्ध मनुष्य छूदेवें तो स्नान करे और इनके स्पर्श करनेवाला छूवे तो आचमनकरके मनमें आपोहिष्ठा आदि ऋचा और एकबार–

(३) अत्रिस्मृति।

वसा शुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रं विट् कर्णविण्नखाः। श्लेष्मास्थि दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥३१॥
षण्णां षण्णां क्रमेणैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः। मृद्वारिभिश्च पूर्वेषामुत्तरेषान्तु वारिणा ॥ ३२ ॥

मनुष्यके शरीरमें १२ मल हैं; इनमेसे वसा अर्थात् देहके भीतरकी चर्बी, वीर्य, रुधिर, मज्जा अर्थात् सिरके भीतरकी चर्बी, मूत और विष्ठा; इन ६ की शुद्धि मिट्टी और जलसे और कानकी मैल, नख, खंखार, हड्डी, आंखकी मल और पसीना; इन ६ की शुद्धि केवल जलसे होतीहै ॥ ३१–३२ ॥

मत्स्यास्थि जम्बुकास्थीनि नखशुक्तिकपर्दिकाः ॥ १८७ ॥
हेमतप्तघृतम्पीत्वा तत्क्षणादेव नश्यति ॥ १८८ ॥

मछलीकी हड्डी, सियारकी हड्डी, कटाहुआ नख, सीपी और कौडी स्पर्श करनेवाले सुवर्ण शोधित तप्तघी पीनेपर उसी क्षण शुद्ध होतेहैं ॥ १८७–१८८ ॥

एकपत्तङ्क्युपविष्टानां भोजनेषु पृथक्पृथक्। यद्येको लभते नीलीं सर्वे तेऽशुचयः स्मृताः ॥२४२॥
यस्य पटे पट्टसूत्रे नीलीरक्ता हि दृश्यते। त्रिरात्रं तस्य दातव्यं शेषाश्चैकोपवासिनः ॥ २४३ ॥

भोजन करनेके लिये एक पांतमे अलग अलग बैठेहुए मनुष्योंमेंसे एकके शरीरमें नीलसे रंगाहुआ वस्त्र होनेपर पांतिके सब लोग अशुद्ध होजातेहैं ॥ २४२ ॥ जिसकी देहपर नीलसे रंगाहुआ वस्त्र रहताहै वह ३ रात और पांतिके अन्य लोग एकएक रात उपवास करें ※ ॥ २४३ ॥

चाण्डालपतितं म्लेच्छं मद्यभाण्डं रजस्वलाम्। द्विजः स्पृष्ट्वा न भुञ्जीत भुञ्जानो यदि संस्पृशेत्॥२६५॥
अतः परं न भुञ्जीत त्यक्त्वान्नं स्नानमाचरेत्। ब्राह्मणैः समनुज्ञातस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥ २६६ ॥

चाण्डाल, पतित, म्लेच्छ, मदिराका भाण्ड अथवा रजस्वला स्त्रीका स्पर्श करनेवाला द्विज (विना स्नान कियेहुए) भोजन नहीं करे; यदि आप भोजन करताहुआ इनमेंसे किसीको स्पर्श करे तो उस अन्नको त्यागकर स्नान करे और ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर ३ रात निराहार रहे तथा उबालेहुए यवके रसको घीके सहित पानकरके व्रतको समाप्त करे ॥ २६५–२६७ ॥

सघृतं यावकम्प्रास्य व्रतशेषं समापयेत्। भुञ्जानः संस्पृशेद्यस्तु वायसं कुक्कुटन्तथा ॥ २६७ ॥
त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादथोच्छिष्टस्त्वहेन तु ॥ २६८ ॥

भोजन करते समय काक अथवा कुत्तेसे स्पर्श होजाने पर ३ रात उपवास करनेसे और भोजनके पश्चात् जूठे मुख रहनेपर इनसे स्पर्श होजानेपर १ दिन उपवास करनेसे शुद्धि होतीहै ॥ २६७–२६८ ॥

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो ब्राह्मणो ब्राह्मणेन यः ॥ २८२ ॥
भोजने मूत्रचारे च शङ्खस्य वचनं यथा। स्नानं ब्राह्मणसंस्पर्शे जपहोमौ तु क्षत्रिये ॥ २८३ ॥
वैश्ये नक्तं च कुर्वन्ति शूद्रे चैव ह्युपोषणम्। चर्मके रजके वैण्ये धीवरे नटके तथा ॥ २८४ ॥

जूठेमुख रहनेपर अथवा मूत्र त्यागके उच्छिष्टमे यदि ब्राह्मण उच्छिष्ट ब्राह्मणसे छूजाय तो स्नान करे, उच्छिष्ट क्षत्रियसे छूजाय तो जप और होम करे, उच्छिष्ट वैश्यसे छूजाय तो दिनभर निराहार रहे और उच्छिष्ट शूद्रसे छूजाय तो १ रात उपवास करे, ऐसा महर्षि शङ्खने कहाहै ⊙ ॥ २८२–२८४ ॥

गायत्री जपे। संवर्त्तस्मृति–१८४ श्लोक। चाण्डाल, पतित, मुर्दे, अन्त्यज जाति, रजस्वला स्त्री अथवा प्रसूता स्त्रीसे स्पर्श होजानेपर द्विज वस्त्रोंके सहित स्नान करे। पाराशरस्मृति–७ अध्याय, ११–१२ श्लोक। यदि सूर्यके अस्त होनेपर चाण्डाल, पतित अथवा सूतिका स्त्रीसे स्पर्श होजाय तो अग्नि, सोना और चन्द्रमाके मार्गको देखकर ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर स्नान करनेसे मनुष्य शुद्ध होताहै।

※ देवलस्मृति–दूसरेकी हड्डी, वसा, विष्ठा, रज, मूत्र, वीर्य, मज्जा और रुधिरको स्पर्श करके स्नानकरे और अपना स्पर्श करनेपर धोकर और आचमन करके शुद्ध होवे (३–४)।

※ आपस्तम्बस्मृति–६ अध्याय–३ श्लोक। नीलसे रंगेहुए वस्त्रको धारण करनेवालेका स्नान, दान, जप, होम वेदपाठ, पितृतर्पण और पञ्चमहायज्ञ, ये सब वृथा होजातेहैं।

⊙ अङ्गिरास्मृति–८–११ श्लोक। उच्छिष्ट ब्राह्मणसे छूआगया ब्राह्मण आचमन करनेपर शुद्ध होताहै, ऐसा महर्षि अङ्गिराने कहाहै। उच्छिष्ट क्षत्रियसे छूआगया ब्राह्मण स्नान और जप करके आधे दिनमें पवित्र होताहै उच्छिष्ट वैश्य, कुत्ता अथवा शूद्रसे छूआगया ब्राह्मण एक रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै। जिसके छूनेपर स्नान करना होताहै जूठे मुखसे उसको छूनेवाला प्राजापत्य व्रत करे। यमस्मृति–१० श्लोक और आपस्तम्बस्मृति–४ अध्याय–५ श्लोक। यदि विष्ठा, मूत्र करनेपर विना शौच किये द्विजको–

एतान्स्पृष्ट्वा द्विजो मोहादाचमेत्प्रयतोपि सन्। एतैः स्पृष्टो द्विजो नित्यमेकरात्रम्पयः पिबेत्॥२८५॥
उच्छिष्टैस्तैस्त्रिरात्रं स्याद् घृतम्प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ २८६ ॥

मोहवश होकर चमार, धोबी, वेण, धीवर अथवा नटका स्पर्श करनेवाला द्विज आचमन करनेसे; जान करके इनमेंसे किसीका स्पर्श करनेवाला दूध पीकर एकरात रहनेसे और उच्छिष्ट चमार आदिसे छूजानेपर ३ रात उपवास करके घी खानेपर शुद्ध होताहै ॥ २८४--२८६ ॥

(९) आपस्तम्बस्मृति–४ अध्याय।

वृक्षारूढे तु चाण्डाले द्विजस्तत्रैव तिष्ठति ॥ ९ ॥
फलानि भक्षयंस्तस्य कथं शुद्धिं विनिर्दिशेत्। ब्राह्मणान्समनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ॥१०॥
एकरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ११ ॥

जिस वृक्षपर चाण्डाल चढ़ा हो उसीपर चढ़कर द्विज फल खाताहो तो उसकी शुद्धि कैसे होगी? ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर वह सचैल स्नान करे और एकरात उपवास करके पञ्चगव्य पीवे तो शुद्ध होगा॥९-११

९ अध्याय।

उपानहावमेध्यं वा यस्य संस्पृशते मुखम् ॥ ११ ॥
मृत्तिकाशोधनं स्नानं पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥ १२ ॥

जिसके मुखमें जूते या अन्य अपवित्र वस्तुका स्पर्श होजाताहै वह मिट्टी लगाकर स्नान करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ११–१२ ॥

(१३) पाराशरस्मृति–१२ अध्याय।

दुःस्वप्नं यदि पश्येत्तु वान्ते वा क्षुरकर्मणि। मैथुने प्रेतधूम्रे च स्नानमेव विधीयते ॥ १ ॥

यदि दुःस्वप्न देखे, वान्त करे, क्षौरकर्म करावे, मैथुन करे अथवा चिताके धूमसे स्पर्श होजाय तो केवल स्नान करना चाहिये ॥ १ ॥

(१३ क) बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–६ अध्याय।

स्नानं स्पृष्टेन येन स्यात्काष्ठाद्यैर्यदि तत्स्पृशेत्। नावारोहणवत्स्पर्शे तत्रोपस्पर्शनाच्छुचिः ॥ ३०२ ॥

जिसको छूनेसे स्नान करना पडताहै, यदि काष्ठ आदिसे उसका स्पर्श होजाय तो नावपर चढ़नेके समयके स्पर्शके तुल्य केवल आचमन करनेसे शुद्धि होजातीहै ॥ ३०२ ॥

चाण्डाल या श्वपच छूदेवे तो द्विज ३ रात निराहार रहे और यदि उच्छिष्ट द्विजको वह छूदेवे तो द्विज ६ रात उपवास करे। आपस्तम्बस्मृति--४ अध्याय,३--४ श्लोक। जो द्विज भोजन करनेपर विना आचमन किये प्रमादवश होकर चाण्डाल या श्वपचका स्पर्श करताहै वह ८ हजार गायत्री अथवा १ सौ द्रुपदा मन्त्रका जप और ३ रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै। ११--१२ श्लोक। जो द्विज उच्छिष्ट रहनेपर किसी अपवित्र वस्तुको छूताहै वह एक रात निराहार रहकर पञ्चगव्य पीनेपर शुद्ध होताहै। ५ अध्याय–१--५ श्लोक। यदि कदाचित् द्विजातिको चाण्डाल छूदेवे और वह विना स्नान कियेहुए पानी पी लेवे तो उसका प्रायश्चित्त कैसा होगा। ब्राह्मण ३ रात उपवास करके पञ्चगव्य पान करनेपर, क्षत्रिय २ रात निराहार रहकर पञ्चगव्य पीनेसे, वैश्य दिनरात उपवास करके पञ्चगव्य पान करनेपर और शूद्र अपना दोष ब्राह्मणसे कहकर दान देनेपर शुद्ध होतेहैं। ११–१५ श्लोक। यदि उच्छिष्ट ब्राह्मण अनजानमें कुत्ते, मुर्गे शूद्र, मदिराके भाण्ड या पक्षीसे अशुद्ध हुई वस्तुको छूदेताहै तो एक रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेपर वह शुद्ध होताहै। यदि ब्राह्मण उच्छिष्ट वैश्यको छूताहै तो त्रिकाल स्नान और जप करके दिनके अन्तमें शुद्ध होजाताहै। उच्छिष्ट ब्राह्मणसे छूआगया ब्राह्मण स्नान करनेपर शुद्ध होताहै, ऐसा आपस्तम्ब मुनिने कहाहै। वृद्धशातातपस्मृति–१६ श्लोक। जो द्विज भोजन करनेके समय अशुद्ध होजाताहै वह मुखके ग्रासको भूमिपर गिराकर स्नान करनेसे शुद्ध होताहै। लघुआश्वलायनस्मृति–१ आचारप्रकरण, १६२–१६३ श्लोक। जब उच्छिष्ट ब्राह्मण उच्छिष्टको, शूद्रको अथवा कुत्तेको छूताहै तब एक रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेपर वह शुद्ध होताहै, जब विना उच्छिष्ट ब्राह्मण कुत्तेको अथवा उच्छिष्ट शूद्रका स्पर्श करताहै तब स्नान करनेसे वह शुद्ध होजाताहै। पाराशरस्मृति–७ अध्यायके २२–२३ श्लोकमें प्रायः ऐसा है।

अत्रिस्मृतिके १७७–१७८ श्लोकमें ऐसा ही है और १७५–१७६ श्लोकमें है कि जिस वृक्षपर ब्राह्मण फल खारहाहो यदि उसकी जड़को चाण्डाल छूदेवे तो ब्राह्मणको चाहिये कि ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर सचैल स्नान करे और दिनभर निराहार रहकर रातमें घी खाके भोजन करे।

(१९) शातातपस्मृति ।

चितिवृक्षश्चितियूपश्चण्डालो वेदविक्रयी । एतान्वै ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत् ॥ १२५ ॥

जो ब्राह्मण चिताके स्थानके वृक्ष, चिताके स्मारक चिह्न, चाण्डाल अथवा वेद बेंचनेवाले ब्राह्मणका स्पर्श करताहै वह वस्त्रोंसहित जलमें स्नान करे ॥ १२५ ॥

(१९ख) वृद्धशातातपस्मृति ।

चाण्डालं पतितं व्यंगमुन्मत्तं शवमन्त्यजम् । शृगालं सूतिकान्नारीं रजसा च परिप्लुताम् ॥ २२ ॥
श्वकुक्कुटवराहांश्च ग्राम्यान्स्पृशति मानवः । सचैलं सशिरः स्नात्वा तदानीमेव शुद्ध्यति ॥ २३॥
अशुद्धः स्वयमप्येतानशुद्धांश्च यदा स्पृशेत् । विशुध्यत्युपवासेन शातातपवचो यथा ॥ २४ ॥

चाण्डाल, पतित, व्यंग, उन्मत्त, चमार, आदि अन्त्यज जाति, सियार, सूतिका स्त्री, रजस्वला स्त्री, कुत्ते-मुर्गे अथवा ग्राम सूकरको छूनेवाला मनुष्य वस्त्रोंके सहित शिरसे स्नान करनेपर उसी समय शुद्ध होजाताहै;किन्तु जो मनुष्य अपने अशुद्ध रहकर इनमेंसे किसीको स्पर्श करताहै वह एक उपवास करनेपर शुद्ध होता, है, ऐसा शातातपने कहाहै * ॥ २२-२४ ॥

(२२) देवलस्मृति ।

सभायां स्पर्शने चैव म्लेच्छेन सह संविशेत् । कुर्यात्स्नानं सचैलन्तु दिनमेकमभोजनम् ॥ ५८ ॥

सभामें म्लेच्छोंसे स्पर्श होजावे या उनके साथ बैठे तो वस्त्रोंसहित स्नान करे और एक रात निराहार रहे ॥ ५८ ॥

अगम्यागमनका प्रायश्चित्त १०.

(१) मनुस्मृति--११ अध्याय ।

गुरुतल्प्यभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये । सूर्मीं ज्वलन्तीं स्वाश्लिष्येन्मृत्युना स विशुद्ध्यति ॥१०४॥
स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ । नैर्ऋतीं दिशमातिष्ठेदानिपातादजिह्मगः ॥ १०५ ॥
खट्वाङ्गी चीरवासा वा श्मश्रुलो विजने वने । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमब्दमेकं समाहितः ॥ १०६ ॥
चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रियः । हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्पापनुत्तये ॥ १०७ ॥

गुरुपत्नीगमनकरनेवाला लोगोंसे अपना पाप सुनाकर तप्त लोहेकी शय्यापर या तप्त लोहेकी स्त्रीका आलिङ्गन करके प्राण त्याग करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १०४ ॥ अथवा अपने लिङ्ग और अण्डकोषको काटकर अञ्जलीमें लेकर मरजानेके समयतक नैऋत्य कोणकी ओर वह चलाजावे ॥ १०५ ॥ अथवा खट्वाङ्ग (खटियेका अङ्ग) धारण कियेहुए चिथडे कपड़े पहनेहुए दाढ़ी मूंछ और सब लोमोंको रखायेहुए समाधान होकर एकवर्षतक वनमें बसकर प्राजापत्य व्रत करे ॥ १०६ ॥ अथवा गुरुपत्नीगमनका पाप छुड़ानेके लिये जितेन्द्रिय होकर नीवार आदि हविष्य अथवा कन्द, मूल, फल, आदि यवागु खाकर ३ मास तक चान्द्रायण व्रत करे ॥ ** १०७ ॥

---

* शातातपस्मृति-१३अङ्क । काक अथवा कुत्तेको छूनेवाला मनुष्य वस्त्रोंसहित स्नान करके महाव्याहृतिका जप करे । लघुआश्वलायनस्मृति-२२ वर्णधर्म प्रकरण-१३श्लोक । रजस्वला स्त्री, सूतिका स्त्री, पतित, मुर्दे, चमार आदि अन्त्यज जाति कुत्ते काक अथवा गदहेसे स्पर्श होजाय तो वस्त्रोंके सहित जलमें स्नान करे ।

** याज्ञवल्क्यस्मृति-३अध्यायके २५९-२६० श्लोकमें प्रायः ऐसा है । उशनस्मृति-८अध्यायके २३-२४ श्लोक, गौतमस्मृति--२४ अध्यायके ३ अंक, वशिष्ठस्मृति-२० अध्यायके १४--१६ अंक और बौधायन स्मृति-२प्रश्न-१ अध्यायके१४-१६अंकमें मनुस्मृतिके-१०४-१०५ श्लोकके समान है । यमस्मृतिके३५ श्लोक-और वृद्धयमस्मृति--३ अध्यायके ७ श्लोकमें है कि गुरुपत्नीसे गमन करनेवाला अग्निमें प्रवेश करके प्राण-त्याग करे उसके लिये अन्य शुद्धि नहीं है । उशनस्मृति--२५-२६ श्लोक । गुरुकी रक्षाके लिये प्राणत्याग करनेसे या ब्रह्महत्याका व्रत करनेसे अथवा कांटेयुक्त वृक्षकी शाखा आलिङ्गन करके १ वर्षतक भूमिशायी रहनेसे किंवा फटेहुए चिथड़े पहनकर १ वर्षतक कृच्छ्र करनेसे गुरुपत्नीसे गमन करनेवाला शुद्ध होताहै । संवर्त्तस्मृतिके १२६-१२७ श्लोकमें मनुस्मृतिके १०४ श्लोकके समान है और १३७-१३८ श्लोकमें है कि अथवा ४ या ३ चान्द्रायण व्रत करनेसे गुरुपत्नीसे गमन करनेवाला द्विज शुद्ध होजाताहै (जानकरके गमन करनेवालेके लिये बड़ा प्रायश्चित्त और अनजानमें गमन करनेवालेके लिये छोटा प्रायश्चित्त बताना चाहिये तथा पापीकी अवस्थानुसार प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी चाहिये) । कण्वस्मृति-जानकरके गुरुकी क्षत्रिया--

पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्त्रीयां मातुरेव च। मातुश्च भ्रातुस्तनयां गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ १७२ ॥
एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत्तु बुद्धिमान्। ज्ञातित्वेनानुपेयास्ताः पतति ह्युपयन्नधः ॥ १७३ ॥

फुफेरी बहिन, मौसेरी बहिन और ममेरी बहिनसे गमन करनेवाले चान्द्रायण व्रत करें ꣸ १७२ ॥ बुद्धिमान् पुरुष इन ३ प्रकारकी बहिनोंको कभी नहीं अपनी भार्या बनावे; क्योंकि ज्ञातित्व :प्रयुक्त होनेसे ये गमन करनेयोग्य नहीं हैं; इनसे गमन करनेवाले नरकमें जातेहैं ॥ १७३ ॥

अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु। रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनञ्चरेत् ॥ १७४ ॥

अमानुषी अर्थात् घोड़ी आदिमें, पुरुषमें, रजस्वला स्त्रीमें, स्त्रीकी योनिके सिवाय अन्य स्थानमें और जलमें वीर्य गिरानेवाले कृच्छ्रसान्तपन करें ꣸ ॥ १७४ ॥

यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्द्विजः। तद्भैक्षभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥ १७९ ॥

जो द्विज एक रात वृषलीसे गमन करताहै वह ३ वर्षतक नित्य भिक्षाका अन्न भोजन और सावित्रीका जप करनेपर शुद्ध होताहै ꣸ ॥ १७९ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय।

सखिभार्याकुमारीषु स्वयोनिष्वन्त्यजासु च। सगोत्रासु सुतस्त्रीषु गुरुतल्पसमं स्मृतम् ॥ २३१ ॥
पितुः स्वसारं मातुश्च मातुलानीं स्नुषामपि। मातुः सपत्नीं भगिनीमाचार्यतनयां तथा ॥ २३२ ॥
आचार्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः। लिङ्गं छित्त्वा वधस्तत्र सकामायाः स्त्रिया अपि २३३॥

भार्यासे गमन करनेवाला बिना अण्डकोशोंके लिंगको काटकर मरनेसे शुद्ध होताहै (२)। लौगाक्षि-स्मृति—जानकरके गुरुकी वैश्या भार्यासे वारवार गमन करनेवाला लिंगका अग्रभाग काट देनेसे शुद्ध होताहै (१)। उपमन्युस्मृति—यदि ब्राह्मण जानकरके गुरुकी शूद्रा भार्यासे गमनकरे तो शुद्ध मनसे बारह वर्ष ब्रह्मचर्य रहकर शुद्ध होवे (१–२)। जावालिस्मृति—यदि ब्राह्मण जानकरके गुरुकी शूद्रा भार्यासे एकवार गमनकरे तो अतिकृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र वा पराक व्रत करे (४)।

꣸ उशनस्मृति—९ अध्यायके ३–४ श्लोकोंमें ऐसाही है। संवर्तस्मृति—१६०–१६१ श्लोक। मोहवश होकर मामाकी पुत्रीसे गमन करनेवाला पराक व्रत करनेसे शुद्ध होताहै; फुफेरी बहिनसे गमन करनेवाला चान्द्रायण व्रत करे।

꣸ अत्रिस्मृति—२७०–२७१ श्लोक। गौसे गमन करनेवाला मनुजीके कथनानुसार चान्द्रायण व्रत करे, गौसे अन्य पशुकी योनिमें,रजस्वला स्त्रीमें स्त्रीकी योनिके सिवाय अन्य स्थानमें अथवा जलमें वीर्य गिराने-वाला कृच्छ्रसान्तपन करे। वृहद्विष्णुस्मृति—५३ अध्याय–३ अङ्क। गौसे गमन करनेवाला गोहत्याका व्रत करे। ७ अङ्क। पशुसे गमन करनेवाला प्राजापत्य व्रत करे। संवर्तस्मृति–१५९ श्लोक। गौसे गमन करने-वाला चान्द्रायण व्रत करे। १६५ श्लोक। पशुसे गमन करनेवाला प्राजापत्य करे। गौतमस्मृति–२३ अध्याय–१० अङ्क। गौसे भिन्न पशुसे मैथुन करनेवाला कूष्माण्डसूक्तोंद्वारा अग्निमें घीसे होम करे। २४ अध्याय–४ अङ्क। एक आचार्यके मतसे गौसे गमन करना गुरुपत्नी गमनके समान है। पाराशरस्मृति—१० अध्याय–१५–१६श्लोक। पशु, भैंस, ऊंटनी, वानरी, गदही अथवा शूकरीसे गमन करनेवाला प्राजापत्य व्रत करे; गौसे गमन करनेवाला ३ रात उपवास करके ब्राह्मणको एक गौदान देवे। १२ अध्याय, ६१–६२ श्लोक जो मनुष्य जानकरके भूमि आदिपर वीर्य गिराताहै वह एक हजार गायत्रीका जप और ३ प्राणायाम करे। याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय–२८८ श्लोक। रजस्वला स्त्रीसे गमन करनेवाला ३ रात उपवास करके घी भक्षण करे। उशनस्मृति—९ अध्याय–५ श्लोक। रजस्वला स्त्रीसे गमन करनेवाला ब्राह्मण ३ रात निराहार रहनेपर शुद्ध होताहै। आपस्तम्बस्मृति—९अध्याय,३८–३९ श्लोक। रजस्वला स्त्रीसे गमन करनेवाला ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत करके ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे शुद्ध होताहै। संवर्तस्मृति—१६८ श्लोक। रजस्वलासे गमन करनेवालेको अतिकृच्छ्र करना चाहिये।

꣸ वृहद्विष्णुस्मृति–५३ अध्यायके ९ श्लोक और वृहद्यमस्मृति–३ अध्यायके १२ श्लोकमें ऐसाही है और वृहद्यमस्मृति–३ अध्यायके १३—१५ श्लोकमें है कि जो ब्राह्मण मदसे मोहित होकर वृषलीको ग्रहण करताहै उसको सदा सूतक रहताहै और प्रतिदिन ब्रह्महत्याका पाप लगताहै। एक मासतक निरन्तर वृषलीसे गमन करनेवाला इसी जन्ममें शूद्र होजाताहै और मरनेपर कुत्ता होताहै। वृषलीके ओठका रस पीनेवाले, उसके साथ शयन तथा मैथुन करते समय उसका श्वास ग्रहण करनेवाले और उसमें सन्तान उत्पन्न करनेवालेके प्रायश्चित्तका विधान नहीं है, जब बिना विवाहीहुई कन्या पिताके घरमें रजस्वला होतीहै तब उसके पिताको भ्रूणहत्याका पाप लगताहै और वह कन्या वृषली कहलातीहै।

मित्रकी भार्या, कुमारी, सहोदरा बहिन, अन्त्यज जातिकी स्त्री, अपने गोत्रकी स्त्री और पुत्रकी स्त्रीसे गमन करना गुरुपत्नीगमनके समान है ॥ २३१ ॥ फूआ, मौसी, मामी, पतोहू, माताकी सौत अर्थात् मैभा, बहिन, आचार्यकी पुत्री, आचार्यकी स्त्री और अपनी पुत्रीसे गमन करनेवाले गुरुपत्नीसे गमन करनेवालेके तुल्य हैं; इनमेंसे किसीसे गमन करनेवालेको राजा लिङ्ग कटवाकर वध करे और कामवश होकर ऐसे पुरुषसे विषय करनेवाली स्त्रीको भी यही दण्ड देवे ❀ ॥ २३२-२३३ ॥

अनियुक्तो भ्रातृजायां गच्छंश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ २८८ ॥

विना बड़ोंकी अनुमतिके अपने भाईकी विधवा स्त्रीसे गमन करनेवाला चान्द्रायण व्रत करे ⊛ ॥ २८८ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

संवर्त्तेत यथा भार्या गत्वा म्लेच्छस्य संगताम् ॥ १८१ ॥

सचैलं स्नानमादाय घृतस्य प्राशनेन च ॥ १८२ ॥

म्लेच्छसे संग कीहुई अपनी स्त्रीसे भोग करनेवाला मनुष्य वस्त्रोंसहित स्नान करके घी भक्षण करे ॥ १८१-१८२ ॥

चाण्डालम्लेच्छश्वपचकपालव्रतधारिणः । अकामतः स्त्रियो गत्वा पराकेण विशुद्ध्यति ॥ १८४ ॥

कामतस्तु प्रसूतो वा तत्समो नात्र संशयः । स एव पुरुषस्तत्र गर्भो भूत्वा प्रजायते ॥ १८५ ॥

❀ वृहद्विष्णुस्मृति-३६ अध्यायके ४—७ अङ्कमें प्रायः ऐसा है और ३४ अध्यायके १—२ अङ्कमें है कि पुत्री और पतोहूसे गमन करना अति पातक है; अतिपातकी मनुष्य अग्निमें जलजावे, उसके लिये दूसरा कोई प्रायश्चित्त नहीं है । उशनस्मृति—९ अध्याय, १-३ श्लोक । जानकरके बहिन या पतोहूसे गमन करनेवाला ब्राह्मण जलतीहुई आगमें प्रवेश करके मरजावे; मौसी, मामी अथवा फूआसे गमन करनेवाला प्राजापत्यादि आचरण करके ४ अथवा ५ चान्द्रायण व्रत करे । पाराशरस्मृति-१० अध्याय १०-१५ श्लोक । मोहवश होकर बहिन या पुत्रीसे गमन करनेवाला ३ प्राजापत्य और ३ चान्द्रायण व्रत करके अपना लिङ्ग काट देनेपर शुद्ध होताहै । मौसीसे गमन करनेवाला अपना लिङ्ग काट डाले,यदि अज्ञानसे गमन करे तो २ चान्द्रायण व्रत करे और १वैलके साथ १० गौ दान देवे । मैभा, पतोहू, मामी अथवा अपने गोत्रकी स्त्रीसे गमन करनेवाला ३ प्राजापत्य व्रत करके २ गाय दक्षिणा देनेसे निःसन्देह शुद्ध होजाताहै । गौतमस्मृति-२४अध्याय-४ अङ्क । मित्रकी भार्या, सहोदरा बहिन, सगोत्रा स्त्री या पतोहूसे गमन करना गुरुपत्नीगमनके समान है; कोई आचार्य कहतेहैं कि ऐसे पुरुषको कूड़ा करकटके समान त्यागदेना चाहिये । वसिष्ठस्मृति—२० अध्याय, १७—१८ अंक । पतोहूसे गमन करनेवाला गुरुपत्नीगमनका प्रायश्चित्त करे । मित्रकी भार्यासे गमन करनेवाला ३ मासतक कृच्छ्र करे । यमस्मृति-३३-३४ श्लोक । धोबी, चमार, नट, बंसफोर, कैवर्त्त, व्याध विशेष मेद और भील ये ७ अन्त्यज कहलातेहैं । इनकी स्त्रियोंसे गमन करनेवाले एक वर्षतक कृच्छ्र करें और अज्ञानसे गमन करनेवाले २ चान्द्रायणव्रत करें । अत्रिस्मृति-१९५-१९७ श्लोकमें ऐसाही है । यमस्मृति-३५-३६ श्लोक । बहिन, पुत्री अथवा पतोहूसे गमन करनेवाला अग्निमें प्रवेश करके मरजावे, उसके लिये अन्य शुद्धि नहीं है । गोत्रकी स्त्रीसे गमन करनेवाला २ कृच्छ्र करे । संवर्त्तस्मृति—१६०-१६६ श्लोक । अज्ञानसे मामीसे गमन करनेवाला पराक व्रत करनेसे शुद्ध होताहै । गुरुकी पुत्री या फूआसे गमन करनेवाला चान्द्रायणव्रत करे । मैभा, मौसी, चाचाकी पुत्री या कुमारीसे गमन करनेवाला तप्तकृच्छ्र करे । मित्रकी स्त्री, बहिन अथवा पुत्रीसे गमन करनेवालेके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है । १७५ श्लोक । अज्ञानसे नटिनी, धोबिन, बंसफोरिन या चमारिनसे गमन करनेवाला द्विज चान्द्रायण व्रत करे । बौधायनस्मृति-२प्रश्न-१अध्याय, ४६-४७ अङ्क । अज्ञानसे सगोत्रा स्त्रीसे गमन करनेवाला बहिनगमनके समान प्रायश्चित्त करे; यदि उससे सन्तान उत्पन्न होवे तो ३ मास कृच्छ्र करके 'यन्म आत्मनो मिन्दाऽभूत्' और 'पुनरग्निश्चक्षुरदात्' इन दो मन्त्रोंसे हवन करे । २ प्रश्न-२ अध्याय, ७१-७२ अङ्क । मौसी, फुआ, बहिन, पतोहू, मामी और मित्रकी स्त्री गमन करने योग्य नहीं हैं; इनमेंसे किसीसे गमन करनेवाला, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र और चान्द्रायण व्रत करे । मनुस्मृति-११अध्याय-१७१ श्लोक । सहोदरा बहिन,मित्रकी भार्या, पुत्रकी भार्या, कुमारी कन्या अथवा अन्त्यज जातिकी स्त्रीसे गमन करनेवाला गुरुपत्नीगमनके तुल्य प्रायश्चित्त करे ।

⊛ संवर्त्तस्मृति—१६२ श्लोक । अपने भाईकी स्त्रीसे गमन करनेवाला गुरुपत्नीसे गमन करनेका प्रायश्चित्त करे; अन्य प्रकारसे पाप नहीं छूटताहै । पाराशरस्मृति-१० अध्याय, १४-१५ श्लोक । अपने भाईकी स्त्रीसे गमन करनेवाला ३ प्राजापत्य व्रत करके २ गौ दक्षिणा देनेसे निःसन्देह शुद्ध होजाताहै ।

चाण्डाल, म्लेच्छ, श्वपच अथवा कपाल धारण करनेवाले अघोरी आदिकी स्त्रीसे अनिच्छापूर्वक गमन करनेवाला पुरुष पराक व्रत करनेसे शुद्ध होताहै, किन्तु इच्छापूर्वक गमन करनेवाला अथवा सन्तान उत्पन्न करनेवाला निःसन्देह उस स्त्रीकी जाति बनजाताहै, क्योंकि मैथुनकरनेवाला ही सन्तानरूपसे जन्म लेताहै ❀ ॥ १८४-१८५ ॥

(४ क) बृहद्विष्णुस्मृति- ३६ अध्याय।

पितृव्यमातामहमातुलश्वशुरनृपपत्न्यभिगमनं गुरुदारगमनसमम् ॥ ४ ॥
श्रोत्रियर्त्विगुपाध्यायमित्रपत्न्यभिगमनं च ॥ ६ ॥ (स्वसुः) सख्याः सगोत्राया उत्तमवर्णायाः कुमार्या अन्त्यजाया रजस्वलायाः प्रव्रजिताया निक्षिप्तायाश्च ॥ ७ ॥

चाची, नानी, [मामी], सासु अथवा रानीसे गमन करना गुरुपत्नीगमनके समान है ॥ ४ ॥ श्रोत्रियकी भार्या, ऋत्विककी स्त्री, उपाध्यायकी भार्या, [मित्रकी पत्नी] बहिनकी सखी, [सगोत्रा स्त्री], अपनेसे उत्तम वर्णकी स्त्री, [कुमारी कन्या, अन्त्यज जातिकी स्त्री, रजस्वला स्त्री], वैराग्य ग्रहण करनेवाली स्त्री तथा उन्मत्ता स्त्रीसे गमन करनाभी गुरुपत्नीगमनके तुल्य है ❁ ॥ ६-७ ॥

(६क)उशनस्मृति-९ अध्याय।

भागिनेयीं समारुह्य कुर्यात्कृच्छ्रादिपूर्वकम् ॥ २ ॥
चान्द्रायणानि चत्वारि पञ्च वा सुसमाहितः ॥ ३ ॥
भार्यासखीं समारुह्य गत्वा श्यालीं तथैव च ॥ ४ ॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥ ५ ॥

बहिनकी पुत्रीसे गमन करनेवाला सावधान होकर कृच्छ्रादि व्रत करके ४ अथवा ५ चान्द्रायण व्रत करे ॥ २-३ ॥ भार्याकी सखी अथवा अपनी शालीसे गमन करनेवाला एक दिनरात निराहार रहकर तप्त-कृच्छ्र व्रत करे ॥ ४-५ ॥

(८) यमस्मृतिः।

अन्यासु पितृगोत्रासु मातृगोत्रगतास्वपि। परदारेषु सर्वेषु कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ ३७ ॥

❀ अत्रिस्मृति—१८०—१८२ श्लोक। म्लेच्छकी स्त्रीसे सङ्ग करनेवाला सान्तपन और तप्तकृच्छ्र करनेपर शुद्ध होताहै। मनुस्मृति—११ अध्याय—१७६ श्लोक और बौधायनस्मृति—२ प्रश्न—२ अध्याय—७५ श्लोक। अज्ञानसे चाण्डालीसे गमन करनेवाला ब्राह्मण पतित होताहै और जानकर गमन करनेवाला ब्राह्मण उसकी जाति बनजाताहै। बृहद्विष्णुस्मृति—५३ अध्याय,५-६ अङ्क। अनजानमें चाण्डालीसे गमन करनेवाला २ चान्द्रायण व्रत करे; किन्तु जान करके गमन करनेवाला चाण्डाल होजाताहै। बृहद्यमस्मृति-१ अध्याय-१५ श्लोक। चाण्डालीसे गमन करनेवाला द्विज १५ दिन अघमर्षण जप और पयोव्रत करनेसे शुद्ध होताहै। यमस्मृति—२८-२९ श्लोक। ज्ञानपूर्वक चाण्डालकी अथवा कपाल धारण करनेवाले अघोरी आदिकी स्त्रीसे गमन करनेवाला एक वर्ष कृच्छ्र करे और अज्ञानसे गमन करनेवाला दो चान्द्रायण व्रत करे। संवर्त्त-स्मृति—१५२ श्लोक। कामवश होकर चाण्डालीसे गमन करनेवाला द्विज कृच्छ्र अर्थात् प्राजापत्य, अति कृच्छ्र और कृच्छ्रातिकृच्छ्र करनेपर शुद्ध होताहै। १७३ श्लोक। चाण्डाली या श्वपाककी स्त्रीसे गमन करने-वाला ३ चान्द्रायण व्रत करे। पाराशरस्मृति—१० अध्याय, ५-१० श्लोक। जो ब्राह्मण चाण्डाली अथवा श्वपाकीसे गमन करताहै वह ब्राह्मणोंकी आज्ञासे ३ रात उपवास करके और शिखा सहित मुण्डन करके ३ प्राजापत्य करे, फिर ब्रह्मकूर्च करके ब्राह्मणोंको खिलावे, दो गौ और २ बैल ब्राह्मणको दक्षिणा देवे, नित्य गायत्रीका जप करे; ऐसा करनेसे निःसन्देह वह शुद्ध होताहै। यदि क्षत्रिय अथवा वैश्य चाण्डालीसे गमन करे तो २ प्राजापत्य व्रत करके एक गौ और एक बैल दान देवे। यदि शूद्र श्वपाकी या चाण्डालीसे गमन करे तो १ प्राजापत्य व्रत करके चार गौ और चार बैल दान करे।

❁ संवर्त्तस्मृति—१६० श्लोक। अज्ञानसे साससे गमन करनेवाला पराक व्रत करनेसे शुद्ध होताहै। १६२ श्लोक। चाचीसे गमन करनेवाला गुरुपत्नीगमनका प्रायश्चित्त करे; अन्य प्रकारसे पाप नहीं छूटताहै। यमस्मृति—३६ श्लोक। रानी, वैराग्य ग्रहण करनेवाली स्त्री अथवा अपनेसे उत्तम वर्णकी स्त्रीसे गमन करनेवाला २ कृच्छ्र करे। बौधायनस्मृति—२ प्रश्न—२ अध्याय—७७ श्लोक। प्रमादवश होकर रानीसे गमन करनेवाला गुरुतल्पग कहलाताहै।

ऊपरके श्लोकमें कहेहुएके सिवाय पिताके गोत्रकी स्त्री, माताके गोत्रकी स्त्री अथवा अन्य किसीकी स्त्रीसे गमन करनेवाला कृच्छ्रसान्तपन करे ॥ ३७ ॥

वेश्याभिगमने पापं व्यपोहन्ति द्विजातयः । पीत्वा सकृत्सुतप्तं च पंचरात्रं कुशोदकम् ॥ ३८ ॥
गुरुतल्पव्रतं केचित्केचिद्ब्रह्महणो व्रतम् । गोघ्नस्य केचिदिच्छन्ति केचिच्चैवावकीर्णिनः ॥ ३९ ॥

वेश्यासे गमन करनेवाले द्विजाति नित्य एक बार कुशाके तप्तजल पीकर ५ रात रहनेसे शुद्ध होतेहैं; कोई ऋषि गुरुपत्नी गमनका, कोई ब्रह्महत्याका, कोई गोहत्याका और कोई ऋषि अवकीर्णिका प्रायश्चित्त वेश्यागामीके लिये मानतेहैं ❀ ॥ ३८-३९ ॥

(१०) संवर्तस्मृति ।

क्षत्रियामथ वैश्यां वा गच्छेद्यः काममोहितः । तस्य सान्तपनः कृच्छ्रो भवेत्पापापनोदनः ॥ १५६ ॥
शूद्रां तु ब्राह्मणो गत्वा मासं मासार्द्धमेव वा । गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥१५७॥
विप्रस्तु ब्राह्मणीं गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् । क्षत्रियां क्षत्रियो गत्वा तदेव व्रतमाचरेत् ॥ १५८ ॥
कथंचिद्ब्राह्मणीं गत्वा क्षत्रियो वैश्य एव च । गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्ध्यति ॥ १७० ॥
ब्राह्मणीशूद्रसंपर्के कदाचित्समुपागते । कृच्छ्रचान्द्रायणं तस्याः पावनं परमं स्मृतम् ॥ १७२ ॥

कामके वश होकर क्षत्रिया अथवा वैश्यासे गमन करनेवाला ब्राह्मण कृच्छ्रसान्तपन करनेपर पापसे छूटजाताहै ॥ १५६ ॥ एक मासतक अथवा पन्द्रह दिनतक शूद्रासे गमन करनेवाला ब्राह्मण १५ दिनतक गोमूत्र और यवका काढ़ा पीकर रहनेसे शुद्ध होताहै ॥ १५७ ॥ ब्राह्मणीसे गमन करनेवाला ब्राह्मण प्राजापत्य व्रत करे और क्षत्रियासे गमन करनेवाला क्षत्रिय भी यही व्रत करे ॥ १५८ ॥ कदाचित् क्षत्रिय अथवा वैश्य ब्राह्मणीसे गमन करें तो एक मास तक गोमूत्र और यवका काढा भक्षण करके रहनेसे शुद्ध होतेहैं१७०॥ कदाचित् शूद्र ब्राह्मणीसे गमन करे तो उसके लिये चान्द्रायण व्रत पवित्र करनेवाला कहागयाहै ❁ ॥ १७२ ॥

चाण्डालं पुक्कसं चैव श्वपाकं पतितं तथा । एताः श्रेष्ठाः स्त्रियो गत्वा कुर्याच्चान्द्रायणत्रयम्॥१७३॥

पुक्कस,पतित,[चाण्डाल या श्वपाक]की स्त्रीसे गमन करनेवाला द्विज ३ चान्द्रायण व्रत करे ✪ १७३

नियमस्थां व्रतस्थां वा योभिगच्छेत्स्त्रियं द्विजः । स कुर्यात्प्राकृतं कृच्छ्रं धेनुं दद्यात्पयस्विनीम्॥१६७॥

जो द्विज नियम अथवा व्रतमें टिकीहुई स्त्रीसे गमन करताहै वह प्राकृतकृच्छ्र करके दुग्धवती गौका दान देवे ॥ १६७ ॥

(१३) पाराशरस्मृति-१०अध्याय ।

चातुर्वर्ण्येषु सर्वेषु हितां वक्ष्यामि निष्कृतिम् । अगम्यागमने चैव शुद्धौ चान्द्रायणं चरेत् ॥ १ ॥

चारों वर्णोंके मनुष्योंका प्रायश्चित्त कहताहूं, नहीं गमन करनेयोग्य स्त्रीसे गमन करनेवाला चान्द्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ✾ ॥ १ ॥

मातरं यदि गच्छेत्तु भगिनीं स्वसुतां तथा ॥ १० ॥
एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीणि कृच्छ्राणि संचरेत् । चान्द्रायणं त्रयं कुर्याच्छिश्नच्छेदेन शुद्ध्यति॥११॥

अज्ञानवश होकर माता [बहिन या पुत्री] से गमन करनेवाला ३ कृच्छ्र, तथा ३ चान्द्रायण व्रत करके अपना लिङ्ग काट देनेपर शुद्ध होताहै ✿ ॥ १०-११ ॥

❀ अत्रिस्मृति—२६९ श्लोक, वृहद्विष्णुस्मृति—५३ अध्याय-७ अङ्क, संवर्त्तस्मृति—१६५ श्लोक और पाराशरस्मृति—१० अध्याय, १५-१६ श्लोक । वेश्यासे गमन करनेवाला मनुष्य प्राजापत्य व्रत करे ।

❁ वसिष्ठस्मृति—२१ अध्याय,१७-१८ अङ्क । जो ब्राह्मण विना विचारे किसी ब्राह्मणकी स्त्रीसे गमन करे वह यदि अपने धर्म कर्ममें तत्पर हो तो कृच्छ्र व्रत करे और यदि धर्मका नियम छोड़दिया हो तो अतिकृच्छ्र व्रत करे, इसी भांति क्षत्रिय तथा वैश्य अपनी जातिकी स्त्रीसे गमन करनेपर प्रायश्चित्त करे ।

✪ यमस्मृति-२८ श्लोक । जानकरके पुक्कसकी स्त्रीसे गमन करनेवाला एक वर्ष कृच्छ्र और अनजानेमें गमन करनेवाला दो चान्द्रायण व्रत करे ।

✾ आपस्तम्बस्मृति—१० अध्याय, १३-१४ श्लोक । नहीं गमन करने योग्य स्त्रीसे गमन करनेवाला चान्द्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ।

✿ वृहद्विष्णुस्मृति-३४ अध्याय, १-२ अंक, यमस्मृति-३५ श्लोक और वृहद्यमस्मृति-३ आध्याय-७ श्लोक । मातासे गमन करनेवाला पुरुष अग्निमें प्रवेश करके जलजावे उसके लिये अन्य प्रायश्चित्त नहीं है । संवर्तस्मृति-१६६ श्लोक । मातासे गमन करनेवालेके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है ।

पितृदारान्समारुह्य मातुराप्तां च भ्रातृजाम् ॥ १३॥
मातुलानीं सगोत्रां च प्राजापत्यत्रयं चरेत् ॥ १४ ॥
गोद्वयं दक्षिणां दत्त्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥ १५ ॥

माताकी सखी, भाईकी कन्या, [मैभा, मामी या सगोत्रा स्त्री] से गमन करनेवाला पुरुष ३ प्राजापत्य व्रत करके २ गौ दक्षिणा देनेसे निःसन्देह शुद्ध होजाताहै ॥ १३–१५ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति–२० अध्याय।

आचार्यपुत्रशिष्यभार्यासु चैवम् ॥ १७ ॥

शिष्यकी पत्नी [आचार्यकी पत्नी और पतोहू] से गमन करनेवाला ऊपरके श्लोकोंमें लिखाहुआ गुरु॰ पत्नी गमनका प्रायश्चित्त करे ॥ १७ ॥

स्त्रीका प्रायश्चित्त ११.

(१) मनुस्मृति–११ अध्याय।

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्त्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि। यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम् ॥ १७७ ॥
सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपयन्त्रिता। कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम् ॥१७८ ॥

व्यभिचारिणी स्त्रीके पतिको उचित है कि उसके एक घरमें बन्द करके रक्खे और परकी स्त्रीसे गमन करनेवाले पुरुषके लिये जो प्रायश्चित्त है वह उससे करावे ॥ १७७ ॥ यदि वह स्त्री फिर अपनी जातिके पुरुषसे व्यभिचार करे तो उसकी शुद्धिके लिये प्राजापत्य और चान्द्रायण व्रत कहागयाहै ❀ ॥ १७८ ॥

(७) अङ्गिरास्मृति।

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाऽप्यूनषोडशः। प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च ॥ ३३ ॥

अस्सी वर्षके बूढे, सोलह वर्षसे कम अवस्थाके बालक, स्त्री और रोगी ये आधे प्रायश्चित्तके योग्य है ✪ ॥ ३३ ॥

(८ क) बृहद्यमस्मृति–४अध्याय।

घृतं योन्यां क्षिपेद्घोरं परपुंसगता हि या ॥३७ ॥
हवनं च प्रयत्नेन गायत्र्या चायुतत्रयम्। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाच्छतमष्टोत्तरेण हि ॥ ३८ ॥

पर पुरुषसे व्यभिचार करनेवाली स्त्रीको घी भरेहुए पात्रमे बैठाकर निकाले और यत्नपूर्वक गायत्री-मंत्रसे तीस हजार आहुति देकर १०८ ब्राह्मणोको भोजन करावे ॥ ३७–३८ ॥

(१३) पाराशरस्मृति–७ अध्याय।

स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी ब्राह्मणीं तथा। तावत्तिष्ठेन्निराहारा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ १३ ॥
स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणीं क्षत्रियां तथा। अर्द्धकृच्छ्रं चरेत्पूर्वा पादमेकं त्वनन्तरा ॥ १४ ॥
स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणीं वैश्यजां तथा। पादहीनं चरेत्पूर्वा पादमेकमनंतरा ॥ १५ ॥
स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजां तथा। कृच्छ्रेण शुद्ध्यते पूर्वा शूद्रा दानेन शुद्ध्यति॥१६॥

यदि रजस्वला ब्राह्मणीको रजस्वला ब्राह्मणी छू देवे तो दोनों ब्राह्मणी रजोदर्शनकी समाप्तितक निराहार रहनेपर ३ रातमें शुद्ध होतीहैं ॥ १३ ॥ यदि रजस्वला ब्राह्मणी और रजस्वला क्षत्रिया परस्पर स्पर्श करें तो ब्राह्मणी आधा कृच्छ्र और क्षत्रिया चौथाई कृच्छ्र करे ॥ १४ ॥ यदि रजस्वला ब्राह्मणी और रजस्वला वैश्या परस्पर स्पर्श करे तो ब्राह्मणी पौन कृच्छ्र ओर वैश्या चौथाई कृच्छ्र करे ॥ १५ ॥ यदि रजस्वला ब्राह्मणी और रजस्वला शूद्रा परस्पर स्पर्श करे तो ब्राह्मणी एक कृच्छ्र और शूद्रा दान करनेसे शुद्ध होती है ☙ ॥१६॥

❀ शौनकस्मृति–जो पुरुषके पतनमें निमित्त है वेही स्त्रियोंके भी पतनमें निमित्त हैं; ब्राह्मणी हीन-वर्णके साथ गमन करनेसे अधिक पतित होजातीहै ॥ १ ॥

✪ वृहद्विष्णुस्मृति–५४ अध्याय–३३ श्लोक, लघुहारीतस्मृति–३३ श्लोक, वृहद्यमस्मृति–३ अध्याय–३ श्लोक और आपस्तम्बस्मृति–३ अध्याय–६ श्लोकमें ऐसा ही है।

☙ अत्रिस्मृति–२७६–२७८ श्लोक। यदि रजस्वला स्त्रीको कुत्ता, चाण्डाल या काक छूदेवे तो रजः स्नानके दिनतक निराहार रहकर स्नान करनेसे वह शुद्ध होतीहै; यदि रजस्वला स्त्रीका ऊंट, स्यार या शूकर छूदेवे तो ५ रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे वह शुद्ध होजातीहै। लघुहारीतस्मृति ६ श्लोक। यदि व्रतके नियममें स्थित स्त्री रजस्वला होजाय तो वह ३ रातके पश्चात् शुद्ध होनेपर शेष व्रतको समाप्त करे। अङ्गिरा-स्मृति–३९ श्लोक। यदि रजस्वला स्त्रीको कुत्ते या शूद्रसे स्पर्श होजाताहै तो एक रात उपवास करके पञ्च–

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी । तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥ २० ॥

रजस्वला स्त्री, पहिले दिन चाण्डालीके समान, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनीके तुल्य और तीसरे दिन धोबिनके समान रहतीहै; चौथे दिन शुद्ध होजातीहै ॥ २० ॥

९ अध्याय ।

सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलिद्वयम् । एवं नारीकुमारीणां शिरसो मुण्डनं स्मृतम् ॥ ५६ ॥
न स्त्रियां केशवपनं न दूरे शयनासनम् । न च गोष्ठे वसेद्रात्रौ न दिवा गा अनुव्रजेत् ॥ ५७ ॥
नदीषु सङ्गमे चैव अरण्येषु विशेषतः । न स्त्रीणामजिनं वासो व्रतमेवं समाचरेत् ॥ ५८ ॥
त्रिसन्ध्यं स्नानमित्युक्तं सुराणामर्चनं तथा । बन्धुमध्ये व्रतं तासां कृच्छ्रचान्द्रायणादिकम् ॥ ५९ ॥
गृहेषु सततं तिष्ठेच्छुचिर्नियममाचरेत् ॥ ६० ॥

सब बालोंको ऊपर उभारकर दो अंगुल काटदेवे, इस प्रकार स्त्री और कुमारी कन्याके शिरका मुण्डन कहाहै ॥५६॥ स्त्रीको(गोहत्याके प्रायश्चित्त करनेके समय) केश मुण्डाना,घरसे दूर शयन करना, रातको गोशालामें वसना, दिनमें गौओंके साथ फिरना नदियोंके सङ्गममें, विशेष करके वनोंमें वसना तथा मृगछाला धारण करना नहीं पड़ताहै; वह इस प्रकारसे व्रत करे ॥ ५७–५८ ॥ त्रिकाल स्नान करे, देवताओंको पूजे, चान्द्रायण आदि व्रत अपने बन्धुजनोंके बीचमें ही करे, सदा अपने घरमें ही रहे और पवित्र नियमोंको करे (@) ॥५९—६० ॥

१० अध्याय ।

चाण्डालैः सह संपर्कं या नारी कुरुते ततः ॥ १८॥
विप्रान्दशावरान्कृत्वा स्वयं दोषं प्रकाशयेत् । आकण्ठसमिते कूपे गोमयोदककर्दमे ॥ १९ ॥
तत्र स्थित्वा निराहारा त्वहोरात्रेण निष्क्रमेत् । सशिखं वपनं कृत्वा भुञ्जीयाद्यावकौदनम् ॥ २०॥
त्रिरात्रमुपवासित्वा त्वेकरात्रं जले वसेत् । शङ्खपुष्पीलतामूलं पत्रं वा कुसुमं फलम् ॥ २१ ॥
सुवर्णं पञ्चगव्यं च क्वाथयित्वा पिबेज्जलम् । एकभक्तं चरेत्पश्चाद्यावत्पुष्पवती भवेत् ॥ २२ ॥
व्रतं चरति तद्यावत्तावत्संवसते बहिः । प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ २३ ॥
गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् । चातुर्वर्ण्यस्य नारीणां कृच्छ्रं चान्द्रायणव्रतम् ॥२४ ॥
यथा भूमिस्तथा नारी तस्मात्तां न तु दूषयेत् ।बन्दिग्राहेण या भुक्ता हत्वा बद्ध्वा बलाद्भयात् ॥२५॥

जो स्त्री चाण्डालके साथ प्रसङ्ग करताहै वह दश ब्राह्मणोंकी धर्मसभामें अपने दोषको प्रकट करे, उसके पश्चात् एक कूपमें कण्ठतक गहिरा गोबर और जलका कींचड़ भरे, उसमें निराहार रहकर एक दिन रात

–गव्य पीनेपर वह शुद्ध होती है । लिखितस्मृति–८३ श्लोक । यदि रजस्वला स्त्रीको कुत्ता सूअर अथवा काक छूदेवे तो एक रात निराहार रहकर पञ्चगव्य पान करके वह शुद्ध होतीहै । आपस्तम्बस्मृति–७ अध्याय,७–८ श्लोक । यदि रजस्वला स्त्रीको धोबी आदि अन्त्यज जाति, कुत्ता अथवा श्वपच छूदेवे तो ३ रात निराहार रहकर पञ्चगव्य पान करके वह शुद्ध होतीहै, यदि रजोदर्शनके पहिले दिन छूदेवे तो ६ रात उपवास करे, दूसरे दिन छूवे तो ३ रात निराहार रहे, तीसरे दिन छूवे तो एक रात उपवास करे और चौथे दिन छूवे तो अग्निका दर्शन करलेवे । १२ श्लोक । यदि रजस्वला स्त्रीको रजस्वला छूदेतीहै तो वे स्नानके दिनतक निराहर रहकर स्नान करनेपर शुद्ध होजातीहैं । वृद्धशातातपस्मृति–२० श्लोक । यदि रजस्वला स्त्रीको रजस्वला स्त्री स्पर्श करतीहै तो रजःस्नानके दिन सुवर्णयुक्त पञ्चगव्यसे स्नान करने पर वे शुद्ध होतीहैं । मार्कण्डयस्मृति– यदि रजस्वला स्त्री सवर्णा रजस्वलाका स्पर्श करती है तो स्नान करनेपर उसी दिन शुद्ध होतीहै ॥ २ ॥ यदि रजस्वला स्त्री उच्छिष्ट द्विजके नाभीसे नीचेका अङ्ग छूलेवे तो दिनरात और नाभीसे ऊपरका अङ्ग स्पर्श करे तो ३ दिन निराहार रहे ॥ ३ ॥ वृद्धवसिष्ठस्मृति ॥ यदि एक पुरुषकी दो सवर्णा स्त्री रजस्वला होनेपर परस्पर स्पर्श करती हैं तो स्नान करनेपर उसी समय शुद्ध होजातीहैं ॥ २ ॥ कश्यपस्मृति–यदि रजस्वला ब्राह्मणीका स्पर्श करतीहै तो एक रात निराहार रहकर पञ्चगव्य पीनेपर शुद्ध होतीहै ॥ १ ॥ पुलस्त्यस्मृति । यदि रजस्वला स्त्रीको कुत्ता, सियार अथवा गदहा काट देवे तो पांच रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे वह शुद्ध होतीहै ॥ २ ॥ नाभीसे ऊपर काटे तो दुगुना, मुखमें काटे तो तिगुना और मस्तकपर काटे तो चौगुना प्रायश्चित्त करे; किन्तु अन्य स्त्रीको काटे तो स्नानमात्रसे वह शुद्ध होतीहै ॥ ३ ॥

आपस्तम्बस्मृति–७ अध्याय–४ श्लोकमें ऐसा ही है ।

(@) यमस्मृति—५४–५५ श्लोक । और बृहद्यमस्मृति–४ अध्याय, १६–१७ श्लोकमें पाराशरस्मृतिके ५६–५७ श्लोकके समान है ।

खड़ी रहे, उसके बाद निकल आवे ॥ १८-२० ॥ शिरका केश मुण्डन कराके यवका भात खावे, फिर ३रात उपवास करके १ रात जलमें वसे, फिर शङ्खपुष्पी लताका मूल, पत्र, फूल अथवा फल और सोना तथा पञ्चगव्यका काढा बनाकर पीवे, उसके बाद रजोदर्शनतक नित्य एकही बार भोजन करे ॥ २०-२२ ॥ जबतक व्रत करे तबतक घरसे बाहर किसी भागमें वसे, प्रायश्चित्तके अन्तमें ब्राह्मणोंको खिलाकर २ गौ दक्षिणा देवे, यह शुद्धि महर्षि पाराशरने कहीहै ॥२३-२४॥ चारो वर्णोंकी स्त्रियोंकी शुद्धिके लिये कृच्छ्र और चान्द्रायण व्रत है; जैसी पृथ्वी वैसी ही स्त्री होतीहै इस लिये स्त्रीको त्यागनेयोग्य दोषी नहीं कहना चाहिये ॥ २४-२५ ॥

कृत्वा सान्तपनं कृच्छ्रं शुद्ध्येत्पाराशरोऽब्रवीत्। सकृद्भुक्ता तु या नारी नेच्छन्ती पापकर्मभिः॥२६॥ प्राजापत्येन शुद्ध्येत ऋतुप्रस्रवणेन च ॥ २७ ॥

यदि किसी स्त्रीको कोई छेंक लेजाकर, मारनेका भय दिखाकर, बान्धकर या बलपूर्वक भोगताहै तो वह कृच्छ्रसान्तपन करनेपर शुद्ध होतीहै, ऐसा पाराशरजीने कहाहै ॥ २५-२६ ॥ यदि कोई पापी स्त्रीकी विना इच्छाके एक बार उससे भोग करताहै तो प्राजापत्य व्रत करनेसे रजस्वला होनेपर वह शुद्ध होजातीहै ❀ ॥ २६-२७ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति-२१ अध्याय।

मनसा भर्तुरतिचारे त्रिरात्रं यावकं क्षीरौदनं वा भुञ्जानाऽधः शयीतोर्ध्वं त्रिरात्रादप्सु निमग्नायाः सावित्र्यष्टशतेन शिरोभिर्जुहुयात् पूता भवतीति विज्ञायते ॥ ७ ॥ वाक्सम्बन्ध एतदेव मासं चरित्वोर्ध्वम्मासादप्सु निमग्नायाः सावित्र्याश्चतुर्भिरष्टशतैः शिरोभिर्जुहुयात्पूता भवतीति विज्ञायते ॥ ८ ॥ व्यवाये तु संवत्सरं घृतपटं धारयेत् ॥ ९ ॥ गोमयगर्ते कुशप्रस्तरे वा शयीतोर्ध्वं संवत्सरादप्सु निमग्नायाः सावित्र्यास्त्र्यष्टशतेनशिरोभिर्जुहुयात्पूता भवतीति विज्ञायते ॥ १० ॥

जो स्त्री मनसे दूसरे पुरुषकी चाहना करके पतिका अनादर करतीहै उसको उचित है कि ३ राततक उबालेहुए यवका रस और दूध भात खाकर रहे, भूमिपर शयन करे, ३ रातके बाद सावित्रीके शिरोमन्त्र (आपोज्योती०) से ८०० घीकी आहुति करे; ऐसा करनेसे वह शुद्ध होजातीहै ॥ ७ ॥ जो स्त्री वचनसे अन्य पुरुषकी चाहना करके पतिका अनादर करतीहै वह एक मास तक ऊपर कहेहुए नियमको करनेके बाद नदीके जलमें सावित्री (तत्सवितु ०) मन्त्रके शिरोमन्त्र (ओम्-आपोज्योती०) से घीकी ३२०० आहुति देवे; ऐसा करनेसे वह शुद्ध होतीहै ॥ ८ ॥ जो स्त्री परपुरुषसे प्रसङ्ग करतीहै वह एक वर्षतक घी लगाहुआ वस्त्र धारण करे, गोबरके गढ़ेमें या कुशोंके बिछौनेपर शयन करे उसके पश्चात् सावित्रीके शिरोमन्त्र (आपोज्योती०) से नदीके जलमें घीकी २४०० आहुति छोड़े; ऐसा करनेसे वह पवित्र होजातीहै९-१०

ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रियः शूद्रेण सङ्गताः। अप्रजाता विशुद्ध्यन्ति प्रायश्चित्तेन नेतराः ॥ १४ ॥

जिस ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्यकी कन्याको कोई सन्तान नहीं उत्पन्न हुईहै वह शूद्रसे प्रसङ्ग करनेपर प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होतीहै; किन्तु सन्तानवाली शुद्ध नहीं होती ❀❀ ॥ १४ ॥

(२१) देवलस्मृति।

अतः परम्प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तमिदं शुभम्। स्त्रीणां म्लेच्छैश्च नीतानां बलात्संवेशने क्वचित् ॥३६॥ ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा नीता यदाऽन्त्यजैः। ब्राह्मण्याः कीदृशं न्याय्यं प्रायश्चित्तं विधीयते॥३७ ब्राह्मणी भजते म्लेच्छमभक्ष्यं भक्षयेद्यदि। पराकेण ततः शुद्धिः पादेनोत्तरतोत्तरान् ॥ ३८ ॥ न कृतं मैथुनं ताभिरभक्ष्यं नैव भक्षितम्। शुद्धिस्तदा त्रिरात्रेण म्लेच्छान्नेनैव भक्षिते ॥ ३९ ॥

जिन स्त्रियोंको म्लेच्छ बलात्कारसे ग्रहण करके उनसे संभोग करतेहैं अब मैं उनके प्रायश्चित्तका विधान कहताहूं ॥ ३६ ॥ यदि ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या अथवा शूद्राको अन्त्यज ग्रहण करलेवे तो ब्राह्मणी कैसा प्रायश्चित्त करे ॥ ३७ ॥ जो ब्राह्मणी म्लेच्छके वशमें होकर उससे प्रसंग करतीहै और नहीं खानेयोग्य वस्तु खातीहै वह घर आनेपर पराक व्रत करनेसे शुद्ध होजातीहै; ऐसा करनेवाली क्षत्रिया ३ पाद पराक करने पर ऐसा करनेवाली वैश्या आधा पराक व्रत करनेपर और ऐसा करनेवाली शूद्रा चौथाई पराक व्रत करनेसे शुद्ध होतीहै ॥ ३८ ॥ जो ब्राह्मणी म्लेच्छके साथ मैथुन तथा अभक्ष्यभक्षण नहीं करके केवल उसका अन्न खाकर उसके घर रहती है वह घर आनेपर ३ रात पराक व्रत करनेसे शुद्ध होजातीहै ॥ ३९ ॥

❀ अत्रिस्मृति—१९७-१९९ श्लोक। जिस स्त्रीको म्लेच्छ आदि किसी पापीने एक बार भोगाहै वह प्राजापत्य व्रत करनेसे रजस्वला होनेपर शुद्ध होजातीहै । जो स्त्री किसीके पकड़लेजानेसे अथवा किसीकी प्रेरणासे किसीके पास स्वयं जानेपर एक बार भोगीगई है वह प्राजापत्य करनेसे शुद्ध होतीहै ।

❀❀ व्यवहारप्रकरणके व्यभिचार आदि स्त्रीसंग्रहणमें वसिष्ठस्मृतिके १-६ अङ्क देखिये ।

गृहीता स्त्री बलादेव म्लेच्छैर्गुर्वी कृता यदि । गुर्वी न शुद्धिमाप्नोति त्रिरात्रेणेतरा शुचिः ॥ ४७ ॥
येषां गर्भं विधत्ते या म्लेच्छात्कामादकामतः । ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा वर्णेतरा च या ॥४८॥
अभक्ष्यभक्षणं कुर्यात्तस्याः शुद्धिः कथम्भवेत् । कृच्छ्रं सान्तपनं शुद्धिर्घृतैर्योनेश्च पावनम् ॥ ४९ ॥
असवर्णेन यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते । अशुद्धा सा भवेन्नारी यावच्छल्यं न मुञ्चति ॥ ५० ॥
विनिःसृते ततः शल्ये रजसो वाऽपि दर्शने । तदा सा शुध्यते नारी विमलं काञ्चनं यथा ॥ ५१ ॥
स गर्भो दीयतेन्यस्मै स्वयं ग्राह्यो न कर्हिचित् । स्वजातौ वर्जयेद्यस्मात्संकरः स्यादतोऽन्यथा ॥ ५२ ॥

जिन स्त्रियोंको बलात्कारसे पकड़कर म्लेच्छ लेजातेहैं उनमेंसे जिसको म्लेच्छसे गर्भ रहजाताहै वह (विना सन्तान उत्पन्नहुए) शुद्ध नहीं होती; किन्तु अन्य सब ३ रात निराहार रहनेसे शुद्ध होजातीहैं ॥४७॥ जो ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा अथवा वर्णसंकरकी स्त्रियां इच्छासे या अनिच्छासे म्लेच्छोंसे गर्भ धारण करतीहैं और अभक्ष्यवस्तु भक्षण करतीहैं उनकी शुद्धि किस प्रकारसे होतीहै ॥ ४८-४९ ॥ वे कृच्छ्रसान्तपन व्रत और घीसे योनिका संस्कार करनेपर शुद्ध होजातीहैं ॥ ४९ ॥ अन्य वर्णसे गर्भ धारण करनेवाली स्त्री जबतक गर्भका प्रसव नहीं करती अथवा रजस्वला नहीं होती तभीतक अशुद्ध रहतीहै; उसके पश्चात् वह सोनाके समान विमल होजातीहै * ॥ ५०-५१ ॥ ऐसे गर्भसे उत्पन्न सन्तान अन्य जातिको देदेना चाहिये; उसको कभी नहीं ग्रहण करना चाहिये क्योंकि वह वर्णसंकर है ॥ ५२ ॥

चोरीका प्रायश्चित्त १२.

(१) मनुस्मृति -११ अध्याय ।

निःक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च । भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ॥ ५८ ॥

धरोहर वस्तु लेलेना और मनुष्य, घोड़ा, रूपा, भूमि, हीरा और मणिकी चोरी करना; ये सब सोना चोरी करनेके समान हैं (†) ॥ ५८ ॥

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु । स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ॥ १०० ॥
गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम् । वधेन शुद्ध्यति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव तु ॥ १०१ ॥
तपसाऽपनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजम्मलम् । चीरवासा द्विजोरण्ये चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥ १०२ ॥

सोना चोरानेवाले ब्राह्मणको उचित है कि राजाके पास जाकरके कहे कि मैंने सोना चोराया है आप मुझको दण्डित करें ॥ १०० ॥ राजाको उचित है कि उससे मूसल लेकर उसको एक बार मारे; वध होनेसे अर्थात् इस भांति मारेजानेसे वह शुद्ध होजाताहै; ब्राह्मण तपस्यासे भी शुद्ध होताहै ॥ १०१ ॥ तपस्याके सहारे सोनाचोरीका पाप छुड़ानेका अभिलाषी ब्राह्मण पुराने वस्त्र धारणकर वनमें निवास करके ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करे (‡) ॥ १०२ ॥

---

* स्त्रियोंकी शुद्धताका वर्णन स्त्रीप्रकरणमें है ।

(†) याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय-२३० श्लोक । घोड़ा, रत्न, पुरुष, स्त्री, भूमि, गौ और धरोहर वस्तु हरण करना सोना चोरानेके समान पाप है ।

(‡) उशनस्मृति...८ अध्यायके १५, १६ और २०श्लोकमें ऐसा ही है और२०-२१ श्लोकमें है कि अथवा अश्वमेध यज्ञमें यज्ञान्त स्नान करनेसे या अपने शरीरके बराबर सोना दान देनेसे अथवा एक वर्ष ब्रह्महत्याका व्रत करनेसे सोना चोरानेवाला ब्राह्मण शुद्ध होताहै । मनुस्मृति---८ अध्याय, ३१४-३१६ श्लोक और उशन स्मृति---८अध्याय,१७-१९ श्लोक । चोरको चाहिये कि दोनों ओर चोखी शक्ति लगीहुई खैरकी लाठी,मूसल या लोहाका दण्ड अपने कन्धेपर रखकर खुलेकेश दौड़कर राजाके पास जावे और राजासे अपना अपराध कह देवे; राजा उसके कन्धेके चोखीशक्ति लगीहुई लाठी आदिसे उसको मारे, मारनेसे मरजाने या बच-जानेसे चोर पापसे छूटजाताहै, जो राजा ऐसे चोरको दण्ड नहीं देताहै उसको चोरके समान पाप लगताहै । याज्ञवल्क्यस्मृति---३अध्याय,२५७-२५८श्लोक । ब्राह्मणका सोना चोरानेवाला अपने कर्मको कहकर राजाको मूसलदेवे, मूसलसे मारनेपर मरजानेसे या बचजानेसे वह शुद्ध होजाताहै; यदि राजासे नहीं कहे तो सुरा-पान करनेका व्रत करे अथवा अपने शरीरके बराबर सोना दान करे या धन देकर ब्राह्मणको सन्तुष्ट करे । वृहद्विष्णुस्मृति-५२ अध्याय, १-३ अंक । सोना चोरानेवाला राजासे अपना पाप कहकर एक मूसल अर्पण करे, मूसलसे मारनेपर मरजानेसे या बचजानेसे वह शुद्ध होजाताहै अथवा १२ वर्ष ब्रह्महत्याका व्रत करे । संवर्त्तस्मृति-१२४-१२५श्लोक । सोना चोरानेवाला राजाको मूसल देवे राजा उस मूसलसे एक बार चोरको मारे, यदि वह जीजाय तो चोरीके पापसे छूटजाताहै अथवा वह वनमें जाकर पुराना वस्त्र पहनकर ब्रह्महत्याका व्रत करे । पाराशरस्मृति-१२ अध्याय, ७५-७७श्लोक । ब्राह्मणके सोनाको चोरानेवाला मूसल-

धान्यान्यधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्द्विजोत्तमः। स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्राब्देन विशुध्यति ॥१६३॥
जो ब्राह्मण इच्छापूर्वक ब्राह्मणके घरसे धान्य अथवा दूसरा धन चोरी करताहै वह एक वर्षतक कृच्छ्र (प्राजापत्य) करनेसे शुद्ध होताहै * ॥ १६३ ॥

मनुष्याणान्तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च। कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ १६४॥
पुरुष, स्त्री, खेत, गृह और कूप तथा बावड़ी जलाशय हरण करनेवालोंके लिये चान्द्रायण व्रत कहागयाहै ※ ॥ १६४॥

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वान्यवेश्मतः। चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ॥ १६५॥
थोड़े दाम अथवा अल्प प्रयोजनकी वस्तु अन्यके घरसे चोरानेवाला वस्तुके स्वामीको उसका मूल्य देकरके अपनी शुद्धिके लिये कृच्छ्रसान्तपन करे ※ ॥ १६५ ॥

भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च। पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥ १६६ ॥
लड्डू आदि भक्ष्यपदार्थ; खीर आदि भोज्य पदार्थ,सवारी,शय्या,आसन, फूल,मूल अथवा फल चोरानेवाला पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै ※ ॥ १६६ ॥

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च। चैलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥ १६७॥
तृण, काठ, वृक्ष, सूखा अन्न, गुड, वस्त्र, चाम या मांस चोरानेवाला ३ रात निराहार रहै ※ ॥ १६७ ॥

–लेकर राजाके पास जाय, राजा मूसलसे उसको मारे, मरजानेसे अथवा बचजानेसे वह शुद्ध होताहै; यदि जान करके वह चोरी किया होगा तो मारनेयोग्य है, अन्यथा नहीं। शातातपस्मृति–५ श्लोक। ब्राह्मणका सोना हरण करनेवाला राजाके समीप सोमपान करनेसे शुद्ध होताहै। बौधायनस्मृति–२ प्रश्न १ अध्याय, १७–१८ अंक और १९–२० श्लोक। चोरको चाहिये कि अपने केशोंको खोलकर लोहा लगा मूसलको कन्धेपर लेकर राजाके पास जावे और कहे कि इससे मुझको मारो, राजा उससे उसको मारे या छोड़ देवे वह पापसे छूट जाताहै; यदि राजा शासन नहीं करताहै तो चोरीका पाप उसीको लग जाताहै। वसिष्ठस्मृति–२० अध्याय, ४५–४६ अंक। ब्राह्मणका सोना चोरानेवाला केशोंको खोलकर दौड़ताहुआ राजाके पास जावे और कहे कि मैं चोर हूं आप मुझको दण्ड दीजिये। राजा उसको गूलरका शस्त्र देवे, उससे अपनेको मार डालनेसे वह शुद्ध होजाताहै, ऐसा श्रुतिसे जानाजाताहै। यदि उक्त प्रकारसे नहीं मरे तो शरीरमें घी लगाकर कण्डीकी प्रज्वलित आगमें जलजानेसे वह शुद्ध होताहै, ऐसा श्रुतिसे जाना जाताहै। षट्त्रिंशत्का मत है कि बालके अग्रभागभर सोना चोरानेवाला एक प्राणायाम करे, एक लिक्षाकी चोरीमें तीन प्राणायाम, राईभरकी चोरीमें चार प्राणायाम करे और उस पापकी शुद्धिके लिये आठ सहस्र गायत्री जपे और सरसों भर सोना चोरानेवाला दिनभर सावित्रीका जप करे, जौभर सोना चोरानेवाला दो दिन प्रायश्चित्त करे, रत्तीभर सोना चोरानेवाला ब्राह्मण सान्तपन कृच्छ्र करे और ८० रत्ती सोना चोरानेवाला एक वर्ष जव पीकर रहे; इससे अधिक सोना चोरानेवालेके लिये मरणान्तिक प्रायश्चित्त अथवा ब्रह्महत्याका व्रत है (२–७)।

* वृहद्विष्णुस्मृति—५२ अध्याय–५ अंक। धान्य या दूसरा धन हरण करनेवाला एक वर्षतक कृच्छ्र करे। उशनस्मृति–९ अध्याय–१८ श्लोक। धान्य आदि धन चोरानेवाला, कृच्छ्रसान्तपन करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै। शङ्खस्मृति–१७ अध्याय–१५ श्लोक। धान्यकी चोरी करनेवाला ६ मास ब्रह्महत्याका व्रत करे।

※ वृहद्विष्णुस्मृति–५२ अध्याय–६ अंक। पुरुष, स्त्री, कूप, खेत या बावडी हरण करनेवाला चान्द्रायणव्रत करे। उशनस्मृति—९ अध्याय, १६–१७ श्लोक। पुरुष, स्त्री या बावडी तथा कूप जलाशयका हरण करनेवाला चान्द्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होताहै। शंखस्मृति–१७ अध्याय-१५ श्लोक। जलाशयहरण करनेवाला एक वर्षतक ब्रह्महत्याका व्रत करे।

※ वृहद्विष्णुस्मृति—५२ अध्याय–७ अंक। थोड़े दामकी वस्तु चोरानेवाला सान्तपन व्रत करे। उशनस्मृति–९ अध्याय, १७-१८ श्लोक। अन्यके घरसे थोड़े दामकी वस्तु चोरानेवाला अपनी शुद्धिके लिये कृच्छ्र सान्तपन करे।

※ वृहद्विष्णुस्मृति—५२ अध्यायके ८ अंकमें ऐसा ही है। उशनस्मृति–९ अध्याय–१९ श्लोक। फूल अथवा फल चोरानेवाला ३ रात निराहार उपवास करे। शंखस्मृति–१७ अध्याय-१८ श्लोक। मूल या फूलको चोरानेवाला १५ दिनतक ब्रह्महत्याका व्रत करे। पैठीनसिस्मृति—उदरके भरनेभर भक्ष्य,भोज्य, अन्न चोरानेवाला तीन अथवा एक रात उपवास करके पञ्चगव्य पान करे (२)।

※ वृहद्विष्णुस्मृति–५२ अध्याय–९ अङ्क और उशनस्मृति–९अध्याय–१९श्लोकमें ऐसाही है। शङ्खस्मृति–१७अध्याय,१६–१९ श्लोक। वस्त्र या मांस चोरानेवाला ६ मास ब्रह्महत्याका व्रत करे, तृण या काठका चोर १मास ब्रह्महत्याका व्रत करे, लवण या गुड़ चोरानेवाला १५ दिन यही व्रत करे और चाम चोरानेवाला एक रात इस व्रतको करे।

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च । अयःकांस्योपलानां च द्वादशाहकणान्नता ॥ १६८ ॥

मणि, मोती, मूंगा, ताम्बा, रूपा, लोहा, कांसा अथवा पत्थर चोरानेवाला १२ दिन चावलका कण खाकर रहे ※ ॥ १६८ ॥

कार्पासकीटजीर्णानां द्विशफैकशफस्य च । पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहम्पयः ॥ १६९ ॥
एतैव्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः ॥ १७० ॥

कपास, रेशम, ऊन, दो खुरवाले बैल आदि, एक खुरवाले घोडे आदि पशु, पक्षी, चन्दन आदि गन्धवाली वस्तु, औषधी अथवा रस्सी चोरानेवाला ३ दिन दूध पीकर रहे (चोरीकी वस्तु मालिकको देदेवे) ॥ १६९ ॥ इन्ही व्रतोंसे द्विज चोरीके पापोंको छुड़ावें ✿ ॥ १७० ॥

(४ क) बृहद्विष्णुस्मृति--५२ अध्याय ।

दत्त्वैवापहृतं द्रव्यं धनिकस्याप्युपायतः । प्रायश्चित्तं ततः कुर्यात्कल्मषस्यापनुत्तये ॥ १४ ॥

चोरी कियाहुआ द्रव्य किसी प्रकारसे द्रव्यके स्वामीको देकरके उसके बाद पापके नाशके अर्थ प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ १४ ॥

(१९) शङ्खस्मृति--१७ अध्याय ।

यस्य यस्य च वर्णस्य वृत्तिच्छेदं समाचरेत् । तस्य तस्य वधे प्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ १३ ॥
अपहृत्य तु वर्णानां भुवं प्राप्य प्रमादतः । प्रायश्चित्तं वधे प्रोक्तं ब्राह्मणानुमतं चरेत् ॥ १४ ॥

जिस जिस वर्णकी जीविकाका नाश करे उसी उसी वर्णकी हत्या करनेका प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ १३ ॥ अज्ञान वश होकर जिस वर्णकी भूमि हरण करे ब्राह्मणोंकी आज्ञासे उसी वर्णके मनुष्य वधका प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ १४ ॥

तृणेक्षुकाष्ठतक्राणां रसानामपहारकः । मासमेकं व्रतं कुर्याद्दन्तानां सर्पिषां तथा ॥ १७ ॥

ऊख, मट्ठा, रस, दांत, घी [तृण अथवा काष्ठ] का हरण करनेवाला एक मास तक ब्रह्महत्याका व्रत करे ॥ १७ ॥

ब्रह्मचारीका प्रायश्चित्त १३.

(१) मनुस्मृति--११ अध्याय ।

अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे । पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ॥ ११९ ॥
हुत्वाग्नौ विधिवद्धोमानन्ततश्च समेत्यृचा । वातेन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात्सर्पिषाहुतीः ॥ १२० ॥
कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजन्मनः । अतिक्रमं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः ॥ १२१ ॥
मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पावकमेव च । चतुरो व्रतिनोऽभ्येति ब्राह्मं तेजोऽवकीर्णिनः ॥ १२२ ॥
एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते वसित्वा गर्दभाजिनम् । सप्तागारांश्चरेद्भैक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥ १२३ ॥
तेभ्यो लब्धेन भैक्षेण वर्त्तयन्नेककालिकम् । उपस्पृशंस्त्रिषवणं त्वब्देन स विशुद्ध्यति ॥ १२४ ॥

अवकीर्णी मनुष्य रातमें चौमुहानी राहपर काणे गदहेसे पाकयज्ञके विधानसे नैर्ऋत्य देवताका पूजन करे ॥ ११९ ॥ वहां विधिपूर्वक होम करके अंतमें "समासिञ्चन्तु मरुतः" इस ऋचासे पवन, इन्द्र, बृहस्पति और अग्निके लिये घीकी आहुति देवे ॥ १२० ॥ जब ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थित द्विज कामनापूर्वक स्त्रीकी योनिमें वीर्य छोड़देताहै तब उसके व्रतमें अतिक्रम होनेसे धर्मज्ञ ब्रह्मवादी लोग उसको अवकीर्णी कहतेहैं ॥ १२१ ॥ अवकीर्णी होजानेपर ब्रह्मचारीका ब्रह्मतेज पवन, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि इन चारोंमें चलाजाताहै ॥१२२॥

※ बृहद्विष्णुस्मृति—५२ अध्याय-१० अङ्क और उशनस्मृति—९ अध्याय-२० श्लोकमें ऐसा ही है । शंखस्मृति—१७ अध्याय-१५ और १९ श्लोक । मणि अथवा रूपा चोरानेवाला एक वर्षतक और लोहा, बांस या सूत चोरानेवाला एक रात्र ब्रह्महत्याका व्रत करे ।

✿ बृहद्विष्णुस्मृति—५२ अध्याय, ११-१३ अङ्क । कपास, रेशम या ऊन हरण करे तो ३ रात दूध पीकर रहे, दो खुर वा एक खुर वाले पशुका चोर ३ रात उपवास करे और पक्षी, गन्ध, औषधी या रस्सीका चोर एक उपवास करे । उशनस्मृति-९ अध्याय, २०-२१ श्लोक । दो खुर या एक खुरवाले पशुका चोर १२ रात निराहार रहे और पक्षी वा औषधी चोरावे तो ३ दिन दूध पीकर रहे । शंखस्मृति--१७ अध्याय-१५ श्लोक । गौ, बकरी या घोड़ा चोरानेवाला १ वर्ष ब्रह्महत्याका व्रत करे ।

अवकीर्ण पाप उत्पन्न होनेपर पूर्वोक्त गर्दभयाग आदि कर्म करके गदहेका चाम धारणकर अपने कर्मको कहताहुआ ७ घरोंसे भिक्षा मांगे ॥ १२३ ॥ मिलीहुइ भिक्षाको दिन रातमें केवल एक बार भोजन करे, नित्य सवेरे, मध्याह्न और सायंकाल स्नान करे, इस प्रकार करनेसे एक वर्षमें वह ब्रह्मचारी शुद्ध होताहै ❀ ॥ १२४ ॥

ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधु मांसं कथंचन । स कृत्वा प्राकृत कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् ॥ १५९ ॥

जो ब्रह्मचारी मधु अथवा मांस भक्षण करलेताहै वह प्राजापत्य व्रत कर शेष ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त कर ❀❀ ॥ १५९ ॥

(३) याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय।

भैक्ष्याग्निकार्ये त्यक्त्वा तु सप्तरात्रमनातुरः । कामावकीर्ण इत्याभ्यां जुहुयादाहुतिद्वयम् ॥ २८१ ॥ उपस्थानन्ततः कुर्यात्समासिञ्चत्वनेन तु ॥ २८२ ॥

जो ब्रह्मचारी विना आपत्कालके ७ राततक भिक्षा नहीं मांगता अथवा अग्निहोत्र नहीं करताहै वह 'कामावकीर्ण' आदि दो मन्त्रोंसे दो आहुति देवे और 'समासिञ्चतु' मन्त्रसे अग्निकी स्तुति करे २८१-२८२॥

(१०) संवर्त्तस्मृति।

सूतकान्नं नवश्राद्धं मासिकान्नं तथैव च । ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयात्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ २३ ॥

जो ब्रह्मचारी सूतक, नवश्राद्ध अथवा मासिक श्राद्धका अन्न खाताहै वह ३ रात उपवास करनेसे शुद्ध होताहै ❀ ॥ २३ ॥

ब्रह्मचारी तु यः स्कन्देत्कामतः शुक्रमात्मनः । अवकीर्णिव्रतं कुर्यात् स्नात्वा शुद्ध्येदकामतः॥२७॥
भिक्षाटनमटित्वा तु स्वस्थो ह्येकान्नमश्नुते । अस्नात्वा चैव यो भुङ्क्ते गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ २८॥
शूद्रहस्तेन योऽश्नीयात्पानीयं वा पिबेत्कचित् । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ २९॥
भुक्त्वा पर्युषितोच्छिष्टं भुक्त्वान्नं केशदूषितम् । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३० ॥
शूद्राणां भाजने भुक्त्वा भुक्त्वा वा भिन्नभाजने । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति॥३१ ॥
दिवा स्वपिति यः स्वस्थो ब्रह्मचारी कथंचन । स्नात्वा सूर्यं समीक्षेत गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ ३२ ॥
ब्रह्मचारी निराहारः सर्वभूतहिते रतः । गायत्र्या लक्षजप्येन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२२ ॥

जो ब्रह्मचारी जानकरके अपने वीर्यको गिराताहै वह अवकीर्णीका प्रायश्चित्त करे; यदि अनजानमें उसका वीर्य गिर जाताहै तो स्नान करनेसे शुद्ध होताहै ❀ ॥ २७ ॥ विना आपत्कालके एकका भिक्षान्न भोजन करनेवाला अथवा विना स्नान कियेहुए भोजन करनेवाला ब्रह्मचारी ८ सौ गायत्री जपे ॥ २८ ॥ शूद्रके हाथका अन्न भोजन करने तथा पानी पीनेवाला, वासी, अपना जूठा, केशसे दूषित, टूटे बर्त्तनमें अथवा शूद्रके वर्त्तनमें अन्न खानेवाला ब्रह्मचारी दिनरात उपवास करके पञ्चगव्य पान करनेसे पवित्र होताहै२९-३१॥ आरोग्य अवस्थामें दिनमें सोनेवाला ब्रह्मचारी स्नान और सूर्यका दर्शन करके ८ सौ गायत्री जपे ॥ ३२ ॥ जो ब्रह्मचारी निराहार और सब जीवोंके हितमें तत्पर रहकर १ लाख गायत्रीका जप करताहै वह सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ २२२ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–२८० श्लोक । किसी स्त्रीसे गमन करनेपर ब्रह्मचारी अवकीर्णी होजाताहै वह गदहा पशुके मांससे नैर्ऋत्य देवताकी पूजा करनेपर शुद्ध होताहै । संवर्त्तस्मृति--२४ श्लोक । जो ब्रह्मचारी कामदेवसे पीड़ित होकर स्त्रीसे गमन करताहै वह सावधानतापूर्वक एक प्राजापत्य व्रत करे । शाण्डिल्यस्मृति । अवकीर्णी ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य ब्रह्मचारी खरपशुसे यज्ञ करके भिक्षान्न भोजन करतेहुए एक वर्ष रहनेपर शुद्ध होताहै (१) ।

❀❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्यायके २८२ श्लोकमें ऐसा ही है । संवर्त्तस्मृति—२५ श्लोक । जो ब्रह्मचारी मधु या मांस भक्षण करलेताहै वह प्राजापत्य व्रत करके मौंजीहोम जो यज्ञोपवीतके समय होताहै, करनेपर शुद्ध होताहै ।

❀ मनुस्मृति--११ अध्याय–१५८ श्लोक । जो ब्रह्मचारी मासिक श्राद्धका अन्न भोजन करताहै वह ३ दिन उपवास करे और एक दिन जलमें वसे । अङ्गिरास्मृति--५८--६० श्लोक । यदि जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी ब्राह्मण अज्ञानसे सूतकवालेके घरका जल पीले अथवा अन्न खाले तो वमन करके आचमन करे, फिर प्राणायाम करके आचमन करे और भली प्रकार वरुणके मन्त्रोंसे शरीरपर जल छिड़के ।

❀ मनुस्मृति--२-अध्याय--१८१ श्लोक । यदि विना इच्छाके स्वप्न दोषसे ब्रह्मचारीका वीर्य गिरजावे तो उसको चाहिये कि स्नान करके सूर्यकी पूजा करे और "पुनर्मा मैत्विन्द्रियम्' ऋचाको ३ बार जपे ।

(१८) गौतमस्मृति-१ अध्याय ।

अन्तरा गमने पुनरुपसदनश्वनकुलमण्डूकसर्पमार्जाराणां त्र्यहमुपवासो विप्रवासश्च ॥ २९ ॥ प्राणायामा घृतप्राशनं चेतरेषाम् ॥ ३० ॥ श्मशानाध्ययने चैवम् ॥ ३१ ॥

यदि वेद पढ़नेके समय गुरु और शिष्यके बीचसे कुत्ता, नेवल, मेडक, सांप अथवा बिलार निकल-जावे तो ब्राह्मण विद्यार्थी वनमें बसकर ३ दिन उपवास करे ॥ २९ ॥ ऐसी अवस्थामें क्षत्रिय तथा वैश्य विद्यार्थी प्राणायाम करके घी चाटे ॥ ३० ॥ श्मशानके निकट पढ़नेपर भी यही प्रायश्चित्त करे ॥ ३१ ॥

विविध प्रायश्चित्त १४.

(१) मनुस्मृति-११ अध्याय ।

येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधि । तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत्॥१९२॥ प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः । ब्रह्मणा च परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् १९३॥

जिन द्विजोंको विधिपूर्वक गायत्री नहीं आतीहै उनसे ३ प्राजापत्य व्रत करवाके शास्त्रीयविधिसे उनका यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ १९२ ॥ निषिद्ध कर्म करनेवाले तथा वेदसे त्याज्य द्विज यदि प्रायश्चित्तकी इच्छा करें तो उन्हें भी ३ प्राजापत्य करनेकी व्यवस्था देनी चाहिये ॥ १९३ ॥

यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् । तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति जप्येन तपसैव च ॥ १९४ ॥ जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः । मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात्१९५

जब ब्राह्मण निन्दित कर्मसे धन उपार्जन करताहै तब वह उस धनको दान करके (नीचे लिखेहुए) जप और तपस्या करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १९४ ॥ सावधान होकर तीन हजार गायत्री जपकर दूध पान करते हुए एक मासतक गोशालामें बसनेसे वह असत् प्रतिग्रहके पापसे छूटताहै ❀ ॥ १९५ ॥

व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च । अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥ १९८ ॥

व्रात्यको यज्ञ करानेवाले, आत्मीयसे भिन्न मनुष्यका प्रेतकर्म करनेवाले, मारण उच्चाटन आदि अभिचार कर्म करनेवाले और अहीन नामक यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण ३ प्राजापत्य व्रत करनेपर शुद्ध होतेहैं ♧ ॥ १९८ ॥

शरणागतम्परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः । संवत्सरं यवाहारस्तत्पापमपसेधति ॥ १९९ ॥

शरणागतको त्यागनेवाले और वेदका नाश करनेवाले ब्राह्मण १ वर्षतक यव खाकर रहनेसे शुद्ध होतेहैं ◎ ॥ १९९ ॥

विनाद्भिरप्सु वाप्यार्त्तः शारीरं सन्निवेश्य च । सचैलो बहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुध्यति ॥२०३॥

विष्ठा आदिके वेगसे आर्त मनुष्य विना जल लेकर अथवा जलमें विष्ठा आदि त्यागनेपर गांवके बाहर नदी आदिमें वस्त्रोंसहित स्नान करके गऊको स्पर्श करनेसे शुद्ध होताहै ◉ ॥ २०३ ॥

वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे । स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥ २०४ ॥

वेदमें कहेहुए नित्यकर्म नहीं करनेवाले और स्नातक व्रतको लोप करनेवालेका प्रायश्चित्त एक दिनरात उपवास करना है ✾ ॥ २०४ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय-२९० श्लोक । निषिद्ध दान देनेवाला ब्राह्मण ब्रह्मचर्य धारण करके दूध पीताहुआ और गायत्री जपताहुआ १ मासतक गोशालामें बसनेसे शुद्ध होताहै । उशनस्मृति-९ अध्याय ६१ श्लोक । पतिसे द्रव्य लेनेवाला मनुष्य उसको त्याग करके विधिपूर्वक प्राजापत्य व्रत करनेसे शुद्ध होताहै। षट्त्रिंशत्का मत है कि पवित्र यज्ञके करनेसे घोर प्रतिग्रह लेनेवाले शुद्ध होतेहैं और चान्द्रायण, मृगारेष्टि, मित्रविन्दा तथा गायत्रीका एक लाख जप करनसे दुष्ट प्रतिग्रह लेनेवाले शुद्ध होतेहैं (१०-११) ।

♧ याज्ञवल्क्यस्मृति— ३ अध्याय-२८९ श्लोक । व्रात्यको यज्ञ करानेवाले और मारण उच्चाटन आदि अभिचार करनेवाले तीन प्राजापत्य व्रत करें । उशनस्मृति-९ अध्याय-५६ श्लोक । अभिचार करनेवाला ३ प्राजापत्य व्रत करनेपर शुद्ध होताहै ।

◎ याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्यायके २८९ श्लोकमें ऐसा ही है । वशिष्ठस्मृति—२० अध्याय-१३ अङ्क । पढ़ेहुए वेदको भुलादेनेवाला द्विज १२ दिन प्राजापत्य व्रत करके भूलेहुए वेदको फिर आचार्यसे पढ़लेवे ।

◉ सुमन्तुस्मृति-जल अथवा अग्निमें(विना आपत्कालके)मलको त्यागनेवाले मनुष्य तप्त कृच्छ्र करें(८)।

✾ उशनस्मृति—९ अध्याय, ६६-६७ श्लोक । जो गृहस्थ प्रमादसे सन्ध्या नहीं करताहै अथवा स्नातक व्रतको स्थिर नहीं रखताहै वह एक दिन रात उपवास करे । जो ब्राह्मण जानकर ऐसा करताहै वह एकवर्ष कृच्छ्र करनेसे और जो जीविकाके कारणसे ऐसा करताहै वह चान्द्रायण व्रत करके गोदान देनेसे शुद्ध होताहै ।

हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारं च गरीयसः । स्नात्वाऽनश्नन्नहःशेषमभिवाद्य प्रसादयेत् ॥ २०५ ॥
अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने । कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् ॥२०९॥

ब्राह्मणको हुङ्कार अर्थात् चुप रह और श्रेष्ठको त्वङ्कार अर्थात् तुम कहनेवाले. स्नान करके दिनभर निराहार रहकर सायंकालमें पावोंपर गिरके उनको प्रसन्न करें ॥ २०५ ॥ ब्राह्मणको मारनेके लिये तैयार होनेवाला प्राजापत्य व्रत, उसपर प्रहार करनेवाला अतिकृच्छ्र व्रत और मारके उसके शरीरसे रुधिर गिरानेवाला कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत करे ❀ ॥ २०९ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति १ अध्याय ।

अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः । सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते क्रतोः ॥ ३८ ॥

योग्य समयसे दूने समयतक जनेऊ नही होनेपर द्विज पतित होकर सब धर्मोंसे रहित व्रात्य. होजातेहैं, विना व्रात्यस्तोम यज्ञ किये वे पतित गिने जातेहैं ◎ ॥ ३८ ॥

३ अध्याय ।

मिथ्याभिशंसिनो दोषो द्विः समो भूतवादिनः । मिथ्याभिशस्तदोषश्च समादत्ते मृषा वदन् ॥२८५॥
महापापोपपापाभ्यां योभिशंसेन्मृषा परम् । अब्भक्षो मासमासीत स जापी नियतेन्द्रियः ॥२८६॥
अभिशस्तो मृषा कृच्छ्रञ्चरेदाग्नेयमेव च । निर्वपेत्तु पुरोडाशं वायव्यम्पशुमेव वा ॥ २८७ ॥

किसीको मिथ्या दोष लगानेवालेको दूना दोष और किसीका यथार्थ दोष कहनेवालेको उसके तुल्य दोष लगताहै और जिसका दोष कहता फिरताहै उसका सब पापभी उसको लगजाताहै ॥ २८५ ॥ किसीको महापातक अथवा उपपातकका झूठा दोष लगानेवालेको उचित है कि जितेन्द्रिय होकर जप करतेहुए केवल जल पीकर एक महीनेतक रहे ॥ २८६ ॥ जिसको मिथ्या दोष लगायागयाहै वह प्राजापत्य व्रत करे या पुरोडाशसे अग्निका अथवा पशुसे वायुका यज्ञ करे ॥ २८७ ॥

प्राणायामी जले स्नात्वा खरयानोष्ट्रयानगः । नग्नः स्नात्वा च भुक्त्वा च गत्वा चैव दिवा स्त्रियम् ॥२९१॥

जो मनुष्य गदहे या ऊंटकी सवारीपर चढताहै, नग्न होकर स्नान अथवा भोजन० करताहै या दिनमें भार्यासे गमन करताहै वह जलमें स्नान और प्राणायाम करे ✤ ॥ २९१ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

सायम्प्रातस्तु यः सन्ध्यां प्रमादाद्विक्रमेत्सकृत् । गायत्र्यास्तु सहस्रं हि जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥६३॥

जो द्विज प्रमादसे एक वार सायंकालकी अथवा प्रातःकालकी सन्ध्याको त्यागदेताहै वह सावधान होकर स्नान करके एक हजार गायत्रीका जप करे ॥ ६३ ॥

शोकाक्रान्तोथवा श्रान्तः स्थितः स्नानजपाद्बहिः । ब्रह्मकूर्चं चरेद्भक्त्या दानन्दत्त्वा विशुध्यति ॥६४॥

जो शोकाकुल होने अथवा बहुत परिश्रम करनेके कारण स्नान अथवा स्नान करके जप नहीं करताहै वह ब्रह्मकूर्च पान करके दान देनेपर शुद्ध होताहै ॥ ६४ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्यायके २९२-२९३ श्लोकमें ऐसाही है । पाराशरस्मृति-११ अध्यायके ५२ ५३ श्लोक और शङ्खस्मृति-१७ अध्यायके ६०-६१ श्लोकमें मनुके २०५ श्लोकके समान और बौधायन-स्मृति—२ प्रश्न-१ अध्यायके ७-८ श्लोकमें प्रायः २०९ श्लोकके समान है । पाराशरस्मृति-११ अध्याय, ५४-५५ श्लोक । ब्राह्मणको मारनेके लिये तैयार होनेवाला दिनरात उपवास, उसको भूमिपर गिरादेनेवाला ३ रात उपवास, मार करके उसके शरीरसे रुधिर गिरानेवाला अतिकृच्छ्र व्रत और मार करके उसके शरीरमें रुधिर जमा देनेवाला प्राजापत्यव्रत करे ।

◎ व्यासस्मृति-१ अध्याय-२० श्लोक । यदि यज्ञोपवीतके समयसे दूनेसे अधिक समय बीत जानेपर भी द्विजोंका जनेऊ नहीं होता तो वे वेदव्रतसे च्युत व्रात्य होजातेहैं, वे व्रात्यस्तोम यज्ञ करें । वशिष्ठस्मृति-११ अध्याय-५६, ५८-५९ अंक । सावित्रीसे पतित व्रात्य द्विज उद्दालक व्रत करे अथवा अश्वमेध यज्ञमें अवभृथ-स्नान करे या व्रात्यस्तोम यज्ञ करे ।

✤ मनुस्मृति-११ अध्याय-२०२ श्लोक और अत्रिस्मृति-२९३-२९४ श्लोक । इच्छापूर्वक ऊंट अथवा गदहेकी सवारीपर चढ़नेवाला अथवा नंगे होकर स्नान करनेवाला ब्राह्मण प्राणायाम करनेसे शुद्ध होताहै । उशनस्मृति—९ अध्याय-६९ श्लोक । इच्छापूर्वक ऊंट या गदहेकी सवारीपर चढनेवाला अथवा नग्न होकर जलमें प्रवेश करनेवाला ३ रात उपवास करनेपर शुद्ध होताहै । शङ्खस्मृति-१७ अध्याय, ५४-५५ श्लोक । दिनमें मैथुन करनेवाला, नग्न होकर जलमें स्नान करनेवाला और परकी स्त्रीको नग्न देखनेवाला एक उपवास करे ।

मोहात्प्रमादात्संलोभाद्व्रतभङ्गन्तु कारयेत् । त्रिरात्रेणैव शुध्येत पुनरेव व्रती भवेत् ॥ ६९ ॥

जो मोह, प्रमाद अथवा लोभवश होकर व्रतभंग करताहै वह ३ रात उपवास करके शुद्ध होके फिर व्रतको करे ॥ ६९ ॥

तैलाभ्यक्तो घृताभ्यक्तो विण्मूत्रं कुरुते द्विजः।तैलाभ्यक्तो घृताभ्यक्तश्चाण्डालं स्पृशते द्विजः॥१८६॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥ १८७ ॥

जो द्विज शरीरमें तेल अथवा घी लगाकर विष्ठा या मूत्र त्याग करताहै अथवा शरीरमें तेल या घी लगाकर चाण्डालको छूताहै वह एक दिन रात निराहार रहकर पञ्चगव्य पीनेपर शुद्ध होताहै॥१८६-१८७॥

उपपातकसंयुक्तो मानवो म्रियते यदि ॥ २९० ॥

तस्य संस्कारकर्त्ता च प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ २९१ ॥

उपपातकी मनुष्यके विना प्रायश्चित्त कियेहुए मरजानेपर उसका दाह आदि संस्कार करनेवाला दो प्राजापत्य व्रत करे ॥ २९०-२९१ ॥

हीनवर्णे च यः कुर्यादज्ञानादभिवादनम् ॥ ३११ ॥

तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतम्प्राश्य विशुध्यति । समुत्पन्ने यदा स्नाने भुङ्क्ते वापि पिबेद्यदि ॥ ३१२ ॥

जो मनुष्य अज्ञान वश होकर अपनेसे हीन वर्णके मनुष्यको नमस्कार करताहै वह स्नान करके घी चाटनेपर शुद्ध होताहै ॥ ३११-३१२ ॥

गायत्र्यष्टसहस्रन्तु जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥ ३१३ ॥

जो मनुष्य विना स्नान कियेहुए भोजन या जलपान करताहै वह सावधानतापूर्वक स्नान करके ८ हजार गायत्री जपे ◎ ॥ ३१२-३१३ ॥

(५क) लघुहारीतस्मृति ।

विना यज्ञोपवीतेन संभुङ्क्ते ब्राह्मणो यदि । स्नानं कृत्वा जपं कुर्वन्नुपवासेन शुध्यति ॥ २३ ॥

जो ब्राह्मण विना जनेऊ पहनेहुए भोजन करताहै वह स्नान, जप और उपवास करनेपर शुद्ध होताहै ▦ ॥ २३ ॥

(६ क) उशनस्मृति-९ अध्याय ।

एकाहेतिविवाहाग्निं परिभाव्य द्विजोत्तमः । त्रिरात्रेण विशुध्येत त्रिरात्रं षडहं पुनः ॥ ५९ ॥

दशाहे द्वादशाहे वा परिहास्य प्रमादतः । कृच्छ्चान्द्रायणं कुर्यात्तत्पापस्यापनुत्तये ॥ ६० ॥

जो ब्राह्मण विवाहकी आगमें १ दिन होम नहीं करताहै वह ३ रात तक निराहार रहनेसे और जो ब्राह्मण ३ राततक होम नहीं करताहै वह ६ दिनतक उपवास करनेपर शुद्ध होताहै । जो प्रमादसे १० अथवा १२ दिन विवाहके अग्निमें होम नहीं करताहै वह उस पापके नाशके लिये चान्द्रायण व्रत करे✿५९-६०

नास्तिक्याद्व यदि कुर्वीत प्राजापत्यं चरेद्द्विजः । देवद्रोहं गुरुद्रोहं तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ॥ ६८ ॥

नास्तिक होनेवाला द्विज प्राजापत्य व्रत करे, देवता तथा गुरुसे द्रोह करनेवाला द्विज तप्तकृच्छ्र करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ६८ ॥

(७) अङ्गिरास्मृति ।

अत ऊर्ध्वम्प्रवक्ष्यामि नीलीवस्त्रस्य वै विधिम् । स्त्रीणां क्रीडार्थसम्भोगे शयनीये न दुष्यति ॥१२॥
पालनं विक्रयश्चैव तद्वृत्त्या उपजीवनम् । पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥ १३ ॥

❀ उशनस्मृति—९अध्याय—५८ श्लोक । प्रातःकाल शरीरमें तेल लगाकर मूत्र, विष्ठा त्याग करनेवाला अथवा क्षौरकर्म या मैथुन करनेवाला मनुष्य एक दिन रात निराहार रहनेपर शुद्ध होताहै ।

◎ आपस्तम्बस्मृति—९ अध्याय, ३-४ श्लोक । जो मनुष्य मोहवश होकर विना शौच कियेहुए अन्न खाताहै वह यव पीकर ३ रात रहनेसे शुद्ध होताहै । उसको चाहिये कि आधी अञ्जली यव, १ पल घी और ५ पल गोमूत्रसे अधिक नहीं पीवे । मरीचिस्मृति—विना जनेऊके भोजन अथवा मल मूत्र त्याग करनेवाला द्विज आठ सहस्र गायत्रीके जप और प्राणायाम करनेसे शुद्ध होताहै (२) ।

▦ बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—६ अध्याय,२८८-२८९ श्लोक । विना जनेऊ पहनेहुए भोजन, मल,मूत्र त्याग अथवा वीर्यपात करनेवाला ब्राह्मण ३ रात उपवास करे; ऐसा क्षत्रिय पादकृच्छ्र और ऐसा वैश्य एक रात उपवास करे ।

✿ शातातपस्मृति—२२ अङ्क । अग्निहोत्र त्यागनेवाला प्राजापत्य व्रत करे ।

नीलीरक्तं यदा वस्त्रमज्ञानेन तु धारयेत्। अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्धयति ॥ १९ ॥
नील्या चोपहते क्षेत्रे सस्यं यत्तु प्ररोहति। अभोज्यं तद्द्विजातीनां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ २२ ॥

इससे आगे नीलसे रंगेहुए वस्त्रकी विधि कहताहूं; स्त्रीसे क्रीडा करनेके समय शय्यापर नीलसे रंगाहुआ वस्त्र रहनेपर कुछ दोष नहीं होता ॥ १२ ॥ नीलके रखने, बेंचने अथवा उसके व्यापार आदिसे जीविका करनेवाला ब्राह्मण पतित होताहै, किन्तु ३ प्राजापत्य व्रत करनेसे वह शुद्ध होजाताहै ॥ १३ ॥ अज्ञानसे नीलसे रंगाहुआ वस्त्र धारण करनेवाला एक दिन रात निराहार रहकर पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै ॥१९॥ नीलके खेतका अन्न द्विजातियोंके लिये अभक्ष्य है उसको खानेवाले द्विजाति चान्द्रायण व्रत करें * ॥ २२ ॥

(८) यमस्मृति।

जलाग्न्युद्बन्धनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः। विषात्प्रपतनप्रायः शस्त्रघातच्युताश्च ये ॥ २२ ॥
न चैते प्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः। चान्द्रायणेन शुध्यन्ति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा ॥ २३ ॥

जो मनुष्य मरनेके लिये जलमें प्रवेश करके अथवा फांसी लगाकर मरनेसे बचजातेहैं, जो संन्यास ग्रहण करके और उपवास व्रतकरके उसको त्याग देतेहैं और जो मरनेके लिये विष पान करके अथवा ऊंचे स्थानसे गिरके या अपने शरीरमें शस्त्र मारके नहीं मरतेहैं; उनके साथ भोजन या निवास नहीं करना चाहिये, वे लोग बहिष्कृत होजातेहैं; किन्तु चान्द्रायण अथवा २ तप्तकृच्छ्र व्रत करनेपर वे शुद्ध होतेहैं (※) ॥२२-२३॥

गोब्राह्मणहतं दग्ध्वा मृतं चोद्बन्धनादिना। पाशं छित्त्वा तथा तस्य कृच्छ्रमेकं चरेद्द्विजः ॥ २७ ॥

जो द्विज गौ अथवा ब्राह्मणसे मरेहुए मनुष्यकी देहको जलातेहैं और जो फांसी लगाकर मरेहुए मनुष्यकी फांसीकी रस्सीको काटतेहैं या उसको जलातेहैं वे एक एक प्राजापत्य व्रत करें (☞) ॥ २७ ॥

(१०) संवर्तस्मृति।

अतः परम्प्रदुष्टानां निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ। संन्यस्य दुर्मतिः कश्चिदपत्यार्थं स्त्रियं व्रजेत् ॥ १७४ ॥
कुर्यात्कृच्छ्रं समानं तत्षण्मासांस्तदनन्तरम् ॥ १७५ ॥

---

* आपस्तम्बस्मृति—६ अध्यायके १, २, ४, और ९ श्लोकमें ऐसाही है और शंखस्मृति-१७ अध्यायके ५०-५१ श्लोकमें है कि नीलसे रंगाहुआ वस्त्र पहननेवाला (१-२ श्लोकमें लिखेहुए) ३ दिन व्रत करे।

(※) बृहद्यमस्मृति-१ अध्यायके ३-४ श्लोकमें प्रायः ऐसा है। आपस्तम्बस्मृति—९ अध्याय, ७-९श्लोक। जो ब्राह्मण घर छोडकर संन्यास ग्रहण करके अथवा अग्निमें जलकर, जलमें डूबकर या अनशन व्रतसे प्राण त्याग करनेकी इच्छा करके फिर अपने घर रहना चाहताहै वह ३ प्राजापत्य अथवा ३ चान्द्रायण करके फिरसे अपना जातकर्मादि संस्कार करावे या कृच्छ्रसान्तपन और चान्द्रायण व्रत करे। अत्रिस्मृतिके२११-२१३ श्लोकमें प्रायः ऐसा (आपस्तम्बस्मृतिके समान) है। उशनस्मृति-९ अध्याय, ६२-६३ श्लोक। जो द्विज अनशन व्रत द्वारा प्राण त्यागनेकी इच्छा करके नहीं मरताहै अथवा संन्यास ग्रहण करके उसको त्याग देताहै वह ३ प्राजापत्य या ३ चान्द्रायण व्रत करके फिरसे जातकर्मादि संस्कार करावे।

(☞) पाराशरस्मृति—४ अध्याय, १-६ श्लोक। जो स्त्री अथवा पुरुष अत्यन्त आदर, क्रोध, स्नेह वा भयसे फांसी लगाकर मरजातेहैं वे पीव और रुधिरसे भरे नरकमें साठ हजार वर्षतक डूबतेहैं। उनके लिये अशौच, जलदान, अग्निदाह और रोदन कुछ नहीं करना चाहिये,जो उनको श्मशानमें लेजातेहैं अग्निमें जलातेहैं और उनकी फांसीको काटतेहैं वे तप्तकृच्छ्र करनेपर शुद्ध होतेहैं, ऐसा प्रजापतिने कहाहै। जो मनुष्य गौके मारनेसे, फांसी लगाकर अथवा ब्राह्मणके मारनेसे मरताहै, उसकी देहको स्पर्श करनेवाला, श्मशानमें लेजानेवाला, अग्निमें जलानेवाला तथा उसके साथ श्मशानमें जानेवाला या फांसी लगाकर मरेहुएका फांस काटनेवाला ब्राह्मण तप्तकृच्छ्र व्रतसे शुद्ध होकर ब्राह्मणोंको खिलावे और बैलके सहित एक गौ दक्षिणा देवे। ५ अध्याय, १०-१३ श्लोक। यदि अग्निहोत्री ब्राह्मणको चाण्डाल, श्वपाक, गौ अथवा ब्राह्मण मारदेवे या विष खाकर वह मरजाय तो उसकी देहको विना मन्त्रके लौकिक अग्निमें ब्राह्मण जलावें; यदि सपिण्ड लोग उसके शरीरका स्पर्श करें, श्मशानमें लेजावे या जलावें तो ब्राह्मणोंकी आज्ञासे पश्चात् प्राजापत्य व्रत करें और उसके फूंकेहुए हाड़को बीनकर दूधसे धोवें और फिर अपने अग्नि और मन्त्रोंसे दूसरे स्थानपर उसको जलावें। लिखितस्मृति-६५-६६ श्लोक। जो मनुष्य गौके मारनेसे या फांसी लगाकर अथवा ब्राह्मणके मारनेसे मरताहै उसके मृत शरीरका स्पर्श करनेवाला ब्राह्मण मरनेपर गौ, बकरा या घोड़ा होताहै; इनको जलानेवाला या फांसीको काटनेवाला तप्तकृच्छ्र करनेपर शुद्ध होताहै, ऐसा मनुप्रजापतिने कहाहै। संवर्त्तस्मृति—१७७-१७९ श्लोक। अपना कल्याण चाहनेवाले सज्जनको उचित है कि गौ अथवा ब्राह्मणसे मारा गयाहुआ या आत्मघात करके मराहुआ मनुष्यके लिये रोदन नहीं करे; यदि उसकी देहको श्मशानमें लेजावे, जलावे या उसको जल देवे तो चान्द्रायण व्रत करे।

इससे आगे अत्यन्त दुष्टोंका प्रायश्चित्त सुनो ! जो दुष्टबुद्धि मनुष्य संन्यास लेकर सन्तानके लिये स्त्रीसे मैथुन करताहै वह ६ मासतक निरन्तर प्राजापत्यव्रत करे ॥ १७४-१७५ ॥

(१३) पाराशरस्मृति-४ अध्याय ।

द्वौ कृच्छ्रौ परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्र एव च । कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ दातुस्तु होता चान्द्रायणं चरेत्२६

परिवित्ति २ कृच्छ्र, कन्या १ कृच्छ्र, कन्यादान करनेवाला कृच्छ्रातिकृच्छ्र और होम करनेवाला पुरोहित चान्द्रायण व्रत करे ❀ ॥ २६ ॥

५ अध्याय ।

वृकश्वानशृगालादिदष्टो यस्तु द्विजोत्तमः । स्नात्वा जपेत्स गायत्रीं पवित्रां वेदमातरम् ॥ १ ॥
गवां शृङ्गोदकस्नानान्महानद्योस्तु सङ्गमे । समुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः शुचिर्भवेत् ॥ २ ॥
वेदविद्याव्रतस्नातः शुना दष्टो द्विजो यदि । स हिरण्योदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥ ३ ॥
सव्रतस्तु शुना दष्टस्त्रिरात्रं समुपोषितः । घृतं कुशोदकं पीत्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥ ४ ॥
अव्रतः सव्रतो वापि शुना दष्टो भवेद्द्विजः । प्रणिपत्य भवेत्पूतो विप्रैश्चक्षुर्निरीक्षतः ॥ ५ ॥

जिस ब्राह्मणको भेड़िया, कुत्ता अथवा सियार काटदेवे वह स्नान करके वेदोंकी माता पवित्र गायत्रीका जप करे ॥ १ ॥ जिसको कुत्ता काटे वह गौके सींगके जलसे अथवा बड़ी नदियोंके सङ्गमके जलमें स्नान करनेसे अथवा समुद्रके दर्शनसे शुद्ध होताहै ॥ २ ॥ यदि स्नातक ब्राह्मणको कुत्ता काटदेवे तो वह सोना सहित जलसे स्नान करने और घी चाटनेपर शुद्ध होताहै ॥ ३ ॥ यदि व्रतवालेको कुत्ता काटे तो वह ३ रात उपवास करे और घी तथा कुशाका जल पीकर शेष व्रतको समाप्त करे ॥ ४ ॥ व्रतवाले अथवा विना व्रतवाले किसी द्विजको कुत्ता काटे तो वह ब्राह्मणोंको नमस्कार करने और देखनेसे शुद्ध होताहै ۞ ॥ ५ ॥

ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जम्बुकेन वृकेण वा । उदितं सोमनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥ ७ ॥
कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन । यां दिशं व्रजते सोमस्तां दिशं चाऽवलोकयेत् ॥ ८ ॥
असद्ब्राह्मणके ग्रामे शुना दष्टो द्विजोत्तमः । वृषं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥ ९ ॥

यदि ब्राह्मणीको कुत्ता, सियार या भेड़िया काटे तो वह उदयहुए चन्द्रमा और नक्षत्रोंको देखकर शुद्ध होतीहै ✠ ॥ ७ ॥ यदि कृष्णपक्षमें किसी प्रकार चन्द्रमा नहीं दिखपड़े तो जिस दिशाको चन्द्रमा जाताहै उस दिशाको देखलेवे ॥ ८ ॥ यदि दुराचारी ब्राह्मणोंके गांवमें ब्राह्मणको कुत्ता काटे (जिस गांवमें योग्य ब्राह्मण नहीं मिले) तो बैलको प्रदक्षिणा और शीघ्र स्नान करनेसे वह शुद्ध होताहै ॥ ९ ॥

❀ अत्रिस्मृतिके १०२ श्लोकमें भी यह है; किन्तु वहां होम करनेवालेका नाम नहींहै; परिवेत्ताको सान्तपन व्रत करनेको लिखाहै । शंखस्मृति-१७ अध्याय-४५ श्लोक । परिविन्ति, परिवेत्ता, कन्या, कन्यादान करनेवाला और विवाह करानेवाला पुरोहित वनमें १ वर्ष ब्रह्महत्याका व्रत करे । बौधायनस्मृति-२ प्रश्न १ अध्याय,-४९ श्लोक । परिविन्ति, परिवेत्ता, कन्यादान करनेवाला और विवाह करानेवाला पुरोहित१२ रात प्रजापत्य व्रत करनेसे शुद्ध होतेहैं और कन्या ३ रात प्राजापत्य करनेसे शुद्ध होतीहै । वसिष्ठस्मृति-२० अध्याय,८-९ अंक । परिविन्ति १२ दिन प्राजापत्य व्रतकरके पश्चात् अपना विवाह करे और परिवेत्ता कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत करके अपनी भार्या बड़ेभाईको समर्पण करे, उसके पश्चात् बड़े भाईकी आज्ञासे उस भार्याको स्वीकार करलेवे । मनुस्मृति—३ अध्याय-१७१ श्लोक । जब बड़े भाईके क्वांरे रहतेहुए छोटाभाई विवाह और अग्निहोत्र ग्रहण करताहै तब छोटा भाई परिवेत्ता और बडा भाई परिविन्ति कहलाताहै ।

۞ मनुस्मृति—११ अध्याय-२०० श्लोक । जिस द्विजको कुत्ता, सियार, गदहा गांवके बिलार आदि कच्चे मांस खानेवाले अन्य जन्तु, मनुष्य, घोड़ा, ऊंट अथवा सूअर दांतसे काटदेताहै वह प्राणायाम करनेसे शुद्ध होजाताहै । याज्ञवल्क्यस्मृति ३ अध्याय-२७७ श्लोक । जिसको व्यभिचारिणी स्त्री, वानर, गदहा, ऊंट, अथवा काक दांतसे काटताहै वह जलमें प्राणायाम और घृत भक्षण करनेपर शुद्ध होताहै । अत्रिस्मृति । जिसको सांप काटताहै वह गौके सींगके जलसे अथवा बड़ी नदीके सङ्गममें स्नान या समुद्रका दर्शन करनेसे शुद्ध होताहै॥६५॥जिस ब्राह्मणको भेड़िया,कुत्ता अथवा सियार काटताहै वह सोना धोयाहुआ जलसहित घी चाटनेपर शुद्ध होजाताहै ॥ ६६ ॥ जिस व्रतवालेको कुत्ता काटताहै वह ३ रात उपवास करके घीके सहित यवके रसको खावे और शेष व्रत समाप्त करे ॥ ६८ ॥ यमस्मृति—२५ श्लोक । यदि विना क्रीड़ाके समयमें कुत्ता, सियार, वानर आदि जन्तु मनुष्यको काटे तो दिनमें, सन्ध्याके समय अथवा रातमें शीघ्र स्नान करनेसे वह शुद्ध होजाताहै ।

✠ अत्रिस्मृति-६७ श्लोकमें ऐसा ही है ।

६ अध्याय।

ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसम्भवे। कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ४८ ॥
गवां मूत्रपुरीषेण दधिक्षीरेण सर्पिषा। त्र्यहं स्नात्वा च पीत्वा च कृमिदष्टः शुचिर्भवेत् ॥ ४९ ॥
क्षत्रियोपि सुवर्णस्य पञ्चमाषान्प्रदाय तु। गोदक्षिणां तु वैश्यस्याप्युपवासं विनिर्दिशेत् ॥ ५० ॥
शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्ध्यति ॥ ५१ ॥

ब्राह्मणके पीब और रुधिरसे भरेहुए घावमें यदि कीड़े पड़जावें तो गौके मूत, गोबर, दही दूध और घीको मिलाकर ३ दिन स्नान करने और पीनेसे वह शुद्ध होताहै ॥ ४८–४९ ॥ इस अवस्थामें क्षत्रिय उपवास करके ५ मासा सोना दान करे। और वैश्य उपवास करके गौ दक्षिणा देवे ॥ ५० ॥ शूद्रके लिये उपवास करना निषेध है इसलिये वह दान देनेसेही शुद्ध होजाताहै ॥ ५१ ॥

(१५) शङ्खस्मृति–१७ अध्याय।

अध्यास्य शयनं यानमासनं पादुके तथा ॥ ५१ ॥
पलाशस्य द्विजश्रेष्ठस्त्रिरात्रन्तु व्रती भवेत् ॥ ५२ ॥

जो ब्राह्मण पलाशकी लकड़ीकी शय्या, सवारी या आसनपर बैठताहै अथवा उसका खड़ाऊं पहनताहै वह ३ रात व्रत करे ❀ ॥ ५१–५२ ॥

क्षिप्त्वाग्नावशुचिद्रव्यं तदेवाम्भसि मानवः ॥ ५५ ॥
मासमेकं व्रतं कुर्यादुपक्रुध्य तथा गुरुम्। पीतावशेषं पानीयं पीत्वा च ब्राह्मणः क्वचित् ॥ ५६ ॥
त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्याद्वामहस्तेन वा पुनः। एकपङ्क्त्युपविष्टेषु विषमं यः प्रयच्छति ॥ ५७ ॥
स च तावदसौ पक्षं कुर्यात्तु ब्राह्मणो व्रतम्। धारयित्वा तुलाचार्यं विषमं कारयेद्बुधः ॥ ५८ ॥

अग्नि अथवा जलमें अपवित्र वस्तु डालनेवाला या गुरुपर क्रोध करनेवाला एकमास व्रत करे५५–५६ ॥ अपना जूठा पानी पीनेवाला अथवा बांये हाथसे पानी पीनेवाला ब्राह्मण ३ रात व्रत करे ॥ ५६–५७ ॥ एक पंक्तिमें भोजनके लिये बैठेहुए लोगोंको अधिक कम पदार्थ परोसनेवाला ब्राह्मण १५ दिन व्रत करे॥५७–५८॥

सुरालवणमद्यानां दिनमेकं व्रती भवेत्। मांसस्य विक्रयं कृत्वा कुर्याच्चैव महाव्रतम् ॥ ५९ ॥
विक्रीय पाणिना मद्यं तिलस्य च तथा चरेत् ॥ ६० ॥

तराजू लेकर अधिक कम तौलनेवाला तथा सुरा, लवण या मद्यको बेंचनेवाला विद्वान् एक दिन व्रत करे ॥ ॥ ५८–५९ ॥ मांस बेचनेवाला अथवा अपने हाथसे मद्य या तिल बेंचनेवाला महाव्रत करे ⚘ ॥ ५९–६० ॥

(१६) लिखितस्मृति।

पूरणे कूपवापीनां वृक्षच्छेदनपातने। विक्रीणीत गजं चाश्वं गोवधं तस्य निर्दिशेत् ॥ ७७ ॥

कूप तथा बावलीको भर देनेवाले, वृक्षको काटकर गिरादेनेवाले और हाथी तथा घोड़ेको बेंचनेवाले गोहत्याका प्रायश्चित्त करें ॥ ७७ ॥

(१९) शातातपस्मृति।

वृषणाभिघाते प्राजापत्यम् ॥ २५ ॥

पशुका अण्डकोश निकालनेवाला प्राजापत्य व्रत करे ॥ २५ ॥

विवाहयेन्न सगोत्रां समानप्रवरां तथा। तस्याः कथंचित्संबन्धे अतिकृच्छ्रं चरेद्द्विजः ॥ ३२ ॥

समान गोत्र अथवा समान प्रवरकी कन्यासे द्विज विवाह नहीं करे, कदाचित् इनमेंसे किसीसे विवाह होजाय तो अतिकृच्छ्र व्रत करे ॥ ३२ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति–१९ अध्याय।

दण्डचोत्सर्गे राजैकरात्रमुपवसेत्त्रिरात्रं पुरोहितः ॥ २६ ॥ कृच्छ्रमदण्डचदण्डने पुरोहितस्त्रिरात्रं राजा ॥ २७ ॥

❀शंखस्मृति—१७ अध्यायके १–२ श्लोकमें यहां लिखेहुए व्रतका विधान ऐसा है, वनमें जाकर पत्तोंकी कुटी बनाके रहे, नित्य त्रिकाल स्नान करे, भूमिपर सोवे, जटा धारण करे, पत्ते, मूल तथा फलको खावे, अपने कर्मको कहताहुआ भिक्षाके लिये गांवमें जाय और एक कालमें भोजन करे।

⚘ शातातपस्मृति—८७ श्लोक। मधु, मांस, सुरा, सोमरस, लाह अथवा नोंन बेंचनेवाला द्विज चान्द्रायण व्रत करे।

दण्डयोग्य मनुष्यको दण्ड नहीं देनेपर राजा १ रात और उसका पुरोहित ३ रात उपवास करे ॥ २६॥ दण्डके अयोग्य मनुष्यको दण्ड देनेपर राजाका पुरोहित प्राजापत्य व्रत करे और राजा३रात निराहार रहे॥२७॥

२० अध्याय।

कुनखी श्यावदन्तस्तु कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत् ॥ ७ ॥

विगड़ेहुए नखवाला और काले दांतवाला मनुष्य १२ रात प्राजापत्य व्रत करे ॥ ७ ॥

अग्रेदिधिषूपतिकृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निर्विशेत तां चैवोपयच्छेत् ॥ १० ॥ दिधिषूपतिकृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरित्वा तस्मै दत्त्वा पुनर्निर्विशेत् ॥ ११ ॥

अग्रेदिधिषूपति—१२ रात प्राजापत्य व्रत करके ठहर जावे, फिर उस स्त्रीको. स्वीकार करे ॥ १० ॥ दिधिषूपति कृच्छ्रातिकृच्छ्र करनेके बाद उस स्त्रीको उसके पतिको समर्पण करके ठहरजावे, पीछे उसकी आज्ञासे स्वीकार करे ॥ ११ ॥

२१ अध्याय।

वानप्रस्थो दीक्षाभेदे कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा महाकक्षे वर्धयेत् ॥ ३५ ॥ भिक्षुकैर्वानप्रस्थवत्सोमवृद्धिवर्जं स्वशास्त्रसंस्कारश्च स्वशास्त्रसंस्कारश्चेति ॥ ३६ ॥

अपने आश्रमके नियमोंको तोड़नेवाला वानप्रस्थ बड़े कछारमें १२ रात प्राजापत्य व्रत करके फिर अपने नियमकी वृद्धि करे ॥ ३५ ॥ लोभवश होकर धर्मादिका विचार छोड़के अपने आश्रमका नियम तोड़नेवाला संन्यासी वानप्रस्थके समान प्रायश्चित्त करके अपने मोक्षसाधन शास्त्रके संस्कारको बढ़ावे * ॥ ३६ ॥

(३९) बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-१ अध्याय।

समुद्रसयानम् ॥ ५१ ॥ ब्रह्मस्वन्यासापहरणम् ॥५२॥ भूम्यनृतम् ॥५३ ॥ सर्वपण्यैर्व्यवहरणम् । शूद्रसेवनम् ॥ ५४ ॥ शूद्राभिजननम् ॥५५॥ तदपत्यत्वं च ॥५६ ॥ एषामन्यतमं कृत्वा ॥५७॥ चतुर्थकालमितभोजिनः स्युरपोऽभ्युपेयुः सवनानुकल्पम् । स्थानासनाभ्यां विहरन्त एते त्रिभिर्वर्षैस्तदपघ्नन्ति पापमिति ॥ ५८ ॥

समुद्रयात्रा करनेवाला, ब्राह्मणका धरोहर हरण करनेवाला, भूमिके विषयमें झूठ बोलनेवाला, बहुत लोगोंके द्रव्यसे अपना काम चलानेवाला, शूद्रकी सेवा करनेवाला, शूद्रा स्त्रीमें सन्तान उत्पन्न करनेवाला तथा शूद्रकी सन्तान ब्राह्मण चतुर्थ कालमें अर्थात् एक रात उपवास करके दूसरे दिनकी रातमें प्रमाणका भोजन करे, नित्य ३ बार स्नान करे और सदा घूमता रहे तो ३ वर्षमें शुद्ध होताहै ॥ ५१-५८ ॥

भेषजकरणं ग्रामयाजनं रङ्गोपजीवनं नाट्याचार्यता गोमहिषीरक्षणं यच्चान्यदप्येवं युक्तं कन्यादूषणमिति ॥ ६१ ॥ तेषां तु निर्वेशः पतितवृत्तिर्द्वौ संवत्सरौ ॥ ६२ ॥

औषधीकरनेवाला, सबको यज्ञकरानेवाला, वस्त्रादि रङ्गकर जीविका चलानेवाला, नाचने गानेकी विद्या सिखानेवाला, गौ या भैंस पालनेवाला या कन्याको दोष लगानेवाला ब्राह्मण पतित कहलाताहै, वह २ वर्षतक पूर्वोक्त व्रत करे ▩ ॥ ६१—६२ ॥

(४०) चतुर्विंशतिमत।

नारीणां विक्रयं कृत्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् । द्विगुणं पुरुषस्यैव व्रतमाहुर्मनीषिणः ॥

स्त्रीको बेचनेवाला चान्द्रायणव्रत करे और पुरुषको बेचनेवाला दूना व्रत करे ऐसा बुद्धिमानोंने कहाहै।

(३३) पैठीनसिस्मृति।

आरामतडागोदपानपुष्करिणीसुकृतसुतविक्रये त्रिषवणस्नाय्यधःशायी चतुर्थकालाहारः संवत्सरेण पूतो भवति।

बाग, तलाव, चौबचा, पुष्करिणी और पुण्य पुत्रको बेचनेवाला त्रिकाल स्नान, भूमिपर शयन और चौथे कालमें भोजन करताहुआ एकवर्ष रहनेपर शुद्ध होताहै।

(४१) क्रतुस्मृति :

आसनारूढपादो वा वस्त्रार्धप्रावृतोपि वा। मुखेन धमितं भुक्त्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत्।

जो आसनपर आरूढपाद होकर, आधी धोतीको ओढकर अथवा मुखसे फूंककर भोजन करताहै वह सान्तपनकृच्छ्र करे।

---

* ये दोनों श्लोक वसिष्ठस्मृतिके अनेक पुस्तकोंमें नहीं हैं। शाण्डिल्यस्मृति। जो वानप्रस्थ अथवा संन्यासी जानकरके अपने वीर्यको गिरावे वह ३ पराक व्रतके सहित अवकीर्णी व्रत करे (३)।

▩ शातातपस्मृति—२३ अङ्क। कन्याको दोष लगानेवाला आधा पाद प्रजापत्य व्रत करे।

पापी और नीच जातिके संसर्गका प्रायश्चित्त १५.

(१) मनुस्मृति--११ अध्याय।

एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः। पतितैः सम्प्रयुक्तानामिमाः शृणुत निष्कृतीः ॥१८०॥

हिंसा, अभक्ष्यभक्षण, अगम्यागमन और चोरी; इन ४ प्रकारके पापोंके प्रायश्चित्त कहेगये; अब पतितोंसे सङ्ग करनेवालोंका प्रायश्चित्त सुनो ! ॥ १८० ॥

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्। याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनात् ॥ १८१ ॥

पतितके सहित एक सवारीमें चलने, एक आसनमें बैठने अथवा एक पांतिमें खानेसे मनुष्य एक वर्षमें पतित होताहै; किन्तु याजन, अध्यापन अथवा योनिसम्बन्धसे एक वर्षसे पहिलेही पतित होजाताहै ❀ ॥ १८१ ॥

यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः। एतस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ॥ १८२ ॥

जैसे पतितके साथ मनुष्यका संसर्ग हो वह अपनी शुद्धिके लिये उसी पतितके प्रायश्चित्तके समान प्रायश्चित्त करे ❁ ॥ १८२ ॥

(६ क) उशनस्मृति-८ अध्याय।

पतितेन तु संस्पर्शं लोभेन कुरुते द्विजः ॥ ३० ॥

सकृत्पापापनोदार्थं तस्यैव व्रतमाचरेत्। तप्तकृच्छ्रं चरेद्वाथ संवत्सरमतन्द्रितः ॥ ३१ ॥

षाण्मासिकेऽथ संसर्गे प्रायश्चित्तार्द्धमाचरेत् ॥ ३२ ॥

जो द्विज लोभवश होकर पतितसे संसर्ग करताहै वह अपना पाप छुड़ानेके लिये उसीके समान एकबार प्रायश्चित्त करे अथवा निरालस्य होकर एक वर्ष तप्तकृच्छ्र करे और पतितके साथ ६ मासतक संसर्ग करनेवाला आधा प्रायश्चित्त करे ॥ ३०–३२ ॥

(१०) संवर्तस्मृति।

पतितेन तु सम्पर्कम्मासं मासार्द्धमेव वा। गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुध्यति ॥ २०२ ॥

एक मास अथवा पन्द्रह दिनतक पतितके सहित सम्पर्क करनेवाला १५ दिनतक गोमूत्र और उबाले हुए यवके रसको पीकर रहनेसे शुद्ध होताहै ॥ २०२ ॥

पतिताद्द्रव्यमादत्ते भुङ्क्ते वा ब्राह्मणो यदि। कृत्वा तस्य समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं चरेद्द्विजः ॥ २०३ ॥

जो ब्राह्मण पतितका द्रव्य लेताहै अथवा उसका अन्न खाताहै उसको उचित है कि उसको त्याग करके अतिकृच्छ्र व्रत करै ॥ २०३ ॥

(१६) पाराशरस्मृति-४ अध्याय।

यो वै समाचरेद्विप्रः पतितादिष्वकामतः। पञ्चाहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥ ९ ॥

मासार्द्धं मासमेकं वा मासद्वयमथापि वा। अब्दार्द्धमब्दमेकं वा भवेदूर्ध्वं हि तत्समः ॥ १० ॥

त्रिरात्रं प्रथमे पक्षे द्वितीये कृच्छ्रमाचरेत्। तृतीये चैव पक्षे तु कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ ११ ॥

चतुर्थे दशरात्रं स्यात्पराकः पञ्चमे मतः। कुर्याच्चान्द्रायणं षष्ठे सप्तमे त्वैन्दवद्वयम् ॥ १२ ॥

शुद्ध्यर्थमष्टमे चैव षण्मासात्कृच्छ्रमाचरेत्। पक्षसंख्याप्रमाणेन सुवर्णान्यपि दक्षिणा ॥ १३ ॥

जो ब्राह्मण अज्ञानसे पतित आदिके संग ५ दिन, १० दिन १२ दिन, १५ दिन, १ मास, २ मास, ६ मास अथवा १ वर्षतक व्यवहार करताहै वह नीचे कहेहुए प्रायश्चित्तको करे; किन्तु एक वर्षसे अधिक इनके साथ व्यवहार करनेवाले इन्हींके समान होजातेहैं ॥ ९–१० ॥ ५ दिन पतित आदिके सङ्ग करनेवाला ३ रात उपवास, १० दिन सङ्ग करनेवाला एक प्राजापत्य व्रत १२ दिन संग करनेवाला सान्तपन कृच्छ्र, १५ दिन

❀ वृद्धविष्णुस्मृति—३५ अध्यायके ३–५ अङ्कमें ऐसाही है। याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय—२६१ श्लोक। ब्रह्मघाती आदि महापातकियोंके साथ १ वर्षतक रहनेवाले मनुष्य उन्हींके समान होजातेहैं। गौतमस्मृति—२१ अध्याय–१ अङ्क। ब्राह्मणवध करनेवाला, सुरा पीनेवाला, गुरुपत्नीसे गमन करनेवाला, माता या पिताके कुलकी कन्यासे गमन करनेवाला, चोर, नास्तिक, सदा निन्दित कर्म करनेवाला, पतितका साथी और अपतितको त्यागनेवाला, ये सब पतित हैं; इनमेंसे किसीके सङ्ग एकवर्ष रहनेवाला पतित होजाताहै। सुमन्तुस्मृति–जो पतितके संग यौन, याजन अथवा अध्यापन सम्बन्ध करताहै वह उसीके समान प्रायश्चित्त करे (२)।

❁ संवर्तस्मृतिके १२८–१२९ श्लोकमें ऐसाही है।

संग करनेवाला १० रात (उपवास) व्रत, १ मास संग करनेवाला पराकव्रत, २ मास संग करनेवाला चान्द्रायण व्रत ६ मास सङ्ग करनेवाला २ चान्द्रायण व्रत और १ वर्ष पतित आदिका सङ्ग करनेवाला ६ महीनेतक प्राजापत्य व्रत करे और पहिलेमें १ सुवर्ण दूसरेमें २ सुवर्ण इसी क्रमसे आठवेंमें ८ सुवर्ण दक्षिणा देवे ॐ ॥ ११—१३ ॥

६ अध्याय।

श्वपाकं चापि चाण्डालं विप्रः सम्भाषते यदि। द्विजैः सम्भाषणं कुर्यात्सावित्रीं च सकृज्जपेत्॥२२॥
चाण्डालैः सह सुप्तं तु त्रिरात्रमुपवासयेत्। चाण्डालैकपथं गत्वा गायत्रीस्मरणाच्छुचिः ॥ २३ ॥
चाण्डालदर्शने सद्य आदित्यमवलोकयेत्। चाण्डालस्पर्शने चैव सचैलं स्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥

श्वपाक अथवा चाण्डालसे बोलनेवाला ब्राह्मण ब्राह्मणोंसे सम्भाषण करके १ बार गायत्री जपनेसे चाण्डालके साथ सोनेवाला ३ रात उपवास करनेसे और चाण्डालके सङ्ग राहमें चलनेवाला ब्राह्मण गायत्रीका स्मरण. करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २२–२३ ॥ चाण्डालको देखनेपर शीघ्र सूर्यका दर्शन करे और उससे स्पर्श होनेपर सब वस्त्रोंसहित स्नान करना चाहिये ॥ २४ ॥

अविज्ञातस्तु चाण्डालो यत्र वेश्मनि तिष्ठति। विज्ञाते उपसंन्यस्य द्विजाः कुर्युरनुग्रहम् ॥ ३४ ॥
मुनिवक्त्रोद्गतान्धर्मान् गायन्तो वेदपारगाः। पतन्तमुद्धरेयुस्ते धर्मज्ञाः पापसङ्कटात् ॥ ३५ ॥
दध्ना च सर्पिषा चैव क्षीरगोमूत्रयावकम्। भुञ्जीत सह भृत्यैश्च त्रिसन्ध्यमवगाहनम् ॥ ३६ ॥
त्र्यहम्भुञ्जीत दध्ना च त्र्यहम्भुञ्जीत सर्पिषा। त्र्यहं क्षीरेण भुञ्जीत एकैकेन दिनत्रयम् ॥ ३७ ॥
भावदुष्टं न भुञ्जीत नोच्छिष्टं कृमिदूषितम्। दधिक्षीरस्य त्रिपलं पलमेकं घृतस्य तु ॥ ३८ ॥
भस्मना तु भवेच्छुद्धिरुभयोः कांस्यताम्रयोः। जलशौचेन वस्त्राणां परित्यागेन मृण्मयम् ॥ ३९ ॥
कुसुम्भगुडकार्पासलवणं तैलसर्पिषी। द्वारे कृत्वा तु धान्यानि दद्याद्वेश्मनि पावकम् ॥ ४० ॥
एवं शुद्धस्ततः पश्चात्कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम्। त्रिंशतं गा वृषं चैकं दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥ ४१ ॥
पुनर्लेपेन खातेन होमजाप्येन शुद्ध्यति। आधारेण च विप्राणां भूमिदोषो न विद्यते ॥ ४२ ॥
चाण्डालैः सह सम्पर्कं मासं मासार्द्धमेव वा। गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ ४३ ॥

यदि अनजानमें किसी द्विजके घरमें चाण्डाल टिके तो जानलेनेपर ब्राह्मणलोग उस चाण्डालको निकालकर दया करके द्विजको शुद्ध करें ॥३४॥ मुनियोंके कहेहुए धर्मको गातेहुए वेदपारग धर्मज्ञ लोग उस पतित द्विजको प्रायश्चित्त कराके पाप सङ्कटसे उद्धार करें ॥ ३५ ॥ द्विजको उचित है कि भृत्योंके सहित दही, घी, दूध, गोमूत्र और उबालेहुए यवका रस खावे; त्रिकाल स्नान करे ॥ ३६ ॥ ३ दिन दहीके सहित, ३ दिन घीके सहित और ३ दिन दूधके सहित उबालेहुए यवके रसको खावे और १ दिन दही, १ दिन घी और १ दिन दूध खाकर रहे ॥ ३७॥ भावदुष्ट, जूठा और कीड़ेसे दूषित वस्तु नहीं भोजन करे; दही और दूध तीन तीन पल और घी एक पल खावे ॥ ३८ ॥ चाण्डालके निवास कियेहुए घरके कांसे और ताम्बेकी वस्तुओंको भस्मसे मांजकर और वस्त्रोंको जलसे धोकर शुद्ध करे और मिट्टीके बर्तनोंको निकालदेवे ॥ ॥ ३९ ॥ घरके द्वारपर कुसुम, गुड, कपास, नोन, तेल, घी और अन्नादिको निकालकर घरकी भूमिको आगसे जलावे ॥ ४० ॥ शुद्ध होनेपर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और ३० गौ और १ बैल दक्षिणा देवे ॥ ४१ ॥ दुबारा लीपने, खोदने, होम, जप करने तथा ब्राह्मणोंके बैठनेसे भूमि शुद्ध होतीहै फिर उसमें कुछ दोष नहीं रहताहै ॥ ४२ ॥ यदि चाण्डालोंके साथ एक मास अथवा १५ दिन सङ्ग रहे तो १५ दिनतक गोमूत्र और यवका काढ़ा पीकर रहनेसे शुद्धि होतीहै ॥ ४३ ॥

रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीविनी। चातुर्वर्ण्यस्य तु गृहे त्वविज्ञा तानुतिष्ठति ॥ ४४ ॥
ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात्पूर्वोक्तस्यार्द्धमेव तु। गृहदाहन्न कुर्वीत शेषं सर्वं च कारयेत् ॥ ४५ ॥

यदि चारों वर्णोंमें किसीके घरमें अनजानमें धोबिन, चमारिन, व्याधनी अथवा वेणुजीविनी टिके तो जानलेनेपर पूर्वोक्त प्रायश्चित्तका आधा प्रायश्चित्त करे; सब काम वैसाही करे; किन्तु घरकी भूमिको नहीं जलावे ॥ ४४–४५ ॥

ॐ सुमन्तुस्मृति–पतितके सङ्ग ५ दिनके संसर्गमें कृच्छ्र, १० दिनके संसर्गमें तप्तकृच्छ्र १५ दिनके संसर्गमें पराकव्रत, १ मासके संसर्गमें चान्द्रायण, ३ मासके संसर्गमें कृच्छ्र और चान्द्रायण, ६ मासके संसर्गमें षाण्मासिक कृच्छ्र और १ वर्षके संसर्गमें एक वर्ष चान्द्रायण व्रत करे (३–५)

गृहस्याभ्यन्तरं गच्छेच्चाण्डालो यदि कस्यचित् । तमागाराद्विनिःसार्य मृद्भाण्डं तु विसर्जयेत् ॥४६॥
रसपूर्णन्तु मृद्भाण्डं न त्यजेत्तु कदाचन । गोमयेन तु सम्मिश्रैर्जलैः प्रोक्षेद् गृहन्तथा ॥ ४७ ॥

यदि घरके भीतर चाण्डाल चलाजावे तो उसको निकालदेवे, रसके बडोंको छोड़कर अन्य सब मिट्टीके बर्तनोंको फेंकदे और गोबर मिलेहुए जलसे घरको लिपवावे अथवा उसको घरमें छिड़क देवे ॥ ४६-४७ ॥

१२ अध्याय ।

आसनाच्छयनाद्यानात्सम्भाषात्सहभोजनात् ॥ ७७ ॥
सङ्क्रामन्तीह पापानि तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥ ७८ ॥

जैसे जलमें तेलकी बूंद फैलतीहै वैसेही पातकीके साथ बैठने, सोने, चलने, बोलने अथवा भोजन करनेसे उसका पाप भलेलोगोंको लगताहै ॥ ७७-७८ ॥

(९) आपस्तम्बस्मृति-३ अध्याय ।

अन्त्यजातिरविज्ञातो निवसेद्यस्य वेश्मनि । तस्य गत्वा तु कालेन द्विजाः कुर्वन्त्यनुग्रहम् ॥ १ ॥
चान्द्रायणं पराको वा द्विजातीनां विशोधनम् । प्राजापत्यन्तु शूद्रस्य शेषं तदनुसारतः ॥ २ ॥

जिस द्विजके घरमें अनजानेमें कोई अन्त्यज जातिका मनुष्य वसे तो जानलेनेपर ब्राह्मणोंके अनुग्रह करनेपर वह अपनी शुद्धिके लिये चान्द्रायण अथवा पराक व्रत करे और शूद्रके घरमें यदि अन्त्यज वसे तो वह प्राजापत्य व्रत करे और शेष दक्षिणा आदि उसीके अनुसार देवे ॥ १-२ ॥

(२२) देवलस्मृति ।

म्लेच्छैः सहोषितो यस्तु पञ्चप्रभृति विंशतिः । वर्षाणि शुद्धिरेषोक्ता तस्य चान्द्रायणद्वयम् ॥५५॥
पञ्चाहान्सह वासेन सम्भाषणसहाशनैः । सम्प्राश्य पञ्चगव्यन्तु दानं दत्त्वा विशुध्यति ॥ ७४ ॥
एकद्वित्रिचतुःसंख्यान्वत्सरान्संवसेद्यदि । म्लेच्छावासं द्विजः श्रेष्ठः क्रमतो द्रव्ययोगतः ॥ ७५ ॥
एकाहेन तु गोमूत्रं द्व्यहेनैव तु गोमयम् । त्र्यहात्क्षीरेण संयुक्तं चतुर्थे दधिमिश्रितम् ॥ ७६ ॥
पञ्चमे घृतसम्पूर्णं पञ्चगव्यम्प्रदापयेत् ॥ ७७ ॥

म्लेच्छके साथ ५ वर्षसे २० वर्षतक रहनेवाले २ चान्द्रायण व्रत करनेपर शुद्ध होजातेहैं ॥ ५५ ॥ म्लेच्छके सहित ५ दिन निवास, सम्भाषण और भोजन करनेवाले पञ्चगव्य पीकर दान देनेसे शुद्ध होतेहैं ॥ ७४ ॥ म्लेच्छके साथ एक दो तीन अथवा चार वर्षतक रहनेवाला ब्राह्मण एक दिन गोमूत्र; दूसरे दिन गोमूत्र और गोबर; तीसरे दिन गोमूत्र, गोबर और दूध; चौथे दिन गोमूत्र, गोबर, दूध और दही और पांचवें दिन गोमूत्र, गोबर, दूध, दही और घी भक्षण करके रहनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ७५—७७ ॥

गुप्त पापोंका प्रायश्चित्त १६.

(१) मनुस्मृति-११ अध्याय ।

इत्येतदेनसामुक्तं प्रायश्चित्तं यथाविधि । अत ऊर्ध्वं रहस्यानां प्रायश्चित्तं निबोधत ॥ २४८ ॥
सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश । अपि भ्रूणहणम्मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥ २४९ ॥
कौत्सं जप्त्वाप इत्येतद्वासिष्ठं च प्रतीत्यृचम् । माहित्रं शुद्धवत्यश्च सुरापोऽपि विशुद्ध्यति ॥ २५० ॥
सकृज्जप्त्वास्यवामीयं शिवसंकल्पमेव च । अपहृत्य सुवर्णन्तु क्षणाद्भवति निर्म्मलः ॥ २५१ ॥
हविष्यन्तीयमभ्यस्य नतमंह इतीति च । जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः ॥ २५२ ॥

प्रकाश्य पापोंके प्रायश्चित्त विधिपूर्वक कहेगये अब गुप्त पापोंके प्रायश्चित्त सुनो॥२४८॥एक महीनेतक नित्य प्रणव और (सात) व्याहृतियोंसे युक्त १६ प्राणायाम करनेसे भ्रूणहत्या (गर्भहत्या) का पाप छूटताहै ॥२४९॥ कौत्सऋषिके देखेहुए"अपनः शोशुचदघम्०" इस सूक्तको, वसिष्ठ ऋषिके देखेहुए "प्रतिस्तोमेभिरुष" ऋचाको और "महित्रीणामवोस्तु" तथा "शुद्धवत्यः एतानिन्द्रं स्तुवामहे" इत्यादि ऋक् मन्त्रोंको (प्रतिदिन १६ बार १ महीनेतक) पढ़नेसे सुरापानका पाप छूटजाताहै ॥ २५० ॥ "अस्य वामीयमस्य वायस्य पलितस्य एतत्" सूक्त अथवा "यज्जाग्रतो दूरम्" इत्यादि शिवसङ्कल्प मन्त्रको (प्रतिदिन १६ बार एक मासतक) पाठ करनेसे सोना चोरानेवाला शीघ्रही शुद्ध होताहै ॥ २५१ ॥ "हविष्यन्तम्" अथवा "नतमंहो" इत्यादि आठ ऋक् "सहस्रशीर्षा पुरुषः" इत्यादि पौरुष सूक्त (प्रतिदिन १६ बार एक महीनेतक) जपनेसे गुरुपत्नी गमनका पाप छूटताहै ॥ २५२ ॥

एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदनम् । अवेत्यृचं जपेदब्दं यत्किञ्चेदमितीति वा ॥ २५३ ॥

महापातक और उपपातकको नष्ट करनेकी इच्छावाले मनुष्य "हेलोवरुणयोः" ऋचाको या "इति मे मनः" सूक्तको एकवर्षतक प्रतिदिन जपे ॥ २५३ ॥

प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम् । जपंस्तरत्समन्दीयं पूयते मानवस्त्र्यहात् ॥ २५४ ॥

अयोग्य लोगोंसे दान लेनेवाले और निन्दित अन्न खानेवाले "तरत्समन्दिधावती" इन चार ऋचाओंको ३ दिन जपनेसे शुद्ध होजातेहैं ॥ २५४ ॥

सोमारौद्रं तु बह्वेना मासमभ्यस्य शुद्ध्यति । स्रवन्त्यामाचरन्स्नानमर्यम्णामिति च त्र्यृचम्॥२५५॥

अब्दार्धमिन्द्रमित्येतदेनस्वी सप्तकं जपेत् । अप्रशस्तं तु कृत्वाप्सु मासमासीत भैक्षभुक् ॥ २५६ ॥

मन्त्रैः शाकलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजः । सुगुर्वप्यपहन्त्येनो जप्त्वा वा नम इत्यृचम् ॥ २५७ ॥

नदीमें स्नान करके "सोमारुद्रा" ऋक् और "अर्यमणं वरुणं मित्रं चेति" इन ऋचाओंको एक महीनेतक पाठ करनेसे बहुतसे पाप छूटजातेहैं ॥ २५५ ॥ इन्द्रं, मित्रं, वरुणं आदि सात ऋचाओंको ६ महीनेतक जपनेसे अनेक पाप छूटतेहैं । जलमें विष्ठा मूत्र त्यागनेवाला एकमासतक भिक्षा मांगकर खानेसे शुद्ध होताहै ॥ २५६ ॥ "देवकृतस्य" इत्यादि शाकलमन्त्रोंसे एकवर्षतक घीसे होम करनेपर अथवा "इन्द्रश्च" इत्यादि ऋक् मन्त्र जपनेसे द्विज महापापसे छूटजातेहैं ॥ २५७ ॥

महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेद्गाः समाहितः । अभ्यस्याब्दं पावमानीर्भैक्षाहारो विशुद्ध्यति ॥ २५८ ॥

अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम् । मुच्यते पातकैः सर्वैः पराकैः शोधितस्त्रिभिः ॥ २५९॥

महापातकी मनुष्य एक वर्षतक जितेन्द्रिय होकर भिक्षाका अन्न खातेहुए गऊके पीछे पीछे चलने और पावमानी ऋचाका जप करनेसे अथवा ३ पराक व्रतसे पवित्र होकर वनमें निवास करतेहुए ३ बार वेदकी संहिता पाठ करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ २५८-२५९ ॥

त्र्यहन्तूपवसेद्युक्तस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः । मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिर्जपित्वाऽघमर्षणम् ॥ २६० ॥

यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः । तथाऽघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम् ॥ २६१ ॥

३ रात उपवास करे नित्य संयतेन्द्रिय होकर त्रिकाल स्नान करे और स्नानके समय जलमें गोता मारता-हुआ अघमर्षणसूक्तका जप करे तो मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ २६० ॥ जिस प्रकारसे यज्ञोंका राजा अश्वमेध सब पापोंका नाश करताहै उसी भांति अघमर्षणसूक्त सब पापोंको नष्ट करदेताहै ॥ २६१ ॥

हत्वा लोकानपीमांस्त्रीनश्नन्नपि यतस्ततः । ऋग्वेदं धारयन्विप्रो नैनः प्राप्नोति किञ्चन ॥ २६२ ॥

ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः । साम्नां वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २६३ ॥

यथा महाह्रदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं विनश्यति । तथा दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृति मज्जति ॥ २६४ ॥

ऋग्वेदको भलीभांतिसे जाननेवाले ब्राह्मणको तीनों लोकको मारने तथा जहां तहां भोजन करनेसेभी कुछ पाप नहीं लगताहै ॥ २६२ ॥ सावधान होकर उपनिषदोंके सहित ऋग्वेद, यजुर्वेद अथवा सामवेदकी संहिताको ३ बार पाठ करनेसे द्विज सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ १६३ ॥ जैसे मिट्टीका ढेला बड़े तालाबमें फेंकनेसे गल जाताहै वैसेही तीनों वेद पाठ करनेसे सब पापोंका नाश होजाताहै ॥ २६४ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय ।

विख्यातदोषः कुर्वीत पर्षदोऽनुमतं व्रतम् । अनभिख्यातदोषस्तु रहस्यं व्रतमाचरेत् ॥ ३०१ ॥

जिसके पापको सब लोग जानगएहोवें वह धर्मसभाकी अनुमति लेकर प्रायश्चित्त करे और जिसके पापको कोई नहीं जानताहोवे वह नीचे लिखेहुए गुप्त प्रायश्चित्त करे ॥ ३०१ ॥

त्रिरात्रोपोषितो जप्त्वा ब्रह्महा त्वघमर्षणम् । अन्तर्जले विशुद्ध्येत दत्त्वा गां च पयस्विनीम् ॥ ३०२॥

लोमभ्यः स्वाहेत्यथ वा दिवसम्मारुताशनः । जले स्थित्वाग्निं जुहुयाच्चत्वारिंशद्घृताहुतीः ॥ ३०३॥

त्रिरात्रोपोषितो हुत्वा कूष्माण्डीभिर्घृतं शुचिः । सुरापः स्वर्णहारी तु रुद्रजापी जले स्थितः ॥ ३०४॥

सहस्रशीर्षा जापी तु मुच्यते गुरुतल्पगः । गौर्देया कर्मणोऽस्यान्ते पृथगेभिः पयस्विनी ॥ ३०५ ॥

ब्राह्मणवध करनेवाला ३ रात उपवास और जलके भीतर अघमर्षण मन्त्रका जप करके दुग्धवती गौ दान देनेसे शुद्ध होताहै अथवा दिन रात उपवास करके रातमें जलमें वसकर प्रातःकाल जलसे निकल "लोमभ्यः स्वाहा" इत्यादि आठ मन्त्रोंसे (प्रत्येकसे ५) घीकी ४० आहुति अग्निमें देवे ॥ ३०२-३०३ ॥ सुरा पीनेवाला ३ रात उपवास करके कूष्माण्डी ऋचाओंसे घीका होम करनेसे शुद्ध होताहै और सोना चोरानेवाला ब्राह्मण (३ दिन उपवास करके) जलमें स्थित होकर रुद्रका जप करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ३०४॥ गुरुकी पत्नीसे गमन करनेवाला (तीन रात उपवास करके) "सहस्रशीर्षा" सूक्त जपनेसे शुद्ध होताहै; ये सब पातकी प्रायश्चित्तके अन्तमें दुग्धवती गौ दान करें ॥ ३०५ ॥

प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापापनुत्तये । उपपातकजातानामनादिष्टस्य चैव हि ॥ ३०६ ॥
ओंकाराभिष्टुतः सोमसलिलम्पावनम्पिबेत् । कृत्वा तु रेतोविण्मूत्रप्राशनन्तु द्विजोत्तमः ॥ ३०७ ॥
निशायां वा दिवा वापि यदज्ञानकृतम्भवेत् । त्रैकाल्यसन्ध्याकरणात्तत्सर्वं विप्रणश्यति ॥ ३०८ ॥
शुक्रियारण्यकजपो गायत्र्याश्च विशेषतः । सर्वपापहरा ह्येते रुद्रैकादशिनी तथा ॥ ३०९ ॥

गोवध आदि उपपातक और जिन पापोंका प्रायश्चित्त नहीं कहागयाहै उनकी शुद्धिके लिये एकसौ प्राणायाम करे ॥ ३०६ ॥ यदि ब्राह्मण भूलसे वीर्य, विष्ठा अथवा मूत्र भक्षण करलेवे तो ओंकारसे अभिमन्त्रण कियेहुए पवित्र सोमलताके जलको पान करे ॥ ३०७ ॥ दिन अथवा रातके अज्ञानसे कियेहुए पाप त्रिकाल सन्ध्या करनेसे नाश होजातेहैं ॥ ३०८ ॥ शुक्रिय आरण्यकका जप विशेषकर गायत्रीका जप और ग्यारहों प्रकारके रुद्र अनुवाकका जप सब पापोंका हरनेवाला है ॥ ३०९ ॥

यत्रयत्र च सङ्कीर्णमात्मानम्मन्यते द्विजः । तत्रतत्र तिलैर्होमो गायत्र्या वाचनं तथा ॥ ३१० ॥

द्विजको उचित है कि वह जिस जिस पापमें अपनेको लिप्त समझे उस उस पापके नाशके लिये गायत्री मन्त्रसे तिलोंका होम करे * ॥ ३१० ॥

वेदाभ्यासरतं क्षान्तम्पञ्चयज्ञक्रियापरम् । न स्पृशन्तीह पापानि महापातकजान्यपि ॥ ३११ ॥
वायुभक्षो दिवा तिष्ठन् रात्रीर्नीत्वाप्सु सूर्यदृक् । जप्त्वा सहस्रं गायत्र्याः शुध्येद्ब्रह्मवधादृते ॥ ३१२ ॥

वेदके अभ्यासमें रत, शान्त स्वभाव और पञ्चमहायज्ञोंमें तत्पर मनुष्यको महापातकका पापभी नहीं लगताहै ॥ ३११ ॥ दिनमें खड़ा होकर निराहार रहे रातमें जलमें स्थित रहे और सूर्यके उदय होनेपर एक हजार गायत्री जपे तो ब्रह्महत्यासे अन्य सब पाप छूटजातेहैं ॥ ३१२ ॥

(४) वृहद्विष्णुस्मृति–५५ अध्याय ।

अथ रहस्यप्रायश्चित्तानि भवन्ति ॥ १ ॥ स्रवन्तीमासाद्य स्नातः प्रत्यहं षोडशप्राणायामान् कृत्वैककालं हविष्याशी मासेन ब्रह्महा पूतो भवति ॥२॥ कर्मणोन्ते पयस्विनीं गां दद्यात्॥३॥ व्रतेनाघमर्षणेन च सुरापः पूतो भवति ॥ ४ ॥ गायत्रीदशसाहस्रजपेन सुवर्णस्तेयकृत् ॥ ५ ॥ त्रिरात्रोपोषितः पुरुषसूक्तजपहोमाभ्यां गुरुतल्पगः ॥ ६ ॥

अब गुप्त प्रायश्चित्त कहताहूं; ब्राह्मण वध करनेवाला एक मासतक नित्य नदीमें स्नान करके १६ बार प्राणायाम और १ बार हविष्यान्न भोजन करने और अन्तमें दुग्धवती गौदान देनेसे शुद्ध होताहै ॥ १–३ ॥ सुरापान करनेवाला अघमर्षण व्रत करनेसे, सोना चुरानेवाला १० हजार गायत्री जपनेसे और गुरुकी पत्नीसे गमन करनेवाला ३ रात उपवास रहकर पुरुषसूक्त मन्त्रका जप और उस मन्त्रसे होम करनेपर शुद्ध होजाताहै ॥ ४–६ ॥

(१८) गौतमस्मृति–२५ विवादपद ।

रहस्यं प्रायश्चित्तमविख्यातदोषस्य चतुर्ऋचं तरत्समन्दीत्यप्सु जपेदप्रतिग्राह्यं प्रतिजिघृक्षन् प्रतिगृह्य वाऽभोज्यं बुभुक्षमाणः पृथिवीमावपेदृत्वन्तरा रममाण उदकोपस्पर्शनाच्छुद्धिमेके स्त्रीषु पयोव्रतो वा दशरात्रं घृतेन द्वितीयमद्भिस्तृतीयं दिवादिष्वेकभक्तको जलक्लिन्नवासा लोमानि नखानि त्वचं मांसं शोणितं स्नायु अस्थि मज्जानमिति होम आत्मनो मुखे मृत्योरास्ये जुहोमीत्यन्ततः ॥ १ ॥ सर्वेषामेतत्प्रायश्चित्तं भ्रूणहत्यायाः ॥२॥ अथान्य उक्तो नियमोऽग्ने त्वं पारयेति महाव्याहृतिभिर्जुहुयात् कूष्माण्डैश्चाज्यं तद्व्रत एव वा ब्रह्महत्यासुरापानस्तेयगुरुतल्पेषु प्राणायामैः स्नातोऽघमर्षणं जपेत् सममश्वमेधावभृथेन सावित्रीं सहस्रकृत्व आवर्त्तयेत् पुनीतेहैवात्मानमन्तर्जले वाऽघमर्षणं त्रिरावर्त्तयन्पापेभ्यो मुच्यते मुच्यते ॥ ३ ॥

जिसका दोष प्रसिद्ध नहीं हुआ है वह जलमें खड़े होकर ऋग्वेदका तरत्समन्दी इत्यादि ४ ऋचाओंका जप करे । अयोग्य दान लेनेकी इच्छा करनेवाला अथवा अयोग्य दान लेनेवाला या अभक्ष्य वस्तु खानेकी इच्छा करनेवाला वो हुई भूमि दान करे । ऋतुमती स्त्रीसे गमन करनेवाला स्नान करनेसे शुद्ध होताहै कोई आचार्य कहतेहैं कि केवल दूध पीकर १० रात रहे अथवा घी खाकर २ रात या जल पीकर ३ रात रहे और एक भक्त होकर भीगेहुए वस्त्र पहनकर लोमानि स्वाहा, नखानि स्वाहा, त्वचं स्वाहा, मांसं स्वाहा, शोणितं स्वाहा, स्नायु स्वाहा, अस्थि स्वाहा और मज्जा स्वाहा, इन ८ मन्त्रोंसे घीकी ८ आहुति देवे और

---

* संवर्तस्मृतिके—२०४ श्लोकमें तिलोंसे नित्य होम करनेको लिखा है । लिखितस्मृतिके २ श्लोकमें तिलोंसे होम करने और ८०० गायत्री जपनेको लिखाहै ।

आत्मनो० जुहोमि स्वाहा मन्त्रसे अन्तकी आहुति करे ॥ १ ॥ भ्रूणहत्या अर्थात् गर्भ नाश करनेवालोंके लिएभी यही प्रायश्चित्त है ॥ २ ॥ अन्य नियम यह कहागया है कि इस ऋचाके साथ ३ महाव्याहृति लगाकर और कूष्माण्ड मन्त्रोंसे घीका होम करे; ब्रह्मघाती, सुरापन करनेवाला, चोरी करनेवाला तथा गुरुपत्नीसे गमन करनेवाला भी इसी व्रतको करे और स्नान करनेके पश्चात् प्राणायामोंके साथ अघमर्षण सूक्तका जप करे; यह कर्म अश्वमेध यज्ञके अवभृथ स्नानके तुल्य पवित्र करनेवाला है अथवा नित्य १ हजार गायत्रीका जप करके पवित्र होजावे अथवा नित्य जलाशयमें बुड़की लगाकर अघमर्षण सूक्तकी तीन आवृत्ति करे तो सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ ३ ॥

व्रत प्रकरण २२.

(१) मनुस्मृति--११ अध्याय।

यैरभ्युपायैरेनांसि मानवो व्यपकर्षति । तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्यामि देवर्षिपितृसेवितान् ॥ २११ ॥

मनुष्य जिन उपायोंसे पापोंसे छूटजाताहै, देव, ऋषि और पितरोंसे सेवित उन उपायोंको मैं तुम लोगोंसे कहताहूं ॥ २११ ॥

प्राजापत्यव्रत १.

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् । त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन् द्विजः ॥२१२॥

प्राजापत्य व्रत करनेवाला द्विज ३ दिन सबेरे दिनमें ३ दिन सायंकालमें अर्थात् रातमें और ३ दिन विना मांगनेसे मिलीहुई वस्तु भोजन करे और अन्तमें ३ दिन कुछ नहीं खावे ❀ ॥ २१२ ॥

कृच्छ्रसांतपन २.

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥ २१३ ॥

एक दिन गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशाका जल भक्षण करके रहे और दूसरे दिन उपवास करे तो यह कृच्छ्र सान्तपन कहलाताहै ♣ ॥ २१३ ॥

अतिकृच्छ्र ३.

एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् । त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्द्विजः ॥ २१४ ॥

अतिकृच्छ्र व्रत करनेवाला द्विज पूर्ववत् (प्राजापत्य व्रतके समान) ३ दिन सबेरे, ३ दिन रातमें और ३ दिन अयाचितवस्तु केवल एक एक ग्रास खावे और अन्तमें ३ दिन उपवास करे ॥ ◎ ॥ २१४ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-३अध्याय३१९-३२० श्लोक । अत्रिस्मृति-११६-११७ श्लोक, बृहद्विष्णुस्मृति-४६ अध्याय-१० अङ्क, शङ्खस्मृति-१८अध्याय--३ श्लोक, वसिष्ठस्मृति--२४ अध्याय-२ अङ्क और बौधायनस्मृति-४प्रश्न-५ अध्याय--६ श्लोकमें ऐसाही है । अत्रिस्मृति--११७--११८ श्लोक । प्राजापत्य व्रत करनेवाला रातके भोजनमें १२ ग्रास, दिनके भोजनमें १५ ग्रास और अयाचित भोजनमें २४ ग्रास खावे और अन्तमें ३ दिन कुछ भोजन नहीं करे । गौतमस्मृति--२७ अध्याय । कृच्छ्र अर्थात् प्राजापत्य व्रत करनेवाला पहिले ३ दिन प्रातःकाल हविष्यान्न भोजन करे, बाद ३ दिन रातमें और ३ दिन अयाचित वस्तु खावे और ३ दिन उपवास करे; व्रतके समय दिनमें चलते फिरते वा खड़ारहे, रातमें बैठा, रहे शीघ्र शुद्धि चाहताहो तो सत्यही बोले, नीच जातियोंसे सम्भाषण नहीं करे, रुरु या यौध मृगका चर्म धारण करे, 'आपोहिष्ठादि' ३ मन्त्रोंसे नित्य त्रिकाल स्नान करे, 'हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः' इत्यादि ८ मन्त्रोंसे नित्य मार्जन करे ॥ १ ॥ फिर 'ओं नमो हमाय'इत्यादि मन्त्रोंको पढ़ताहुआ प्रत्येक नमःके साथ जलसे रुद्रके लिये देवतर्पण करे॥२॥ इन्हीं मन्त्रोंसे सूर्यकी स्तुति तथा इन्हीसे घीकी आहुति देवे,१२ वें दिन व्रतसमाप्तिके समय गृह्यसूत्रोक्त विधिसे चरु पकाकर अग्नये स्वाहा इत्यादि मन्त्रोंसे चरुकी १० आहुति देवे ॥ ३ ॥ इसके बाद ब्राह्मणोंको खिलावे ॥ ४ ॥ शङ्खस्मृति-- १८ अध्याय, १३-१४ श्लोक । सब व्रतोंमें सदा यह विधि है कि मुण्डन करावे, त्रिकाल स्नान करे, भूमिपर सोवे, जितेन्द्रिय होकर रहे, स्त्री, शूद्र या पतितसे नहीं बोले, पवित्र मंत्रोंका जप करे और यथाशक्ति होम करे ।

♣ याज्ञवल्क्यस्मृति--३ अध्याय--३१५ श्लोक, अत्रिस्मृति-११४--११५ श्लोक, बृहद्विष्णुस्मृति--४६अध्याय-१९ अङ्क, बृहद्यमस्मृति-१ अध्याय-१३ श्लोक, पाराशरस्मृति-१० अध्याय-२९ श्लोक, शङ्खस्मृति-१८ अध्याय-८ श्लोक और बौधायनस्मृति-४ प्रश्न ५ अध्याय,-११ श्लोकमें ऐसाही है ।

◎ याज्ञवल्क्यस्मृति-३अध्याभ-३१९-३२०श्लोक,अत्रिस्मृति-११६-११९श्लोक,पाराशरस्मृति-११अध्याय ५५-५६ श्लोक, गौतमस्मृति-२७ अध्याय १ और ५ अंक, वसिष्ठस्मृति-२४ अध्याय २ और ३ अंक और बौधायनस्मृति-४ प्रश्न ५ अध्याय, ६-और ८ श्लोकमें भी ऐसा है । अत्रिस्मृतिके ११९-१२० श्लोकमें है कि मुर्गेके अण्डेके बराबर अथवा मुखमें जितना समासके उतना ग्रास बनाना चाहिये ।

तप्तकृच्छ्र ४.

तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान्। प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः॥ २१५॥

४ तप्तकृच्छ्रव्रत करनेवाला ब्राह्मण ३ दिन गरम जल, ३ दिन गरम दूध, ३ दिन गरम घी और ३ दिन गरम वायु पीकर रहे और नियमपूर्वक नित्य एक बार स्नान करे ॥ २१५॥

पराकव्रत ५.

यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम्। पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः॥ २१६॥

जिसमें संयतेंद्रिय और स्वस्थचित्त होकर १२ दिन निराहार रहना होताहै वह सब पापोंका नाश करनेवाला पराकव्रत है ॥ २१६॥

चान्द्रायण व्रत ६.

एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत्। उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम्॥ २१७॥

एतमेव विधिं कृत्स्नमाचरेद्यवमध्यमे। शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणं व्रतम्॥ २१८॥

जिसमें कृष्णपक्षमें नित्य भोजनका एक एक ग्रास घटाया जाताहै और शुक्ल पक्षमें नित्य एक एक ग्रास बढ़ाया जाताहै और नित्य त्रिकाल स्नान किया जाता है उसको चान्द्रायण व्रत कहतेहैं॥ २१७॥ जिसमें इसी विधिसे शुक्ल पक्षमें व्रतका आरम्भ करके नित्य भोजनका एक एक ग्रास बढ़ाया जाताहै और पूर्णमासीको १५ ग्रास भोजन करके कृष्णपक्षमें नित्य एक एक ग्रास घटातेहुए अमावास्याको निराहार रहना होताहै उसको यवमध्य चान्द्रायण व्रत कहते हैं अर्थात् यवके आकारके समान इसका ग्रास बढते बढते मध्यमें मोटा (पूरा) होताहै और फिर वह घटते घटते यवके छोरके तुल्य सूक्ष्म हो जाताहै ॥ २१८॥

अत्रिस्मृति–१२०–१२१ श्लोक, बृहद्विष्णुस्मृति-४६ अध्याय–११ अंक, पाराशरस्मृति-४अध्याय–७श्लोक शङ्खस्मृति–१८अध्याय–४ श्लोक, वसिष्ठस्मृति–२१ अध्याय–२२श्लोक और बौधायनस्मृति–४प्रश्न–५अध्याय-१० श्लोकमें ऐसाही है; किन्तु याज्ञवल्क्यस्मृति–३अध्यायके३१८श्लोकमें है कि एक दिन तप्त दूध, एक दिन तप्त घी और एक दिन तप्त जल पीकर रहे और एक दिन उपवास करे तो तप्तकृच्छ्र व्रत कहलाता है। अत्रिस्मृति–१२१–१२२श्लोक और पाराशरस्मृति–४ अध्याय–८श्लोक। तप्तकृच्छ्रमें ६ पल जल, ३ पल दूध और १ पल घी पीना चाहिये।

याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–३२१ श्लोक, अत्रिस्मृति–१२६ श्लोक, बृहद्विष्णुस्मृति–४६ अध्याय–१८ अंक, शङ्खस्मृति–१८ अध्याय–५ श्लोक; और बौधायनस्मृति–४ प्रश्न–५ अध्याय; १६ श्लोकमें भी ऐसा है,

पाराशरस्मृति–१० अध्याय–२श्लोक और वसिष्ठस्मृति–२३ अध्याय, ४०–४१ श्लोक। चान्द्रायण व्रत कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे आरम्भ करके शुक्लपक्षकी पूर्णिमाको समाप्त करे; कृष्णपक्षमें नित्य एक एक ग्रास घटाकर अमावास्याको निराहार रहे और शुक्लपक्षमें नित्य एक एक ग्रास बढ़ाकर पूर्णिमासी को १५ ग्रास खावे। याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–३२४ श्लोक, अत्रिस्मृति ११० श्लोक, बृहद्यमस्मृति–२ अध्याय–६ श्लोक और शंखस्मृति–१८ अध्याय, ११–१२ श्लोक। चान्द्रायण व्रत शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे आरम्भ करे, नित्य एक एक ग्रास बढ़ावे, पूर्णिमाको १५ ग्रास भोजन करे और कृष्णपक्षमें नित्य एक एक ग्रास घटावे और अमावास्याको निराहार रहे। बृहद्विष्णुस्मृति–४७ अध्याय, १–६ अङ्क। जिस चान्द्रायण व्रतमें शुक्लपक्षमें चन्द्रकलाके अनुसार ग्रासको बढातेहैं और कृष्ण पक्षमें चन्द्रकलाके अनुसार ग्रासको घटाते हुए अमावास्याको निराहार रहतेहैं उसको यवमध्य चान्द्रायण और जिस चान्द्रायणमें कृष्णपक्षसे आरम्भ करके शुक्लपूर्णिमाको व्रत समाप्त करतेहैं उसको पिपीलिका मध्य चान्द्रायण कहते हैं (क्योंकि इसका मध्यभाग अमावस्याको निराहार रहना होता है) गौतमस्मृति–२८ अध्याय–१ अंक। चान्द्रायण व्रत करनेवाला पौर्णमासीको १५ ग्रास खाकर कृष्णपक्षमें नित्य एक एक ग्रास घटावे, अमावास्याको उपवास करे, फिर शुक्लपक्षमें नित्य एक एक ग्रास बढाकर पौर्णमासीको १५ ग्रास भोजन करे; एक ऋषिका मत है कि शुक्ल प्रतिपदासे प्रारंभ करके शुक्ल पक्षमें नित्य एक ग्रास बढावे और कृष्णपक्षमें नित्य एक ग्रास घटाकर अमावास्याको उपवास करके व्रत समाप्त करे। बौधायनस्मृति–३ प्रश्न–८ अध्याय, २६–३३ अंक। कृष्णपक्षकी प्रतिपादको १४ ग्रास खावे, अमावास्यातक नित्य एक एक ग्रास घटावे, अमावास्याको निराहार रहे, शुक्लपक्षमें पूर्णिमातक नित्य एक एक ग्रास बढाकर भोजन करे, पूर्णिमामें स्थालीपाक आदि हवन करके ब्राह्मणको गौ देवे, यह पिपीलिकामध्य चान्द्रायण और इससे विपरीत (शुक्लपक्षसे आरम्भ करके अमावास्याको समाप्त) यवमध्य चान्द्रायण कहाताहै।

यतिचान्द्रायण ७.

अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिण्डान्मध्यान्दिने स्थिते । नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं चरन् ॥ २१९ ॥

यति चान्द्रायण व्रत करनेवाला संयतेंद्रिय होकर एक महीनेतक नित्य मध्याह्नमें ८ ग्रास हविष्य भोजन करे ॥ ॥ २१९ ॥

शिशुचान्द्रायण ८.

चतुरः प्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रः समाहितः । चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणे स्मृतम् ॥ २२० ॥

जिसमें व्रत करनेवाला ब्राह्मण एक मासतक सावधानीसे नित्य सबेरे ४ ग्रास और सूर्यास्त होनेपर ४ ग्रास खाताहै उसको शिशुचान्द्रायण व्रत कहतेहैं ॥ २२० ॥

चान्द्रायणव्रतका विधान ।

यथाकथंचित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतीः समाहितः । मासेनाश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् ॥ २२१ ॥

जो मनुष्य संयतेंद्रिय होकर किसी रीतिसे एक महीनेमें केवल २४० ग्रास नीवारआदि हविष्य अन्न खाता है वह चन्द्रलोकमें जाताहै ॥ २२१ ॥

महाव्याहृतिभिर्होमः कर्त्तव्यः स्वयमन्वहम् । अहिंसा सत्यमक्रोधमार्जवं च समाचरेत् ॥ २२३ ॥
त्रिरह्नस्त्रिर्निशायां च सवासा जलमाविशेत् । स्त्रीशूद्रपतितांश्चैव नाभिभाषेत कर्हिचित् ॥ २२४ ॥
स्थानासनाभ्यां विहरेदशक्तोऽधः शयीत वा । ब्रह्मचारी व्रती च स्याद् गुरुदेवद्विजार्चकः ॥ २२५ ॥
सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ॥ २२६ ॥

चान्द्रायण व्रत करनेवालेको उचित है कि नित्यही महाव्याहृतियोंसे होम करे, अहिंसा, सत्य, अक्रोध और कोमलताको ग्रहण करे ॥ २२३ ॥ ३ बार दिनमें और ३ बार रातमें वस्त्रोंके सहित जलमें प्रवेश करे और स्त्री, शूद्र तथा पतितसे बातें नहीं करे ॥ २२४ ॥ स्थान और आसन संबन्धमें चञ्चल रहे, अशक्त होनेपर भूमिपर सोवे, ब्रह्मचर्यसे रहे, गुरु, देवता और ब्राह्मणकी पूजा करे ॥ २२५ ॥ नित्य सावित्रीको जपे और अपनी शक्तिके अनुसार अन्य पवित्र मन्त्रोंका जप करे ॥ २२५-२२६ ॥

महासान्तपन ९.

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति--३ अध्याय ।

पृथक्सान्तपनद्रव्यैः षडहः सोपवासकः । सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयम्महासान्तपनः स्मृतः ॥ ३१६ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति--४७ अध्याय-७ अंक और बौधायनस्मृति-४ प्रश्न-५ अध्यायके २० श्लोकमें भी ऐसा है ।

बृहद्विष्णुस्मृति-४७ अध्याय-८ अंक और बौधायनस्मृति-४ प्रश्न-५ अध्यायके १९ श्लोकमें ऐसाही है ।

बौधायनस्मृति-४ प्रश्न-५ अध्याय-२१ श्लोकमें ऐसाही है । याज्ञवल्यक्स्मृति-३ अध्याय ३२५ श्लोक और बृहद्विष्णुस्मृति-४७ अध्याय-९अंक किसी प्रकारसे एक मासमें २४० ग्रास खावे तो भी एक प्रकारका चान्द्रायण व्रत होताहै ।

याज्ञवल्क्यस्मृति-३अध्याय-३२४ श्लोक । चान्द्रायण व्रतमें भोजनका ग्रास (कवल) मयूरके अण्डके बराबर बनावे । ३२६ श्लोक । नित्य त्रिकाल स्नान, पवित्र मन्त्रोंका जप और गायत्रीसे भोजनके ग्रासोंको अभिमंत्रित करे ॥ ३२७ श्लोक । जिन पापोंके प्रायश्चित्त नहीं कहे गये हैं वे भी चान्द्रायण करनेसे छूट जातेहैं और जो मनुष्य धर्मके लिए चान्द्रायण व्रत करताहै वह चन्द्रलोकमें जाताहै । पाराशरस्मृति-१० अध्याय, ३-४ श्लोक । चान्द्रायणव्रत करनेवाला मुर्गेके अण्डेके बराबर भोजनका ग्रास बनावे और व्रतके अन्तमें ब्राह्मणोंको खिलाकर २ गौ और २ वस्त्र देवे । गौतमस्मृति-२८ अध्याय-१ अंक । चान्द्रायण व्रत करनेवालेको उचित है कि पूर्णमासीसे १ दिन पहिले मुण्डन कराके निराहार रहे पूर्णमासीको पूरा भोजन करके व्रत आरम्भ करे नित्य यथाविधि मन्त्रोंसे तर्पण, होम, चन्द्रमाकी स्तुति और भोजनके ग्रासोंका संस्कार और जप करे; जितना अनायाससे मुखमें समाजावे उतना बड़ा ग्रास बनावे चरु, भिक्षान्न, यवका सत्तू दूध, दही, घी, मूल, फल, और उदक खाने योग्य हविष्यान्न हैं; इनमें क्रमसे पहिलेसे पिछलेवाले श्रेष्ठ हैं । २ अंक । चान्द्रायण व्रतको १ मास करनेसे सब पाप नष्ट होजाते हैं, २ मास करनेसे आगे पीछेकी २१ पीढी पवित्र होजातीहैं और एक वर्ष करनेसे चन्द्रलोक मिलताहै । बौधायनस्मृति-३ प्रश्न-८ अध्यायके १-३९ अंकमें चान्द्रायणव्रतके समयकी विधि और मन्त्र आदि विस्तारसे हैं ।

जिसमें ६ दिन पृथक् पृथक् सान्तपन व्रतकी ६ वस्तु भक्षण कीजातीहैं अर्थात् १ दिन गोमूत्र, १ दिन गोबर, १ दिन दूध, १ दिन दही, १ दिन घी और एक दिन कुशाका जल भक्षण किया जाताहै और सातवें दिन निराहार रहना होताहै वह महासान्तपनव्रत कहलाताहै ❀ ॥ ३१६ ॥

पर्णकृच्छ्र १०.

पर्णोदुम्बरराजीवबिल्वपत्रकुशोदकैः । प्रत्येकम्प्रत्यहम्पीतैः पर्णकृच्छ्र उदाहृतः ॥ ३१७ ॥

१ दिन पलाशके पत्तेका, १ दिन गूलरके पत्तेका, १ दिन कमलके पत्तेका, १ दिन बेलके पत्तेका और १ दिन अर्थात् पांचवें दिन कुशाका काढा पीकर रहे तो पर्णकृच्छ्र (व्रत) कहा जाता है ▣ ॥ ३१७ ॥

कृच्छ्रातिकृच्छ्र ११.

कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिम् ॥ ३२१ ॥

केवल दूध पीकर २१ दिन रहे तो कृच्छ्रातिकृच्छ्र कहलाताहै ◎ ॥ ३२१ ॥

सौम्यकृच्छ्र १२.

पिण्याकाचामतक्राम्बुसक्तूनाम्प्रतिवासरम् । एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रः सौम्योयमुच्यते ॥ ३२२ ॥

१ दिन तिलकी खली, १ दिन भातका माण्ड, १ दिन माठा और १ दिन जल और सत्तू भक्षण करे और १ दिन (पांचवें दिन) निराहार रहे तो सौम्यकृच्छ्रव्रत होताहै ◬ ॥ ३२२ ॥

तुलापुरुष कृच्छ्र १३.

एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम् । तुलापुरुष इत्येष ज्ञेयः पञ्चदशाहिकः ॥ ३२३ ॥

३ दिन तिलकी खली, ३ दिन भातका माण्ड, ३ दिन माठा और ३ दिन जल और सत्तू भक्षण करे और ३ दिन निराहार रहे तो यह १५ दिनका तुलापुरुषव्रत कहाजाताहै ◎ ॥ ३२३ ॥

वैदिक कृच्छ्र १४.

(३) अत्रिस्मृति ।

त्र्यहं तु दधिना भुङ्क्ते त्र्यहं भुङ्क्ते च सर्पिषा ॥ १२२ ॥
क्षीरेण तु त्र्यहं भुङ्क्ते वायुभक्षो दिनत्रयम् । त्रिपलं दधिक्षीरेण पलमेकन्तु सर्पिषा ॥ १२३ ॥
एतदेव व्रतं पुण्यं वैदिकं कृच्छ्रमुच्यते ॥ १२४ ॥

❀ बृहद्विष्णुस्मृति-४६ अध्याय २० अंकमें और बौधायनस्मृति-४ प्रश्न ५ अध्यायके १७ श्लोकमें ऐसाही है; किन्तु अत्रिस्मृतिके ११५-११६ श्लोकमें कुशाके जलके स्थानमें पञ्चगव्य लिखाहुआहै । शंखस्मृति—१८ अध्याय, ८-९ श्लोक । और जाबालिस्मृति (२)-३ दिन गोमूत्र, ३ दिन गोबर, ३ दिन दूध, ३ दिन दही, ३ दिन घी, और तीन दिन कुशाका जल भक्षण करके रहे और ३ दिन उपवास करे तो महासान्तपन व्रत कहलाताहै । बृहद्विष्णुस्मृति-४६ अध्यायके २१ अंकमें इस शङ्खस्मृतिमें लिखेहुए व्रतको अतिसान्तपनव्रत लिखाहै ।

▣ अत्रिस्मृतिके ११३-११४ श्लोकमेंभी ऐसा है; किन्तु वहां एक दिन पीपलके पत्तेका काढाभी पीनेको लिखाहै । बृहद्विष्णुस्मृति-४६ अध्याय-२३ अंक । पर्णकृच्छ्र करनेवाला १ दिन कुशाका, १ दिन पलाशके पत्तेका, १ दिन गूलरके पत्तेका, १ दिन कमलके पत्तेका, १ दिन वटके पत्तेका, १ दिन शंखपुष्पीके पत्तेका और १ दिन अर्थात् सातवें दिन ब्रह्मसुवर्चला (ब्राह्मीशाक) के पत्तेका काढा पीकर रहे ।

◎ अत्रिस्मृति—१२५ श्लोक और बृहद्विष्णुस्मृति-४६ अध्यायके १३ श्लोकमें ऐसाही है किन्तु गौत० मस्मृति-२७ अध्यायके १ और ५ अङ्क, बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-१ अध्यायके ९२ और ९४ अंक और वसिष्ठस्मृति-२४ अध्यायके २ और४ अंकमें लिखा है कि, जल पीकरके १२ दिन रहे तो कृच्छ्राति-कृच्छ्रव्रत कहा जाताहै ।

◬ अत्रिस्मृति-१२६-१२७ श्लोक और वृद्धशातातपस्मृति ३७ श्लोकमें ऐसाही है । जाबालिस्मृति १ दिन तिलकी खली एक दिन सत्तू और १ दिन माठा भक्षण करे और चौथे दिन निराहार रहकर वस्त्र दक्षिणा देवे तो सौम्यकृच्छ्र कहाताहै ॥ ३ ॥

◎ अत्रिस्मृति-१२६-१२८श्लोक, वृद्धशातातपस्मृति-३७-३८श्लोक, बौधायनस्मृति ४ प्रश्न ५ अध्याय, २३ श्लोक, बृहद्विष्णुस्मृति-४६ अध्याय-२१-२२ श्लोक और शंखस्मृति १८ अध्यायके ९-१० श्लोकमें भी ऐसा है ।

३ दिन तीन तीन पल दही, ३ दिन तीन तीन पल दूध आर ३ दिन एक एक पल घी खावे और ३ दिन निराहार रहे तो पवित्र वैदिककृच्छ्र कहलाताहै ॥ १२२-१२४ ॥

नक्तव्रत १५.

निशायां भोजनं चव तज्ज्ञेय नक्तमेव तु ॥ १२९ ॥

दिनभर निराहार रहकर रातमें भोजन करे तो नक्तव्रत कहाजाताहै ॥ १२९ ॥

पादोनव्रत १६.

(९) आपस्तम्बस्मृति--१ अध्याय ।

त्र्यहं निरशनं पादः पादश्चायाचितं त्र्यहम् । सायं त्र्यहं तथा पादः पाद प्रातस्तथा त्र्यहम् ॥ १३॥
प्रातः सायं दिनार्द्धं च पादोनं सायवर्जितम् ॥ १४ ॥

३ दिन भोजन नहीं करना एक पाद, ३ दिन विना मांगे जो मिले उसको खाना एक पाद, तीन दिन सायंकालमें खाना एक पाद और ३ दिन प्रातःकालमें खाना एक पाद प्राजापत्यव्रतका है ॥१३॥ ३ दिन सबेरे और ३ दिन रातमें भोजन करे तो दिनार्द्ध (६ दिनका) प्राजापत्य कहलाताहै और ३ दिन सबेरे भोजन करे, ३ दिन अयाचित वस्तु खावे और ३दिन उपवास करे तो पादोन अर्थात् ३ पाद प्राजापत्यव्रत होताहै ॥ १४॥

पादकृच्छ्र १७.

९ अध्याय ।

सायं प्रातस्त्वहोरात्रं पादं कृच्छ्रस्य तं विदुः ॥ ४२ ॥

एक दिन रातमें भोजन करे, एक दिन सबेरे खावे और एक दिन दिनरात निराहार रहे तो उसको पादकृच्छ्र कहतेहैं ※ ॥ ४२ ॥

अर्धकृच्छ्र १८.

सायं प्रातस्तथैवैकं दिनद्वयमयाचितम् । दिनद्वयं च नाश्नीयात्कृच्छ्रार्द्धं तद्विधीयते ॥ ४३ ॥

एक दिन रातमें खावे, १ दिन सबेरे भोजन करे, २ दिन अयाचितवस्तु खाकर रहे और २ दिन उपवास करे उसको अर्द्धकृच्छ्र कहतेहैं ۞ ॥ ४३ ॥

ब्रह्मकूर्च १९.

(१३) पाराशरस्मृति-११ अध्याय ।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । निर्दिष्टं पञ्चगव्यं च पवित्रम्पापशोधनम् ॥ २९ ॥
गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम् । पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया गृह्यते दधि ॥ ३० ॥
कपिलाया घृतं ग्राह्यं सर्वं कापिलमेव वा । मूत्रमेकपलं दद्यादंगुष्ठार्द्धन्तु गोमयम् ॥ ३१ ॥
क्षीरं सप्तपलन्दद्याद्दधि त्रिपलमुच्यते । घृतमेकपलन्दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् ॥ ३२ ॥
गायत्र्यादाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् । आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णस्तथा दधि ॥ ३३॥
तेजोसि शुक्रमित्याज्यं देवस्यत्वा कुशोदकम् । पञ्चगव्यमृचा पूतं स्थापयेदग्निसन्निधौ ॥ ३४ ॥

※ याज्ञवल्क्यस्मृति-- ३ अध्याय-३१९ श्लोक, अत्रिस्मृति-१२४-१२५श्लोक, वृहद्यमस्मृति-४ अध्याय २५-२६श्लोक, वसिष्ठस्मृति-२३अध्याय, ३७-३८श्लोक और बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-१ अध्याय-९२अंक। १ दिन सबेरे भोजन करे, १ दिन रातमें खावे और १ दिन अयाचित वस्तु भोजन करे और १ दिन दिन-रात निराहार रहे तो पादकृच्छ्र व्रत होताहै, वसिष्ठस्मृति और बौधायनस्मृतिमें लिखाहै कि वृद्ध और रोगियों-के लिये यह शिशुकृच्छ्र व्रत कहागया है। आपस्तम्बस्मृति-१अध्याय-१३-१५ श्लोक । प्राजापत्यव्रतके ४ पाद हैं;-३दिन उपवास करना एक पाद, ३ दिन अयाचितवस्तु मिलजानेपर खाना एक पाद, ३ दिन रातमें भोजन करना एक पाद और ३ दिन सबेरे खाना एक पाद। पादकृच्छ्र व्रत करनेके समय (गोहत्याके प्रायश्चित्तमें) शूद्र ३ दिन सबेरे भोजन करे, वैश्य ३ दिन रातमें खावे, क्षत्रिय ३ दिन विना मांगनेसे मिली-हुई वस्तु भोजन करे और ब्राह्मण ३ दिनतक निराहार रहे ।

۞ आपस्तम्बस्मृति-१अध्याय-१३-१४श्लोक । ३ दिन सबेरे और ३ दिन रातमें भोजन करे तो दिनार्द्ध अर्थात् ६ दिनका प्राजापत्यव्रत कहलाता है ।

आपोहिष्ठेति चालाडय मानस्तोकेति मन्त्रयत्। सप्तावरास्तु ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुकत्विषः ३५॥
एतैरुद्धृत्य होतव्यं पञ्चगव्यं यथाविधि। इरावती इदं विष्णुर्मानस्तोकेति शंवती॥ ३६॥
एताभिश्चैव होतव्यं हुतशेषं पिबेद्द्विजः। आलोडय प्रणवेनैव निर्मन्थ्य प्रणवेन तु॥ ३७॥
उद्धृत्य प्रणवेनैव पिबेच्च प्रणवेन तु। यत्त्वगस्थिगतम्पापं देहे तिष्ठति देहिनाम्॥ ३८॥
ब्रह्मकूर्चं दहेत्सर्वं यथैवाग्निरिवेन्धनम्। पवित्रं त्रिषु लोकेषु देवताभिरधिष्ठितम्॥ ३९॥

गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशाका जल; ये पवित्र और पापनाशक पञ्चगव्य कहेजातेहैं॥ २९॥ ब्रह्मकूर्चका विधान करनेवालेको उचित है कि काली गौका गोमूत्र, सफेद गौका गोबर, ताम्बेके रङ्गकी गौका दूध, लाल गौका दही और कपिला गौका घी अथवा कपिला गौकाही गोमूत्र आदि पांचो वस्तु लावे; १ पल गोमूत्र, आधे अंगूठेभर गोबर, ७ पल दूध, ३ पल दही, १ पल घी और १ पल कुशाका जल ग्रहण करे॥ ३०-३२॥ "गायत्री" मन्त्रसे गोमूत्र, "गन्धद्वारा" मन्त्रसे गोबर; "आप्यायस्व" मन्त्रसे दूध, "दधिक्राव्ण" मन्त्रसे दही, "तेजोसिशुक्र" मन्त्रसे घी और "देवस्यत्वा" मन्त्रसे कुशाका जल ग्रहण करे; इसप्रकार ऋचाओंसे पवित्र कियेहुए पञ्चगव्यको अग्निके पास रक्खे॥ ३३—३४॥ "आपोहिष्ठा" मन्त्रसे गोमूत्रआदिको चलावे, "मानस्तोके" मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे (मथे), "इरावती, इदं विष्णु, मानस्तोके और शंवती" इन ऋचाओंद्वारा अग्रभागसे युक्त ७ हरित कुशाओंसे पञ्चगव्यका होम करे; होमसे बचेहुए पञ्चगव्यको ओंकार पढ़कर मिलावे, ओंकार उच्चारण करके मथे, ओंकार पढकर उठावे और ओंकार उच्चारण करके द्विज पीवे॥ ३५-३८॥ जैसे अग्नि काठको जलाताहै वैसेही ब्रह्मकूर्च मनुष्योंके त्वचों और हाडोंमें टिकेहुए पापोंको जलादेताहै। देवताओंसे अधिष्ठित होनेके कारण ब्रह्मकूर्च तीनों लोकमें पवित्र हुआहै ❀॥ ३८-३९॥

अघमर्षण २०.

(१५) शङ्खस्मृति-१८ अध्याय।

त्र्यहं त्रिषवणस्नायी स्नानेस्नानेऽघमर्षणम्। निमग्नस्त्रिः पठेदप्सु न भुञ्जीत दिनत्रयम्॥ १॥
वीरासनं च तिष्ठेत गान्दद्याच्च पयस्विनीम्। अघमर्षणमित्येतद्व्रतं सर्वाघनाशनम्॥ २॥

३ दिन त्रिकाल स्नान करे, प्रतिस्नानके समय जलमें डूबकर ३ बार अघमर्षण सूक्तका जप करे, तीनों दिन निराहार रहे, वीरासनसे स्थित रहे और अन्तमें दूधदेनेवाली गौदान देवे; यह अघमर्षणव्रत सब पापोंका नाश करनेवाला है ❁॥ १-२॥

शीत कृच्छ्र २१.

त्र्यहमुष्ण पिबेत्तोयं त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत्। त्र्यहमुष्णं पयः पीत्वा वायुभक्षस्त्र्यहं भवेत्॥ ४॥
तप्तकृच्छ्रं विजानीयाच्छीतैः शीतमुदाहृतम्॥ ५॥

तीन दिन गरम जल, तीन दिन गरम घी, तीन दिन गरम दूध पीवे और ३ दिन निराहार रहे; इसको तप्तकृच्छ्र कहतेहैं और यदि इसी क्रमसे ३ दिन ठंडा जल ३ दिन ठंढा घी और ३दिन ठंडा दूध पीकर रहे और ३ दिन उपवास करे तो शीतकृच्छ्र कहलाताहै॥ ४-५॥

❀ शातातपस्मृतिके १५६ से १६६ श्लोक तक और वृद्धशातातपस्मृतिके २ श्लोकसे १२ श्लोकतक प्रायः ऐसाही है; शातातपस्मृतिमें और वृद्धशातातपस्मृतिमें लिखाहै कि पलाशके पत्ते, कमलके पत्ते, ताम्रपात्र अथवा ब्रह्मपात्र (सुवर्णपात्र) से ब्रह्मकूर्च पीना चाहिये और वृद्धशातातपस्मृतिमें है कि, नदीके तीर, गोशाला अथवा पवित्र गृहमें ब्रह्मकूर्चका विधान करना चाहिये;जो द्विज प्रतिमासमें ब्रह्मकूर्च पान करताहै वह निःसन्देह सब पापोंसे शुद्ध होजाताहै।

❁ बृहद्विष्णुस्मृति-४६अध्यायके १-९अंकमें ऐसाही है। किन्तु इसमें विशेष यह है कि दिनमें खड़ा रहे और रातमें बैठे। बौधायनस्मृति ३ प्रश्न ५ अध्याय, १-६ अंक। अब अतिपवित्र अघमर्षणका विधान कहताहूं तीर्थमें जाकर स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण करे, वेदी बनावे, [illegible] पहनेहुए अञ्जलीजलमें भरकर सूर्यके सन्मुख अघमर्षण मंत्रको पढ़े। प्रातःकाल, मध्याह्नकाल [illegible] कालमें [illegible] एक सौवार अथवा संख्यारहित मंत्र पढ़े, रातमें नक्षत्र उदय होनेपर एक पसर [illegible] ग्रहण करे, इस प्रकारसे ७ राततक करनेसे जानकरके या अनजानमें कियेहुए उपपात[illegible] नाश होजाताहै, १२ दिन करनेसे महापातकसे भिन्न सब पाप और २१ दिन करनेसे ब्रह्महत्यादि महापातकभी नष्ट होतेहैं।

वारुण कृच्छ्र २२.

विधिनोदकसिद्धांस्तु समश्नीयात्प्रयत्नतः । सक्तून्हि सोदकान्मासं कृच्छ्रं वारुणमुच्यते ॥ ९ ॥

विधिपूर्वक १ मासतक नित्य एकबार जलसिद्ध सत्तूको भक्षण करे उसी समय जल पीवै; पीछे नहीं तो वह वारुणकृच्छ्र कहलाताहै ॥ ९ ॥

यावकव्रत २३.

गोपुरीषाद्यवान्नन्तु मासं नित्यं समाहितः ॥ १० ॥
व्रतन्तु यावकं कुर्यात्सर्वपापापनुत्तये ॥ ११ ॥

एक मासतक प्रतिदिन एकबार सावधानीसे गोबरसे निकालेहुए यवको खाकर सब पापोंके नाशकेलिये यावकव्रत करना चाहिये * ॥ १०-११ ॥

उद्दालकव्रत २४.

(२०) वसिष्ठस्मृति-११ अध्याय ।

पतितसावित्रीक उद्दालकव्रतं चरेत् ॥ ५६ ॥ द्वौ मासौ यावकेन वर्त्तयेत् मासम्पयसा अर्द्धमासं माक्षिकेणाष्टरात्रं घृतेन षड्रात्रमयाचितेन त्रिरात्रमब्भक्षोऽहोरात्रमुपवसेत् ॥ ५७ ॥

ब्राह्मण आदि पतित मनुष्य इस प्रकारसे उद्दालकव्रत करें ॥ ५६ ॥ २ मासतक यवकी लपसी, १ मासतक दूध, १५ दिनतक मधु और ८ राततक घी पीकर रहे; ६ रात अयाचितवस्तु भोजन करे; ३ राततक केवल जल पीकर बितावे और १ रात उपवास करे ॥ ५७ ॥

पापफलप्रकरण २३.

पूर्वजन्मके पापका फल और चिह्न १.

(१) मनुस्मृति-११ अध्याय ।

न यज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो भिक्षेत कर्हिचित् । यजमानो हि भिक्षित्वा चाण्डालः प्रेत्य जायते॥२४॥
यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वम्प्रयच्छति । स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः॥२५॥

ब्राह्मणको उचित है कि, यज्ञ करनेके लिये शूद्रसे धन कभी नहीं मांगे; क्योंकि ऐसा करनेसे वह दूसरे जन्ममें चाण्डालके घर जन्म लेताहै ॥ २४ ॥ जो ब्राह्मण यज्ञके लिये दूसरोंसे धन मांगकरके उस सब धनको यज्ञमें नहीं लगाताहै वह मरनेपर एकसौ वर्षतक भासपक्षी अथवा काक होताहै ‡ ॥ २५ ॥

देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेनोपहिनस्ति यः । स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥ २६ ॥
इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं निर्वपेदब्दपर्यये । क्लृप्तानां पशुसोमानां निष्कृत्यर्थमसंभवे ॥ २७ ॥

जो मनुष्य लोभसे देवता या ब्राह्मणका धन हरण करताहै वह पापी दूसरे जन्ममें गीधका जूठा खाकर जीताहै ॥ २६ ॥ यदि पशुयज्ञ और सोमयज्ञ नहीं हुआहो तो उसका दोष छुड़ानेके लिये शूद्रसेभी धन लेकर ब्राह्मण वर्षके शेषमें वैश्वानरी इष्टि करे ॥ २७ ॥

इह दुश्चरितैः केचित्केचित्पूर्वकृतैस्तथा । प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नरा रूपविपर्ययम् ॥ ४८ ॥
सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्यावदन्तताम् । ब्रह्महा क्षयरोगित्वं दौश्चर्म्यं गुरुतल्पगः ॥ ४९ ॥

कोई कोई दुष्टात्मा मनुष्य इस जन्मके पापसे और कोई कोई पहिले जन्मके दोषसे कुनखी आदि विपरीत रूपवाले होतेहैं ॥ ४८॥ सोना चोरानेवालेके कुत्सित नख और सुरा पीनेवालेके काले दांत होतेहैं; ब्रह्मघातीका क्षयी रोग और गुरुपत्नीसे गमन करनेवालेका कुत्सित चाम होताहै § ॥ ४९ ॥

---

* बौधायनस्मृति-३प्रश्न ६ अध्याय-२१अङ्क, जो मनुष्य गौके गोबरसे निकालेहुए यवको २१ दिन पीताहै वह सब गणोंको, सब गणाधिपतियोंको और सब विद्याओंको देखताहै ।

‡ याज्ञवल्क्यस्मृति-१अध्यायके १२७ श्लोकमें ऐसाही है ।

§ याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्यायके २०९ श्लोक और बृहद्विष्णुस्मृति-४५ अध्यायके ३-अङ्कमें ऐसा ही है । गौतमस्मृति-२० अध्याय १ अङ्क । ब्रह्मघाती गलितकुष्ठी होताहै, सुरापीनेवालेके काले दांत होतेहैं गुरुपत्नीसे गमन करनेवाला लंगड़ा होताहै और सोनाके चोरका कुत्सित नख होताहै । वसिष्ठस्मृति-२० अध्याय-४९ श्लोक । चोरका कुत्सित नख होताहै, ब्रह्महत्यारा श्वेतकुष्ठी होताहै सुरापीनेवालेके काले दांत होतेहैं और गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवालेका कुत्सित चाम होताहै ।

पिशुनः पौतिनासिक्यं सूचकः पूतिवक्त्रताम्। धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरेक्यन्तु मिश्रकः ॥ ५०॥

चुगुलके नाकसे और परका मिथ्या दोष कहनेवालेके मुखसे दुर्गन्ध आताहै ❀ ॥ ५० ॥ धान्य चोरानेवाला अङ्गहीन होताहै और धान्यमें दूसरी वस्तु मिलानेवालेका अधिक अङ्ग होताहै ⊞ ॥ ५० ॥

अन्नहर्त्तामयावित्वं मौक्यं वागपहारकः। वस्त्रापहारकः श्वैत्र्यं पङ्गुतामश्वहारकः ॥ ५१ ॥

अन्न चुरानेवालेके उदरकी आग मन्द होजातीहै, वचन चोरानेवाला अर्थात् दूसरेके पाठको सुनकर पढनेवाला, गूंगा होताहै, वस्त्र चोरानेवाला श्वेतकुष्ठी होताहै, घोड़ा चोरानेवाला लंगड़ा होताहै ۞ ॥ ५१ ॥

दीपहर्त्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत्। हिंसया व्याधिभूतस्तु स्फीतोऽन्यस्त्र्यभिमर्शकः ॥५२॥

दीप चोरानेवाला अन्धा, दीप बुझानेवाला काना जीव हिंसा करानेवाला अनेक रोगोंसे युक्त और परकी स्त्रीसे गमन करनेवाला वातरोगसे स्थूलशरीरयुक्त होताहै ۞ ॥ ५२ ॥

एवं कर्मविशेषेण जायन्ते सद्भिर्गर्हिताः। जडमूकान्धबधिरा विकृताकृतयस्तथा ॥ ५३ ॥

चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये। निन्द्यैर्हि लक्षणैर्युक्ता जायन्तेऽनिष्कृतैनसः ॥ ५४ ॥

मनुष्य इसीप्रकार पृथक् २ कार्योंसे सज्जनोंमें निन्दित जड़; गूंगा, अन्धा, बहिरा और विकृतरूप होकर जन्म लेतेहैं, इस लिये पाप छुड़ानेके लिये अवश्य प्रायश्चित्त करना चाहिये; पाप नहीं छूटनेसे निन्द्नीय लक्षणसे युक्त होकर जन्म लेना पड़ताहै ॥ ५३-५४ ॥

१२ अध्याय।

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्। वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥ ५ ॥

पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः। असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ ६ ॥

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः। परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥ ७ ॥

मानसम्मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम्। वाचा वाचाकृतं कर्म कायेनैव च कायिकम् ॥ ८ ॥

शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतान्नरः। वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ॥ ९ ॥

अन्यायसे पराया धन लेनेकी चिन्ता करना, मनसे अनिष्ट चिन्ता करना और परलोकको मिथ्या जानना; ये ३ प्रकारके मानसिक कर्म हैं ॥ ५ ॥ कठोरवचन कहना, झूठ बोलना, परोक्षमें दूसरे लोगोंको दोषी कहना और विना प्रयोजन सब लोगोंकी वातें बकते फिरना; ये ४ प्रकारके वाचिक कर्म हैं ॥ ६ ॥ अन्यका धन हरण करना, अवैध हिंसा करना और परकी स्त्रीसे सहवास करना; ये ३ प्रकारके शरीरिक कर्म हैं ॥ ७ ॥ मनुष्य मानसिक शुभाशुभ कर्मको मनसे, वाचिक कर्मको वचनसे और शरीरिक शुभाशुभकर्मको शरीरसे भोगताहै ॥ ८ ॥ शरीरसे पाप करनेवाला मनुष्य स्थावर होताहै, वचनसे पाप करनेवाला पक्षी तथा पशुयोनिमें जन्म लेताहै और मनसे पाप करनेवाला मनुष्य चाण्डालके घर जन्मताहै ✠ ॥ ९ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय-२११ श्लोक, वृहद्विष्णुस्मृति–४५ अध्याय, ७–८ अंक और गौतमस्मृति २० अध्याय–१अंकमें ऐसाही है।

⊞ वृहद्विष्णुस्मृति–४५ अध्यायके ९-१० अंकमें ऐसाही है। याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय-२११ श्लोक। धान्यमें दूसरी वस्तु मिलादेनेवालेका कोई अधिक अङ्ग होताहै।

۞ वृहद्विष्णुस्मृति—४५ अध्यायके ११–१४ अंकमें ऐसाही है। याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्यायके २१० और २१५ श्लोक और गौतमस्मृति—२० अध्यायके १ अंकमें भी अन्न, वस्त्र और वचन चोरनेवालेके लिये ऐसाही लिखाहै।

۞ वृहद्विष्णुस्मृति ४५ अध्याय, १९–२१ अंकमें दीप चोरोनवाले और दीप बुझानेवालेके लिये ऐसाही लिखाहै।

✠ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय, १३१—१३६ श्लोक। यह जीव मन, वाणी और शरीरके दोषसे सैकड़ों जन्मतक चाण्डाल पक्षी और वृक्षादि स्थावर योनियोंमें प्राप्त होताहै। जैसे शरीरोंके विषय जीवोंके अभिप्राय (सत्व आदि गुणोंकी अधिकतासे) अनन्त होतेहैं। वैसेही देहधारियोंके कुब्ज, वामन आदि रूपभी अनन्त होतेहैं। किसीकर्मका फल मरनेपर, किसीका फल इसी जन्ममें और किसी कर्मका फल इस जन्ममें तथा परलोकमें दोनों जगह मिलताहै। सदा परके द्रव्यहरणकी चिन्ता तथा हिंसा आदि अनिष्टोंकी चिन्ता करनेवाला और झूठी बातका आग्रह करनेवाला मनुष्य चाण्डालके[illegible] जन्म लेताहै झूठ बोलनेवाला चुगुली करनेवाला, कठोर वचन बोलनेवाला और विना प्रसङ्गकी बा[illegible] [illegible]ला; ये लोग मृग और पक्षीकी योनिमें उत्पन्न होतेहैं। विना दियेहुए दूसरेका धन लेनेवाला [illegible] स्त्रीमें आसक्त रहनेवाला और विना विधानको हिंसा करनेवाला; ये लोग वृक्षादि स्थावर होतेहैं।

इन्द्रियाणाम्प्रसङ्गेन धर्मस्यासेवनेन च । पापान्संयांति संसारानविद्वांसो नराधमाः ॥ ५२ ॥
यांयां योनिन्तु जीवोऽयं येनयेनेह कर्मणा । क्रमशो याति लोकेऽस्मिंस्तत्तत्सर्वं निबोधत ॥ ५३ ॥

इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रसक्त होनेसे और प्रायश्चित्त आदि धर्म नहीं करनेसे अधम मनुष्य कुत्सित गति प्राप्त करताहै ॥ ५२ ॥ यह जीव जिस जिस कर्मसे इस लोकमें क्रमानुसार जिन योनियोंमें प्राप्त होतेहैं वह सब मैं कहताहूं, सुनो ! ॥ ५३ ॥

बहून्वर्षगणान्घोरान्नरकान्प्राप्य तत्क्षयात् । संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान् ॥ ५४ ॥
श्वसूकरखरोष्ट्राणां गोजाविमृगपक्षिणाम् । चाण्डालपुक्कसानां च ब्रह्महा योनिमृच्छति ॥ ५५ ॥
कृमिकीटपतङ्गानां विड्भुजां चैव पक्षिणाम् । हिंस्राणां चैव सत्त्वानां सुरापो ब्राह्मणो व्रजेत्॥५६॥
लूताहिसरठानां च तिरश्चां चाम्बुचारिणाम् । हिंस्राणां च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः॥५७॥
तृणगुल्मलतानां च क्रव्यादां दंष्ट्रिणामपि । क्रूरकर्मकृतां चैव शतशो गुरुतल्पगः ॥ ५८ ॥

महापातकी लोग बहुत वर्षोंतक घोर नरक भोगकर नीचे लिखीहुई योनियोंमें जन्म लेतेहैं ॥ ५४ ॥ ब्राह्मणवध करनेवाले (यदि प्रायश्चित्त नहीं करें तो) कुत्ता, सूअर, गदहा, ऊंट,गौ, बकरा, भेड़, मृग, पक्षी, चाण्डाल और पुक्कस (व्याध विशेष) होकर जन्म लेतेहैं ॥५५॥ सुरा पीनेवाले ब्राह्मण कृमि, कीट, पतङ्ग, विष्ठा खानेवाले पक्षी और बाघ आदि हिंसक जन्तु होतेहैं ॥ ५६ ॥ सोना चोरानेवाले ब्राह्मण मकड़ी, सांप, गिर-गिट, मगर आदि जलजन्तु और हिंसा करनेवाले पिशाच आदिकी योनिमें हजारबार जन्म लेतेहैं ॥ ५७ ॥ गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाले तृण, गुल्म, लता, कच्चे मांसखानेवाले (गीध आदि) जीव, दांतसे काटनेवाले (हिंस आदि) जीव, क्रूर कर्मकरनेवाले (व्याधा आदि) की योनिमें सौ बार जन्म लेतेहैं ❀ ॥ ५८ ॥

हिंस्रा भवन्ति क्रव्यादाः कृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः । परस्परादिनः स्तेनाः प्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविणः ॥५९॥
संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च योषितम् । अपहृत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः ॥ ६० ॥

प्राणियोंका वध करनेवाले, कचे मांस भक्षण करनेवाले जन्तु होकर जन्मतेहैं; अभक्ष्य वस्तु खानेवाले कीड़े होतेहैं; चोर लोग परस्पर मांस खानेवाले होकर जन्मतेहैं और अन्त्यज जातिकी स्त्रियोंसे गमन करनेवाले प्रेत होतेहैं ॥ ५९ ॥ पतितके संसर्गी, परकी स्त्रीसे गमन करनेवाले और ब्राह्मणका धन हरण करनेवाले मरनेपर ब्रह्मराक्षस होतेहैं ⚘ ॥ ६० ॥

मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः । विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु ॥ ६१ ॥
धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कांस्यं हंसो जलम्प्लवः । मधु दंशः पयः काको रसं श्वा नकुलो घृतम्॥६२॥
मांसं गृध्रो वपां मद्गुस्तैलं तैलपकः खगः । चीरिवाकस्तु लवणं बलाका शकुनिर्दधि ॥ ६३ ॥
कौशेयं तित्तिरिर्हृत्वा क्षौमं हृत्वा तु दर्दुरः । कार्पासतान्तवं क्रौंचो गोधा गां वाग्गुदो गुडम् ॥६४॥
छुच्छुन्दरिः शुभान्गन्धान्पत्रशाकन्तु बर्हिणः । श्वावित्कृतान्नं विविधमकृतान्नं तु शल्यकः ॥ ६५ ॥
बको भवति हृत्वाग्निं गृहकारी ह्युपस्करम् । रक्तानि हृत्वा वासांसि जायते जीवजीवकः ॥ ६६ ॥
वृको मृगेभं व्याघ्रोऽश्वं फलमूलन्तु मर्कटः । स्त्रीमृक्षः स्तोकको वारि यानान्युष्ट्रः पशूनज ॥ ६७॥
यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः । अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः ॥ ६ ॥
स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हृत्वा दोषमवाप्नुयुः । एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥ ६९ ॥

लोभवश होकर मणि, मोती, मूंगा और अनेक प्रकारके रत्न चोरानेवाले मनुष्य हेमकार (सोनार) होतेहैं ✿ ॥ ६१ ॥ धान्य चोरानेवाला चूहा, कांस चोरानेवाला हंस, जल चोरानेवाला पनडुब्बी

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय, २०६–२०८ श्लोक । ब्राह्मणवध करनेवाला मृग, कुत्ता, सूअर और ऊंट होताहै, सुरा पीनेवाला गदहा, पुक्कस जाति और वेनजाति होकर जन्म लेताहै; सोना चोरानेवाला कृमि, कीट और पतङ्ग होकर जन्मताहै और गुरुकी पत्नीसे गमन करनेवाला क्रमसे तृण, गुल्म और लता होताहै ।

⚘ याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–२१२ श्लोक । ब्राह्मणका धन हरनेवाला निर्जल वनमें ब्रह्मराक्षस होताहै । बृहद्विष्णुस्मृति-४४ अध्याय ११–१२ अङ्क। अभक्ष्य भक्षण करनेवाला कीड़ा होताहै और चोरी करनेवाला बाज पक्षी होकर जन्मताहै उशनसस्मृति—२० अध्याय—१ अङ्क । अभक्ष्य भक्षण करनेवाला दूसरे जन्ममें गण्डमाला रोगसे युक्त होताहै ।

✿ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय—२१३ श्लोक । परका रत्न हरण करनेवाला हीन जातिमें जन्म लेता है ।

पक्षी, मधु चोरानेवाला दंश, दूध चोरानेवाला काक, रस चोरानेवाला कुत्ता और घ चोरानेवाला नेवल होताहै * ॥ ६२ ॥ मांस चोरानेवाला गीध, चर्बी चोरानेवाला मद्गु (जलचर पक्षी) तेल चोरानेवाला तैलपक पक्षी, नोन चोरानेवाला झिंगुरकीट और दहीको चोरानेवाला बलाका पक्षी होताहै ※ ॥ ६३ ॥ रेशमी वस्त्र चोरानेवाला तीतर पक्षी, तीसीके छालसे बनेहुए वस्त्रको चोरानेवाला मेंढ़क, कपासके सूतका वस्त्र चोरानेवाला क्रौंच पक्षी, गौको चोरानेवाला गोह और गुड चोरानेवाला चमगादुड़ होकर जन्मताहै ※ ॥ ६४ ॥ सुगन्धित वस्तुओंको चोरानेवाला छुछून्दरी, पत्ते या शाक चोरानेवाला मयूर, सत्तू, भात आदि सिद्ध अन्न चोरानेवाला श्वाविध (सजरू पशु) और धान, यव आदि अकृत अन्नको चोरानेवाला साहील होताहै ※ ॥ ६५ ॥ आग चोरानेवाला बगुला, सूप, मूसल आदि गृहके उपयोगी चीज चोरानेवाला दीमक कीड़ा और रंगेहुये वस्त्रको चोरानेवाला चकोर होता है ※ ॥ ६६॥ हाथी चोरानेवाला भेडिया, घोड़ा चोरानेवाला बाघ, फल मूल चोरानेवाला वानर, स्त्रीको चोरानेवाला भालू, जल चोरानेवाला चातक, सवारी चोरानेवाला ऊंट और अन्य किसी पशुको चोरानेवाला मरनेपर बकरा होताहै ※ ॥ ६७ ॥ किसी प्रकारसे परका द्रव्य बलपूर्वक हरण करनेवाला तथा विना आहुति दिये हुये पुरोडाश आदि होमकी वस्तु भोजन करनेवाला मनुष्य अवश्य पशु पक्षी आदि तिर्यक् योनिमें जाताहै ॥ ६८ ॥ इच्छापूर्वक अन्यकी वस्तु चोरानेवाली स्त्रियांभी ऊपर कहेहुए जन्तुओंकी स्त्री होतीहैं ※ ॥ ६९॥

स्वेभ्यःस्वेभ्यस्तु कर्मभ्यश्च्युता वर्णा ह्यनापदि । पापान्संसृत्य संसारान्प्रेष्यतां यान्ति शत्रुषु ॥७०॥
वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः । अमेध्यकुणपाशी च क्षत्रियः कटपूतनः॥७१॥
मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक् । चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ॥७२॥

ब्राह्मण आदि चारो वर्णोंके मनुष्य जब विना आपत्कालके अपने वर्णके कर्मको छोड़देतेहैं तब नीचे कहीहुई पाप योनिमें जन्म लेतेहैं और फिर दूसरे जन्ममें शत्रुके दास होतेहैं ॥ ७० ॥ जो ब्राह्मण अपने कर्मको छोड़ताहै वह उवान्त भक्षण करनेवाला ज्वालामुख नामक प्रेत होताहै, जो क्षत्रिय अपने कर्मको छोड़ताहै वह विष्टा आदि अपवित्र वस्तु भक्षण करनेवाला कठपूतन नामक प्रेत होताहै जो वैश्य अपने कर्मसे भ्रष्ट होताहै वह पीवखानेवाला मैत्राक्ष ज्योतिक नामक प्रेत होताहै और जो शूद्र अपने कर्मको त्यागताहै वह चैलाशक प्रेत होताहै ॥ ७१–७२ ॥

यथायथा निषेवन्ते विषयान्विषयात्मकाः । तथातथा कुशलता तेषान्तेषूपजायते ॥ ७३ ॥
तेभ्यासात्कर्मणान्तेषां पापानामल्पबुद्धयः । सम्प्राप्नुवन्ति दुःखानि तासुतास्विह योनिषु ॥ ७४ ॥
तामिस्रादिषु चोग्रेषु नरकेषु विवर्त्तनम् । असिपत्रवनादीनि बन्धनच्छेदनानि च ॥ ७५ ॥
विविधाश्चैव सम्पीडाः काकोलूकैश्च भक्षणम् । करम्भवालुकातापान्कुम्भीपाकांश्च दारुणान् ॥७६॥

---

* बृहद्विष्णुस्मृति–४४ अध्यायके–२० अंकमें ऐसाही है । याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्यायके २१४ २१५ श्लोकमें धान्य, जल, मधु, दूध और रस चोरानेवालोंके लिये ऐसाही लिखाहै ।

※ बृहद्विष्णुस्मृति–४४ अध्यायके २१–२५ अंकमें ऐसाही है । याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्यायके २११ और २१५ श्लोकमें तेल मांस और नोन चोरानेवालोंके लिये ऐसाही है । गौतमस्मृति—२० अध्याय १ अंक । तेल, घी, आदि चिकनी वस्तु चोरानेवालेकी देहमें चकत्ता पड़ता है तथा क्षयी रोग होता है

※ बृहद्विष्णुस्मृति—४४ अध्यायके २६–३० अंकमें ऐसाही है। याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय-२१५। श्लोक । गौ चोरानेवाला गोह होताहै ।

※ बृहद्विष्णुस्मृति–४४ अध्यायके ३१–३४ अंकमेंभी ऐसा है। याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्यायके २१३ श्लोकमें सुगन्धवस्तु तथा पत्र शाक चोरानेवालेके लिये ऐसाही लिखाहै ।

※ बृहद्विष्णुस्मृति–४४ अध्यायके ३५–३७ अंकमें ऐसाही है । याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्यायके २१४—२१५ श्लोकमें सूप, मूसल, आदि घरके उपयोगी वस्तु और आग चोरानेवालेके लिये ऐसाही है ।

※ बृहद्विष्णुस्मृति–४४ अध्यायके ३८–४३ अंकमेंभी ऐसा है; किन्तु लिखाहै कि हाथी चोरानेवाला दूसरे जन्ममें कछुआ होकर जन्मताहै । याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्यायके २१४ श्लोकमें फल मूल और सवारी चोरानेवालोंके लिये ऐसाही है और २१२ श्लोकमें लिखाहै कि परकी स्त्रीको चोरानेवाला निर्जल वनमें ब्रह्मराक्षस होताहै ।

※ बृहद्विष्णुस्मृति–४४ अध्यायके ४४–४५ श्लोकमेंभी ऐसा है ।

विषयी लोग जैसे जैसे विषयकी सेवा करतेहैं तैसे तैसे विषयम प्रवीण होतेहैं ॥ ७३ ॥ पाप कर्मोंके बारम्बार करनेसे अल्प बुद्धि लोगोंको इस लोकमें क्लेश होताहै और मरनेपर तिर्यक् आदि योनियोंमें दुःख सहना पडताहै; तामिस्र आदि घोर नरकोंमें, असिपत्र वनमें आदि तथा बन्धन छेदन करनेवाले नरकोंमें यन्त्रणा भोगना होताहै ॥ ७४-७५ ॥ नाना प्रकारकी पीडा भोगना, काक और उलूकोंके द्वारा भक्षित होना, तपायेहुए बालू आदिके ऊपर चलना और कुम्भीपाक आदि अत्यन्त भयानक नरकयन्त्रणा भोगना पड़ताहै ॥ ७६ ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय।

आत्मज्ञः शौचवादान्तस्तपस्वी विजितेन्द्रियः। धर्मकृद्वेदविद्यावित्सात्त्विको देवयोनिताम् ॥ १३७ ॥
असत्कार्यरतो धीर आरम्भी विषयी च यः। स राजसो मनुष्येषु मृतो जन्माधिगच्छति ॥ १३८॥
निद्रालुः क्रूरकृल्लुब्धो नास्तिको याचकस्तथा। प्रमादवान्भिन्नवृत्तो भवेत्तिर्यक्षु तामसः ॥ १३९ ॥

आत्मज्ञानी अर्थात् विद्या, धन आदिके गर्वसे रहित, शौचवान् अर्थात् भीतर और बाहरकी शुद्धिसे युक्त, शान्तचित्त, तपस्वी, जितेन्द्रिय, धर्ममें तत्पर और वेदके अर्थका ज्ञाता; ये सब सात्त्विक वृत्तिवाले मनुष्य मरनेपर देवयोनियोंमें उत्पन्न होतेहैं ॥ १३७ ॥ असत्कार्यमें रत रहनेवाला, अधीर, कार्योंके आरम्भ करनेमें सदा व्याकुल रहनेवाला और विषयोंमें आसक्त ये सब रजोगुणी मनुष्य मरनेपर मनुष्यकी योनियोंमें जन्म लेतेहैं ॥ १३८ ॥ बहुत सोनेवाला, जीवोंको क्लेश देनेवाला, लोभी, नास्तिक, सदा याचनेवाला, कार्य और अकार्यके ज्ञानसे शून्य और उलटा आचारसे युक्त; ये सब तमोगुणी वृत्तिवाले मनुष्य पशु पक्षी आदि तिर्यक् योनियोंमें उत्पन्न होतेहैं ॥ १३९ ॥

यथा कर्मफलम्प्राप्य तिर्यक्त्वं कालपर्ययात्। जायन्ते लक्षणभ्रष्टा दरिद्राः पुरुषाधमाः ॥ २१७ ॥
ततो निष्कल्मषीभूताः कुले महति भोगिनः। जायन्ते विद्ययोपेता धनधान्यसमन्विताः॥ २१८ ॥
प्रायश्चित्तमकुर्वाणाः पापेषु निरता नराः। अपश्चात्तापिनः कष्टान्नरकान्यान्ति दारुणान् ॥ २२१ ॥

मनुष्य मरनेपर अपने पापकर्मके अनुसार नरकमें रहकर और पशु, पक्षी आदि तिर्यक् योनिमें जन्म लेकर मनुष्यके जन्म पानेपर लक्षणोंसे भ्रष्ट और दरिद्री होताहै ॥ २१७ ॥ मनुष्य होनेपर जो अच्छा कर्म करताहै वह निष्पाप होकर महान् कुलमें जन्म लेताहै और अनेक प्रकारके भोग, विद्या, धन और धान्यसे युक्त होताहै ॥ २१८ ॥ जो लोग प्रायश्चित्त नहीं करतेहैं, सदा पापमें रहतेहैं और उसका पश्चात्तापभी नहीं करते वे लोग दारुण कष्ट देनेवाले नरकोंमें जातेहैं * ॥ २२१ ॥

(३) अत्रिस्मृति।

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुन्नाभिमन्यते। शुनां योनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥ १० ॥

जो मनुष्य एक अक्षरभी पढ़ानेवालेको गुरु नहीं मानताहै वह एकसौ जन्मतक कुत्तेकी योनिमें जाकर चाण्डालके गृह जन्म लेताहै ॥ १० ॥

(३ क) दूसरी अत्रिस्मृति–४ अध्याय।

अचीर्णप्रायश्चित्तानां यमविषयनरकयातनाभिश्च पातितानां यदि कदाचिन्मानुष्यं भवति तदैत-च्चिह्नांकितशरीरा जायन्ते ॥ १ ॥ न्यासापहारी चानपत्यः ॥ ३ ॥ रत्नापहारी चात्यन्तदरिद्रः ॥ ४ ॥ अनिमन्त्रितभोजी वायसः ॥ ८ ॥ इतस्ततस्तर्कको मार्जारः ॥ ९ ॥ कक्षागारदाहकः खद्योतः दारकाचार्यो मुखगन्धी ॥ ११ ॥ भृतकाध्यापकः शृगालः ॥ २६ ॥ राजमहिषीहरणा-त्खरः ॥ ३६ ॥ देवलश्चाण्डालः ॥ ३९ ॥ वार्धुषिकः कूर्मः ॥ ४० ॥ ऊर्णनाभो नास्तिकः कृतघ्नश्च ॥ ४३ ॥ शरणागतत्यागी ब्रह्मराक्षसोऽविक्रेयविक्रयकारी च ॥ ४४ ॥

जो लोग अपने कियेहुए पापका प्रायश्चित्त नहीं करतेहैं वे नरक भोगनेके बाद जब मनुष्य होकर जन्म लेतेहैं तब उनके शरीरमें उन पापोंके चिह्न होतेहैं ॥ १ ॥ धरोहर वस्तु हरण करनेवाला पुरुष मनुष्य होनेपर सन्तानहीन होताहै ॥ ३ ॥ रत्न चुरानेवाला मनुष्य अत्यन्तदरिद्री होताहै ॥ ४ ॥ विना निमंत्रणके भोजन करनेवाला (ब्राह्मण) काक होताहै ॥ ८ ॥ जहां तहां तर्क करनेवाला मनुष्य बिलार होकर जन्मताहै ॥९॥

---

* याज्ञवल्क्यस्मृति–३अध्याय–२२–२४ श्लोक। तामिस्र, लोहशंकु, महानिरय, शाल्मलि, रौरव कुड्मल, पूतिमृत्तिक, कालसूत्रक, संघात, लोहितोदक, सविष, संप्रपातन, महानरक, काकोल, संजीवन, महापथ, अवीचि, अन्धतामिस्र, कुंभीपाक, असिपत्रवन और तापन ये २१ नरक हैं।

स्कानके कच्छेको जलानेवाला जुगनू होताहै ॥ १० ॥ स्त्रियोंके आचार्यके मुखसे दुर्गन्ध आतीहै ॥ ११ ॥ वेतन लेकर वेद पढानेवाला ब्राह्मण स्यार होताहै ॥ २६ ॥ राजाकी स्त्रीको हरण करनेवाला गदहा होकर जन्मताहै ॥ ३६ ॥ वेतन लेकर मन्दिरमें पूजा करनेवाला ब्राह्मण चाण्डाल होताहै ॥ ३९ ॥ सस्ता अन्न लेकर उसको मंहगा बेंचनेवाला (ब्राह्मण तथा क्षत्रिय) दूसरे जन्ममें कछुआ होताहै ॥ ४० ॥ नास्तिक और कृतघ्न सकरी होकर जन्म लेताहै ॥ ४३ ॥ शरणागतको त्यागनेवाला और नहीं बेंचनेयोग्य वस्तुको बेंचनेवाला ब्रह्मराक्षस होताहै ॥ ४४ ॥

(१२) बृहस्पतिस्मृति।

स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम्। श्वविष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते ॥ २८ ॥
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तमेव नरकं व्रजेत् ॥ २९ ॥

अन्यायेन हृता भूमिर्यैर्नरैरपहारिता ॥ ३५ ॥
हरन्तो हारयंतश्च हन्युस्ते सप्तमं कुलम्। हरते हारयेद्यस्तु मन्दबुद्धिस्तमोवृतः ॥ ३६ ॥
स बद्धो वारुणैः पाशैस्तिर्यग्योनिषु जायते ॥ ३७ ॥

गामेकां स्वर्णमेकं वा भूमेरप्यर्द्धमङ्गुलम् ॥ ३९ ॥
हरन्नरकमायाति यावदाभूतसम्प्लवम्। हुतं दत्तं तपोधीतं यत्किंचिद्धर्मसञ्चितम् ॥ ४० ॥
अर्द्धाङ्गुलस्य सीमायां हरणेन प्रणश्यति। गोवीथीं ग्रामरथ्यां च श्मशानं गोपितं तथा ॥ ४१ ॥
सम्पीड्य नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ४२ ॥

जो मनुष्य अपनी अथवा दूसरेकी दीहुई भूमिको हरण करताहै वह अपने पितरोंके सहित कुत्तेकी विष्टामें कीड़ा होकर पच मरताहै ॥ २८ ॥ आक्षेप करनेवाला तथा अनुमति देनेवाला ये दोनों एकही नरकमें जातेहै ॥ २९ ॥ जो मनुष्य अन्यायपूर्वक किसीकी भूमि छीन लेतेहैं अथवा अन्यसे छिनवातेहैं वे अपने ७ पीढियोंको नष्ट करतेहैं ॥३५–३६॥ जो मन्दबुद्धि और अज्ञानी मनुष्य भूमि हरण करताहै या हरण कराताहै वह वरुणके फांससे बान्धाजाताहै तथा पशु पक्षी आदि तिर्यक् योनिमें जन्म लेताहै ॥ ३६–३७ ॥ जो मनुष्य १ गौ, १ सोना अथवा आधा अंगुल भूमि हरण करताहै वह प्रलय तक नरकमें रहताहै ॥ ३९–४०॥ जो मनुष्य आधा अंगुल सीमा (सिवान) की भूमि हरण करताहै उसके होम, दान, तप, वेद पाठ आदिसे जो कुछ धर्म सञ्चित रहताहै वह सब नष्ट होजाताहै ॥ ४०–४१ ॥ जो मनुष्य गौओंके मार्ग, गांवकी गली अथवा मुर्दे जलानेके स्थानको नष्ट करताहै वह प्रलयकालतक नरकमें बसताहै ॥ ४१—४२ ॥

उपस्थिते विवाहे च यज्ञे दाने च वासव। मोहाच्चरति विघ्नं यः स मृतो जायते कृमिः ॥ ७० ॥

हे इन्द्र! जो मनुष्य मोहवश होकर किसीके विवाह, यज्ञ अथवा दानके समय विघ्न करताहै वह मरनेपर कीडा होताहै ॥ ७० ॥

(१३) पाराशरस्मृति–९अध्याय।

इह यो गोवधं कृत्वा प्रच्छादयितुमिच्छति ॥ ६० ॥
स याति नरकं घोरं कालसूत्रमसंशयम्। विमुक्तो नरकात्तस्मान्मर्त्यलोके प्रजायते ॥ ६१ ॥
क्लीबो दुःखी च कुष्ठी च सप्तजन्मानि वै नरः। तस्मात्प्रकाशयेत्पापं स्वधर्मं सततं चरेत् ॥ ६२ ॥

जो मनुष्य इस लोकमें गोवध करके छिपानेकी इच्छा करताहै वह निःसन्देह कालसूत्र नामक नरकमें पड़ताहै और नरकसे छूटकर जब मृत्युलोकमें आताहै तब ७ जन्मतक नपुंसक, दुःखी और कोढी होता है, इस लिये पापको नहीं छिपाना चाहिये; अपना धर्म निरन्तर करना चाहिये ॥ ६०–६२ ॥

(१४) गौतमस्मृति–२० अध्याय।

प्रतिहन्ता गुरोरपस्मारी, गोघ्नो जात्यन्धः, एकशफविक्रयी मृगव्याधः कुण्डाशी भृतकश्चैलिको वा नक्षत्री चार्बुदी,नास्तिको रङ्गोपजीव्य....ब्रह्मपुरुषतस्कराणां देशिकः पिण्डितः पण्ढो,महापथिको गण्डिकः,चाण्डालीपुक्कसीष्ववकीर्णी मध्वा मेही, धर्मपत्नीषु स्यान्मैथुनप्रवर्त्तकः खल्वाटः सगोत्रसमयस्त्र्यभिगामी श्लीपदी, पितृमातृभगिनीस्त्र्यभिगाम्यवीजितस्तेषाम् ॥ १ ॥

गुरुके ताड़ना करनेपर उसको मारनेवाला शिष्य दूसरे जन्ममें मृगीरोगसे युक्त होताहै और गौका वध करनेवाला जन्मान्ध होताहै। एक खुरवाले घोड़े आदि पशुको बेचनेवाला व्याध,कुण्डका अन्न खानेवाला दास

अथवा धोबी और नक्षत्रसे जीविका चलानेवाला (ब्राह्मण) दूसरे जन्ममें मांसपिण्ड रोगसे युक्त होताहै। नास्तिक मनुष्य दूसरे जन्ममें रंगरेज जाती होताहै। ब्रह्मद्रोही और चोरका सहायक मनुष्य नपुंसक होताहै निन्दित मार्गमें चलनेवाला गण्डरोगी होताहै। चाण्डाली, पुक्कसी या गौसे गमन करनेवालेको मधुप्रमेह रोग होताहै किसीकी धर्मपत्नीसे गमन करनेवालेको खल्वाट रोग होताहै। अपने गोत्रकी स्त्रीसे गमन करनेपर हाथीपांव रोग होताहै। फूआ अथवा मौसीसे गमन करनेवाला दूसरे जन्ममें वीर्यहीन होताहै ॥ १ ॥

(१९ क) दूसरी शातातपस्मृति–१ अध्याय।

प्रायश्चित्तविहीनानां महापातकिनां नृणाम्। नरकान्ते भवेजन्म चिह्नाङ्कितशरीरिणाम् ॥ १ ॥
प्रतिजन्म भवेत्तेषां चिह्नं तत्पापसूचितम्। प्रायश्चित्ते कृते याति पश्चात्तापवताम्पुनः ॥ २ ॥
महापातकजं चिह्नं सप्तजन्मनि जायते। उपपापोद्भवं पञ्च त्रीणि पापसमुद्भवम् ॥ ३ ॥
दुष्कर्मजा नृणां रोगा यन्ति चोपक्रमैः शमम्। जपैः सुरार्चनैर्होमैर्दानैस्तेषां शमो भवेत् ॥ ४ ॥
पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये। बाधते व्याधिरूपेण तस्य जप्यादिभिः शमः ॥ ५ ॥

महापातकी लोग यदि प्रायश्चित्त नहीं करतेहै तो मरनेपर नरक भोगनेके पश्चात् पापसूचक चिह्नों युक्त होकर मनुष्ययोनिमें जन्म लेतेहै और वे चिह्न प्रति जन्ममें होतेहै; किन्तु दूसरे जन्ममें प्रायश्चित्त और पश्चात्ताप करनेसे वे चिह्न नही होतेहैं ॥ १–२ ॥ महापातकका चिह्न ७ जन्मतक, उपपातका चिह्न ५ जन्मतक और अन्य साधारण पापोंका चिह्न ३ जन्मतक प्रकट होताहै ॥ ३ ॥ निन्दित कर्मसे उत्पन्न रोग जप देवपूजन होम और दानसे शान्त होतेहैं; पूर्वजन्मके पाप नरक भोग करनेके अन्तमें व्याधिरूप होकर दुःख देतेहै; किन्तु वे जप आदिसे शान्त होतेहै ॥ ४–५ ॥

कुष्ठं च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा। मूत्रकृच्छ्राश्मरीकासा अतिसारभगन्दरौ ॥ ६ ॥
दुष्टव्रणं गण्डमाला पक्षाघातोऽक्षिनाशनम्। इत्येवमादयो रोगा महापापोद्भवाः स्मृताः ॥ ७ ॥
जलोदरं यकृत्प्लीहाशूलरोगव्रणानि च। श्वासाजीर्णज्वरच्छर्दिभ्रममोहगलग्रहाः ॥ ८ ॥
रक्तार्बुदविसर्पाद्या उपपापोद्भवा गदाः। दण्डापतानकश्चित्रवपुः कम्पविचर्चिकाः ॥ ९ ॥
वल्मीकपुण्डरीकाद्या रोगाः पापसमुद्भवाः। अर्श आद्या नृणां रोगा अतिपापाद्भवन्ति हि ॥ १० ॥
अन्ये च बहवो रोगा जायन्ते वर्णसङ्करात्। उच्यन्ते च निदानानि प्रायश्चित्तानि वै क्रमात् ॥ ११ ॥
महापापेषु सर्वं स्यात्तदर्धमुपपातके। दद्यात्पापेषु षष्ठांशं कल्प्यं व्याधिबलाबलम् ॥ १२ ॥

कुष्ठ, राजयक्ष्मा, प्रमेह, संग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, खांसी, अतिसार, भगन्दर, दुष्ट घाव, गण्डमाला, पक्षाघात और नेत्रोंका नाश इत्यादि रोग महापातकवालोंको दूसरे जन्ममें होतेहै ॥ ६–७ ॥ जलोदर, यकृत, तिल्ली, शूल, व्रण, सांस, अजीर्ण, ज्वर, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, गलेका रोग, रक्तार्बुद, विसर्प इत्यादि रोग उपपातकियोंको होतेहैं ॥ ८–९ ॥ दण्डापतानक (दण्डके समान शरीर तनजाना), चित्रवपु (शरीरमें चकत्ता पड़ जाना), कम्परोग, खुजली, वल्मीक (चकदे) और पुण्डरीक आदि रोग साधारण पापोंसे होतेहैं ॥ ९–१० ॥ बवासीर आदि रोग अति पाप करनेसे मनुष्यको होतेहै औरभी अनेक प्रकारके रोग पापोंके मेलसे होतेहै; उनके होनेका कारण और प्रायश्चित्त क्रमसे कहताहूं ॥ १०–११ ॥ व्याधिका बलाबल विचारकरके महापातकमे पूरा, उपपातकमे आधा और साधारण पातकमें छठा भाग प्रायश्चित्त बताना चाहिये ॥ १२ ॥

पूर्वजन्मके पापका प्रायश्चित्त २.

(१९ क) दूसरी शातातपस्मृति–२ अध्याय।

ब्रह्महा नरकस्यान्ते पाण्डुकुष्ठी प्रजायते। प्रायश्चित्तम्प्रकुर्वीत एतत्पातकशान्तये ॥ १ ॥
चत्वारः कलशाः कार्याः पञ्चरत्नसमन्विताः। पञ्चपल्लवसंयुक्ताः सितवस्त्रेण संयुताः ॥ २ ॥
अश्वस्थानादिमृद्युक्तास्तीर्थोदकसुपूरिताः। कषायपञ्चकोपेता नानाविधफलान्विताः ॥ ३ ॥
सर्वौषधिसमायुक्ताः स्थाप्याः प्रतिदिशं द्विजैः। रौप्यमष्टदलम्पद्मं मध्यकुम्भोपरि न्यसेत् ॥ ४ ॥
तस्योपरि न्यसेद्देवं ब्रह्माणं च चतर्मुखम्। पलार्द्धार्द्धप्रमाणेन सुवर्णेन विनिर्मितम् ॥ ५ ॥
अर्च्चेत्पुरुषसूक्तेन त्रिकालम्प्रतिवासरम्। यजमानः शुभैर्गन्धैः पुष्पैर्धूपैर्यथाविधि ॥ ६ ॥
पूर्वादिकुम्भेषु ततो ब्राह्मणा ब्रह्मचारिणः। पठेयुः स्वस्ववेदांस्ते ऋग्वेदप्रभृतीञ्छनैः ॥ ७ ॥
दशांशेन ततो होमो ग्रहशान्तिपुरःसरम्। मध्यकुम्भे विधातव्यो घृताक्तैस्तिलव्रीहिभिः ॥ ८ ॥

द्वादशाहमिदं कर्म समाप्य द्विजपुंगवः। तत्र पीठे यजमानमभिषिंचेद्यथाविधि ॥ ९ ॥
ततो दद्याद्यथाशक्ति गोभूहेमतिलादिकम्। ब्राह्मणेभ्यस्तथा देयमाचार्याय निवेदयेत् ॥ १० ॥
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः। प्रीताः सर्वे व्यपोहन्तु मम पापं सुदारुणम् ॥ ११ ॥
इत्युदीर्य मुहुर्भक्त्या तमाचार्यं क्षमापयेत्। एवं विधाने विहिते श्वेतकुष्ठी विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥

ब्राह्मणवध करनेवाला मनुष्य नरक भोगनेके बाद मनुष्यके घर जन्म लेनेपर श्वेतकुष्ठी होताहै, उस पातकके शान्तिके लिये उसको यह प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ १ ॥ चार कलशमें पञ्चरत्न डाले, कलशोंके मुखमें पञ्चपल्लव देवे, उनको शुक्ल वस्त्रसे आच्छादित करे ॥ २ ॥ उनको अश्वशाला आदिकी मिट्टीसे युक्त करे उनमें तीर्थका जल भरदेवे और ५ कसेली वस्तु तथा अनेक प्रकारके फल और सब औषधियोंको डालदेवे चारों कलशोंको चारों दिशाओंमें रखकर मध्यमें एक कलश स्थापितकरे उसपर रूपासे बनाहुआ आठ दलवाला कमल रक्खे ॥ ३ ॥ ४ ॥ कमलके ऊपर एक भर सोनेसे बनीहुई चतुर्मुख ब्राह्मणकी मूर्त्ति स्थापित करे ॥ ५ ॥ यजमान प्रतिदिन तीनों कालमें उत्तम गन्ध, फूल और धूप तथा पुरुषसूक्त (सहस्रशीर्षा०) मन्त्रसे विधिपूर्वक उसकी पूजा करे ॥६॥ पूर्व आदि चारों दिशाओंके चारों कलशोंके पास ऋग्वेदी आदि ४ ब्राह्मण ब्रह्मचर्य धारण करके धीरे धीरे अपने अपने वेदका पाठ करें॥७॥ फिर ग्रहशान्तिपूर्वक मध्यके कलशके पास ब्राह्मण घृतमिश्रित तिल और धानसे दशांश होम करदेवे और १२ दिन इस कर्मको करके यजमानको आसनपर बैठाकर यथाविधि उसका अभिषेक करे ॥ ८-९ ॥ यजमान ब्राह्मणों और आचार्यको यथाशक्ति गौ, भूमि, सोना और तिल देवे ॥ १० ॥ " सूर्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव और मरुद्गण प्रसन्न होकर मेरे दारुण पापका नाश करो " ऐसा भक्तिसहित बारबार कहकर आचार्यसे क्षमा मांगे; ऐसा विधान करनेसे श्वेतकुष्ठी शुद्ध होजाताहै ॥ ११-१२ ॥

कुष्ठी गोवधकारी स्यान्नरकान्तेऽस्य निष्कृतिः। स्थापयेद्घटमेकन्तु पूर्वोक्तद्रव्यसंयुतम् ॥ १३ ॥
रक्तचन्दनलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पाम्बरान्वितम्। रक्तकुम्भन्तु तं कृत्वा स्थापयेद्दक्षिणां दिशम् ॥ १४ ॥
ताम्रपात्रं न्यसेत्तत्र तिलचूर्णेन पूरितम्। तस्योपरि न्यसेद्देवं हेमनिष्कमयं यमम् ॥ १५ ॥
यजेत्पुरुषसूक्तेन पापम्मे शाम्यतामिति। सामपारायणं कुर्यात्कलशे तत्र सामवित् ॥ १६ ॥
दशांशं सर्षपैर्हुत्वा पावमान्यभिषेचने। विहिते धर्मराजानमाचार्याय निवेदयेत् ॥ १७ ॥
यमोपि महिषारूढो दण्डपाणिर्भयावहः। दक्षिणाशापतिर्देवो मम पापं व्यपोहतु ॥ १८ ॥
इत्युच्चार्य विसृज्यैनं मासं सद्भक्तिमाचरेत्। ब्रह्मगोवधयोरेषा प्रायश्चित्तेन निष्कृतिः ॥ १९ ॥

गोवध करनेवाला नरक भोगनेके पश्चात् कोढ़ी होताहै; उसको उचित है कि पूर्वोक्त पञ्चरत्नादि-सहित एक घड़ेको रक्तचन्दनसे लेपकर लाल वस्त्रसे अच्छादित करे; उसमें लाल फूलोंको रखकर उसको दक्षिण दिशामें स्थापन करे ॥ १३-१४ ॥ तिलके चूर्णसे भरेहुए ताम्बेके पात्रको घटके ऊपर रक्खे; चार भर सोनेकी यमराजकी प्रतिमा बनाकर उस पात्रपर स्थापित करे ॥ १५ ॥ मेरा पाप शान्त हो" ऐसी प्रार्थना करके पुरुषसूक्त मंत्रसे यमराजकी पूजा करे; घटके निकट सामवेदी ब्राह्मणसे सामवेदका पाठ करावे ॥ १६ ॥ सरसोंसे दशांश होम करावे; पावमानी ऋचाओंसे अभिषेक करावे; विसर्जन करके आचार्यको यमराजकी मूर्त्ति देदेवे ॥ १७ ॥ उस समय ऐसा कहे कि "भैंसेपर चढ़ेहुए, हाथमें दण्ड लियेहुए भयङ्कर रूप दक्षिण दिशाका स्वामी यमराज मेरे पापको दूर करो" ॥ १८ ॥ ऐसा उच्चारण करके यमराजका विसर्जन करे और एक महीनेतक उत्तम भक्तिका आचरण करे; ऐसा करनेसे ब्राह्मण गोवधके पापसे छूटताहै ॥ १९ ॥

पितृहा चेतनाहीनो मातृहान्धः प्रजायते। नरकान्ते प्रकुर्वीत प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥ २० ॥
प्राजापत्यानि कुर्वीत त्रिंशच्चैव विधानतः। व्रतान्ते कारयेन्नावं सौवर्णपलसम्मिताम् ॥ २१ ॥
कुम्भं रौप्यमयं चैव ताम्रपात्राणि पूर्ववत्। निष्कहेम्ना तु कर्त्तव्यो देवः श्रीवत्सलाञ्छनः ॥ २२ ॥
पट्टवस्त्रेण संवेष्ट्य पूजयेत्तं विधानतः। नावं द्विजाय तां दद्यात्सर्वोपस्करसंयुताम् ॥ २३ ॥
वासुदेव जगन्नाथ सर्वभूताशयस्थित। पातकार्णवमग्नं मां तारय प्रणतार्तिहृत् ॥ २४ ॥
इत्युदीर्य प्रणम्याथ ब्राह्मणाय विसर्जयेत्। अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति विप्रेभ्यो दक्षिणां ददेत् ॥२५॥

पितावध करनेवाला नरक भोगनेके बाद चेतनाहीन अर्थात् महाजड होताहै और मातावध करनेवाला नरक भोगनेपर अन्धा होकर जन्मताहै, इनको उचित है कि विधिपूर्वक ३० प्राजापत्य व्रत करे; व्रतके अन्तमें चारभर सोनेका एक नाव बनावे ॥ २०-२१ ॥ रूपाके कलशपर पूर्वोक्त विधानसे ताम्बेका पात्र रक्खे, उसके ऊपर चारभर सोनेकी विष्णुकी प्रतिमा स्थापित करे ॥ २२ ॥ रेशमी वस्त्र ओढ़ाकर विधिपूर्वक प्रतिमाकी पूजा करे और सामग्रीसहित वह नाव ब्राह्मणको देदेवे ॥ २३ ॥ उस समय ऐसा कहे कि "हे वासुदेव ! जगत्के

नाथ सब भूतोंके हृदयमें स्थित और प्रणतके दुःख हरनेवाले, पापके समुद्रमें डूबतेहुए मुझको तारो" ॥ २४ ॥ उसके बाद नमस्कार करके ब्राह्मणोंको विदा करे और अन्य ब्राह्मणोंकोभी यथाशक्ति दक्षिणा देवे ॥ २५ ॥

स्वसृघाती तु बधिरो नरकान्ते प्रजायते । मूको भ्रातृवधे चैव तस्येयं निष्कृतिः स्मृता ॥ २६ ॥
सोऽपि पापविशुद्ध्यर्थं चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् । व्रतान्ते पुस्तकं दद्यात्सुवर्णपलसंयुतम् ॥ २७ ॥
इमम्मन्त्रं समुच्चार्य ब्रह्माणीं तां विसर्जयेत् । सरस्वति जगन्मातः शब्दब्रह्मादिदेवते ॥ २८ ॥
दुष्कर्मकरणापात्पात्पाहि मां परमेश्वरि । बालघाती च पुरुषो मृतवत्सः प्रजायते ॥ २९ ॥

बहिनका वध करनेवाला नरक भोगनेके बाद बहिरा होताहै और भाईका वध करनेवाला नरकके अन्तमें गूंगा होताहै; उनके लिये यह प्रायश्चित्त कहागया है ॥ २६ ॥ वह चान्द्रायणव्रत करके ४ भर सोना-सहित पुस्तक दान करे ॥ २७ ॥ यह कहकर सरस्वतीका विसर्जन करे कि " हे सरस्वती, जगत्की माता वेदकी देवता और परमेश्वरी मेरे दुष्कर्मसे मेरी रक्षा करो" ॥ २८-२९ ॥

ब्राह्मणोद्वाहनं चैव कर्त्तव्यं तेन शुद्धये । श्रवणं हरिवंशस्य कर्त्तव्यं च यथाविधि ॥ ३० ॥
महारुद्रजपं चैव कारयेच्च यथाविधि । षडङ्गैकादशै रुद्रै रुद्रः समभिधीयते ॥ ३१ ॥
रुद्रैस्तथैकादशभिर्महारुद्रः प्रकीर्तितः । एकादशभिरेतैस्तु अतिरुद्रश्च कथ्यते ॥ ३२ ॥
जुहुयाच्च दशांशेन पूर्वोक्ताज्याहुतीस्तथा । एकादश स्वर्णनिष्काः प्रदातव्या सदक्षिणाः ॥ ३३ ॥
पलान्येकादश तथा दद्याद्वित्तानुसारतः । अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति द्विजेभ्यो दक्षिणां दिशेत् ॥३४॥
स्नापयेद्दम्पती: पश्चान्मन्त्रैर्वरुणदैवतैः । आचार्याय प्रदेयानि वस्त्रालङ्करणानि च ॥ ३५ ॥

बालकवध करनेवालेके सब बालक मरजातेह, वह अपनी शुद्धिके लिये ब्राह्मणका विवाह करादेवे, विधिपूर्वक हरिवंश सुने और यथाविधि महारुद्रका जप करावे ॥ २९-३१ ॥ षडङ्गकी ११ रुद्रीका पाठ रुद्र कहाताहै, ११ रुद्रोंको अर्थात् १२१ पाठको महारुद्र कहतेहैं और ११ महारुद्रोंको अर्थात् १३३१ पाठको अतिरुद्र कहतेहैं ॥ ३१-३२ ॥ पूर्व कहेहुए पाठका दशांश होम घीसे करे, ४४ भर सोना अथवा शक्तिके अनुसार सोना दक्षिणा देवे और अन्य ब्राह्मणोंकोभी दक्षिणा दे ॥ ३३-३४ ॥ वरुणदेवताके मंत्रसे स्त्री और पुरुष दोनों स्नान करें और आचार्यको वस्त्र और भूषण देवें ॥ ३५ ॥

गोत्रहा पुरुषः कुष्ठी निर्वंशश्चोपजायते । स च पापविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यशतं चरेत् ॥
व्रतान्ते मेदिनीन्दत्त्वा शृणुयादथ भारतम् ॥ ३६ ॥

गोत्रवध करनेवाला पुरुष नरक भोगनेके बाद कोढ़ी और निर्वंश होताहै उसको चाहिये कि, उस पापसे शुद्ध होनेके लिये एकसौ प्राजापत्य व्रत करे और व्रतके अन्तमें भूमिदान देवे और महाभारत सुने ॥ ३६॥

स्त्रीहन्ता चातिसारी स्यादश्वत्थान् रोपयेद्दश । दद्याच्च शर्कराधेनुं भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥३७॥

स्त्रीवध करनेवालेको दूसरे जन्ममें अतिसाररोग होताहै, उसको चाहिये कि, पीपलके १० वृक्ष लगावे, सक्करकी गौदान करे और एकसौ ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ ३७ ॥

राजहा क्षयरोगी स्यादेषा तस्य च निष्कृतिः । गोभूहिरण्यमिष्टान्नजलवस्त्रप्रदानतः । घृतधेनुप्रदानेन तिलधेनुप्रदानतः । इत्यादिना क्रमेणैव क्षयरोगः प्रशाम्यति ॥ ३८ ॥

राजाका वध करनेवालेको जन्मान्तरमें क्षयी रोग होताहै, वह उस पापसे छूटनेके लिये क्रमसे गौ, भूमि, सोना, मिष्टान्न, जल, वस्त्र, घृतधेनु और तिलधेनु दान करे * ॥ ३८ ॥

रक्तार्बुदी वैश्यहन्ता जायते स च मानवः । प्राजापत्यानि चत्वारि सप्त धान्यानि चोत्सृजेत् ३९॥

वैश्यका वध करनेवाले मनुष्यको दूसरे जन्ममें रक्तार्बुद अर्थात् रक्तस्राव रोग होताहै, वह ४ प्राजापत्य व्रत करके सप्तधान्य दान देवे ॥ ३९ ॥

---

* बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र ८ अध्याय, ५२-६० श्लोक । गोबरसे भूमिको लीपकर उसपर वस्त्र और मृगचर्म अथवा तिलाश्रित कम्बलके ऊपर काली मृगछाला बिछादेवे; मृगछालापर ४ आढक कृष्णतिल रक्खे; उसके समीप उत्तर और १ आढ़कका बछड़ा बनावे; बछडेसहित गौको सब रत्नोंसे अलंकृत करे ॥ ५२-५४ ॥ उसका मुख गुडका, जलकम्बल (गलेका लम्बा चाम) सूत्रका, पीठ ताम्बेका, पाद ऊखके, नेत्र मोतीके, कान उत्तम पत्तेके, दांत फूलके, पूंछ फूलकी, मालाका और स्तन लैनूके बनावे ॥ ५५-५६ ॥ नारङ्गी, अनार, नारियल, बैर, आम, कैत, मणि और मोतीसे पूजा करे ॥ ५७ ॥ दो शुक्ल वस्त्रोंसे ढांपकर कमलसे पूजन करे; ब्राह्मण इस प्रकार श्रद्धापूर्वक धेनु बनाकर कांसकी दोहनीके सहित केशवके प्रसन्नताके लिये दान करे; एकबार ब्याईहुई गौके समान इसकोभी उत्तराभिमुख करे ॥ ५८-५९ ॥ इस प्रकार विधिपूर्वक तिलधेनु दान करके ब्राह्मण स्वयं सब पापोंसे मुक्त होकर पिता, पितामहादिको मुक्त करताहै ॥ ६०-६१ ॥

दण्डापतानकयुतः शूद्रहन्ता भवेन्नरः । प्राजापत्यं सकृच्चैव दद्याद्धेनुं सदक्षिणाम् ॥ ४० ॥

शूद्रवध करनेवाले मनुष्यको दूसरे जन्ममें दण्डके समान हाथपैरका तनाव होनेवाला मिरगी रोग होताहै, वह १ प्राजापत्य व्रत करके दक्षिणाके सहित १ गौ दान करे ॥ ४० ॥

कारूणां च वधे चैव रूक्षभावः प्रजायते । तेन तत्पापशुद्ध्यर्थं दातव्यो वृषभः सितः ॥ ४१ ॥

सोनार आदि कारीगरको वध करनेवालेके शरीरमें रूखापन होताहै, वह उस पापसे शुद्ध होनेके लिये शुक्ल बैल दान देवे ॥ ४१ ॥

सर्वकार्येष्वसिद्धार्थो गजघाती भवेन्नरः । प्रासादं कारयित्वा तु गणेशप्रतिमां न्यसेत् ॥ ४२ ॥
गणनाथस्य मन्त्रन्तु मन्त्री लक्षमितं जपेत् । कुलित्थशाकैः पुष्पैश्च गणशान्तिपुरस्सरम्॥ ४३ ॥

हाथीवध करनेवाले मनुष्यका दूसरे जन्ममें कोई काम सिद्ध नहीं होताहै, वह मन्दिर बनवाकर गणेशकी मूर्त्ति स्थापित करे, मन्त्रोंका जाननेवाला उस मन्दिरमें गणेशका १ लाख मन्त्र जपे और कुलथीके शाक और फूलोंसे गणेशकी शान्तिके लिये होम करे ॥ ४२-४३ ॥

उष्ट्रे विनिहते चैव जायते विकृतस्वरः । एतत्पापविशुद्ध्यर्थं दद्यात्कर्पूरकम्पलम् ॥ ४४ ॥

ऊंटका वध करनेवाला जन्मान्तरमें तोतला होताहै, वह उस पापसे शुद्ध होनेके लिये चारभर कपूर दान देवे ॥ ४४ ॥

अश्वे विनिहते चैव वक्रतुण्डः प्रजायते । शतं फलानि दद्याच्च चन्दनान्यघनुत्तये ॥ ४५ ॥

घोड़ावध करनेवालेका टेढ़ा मुख होताहै, वह एकसौ फल और चन्दन दान करे ॥ ४५ ॥

महिषीघातने चैव कृष्णगुल्मः प्रजायते । स्वशक्त्या च महीं दद्याद्रक्तवस्त्रद्वयन्तथा ॥ ४६ ॥

भैंसवध करनेवालेको जन्मान्तरमें काला गुल्म रोग होताहै, वह अपनी शक्तिके अनुसार भूमि और २ लाल वस्त्र दान देवे ॥ ४६ ॥

खरे विनिहते चैव खररोमा प्रजायते । निष्कत्रयस्य प्रकृतिं सम्प्रदद्याद्धिरण्मयीम् ॥ ४७ ॥

गदहावध करनेवालेके गदहेके समान रोएं होतेहैं, वह १२ भर सोनेकी गर्दभप्रतिमा बनाकर दान करे ॥ ४७ ॥

तरक्षौ निहते चैव जायते केकरेक्षणः । दद्याद्रत्नमयीं धेनुं स तत्पातकशान्तये ॥ ४८ ॥

तरक्षु मृगको वध करनेवालेकी टेढ़ी दृष्टि होतीहै, वह उस पापकी शान्तिके लिये रत्नकी गौ दान देवे ॥ ४८ ॥

शूकरे निहते चैव दन्तुरो जायते नरः । स दद्यात्तु विशुद्ध्यर्थं घृतकुम्भं सदक्षिणम् ॥ ४९ ॥

सूअरवध करनेवालेके दूसरे जन्ममें बड़े बड़े दांत होतेहैं, वह उस पापसे शुद्ध होनेके लिये दक्षिणाके सहित घीसे भराहुआ घड़ा दान देवे ॥ ४९ ॥

हरिणे निहते खञ्जः शृगाले तु विपादकः । अश्वस्तेन प्रदातव्यः सौवर्णपलनिर्मितः ॥ ५० ॥

हिरनवध करनेवाला लंगड़ा होताहै और सियारका वध करनेवाला जन्मान्तरमें पदहीन होताहै, वे दोनों चार चार भर सोनेका घोड़ा दान करें ॥ ५० ॥

अजाभिघातने चैव अधिकाङ्गः प्रजायते । अजा तेन प्रदातव्या विचित्रवस्त्रसंयुता ॥ ५१ ॥

बकरावध करनेवालेको जन्मान्तरमें अधिक अङ्ग होताहै, वह अनेक रङ्गके एक वस्त्र सहित बकरा दान करे ॥ ५१ ॥

उरभ्रे निहते चैव पाण्डुरोगः प्रजायते । कस्तूरिकापलन्दद्याद्ब्राह्मणाय विशुद्धये ॥ ५२ ॥

भेड़ावध करनेवालेको दूसरे जन्ममें पाण्डुरोग होताहै, वह अपनी शुद्धिके लिये ब्राह्मणको चारभर कस्तूरी दान देवे ॥ ५२ ॥

मार्जारे निहते चैव जायते पिङ्गलोचनः । पारावतं ससौवर्णं प्रदद्यान्निष्कमात्रकम् ॥ ५३ ॥

बिलारवध करनेवालेकी पीली आंख होतीहै, वह ४ भर सोनाका कबूतर दान करे ॥ ५३ ॥

शुकसारिकयोर्घाती नरः स्खलितवाग्भवेत् । सच्छास्त्रपुस्तकं दद्यात्स विप्राय सदक्षिणम् ॥ ५४ ॥

तोता अथवा मैनाका वध करनेवाला जन्मान्तरमें हेकलाकर बोलनेवाला होताहै, वह दक्षिणाके सहित उत्तम शास्त्रकी पुस्तक ब्राह्मणको देवे ॥ ५४ ॥

बकघाती दीर्घनासो दद्याद्गां धवलप्रभाम् । काकघाती कर्णहीनो दद्याद्गामसितप्रभाम् ॥ ५५ ॥

बकुलाके वध करनेवालेका बड़ा नाक होताहै, वह श्वेत गौ दान करे, काकवध करनेवाला दूसरे जन्ममें बहिरा होताहै वह काली गौ दान देवे ॥ ५५ ॥

हिंसाया निष्कृतिरियं ब्राह्मणे समुदाहृता । तदर्धार्द्धप्रमाणेन क्षत्रियादिष्वनुक्रमात् ॥ ५६ ॥

ये सब हिंसाओंके प्रायश्चित्त ब्राह्मणके लिये कहेगयेहैं, इससे आधा क्षत्रिय, चौथाई वैश्य और आठवां भाग पायश्चित्त शूद्र करे ॥ ५६ ॥

३ अध्याय ।

सुरापः श्यावदन्तः स्यात्प्राजापत्यान्तरन्तथा । शर्करायास्तुलाः सप्त दद्यात्पापविशुद्धये ॥ १ ॥
जपित्वा तु महारुद्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः । ततोऽभिषेकः कर्त्तव्यो मन्त्रैर्वरुणदैवतैः ॥ २ ॥

सुरा पीनेवालेके दूसरे जन्ममें काले दांत होतेहैं, वह उस पापसे शुद्ध होनेक लिये प्राजापत्य व्रत करके ७ पसेरी सक्कर दान देवे; रुद्रीके १२१ जप कराके घी और तिलसे दशांश होम करे और वरुणदेवताके मन्त्रोंसे अभिषेक करे ॥ १-२ ॥

मद्यपो रक्तपित्ती स्यात्स दद्यात्सर्पिषो घटम् । मधुनोऽर्धघटं चैव सहिरण्यं विशुद्धये ॥ ३ ॥

मद्य पीनेवालेको रक्तपित्त रोग होताहै, वह अपनी शुद्धिके लिये घीसे भराहुआ घड़ा और सोनाके सहित आधा घड़ा मधु दान देवे ॥ ३ ॥

अभक्ष्यभक्षणे चैव जायते कृमिकोदरः । यथावत्तेन शुद्ध्यर्थमुपोष्यं भीष्मपञ्चकम् ॥ ४ ॥

अभक्ष्य भक्षण करनेवालेके पेटमें कीड़े उत्पन्न होतेहैं, वह अपनी शुद्धिके लिये कार्तिक सुदी ११ से कार्तिक सुदी १५ तक ५ दिन यथावत् उपवास करे ॥ ४ ॥

उदक्यावीक्षितम्भुक्त्वा जायते कृमिलोदरः । गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ ५ ॥

रजस्वला स्त्रीका देखाहुआ पदार्थ भोजन करनेवालेको कृमिलोदर रोग होताहै, वह गोमूत्र और यवका काढ़ा पीकर ३ रात रहनेसे शुद्ध होताहै ॥ ५ ॥

भुक्त्वा चास्पृश्यसंस्पृष्टं जायते कृमिलोदरः । त्रिरात्रं समुपोष्याथ स तत्पापात्प्रमुच्यते ॥ ६ ॥

नहीं छूनेयोग्य मनुष्यका छुआहुआ अन्न खानेवालेको कृमिलोदर रोग होताहै, वह ३ रात उपवास करनेपर उस पापसे छूटताहै ॥ ६ ॥

परान्नविघ्नकरणादजीर्णमभिजायते । लक्षहोमं स कुर्वीत प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥ ७ ॥

पराये अन्नके भोजनमें विघ्न करनेवालेको जन्मान्तरमें अजीर्ण रोग होताहै, वह विधिपूर्वक गायत्री मंत्रसे १ लाख आहुति देवे ॥ ७ ॥

मन्दोदराग्निर्भवति सति द्रव्ये कदन्नदः । प्राजापत्यत्रयं कुर्याद्भोजयेच्च शतन्द्विजान् ॥ ८ ॥

धन रहनेपर भी कुत्सित अन्न दान देनेवाले मनुष्यके उदरकी आग मन्द होतीहै, वह ३ प्राजापत्य व्रत करके १०० ब्राह्मणोंको खिलावे ॥ ८ ॥

विषदः स्याच्छर्दिरोगी दद्याद्दश पयस्विनीः । मार्गहा पादरोगी स्यात्सोऽश्वदानं समाचरेत् ॥ ९ ॥

विष देनेवालेको वमान्तका रोग होताहै, वह दूध देनेवाली १० गौ दान देवे; मार्ग नष्ट करनेवालेके पैरोंमें रोग होताहै, वह घोड़ा दान करे ॥ ९ ॥

पिशुनो नरकस्यान्ते जायते श्वासकासवान् । घृतं तेन प्रदातव्यं सहस्रपलसम्मितम् ॥ १० ॥

चुगुलको नरक भोगनेके पश्चात् श्वास कास रोग होताहै, वह ४ हजार भर घी दान देवे ॥ १० ॥

धूर्त्तोऽपस्माररोगी स्यात्सतत्पापविशुद्धये । ब्रह्मकूर्चत्रयं कृत्वा धेनुं दद्यात्सदक्षिणाम् ॥ ११ ॥

धूर्तको मिरगी रोग होताहै, उसको उचित है कि, उस पापसे शुद्ध होनेके लिये ३ ब्रह्मकूर्च पान करके क्षिणाके सहित दुग्धवती गौ दान करे ॥ ११ ॥

शूली परोपतापेन जायते तत्प्रमोचने । सोऽन्नदानम्प्रकुर्वीत तथा रुद्रं जपेन्नरः ॥ १२ ॥

परको दुःख देनेवाले मनुष्यको जन्मान्तरमें शूल रोग होताहै, वह उसको छुड़ानेके लिये अन्न दान और रुद्रका जप करे ॥ १२ ॥

दावाग्निदायकश्चैव रक्तातीसारवान्भवेत् । तेनोदपानं कर्त्तव्यं रोपणीयस्तथा वटः ॥ १३ ॥

वनमें आग लगानेवालेको रक्तातिसार रोग होताहै, वह पानीशाला नियतकरे और वटका वृक्ष लगावे ॥ १३

सुरालये जले वापि शकृन्मूत्रं करोति यः । गुदरोगो भवेत्तस्य पापरूपः सुदारुणः ॥ १४ ॥
मासं सुरार्चनेनैव गोदानद्वितयेन तु । प्राजापत्येन चैकेन शाम्यन्ति गुदजा रुजः ॥ १५ ॥

जो मनुष्य देवमन्दिर अथवा जलमें विष्ठा मूत्र त्याग करताहै उसको उस पापसे भगन्दर, ववासीर आदि दारुण गुदारोग होतेहैं ॥ १४ ॥ १ मासतक देवपूजन, २ गौ दान और १ प्राजापत्य व्रत करनेसे गुदारोग शान्त होताहै ॥ १५ ॥

गर्भपातनजा रोगा यकृत्प्लीहजलोदराः। तेषां प्रशमनार्थाय प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम्॥ १६॥
एतेषु दद्याद्विप्राय जलधेनुं विधानतः। सुवर्णरूप्यताम्राणां पलत्रयसमन्विताम्॥ १७॥

स्त्रीका गर्भ गिरानेवालेको यकृत्, प्लीहा और जलोदर रोग होताहै, उनके शमनके लिये यह प्रायश्चित्त कहागयाहै ॥ १६ ॥ चार चार भर सोना, रूपा और ताम्बाके सहित जलधेनु विधिपूर्वक वह ब्राह्मणको देवे ॥ १७ ॥

प्रतिमाभंगकारी च अप्रतिष्ठः प्रजायते। संवत्सरत्रयं सिंचेदश्वत्थम्प्रतिवासरम्॥ १८॥
उद्वाहयेत्तमश्वत्थं स्वगृह्योक्तविधानतः। तत्र संस्थापयेद्देवं विघ्नराजं सुपूजितम्॥ १९॥

प्रतिमाभंग करनेवाला मनुष्य दूसरे जन्ममें प्रतिष्ठासे हीन होताहै, उस समय उसको चाहिये कि ३ वर्षतक प्रतिदिन पीपलके वृक्षको सींचे और स्वगृह्योक्त विधिसे पीपलके वृक्षका विवाह करादेवे और वहां गणेशकी स्थापना करके पूजा करे ॥ १८-१९ ॥

दुष्टवादी खण्डितः स्यात्स वै दद्याद्द्विजातये। रूप्यं पलद्वयं दुग्धं घटद्वयसमन्वितम्॥ २०॥

दुष्ट वचन बोलनेवाला अंगहीन होताहै वह २ घड़े दूध सहित ८ भर रूपा ब्राह्मणको दान देवे ॥२०॥

खल्वाटः परनिन्दावान्धेनुं दद्यात्सकांचनाम्। परोपहासकृत्काणः स गां दद्यात्समौक्तिकाम्॥२१॥

परकी निन्दा करनेवाला गंजा होताहै, वह सोनासहित दुग्धवती गौदान करे और अन्यका उपहास करनेवाला काणा होताहै, वह मोतीसहित गौ दान करे ॥ २१ ॥

सभायाम्पक्षपाती च जायते पक्षघातवान्। निष्कत्रयमितं हेम स दद्यात्सत्यवर्त्तिनम्॥ २२॥

सभामें पक्षपात करनेवालेको पक्षाघात रोग होताहै, उसको उचित है कि सत्यपथवर्त्ती ब्राह्मणको १२ भर सोना दान देवे ॥ २२ ॥

४ अध्याय।

कुलघ्नो नरकस्यान्ते जायते विप्रहेमहृत्। स तु स्वर्णशतं दद्यात्कृत्वा चान्द्रायणत्रयम्॥ १॥
औदुम्बरी ताम्रचौरो नरकान्ते प्रजायते। प्राजापत्यं स कृत्वात्र ताम्रं पलशतन्दिशेत्॥ २॥
कांस्यहारी च भवति पुण्डरीकसमङ्कितः। कांस्यं पलशतन्दद्यादलंकृत्य द्विजातये॥ ३॥
रीतिहृत्पिङ्गलाक्षः स्यादुपोष्य हरिवासरम्। रीतिरूपलशतन्दद्यादलंकृत्य द्विजं शुभम्॥ ४॥
मुक्ताहारी च पुरुषो जायते पिङ्गमूर्द्धजः। मुक्ताफलशतं दद्यादुपोष्य स विधानतः॥ ५॥
त्रपुहारी च पुरुषो जायते नेत्ररोगवान्। उपोष्य दिवसं सोपि दद्यात्पलशतं त्रपु॥ ६॥
सीसहारी च पुरुषो जायते शीर्षरोगवान्। उपोष्य दिवसन्दद्याद्घृतधेनुं विधानतः॥ ७॥

ब्राह्मणका सोना चोरानेवाला नरक भोगनेके बाद वंशहीन होताहै, वह ३ चान्द्रायण व्रत करके एकसौ सुवर्ण ※ दान करे ॥ १ ॥ ताम्बा चोरनेवालेको नरक भोगनेके बाद उदम्बररोग होताहै अर्थात् देहमें गांठ पड़तीहै, वह प्राजापत्य व्रत करके ४०० भर ताम्बा दान करे ॥ २ ॥ कांसे चोरानेवालेको पुण्डरीक रोग होताहै अर्थात् देहमें चकत्ते पड़जातेहैं, वह ब्राह्मणको भूषणादिसे अलंकृत करके ४०० भर कांसा दान देवे ॥ ३ ॥ पीतल चोरानेवालेके पीले नेत्र होतेहैं, वह एकादशीके दिन उपवास करनेके बाद सुपात्र ब्राह्मणको अलंकृत करके ४०० भर पीतल दान करे ॥ ४ ॥ मोती चोरानेवालेके पीले केश होतेहैं, वह विधिपूर्वक उपवास करके १०० मोती दान करे ॥५॥ रांगा चोरानेवालेके नेत्रमें रोग होताहै, वह एक दिन उपवास करके ४०० भर रांगा दान करे ॥ ६ ॥ सीसा चोरानेवाले पुरुषके माथेमें रोग होताहै, वह १ दिन उपवास करके विधिपूर्वक घृतधेनु दान करे ॥ ७ ॥

दुग्धहारी च पुरुषो जायते बहुमूत्रकः। स दद्याद् दुग्धधेनुं च ब्राह्मणाय यथाविधि॥ ८॥
दधिचौर्येण पुरुषो जायते मदवान्यतः। दधिधेनुः प्रदातव्या तेन विप्राय शुद्धये॥ ९॥
मधुचौरस्तु पुरुषो जायते नेत्ररोगवान्। स दद्यान्मधुधेनुं च समुपोष्य द्विजायते॥ १०॥
इक्षोर्विकारहारी च भवेदुदरगुल्मवान्। गुडधेनुः प्रदातव्या तेन तद्दोषशान्तये॥ ११॥

दूध चोरानेवाले पुरुषको बहुमूत्र रोग होताहै, वह ब्राह्मणको विधिपूर्वक दुग्धधेनु दान देवे ॥ ८ ॥ दही चोरानेवाला पुरुष मदान्ध होताहै, वह उस पापसे शुद्ध होनेके लिये ब्राह्मणको दधिधेनु दान करे ॥९॥ मधु चोरानेवाले पुरुषके नेत्रमें रोग होताहै, वह १ उपवास करके ब्राह्मणको मधुधेनु देवे ॥ १० ॥ ऊखका विकार रस, गुड, आदि चोरानेवालेके पेटमें गुल्मरोग होताहै, वह उस दोषकी शान्तिके लिये गुडधेनु दान करे ॥ ११ ॥

※ ८० रत्ती सोनाका १ सुवर्ण होताहै।

लोहहारी च पुरुषः कर्बुरांगः प्रजायते । लोहं पलशतन्दद्यादुपोष्य स तु वासरम् ॥ १२ ॥
तैलचौरस्तु पुरुषो भवेत्कण्ड्वादिपीडितः । उपोष्य स तु विप्राय दद्यात्तैलघटद्वयम् ॥ १३ ॥

लोहा चोरानेवाला पुरुष कबरा होताहै, वह एक दिन उपवास करके ४०० भर लोहा दान करे ॥ ॥ १२ ॥ तेल चोरानेवाले पुरुषको खुजली आदि रोग होताहै वह १ दिन उपवास करके २ घड़े तेल दान करे ॥ १३ ॥

आमान्नहरणाच्चैव दन्तहीनः प्रजायते । स दद्यादश्विनौ हेम्न निष्कद्वयविनिर्मितौ ॥ १४ ॥
पक्वान्नहरणे चैव जिह्वारोगः प्रजायते । गायत्र्याः स जपेल्लक्षं दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥ १५ ॥
फलहारी च पुरुषो जायते व्रणिताङ्गुलिः । नानाफलानामयुतं स दद्याच्च द्विजन्मने ॥ १६ ॥
ताम्बूलहरणाच्चैव श्वेतोष्ठः सम्प्रजायते । सदक्षिणां प्रदद्याच्च विद्रुमस्य द्वयं वरम् ॥ १७ ॥
शाकहारी च पुरुषो जायते नीललोचनः । ब्राह्मणाय प्रदद्याद्वै महानीलमणिद्वयम् ॥ १८ ॥
कन्दमूलस्य हरणाद्ध्रस्वपाणिः प्रजायते । देवतायतनं कार्य्यमुद्यानं तेन शक्तितः ॥ १९ ॥

कच्चा अन्न चोरानेवाला दांतोंसे हीन होताहै, वह ८ भर सोनेकी अश्विनीकुमारकी प्रतिमा बनाकर दान करे ॥ १४ ॥ पकेहुए अन्नको चोरानेवालेकी जीभमें रोग होताहै, वह १ लाख गायत्रीका जप करके घी और तिलसे दशांश होम करे ॥१५॥फल चोरानेवाले पुरुषकी अङ्गुलियोंमें घाव होताहै, वह ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके १० हजार फल दान देवे ॥१६॥ पान चोरानेवालेका ओठ सफेद होताहै, वह दक्षिणाके सहित २ उत्तम मूंगा दान करे ॥ १७ ॥ शाक चोरानेवाले पुरुषकी आंख काली होतीहै, वह ब्राह्मणको २ महानील-मणि दान देवे ॥ १८ ॥ कन्द तथा मूल चोरानेवालेके हाथ छोटे होतेहैं, वह अपनी शक्तिके अनुसार देवमन्दिर बनवावे और बाग लगावे ॥ १९ ॥

सौगन्धिकस्य हरणाद् दुर्गन्धाङ्गः प्रजायते । स लक्षमेकं पद्मानां जुहुयाज्जातवेदसि ॥ २० ॥
दारुहारी च पुरुषः खिन्नपाणिः प्रजायते । स दद्याद्विदुषे शुद्ध्यै काश्मीरजपलद्वयम् ॥ २१
विद्यापुस्तकहारी च किल मूकः प्रजायते । न्यायेतिहासं दद्यात्स ब्राह्मणाय सदक्षिणम् ॥ २२ ॥
वस्त्रहारी भवेत्कुष्ठी सम्प्रदद्यात्प्रजापतिम् । हेमनिष्कमितं चैव वस्त्रयुग्मं द्विजातये ॥ २३ ॥
ऊर्णाहारी लोमशः स्यात्स दद्यात्कम्बलान्वितम् । स्वर्णनिष्कमितं हेम वह्निं दद्याद्विजातये ॥ २४॥
पट्टसूत्रस्य हरणान्निर्लोमा जायते नरः । तेन धेनुः प्रदातव्या विशुद्ध्यर्थं द्विजन्मने ॥ २५॥
औषधस्यापहरणे सूर्यावर्त्तः प्रजायते । सूर्यायार्घ्यः प्रदातव्यो माषं देयं च काञ्चनम् ॥ २६ ॥
रक्तवस्त्रप्रवालादिहारी स्याद्रक्तवातवान् । सवस्त्रां महिषीन्दद्यान्मणिरागसमन्विताम् ॥ २७ ॥

सुगन्ध युक्त वस्तु चोरानेवालेके शरीरसे दुर्गन्ध आतीहै, वह अग्निमें १ लाख कमलोंका होम करे ॥ ॥ २० ॥ काठ चोरानेवाले पुरुषके हाथ पतले होतेहैं, वह अपनी शुद्धिके लिये विद्वान् ब्राह्मणको ८ भर केशर दान देवे ॥ २१ ॥ विद्याकी पुस्तक चोरानेवाला निश्चय करके गूंगा होताहै वह ब्राह्मणको दक्षिणाके सहित न्याय और इतिहासकी पुस्तक दान करे ॥ २२ वस्त्र चोरानेवाला कोढी होताहै, वह ब्राह्मणको ४ भर सोनेकी ब्रह्माकी प्रतिमा और २ वस्त्र दान करे ॥२३॥ ऊन चोरानेवालेके शरीरमें बहुत रोवें होतेहैं, वह १ कम्बल और चार भर सोनेकी अग्निकी प्रतिमा ब्राह्मणको देवे ॥ २४ ॥ रेशमके सूतको चोरानेवालेके शरीरमें रोवें नहीं होतेहैं, वह शुद्ध होनेके लिये ब्राह्मणको दुग्धवती गौ देवे ॥२५॥ औषध चोरानेवालेको अध कपाली रोग होताहै, वह सूर्यको अर्घ देकर एक मासा सोना दान करे ॥ २६ ॥ लाल वस्त्र और मूंगा आदि लाल पदार्थ चोरानेवालेको वातरक्त रोग होताहै, वह रक्तमणि और वस्त्रके सहित भैंस दान देव ॥ २७ ॥

विप्ररत्नापहारी चाप्यनपत्यः प्रजायते । तेन कार्यं विशुद्ध्यर्थं महारुद्रजपादिकम् ॥ २८ ॥
मृतवत्सोदितः सर्वो विधिरत्र विधीयते । दशांशहोमः कर्त्तव्यः पलाशेन यथाविधि ॥ २९ ॥
देवस्वहरणाच्चैव जायते विविधो ज्वरः । ज्वरो महाज्वरश्चैव रौद्रो वैष्णव एव च ॥३०॥
ज्वरे रौद्रं जपेत्कर्णे महारुद्रम्महाज्वरे । अतिरौद्रं जपेद्रौद्रे वैष्णवे तद्द्वयं जपेत् ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणका रत्न चोरानेवाला निःसन्तान होताहै, वह उस पापसे शुद्ध होनेके लिये महारुद्रका जप अर्थात् १३१ रुद्रीका पाठ करे ॥ २८ ॥ मृतवत्साके लिये जो (२ अध्याय—२९–३५ श्लोकमें) विधान कहचुके हैं उसको करे और पलाशकी लकड़ीसे दशांश होम करे ॥ २९ ॥ देवताका द्रव्य चोरानेवालेको ज्वर महाज्वर, रौद्रज्वर और वैष्णवज्वर होताहै ॥ ३० ॥ साधारण ज्वरमें रोगीके निकट रुद्रीके ११ पाठ, महाज्वरमें रुद्रीके १२१ पाठ, रौद्रज्वरमें १३३१ पाठ और वैष्णवज्वरमें महारुद्र और अतिरुद्र दोनोंका अनुष्ठान अर्थात् रुद्रीके १४५२ पाठ करावे ॥ ३१ ॥

नानाविधद्रव्यचोरो जायते ग्रहणीयुतः । तेनान्नोदकवस्त्राणि हेम देयं च शक्तितः ॥ ३२ ॥

नानाप्रकारके द्रव्यको चोरानेवालेको जन्मान्तरमें संग्रहणीरोग होताहै, वह उस समय अपनी शक्तिके अनुसार अन्न, जल,वस्त्र और सोना दान करे ॥ ३२ ॥

५ अध्याय ।

मातृगामी भवेद्यस्तु लिङ्गं तस्य विनश्यति । चाण्डालीगमने चैव हीनकोशः प्रजायते ॥ १ ॥
तस्य प्रतिक्रियां कर्तुं कुम्भमुत्तरतो न्यसेत् । कृष्णवस्त्रसमाच्छन्नं कृष्णमाल्यविभूषितम् ॥ २ ॥
तस्योपरि न्यसेद्देवं कांस्यपात्रे धनेश्वरम् । सुवर्णनिष्कषट्केन निर्मितं नरवाहनम् ॥ ३ ॥
यजेत्पुरुषसूक्तेन धनदं विश्वरूपिणम् । अथर्ववेदविद्विप्रो ह्याथर्वणं समाचरेत् ॥ ४ ॥
सुवर्णपुत्तिकां कृत्वा निष्कविंशतिसंख्यया । दद्याद्विप्राय सम्पूज्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन् ॥ ५ ॥
निधीनामधिपो देवः शङ्करस्य प्रियः सखा । सौम्याशाधिपतिः श्रीमान्मम पापं व्यपोहतु ॥ ६ ॥
इमम्मन्त्रं समुच्चार्य आचार्याय यथाविधि । दद्याद्देवं हीनकोशं लिङ्गनाशे विशुद्धये ॥ ७ ॥

मातासे गमन करनेवालेका लिङ्ग जन्मान्तरमें नष्ट होजाताहै और चाण्डालीसे गमन करनेवाला वीर्यहीन होताहै ॥ १ ॥ उस पापकी निवृत्तिके लिये पूजाके स्थानके उत्तर भागमें १ कलश स्थापित करके उसको काले वस्त्र और काले फूलोंकी मालासे सुशोभित करे ॥ २ ॥ उसके ऊपर कांसेके पात्रमें २४ भर सोनेकी बनीहुई नरवाहन कुबेरकी प्रतिमा स्थापन करे ॥ ३ ॥ सर्वरूप कुबेर देवताका पुरुषसूक्तसे पूजन करे और अथर्ववेदी ब्राह्मणसे अथर्वणवेदका पाठ करावे ॥ ४ ॥८० भर सोनेकी प्रतिमा बनाकर उसका पूजन करे और मैं निष्पाप होऊं ऐसा कहके वह प्रतिमा ब्राह्मणको दे देवे ॥५॥ ऐसा कहे कि हे धनका स्वामी ! हे शङ्करका प्रिय सखा ! हे उत्तर दिशाका स्वामी ! श्रीमान् कुबेर ! मेरे पापको दूर करो ॥ ६ ॥ ऐसा मन्त्र कहकर कोशहीन वा लिङ्गेंद्रियहीनके अपराधसे मुक्त होनेके लिये देवप्रतिमाको विधिपूर्वक आचार्यको दे देवे ॥ ७ ॥

गुरुजायाभिगमनान्मूत्रकृच्छ्रः प्रजायते । तेनापि निष्कृतिः कार्या शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ८ ॥
स्थापयेत्कुंभमेकन्तु पश्चिमायां शुभे दिने । नीलवस्त्रसमाच्छन्नं नीलमाल्यविभूषितम् ॥ ९ ॥
तस्योपरि न्यसेद्देवं ताम्रपात्रे प्रचेतसम् । सुवर्णनिष्कषट्केन निर्मितं यादसाम्पतिम् ॥ १० ॥
यजेत्पुरुषसूक्तेन वरुणं विश्वरूपिणम् । सामविद्ब्राह्मणस्तत्र सामवेदं समाचरेत् ॥ ११ ॥
सुवर्णपुत्तिकां कृत्वा निष्कविंशतिसंख्यया । दद्याद्विप्राय सम्पूज्य निष्पापोहमिति ब्रुवन् ॥ १२ ॥
यादसामधिपो देवो विश्वेषामपि पावनः । संसाराब्धौ कर्णधारो वरुणः पावनोस्तु मे ॥ १३ ॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य आचार्याय यथाविधि । दद्याद्देवमलंकृत्य मूत्रकृच्छ्रप्रशान्तये ॥ १४ ॥

गुरुकी पत्नीसे गमन करनेवाले पुरुषको मूत्रकृच्छ्र रोग होताहै, वह शास्त्रोक्तविधिसे नीचे लिखेहुए प्रायश्चित्तको करे ॥ ८ ॥ शुभ दिनमें पूजाके स्थानके पश्चिम भागमें नीलवस्त्र और नील फूलोंसे शोभित करके एक कलश स्थापित करे ॥ ९ ॥ कलशके ऊपर ताम्बेके पात्रमें २४ भर सोनेकी जलके स्वामी वरुण देवताकी प्रतिमा रक्खे ॥ १० ॥ विश्वरूपी वरुण देवताका पुरुषसूक्त मन्त्रोंसे पूजन करे और सामवेदी ब्राह्मणसे सामवेदका पाठ करावे ॥ ११ ॥ ८० भर सोनेकी (वरुणकी) एक प्रतिमा बनवाकर पूजा करे और मैं निष्पाप होऊं ऐसा कहके वह प्रतिमा ब्राह्मणको देदेवे ॥ १२ ॥ उस समय ऐसा कहे कि हे जलके स्वामी ! विश्वको पवित्र करनेवाले संसार समुद्रसे पार करनेवाले वरुण देवता ! मुझको पवित्र करो ॥ १३ ॥ इस मन्त्रको पढकर मूत्रकृच्छ्ररोगकी शान्तिके लिये पुष्पादिसे भूषित देवप्रतिमाको विधिपूर्वक आचार्यको देदेवे ॥ १४ ॥

स्वसुतागमने चैव रक्तकुष्ठम्प्रजायते । भगिनीगमने चैव पीतकुष्ठम्प्रजायते ॥ १५ ॥
तस्य प्रतिक्रियां कर्तुं पूर्वतः कलशं न्यसेत् । पीतवस्त्रसमाच्छन्नं पीतमाल्यविभूषितम् ॥ १६ ॥
तस्योपरि न्यसेत्स्वर्णपात्रे देवं सुरेश्वरम् । सुवर्णनिष्कषट्केन निर्मितं वज्रधारिणम् ॥ १७ ॥
यजेत्पुरुषसूक्तेन वासवं विश्वरूपिणम् । यजुर्वेदं तत्र साम ऋग्वेदं च समाचरेत् ॥ १८ ॥
सुवर्णपुत्तिकां कृत्वा सुवर्णदशकेन तु । दद्याद्विप्राय सम्पूज्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन् ॥ १९ ॥
देवानामधिपो देवो वज्री विष्णुनिकेतनः । शतयज्ञः सहस्राक्षः पापं मम निकृन्ततु ॥ २० ॥
इमम्मन्त्रं समुच्चार्य आचार्याय यथाविधि । दद्याद्देवं सहस्राक्षं स्वपापस्यापनुत्तये ॥ २१ ॥

पुत्रीसे गमन करनेवाला जन्मान्तरमें रक्तकुष्ठी और बहिनसे गमन करनेवाला पीतकुष्ठी होताहै ॥ १५॥ उसके प्रायश्चित्तके लिये पूजाके स्थानसे पूर्वभागमें कलश रक्खे, कलशको पीले वस्त्रसे ढांककर पीले

फूलोंकी मालाओंसे शोभित करे ॥ १६ ॥ कलशके ऊपर सोनेके पात्रमें २४ भर सोनेकी वज्रधारी इन्द्र-देवताकी मूर्ति स्थापित करे ॥ १७ ॥ विश्वरूपी इन्द्रदेवको पुरुषसूक्तसे पूजा करे और वहां यजुर्वेद, साम-वेद और ऋग्वेदका पाठ करावे ॥ १८ ॥ १० भर सोनेकी प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा करे और मैं निष्पाप होऊं ऐसा कहताहुआ वह प्रतिमा ब्राह्मणको देदेवे ॥ १९ ॥ उस समय ऐसा कहे कि हे देवता-ओंका स्वामी वज्र धारण करनेवाला विष्णुनिकेतनसौं यज्ञ करनेवाला तथा सहस्र नेत्रवाला इन्द्र मेरे पापको नष्ट करो ॥ २० ॥ अपने पापके नाशके लिये इस मन्त्रको पढ़कर इन्द्रकी प्रतिमा विधिपूर्वक आचार्य-को देदेवे ॥ २१ ॥

भ्रातृभार्याभिगमनाद्गलत्कुष्ठं प्रजायते । श्ववश्रूगमने चैव कृष्णकुष्ठं प्रजायते ॥ २२ ॥
तेन कार्यं विशुध्यर्थं प्रागुक्तस्यार्द्धमेव हि । दशांशहोमः सर्वत्र घृताक्तैः क्रियते तिलैः ॥ २३ ॥

भाईकी स्त्रीसे गमन करनेवाला जन्मान्तरमें गलत्कुष्ठी और पतोहूसे गमन करनेवाला कालाकुष्ठी होताहै ॥ २२ ॥ ये दोनों पापी अपनी शुद्धिके लिये पहिले कहेहुए पुत्रीगमन और बहिनसे गमन करनेके प्रायश्चित्तका आधा प्रायश्चित्त करें; सब प्रायश्चित्तोंमें घीमिलेहुए तिलोंसे दशांश होम करना चाहिये ॥ २३ ॥

यदगम्याभिगमनाज्जायते ध्रुवमण्डलम् । कृत्वा लोहमयीं धेनुं पलषष्टिप्रमाणतः ॥ २४ ॥
कार्पासभारसंयुक्तां कांस्यदोहां सवत्सिकाम् । दद्याद्विप्राय विधिवदिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ २५ ॥
सुरभी वैष्णवी माता मम पापं व्यपोहतु । मातुः सपत्निगमने जायते चाश्मरी गदः ॥ २६ ॥

चाण्डाली आदि अगम्या स्त्रीसे गमन करनेवालेके शरीरमें चकत्ते पडतेहैं, वह ६० गण्डेभर लोहेकी गौ बनवावे.एक भार कपास कांसेकी दोहिनी और बछड़े सहित वह गौ उस समय यह मन्त्र पढे कि "हे वैष्णवी गौमाता मेरे पापको नष्ट करो" २४—२६ ॥

स तु पापविशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् । दद्याद्विप्राय विदुषे मधुधेनुं यथोदितम् ॥ २७ ॥
तिलद्रोणशतं चैव हिरण्येन समन्वितम् । पितृष्वस्राभिगमनाद्दक्षिणांसव्रणी भवेत् ॥ २८ ॥
तेनापि निष्कृतिः कार्या अजादानेन शक्तितः । मातुलान्यान्तु गमने पृष्ठकुब्जः प्रजायते ॥ २९ ॥
कृष्णाजिनप्रदानेन प्रायश्चित्तं समाचरेत् । मातृष्वस्राभिगमने वामांगे व्रणवान्भवेत् ॥ ३० ॥
तेनापि निष्कृतिः कार्या सम्यग्दासीप्रदानतः । मृतभार्याभिगमने मृतभार्यः प्रजायते ॥ ३१ ॥

सौतेली मातासे गमन करनेवालेको जन्मान्तरमें पथरीरोग होताहै ॥ २६ ॥ वह उस पापसे शुद्ध होनेके लिये यह प्रायश्चित्त करे, विद्वान् ब्राह्मणको विधिपूर्वक मधुधेनु और सोनाके सहित १०० द्रोण * तिल दान देवे ॥ २७—२८ ॥ फूफूसे गमन करनेवालेके शरीरके दहिने भागमें फोडे होतेहैं, वह अपनी शक्तिके अनुसार बकरियोंके दानसे प्रायश्चित्त करे ॥२८—२९॥ मामीसे गमन करनेवाला कुबड़ा होताहै वह काले मृगचर्मके दानसे प्रायश्चित्त करे ॥ २९-३० ॥ मौसीसे गमन करनेवालेके शरीरके बायें अङ्गमें फोड़े होतेहैं, वह भली प्रकार दासीदानसे प्रायश्चित्त करे ॥ ३०—३१ ॥

तत्पातकविशुद्ध्यर्थं द्विजमेकं विवाहयेत् । सगोत्रस्त्रीप्रसङ्गेन जायते च भगन्दरः ॥ ३२ ॥
तेनापि निष्कृतिः कार्या महिषीदानयत्नतः । तपस्विनप्रसङ्गेन प्रमेही जायते नरः ॥ ३३ ॥
मासं रुद्रजपः कार्यो दद्याच्छक्त्या च काञ्चनम् । दीक्षितस्त्रीप्रसङ्गेन जायते दुष्टरक्तदृक् ॥ ३४ ॥
स पातकविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यानि षट् चरेत् । स्वजातिजायागमने जायते हृदयव्रणी ॥ ३५ ॥
तत्पापस्य विशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यद्वयं चरेत् । पशुयोनौ च गमने मूत्राघातः प्रजायते ॥ ३६ ॥

विधवास्त्रीसे गमन करनेवालेकी स्त्रियां मरजाया करतीहैं वह उस पापसे शुद्ध होनेके लिये एक ब्राह्मणका विवाह करादेवे ॥ ३१—३२ ॥ अपने गोत्रकी स्त्रीसे गमन करनेवालेको दूसरे जन्ममें भगन्दर रोग होताहै, वह यत्नपूर्वक भैंसियोंके दानसे प्रायश्चित्त करे ॥ ३२—३३ ॥ तपस्विनीस्त्रीसे गमन करनेवाले मनुष्यको प्रमेह रोग होताहै, वह एक महीनेतक रुद्रीका पाठ करके यथाशक्ति सोना दान देवे ॥ ३३–३४ ॥ दीक्षितकी स्त्रीसे गमन करनेवालेके नेत्र रोगसे लाल होजाते हैं,वह उस पापसे शुद्ध होनेके लिये ६ प्राजापत्य व्रत करे ॥ ३४–३५ ॥ अपनी जातिकी स्त्रीसे गमन करनेवालेके हृदयमें फोड़े हुआ करते हैं, वह उस पापसे शुद्ध होनेके लिये २ प्राजापत्य व्रत करे ॥ ३५—३६ ॥

---

* १६ गण्डे भरका एक प्रस्थ और १६ प्रस्थका १ द्रोण होताहै ।

तिलपात्रद्वयं चैव दद्यादात्मविशुद्धये। अश्वयोनौ च गमनाद् भुजस्तम्भः प्रजायते ॥ ३७ ॥
सहस्रकलशैः स्नानं मासं कुर्याच्छिवस्य च। एते दोषा नराणां स्युर्नरकान्ते न संशयः ॥ ३८ ॥

पशुसे गमन करनेवालेको मूत्राघात रोग होताहै, वह अपनी शुद्धिके लिये तिलसे भरकर २ पात्र दान करे ॥ ३६-३७ ॥ घोड़ीसे गमन करनेवालेको भुजस्तम्भ रोग होताहै अर्थात् बाहु अकड़ जाती है, वह एक महीने तक एक हजार कलशोंसे शिवको स्नान करावे ॥ ३७-३८ ॥

स्त्रीणामपि भवन्त्येते तत्तत्पुरुषसङ्गमात् ॥ ३९ ॥

पूर्वोक्त सब दोष मनुष्योंको नरक भोगनेके बाद निःसन्देह होतेहैं जिस स्त्रीके प्रसङ्गसे जो रोग पुरुषको होताहै उस पुरुषसे प्रसङ्ग करनेवाली स्त्रीको भी जन्मान्तरमें वही रोग होताहै ॥३८-३९ ॥

वानप्रस्थप्रकरण २४.

वानप्रस्थका धर्म १.

(१) मनुस्मृति-६ अध्याय।

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः। वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥
गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः। अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥

स्नातक द्विजको उचित है कि इसी प्रकारसे शास्त्रोक्त विधिके अनुसार गृहस्थाश्रमका धर्म पालन करके जितेन्द्रिय भावसे नियम युक्त होकर वनमें वसे अर्थात् वानप्रस्थ आश्रमको ग्रहण करे ॥ १ ॥ गृहस्थ जब देखे कि शरीरका चाम ढीला पड़गया, बाल शुक्ल होगये और पुत्रको भी पुत्र उत्पन्न हुआ तब वानप्रस्थ आश्रमके लिये वनमें जा वसे ❀ ॥ २ ॥

सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्। पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ ३ ॥

खानेकी वस्तु और शय्या, सवारी, वस्त्रादि सब सामानको घरमें छोड़के अपनी भार्याको पुत्रके पास रखकर अथवा अपने साथ लेकर वनमें जावे ॥ ३ ॥

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्। ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥

अग्निहोत्रको तथा उसके सामान स्रुक्, स्रुवादिको अपने साथ लेकर गांवसे वनमें जाकर जितेन्द्रिय भावसे निवास करे ❁ ॥ ४ ॥

मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा। एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ॥ ५ ॥
वसीत चर्म चीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा। जटाश्च बिभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च ॥ ६ ॥
यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्बलिं भिक्षां च शक्तितः। अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् ॥ ७ ॥

नीवार आदि विविध प्रकारके मुनियोंके पवित्र अन्न अथवा शाक, मूल और फलोंसे प्रतिदिन विधिपूर्वक पञ्चमहायज्ञ करे ❃ ॥ ५ ॥ मृगचर्म अथवा चिथड़े वस्त्रको धारण करे, सायंकाल और प्रातःकाल स्नान करे

❀ हारीतस्मृति—५अध्याय—२श्लोक और शङ्खस्मृति—६अध्याय—१ श्लोकमें ऐसा ही है। संवर्त्तस्मृति—१०२ श्लोक। जब शरीरका चाम ढीला पड़जाय और बाल शुक्ल होजांय तब वानप्रस्थाश्रममें जावे।

❁ याज्ञवल्क्यस्मृति—३अध्याय—४५श्लोक। अपनी भार्याको पुत्रको सौंपकर अथवा उसके सहित वैतानाग्नि और औपासनाग्नि (गृह्याग्नि) को साथ लेकर ब्रह्मचारी हो वनमें जावे। हारीतस्मृति—५अध्याय—२ श्लोक, संवर्त्तस्मृति—१०२ श्लोक. बृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र—१०अध्याय—वानप्रस्थधर्म,—१ श्लोक और शङ्खस्मृति—६ अध्याय—२श्लोक। वानप्रस्थ अपनी भार्याको पुत्रके पास रखकर अथवा अपने साथ लेकर वनमें जावे। विष्णुस्मृति—३अध्याय—३श्लोक। सावन मासमें अग्निके साथ वानप्रस्थ वनमें जावे और ब्रह्मचर्य धारण करके वहां रहे। गौतमस्मृति—३अध्याय—१३अङ्क और वसिष्ठस्मृति—९ अध्याय—७अङ्क। वानप्रस्थ वनमें जाकर सावन मासमें अग्नि स्थापन करे। वसिष्ठस्मृति—९अध्याय—३अङ्क। वानप्रस्थ अपने वीर्यको कभी नहीं नीचे गिरने देवे। बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—१०अध्याय—वानप्रस्थधर्म,—१३—१४श्लोक। वानप्रस्थ दुर्गम वनमें नहीं; किन्तु गांवके निकटके वनमें निवास करे, क्यों कि कलियुगमें वन म्लेच्छोंसे व्याप्त होजायगा; राजा उनको दण्ड नहीं देंगे।

❃ नीचे मनुस्मृतिके ७ श्लोक देखिये। याज्ञवल्क्यस्मृति—३अध्याय—४६श्लोक। वानप्रस्थ विना जोतीहुई भूमिमें उत्पन्न अन्नसे अग्नि, पितर, देवता, अतिथि और भृत्योंको तृप्त करे। विष्णुस्मृति—३अध्याय—१—२और ७ श्लोक। वानप्रस्थ विना जोती भूमिसे उत्पन्न अन्न खावे, निर्जन स्थानमें जाकर भी पञ्चमहायज्ञको नहीं छोड़े, नीवार आदिसे अग्निहोत्र करे, वनमें आयेहुए ब्रह्मचारी अतिथियोंका सत्कार करे। हारीतस्मृति—

और सदा जटा, दाढ़ी, मूंछ और नखको धारण करे अर्थात् इनको कभी नहीं कटावे ❀ ॥ ६ ॥ जो कुछ भोजनकी वस्तु होवे उसीमेंसे अपनी शक्तिके अनुसार पञ्चमहायज्ञ· बलि तथा भिक्षा देवे, आश्रममें आयेहुए अतिथियोंका जल, मूल और फलादिसे सत्कार करे ॥ ७ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः । दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥
वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि । दर्शमस्कन्दयन्पर्व पौर्णमासं च योगतः ॥ ९ ॥
ऋक्षेष्ट्याग्रायणं चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत् । उत्तरायणं च क्रमशोदाक्षस्यायनमेव च ॥ १० ॥
वासन्तशारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः । पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् ॥ ११ ॥
देवताभ्यस्तु तद्धुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः । शेषमात्मनि युञ्जीत लवणं च स्वयं कृतम् ॥ १२ ॥
स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च । मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्यात्स्नेहांश्च फलसम्भवान् ॥ १३ ॥

वेदपढ़नेमें सदा तत्पर रहे, शीत, घाम आदिके दुःखोंको सहता रहे, सबसे मित्रभाव रक्खे, सावधान मन रहे, अतिथि आदिको नित्य देवे, दान नहीं लेवे और सब जीवोंपर दया करे ▩ ॥ ८ ॥ विधिपूर्वक वैतानिक अग्निहोत्र होम कर अमावास्या तथा पूर्णिमामें दर्शपौर्णमास यज्ञोंको नहीं छोड़े ॥ ९ ॥ नक्षत्रयाग, नवसस्ययाग, चातुर्मासयाग और उत्तरायण तथा दक्षिणायनयागको क्रमसे करे ❁ ॥ १० ॥ वसन्त और शरद्ऋतुमें उत्पन्नहुए स्वयं लायेहुए नीवारादि मुनिअन्नसे पुरोडाशचरु बनाके विधिपूर्वक अलग अलग उन यज्ञोंको करे ॥ ११ ॥ वनमें उत्पन्नहुए नीवारादिसे बनीहुई पवित्र हविसे देवताओंके लिये होम करके बचीहुई हविको भोजन करे; अपना बनायाहुआ नोन, स्थल तथा जलमें उत्पन्न शाक, पवित्र वृक्षोंके फूल मूल और फल तथा उन फलोंके तेल, रस आदिको खावे ✿ ॥ १२-१३ ॥

-५ अध्याय, ३-४श्लोक । वानप्रस्थको चाहिये कि वनमें उत्पन्नहुए पवित्र नीवार आदि अन्नसे अथवा शाक, मूल और फलोंसे नित्य यत्नपूर्वक अग्निहोत्र करे । संवर्त्तस्मृति-१०३-१०४ श्लोक । वानप्रस्थ वनमें वसकर सदा अग्निहोत्र करतारहे, वनके पवित्र फलादिकोंसे विधिपूर्वक पुरोडाश यज्ञ करे; शाक, मूल, फलादि भिक्षुकोंको भिक्षा देवे । शङ्खस्मृति-६अध्याय, २-३श्लोक । वानप्रस्थ वनमें नित्य अग्निहोत्र करे, वनके फलादि खावे, जो वस्तु भोजन करे उसीसे अतिथियोंका सत्कार करे । गौतमस्मृति-३ अध्याय-१३ अङ्क । वानप्रस्थ-वनमें वसकर मूल फल खावे और पञ्चमहायज्ञद्वारा देव, पितर, अतिथि, जीव और ऋषिका सत्कार करे वसिष्ठस्मृति-९अध्याय-४और ९ अङ्क । वानप्रस्थ विना जोतीहुई भूमिके मूल फल एकत्र करे, वहीं आश्रममें आयेहुए अतिथिको देवे और उसीसे पञ्चमहायज्ञ करके देवता, पितर और मनुष्योंको तृप्त करे । बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-१०अध्याय-वानप्रस्थधर्म, १ श्लोक । वानप्रस्थ जितेन्द्रिय होकर नित्य श्रौताग्निकर्म करता हुआ वनमें वास करे ।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति--३अध्याय--४६श्लोक । वानप्रस्थ सदा दाढ़ी, मूंछ, जटा और कक्षआदिके रोमोंको धारण करे । विष्णुस्मृति-३अध्याय--१श्लोक । गृहस्थ अथवा ब्रह्मचारी जब वनमें वास करे तब चिथड़े वस्त्र अथवा वृक्षके वल्कल धारण करे । १० श्लोक । जटा, रोम, नख, दाढ़ी तथा मूंछको न क्षुरसे मुंडवावे न कैंचीसे कतरावे । हारीतस्मृति--५अध्याय--३श्लोक । वानप्रस्थ नख और शरीरके रोएं कभी नहीं कटावे । बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र --१०अध्याय--वानप्रस्थधर्म,--३श्लोक वानप्रस्थ मृगचर्म या चिथडे वस्त्रको धारण करे और दाढी मूंछके बाल, रोएं तथा जटाको रक्खे । शङ्खस्मृति-६अध्याय--४श्लोक । वानप्रस्थ जटा धारण करे । गौतमस्मृति--३अध्याय--१३ अङ्क और वसिष्ठस्मृति--९ अध्याय--१ अङ्क । वानप्रस्थको उचित है कि चिथड़े वस्त्र, मृगचर्म और जटा धारण करे ।

▩ याज्ञवल्क्यस्मृति--३अध्यायके ४८ और ५३श्लोकमें भी ऐसा है और लिखा है कि वानप्रस्थके शरीरमें यदि कोई काटा चुभादेवे तो उस पर वह क्रोध नहीं करे तथा यदि कोई चन्दन लगादेवे तो उसपर वह प्रसन्न नहीं होवे । संवर्त्तस्मृति-१०४ श्लोक और शङ्खस्मृति-६अध्याय-४श्लोक । वानप्रस्थ नित्य वेद पढ़ाकरे । विष्णुस्मृति-३अध्याय-८ श्लोक और वसिष्ठस्मृति--९अध्याय--५ अङ्क । वानप्रस्थ नित्य फल मूलादि दान देवे, अपने किसीसे प्रतिग्रह नहीं लेवे । बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—१०अध्याय--वानप्रस्थधर्म—५श्लोक । वानप्रस्थ नित्य वेद पढ़े और सब जीवोंके हितमें तत्पर रहकर शान्त चित्तसे आत्मचिन्तन करे ।

❁ संवर्त्तस्मृति--१०५श्लोक । वानप्रस्थको चाहिये कि अमावास्या आदि सब पर्वोंमें पर्वयाग करे ।

✿ याज्ञवल्क्यस्मृति-३अध्याय—४९श्लोक । वानप्रस्थ फलोंके तेलसे श्रौत और स्मार्तकर्म और भोजनादि क्रिया करे । बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—१०अध्याय--वानप्रस्थधर्म,--२ श्लोक । वानप्रस्थ वनमें उत्पन्न पवित्र सांवा, नीवार, कङ्गुनी, कन्द, मूल, फल और शाक तथा फलोंका तेल भोजन करे ।

वर्जयेन्मधुमांसं च भौमानि कवकानि च । भूस्तृणं शिग्रुकं चैव श्लेष्मातकफलानि च ॥ १४ ॥
त्यजेदाश्वयुजे मासि मुन्यन्नं पूर्वसञ्चितम् । जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च ॥१५ ॥
न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित् । न ग्रामजातान्यार्तोपि मूलानि च फलानि च ॥ १६ ॥

वानप्रस्थको उचित है कि मधु, मांस, भूमिमें उत्पन्न कवक (भूमिपर जमाहुआ छत्ता), मालवदेशमें भूस्तृणनामसे प्रसिद्ध शाक, शिग्रुक (शाकविशेष) और लमेराके फल नहीं भोजन करे ॥ १४ ॥ पहिलेके सञ्चित नीवार आदि अन्नोंको और पुराने वस्त्र तथा शाक, मूल और फलोंको प्रति वर्षके आश्विन महीनेमें त्यागदेवे ❀॥१५ ॥ हलसे जोतीहुई भूमिसे उत्पन्न अन्नको यदि कोई छोड़ भी गया होवै तौ भी नहीं खावे और भूखसे पीडित होनेपर भी गांवके लता वृक्षोंसे उत्पन्नहुए मूल फलको नहीं भोजन करे ❀ ॥ १६ ॥

अग्निपक्वाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा । अश्मकुट्टो भवेद्वापि दन्तोलूखलिकोपि वा ॥ १७ ॥
सद्यः प्रक्षालको वा स्यान्माससञ्चयिकोपि वा । षण्मासनिचयो वा स्यात्समानिचय एव वा॥१८॥
नक्तं चान्नं समश्नीयाद्दिवा वाहृत्य शक्तितः । चतुर्थकालिको वा स्यात्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः ॥१९॥
चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्लकृष्णे च वर्त्तयेत् । पक्षान्तयोर्वाप्यश्नीयाद्यवागूं क्वथितां सकृत् ॥ २० ॥
पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा । कालपक्वैः स्वयं शीर्णैर्वैखानसमते स्थितः ॥ २१ ॥

वानप्रस्थको चाहिये कि नीवार आदिको आगसे पकाकर अथवा समयसे पकेहुए वनके फल आदिको खावे अथवा भोजनकी वस्तुको पत्थरसे कूटकर या दांतसे ही चूर्ण करके भोजन करे ❀ ॥ १७ ॥ एक दिन खानेके योग्य अथवा एक मास भोजन करने योग्य या छः महीने खानेके योग्य अथवा एक वर्ष भोजन करने योग्य नीवारादिको सञ्चित करे ❀ ॥ १८ ॥ शक्तिके अनुसार भोजनकी वस्तुको लाकरके प्रति दिन एक वार रातमें अथवा एकबार दिनमें या चौथी वेलामें अर्थात् एक दिन उपवास करके दूसरे दिनकी रातमें अथवा आठवीं वेलामें अर्थात् ३ दिन उपवास करके चौथे दिनकी रातमें खावे ❀ ॥ १९ ॥ अथवा चान्द्रायण व्रतके विधानसे शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षमें भोजन करे या पक्षके अन्तमें पूर्णमासी और अमावास्याको एकवार यवागू (यवकी लपसी) बनाकर खावे ❀ ॥२०॥ अथवा वानप्रस्थमतमें स्थित रहकर स्वयं पके गिरेहुए फूल, मूल और फलको ही सदा भोजन करे ॥ २१ ॥

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय-४७ श्लोक । वानप्रस्थ प्रति वर्ष आश्विन मासमें सञ्चित अन्नको त्याग देवे । विष्णुस्मृति—३अध्याय-४ श्लोक । वानप्रस्थको उचित है कि एकत्र कियेहुए वनके अन्नोंको आश्विनमें त्यागदेवे अर्थात् दान करदेवे और नये अन्नको ग्रहण करे । गौतमस्मृति-३अध्याय-१३अङ्क । वानप्रस्थ एक वर्षसे अधिकका सञ्चित अन्न नहीं खावे ।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—३अध्याय—४७श्लोक । वानप्रस्थ बिना जोतीहुई भूमिसे उत्पन्न अन्नसे अग्नि, पितर, देवता आदिको तृप्त करे । विष्णुस्मृति—३अध्याय—१श्लोक । वानप्रस्थ विना जोतीहुई भूमिसे उत्पन्न अन्न खावे । शंखस्मृति—६अध्याय-२श्लोक । वानप्रस्थ वनमें उत्पन्न फलादिकोंको भोजन करे । गौतमस्मृति—३अध्याय—१३ अङ्क । वानप्रस्थ मूल, फल खावे, गांवमें वनकी वस्तु भी नहीं भोजन करे, जोतनेसे उत्पन्न अन्न नहीं खावे, जोतेहुए खेतमें नहीं बैठे तथा वस्तीमें नहीं जावे । वसिष्ठस्मृति—९ अध्याय,१-३ अङ्क । वानप्रस्थ गांवमें नहीं जावे;जोतीहुई भूमिपर नहीं बैठे तथा विना जोतीहुई भूमिका मूल-फल आदि एकत्र करे ।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति-३अध्याय—४९ श्लोक और वृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—१०अध्याय वानप्रस्थधर्म-१२ श्लोक । वानप्रस्थ भोजनकी वस्तुको दांतोंसे कुचलकर भोजन करे, समयसे पकेहुए वनके फलादिकोंको खावे या खानेकी वस्तु पत्थरसे कूटकर भोजन करे ।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्यायके ४७ श्लोकमें और वृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-१० अध्याय-वानप्रस्थधर्म,-७ श्लोकमें भी इस श्लोकके समान है ।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय-५० श्लोक । वानप्रस्थ १५ दिन, १ मास अथवा १ दिन बिताकर भोजन करे । हारीतस्मृति—५अध्याय, ५—६ श्लोक । वानप्रस्थको चाहिये कि पक्षके अन्तमें या मासके अन्तमें अपने हाथका पकाया अन्न खावे अथवा एक दिन उपवास करके दूसरे दिनकी रातमें किंवा ३ दिन उपवास करके चौथे दिनकी रातमें अथवा२ दिन निराहार रहकर तीसरे दिनकी रातमें भोजन करे या वायु भक्षण करके रहे । शंखस्मृति-६अध्याय-६ श्लोक । वानप्रस्थ सदा रातमें खावे या एक दिन उपवास करके दूसरे दिनकी रातमें भोजन करे अथवा २ दिन निराहार रहकर तीसरे दिनकी रातमें खावे ।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति—३अध्याय—५० श्लोक । अथवा चान्द्रायण या प्राजापत्य करके वानप्रस्थ अपने समयको वितावे । विष्णुस्मृति—३अध्याय-६ श्लोक । वानप्रस्थ प्राजापत्य, चान्द्रायण, तुलापुरुष,–

भूमौ विपरिवर्त्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम् । स्थानासनाभ्यां विहरेत्सवनेषूपयन्नपः ॥ २२ ॥
ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः । आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्द्धयंस्तपः ॥ २३ ॥
उपस्पृशंस्त्रिषवणं पितॄन्देवांश्च तर्पयेत् । तपश्चरंश्चोग्रतरं शोषयेद्देहमात्मनः ॥ २४ ॥

वानप्रस्थको उचित है कि दिनभर एक पदसे भूमिपर खडा रहै अथवा बैठकर और चलकर समय बितावे और सन्ध्या समय, प्रातःकाल और मध्याह्नमें स्नान करे॥२२॥अपनी तपस्याकी वृद्धिके लिये गरमीके दिनोंमें पञ्चाग्नि तापे वर्षाकालमें छप्पर रहित स्थानमें रहे और जाड़ेके दिनोंमें भीगाहुआ वस्त्र धारण करे॥२३॥ प्रातःकाल, मध्याह्न तथा सायंकालके स्नानके समय पितर और देवताओंका तर्पण करे और कठिन तपस्या करके अपने शरीरको सुखावे ॥ २४ ॥

अग्नीनात्मनि वैतानान्समारोप्य यथाविधि । अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः ॥ २५ ॥
अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः । शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ॥ २६ ॥
तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत् । गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥ २७ ॥
ग्रामादाहृत्य वाश्नीयादष्टौ ग्रासान्वने वसन् । प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा ॥ २८ ॥

उसके पश्चात् वैखानस शास्त्रके विधानसे श्रौताग्नि आदिको अपने आत्मामें स्थापित करके अग्नि और घरसे रहित होकर मौन व्रत धारण करके केवल फल मूल खाकर समय बितावे ॥ २५ ॥ अपने सुखके लिये अर्थात् स्वादिष्ठ फल आदिके खाने और शीतघामके बचानेमें यत्न नहीं करे, ब्रह्मचारी रहे भूमिपर सोवे, रहनेके स्थानमें ममता नहीं करे, वृक्षके मूलके पास निवास करे ॥ २६ ॥ वानप्रस्थ ब्राह्मणोंसे प्राणकी रक्षाके योग्य भिक्षा लावे और उनके नहीं होनेसे वनके बसनेवाले अन्य गृहस्थ द्विजोंसे माँगकर भोजन करे ॥ २७ ॥ अथवा (संन्यासीके समान) गांवसे भिक्षा लाकर पत्तोंके दोनेमें अथवा सरवा आदिके खण्डमें या हाथमें ही केवल ८ ग्रास खावे ॥ २८ ॥

एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् । विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥ २९ ॥
ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेव सेविताः । विद्यातपोविवृद्ध्यर्थं शरीरस्य च शुद्धये ॥ ३० ॥
अपराजितां वास्थाय व्रजेद्दिशमजिह्मगः । आनिपाताच्छरीरस्य युक्तो वार्यनिलाशनः ॥ ३१ ॥
आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वान्यतमया तनुम् । वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३२ ॥
वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः । चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान्परिव्रजेत् ॥ ३३ ॥

–और अतिकृच्छ्र व्रत करे । बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–१०अध्याय वानप्रस्थधर्म,—९ श्लोक । विद्वान् वानप्रस्थ चान्द्रायण, प्राजापत्य, पराक आदि व्रत करे और १५ दिन, १ मास, ३ रात अथवा १ रात उपवास करके खावे ।

याज्ञवल्क्यस्मृति–३अध्याय–४८ और ५१ श्लोक । वानप्रस्थ नित्य त्रिकाल स्नान करे रातमें भूमिपर सोवे और दिनमें घूम फिरकर या खड़े रहकर और बैठकर या योगाभ्यास करके समय बितावे । विष्णुस्मृति–३अध्याय—७और ९ श्लोक । वानप्रस्थ त्रिकाल स्नान करे; रातमें स्वयं बनायेहुए चबूतरेपर सोवे और दिनमें खड़े रहके या चल फिरकर अथवा वीरासनसे बैठके समय बितावे । हारीतस्मृति–५अध्याय ५ श्लोक और वसिष्ठस्मृति–९अध्याय–६अंक । वानप्रस्थ नित्य प्रातःकाल, मध्याह्नमें और सायंकाल स्नान करे । वसिष्ठस्मृति–९अध्याय–३अंक । वानप्रस्थ भूमिपर सोवे ।

याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–५२ श्लोक । विष्णुस्मृति–३अध्याय–५ श्लोक, हारीतस्मृति–५अध्याय ७श्लोक । शंखस्मृति–६ अध्यायके५–६ श्लोक और बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—१०अध्याय–वानप्रस्थधर्म–११ श्लोकमें भी ऐसा है; याज्ञवल्क्यस्मृति, विष्णुस्मृति और हारीतस्मृतिमें है कि पञ्चाग्निके मध्यमें ग्रीष्मकालमें रहे;विष्णुस्मृतिमें है कि हेमन्तऋतुमें जलमें शयन करे और हारीतस्मृतिमें है कि हेमन्तकालमें जलमें स्थित रहे ।

याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय–५२ श्लोक । वानप्रस्थ अपनी शक्तिके अनुसार तप करे । शंखस्मृति—६ अध्याय–५ श्लोक । वानप्रस्थ सदा तपस्यासे अपने शरीरको सुखावे । गौतमस्मृति–१९ अध्याय ५ अंक । ब्रह्मचर्य रहना, सत्य बोलना, प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल स्नान करना, ओदे वस्त्र धारण करना, भूमिपर सोना और भोजन नहीं करना ये सब तप कहातेहैं ।

याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय, ५४–५५ श्लोक । वानप्रस्थको चाहिये कि उसके बाद तीनों अग्नियोंको अपने आत्मामें मानकर वृक्षके नीचे निवास करे, थोड़ा भोजन करे, प्राणकी रक्षाके लिये वानप्रस्थोंके घरसे भिक्षा लावे अथवा गांवसे अन्न लाकर ८ ग्रास भोजन करे और मौन रहे । बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–१० अध्याय–वानप्रस्थधर्म–२४ श्लोक और शंखस्मृति–६ अध्याय—४ श्लोक । वानप्रस्थ उसके बाद गांवसे भिक्षा लाकर ८ ग्रास भोजन करे । गौतमस्मृति–३ अध्याय–१३ श्लोक । वानप्रस्थ निन्दित लोगोंको छोड़कर बनवासियोंसे भिक्षा मांग लावे ।

वानप्रस्थ ब्राह्मणको चाहिये कि वनमें वसकर इन नियमोंका तथा शास्त्रानुसार अन्य नियमोंका पालन करे और आत्मसाधनके लिये उपनिषदोंमें पढ़ीहुई अनेक श्रुतियोंका अभ्यास करे, जिनको आत्मज्ञान और तपस्याकी वृद्धि तथा शरीरकी शुद्धिके लिये ब्रह्मदर्शी ऋषि, संन्यासी ब्राह्मण और गृहस्थ लोग सेवा किया करते हैं ॥ २९-३० ॥ यदि असाध्य रोगसे पीड़ित होजावे तो जबतक देहान्त नहीं होवे तबतक जल और वायु भक्षण करतेहुए योगनिष्ठ होकर ईशान दिशाकी ओर सीधा चला जावे ॐ ॥ ३१ ॥ इस प्रकार महर्षियोंके अनुष्ठानसे शरीर त्यागनेवाला ब्राह्मण दुःखके भयसे रहित होकर ब्रह्मलोकमें पूजित होताहै ॥ ३२ ॥ वानप्रस्थ इस प्रकारसे आयुका तीसरा भाग बिताकरके चौथे भागमें सब संगोंसे रहित होकर संन्यासाश्रममें जावे अर्थात् संन्यासी होवे ॥ ३३ ॥

(१९) शङ्खस्मृति-७ अध्याय।

नाग्निशुश्रूषया क्षान्त्या स्नानेन विविधेन च। वानप्रस्थो दिवं याति याति भोजनवर्जनात् ॥ ११॥

अग्निकी सेवा, क्षमा और अनेकप्रकारके स्नान करनेसे वानप्रस्थ वैसा स्वर्गमें नहीं जाता जैसा भोजनके त्याग करनेसे जाताहै अर्थात् भोजनका त्याग करना वानप्रस्थके लिये विशेष फलदायक है ॥ ११ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति-६ अध्याय।

एका लिङ्गे करे तिस्र उभाभ्यां द्वे तु मृत्तिके। पञ्चापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ॥ १६॥
एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः। वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनान्तु चतुर्गुणम् ॥ १७ ॥

मूत्र त्यागनेपर लिङ्गमें १ बार, बांये हाथमें ३ बार और दोनों हाथोंमें दोबार मिट्टी लगावे और विष्ठा त्यागनेपर गुदामें ५ बार, बांये हाथमें १० बार और दोनों हाथोंमें ७ बार मिट्टी लगाना उचित है ॥ १६ ॥ यह शौच गृहस्थके लिये है, ब्रह्मचारी इससे दूना, वानप्रस्थ तिगुणा और संन्यासी इसका चौगुणा शौच करे ॥१७ ॥

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भुक्तं वानप्रस्थस्य षोडश। द्वात्रिंशच्च गृहस्थस्य अमितं ब्रह्मचारिणः ॥ १८ ॥

संन्यासी ८ ग्रास (कवल) वानप्रस्थ १६ ग्रास और गृहस्थ ३२ ग्रास भोजन करे और ब्रह्मचारी अपनी इच्छानुसार खावे ॥ १८ ॥

(२९) बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-३ अध्याय।

न द्रुह्येद्दंशमशकान्हिमवांस्तापसो भवेत्। वनप्रतिष्ठः संतुष्टश्चीरचर्मजलप्रियः ॥ २१॥
कृच्छ्रां वृत्तिमसंहार्यां सामान्यां मृगपक्षिभिः। तदहर्जनसंभारां काषायकटुकाश्रयाम् ॥ २३ ॥
मृगैः सह परिस्यन्दः संवासस्तैभिरेव च। तैरेव सदृशी वृत्तिः प्रत्यक्षं स्वर्गलक्षणम् ॥ २५ ॥

वानप्रस्थको चाहिये कि वनके दंश और मच्छरोंसे द्रोह नहीं करे, हिमवान् पर्वतके समान स्थिर होकर तपस्या करता रहे, मनमें सन्तोषसे रहकर चिथड़ेवस्त्र या मृगचर्म धारण करे, जलसे प्रीति रक्खे ॥ २१ ॥ जिससे प्राण नाश नहीं होजाय ऐसा व्रत करे, मृग और पक्षियोंके समान साधारण वृत्ति रक्खे,

---

ॐ याज्ञवल्क्यस्मृति—३अध्याय—५५श्लोक। उसके पश्चात् वानप्रस्थ शरीरान्त होनेतक वायुभक्षण करताहुआ ईशान-दिशामें बराबर चलाजावे। हारीतस्मृति—५अध्याय, ८-९ श्लोक। वानप्रस्थको चाहिये कि क्रम क्रमसे इस प्रकार कर्म करके बुद्धिके स्थिर होजानेपर अग्निको अपने आत्मामें स्थापित करदेवे और मौनी होकर अगोचर ब्रह्मका स्मरण करताहुआ देहान्त होनेतक उत्तर दिशामें चलाजावे, ऐसा वानप्रस्थ ब्रह्मलोकमें पूजित होताहै

हारीतस्मृति—५अध्याय-१०श्लोक। जो वानप्रस्थ मनको वशमें करके समाधि लगाके तप करताहै वह पापोंसे रहित निर्मल और शान्तिरूप होकर पुरातन दिव्य पुरुषको प्राप्त करताहै। संवर्तस्मृति—१०६ श्लोक और शङ्खस्मृति—६अध्याय—७श्लोक। वानप्रस्थ अपने धर्मका पालन करके संन्यासी होवे।

लघुआश्वलायनस्मृति—१आचारप्रकरणके१०-११श्लोकमें ऐसा ही है। मनुस्मृति—५ अध्यायके १३६—१३७ श्लोक और दक्षस्मृति—५अध्यायके ५—६श्लोकमें है कि लिङ्गमें १ बार, गुदामें ३ बार, बांये हाथमें १० बार और दोनों हाथोंमें ७ बार गृहस्थ मिट्टी लगावे। शङ्खस्मृति-१६अध्याय, २१-२४श्लोक। लिङ्गमें २ बार गुदामें ७ बार, बांये हाथमें २० बार और दोनों हाथोंमें १४ बार गृहस्थको मिट्टी लगाना चाहिये। दक्षस्मृति-और शङ्खस्मृतिमें है कि पांवोंमें भी तीन तीन बार मिट्टी लगावे। सब स्मृतियोंमें है कि इससे दूना ब्रह्मचारी, तिगुना वानप्रस्थ और चौगुना संन्यासी शौच करे।

बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-७ अध्यायके ३१ श्लोकमें ऐसा ही है।

एक दिनके खानेयोग्य तीता तथा कसैला पदार्थ ग्रहण करे ॥ २३ ॥ मृगोंके समान चलना उन्हींके समान निवास करना और उन्हींके तुल्य वृत्ति रखना वानप्रस्थके लिये स्वर्गमें जानेका प्रत्यक्ष लक्षण है॥२५॥

वानप्रस्थके विषयमें अनेक बातें २.

(४) विष्णुस्मृति-३ अध्याय।

चतुःप्रकारं भिद्यन्ते मुनयः शंसितव्रताः। अनुष्ठानविशेषेण श्रेयांस्तेषां परः परः ॥ ११ ॥
वार्षिकं वन्यमाहारमाहृत्य विधिपूर्वकम्। वनस्थधर्ममातिष्ठन्नयेत्कालं जितेन्द्रियः ॥ १२ ॥
भूरि संवार्षिकश्चायं वनस्थः सर्वकर्मकृत्। आदेहपतनं तिष्ठेन्मृत्युं चैव न कांक्षति ॥ १३ ॥
षण्मासांस्तु ततश्चान्यः पञ्चयज्ञक्रियापरः। काले चतुर्थे भुञ्जानो देहं त्यजति धर्मतः ॥ १४ ॥
त्रिंशद्दिनार्थमाहृत्य वन्यान्नानि शुचिव्रतः। निर्वर्त्य सर्वकार्याणि स्याच्च षष्ठेन्नभोजनः ॥ १५ ॥
दिनार्थमन्नमादाय पञ्चयज्ञक्रियारतः। सद्यःप्रक्षालको नाम चतुर्थः परिकीर्त्तितः ॥ १६ ॥
एवमेते हि वै मान्या मुनयः शंसितव्रताः ॥ १७ ॥

अपने अपने कर्मके भेदसे उत्तम व्रतवाले वानप्रस्थ ४ प्रकारके होतेहैं, उनमें पहिलेसे आगेवाले श्रेष्ठ हैं ॥११॥ जो वानप्रस्थ एक वर्षके लिये विधिपूर्वक वनके अन्न आदि पदार्थ इकट्ठा करतेहैं और वानप्रस्थके धर्ममें तत्पर तथा जितेन्द्रिय रहकर समयको वितातेहैं उनको भूरिसंवार्षिक वानप्रस्थ कहतेहैं ॥ १२-१३ ॥ दूसरे प्रकारके वानप्रस्थ मरनेके समयतक वनमें रहतेहैं, मरनेकी इच्छा नहीं रखते हैं ६ मासके लिये वनके अन्न एकत्र करतेहैं, पञ्चमहायज्ञ कर्ममें तत्पर रहतेहैं, एक रात उपवास करके दूसरे दिनकी रातमें भोजन करतेहैं और धर्मपूर्वक शरीर त्यागतेहैं ॥ १३-१४ ॥ तीसरे प्रकारके वानप्रस्थ एक मास भोजनादिके लिये वनके अन्न आदि पदार्थका सञ्चय करतेहैं, शुद्ध व्रत होकर सब कर्मोंको करतेहैं और २ रात उपवास करके तीसरे दिनकी रातमें खातेहैं ॥ १५ ॥ चौथे प्रकारके वानप्रस्थ केवल एक दिनके लिये वनके अन्नको ग्रहण करके पञ्चमहायज्ञमें तत्पर रहतेहैं वे सद्यःप्रक्षालक कहलाते हैं ॥ १६ ॥ ये चारों प्रकारके कठिन व्रतवाले वानप्रस्थ पूजनीय होतेहैं ॥ १७ ॥

(१३क) बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-१०अध्याय-ब्रह्मचारी आदि चतुष्टय भेद कथन।

वानप्रस्थश्चतुर्भेदो वैखानस उदुम्बरः। फेनपो वालखिल्यश्च तल्लक्षणमथोच्यते ॥ १४ ॥
फलैर्मूलैरकृष्टान्नैरग्निकर्म वने वसन्। कुर्यात्पञ्चमहायज्ञान्स वैखानस आत्मवित् ॥ १५ ॥
प्रातर्दिष्टदिगानीतैः फलाकृष्टाशनेन्धनैः। उदुम्बरो महाज्ञानी पञ्चयज्ञाग्निकर्मकृत् ॥ १६ ॥
चतुरोऽभ्यासकृदग्निकार्यं कुर्वन्वने वसन्। फलस्नेहैः फलैर्वन्यैर्वनान्नैः श्रुतिचोदितैः ॥ १७ ॥
उद्धृत्य परिपूताद्भिस्तथायाचितवृत्तिकः। अन्यैर्वन्यैर्वनान्नैश्च फेनपः पञ्चयज्ञकृत् ॥ १८ ॥
वनस्थो वालखिल्योऽसौ वस्ते वल्कलचीवरम्। अग्निकर्मकृदात्मज्ञ ऊर्जान्ते सञ्चितं त्यजेत्॥१९॥

वैखानस, उदुम्वर, फेनप और वालखिल्य,-ये ४ प्रकारके वानप्रस्थ होतेहैं; उनके लक्षण कहताहूं॥१४॥ जो वनमें वसकर फल, मूलः और विना जोतीहुई भूमिका अन्न खाता है और अग्निहोत्र तथा पञ्चमहायज्ञ करताहै वह आत्मज्ञानी वैखानस वानप्रस्थ कहानाता है ॥ १५ ॥ जो पूर्वदिशासे फल, विना जोती भूमिका अन्न और लकडी लाकर पञ्चमहायज्ञ और अग्निहोत्र करताहै वह महाज्ञानी उदुम्बर वानप्रस्थ कहाताहै ॥ १६ ॥ जो चतुर अभ्यास करनेवाला वनमें निवास करके फलसे निकलेहुए तेल, वनके फल और श्रुतिविहित वनके अन्नसे अग्निहोत्र करताहै और जलाशयसे निकालाहुआ पवित्र जल तथा अयाचित वनके फल और वनके अन्नसे पञ्चमहायज्ञ करताहै, वह फेनप वानप्रस्थ है ॥ १७-१८ ॥ जो वल्कल तथा चिथडे वस्त्र धारण करताहै, अग्निहोत्र करताहै, आत्मज्ञानी है और सञ्चित अन्नको कार्तिकके अन्तमें त्याग करताहै वह वालखिल्यवानप्रस्थ कहाजाताहै ॥ १९ ॥

(१७) दक्षस्मृति-१ अध्याय।

मेखलाजिनदण्डैश्च ब्रह्मचारीति लक्ष्यते। गृहस्थो देवयज्ञाद्यैर्नखलोमैर्वनाश्रमी ॥ १३ ॥
त्रिदण्डेन यतिश्चैव लक्षणानि पृथक्पृथक्। यस्यैतल्लक्षणं नास्ति प्रायश्चित्ती वनाश्रमी ॥ १४ ॥

मेखला, मृगचर्म और दण्डधारण ब्रह्मचारीका चिह्न; देवपूजा, यज्ञ आदि गृहस्थका चिह्न; नख और जटाआदि बालोंका धारण करना वानप्रस्थका चिह्न और त्रिदण्ड संन्यासीका चिह्न है; जिसमें उसके आश्रमका चिह्न नहीं रहता वह प्रायश्चित्तीके तुल्य होताहै और आश्रमी नहीं कहाताहै ॥ १३-१४ ॥

४ अध्याय।

चाण्डालप्रत्यवसितपरिव्राजकतापसाः ॥ १९ ॥
तेषां जातान्यपत्यानि चाण्डालैः सह वासयेत् ॥ २० ॥

चाण्डाल, पतित, संन्यासी और वानप्रस्थकी सन्तानोंको चाण्डालोंके सङ्ग बसाना चाहिये अर्थात् यदि पतित, सन्यासी अथवा वानप्रस्थ होनेपर उनको सन्तान होवे तो वे चाण्डालके तुल्य हैं ॥ १९—२०॥

संन्यासिप्रकरण २९.

संन्यासीका धर्म १.

(१) मनुस्मृति--६ अध्याय।

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः। चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत् ॥ ३३ ॥
आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः। भिक्षाबलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्धते ॥ ३४ ॥
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्। अनपाकृत्य मोक्षन्तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥ ३५ ॥
अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः। इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ ३६ ॥
अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान्। अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥ ३७ ॥

वानप्रस्थआश्रममें अपनी आयुका तीसरा भाग बितावे, आयुके चौथे भागमें सर्वसंग परित्याग करके संन्यास आश्रममें जावे ॥ ३३ ॥ आश्रमसे आश्रममें जाकर अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थधर्मका निर्वाह करके उन आश्रमोंमें अग्निहोत्रादि होम कर जितेन्द्रिय हो और भिक्षादान तथा बलिदानसे श्रान्त होकर संन्यास आश्रम ग्रहण करनेसे परलोकमें बड़ीभारी वृद्धि होतीहै ॥ ३४ ॥ नीचेके श्लोकमें कहेहुए ऋषिऋण, पितरऋण और देवऋणको चुकाकरके संन्यासी होना चाहिये; क्योंकि विना इन ऋणोंके चुकाये संन्यासी होनेसे नरकमें जाना पडता है ꙮ॥३५॥ विधिपूर्वक वेद पढकर, धर्मपूर्वक पुत्र उत्पन्न करके और सामर्थ्यके अनुसार यज्ञोंको करके इस भांति ऋणोंसे मुक्त हो संन्यास आश्रमय जाना चाहिये ॥ ३६ ॥ जो द्विज विना वेद पढेहुए, विना पुत्र उत्पन्न कियेहुए और विना यज्ञ किये हुए संन्यासी होताहै वह नरकमें जाताहै ⊛ ॥ ३७ ॥

प्राजापत्यं निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम्। आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ॥ ३८ ॥
यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्। तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ३९ ॥
यस्मादण्वपि भूतानां द्विजान्नोत्पद्यते भयम्। तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥ ४० ॥

ꙮ इस समय बालक मोल लेकर संन्यासी बनाये जातेहैं अथवा लोभसे बालक स्वयं संन्यासी बनते हैं, जिनमेंसे बहुतेरे संन्यासी युवा होनेपर अवस्थाके प्रभावसे अतिभ्रष्ट होजातेहैं, यह रीति सर्वत्र देखनेमें आतीहै, स्मार्त्त धर्मावलम्बी लोग इस चालके रोकनेका उद्योग नहीं करते उचित तो है कि जिसका मन सब विषयोंसे निवृत्त हो वह स्वयं संन्यासी बने, यदि संन्यासी बनाना ही है तो वृद्ध लोगोंको संन्यासी बनाना चाहिये।

⊛ याज्ञवल्क्यस्मृति–३अध्याय–५७श्लोक। जिसने वेद पढ़ा है, जप करता है, पुत्र उत्पन्न कियाहै अन्नदान दियाहै, अग्निहोत्र कियाहै और अपनी शक्तिके अनुसार यज्ञ कियाहै वही संन्यासी होनेकी इच्छा करे; अन्य नहीं। वृहद्विष्णुस्मृति ९६ अध्याय–१ अंक। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रमसे निवृत्त होकर संन्यासाश्रममें जावे। हारीतस्मृति–६ अध्याय, २–३श्लोक। द्विजको चाहिये कि वानप्रस्थ आश्रममें पापोंको दूर करके संन्यासकी विधिसे चौथे आश्रममें जावे अर्थात् संन्यासी होवे; उस समय पितर, देवता और मनुष्यके लिये दान और पितर, मनुष्य और अपनी आत्माके निमित्त श्राद्ध करे। बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—१० अध्याय–वानप्रस्थ आदि धर्म–२६–२९ श्लोक। द्विजको उचित है कि वानप्रस्थधर्म अथवा गृहस्थाश्रमका धर्म पालन करके संन्यासी होवे। ब्राह्मण जब देखे कि शरीरका चाम ढीला पडगया, बाल शुक्ल होगये, विषयोंसे इन्द्रियां निवृत्त हुईं, काम क्षीण हुआ और पुत्र पौत्र या दौहित्र होगयेहैं तब चौथा आश्रम ग्रहण करे। बौधायनस्मृति–२प्रश्न–१० अध्याय, २–६ अंक। एक आचार्यका मत है कि ब्रह्मचारी गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्तान हीन गृहस्थ सब संन्यासी होवें, ब्रह्मचारी वेदोंको समाप्त करके गृहस्थ अपने पुत्रोंको स्वधर्ममें स्थापन करके निःसन्तान गृहस्थ भी ७० वर्षकी अवस्था होनेपर और वानप्रस्थ अपने आश्रमका कर्म समाप्त करके संन्यास धर्म ग्रहण करे।

ब्राह्मणको उचित है कि प्राजापत्ययज्ञ करके सर्वस्व दक्षिणा देकर संन्यासी अपनेमें अग्निको स्थापित करके (वानप्रस्थसे) संन्यासी होवे ॥ ३८ ॥ जो ब्रह्मवादी पुरुष सब प्राणियोंको अभयदान देकर संन्यासी होताहै उसको तेजोमयलोक मिलताहै ॥ ३९ ॥ जिस द्विजसे किसी प्राणीको कुछ भय नहीं होता, वह शरीर त्यागनेपर सबसे निर्भय रहताहै ॥ ४० ॥

आगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः । समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ४१ ॥
एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान् । सिद्धिमेकस्य सम्पश्यन्न जहाति न हीयते ॥ ४२ ॥

गृहसे निकलकर पवित्र दण्ड आदि सङ्गमें ले मौन धारण करे और विषयवासनासे रहित होकर संन्यास धारण करे ॥ ४१ ॥ ऐसा जानके कि सर्वसङ्गरहित होनेसे सिद्धि प्राप्त होती है आत्मसिद्धिके लिये असहाय अवस्थामें अकेला ही विचरण करे; जो आसक्तिरहित होकर अकेले ही विचरतेहैं, उनको किसीके त्यागका दुःख नहीं होता है ॥ ४२ ॥

अनग्निरनिकेतः स्याद् ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् । उपेक्षकोऽसंकुसुको मुनिर्भावसमाहितः ॥ ४३ ॥
कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता । समताचैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ४४ ॥
नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् । कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥ ४५ ॥

संन्यासीका धर्म है कि अग्निरहित, गृह रहित और रोग प्रतीकारकी इच्छासे रहित हो तथा स्थिर बुद्धि और ब्रह्मभावमें सदा एकाग्रचित्त होकर गांवसे बाहर समय वितावे; केवल भिक्षाके लिये बस्तीमें जावे ॥ ४३ ॥ मिट्टीका पात्र रखना, वृक्षकी जड़के पास निवास करना, पुराने वस्त्रकी लंगोटी आदि धारण करना, विना सहायका रहना और सब प्राणियोंको एक दृष्टिसे देखना; ये जीवन्मुक्त संन्यासीके लक्षण हैं ॥ ४४ ॥ संन्यासीको चाहिये कि जीने अथवा मरनेकी इच्छा नहीं करे; किन्तु जैसे सेव अपने सेवनकालके शोधनकी प्रतीक्षा करताहै वैसे ही कर्माधीन मरणकालकी प्रतीक्षा करे ॥ ४५ ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय–५६ और ६१ श्लोक । जो द्विज गृहस्थाश्रम अथवा वानप्रस्थाश्रममें सर्वस्व दक्षिणा देकर प्रजापतिदेवताका यज्ञ करे और अग्नियोंको आत्मामें स्थापन करे वह संन्यासी होवे । जो द्विज सब इन्द्रियोंका संयम करके वैर प्रीति. छोड देताहै और किसी जीवका भय देनेवाला कोई काम नहीं करताहै वह मुक्त होताहै । विष्णुस्मृति–४ अध्याय–२ श्लोक । ब्राह्मण सब कामनाओं से विरक्त हो आत्मामें अग्निको स्थापित करके सबको अभयदान देकर संन्यासी होवे । हारीतस्मृति—६ अध्याय, ४--५ श्लोक । वैश्वानरी यज्ञ करे और मन्त्रपूर्वक अपने अग्नि अस्थापित करके संन्यासी होवे । पुत्रादिका स्नेह और वार्तालापादि व्यवहारको त्यागदेवे तथा अपने वन्धुजन और अन्य सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान करे । शंखस्मृति–७ अध्याय–१ श्लोक । इसके बाद वानप्रस्थ सर्वस्व दक्षिणा देकर विधिपूर्वक यज्ञ करे । और अपने आत्मामें अग्निको स्थापित: करके संन्यासी होवे । वसिष्ठस्मृति--१० अध्याय–१ अंक । संन्यासी सब प्राणियोंको अभय देकर प्रस्थान करे ।

याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय–५८ श्लोक । संन्यासी अकेला विचरे, भिक्षाके लिये गांवमें जावे । विष्णुस्मृति–४ अध्याय–३ और १० श्लोक । आचार्यके कहेहुए दण्ड आदि चिह्नोंको धारण करके संन्यासी होवे; सब प्रकारका संग्रह त्याग कर सदा अकेला विचरे ।

याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय–५८ श्लोक । संन्यासी सब प्राणियोंका हित करे । बृहत्पाराशरीय-धर्मशास्त्र–१०अध्याय वानप्रस्थधर्म,–४९ श्लोक । आत्मा, सियार, मुनि और म्लेच्छको संन्यासी तुल्य दृष्टिसे देखे । विष्णुस्मृति–४ अध्याय–५ श्लोक । संन्यासी गांवके निकट वृक्षमूलके पास सदा निवास करे । बृहद्विष्णुस्मृति—९६ अध्याय, १०–१२ अंक । संन्यासी शून्य घर अथवा वृक्षके मूलके पास निवास करे; गांवमें एक रातसे अधिक नहीं रहे । शङ्खस्मृति–७ अध्याय–६–७ श्लोक । संन्यासी शून्यगृहमें निवास करे, जहां सन्ध्या होवे वहांही रहजावे, एक समान सब प्राणियोंका हित रहे और ढेला पत्थर तथा सोनेको एकतुल्य जाने । संवर्त्तस्मृति–१०८–१०९ श्लोक । मुक्तिका अभिलाषी संन्यासी निर्जन वनमें निवास करे, मन, वचन और शरीरसे एकाकी नित्य ब्रह्मका विचार करतारहे और मरने तथा जीनेकी कभी प्रशंसा नहीं करे । वसिष्ठस्मृति–१० अध्याय; ८–११ अंक । संन्यासी भूमिपर शयन करे, गांवके पास पवित्र शून्यगृहमें अथवा वृक्षके मूलके निकट निवास करे, मनसे तत्त्वज्ञानका स्मरण करता रहे, सदा एकान्त वनमें विचराकरे , जहांतक गांवके पशू देखपड़ें वहांतक नहीं विचरे । इस पर श्लोकका प्रमाण कहतेह । नित्य वनमें विचरनेवाला जितेन्द्रिय और अध्यात्मचिन्तामें परायण संन्यासी निश्चय करके जन्ममृत्युसे रहित हो जाताहै ।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलम्पिबेत् । सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ ४६ ॥

मार्गको देखकर पांव रक्खे, वस्त्रसे छानकर जल पीवे, सत्य वचन बोले और पवित्र मनसे कार्य करे ❀ ॥ ४६ ॥

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन । न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ४७ ॥

क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् । सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥ ४८ ॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः । आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ ४९ ॥

अन्यका अपमान सहलेवे; किन्तु किसीका अपमान नहीं करे और क्षणमें नाश होनेवाले शरीरसे किसीके साथ शत्रुता नहीं करे ॥ ४७ ॥ दूसरेके क्रोध करनेपर भी उसपर क्रोध नहीं करे, कोई निन्दा करे तो भी उससे मधुरवाणी बोले और नेत्रआदि ५ ज्ञानेन्द्रिय, १ मन और १ बुद्धि इन सात द्वार विषयक वचन मिथ्यामें नियुक्त नहीं करे ॥ ४८ ॥ सदा ब्रह्मके ध्यानमें तत्पर रहे, अपेक्षारहित होवे, मांस नहीं खावे केवल आत्मसहायसे ही मोक्षार्थी होकर संसारमें विचरे ☉ ॥ ४९ ॥

न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया । नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥ ५० ॥

न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः । आकीर्णं भिक्षुकैर्वान्यैरागारमुपसंव्रजेत् ॥ ५१ ॥

भूमिकम्प आदि उत्पति, नेत्र फड़कना आदि घटना अथवा नक्षत्रों तथा हाथकी रेखा आदिका फल कहकर या शास्त्रकी आज्ञा सुनाकर कभी भिक्षा लेनेकी इच्छा नहीं करे ॥ ५० ॥ जिसके घरमें वानप्रस्थ गृहस्थ ब्राह्मण, पक्षी, कुत्ते अथवा ब्रह्मचारी आदि अन्यलोग बहुतसे गये होवें उसके घर भिक्षाके लिये नहीं जावे ❀ ॥ ५१ ॥

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान् । विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ५२ ॥

अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानि च । तेषामद्भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥ ५३ ॥

केश, नख, दाढी और मूंछ मुंड़ाकर; भिक्षाका पात्र, दण्ड और कमण्डलु लेकर किसी प्राणीको दुःख नहीं देताहुआ सदा विचरे ॥ ५२ ॥ संन्यासीका भिक्षापात्र किसी धातुका अथवा छिद्र-वाला नहीं होना चाहिये; वह पात्र यज्ञके चमसके समान जलसे धोनेसे ही शुद्ध होजाता है ॥ ५३ ॥

अलाबुं दारुपात्रं च मृन्मयं वैदलं तथा । एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वयम्भुवोऽब्रवीत् ॥ ५४ ॥

स्वायम्भु मनुने कहाहै कि संन्यासीके लिये लौकी, काठ, मिट्टी और बांसके पात्र हैं ✤ ॥ ५४ ॥

❀ वृहद्विष्णुस्मृति—९६ अध्यायके १४–१७ अंक और शंखस्मृति–७ अध्यायके ६–७ श्लोकमें भी ऐसा है।

☉ विष्णुस्मृति–४ अध्याय, ४–५ श्लोक; संन्यासी कभी हिंसा नहीं करे, सत्य बोले, ब्रह्मचर्य रहे और सब जीवोंपर दया रक्खे। वृहद्विष्णुस्मृति—९६ अध्याय–२३ श्लोक । संन्यासीका धर्म है कि यदि कोई कुठारसे उसका एक हाथ काट देवे तो उसके अहितकी चिन्ता नहीं करे। और यदि कोई उसके दूसरे हाथमें चन्दन लगावे तो उसके भलाईकी चिन्ता न करे।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय—५९ श्लोक। संन्यासी चपलता छोड़कर अनभिलक्षित हो अर्थात् किसी-गुणका परिचय नहीं देकर और लालच छोड़कर जहां भिक्षुक नहीं होवें वहां सन्ध्या समय अपने खानेही भर भिक्षा मांगे।

✤ याज्ञवल्क्यस्मृति–३ अध्याय—५८ और ६० श्लोक । संन्यासी ३ दण्ड और कमण्डलु धारण करे। संन्यासियोंके पात्र मिट्टी, बांस, काठ और लौकीके बनतेहैं, जो जलसे धोनेपर और गोबालके घिसनेसे शुद्ध होजातेहैं। विष्णुस्मृति–४ अध्याय, २९–३२ श्लोक। भिक्षुकका पात्र हाथही है वह उसीसे नित्य भिक्षा मांगे; मनुजीने भिक्षुकके लिये विना धातुके पात्र काठ और लौकी आदिके रचेहैं। विपत्के समय भी संन्यासी कांसके पात्रमें नहीं खावे; क्योंकि कांसके पात्रमें भोजन करनेवाला संन्यासी विष्ठा खानेवाला कहलाताहै और कांसके पात्र बनानेवाले और उसमें भोजन करानेवाले दोनोंका पाप उस संन्यासीको लग जाताहै। वृहद्विष्णुस्मृति–९६ अध्याय, ७–८ अंक । संन्यासीके लिये मिट्टी, काठ और लौकीके पात्र हैं, जो जलसे धोनेपर शुद्ध होजातेहैं। हारीतस्मृति–६ अध्याय–६ श्लोक। संन्यासी बांसका त्रिदण्ड, जिसमें चार अंगुल कपडा और काले गौके बालकी रस्सी लपटी हो और उसकी गांठ सम हो, धारण करे। १६–१९ श्लोक। संन्यासीको चाहिये कि पत्तोंके दोनेमें अथवा पात्रमें मौन होकर भोजन–

एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे । भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥ ५५ ॥
विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने । वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥ ५६ ॥
अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत् । प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासंगाद्विनिर्गतः ॥५७ ॥
अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः । अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते ॥ ५८ ॥
अल्पान्नाभ्यवहारेण रहः स्थानासनेन च । ह्रियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्त्तयेत् ॥ ५९ ॥
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च । अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ६० ॥

संन्यासीको चाहिये किं नित्य केवल एक बार भिक्षा मांगकर भोजन करे; अधिक नहीं खावे; क्योंकि अधिक भोजन करनेसे उसको स्त्री आदि विषयोंकी चाहना होगी ॥ ५५ ॥ जब गृहस्थके घरमें रसोईका धूआं बन्द हो, मूसलके कूटनेका शब्द बन्द होजावे, रसोईकी आग बुता जावे और सब लोग भोजन करके जूठा पात्र अलग रखदेवें तब संन्यासी भिक्षाके लिये उसके घर जावे ॥ ५६ ॥ भिक्षा नहीं मिलनेपर दुःखी तथा मिलनेपर हर्षित नहीं होवे, केवल प्राण रक्षामात्र भोजन करे अन्य वस्तुओंमें आसक्त नहीं होवे ॥ ५७ ॥ आदरसे भिक्षा पानेकी कभी इच्छा नहीं करे;क्योंकि मुक्त अवस्थामें रहने पर भी सत्कार पानेसे संन्यासीको-संसार बन्धन प्राप्त होताहै ※ ॥ ५८ ॥ संन्यासी थोड़ा अन्न भोजन और एकान्त स्थानमें निवास करके विषयोंमें आसक्त इन्द्रियोंको विषयोंसे निवृत्त करे ॥ ५९ ॥ इन्द्रियोंको विषयोंसे रोकनेसे राग द्वेषके दूर होनेसे और प्राणियोंकी हिंसा नहीं करनेसे मोक्ष मिलताहै ॥ ६० ॥

-करे. वट, पीपल, अगस्त, तेंदु, कनेर या कदम्बके पत्तोंमें कभी नहीं खावे । पात्रमें भोजन करनेवाले संन्यासीको मल खानेवाला कहतेहैं; कांसके पात्र बनानेवाले और उसमें खिलानेवाले इन दोनोंके पाप उसमें खानेवाले संन्यासीको लगता है । संन्यासी भोजन करके उस पात्रको मन्त्रपूर्वक जलसे धो देवें तो यज्ञके चमसके समान वह धोनेसे ही शुद्ध होजाताहै । अत्रिस्मृति-१५५-१५८ श्लोक । संन्यासी विपत्कालमें भी कांसके पात्रमें नहीं खावे; क्योंकि कांसके पात्रमें खानेवाला मलभोजी कहताहै कांसके पात्रको बनानेवाले और उसमें खिलानेवाले दोनोंका पाप उसमें खानेवाले संन्यासीको लगताहै । सोने, लोहे, ताम्बे, कांसे अथवा चान्दीके पात्रमें खानेपर संन्यासी दूषित होताहै । संन्यासीके हाथमें प्रथम जल, फिर भिक्षा और फिर जल देना चाहिये; ऐसा करनेसे वह भिक्षाका अन्न मेरु पर्वतके समान और जल समुद्रके समान होताहै । पाराशरस्मृति-१ अध्यायके ५३ श्लोकमें भी इसी प्रकारसे संन्यासीके हाथमें जल और भिक्षा देनेको लिखाहै, । बृहत्पाराशरीशास्त्र--१०अध्याय, वानप्रस्थ आदि धर्म -३७ श्लोक । संन्यासीके लिये मिट्टी, बांस, काठ लौकी और पत्थरके पात्र कहेगयेहैं । शंखस्मृति-७ अध्याय,४-५ श्लोक । संन्यासीके लिये मिट्टी अथवा तुंबीका पात्र कहागयाहै, उनकी शुद्धि जलसे मांजनेपर होती है । वसिष्ठस्मृति-१० अध्याय-७ अङ्क । संन्यासी सदा मुण्डन करावे । बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-६ अध्याय,-२२ अङ्क । संन्यासी वनमें जाकर शिखा मुण्डन करावे ।

※ शंखस्मृति-७ अध्याय, २-४श्लोक । जब गृहस्थोंके घरमें रसोईका धूंआ बन्द होजावे, मूसल जहांका तहां रखदियाजावे, सब लोग खा चुके हों और पात्र जहां तहां रख दिये गये हों तब संन्यासी भिक्षाके लिये जावे । जिस घरमें भिक्षुक भिक्षा ले चुके हों उस घरसे भिक्षा नहीं मांगे, भिक्षा न मिलनेसे दुःखी नहीं होवें, जितनी भिक्षा मिले उतनीहीसे निर्वाह कर लेवे, अन्नको स्वादिष्ट नहीं बनावे तथा किसीके घरमें भोजन नहीं करे । वसिष्ठस्मृति-१० अध्याय-७ अङ्क । संन्यासीको चाहिये जब गृहस्थके घरका धूआं और मूसलका शब्द बन्द होजावे तब भिक्षाके लिये उसके घर जावे विष्णुस्मृति-४ अध्याय-१०श्लोक । मांगने अथवा विना मांगनेसे जो कुछ भिक्षा मिलजावे संन्यासी उसीसे अपना निर्वाह करे । संवर्त्तस्मृति-१०८ श्लोक । संन्यासीको उचित है कि भिक्षान्नको जलसे धोकर सावधानीसे भोजन करे । हारीतस्मृति-६ अध्याय, १२-१६ श्लोक । संन्यासी सांयकालमें ब्राह्मणोंके घर जाकर दाहने हाथसे ग्रास मांगे, बांये हाथमें पात्रको रखकर दाहने हाथसे उसमेंसे अन्नको निकाले,खानेसे अधिक अन्न भिक्षा नहीं मांगे, वहांसे लौटकर पात्रको दूसरे स्थानपर रक्खे, चार अङ्गुलोंसे ढांपकर सावधानीसे सब व्यञ्जनोंसहित एक ग्रास अन्न दूसरे पात्रमें धरे, उसको सूर्य आदि तथा भूत और देवताओंको देकर जल छिड़क देवे, उसके पश्चात् पत्तोंके दोनेमें अथवा पात्रमें मौन होकर भोजन करे बौधायनस्मृति-२प्रश्न १०अध्याय,-५७-६९ अङ्क । संन्यासीके भिक्षाका विधान कहतेहैं; संन्यासीको चाहिये कि गृहस्थ ब्राह्मण अथवा वानप्रस्थके घर वैश्वदेवकर्म समाप्त होनेपर जावे, "भवती भिक्षां देहि" कहकर भिक्षा मांगे, जितने समयमें गौ दुही जातीहै उतने समयतक वहां खड़ा रहे, भिक्षा प्राप्त होनेपर उसका पवित्र स्थानमें रखकर हाथ पांव धोके सूर्यको अर्पण करे,"उदुत्यं" और "चित्रन्" मन्त्रसे तथा "ब्रह्मज्ञानम्" मन्त्रसे ब्रह्म (आत्मा) को निवेदन करे, दया पूर्वक जीवोंका विभाग करके शेष अन्नको जलस-

अवेक्षेत गतीर्नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः । निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये ॥ ६१ ॥
विप्रयोग प्रियैश्चैव संयोगं च तथाप्रियैः । जरया चाभिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥ ६२ ॥
देहादुत्क्रमणं चास्मात्पुनर्गर्भे च सम्भवम् । योनिकोटिसहस्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः ॥ ६३ ॥
अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् । धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम् ॥ ६४ ॥
सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः । देहेषु च समुत्पत्तिमुत्तमेष्वधमेषु च ॥ ६५ ॥

संन्यासीको उचित है कि कर्मदोषसे मनुष्योंकी अनेकप्रकारकी गति होने, नरकमें पड़ने और यमलोककी पीड़ाका सदा चिंतन करे ॥ ६१ ॥ कर्मके दोषसे प्रियलोगोंका वियोग, अप्रियोंका मिलन, जरा और व्याधिका दुःख, मरना, जन्म लेना तथा बहुतसी योनियोंमें बारम्बार आना जाना होताहै, इसे विचारता रहे ॥ ६२–६३ ॥ जीवोंको अधर्मसे दुःख और धर्मसे अक्षय सुख होताहै; योगसे परमात्माके अन्तर्यामित्व सूक्ष्मरूपकी प्राप्ति होतीहै; शुभ और अशुभ फल भोगनेके लिये ऊंच तथा नीचयोनिमें जीव उत्पन्न होतेहैं, इसका विचार करे ❀ ॥ ६४–६५ ॥

दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः । समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ ६६ ॥
फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् । न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥ ६७ ॥

किसी आश्रममें स्थित होवे दूषित होनेपर भी अर्थात् आश्रमका चिह्नादि नहीं रहनेपर भी धर्मका आचरण करे और सब जीवोंको एकसमान दृष्टिसे देखे; आश्रमके चिह्न धारण करना ही धर्मका कारण नहीं है ॥ ६६ ॥ जैसे निर्मलीवृक्षका फल पानीमें डालनेसे पानी साफ होताहै, उसके नाम लेनेसे नहीं वैसे विहित कर्म करनेसे ही धर्मका पालन होताहै आश्रमके चिह्न धारण करनेसे नहीं ✿ ॥ ६७ ॥

संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावहनि वा सदा । शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत् ॥ ६८ ॥
अह्ना रात्र्या च याञ्जन्तून्हिनस्त्यज्ञानतो यतिः । तेषां स्नात्वा विशुध्यर्थं प्राणायामान्षडाचरेत् ॥ ६९ ॥
प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः । व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥ ७० ॥
दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः । तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ ७१ ॥

संन्यासीको उचित है कि शरीरमें दुःख होनेपर भी छोटे जन्तुओंकी रक्षाके लिये रातमें अथवा दिनमें सदा भूमिको देखकर चले; अज्ञानसे दिन और रातमें उससे जो जन्तु मरजातेहैं, उसके पापसे छूटनेके लिये नित्य स्नान करके वह ६ प्राणायाम करे ॥ ६८–६९ ॥ व्याहृति और प्रणवसे युक्त विधिपूर्वक तीन प्राणायाम करना ब्राह्मणके लिये श्रेष्ठ तपस्या है ॥ ७० ॥ जैसे आगमें तपानेसे सोना आदि धातुओंके मल जलजाते हैं वैसेही प्राणोंके रोकनेसे इन्द्रियोंके सब दोष भस्म होतेहैं ॥ ७१ ॥

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् । प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ७२ ॥
उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः । ध्यानयोगेन सम्पश्येद्गतिमस्यान्तरात्मनः ॥ ७३ ॥
सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबध्यते । दर्शनेन विहीनस्तु संसारम्प्रतिपद्यते ॥ ७४ ॥
अहिंसयेन्द्रियासंगैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः । तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ॥ ७५ ॥
अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् । चर्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ ७६ ॥

–स्पर्श करके औषधके समान थोडा भोजन करे, बाद आचमन करके "उद्वयन्तमसस्परि" मन्त्रको पढ़कर सूर्यकी स्तुति करे, "वाङ् म आसन्नसोः प्राणः" मन्त्रका जप करे, यदि विना मांगेहुए कोई मनुष्य बहुत भिक्षान्न देदेवे तो उसमेंसे प्राण रक्षा करने योग्य भोजन करे, सब वर्णोंसे भिक्षा लेवे अथवा द्विजातियोंसे एकान्न ले या सब वर्णोंसे एकान्न लेवे, द्विजातियोंसे एकान्न नहीं ले।

❀ याज्ञवल्क्यस्मृति– ३ अध्याय, ६२–६४ श्लोक। संन्यासीको उचित है कि विशेषकरके अन्तःकरणकी शुद्धि करे; क्योंकि वह ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण है और आत्मज्ञानमें स्वतन्त्र करनेवाली है। संन्यासी गर्भमें निवास, कर्मसे उत्पन्न गति, आधि अर्थात् चित्तकी पीड़ा, व्याधि अर्थात् शरीरका रोग, क्लेश, बुढापा रूपका बदलना, सहस्रों जातियोंमें जन्मलेना और प्रिय बात नहीं होना तथा अप्रिय बात होजाना; इन सबको विचारद्वारा देखकर ध्यानसे शरीरमें स्थित सूक्ष्म आत्माको देखे।

✿ याज्ञवल्क्यस्मृति—३ अध्याय–६५ श्लोक। धर्मके आचरणमें कोई आश्रम कारण नहीं है, करनेसे सब आश्रमोंमें धर्म होताहै, इस लिये जो बात अपने अच्छी नहीं लगे वह दूसरेके साथ नहीं करना चाहिये।

जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् । रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥ ७७ ॥
नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा । तथा त्यजन्निमन्देहं कृच्छ्राद् ग्रामाद्विमुच्यते ॥७८ ॥
प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् । विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति सनातनम् ॥ ७९ ॥
यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः । तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ ८० ॥
अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा संगाञ्शनैःशनैः । सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ ८१ ॥
ध्यानिकं सर्वमेवैतद्यदेतदभिशब्दितम् । न ह्यनध्यात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्नुते ॥ ८२ ॥
अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च । आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत् ॥ ८३ ॥
इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम् । इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥ ८४ ॥

संन्यासीको चाहिये कि प्राणायामसे रागआदि दोषोंको जलावे, धारणासे चित्तबन्धनरूपी सब पापोंका नाश करे, प्रत्याहारसे विषयोंमें जानेवाली इन्द्रियोंको विषयोंसे निवारण करे और ध्यानसे काम क्रोध आदि गुणोंको जीतलेवे ॥ ७२ ॥ आत्मज्ञानसे रहित लोग नहीं जानसकते हैं कि जीवोंका ऊंचयोनि और नीचयोनिमें किस कारणसे जन्म होताहै; क्योंकि ध्यानयोगसे ही वह जाना जा सकताहै, इसलिये ध्यान-परायण होना चाहिये ॥ ७३ ॥ आत्मदर्शनयुक्त मनुष्य कर्मोंसे नहीं बंधतेहैं; आत्मदर्शनरहित लोगोंकोही सांसारिक गति प्राप्त होतीहै ॥ ७४ ॥ इन्द्रियोंको विषयोंसे रोकनेसे, वैदिक कर्म करनेसे और कठिन तपस्यासे ब्रह्मपद मिलता है ॥ ७५ ॥ यह शरीर हड्डीरूपी स्तम्भसे पूर्ण, स्नायुसे युक्त, मांस तथा लोहूसे लिप्त चमडेसे ढकाहुआ, मूत्रविष्ठासे पूरित, दुर्गन्ध मय, बुढापा और शोकसे युक्त, विविध रोगोंका स्थान क्षुधा पिपासा आदिसे पीडित, रजोगुण युक्त, अनित्य और पृथ्वी आदि पञ्चभूतोंका निवास स्थान है, इस लिये जिसमें फिर इस शरीरमें नहीं आना पडे ऐसी चेष्टा करना चाहिये ॥ ७६–७७ ॥ जैसे वृक्ष नदीके तटको अथवा पक्षी वृक्षको त्याग देते हैं वैसेही ज्ञानवान् जीव प्राकृत कर्म शेष करके देहरूपी अवलम्बन तथा संसार बन्धनसे मुक्त होतेहैं ॥ ७८ ॥ वह अपना प्रिय करनेवालोंमें धर्मको और अप्रिय करनेवालोंमें पापको छोड़कर ध्यानके योगसे सनातन ब्रह्मको पाताहै ॥ ७९ ॥ जब विषयोंमें दोषोंकी भावना करके सब विषयोंमें अभिलाषारहित होताहै तब इसलोकमें सन्तोषसे उत्पन्न सुख मिलताहै और परलोकमें मोक्ष सुखको प्राप्त करताहै ॥ ८० ॥ इसी प्रकार धीरे २ सबके सङ्गोंको छोड़कर और मान, अपमान, सुखदुःख आदि द्वंद्व भावोंसे छूटकर संन्यासी ब्रह्ममें लीन होजाता है ॥ ८१ ॥ जो कुछ कर्मबल कहागया वह ध्यान परायण लोगोंको प्राप्त होताहै; आत्मज्ञानसे रहित मनुष्य किसी कर्मका फल नहीं पासकता है ॥ ८२ ॥ यज्ञ और देवता सम्बन्धी वेदमन्त्र तथा परमात्मा विषयक और वेदान्तसंबंधी वेद मन्त्रका सदा जप करना चाहिये क्योंकि स्वर्ग और मोक्षकी इच्छा करनेवाले ज्ञानवान् लोगोंके लिये केवल वेदही अवलम्ब है ॥ ८३–८४ ॥

अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः । स विधूयेह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ८५ ॥

जो द्विज इसक्रमसे संन्यासधर्मपर चलता है वह इस लोकमें सब पापोंसे रहित होकर परब्रह्मके पास जाताहै * ॥ ८५ ॥

एष धर्मोऽनुशिष्टो वो यतीनां नियतात्मनाम् । वेदसंन्यासिकानान्तु कर्मयोगं निबोधत ॥ ८६॥
चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः । दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥ ९१ ॥
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ ९२ ॥
दशलक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते । अधीत्य चानुवर्त्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥९३॥
दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः । वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः ॥ ९४ ॥
संन्यस्य सर्वकर्माणि कर्मदोषानपानुदन् । नियतोवेदमभ्यस्य पुत्रैश्वर्ये सुखं वसेत् ॥ ९५ ॥
एवं संन्यस्य कर्माणि स्वकार्यपरमोऽस्पृहः । संन्यासेनापहत्यैनः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ९६ ॥

संयतात्मा संन्यासियोंका यह श्रेष्ठ धर्म मैंने कहा, अब वेदसंन्यासियोंका कर्मयोग कहताहूं ॥ ८६ ॥ चारों आश्रमोंमें रहनेवाले द्विजोंको नीचे लिखेहुए १० प्रकारका धर्म यत्नपूर्वक करना चाहिये ॥ ९१ ॥ सन्तोष-धारण, क्षमा, दम, चोरी नहीं करना, शौच, इन्द्रियनिग्रह, शास्त्रका तत्त्वज्ञान, विद्या, सत्य और क्रोध नहीं करना; ये १० धर्मके लक्षण हैं ॥ ९२ ॥ जो ब्राह्मण धर्मके इन दस लक्षणोंका अभ्यास रखताहै वह परम-

---

* हारीतस्मृति–६ अध्याय–२२श्लोक । जो संन्यासी अपने धर्ममें तत्पर, शान्त, सब प्राणियोंको समान देखनेवाला तथा इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला है वह उस स्थानको पाताहै जहांसे लौटना नहीं होता । शङ्खस्मृति–७ अध्याय–८श्लोक । जो संन्यासी (ऊपरके श्लोकमें कहेहुए) संन्यास धर्मका पालन करता है वह परम गतिको प्राप्त होताहै ।

गतिको प्राप्त होताहै ॥ ९३ ॥ द्विजको उचित है कि स्थिरमनसे इन १० प्रकारके धर्मोंको करताहुआ यह ॥ पूर्वक सम्पूर्ण वेद जानकर देवता, पितर और ऋषियोंके ऋणसे छूटकर संन्यास ग्रहण करे ॥ ९४ ॥ अग्निहोत्र आदि सब कर्मोंको छोड़कर प्राणायाम आदिसे सब दोषोंको नष्ट करतेहुए निरन्तर वेदका अभ्यास करे और पुत्रक दियेहुए भोजन वस्त्र ग्रहण करके सुखसे (घरहीमें) निवास करे ॥ ९५ ॥ इस प्रकारसे सब कर्मोंको त्यागकर आत्माके साक्षात्कार करनेमें तत्पर रहनेवाला मनुष्य संन्यास बलसे पापरहित होकर मोक्षरूप परम गति पाता है॥ ९६ ॥

(३) अत्रिस्मृति ।

चरेन्माधुकरीं वृत्तिं अपि म्लेच्छकुलादपि । एकान्नं नैव भोक्तव्यं बृहस्पतिसमो यदि ॥ १५९ ॥
अनापदि चरेद्यस्तु सिद्धं भैक्षं गृहे वसन् । दशरात्रं पिबेद्वज्रमापस्तु त्र्यहमेव च ॥ १६० ॥
गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं घृतपाचितम् । एतद्वज्रमिति प्रोक्तं भगवानात्रिरब्रवीत् ॥ १६१ ॥

संन्यासीको उचित है कि जैसे भंवरा बहुत फूलोंसे थोड़ा२रस लेताहै वैसे ही भिक्षा मांगे भिक्षा नहीं मिलनेपर म्लेच्छोंके कुलमें भी अनेक घरसे भिक्षा मांगकर खावे; किन्तु एकमनुष्यके घरका अन्न यदि वह बृहस्पतिके समान श्रेष्ठ होवे तौ भी नहीं भोजन करे * ॥ १५९ ॥ जो संन्यासी विना आपत्कालके कभी घरमें वसकर बनीबनाई रसोई भोजन करताहै वह अपनी शुद्धिके लिये १० रात तक वज्रपान करके और ३ रात जल पीकर रहे ॥ १६० ॥ घीमें पकेहुए गोमूत्रमिश्रित यवके रसको वज्र कहतेहैं ऐसा भगवान् अत्रिने कहाहै ॥ १६१ ॥

(४) विष्णुस्मृति–४ अध्याय ।

पर्यटेत्कीटवद्भूमिं वर्षास्वेकत्र संविशेत् । वृद्धानामातुराणां च भीरूणां सङ्गवर्जितः ॥ ६ ॥
सम्भाषणं सह स्त्रीभिरालम्भप्रेक्षणे तथा ॥ ८ ॥
नृत्यं गानं सभासेवां परिवादांश्च वर्जयेत् । वानप्रस्थगृहस्थाभ्यां प्रीतिं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ९ ॥

संन्यासी कीड़ेके समान भूमिपर विचरे किन्तु; वर्षाकालमें एकही स्थानमें रहे, वृद्ध, रोगी और डरपोंके मनुष्यका सङ्ग कभी नहीं करे † ॥ ६ ॥ स्त्रियोंसे बोलना, उनका स्पर्श करना, उनको देखना, नाच, गान, सभा, सेवा और निन्दाको त्याग देवे और वानप्रस्थ तथा गृहस्थ इनकी प्रीति यत्न-पूर्वक छोड़देवे ॥ ८–९ ॥

(४ क) बृहद्विष्णुस्मृति–९६ अध्याय ।

निराशीः स्यात् ॥ २१ ॥ निर्नमस्कारः ॥ २२ ॥

संन्यासी किसीको आशीर्वाद नहीं देवे तथा किसीको नमस्कार नहीं करे ॥ २१–२२ ॥

(५) हारीतस्मृति–६ अध्याय ।

कौपीनाच्छादनं वासः कन्थां शीतनिवारिणीम् ॥ ७ ॥
पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥ ८ ॥

गुदालिङ्ग आच्छादनके लिये लङ्गोटी शीत निवारणके लिये गुदडी और खडाऊं संन्यासी ग्रहण करे, अन्य वस्तुका संग्रह नहीं करे ‡ ॥ ७–८ ॥

(१५) शङ्खस्मृति– ५ अध्याय ।

न दण्डेन च मौनेन शून्यागाराश्रयेण च । यतिः सिद्धिमवाप्नोति योगेनाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १२॥

---

* बृहद्विष्णुस्मृति—९६ अध्याय– ३ अङ्क । शङ्खस्मृति–७अध्याय–३ श्लोक और वासिष्ठस्मृति–१० अध्याय–७ अङ्क । संन्यासी ७ घरसे भिक्षा मांगकर भोजन करे । संवर्त्तस्मृति–१०७–१०८ श्लोक । संन्यासी आठ सात अथवा पांच घरसे भिक्षा मांगकर उसपर जल छिड़कके सावधानीसे भोजन करे ।

† कण्वस्मृति–संन्यासी गांवमें एक रात, नगरमें पांच रात तक और वर्षाऋतुमें किसी स्थानमें चारमास निवास करे (१०) ।

‡ विष्णुस्मृति–४अध्यायके ७–८ श्लोकमें भी ऐसा है । बृहद्विष्णुस्मृति–९६अध्याय–१३अङ्क । गुदालिङ्ग आच्छादनके लिये लङ्गोटी संन्यासी धारण करें । शंखस्मृति– ७ अध्याय– ५ श्लोक । संन्यासी गुदालिङ्ग आच्छादनके लिये लङ्गोटी धारण करे । वसिष्ठस्मृति—१० अध्याय–८ अङ्क । संन्यासी लंगोटी अथवा मृगछाला धारण करे । गौओंके खानेसेबची घास शरीरमें लपेटे और चबूतरेपर शयन करे । दूसरी देवलस्मृति—संन्यासी गेरुआ वस्त्र, त्रिदण्ड, कमण्डलु, खडाऊं, आसन और कंथा मात्र रक्खे ॥ ७ ॥

जराशोकसमान्वि
नदीन्दण्ड धारण करने, मौन रहने और निर्जन गृहमें वसनेसे संन्यासी सिद्धिको नहीं पाता, किन्तु योगसे उत्तम गति पाताहै अर्थात् विना योगके संन्यासीका दण्डधारण आदि कर्म व्यर्थ है ॥ १२ ॥

(१७) दक्षस्मृति-७ अध्याय ।

एको भिक्षुर्यथोक्तस्तु द्वौ भिक्षू मिथुनं स्मृतम् । त्रयो ग्रामः समाख्याता ऊर्ध्वन्तु नगरायते॥३६॥
नगरं हि न कर्त्तव्यं ग्रामो वा मिथुनन्तथा । एतत्त्रयन्तु कुर्वाणः स्वधर्माच्चियवते यतिः ॥३७ ॥
राजवार्त्तादि तेषान्तु भिक्षावार्त्ता परस्परम् । स्नेहपैशुन्यमात्सर्यं सन्निकर्षादिसंशयम् ॥ ३८ ॥
लाभपूजानिमित्तं हि व्याख्यानं शिष्यसंग्रहः । एते चान्ये च बहवः प्रपञ्चास्तु तपस्विनाम्॥३९॥
ध्यानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकान्तशीलता । भिक्षोश्चत्वारि कर्माणि पञ्चमं नोपपद्यते॥४०॥
यस्मिन्देशे वसेद्योगी ध्यानयोगविचक्षणः । सोपि देशो भवेत्पूतः किं पुनर्यस्य बान्धवः ॥ ४१॥

संन्यासीको अकेला रहना उचित है; क्योंकि उसके लिये दो मनुष्यका एक साथ रहना मिथुन कहाता है, तीन मनुष्यका एक साथ रहना ग्राम कहा जाताहै और इससे अधिकका सङ्ग नगर कहाताहै ॥ ३६ ॥ इसलिये संन्यासी नगर ग्राम और मिथुनका सङ्ग नहीं करे, क्योंकि जो संन्यासी इन तीनोंमें किसीका सङ्ग करताहै वह अपने धर्मसे पतित होजाताहै ॥ ३७ ॥ मनुष्यके सङ्ग होनेसे निःसन्देह राजाकी, भिक्षाकी, स्नेहकी, चुगलीकी और मत्सरताकी बातें और चर्चा परस्पर होतीहै ॥ ३८ ॥ व्याख्यान देना और शिष्योंका संग्रह करना पूजा मिलनेके लिये है; ये सब और अन्य भी बहुतसे काम तपस्वियोंके प्रपञ्च हैं ॥ ३९ ॥ ध्यान करना, पवित्र रहना, भिक्षा मांगकर खाना और एकान्तमें रहनेका स्वभाव रखना; संन्यासीके ये चार नित्य कर्म हैं; पांचवां नहीं ❀ ॥ ४० ॥ ध्यान और योगमें चतुर योगी जिस देशमें रहताहै वह देश भी जब पवित्र हो जाता है तब उसके कुटुम्बी लोग क्यों नहीं पवित्र होंगे ॥ ४१ ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति-६ अध्याय ।

एका लिङ्गे करे तिस्र उभाभ्यां द्वे तु मृत्तिके । पञ्चापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ॥१६॥
एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः । वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनान्तु चतुर्गुणम् ॥ १७ ॥
अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्तं वानप्रस्थस्य षोडश । द्वात्रिंशच्च गृहस्थस्य अमितं ब्रह्मचारिणः ॥ १८ ॥

मूत्र त्याग करनेपर लिङ्गमें १ बार, बांये हाथमें ३ बार और दोनों हाथोंमें २ बार, और विष्ठा त्यागने, पर गुदामें पांच बार बांये हाथमें १० बार और दोनों हाथोंमें ७ बार मिट्टी लगाना चाहिये; यह शौच गृहस्थके लिये है; ब्रह्मचारी इससे दूना वानप्रस्थ तिगुणा और संन्यासी चौगुणा शौच करे ॥ १६-१७ ॥ संन्यासी ८ ग्रास, वानप्रस्थ १६ ग्रास और गृहस्थ ३२ ग्रास (कवल) भोजन करे और ब्रह्मचारी विना परिमाणका ग्रास खावे ❁ ॥ १८ ॥

१० अध्याय ।

संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत् । वेदसंन्यसनाच्छूद्रस्तस्माद्वेदं न संन्यसेत् ॥ ५ ॥
एकाक्षरपरं ब्रह्म प्राणायामः परन्तपः । उपवासात्परं भैक्ष्यं दया दानाद्विशिष्यते ॥ ६ ॥

संन्यासी सब कर्मोंको त्याग देवे; परन्तु वदका त्याग नहीं करे; क्योंकि वेदत्याग करनेवाला शूद्र हो-जाताहै इससे वेदको नहीं त्यागे ॥ ५ ॥ ॐकर परमोत्तम वेद है, प्राणायाम परम तपस्या है, भिक्षामांगकर खाना उपवाससे श्रेष्ठ है और दया दानसे बड़ा है ॥ ६ ॥

अव्यक्तलिङ्गोव्यक्ताचारः अनुन्मत्तवेषः ॥ १२ ॥

संन्यासीको उचित है कि महात्मापनके चिह्न प्रकट नहीं करे पर शुद्ध आचार प्रकट रक्खे, ऊपरके वेषसे उन्मत्त जानपड़े; किन्तु भीतरसे विचारके लिये उन्मत्त नहीं रहे ॥ १२ ॥

ग्रामे वा वसेत् ॥ २० ॥ अजिह्मोऽशरणोऽसंकुसुको न चेन्द्रियसंयोगं कुर्वीत केनचित् ॥ २१ ॥
उपेक्षकः सर्वभूतानां हिंसानुग्रहपरिहारेण ॥ २२ ॥

❀ बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-१० अध्याय, ४०—४२ श्लोक । तीन, दो अथवा पांच संन्यासी एक साथ नहीं रहें, क्योंकि यदि ऐसा करेंगे तो उनका नाश होजायगा । जहां अनेक संन्यासी एकत्र होतेहैं वहां स्नेह, चुगुलई, मत्सरता, भिक्षुक, राजा आदिकी विचित्र बातें होतीहैं इसलिये तपकी इच्छावाले संन्यासी एकान्तमें रहे ।

❁ वानप्रस्थप्रकरणमें इसकी टिप्पणी देखिये ।

अथवा संन्यासी गांवमें ही वसे ॥ २० ॥ कुटिलता नहीं करे, किसीका सहारा नहीं लेवे, चैन त्यागदेवे और किसी विषयके साथ इन्द्रियोंका सङ्ग न करे ॥ २१ ॥ किसीको दुःखदेने या किसीपर अनुग्रह करनेकी चेष्टा नहीं करे, सब प्राणियोंसे उदासीनभाव रक्खे ॥ २२ ॥

(२२) बौधायनस्मृति–२ प्रश्न–१० अध्याय ।

केशश्मश्रुलोमनखानि वापयित्वोपकल्पयते॥१०॥ यष्टयः शिक्यं जलपवित्रं कमण्डलुं पात्रमिति ॥११॥एतत्समादाय ग्रामान्ते ग्रामसीमान्तेऽग्न्यागारे वाऽऽज्यं पयो दधीति त्रिवृत्प्राश्योपविशेत्१२॥ अपो वा ॥ १३ ॥ ॐ भूः सावित्रीम्प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १४ ॥ ॐ भुवः सावित्रीम्प्रविशामि भर्गोदेवस्य धीमहि ॥१५॥ ॐ स्वः सावित्रीम्प्रविशामि धियो योनः प्रचोदयादिति ॥ १६ ॥ पच्छोऽर्धर्चशस्ततः समस्तया च व्यस्तया च ॥ १७ ॥ पुराऽऽदित्यस्यास्तमयाद्गार्हपत्यमुपसमाधायान्वाहार्य पचनमाहृत्य ज्वलन्तमाहवनीयमुद्धृत्य गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा समिद्धत्याहवनीये पूर्णाहुतिं जुहोति ॐ स्वाहेति ॥ २२॥ एतद्ब्रह्मान्वाधानमिति विज्ञायते ॥ २३ ॥ अथ सायं हुतेऽग्निहोत्र उत्तरेण गार्हपत्यं तृणानि संस्तीर्य तेषु द्वंद्वंन्यञ्चिपात्राणि सादयित्वा दक्षिणेनाऽऽहवनीयं ब्रह्मा यतते दर्भान्संस्तीर्य तेषु कृष्णाजिनं चान्तर्धायैतां रात्रिं जागर्ति॥२४॥अथ ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय काल एव प्रातरग्निहोत्रं जुहोति॥२६॥ अथ पृष्ठ्यां स्तीर्त्वाऽपः प्रणीय वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपति सा प्रसिद्धेष्टिः संतिष्ठते ॥ २७ ॥ आहवनीयेऽग्निहोत्रपात्राणि प्रक्षिपत्यमृन्मयान्यनश्मयानि ॥२८॥ गार्हपत्येऽरणी ॥२९॥ भवतन्नः समनसाविति आत्मन्यग्नीन्समारोपयते ॥ ३० ॥ याते अग्ने यज्ञिया तनूरिति त्रिस्त्रिरेकैकं समाजिघ्रति ॥ ३१ ॥ अथान्तर्वेदितिष्ठत् ॐ भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं मया सन्यस्तं मया सन्यस्तं मयेति त्रिरुपांशूक्त्वा त्रिरुच्चैः ॥ ३२ ॥ त्रिषत्याहि देवा इति विज्ञायते ॥ ३३ ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्त इति चापां पूर्णमञ्जलिं निनयति ॥ ३४॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ३५ ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः । न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयं चापीह जायत इति ॥ ३६ ॥ स वाचंयमो भवति ॥ ३७ ॥ सखामागोपायेति दण्डमादत्ते ॥ ३८ ॥ यदस्यपारे रजस इति शिक्यं गृह्णाति ॥ ३९ ॥ येन देवाः पवित्रेणोति जलपवित्रं गृह्णाति ॥ ४० ॥ येन देवा ज्योतिषोर्द्ध्वा उदायन्निति कमण्डलुं गृह्णाति ॥ ४१ ॥ सप्तव्याहृतिभिः पात्रं गृह्णाति ॥ ४२ ॥ यष्टयः शिक्यं जलपवित्रं पात्रमित्येतत्समादाय यत्रापस्तद्गत्वा स्नात्वाऽप आचम्य सुरभिमत्याऽब्लिङ्गाभिर्वारुणीभिर्हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिरिति मार्जयित्वाऽन्तर्जलगतोऽघमर्षणेन षोडश प्राणायामान्धारयित्वोत्तीर्य वासः पीडयित्वाऽन्यत्प्रयतं वासः परिधायाऽप आचम्य ॐ भूर्भुवः सुवरिति जलमादाय तर्पयति ॥ ४३ ॥ ॐ भूस्तर्पयाम्योंभुवस्तर्पयाम्योंसुवस्तर्पयाम्योंमहस्तर्पयाम्योंजनस्तर्पयाम्योंतपस्तर्पयाम्योंसत्यं तर्पयामीति ॥ ४४ ॥ देववत्पितृभ्योऽञ्जलिमादाय ॐ भूः स्वधोंभुवः स्वधोंसुवः स्वधोंभूर्भुवः सुवर्महर्न्नम इति ॥ ४५ ॥ अथोदुत्यं चित्रमिति द्वाभ्यामादित्यमुपतिष्ठते ॥ ४६ ॥ ओमिति ब्रह्म ब्रह्म वा एष ज्योतिर्य एष तपत्येष वेदो य एष तपति वेद्यमेवैतद्य एष तपति एवमेवैष आत्मानं तर्पयत्यात्मने नमस्करोति ॥ ४७ ॥ आत्मा ब्रह्मात्मा ज्योतिः ॥ ४८ ॥ सावित्रीं सहस्रकृत्व आवर्तयेच्छतकृत्वोऽपरिमितकृत्वो वा ॥ ४९ ॥ ॐ भूर्भुवः सुवरिति जलपवित्रमादायापो गृह्णाति॥५०॥ न चात ऊर्द्ध्वमनुद्धृताभिरद्भिरपरिस्रुताभिरपरिपूताभिर्वाऽऽचामेत् ॥ ५१ ॥ न चात उर्ध्वं शुक्लवासो धारयेत् ॥ ५२ ॥

संन्यास ग्रहण करनेवालेको उचित है कि प्रथम सिरके बाल, दाढी, मूंछ, बगलके बाल और नखोंको मुण्डवाकर और दण्ड, शिक्य (छीका)और पवित्र जलयुक्त कमण्डलु लेकर गांवके समीप अथवा गांवकी सीमाके निकट या अग्निशालामें जावे; वहां घी, दूध और दहीका अथवा जलका ३ बार प्राशन करके बैठे ॥१०-१३॥ इन मन्त्रोंको पढे;– ॐ भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम् ॐ भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि ॐ सुवः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयादिति ॥ १४–१६ ॥ प्रथमावृत्तिमें पादपाद, द्वितीयावृत्तिमें आधाआधा, तृतीयावृत्तिमें समस्त गायत्री और चतुर्थावृत्तिमें फिर पादपाद गायत्री जपे ॥ १७ ॥ सूर्य अस्त होनेके पहिले गार्हपत्य अग्निको स्थापित करके विधिपूर्वक अन्वाहार्य (अमावास्याका श्राद्ध) करे; घीको गार्हपत्य अग्निसे उतारकर पवित्रोंसे ऊपरको उछाले; स्रुक्में ४ स्रुवा घी भरकर ॐ स्वाहा कहकर-

जराशोकहवनीय अग्निमें पूर्णाहुति देवे ॥ २२ ॥ इसीको ब्रह्मान्वाधान कहतेहैं, ऐसा जानपड़ता है ॥ २३ ॥ उसके पश्चात् सायंकालका होम करके गार्हपत्याग्निके उत्तर तृणको बिछावे, उसके ऊपर दो दो पात्र एकसाथ रक्खे, आहवनीय अग्निके दक्षिण ब्रह्माके स्थानमें कुशाके ऊपर काली मृगछाला बिछावे, उसके ऊपर स्थित होकर रातभर जागे ॥ २४ ॥ उसके बाद ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठकर प्रातःकाल अग्निहोत्रका हवन करे ॥ २६ ॥ उसके पश्चात् अग्निके पीछेकी ओर कुशाको बिछाकर प्रणीतामें जल भरे और वैश्वानर सम्बन्धी द्वादशकपाल सिद्ध करके प्रसिद्ध इष्टि (यज्ञ) को करे ॥ २७ ॥ आहवनीय अग्निमें मिट्टी और पत्थरके पात्रोंको छोडकर अग्निहोत्रके अन्य सब पात्रोंको डालदेवे और गार्हपत्य अग्निमें अरणीको डालदे ॥२८–२९ ॥ " भवतन्नः समनसौ " इस मन्त्रसे अपने आत्मामें अग्निको स्थापित करदेवे ॥३०॥ "याते अग्ने यज्ञियातनुः" इस मन्त्रसे एक एकको ३ बार सूंघे ॥ ३१ ॥ वेदीके मध्यमें खड़ा होकर ३ बार धीरेसे और ३ बार उच्च स्वरसे कहै कि ॐ भूर्भुवः सुवः " हम संन्यासी हैं ॥ ३२ ॥ यह त्रिपत्यादेव कहाते हैं, ऐसा जानपड़ताहै ॥ ३३ ॥ " अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः " इस मन्त्रसे अञ्जलीमें जल ग्रहण करके गिरावे; जो संन्यासी ऐसा करता है उसको किसी जीवसे कभी भय नहीं होता है और वह वाणीको जीतलेताहै ॥ ३४–३७ ॥ "सखा-यागोपाय" मन्त्रसे दण्डको,"यदस्यपारे रजसः"मन्त्रसे शिक्यको,"येन देवाः पवित्रेण"मन्त्रसे पवित्र जलको, "येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन"मन्त्रसे कमण्डलुको और सप्तव्याहृतिसे पात्रको संन्यासी ग्रहणकरे॥३८-४२॥ इनको ग्रहण करके जलके पास जाकर स्नान और आचमन करे; " सुरभिमत्या, हिरण्यवर्णा और पावमानी" मन्त्रोंसे मार्जन करके और अघमर्षण जप कर १६ प्राणायाम करे, जलसे बाहर निकलकर पवित्र वस्त्र पहने और आचमन करके " ओंभूर्भुवः सुवः " इस मन्त्रसे पवित्र जल ग्रहण करके तर्पण करे ॥ ४३ ॥ ॐ भूस्तर्पयाम्यों, भुवस्तर्पयाम्यों, सुवस्तर्पयाम्यों,महस्तर्पयाम्यों, जनस्तर्पयाम्यों, तपस्तर्पयाम्यों, सत्यंतर्पयाम्यों, ओं भूः स्वधों; भुवः स्वधों, सुवःस्वधों भूर्भुवः सुवर्ममहर्नमः तर्पणसे समय इस प्रकारके देवता और पितरोंको अञ्जलीसे जलदेवे ॥४४–४५॥ उसके बाद" उदुत्यम् और चित्रम्" इन दो मन्त्रोंसे सूर्यकी स्तुति करे ॥४६॥ ओंकार ब्रह्म है वा ब्रह्मकी ज्योति है, जो इसको तपाता है वही वेद है वही जानने योग्य है, जिस प्रकार तपता है उसी प्रकारसे आत्माको तृप्त करताहै, उस आत्माको नमस्कार करतेहैं, आत्मा ब्रह्मके आत्माकी ज्योति है; ऐसा कहे ॥ ४७–४८ ॥ एक हजार बार या एकसौ बार अथवा असंख्य बार सावित्रीका जप करे ॥ ॥ ४९ ॥ " ॐ भूर्भुवः सुवः " इस मन्त्रसे पवित्र जल लाकर उसको ग्रहण करे ॥ ५० ॥ इसके बाद विना निकाले हुए कूप आदिके जल, विना बहतेहुवे नदी आदिके जल और विना पवित्र कियेहुवे जलसे आचमन नहीं करे और शुक्ल वस्त्र नहीं धारण करे ॥ ५१–५२ ॥

एकदण्डी त्रिदण्डी वा ॥ ५३ ॥ अथेमानि व्रतानि भवन्ति ॥ ५४ ॥ अहिंसा सत्यमस्तेन्यं मैथुनस्य च वर्जनम् । त्याग इत्येव पञ्चैवोपव्रतानि भवन्ति ॥ ५५ ॥ अक्रोधो गुरुशुश्रूषाऽप्रमादः शौचमाहारशुद्धिश्चेति ॥ ५६ ॥

संन्यासी एक दण्ड अथवा तीन दण्ड धारण करे ❀ ॥ ५३ ॥ हिंसा नहीं करना, सत्य बोलना चोरी नहीं करना, मैथुन नहीं करना और सदा त्याग रखना; इन ५ व्रतोंको और क्रोधरहित होना, गुरुका आदर करना, प्रमाद रहित रहना, पवित्र रहना और शुद्ध आहार करना; इन ५ उपव्रतोंको ग्रहण करे ॥ ५४–७६ ॥

संन्यासीके विषयमें अनेक बातें. २.

(४) विष्णुस्मृति--४ अध्याय ।

चतुर्विधा भिक्षुकाः स्युः कुटीचकबहूदकौ ॥ ११ ॥
हंसः परमहंसश्च पश्चाद्यो यः स उत्तमः । एकदण्डी भवेद्वापि त्रिदण्डी वापि वा भवेत् ॥ १२ ॥

संन्यासी ४ प्रकारके होतेहैं; कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस; इनमें कुटीचकसे बहूदक, बहूदकसे हंस और हंससे परमहंस उत्तम हैं ॥ ११–१२ ॥

त्यक्त्वा सर्वसुखास्वादं पुत्रैश्वर्यसुखं त्यजेत् । अपत्येषु वसेन्नित्यं ममत्वं यत्नतस्त्यजेत् ॥ १३ ॥
नान्यस्य गेहे भुञ्जीत भुञ्जानो दोषभाग्भवेत् । कामं क्रोधं च लोभं च तथेर्ष्या सत्यमेव च ॥ १४॥
कुटीचकस्त्यजेत्सर्वं पुत्रार्थं चैव सर्वतः । भिक्षाटनादिकेऽशक्तो यतिः पुत्रेषु संन्यसेत् ॥ १५ ॥
कुटीचक इति ज्ञेयः परिव्राट्त्यक्तबान्धवः । त्रिदण्डं कुण्डिकां चैव भिक्षाधारं तथैव च ॥ १६ ॥

❀ चतुर्विंशविका मत है कि ब्रह्मविद्यामें तत्पर होकर संन्यासाश्रममें जावे, एकदण्ड अथवा तीन दण्ड धारण करके सब संगोंसे रहित हो निवास करे (४) ।

१ कुटीचक । कुटीचक संन्यासी एक दण्ड या तीन दण्ड धारण करे, सब सुखोंके स्वाद और पुत्रोंके सुखको त्याग करके और यत्नसे ममताको छोडकर नित्य अपने पुत्रोंके साथमें ही निवास करे ॥ १२-१३ ॥ अन्यके घरमें भोजन नहीं करे क्योंकि परके घरमें खानेसे वह दोषका भागी होताहै; काम, क्रोध, लोभ, ईर्षा, और झुठाईको त्याग देवे; और पुत्रके लिये अन्न, धन आदि सब कुटीचक संन्यासी छोड़ देवे; भिक्षाटन आदिमें असमर्थ होकर वह अपना शरीर अपने पुत्रको ही सौंप देवे अर्थात् घरमेंही भोजनादि निर्वाह करे, इसको कुटीचक संन्यासी कहतेहैं ॥ १४-१६ ॥

सूत्रं तथैव गृह्णीयान्नित्यमेव वहूदकः । प्राणायामेष्वभिरतो गायत्रीं सततं जपेत् ॥ १७ ॥
विश्वरूपं हृदि ध्यायन्नयेत्कालं जितेन्द्रियः । ईषत्कृतकषायस्य लिङ्गमाश्रित्य तिष्ठतः ॥ १८ ॥
अन्नार्थं लिङ्गमुद्दिष्टं न मोक्षार्थमिति स्थितिः ।

२ वहूदक । वहूदक संन्यासीको उचित है कि निज बान्धवोंको त्यागकर त्रिदण्ड, कुण्डी, भिक्षाका पात्र और जनेऊ नित्य धारण करे, प्राणायाममें तत्पर रहकर सदा गायत्री जपे ॥ १६-१७ ॥ हृदयमें विश्वरूप भगवान्का ध्यान करता हुआ इन्द्रियोंको जीतकर कालको बितावे; गेरुआ वस्त्रका चिह्न धारण करे, जो अन्न मिलनेके लिये है, मोक्षके लिये नहीं * ॥ १८-१९ ॥

त्यक्त्वा पुत्रादिकं सर्वं योगमार्गं व्यवस्थितः ॥ १९ ॥
इन्द्रियाणि मनश्चैव कर्षन्हंसोभिधीयते । कृच्छ्रैश्चान्द्रायणैश्चैव तुलापुरुषसंज्ञकैः ॥ २० ॥
अन्यैश्च शोषयेद्देहमाकाङ्क्षन्ब्रह्मणः पदम् । यज्ञोपवीतं दण्डं च वस्त्रं जन्तुनिवारणम् ॥ २१ ॥
अयं परिग्रहो नान्यो हंसस्य श्रुतिवेदिनः । आध्यात्मिकं ब्रह्म जपन्प्राणायामांस्तथाचरन् ॥ २२ ॥

३ हंस । जो सम्पूर्ण पुत्रादिकोंको त्यागकर योगमार्गमें टिकताहै और मन तथा इन्द्रियोंको वशमें रखताहै उसको हंस संन्यासी कहतेहैं; उसको उचित है कि मोक्षकी इच्छा करताहुआ प्राजापत्य, चान्द्रायण, तुलापुरुष और अन्य व्रतोंको करके अपने शरीरको सुखादेवे यज्ञोपवीत, दण्ड और दंश आदि जन्तुओंके निवारणके लिये वस्त्र धारण करे; वेदके जाननेवाले हंस संन्यासीका यही परिग्रह है; अन्य नहीं ॥ १९-२२ ॥

वियुक्तः सर्वसंगेभ्यो योगी नित्यं चरेन्महीम् । आत्मनिष्ठः स्वयं युक्तस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ २३ ॥
चतुर्थोऽयं महानेषां ध्यानभिक्षुरुदाहृतः । त्रिदण्डं कुण्डिकां चैव सूत्रं चाथ कपालिकाम् ॥ २४ ॥
जन्तूनां वारणं वस्त्रं सर्वं भिक्षुरिदं त्यजेत् । कौपीनाच्छादनार्थं च वासोधश्च परिग्रहेत् ॥ २५ ॥
कुर्यात्परमहंसस्तु दण्डमेकं च धारयेत् । आत्मन्येवात्मना बुद्ध्या परित्यक्तशुभाशुभः ॥ २६ ॥
अव्यक्तलिङ्गो व्यक्तश्च चरेद्भिक्षां समाहितः । प्राप्तपूजो न सन्तुष्येदलाभे त्यक्तमत्सरः ॥ २७ ॥
त्यक्ततृष्णः सदा विद्वान्मूकवत्पृथिवीं चरेत् । देहसंरक्षणार्थन्तु भिक्षामीहेद्द्विजातिषु ॥ २८ ॥
पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहानटेत् । अतैजसानि पात्राणि भिक्षार्थं क्लृप्तवान्मनुः ॥२९॥
सर्वेषामेव भिक्षूणां दार्वलाबुमयानि च ॥ ३० ॥

४ परमहंस । जो अपनी देहमें व्यापक ब्रह्मको जपता और प्राणायामोंको करताहुआ सब संगोंसे रहित अपने आपमें स्थित और स्वयं युक्त होताहै और गृहआदि परिग्रहको त्यागकर योगीहो नित्य पृथ्वीपर विचारताहै वह चौथा संन्यासी इन चारोंमें बड़ा ध्यानभिक्षु अर्थात् परमहंस कहलाताहै ॥ २२-२४ ॥ उसको उचित है कि त्रिदण्ड, कुण्डी, जनेऊ, खप्पर आदि भिक्षाके पात्र और मच्छरआदि जन्तुओंके निवारणार्थ वस्त्र; इन सबको त्यागदेवे ॥ २४-२५ ॥ परमहंस केवल लंगोटी, ओढ़नेका वस्त्र और एक दण्ड धारण करे ॥ २५-२६ ॥ अपने मनमें अपनी बुद्धिसे शुभाशुभ कर्मको त्यागदेवे, अपने चिह्नको छिपाकर अप्रकट होके सावधानीसे विचरे, किसीके आदर करनेसे प्रसन्न नहीं होवे और निरादर करनेपर क्रोध नहीं करे, वह विद्वान् तृष्णाको त्यागकर गूंगेके समान पृथ्वीपर विचरे ॥ २६-२८ ॥ केवल शरीरकी रक्षाके लिये द्विजातियोंसे भिक्षा मांगे; भिक्षाका पात्र हाथ है, उसीमें नित्य भिक्षा मांगे ॥ २८ ॥ २९ ॥ मनुजीने भिक्षाके लिये विना धातुके पात्र कहेहैं, इस लिये सब भिक्षुकोंके लिये काठ, लौकी आदिके पात्र हैं ॥२९-३०॥

---

* बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-६ अध्याय, २४ अंक । संन्यासी गेरुआ वस्त्र पहने ।

बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—१० अध्याय, ब्रह्मचारी, गृहस्थआदि चतुष्टय भेदकथन, २०-२८ श्लोकमें ४ प्रकारके संन्यासीका धर्म प्रायः ऐसा है ।

जराशोक

५ अध्याय।

आश्रमास्तु त्रयः प्रोक्ता वैश्यराजन्ययोस्तथा। परिव्राज्याश्रमप्राप्तिर्ब्राह्मणस्यैव चोदिता ॥ १३॥

वैश्य और क्षत्रियके लिये ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ ये तीन ही आश्रम कहेगये हैं; संन्यास आश्रम केवल ब्राह्मणके ही लियेहै ॥ १३ ॥

(१३) पाराशरस्मृति-१ अध्याय।

यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ। तयोरन्नमदत्त्वा च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ५१ ॥

संन्यासी और ब्रह्मचारी; ये दोनों पकायेहुए अन्न पानेके अधिकारी हैं, जो मनुष्य इनके आनेपर इनको रसोईमेंसे विना दियेहुए भोजन करताहै वह अपनी शुद्धिके लिये चान्द्रायण व्रत करे ॥ ५१ ॥

यतये काञ्चनं दत्त्वा ताम्बूलं ब्रह्मचारिणे। चोरेभ्योऽप्यभयं दत्त्वा दातापि नरकं व्रजेत् ॥ ६० ॥

संन्यासीको सोना आदि द्रव्य, ब्रह्मचारीको पान और चोरको अभयदान देनेपर दाता भी नरकमें जातेहैं ॥ ६० ॥

(१६) लिखितस्मृति।

त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वन्नैव जायते। अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणन्तु विधीयते ॥ २२ ॥

त्रिदण्ड ग्रहण करनेवाला संन्यासी मरनेपर प्रेत नहीं होताहै इसलिये उसका प्रेतकर्म नहीं करके मरनेके ग्यारहवें दिन उसका पार्वणश्राद्ध करना चाहिये * ॥ २२ ॥

(१७) दक्षस्मृति-१ अध्याय।

मेखलाजिनदण्डैश्च ब्रह्मचारीति लक्ष्यते। गृहस्थो देवयज्ञाद्यैर्नखलोमैर्वनाश्रमी ॥ १३ ॥

त्रिदण्डेन यतिश्चैवं लक्षणानि पृथक्पृथक्। यस्यैतल्लक्षणं नास्ति प्रायश्चित्ती वनाश्रमी ॥ १४ ॥

मेखला, मृगचर्म और दण्ड धारण करना ब्रह्मचारीका चिह्न, देवपूजन, यज्ञ आदि गृहस्थका चिह्न; नख और जटाआदि बालोंका धारण करना वानप्रस्थका चिह्न और त्रिदण्ड धारण संन्यासीका चिह्न है; जिसमें उसके आश्रमका चिह्न नहीं रहताहै वह प्रायश्चित्तीके तुल्य होताहै और आश्रमी नहीं कहाताहै अर्थात् आश्रमसे बाहर समझाजाताहै ॥ १३-१४ ॥

४ अध्याय।

चाण्डालप्रत्यवसितपरिव्राजकतापसाः ॥ १९ ॥

तेषां जातान्यपत्यानि चाण्डालैः सह वासयेत् ॥ २० ॥

चाण्डाल, पतित, संन्यासी और वानप्रस्थकी सन्तानोंको चाण्डालोंके सङ्ग बसाना चाहिये अर्थात् यदि पतित, संन्यासी अथवा वानप्रस्थ होनेपर उनकी सन्तान होवें तो वे सन्तान चाण्डालके तुल्य हैं ॥ १९-२० ॥

७ अध्याय।

त्रिदण्डव्यपदेशेन जीवन्ति बहवो नराः। यस्तु ब्रह्म न जानाति न त्रिदण्डी हि स स्मृतः ॥३३॥

नाध्येतव्यं न वक्तव्यं न श्रोतव्यं कथंचन। एतैः सर्वैः सुसम्पन्नो यतिर्भवति नेतरः ॥ ३४ ॥

बहुतसे मनुष्य त्रिदण्ड धारण करके जीविका करतेहैं; किन्तु जो ब्रह्मको नहीं जानता वह त्रिदण्ड धारण करनेसे त्रिदण्डी नहीं कहाजाताहै ※ ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य संन्यासी होकर अध्ययन नहीं करता, किसी विषयमें व्याख्यान नहीं देता और कथा उपदेश आदिको नहीं सुनता वही संन्यासी है; अन्य नहीं ॥ ३४ ॥

परिव्राज्यं गृहीत्वा तु यः स्वधर्मे न तिष्ठति। श्वपदेनाङ्कयित्वा तं राजा शीघ्रं प्रवासयेत् ॥ ३५॥

जो मनुष्य संन्यास धर्म ग्रहण करके अपने धर्मपर स्थिर नहीं रहताहै राजा उसके मस्तकपर कुत्तेके पैरका दाग दिलाकर उसको शीघ्र अपने राज्यसे निकाल देवे ॥ ३५ ॥

---

* लघुशङ्खस्मृतिके १८ श्लोकमें ऐसा ही है। उशनास्मृति—संन्यासियोंका एकोद्दिष्ट नहीं करे किन्तु ग्यारहवें दिन पार्वणश्राद्ध करे (१)। पुत्र आदि संन्यासियोंकी सपिण्डी नहीं करे क्योंकि त्रिदण्डके ग्रहणसे ही वे प्रेत नहीं होते (२) प्रचेता स्मृति-त्रिदण्ड ग्रहण करनेसे संन्यासीकी सपिण्डी नहीं होती इससे एकोद्दिष्ट नहीं होता; सदैव पार्वण होताहै (१)।

※ विष्णुस्मृति—४ अध्याय-३४-३६ श्लोक। बहुतसे द्विज त्रिदण्ड चिह्न धारण करके जीविका करतेहैं, किन्तु चिह्नमात्र धारण करके जीविका करनेवालेको मोक्ष नहीं मिलता, जो लोक और वेदका विषय तथा इन्द्रियके भोगोंको त्यागकर आत्माके विषयमें स्थित रहताहै वही परमपद पाताहै।

(१) मनुस्मृति-१२ अध्याय।

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च। यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥ १०॥

जिसकी बुद्धिमें वाणीका दण्ड, मनका दण्ड और शरीरका दण्ड स्थित है वह त्रदण्डी कहलाताहै ॥ १० ॥

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति-२ अध्याय।

प्रव्रज्यावसितो राज्ञो दास आमरणान्तिकम् ॥ १८७ ॥

संन्यासधर्मसे नष्ट संन्यासीको जन्मपर्यन्त राजाका दास बनना पडताहै ॥ १८७ ॥

शूद्रप्रव्रजितानां च दैवे पित्र्ये च भोजकः ॥ २३९ ॥

शूद्र और संन्यासीको दैव और पित्र्यकर्ममें भोजन करनेवालेपर राजा २४१ श्लोकमें लिखेहुए १०० पण दण्ड करे ॥ २३९ ॥

(१९) शातातपस्मृति।

यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा पुनः सेवेत मैथुनम्। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ६० ॥

जो मनुष्य संन्यासी होकर मैथुनकर्म करताहै वह मरनेपर साठहजार वर्षतक विष्ठाका कीड़ा होकर रहताहै ॥ ६० ॥

(२०) वसिष्ठस्मृति-१० अध्याय।

न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चापि लोकग्रहणे रतस्य।

न भोजनाच्छादनतत्परस्य न चापि रम्यावसथप्रियस्य ॥ १४ ॥

व्याकरणके पढ़ने पढ़ानेसे, संसारी विषय ग्रहण करनेसे, भोजन वस्त्रमें तत्पर रहनेसे तथा रमणीक गृहमें वास करनेसे संन्यासीका मोक्ष नहीं होसकता ॥ १४ ॥

अध्यात्मज्ञानादि प्रकरण. २६.

(१) मनुस्मृति-२ अध्याय।

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु। संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥ ८८ ॥

एकादशेन्द्रियाण्याहुर्यानि पूर्वे मनीषिणः। तानि सम्यक् प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ८९ ॥

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी। पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चैव दशमी स्मृता ९०॥

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः। कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते ॥९१॥

एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्। यस्मिञ्जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ॥ ९२ ॥

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्। सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ ९३ ॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ९४ ॥

यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान्यश्चैतान्केवलांस्त्यजेत्। प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ॥९५॥

न तथैतानि शक्यन्ते सन्नियन्तुमसेवया। विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥ ९६ ॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च। न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥९७॥

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः। न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः९८

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्। तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥ ९९ ॥

वशीकृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा। सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम् ॥ १०० ॥

वृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—१० अध्याय, वानप्रस्थ आदि धर्म, ३१—३२ श्लोकमें भी एसा है।

वृहद्विष्णुस्मृति—५ अध्यायके १५१ अङ्क और नारदस्मृति—५ विवादपदके ३३ श्लोकमें भी ऐसा है।

। श्राद्धमें निमन्त्रण देकर ब्राह्मणोंके समान संन्यासीको खिलानेका निषेध है। मनुस्मृति–३ अध्यायके २४३ श्लोकमें है कि श्राद्धमें ब्राह्मण भोजनके समय यदि ब्राह्मण अथवा सन्यासी आदि भिक्षुक भोजनकेलिये आजावे जो निमन्त्रित ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर अपनी शक्तिके अनुसार उनका सत्कार करे और वसिष्ठस्मृति ११ अध्यायके १४ अङ्कमें है कि कृष्णपक्षमें चौथके पश्चात् पितरोंका श्राद्ध करे; श्राद्धसे एकदिन पहिले ब्राह्मणोंका निमन्त्रण करके श्राद्धके दिन संन्यासी, गृहस्थ, साधु, अतिवृद्ध, शुभकर्मी, श्रोत्रिय, अन्तेवासी शिष्य और विद्वान् शिष्योंको भोजन करावे।

जैसे सारथी रथके घोड़ोंको अपने वशमें रखताहै, वैसे ही विद्वान् पुरुष निज निज विषयोंमें दौड़नेवाले इन्द्रियोंको यत्नपूर्वक अपने वशमें रक्खे ॥ ८८ ॥ पहलेके विद्वानोंने जो ग्यारह इन्द्रिय कहीहैं वह यथाक्रमसे मैं कहताहूं ॥ ८९ ॥ कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नाक, गुदा, लिङ्ग, हाथ, पांव और वाणी; यही १० इन्द्रिय हैं ॥ ९० ॥ इनमें कान आदि ५ को ज्ञानेन्द्रिय और गुदा आदि ५ इन्द्रियोंको कर्मेन्द्रिय कहतेहैं ॥ ९१ मन ग्यारहवां इन्द्रिय कहलाताहै यह अपने गुणकरके ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनोंका प्रवर्तक है, मनको जीतनेसे दोनों प्रकारके इन्द्रिय पञ्चक अर्थात् ५ ज्ञानेन्द्रिय और ५ कर्मेन्द्रिय वशमें होजातेहैं ॥ ९२ ॥ इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त होनेसे निःसन्देह मनुष्य दूषित होताहै, इसलिये इन्द्रियोंको रोकनेसे ही सिद्धि प्राप्त होतीहै ॥ ९३ ॥ विषयोंके भोग करनेसे कामनाकी शान्ति नहीं होती परंच जैसे घीकी आहुति देनेसे आग अधिक जलउठती है वैसे विषय उपभोगसे कामनाकी वृद्धि होतीहै ॥ ९४ ॥ इन विषयोंको प्राप्त करनेवाले और इनको त्यागनेवाले इन दोनोंमें त्यागनेवाले पुरुष ही श्रेष्ठ कहलातेहैं ॥ ९५ ॥ जैसे ज्ञानसे इन्द्रियां शान्त होतीहैं वैसे विषयभोगसे छुड़ाकर विषयोंसे निवृत्त करनेसे वह नहीं शान्त होतीं॥ ॥ ९६ ॥ वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तपस्या ये सब दुष्टभाववाले विषयी मनुष्यको कभी सिद्ध नहीं होते ॥९७॥ जिस मनुष्यको प्रसंशा तथा निन्दा सुननेसे, कोमल वा कठोर वस्तु स्पर्श करनेसे, सुन्दर अथवा कुरूप वस्तुको देखनेसे, स्वादयुक्त या बेस्वाद पदार्थ भोजन करनेसे और गन्धयुक्त वा दुर्गन्ध वस्तु सूंघनेसे हर्ष, विषाद नहीं होताहै उसको जितेन्द्रिय जानना चाहिये ॥ ९८ ॥ जैसे चमडेके मशकमें एक छेद रहनेपर भी उसका सब जल निकलजाताहै वैसे ही इन्द्रियोंमेंसे एक इन्द्रियके स्वतन्त्र होनेसे मनुष्यकी ज्ञानबुद्धि नष्ट हो जाती है ॥ ९९ ॥ इन्द्रियोंको वशमें करके मनको रोककर उपायके बलसे शरीरको पीडित नहीं करके सम्पूर्ण अर्थको भलीभांति सिद्ध करे ॥ १०० ॥

१२ अध्याय ।

योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते । यः करोति स कर्माणि भूतात्मेत्युच्यते बुधैः ॥१२॥
जीवसंज्ञोऽन्तरात्मान्यः सहजः सर्वदेहिनाम् । येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥ १३ ॥
तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एव च । उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः ॥ १४ ॥
असंख्यामूर्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः । उच्चावचानि भूतानि सततं चेष्टयन्ति याः ॥ १५ ॥
पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम् । शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ॥ १६ ॥
तेनानुभूय ता यामीः शरीरेणेह यातनाः । तास्वेव भूतमात्रासु प्रलीयन्ते विभागशः ॥ १७ ॥
सोऽनुभूयासुखोदर्कान्दोषान्विषयसङ्गजान् । व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तावेवोभौ महौजसौ ॥ १८ ॥
तौ धर्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह । याभ्यां प्राप्नोति संपृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम्॥१९॥
यद्याचरति धर्मं स प्रायशो धर्ममल्पशः । तैरेव चावृतो भूतैः स्वर्गे सुखमुपाश्नुते ॥ २० ॥
यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः । तैर्भूतैः स परित्यक्तो यामीः प्राप्नोति यातनाः ॥ २१ ॥
यामीस्ता यातनाः प्राप्य स जीवो वीतकल्मषः । तान्येव पञ्चभूतानि पुनरप्येति भागशः ॥ २२ ॥
एता दृष्ट्वास्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेतसा । धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः ॥ २३ ॥
सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रीन्विद्यादात्मनो गुणान् । यैर्व्याप्येमान्स्थितो भावान्महान्सर्वानशेषतः ॥ २४ ॥
यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते । स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम् ॥ २५ ॥

जो इस शरीरसे कार्य कराताहै उसे क्षेत्रज्ञ कहतेहैं और जो शरीर कार्योंको करताहै उसको बुद्धिमान् लोग भूतात्मा कहाकरते हैं ॥ १२ ॥ जो अन्तरात्मा सम्पूर्ण देहधारियोंके साथ उत्पन्न होताहै और जन्म लेनेपर सुखदुःख भोग करताहै वह जीव कहाजाताहै ॥ १३ ॥ महान् (भूतात्मा) और क्षेत्रज्ञ ये दोनों पृथिवी आदि पञ्चभूतोंसे मिलेहुए रहतेहैं और उत्तम तथा अधम सब जीवोंमें स्थित हो परमात्माके आश्रयसे निवास करतेहैं ॥ १४ ॥ इस परमात्माके शरीरसे आगकी चिनगारीके समान असंख्य जीव निकलकर उत्तम अधम योनिमें निवास करतेहैं ॥ १५ ॥ पापियोंके लिये परलोकमें दुःख भोगनेके निमित्त पृथिवी आदि पञ्च भूतोंके अंशसे एक शरीर उत्पन्न होताहै ॥ १६ ॥ उससे पापी जीव यमयातना भोग करते हैं, शरीरके नाश होजानेपर पञ्चभूतोंकी तन्मात्रा अपने अपने भूतोंमें लीन होजाती है॥१७॥शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध,आदि विषयासक्ति दोषसे यमलोकमें दुःख भोग करनेके पश्चात् वह जीवात्मा पूर्वोक्त महान् और क्षेत्रज्ञका आश्रय लेता है ॥ १८॥ महान् और क्षेत्रज्ञ ये दोनों आलस रहित होकर जीवके धर्माधर्मोंके साक्षी रहतेहैं और इन्हीं धर्माधर्मोंसे मनुष्य इसलोक तथा परलोकमें सुख दुःख भोगकरताहै ॥ १९ ॥ वह जीव यदि इस लोकमें बहुत

धर्म और थोड़ा पाप करताहै तो पृथिवी आदि भूतोंसे शरीर पाप्त करके परलोकमें सुख भोगताहै ॥ २० ॥ यदि पाप अधिक और धर्म थोड़ा करताहै तो पाञ्चभौतिक शरीरको त्यागनेपर यमयातना भोग करताहै ॥ २१ ॥ वह जीव यमयातना भोगनेके बाद पाप रहित होकर फिर पाञ्चभौतिक शरीरको पाताहै ॥ २२ ॥ धर्म और अधर्मसे जीवोंकी ऐसी गति होतीहै यह अपने अंतःकरणमें विचारकर सदा धर्ममें मन लगावे ॥ २३ ॥ सत्त्व, रज और तम इन तीनोंको आत्माके गुण जानो इन गुणोंकरके यह आत्मा स्थावर जंगम रूप सब पदार्थोंमें व्याप्त होकर स्थित है ॥ २४ ॥ इन गुणोंमेंसे जो गुण देहधारीमें अधिक होताहै वही उसको अपने अनुसार करलेता है ॥ २५ ॥

सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम्। एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः ॥ २६ ॥
तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत्। प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥ २७ ॥
यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः। तद्रजोऽप्रतिभं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥ २८ ॥
यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम्। अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥ २९ ॥

सत्त्वगुणसे ज्ञान, तमोगुणसे अज्ञान और रजोगुणसे राग द्वेष देख पड़ता है, सब प्राणियोंके आश्रय होकर ये सब गुण ठहरते हैं ॥ २६ ॥ आत्मामें जो प्रीतियुक्त प्रकाशरूप निर्मल प्रशान्त भाव दीख पडता है उसे सत्त्वगुण जानो ॥ २७ ॥ जो दुःखसे संयुक्त है और आत्माको प्रीतिकारक नहीं है तथा जिससे शरीरधारियोंको विषयकी इच्छा होतीहै वह रजोगुण है ॥ २८ ॥ जो सत् असत् विवेकसे रहित स्फुट विषयात्मक, अतर्कनीयस्वरूप और दुर्ज्ञेय है उसे तमोगुण जानना चाहिये ॥ २९ ॥

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः। अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३० ॥
वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥ ३१ ॥
आरम्भरुचिता धैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः। विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम् ॥ ३२ ॥
लोभः स्वप्नो धृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता। याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥ ३३ ॥

इन तीनों गुणोंसे जो उत्तम, मध्यम तथा अधम फल उत्पन्न होतेहैं उनको मैं पूर्णरीतिसे कहताहूं ॥ ३० ॥ वेदका अभ्यास, तपस्या, ज्ञान, शौच, इन्द्रियसंयम, धर्मानुष्ठान और आत्मज्ञानकी चिन्ता; ये सब सत्त्वगुणके लक्षण हैं ॥ ३१ ॥ फलके लिये कर्मका आरम्भ करना, अधीर होजाना, निषिद्धकर्म करना और सदा विषयकी भोगकी इच्छा रखना; ये सब रजोगुणके लक्षण कहेजातेहैं ॥ ३२ ॥ लोभ, बहुत निद्रा, अधीरता, क्रूरता, नास्तिकता, अन्यकी वृत्ति ग्रहण करना, याचना करनेका स्वभाव रखना और प्रमाद;ये सब तमोगुणके लक्षण हैं ॥ ३३ ॥

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां त्रिषु तिष्ठताम्। इदं सामासिकं ज्ञेयं क्रमशो गुणलक्षणम् ॥ ३४ ॥
यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति। तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ॥ ३५ ॥
येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम्। न च शोचत्यसम्पत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ३६॥
यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन्। येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम् ॥ ३७ ॥
तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते। सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥ ३८ ॥

भूत भविष्य तथा वर्त्तमान इन तीनों कालोंमें रहनेवाले सत्वगुण, रजोगुण; और तमोगुण; इन तीनों गुणोंका लक्षण क्रमसे संक्षेपमें मैं कहताहूं ॥ ३४ ॥ जिस कर्मको करके अथवा करनेके समय वा करनेमें मनुष्य लज्जावान् होते हैं विद्वान् लोग उसे तमोगुणका लक्षण जानतेहैं ॥ ३५ ॥ जो कर्म इस लोकमें बहुत बड़ाईकी इच्छासे कियाजाता है और पारलौकिक सम्पत्तिका शोच नहीं किया जाता उस कर्मको राजस जानो ॥ ३६ ॥ जिस कामको सब प्रकारसे जाननेकी इच्छा होतीहै, जिसे करनेसे लज्जा नहीं होती और जिसको करनेसे आत्माको सन्तोष होताहै वह सत्त्वगुणका लक्षण है ॥ ३७ ॥ कामकी प्रधानता तमोगुणका लक्षण, द्रव्यकी प्रधानता रजोगुणका लक्षण और धर्मकी प्रधानता सत्त्वगुणका लक्षण है, इनमें कामसे द्रव्य और द्रव्यसे धर्म श्रेष्ठ है ॥ ३८ ॥

येन यस्तु गुणेनैषां संसारान्प्रतिपद्यते। तान्समासेन वक्ष्यामि सर्वस्यास्य यथाक्रमम् ॥ ३९ ॥
देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः। तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ४०॥
त्रिविधा त्रिविधैषा तु विज्ञेया गौणिकी गतिः। अधमा मध्यमाग्र्या च कर्मविद्याविशेषतः ॥ ४१ ॥
स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः। पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः ४२
हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः। सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः ॥ ४३ ॥
चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः। रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः ॥ ४४ ॥

झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः। द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः ॥ ४५ ॥
राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञश्चैव पुरोहिताः। वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥ ४६ ॥
गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानचराश्च ये। तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीषूत्तमा गतिः ॥ ४७ ॥
तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गणाः। नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्त्विकी गतिः ॥ ४८॥
यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः। पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्त्विकी गतिः ॥४९॥
ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानव्यक्तमेव च। उत्तमां सात्त्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥ ५० ॥
एष सर्वः समुद्दिष्टस्त्रिप्रकारस्य कर्मणः। त्रिविधस्त्रिविधः कृत्स्नः संसारः सार्वभौतिकः ॥ ५१ ॥

इनमेंसे जिस कर्मके करनेसे जीवोंकी जैसी गति होतीहै उनको संक्षेपसे क्रमपूर्वक कहेंगे ॥ ३९ ॥ सत्त्वगुणीलोग देवयोनिको, रजोगुणीलोग मनुष्ययोनिको और तमोगुणीलोग पशुपक्षीआदि तिर्यग्योनिको प्राप्त होतेहैं; इस भांति तीनप्रकारकी गति है ॥ ४० ॥ इसभांति गुणोंकी ३ प्रकारकी गति कहीगई फिर संसारमें कर्मभेद तथा ज्ञानभेदसे अधम, मध्यम और उत्तम; ये तीनप्रकारकी गति है ॥ ४१ ॥ वृक्षआदि स्थावर, कृमि (सूक्ष्मप्राणी), कीट (बडे कीड़े), मछली, सर्प, कछवे, पशु और मृगकी योनियोंमें प्राप्तहोना तामसीगतिमें अधम है ॥ ४२ ॥ हाथी, घोड़े, शूद्र, निन्दित म्लेच्छ, सिंह बाघ और सूअरकी योनियोंमें प्राप्त होना तामसीगतिमें मध्यमश्रेणी है ॥ ४३ ॥ चारण (नटआदि), सुपर्ण (पक्षीविशेष), दम्भसे कार्य करनेवाले पुरुष, राक्षस और पिशाचकी योनियोंकी प्राप्ति तामसीगतिमें उत्तमश्रेणी है ॥ ४४ ॥ झल्ल, मल्ल, नट, शस्त्रजीवी पुरुष, जुवाडी और मद्यपानमें प्रसक्त मनुष्य, राजसीगतिमे अधम है ॥ ४५ ॥ राजा, क्षत्रिय, राजपुरोहित और शास्त्रार्थआदिके समय कलह करनेवाले मनुष्य राजसीगतिमें मध्यम है ॥ ४६ ॥ गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष, देवताओंके अनुचर (विद्याधरआदि) और अप्सरा ये सब रजोगुणीगतिमें उत्तम है ॥ ४७ ॥ वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्राह्मण, विमानचारी देवता, नक्षत्र और दैत्य सत्त्वगुणीगतिमें अधम हैं ॥ ४८ ॥ यज्ञकरनेवाले मनुष्य, ऋषि, देवता, वेदाभिमानी, ज्योतिवाले (तारागण), वत्सर, पितृगण और साध्यगण सत्त्वगुणी गतिमें मध्यमश्रेणीके है ॥ ४९ ॥ ब्रह्मा, मरीचिआदि प्रजापति, देहधारी धर्म, महत्तत्त्व और अव्यक्तको विद्वान्लोग सत्त्वगुणीगतिमें उत्तमश्रेणीके कहतेहैं ॥ ५० ॥ यह तीन प्रकारके कर्मकी तीन तीन प्रकारकी गति कहीगई ॥ ५१ ॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः। अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् ॥ ८३ ॥
सर्वेषामपि चैतेषां शुभानामिह कर्मणाम्। किञ्चिच्छ्रेयस्करतरं कर्मोक्तं पुरुषं प्रति ॥ ८४ ॥
सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम्। तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥ ८५ ॥
षण्णामेषां तु सर्वेषां कर्मणां प्रेत्य चेह च। श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म वैदिकम् ॥ ८६ ॥
वैदिके कर्मयोगे तु सर्वाण्येतान्यशेषतः। अन्तर्भवन्ति क्रमशस्तस्मिंस्तस्मिन्क्रियाविधौ ॥ ८७ ॥
सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेव च। प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥ ८८ ॥
इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते। निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तमुपदिश्यते ॥ ८९ ॥
प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवानामेति साम्यताम्। निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येति पञ्च वै ॥९० ॥
सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ॥ ९१ ॥
यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः। आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् ॥९२॥
एतद्धि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः। प्राप्यैतत्कृतकृत्यो हि द्विजो भवति नान्यथा ॥९३॥

वेदका अभ्यास, तपस्या, ज्ञान, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा और गुरुसेवा; ये सब परम कल्याणके साधक हैं ॥ ८३ ॥ इन कर्मोंमें पुरुषके लिये किञ्चिन्मात्र कर्म सबसे श्रेष्ठ मोक्षसाधक है ॥ ८४ ॥ इन कर्मोंमें आत्मज्ञान (परमात्माका ज्ञान) ही परमश्रेष्ठ कहागया है, वह सब विद्याओंमें प्रधान है और उससे मोक्ष प्राप्त होताहै ॥ ८५ ॥ पहले कहेहुये वेदाभ्यासआदि ६ कर्मोंमें वैदिककर्मको इस लोक तथा परलोकमें परमकल्याणकारी जानना चाहिये ॥ ८६ ॥ ऊपर कहेहुए सब कर्म ही क्रमसे वैदिककर्मके अन्तर्गत हुआकरतेहैं ॥ ८७ ॥ वैदिककर्म दो प्रकारके हैं;—प्रवृत्त और निवृत्त, इनमे प्रवृत्तकर्मके फलसे सुख और अभ्युदय आदि प्राप्त होतेहै और निवृत्तकर्मके फलसे मुक्ति मिलतीहै॥८८॥ इस लोकमें अथवा परलोकके सम्बन्धमें किसी कामनासे जो कर्म कियाजाता है वह प्रवृत्तकर्म कहाताहै और जो ज्ञानपूर्वक कामनारहित कर्म कियाजाता है उसे निवृत्तकर्म कहतेहै ॥ ८९ ॥ प्रवृत्तकर्मको भलीभांति सेवन करनेसे मनुष्य देवताओके समान होजाता है और निवृत्त कर्मकी सेवा करनेसे पञ्चभूतोंको अतिक्रम करताहै अर्थात् मोक्ष पाताहै ॥ ९० ॥ जो आत्मज्ञानी सम्पूर्णभूतोंमें आत्माको और आत्मामें सब भूतोंको एकसमान देखताहै वह ब्रह्मत्वको प्राप्त होताहै अर्थात् मोक्ष

पाताहै॥९१॥ ब्राह्मणको उचित है कि अग्निहोत्रआदि शास्त्रोक्त कर्मोंको छोड़नेपर भी आत्मज्ञान, इन्द्रिय संयम और वेदाभ्यासके निमित्त यत्न करे ॥ ९२ ॥ ये आत्मज्ञानआदि द्विजातियो विशेषकरके ब्राह्मणोंके जन्मको सफल करनेवाले हैं, वे इनको प्राप्तकरनेसे कृतार्थ होतेहैं; अन्यप्रकारसे नहीं ॥ ९३ ॥

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम् । अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः ॥९४ ॥
या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः॥सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥९५॥
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोन्यानि कानिचित् । तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ९६॥
चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् । भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥९७॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गंधश्च पञ्चमः। वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिर्गुणकर्मतः ॥ ९८ ॥
बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् । तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥ ९९ ॥
सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च । सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ १०० ॥
यथा जातबलो वह्निर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान् । तथा दहति वेदज्ञः कर्मजं दोषमात्मनः ॥ १०१ ॥
वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् । इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ १०२ ॥

पितर, देवता और मनुष्योंके सनातन नेत्र वेद ही है;ये अपौरुषेय और अप्रमेय है—यह स्थिर मीमांसा है ॥ ९४ ॥ जो स्मृतियां वेदसे बाहर है और जो ग्रन्थ वेदविरुद्ध कुतर्कमूलक हैं वे परलोकके सम्बन्धमे निष्फल कहेगये हैं; क्योंकि तमोगुणसे कल्पित हैं ॥९५॥ वेदमूलसे विरुद्ध पुरुष कल्पितशास्त्र उत्पन्न होनेपर शीघ्र ही विनष्ट होजातेहैं वे नवीन होनेके कारण निष्फल और असत्य हे ॥ ९६ ॥ चारों वर्ण, तीनों लोक, चारो आश्रम और भूत, भविष्य तथा वर्तमानकाल, ये सब वेदसे ही प्रसिद्ध हुएहैं ॥ ९७ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पांचो विषय वेदसे ही उत्पन्न हुएहे, गुणकर्मके अनुसार वेद ही सबका उत्पत्तिस्थान है ॥ ९८ ॥ वेदशास्त्र सर्वदा सब भूतोको धारण करतेहै, इस कारणसे वे परम श्रेष्ठ मानेजातेहै, इनसे सब प्राणियोका प्रयोजन सिद्ध होताहै ॥ ९९ ॥ सेनापतिका पद, राज्य, दण्डदेनेका अधिकार और सम्पूर्ण लोकका आधिपत्य वेदशास्त्र जाननेवालेको ही मिलना चाहिये ॥ १०० ॥ जैसे प्रचण्ड अग्नि गीले वृक्षको जलादेताहै वैसेही वेदज्ञ द्विज अपने कर्मजनित दोषोंको नष्ट करताहै ॥ १०१ ॥ वेदशास्त्रके अर्थ और तत्त्वको जाननेवाला पुरुष किसी आश्रममे निवास करे इसी लोकमें ब्रह्मत्व लाभ करताहै ॥ १०२ ॥

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः। धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः
तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम् । तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययामृतमश्नुते ॥ १०४ ॥
प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम् । त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥१०५ ॥
आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना । यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥ १०६ ॥
नैःश्रेयसमिदं कर्म यथोदितमशेषतः । मानवस्यास्य शास्त्रस्य रहस्यमुपदिश्यते ॥ १०७ ॥

अज्ञलोगोंसे ग्रन्थ पढ़नेवाले ग्रन्थ पढ़नेवालोंसे ग्रन्थोंके विषयोको धारण करनेवाले, उनसे ज्ञानी अर्थात् उन ग्रन्थोंका यथार्थज्ञान रखनेवाले और उनसे भी उसके अनुसार कर्म करनेवाले श्रेष्ठ हैं ॥१०३॥ तपस्या और विद्या (आत्मज्ञान); ये दोनो ब्राह्मणका परम कल्याण करनेवाले है तपस्यासे पाप नाश होताहै और विद्यासे मुक्ति होतीहै ॥ १०४ ॥ जो लोग धर्मके तत्त्वको जाननेकी इच्छा करतेहैं उन्हें प्रत्यक्ष, अनुमान और स्मृति आदि नाना प्रकारके वेदमूलक शास्त्र; इन तीनोंको उत्तम रीतिसे जानना चाहिये ॥ १०५ ॥ जो लोग वेदशास्त्रके अविरोध तर्कसे वेद तथा वेदमूलक स्मृति आदि धर्मोपदेशका विचार करतेहै वही धर्मके ज्ञाता है; अन्य नहीं ॥ १०६ ॥ यह कल्याणका साधन कर्म सम्पूर्ण कहागया ॥ १०७ ॥

सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः । सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मनः ॥ ११८ ॥
आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् । आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम्॥११९॥
खं संनिवेशयेत्खेषु चेष्टनस्पर्शनेऽनिलम् । पंक्तिदृष्ट्योः परं तेजः स्नेहे यो गां च मूर्तिषु ॥ १२० ॥
मनसीन्दुं दिशः श्रोत्रे क्रान्ते विष्णुं बले हरम् । वाच्यग्निं मित्रमुत्सर्गे प्रजने च प्रजापतिम् १२१॥
प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि । रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥ १२२ ॥
एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् । इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १२३ ॥
एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्तिभिः । जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥ १२४ ॥
एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना । स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम् ॥ १२५ ॥

समाधान होकर सम्पूर्ण सत् असत् वस्तुओंको आत्मामें देखे, जो सबको आत्मामें देखताहै उसका मन अधर्मकी ओर कभी नहीं दौड़ता ॥ ११८ ॥ आत्माही सम्पूर्ण देवता है, सब जगत आत्मामें स्थित है और आत्माही शरीरधारियोंके कर्मके सम्बन्धको उत्पन्न करताहै ॥११९॥ बाह्यके आकाशको उदर आदिके आकाशमे, बाह्यकी वायुको प्राण आदि भीतरकी वायुमें अग्नि और सूर्यके परम तेजको अपने नेत्र

आदि तेजमें, जलको अपने शरीरके जलमें और पृथिवीको अपने शरीरमें धारण करे ॥ १२० ॥ मनमें चन्द्रमाको, कानोंमें दिशाओंको, पांवमें विष्णुको, बलमें रुद्रको, वाणीमें अग्निको, गुदामें मित्र देवताको और लिङ्गमें प्राजापतिको धारण करे अर्थात् ऐसी भावनासे उनका एकत्र साधन करे ॥ १२१ ॥ जो सबका शासन करताहै जो सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म है, जिसकी कान्ति सुवर्णके समान है और जो स्वप्नकी बुद्धिके समान ज्ञानसे ग्रहण करने योग्य है, उस परम पुरुष परमात्माका ध्यान करे ॥ १२२ ॥ इस परम पुरुषको कोई अग्नि, कई मनु प्राजापति, कोई इन्द्र, कोई प्राणस्वरूप और कोई शाश्वत ब्रह्म कहतेहैं ॥ १२३ ॥ यह परमात्मा पृथिवी आदि पञ्चभूतोंसे सम्पूर्ण प्राणियोंमें व्याप्त होकर जन्म वृद्धि तथा नाशसे चक्रके तुल्य इस संसारको प्रवर्त्तित करताहै ॥ १२४ ॥ इसी प्रकार जो लोग आत्मद्वारा सम्पूर्ण भूतोंमें आत्माको देखतेहैं वे सबमें समता पाकर परमपद प्राप्त करतेहैं ॥ १२५ ॥

(२) ॐ याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्याय।

अनादिरात्मा कथितस्तस्यादिस्तु शरीरकम् । आत्मनस्तु जगत्सर्वं जगतश्चात्मसम्भवः ॥ ११७ ॥
मोहजालमपास्येह पुरुषो दृश्यते हि यः । सहस्रकरपन्नेत्रः सूर्यवर्चाः सहस्रकः ॥ ११९ ॥
स आत्मा चैव यज्ञश्च विश्वरूपः प्रजापतिः । विराजः सोऽन्नरूपेण यज्ञत्वमुपगच्छति ॥ १२० ॥
यो द्रव्यदेवतात्यागसंभूतो रस उत्तमः । देवान्सन्तर्प्य स रसो यजमानं फलेन च ॥ १२१ ॥
संयोज्य वायुना सोमं नीयते रश्मिभिस्ततः । ऋग्यजुःसामविहितं सौरं धामोपनीयते ॥ १२२ ॥
स्वमण्डलादसौ सूर्यः सृजत्यमृतमुत्तमम् । यज्जन्म सर्वभूतानामशनानशनात्मनाम् ॥ १२३ ॥
तस्मादन्नात्पुनर्यज्ञः पुनरन्नस्पुनः क्रतुः । एवमेतदनाद्यन्तं चक्रं सम्परिवर्त्तते ॥ १२४ ॥
अनादिरात्मा सम्भूतिर्विद्यते नान्तरात्मनः । समवायी तु पुरुषो मोहेच्छाद्वेषकर्मजः ॥ १२५ ॥
सहस्रात्मा मया यो व आदिदेव उदाहृतः । मुखबाहूरुपज्जाः स्युस्तस्य वर्णा यथाक्रमम् ॥ १२६ ॥
पृथिवी पादतस्तस्य शिरसो द्यौरजायत । नस्तः प्राणा दिशः श्रोत्रात्स्पर्शाद्वायुर्मुखाच्छिखी ॥ १२७ ॥
मनसश्चन्द्रमा जातश्चक्षुषश्च दिवाकरः । जघनादन्तरिक्षं च जगच्च सचराचरम् ॥ १२८ ॥

आत्मा अनादि कहागया है, शरीरधारण करना ही उसकी आदि है, आत्मासे सम्पूर्ण जगत् होताहै और जगत्से अर्थात् पञ्चभूतोंके सङ्गसे आत्माकी उत्पत्ति होतीहै ॥ ११७ ॥ जो पुरुष मोहजालको दूर करके सहस्रकर, सहस्रचरण तथा सहस्रनेत्र धारण करताहै, सूर्यके समान तेजस्वी है और सहस्रशिरवाला दीखपडता है वही आत्मा है और वही यज्ञ प्रजापति विश्वरूप है, क्योंकि वह विराट्रूप अन्नरूपसे यज्ञरूपको प्राप्त होताहै ॥ ११९-१२० ॥ देवताओंके निमित्त जो वस्तु दीजाती है उससे जो उत्तम रस उत्पन्न होताहै वह देवताओंको तृप्त करके तथा यजमानको फलसे युक्त करके वायुद्वारा चन्द्रमण्डलमें पहुंचताहै और वहांसे किरणोंद्वारा सूर्यमण्डलमें प्राप्त होकर ऋक्, यजुः और सामवेदस्वरूप होजाताहै ॥ १२१-१२२ ॥ सूर्य अपने मण्डलसे वृष्टिरूप अमृत उत्पन्न करताहै जो चराचर सम्पूर्ण जीवोंके जन्मका हेतु है ॥ १२३ ॥ वृष्टिसे उत्पन्नहुए अन्नसे फिर यज्ञ होताहै यज्ञसे फिर अन्न होताहै और उससे फिर यज्ञ होताहै इसप्रकारसे यह अनादि संसारचक्र घूमताहै ॥ १२४ ॥ आत्मा अनादि है इसलिये उस अन्तरात्माका जन्म नहीं होता तो भी पुरुष मोह, इच्छा, द्वेष और कर्मके अनुसार देहका सम्बन्धी होताहै ॥ १२५ ॥ जो मैंने तुमसे सहस्रात्मारूप तथा सम्पूर्णजगत्का कारण और आदिदेव कहाहै उसके मुख, बाहु, जंघे और पैरोंसे चारों वर्ण क्रमसे उत्पन्न हुएहैं ॥ १२६ ॥ उसके चरणसे पृथिवी, शिरसे आकाश, नासिकासे प्राण, कानसे दिशा, स्पर्शसे वायु, मुखसे अग्नि, मनसे चन्द्रमा, नेत्रसे सूर्य और जंघाओंसे आकाश और चराचररूप जगत् उत्पन्न होताहै ॥ १२७-१२८ ॥

अन्त्यपक्षिस्थावरतां मनोवाक्कायकर्मजैः । दोषैः प्रयाति जीवोऽयं भवं योनिशतेषु च ॥ १३१ ॥
अनन्ताश्च यथा भावाः शरीरेषु शरीरिणाम् । रूपाण्यपि तथैवेह सर्वयोनिषु देहिनाम् ॥ १३२ ॥
विपाकः कर्मणाम्प्रेत्य केषांचिदिह जायते । इह वामुत्र वै केषाम्भावास्तत्र प्रयोजनम् ॥ १३३ ॥

यह जीव मन, वचन और शरीरसे कियेहुए दोषोंके कारण अन्त्यज, पक्षी तथा वृक्षादि स्थावरयोनिमें सैंकड़ों जन्मतक प्राप्त होताहै ॥ १३१ ॥ जीवोंको अपने अपने शरीरमें जैसे अनन्तभाव होतेहैं उसीके अनुसार सम्पूर्ण योनियोंमें देहियोंके स्वरूप भी होतेहैं ॥ १३२ ॥ किसीकर्मका फल परलोकमें, किसीकर्मका फल इसीलोकमें और किसीकर्मका फल इसलोक और परलोकमें अर्थात् दोनों स्थलमें मिलताहै उसमें प्रयोजक सत्त्व आदि भाव होताहै ॥ १३३ ॥

ॐ याज्ञवल्क्यस्मृति-३ अध्यायके ६७ श्लोकसे १०७ श्लोकतकका अध्यात्मप्रकरण गृहस्थप्रकरणके मनुष्यजन्ममें लिखागया है।

मलिनो हि यथादर्शो रूपालोकस्य न क्षमः । तथा विपक्वकरणं आत्मज्ञानस्य न क्षमः ॥१४१॥
कटवेर्वारौ यथा पक्वे मधुरः सन्नसोपि न । प्राप्यते ह्यात्मनि तथा नापक्वकरणेज्ञता ॥ १४२ ॥
सर्वाश्रयां निजे देहे देही विन्दति वेदनाम् । योगी मुक्तश्च सर्वासां योग माप्नोति वेदनाम् ॥१४३॥
आकाशमेकं हि यथा घटादिषु पृथग्भवेत् । तमात्मेको ह्यनेकश्च जलाधारेष्विवांशुमान् ॥१४४॥
ब्रह्मखानिलतेजांसि जलम्भूश्चेति धातवः । इमे लोका एष चात्मा तस्माच्च सचराचरम् ॥१४५ ॥
मृद्दण्डचक्रसंयोगात्कुम्भकारो यथा घटम् । करोति तृणमृत्काष्ठैर्गृहं वा गृहकारकः ॥ १४६ ॥
हेममात्रमुपादाय रूपं वा हेमकारकः । निजलालासमायोगात्कोशं वा कोशकारकः ॥ १४७ ॥
कारणान्येवमादाय तासु तास्विह योनिषु । सृजत्यात्मानमात्मा च सम्भूय करणानि च ॥ १४८॥
महाभूतानि सत्यानि यथात्मापि तथैव हि । कोन्यथैकेन नेत्रेण दृष्टमन्येन पश्यति ॥ १४९ ॥
वाचं वा को विजानाति पुनः संश्रुत्य संश्रुताम् । अतीतार्थस्मृतिः कस्य को वा स्वप्नस्य कारकः ॥
जातिरूपवयोवृत्तविद्यादिभिरहङ्कृतः । शब्दादिविषयोद्योगं कर्मणा मनसा गिरा ॥ १५१ ॥
स सन्दिग्धमतिः कर्मफलमस्ति न वेत्ति वा । विप्लुतः सिद्धमात्मानमसिद्धोपि हि मन्यते १५२॥
मम दारासुतामात्या अहमेषामिति स्थितिः । हिताहितेषु भावेषु विपरीतमतिः सदा ॥ १५३ ॥
ज्ञेयज्ञे प्रकृतौ चैव विकारे वा विशेषवान् । अनाशकानलापातजलप्रपतनोद्यमी ॥ १५४ ॥
एवंवृत्तो विनीतात्मा वितथाभिनिवेशवान् । कर्मणा द्वेषमोहाभ्यामिच्छया चैव बध्यते ॥१५५ ॥

जैसे दर्पणके मलीन होनेसे उसमें रूप नहीं दखपडताहै वैसेही रागद्वेष आदि मलोंसे आक्रान्तचित्त होनेसे आत्माको पूर्वजन्ममें देखेहुए पदार्थोंका ज्ञान नहीं रहताहै ॥ १४१ ॥ जिस प्रकार कडुई ककडीमें उसका मधुररस प्रगट नहीं होता उसी प्रकार रागद्वेष आदि मलोंसे युक्त आत्मामें पूर्वजन्मकी बातोंको जाननेकी शक्ति नहीं होती ॥ १४२ ॥ देहाभिमानी पुरुष सुखदुःखको अपने शरीरसे ही भोगताहै और योगी तथा अहंकाररहित पुरुष सबका दुःखसुख जाननेमें समर्थ होताहै ॥ १४३ ॥ जैसे आकाश एक ही है; किन्तु घटआदि उपाधि भेदसे घटाकाश आदि भिन्न भिन्न नामसे कहाजाता है और जैसे एकही सूर्य जलके अनेकपात्रोंमें अनेक देख पडता है वैसेही एकही आत्मा (अन्तःकरणरूप उपाधिके भेदसे) अनेक जान पड़ताहै ॥ १४४ ॥ आत्मा, आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि ये सब धातु कहेजातेहैं अर्थात् शरीरमें व्याप्त होकर उसको धारण करनेसे धातु कहलाते हैं उनमें आकाश आदि पञ्चधातु जड़ और प्रथमधातु आत्मा चेतन है, इन्हीं सबसे चराचर जगत् उत्पन्न हुआहै ॥ १४५ ॥ जिस प्रकारसे मिट्टी दण्ड और चाकसे कुम्हार घड़ा बनाता है अथवा तृण, मिट्टी और काठसे कारीगर घर निर्माण करताहै वा सुवर्णसे कुण्डलादि विविध प्रकारकी वस्तु सोनार तैयार करदेताहै अथवा अपने लारसे मकड़ी जाला तनती है इसी प्रकार इन्द्रियों और पृथिवी आदि पञ्च भूतोंको लेकर आत्मा भिन्न भिन्न योनियोंमें अपनेको ही उत्पन्न करताहै ॥ १४६–१४८ ॥ जैसे पृथिवी आदि महाभूत (प्रमाणोंसे जानने योग्य होनेसे) सत्य हैं वैसेही आत्मा भी सत्य है, नहीं तो नेत्र इन्द्रियसे देखीहुई वस्तुको त्वचाइन्द्रियसे कौन जान सकता कि जिसको मैंने देखा उसकाही मैं स्पर्श करताहूं ॥१४९॥ पहिलेकी सुनीहुई बातको यह वही बात है ऐसा कौन जानता, बहुत दिनकी बातोंकी सुधि कौन रखता और स्वप्न किसको होता ॥ १५० ॥ जाति, रूप, अवस्था, आचरण, विद्या आदिसे अहङ्कार किसको होता और कर्म, मन तथा वचनसे शब्द आदि विषयोंका उद्योग कौन करता (इस कारणसे इन्द्रियोंसे अलग एक आत्मा है) ॥ ॥ १५१ ॥ वह आत्मा अहङ्कारसे दूषित होकर बुद्धिमें सन्देह करता है कि सब कर्मोंमें फल है अथवा नहीं और सिद्ध (कृतार्थ) नहीं होनेपर भी अपनेको कृतार्थ मानता है ॥ १५२ ॥ ऐसा निश्चय करताहै कि यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है और यह मेरा भृत्य है तथा मैं इनका हूं और सर्वदा हितको अहित और अहितको हित समझता है ॥१५३॥ आत्मा, प्रकृति (आत्माके गुणकी साम्यावस्था) और विकार (अहङ्कार आदि) में भेदज्ञान नहीं रहताहै; अनशन (भोजनका त्याग), अग्निप्रवेश, जल प्रवेश और ऊंच स्थानसे गिरनेका यत्न करताहै ॥ १५४ ॥ ऐसा अविनीतात्मा होकर झूठा सङ्कल्प करताहुआ कर्म, राग, द्वेष, मोह और इच्छासे बांधाजाताहै ॥ १५५ ॥

आचार्योपासनं वेदशास्त्रार्थेषु विवेकिता । तत्कर्मणामनुष्ठानं सङ्गः सद्भिर्गिरः शुभाः ॥ १५६ ॥
स्त्र्यालोकालम्भविगमः सर्वभूतात्मदर्शनम् । त्यागः परिग्रहाणां च जीर्णकाषायधारणम् ॥१५७॥
विषयेन्द्रियसंरोधस्तन्द्रालस्यविवर्जनम् । शरीरपरिसंख्यानं प्रवृत्तिष्वघदर्शनम् ॥ १५८ ॥
नीरजस्तमता सत्त्वशुद्धिर्निःस्पृहता शमः । एतैरुपायैः संशुद्धः सत्त्वयोग्यमृती भवेत् ॥ १५९ ॥
तत्त्वस्मृतेरुपस्थानात्सत्त्वयोगात्परिक्षयात् । कर्मणां सन्निकर्षाच्च सतां योगः प्रवर्त्तते ॥ १६० ॥

शरीरसङ्क्षये यस्य मनः सत्त्वस्थमीश्वरम् । अविप्लुततमतिः सम्यग्जातिसंस्मरतामियात् ॥१६१॥
यथा हि भरतो वर्णैर्वर्णयत्यात्मनस्तनुम् । नानारूपाणि कुर्वाणस्तथात्मा कर्मजास्तनूः ॥१६२ ॥
कालकर्मात्मबीजानां दोषैर्मातुस्तथैव च । गर्भस्य वैकृतं दृष्टमङ्गहीनादि जन्मतः ॥ १६३ ॥
अहङ्कारेण मनसा गत्या कर्मफलेन च । शरीरेण च नात्मा यम्मुक्तपूर्वः कथंचन ॥ १६४ ॥
वर्त्याधारः स्नेहयोगाद्यथा दीपस्य संस्थितिः । विक्रियापि च दृष्टैवमकाले प्राणसंक्षयः ॥ १६५ ॥

आचार्यकी सेवा करना, वेद और शास्त्रके अर्थका विवेक रखना, उनमें कहेहुए कर्मोंका अनुष्ठान करना, सत्पुरुषोंका संग करना, प्रियवचन बोलना, स्त्रियोंके दर्शन और स्पर्शका त्याग करना, सम्पूर्ण जीवोंको अपने समान देखना, परिग्रह (पुत्र, कलत्र ऐश्वर्यआदि) का त्याग करना, जीर्ण काषायवस्त्र धारणकरना, विषयोंसे इन्द्रियोंको रोकना, जंभाई और आलस्यको त्यागदेना, शरीरकी अशुद्धता आदि अवस्थाका स्मरण रखना, गमनआदि प्रवृत्तियोंमें पापको देखना, रजोगुण और तमोगुणका त्याग करना, प्राणायामआदिसे अन्तःकरणको शुद्ध रखना, विषयोंमें अभिलाष नहीं करना और बाह्यइन्द्रिय तथा अन्तःकरणको रोकना; इन उपायोंसे शुद्ध हुआ मनुष्य सत्त्वगुणयुक्त होकर मुक्त होताहै ॥ १५६–१५९ ॥ आत्मस्वरूपतत्त्वकी निश्चलस्थितिसे, सत्त्वगुण (शुद्धि) के योगसे, अविद्याआदि कर्मबीजके नाश होनेसे और सज्जनोंके सङ्गसे आत्मयोगकी प्रवृत्ति होतीहै ॥ १६० ॥ जिस स्थिरबुद्धिवाले मनुष्यका मन मरनेके समय सत्त्वगुणयुक्त होकर ईश्वरमें लगताहै उसको पूर्वजन्मका स्मरण रहताहै ॥ १६१ ॥ जैसे नट अनेकप्रकारके रूप बनानेके लिये नानावर्णका वेष बनाताहै वैसे ही कर्मफल भोगनेके लिये आत्मा अनेक प्रकारका शरीर धारण करताहै॥१६२॥ काल, कर्म, पिताके वीर्य और माताके शोणितके दोषके कारण गर्भका विकार होकर अंगहीन आदि दोष देखाजाताहै ॥ १६३ ॥ जबतक मुक्ति नहीं होती तबतक अहङ्कार, मन, गति (संसारका हेतु दोषोंकी राशि), कर्मफल और सूक्ष्मशरीरसे आत्मा छूट नहीं सकता ॥ १६४ ॥ जैसे बत्तीके आधार और तेलके योगसे दीपक जलताहै और प्रबलवायुसे बुझाजाताहै वैसे ही अकालमें भी प्राणोंका क्षय होताहै ॥ १६५ ॥

अनन्ता रश्मयस्तस्य दीपवद्यः स्थितो हृदि । सितासिताः कर्बुनीलाः कपिलाः पीतलोहिताः १६६
ऊर्ध्वमेकः स्थितस्तेषां यो भित्त्वा सूर्यमण्डलम् । ब्रह्मलोकमतिक्रम्य तेन याति परां गतिम्१६७॥
यदस्यान्यद्रश्मिशतमूर्ध्वमेव व्यवस्थितम् । तेन देवशरीराणि तैजसानि प्रपद्यते ॥ १६८ ॥
येनैकरूपाश्चाधस्ताद्रश्मयोस्य मृदुप्रभाः । इह कर्मोपभोगाय तैः संसरति सोवशः ॥ १६९ ॥

जो आत्मा दीपके समान हृदयमें स्थित है उसकी श्वेत, काली,कबरी, नीली, कपिला, पीली और लाल-रङ्गकी अनन्त नाड़ियां हैं ॥ १६६ ॥ उनमेंसे एक नाड़ी सूर्यमण्डलको भेदकर ब्रह्मलोकको अतिक्रम करके उससे ऊपर स्थित है उसीद्वारा जीव परमगतिको प्राप्त होताहै ॥ १६७ ॥ इस आत्माकी मुक्तिका मार्ग जो नाड़ी है उससे अन्य सैकड़ों नाड़ी ऊपरको स्थित हैं उनके द्वारा तेजोमय देवशरीर लाभ होताहै ॥ १६८ ॥ जो अनेकरूप कोमल कान्तिवाली नाड़ियां नीचेको स्थित हैं उनके द्वारा यह जीव कर्मफल भोगनेके लिये संसारमें जन्म लेताहै ॥ १६९ ॥

वेदैः शास्त्रैः सविज्ञानैर्जन्मना मरणेन च । आर्त्या गत्या तथागत्या सत्येन ह्यनृतेन च ॥ १७० ॥
श्रेयसा सुखदुःखाभ्यां कर्म्मभिश्च शुभाशुभैः । निमित्तशाकुनज्ञानग्रहसंयोगजैः फलैः ॥ १७१ ॥
तारानक्षत्रसंचारैर्जागरैः स्वप्नजैरपि । आकाशपवनज्योतिर्जलभूतिमिरैस्तथा ॥ १७२ ॥
मन्वन्तरैर्युगप्राप्त्या मंत्रौषधिफलैरपि । वित्तात्मानं वेद्यमानं कारणं जगतस्तथा ॥ १७३ ॥
अहङ्कारः स्मृतिर्मेधा द्वेषो बुद्धिः सुखं धृतिः । इन्द्रियान्तरसंचार इच्छा धारणजीविते ॥ १७४॥
स्वर्गः स्वप्नश्च भावानाम्प्रेरणं मनसो गतिः । निमेषश्चेतना यत्न आदानम्पाञ्चभौतिकम् ॥१७५॥
यत एतानि दृश्यन्ते लिङ्गानि परमात्मनः । तस्मादस्ति परो देहादात्मा सर्वग ईश्वरः ॥ १७६ ॥

वेद, शास्त्र, विज्ञान (अनुभव), जन्म, मरण, व्याधि, गमन, अगमन, सत्य, मिथ्या, कल्याण, सुख, दुःख, शुभकर्म, अशुभकर्म, भूकम्पआदि निमित्त, शकुनोंका ज्ञान (पक्षियोंकी चेष्टासे शुभ, अशुभ जानना) सूर्यादिग्रह संयोगका फल, तारा और अश्वनीआदि नक्षत्रके संचारसे शुभाशुभका फल, जाग्रत अवस्था, स्वप्न अवस्था, आकाश, वायु, सूर्यआदि ज्योति, जल, भूमि, अन्धकार, मन्वन्तर, युगोंकी प्राप्ति और मंत्र तथा औषधियोंका फल; इनसे जानना चाहिये कि आत्मा देहसे पृथक् और जगत्का कारण है ॥ १७०–१७३ ॥ अहंकार, स्मरण, धारण, द्वेष, बुद्धि, सुख, धैर्य, इन्द्रियान्तर संचार अर्थात् एक इन्द्रियगृहीतविषय अन्य इन्द्रियद्वारा ग्रहण, इच्छा, देहधारण, प्राणधारण, स्वर्ग, स्वप्न, इन्द्रियोंकी प्रेरणा, मनकी गति, निमेष, चेतना, यत्न और पञ्चभूतोंका धारण ये सब परमात्माके चिह्न देखपडतेहैं, इस लिये सर्वव्यापक ईश्वर आत्मा देहसे भिन्न है ॥ १७४—१७६ ॥

बुद्धीन्द्रियाणि सार्थानि मनः कर्मेन्द्रियाणि च। अहङ्कारश्च बुद्धिश्च पृथिव्यादीनि चैव हि १७७
अव्यक्तमात्मा क्षेत्रज्ञः क्षेत्रस्यास्य निगद्यते। ईश्वरः सर्वभूतस्थः सन्नसन्सदसच्च यः॥ १७८॥

श्रोत्रादि ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ उनके विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) मन, हाथ आदि ५ कर्मेन्द्रिय, अहंकार, बुद्धि पृथिवी आदि पञ्चभूत और प्रकृति, ये सब उस सर्वव्यापी ईश्वर सत् असत् रूपधारी आत्माके क्षेत्र (स्थान) हैं, इनमें रहकर वह आत्मा क्षेत्रज्ञ कहलाताहै॥ १७७–१७८॥

बुद्धेरुत्पत्तिरव्यक्तात्ततोहंकारसंभवः। तन्मात्रादीन्यहङ्कारादेकोत्तरगुणानि च॥ १७९॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च तद्गुणाः। यो यस्मान्निःसृतश्चैषां स तस्मिन्नेव लीयते॥१८०॥

प्रकृतिसे बुद्धि, बुद्धिसे अहंकार और अहंकारसे पञ्चतन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) की उत्पत्ति होती है, पञ्चतन्मत्राओंमें क्रमसे एक एक गुण अधिक होतेहैं॥ १७९॥ शब्द, स्पर्श, रूप,रस और गन्ध ये सब उस (आकाश आदि पञ्चभूतों) के गुण हैं; पूर्वोक्त बुद्धि आदि जो जिससे निकला है वह प्रलयके समय उसीमें लीन होजाताहै ❋॥ १८०॥

यथात्मानं सृजत्यात्मा तथा वः कथितो मया। विपाकात्त्रिः प्रकाराणां कर्मणामीश्वरोपि सन्१८१॥
सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणास्तस्यैव कीर्तिताः। रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवद् भ्राम्यते ह्यसौ॥ १८२॥
अनादिरादिमांश्चैव स एव पुरुषः परः। लिङ्गेन्द्रियग्राह्यरूपः सविकार उदाहृतः॥ १८३॥

आत्मा स्वयं ईश्वर होनेपर भी कायिक, वाचिक और मानसिक कर्मके विपाकसे जिस प्रकार आत्मा (जीवको) रचता है वह मैंने आप लोगोंसे कहा॥ १८१॥ सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण उसी आत्माके गुण हैं और रजोगुण तथा तमोगुणसे युक्त होकर वह चक्रके समान इस संसारमें घूमताहै यहभी कहदिया॥ १८२॥ वही अनादि परम पुरुष शरीर धारण करनेसे आदिमान् और कुब्ज, वामन आदि विकारोंसहित तथा चिह्न और इन्द्रियोंसे ग्रहण करनेयोग्य होताहै॥ १८३॥

पितृयानोऽजवीथ्याश्च यदगस्त्यस्य चान्तरम्। तेनाग्निहोत्रिणो यांति स्वर्गकामा दिवम्प्रति१८४॥
ये च दानपराः सम्यगष्टाभिश्च गुणैर्युताः। तेपि तेनैव मार्गेण सत्यव्रतपरायणाः॥ १८५॥
तत्राष्टाशीतिसाहस्रा मुनयो गृहमेधिनः। पुनरावर्तिनो बीजभूता धर्मप्रवर्तकाः॥ १८६॥
सप्तर्षिनागवीथ्यन्तर्देवलोकं समाश्रिताः। तावन्त एव मुनयः सर्वारम्भविवर्जिताः॥ १८७॥
तपसा ब्रह्मचर्येण संगत्यागेन मेधया। तत्र गत्वावतिष्ठंते यावदाभूतसंप्लवम्॥ १८८॥
यतो वेदाः पुराणानि विद्योपनिषदस्तथा। श्लोकाः सूत्राणि भाष्याणि यच्च किंचन वाङ्मयम्॥
वेदानुवचनं यज्ञो ब्रह्मचर्यं तपो दमः। श्रद्धोपवासः स्वातंत्र्यमात्मनो ज्ञानहेतवः॥ १९०॥
स ह्याश्रमैर्विजिज्ञास्यः समस्तैरेवमेव तु। द्रष्टव्यस्त्वथ मन्तव्यः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः॥१९१॥
यएनमेवं विन्दन्ति ये चारण्यकमाश्रिताः। उपासते द्विजाः सत्यं श्रद्धया परया युताः॥ १९२॥
क्रमात्ते सम्भवन्त्यर्चिरहः शुक्लं तथोत्तरम्। अयनं देवलोकं च सवितारं सवैद्युतम्॥ १९३॥
ततस्तान्पुरुषोभ्येत्य मानसो ब्रह्म लौकिकम्। करोति पुनरावृत्तिस्तेषामिह न विद्यते॥ १९४॥
यज्ञेन तपसा दानैर्ये हि स्वर्गजितो नराः। धूमन्निशां कृष्णपक्षं दक्षिणायनमेव च॥ १९५॥
पितृलोकं चन्द्रमसं वायुं वृष्टिं जलं महीम्। क्रमात्ते सम्भवन्तीह पुनरेव व्रजन्ति च॥ १९६॥
एतद्यो न विजानाति मार्गद्वितयमत्मावान्। दन्दशूकः पतङ्गो वा भवेत्कीटोथ वा कृमिः॥१९७॥

अजवीथी (देवमार्ग) और अगस्त्यके तारा के बीच जो पितृयान नामक स्थान है उसी मार्गसे स्वर्गाभिलाषी अग्निहोत्री लोग स्वर्गमें जातेहैं॥ १८४॥ जो मनुष्य दानपरायण, अहंकाररहित, आठ गुणो (दया क्षमा, अनसूया, शौच, अनायास, मङ्गल, अकार्पण्य और अस्पृहा) से युक्त और सत्यनिष्ठ हैं वे भी उसी मार्गसे स्वर्गमें प्राप्त होतेहैं॥ १८५॥ उस पितृयानमें गृहस्थधर्मवाले ८८ सहस्र मुनि रहते हैं, वे लोग पुनःपुनः सृष्टिके आदिमें धर्मका उपदेश करके उसका बीज बोते हैं॥ १८६॥ सप्तर्षिमण्डल और नागवीथी (ऐरावत पथ) के बीचमें देवलोकमें रहनेवाले उतने ही (८८ सहस्र) मुनि, जो सब आरम्भोंसे रहित (तत्त्वज्ञानी) तपस्वी, ब्रह्मचर्ययुक्त, सङ्गत्यागी और मेधायुक्त हैं, वहां जाकर प्रलयतक स्थिर रहतेहैं॥१८७–१८८॥ उन्हींसे वेद, पुराण, अङ्गविद्या, उपनिषद, सूत्र, श्लोक भाष्य और सम्पूर्ण वाङ्मय शास्त्र प्रचलित होते हैं॥१८९॥ वेदपाठ, यज्ञ, ब्रह्मचर्य; तपस्या, दम, श्रद्धा, उपवास और स्वतन्त्रता (विषयके वश न होना) ये सब आत्मज्ञानके कारण हैं अर्थात् इनसे आत्मज्ञान होताहै॥ १९०॥ सब आश्रमवाले द्विजातियोंको उचित है कि उस आत्माको जानने, देखने और सुननेका उद्योग करें॥ १९१॥

❋ मनुस्मृति—१ अध्यायके ७५—७८ श्लोक। सृष्टिकी आदिमें महत्तत्त्वसे आकाश उत्पन्न हुआ जिसका गुण शब्द है; आकाशसे वायुकी उत्पत्ति हुई जिसका गुण स्पर्श है; वायुसे अग्नि उत्पन्न हुआ जिसका गुण रूप है; अग्निसे जल उत्पन्न हुआ, जिसका गुण रस है और जलसे पृथिवी उत्पन्न हुई जिसका गुण गन्ध है।

जो द्विज परमश्रद्धासे युक्त होकर निर्जन स्थानमें निवास करके सत्य (आत्मा) की उपासना करतेहैं वे क्रमसे अग्नि, दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण, देवलोक, सूर्य और तेजको प्राप्त होतेहैं, फिर मानस पुरुष आकर उनको ब्रह्मलोकमें लेजाताहै, जहांसे फिर इस लोकमें लौटना नहीं होता ॥ १९२—१९४ ॥ जो लोग यज्ञ, तपस्या और दानसे स्वर्गमें जातेहैं वे क्रमसे धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन, पितृलोक और चन्द्रलोकको प्राप्त करतेहैं फिर वायु, वृष्टि, जल और भूमिको प्राप्त होकर अर्थात् अन्नरूपसे वीर्य होकर संसारमें आतेहैं ॥१९५——१९६॥ जो मनुष्य इन दोनों मार्गोंका निवारण नहीं जानता है अर्थात् दोनों मार्गोंके धर्मोंका आचरण नहीं करताहै वह सर्प, पक्षी, कीट अथवा कृमिका जन्म पाताहै ॥ १९७ ॥

ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्ये न्यस्योत्तरं करम् । उत्तान किंचिदुन्नाम्य मुखं विष्टभ्य चोरसा ॥ १९८ ॥
निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो दन्तैर्दन्तानसंस्पृशन् । तालुस्थाचलजिह्वश्च संवृतास्यः सुनिश्चलः ॥१९९॥
संनिरुध्येन्द्रियग्रामं नातिनीचोच्छ्रितासनः । द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्राणायाममुपक्रमेत् ॥ २०० ॥
ततो ध्येयः स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः । धारयेत्तत्र चात्मानं धारणां धारयन्बुधः ॥ २०१ ॥
अन्तर्द्धानं स्मृतिः कान्तिर्दृष्टिः श्रोतज्ञता तथा । निजं शरीरमुत्सृज्य परकायप्रवेशनम् ॥ २०२ ॥
अर्थानां छन्दतः सृष्टिर्योगसिद्धेर्हि लक्षणम् । सिद्धेयोगे त्यजन्देहममृतत्वाय कल्पते ॥ २०३ ॥
अथवाप्यभ्यसन्वेदं न्यस्तकर्मा वने वसन् । अयाचिताशी मितभुक् परां सिद्धिमवाप्नुयात्॥२०४॥
न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः । श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोपि हि मुच्यते ॥ २०५ ॥

दहिने जंघेपर बांया चरण और बांये जंघे पर दहिना चरण उत्तान करके स्थापित करे, बांये हाथकी हथेलीमें उत्तान करके दहिना हाथ रक्खे, मुखको छातीसे थांमकर किंचित् उन्नत करे, आंख मूंद देवे, काम, क्रोधादिसे रहित होवे, दांतोंसे दान्तोंका स्पर्श नहीं करे, तालूमें जीभको अचल रक्खे, मुखके बन्द करदेवे, शरीको निश्चल रक्खे, इन्द्रियोंको विषयोंसे निवृत्त करे, जो आसन न बहुत ऊंचा न बहुत नीचा हो उसपर बैठे, दुगुने अथवा तिगुने प्राणायामका अभ्यास करे ॥ १९८——२०० ॥ उसके पश्चात् जो प्रभु हृदयमें दीपकके समान स्थित है उसका ध्यान करे, बुद्धिमान् मनुष्य उसीमें मनको धारणा करके योगावलंबन करे ॥ २०१ ॥ अन्तर्द्धान होजाना, स्मृति (अतीन्द्रिय बातोंका स्मरण) रखना, शोभा होना, भूत भविष्य बातोंको देखना, बड़ी दूरकी बातोंको सुनलेना, अपने शरीरको छोड़कर दूसरेकी देहमें प्रवेश करजाना और अपनी इच्छासे पदार्थोंका रचना करलेना; ये सब योगसिद्धके लक्षण हैं, योगसिद्धि होने पर मरनेवाला योगी मोक्ष पाताहै ॥ २०२——२०३ ॥ अथवा जो मनुष्य सब कामनाओंको त्यागकर वनमें निवास करके वेदका अभ्यास रखताहै और विना मांगेहुए प्राप्त अन्नको परिमित (थोड़ा) भोजन करता है वह परम सिद्धि अर्थात् मोक्षको पाताहै ॥ २०४ ॥ धर्मपूर्वक धन उपार्जन करनेवाला, तत्त्वज्ञानमें निष्ठ अतिथियोंका सत्कार करनेवाला, श्राद्धकर्ममें तत्पर रहनेवाला और सत्यवादी गृहस्थ भी मुक्त होताहै ॥२०५॥

(९) हारीतस्मृति—७ अध्याय ।

योगशास्त्रं प्रवक्ष्यामि संक्षेपात्सारमुत्तमम् । यस्य च श्रवणाद्यान्ति मोक्षं चैव मुमुक्षवः ॥ २ ॥
योगाभ्यासबलेनैव नश्येयुः पातकानि च । तस्माद्योगपरो भूत्वा ध्यायेन्नित्यं क्रियापरः ॥ ३ ॥
प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम् । धारणाभिर्वशे कृत्वा पूर्वं दुर्धर्षणं मनः ॥ ४ ॥
एकाकारमनानन्दं बुद्धिरूपमलामयम् । सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्यायेज्जगदाधारमुच्यते ॥ ५ ॥
आत्मना बहिरंतस्थं शुद्धचामीकरप्रभम् । रहस्येकान्तमासीनो ध्यायेदामरणान्तिकम् ॥ ६ ॥
यत्सर्वप्राणिहृदयं सर्वेषां च हृदि स्थितम् । यच्च सर्वजनैर्ज्ञेयं सोहमस्मीति चिन्तयेत् ॥ ७ ॥
आत्मलाभसुखं यावत्तपोध्यानमुदीरितम् । श्रुतिस्मृत्यादिकं धर्मं तद्विरुद्धं न चाचरेत् ॥ ८ ॥
यथा रथोऽश्वहीनस्तु यथाश्वो रथिहीनकः । एवं तपश्च विद्या च संयुते भैषजं भवेत् ॥ ९ ॥
यथान्नं मधुसंयुक्तं मधु वान्नेन संयुतम् । उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥ १० ॥
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् । विद्यातपोभ्यां सम्पन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥११॥
देहद्वयं विहायाशु मुक्तो भवति बन्धनात् । न तथा क्षीणदेहस्य विनाशो विद्यते क्वचित् ॥ १२ ॥

अब संक्षेपसे योगशास्त्रका उत्तम सार मैं कहताहूं जिसके सुननेसे मोक्षकी इच्छावाले मनुष्य मुक्त हो हैं ॥ २ ॥ योगाभ्यासके बलसे पाप नष्ट होतेहैं इस लिये योगमें तत्पर होकर उत्तम आचारणसे मनुष्य नित्य ध्यान करे ॥ ३ ॥ प्रथम प्राणायामसे वाणीको, प्रत्याहारसे इन्द्रियोंको और धारणासे वशकरनेके अयोग्य मनको वशमें करके एकाग्रचित्त होकर जो देवताओंको भी अगम्य, सूक्ष्मसे सूक्ष्म और जगत्के आश्रय है उस परमात्माका ध्यान करे ॥ ४–५ ॥ निर्जनस्थानमें एकाग्रचित्त बैठकर बाहर भीतर स्थित और शुद्ध सोनेके समान कान्तिवाले परमात्माका जन्मपर्यन्त ध्यान करतेरहे ॥ ६ ॥ जो सम्पूर्ण प्राणियोंका हृदय है, जो सबके हृदयमें विराजमान है और जो सबके जाननेयोग्य है वह परमात्मा मैं ही हूं, ऐसा चिंतवन करे ॥ ७ ॥ जबतक आत्माके लाभका सुख नहीं प्राप्त होवे तबतक तपस्या, ध्यान और श्रुति तथा स्मृतियोंमें कहेहुये

अन्य धर्म करे, आत्माकी प्राप्तिका विरोधी कर्म नहीं करे ॥ ८ ॥ जैसे घोड़ेविना रथ और सारथीविना घोड़ा नहीं चलता (दोनों परस्पर सहायक हैं) वैसेही तपस्या और विद्या (ज्ञान) दोनों मिलकर संसाररोगकी औषध हैं ॥ ९ ॥ जिसप्रकार मीठेसे युक्त अन्न और अन्नसे युक्त मीठा है और जिस भांति दोनों पंखसे ही आकाशमें पक्षी उड़सकतेहैं उसी प्रकार ज्ञान और कर्म (तपस्याआदि) दोनोंसे ही सनातन ब्रह्म मिलतेहैं ॥ १०-११ ॥ ज्ञान और तपसे युक्त और योगमें तत्पर ब्राह्मण स्थूल और सूक्ष्म; इन दोनों देहोंको छोड़कर बन्धनसे छूटजाता है, इस प्रकार जिसका शरीर नष्ट होगया है उसकी कुगति कभी नहीं होती ॥ ११-१२ ॥

(९) आपस्तम्बस्मृति–१० अध्याय।

न यमं यममित्याहुरात्मा वै यम उच्यते। आत्मा संयमितो येन तं यमः किं करिष्यति ॥३॥ न तथासिस्तथ। तीक्ष्णः सर्पो वा दुरधिष्ठितः। यथा क्रोधो हि जन्तूनां शरीरस्थो विनाशकः॥४॥ क्षमा गुणो हि जन्तूनामिहामुत्र सुखप्रदः। एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ॥५॥ यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः॥ न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चैव रम्यावसथप्रियस्य॥६॥ न भोजनाच्छादनतत्परस्य न लोकचित्तग्रहणे रतस्य ॥७॥ एकान्तशीलस्य दृढव्रतस्य मोक्षो भवे-त्प्रीतिनिवर्तकस्य। अध्यात्मयोगैकरतस्य सम्यङ्मोक्षो भवेन्नित्यमहिंसकस्य ॥ ८ ॥

बुद्धिमान्लोग यमराजको यम (दण्डदाता) नहीं कहतेहैं; किन्तु अपने आत्माको ही यम मानतेहैं जिसने आत्माको वशमें करलिया उसका यमराज क्या करेगा॥३॥खड्ग भी ऐसा तीक्ष्ण नहीं और सर्पभी ऐसा भयानक नहीं जैसा प्राणियोंके शरीरमें क्रोध नाशकरनेवाला है॥४॥ क्षमा जो गुण है वह प्राणियोंको इसलोक और परलोकमें सुख देनेवाला है, क्षमावालेंमें एक ही दो है,दूसरा नहीं कि क्षमावालेको मनुष्य असमर्थ मानतेहैं ॥५-६॥ व्याकरणमें रत रहनेसे, रमणीयगृहमें प्रीति होनेसे, भोजन वस्त्रमें तत्पर रहनेसे तथा संसारके मनको वश करनेमें रत होनेसे मोक्ष नहीं होता; किन्तु जो मनुष्य एकान्तमें निवास करताहै, दृढव्रतयुक्त है, सबकी प्रीतिसे अलग रहताहै,अध्यात्मयोगमें तत्पर है और कभी हिंसा नहीं करताहै उसीका मोक्ष होताहै ॥ ६-८ ॥

(१७) दक्षस्मृति–७ अध्याय।

लोका वशीकृता येन येन चात्मा वशीकृतः। इन्द्रियार्थो जितो येन तं योगं प्रब्रवीम्यहम् ॥ १ ॥ प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा। तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते ॥ २ ॥ नारण्यसेवनाद्योगो नानेकग्रंथचिन्तनात्। व्रतैर्यज्ञैस्तपोभिर्वा न योगः कस्यचिद्भवेत् ॥ ४ ॥ न च पथ्याशनाद्योगो न नासाग्रनिरीक्षणात्। न च शास्त्रातिरिक्तेन शौचेन भवति कचित् ॥५॥ न मन्त्रमौनकुहकैरनेकैः सुकृतैस्तथा। लोकयात्रानियुक्तस्य योगो भवति कस्यचित् ॥ ६ ॥ अभियोगात्तथाभ्यासात्तस्मिन्नेव तु निश्चयात्। पुनः पुनश्च निर्वेदाद्योगः सिद्ध्यति योगिनः ॥७॥ आत्मचिन्ताविनोदेन शौचेन क्रीडनेन च। सर्वभूतसमत्वेन योगः सिद्ध्यति नान्यथा ॥ ८ ॥ यश्चाऽऽत्ममिथुनो नित्यमात्मक्रीडस्तथैव च। आत्मानन्दस्तु सततमात्मन्येव सुभावितः ॥ ९ ॥ रतश्चैव सुतुष्टश्च संतुष्टो नान्यमानसः। आत्मन्येव सुतृप्तोसौ योगस्तस्य प्रसिद्ध्यति ॥ १० ॥ सुप्तोपि योगयुक्तश्च जाग्रदेव विशेषतः। ईदृक्चेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो वरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम् ॥ ११ ॥ अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नैव पश्यति। ब्रह्मभूतः स एवेह दक्षपक्ष उदाहृतः ॥ १२ ॥

जिससे जगत् वशमें कियाजाता है, जिसके द्वारा आत्मा वशमें होताहै और जिससे इन्द्रियां जीतीजातीहैं उस योगकी कथा मैं कहताहूं ॥ १ ॥ प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, तर्क (विवेक) और समाधि, ये ६ जिसके अङ्ग हैं उसको योग कहतेहैं ॥ २ ॥ वनमें वास, अनेक ग्रन्थोंके विचार, व्रत, यज्ञ अथवा तपस्यासे किसीको योग प्राप्त नहीं होता ॥ ४ ॥ पथ्य भोजन, नाकके अग्रभागके निरीक्षण, बहुत शास्त्रोंके देखने और शौचसे भी कभी योग नहीं होसकता ॥ ५ ॥ मन्त्र जपने, मौन रहने, होम करने, नाना प्रकारके पुण्य करने और लोकके व्यवहारोंमें तत्पर रहनेसे भी योग सिद्ध नहीं होताहै ॥ ६ ॥ योगमें तत्पर होने, लगातार उसका अभ्यास करने, उसमें अचल श्रद्धा विश्वास रखने और बारबार वैराग्य होनेसे योग सिद्ध होताहै ॥ ७ ॥ आत्माकी चिन्ताके आनन्द, शौचकी क्रीड़ा और सम्पूर्ण प्राणियोंमें समतासे योग सिद्ध होताहै; अन्यथा नहीं ॥ ८ ॥ जो मनुष्य सदा आत्मामें लीन, आत्मक्रिया परायण, आत्मामें आनन्द, आत्मध्यान परायण, आत्मामें रत, आत्मामें संतुष्ट, अनन्यचित्त और आत्मामेंही भलीभांति तृप्त है उसीका योग सिद्ध होताहै ॥९-१०॥ जो निद्रित अवस्थामें भी और विशेष

शङ्खस्मृति–७अध्याय,१२–१५श्लोक। प्राणोंको रोककर सात व्याहृति, ओङ्कार और शिरोमन्त्र (आपोज्योति)सहित गायत्रीके तीन बार पढ़नेको प्राणायाम कहतेहैं,संमयके जाननेवाले मनके रोकनेको धारणा कहते हैं, विषयोंसे इन्द्रियोंके हटानेको प्रत्याहार कहतेहैं और हृदयमें ध्यानके योगसे ब्रह्मके दर्शनके ध्यान कहतेहैं।

करके जाग्रत अवस्थामें योग युक्त रहताहै, जिसकी ऐसी चेष्टा है वही श्रेष्ठ और ब्रह्मवादियोंमें बड़ा कहागयाहै ॥ ११ ॥ जो मनुष्य इसलोकमें आत्माके विना दूसरेको नहीं देखताहै अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियोंको आत्मरूप समान भावसे देखताहै, दक्षके मतसे वही ब्रह्मस्वरूप है ॥ १२ ॥

विषयासक्तचित्तो हि यतिर्मोक्षं न विन्दति । यत्नेन विषयासक्तिं तस्माद्योगी विवर्जयेत् ॥ १३ ॥
विषयेन्द्रियसंयोगं केचिद्योगं वदन्ति वै । अधर्मो धर्मबुद्ध्या तु गृहीतस्तैरपण्डितैः ॥ १४ ॥
आत्मनो मनसश्चैव संयोगं तु ततः परम् । उक्तानामधिका ह्येते केवलं योगवञ्चिताः ॥ १५ ॥

जिस यतीका चित्त विषयमें आसक्त है वह मोक्ष नहीं पाताहै, इसलिये योगी यत्नपूर्वक विषयसे मनको हटालेवे ॥ १३ ॥ कोई कोई विषय और इन्द्रियोंके संयोगको योग कहतेहैं; वे निर्बुद्धि अधर्मको धर्म जानकर ग्रहण करतेहैं ॥ १४ ॥ अन्य कोई कोई आत्मा और मनके संयोगको योग कहतेहैं, वे लोग पूर्वोक्त लोगोंसे भी अधिक योगवञ्चित हैं ॥ १५ ॥

वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि । एकीकृत्य विमुच्येत योगोयं मुख्य उच्यते ॥ १६ ॥
कषायमोहविक्षेपलज्जाशङ्कादिचेतसः । व्य पारास्तु समाख्यातास्ताञ्जित्वा वशमानयेत् ॥ १७ ॥
कुटुम्बैः पञ्चभिर्ग्रामः षष्ठस्तत्र महत्तरः । देवासुरैर्मनुष्यैश्च स जेतुं नैव शक्यते ॥ १८ ॥
बलेन परराष्ट्राणि गृह्णञ्छूरस्तु नोच्यते । जितो येनेन्द्रियग्रामः स शूरः कथ्यते बुधैः ॥ १९ ॥
बहिर्मुखानि सर्वाणि कृत्वा चाभिमुखानि वै । मनस्येवेन्द्रियाण्यत्र मनश्चात्मनि योजयेत् ॥ २० ॥
सर्वभावविनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत् । एतद्ध्यानं तथा ज्ञानं शेषस्तु ग्रन्थविस्तरः ॥ २१ ॥

सब वृत्तियोंसे मनको हटाकर जीवात्माको परमात्मामें मिलादेनेसे मुक्ति होजाती है, इसको मुख्य योग कहतेहैं ॥ १६ ॥ मनकी मलीनता, मोह, चित्तकी चञ्चलता, लज्जा और शङ्काआदि, ये चित्तके व्यापार कहेजातेहैं, इनको जीतकर मनको वशमें करे ॥ १७ ॥ पांच कुटुम्बों अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रियोंका ग्राम होताहै और छठवां मन उस ग्रामका प्रबल प्रधान है, जिसको देवता, असुर और मनुष्य जीत नहीं सकतेहैं ॥ १८ ॥ जो मनुष्य बलसे परायेके राज्यको जीतलेता है, वह शूर नहीं होता; किन्तु जिसने इन्द्रियोंके ग्रामको जीता है बुद्धिमान् लोग उसीको शूर कहतेहैं ॥ १९ ॥ विषयोंमें लगीहुई सब इन्द्रियोंको विषयोंसे हटादेवे, इन्द्रियोंको मनमें और मनको आत्मामें युक्त करे ॥ २० ॥ सब पदार्थोंसे रहित क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) को ब्रह्ममें मिलावे, यही ध्यान और ज्ञान है बाकी सब तो ग्रन्थोंका विस्तार है ॥ २१ ॥

त्यक्त्वा विषयभोगांस्तु मनो निश्चलतां गतम् । आत्मशक्तिस्वरूपेण समाधिः परिकीर्त्तितः॥२२॥
चतुर्णां सन्निकर्षेण फलं यत्तदशाश्वतम् । द्वयोस्तु सन्निकर्षेण शाश्वतं ध्रुवमक्षयम् ॥ २३ ॥

विषयभोगोंको त्यागकर आत्मशक्तिरूपसे मनकी स्थिरताको समाधि कहतेहैं ॥ २२ ॥ चार अर्थात् योगके ४ अङ्ग प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार और धारणाके योगसे जो फल होताहै वह अनित्य है और दो अर्थात् तर्क (विवेक) और समाधिके योगसे प्राप्तहुआ फल नित्य और अक्षय है ॥ २३ ॥

यन्नास्ति सर्वलोकस्य तदस्तीति विरुध्यते । कथ्यमानं तथान्यस्य हृदयेनावतिष्ठते ॥ २४ ॥
स्वयंवेद्यं च तद्ब्रह्म कुमारी मैथुनं यथा । अयोगी नैव जानाति जात्यन्धो हि यथा घटम् ॥२५ ॥
नित्याभ्यसनशीलस्य सुसंवेद्यं हि तद्भवेत् । तत्सूक्ष्मत्वादनिर्देश्यं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ २६ ॥
बुधास्त्वाभरणं भावं मनसालोचनं तथा । मन्यन्ते स्त्री च मूर्खश्च तदेव बहु मन्यते ॥ २७ ॥
सत्त्वोत्कटाः सुरास्तेपि विषयेन वशीकृताः । प्रमादिभिः क्षुद्रसत्त्वैर्मनुष्यैरत्र का कथा ॥ २८ ॥
तस्मात्त्यक्तकषायेण कर्त्तव्यं दण्डधारणम् । इतरस्तु न शक्नोति विषयैरभिभूयते ॥ २९ ॥
न स्थिरं क्षणमप्येकमुदकं च यथोर्मिभिः । वाताहतं तथा चित्तं तस्मात्तस्य न विश्वसेत् ॥ ३० ॥

इति श्रीबाबूसाधुचरणप्रसादसंगृहीतो धर्मशास्त्रसंग्रहः समाप्तः ।

जो ब्रह्म सबको नास्ति प्रतीत होताहै वह विद्यमान है ऐसा कहनेसे दोनों बातोंमें विरोध पड़ताहै और जो कहीं नहीं है वह अन्यके हृदयमें क्यों स्थित होगा ॥ २४ ॥ वह ब्रह्म कुमारीके मैथुनके समान स्वयं जानने योग्य है, जैसे जन्मान्ध मनुष्य घटके रूपको नहीं देखसकता वैसे ही योगमार्गसे हीन मनुष्य उस ब्रह्मको नहीं जानताहै ॥ २५ ॥ नित्य योगाभ्यासके स्वभाववाले मनुष्यको अनायाससे ब्रह्म जाननेयोग्य होजाताहै, वह सनातन परब्रह्म सूक्ष्म होनेके कारण दिखानेयोग्य नहीं है ॥ २६ ॥ पण्डित लोग मनमें ब्रह्मका ज्ञान होनेको ही भूषण मानतेहैं । और स्त्री तथा मूर्खलोग आभूषणको बहुत उत्तम समझतेहैं ॥२७॥ जब विषयोंने सत्त्वगुणी देवताओंको भी अपने वशमें करलिया तब भूलमें पड़हुए अल्पसत्त्व गुणवाले मनुष्योंके बशकरनेकी क्या कहना है ॥ २८ ॥ इसलिये मनके मलको त्याग करके दण्ड धारण करना चाहिये, जिसने त्याग नहीं किया वह दण्डधारणके लिये समर्थ नहीं होताहै; क्योंकि विषय उसको दबालेतेहैं ॥ २९ ॥ जिस प्रकारसे तरङ्गोंके उठनेसे जल क्षणमात्र भी स्थिर नहीं रहता उसी प्रकार विषयवासनाओंसे हताहुआ चित्त स्थिर नहीं रहसकता, इसलिये उसका विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ ३० ॥

इति श्री बाबू साधुचरणप्रसाद विरचित धर्मशास्त्रसंग्रहभाषाटीका समाप्त ।

अथ धर्मशास्त्रसंग्रहका-परिशिष्ट *।

(१) मनुस्मृति-१अध्याय ।

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः । रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः ॥ ४३ ॥
अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः । यानि चैवंप्रकाराणि स्थलजान्यौदकानिच॥४४॥
स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम् । ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम् ॥ ४५ ॥
उद्भिज्जास्स्थावरास्सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः । ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ ४६ ॥
अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयस्स्मृताः । पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतस्स्मृताः ॥ ४७ ॥
निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला । त्रिंशत्कला मुहूर्त्तः स्यादहोरात्रन्तु तावतः॥६४॥
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः । कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥६६॥
दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः । अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ ६७ ॥
मनस्सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया । आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः ॥ ७५ ॥
आकाशात्तु विकुर्वाणात्सर्वगन्धवहः शुचिः । बलवाञ्जायते वायुस्स वै स्पर्शगुणो मतः ॥ ७६ ॥
वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम् । ज्योतिरुत्पद्यते भास्वत्तद्रूपगुणमुच्यते ॥ ७७ ॥
ज्योतिषश्च विकुर्वाणादापो रसगुणाः स्मृताः । अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादितः ॥७८
अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ ८८ ॥

मनुस्मृति-२ अध्याय ।

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः । ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥१०॥
प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते । मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥ २९ ॥
नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत् । पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥ ३० ॥
चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् । षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मङ्गलं कुले ॥ ३४ ॥
चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः । प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥ ३५ ॥
गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् । गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥ ३६ ॥
ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे । राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥ ३७ ॥
आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते । आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥ ३८ ॥
अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः । सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥ ३९ ॥
नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित् । ब्राह्मान्यौनांश्च संबन्धान्नाचरेद्ब्राह्मणः सह ॥ ४० ॥
उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात्समाहितः । भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत्॥५३॥
पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् । दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ॥ ५४ ॥
पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति । अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम् ॥ ५५ ॥
नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा । न चैवाध्यशनं कुर्यान्नचोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥ ५६ ॥
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् । अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ५७ ॥
अङ्गुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते । कायमङ्गुलिमूलेऽग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः ॥ ५९ ॥
मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् । अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवत् ॥ ६४ ॥
केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते । राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः ॥ ६५ ॥
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी । पायूपस्थं हस्तपादं वाक्चैव दशमी स्मृता ॥ ९०॥
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः । कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते ॥ ९१ ॥
श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः । न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः९८
पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् । पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥ १०१॥

* धर्मशास्त्रसंग्रहकी टिप्पणियोंके तथा संज्ञाशब्दार्थके मूलश्लोक इस परिशिष्टमें हैं ।

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके । नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ॥ १०९ ॥
उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः । सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ १४० ॥
एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः । योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥ १४१ ॥
निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि । संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥ १४२ ॥
अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान् । यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते॥१४३॥
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् । स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ १६८ ॥
स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः । स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥१८१॥
पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः । गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी ॥ २३१ ॥

मनुस्मृति-३ अध्याय ।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् । होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ७० ॥
एकरात्रन्तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः । अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ १०२ ॥
कग्रामीणमतिथिं विप्रं साङ्गतिकं तथा । उपस्थितं गृहे विद्याद्भार्या यत्राग्नयोऽपि वा ॥ १०३ ॥
कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम् । द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ॥ १४४ ॥
दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ १७१ ॥
भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः । धर्मेणापि नियुक्तायां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः ॥ १७३ ॥
परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ । पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्त्तरि गोलकः ॥ १७४ ॥
ब्राह्मणं भिक्षुकं वापि भोजनार्थमुपस्थितम् । ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः शक्तितः प्रतिपूजयेत् ॥ २४३ ॥
आसपिण्डक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु । अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥ २४७ ॥
सह पिण्डक्रियायां तु कृतायामस्य धर्मतः । अनयैवावृता कार्यं पिण्डनिर्वपणं सुतैः ॥ २४८ ॥
मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम् । अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते ॥ २५७ ॥

मनुस्मृति-४ अध्याय ।

नाधार्मिके वसद्ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम् । नैकः प्रपद्येताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥ ६० ॥
न शूद्रराज्ये निवसेन्नाधार्मिकजनावृते । न पाषण्डिगणाक्रान्ते नोपसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः ॥ ६१ ॥
न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं नातिसौहित्यमाचरेत् । नातिप्रगे नातिसायं न सायं प्रातराशितः ॥ ६२ ॥
न कुर्वीत वृथा चेष्टां न वार्यञ्जलिना पिबेत् । नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान्न जातु स्यात्कुतूहली ॥ ६३ ॥
नाक्षैः क्रीडेत्कदाचित्तु स्वयं नोपानहौ हरेत् । शयनस्थो न भुञ्जीत न पाणिस्थं न चासने ॥ ७४ ॥
न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् । न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥ ८० ॥
अमावास्यामष्टमीञ्च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥१२८॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः । श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ १५८ ॥
धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः । बैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः ॥ १९५ ॥
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः । शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥ १९६ ॥
परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन । निपानकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥ २०१ ॥
यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृहाणि च । अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीयभाक् ॥ २०२ ॥
मत्तक्रुद्धातुराणाञ्च न भुञ्जीत कदाचन । केशकीटावपन्नञ्च पदा स्पृष्टञ्च कामतः ॥ २०७ ॥
भ्रूणघ्नावेक्षितञ्चैव संस्पृष्टञ्चाप्युदक्यया । पतत्रिणावलीढञ्च शुना संस्पृष्टमेव च ॥ २०८ ॥
गवा चान्नमुपघ्रातं घुष्टान्नञ्च विशेषतः । गणान्नं गणिकान्नञ्च विदुषा च जुगुप्सितम् ॥ २०९ ॥
स्तेनगायकयोश्चान्नं तक्ष्णोर्वार्धुषिकस्य च । दीक्षितस्य कदर्यस्य बद्धस्य निगडस्य च ॥ २१० ॥
अभिशस्तस्य षंढस्य पुंश्चल्या दाम्भिकस्य च । शुक्तं पर्युषितञ्चैव शूद्रस्योच्छिष्टमेव च ॥ २११ ॥
चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः । उग्रान्नं सूतिकान्नञ्च पर्याचान्तमनिर्दशम् ॥ २१२ ॥
अनर्चितं वृथा मांसमवीरायाश्च योषितः । द्विषदन्नं नगर्यन्नं पतितान्नमवक्षुतम् ॥ २१३ ॥
भूमिदो भूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः । गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूप्यमुत्तमम् ॥२३०॥
वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः । अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् ॥ २३१ ॥

मनुस्मृति–५ अध्याय।

यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसाद उच्यते । मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान्विवर्जयेत्१५॥
पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः । राजीवान्सिंहतुण्डांश्च सशल्कांश्चैव सर्वशः ॥ १६ ॥
श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा । भक्ष्यान्पञ्चनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः ॥ १८ ॥
छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम् । पलाण्डुं गृञ्जनं चैव मत्या जग्ध्वा पतेद्द्विजः ॥ १९ ॥
अमत्यैतानि षट् जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् । यतिचान्द्रायणं वापि शेषेषूपवसेदहः ॥ २० ॥
प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया । यथाविधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये ॥२७॥
अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी । संस्कर्त्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥ ५१ ॥
वर्षेवर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः । मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥ ५३ ॥
फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानां च भोजनैः । न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥ ५४ ॥
न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने । प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥ ५६ ॥
सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते । समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥ ६० ॥
स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः । यथोक्तेनैव कल्पेन शुध्यन्ति तु सनाभयः॥७२॥
न वर्धयेदघाहानि प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः । न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ ८४ ॥
डिम्भाहवहतानां च विद्युता पार्थिवेन च । गोब्राह्मणस्य चैवार्थे यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥ ९५ ॥
ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनोवार्युपाञ्जनम् । वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तॄणि देहिनाम् ॥ १०५॥
सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् । योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥ १०६॥
क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः । प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः॥१०७॥
मृत्तोयैः शुध्यते शोध्यं नदी वेगेन शुध्यति । रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमः ॥ १०८॥
अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति । विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति१०९॥
नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितम् । ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः १२९
श्वभिर्हतस्य यन्मांसं शुचि तन्मनुरब्रवीत् । क्रव्याद्भिश्च हतस्यान्यैश्चाण्डालाद्यैश्च दस्युभिः॥१३१॥
एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश । उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता ॥ १३६ ॥
एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् । त्रिगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥१३७॥
मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां प्रजापतेः । प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम् ॥ १५२ ॥
नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम् । पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥ १५५ ॥
व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम् । शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते१६४
पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता । सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ॥१६५॥
एवं वृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम् । दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ १६७ ॥
भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि । पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥ १६८ ॥

मनुस्मृति–६ अध्याय।

वर्जयेन्मधुमांसं च भौमानि कवकानि च । भूस्तृणं शिग्रुकं चैव श्लेष्मातकफलानि च ॥ १४ ॥

मनुस्मृति–७ अध्याय।

मृगयाक्षो दिवा स्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः । तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥४७॥
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् । वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥ ४८ ॥
सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे । प्राधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे ॥ ८५ ॥

मनुस्मृति–८ अध्याय।

वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् । वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥ १६ ॥
दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतं धनम् । राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोति किल्बिषम् ॥ ४० ॥
लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि । ताम्ररूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १३१ ॥
जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः । प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ १३२ ॥

त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः । ता राजसर्षपस्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥ १३३ ॥
सर्षपाः षड् यवो मध्यस्त्रियवं त्वेककृष्णलम् । पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥१३४ ॥
पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश । द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः ॥ १३५ ॥
ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतम् । कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः ॥ १३६ ॥
धरणानि दश ज्ञेयः शतमानस्तु राजतः । चतुःसौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ॥ १३७ ॥
पणानां द्वे शते सार्धे प्रथमः साहसः स्मृतः । मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रं त्वेव चोत्तमः ॥ १३८॥
ऋणे देये प्रतिज्ञाते पञ्चक शतमर्हति । अपह्नवं तद्विगुणं तन्मनोरनुशासनम् ॥ १३९ ॥
यः स्वामिनाऽननुज्ञातमाधिं भुङ्क्तेऽविचक्षणः । तेनार्धवृद्धिर्मोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः १५०
ग्रहीता यदि नष्टः स्यात्कुटुम्बार्थे कृतो व्ययः । दातव्यं बान्धवैस्तत्स्यात्प्रविभक्तैरपि स्वतः॥१६६॥
कुटुम्बार्थेऽध्यधीनोऽपि व्यवहारं यमाचरेत् । स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्यायान्न विचालयेत्॥१६७॥
यः साधयन्तं छन्देन वेदयेद्धनिकं नृपे । स राज्ञा तच्चतुर्भागं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥ १७६ ॥
राजा स्तेनेन गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता । आचक्षाणेन तत्स्तेयमेवं कर्मास्मि शाधि माम्॥३१४॥
स्कन्धेनादाय मुसलं लगुडं वापि खादिरम् । शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा ॥३१५ ॥
शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते । अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम्३१६
अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी । गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम्३१७
स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम् । निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृत्वापह्नूयते च यत् ॥ ३३२ ॥
पिताचार्यः सुहृद्भ्राता भार्या पुत्रः पुरोहितः । नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति३३५॥
कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः । तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा ॥ ३३६॥
ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्रिमौ । पैत्रिको दण्डदासश्च सप्तैते दासयोनयः ॥ ४१५ ॥

मनुस्मृति—९ अध्याय ।

ओघवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति । क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजं न वप्ता लभते फलम् ॥ ५४ ॥
प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः । विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्७६।.
आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं ददन् । शुल्कं हि गृह्णन्कुरुते छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥ ९८ ॥
अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् । यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात् स्वधाकरम् ॥१२७॥
मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः । दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम् ॥ १३१ ॥
भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान् भवेत् । सर्वांस्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥ १८२ ॥
सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् । सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ॥ १८३ ॥
अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि । भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥ १९४ ॥
अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते । प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः ॥ २२३ ॥
द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत् । तस्माद्द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥ २२७ ॥
ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम् । धनोष्मणा पच्यमानास्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः२३१
अमात्याः प्राड्विवाको वा यत्कुर्युः कार्यमन्यथा । तत्स्वयं नृपतिः कुर्यात्तान्सहस्रं च दण्डयेत् २३४॥
यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे । अधर्मो नृपतेर्दृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः ॥ २४९ ॥

मनुस्मृति—१० अध्याय ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः । चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ॥ ४ ॥
सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सनम् । वैदेहकानां स्त्रीकार्यम्मागधानां वणिक्पथः ॥ ४७ ॥
म त्स्यघातो निषादानां तष्टिस्त्वायोगवस्य च । मेदान्ध्रचुञ्चुमद्गूनामारण्यपशुहिंसनम् ॥ ४८ ॥
क्षत्त्रुग्रपुक्कसानां तु बिलौकोवधबन्धनम् । धिग्वणानां चर्मकार्यं वेणानां भाण्डवादनम् ॥ ४९ ॥
दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः । अबान्धवं शवं चैव निर्हरेयुरिति स्थितिः ॥ ५५ ॥
वध्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया । वध्यवासांसि गृह्णीयुः शय्याश्चाभरणानि च ॥ ५६ ॥
उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च । पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदाः ॥१२५॥

मनुस्मृति–११ अध्याय ।

क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः । धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः ॥ ३४ ॥
गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा । यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥ ९५॥
जीनकार्मुकवस्तावीन्पृथग्दद्याद्विशुद्धये । चतुर्णामपि वर्णानां नारीर्हत्वाऽनवस्थिताः ॥ १३९ ॥
अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च । पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ १५१ ॥
वपनं मेखलादण्डौ भैक्षचर्या व्रतानि च । निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥ १५२ ॥
अभोज्यानां तु भुक्त्वान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च । जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पिबेत् ॥१५३॥
मासिकान्नं तु योऽश्नीयादसमावर्त्तको द्विजः । स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदके वसेत् ॥ १५८ ॥
अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता । अज्ञानभुक्तं तूत्तार्यं शोध्यं वाऽप्याशु शोधनैः ॥१६१॥
गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रेतः सित्क्वा स्वयोनिषु । सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥१७१॥
चाण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च । पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति१७६
श्वसृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च । नराश्वोष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ २०० ॥
उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामतः । स्नात्वा तु विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥२०२॥
अनुक्तनिष्कृतीनां तु पापानामपनुत्तये । शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥ २१० ॥
ऋचो यजूंषि चान्यानि सामानि विविधानि च । एष ज्ञेयस्त्रिवृद्वेदो यो वेदैनं स वेदवित् ॥२६५ ॥
आद्यं यत्त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता । स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित् ॥ २६६ ॥

मनुस्मृति–१२ अध्याय ।

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च । यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥ १० ॥
योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते । यः करोति स कर्माणि भूतात्मेत्युच्यते बुधैः ॥ १२ ॥
जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम् । येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥ १३ ॥
सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रीन्विद्यादात्मनो गुणान् । यैर्व्याप्येमान्स्थितो भावान्महान्सर्वानशेषतः ॥ २४॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः । वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिगुणकर्मतः ॥ ९८ ॥
धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः । ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ १०९ ॥

(१ क) वृद्धमनुस्मृति ।

अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती व्रते स्थिता । पत्न्येव दद्यात्तत्पिण्डं कृत्स्नमंशं लभेत च (१)
सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते । समानोदकभावस्तु निवर्तेता चतुर्दशात् (२) ।
जन्मनाम्नोः स्मृतेरेके तत्परं गोत्रमुच्यते (३) ।
दशाहाभ्यन्तरे बाले प्रमीते तस्य बान्धवैः । शावाशौचं न कर्तव्यं सूत्याशौचं विधीयते (४) ।

(२) याज्ञवल्क्यस्मृति–१ अध्याय ।

मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः । यमापस्तम्बसंवर्त्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥ ४ ॥
पराशरव्यासशंखलिखिता दक्षगौतमौ । शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः ॥ ५ ॥
श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । सम्यक् संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ७
चत्वारो वेदधर्मज्ञाः पर्षत्त्रैविद्यमेव वा । सा ब्रूते यं स धर्मः स्यादेको वाध्यात्मवित्तमः ॥ ९ ॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः । निषेकादिश्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः ॥१०॥
गर्भाधानमृतौ पुंसः सवनं स्पन्दनात्पुरा । षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तः प्रसवे जातकर्म च ॥ ११ ॥
अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः । षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्या यथाकुलम् ॥ १२ ॥
एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम् । तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः ॥ १३ ॥
गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् । राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम् ॥ १४ ॥
उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम् । वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत् ॥ १५ ॥
कनिष्ठादेशिन्यंगुष्ठमूलान्यग्रं करस्य च । प्राजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमात् ॥ १९ ॥
गायत्रीं शिरसा सार्द्धं जपेद्व्याहृतिपूर्विकाम् । प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिरयं प्राणसंयमः ॥ २३ ॥

कृतज्ञाद्रोहिमेधाविशुचिकल्पानसूयकाः । अध्याप्या धर्मतः साधुशक्ताप्तज्ञानवित्तदाः ॥ २८ ॥
दण्डाजिनोपवीतानि मेखलाञ्चैव धारयेत् । ब्राह्मणेषु चरेद्भैक्ष्यमनिन्द्येष्वात्मवृत्तये ॥ २९ ॥
आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षिता । ब्राह्मणक्षत्रियविशां भैक्ष्यचर्यायथाक्रमम् ॥ ३० ॥
कृताग्निकार्यो भुञ्जीत वाग्यतो गुर्वनुज्ञया । आपोशानक्रिया पूर्वं सत्कृत्यान्नमकुत्सयन् ॥ ३१ ॥
ब्रह्मचर्ये स्थितो नैकमन्नमद्यादनापदि । ब्राह्मणः काममश्नीयाच्छ्राद्धे व्रतमपीडयन् ॥ ३२ ॥
स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति । उपनीय ददद्वेदमाचार्यः स उदाहृतः ॥ ३४ ॥
एकदेशमुपाध्याय ऋत्विग्यज्ञकृदुच्यते । एते मान्या यथापूर्वमेभ्यो माता गरीयसी ॥ ३५ ॥
प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं द्वादशाब्दानि पञ्च वा । ग्रहणान्तिकमित्येके केशान्तश्चैव षोडशे ॥ ३६ ॥
अतऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मवहिष्कृताः । सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते क्रतोः ॥ ३८ ॥
मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात् । ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः ॥ ३९ ॥
नैष्ठिको ब्रह्मचारी तु वसेदाचार्यसन्निधौ । तदभावेऽस्य तनये पत्न्यां वैश्वानरेपि वा ॥ ४९ ॥
अनेन विधिना देहं साधयन्विजितेन्द्रियः । ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेह जायते पुनः ॥ ५० ॥
अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत् । अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ॥ ५२ ॥
अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् । पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ॥ ५३ ॥
दशपूरुषविख्याताच्छ्रोत्रियाणां महाकुलात् । स्फीतादपि न संचारिरोगदोषसमन्वितात् ॥ ५४ ॥
ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता । तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम् ॥ ५८ ॥
यज्ञस्थ ऋत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम् । चतुर्दशप्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट् ॥ ५९ ॥
इत्युक्त्वा चरतां धर्मं सह या दीयतेर्थिने । स कायः पावयेत्तज्जः षट्षट् वंश्यान् सहात्मना ॥६०॥
आसुरो द्रविणादानाद्गांधर्वः समयान्मिथः । राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाछलात् ॥ ६१ ॥
पाणिर्ग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम् । वैश्या प्रतोदमाद्द्याद्वेदने त्वग्रजन्मनः ॥ ६२ ॥
लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः । यस्मात्तस्मात्स्त्रियः सेव्याः कर्त्तव्याश्च सुरक्षिताः॥७८॥
षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तस्मिन् युग्मासु संविशेत् । ब्रह्मचार्येव पर्वण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत् ॥ ७९ ॥
एवं गच्छन् स्त्रियं क्षामां मघां मूलं च वर्जयेत् । सुस्थ इन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान् ॥८०॥
यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां वरमनुस्मरन् । स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतः स्मृताः ॥ ८१ ॥
संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी । कुर्यात् श्वशुरयोः पादवन्दनं भर्तृतत्परा ॥ ८३ ॥
क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् । हास्यं परगृहे यानन्त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥ ८४ ॥
रक्षेत्कन्यां पिता विन्नां पतिः पुत्रास्तु वार्द्धके । अभावे ज्ञातयस्तेषां न स्वातन्त्र्यंक्वचित्स्त्रियाः ॥८५॥
पितृमातृसुतभ्रातृश्वश्रूश्वशुरमातुलैः । हीना न स्याद्विना भर्त्रा गर्हणीयान्यथा भवेत् ॥ ८६ ॥
सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्यं न कारयेत् । सवर्णासु विधौ धर्म्ये ज्येष्ठया न विनेतरा ॥ ८८ ॥
दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः । आहरेद्विधिवद्दारानग्नींश्चैवाविलम्बयन् ॥ ८९ ॥
सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि सजातयः । अनिन्द्येषु विवाहेषु पुत्राः सन्तानवर्द्धनाः ॥ ९० ॥
विप्रान्मूर्धावसिक्तो हि क्षत्रियायां विशः स्त्रियाम् । अंबष्ठः शूद्र्यां निषादो जातः पारसवोपि वा९१॥
वैश्याशूद्र्योस्तु राजन्यान्माहिष्योग्रौ सुतौ स्मृतौ । वैश्यात्तु करणः शूद्र्यां विन्नास्वेष विधिः स्मृतः९२
ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्याद्वैदेहिकस्तथा । शूद्राज्जातस्तु चाण्डालः सर्वधर्मवहिष्कृतः ॥ ९३॥
क्षत्रिया मागधं वैश्याच्छूद्रात्क्षत्तारमेव च । शूद्रादायोगवं वैश्या जनयामास वै सुतम् ॥ ९४ ॥
जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः पञ्चमे सप्तमेऽपि वा । व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चाधरोत्तरम् ॥ ९६ ॥
कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही । दायकालाहृते वापि श्रौतं वैतानिकाग्निषु ॥ ९७ ॥
वेदाथर्वपुराणानि सेतिहासानि शक्तितः । जपयज्ञप्रसिद्ध्यर्थं विद्यां चाध्यात्मिकीं जपेत् ॥ १०१ ॥
वलिकर्मस्वधाहोमस्वाध्यायातिथिसत्क्रियाः । भूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणां महामखाः ॥ १०२ ॥
देवेभ्यश्च हुतादन्नाच्छेषाद् भूतबलिं हरेत् । अन्नं भूमौ श्वचाण्डालवायसेभ्यश्च निःक्षिपेत् ॥ १०३ ॥
अन्नं पितृमनुष्येभ्यो देयमप्यन्वहं जलम् । स्वाध्यायं चान्वहं कुर्यान्न पचेदन्नमात्मने ॥ १०४ ॥
बालस्ववासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः । संभोज्यातिथिभृत्यांश्च दम्पत्योः शेषभोजनम् ॥ १०५ ॥

अतिथित्वेन वर्णानां देयं शक्त्यानुपूर्वशः। अप्रणोद्योऽतिथिः सायमपि वाग्भूतृणोदकैः॥ १०७॥
सत्कृत्य भिक्षवे भिक्षा दातव्या सुव्रताय च। भोजयेच्चागतान्काले सखिसम्बन्धिबान्धवान्॥१०८॥
प्रतिसंवत्सरं त्वर्घ्याः स्नातकाचार्यपार्थिवाः। प्रियो विवाह्यश्च तथा यज्ञं प्रत्यृत्विजः पुनः॥११०॥
अध्वनीनोऽतिथिर्ज्ञेयः श्रोत्रियो वेदपारगः। मान्यावेतौ गृहस्थस्य ब्रह्मलोकमभीप्सतः॥ १११॥
परपाकरुचिर्न स्यादनिन्द्यामन्त्रणादृते। वाक्पाणिपादचापल्यं वर्जयेच्चातिभोजनम्॥ ११२॥
अतिथिं श्रोत्रियं तृप्तमासीमान्तमनुव्रजेत्। अहःशेषं समासीत शिष्टैरिष्टैश्च बन्धुभिः॥ ११३॥
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां हुत्वाग्नींस्तानुपास्य च। भृत्यैः परिवृतो भुक्त्वा नातितृप्त्याथ संविशेत्१ ४
विद्याकर्मवयोबन्धुवित्तैर्मान्या यथाक्रमम्। एतैः प्रभूतैः शूद्रोपि वार्द्धके मानमर्हति॥ ११६॥
वृद्धभारिनृपस्नातस्त्रीरोगिवरचक्रिणाम्। पन्था देयो नृपस्तेषां मान्यः स्नातश्च भूपतेः॥ ११७॥
इज्याध्ययनदानानि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च। प्रतिग्रहोऽधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा॥ ११८॥
प्रधानं क्षत्रिये कर्म प्रजानां परिपालनम्। कुसीदकृषिवाणिज्यपाशुपाल्यं विशः स्मृतम्॥ ११९॥
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तया जीवन्वणिग्भवेत्। शिल्पैर्वा विविधैर्जीवेद्द्विजातिहितमाचरन्॥ १२०॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। दानं दया दमः क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम्॥ १२२॥
वयोबुद्ध्यर्थवाग्वेषश्रुताभिजनकर्मणाम्। आचरेत्सदृशीं वृत्तिमजिह्मामशठां तथा॥ १२३॥
त्रैवार्षिकाधिकान्नो यः स तु सोमं पिबेद्द्विजः प्राक्सौमिकीः क्रियाः कुर्याद्यस्यान्नं वार्षिकं भ त् १२४
प्रतिसंवत्सरं सोमः पशुः प्रत्ययनन्तथा। कर्त्तव्याग्रयणेष्टिश्च चातुर्मास्यानि चैव हि॥ १२५॥
एषामसम्भवे कुर्यादिष्टिं वैश्वानरीं द्विजः। हीनकल्पं न कुर्वीत सति द्रव्ये फलप्रदम्॥ १२६॥
चाण्डालो जायते यज्ञकरणाच्छूद्रभिक्षितात्। यज्ञार्थं लब्धमददद्भासः काकोऽपि वा भवेत्॥१२७॥
कुशूलकुम्भीधान्यो वा त्र्याहिको श्वस्तनोऽपि वा। जीवेद्वापि शिलोञ्छेन श्रेयानेषां परः परः१२८॥
राजान्तेवासियाज्येभ्यः सीदन्निच्छेद्धनं क्षुधा। दम्भिहैतुकपाखण्डिबकवृत्तींश्च व त्॥ १३०॥
शुक्लाम्बरधरो नीचकेशश्मश्रुनखः शुचिः। न भार्यादर्शनेऽश्नीयान्नैकवासा न संस्थितः॥ १३१॥
दाक्षायणी ब्रह्मसूत्री वेणुमान् सकमण्डलुः। कुर्यात्प्रदक्षिणं देवमृद्गोविप्रवनस्पतीन्॥ १३३॥
न तु मेहेन्नदीछायावर्त्मगोष्ठाम्बुभस्मसु। न प्रत्यग्न्यर्कगोसोमसन्ध्याम्बुस्त्रीद्विजन्मनः॥ १३४॥
नेक्षेतार्कं न नग्नां स्त्रीं न च संसृष्टमैथुनाम्। न च मूत्रं पुरीषं वा नाशुचीराहुतारकाः॥ १३५॥
अयं मे वज्र इत्येवं सर्वं मन्त्रमुदीरयेत्। वर्षत्यप्रावृतो गच्छेत्स्वपेत्प्रत्यक्शिरा न च॥ १३६॥
ष्ठीवनासृक्शकृन्मूत्ररेतांस्यप्सु न निःक्षिपेत्। पादौ प्रतापयेन्नाग्नौ न चैनमभिलङ्घयेत्॥ १३७॥
जलं पिबेन्नाञ्जलिना शयानं न प्रबोधयेत्। नाक्षैः क्रीडेन्नधर्मघ्नैर्व्याधितैर्वा न संविशेत्॥ १३८॥
अध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां श्रवणेन वा। हस्तेनौषधिभावे वा पञ्चम्यां श्रावणस्य तु॥ १४२॥
पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथापि वा। जलान्ते छन्दसां कुर्यादुत्सर्गं विधिवद्बहिः॥ १४३॥
गोब्राह्मणानलान्नानि नोच्छिष्टो न पदा स्पृशेत्। न निन्दाताडने कुर्यात्सुतं शिष्यञ्च ताडयेत् १५५॥
मातृपित्रतिथिभ्रातृजामिसम्बन्धिमातुलैः। वृद्धबालातुराचार्यवैद्यसंश्रितबान्धवैः॥ १५७॥
ऋत्विक्पुरोहितापत्यभार्यादाससनाभिभिः। विवादं वर्जयित्वा तु सर्वाँल्लोकान् जयेद्गृही॥ ५८॥
पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिषु। स्नायान्नदीदेवखातह्रदप्रस्रवणेषु च॥ १५९॥
कदर्यबद्धचोराणां क्लीबरङ्गावतारिणाम्। वैणाभिशस्तवार्धुष्यगणिकागणदीक्षिणाम्॥ १६१॥
चिकित्सकातुरक्रुद्धपुंश्चलीमत्तविद्विषाम्। क्रूरोग्रपतितव्रात्यदाम्भिकोच्छिष्टभोजिनाम्॥ १६२॥
अवीरास्त्रीस्वर्णकारस्त्रीजितग्रामयाजिनाम्। शस्त्रविक्रयकर्मारतन्तुवायश्ववृत्तिनाम्॥ १६३॥
नृशंसराजरजककृतघ्नवधजीविनाम्। चैलधावसुराजीविसहोपपतिवेश्मनाम्॥ १६४॥
पिशुनानृतिनोश्चैव तथा चाक्रिकवन्दिनाम्। एषामन्नं न भोक्तव्यं सोमविक्रयिणस्तथा॥ १६५॥
शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्धसीरिणः। भोज्यान्ना नापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत्॥ १६६॥
अनर्चितं वृथा मांसं केशकीटसमन्वितम्। शुक्तं पर्युषितोच्छिष्टं श्वस्पृष्टं पतितेक्षितम्॥ १६७॥
उदक्या स्पृष्टसङ्घुष्टं पर्यायान्नं च वर्जयेत्। गोघ्रातं शकुनोच्छिष्टं पदा स्पृष्टं च कामतः॥ १६८॥
अन्नं पर्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंस्थितम्। अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरसविक्रियाः॥ १६९॥

सन्धिन्यनिर्दशावत्सागोपयः परिवर्जयेत् । औष्ट्रमैकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम् ॥ १७० ॥
देवतार्थं हविः शिग्रुं लोहितान् व्रश्चनांस्तथा । अनुपाकृतमांसानि विड्जानि कवकानि च ॥१७१॥
क्रव्यादपक्षिदात्यूहशुकप्रतुदटिट्टिभान् । सारसैकशफान् हंसान्सर्वांश्च ग्रामवासिनः ॥ १७२ ॥
कोयष्टिप्लवचक्राह्वबलाकाबकविष्किरान् । वृथाकृसरसंयावपायसाऽपूपशष्कुलीः ॥ १७३ ॥
कलविङ्कंसकाकोलं कुररं रज्जुदालकम् । जालपादान्खञ्जरीटानज्ञातांश्च मृगद्विजान् ॥ १७४ ॥
चाषांश्च रक्तपादांश्च सौनं वल्लूरमेव च । मत्स्यांश्च कामतो जग्ध्वा सोपवासस्त्र्यहं वसेत् ॥१७५॥
पलाण्डुं विड्वराहं च छत्राकं ग्रामकुक्कुटम् । लशुनं गृञ्जनं चैव जग्ध्वा चान्द्रायणं चरेत्॥१७६॥
सौवर्णराजताब्जानामूर्ध्वपात्रग्रहाश्मनाम् । शाकरज्जुमूलफलवासोविदलचर्मणाम् ॥ १८२ ॥
पात्राणां चमसानां च वारिणा शुद्धिरिष्यते । चरुस्रुक्स्रुवसस्नेहपात्राण्युष्णेन वारिणा ॥ १८३ ॥
स्फ्यशूर्पाजिनधान्यानां मुसलोलूखलानसाम् । प्रोक्षणं संहतानां च बहूनां धान्यवाससाम् ॥१८४॥
तक्षणं दारुशृङ्गास्थ्नां गोबालैः फलसम्भवाम् । मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ॥ १८५॥
सोखैरुदकगोमूत्रैः शुद्धत्याविककौशिकम् । सश्रीफलैरंशुपट्टं सारिष्टैः कुतपन्तथा ॥ १८६ ॥
सगौरसर्षपैः क्षौमम्पुनः पाकान्महीमयम् । कारुहस्तः शुचिः पण्यं भैक्ष्यं योषिन्मुखन्तथा॥१८७॥
भूशुद्धिर्मार्जनाद्दाहात्कालाद्गोक्रमणात्तथा । सेकादुल्लेखनाल्लेपाद् गृहं मार्जनलेपनात् ॥ १८८ ॥
गोघ्रातेऽन्ने तथा केशमक्षिकाकीटदूषिते । सलिलं भस्म मृद्वापि प्रक्षेप्तव्यं विशुद्धये ॥ १८९ ॥
त्रपुसीसकताम्राणां क्षाराम्लोदकवारिभिः । भस्माद्भिः कांस्यलोहानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य तु॥९०॥
अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैः शुद्धिर्गंधादिकर्षणात् । वाक्शस्तमम्बुनिर्णिक्तमज्ञातं च सदा शुचि॥१९१॥
शुचि गोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् । तथा मांसं श्वचांडालक्रव्यादादिनिपातितम् ॥ १९२ ॥
रश्मिरग्नीरजश्छाया गौरश्वो वसुधानिलः । विप्रुषो मक्षिका स्पर्शे वत्सः प्रस्रवणे शुचिः ॥१९३॥
मुखजा विप्रुषो मेध्यास्तथाचमनबिन्दवः । श्मश्रु चास्य गतं दन्तसक्तं त्यक्त्वा ततः शुचिः ॥९५॥
तपस्तप्त्वासृजद्ब्रह्मा ब्राह्मणान् वेदगुप्तये । तृप्त्यर्थं पितृदेवानां धर्मसंरक्षणाय च ॥ १९८ ॥
सर्वस्य प्रभवो विप्राः श्रुताध्ययनशीलिनः । तेभ्यः क्रियापराः श्रेष्ठास्तेभ्योऽप्यध्यात्मवित्तमाः१९९॥
विद्यातपोभ्यां हीनेन न तु ग्राह्यः प्रतिग्रहः । गृह्णन्प्रदातारमधो नयत्यात्मानमेव च ॥ २०२ ॥
भूदीपांश्चान्नवस्त्राम्भस्तिलसर्पिःप्रतिश्रयान् । नैवेशिकं स्वर्णधुर्यं दत्त्वा स्वर्गे महीयते ॥ २१० ॥
गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनम् । यानं वृक्षं प्रियं शय्यां दत्त्वात्यन्तं सुखी भवेत् ॥ २११ ॥
सर्वधर्ममयं ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकं यतः । तद्ददत्समवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्युतम् ॥ २१२ ॥
अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः । अन्यत्र कुलटाषण्ढपतितेभ्यस्तथा द्विषः ॥ २१५ ॥
देवातिथ्यर्चनकृते गुरुभृत्यार्थमेव च । सर्वतः प्रतिगृह्णीयादात्मवृत्त्यर्थमेव च ॥ २१६ ॥
मृतेऽहनि तु कर्त्तव्यं प्रतिमासन्तु वत्सरम् । प्रतिसम्वत्सरञ्चैवमाद्यमेकादशेऽहनि ॥ २५६ ॥
पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा । प्रक्षिपेत्सत्सु विप्रेषु द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत् ॥२५७॥
यद्ददाति गयास्थश्च सर्वमानन्त्यमश्नुते । तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च विशेषतः ॥ २६१ ॥
पुरोहितं प्रकुर्वीत दैवज्ञमुदितोदितम् । दण्डनीत्यां च कुशलमथर्वाङ्गिरसे तथा ॥ ३१३ ॥
श्रौतस्मार्तक्रियाहेतोर्वृणुयादेव चर्त्विजः । यज्ञांश्चैव प्रकुर्वीत विधिवद्भूरिदक्षिणान् ॥ ३१४ ॥
अलब्धमीहेद्धर्मेण लब्धं यत्नेन पालयेत् । पालितं वर्द्धयेन्नीत्या वृद्धम्पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥ ३१७ ॥
रम्यं पाशव्यमाजीव्यं जाङ्गलं देशमावसेत् । तत्र दुर्गाणि कुर्वीत जनकोशात्मगुप्तये ॥ ३२१ ॥
तत्रतत्र च निष्णातानध्यक्षान् कुशलाञ्छुचीन् । प्रकुर्यादायकर्मान्तव्ययकर्मसु चोद्यतान् ॥३२२॥
ये आहवेषु वध्यन्ते भूम्यर्थमपराङ्मुखाः । अकूटैरायुधैर्यान्ति ते स्वर्गं योगिनो यथा ॥ ३२४ ॥
पदानि क्रतुतुल्यानि भग्नेष्वविनिवर्तिनाम् । राजा सुकृतमादत्ते हतानां विपलायिनाम् ॥ ३२५ ॥
तवाहं वादिनं क्लीवं निर्हेतिं परसङ्गतम् । न हन्याद्विनिवृत्तं च युद्धप्रेक्षणकादिकम् ॥ ३२६ ॥
यस्मिन्देशे य आचारो व्यवहारः कुलस्थितिः । तथैव परिपाल्योऽसौ यदा वशमुपागतः ॥ ३४३ ॥
उपायाः साम दानं च भेदो दण्डस्तथैव च । सम्यक्प्रयुक्ताः सिद्ध्येयुर्दण्डस्त्वगतिका गतिः३४६॥
सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनसंश्रयौ । द्वैधीभावं गणानेतान् यथावत्परिकल्पयेत् ॥ ३४७ ॥

यदा सस्यगुणोपेतं परराष्ट्रं तदा व्रजेत्। परश्च हीनआत्मा च हृष्टवाहनपूरुषः ॥ ३४८ ॥
दैवे पुरुषकारे च कर्मसिद्धिर्व्यवस्थिता। तत्र दैवमभिव्यक्तं पौरुषं पौर्वदेहिकम् ॥ ३४९ ॥
केचिद्दैवात्स्वभावाद्वा कालात्पुरुषकारतः। संयोगं केचिदिच्छन्ति फलं कुशलबुद्धयः ॥ ३५० ॥
यथा ह्येकेन चक्रेण रथस्य न गतिर्भवेत्। एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति ॥ ३५१ ॥
स्वाम्यमात्या जनो दुर्गं कोषो दण्डस्तथैव च। मित्राण्येताः प्रकृतयो राज्यं सप्ताङ्गमुच्यते॥३५३॥
कुलानि जातीः श्रेणीश्च गणान् जानपदानपि। स्वधर्माच्चलितान् राजा विनीय स्थापयेत्पथि३६१॥
जालसूर्यमरीचिस्थं त्रसरेणू रजः स्मृतम्। तेऽष्टौ लिक्षा तु तास्तिस्रो राजसर्षप उच्यते ॥ ३६२ ॥
गौरस्तु ते त्रयः षट् ते यवो मध्यस्तु ते त्रयः। कृष्णलः पञ्च ते माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश॥३६३॥
पलं सुवर्णाश्चत्वारः पञ्च वापि प्रकीर्तितम्। द्वे कृष्णले रूप्यमाषो धरणं षोडशैव ते ॥ ३६४ ॥
शतमानं तु दशभिर्धरणैः पलमेव तु। निष्कं सुवर्णाश्चत्वारः कार्षिकस्ताम्रिकः पणः ॥ ३६५ ॥
साशीतिः पणसाहस्रो दण्ड उत्तमसाहसः। तदर्धं मध्यमः प्रोक्तस्तदर्धमधमः स्मृतः ॥ ३६६ ॥
धिग्दण्डस्त्वथ वाग्दण्डो धनदण्डो वधस्तथा। योज्या व्यस्ताः समस्ता वा ह्यपराधवशादिमे॥३६७॥
ज्ञात्वापराधं देशं च कालं बलमथापि वा। वयः कर्म च वित्तं च दण्डं दण्डेषु पातयेत् ॥ ३६८ ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति–२ अध्याय।

व्यवहारान्नृपः पश्येद्विद्वद्भिर्ब्राह्मणैस्सह। धर्मशास्त्रानुसारेण क्रोधलोभविवर्जितः ॥ १ ॥
श्रुताध्ययनसम्पन्ना धर्मज्ञाः सत्यवादिनः। राज्ञा सभासदः कार्या रिपौ मित्रे च ये समाः ॥ २ ॥
अपश्यता कार्यवशाद्व्यवहारान्नृपेण तु। सभ्यैः सह नियोक्तव्यो ब्राह्मणः सर्वधर्मवित् ॥ ३ ॥
रागाल्लोभाद्भयाद्वापि स्मृत्यपेतादिकारिणः। सभ्याः पृथक् पृथक् दण्ड्या विवादाद्द्विगुणं दमम् ४॥
स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाधर्षितः परैः। आवेदयति चेद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत् ॥ ५ ॥
निह्नवे भावितो दद्याद्धनं राज्ञे च तत्समम्। मिथ्याभियोगी द्विगुणमभियोगाद्धनं वहेत् ॥ ११ ॥
पश्यतो ब्रुवतो भूमेर्हानिर्विंशतिवार्षिकी। परेण भुज्यमानाया धनस्य दशवार्षिकी ॥ २४ ॥
आधिसीमोपनिक्षेपजडबालधनैर्विना। तथोपनिधिराजस्त्री श्रोत्रियाणां धनैरपि ॥ २५ ॥
आध्यादीनां विहर्तारं धनिने दापयेद्धनम्। दण्डं च तत्समं राज्ञे शक्त्यपेक्षं यथापि वा ॥ २६ ॥
बलोपाधिविनिर्वृत्तान् व्यवहारान्निवर्तयेत्। स्त्रीनक्तमन्तरागारबहिःशत्रुकृतांस्तथा ॥ ३२ ॥
मत्तोन्मत्तार्त्तव्यसनिबालभीतादियोजितः। असम्बद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिद्ध्यति ॥ ३३ ॥
प्रनष्टाधिगतं देयं नृपेण धनिने धनम्। विभावयेन्न चेल्लिङ्गैस्तत्समं दण्डमर्हति ॥ ३४ ॥
राजा लब्ध्वा निधिं दद्याद् द्विजेभ्योऽर्धं द्विजः पुनः। विद्वानशेषमादद्यात्स सर्वस्य प्रभुर्यतः ॥३५॥
इतरेण निधौ लब्धे राजा षष्ठांशमाहरेत्। अनिवेदितविज्ञातो दाप्यस्तं दण्डमेव च ॥ ३६ ॥
अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासिमासि सबन्धके। वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुष्पञ्चकमन्यथा ॥ ३८॥
कान्तारगास्तु दशकं सामुद्रा विंशकं शतम्। दद्युर्वा स्वकृतां वृद्धिं सर्वे सर्वासु जातिषु ॥ ३९ ॥
सन्ततिस्तु पशुस्त्रीणां रसस्याष्टगुणा परा। वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणा परा ॥ ४० ॥
प्रपन्नं साधयन्नर्थं न वाच्यो नृपतेर्भवेत्। साध्यमानो नृपं गच्छन् दण्ड्यो दाप्यश्च तद्धनम् ॥४१॥
राज्ञाधमर्णिको दाप्यः साधिताद्दशकं शतम्। पञ्चकं च शतं दाप्यः प्राप्तार्थो ह्युत्तमर्णिकः ॥४३॥
हीनजातिं परिक्षीणमृणार्थं कर्म कारयेत्। ब्राह्मणस्तु परिक्षीणः शनैर्दाप्यो यथोदयम् ॥ ४४ ॥
सुराकामद्यूतकृतन्दण्डशुल्कावशिष्टकम्। वृथा दानं तथैवेह पुत्रो दद्यान्न पैतृकम् ॥ ४८ ॥
दर्शने प्रत्यये दाने प्रातिभाव्यं विधीयते। आद्यौ तु वितथे दाप्यावितरस्य सुता अपि ॥ ५४ ॥
दर्शनप्रतिभूर्यत्र मृतः प्रात्ययिकोपि वा। न तत्पुत्रा ऋणं दद्युर्दद्युर्दानाय यः स्थितः ॥ ५५ ॥
बहवः स्युर्यदि स्वांशैर्दद्युः प्रतिभुवो धनम्। एकच्छायाश्रितेष्वेषु धनिकस्य यथारुचि ॥ ५६ ॥
प्रतिभूर्दापितो यत्तु प्रकाशं धनिनां धनम्। द्विगुणम्प्रतिदातव्यमृणिकैस्तस्य तद्भवेत् ॥ ५७ ॥
सन्ततिः स्त्रीपशुष्वेव धान्यं त्रिगुणमेव च। वस्त्रं चतुर्गुणम्प्रोक्तं रसश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥ ५८ ॥
आधिः प्रणश्येद्द्विगुणे धने यदि न मोक्ष्यते। काले कालकृतो नश्येत्फलभोग्यो न नश्यति॥५९॥

गोप्याधिभोगे नो वृद्धिः सोपकारेथ हापिते । नष्टो देयो विनष्टश्च देवराजकृताहते ॥ ६० ॥
आधेः स्वीकरणात्सिद्धी रक्ष्माणोप्यसारताम् । यातश्चेदन्यआधेयो धनभाग्वा धनी भवेत् ॥ ६१ ॥
चरित्रबन्धककृतं सवृद्ध्या दापयेद्धनम् । सत्यंकारकृतं द्रव्यं द्विगुणं प्रतिदापयेत् ॥ ६२ ॥
उपस्थितस्य मोक्तव्य आधिः स्तेनोऽन्यथा भवेत् । प्रयोजके सति धनं कुलेऽन्यस्याधिमाप्नुयात्६३
तत्कालकृतमूल्यो वा तत्र तिष्ठेदवृद्धिकः । । विना धारणिकाद्वापि विक्रीणीत ससाक्षिकम् ॥ ६४ ॥
यदा तु द्विगुणीभूतमृणमाधौ तदा खलु । मोच्य आधिस्तदुत्पन्ने प्रविष्टे द्विगुणे धने ॥ ६५ ॥
वासनस्थमनाख्याय हस्तेऽन्यस्य यदर्प्यते ॥ द्रव्यन्तदौपनिधिकं प्रतिदेयं तथैव तु ॥ ६६ ॥
तपस्विनो दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः । धर्मप्रधाना ऋजवः पुत्रवन्तो धनान्विताः ॥ ६९ ॥
त्र्यवराः साक्षिणो ज्ञेयाः श्रौतस्मार्तक्रियापराः । यथाजाति यथावर्णं सर्वे सर्वेषु वा स्मृताः ॥७०॥
स्त्रीवृद्धबालकितवमत्तोन्मत्ताभिशस्तकाः । रङ्गावतारिपाखण्डिकूटकृद्विकलेन्द्रियाः ॥ ७२ ॥
पतिताप्तार्थसम्बन्धिसहायरिपुतस्कराः । साहसी दृष्टदोषश्च निर्धूताद्यास्त्वसाक्षिणः ॥ ७३ ॥
उभयानुमतः साक्षी भवत्येकोपि धर्मवित् । सर्वः साक्षी संग्रहणे चौर्यपारुष्यसाहसे ॥ ७४ ॥
साक्षिणः श्रावयेद्वादिप्रतिवादिसमीपगान् । ये पातककृतां लोका महापातकिनां तथा ॥ ७५ ॥
अग्निदानां च ये लोका ये च स्त्रीबालघातिनाम् । स तान्सर्वानवाप्नोति यः साक्ष्यमनृतं वदेत्७६॥
सुकृतं यत्त्वया किञ्चिज्जन्मान्तरशतैः कृतम् । तत्सर्वं तस्य जानीहि यं पराजयसे मृषा॥ ७७ ॥
अब्रुवन्हि नरः साक्ष्यमृणं सदशबन्धकम् । राज्ञा सर्वं प्रदाप्यः स्यात् षट्चत्वारिंशकेहनि ॥७८॥
न ददाति हि यः साक्ष्यं जानन्नपि नराधमः । सकूटसाक्षिणां पापैस्तुल्यो दण्डेन चैव हि ॥ ७९ ॥
द्वैधे बहूनां वचनं समेषु गुणिनां तथा । गुणिद्वैधे तु वचनं ग्राह्यं ये गुणवत्तमाः ॥ ८० ॥
यस्योचुः साक्षिणः सत्यांप्रतिज्ञां स जयी भवेत् । अन्यथावादिनो यस्य ध्रुवस्तस्य पराजयः॥८१॥
उक्तोपि साक्षिभिः साक्ष्ये यदन्ये गुणवत्तमाः । द्विगुणा वान्यथा ब्रूयुः कूटाः स्युः पूर्वसाक्षिणः॥८२॥
पृथक्पृथग्दण्डनीयाः कूटकृत्साक्षिणस्तथा । विवादाद्द्विगुणं दण्डं विवास्यो ब्राह्मणः स्मृतः ॥८३॥
यः साक्ष्यं श्रावितोऽन्येभ्यो निह्नुते तत्तमोवृतः । स दाप्योऽष्टगुणं दण्डं ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥८४॥
वर्णिनां हि वधो यत्र तत्र साक्ष्यनृतं वदेत् । तत्पावनाय निर्वाप्यश्चरुः सारस्वतो द्विजैः ॥ ८५ ॥
तुलास्त्रीबालवृद्धान्धपङ्गुब्राह्मणरोगिणाम् । अग्निर्जलं वा शूद्रस्य यवाः सप्त विषस्य वा ॥१००॥
विभजेरन्सुताः पित्रोरूर्ध्वं रिक्थमृणं समम् । मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्य ऋतेऽन्वयः ॥ ११९ ॥
पितृद्रव्याविरोधेन यदन्यत्स्वयमार्जितम् । मैत्रमौद्वाहिकं चैव दायादानां न तद्भवेत् ॥ १२० ॥
क्रमादभ्यागतन्द्रव्यं हृतमभ्युद्धरेत्तु यः । दायादेभ्यो न तद्दद्याद्विद्यया लब्धमेव च ॥ १२१ ॥
सामान्यार्थसमुत्थाने विभागस्तु समः स्मृतः । अनेकपितृकाणान्तु पितृतो भागकल्पना ॥ १२२ ॥
विभक्तेषु सुतो जातः सवर्णायां विभागभाक् । दृश्याद्वा तद्विभागः स्यादायव्ययविशोधितात्॥१२४॥
असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः । भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्वांशं तु तुरीयकम् ॥१२६॥
चतुस्त्रिद्व्येकभागाः स्युर्वर्णशो ब्राह्मणात्मजाः । क्षत्रजास्त्रिद्व्येकभागा विड्जास्तु द्व्येकभागिनः१२७॥
अन्योन्यापहृतं द्रव्यं विभक्तं यत्तु दृश्यते । तत्पुनस्ते समैरंशैर्विभजेरन्निति स्थितिः ॥ १२८ ॥
अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः । उभयोरप्यसौ रिक्थी पिण्डदाता च धर्मतः ॥ १२९ ॥
औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः । क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु सगोत्रेणेतरेण वा ॥ १३२ ॥
गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः । कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो मतः ॥ १३३ ॥
अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवः सुतः । दद्यान्माता पिता वायं स पुत्रो दत्तको भवेत्॥१३४॥
क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्यात्स्वयंकृतः । दत्तात्मा तु स्वयं दत्तो गर्भे विन्नः सहोढजः१३५॥
उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोपविद्धो भवेत्सुतः । पिण्डदोंशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः ॥ १३६ ॥
पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम् । आधिवेदनिकाद्यं च स्त्रीधनन्तत्प्रकीर्तितम् ॥ १४७ ॥
बन्धुदत्तन्तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च । अतीतायामप्रजसि बान्धवास्तदवाप्नुयुः ॥ १४८ ॥
अप्रजस्त्रीधनम्भर्तुर्ब्राह्मादिषु चतुर्ष्वपि । दुहितॄणां प्रसूता चेच्छेषेषु पितृगामि तत् ॥ १४९ ॥
अनृते तु पृथक् दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम् । अभावे ज्ञातृचिह्नानां राजा सीम्नः प्रवर्तिता ॥१५७॥

पथिग्रामविवीतान्ते क्षेत्रे दोषो न विद्यते । अकामतः कामचारे चौरवद्दण्डमर्हति ॥ १६६ ॥
महोक्षोत्सृष्टपशवः सूतिकागन्तुकादयः । पालो येषां न ते मोच्या दैवराजपरिप्लुताः ॥ १६७ ॥
यथार्पितान्पशून् गोपः सायं प्रत्यर्पयेत्तथा । प्रमादमृतनष्टांश्च प्रदाप्यः कृतवेतनः ॥ १६८ ॥
पालदोषविनाशे तु पाले दण्डो विधीयते । अर्द्धत्रयोदशपणः स्वामिनो द्रव्यमेव च ॥ १६९ ॥
ग्रामेच्छया गोप्रचारो भूमीराजवशेन वा । द्विजस्तृणैधः पुष्पाणि सर्वतः सर्वदा हरेत् ॥ १७० ॥
धनुःशतं परीणाहो ग्रामे क्षेत्रान्तरं भवेत् । द्वे शते खर्वटस्य स्यान्नगरस्य चतुःशतम् ॥ १७१ ॥
शौल्किकैः स्थानपालैर्वा नष्टापहृतमाहृतम् । अर्वाक्संवत्सरात्स्वामी हरेत परतो नृपः ॥ १७७ ॥
पणानेकशफे दद्याच्चतुरः पञ्च मानुषे । महिषोष्ट्रगवां द्वौ द्वौ पादम्पादमजाविके ॥ १७८ ॥
बलाद्दासीकृतश्चौरैर्विक्रीतश्चापि मुच्यते । स्वामिप्राणप्रदो भक्तत्यागात्तन्निष्क्रयादपि ॥ १८६ ॥
प्रव्रज्यावसितो राज्ञो दास आमरणान्तिकम् । वर्णानामानुलोम्येन दास्यं न प्रतिलोमतः ॥ १८७॥
कृतशिल्पोपि निवसेत्कृतकालं गुरोर्गृहे । अन्तेवासी गुरुप्राप्तभोजनस्तत्फलप्रदः ॥ १८८ ॥
सत्यासत्यान्यथास्तोत्रैर्न्यूनाङ्गेन्द्रियरोगिणाम् । क्षेपं करोति चेद्दण्ड्यः पणानर्द्धत्रयोदशान्॥२०८॥
प्रातिलोम्यापवादेषु द्विगुणत्रिगुणा दमाः । वर्णानामानुलोम्येन तस्मादर्द्धार्द्धहानितः ॥ २११ ॥
सामान्यद्रव्यप्रसभहरणात्साहसं स्मृतम् । तन्मूल्याद् द्विगणो दण्डो निह्नवे तु चतुर्गुणः ॥ २३४ ॥
पितापुत्रस्वसृभ्रातृदम्पत्याचार्यशिष्यकाः । एषामपतितान्योन्यत्यागी च शतदण्डभाक् ॥ २४१ ॥
भिषङ् मिथ्याचरन्दण्ड्यस्तिर्यक्षु प्रथमं दमम् । मानुषे मध्यमं राजपुरुषेषूत्तमं दमम् ॥ २४६ ॥
अर्घप्रक्षेपणाद्विंशं भागं शुल्कं नृपो हरेत् । व्यासिद्धं राजयोग्यं च विक्रीतं राजगामि तत् ॥२६५॥
मिथ्यावदन्परीमाणं शुल्कस्थानादपासरन् । दाप्यस्त्वष्टगुणं यश्च सव्याजक्रयविक्रयी ॥ २६६ ॥
तरिकः स्थलजं शुल्कं गृह्णन् दाप्यः पणान्दश । ब्राह्मणप्रातिवेश्यानामेतदेवानिमन्त्रणे ॥ २६७ ॥
उत्क्षेपकग्रंथिभेदौ करसंदंशहीनकौ । कार्यौ द्वितीयापराधे करपादैकहीनकौ ॥ २७८ ॥
भक्तावकाशाग्न्युदकमन्त्रोपकरणव्ययान् । दत्वा चौरस्य वा हन्तुर्जानतो दम उत्तमः ॥ २८० ॥
पुमान्संग्रहणे ग्राह्यः केशाकेशि परस्त्रियाः । सद्यो वा कामजैश्चिह्नैः प्रतिपत्तौ द्वयोस्तथा ॥ २८७॥
नीवीस्तनप्रावरणसक्थिकेशावमर्शनम् । अदेशकालसम्भाषं सहैकासनमेव च ॥ २८८ ॥
स्त्रीनिषेधे शतन्दद्याद् द्विशतन्तु दमम्पुमान् । प्रतिषेधे तयोर्दण्डो यथासंग्रहणे तथा ॥ २८९ ॥
अवरुद्धासु दासीषु भुजिष्यासु तथैव च । गम्यास्वपि पुमान्दाप्यः पञ्चाशत्पणिकन्दमम्॥२९४॥
अयोनौ गच्छतो योषां पुरुषं वापि मेहतः । चतुर्विंशतिको दण्डस्तथा प्रव्रजितागमे ॥ २९७ ॥
ऊनं वाभ्यधिकं वापि लिखेद्यो राजशासनम् । पारदारिकचौरं वा मुञ्चतो दण्ड उत्तमः ॥२९९ ॥
चतुष्पादकृतो दोषो नापेहीति प्रजल्पतः । काष्ठलोष्टेषु पाषाणबाहुयुग्मकृतस्तथा ॥ ३०२ ॥
छिन्ननस्येन यानेन तथा भग्नयुगादिना ॥ पश्चाच्चैवापसरता हिंसने स्वाम्यदोषभाक् ॥ ३०३ ॥
शक्तोप्यमोक्षयन् स्वामी दंष्ट्रिणां शृंगिणां तथा । प्रथमं साहसं दद्याद्विक्रुष्टे द्विगुणन्तथा ॥ ३०४ ॥
द्विनेत्रभेदिनो राजद्विष्टादेशकृतस्तथा । विप्रत्वेन च शूद्रस्य जीवतोऽष्टशतो दमः ॥ ३०८ ॥
राज्ञाऽन्यायेन यो दण्डो गृहीतो वरुणाय तम् । निवेद्य दद्याद्विप्रेभ्यः स्वयन्त्रिंशद्गुणीकृतम्३११॥

याज्ञवल्क्यस्मृति—३अध्याय ।

पाखण्ड्यनाश्रिताः स्तेनाभर्तृघ्न्यः कामगादिकाः । सुराप्य आत्मत्यागिन्यो नाशौचोदकभाजनाः॥
कृतोदकान्समुत्तीर्णान्मृदुशाद्वलसंस्थितान् । स्नातानपवदेयुस्तानितिहासैः पुरातनैः ॥ ७ ॥
मानुष्ये कदलीस्तम्भनिःसारे सारमार्गणम् । करोति यः स सम्मूढो जलबुद्बुदसन्निभे:॥ ८ ॥
पञ्चधा सम्भृतः कायो यदि पञ्चत्वमागतः । कर्मभिः स्वशरीरोत्थैस्तत्र का परिदेवना ॥ ९ ॥
गन्त्री वसुमती नाशमुदधिर्दैवतानि च । फेनप्रख्यः कथं नाशम्मर्त्यलोको न यास्यति ॥ १० ॥
श्लेष्माश्रुबान्धवैर्मुक्तम्प्रेतो भुङ्क्ते यतोवशः । अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्याः स्वशक्तितः॥११॥
इति संश्रुत्य गच्छेयुर्गृहम्बालपुरःसराः । विदश्य निम्बपत्राणि नियता द्वारि वेश्मनः ॥ १२ ॥
आचम्याग्न्यादिसलिलं गोमयं गौरसर्षपान् । प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाश्मनि पदं शनैः ॥ १३ ॥
प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शिनामपि । इच्छतान्तत्क्षणाच्छुद्धिम्परेषां स्नानसंयमात् ॥ १४ ॥

आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हृत्यापि व्रती व्रती । शकटान्नं च नाश्नीयान्न च तैः सह संवसेत् ॥ १९ ॥
जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये । वैतानोपासनाः कार्याः क्रियाश्च श्रुतिनोदनात् ॥१७॥
अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुध्यति । गर्भस्रावे मासतुल्या निशाः शुद्धेस्तु कारणम् ॥ २० ॥
हतानान्नृपगोविप्रैरन्वक्षं चात्मघातिनाम् । प्रोषिते कालशेषः स्यात्पूर्णे दत्त्वोदकं शुचिः ॥ २१ ॥
क्षत्रस्य द्वादशाहानि विशः पञ्चदशैव तु । त्रिंशद्दिनानि शूद्रस्य तदर्धं न्यायवर्तिनः ॥ २२ ॥
अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च । निवासराजनि प्रेते तदहः शुद्धिकारणम् ॥ २५ ॥
महीपतीनां नाशौचं हतानां विद्युता तथा । गोब्राह्मणार्थे संग्रामे यस्य चेच्छति भूमिपः ॥ २७ ॥
ऋत्विजां दीक्षितानां च यज्ञियं कर्म कुर्वताम् । सत्रिव्रतिब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदां तथा ॥ २८ ॥
उदक्याशुचिभिः स्नायात्संस्पृष्टस्तैरुपस्पृशेत् । अब्लिङ्गानि जपेच्चैव गायत्रीं मनसा सकृत् ॥ ३० ॥
फलोपलक्षौमसोममनुष्यापूपवीरुधः । तिलोदनरसक्षारां दधिक्षीरं घृतं जलम् ॥ ३६ ॥
शस्त्रासवमधूच्छिष्टं मधुलाक्षाथ बर्हिषः । मृच्चर्मपुष्पकुतुपकेशतक्रविषक्षितीः ॥ ३७ ॥
कौशेयनीललवणमांसैकशफसीसकान् । शाकार्द्रौषधिपिण्याकपशुगन्धांस्तथैव च ॥ ३८ ॥
वैश्यवृत्त्यापि जीवन्नो विक्रीणीत कदाचन । धर्मार्थं विक्रयं नेयास्तिला धान्येन तत्समाः ॥ ३९ ॥
लाक्षालवणमांसानि पतनीयानि विक्रये । पयो दधि च मद्यं च हीनवर्णकराणि तु ॥ ४० ॥
आपद्गतः सम्प्रगृह्णन् भुञ्जानो वाग्यतस्ततः । न लिप्येतैनसा विप्रो ज्वलनार्कसमो हि सः ॥ ४१ ॥
बुभुक्षितस्त्र्यहं स्थित्वा धान्यमब्राह्मणाद्धरेत् । प्रतिगृह्य तदाख्येयमभियुक्तेन धर्मतः ॥ ४३ ॥
तस्य वृत्तं कुलं शलिं श्रुतमध्ययनं तपः । ज्ञात्वा राजा कुटुम्बं च धर्म्यां वृत्तिं प्रकल्पयेत् ॥ ४४ ॥
सुतविन्यस्तपत्नीकस्तया वानुगतो वनम् । वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साग्निः सोपासनो व्रजेत् ॥ ४५ ॥
अफालकृष्टेनाग्नींश्च पितॄन्देवातिथीनपि । भृत्यांश्च तर्पयेच्छ्मश्रुजटालोमभृदात्मवान् ॥ ४६ ॥
अह्नो मासस्य षण्णां वा तथा संवत्सरस्य वा । अर्थस्य सञ्चयं कुर्यात्कृतमाश्वयुजे त्यजेत् ॥ ४७ ॥
दान्तस्त्रिषवणस्नायी निवृत्तश्च प्रतिग्रहात् । स्वाध्यायवान्दानशीलः सर्वसत्त्वहिते रतः ॥ ४८ ॥
दन्तोलूखलिकः कालपक्वाशी वाश्मकुट्टकः । श्रौतं स्मार्तं फलं स्नेहैः कर्म कुर्यात्तथा क्रियाः ॥४९॥
चान्द्रायणैर्नयेत्कालं कृच्छ्रैर्वा वर्तयेत्सदा । पक्षे गते वाप्यश्नीयान्मासे वाहनि वा गते ॥ ५० ॥
स्वप्याद्भूमौ शुची रात्रौ दिवा संप्रपदैर्नयेत् । स्थानासनविहारैर्वा योगाभ्यासेन वा तथा ॥ ५१ ॥
ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः । आर्द्रवासास्तु हेमन्ते शक्त्या वापि तपश्चरेत् ॥५२॥
यः कण्टकैर्वितुदति चन्दनैर्यश्च लिम्पति । अक्रुद्धोऽपरितुष्टश्च समस्तस्य च तस्य च ॥ ५३ ॥
अग्नीन्वाप्यात्मसात्कृत्वा वृक्षावासो मिताशनः । वानप्रस्थगृहेष्वेव यात्रार्थम्भैक्ष्यमाचरेत् ॥ ५४ ॥
ग्रामादाहृत्य वा ग्रासानष्टौ भुञ्जीत वाग्यतः । वायुभक्षः प्रागुदीचीं गच्छेद्वा वर्ष्मसंक्षयात् ॥ ५५ ॥
वनाद्गृहाद्वा कृत्वेष्टिं सार्ववेदसदक्षिणाम् । प्राजापत्यां तदन्ते तानग्नीनारोप्य चात्मनि ॥ ५६ ॥
अधीतवेदो जपकृत्पुत्रवानन्नदोऽग्निमान् । शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनः कुर्यात्तु नान्यथा ॥ ५७ ॥
सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः । एकारामः परिव्रज्य भिक्षार्थी ग्राममाश्रयेत् ॥ ५८ ॥
अप्रमत्तश्चरेद्भैक्ष्यं सायाह्नेनभिलक्षितः । रहिते भिक्षुकैर्ग्रामे यात्रामात्रमलोलुपः ॥ ५९ ॥
यतिपात्राणि मृद्वेणुदार्वलाम्बुमयानि च । सलिलैः शुद्धिरेतेषां गोबालैश्चावघर्षणम् ॥ ६० ॥
सन्निरुद्धेन्द्रियग्रामं रागद्वेषौ प्रहाय च । भयं हित्वा च भूतानाममृती भवति द्विजः ॥ ६१ ॥
कर्तव्याशयशुद्धिस्तु भिक्षुकेण विशेषतः । ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तत्वात्स्वातन्त्र्यकरणाय च ॥ ६२ ॥
अवेक्ष्या गर्भवासाश्च कर्मजा गतयस्तथा । आधयो व्याधयः क्लेशजरारूपविपर्ययः ॥ ६३ ॥
भवो जातिसहस्रेषु प्रियाप्रियविपर्ययः । ध्यानयोगेन सम्पश्येत्सूक्ष्म आत्मात्मनि स्थितः ॥ ६४ ॥
नाश्रमः कारणं धर्मे क्रियमाणो भवेद्धि सः । अतो यदात्मनो पथ्यं परेषां न तदाचरेत् ॥ ६५ ॥
सत्यमस्तेयमक्रोधो ह्रीः शौचं धीर्धृतिर्दमः । संयतेन्द्रियता विद्या धर्मः सर्व उदाहृतः ॥ ६६ ॥
प्रथमे मासि संक्लेदभूतो धातुर्विमूर्च्छितः । मास्यर्बुदं द्वितीये तु तृतीयेंऽगेन्द्रियैर्युतः ॥ ७५ ॥
स्थालैः सह चतुःषष्टिर्दन्ता वै विंशतिर्नखाः । पाणिपादशलाकाश्च तेषां स्थानचतुष्टयम् ॥ ८५ ॥
षष्ट्यङ्गुलीनां द्वे पार्ष्ण्योर्गुल्फेषु च चतुष्टयम् । चत्वार्यरत्निकास्थीनि जङ्घयोस्तावदेव तु ॥ ८६॥

द्वे द्वे जानुकपोलोरुफलकांससमुद्भवे । अक्षतालूपकश्रोणीफलके च विनिर्दिशेत् ॥ ८७ ॥
भगास्थ्येकं तथा पृष्ठे चत्वारिंशच्च पञ्च च । ग्रीवापञ्चदशास्थी स्याज्जत्र्वेकैकं तथा हनुः ॥८८ ॥
तन्मूले द्वे ललाटाक्षिगण्डे नासाघनास्थिका । पार्श्वकाः स्थालकैः सार्द्धमर्बुदैश्च द्विसप्ततिः ॥८९॥
द्वौ शङ्खकौ कपालानि चत्वारि शिरसस्तथा । उरः सप्तदशास्थीनि पुरुषस्यास्थिसंग्रहः ॥ ९० ॥
गन्धरूपरसस्पर्शशब्दाश्च विषयाः स्मृताः । नासिका लोचने जिह्वा त्वक् श्रोत्रं चेन्द्रियाणि च९१॥
हस्तौ पायुरुपस्थं च जिह्वा पादौ च पञ्च वै । कर्मेन्द्रियाणि जानीयान्मनश्चैवोभयात्मकम् ॥ ९२॥
महस्रात्मा मया यो व आदिदेव उदाहृतः । मुखबाहूरुपज्जाः स्युस्तस्य वर्णा यथाक्रमम् ॥१२६ ॥
अन्त्यपक्षिस्थावरतां मनोवाक्कायकर्मजैः । दोषैः प्रयाति जीवोयम्भवं योनिशतेषु च ॥ १३१ ॥
अनन्ताश्च यथा भावाः शरीरेषु शरीरिणाम् । रूपाण्यपि तथैवेह सर्वयोनिषु देहिनाम् ॥ १३२ ॥
विपाकः कर्मणाम्प्रेत्य केषांचिदिह जायते । इह वामुत्र वैकेषाम्भावास्तत्र प्रयोजनम् ॥ १३३ ॥
परद्रव्याण्यभिध्यायंस्तथानिष्टानि चिन्तयन् । वितथाभिनिवेशी च जायतेन्त्यासु योनिषु ॥१३४ ॥
पुरुषोनृतवादी च पिशुनः परुषस्तथा । अनिबद्धप्रलापी च मृगपक्षिषु जायते ॥ १३५ ॥
अदत्तादाननिरतः परदारोपसेवकः । हिंसकश्चाविधानेन स्थावरेष्वभिजायते ॥ १३६ ॥
महापातकजान् घोरान् नरकान्प्राप्य दारुणान् । कर्मक्षयात्प्रजायन्ते महापातकिनस्त्विह ॥२०६ ॥
मृगश्वशूकरोष्ट्राणां ब्रह्महा योनिमृच्छति । खरपुक्कसवेनानां सुरापो नात्र संशयः ॥ २०७ ॥
कृमिकीटपतङ्गत्वं स्वर्णहारी समाप्नुयात् । तृणगुल्मलतात्वं च क्रमशो गुरुतल्पगः ॥ २०८ ॥
ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात् सुरापः श्यावदन्तकः । हेमहारी तु कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥ २०९ ॥
यो येन संवसत्येषां स तल्लिङ्गोभिजायते । अन्नहर्त्तामयावी स्यान्मूको वागपहारकः ॥ २१० ॥
धान्यमिश्रे तिरिक्ताङ्गः पिशुनः पूतिनासिकः । तैलहृत्तैलपायी स्यात्पूतिवक्त्रस्तु सूचकः ॥ २११ ॥
परस्य योषितं हृत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य च । अरण्ये निर्जले देशे भवति ब्रह्मराक्षसः ॥ २१२ ॥
हीनजातौ प्रजायेत पररत्नापहारकः । पत्रशाकं शिखी हृत्वा गन्धाञ्छुच्छुन्दरी शुभान् ॥ २१३ ॥
मूषको धान्यहारी स्याद्यानमुष्ट्रः कपिः फलम् । जलं प्लवः पयः काको गृहकारी ह्युपस्करम्॥२१४॥
मधु दंशः पलं गृध्रो गां गोधाग्निं बकस्तथा । श्वित्री वस्त्रं श्वा रसं तु चीरी लवणहारकः ॥२१५ ॥
विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात् । अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणान्नरः पतनमृच्छति ॥ २१९ ॥
प्रायश्चित्तमकुर्वाणाः पापेषु निरता नराः । अपश्चात्तापिनः कष्टान्नरकान् यान्ति दारुणान् ॥२२१॥
तामिस्रं लोहशंकुं च महानिरयशाल्मली । रौरवं कुड्मलम्पूतिमृत्तिकं कालसूत्रकम् ॥ २२२ ॥
संघातं लोहितोदं च सविषं सम्प्रपातनम् । महानरककाकोलं संजीवनमहापथम् ॥ २२३ ॥
अवीचिमंधतामिस्रं कुम्भीपाकन्तथैव च । असिपत्रवनं चैव तापनं चैकविंशकम् ॥ २२४ ॥
प्रायश्चित्तैरपैत्येनो यदज्ञानकृतम्भवेत् । कामतो व्यवहार्यस्तु वचनादिह जायते ॥ २२६ ॥
ब्रह्महा मद्यपः स्तेनस्तथैव गुरुतल्पगः । एते महापातकिनो यश्च तैः सह संवसेत् ॥ २२७ ॥
गुरूणामध्यधिक्षेपो वेदनिन्दा सुहृद्वधः । ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयमधीतस्य च नाशनम् ॥ २२८ ॥
निषिद्धभक्षणं जैह्म्यमुत्कर्षे च वचोनृतम् । रजस्वलामुखास्वादः सुरापानसमानि तु ॥ २२९ ॥
अश्वरत्नमनुष्यस्त्रीभूधेनुहरणन्तथा । निक्षेपस्य च सर्वं हि सुवर्णस्तेयसम्मितम् ॥ २३० ॥
गोवधो व्रात्यता स्तेयमृणानां चानपाक्रिया । अनाहिताग्नितापण्यविक्रयः परिवेदनम् ॥ २३४ ॥
भृताद्ध्ययनादानम्भृतकाध्यापनन्तथा । पारदार्यं पारिवित्यम्वार्धुष्यं लवणक्रिया ॥ २३५ ॥
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो निन्दितार्थोपजीवनम् । नास्तिक्यंव्रतलोपश्च सुतानां चैव विक्रयः ॥ २३६ ॥
धान्यकुप्यपशुस्तेयमयाज्यानां च याजनम् । पितृमातृसुतत्यागस्तडागारामविक्रयः ॥ २३७ ॥
कन्यासंदूषणं चैव परिविन्दकयाजनम् । कन्याप्रदानं तस्यैव कौटिल्यंव्रतलोपनम् ॥ २३८ ॥
आत्मनोर्थे क्रियारम्भो मद्यपस्त्रीनिषेवणम् । स्वाध्यायाग्निसुतत्यागो बान्धवत्याग एव च ॥२३९॥
इन्धनार्थं द्रुमच्छेदः स्त्रीहिंसौषधजीवनम् । हिंस्रयन्त्रविधानं च व्यसनान्यात्मविक्रयः ॥ २४० ॥
शूद्रप्रेष्यं हीनसख्यं हीनयोनिनिषेवणम् । तथैवानाश्रमे वासः परान्नपरिपुष्टता ॥ २४१ ॥
असच्छास्त्राधिगमनमाकरेष्वधिकारिता । भार्याया विक्रयश्चैषामेकैकमुपपातकम् ॥ २४२ ॥

शिरःकपाली ध्वजवान् भिक्षाशी कर्म वेदयन् । ब्रह्महा द्वादशाब्दानि मितभुक् शुद्धिमाप्नुयात् २४३
ब्राह्मणस्य परित्राणाद्गवां द्वादशकस्य च । तथाश्वमेधावभृथस्नानाद्वा शुद्धिमाप्नुयात् ॥ २४४ ॥
दीर्घतीव्रामयग्रस्तम्ब्राह्मणं गामथापि वा । दृष्ट्वा पथि निरातङ्कं कृत्वा वा ब्रह्महा शुचिः ॥ २४५ ॥
आनीय विप्रसर्वस्वं हृतं घातित एव वा । तन्निमित्तं क्षतः शस्त्रैर्जीवन्नपि विशुद्ध्यति ॥ २४६ ॥
लोमभ्यः स्वाहेत्येवं हि लोमप्रभृति वै तनुम् । मज्जां तां जुहुयाद्वापि मन्त्रैरेभिर्यथाक्रमम् ॥२४७॥
सङ्ग्रामे वा हतो लक्ष्यभूतः शुद्धिमवाप्नुयात् । मृतकल्पः प्रहारार्तो जीवन्नपि विशुद्ध्यति॥२४८॥
अरण्ये नियतो जप्त्वा त्रिर्वै वेदस्य संहिताम् । शुद्ध्यते वा मिताशी त्वाप्रतिस्रोतः सरस्वतीम्॥२४९
पात्रे धनं वा पर्याप्तं दत्त्वा शुद्धिमवाप्नुयात् । आदातुश्च विशुद्ध्यर्थमिष्टिर्वैश्वानरी स्मृता ॥ २५० ॥
यागस्थक्षत्रविड्घाती चरेद्ब्रह्महणि व्रतम् । गर्भहा च यथावर्णं तथात्रेयीनिषूदकः ॥ २५१ ॥
सुराम्बुघृतगोमूत्रपयसामग्निसन्निभम् । सुरापोन्यतमत्पीत्वा मरणाच्छुद्धिमृच्छति ॥ २५३ ॥
बालवासा जटी वापि ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् । पिण्याकं वा कणान्वापि भक्षयेत्त्रिसमा निशि ॥२५४॥
अज्ञानात्तु सुरां पीत्वा रेतो विण्मूत्रमेव च । पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ २५५ ॥
पतिलोकं न सा याति ब्राह्मणी या सुरां पिबेत् । इहैव सा शुनी गृध्री शूकरी चोपजायते॥२५६॥
ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु राज्ञे मुशलमर्पयेत् । स्वकर्म ख्यापयंस्तेन हतो मुक्तोपि वा शुचिः ॥२५७ ॥
अनिवेद्य नृपे शुद्ध्येत्सुरापव्रतमाचरन् । आत्मतुल्यं सुवर्णं वा दद्याद्वापि प्रतुष्टिकृत् ॥ २५८ ॥
तप्तेयःशयने सार्धमायस्या योषिता स्वपेत् । गृहीत्वोत्कृत्य वृषणौ नैर्ऋत्यां चोत्सृजेत्तनुम् ॥२५९ ॥
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं समा वा गुरुतल्पगः । चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यसेद्वेदसंहिताम् ॥ २६०॥
एभिस्तु संवसेद्यो वै वत्सरं सोपि तत्समः । कन्यां समुद्वहेदेषां सोपवासामकिञ्चनाम् ॥ २६१ ॥
उपपातकशुद्धिः स्यादेवं चान्द्रायणेन वा । पयसा वापि मासेन पराकेणाथवा पुनः ॥ २६५ ॥
ऋषभैकसहस्रा गा दद्यात्क्षत्रवधे पुमान् । ब्रह्महत्याव्रतं वापि वत्सरत्रितयं चरेत् ॥ २६६ ॥
वैश्यहाब्दं चरेदेतद्दद्याद्वैकशतं गवाम् । षण्मासाञ्छूद्रहाप्येतद्धेनूर्दद्याद्दशाथवा ॥ २६७ ॥
अप्रदुष्टां स्त्रियं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् । अस्थिमतां सहस्रं तु तथानस्थिमतामनः ॥ २६९ ॥
मार्जारगोधानकुलमण्डूकाश्वपतत्रिणः । हत्वा त्र्यहं पिबेत्क्षीरं कृच्छ्रं वा पादिकं चरेत् ॥ २७० ॥
गजे नीलवृषाः पञ्च शुके वत्सो द्विहायनः । खराजमेषेषु वृषो देयः क्रौञ्चे त्रिहायनः ॥ २७१ ॥
हंसश्येनकपिक्रव्याज्जलस्थलशिखण्डिनः । मासं हत्वा च दद्याद्गामक्रव्यादस्तु वत्सिकाम् ॥२७२ ॥
उरगेष्वायसो दण्डो षण्डके त्रपुसीसकम् । कोले घृतघटो देय उष्ट्रे गुञ्जा हयेंशुकम् ॥ २७३ ॥
तित्तिरौ तु तिलद्रोणं गजादीनामशक्नुवन् । दानन्दातुं चरेत्कृच्छ्रमेकैकस्य विशुद्धये ॥ २७४ ॥ ॥
फलपुष्पान्नरसजसत्त्वघाते घृताशनम् । किंचित्सास्थिमतान्देयम्प्राणायामस्त्वनास्थिके ॥ :२७५ ॥
वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदने जप्यमृक्शतम् । स्यादौषधिवृथाछेदे क्षीराशी गोनुगो दिनम् ॥ २७६॥
पुंश्चलीवानरखरैर्दष्टश्वोष्ट्रादिवायसैः । प्राणायामं जले कृत्वा घृतम्प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ २७७ ॥:
अवकीर्णी भवेद्गत्वा ब्रह्मचारी तु योषितम् । गर्दभम्पशुमालभ्य नैर्ऋतं स विशुद्ध्यति ॥ २८० ॥
उपस्थानन्ततः कुर्यात्सप्तासिश्चत्वनेन तु । मधुमांसाशने कार्यः कृच्छ्रः शेषव्रतानि च ॥ २८२ ॥
अनियुक्तो भ्रातृजायां गच्छंश्चान्द्रायणं चरेत् । त्रिरात्रान्ते घृतम्प्राश्य गत्वोदक्यां विशुद्ध्यति२८६
त्रीन् कृच्छ्रानाचरेद्व्रात्ययाजको भिचरन्नपि । वेदप्लावीयवाश्यब्दन्त्यक्त्वा च शरणागतम्॥२८९॥
गोष्ठे वसन् ब्रह्मचारी मासमेकम्पयोव्रतः । गायत्रीजाप्यनिरतः शुद्ध्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ॥ २९० ॥
गुरुं तुं कृत्य हुं कृत्य विप्रन्निर्जित्य वादतः । बद्ध्वा वा वाससा क्षिप्रम्प्रसाद्योपवसेद्दिनम् ॥२९२ ॥
विप्रदण्डोद्यमे कृच्छ्रस्त्वतिकृच्छ्रो निपातने । कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽसृक्पातेकृच्छ्रोभ्यन्तरशोणिते॥२९३॥
दासीकुम्भम्बहिर्ग्रामान्निनयेरन्स्वबान्धवाः । पतितस्य बहिः कुर्युः सर्वकार्येषु चैव तम् ॥ २९५ ॥
चरितव्रतआयाते निनयेरन्नवं घटम् । जुगुप्सेरन्नचाप्येनं संविशेयुश्च सर्वशः ॥ २९६ ॥
पतितानामेष एव विधिः स्त्रीणाम्प्रकीर्तितः । वासो गृहान्तिकन्देयमन्नं वासः सरक्षणम् ॥ २९७ ॥
नीचाभिगमनं गर्भपातनम्भर्तृहिंसनम् । विशेषपतनीयानि स्त्रीणामेतान्यपि ध्रुवम् ॥ २९८ ॥
शरणागतबालस्त्रीहिंसकान्संविशेन्न तु । चीर्णव्रतानपि सतः कृतघ्नसहितानिमान् ॥ २९९ ॥

ब्रह्मचर्यं दया क्षान्तिर्दानं सत्यमकल्कता । अहिंसास्तेयमाधुर्यन्दमश्चेति यमाः स्मृताः ॥ ३१३ ॥
स्नानम्मौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहाः । नियमा गुरुशुश्रूषाशौचाक्रोधांप्रमादताः ॥ ३१४ ॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरन्दधि सर्पिः कुशोदकम् । जग्ध्वा परेह्न्युपवसेत्कृच्छ्रं सान्तपनम्परम् ॥ ३१५॥
तप्तक्षीरघृताम्बूनामेकैकम्प्रत्यहम्पिबेत् । एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्रं उदाहृतः ॥ ३१८ ॥
एकभुक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च । उपवासेन चैवायं पादकृच्छ्रः प्रकीर्त्तितः ॥ ३१९ ॥
यथाकथंचित् त्रिगुणः प्राजापत्योयमुच्यते । अयमेवातिकृच्छ्रः स्यात्पाणिपूरान्नभोजनः ॥ ३२० ॥
कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिम् । द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्त्तितः ॥ ३२१ ॥
तिथिवृद्ध्याचरेत्पिण्डाञ्छुक्ले शिखण्डसम्मितान् । एकैकं ह्रासयेत्कृष्णे पिण्डं चान्द्रायणं चरन् ॥
यथाकथंचित्पिण्डानां चत्वारिंशच्छतद्वयम् । मासेनैवोपभुञ्जीत चान्द्रायणमथापरम् ॥ ३२५ ॥
कुर्यात्त्रिषवणस्नायी कृच्छ्रं चान्द्रायणन्तथा । पवित्राणि जपेत्पिण्डान् गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत् ३२६
अनादिष्टेषु पापेषु शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु । धर्मार्थं यश्चरेदेतच्चन्द्रस्यैति सलोकताम् ॥ ३२७ ॥
य इदं श्रावयेद्विद्वान् द्विजान् पर्वसु पर्वसु । अश्वमेधफलन्तस्य तद्भवाननुमन्यताम् ॥ ३३४ ॥

(२ क) वृद्धयाज्ञवल्क्यस्मृति ।

आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः । अनाहिताग्निरेकेन लौकिकेनापरो जनः (१) ।
कुमारजन्मदिवसे विप्रैः कार्यः प्रतिग्रहः । हिरण्यभूगवाश्वाजवासः शय्यासनादिषु (२) ।
तत्र सर्वं प्रतिग्राह्यं कृतान्नं न तु भक्षयेत् । भक्षयित्वा तु तन्मोहाद्द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् (३) ।

(३) अत्रिस्मृति ।

ये च पापकृतो लोके ये चान्ये धर्मदूषकाः । सर्वपापैः प्रमुच्यन्ते श्रुत्वेदं शास्त्रमुत्तमम् ॥ ६ ॥
कर्म विप्रस्य यजनं दानमध्ययनं तपः । प्रतिग्रहोध्यापनं च याजनं चेति वृत्तयः ॥ १३ ॥
क्षत्रियस्यापि यजनं दानमध्ययनं तपः । शस्त्रोपजीवनं भूतरक्षणं चेति वृत्तयः ॥ १४ ॥
दानमध्ययनं वार्ता यजनं चेति वै विशः । शूद्रस्य वार्ता शुश्रूषा द्विजानां कारुकर्म च ॥ १५ ॥
सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च । त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी ॥ २१ ॥
अलाभे देवखातानां ह्रदेषु सरसीषु च । उद्धृत्य चतुरः पिण्डान् पारक्ये स्नानमाचरेत् ॥ ३० ॥
वसा शुक्रमसृङ् मज्जा मूत्रं विट्कर्णविण्नखाः । श्लेष्मास्थिदूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ३१॥
षण्णां षण्णां क्रमेणैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः । मृद्वारिभिश्च पूर्वेषामुत्तरेषां तु वारिणा ॥ ३२ ॥
न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति चान्यान् गुणानपि । न हसेच्चान्यदोषांश्च सानसूया प्रकीर्तिता ३४
अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः । आचारेषु व्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते ॥ ३५ ॥
प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् । एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तं ऋषिभिर्धर्मवादिभिः ॥ ३६ ॥
शरीरं पीड्यते येन शुभेन ह्यशुभेन वा । अत्यन्तं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते ॥ ३७ ॥
यथोत्पन्नेन कर्त्तव्यः सन्तोषः सर्ववस्तुषु । न स्पृहेत्परदारेषु सा स्पृहा च प्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥
बाह्यमाध्यात्मिकं वापि दुःखमुत्पाद्यते परैः । न कुप्यन्ति न चाहन्ति दम इत्यभिधीयते ॥ ३९ ॥
अहन्यहनि दातव्यमदीनेनान्तरात्मना । स्तोकादपि प्रयत्नेन दानमित्यभिधीयते ॥ ४० ॥
परेस्मिन्बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्ये रिपौ तथा । आत्मवद्वर्तितव्यं हि दयैषा परिकीर्तिता ॥ ४१ ॥
इष्टापूर्तं च कर्तव्यं ब्राह्मणेनैव यत्नतः । इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षो विधीयते ॥ ४३ ॥
अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् । आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥ ४४ ॥
वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च । अन्नप्रदानमारामः पूर्त्तमित्यभिधीयते ॥ ४५ ॥
इष्टापूर्ते द्विजातीनां सामान्ये धर्मसाधने । अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके ॥ ४६ ॥
आनृशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दानमार्जवम् । प्रीतिः प्रसादो माधुर्यमार्दवं च यमा दश ॥ ४८ ॥
शौचमिज्या तपो दानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः । व्रतमौनोपवासं च स्नानं च नियमा दश ॥ ४९ ॥
गवां शृङ्गोदके स्नात्वा महानद्युपसङ्गमे । समुद्रदर्शने वापि व्यालदष्टः शुचिर्भवेत् ॥ ६५ ॥
वृकश्वानशृगालैस्तु यदि दष्टस्तु ब्राह्मणः । हिरण्योदकसंमिश्रं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ६६ ॥
ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जम्बुकेण वृकेण वा । उदितं सोमनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥ ६७ ॥

सव्रतस्तु शुना दष्टस्त्रिरात्रमुपवासयेत् । सघृतं यावकं प्राश्य व्रतशेषं समापयेत् ॥ ६८ ॥
अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव वा । पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ७४ ॥
वपनं मेखलादण्डं भैक्ष्यचर्याव्रतानिच । निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥ ७९ ॥
शुना चैव तु संस्पृष्टस्तस्य स्नानं विधीयते । तदुच्छिष्टं तु संप्राश्य यत्नेन कृच्छ्रमाचरेत् ॥ ८० ॥
एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः । त्र्यहात्केवलवेदस्तु निर्गुणो दशभिर्दिनैः ॥ ८२ ॥
व्रतिनः शास्त्रपूतस्य आहिताग्नेस्तथैव च । राज्ञां तु सूतकं नास्ति यस्य चेच्छन्ति ब्राह्मणाः ॥८३॥
ब्राह्मणो दशरात्रेण द्वादशाहेन भूमिपः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥ ८४ ॥
सपिण्डानां तु सर्वेषां गोत्रजः सप्तपौरुषः । पिण्डांश्चोदकदानं च शावाशौचं तथानुगम् ॥ ८५ ॥
चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षडहः पञ्चमे तथा । षष्ठे चैव त्रिरात्रं स्यात् सप्तमे द्व्यहमेव वा ॥ ८६ ॥
मृतसूतके तु दासीनां पत्नीनां चानुलोमिनाम् । स्वामितुल्यं भवेच्छौचं मृते भर्तरि यौनिकम् ॥८७॥
एकत्र संस्कृतानां तु मातॄणामेकभोजिनाम् । स्वामितुल्यं भवेच्छौचं विभक्तानां पृथक् पृथक् ॥८९॥
उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरं पक्वान्नं मृतसूतके । पाचकान्नं नवश्राद्धं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ९० ॥
महायज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृतजन्मनि । होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्कान्नेन फलेन वा ॥ ९२ ॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरामृतसूतके । पूर्वसङ्कल्पितार्थस्य न दोषश्चात्रिरब्रवीत् ॥ ९६ ॥
व्याधितस्य कदर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा । क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ १०० ॥
व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः । श्राद्धत्यागविहीनस्य भस्मान्तं सूतकं भवेत् ॥ १०१ ॥
द्वे कृच्छ्रे परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्रमेव च । कृच्छ्रातिकृच्छ्रं दातुः स्याद्धेतुः सान्तपनं स्मृतम् १०२॥
एकैकं वर्द्धयेन्नित्यं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत् । अमावास्यां न भुञ्जीत एष चान्द्रायणो विधिः॥११०॥
जप्त्वा सहस्रं गायत्र्याः शुद्धिर्ब्रह्मवधाहते । पद्ममौदुम्बरबिल्वाश्च कुशाश्वत्थपलाशकाः ॥ ११३ ॥
एतेषामुदकं पीत्वा पर्णकृच्छ्रं तदुच्यते । पञ्चगव्यं च गोक्षीरं दधि मूत्रं शकृद् घृतम् ॥ ११४ ॥
जग्ध्वा परेह्न्युपवसेत्कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् । पृथक्सान्तपनैर्द्रव्यैः षडहः सोपवासकः ॥ ११५ ॥
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोयं महासान्तपनं स्मृतम् । त्र्यहं सायं त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं भुङ्क्ते त्वयाचितम् ॥११६॥
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यो विधिः स्मृतः । सायं तु द्वादश ग्रासाः प्रातः पञ्चदश स्मृताः ११७
अयाचितैश्चतुर्विंश परैस्त्वनशनं स्मृतम् । एकैकं ग्रासमश्नीयात् त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ॥ ११८ ॥
त्र्यहं परं च नाश्नीयादतिकृच्छ्रं तदुच्यते । कुक्कुटाण्डप्रमाणं स्यात् यावद्वास्य विशेन्मुखे॥११९॥
एतद् ग्रासं विजानीयाच्छुद्ध्यर्थं कायशोधनम् । त्र्यहमुष्णं पिबेदापस्त्र्यहमुष्णं पिबेत्पयः ॥१२०॥
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रये । षट् पलानि पिबेदापस्त्रिपलं तु पयः पिबेत् ॥ १२१ ॥
पलमेकं तु वै सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते । त्र्यहं तु दधिना भुंक्ते त्र्यहं भुंक्ते च सर्पिषा ॥ १२२ ॥
एतदेवं व्रतं पुण्यं वैदिकं कृच्छ्रमुच्यते । एकभुक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥ १२४ ॥
उपवासेन चैकेन पादकृच्छ्रं प्रकीर्तितम् । कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिम् ॥ १२५ ॥
द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः । पिण्याकश्चामतक्राम्बुसक्तूनां प्रतिवासरम् ॥ १२६ ॥
एकैकमुपवासः स्यात्सौम्यकृच्छ्रः प्रकीर्त्तितः । एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम् ॥ १२७॥
तुलापुरुष इत्येष ज्ञेयः पञ्चदशाह्निकः । कपिलायास्तु दुग्धाया धारोष्णं यत्पयः पिबेत् ॥ १२८ ॥
श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा । सोमः शौचं ददौ तासां गन्धर्वश्च तथाङ्गिराः॥१३७॥
पावकः सर्वमेध्यं च मेध्यं वै योषितां सदा । जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ॥ १३८॥
विद्यया याति विप्रत्वं श्रोत्रियस्त्रिभिरेव च । वेदशास्त्राण्यधीते यः शास्त्रार्थं च निबोधयेत् ॥१३९॥
तदासौ वेदवित्प्रोक्तो वचनं तस्य पावनम् । एकोपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः ॥ १४० ॥
नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातुः परो गुरुः । नास्ति दानात्परं मित्रमिह लोके परत्र च ॥१४८॥
न च कांस्येषु भुञ्जीयादापद्यपि कदाचन । मलाशाः सर्व एवैते यतयः कांस्यभोजनाः ॥ १५५ ॥
कांस्यकस्य च यत्पात्रं गृहस्थस्य तथैव च । कांस्यभोजी यतिश्चैव प्राप्नुयात्किल्बिषं तयोः॥१५६॥
सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषु च । भुञ्जन् भिक्षुर्वैदुःष्येत दुष्येच्चैव परिग्रहे ॥ १५७ ॥
यतिहस्ते जलं दद्याद्भिक्षां दद्यात्पुनर्जलम् । तद्भैक्षं मेरुणा तूल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥ १५८ ॥

गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं घृतपाचितम् । एतद्व्रतमिति प्रोक्तं भगवानत्रिरब्रवीत् ॥ १६१ ॥
ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः । अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षडेते भिक्षुकाः स्मृताः ॥ १६२॥
षण्मासान्कामयेन्मर्त्यो गुर्विणीमेव वै स्त्रियम् । आदन्तजननादूर्ध्वमेवं धर्मो न हीयते ॥ १६३ ॥
रजकः शैलूषश्चैव वेणुकर्मोपजीवनः । एतेषां यस्तु भुङ्क्ते वै द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ १६९ ॥
संस्पृष्टं यस्तु पक्वान्नमन्त्यजैर्वाप्युदक्यया । अज्ञानाद्ब्राह्मणोऽश्नीयात् प्राजापत्यार्द्धमाचरेत् ॥१७२॥
ब्राह्मणो वृक्षमारूढश्चाण्डालो मूलसंस्पृशः । फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥१७५॥
ब्राह्मणान्समनुप्राप्य सवासाः स्नानमाचरेत् । नक्तभोजी भवेद्विप्रो घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥१७६॥
एकवृक्षसमारूढश्चाण्डालो ब्राह्मणस्तथा । फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १७७ ॥
ब्राह्मणान्समनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत् । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ १७८ ॥
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति । स्त्रियो म्लेच्छस्य संपर्कात् शुद्धिः सान्तपने तथा ॥
तप्तकृच्छ्रं पुनः कृत्वा शुद्धिरेषा विधीयते । संवर्तेत यथा भार्या गत्वा म्लेच्छस्य सङ्गताम् ॥१८१॥
अशुद्धा सा भवेन्नारी यावद् गर्भं न मुञ्चति । असवर्णस्तु यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषेच्यते॥१९१॥
विमुक्ते तु ततः शल्ये रजश्चापि प्रदृश्यते ॥ १९२ ॥
तदा सा शुध्यते नारी विमलं काञ्चनं यथा॥ १९३ ॥
ऋतुकाल उपासीत पुष्पकालेन शुद्ध्यति । रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च ॥ १९५॥
कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः । एतान् गत्वा स्त्रियो मोहाद्भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ॥
कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्दवद्वयम् । सकृद्भुक्ता तु या नारी म्लेच्छैः सा पापकर्मभिः॥१९७॥
प्राजापत्येन शुद्ध्येत ऋतुप्रस्रवणेन तु । बलोद्धृता स्वयं वापि परप्रेरितया यदि ॥ १९८ ॥
सकृद्भुक्ता तु या नारी प्राजापत्येन शुद्ध्यति । प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत् ॥ १९९॥
न तेन तद्व्रतं तासां विनश्यति कदाचन । मद्यसंस्पृष्टकुम्भेषु यत्तोयं पिबति द्विजः ॥ २०० ॥
कृच्छ्रपादेन शुद्ध्येत पुनः संस्कारमर्हति । अन्त्यजस्य तु ये वृक्षा बहुपुष्पफलोपगाः ॥ २०१ ॥
कृच्छ्रपादेन शुद्ध्येत आपस्तम्बो ब्रवीन्मुनिः । श्लेष्मोपानहविण्मूत्रस्त्रीरजो मद्यमेव च ॥ २०३ ॥
एभिः संदूषिते कूपे तोयं पीत्वा कथं विधिः । एकं द्व्यहं त्र्यहं चैव द्विजातीनां विशोधनम् ॥२०४॥
प्रायश्चित्तं पुनश्चैव नक्तं शूद्रस्य दापयेत् । सद्यो वान्ते सचैलं तु विप्रस्तु स्नानमाचरेत् ॥ २०५ ॥
पर्युषिते त्वहोरात्रमतिरिक्ते दिनत्रयम् । शिरः कण्ठोरुपादांश्च सुरया यस्तु लिप्यते ॥ २०६ ॥
दशषट्त्रित्रयैकाहं चरेदेवमनुक्रमात् । प्रमादान्मद्यपसुरां सकृत्पीत्वा द्विजोत्तमः ॥ २०७ ॥
गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेण शुद्ध्यति । मद्यपस्य निषादस्य यस्तु भुङ्क्ते द्विजोत्तमः ॥ २०८ ॥
प्राजापत्येन शुद्ध्येत ब्राह्मणानां तु भोजनात् । ये प्रत्यवसिता विप्राः प्रव्रज्याग्निजलादितः२११॥
अनाशकान्निवर्तन्ते चिकीर्षन्ति गृहस्थितिम् । धारयेत्त्रीणि कृच्छ्राणि चान्द्रायणमथापि वा ॥२१२॥
जातकर्मादिकं प्रोक्तं पुनः संस्कारमर्हति । न शौचं नोदकं नाशु नापवादानुकम्पने ॥ २१३ ॥
गोमूत्रयावकाहारः कृच्छ्रमेकं विशोधनम् । वृद्धः शौचस्मृतेर्लुप्तः प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः ॥ २१५ ॥
आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशनाम्बुभिः । तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसञ्चयः॥२१६॥
तृतीये तूदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् । यस्यैकापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी ॥ २१७ ॥
मङ्गलानि कुतस्तस्य कुतस्तस्य तमःक्षयः । अतिदोहातिवाहाभ्यां नासिकाभेदनेन वा ॥ २१८ ॥
नदीपर्वतसंरोधे मृते पादोनमाचरेत् । अष्टागवं धर्महलं षड्गवं व्यावहारिकम् ॥ २१९ ॥
षड्गवं तु त्रिपादोक्तं पूर्णाहस्त्वष्टभिः स्मृतः । काष्ठलोष्टशिलागोघ्नः कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत्॥२२१॥
प्राजापत्यं चरेन्मुष्ट्या अतिकृच्छ्रं तु आयसैः । प्रायश्चित्तेन तच्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ २२२॥
अनुडुत्सहितां गां च दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् । शरभोष्ट्रहयान्नागान् सिंहशार्दूलगर्दभान् ॥ २२३ ॥
हत्वा च शूद्रहत्यायाः प्रायश्चित्तं विधीयते । मार्जारगोधानकुलमण्डूकांश्च पतत्रिणः ॥ २२४ ॥
हत्वा त्र्यहं पिबेत्क्षीरं कृच्छ्रं वा पादिकं चरेत् । चाण्डालस्य च संस्पृष्टं विण्मूत्रोच्छिष्टमेव वा२२५॥
श्वपाकचाण्डालपरिग्रहे तु पीत्वा जलं पञ्चगव्येन शुद्धिः । रेतोविण्मूत्रसंस्पृष्टं कौपं यदि जलं पिबेत्२३१
त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यात्कुम्भे सान्तपनं तथा । क्लिन्नभिन्नशवं यत्स्यादज्ञानाच्च तथोदकम् ॥ २३२॥

प्रायश्चित्तं चरेत्पीत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः । उष्ट्रीक्षीरं खरीक्षीरं मानुषीक्षीरमेव च ॥ २३३ ॥
प्रायश्चित्तं चरेत्पीत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः । वर्णबाह्येन संस्पृष्ट उच्छिष्टस्तु द्विजोत्तमः ॥ २३४ ॥
पञ्चरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति । शुचि गो तृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ॥ २३९ ॥
देवयात्रा वाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च । उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते ॥ २४७ ॥
पतितानां यदा भुक्तं भुक्तं चाण्डालवेश्मनि । मासार्द्धं तु पिबेद्वारि इति शातातपोऽब्रवीत् ॥ २६०॥
गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च । अग्निना न च संस्कारः शङ्खस्य वचनं यथा ॥ २६१ ॥
चान्द्रायणं चरेन्मासमिति शातातपोऽब्रवीत् । पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ॥ २६९ ॥
गवां गमने मनुप्रोक्तं व्रतं चान्द्रायणं चरेत् । अमानुषीषु गोवर्जमुदक्यायामयोनिषु ॥ २७० ॥
रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् । उदक्यां सूतिकां वा अन्त्यजां स्पृशते यदि२७१
दन्तकाष्ठे त्वहोरात्रमेष शौचविधिः स्मृतः । रजस्वला यदा स्पृष्टा श्वानचाण्डालवायसैः ॥ २७६ ॥
निराहारा भवेत्तावत्स्नात्वा कालेन शुद्ध्यति । रजस्वला यदा स्पृष्टा उष्ट्रजम्बुकशम्बरैः ॥ २७७ ॥
पञ्चरात्रं निराहारा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति । स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या ब्राह्मणी च या॥२७८॥
त्रिरात्रमाचरेत्नक्तैर्निःस्नेहमथ वा चरेत् । बिडालकाकाद्युच्छिष्टं जग्ध्वाश्वनकुलस्य च ॥ २९२ ॥
केशकीटावपन्नं च पिबेद्ब्राह्मीं सुवर्चसम् । उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं च कामतः ॥ २९३ ॥
स्नात्वा च विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन शुद्ध्यति । सव्याहृतीं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह२९४॥
त्रिःपठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते । शकृद्द्विगुणगोमूत्रं सर्पिर्दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ २९५ ॥
क्षीरमष्टगुणं देयं पञ्चगव्यं तथा दधि । पञ्चगव्यं पिबेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तु सुरां पिबेत् ॥ २९६ ॥
जातश्राद्धे नवश्राद्धे भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् । राजान्नं हरते तेज शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥ ३०० ॥
स्वसुतान्नं च यो भुंक्ते स भुङ्क्ते पृथिवीमलम् । स्वसुता अप्रजाता च नाश्नीयात्तद्गृहे पिता३०१॥
भुंक्ते त्वस्या माययान्नं पूयसं नरकं व्रजेत् । अधीत्य चतुरो वेदान्सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ ३०२ ॥
नरेन्द्रभवने भुक्त्वा विष्ठायां जायते कृमिः । नवश्राद्धे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकेऽब्दिके ॥ ३०३॥
कार्पासं दन्तकाष्ठं च विष्णोरपि श्रियं हरेत् । शूर्पवातो नखाग्राम्बु स्नानवस्त्रं घटोदकम् ॥३१५ ॥
मार्जनीरेणु केशाम्बु हन्ति पुण्यं दिवा कृतम् । मार्जनीरजकेशाम्बु देवतायतनोद्भवम् ॥ ३१६ ॥
तेनावलुण्ठितं तेषु गङ्गाम्भःप्लुत एव सः । मृत्तिकाः सप्त न ग्राह्या वल्मीके मूषिकस्थले ॥ ३१७॥
अन्तर्जले श्मशानान्ते वृक्षमूले सुरालये । वृषभैश्च तथोत्खाते श्रेयस्कामैः सदा बुधैः ॥ ३१८ ॥
शुचौ देशेषु संग्राह्या शर्कराश्मविवर्जिता । पुरीषे मैथुने होमे प्रस्रावे दन्तधावने ॥ ३१९ ॥
नाशयित्वा तु तत्सर्वं भ्रूणहत्याफलं भवेत् । ग्रहणोद्वाहसंक्रान्तौ स्त्रीणां च प्रसवे तथा ॥ ३२३ ॥
दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि प्रशस्यते । क्षौमजं वाथ कार्पासं पट्टसूत्रमथापि वा ॥ ३२४ ॥
यज्ञोपवीतं यो दद्याद्वस्त्रदानफलं लभेत् । कांसस्य भाजनं दद्याद्घृतपूर्णं सुशोभनम् ॥ ३२५ ॥
तथा भक्त्या विधानेन अग्निष्टोमफलं लभेत् । श्राद्धकाले तु यो दद्यात्शोभनौ च उपानहौ॥३२६॥
स गच्छत्यन्नमार्गेऽपि अश्वदानफलं लभेत् । तैलपात्रं तु यो दद्याच्संपूर्णं सुसमाहितः ॥ ३२७ ॥
स गच्छति ध्रुवं स्वर्गं नरो नास्त्य संशयः । दुर्भिक्षे अन्नदाता च सुभिक्षे च हिरण्यदः ॥ ३२८ ॥
पानप्रदस्त्वरण्ये तु स्वर्गलोके महीयते । यावदर्धप्रसूता गौस्तावत्सा पृथिवी स्मृता ॥ ३२९ ॥
पृथिवी तेन दत्ता स्यादीदृशीं गां ददाति यः । तेनाग्नयो हुताः सम्यक् पितरस्तेन तर्पिताः ३३०॥
देवाश्च पूजिताः सर्वे यो दद्ति गवाह्निकम् । जन्मप्रभृति यत्पापं मातृकं पैतृकं तथा ॥ ३३१ ॥
उद्धरेन्नरकस्थानात्कुलान्येकोत्तरं शतम् । आदित्यो वरुणो विष्णुर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः ॥ ३३३ ॥
शूलपाणिस्तु भगवान् अभिनन्दति भूमिदम् ॥ ३३४ ॥
गृहाद्दशगुणं कूपं कूपाद्दशगुणं तटम् । तटाद्दशगुणं नद्यां गङ्गासंख्या न विद्यते ॥ ३९१ ॥
स्रवद्ब्राह्मणं तोयं रहस्थं क्षत्रियं तथा । वापीकूपे तु वैश्यं स्याच्छूद्रं भाण्डोदकं तथा ॥ ३९२ ॥

(४) विष्णुस्मृति-१अध्याय ।

सीमंतोन्नयनं कर्म न स्त्री संस्कार इष्यते । गर्भस्यैव तु संस्कारो गर्भे गर्भे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥
जातकर्म तथा कुर्यात्पुत्रे जाते यथोदितम् । बहिर्निष्क्रमणं चैव तस्य कुर्याच्छिशोः शुभम् ॥ ११ ॥

षष्ठे मासे च संप्राप्ते अन्नप्राशनमाचरेत् । तृतीयेऽब्दे च संप्राप्ते केशकर्म समाचरेत् ।. १२ ।।
गर्भाष्टमे तथा कर्म ब्राह्मणस्योपनायनम् । द्विजत्वे त्वथ संप्राप्ते सावित्र्यामधिकारभाक् ॥ १३ ॥
यो यस्य विहितो दण्डो मेखलाजिनधारणम् । सूत्रं वस्त्रं च गृह्णीयाद्ब्रह्मचर्येण यंत्रितः ॥ १६ ॥
समित्कुशांश्चोदकुम्भमाहृत्य गुरवे व्रती । प्राञ्जलिःसम्यगासीन उपस्थाय यतः सदा:॥ २० ॥
यं यं ग्रन्थमधीयीत तस्य तस्य व्रतं चरेत् । सावित्र्युपक्रमात्सर्वमावेदग्रहणोत्तरम् ॥ २१ ॥
द्विजातिषु चरेद्भैक्ष्यं भिक्षाकाले समागते । निवेद्य गुरवेऽश्नीयात्संमतो गुरुणा व्रती ॥ २२ ॥
सायं सन्ध्यामुपासीनो गायत्र्यष्टशतं जपेत् । द्विकालभोजनार्थं च तथैव पुनराहरेत् ॥ २३ ॥
वेदस्वीकरणे त्वष्टो गुर्वधीनो गुरोर्हितः । निष्ठां तत्रैव यो गच्छेन्नैष्ठिकस्स उदाहृतः ॥ २४ ॥
परिणीय तु षण्मासान्वत्सरं वा न संविशेत् । औदुम्बरायणो नाम ब्रह्मचारी गृहेगृहे ॥ २७ ॥

विष्णुस्मृति–२ अध्याय ।

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय तत्सर्वं सम्यगाचरेत् । चतुःप्रकारं भिद्यन्ते गृहिणीधर्मसाधकाः ॥ १५ ॥
वृत्तिभेदेन सततं ज्यायांस्तेषां परः परः । कुसूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव वा ॥ १६ ॥
त्र्यहैहिको वापि भवेत्सद्यः प्रक्षालकोपि वा । श्रौतं स्मार्तं च यत्किञ्चिद्विधानं धर्मसाधनम् ॥१७॥

विष्णुस्मृति–३ अध्याय ।

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वनवासं यदाचरेत् । चीरवल्कलधारी स्यादकृष्टान्नाशनो मुनिः ॥ १ ॥
गत्वा च विजनं स्थानं पञ्चयज्ञान्न हापयेत् । अग्निहोत्रं च जुहुयादन्ननीवारकादिभिः ॥ २ ॥
श्रवणेनाग्निमाधाय ब्रह्मचारी वने स्थितः । पञ्चयज्ञविधानेन यज्ञं कुर्यादतंद्रितः ॥ ३ ॥
सञ्चितं तु यदारण्यं भक्तार्थं विधिवद्वने । त्यजदाश्वयुजे मासि वन्यमन्यत्समाहरेत् ॥ ४ ॥
आकाशशायी वर्षासु हेमन्ते च जलाशयः । ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो भवेन्नित्यं वने वसन् ॥५ ॥
कृच्छ्रं चांद्रायणं चैव तुलापुरुषमेव च । अतिकृच्छ्रं प्रकुर्वीत त्यक्त्वा कामाञ्छुचिस्ततः ॥ ६ ॥
त्रिसन्ध्यं स्नानमातिष्ठेत्सहिष्णुर्भूतजान्गुणान् । पूजयेदतिथींश्चैव ब्रह्मचारी वनं गतः ॥ ७ ॥
प्रतिग्रहं न गृह्णीयात्परेषां किञ्चिदात्मवान् । दाता चैव भवेन्नित्यं श्रद्दधानः प्रियंवदः ॥ ८ ॥
रात्रौ स्थण्डिलशायी स्यात्प्रपदैस्तु दिनं क्षिपेत् । वीरासनेन तिष्ठेद्वा क्लेशमात्मन्यचिन्तयन् ॥ ९ ॥
केशरोमनखश्मश्रून्न छिन्द्यान्नापि कर्तयेत् । त्यजञ्छरीरसौहार्दं वनवासरतः शुचिः ॥ १० ॥

विष्णुस्मृति–४ अध्याय ।

विरक्तः सर्वकामेषु पारिव्राज्यं समाश्रयेत् । आत्मन्यग्नीन्समारोप्य दत्त्वा चाभयदक्षिणाम् ॥ २ ॥
चतुर्थमाश्रमं गच्छेद्ब्राह्मणः प्रव्रजन्गृहात् । आचार्येण समादिष्टं लिङ्गं यत्नात्समाश्रयेत् ॥ ३ ॥
शौचमाश्रयसम्बन्धं यतिधर्मांश्च शिक्षयेत् । अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमफल्गुता ॥ ४ ॥
दयां च सर्वभूतेषु नित्यमेतद्यतिश्चरेत् । ग्रामान्ते वृक्षमूले च नित्यकालनिकेतनः ॥ ५ ॥
ग्रामे वापि पुरे वापि वासो नैकत्र दुष्यति । कौपीनाच्छादनं वासः कन्थां शीतापहारिणीम् ॥ ७ ॥
पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् । सम्भाषणं सहस्त्रीभिरालम्भप्रेक्षणे तथा ॥ ८ ॥
एकाकी विचरेन्नित्यं त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् । याचितायाचिताभ्यां तु भिक्षया कल्पयेत्स्थितिम्॥१०॥
साधुकारं याचितं स्यात्प्राक्प्रणीतमयाचितम् । चतुर्विधा भिक्षुकाः स्युः कुटीचकबहूदकौ ॥ ११ ॥
पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहानटेत् । अतैजसानि पात्राणि भिक्षार्थं कृतवान्मनुः ॥ २९ ॥
सर्वेषामेव भिक्षूणां दार्वलाबुमयानि च । कांस्यपात्रे न भुञ्जीत आपद्यपि कथंचन ॥ ३० ॥
मलाशाः सर्व उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः । कांसिकस्य तु यत्पापं गृहस्थस्य तथैव च ॥ ३१ ॥
कांस्यभोजी यतिः सर्वं तयोः प्राप्नोति किल्बिषम् । ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा॥३२॥
निन्द्यश्च सर्वदेवानां पितॄणां च तथोच्यते । त्रिदण्डं लिङ्गमाश्रित्य जीवन्ति बहवो द्विजाः ॥ ३४ ॥
न तेषामपवर्गोऽस्ति लिङ्गमात्रोपजीविनाम् । त्यक्त्वा लोकांश्च वेदांश्च विषयानिन्द्रियाणि च॥३५॥
आत्मन्येव स्थितो यस्तु प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३६ ॥

विष्णुस्मृति-५ अध्याय ।

ब्राह्मणक्षत्रवैश्यांश्च चरेन्नित्यममत्सरः । कुर्वंस्तु शूद्रः शुश्रूषां लोकाञ्जयति धर्मतः ॥ ८ ॥

(४ क) बृहद्विष्णुस्मृति-२ अध्याय ।

तेषाञ्च धर्माः-ब्राह्मणस्याध्यापनम्; क्षत्रियस्य शस्त्रनित्यता; वैश्यस्य पशुपालनम्; शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा; द्विजानां यजनाध्ययने ॥ ४ ॥ अथैतेषां वृत्तयः-ब्राह्मणस्य याजनप्रतिग्रहौ; क्षत्रियस्य क्षितित्राणम्, कृषिगोरक्षवाणिज्यकुसीदयोनिपोषणानि वैश्यस्य; शूद्रस्य सर्वशिल्पानि ॥ ५ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति-३ अध्याय ।

व्यवहारदर्शने ब्राह्मणं वा नियुञ्ज्यात् ॥ ५१ ॥

बृहद्विष्णु-४ अध्याय ।

जालस्थार्कमरीचिगतं रजस्त्रसरेणुसंज्ञकम् ॥ १ ॥ तदष्टकं लिक्षा ॥ २ ॥ तत्त्रयं राजसर्षपः ॥ ३ ॥ तत्त्रयं गौरसर्षपः ॥ ४ ॥ तत्षट्कं यवः ॥ ५ ॥ तत्त्रयं कृष्णलम् ॥ ६ ॥ तत्पञ्चकं माषः ॥ ७ ॥ तद्द्वादशमक्षार्द्धम् ॥ ८ ॥ अक्षार्द्धमेव सचतुर्माषकं सुवर्णः ॥ ९ ॥ चतुःसुवर्णको निष्कः ॥ १० ॥ द्वे कृष्णले समधृते रूप्यमाषकः ॥ ११ ॥ तत् षोडशकं धरणम् ॥ १२ ॥ ताम्रकार्षिकः कार्षापणः ॥ १३ ॥ पणानां द्वे शते सार्द्धे प्रथमः साहसः स्मृतः । मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रन्त्वे व चोत्तमः ॥ १४ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति-५ अध्याय ।

धान्यापहार्येकादशगुणं दण्ड्यः ॥ ७९ ॥ शय्यापहारी च ॥ ८० ॥ सुवर्णरजतवस्त्राणां पञ्चाशतस्त्वभ्यधिकमपहरन् विकरः ॥ ८१ ॥ तदूनमेकादशगुणं दण्ड्यः ॥ ८२ ॥ ग्रहपीडाकरं द्रव्यं प्रक्षिपन् पणशतम् ॥ १०९ ॥ पशूनां पुंस्त्वोपघातकारी ॥ ११८ ॥ त्यक्तप्रव्रज्यो राज्ञो दास्यं कुर्यात् ॥ १५१ ॥

गुरु वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् । आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥ १८५
आततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्च न । प्रकाशं वाप्रकाशं वा मन्युस्तन्मन्युमृच्छति ॥ १८६
उद्यतासिविषाग्निञ्च शापोद्यतकरं तथा । आथर्वणेन हन्तारं पिशुनञ्चैव राजसु ॥ १८७ ॥
भार्यातिक्रमिणञ्चैव विद्यात् सप्ताततायिनः । यशोवित्तहरानन्यानाहुर्धर्मार्थहारकान् ॥ १८८ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति-१३ अध्याय ।

विषाण्यदेयानि सर्वाणि ॥ २ ॥ ऋते हिमाचलोद्भवाच्छार्ङ्गात् ॥ ३ ॥ तस्य च यवसप्तकं घृतप्लुतमभिशस्ताय दद्यात् ॥ ४ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति-१५ अध्याय ।

अथ द्वादश पुत्रा भवन्ति ॥ १ ॥ स्वे क्षेत्रे संस्कृतायामुत्पादितः स्वयमौरसः प्रथमः ॥ २ ॥ नियुक्तायां सपिण्डेनोत्तमवर्णेन वोत्पादितः क्षेत्रजो द्वितीयः ॥ ३ ॥ पुत्रिकापुत्रस्तृतीयः ॥ ४ ॥ यस्तस्याः पुत्रः समे पुत्रो भवेदिति या पित्रा दत्ता सा पुत्रिका ॥ ५ ॥ पुत्रिकाविधिना प्रतिपादितापि भ्रातृविहीना पुत्रिकैव ॥ ६ ॥ पौनर्भवश्चतुर्थः ॥ ७ ॥ अक्षता भूयः संस्कृता पुनर्भूः ॥ ८ ॥ भूयस्त्वसंस्कृतापि परपूर्वा ॥ ९ ॥ कानीनः पञ्चमः ॥ १० ॥ पितृगृहेऽसंस्कृतयैवोत्पादितः ॥ ११ ॥ स च पाणिग्राहस्य ॥ १२ ॥ गृहे च गूढोत्पन्नः षष्ठः ॥ १३ ॥ यस्य तल्पजस्तस्यासौ ॥ १४ ॥ सहोढ़ः सप्तमः ॥ १५ ॥ गर्भिणी या संस्क्रियते तस्याः पुत्रः ॥ १६ ॥ स च पाणिग्राहस्य ॥ १७ ॥ दत्तकश्चाष्टमः ॥ १८ ॥ स च मातापितृभ्यां यस्य दत्तः ॥ १९ ॥ क्रीतश्च नवमः ॥ २० ॥ स च येन क्रीतः ॥ २१ ॥ स्वयमुपगतो दशमः ॥२२॥ स च यस्योपगतः ॥ २३ ॥ अपविद्धस्त्वेकादशः ॥ २४ ॥ पित्रा मात्रा च परित्यक्तः ॥ २५ ॥ स च येन गृहीतः ॥ २६ ॥ यत्र क्वचनोत्पादितश्च द्वादशः ॥ २७ ॥ एतेषां पूर्वः श्रेयान् ॥२८॥

स एव दायहारः ॥ २९ ॥ स चान्यान् बिभृयात् ॥ ३० ॥ अनूढानां स्ववित्तानुरूपेण संस्कारं कुर्यात् ॥ ३१ ॥ एकोढानर्थानामप्येकस्याः पुत्रः सर्वासां पुत्र एव ॥ ४० ॥ भ्रातॄणामेकजातानाञ्च ॥ ४१ ॥
पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः। तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥ ४३ ॥
ऋणमस्मिन् सन्नयति अमृतत्वञ्च गच्छति। पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम् ॥ ४४ ॥
पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते। अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम् ॥ ४५ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–१६ अध्याय।

समानवर्णासु पुत्राः सवर्णा भवन्ति ॥ १ ॥ अनुलोमासु मातृवर्णाः ॥ २ ॥ प्रतिलोमास्वार्यविगर्हिताः ॥ ३ ॥ तत्र वैश्यापुत्रः शूद्रेणायोगवः ॥ ४ ॥ पुक्कसमागधौ क्षत्रियापुत्रौ वैश्यशूद्राभ्याम् ॥ ५ ॥ चाण्डालवैदेहकसूताश्च ब्राह्मणीपुत्राः शूद्रविट्क्षत्रियैः ॥ ६ ॥ रङ्गावतरणमायोगवानाम् ॥ ८ ॥ व्याधता पुक्कसानाम् ॥ ९ ॥ स्तुतिक्रिया मागधानाम् ॥ १० ॥ वध्यघातित्वं चाण्डालानाम् ॥ ११ ॥ स्त्रीरक्षा तज्जीवनञ्च वैदेहकानाम् ॥ १२ ॥ अश्वसारथ्यं सूतानाम् ॥ १३ ॥
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः। स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् ॥ १८ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–१७अध्याय।

पिता चेत्पुत्रान् विभजेत्तस्य स्वेच्छा स्वयमुपात्तेऽर्थे ॥ १ ॥ पैतामहे त्वथ पितृपुत्रयोस्तुल्यं स्वामित्वम् ॥२॥ पितृविभक्ता विभागानन्तरोत्पन्नस्य भागं दद्युः ॥ ३ ॥ अपुत्रधनं पत्न्यभिगामि॥४॥ तदभावे दुहितृगामि॥५॥तदभावे पितृगामि॥६॥तदभावे मातृगामि ॥७॥तदभावे भ्रातृगामि ॥८॥ तदभावे भ्रातृपुत्रगामि ॥ ९ ॥ तदभावे बन्धुगामि ॥ १० ॥ तदभावे सकुल्यगामि ॥ ११ ॥ तदभावे सहाध्यायिगामि ॥ १२ ॥ तदभावे ब्राह्मणधनवर्जं राजगामि ॥ १३॥ ब्राह्मणार्थो ब्राह्मणानाम् ॥ १४ ॥ वानप्रस्थधनमाचार्यो गृह्णीयात् ॥ १५ ॥ शिष्यो वा ॥ १६ ॥
पितृमातृसुतभ्रातृ–दत्तमध्यग्न्युपागतम्। अधिवेदनिकं बन्धुदत्तं शुल्कमन्वाधेयकमिति स्त्रीधनम् ॥
ब्राह्मादिषु चतुर्षु विवाहेष्वप्रजायामतीतायां तद्भर्तुः ॥ १९ ॥ शेषेषु च पिता हरेत् ॥ २० ॥ सर्वेष्वेव प्रसूतायां यद्धनं तद्दुहितृगामि ॥ २१ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–१८ अध्याय।

मातरः पुत्रभागानुसारेण भागहारिण्यः ॥ ३४ ॥ समवर्णाः पुत्राः समानंशानादद्युः ॥ ३६ ॥ ज्येष्ठाय श्रेष्ठमुद्धारं दद्युः ॥ ३७ ॥
वस्त्रं पत्रमलंकारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः। योगक्षेमं प्रकारश्च न विभाज्यश्च पुस्तकम् ॥ ४४ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–१९ अध्याय।

ब्राह्मणमनाथं ये ब्राह्मणा निर्हरन्ति ते स्वर्गलोकभाजः ॥ ९ ॥ चतुर्थदिवसेऽस्थिसञ्चयनं कुर्युः ॥ १० ॥ तेषाञ्च गङ्गाम्भसि प्रक्षेपः ॥ ११ ॥ यावत् सङ्ख्यमस्थि पुरुषस्य गङ्गाम्भसि तिष्ठति तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोकमधितिष्ठति ॥ १२ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–२२ अध्याय।

ब्राह्मणस्य सपिण्डानां जननमरणयोर्दशाहमाशौचम् ॥१ ॥ द्वादशाहं राजन्यस्य ॥ २ ॥ पञ्चदशाहं वैश्यस्य मासं शूद्रस्य ॥ ३ ॥ अदन्तजाते बाले प्रेते सद्य एव ॥ २६ ॥ नास्याग्निसंस्कारो नोदकक्रिया ॥ २७ ॥
दन्तजाते त्वकृतचूडे त्वहोरात्रेण ॥ २८ ॥ कृतचूडे त्वसंस्कृते त्रिरात्रेण ॥ २९ ॥ ततः परं यथोक्तकालेन ॥ ३० ॥ संस्कृतासु स्त्रीषु न शौचं भवति पितृपक्षे ॥ ३२ ॥ तत्प्रसवमरणे चेत् पितृगृहे स्यातां त्रिरात्रञ्च ॥ ३३ ॥ जननाशौचमध्ये यद्यपरं जननाशौचं स्यात् तदा पूर्वाशौचव्यपगमे शुद्धिः ॥ ३४ ॥ रात्रिशेषे दिनद्वयेन ॥३५॥ प्रभाते दिनत्रयेण ॥ ३६ ॥ मरणाशौचमध्ये ज्ञातिमरणेऽप्येवम् ॥ ३७ ॥ आचार्ये मातामहे च व्यतीते त्रिरात्रेण ॥ ४१ ॥

अनौरसेषु पुत्रेषु जातेषु च मृतेषु च । परपूर्वासु भार्यासु प्रसूतासु मृतासु च ॥ ४२ ॥
भृग्वग्न्यनाशकाम्बुसंग्राम–विद्युन्नृपहतानां नाशौचम् ॥ ४६ ॥ न राज्ञां राजकर्मणि ॥४७॥ न व्रतिनां व्रते ॥ ४८ ॥ न सत्रिणां सत्रे ॥ ४९ ॥ न कारूणां कारुकर्मणि ॥ ५० ॥ न राजाज्ञाकारिणां तदिच्छया ॥ ५१ ॥ न देवप्रतिष्ठाविवाहयोः पूर्वसम्भूतयोः ॥५२ ॥ न देशविप्लवे॥५३॥ आपद्यपि च कष्टायाम् ॥ ५४ ॥ आत्मत्यागिनः पतिताश्च नाशौचोदकभाजः ॥ ५५ ॥ पतितस्य दासीम्रितेऽह्नि पादाभ्यां घटमपवर्जयेत् ॥ ५६ ॥ उद्बन्धनमृतस्य यः पाशं छिन्द्यात् स तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ॥ ५७ ॥ आत्मघातिनं संस्कर्ता च ॥ ५८ ॥ तदश्रुपातकारी च ॥ ५९ ॥ सर्वस्यैव प्रेतस्य बान्धवैः सहाश्रुपातं कृत्वा स्नानेन ॥ ६० ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–२३ अध्याय ।

अजाश्वं मुखतो मेध्यं न गौर्न नरजा मलाः । पन्थानश्च विशुध्यन्ति सोमसूर्यांशुमारुतैः ॥ ४० ॥
भूमिष्ठमुदकं पुण्यं वैतृष्ण्यं यत्र गोर्भवेत् । अव्याप्तश्चेदमेध्येन तद्वदेव शिलागतम् ॥ ४३ ॥
त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् । अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥ ४७ ॥
नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्यं यच्च प्रसारितम् । ब्राह्मणान्तरितं भैक्ष्यमाकराः सर्व एव च ॥ ४८ ॥
नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां शकुनिः फलपातने । प्रस्रवे च शुचिर्वत्सः श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥ ४९ ॥
ऊर्द्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि निर्दिशेत् । यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैव मलाश्च्युताः॥५१॥
मक्षिकाविप्रुषश्छाया गौर्गजाश्वमरीचयः । रजो भूर्वायुरग्निश्च मार्जारश्च सदा शुचिः ॥ ५२ ॥
नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गे पतन्ति याः । न श्मश्रूणि गतान्यास्यं न दन्तान्तरवेष्टितम्॥५३॥
स्पृशन्ति विन्दवः पादौ य आचामयतः परान् । भौमिकैस्ते समा ज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत् ॥ ५४ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–२५ अध्याय ।

मृते भर्तरि ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं वा ॥ १४ ॥
नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् । पतिं शुश्रूषते यत्तु तेन स्वर्गे महीयते ॥ १५ ॥
पत्यौ जीवति या योषिदुपवासव्रतं चरेत् । आयुः सा हरते भर्तुर्नरकञ्चैव गच्छति ॥ १६ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–३१ अध्याय ।

त्रयः पुरुषस्यातिगुरवो भवन्ति ॥ १ ॥ माता पिता आचार्यश्च ॥ २ ॥ तेषां नित्यमेव शुश्रूषुणा भवितव्यम् ॥ ३ ॥ यत् ते ब्रूयुस्तत् कुर्यात् ॥ ४॥ तेषां प्रियहितमाचरेत् ॥ ५ ॥ न तैरननुज्ञातः किञ्चिदपि कुर्यात् ॥ ६ ॥
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयः सुराः । एत एव त्रयो लोका एत एव त्रयोऽग्नयः ॥ ७ ॥
पिता गार्हपत्योऽग्निर्दक्षिणाग्निर्माता गुरुराहवनीयः ॥ ८ ॥
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः । अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥ ९ ॥
इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् । गुरुशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ १०॥

बृहद्विष्णुस्मृति–३२ अध्याय ।

श्वशुरपितृव्यमातुलर्त्विजां कनीयसां प्रत्युत्थानमेवाभिवादनम् ॥ ४ ॥ असंस्तुतापि परपत्नी भगिनीति वाच्या पुत्रीति मातेति वा ॥ ७ ॥
विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणान्तु वीर्यतः । वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥१८॥

बृहद्विष्णुस्मृति–३४ अध्याय ।

मातृगमनं दुहितृगमनं स्नुषागमनमित्यतिपातकानि ॥ १ ॥
अतिपातकिनस्त्वेते प्रविशेयुर्हुताशनम् । न ह्यन्या निष्कृतिस्तेषां विद्यते हि कथञ्चन ॥ २ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–३५ अध्याय ।

ब्रह्महत्या सुरापानं ब्राह्मणसुवर्णहरणं गुरुदारगमनमिति महापातकानि ॥१॥ तत्संयोगश्च ॥ २ ॥ संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥३॥ एकयानभोजनासनशयनैः ॥४॥ यौनस्रौवमौखसम्बन्धात् सद्य एव ॥ ५ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–३६ अध्याय ।

पितृव्यमातामहमातुलश्वशुरनृपपत्न्यभिगमनं गुरुदारगमनसमम् ॥४॥ पितृष्वसृमातृष्वसृस्वसृगमनञ्च ॥ ५ ॥ श्रोत्रियर्त्विगुपाध्यायमित्रपत्न्यभिगमनञ्च ॥ ६ ॥ स्वसुः सख्याःसगोत्राया उत्तमवर्णायाः कुमार्या अन्त्यजाया रजस्वलायाः प्रव्रजिताया निक्षिप्तायाश्च ॥ ७ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–३७ अध्याय ।

उपपातकिनस्त्वेते कुर्युश्चान्द्रायणं नराः । पराकञ्च तथाकुर्युर्यजेयुर्गोमखेन वा ॥ ३५ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–३८ अध्याय ।

ब्राह्मणस्य रुजाकरणम् ॥ १ ॥ आघ्रेयमद्ययोर्घ्रातिः ॥ २ ॥ जैह्म्यम् ॥३ ॥ पशुषु मैथुनाचरणम् ॥ ४ ॥ पुंसि च ॥ ५ ॥ इति जातिभ्रंशकराणि ॥ ६ ॥

जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया । कुर्यात् सान्तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया ॥ ७ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–४० अध्याय ।

निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं कुसीदजीवनमसत्यभाषणं शूद्रसेवनमित्यपात्रीकरणम् ॥ १ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–४४ अध्याय ।

अभोज्यान्नभक्ष्याशी कृमिः ॥ ११ ॥ स्तेनः श्येनः ॥ १२ ॥ घृतं नकुलः ॥ २० ॥ मांसं गृध्रः ॥ २१ ॥ वसां मद्गुः ॥ २२ ॥ तैलं तैलपायिकः ॥ २३ ॥ लवणं चीचिवाक् ॥ २४ । दधि बलाका ॥ २५ ॥ कौशेयं हृत्वा भवति तित्तिरिः ॥ २६ ॥ क्षौमं दर्दुरः ॥ २७ ॥ कार्पासतान्तवं क्रौञ्चः ॥ २८ ॥ गोधा गाम् ॥ २९ ॥ वाग्गुदो गुडम् ॥३०॥ छुच्छुन्दरिर्गन्धान् ॥३१॥ पत्रशाकं बर्हीं ॥ ३२ ॥ कृतान्नं श्चावित् ॥ ३३ ॥ अकृतान्नं शल्लकः ॥ ३४ ॥ अग्निं वकः ॥ ३५ ॥ गृहकार्युपस्करम् ॥ ३६ ॥ रक्तवासांसि जीवञ्जीवकः ॥ ३७ ॥ गजं कूर्मः ॥ ३८ ॥ अश्वं व्याघ्रः ॥ ३९ ॥ फलं पुष्पं वा मर्कटः ॥ ४० ॥ ऋक्षः स्त्रियम् ॥ ४१ ॥ यानमुष्ट्रः ॥ ४२ ॥ पशूनजः ॥ ४३ ॥

यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः । अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः ॥ ४४ ॥
स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हृत्वा दोषमवाप्नुयुः । एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥ ४५ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–४५ अध्याय ।

ब्रह्महा यक्ष्मी ॥ ३ ॥ सुरापः श्यावदन्तकः ॥ ४ ॥ सुवर्णहारी कुनखः ॥ ५ ॥ गुरुतल्पगो दुश्चर्मा ॥ ६ ॥ पूतिनासः पिशुनः ॥ ७ ॥ पूतिवक्त्रः सूचकः ॥ ८ ॥ धान्यचौरोऽङ्गहीनः ॥ ९ ॥ मिश्रचौरोऽतिरिक्ताङ्गः ॥ १० ॥ अन्नापहारकस्त्वामयावी ॥ ११ ॥ वागपहारको मूकः ॥ १२ ॥ वस्त्रापहारकः श्वित्री ॥ १३ ॥ अश्वापहारकः पङ्गुः ॥ १४॥ गोघ्नस्त्वन्धः ॥ १९ ॥ दीपापहारकश्च ॥ २० ॥ काणश्च दीपनिर्वापकः ॥ २१ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–४६अध्याय ।

अथ कृच्छ्राणि भवन्ति ॥ १ ॥ त्र्यहं नाश्नीयात् ॥ २ ॥ प्रत्यहञ्च त्रिषवणं स्नानमाचरेत् ॥ ३॥ त्रिः प्रतिस्नानमप्सु मज्जनम् ॥ ४ ॥ मग्नस्त्रिरघमर्षणं जपेत् ॥ ५ ॥ दिवा स्थितास्तिष्ठेत् ॥ ६ ॥ रात्रावासीनः ॥ ७ ॥ कर्मणोऽन्ते पयस्विनीं दद्यात् ॥ ८ ॥ इत्यघमर्षणम् ॥ ९ ॥ त्र्यहं सायं त्र्यहं प्रातस्त्र्यहमयाचितमश्नीयादेष प्राजापत्यः ॥ १० ॥ त्र्यहमुष्णाः पिबेदपस्त्र्यहमुष्णं घृतं त्र्यहमुष्णं पयस्त्र्यहञ्च नाश्नीयादेष तप्तकृच्छ्रः ॥११॥कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसैकविंशतिक्षपणम् ॥ १३ ॥ निराहारस्य द्वादशाहेन पराकः ॥ १८ ॥ गोमूत्रगोमयक्षीरदधिसर्पिः कुशोदकान्येकदिवसमश्नीयाद् द्वितीयमुपवसेदेतत् सान्तपनम् ॥ १९ ॥ गोमूत्रादिभिः प्रत्यहाभ्यस्तैर्महासान्तपनम् ॥ २० ॥ त्र्यहाभ्यस्तैश्चातिसान्तपनम् ॥ २१ ॥ पिण्याकाचामतक्रोदकसक्तूनामुपवासान्तारितोऽभ्यवहारस्तुलापुरुषः ॥ २२ ॥ कुशपलाशोदुम्बरपद्म–शंखपुष्पीवट–ब्रह्मसुवर्चलापत्रैः क्वथितस्याम्भसः प्रत्येकं पानेन पर्णकृच्छ्रः ॥ २३ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति-४७अध्याय ।

अथ चान्द्रायणम् ॥ १ ॥ ग्रासानविकारानश्नीयात् ॥ २ ॥ तांश्च कलाभिवृद्धौ क्रमेण वर्द्धये-द्धानौ ह्रसयेदमावास्यां नाश्नीयादेष चान्द्रायणो यवमध्यः ॥ ३ ॥ पिपीलिकामध्यो वा ॥ ४ ॥ यस्यामावास्यामध्ये भवति स पिपीलिकामध्यः ॥ ५ ॥ यस्य पौर्णमासी स यवमध्यः ॥ ६ ॥ अष्टौ ग्रासान् प्रतिदिवसं मासमश्नीयात् स यतिचान्द्रायणः॥७॥सायं प्रातश्चतुरश्चतुरः स शिशुचा-न्द्रायणः ॥ ८ ॥ यथाकथञ्चित् षष्ट्योनां त्रिशतीं मासेनाश्नीयात् स सामान्यचान्द्रायणः ॥ ९॥

बृहद्विष्णुस्मृति-५० अध्याय ।

वने पर्णकुटीं कृत्वा वसेत् ॥ १ ॥ त्रिषवणं स्नायात् ॥ २॥ स्वकर्म चाचक्षाणो ग्रामे भैक्ष्य-माचरेत् ॥३॥ तृणशायी च स्यात् ॥४॥ एतन्महाव्रतम् ॥५॥ ब्राह्मणं हत्वा द्वादशसंवत्सरं कुर्यात् ॥ ६ ॥ नृपतिवधे महाव्रतमेव द्विगुणं कुर्यात् ॥ ११ ॥ पादोनं क्षत्रियवधे ॥ १२ ॥ अर्द्धं वैश्य-वधे ॥ १३ ॥ तदर्द्धं शूद्रवधे ॥ १४ ॥ गजं हत्वा पञ्च नीलान् वृषभान् दद्यात् ॥ २५ ॥ तुरगं वासः ॥ २६ ॥ एकहायनमनड्वाहं खरवधे ॥ २७ ॥ मेषाजवधे च ॥ २८ ॥ सुवर्णकृष्णल-मुष्ट्रवधे ॥ २९ श्वानं हत्वा त्रिरात्रमुपवसेत् ॥ ३० ॥ हत्वा मूषकमार्जारनकुलमण्डूकडुण्डुभाज-गराणामन्यतममुपोषितः कृसरान्नं भोजयित्वा लोहदण्डं दक्षिणां दद्यात् ॥ ३१ ॥ गोधोलूक-काकझषवधे त्रिरात्रमुपवसेत् ॥ ३२ ॥ हसबककबलाक-मद्गु-वानरश्येन-भास-चक्रवाकाणामन्यत-मं हत्वा ब्राह्मणाय गां दद्यात् ॥ ३३ ॥ सर्पं हत्वा अभ्रीं कार्ष्णायसीम् ॥ ३४ ॥ षण्ढं हत्वा पलालभारकम् ॥ ३५ ॥ वराहं हत्वा घृतकुम्भम् ॥ ३६ ॥ तित्तिरिं तिलद्रोणम् ॥ ३७ ॥ शुकं द्विहायनं वत्सम् ॥ ३८ ॥ क्रौञ्चं त्रिहायणम् ॥ ३९ ॥ क्रव्यादमृगवधे पयस्विनीं गां दद्यात् ॥ ॥ ४० ॥ अक्रव्यादमृगवधे वत्सतरीम् ॥ ४१ ॥

अस्थन्वतान्तु सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे । पूर्णे चानस्यनस्थ्नान्तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥ ४६ ॥
किंञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे । अनस्थ्नाञ्चैव हिंसायां प्राणायामेन शुध्यति ॥ ४७ ॥
फलदानान्तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम् । गुल्मवल्लीलतानाञ्च पुष्पितानाञ्च वीरुधाम् ॥ ४८ ॥
अन्नाद्यजानां सत्त्वानां रसजानाञ्च सर्वशः । फलपुष्पोद्भवानाञ्च घृतप्राशो विशोधनम् ॥ ४९ ॥
कृष्टजानामोषधीनां जातानाञ्च स्वयं वने । वृथालम्भे तु गच्छेद्गां दिनमेकं पयोव्रतः ॥ ५० ॥

बृहद्विष्णुस्मृति—५१ अध्याय ।

मलानां मद्यानाञ्च अन्यतमस्य प्राशने चान्द्रायणं कुर्यात् ॥ २ ॥ लशुनपलाण्डुगृञ्जनैतद्ग-न्धिविड्वराहग्राम्यकुक्कुटवानरगोमांसभक्षणे च ॥ ३ ॥ अपः सुराभाण्डस्थाः पीत्वा सप्तरात्रं शंखपुष्पीशृतं पयः पिबेत् ॥ २३ ॥ खरोष्ट्रकाकमांसाशने चान्द्रायणं कुर्यात् ॥ २६ ॥ प्रा-ड्याज्ञातं सूनास्थं शुष्कमांसञ्च ॥ २७॥ क्रव्यादमृगपक्षिमांसाशने तप्तकृच्छ्रम् ॥ २८ ॥ छत्राक-कवकाशने सान्तपनम् ॥ ३४ ॥ आमश्राद्धाशने त्रिरात्रं पयसा वर्त्तेत ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणः शूद्रोच्छिष्टाशने सप्तरात्रम् ॥ ५० ॥ वैश्योच्छिष्टाशने पञ्चरात्रम् ॥ ५१ ॥ राजन्योच्छिष्टा-शने त्रिरात्रम् ॥५२॥ब्राह्मणोच्छिष्टाशने त्वेकाहम् ॥५३॥ राजन्यः शूद्रोच्छिष्टाशी पञ्चरात्रम् ॥ ॥ ५४ ॥ वैश्योच्छिष्टाशी त्रिरात्रम् ॥५५॥ वैश्यः शूद्रोच्छिष्टाशी च ॥५६॥ चाण्डालान्नं भुक्त्वा त्रिरात्रमुपवसेत् ॥ ५७ ॥ सिद्धं भुक्त्वा पराकः ॥ ५८ ॥

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि । अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेति कथञ्चन ॥ ६४ ॥
यज्ञार्थेषु पशून् हिंसन् वेदतत्त्वार्थविद् द्विजः । आत्मानञ्च पशूंश्चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥ ६५ ॥
गृहे गुरावरण्येवा निवसन्नात्मवान् द्विजः । नावेदविहितां हिसामापद्यपि समाचरेत् ॥ ६६ ॥
या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे । अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मोहि निर्बभौ ॥ ६७ ॥
योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया । स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते ६८ ॥
यो बन्धनवधक्लेशान् प्राणिनां न चिकीर्षति । स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ ६९ ॥
यद्ध्यायति यत्कुरुते रतिं बध्नाति यत्र च । तदवाप्नोति यत्नेन यो हिनस्ति न किञ्चन ॥ ७० ॥

न कृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् । न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥ समुत्पत्तिञ्च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् । प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥ ७२ ॥ न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा पिशाचवत् । स लोके प्रियतां याति व्याधिभिश्च न पीड्यते॥ अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी । संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥ ७४ ॥ स्वमांसं परमांसेन यो वर्द्धयितुमिच्छति । अनभ्यर्च्य पितॄन् देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् ॥ ७५ ॥ मांसभक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् । एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदंति मनीषिणः ॥ ७८ ॥

वृहद्विष्णुस्मृति–५२ अध्याय ।

सुवर्णस्तेयकृद्राज्ञे कर्माचक्षाणो मुसलमर्पयेत् ॥ १ ॥ वधात् त्यागाद्वा प्रयतो भवति ॥ २ ॥ महाव्रतं द्वादशाब्दानि कुर्यात् ॥ ३ ॥ धान्यधनापहारी च कृच्छ्रमब्दम् ॥ ५ ॥ मनुष्यस्त्रीकूपक्षेत्रवापीनामपहरणे चान्द्रायणम् । ६ ॥ द्रव्याणामल्पसाराणां सान्तपनम् ॥ ७ ॥ भक्ष्यभोज्यपानशय्यासनपुष्पमूलफलानां पञ्चगव्यपानम् ॥ ८ ॥ तृणकाष्ठद्रुमशुष्कान्नगुडवस्त्रचर्मामिषाणां त्रिरात्रमुपवसेत् ॥ ९ ॥ मणिमुक्ताप्रवालताम्ररजतायःकांस्यानां द्वादशाहं कणानश्नीयात् ॥१०॥ कार्पासकीटजोर्णाद्यपहरणे त्रिरात्रं पयसा वर्तेत ॥११॥ द्विशफैकशफहरणे त्रिरात्रमुपवसेत् ॥१२॥ पक्षिगन्धौषधिरज्जुवैदलानामपहरणे दिनमुपवसेत् ॥ १३ ॥

बृहद्विष्णुस्मृ–५३ अध्याय ।

गोव्रतं गोगमने च ॥ ३ ॥ चाण्डालीगमने तत्साम्यमवाप्नुयात् ॥ ५ ॥ अज्ञानतश्चान्द्रायणद्वयं कुर्यात् ॥ ६॥ पशुवेश्यागमने प्राजापत्यम् ॥ ७ ॥ यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्द्विजः । तद्भैक्षभुग् जपन् नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥ ९ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–५४ अध्याय ।

मृतपञ्चनखात् कूपादत्यन्तोपहताच्चोदकं पीत्वा ब्राह्मणस्त्रिरात्रमुपवसेत् ॥ २ ॥ द्व्यहं राजन्यः ॥ ३ ॥ एकाहं वैश्यः ॥ शूद्रो नक्तम् ॥ ५ ॥

बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मतः । शरणागतहन्तॄंश्च स्त्रीहन्तॄंश्च न संवसेत् ॥ ३२ ॥ अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालोवाप्यूनषोडशः । प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च ॥ ३३ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–५७ अध्याय ।

द्रव्याणां वा विज्ञाय प्रतिग्रहविधिं यः प्रतिग्रहं कुर्यात् स दात्रा सह निमज्जति ॥ ८ ॥ प्रतिग्रहसमर्थश्च यः प्रतिग्रहं वर्जयेत् स दातृलोकमाप्नोति ॥ ९ ॥ एधोदकमूलफलाभयामिष–मधुशय्यासनगृहपुष्पदधिशाकांश्चाभ्युद्यतान् न निर्णुदेत् ॥ १० ॥

आहृत्याभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तादनुचोदिताम् । ग्राह्यां प्रजापतिर्मेने अपि दुष्कृतकर्मणः ॥ ११ ॥ नाश्नंति पितरस्तस्य दशवर्षाणि पञ्च च । न च हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥ १२ ॥ गुरून् भृत्यानुज्जिहीर्षुरर्चिष्यन् पितृदेवताः । सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्नतु तृप्येत् स्वयं ततः ॥ १३ ॥ आर्द्धिकः कुलमित्रश्च दासगोपालनापिताः । एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥ १६ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–५८ अध्याय ।

अथ गृहाश्रमिणस्त्रिविधोऽर्थो भवति ॥ १ ॥ शुक्लः शवलोऽसितश्च ॥ २ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति–६३ अध्याय ।

नैकाऽध्वानं प्रपद्येत ॥ २ ॥ नाधार्मिकैः सार्द्धम् ॥ ३ ॥ न वृषलैः ॥ ४ ॥ न द्विषद्भिः ॥ ५ ॥ नातिप्रत्यूषसि ॥ ६ ॥ नातिसायम् ॥ ७ ॥ न सन्ध्ययोः ॥ ८ ॥ न मध्याह्ने ॥ ९ ॥ न सन्निहितपानीयम् ॥ १० ॥ नातितूर्णम् ॥ ११ ॥ न रात्रौ ॥ १२ ॥ न सन्ततं व्यालव्याधितार्त्तैर्वाहनैः ॥ १३ ॥ न हीनाङ्गैः ॥ १४ ॥ न दीनैः ॥ १५ ॥ न गोभिः ॥ १६ ॥ नादान्तैः ॥ १७ ॥ यवसोदके वाहनानामदत्त्वात्मनः क्षुत्तृष्णापनोदनेन कुर्यात् ॥ १८ ॥ न चतुष्पथमधितिष्ठेत् ॥ १९ ॥ न शून्यालयम् ॥ २१ ॥ न केशतुषकपालास्थिभस्माङ्गारान् ॥ २४ ॥ न कार्पासास्थि ॥ २५ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति-६८अध्याय ।

न रात्रौ तिलसंयुक्तम् ॥ २९ ॥ न दधिसक्तून् ॥ ३० ॥
शून्यागारे वह्निगृहे देवागारे कथञ्चन । पिबेन्नाञ्जलिना तोयं नाति सौहित्यमाचरेत् ॥ ४७ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति-७१ अध्याय ।

वयोऽनुरूपं वेषं कुर्यात् ॥ ५ ॥ श्रुतस्याभिजनस्य धनस्य देशस्य च ॥ ६ ॥ सति विभवे न जीर्णमलवद्वासाः स्यात् ॥ ९ ॥ सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः । श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ ८२ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति-७२ अध्याय ।

दमश्चेन्द्रियाणां प्रकीर्तितः ॥ २ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति-७६ अध्याय ।

अमावास्यास्तिस्रोऽष्टकास्तिस्रोऽन्वष्टका माघी प्रौष्ठपद्यूर्द्ध्वं कृष्णात्रयोदशी व्रीहियवपाकौ चेति ॥१॥
एतांस्तु श्राद्धकालान्वै ि त्यानाह प्रजापतिः । श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥ २ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति-७७ अध्याय ।

सन्ध्यारात्र्योर्नकर्त्तव्यं श्राद्धं खलु विचक्षणैः । तयोरपि च कर्त्तव्यं यदि स्याद्राहुदर्शनम् ॥ ८ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति-७८ अध्याय ।

स्वर्गं कृत्तिकासु ॥८॥ अपत्यं रोहिणीषु ॥९॥ ब्रह्मवर्चस्यं सौम्ये ॥१०॥ कर्मसिद्धिं रौ ॥११॥ भुवं पुनर्वसौ ॥ १२ ॥ पुष्टिं पुष्ये ॥ १३ ॥ श्रियं सार्पे ॥ १४ ॥ सर्वान् कामान् पैत्र्ये ॥१५ ॥ सौभाग्यं भाग्ये ॥ १ ॥ धनमार्यमणे ॥ १७ ॥ ज्ञातिश्रैष्ठ्यं हस्ते ॥१८॥ रूपवतः सुतांस्त्वाष्ट्रे ॥ १९ ॥ वाणिज्यसिद्धिं स्वातौ ॥ २०॥ कनकं विशाखासु ॥ २१ ॥ मित्राणि मै ॥ २२ ॥ राज्यं शाक्रे ॥ २३ ॥ कृषिं मूले ॥ २४ ॥ समुद्रयानसिद्धिमाप्ये ॥ २५ ॥ सर्वान् कामान् वैश्वदेवे ॥ २६ ॥ श्रैष्ठ्यमभिजिति ॥ २७ ॥ सर्वान् कामान् श्रवणे ॥ २८ ॥ लवणं वासवे ॥ २९ ॥ आरोग्यं वारुणे ॥ ३० ॥ कुप्यद्रव्यमाजे ॥ ३१ ॥ गृहमाहिर्बुध्न्ये ॥ ३२ ॥ गाः पौष्णे ॥ ३३॥ तुरङ्गमश्विने ॥ ३४ ॥ जीवितं याम्ये ॥ ३५ ॥ गृहं सुरूपाः स्त्रियः प्रतिपदि ॥ ॥ ३६ ॥ कन्यां वरदां द्वितीयायाम् ॥ ३७ ॥ सर्वान् कामांस्तृतीयायाम् ॥ ३८ ॥ पशूंश्चतुर्थ्याम् ॥ ३९ ॥ श्रियं-(सुरूपान् सुतान्) पञ्चम्याम् ॥ ४० ॥ द्यूतविषयं षष्ठ्याम् ॥ ४१ ॥ कृषिं सप्तम्याम् ॥ ४२ ॥ वाणिज्यमष्टम्याम् ॥ ४३ ॥ पशून् नवम्याम् ॥ ४४ ॥ वाजिनो दशम्याम् ॥ ४५ ॥ ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रानेकादश्याम् ॥ ४६ ॥ आयुर्वसु राज्यजयान् (कनकरजतं) द्वादश्याम् ॥ ४७ ॥ सौभाग्यं त्रयोदश्याम् ॥ ४८ ॥ सर्वकामान् पंचदश्याम् ॥ ४९ ॥ शस्त्रहतानां श्राद्धकर्मणि चतर्दशी शस्ता ॥ ५० ॥
अपि जायेत सोऽस्माकं कुले कश्चिन्नरोत्तमः । प्रावृट्कालेऽसिते पक्षे त्रयोदश्यां समाहितः ॥ ५२ ॥
मधूत्कटेन यः श्राद्धं पायसेन समाचरेत् । कार्त्तिकं सकलं मासं प्राक्छाये कुञ्जरस्य च ॥ ५३ ॥

बृहद्विष्णुस्मृति-९३ अध्याय ।

अब्राह्मणे दत्तं तत्सममेव पारलौकिकम् ॥ १ ॥ द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥ २ ॥ सहस्रगुणं प्राधीते ॥ ३ ॥ अनन्तं वेदपारगे ॥ ४ ॥
न वार्यपि प्रयच्छेत बैडालव्रतिके द्विजे । न बकव्रतिके पा नावेदविदि धर्मवित् ॥ ७ ॥
धर्मध्वजी सदालुब्धश्छाद्मिको लोकदाम्भिकः । बैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धिकः ॥ ८॥
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः । शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतपरो द्विजः ॥ ९ ॥
ये बकव्रतिनो लोके ये च मार्जारलिङ्गिनः । ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्मणा ॥ १० ॥

बृहद्विष्णुस्मृति-९६ अध्याय ।

अथ त्रिष्वाश्रमेषु पक्वकषायः प्राजापत्यामिष्टिं कृत्वा सर्वं वेदं दक्षिणां दत्त्वा प्रव्रज्याश्रमी स्यात् ॥ १ ॥ सप्तागारिकं भैक्ष्यमादद्यात् ॥ ३ ॥ मृन्मये दारुपात्रेऽलाबुपात्रे वा ॥ ७ ॥ तेषाञ्च

तस्याद्भिः शुद्धिः स्यात् ॥ ८ ॥ शून्यागारनिकेतनः स्यात् ॥ १० ॥ वृक्षमूलनिकेतनो वा॥११॥ न ग्रामे द्वितीयं रात्रिमावसेत् ॥ १२ ॥ कौपीनाच्छादनमात्रमेव वसनमादद्यात् ॥१३॥ दृष्टिपूतं न्यसेत् पादम् ॥ १४ ॥ वस्त्रपूतं जलमादद्यात् ॥ १५ ॥ सत्यपूतं वदेत् ॥ १६ ॥ मनःपूतं समाचरेत् ॥ १७ ॥

तस्यैकं तक्षतो बाहुं चन्दनेनैकमुक्षतः । नाकल्याणं न कल्याणं तयोरपि च चिन्तयेत् ॥ २३ ॥

(५) हारीतस्मृति-१ अध्याय ।

यज्ञसिद्ध्यर्थमनघान् ब्राह्मणान् मुखतोसृजत् । असृजत् क्षत्रियान् बाह्वोर्वैश्यानप्यूरुदेशतः ॥१२ ॥
शूद्रांश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषां चैवानुपूर्वशः । यथा प्रोवाच भगवान् ब्रह्मयोनिः पितामहः ॥ १३ ॥
अध्यापनं चाध्ययनं याजनं यजनं तथा । दानं प्रतिग्रहश्चेति षट्कर्माणीति चोच्यते ॥ १८ ॥
श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी देवनिर्मिते । काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः ॥ २५ ॥

हारीतस्मृति-३ अध्याय ।

ब्रह्मचर्यमधःशय्या तथा वह्नेरुपासना । उदकुम्भान्गुरोर्दद्याद् गोग्रासञ्चेन्धनानि च ॥ २ ॥
अजिनं दण्डकाष्ठं च मेखलाञ्चोपवीतकम् । धारयेदप्रमत्तश्च ब्रह्मचारी समाहितः ॥ ६ ॥
सायं प्रातश्चरेद्भैक्षं भोज्यार्थं संयतेन्द्रियः । आचम्य प्रयतो नित्यं न कुर्याद्दन्तधावनम् ॥ ७ ॥
तस्मिन्नेव नयेत्कालमाचार्ये यावदायुषम् । तदभावे च तत्पुत्रे तच्छिष्ये वाऽथवा कुले ॥ १४ ॥
न विवाहो न संन्यासो नैष्ठिकस्य विधीयते । इमं यो विधिमास्थाय त्यजेद्देहमतन्द्रितः ।
नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥ १५ ॥
यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चरेत् पृथिव्यां गुरुसेवने रतः । संप्राप्य विद्यामतिदुर्लभां शिवां फलञ्च तस्याः सुलभं तु विन्दति ॥ १६ ॥

हारीतस्मृति-४ अध्याय ।

गोदोहमात्रमाकाङ्क्षेदतिथिं प्रति वै गृही । अदृष्टपूर्वमज्ञातमतिथिं प्राप्तमर्चयेत् ॥ ५६ ॥
स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चाम्बुना । स्वागतेनाग्नयस्तुष्टा भवन्ति गृहमेधिनः ॥५७ ॥
आसनेन तु दत्तेन प्रीतो भवति देवराट् । पादशौचेन पितरः प्रीतिमायान्ति दुर्लभाम् ॥ ५८ ॥
अन्नदानेन युक्तेन तृप्यते हि प्रजापतिः । तस्मादतिथये कार्यं पूजनं गृहमेधिना ॥ ५९ ॥
विष्णुरेव यतिच्छाय इति निश्चित्य भावयेत् । सुवासिनीं कुमारीं च भोजयित्वा नरानपि ॥ ६४ ॥
बालवृद्धांस्ततः शेषं स्वयं भुञ्जीत वा गृही । प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मौनी च मितभाषणः ॥६५॥
अन्नमादौ नमस्कृत्य प्रहृष्टेनांतरात्मना । एवं प्राणाहुतिं कुर्यान्मन्त्रेण च पृथक् पृथक् ॥ ६६ ॥
इतिहासपुराणाभ्यां किंचित्कालं नयेद्बुधः । ततः सन्ध्यामुपासीत बहिर्गत्वा विधानतः ॥ ६८ ॥
कृतहोमस्तु भुञ्जीत रात्रौ चातिथिभोजनम् । सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ॥ ६९ ॥
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः । शिष्यानध्यापयेच्चापि अनध्याये विसर्जयेत् ॥ ७० ॥

हारीतस्मृति-५ अध्याय ।

गृहस्थः पुत्रपौत्रादीन्दृष्ट्वा पलितमात्मनः । भार्यां पुत्रेषु निःक्षिप्य सह वा प्रविशेद्वनम् ॥ २ ॥
नखरोमाणि च तथा सितगात्रत्वगादि च । धारयन् जुहुयादग्निं वनस्थो विधिमाश्रितः ॥ ३ ॥
धान्यैश्च वनसंभूतैर्नीवाराद्यैरनिन्दितैः । शाकमूलफलैर्वापि कुर्यान्नित्यं प्रयत्नतः ॥ ४ ॥
त्रिकालस्नानयुक्तस्तु कुर्यात्तीव्रं तपस्तदा । पक्षान्ते वा समश्नीयान्मासान्ते वा स्वपक्वभुक् ॥ ५ ॥
तथा चतुर्थकाले तु भुञ्जीयादष्टमेऽथवा । षष्ठे च कालेऽप्यथवा वायुभक्षोऽथवा भवेत् ॥ ६ ॥
घर्मे पञ्चाग्निमध्यस्थस्तथा वर्षे निराश्रयः । हेमन्ते च जले स्थित्वा नयेत्कालं तपश्चरन् ॥ ७ ॥
एवं च कुर्वता येन कृतबुद्धिर्यथाक्रमम् । अग्निं स्वात्मनि कृत्वा तु प्रव्रजेदुत्तरां दिशम् ॥ ८ ॥
आदेहपातं वनगो मौनमास्थाय तापसः । स्मरन्नतीन्द्रियं ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥ ९ ॥
तपो हि यः सेवति वन्यवासः समाधियुक्तः प्रयतान्तरात्मा । विमुक्तपापो विमलः प्रशान्तः स याति दिव्यं पुरुषं पुराणम् ॥ १० ॥

हारीतस्मृति–६ अध्याय ।

एवं वनाश्रमे तिष्ठन्यातयंश्चैव किल्बिषम् । चतुर्थ आश्रमे गच्छेत्संन्यासविधिना द्विजः ॥ २ ॥
दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च यत्नतः । दत्त्वा श्राद्धं पितृभ्यश्च मानुषेभ्यस्तथात्मनः ॥ ३ ॥
इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा । अग्निं स्वात्मनि संरोप्य मन्त्रवित्प्रव्रजेत्पुनः ॥४॥
ततः प्रभृति पुत्रादौ स्नेहालापादि वर्जयेत् । बंधूनामभयं दद्यात्सर्वभूताभयं तथा ॥ ५ ॥
त्रिदण्डं वैणवं सम्यक् सन्ततं समपर्वकम् । वेष्टि ं कृष्णगोवालरज्जुभिश्चतुरङ्गुलम् ॥ ६ ॥
सायंकाले तु विप्राणां गृहाण्यभ्यवपद्य तु । सम्यक् याचेच्च कवलं दक्षिणेन करेण वै ॥ १२ ॥
पात्रं वामकरे स्थाप्य दक्षिणेन तु शोधयेत् । यावतान्नेन तृप्तिः स्यात्तावद्भैक्षं समाचरेत् ॥ १३ ॥
ततो निवृत्य तत्पात्रं संस्थाप्यान्यत्र संयमी । चतुर्भिरंगुलैश्छाद्य ग्रासमात्रं समाहितः ॥ १४ ॥
सर्वव्यञ्जनसंयुक्तं पृथक् पात्रे नियोजयेत् । सूर्यादिभूतदेवेभ्यो दत्त्वा संप्रोक्ष्य वारिणा ॥ १५ ॥
भुञ्जीत पात्रपुटके पात्रे वा वाग्यतो यतिः । वटकाश्वत्थपर्णेषु कुम्भीतैन्दुकपात्रके ॥ १६ ॥
कोविदारकदम्बेषु न भुञ्जीयात्कदाचन । मलाक्ताः सर्व उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः ॥ १७ ॥
कांस्यभाण्डेषु यत्पापो गृहस्थस्य तथैव च । कांस्ये भोजयतः सर्वं किल्विषं प्राप्नुयात्तयोः ॥१८ ॥
भुक्त्वा पात्रे यतिर्नित्यं क्षालयेन्मंत्रपूर्वकम् । न दुष्यते च तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव ॥ १९ ॥
यदि धर्मरतिः शान्तः सर्व तसमो वशी । प्राप्नोति परमं स्थानं यत्प्राप्य न निवर्तते ॥ २६ ॥

(५ क) लघुहारीतस्मृति ।

नियमस्था व्रतस्था स्त्री रजः पश्येत्कथंचन । त्रिरात्रं तु क्षि ेदूर्ध्वं व्रतशेषं समाचरेत् ॥ ६ ॥
चण्डालस्य तु पानीयं ब्राह्मणश्च यदा पिबेत् । षड्रात्रमुपवासेन पञ्चगव्येन शुध्यति ॥ १६ ॥
रजस्वला त संस्पृष्टा ग्रामसूकरकुक्कुटैः । स्नानं कृत्वा क्षिपेत्तावद्यावच्चन्द्रस्य दर्शनम् ॥ १७ ॥
औषधं स्नेहमाहारं ददद्गोब्राह्मणेषु च । दीयमाने विपत्तिः स्यात्पुण्यमेव न पातकम् ॥ २८ ॥
अशीतिर्यस्य वर्षाणि वालोवाऽप्यूनषोडशः । प्रायश्चित्तार्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च ॥ ३३ ॥
असमर्थस्य वालस्य माता वा यदि वा पिता । तमुद्दिश्य चरेत्कृच्छ्रं व्रत तस्य न लुप्यते ॥ ३४ ॥
गर्भस्थः पञ्चवर्षः स्यात्कामचारस्तु स स्मृतः । न भावयति तत्तस्मात्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३५ ॥
अकृत्वा पादशौचं तु तिष्ठन्मुक्तशिखोऽपि वा । विना यज्ञोपवीतेन आचान्तः पुनराचमेत् ॥ ३६ ॥
अन्ने भोजनसंपन्ने मक्षिकाकेशदूषिते । तदुद्धृत्य स्पृशेच्चापस्तच्चान्नं भस्मना स्पृशेत् ॥ ३७ ॥
ताम्बूले कटुकषाये भुक्तस्नेहानुलेपने । मधुपर्के च सोमे च नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ॥ ३९ ॥
मूले तु द्विगुणीभूते रिक्ते सिद्धे तथोदिते । मूलतस्त भवेद्वृद्धिश्चतुर्भागेण नान्यथा ॥ ४६ ॥
स्वादुको वित्तहीनः स्याल्लग्नको वित्तवान्यदि । मूलं तस्य भवेद्देयं न वृद्धिं दातुमर्हति ॥ ४७ ॥
कालं देशं तथाऽऽत्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम् । उपपत्तिमवस्थां च ज्ञात्वा शौचं समाचरेत् ॥ ५५ ॥
पुत्रिका तु हरेद्वित्तमपुत्रा सर्वमर्हति । पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा ॥ ६४ ॥
तत्सुतो गोत्रजो बन्धुः शिष्यः स ह्मचारिणः ॥ ६५ ॥
भार्याऽव्यभिचारिणी यावद्यावच्च नियमे स्थिता । तावत्तस्या भवेद्द्रव्यमन्यथाऽस्या विलुप्यते ॥६६ ॥
विधवा यौवनस्था वा नारी भवति कर्कशा । आयुषः क्षपणार्थं तु दातव्यं जीवनं सदा ॥ ६७ ॥
शावाशौचे समुत्पन्ने सूत्याशौचं ततः पुनः । शवेन शुध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी ॥ ८० ॥
क्षत्रविट्शूद्रदायादा ये तु विप्रस्य बान्धवाः । तेषामशौचे विप्रस्य दशाहाच्छुद्धिरिष्यते ॥ ८२ ॥
राजन्यवैश्यौ च तथा हीनयोनिषु बन्धुषु । स्वमाशौचं प्रकुर्यातां विशुद्ध्यर्थं न संशयः ॥ ८३ ॥
दशाहाच्छ्ध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु । षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनयः ॥ ८४ ॥
सर्वेषामेव वर्णानां त्रिभागात्स्पर्शनं भवेत् । यथोक्तेनात्र शुद्धिः स्यात्सूतके मृतके तथा ॥ ८५ ॥
त्रिचतुष्पञ्चदशभिः स्पृश्या वर्णाः क्रमेण तु । भोज्यान्नो दशभिर्विप्रः शेषा शुद्धिर्यथोत्तरैः ॥८६॥
आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितर मातरं गुरुम् । नि ्त्य तु व्रती प्रेतान्न व्रतेन वियुज्यते ॥ ९२ ॥
मातापित्रोस्तु यत्प्रोक्तं ब्रह्मचारी तु पुत्रकः । व्रतस्थोऽपि हि कुर्वीत पिण्डदानोदकक्रियाः ॥ ९३॥

भवेदशौचं नैतस्य न चाग्निस्तस्य लुप्यते । स्वाध्यायं च प्रकुर्वीत विधिवत्पूर्वचोदितम् ॥ ९४ ॥
ब्राह्मणाः कम्बला गावः सूर्योऽग्निरतिथिर्गुरुः । तिला दर्भाश्च कालश्च दशैते कुतपाः स्मृताः ॥९८॥
दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभवति भास्करे । स कालः कुतपो नाम पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ ९९ ॥
रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा । सन्ध्ययारुभयोश्चैव सूर्ये चैवाचिरोदिते ॥१०२॥
सर्वस्वेनापि कर्तव्यमक्षय्यं राहुदर्शने । दानं यज्ञस्तपः श्राद्धं प्राहुर्धर्मविदो जनाः ॥ १०३ ॥
चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशेऽहनि । यदन्नं दीयते जन्तोर्नवश्राद्धं तदुच्यते ॥ १०८ ॥
सप्तमात्परतो यस्तु नवमात्पूर्वतः स्थितः । उभयोरपि मध्यस्थः कुतपः प्रोच्यते बुधैः ॥ १०९ ॥
पूर्वमर्धाङ्गुलच्छाया मुहूर्तं रौहिणं स्मृतम् । तस्मात्स प्रयत्नेन रौहिणं तु न लङ्घयेत् ॥ १११ ॥

(६) उशनास्मृति ।

एकोद्दिष्टं च कर्तव्यं यतीनां चैव सर्वदा । अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते (१) ।
सपिण्डीकरणं तेषां न कर्तव्यं सुतादिभिः । त्रिदण्डग्रहणादेव प्रतत्वं नैव जायते (२) ।
अदण्ड्या हस्तिनो ह्यश्वाः प्रजापाला हि ते स्मृताः।अदण्ड्याः काणकुब्जाश्चये शश्वत्कृतलक्षणाः(३)।

(६ क) उशनस्मृति–१अध्याय ।

उपवीतं वामबाहुसव्यबाहुसमन्वितम् । उपवीती भवेन्नित्यं निवीतं कण्ठलम्बनम् ॥ ९ ॥
सव्यबाहुं समुद्धृत्य दक्षिणेन धृतं द्विजाः । प्राचीनावीतमित्युक्तं पित्र्ये कर्मणि धारयेत् ॥ १० ॥
अग्न्यगारे गवां गोष्ठे होमे जप्ये तथैव च । स्वाध्यायभोजने नित्यं ब्राह्मणानां च सन्निधौ ॥ ११ ॥
उपासने गुरूणां च सन्ध्ययोरुभयोरपि । उपवीती भवेन्नित्य विधिरेष सनातनः ॥ १२ ॥
आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोभिवादने । अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरस्ततः१९॥
यो न वेत्त्यभिवादस्य द्विजः प्रत्यभिवादनम् । नाभिवाद्यः स विदु । यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ २० ॥
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रियं चाप्यनामयम् । वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥ २४ ॥
यावत्पिता च माता च द्वावेतौ निर्विकारणम् । तावत् सर्वं परित्यज्य पुत्रः स्यात्तत्परायणः ॥३३॥
पिता माता च सुप्रीतौ स्यातां पुत्रगुणैर्यदि । स पुत्रः सकल कर्म प्राप्नुयात्तेन कर्मणा ॥ ३४ ॥
नास्ति मातृसमं दैवं नास्ति पितृसमो गुरुः । तयोः प्रत्युपकारोऽपि न हि कश्चन विद्यते ॥ ३५ ॥
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यात्कर्मणा मनसा गिरा । न ताभ्यामननुज्ञातो धर्ममेकं समाचरेत् ॥ ३६ ॥
मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजान् गुरून् । असावहमिति ब्रूयात् प्रत्युत्थाय यवीयसः ॥४२ ॥
अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् । भोःशब्दपूर्वकं चैनमभिभाषेत धर्मवित् ॥ ४३ ॥
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः । पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥ ४७ ॥
विद्या कर्म वयो बन्धुर्वित्तं भवति यस्य वै । मान्यस्थानानि पञ्चाहुः पूर्वंपूर्वं गुरूणि च ॥ ४८ ॥
पञ्चानां त्रिषु-वर्णेषु भवेत्तु गुणवान् हि यः । यत्र स्यात्सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि स भवेद्यदि ॥४९॥
सजातीयगृहेष्वेवं सार्ववर्णिकमेव वा । भैक्षस्याचरणं प्रोक्तं पतितादिषु वर्जितम् ॥ ५४ ॥
वेदयज्ञादिहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु । ब्रह्मचारी चरेद्भैक्षं गृहस्थः प्रयतोऽन्वहम् ॥ ५५ ॥
गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु । अभावेऽप्यथ गेहानां पूर्वंपूर्वं विवर्जयेत् ॥ ५६ ॥
सर्वं वापि चरेद् ग्रामं पूर्वोक्तानामसम्भवे । नियम्य प्रयतो वाचं दिशश्चानवलोकयन् ॥ ५७ ॥
भैक्षेण वर्त्तयेन्नित्यं कामनाशीर्भवेद्व्रती । भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥ ५९ ॥

उशनस्मृति–२अध्याय ।

शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकच्छशिखोऽपिवा । अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥
हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठाभिः क्षत्रियः शुचिः । प्राशिताभिस्तथा वैश्यः स्त्रीशूद्रः स्पर्शनन्ततः ॥
अन्तवद्दन्तसंलिप्तजिह्वास्पर्शोऽशुचिर्भवेत् । स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परम् ॥ २८ ॥
भूमिगैस्ते समा ज्ञेयाः न तैरप्रयतो भवेत् । मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे ॥ २९ ॥
फलमूलेक्षुदण्डे च न दोष उशना ब्रवीत् । प्रचरंश्चान्नपानेषु यदुच्छिष्टो भवेद्द्विजः ॥ ३० ॥
छायाकूपनदीगोष्ठे चैत्यांभःपथि भस्मसु । अग्नौ चैव श्मशाने च विण्मूत्रे न समाचरेत् ॥ ३६ ॥

न गोमये न कुड्ये वा न गोष्ठे नैव शाद्वले । न तिष्ठन्वा न निर्वासा न च पर्वतमस्तके ॥ ३७ ॥
न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन । न ससत्वेषु गर्त्तेषु न च गच्छन् समाचरेत् ॥ ३८ ॥
तुषाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैव च । न क्षेत्रे न विले चापि न तीर्थे च चतुष्पथे ॥ ३९ ॥
नोद्यानोपसमीपे वा नोषरे न पराशुचौ । न सोपानत्कपादश्च च्छत्री वर्णान्तरीक्षके ॥ ४० ॥
न चैवाभिमुखे स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्गवाम् । न देवदेवालययोर्नापामपि कदाचन ॥ ४१ ॥
नदीज्योतींषि वीक्षित्वा तद्वाह्याभिमुखेऽपि वा । प्रत्यादित्यं प्रत्यनिलं प्रतिसोमं तथैव च ॥ ४२ ॥
नाहरेन्मृत्तिकां विप्रः पांशुलां न च कर्दमात् । न मार्गान्नोषरादेशाच्छौचशिष्टां परस्य च ॥ ४४ ॥
न देवायतनात्कुडयाद्ग्रामान्न तु कदाचन । उपस्पृशेत्ततो नित्यं पूर्वोक्तेन विधानतः ॥ ४५ ॥

उशनस्मृति–३ अध्याय ।

गन्धमाल्ये रसं कन्यां सूक्ष्मप्राणिविहिंसनम् । अभ्यङ्गं चाञ्जनोपानच्छत्रधारणमेव च ॥ १६ ॥
कामं क्रोधं भयं निद्रां गीतवादित्रनर्त्तनम् । द्यूतं जनपरीवादं स्त्रीप्रेक्षालापनं तथा ॥ १७ ॥
परोपतापपैशुन्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत् । उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकाकुशान् ॥ १८ ॥
हरते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्य वत्सरे गुरुः । आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः ॥ ३५ ॥
आप्तः शक्तोऽर्थदः साधुः स्वोऽध्याप्या दश धर्मतः ॥ ३६ ॥
श्रावणस्य तु मासस्य पौर्णमास्यां द्विजोत्तमाः ॥ ५४ ॥
आषाढ्यां प्रौष्ठपद्यां वा वेदोपक्रमणं स्मृतम् । उत्सृज्य ग्रामनगरं मासान्विप्रोऽर्द्धपञ्चमान्॥५५॥
अधीयीत शुचौ देशे ब्रह्मचारी समाहितः । पुष्ये तु च्छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजाः ॥ ५६ ॥
माघे वा मासि सम्प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि । छन्दांस्यूर्द्ध्वमधीयीत शुक्लपक्षे तु वै द्विजाः ॥ ५७ ॥
वेदाङ्गानि पुराणं वा कृष्णपक्षे तु मानवः । इमान्नित्यमनध्यायानधीयानो विसर्जयेत् ॥ ५८ ॥
अध्यापनं च कुर्वाणः अध्येष्यन्नपि यत्नतः । कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांशुसमूहने ॥ ५९ ॥
विद्युत्स्तनितवर्षासु महोल्कानां च पातने । आकालिकमनध्यायमेतेष्वेव प्रजापतिः ॥ ६० ॥
एतांस्त्वभ्युदितान्विद्याद्यदा प्रादुष्कृताग्निषु । तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ॥ ६१ ॥
निर्घाते वातचलने ज्योतिषां चोपसर्पणे । एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि ॥ ६२ ॥
प्रादुष्कृतेष्वग्निषु च विद्युत्स्तनितनिस्वने । सद्यो हि स्यादनध्यायमनृतौ मुनिरब्रवीत् ॥ ६३ ॥
नित्यानध्याय एव स्याद् ग्रामेषु नगरेषु च । कर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धे च नित्यशः ॥ ६४ ॥
अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ । अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च ॥ ६५ ॥
उदये मध्यरात्रौ च विण्मूत्रे च विसर्जयेत् । उच्छिष्टश्राद्धभुक् चैव मनसा न विचिन्तयेत् ॥ ६६ ॥
प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम् । त्र्यहं न कीर्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ॥ ६७ ॥
यावदेकानुदिष्टस्य लेपो गन्धश्च तिष्ठति । विप्रस्य विदुषो देहे तावद् ब्रह्म न कीर्तयेत् ॥ ६८ ॥
शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा वैवावसक्थिकाम् । नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥ ६९ ॥
नीहारैर्बाणशब्दैश्च सन्ध्ययोरुभयोरपि । अमावस्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यष्टमीषु च ॥ ७० ॥
उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् । अष्टकासु च कुर्वीत ऋत्वन्तासु च रात्रिषु ॥ ७१ ॥
मार्गशीर्षे तथा पौषे माघे मासि तथैव च । तिस्रोऽष्टकाः समाख्याताः कृष्णे पक्षे च सूरिभिः॥७२॥
श्लेष्मातकस्य च्छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च । कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयोः ॥ ७३॥
समानविद्योऽनुस्मृते तथा सब्रह्मचारिणि । आचार्ये संस्थिते वापि त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् ॥ ७४ ॥
छिद्रेष्वेतेषु विप्राणामनध्यायाः प्रकीर्त्तिताः । हिंसन्ति राक्षसास्ते च तस्मादेतान् विवर्जयेत् ॥७५॥
नैत्यकेनास्त्यनध्यायः सन्ध्योपासन एव च । उपाकर्मणि कर्मान्ते होममन्त्रेषु चैव हि ॥ ७६ ॥
एकर्चमथवैकं वा यजुः सामाथवा पुनः । अष्टकायां स्वधीयीत मारुते चापि वापदि ॥ ७७ ॥
अनध्यायो न चाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः । न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतानि वर्जयेत् ॥ ७८ ॥
त्रयोदशी मघा कृष्णा वर्षासु च विशेषतः । नैमित्तिकन्तु कर्तव्यं दिवसे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ११० ॥
गयायामक्षय श्राद्धं प्रयागे मरणादिषु । गायन्ति गाथां ते सर्वे कीर्त्तयन्ति मनीषिणः ॥ १३० ॥
एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः । तेषान्तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ १३१ ॥

गयां प्राप्यानुषङ्गेण यदि श्राद्धं समाचरेत् । तारिताः पितरस्तेन स याति परमां गतिम् ॥ १३२॥
पिप्पलीं क्रमुकं चैव तथा चैव मसूरकम् । कश्मलालाबुवार्त्ताकान् मन्त्रणं सारसं तथा ॥ १४३॥
कूटं च भद्रमूलं च तण्डुलीयकमेव च । राजमाषांस्तथा क्षीरं माहिषं च विवर्जयेत् ॥ १४४ ॥
कोद्रवान् कोविदारांश्च स्थलपाक्यामरीस्तथा । वर्जयेत्सर्वयत्नेन श्राद्धकाले द्विजोत्तमः ॥ १४५ ॥

उशनस्मृति–४अध्याय ।

ये सोमपाननिरता धर्मज्ञाः सत्यवादिनः । व्रतिनो नियमस्थाश्च ऋतुकालाभिगामिनः ॥ ३ ॥
पञ्चाग्निरप्यधीयानो यजुर्वेदविदोऽपि च । बह्वस्तु सुपर्णाश्च त्रिमधुर्वाथवा भवेत् ॥ ४ ॥
त्रिर्णाचिकेतच्छन्दो वै ज्येष्ठसामगणोऽपि वा । अथर्वशिरसोऽध्येत रुद्राध्यायी विशेषतः ॥ ५ ॥
अग्निहोत्रपरो विद्वान् पापविच्च षडङ्गवित् । गुरुदेवाग्निपूजासु प्रसक्तो ज्ञानतत्परः ॥ ६ ॥
अहिंसोपरता नित्यमप्रतिग्राहिणस्तथा । सत्रिणो दाननिरता ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥ ७ ॥

उशनस्मृति–५ अध्याय ।

हीनाङ्गः पतितः कुष्ठी वणिक् पुक्कसनासिकः ॥ ३१ ॥
कुक्कुटः सूकरः श्वानो वर्ज्याः श्राद्धेषु दूरतः । बीभत्समशुचिं म्लेच्छं न स्पृशेच्च रजस्वलाम्॥३२॥
नीलकाषायवसनं पाखण्डांश्च विवर्जयेत् ॥ ३३ ॥
न दद्यात्तत्र हस्तेन प्रत्यक्षलवणं तथा । न चायसेन पात्रेण न चैवाश्रद्धया पुनः ॥ ५८ ॥
पात्रे तु मृन्मये यो वै श्राद्धे भोजयते पितॄन् । स याति नरकं घोरं भोक्ता चैव पुरोधसः ॥ ६० ॥

उशनस्मृति–६अध्याय ।

आदन्तजन्मनः सद्य आचौलादेकरात्रकम् । त्रिरात्रमौपनयनाद्दशरात्रमुदाहृतम् ॥ १३ ॥
यथेष्टाचरणाज् जातो त्रिरात्रादिति निर्णयः । सूतके यदि सूतिश्च मरणे वा गतिर्भवेत् ॥ १९ ॥
शेषेणैव भवेच्छुद्धिरहःशेषे द्विरात्रकम् । मरणोत्पत्तियोगे तु मरणेन समाप्यते ॥ २० ॥
देशान्तरगतः श्रुत्वा सूतकं शावमेव वा ॥ २१ ॥
तावदप्रयतोऽस्यैव यावच्छेषः समाप्यते । अतीते सूतके प्रोक्तं सपिण्डानां त्रिरात्रकम् ॥ २२ ॥
तथैव मरणे स्नानमूर्द्ध्वं संवत्सराद्व्रती ॥ २३ ॥
त्रिरात्रं स्यात्तथाचार्ये भार्यासु प्रत्यगासु च । आचार्यपुत्रपत्न्याश्च अहोरात्रमुदाहृतम्॥ ३१ ॥
शुध्येद्द्विजो दशाहेन द्वादशाहेन भूपतिः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥ ३४ ॥
क्षत्रविट्शूद्रदायादा ये स्युर्विप्रस्य सेवकाः । तेषामशेषं विप्रस्य दशाहाच्छुद्धिरिष्यते ॥ ३५ ॥
राजन्यवैश्यावप्येवं हीनवर्णासु योनिषु । षड्रात्रं वा त्रिरात्रं वाप्येकरात्रक्रमेण हि ॥ ३६ ॥
वैश्यक्षत्रियविप्राणां शूद्रेष्वाशौचमेव तु । अर्द्धमासेऽथ षड्रात्रं त्रिरात्रं द्विजपुङ्गवाः ॥ ३७ ॥
शूद्रक्षत्रियविप्राणां वैश्येष्वाशौचमिष्यते । षड्रात्रं द्वादशाहश्च विप्राणां वैश्यशूद्रयोः ॥ ३८ ॥
अशौचं क्षत्रिये प्रोक्तं क्रमेण द्विजपुङ्गवाः ।
शूद्रविट्क्षत्रियाणान्तु ब्राह्मणे संस्थिते यदि । एकरात्रेण शुद्धिः स्यादित्याह कमलोद्भवः ॥ ३९ ॥
दाहादशौचं कर्त्तव्यं द्विजानामग्निहोत्रिणाम् । सपिण्डानान्तु मरणे मरणादितरेषु च ॥ ५१ ॥
सपिण्डता च पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते । समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥ ५२ ॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । लेपभाजस्तु यश्चात्मा सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ॥ ५३ ॥
ऊर्द्ध्वानां चैव सापिण्ड्यमाह देवः प्रजापतिः । ये चैकजाता बहवो भिन्नयोनय एव च ॥ ५४ ॥
भिन्नवर्णास्तु सापिड्यं भवेत्तेषां त्रिपूरुषम् । कारवः शिल्पिनो वैद्यदासीदासास्तथैव च ॥ ५५ ॥
राजानो राजभृत्याश्च सद्यः शौचाः प्रकीर्त्तिताः । दातारो नियमी चैव ब्रह्मविद्ब्रह्मचारिणौ ॥५६॥
सत्रिणो व्रतिनस्तावत्सद्यः शौचमुदाहृतम् । राजा चैवाभिषिक्तश्च प्राणसत्रिण एव च ॥ ५७ ॥
यज्ञे विवाहकाले च देवयागे तथैव च । सद्यः शौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे वाप्युपद्रवे ॥ ५८ ॥
विषाद्युपहतानां च विद्युता पार्थिवैर्द्विजैः । सद्यः शौचं समाख्यातं सर्पादिमरणेऽपि च ॥ ५९ ॥
अग्निमेरुप्रपतने विषौघान्नपराशने । गोब्राह्मणान्ते संन्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते ॥ ६० ॥

उशनस्मृति-७ अध्याय ।

पतितानां न दाहः स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसञ्चयः । न चाश्रुपातपिण्डे च कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित् ॥
व्यापादयेत्तथात्मानं स्वयं योऽग्निविषादिभिः । दहितं तस्य नाशौचं न च स्यादुदकादिकम् ॥ २ ॥
अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियतेऽग्निविषादिभिः । तस्याशौचं विधातव्यं कार्यं चैवोदकादिकम् ॥ ३ ॥
सर्वैरास्थिसञ्चयनं ज्ञातिरेव भवेत्तथा । त्रिपूर्वं भोजयेद्विप्रानयुग्मान् श्रद्धया शुचीन् ॥ ११ ॥
पञ्चमे नवमे चैव तथैवैकादशेऽहनि । अयुग्मान्भोजयेद्विप्रान्नवश्राद्धन्तु तद्विदुः ॥ १२ ॥
मातापित्रोः सुतैः कार्यं पिण्डदानादि किञ्चन । पत्नी कुर्यात्सुताभावे पत्न्यभावे तु सोदरः ॥२१॥

उशनस्मृति-८ अध्याय ।

ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुतल्पग एव च । महापापकिनस्त्वेते यः स तैः सह सवसेत् ॥ १ ॥
ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटीं कृत्वा वने वसेत् । भैक्षं चात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ॥ ५ ॥
ब्राह्मणावसथान् सर्वान् देवागाराणि वर्जयेत् । विनिन्द्य च स्वमात्मानं ब्राह्मणं च स्वयं स्मरेत्६॥
असङ्कराणि योग्यानि सप्तागाराणि संविशेत् । विधूमे शनकैर्नित्यं व्याहारे मुक्तवर्जिते ॥ ७ ॥
कुर्यादनशनं वाथ भृगोः पतनमेव च । ज्वलन्तं वा विशेदग्निं जलं वा प्रविशेत्स्वयम् ॥ ८ ॥
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सम्यक् प्राणान् परित्यजेत् । दीर्घमामयिनं विप्रं कृत्वानामयिनं तथा ॥९॥
दत्त्वा चान्नं स विदुषे ब्रह्महत्यां व्यपोहति । अश्वमेधावभृथके स्नात्वा यः शुध्यति द्विजः ॥ १० ॥
सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणाय प्रदापयेत् । ब्रह्महा मुच्यते पापैर्दृष्ट्वा वा सेतुदर्शनम् ॥ ११ ॥
सुरापस्तु सुरां तप्तामग्निवर्णां पिबेत्तदा । निर्दग्धकायः स तदा मुच्यते च द्विजोत्तमः ॥ १२ ॥
गोमूत्रमग्निवर्णं वा गोशकृद्द्रवमेव वा । पयो घृतं जलं वाथ मुच्यते पातकात्ततः ॥ १३ ॥
स्वर्णस्तेयी सकृद्विप्रो राजानमधिगम्य तु । स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ॥ १५ ॥
गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम् । स वै पापात्ततः स्तेनो ब्राह्मणस्तपसाथवा ॥ १६ ॥
करेणादाय मुसलं लगुडं वाथ घातिनम् । संचित्योभयतस्तीक्ष्णमायसं दण्डमेव च ॥ १७ ॥
राजानस्तेन मर्दीत मुक्तकेशेन धावता । आचक्षाणश्च तत्पापमेवं कर्माणि शाधि माम् ॥ १८ ॥
शासनाद्वापि मोक्षाद्वा ततः स्तेयाद्विमुच्यते । अशासित्वा च तं राजा स्तेयस्याप्नोति किल्बिषम् १९
तपसा द्वतमन्यस्य सुवर्णस्तेयजं फलम् । चीरवासा द्विजोऽरण्ये संचरेद्ब्रह्मणो व्रतम् ॥ २० ॥
स्नात्वाश्वमेधावभृते पूतः स्यादथवा द्विजः । प्रदद्याच्चाथ विप्रेभ्यः स्वात्मतुल्यं हिरण्यकम् ॥ २१ ॥
गुरुभार्यां समारुह्य ब्राह्मणः काममोहितः । उपगूहेत् स्त्रियं तप्तां काम्यां कालायसीकृताम् ॥ २३ ॥
स्वयं वा शिश्नवृषणौ उत्कृत्याध्याय वांजलौ । आतिष्ठेद्दक्षिणामाशामानिपातमजिह्मतः ॥ २४ ॥
गुर्वर्थे वा हतः शुद्ध्यै चरेद्वा ब्रह्मणो व्रतम् । शाखां कर्कटकोपेतां परिष्वज्याथ वत्सरे ॥ २५ ॥
अधः शयीत निरतो मुच्यते गुरुतल्पगः । कृच्छ्रं चाब्दं चरेद्विप्रश्चीरवासाः समाहितः ॥ २६ ॥

उशनस्मृति-९ अध्याय ।

गत्वा दुहितरं विप्रः स्वसारं वा स्नुषामपि । प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं मतिपूर्वमिति स्थितिः ॥ १ ॥
मातृष्वसां मातुलानीं तथैव च पितृष्वसाम् । भागिनेयीं समारुह्य कुर्यात् कृच्छ्रादिपूर्वकम् ॥ २ ॥
चान्द्रायणानि चत्वारि पञ्च वा सुसमाहितः । पैतृष्वस्रेयीं गत्वा तु स्वस्रीयां मातुरेव च ॥ ३ ॥
मातुलस्य सुतां वापि गत्वा चान्द्रायणं चरेत । भार्यासखीं समारुह्य गत्वा श्यालीं तथैव च ॥४ ॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा ततःकृच्छ्रं समाचरेत् । उदक्यागमने विप्रस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥ ५ ॥
मण्डूकं नकुलं काकं विड्वराहं च मूषिकम् । पयः पिबेत् त्रिरात्रस्तु श्वानं हत्वा त्वतन्द्रितः ॥७ ॥
मार्जारं चाथ नकुलं योजनं वाऽध्वनो व्रजेत् । कृच्छ्रद्वादशमात्रं तु कुर्यादश्ववधे द्विजः ॥ ८ ॥
अथ कृष्णायसीं दद्यात् सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः । बलाकं रङ्कवं चैव मूषिकं कृतलम्भकम् ॥ ९ ॥
वराहं तु तिलद्रोणं तिलाढं चैव तित्तिरम् । शुकं द्विहायनं वत्सं क्रौंचं हत्वा त्रिहायनम् ॥ १० ॥
हत्वा हंसं बलाकं च बकटिट्टिभमेव च । वानरं चैव भासं च स्वयं वा ब्राह्मणाय गाम् ॥ ११ ॥
क्रव्यादांस्तु मृगान् हत्वा धेनुं दद्यात् पयस्विनीम् । अक्रव्यादं वत्सतरमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम्१२॥
किंचिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे । अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुध्यति ॥ १३ ॥

फलदानान्तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम् । गुल्मवल्लीलतानां च वीरुधां फलमेव च ॥ १४ ॥
मनुष्याणां च हरणं स्त्रीणां कृत्वा गृहस्य च ॥ १६ ॥
वापीकूपजलानां च शुध्येच्चान्द्रायणेन तु । द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मनः ॥ १७ ॥
चरेत् सान्तपनं कृच्छ्रं चरित्वात्मविशुद्धये । धान्यादिधनचौर्यं च पञ्चगव्यविशोधनम् ॥ १८ ॥
तृणकाष्ठद्रुमाणां च पुष्पाणां च फलस्य च । चेलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥ १९ ॥
मणिप्रवालरत्नानां सुवर्णरजतस्य च । अयःकांस्योपलानां च द्वादशाहमभोजनम् ॥ २० ॥
एतदेवव्रतं कुर्याद् द्विशफैकशफस्य च । पक्षिणामौषधीनां च हरेच्चापि त्र्यहं पयः ॥ २१ ॥
प्रकुर्याच्चैव संस्कारं पूर्वेणैव विधानतः । शललं च बलाकं च हंसकारण्डवं तथा ॥ २४ ॥
चक्रवाकं च जग्ध्वा च द्वादशाहमभोजनम् । कपोतं टिट्टिभं भासं शुकं सारसमेव च ॥ २५ ॥
जलौकजालपादं च जग्ध्वा ह्येतद् व्रतं चरेत् । शिशुमारं तथा मांसं मत्स्यं मांसं तथैव च ॥ २६ ॥
जग्ध्वा चैव वराहं च एतदेव व्रतं चरेत् । कोकिलं चैव मत्स्यादं मण्डूकं भुजगं तथा ॥ २७ ॥
गोमूत्रयावकाहारैर्मासेनैकेन शुध्यति । जलेचरांश्च जलजान् यातुधानविपाटितान् ॥ २८ ॥
रक्तपादांस्तथा जग्ध्वा सप्ताहं चैतदाचरेत् । मृतमांसं वृथा चैवमात्मार्थं वा यथाकृतम् ॥ २९ ॥
भुक्त्वा मासं चरेदेतत् पापकस्यापनुत्तये । कपोतं कुञ्जरं शिग्रुं कुक्कुटं रजकां तथा ॥ ३० ॥
प्राजापत्यं चरेज्जग्ध्वा तथाकुम्भीरमेव च । पलाण्डुं लशुनं चैव भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ३१ ॥
प्राजापत्येन शुद्धिः स्यात् श्वकुम्भ्यां शशभक्षणे । अलाबुं गृञ्जनं चैव भुक्त्वाप्येतद्व्रतं चरेत् ॥ ३३ ॥
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुध्यति । अनिर्दशाया गोः क्षीरं माहिषं वार्क्षमेव च ॥ ३६ ॥
गर्भिण्या वा विवत्साया: पीत्वा दुग्धमिदं चरेत् । एतेषां च विकाराणि पीत्वा मोहेन वा पुनः ॥ ३७ ॥
गोमूत्रयावकाहारः सप्तरात्रेण शुध्यति । भुक्त्वा चैव नवश्राद्धं सूतके मृतकेऽथवा ॥ ३८ ॥
अन्त्यस्यात्ययिनोऽन्नं च तप्तकृच्छ्रमुदाहृतम्।चाण्डालान्नं द्विजो भुक्त्वा सम्यक् चान्द्रायणं चरेत् ॥
अज्ञानात् प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पर्शमेव च । पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ४२ ॥
शुनोच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति । गोमूत्रयावकाहारः पीतशेषं च वा पयः ॥ ४६ ॥
चाण्डालेन च संस्पृष्टं पीत्वा वारि द्विजोत्तमः । त्रिरात्रेण विशुध्येत पञ्चगव्येन शुध्यति ॥ ४९ ॥
भृत्यानां यजनं कृत्वा परेषामन्यकर्मणि । अभिचारमनर्हं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति ॥ ५६ ॥
तैलाभ्यक्तः प्रभाते च कुर्यान्मूत्रपुरीषके । अहोरात्रेण शुध्येत श्मश्रुकर्मणि मैथुने ॥ ५८ ॥
पतितद्रव्यमादाय तदुत्सर्गेण शुध्यति । चरेच्च विधिना कृच्छ्रमित्याह भगवान्प्रभुः ॥ ६१ ॥
अनाशकनिवृत्त्या तु प्रव्रज्योपासिता तथा । आचरेत् त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च ॥ ६२ ॥
पुनश्च जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कृता द्विजाः । शुद्धो यस्तद्व्रतं सम्यक् चरेयुर्धर्मदर्शिनः ॥ ६३ ॥
उपासीत न चेत्सन्ध्यां गृहस्थोऽपि प्रमादतः । स्नातकव्रतलौल्यन्तु कृत्वा चोपवसेद्दिनम् ॥ ६६ ॥
संवत्सरं चरेत्कृच्छ्रं मनुच्छन्दे द्विजोत्तमः । चान्द्रायणं चरेद्वृत्त्यां गोप्रदानेन शुध्यति ॥ ६७ ॥
उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं च कामतः । त्रिरात्रेण विशुध्येत नग्नेन प्रविशेज्जलम् ॥ ६९ ॥

(६ ख) औशनसस्मृति ।

सान्तरालकसंयुक्तं सर्वं संक्षिप्य चोच्यते । नृपाद्ब्राह्मणकन्यायां विवाहेषु समन्वयात् ॥ २ ॥
जातः सूतोऽत्र निर्दिष्टः प्रतिलोमविधिर्द्विजः । वेदानर्हस्तथा चैषां धर्माणामनुबोधकः ॥ ३ ॥
सूताद्विप्रप्रसूतायां सुतो वेणुक उच्यते । नृपायामेव तस्यैव जातो यश्चर्मकारकः ॥ ४ ॥
ब्राह्मण्यां क्षत्रियाच्चौर्याद्रथकारः प्रजायते । वृत्तं च शूद्रवत्तस्य द्विजत्वं प्रतिषिध्यते ॥ ६ ॥
ब्राह्मण्यां वैश्यसंसर्गाज्जातो मागध उच्यते । वन्दित्वं ब्राह्मणानां च क्षत्रियाणां विशेषतः ॥ ७ ॥
प्रशंसावृत्तिको जीवेद्वैश्यप्रेष्यकरस्तथा । ब्राह्मण्यां शूद्रसंसर्गाज्जातश्चाण्डाल उच्यते ॥ ८ ॥
सीसमाभरणं तस्य कार्ष्णायसमथापि वा । वध्रीं कंठे समाबध्य मल्लरीं कक्षतोपि वा ॥ ९ ॥
मलापकर्षणं ग्रामे पूर्वाह्णे परिशुद्धिकम् । न पराह्णे प्रविष्टोपि बहिर्ग्रामाच्च नैर्ऋते ॥ १० ॥
पिण्डीभूता भवन्त्यत्र नोचेद्वध्या विशेषतः । चाण्डालाद्वैश्यकन्यायां जातः श्वपच उच्यते ॥ ११ ॥
श्वमांसभक्षणं तेषां श्वान एव च तद्बलम् । नृपायां वैश्यसंसर्गादायोगव इति स्मृतः ॥ १२ ॥

तन्तुवाया भवन्त्येव वसुकांस्योपजीविनः । शीलिकाः केचिदत्रैव जीवनं वस्त्रनिर्मिते ॥ १३ ॥
नृपायां शूद्रसंसर्गाज्जातः पुल्कस उच्यते । सुरावृत्तिं समारुह्य मधुविक्रयकर्मणा ॥ १७ ॥
कृतकानां सुराणां च विक्रेता याचको भवेत् । पुल्कसाद्वैश्यकन्यायां जातो रजक उच्यते ॥ १८ ॥
वैश्यायां शूद्रसंसर्गाज्जातो वैदेहकः स्मृतः । अजानां पालनं कुर्यान्महिषीणां गवामपि ॥ २० ॥
दधिक्षीराज्यतक्राणां विक्रयाज्जीवनं भवेत् । वैदेहिकात्तु विप्रायां जातश्चर्मोपजीविनः ॥ २१ ॥
वैश्यायां विधिना विप्राज्जातो ह्यम्बष्ठ उच्यते । कृष्याजीवी भवेत्तस्य तथैवाग्नेयवृत्तिकः ॥ ३१ ॥
ध्वजिनी जीविका वापि अम्बष्ठाः शस्त्रजीविनः । वैश्यायां विप्रतश्चौर्यात्कुम्भकार स उच्यते ॥३२॥
कुलालवृत्त्या जीवेत्तु नापिता वा भवन्त्यतः । सूतके प्रेतके वापि दीक्षाकालेऽथ वापनम् ॥ ३३ ॥
शूद्रायां विधि विप्राज्जातः पारशवो मतः । भद्रकादीन्समाश्रित्य जीवेयु पूतकाः स्मृताः॥३६॥
शिवाद्यागमविद्याद्यैस्तथा मण्डलवृत्तिभिः । तस्यां वै चौरसो वृत्तो निषादो जात उच्यते ॥ ३७ ॥
वने दुष्टमृगान्हत्वा जीवनं मांसविक्रयः । नृपाज्जातोथ वैश्यायां गृह्यायां विधिना सुतः ॥
वैश्यवृत्त्या तु जीवित क्षत्रधर्मं न चारयेत् ॥ ३८ ॥
प्रवालानां च सूत्रित्वं शाखानां वलयक्रियाम् । शूद्रस्य विप्रसंसर्गाज्जात उग्र इति स्मृतः ॥ ४० ॥
नृपस्य दण्डधारः स्याद्दण्डं दण्ड्येषु संचरेत् । तस्यैव चार्यसवृत्त्या जातः शुण्डिक उच्यते ॥ ४१ ॥

(७) अङ्गिरास्मृति ।

रजकश्चर्मकश्चैव नटो बुरुड एव च । कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते चान्त्यजाः स्मृताः ॥ ३ ॥
चाण्डालकूपे भाण्डेषु त्वज्ञानात्पिबते यदि । प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णे वर्णे विधीयते ॥ ५ ॥
चरेत्सान्तपनं विप्रः प्राजापत्यं तु भूमिपः । तदर्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रेषु दापयेत् ॥ ६ ॥
विप्रो विप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन । आचान्त एव शुद्ध्येत अङ्गिरामुनिरब्रवीत् ॥ ८ ॥
क्षत्रियेण यदा स्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन । स्नानं जप्यं तु कुर्वीत दिनस्यार्द्धेन शुध्यति ॥ ९ ॥
वैश्येन तु यदा स्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः । उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति ॥ १० ॥
अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टः स्नानं येन विधीयते । तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ११ ॥
भोजने चैव पाने च तथा चौषधभेषजैः । एवं म्रियन्ते या गावः पादमेकं समाचरेत् ॥ २५ ॥
घण्टाभरणदोषेण यत्र गौर्विनिपीड्यते । चरेदर्धं व्रतं तेषां भूषणार्थं तु यत्कृतम् ॥ २६ ॥
दमने दामने रोधे अवघाते च वैकृते । गवां प्रभवताघातैः पादोनं व्रतमाचरेत् ॥ २७ ॥
अंगुष्ठपर्वमात्रस्तु बाहुमात्रप्रमाणतः । सपल्लवश्च साग्रश्च दण्ड इत्यभिधीयते ॥ २८ ॥
दण्डादुक्ताद्यदान्येन पुरुषाः प्रहरन्ति गाम् । द्विगुणं तु व्रतं तेषां प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ २९ ॥
असमर्थस्य बालस्य पिता वा यदि वा गुरुः । यमुद्दिश्य चरेद्धर्मं पापं तस्य न विद्यते ॥ ३२ ॥
अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः । प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च ॥ ३३ ॥
रजस्वला यदा स्पृष्टा शुना शूद्रेण चैव हि । उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३९ ॥
द्वावेतावशुची स्यातां दम्पती शयनं गतौ । शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥४०॥
गण्डूषं पादशौचं च न कुर्यात्कांस्यभाजने । भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुद्ध्यति ॥४१॥
शौचं सौवर्णरौप्याणां वायुनार्केन्दुरश्मिभिः । रजस्पृष्टं शवस्पृष्टमाविकं च न शुद्ध्यति ॥ ४४ ॥
अद्भिर्मृदा तत्पात्र प्रक्षाल्य च विशुद्ध्यति । शुष्कमन्नमविप्रस्य भुक्त्वा सप्ताहमृच्छति ॥ ४५ ॥
यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम् । सूतकेषु यदा विप्रो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः॥५८॥
पिबेत्पानीयमज्ञानाद्भुङ्क्ते भक्तमथापि वा । उत्तार्याचम्य उदकमवतीर्य उपस्पृशेत् ॥ ५९ ॥
एवं हि समुदाचारो वरुणेनाभिमन्त्रितः । अग्न्यागारे गवां गोष्ठे देवब्राह्मणसन्निधौ ॥ ६० ॥
असपिण्डेन भोक्तव्यं चूडस्यान्ते विशेषतः । याचकान्नं नवश्राद्धमपि सूतकभोजनम् ॥ ६४ ॥
नारी प्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् । अन्यदत्ता तु या कन्या पुनरन्यस्य दीयते ॥ ६९ ॥
अथ भुंक्ते तु यो मोहात्पूयसं नरकं व्रजेत् । स्त्रिया धनं तु ये मोहादुपजीवन्ति मानवाः ॥ ७० ॥
स्त्रिया यानानि वासांसि ते पापा यान्त्यधोगतिम् । राजान्नं हरते तेजः शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥७१॥

(७ क) दूसरी अङ्गिरास्मृति ।

ब्राह्मणान्ने पवित्रत्वं क्षत्रान्ने पशुता स्मृता । वैश्यान्ने चापि शूद्रत्वं शूद्रान्ने नरकं व्रजेत् ॥ ७९ ॥

(८) यमस्मृति ।

चाण्डालैः श्वपचैः स्पृष्टो विण्मूत्रे च कृते द्विजः । त्रिरात्रं तु प्रकुर्वीत भुक्त्वोच्छिष्टः षडाचरेत् ॥१०॥
ऋतौ तु गर्भं शङ्कित्वा स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् । अनृतौ तु स्त्रियं गत्वा शौचं मूत्रपुरीषवत् ॥१६॥
त्यजन्तोऽपतितान्बन्धून्दण्डद्या उत्तमसाहसम् । पिता हि पतितः कामं न तु माता कदाचन ॥१९॥
श्वसृगालप्लवंगाद्यैर्मानुषैश्च रतिं विना । दष्टः स्नात्वा शुचिः सद्यो दिवा सन्ध्यासु रात्रिषु ॥ २५ ॥
अज्ञानाद्ब्राह्मणो भुक्त्वा चाण्डालान्नं कदाचन । गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुध्यति ॥ २६ ॥
चाण्डालपुक्कसानां च भुक्त्वा गत्वा च योषितम् । कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्दवद्वयम् ॥२८॥
कपालिकान्नभोक्तॄणां तन्नारीगामिनां तथा । कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्दवद्वयम् ॥ २९ ॥
अगस्यागमने विप्रो मद्यगो मांसभक्षणे । तप्तकृच्छ्रपरिक्षिप्तो मौर्वीहोमेन शुद्ध्यति ॥ ३० ॥
रजकश्चर्मकश्चैव नटो बुरुड एव च । कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः ॥ ३३ ॥
भुक्त्वा चैषां स्त्रियो गत्वा पीत्वापः प्रतिगृह्य च । कृच्छ्राब्दमाचरेज् ज्ञानादज्ञानादैन्दवद्वयम् ॥३४॥
मातरं गुरुपत्नीं च स्वसृदुहितरं स्नुषाम् । गत्वैताः प्रविशेदग्निं नान्या शुद्धिर्विधीयते ॥ ३५ ॥
राज्ञीं प्रव्रजितां धात्रीं तथा वर्णोत्तमामपि । कृच्छ्रद्वयं प्रकुर्वीत सगोत्रामभिगम्य च ॥ ३६ ॥
दण्डादूर्ध्वप्रहारेण यस्तु गां विनिपातयेत् । द्विगुणं गोव्रतं तस्य प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४० ॥
अंगुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रप्रमाणकः । सार्द्रश्च सपलाशश्च गोदण्डः परिकीर्तितः ॥ ४१ ॥
पादमुत्पन्नमात्रे तु द्वौ पादौ गात्रसंभवे । पादोनं कृच्छ्रमाचेष्ट हत्वा गर्भमचेतनम् ॥ ४३ ॥
अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णे गर्भे रेतःसमन्विते । एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रमेषा गोघ्नस्य निष्कृतिः ॥ ४४ ॥
वन्धने रोधने चैव पोषणे वा गवां रुजा । संपद्यते चेन्मरणं निमित्ती नैव लिप्यते ॥ ४५ ॥
मूर्छितः पतितो वापि दण्डेनाभिहतस्तथा । उत्थाय षट्पदं गच्छेत्सप्त पञ्च दशापि वा ॥ ४६ ॥
ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वापि पिबेद्यदि । पूर्वव्याधिप्रनष्टानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४७ ॥
काष्ठलोष्टाश्मभिर्गावः शस्त्रैर्वा निहता यदि । प्रायश्चित्तं कथं तत्र शस्त्रे शस्त्रे निगद्यते ॥ ४८ ॥
काष्ठे सान्तपनं कुर्यात्प्राजापत्यं तु लोष्टके । तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकम् ॥ ४९ ॥
औषधं स्नेहमाहारं दद्याद्गोब्राह्मणेषु च । दीयमाने विपत्तिः स्यात्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ५० ॥
तैलभेषजपाने च भेषजानां च भक्षणे । निःशल्यकरणे चैव प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ५१ ॥
वत्सानां कण्ठबन्धे च क्रियया भेषजेन तु । सायं संगोपनार्थं च न दोषो रोधबन्धयोः ॥ ५२ ॥
पादे चैवास्य रोमाणि द्विपादे श्मश्रुकेवलम् । त्रिपादे तु शिखावर्जं मूले सर्वं समाचरेत् ॥ ५३ ॥
सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदंगुलद्वयम् । एवमेव तु नारीणां मुण्डमुण्डापनं स्मृतम् ॥ ५४ ॥
न स्त्रिया वपनं कार्यन्न च वीरासनं स्मृतम् । न च गोष्ठे निवासोऽस्ति न गच्छन्तीमनुव्रजेत् ॥५५ ॥
राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः । अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ५६॥
केशानां रक्षणार्थं च द्विगुणं व्रतमादिशेत् । द्विगुणे तु व्रते चीर्णे द्विगुणैव तु दक्षिणा ॥ ५७ ॥
इष्टापूर्तं तु कर्त्तव्यं ब्राह्मणेन प्रयत्नतः । इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षं समश्नुते ॥ ६८ ॥
वित्तापेक्षं भवेदिष्टं तडागं पूर्तमुच्यते । आरामश्च विशेषेण देवद्रोण्यस्तथैव च ॥ ६९ ॥
वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च । पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्तफलमश्नुते ॥ ७० ॥
शुक्लाया मूत्रं गृह्णीयात्कृष्णाया गोः शकृत्तथा । ताम्रायाश्च पयो ग्राह्यं श्वेताया दधि चोच्यते ॥७१॥
कपिलाया घृतं ग्राह्यं महापातकनाशनम् । सर्वतीर्थे नदीतोये कुशैर्द्रव्यं पृथक् पृथक् ॥ ७२ ॥
सूतके तु समुत्पन्ने द्वितीये समुपस्थिते । द्वितीये नास्ति दोषस्तु प्रथमेनैव शुद्ध्यति ॥ ७५ ॥
जातेन शुद्ध्यते जातं मृतेन मृतकन्तथा । गर्भे संस्रवणे मासे त्रीण्यहानि विनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति । रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ७७ ॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धमथापरम् । पार्वणंश्चेति विज्ञेयं श्राद्धं पञ्चविधं बुधैः ॥ ८२ ॥

प्रथमेऽह्नि द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्थके । अस्थिसञ्चयनं कार्यं बन्धुभिर्हितबुद्धिभिः ॥ ८७ ॥
चतुर्थे पञ्चमे चैव सप्तमे नवमे तथा । अस्थिसञ्चयनं प्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः ॥ ८८ ॥

(८ क) बृहद्यमस्मृति- १अध्याय ।

जलाग्निबन्धनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः । विषप्रपतनप्राप्ताः शस्त्राघातहताश्च ये ॥ ३ ॥
नचैते प्रत्यवसिताः सर्वधर्मबहिष्कृताः । चान्द्रायणेन शुध्यन्ति तप्तकृच्छ्रद्वयेनच ॥ ४ ॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिः कुशोदकम् । एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥ १३ ॥
चाण्डालिकासु नारीषु द्विजो मैथुनकारकः । कृत्वाऽघमर्षणं पक्षं शुध्यते च पयोव्रतात् ॥ १९ ॥

बृहद्यमस्मृति-२ अध्याय ।

सुरायाः संप्रपानेन गोमांसभक्षणे कृते । तप्तकृच्छ्रं चरेद्विप्रो मौञ्जीहोमेन शुध्यति ॥ ३ ॥
यः क्षत्रियं तथा वैश्यं शूद्रं चाप्यनुलोमजम् । ज्ञात्वा विशेषेण ततश्चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥ ४ ॥
एकैकं वर्धयेद्ग्रासं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत् । अमायां तु न भुञ्जीत एष चान्द्रायणो विधिः ॥ ६ ॥

बृहद्यमस्मृति-३ अध्याय ।

ऊनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षात्परस्य च । प्रायश्चित्तं चरेद्भ्राता पिता वाऽन्योऽपि बान्धवः ॥ १ ॥
अतो बालतरस्यापि नापराधो न पातकम् । राजदण्डो न तस्यास्ति प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ २ ॥
अशीत्यधिकवर्षाणि बालो वाऽप्यूनषोडशः । प्रायश्चित्तार्धमर्हन्ति स्त्रियो व्याधित एव च ॥ ३ ॥
मातरं गुरुपत्नीं च स्वसारं दुहितां तथा । गत्वा तु प्रविशेदग्निं नान्या शुद्धिर्विधीयते ॥ ७ ॥
दासनापितगोपालकुलमित्रार्धसीरिणः । एते शूद्रास्तु भोज्यान्ना यश्चाऽऽत्मानं निवेदयेत् ॥ १० ॥
यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः । तद्भक्षणे जपेन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥ १२ ॥
वृषलीं यस्तु गृह्णाति ब्राह्मणो मदमोहितः । सदा सूतकिता तस्य ब्रह्महत्या दिने दिने ॥ १३ ॥
वृषलीगमनं चैव मासमेकं निरन्तरम् । इह जन्मनि शूद्रत्वं पुनः श्वानो भविष्यति ॥ १४ ॥
वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपगतस्य च । तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ १५ ॥
महिषीत्युच्यते भार्या सा चैव व्यभिचारिणी । तान्दोषान्क्षमते यस्तु स वै माहिषकः स्मृतः॥१७॥
पितुर्गेहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता । भ्रूणहत्या पितुस्तस्य कन्या सा वृषली स्मृता ॥१८॥
यस्तां विवाहयेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः । असंभाष्यो ह्यपांक्तेयः स विप्रो वृषलीपतिः ॥ १९ ॥
प्राप्ते द्वादशमे वर्षे कन्यां यो न प्रयच्छति । मासि मासि रजस्तस्याः पिता पिबति शोणितम्॥२०॥
अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ २१ ॥
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठभ्राता तथैव च । त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २२॥
समर्घं धनमुत्सृज्य मह (हा) र्घं यः प्रयच्छति । स वै वार्धुषिको ज्ञेयो ब्रह्मवादिषु गर्हितः॥२३॥
यावदुष्णं भवेदन्नं यावद्भुञ्जन्ति वाग्यताः । पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ २७ ॥
हविर्गुणा न वक्तव्याः पितरो यान्त्यतर्पिताः । पितृभिस्तर्पितैः पश्चाद्वक्तव्यं शोभनं हविः ॥ २८ ॥
तथैव मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पंक्तिदूषणैः । वर्जितं च यमः प्राह पंक्तिपावन एव सः ॥ ४१ ॥
सूतके वर्तमानेऽपि दासवर्गस्य का क्रिया । स्वामितुल्यं भवेत्तस्य सूतकं तु प्रशस्यते ॥ ५५ ॥
यत्र कार्यते तत्तन्नान्यं प्रत्यब्रवीद्यमः । विवाहोत्सवयज्ञेषु कार्ये चैवमुपस्थिते ॥ ५६ ॥
रजः पश्यति या नारी तस्य कालस्य का क्रिया । विपुले च जले स्नात्वा शुक्लवासास्त्वलंकृता॥५७॥
आपोहिष्ठेत्यृगभिषिक्ताऽयंगौरिति वा ऋचः (चा) । पूजान्ते होमयेत्पश्चाद्घृताहुत्या शताष्टकम्५८
गायत्र्या व्याहृतिभिश्च ततः कर्म समारभेत् । यावद्द्विजा न चार्च्यन्ते अन्नदानहिरण्यकैः ॥ ५९ ॥
अभक्ष्याणामपेयानामलेह्यानां च भक्षणे । रेतोमूत्रपुरीषाणां प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ६२ ॥
पद्मोदुम्बरबिल्वानां कुशाश्वत्थपलाशयोः । एतेषामुदकं पीत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥ ६३ ॥

बृहद्यमस्मृति-४ अध्याय ।

न स्त्रीणां वपन कुर्यान्न च गोव्रजनं स्मृतम् । न च गोष्ठे वसेद्रात्रौ न कुर्याद्वैदिकीं श्रुतिम् ॥ १६ ॥
सर्वान्केशान्समुच्छ्रित्य च्छेदयेदङ्गुलद्वयम् । एवमेव तु नारीणां शिरोमुण्डापनं स्मृतम् ॥१७॥

प्राजापत्यैस्त्रिभिः कृच्छ्रं कृच्छ्रं वै द्वादशाब्दिकम् । एकभक्तं तथा नक्तमुपवासमथापि वा॥ २९ ॥
एतद्दिनचतुष्केण पादकृच्छ्रश्च जायते । त्रिपादकृच्छ्रो विज्ञेयः पापक्षयकरः स्मृतः ॥ २६ ॥
व्यभिचाराहतौ शुद्धिः स्त्रीणां चैव न संशयः । गर्भे जाते परित्यागो नान्यथा मम भाषितम् ॥ ३६ ॥

(९) आपस्तम्बस्मृति-१ अध्याय ।

बालानां स्तनपानादिकार्ये दोषो न विद्यते । विपत्तावपि विप्राणामामन्त्रणचिकित्सने ॥ ९ ॥
औषधं लवणं चैव स्नेहं पुष्ट्यर्थभोजनम् । प्राणिनां प्राणवृत्त्यर्थं प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ११ ॥
अतिरिक्तं न दातव्यं काले स्वल्पं तु दापयेत् । अतिरिक्ते विपन्नानां कृच्छ्रमेव विधीयते ॥ १२ ॥
त्र्यहं निरशनं पादः पादश्चायाचितं त्र्यहम् । सायं त्र्यहं तथा पादः पादः प्रातस्तथा त्र्यहम् ॥१३ ॥
प्रातः सायं दिनार्द्धं च पादोनं सायवर्जितम् । प्रातः पादं चरेच्छूद्रः सायं वैश्यस्य दापयेत् ॥ १४ ॥
अयाचितं तु राजन्ये त्रिरात्रं ब्राह्मणस्य च । पादमेकं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत् ॥ १५ ॥
योजने पादहीनं च चरेत्सर्वं निपातने । घण्टाभरणदोषेण गोस्तु यत्र विपद्भवेत् ॥ १६ ॥
चरेदर्द्धव्रतं तत्र भूषणार्थं कृतं हि तत् । दमने वा निरोधे वा संघाते चैव योजने ॥ १७ ॥
स्तम्भश्शृङ्खलपाशैश्च मृते पादोनमाचरेत् । पाषाणैर्लगुडैर्वापि शस्त्रेणान्येन वा बलात् ॥ १८ ॥
निपातयंति ये पापास्तेषां सर्वं विधीयते । प्राजापत्यं चरेद्विप्रः पादोनं क्षत्रियस्तथा ॥ १९ ॥
कृच्छ्रार्द्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् । द्वौ मासौ पाययेद्वत्सं द्वौ मासौ द्वौ स्तनौ दुहेत्॥२०॥
सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् । हलमष्टगवं धर्म्यं षड्गवं जीवितार्थिनाम् ॥ २२ ॥
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं हि जिघांसिनाम् । अतिवाहातिदोहाभ्यां नासिकाभेदनेन वा ॥ २३ ॥
नदीपर्वतसंरोधे मृते पादोनमाचरेत् । न नारिकेलवालाभ्यां न मुञ्जेन न चर्मणा ॥ २४ ॥
एभिर्गास्तु न बध्नीयाद्बद्ध्वा परवशो भवेत् । कुशैः काशैश्च बध्नीयाद्वृषभं दक्षिणामुखम् ॥ २५ ॥
एषु गोषु विपन्नासु प्रायश्चित्तं न विद्यते। एका यदा तु बहुभिर्दैवाद्व्यापादिता क्वचित् ॥ ३० ॥
पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक् । यन्त्रणे वा चिकित्सार्थे मूढगर्भविमोचने ॥ ३१ ॥
यत्ने कृते विपत्तिश्चेत्प्रायश्चित्तं न विद्यते । सरोमं प्रथमे पादे द्वितीये श्मश्रुकर्त्तनम् ॥ ३२ ॥
तृतीये तु शिखा धार्या सशिखं तु निपातने । सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलद्वयम् ॥ ३३ ॥

आपस्तम्बस्मृति-२ अध्याय ।

काष्ठहस्तगतं पण्यं यच्च पात्राद्विनिस्सृतम् । स्त्रीबालवृद्धचरितं सर्वमेतच्छुचि स्मृतम् ॥ १ ॥
प्रपास्वरण्येषु जलेषु वै गिरौ द्रोण्यां जलं कोशविनिस्सृतं च ।
श्वपाकचाण्डालपरिग्रहेषु पीत्वा जलं पञ्चगव्येन शुद्धिः ॥ २ ॥
न दुष्येत्संतता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः । स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन ॥३॥
अस्थिचर्मादियुक्तं तु खरश्वानोपदूषितम् । उद्धरेदुदकं सर्वं शोधनं परिमार्जनम् ॥ ८ ॥
वापीकूपतडागानां दूषितानां च शोधनम् । कुम्भानां शतमुद्धृत्य पञ्चगव्यं ततः क्षिपेत् ॥ ११ ॥

आपस्तम्बस्मृति-३ अध्याय ।

बालो वृद्धस्तथा रोगी गर्भिणी वायुपीडिता । तेषां नक्तं प्रदातव्यं बालानां प्रहरद्वयम् ॥ ५ ॥
अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः । प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो व्याधित एव च ॥ ६ ॥

आपस्तम्बस्मृति-४ अध्याय ।

चाण्डालकूपभाण्डेषु यो ज्ञानात्पिबते जलम् । प्रायश्चित्तं कथं तस्य वर्णेवर्णे विधीयते ॥ १ ॥
चरेत्सान्तपनं विप्रः प्राजापत्यं तु भूमिपः । तदर्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २ ॥
भुक्तोच्छिष्टस्त्वनाचान्तश्चाण्डालैः श्वपचेन वा । प्रमादात्स्पर्शनं गच्छेत्तत्र कुर्याद्विशोधनम् ॥ ३ ॥
गायत्र्यष्टसहस्रं तु द्रुपदां वा शतं जपेत् । जपंस्त्रिरात्रमनश्नन्पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥
चाण्डालेन यदा स्पृष्टो विण्मूत्रे च कृते द्विजः । प्रायश्चित्तं त्रिरात्रं स्याद्भुक्तोच्छिष्टः षडाचरेत् ॥५॥
एकरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति । येन केनचिदुच्छिष्टी ह्यमेध्यं स्पृशति द्विजः ॥ ११ ॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥

आपस्तम्बस्मृति-५ अध्याय ।

चाण्डालेन यदा स्पृष्टो द्विजवर्णः कदाचन । अनभ्युक्ष्य पिबेत्तोयं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ ॥
ब्राह्मणस्य त्रिरात्रं तु पञ्चगव्येन शुद्ध्यति । क्षत्रियस्य द्विरात्रं तु पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ २ ॥
अहोरात्रं तु वैश्यस्य पञ्चगव्येन शुद्ध्यति । चतुर्थस्य तु वर्णस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ३ ॥
व्रतं नास्ति तपो नास्ति होमो नैव च विद्यते । पञ्चगव्यं न दातव्यं तस्य मन्त्रविवर्जनात् ॥ ४ ॥
ख्यापयित्वा द्विजानां तु शूद्रो दानेन शुद्ध्यति । ब्राह्मणस्य यदोच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ॥५॥
अहोरात्रं तु गायत्र्या जपं कृत्वा विशुद्ध्यति । उच्छिष्टं वैश्यजातीनां भुंक्ते ज्ञानाद्विजो यदि ॥६॥
शङ्खपुष्पीपयः पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति । ब्राह्मण्या सह योऽश्नीयादुच्छिष्टं वा कदाचन ॥ ७ ॥
न तत्र दोषं मन्यन्ते नित्यमेव मनीषिणः । उच्छिष्टमितरस्त्रीणामश्नीयात्स्पृशतेऽपि वा ॥ ८ ॥
प्राजापत्येन शुद्धिः स्याद्भगवानङ्गिराब्रवीत् । अन्त्यानां भुक्तशेषं तु भक्षयित्वा द्विजातयः ॥ ९ ॥
चान्द्रायणं तदर्धार्धं ब्रह्मक्षत्रविशां विधिः । विण्मूत्रभक्षणे विप्रस्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥ १० ॥
श्वकाकोच्छिष्ट गोभिश्च प्राजापत्यविधिः स्मृतः । उच्छिष्टः स्पृशते विप्रो यदि कश्चिदकामतः ॥११॥
शुनः कुक्कुटशूद्रांश्च मद्यभाण्डं तथैव च । पक्षिणाधिष्ठितं यच्च यद्यमेध्यं कदाचन ॥ १२ ॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति । वैश्येन च यदा स्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥ १३ ॥
स्नानं जप्यं च त्रैकाल्यं दिनस्यान्ते विशुद्ध्यति । विप्रो विप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥ १४ ॥
स्नानान्ते च विशुद्धिः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ॥ १५ ॥

आपस्तम्बस्मृति-६ अध्याय ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि नीलीवस्त्रस्य यो विधिः । स्त्रीणां क्रीडार्थसम्भोगे शयनीये न दुष्यति ॥ १ ॥
पालने विक्रये चैव तद्वृत्तेरुपजीवने । पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥ २ ॥
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् । पञ्चयज्ञा वृथा तस्य नीलीवस्त्रस्य धारणात् ॥ ३ ॥
नीलीरक्तं यदा वस्त्रं ब्राह्मणोङ्गेषु धारयेत् । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥
भक्षयेद्यश्च नीलीं तु प्रमादाद्ब्राह्मणः क्वचित् । चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ॥५॥

आपस्तम्बस्मृति-७ अध्याय ।

स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेऽहनि शस्यते । वृत्ते रजसि गम्या स्त्री नानिवृत्ते कथञ्चन ॥ १ ॥
रोगेण यद्रजः स्त्रीणामत्यर्थं हि प्रवर्तते । अशुद्धास्तास्तु नैवेह तासां वैकारिको मदः ॥ २ ॥
साध्वाचारा न तावत्सा रजो यावत्प्रवर्तते । वृत्ते रजसि साध्वी स्याद्गृहकर्मणि चेन्द्रिये ॥ ३ ॥
प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी । तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥ ४ ॥
रजस्वलान्त्यजैः स्पृष्टा शुना च श्वपचेन च । त्रिरात्रोपोषिता भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥
प्रथमेहनि षड्रात्रं द्वितीये तु त्र्यहस्तथा । तृतीये चोपवासस्तु चतुर्थे वह्निदर्शनात् ॥ ८ ॥
रजस्वला तु या नारी अन्योन्यं स्पृशते यदि । तावत्तिष्ठेन्निराहारा स्नात्वा कालेन शुद्ध्यति ॥१२॥

आपस्तम्बस्मृति- ८ अध्याय ।

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते । सुराविण्मूत्रसंस्पृष्टं शुद्ध्यते तापलेखनैः ॥ १ ॥
गवाघ्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि तु । भस्मभिर्दश शुद्ध्यन्ति श्वकाकोपहतानि च ॥२॥
शौचं सौवर्णरौप्याणां वायुसूर्येन्दुरश्मिभिः । रेतःस्पृष्टं शवस्पृष्टमाविकं तु प्रदुष्यति ॥ ३ ॥
अद्भिर्मृदा च तत्पात्रं प्रक्षाल्य च विशुद्ध्यति । शुष्कमन्नमवेद्यस्य पञ्चरात्रेण जीर्यति ॥ ४ ॥
स वत्सरेण तैलं तु कोष्ठे जीर्यति वा नवा । भुञ्जते ये तु शूद्रान्नं मासमेकं निरंतरम् ॥ ६ ॥
इह जन्मनि शूद्रत्वं जायन्ते ते मृताः शुनि । शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कः शूद्रेणैव सहासनम् ॥ ७ ॥
स भवेत्सूकरो ग्राम्यस्तस्य वा जायते कुले । ब्राह्मणस्य सदा भुङ्क्ते क्षत्रियस्य तु पर्वणि ॥ ११॥
वैश्यस्य यज्ञदीक्षायां शूद्रस्य न कदाचन । अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियस्य पयः स्मृतम् ॥ १२ ॥
वैश्यस्याप्यन्नमेवान्नं शूद्रस्य रुधिरं स्मृतम् । वैश्वदेवेन होमेन देवताभ्यर्चनैर्जपैः ॥ १३ ॥

आपस्तम्बस्मृति–९ अध्याय ।

अशित्वा सर्वमेवान्नमकृत्वा शौचमात्मनः । मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु यवान्पीत्वा विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥
प्रसृत यवसस्येन पलमेकं तु सर्पिषा । पलानि पञ्च गोमूत्रं नातिरिक्तवदाशयेत् ॥ ४ ॥
अलेह्यानामपेयानामभक्ष्याणां च भक्षणे । रेतोमूत्रपुरीषाणां प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ५ ॥
पद्मोदुम्बरबिल्वाश्च कुशाश्च सपलाशकाः । एतेषामुदकं पीत्वा षड्रात्रेण विशुद्ध्यति ॥ ६ ॥
ये प्रत्यवसिता विप्राः प्रव्रज्याग्निजलादिषु । अनाशकनिवृत्ताश्च गृहस्थत्वं चिकीर्षिताः ॥ ७ ॥
चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि वा । जातकर्मादिभिः सर्वैः पुनः संस्कारभागिनः॥८॥
तेषां सान्तपनं कृच्छ्रं चान्द्रायणमथापि वा । यद्वेष्टितं काकबलाकयोर्वा अमेध्यलिप्तं च भवेच्छरीरम्॥
मृत्तिकाशोधनं स्नानं पञ्चगव्यं विशोधनम् । दशाहाच्छुद्ध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु ॥ १२ ॥
षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु । उपनीतं यदा त्वन्नं भोक्तारं समुपस्थितम् ॥ १३ ॥
एवं तु श्रेयसा युक्तो वरुणेनाभिपूज्यते । अग्न्यागारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ ॥ २० ॥
स्वाध्याये भोजने चैव पादुकानां विसर्जनम् । ॥ २१ ॥
असपिण्डैर्न कर्त्तव्यं चूडाकार्ये विशेषतः । याजकान्नं नवश्राद्धं संग्रहे चैव भोजनम् ॥ २२ ॥
स्त्रीणां प्रथमगर्भे च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् । ब्रह्मौदनेवसाने च सीमन्तोन्नयने तथा ॥ २३ ॥
अन्नश्राद्धे मृतश्राद्धे भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् । अप्रजा या तु नारी स्यान्नाश्नीयादेव तद्गृहे ॥२४॥
अथ भुञ्जीत मोहाद्यः पूयसं नरकं व्रजेत् । अल्पेनापि हि शुल्केन पिता कन्यां ददाति यः ॥ २५॥
रौरवे बहुवर्षाणि पुरीषं मूत्रमश्नुते । स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः ॥ २६ ॥
स्वर्णं यानानि वस्त्राणि ते पापा यान्त्यधोगतिम् । राजान्नमोज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥ २७ ॥
विशेषाद्भुक्तमेतेषां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् । रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनः ॥ ३१ ॥
भुक्त्वैषां ब्राह्मणश्चान्नं शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु । उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः कदाचिदुपजायते ॥ ३२ ॥
मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु गव्यं पीत्वा विशुद्ध्यति । उदक्यां यदि गच्छेत्तु ब्राह्मणो मदमोहितः॥३८॥
चान्द्रायणेन शुद्ध्येत ब्राह्मणानां च भोजनैः । भुक्तवोच्छिष्टस्त्वनाचान्तश्चाण्डालैः श्वपचेन वा॥३९॥

आपस्तम्बस्मृति–१० अध्याय ।

सर्वं हरति तत्तस्य आमकुंभ इवोदकम् । अपमानात्तपोवृद्धिः संमानात्तपसः क्षयः ॥ ९ ॥
अर्चितः पूजितो विप्रो दुग्धा गौरिव सीदति । आप्यायते यथाधेनुस्तृणैरमृतसंभवैः ॥ १० ॥
एव जपैश्च होमैश्च पुनराप्यायते द्विजः । मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत् ॥ ११ ॥
या भुङ्क्ते भुक्तमेतेषां प्राजापत्यं विशोधनम् । अगम्यागमनं कृत्वा अभक्ष्यस्य च भक्षणम्॥१३॥
शुद्धिश्चान्द्रायणं कृत्वा अथर्वोक्ते तथैव च । अग्निहोत्रं त्यजेद्यस्तु स नरो वीरहा भवेत् ॥ १४ ॥
तस्य शुद्धिर्विधातव्या नान्या चान्द्रायणादृते । विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके ॥ १५ ॥
सद्यः शुद्धिं विजानीयात्पूर्वसङ्कल्पितं च यत् । देवद्रोण्यां विवाहे च यज्ञेषु प्रततेषु च ॥ १६ ॥

(१०) संवर्तस्मृति ।

स्वभावाद्विचरेद्यत्र कृष्णसारः सदा मृगः । धर्मदेशः स विज्ञेयो द्विजानां धर्मसाधनम् ॥ ४ ॥
सन्ध्यां प्रातः सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि । सादित्यां पश्चिमां सन्ध्यामर्द्धास्तमितभास्करे ॥ ६ ॥
तिष्ठन्पूर्वं जपं कुर्यात्सावित्रीमार्कदर्शनात् । आसीनः पश्चिमां सन्ध्यां सम्यगृक्षविभावनात् ॥ ७ ॥
सायं प्रातस्तु भिक्षेत ब्रह्मचारी सदा व्रती । निवेद्य गुरवेऽश्नीयात्प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः ॥ ११ ॥
सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिनोदितम् । नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्री समाहितः ॥ १२ ॥
शूद्रः शुद्ध्यति हस्तेन वैश्यो दन्तेषु वारिभिः । कण्ठागतैः क्षत्रियस्तु आचान्तः शुचितामियात्॥२०॥
ब्रह्मचारी तु यो गच्छेत्स्त्रियं कामप्रपीडितः । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमथ त्वेकं सुयन्त्रितः ॥ २४ ॥
ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधु मांसं कथञ्चन । प्राजापत्यं तु कृत्वाऽसौ मौञ्जीहोमेन शुध्यति ॥ २५ ॥
ब्राह्मेणैव विवाहेन शीलरूपगुणान्विताम् । अतः पञ्चमहायज्ञान्कुर्यादहरहर्द्विजः ॥ ३५ ॥
न हापयेत्तु ताञ्छक्तः श्रेयस्कामः कदाचन । हानिं तेषां तु कुर्वीत सदा मरणजन्मनोः ॥ ३६ ॥
विप्रो दशाहमासीत दानाध्ययनवर्जितः । क्षत्रियो द्वादशाहानि वैश्यः पञ्चदशैव तु ॥ ३७ ॥

शूद्रः शुध्यति मासेन संवर्त्तवचनं यथा । प्रेतस्य तु जलं देयं स्नात्वा तद्गोत्रजैः सह ॥ ३८ ॥
प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा । चतुर्थेऽहनि कर्तव्यमस्थिसञ्चयनं द्विजैः ॥ ३९ ॥
ततः सञ्चयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते । चतुर्थेहनि विप्रस्य षष्ठे वै क्षत्रियस्य च ॥ ४० ॥
भूताभयप्रदानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् । दीर्घमायुश्च लभते सुखी चैव सदा भवेत् ॥ ५३ ॥
धान्योदकप्रदायी च सर्पिर्दः सुखमेधते । अलंकृतस्त्वलंकारं दाताऽऽप्नोति महत्फलम् ॥ ५४ ॥
पादुकोपानहौ छत्रशयनान्यासनानि च । विविधानि च यानानि दत्त्वा द्रव्यपतिर्भवेत् ॥ ५७ ॥
अलंकृत्य तु यः कन्यां वराय सदृशाय वै । ब्राह्मेण तु विवाहेन दद्यात्तां तु सुपूजिताम् ॥ ६१ ॥
स कन्यायाः प्रदानेन श्रेयो विन्दन्ति पुष्कलम्।साधुवादं स वै सद्भिः कीर्तिं प्राप्नोति पुष्कलाम् ६२
ज्योतिष्टोमातिरात्राणां शतं शतगुणीकृतम् । प्राप्नोति पुरुषो दत्त्वा होममन्त्रैश्च संस्कृताम् ॥ ६३ ॥
अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६६ ॥
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च । त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ६७॥
तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् । विवाहो ह्यष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥ ६८ ॥
तैलामलकदाता च स्नानाभ्यङ्गप्रदायकः । नरः प्रहृष्टश्चासीत सुभगश्चोपजायते ॥ ६९ ॥
धेनुं च यो द्विजे दद्यादलंकृत्य पयस्विनीम् । कांस्यवस्त्रादिभिर्युक्तां स्वर्गलोके महीयते ॥ ७२ ॥
भूमिं सस्यवतीं श्रेष्ठां ब्राह्मणे वेदपारगे । गां दत्त्वार्द्धप्रसूतां च स्वर्गलोके महीयते ॥ ७३ ॥
यावन्ति सस्यमूलानि गोरोमाणि च सर्वशः । नरस्तावन्ति वर्षाणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ७४ ॥
यो ददाति शफै रौप्यैर्हेमशृङ्गीमरोगिणीम् । सवत्सां वाससावीतां सुशीलां गां पयस्विनीम् ॥ ७५ ॥
तस्यां यावन्ति रोमाणि सवत्सायां दिवं गतः । तावन्ति वत्सरान्तानि स नरो ब्रह्मणोन्तिके ॥७६॥
यो ददाति बलीवर्दमुक्तेन विधिना शुभम् । अव्यङ्गं गोप्रदानेन दत्तं दशगुणं फलम् ॥ ७७ ॥
अन्नदस्तु भवेन्नित्यं सुतृप्तो निभृतः सदा । अम्बुदश्च सुखी नित्यं सर्वकर्मसमन्वितः ॥ ८० ॥
सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् । सर्वेषामेव जन्तूनां यतस्तज्जीवितं परम् ॥ ८१ ॥
शुचिगन्धसमायुक्तो अवाग्दुष्टस्सदा भवेत् । पादशौचं तु यो दद्यात्तथा तु गुदलिङ्गयोः ॥ ८५ ॥
यः प्रयच्छति विप्राय शुद्धबुद्धिस्सदा भवेत् । औषधं पथ्यमाहारं स्नेहाभ्यङ्गं प्रतिश्रयम् ॥ ८६ ॥
यः प्रयच्छति रोगिभ्यः स भवेद्व्याधिवर्जितः । गुडमिक्षुरसं चैव लवणं व्यंजनानि च ॥ ८७ ॥
विद्यादानेन सुमतिर्ब्रह्मलोके महीयते । अन्योन्यान्नप्रदा विप्रा अन्योन्यप्रतिपूजकाः ॥ ८९ ॥
वलीपलितसंयुक्तस्तृतीयं तु समाश्रयेत् । वनं गच्छेत्ततः प्राज्ञः सभार्यस्त्वेक एव वा ॥ १०२ ॥
गृहीत्वा चाग्निहोत्रं च होमं तत्र न हापयेत् । कृत्वा चैव पुरोडाशं वन्यैर्मेध्यैर्यथाविधि ॥ १०३ ॥
भिक्षां च भिक्षवे दद्याच्छाकमूलफलादिभिः । कुर्यादध्ययनं नित्यमग्निहोत्रपरायणः ॥ १०४ ॥
इष्टिं पार्वायणीयां तु प्रकुर्यात्प्रतिपर्वसु । उषित्वैवं वने विप्रो विधिज्ञः सर्वकर्मसु ॥ १०५ ॥
चतुर्थमाश्रमं गच्छेज्जितक्रोधो जितेन्द्रियः । अग्निमात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितो भवेत् ॥१०६॥
वेदाभ्यासरतो नित्यमात्मविद्यापरायण' । अष्टौ भिक्षाः समादाय स मुनिः सप्त पञ्च वा ॥१०७ ॥
अद्भिः प्रक्षाल्य ताः सर्वा भुञ्जीत सुसमाहितः । अरण्ये निर्जने तत्र पुनरासीत भुक्तवान् ॥१०८॥
एकाकी चिन्तयेन्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः । मृत्युं च नाभिनन्देत जीवितं वा कथचन ॥ १०९ ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् । ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥ ११२ ॥
महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पञ्चमः । ब्रह्मघ्नश्च वन गच्छेद्वल्कवासा जटी ध्वजी ॥ ११३ ॥
वन्यान्येव फलान्यश्नन् सर्वकामविवर्जितः । भिक्षार्थी विचरेद्ग्रामं वन्यैर्यदि न जीवति ॥ ११४ ॥
चातुर्वर्ण्ये चरेद्भैक्ष्यं बद्धाञ्जी संयतः सदा । भिक्षास्त्वेवं समादाय वनं गच्छेत्ततः पुनः ॥ ११५॥
वनवासी स पापः स्यात्सदाकालमतन्द्रितः । ख्यापयन्मुच्यते पापाद्ब्रह्महा पापकृत्तमः ॥ ११६ ॥
अनेन तु विधानेन द्वादशाब्दव्रतं चरेत् । सन्नियम्येंद्रियग्रामं सर्वभूतहिते रतः ॥ ११७ ॥
ब्रह्महत्यापनोदाय ततो मुच्येत किल्बिषात् । अतः परं सुरापस्य निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ॥ ११८ ॥
गौड़ी माध्वी च पैष्टी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा । यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः॥११९॥
सुरापस्तु सुरां तप्तां पिबेत्तत्पापमोक्षकः । गोमूत्रमग्निवर्णं वा गोमयं वा तथाविधम् ॥ १२० ॥

घृतश्चैव सुतप्तञ्च क्षीरं वापि तथाविधम्। वत्सरं वा कणानश्नन्सर्वकामविवर्जितः ॥ १२१॥
चान्द्रायणानि वा त्रीणि सुरापो व्रतमाचरेत्। मुच्यते तेन पापेन प्रायश्चित्ते कृते सति॥ १२२॥
स्तेयं कृत्वा सुवर्णस्य स्तेयं राज्ञे निवेदयेत्। ततो मुसलमादाय स्तेनं हन्यात्सकृन्नृपः ॥ १२४॥
यदि जीवति स स्तेनस्ततः स्तेयाद्विमुच्यते। अरण्ये चीरवासा वा चरेद्ब्रह्महणो व्रतम्॥ १२५ ॥
एवं शुद्धिः कृता स्तेये संवर्तवचनं यथा। गुरुतल्पे शयानस्तु तप्ते स्वप्यादयोमये ॥ १२६ ॥
समालिङ्गेत्स्त्रियं वापि दीप्तां कार्ष्णायसीं कृताम्। चांद्रायणानि कुर्याच्च च त्वारि त्रीणि वा द्विजः॥
मुच्यते च ततः पापात्प्रायश्चित्ते कृते सति। एभिः सम्पर्कमायाति यः कश्चित्पापमोहितः ॥१२८॥
तत्तत्पापविशुद्ध्यर्थं तस्य तस्य व्रतं चरेत्। क्षत्रियस्य वधं कृत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥१२९ ॥
कुर्याच्चैवानुरूपेण त्रीणि कृच्छ्राणि संयतः। वैश्यहत्यां तु संप्राप्तः कथंचित्काममोहितः ॥ १३० ॥
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत स नरो वैश्यघातकः। कुर्याच्छूद्रवधे विप्रस्तप्तकृच्छ्रं यथाविधि ॥ १३१ ॥
एवं शुद्धिमवाप्नोति संवर्त्तवचनं यथा। गोघ्नस्यातः प्रवक्ष्यामि निष्कृतिं तत्त्वतः शुभाम्॥ १३२ ॥
व्यापन्नानां बहूनां तु रोधने बन्धनेपि वा। भिषङ्मिथ्योपचारे च द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥ १३७ ॥
एका चेद्बहुभिः काचिद्दैवाद्व्यापादिता क्वचित्। पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥१३८॥
यन्त्रणे गोश्चिकित्सार्थे गूढगर्भविमोचने। यदि तत्र विपत्तिः स्यान्न स पापेन लिप्यते ॥ १३९ ॥
औषधं स्नेहमाहारं दद्याद्गोब्राह्मणेषु च। दीयमाने विपत्तिः स्यात्पुण्यमेव न पातकम्॥ १४० ॥
हस्तिनं तुरगं हत्वा महिषोष्ट्रकपींस्तथा। एषां वधे द्विजः कुर्यात्सप्तरात्रमभोजनम् ॥ १४३ ॥
व्याघ्रं श्वानं खरं सिंहमृक्षं सूकरमेव च। एतान्हत्वा द्विजो मोहात्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ १४४ ॥
सर्वासामेव जातीनां मृगाणां वनचारिणाम्। अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम्॥ १४५ ॥
हंसं काकं बलाकां च बर्हिकारण्डवावपि। सारसं चाषभासौ च हत्वा त्रिदिवसं क्षिपेत् ॥ १४६ ॥
चक्रवाकं तथा क्रौंचं सारिकाशुकतित्तिरीन्। श्येनगृध्रानुलूकांश्च पारावतमथापि वा ॥ १४७ ॥
टिट्टिभं जालपादं च कोकिलं कुक्कुटं तथा। एषां वधे नरः कुर्यादेकरात्रमभोजनम्॥ १४८ ॥
पूर्वोक्तानां तु सर्वेषां हंसादीनामशेषतः। अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥ १४९ ॥
मण्डूकं चैव हत्वा च सर्पमार्जारमूषकान्। त्रिरात्रोपोषितस्तिष्ठेत्कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम्॥ १५० ॥
अनस्थीन्ब्राह्मणो हत्वा प्राणायामेन शुद्ध्यति। अस्थिमतां वधे विप्रः किञ्चिद्दद्याद्विचक्षणः॥१५१॥
यश्चाण्डालीं द्विजो गच्छेत्कथंचित्काममोहितः। त्रिभिः कृच्छ्रैस्तु शुद्ध्येत प्राजापत्यानुपूर्वकैः१५२॥
शैलूषी रजकी चैव वेणुचर्मोपजीविनी। एता गत्वा द्विजो मोहाच्चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥ १५५ ॥
क्षत्रियां क्षत्रियो गत्वा तदेव व्रतमाचरेत्। नरो गोगमनं कृत्वा कुर्याच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥ १५९ ॥
मातुलानीं तथा श्वश्रूं सुतां वै मातुलस्य च। एता गत्वा स्त्रियो मोहात्पराकेण विशुद्ध्यति॥१६०॥
गुरोर्दुहितरं गत्वा स्वसारं पितुरेव च। तस्या दुहितरं चैव चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥ १६१ ॥
पितृव्यदारगमने भ्रातृभार्यागमे तथा। गुरुतल्पव्रतं कुर्यान्निष्कृतिर्नान्यथा भवेत् ॥ १६२ ॥
पितृभार्यां समारुह्य मातृवर्जं नराधमः। भगिनीं मातुराप्तां च स्वसारं चान्यमातृजाम् ॥ १६३ ॥
एतास्तिस्रः स्त्रियो गत्वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्। कुमारीगमने चैव व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ १६४ ॥
पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते। सखिभार्यां समारुह्य श्वश्रूं वा श्यालिकां तथा ॥ १६५ ॥
मातरं योधिगच्छेच्च स्वसारं पुरुषोधमः। न तस्य निष्कृतिर्दद्यात्स्वां चैव तनुजां तथा ॥ १६६ ॥
रजस्वलां तु यो गच्छेद्गर्भिणीं पतितां तथा। तस्य पापविशुद्ध्यर्थमतिकृच्छ्रो विधीयते ॥ १६८ ॥
चाण्डालं पुक्कसं चैव श्वपाकं पतितं तथा। एताः श्रेष्ठाः स्त्रियो गत्वा कुर्याच्चान्द्रायणत्रयम् ॥१७३॥
नृणां विप्रतिपत्तौ च पावनः प्रेत्य चेह च। गोविप्रप्रहते चैव तथा चैवात्मघातिनि ॥ १७७ ॥
नैवाश्रुपतनं कार्यं सद्भिः श्रेयोभिकांक्षिभिः। एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा ॥ १७८ ॥
तथोदकक्रियां कृत्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम्। तच्छवं केवलं स्पृष्ट्वा अश्रु नो पातितं यदि ॥ १७९ ॥
चाण्डालं पतितं स्पृष्ट्वा शवमन्त्यजमेव च। उदक्यां सूतिकां नारीं सवासाः स्नानमाचरेत् ॥१८४॥
चाण्डालभाण्डसंस्पृष्टं पिबेत्कूपगतं जलम्। गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥ १८८ ॥
अन्त्यजैः स्वीकृते तीर्थे तडागेषु नदीषु च। शुद्ध्यते पञ्चगव्येन पीत्वा तोयमकामतः ॥ १८९ ॥

कूपे विण्मूत्रसंस्पृष्टः प्राश्य चापो द्विजातयः । त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यन्ति कुम्भे सान्तपनं स्मृतम् ॥ १९१ ॥
वापीकूपतडागानामुपहतानां विशोधनम् । अपां घटशतोद्धारः पञ्चगव्यं च निक्षिपेत् ॥ १९२ ॥
स्त्रीक्षीरमाविकं पीत्वा सन्धिन्याश्चैव गोः पयः । तस्य शुद्धिस्त्रिरात्रेण द्विजानां चैव भक्षणे ॥ १९३ ॥
विण्मूत्रभक्षणे चैव प्राजापत्यं समाचरेत् । श्वकाकोच्छिष्टगोच्छिष्टभक्षणे तु त्र्यहं द्विजः ॥ १९४ ॥
बिडालमूषिकोच्छिष्टे पञ्चगव्यं पिबेद्द्विजः । शूद्रोच्छिष्टं तथा भुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ १९५ ॥
पलाण्डुं लशुनं जग्ध्वा तथैव ग्रामकुक्कुटम् । छत्राकं विड्वराहं च चरेत्सान्तपनं द्विजः ॥ १९६ ॥
श्वबिडालखरोष्ट्राणां कपेर्गोमायुकाकयोः । प्राश्य मूत्रपुरीषे वा चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥ १९७ ॥
अन्नं पर्युषितं भुक्त्वा केशकीटैरुपद्रुतम् । पतितैः प्रेक्षितं वापि पञ्चगव्यं द्विजः पिबेत् ॥ १९८ ॥
अन्त्यजाभाजने भुक्त्वा ह्युदक्याभाजने तथा। गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ १९९ ॥
गोमांसं मानुषं चैव शुनो हस्तात्समाहृतम् । अभक्ष्यं तद्भवेत्सर्वं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ २०० ॥
चाण्डाले संकरे विप्रः श्वपाके पुक्कसेपि वा । गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुध्यति ॥ २०१ ॥
यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः । तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्या प्रत्यहं द्विजः ॥ २०४ ॥
सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं तथैव च । नाशयन्त्याशु पापानि ह्यन्यजन्मकृतान्यपि ॥ २०७ ॥
अयने विषुवे चैव व्यतीपाते दिनक्षये । चन्द्रसूर्यग्रहे चैव दत्तं भवति चाक्षयम् ॥ २११ ॥
अमावास्यां च द्वादश्यां संक्रान्तौ च विशेषतः । एताः प्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च ॥ २१२ ॥
तत्र स्नानं जपो होमो ब्राह्मणानां च भोजनम् । उपवासस्तथा दानमेकैकं पावयेन्नरम् ॥ २१३ ॥
अयाज्ययाजनं कृत्वा भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम् । गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ २२३ ॥
प्रणवेन च संयुक्ता व्याहृतीः सप्त नित्यशः । गायत्रीं शिरसा सार्द्धं मनसा त्रिः पठेद्द्विजः ॥ २२६ ॥
निगृह्य चात्मनः प्राणान्प्राणायामो विधीयते । प्राणायामत्रयं कुर्यान्नित्यमेव समाहितः ॥ २२७ ॥

(११) कात्यायनस्मृति-१ खण्ड ।

त्रिवृदूर्ध्वं वृतं कार्यं तन्तुत्रयमधोवृतम् । त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते ॥ २ ॥
पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम् । तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातो लम्बं न चोच्छ्रितम् ॥ ३ ॥
सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च । विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥ ४ ॥
तदासीनेन कर्त्तव्यं न प्रह्वेण न तिष्ठता । गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ॥ ११ ॥
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः । धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेवतया सह ॥ १२ ॥
गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्चतुर्दश । कर्मादिषु तु सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः ॥ १३ ॥

कात्यायनस्मृति-८ खण्ड ।

वर्णे ज्येष्ठे न बह्वीभिः सवर्णाभिश्च जन्मतः । कार्यमग्निच्युतेराभिः साध्वीभिर्मन्थनं पुनः ॥ ६ ॥

कात्यायनस्मृति-१० खण्ड ।

नारदाद्युक्तवार्क्षं यदष्टांगुलमपाटितम् । सत्वचं दन्तकाष्ठं स्यात्तदग्रेण प्रधावयेत् ॥ २ ॥
उत्थाय नेत्रे प्रक्षाल्य शुचिर्भूत्वा समाहितः । परिजप्य च मन्त्रेण भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ ३ ॥
आयुर्बलं यशो वर्च्चः प्रजाः पशून्वसूनि च । ब्रह्म प्रज्ञाञ्च मेधाञ्च त्वन्नो धेहि वनस्पते ॥ ४ ॥
स्वर्धुन्यम्भःसमानि स्युः सर्वाण्यम्भांसि भूतले । कूपस्थान्यपि सोमार्कग्रहणेनात्र संशयः ॥ १४ ॥

कात्यायनस्मृति-१३ खण्ड ।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् । होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ३ ॥
श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात्पित्र्यो बलिरथापि वा । यश्च श्रुतिजपः प्रोक्तो ब्रह्मयज्ञः स चोच्यते ॥ ४ ॥
मुनिभिर्द्विरशनमुक्तं विप्राणां मर्त्यवासिनां नित्यम् । अहनि च तथा तमस्विन्यां सार्द्धप्रथमयामान्तः ९

कात्यायनस्मृति-१६ खण्ड ।

ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते । ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ ९ ॥
यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत् । यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः ॥ २१ ॥

कात्यायनस्मृति–१६ खण्ड।

स्वपितुः पितृकृत्येषु ह्यधिकारी न विद्यते। न जीवन्तमतिक्रम्य किंचिद्दद्यादिति श्रुतिः॥ १२॥
पितामहे जीवति च पितुः प्रेतस्य निर्वपेत्। पितुस्तस्य च वृत्तस्य जीवेच्चेत्प्रपितामहः॥ १३॥
पितुः पितुः पितुश्चैव तस्यापि पितुरेव च। कुर्यात्पिण्डत्रयं यस्य संस्थितः प्रपितामहः॥ १४॥
जीवन्तमतिदद्याद्वा प्रेतायान्नोदके द्विजः। पितुः पितृभ्यो वा दद्यात्स पितेत्यपरा श्रुतिः॥ १५॥
पितामहः पितुः पश्चात्पञ्चत्वं यदि गच्छति। पौत्रेणैकादशाहादि कर्त्तव्यं श्राद्धषोडषम्॥ १६॥
नैतत्पौत्रेण कर्त्तव्य पुत्रवांश्चेत्पितामहः। पितुः सपिण्डनं कृत्वा कुर्यान्मासानुमासिकम्॥ १७॥

कात्यायनस्मृति–१८ खण्ड।

स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुतसंस्कारकर्मसु। पिण्डानोद्वहनात्तेषां तस्याभावे तु तत्क्रमात्॥ २१॥

कात्यायनस्मृति–१९ खण्ड।

या वा स्याद्वीरसूरासामाज्ञासम्पादिनी प्रिया। दक्षा प्रियंवदा शुद्धा तामत्र विनियोजयेत्॥ ४॥

कात्यायनस्मृति–२० खण्ड।

मृतायामपि भार्यायां वैदिकाग्निं न हि त्यजेत्। उपाधिनापि तत्कर्म यावज्जीवं समाचरेत्॥ ९॥
यो दहेदग्निहोत्रेण स्वेन भार्यां कथंचन। सा स्त्री संपद्यते तेन भार्या वास्य पुमान् भवेत्॥ ११॥

कात्यायनस्मृति–२२ खण्ड।

एवमुक्त्वा व्रजेयुस्ते गृहाल्लघु पुरःसराः। स्नानाग्निस्पर्शनाज्याशैः शुध्येयुरितरे कृतैः॥ १०॥

कात्यायनस्मृति–२३ खण्ड।

विदेशमरणेस्थीनि ह्याहृत्याभ्यज्य सर्पिषा। दाहयेदूर्णयाच्छाद्य पात्रन्यासादि पूर्ववत्॥ २॥
अस्थ्नामलाभे पर्णानि सकलान्युक्तया वृता। भर्जयेदस्थिसंख्यानि ततः प्रभृति सूतकम्॥ ३॥

कात्यायनस्मृति–२४ खण्ड।

कृतमौदनसक्त्वादि तण्डुलादि कृताकृतम्। व्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति हव्यं त्रिधा बुधैः॥ ३॥
न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वकं क्वचित्। न दीक्षण्यात् परं यज्ञे न कृच्छ्रादितपश्चरन्॥ ५॥
पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित्। आशौचं कर्मणोऽन्ते स्यात्र्यहं वा ब्रह्मचारिणः॥ ६॥
कर्तृसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम्। प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः॥१४॥

कात्यायनस्मृति–२५ खण्ड।

सशिखं वपनं कार्यमास्नानाद्ब्रह्मचारिणा। आशरीरविमोक्षाय ब्रह्मचर्यं न चेद्भवेत्॥ १४॥
अनिष्ट्वा नवयज्ञेन नवान्नं योऽत्त्यकामतः। वैश्वानरश्चरुस्तस्य प्रायश्चित्तं विधीयते॥ १८॥

कात्यायनस्मृति–२६ खण्ड।

शरद्वसन्तयोः केचिन्नवयज्ञं प्रचक्षते। धान्यपाकवशादन्ये श्यामाको वनिनः स्मृतः॥ ९॥
व्रीहयः शालयो मुद्गा गोधूमाः सर्षपास्तिलाः। यवाश्चौषधयः सप्त विपदं घ्नन्ति धारिताः॥ १३॥

कात्यायनस्मृति–२७ खण्ड।

यच्छ्राद्धं कर्मणामादौ या चान्ते दक्षिणा भवेत्। अमावास्यां द्वितीयं यदन्वाहार्यं तदुच्यते॥ १॥
अनूचो माणवो ज्ञेय एणः कृष्णमृगः स्मृतः। रुरुर्गौरमृगः प्रोक्तस्तम्बलः शोण उच्यते॥ ११॥

कात्यायनस्मृति–२८ खण्ड।

अक्षतासु यवाः प्रोक्ता भ्रष्टा धाना भवन्ति ते। भ्रष्टासु व्रीहयो लाजा घटः खाण्डिक उच्यते॥१॥

कात्यायनस्मृति–२९ खण्ड।

साक्षतं सुमनोयुक्तमुदकं दधिसंयुतम्। अर्घ्यं दधिमधुभ्यां च मधुपर्को विधीयते॥ १८॥
कांस्येनैवार्हणीयस्य निनयेदर्घ्यमञ्जलौ। कांस्यापिधानं कांस्यस्थं मधुपर्कं समर्पयेत्॥ १९॥

(१२) बृहस्पतिस्मृति ।

सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं च वासव । एतत्प्रयच्छमानस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥
दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डा निवर्त्तनम् । दश तान्येव विस्तारो गोचर्मैतन्महाफलम् ॥ ८ ॥
सवृषं गोसहस्रं तु यत्र तिष्ठत्यतन्द्रितम् । बालवत्साप्रसूतानां तद्गोचर्म इति स्मृतम् ॥ ९ ॥
अन्नदाः सुखिनो नित्यं वस्त्रदश्चैव रूपवान् । स नरस्सर्वदो भूप यो ददाति वसुन्धराम् ॥ १३ ॥
आदित्यो वरुणो वह्निर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः । शूलपाणिश्च भगवानभिनन्दति भूमिदम् ॥ १६ ॥
काङ्क्षन्ति पितरः सर्वे नरकाद्भयभीरवः । गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ॥ २० ॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत् । यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ २१ ॥
लोहितो यस्तु वर्णेन पुच्छाग्रे यस्तु पाण्डुरः । श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ॥२२ ॥
ऊर्ध्वं चाधोवतिष्ठेत यावदाभूतसंप्लवम् । अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ॥३०॥
लोकास्त्रयस्तेन भवन्ति दत्ता यःकाञ्चनं गां च महीं च दद्यात् ।षडशीति सहस्राणां योजनानां वसुन्धराम्॥
स्वयं दत्ता तु सर्वत्र सर्वकामप्रदायिनी । भूमिं यः प्रतिगृह्णाति भूमिं यश्च प्रयच्छति ॥ ३२ ॥
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतं स्वर्गगामिनौ । सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् ॥ ३३ ॥
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् । यो न हिंस्यादहं ह्यात्मा भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥ ३४ ॥
अविद्वान्प्रतिगृह्णाति भस्मीभवति काष्ठवत् । यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चापि बहुश्रुतः ॥ ६० ॥
बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः । कुलं तारयते धीरः सप्तसप्त च वासव ॥ ६१ ॥
दीपालोकप्रदानेन वपुष्मान्स भवेन्नरः । प्रेक्षणीयप्रदानेन स्मृतिं मेधां च विन्दति ॥ ६६ ॥
कृत्वापि पापकर्माणि यो दद्यादन्नमर्थिने । ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन लिप्यते ॥ ६७ ॥

(१३) पाराशरस्मृति-१ अध्याय ।

धर्मं कथय मे तात अनुग्राह्यो ह्यहं तव । श्रुता मे मानवा धर्मा वासिष्ठाः काश्यपास्तथा । १२ ॥
गार्गीया गौतमीयाश्च तथा चौशनसाः स्मृताः । अत्रेर्विष्णोश्च संवर्ताद्दाक्षादङ्गिरसस्तथा ॥ १३ ॥
शातातपाच्च हारीताद्याज्ञवल्क्यात्तथैव च । आपस्तंवकृताः धर्माः शङ्खस्य लिखितस्य च ॥ १४ ॥
कात्यायनकृताश्चैव तथा प्राचेतसान्मुनेः । श्रुता ह्येते भवत्प्रोक्ताः श्रौतार्था मे न विस्मृताः ॥१९ ॥
अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपाऽनुसारतः । तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥ २३ ॥
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेक कलौ युगे । कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः ॥ २४ ॥
द्वापरे शङ्खलिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः । त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ॥ २५ ॥
इष्टो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पण्डित एव वा । संप्राप्तो वैश्वदेवान्ते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥४० ॥
दूराच्चोपगतं श्रान्तं वैश्वदेव उपस्थितम् । अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः ॥ ४१ ॥
नैकग्रामीणमतिथिं संगृह्णीत कदाचन । अनित्यमागतो यस्मात्तस्मादऽतिथिरुच्यते ॥ ४२ ॥
अतिथिं तत्र संप्राप्तं पूजयेत्स्वागतादिना । तथासनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च ॥ ४३ ॥
श्रद्धया चान्नदानेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च । गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद्गृही ॥ ४४ ॥
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्त्तते । पितरस्तस्य नाश्नन्ति दश वर्षाणि पञ्च च ॥ ४५ ॥
काष्ठभारसहस्रेण घृतकुम्भशतेन च । अतिथिर्यस्य भग्नाशस्तस्य होमो निरर्थकः ॥ ४६ ॥
न पृच्छेद्गोत्रचरणे न स्वाऽध्यायं श्रुतं तथा । हृदये कल्पयेद्देवं सर्वदेवमयो हि सः ॥ ४८ ॥
वैश्वदेवे तु संप्राप्ते भिक्षुके गृहमागते । उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥ ५० ॥
यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ । तयोरन्नमदत्त्वा च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ५१ ॥
दद्याच्च भिक्षात्रितयं परिव्राट् ब्रह्मचारिणाम् ।:इच्छया च ततो दद्याद्विभवे सत्यवारितम् ॥ ५२ ॥
यतिहस्ते जलं दद्याद्भैक्ष्यं दद्यात्पुनर्जलम् । तद्भैक्ष्यं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥ ५३ ॥
वैश्वदेवकृतं पापं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् । न हि भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति ॥ ५५ ॥
अकृत्वा वैश्वदेवं तु भुञ्जते ये द्विजातयः । तेषामन्नं न भुञ्जीत काकयोनिं व्रजन्ति ते ॥ ५६ ॥
अकृत्वा वैश्वदेवं तु भुञ्जते ये द्विजाधमाः । सर्वे ते निष्फला ज्ञेयाः पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ ५७ ॥
वैश्वदेवविहीना ये आतिथ्येन बहिष्कृताः । सर्वे ते नरकं यान्ति काकयोनिं व्रजन्ति च ॥ ५८ ॥

शिरो वेष्ट्य तु यो भुङ्क्ते दक्षिणाभिमुखस्तु यः। वामपादकरः स्थित्वा तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥ ५९ ॥
यतये काञ्चनं दत्त्वा ताम्बूलं ब्रह्मचारिणे। चोरेभ्योऽप्यभयं दत्त्वा दातापि नरकं व्रजेत् ॥ ६० ॥
चोरो वा यदि चाण्डालः शत्रुर्वा पितृघातकः। वैश्वदेवे तु संप्राप्ते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥ ६२ ॥
न गृह्णाति तु यो विप्रोऽतिथिं वेदपरायणम्। अदत्तं चान्नपात्रं तु भुक्त्वा भुङ्क्ते तु किल्बिषम् ६३॥
अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः। तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चौरभक्तप्रदो हि सः ॥ ६६ ॥
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा परमो धर्म उच्यते। अन्यथा कुरुते किञ्चित्तद्भवेत्तस्य निष्फलम् ॥ ७१ ॥

पाराशरस्मृति—२ अध्याय।

ब्राह्मणश्चेत्कृषिं कुर्यात्तन्महादोषमाप्नुयात्। अष्टागवं धर्महलं षड्गवं वृत्तिलक्षणम् ॥ ८ ॥
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गोजिघांसुवत्। द्विगवं वाहयेत्पादं मध्याह्नं तु चतुर्गवम् ॥ ९ ॥
षड्गवं तु त्रियामाहेऽष्टभिः पूर्णं तु वाहयेत्। न याति नरकेष्वेवं वर्तमानस्तु वै द्विजः ॥ १० ॥

पाराशरस्मृति—३ अध्याय।

अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा। दिनत्रयेण शुध्यंति ब्राह्मणाः प्रेतसूतके ॥ १ ॥
क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहकैः। शूद्रः शुध्यति मासेन पराशरवचो यथा ॥ २ ॥
जन्मकर्मपरिभ्रष्टः सन्ध्योपासनवर्जितः। नामधारकविप्रस्तु दशाहं सूतकी भवेत् ॥ ६ ॥
देशान्तरगतो विप्रः प्रयासात् कालकारितात्। देहनाशमनुप्राप्तस्तिथिर्न ज्ञायते यदि ॥ १३ ॥
कृष्णाष्टमी त्वमावास्या कृष्णा चैकादशी च या। उदकं पिण्डदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत्॥१४॥
अजातदंता ये बाला ये च गर्भाद्विनिस्सृताः। न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥ १५ ॥
यदि गर्भो विपद्येत स्रवते वापि योषितः। यावन्मासं स्थितो गर्भो दिनं तावत्तु सूतकम् ॥ १६ ॥
आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः। अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् ॥ १७ ॥
आदन्ताज्जन्मतः सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता। त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् ॥ १९ ॥
प्रसवे गृहमेधी तु न कुर्यात्सङ्करं यदि। दशाहाच्छुध्यते माता त्ववगाह्य पिता शुचिः ॥ २५ ॥
सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम्। सूतकं मातुरेवस्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥ २६ ॥
यदि पत्न्यां प्रसूतायां सम्पर्कं कुरुते द्विजः। सूतकं तु भवेत्तस्य यदि विप्रः षडङ्गवित् ॥ २७ ॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके। पूर्वसङ्कल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति ॥ २९ ॥
अन्तरा तु दशाहस्य पुनर्मरणजन्मनी। तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्पूर्वं न गच्छति ॥ ३० ॥
ब्राह्मणार्थं विपन्नानां बन्दीगोग्रहणे तथा। आहवेषु विपन्नानामेकरात्रमशौचकम् ॥ ३१ ॥
अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा। स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ४४ ॥

पाराशरस्मृति—४ अध्याय।

अतिमानादतिक्रोधात्स्नेहाद्वा यदि वा भयात्। उद्बध्नीयात्स्त्री पुमान्वा गतिरेषा विधीयते ॥ १ ॥
पूयशोणितसंपूर्णे त्वन्धे तमसि मज्जति। षष्टिवर्षसहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते ॥ २ ॥
नाशौचं नोदकं नाग्निं नाश्रुपातं च कारयेत्। वोढारोऽग्निप्रदातारः पाशच्छेदकरास्तथा ॥ ३ ॥
तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः। गोभिर्हतं तथोद्बद्धं ब्राह्मणेन तु घातितम् ॥ ४ ॥
संस्पृशन्ति तु ये विप्रा वोढारश्चाग्निदाश्च ये। अन्ये ये चानुगन्तारः पाशच्छेदकराश्च ये ॥ ५ ॥
तप्तकृच्छ्रेण शुद्धास्ते कुर्युर्ब्राह्मणभोजनम्। अनडुत्सहितां गां च दद्युर्विप्राय दक्षिणाम् ॥ ६ ॥
त्र्यहमुष्णं पिबेद्वारि त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत्। त्र्यहमुष्णं पिबेत्सर्पिर्वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ ७ ॥
षट्पलं तु पिबेदंभस्त्रिपलं तु पयः पिबेत्। पलमेकं पिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ ८ ॥
ऋतुस्नाता तु या नारी भर्त्तारं नोपसर्पति। सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥ १४ ॥
ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति। घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥ १५ ॥
अदुष्टां पतितां भार्यां यौवने यः परित्यजेत्। सप्तजन्म भवेत्स्त्रीत्वं वैधव्यञ्च पुनः पुनः ॥ १६ ॥
पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत्। आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १७ ॥
अपृष्ट्वा चैव भर्तारं या नारी कुरुते व्रतम्। सर्वं तद्राक्षसान्गच्छेदित्येवं मनुरब्रवीत् ॥ १८ ॥
औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः। दद्यान्माता पिता वापि स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥ २४ ॥

परिवित्तिः परीवेत्ता यया च परिविद्यते । सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥ २९ ॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यानि लोमानि मानवे । तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्त्तारं याऽनुगच्छति ॥३२॥
व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् । एवं स्त्री पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ॥ ३३ ॥

पाराशरस्मृति-५ अध्याय ।

चांडालेन श्वपाकेन गोभिर्विप्रैर्हतो यदि । आहिताग्निर्मृतो विप्रो विषेणात्मा हतो यदि ॥ १० ॥
दहेत्तं ब्राह्मणं विप्रो लोकाग्नौ मन्त्रवर्जितम् । स्पृष्ट्वा वोह्य च दग्ध्वा च सपिण्डेषु च सर्वदा ॥११॥
प्राजापत्यं चरेत्पश्चाद्विप्राणामनुशासनात् । दग्ध्वास्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरैः प्रक्षालयेद्द्विजः ॥ १२ ॥
स्वेनाऽग्निना स्वमन्त्रेण पृथगेतत्पुनर्दहेत् । आहिताग्निर्द्विजः कश्चित्प्रवसेत्कालचोदितः ॥ १३ ॥

पाराशरस्मृति-६ अध्याय ।

क्रौञ्चसारसहंसांश्च चक्रवाकं च कुक्कुटम् । जालपादं च शरभं हत्वाऽहोरात्रतः शुचिः ॥ २ ॥
बलाकाटिट्टिभौ वापि शुकपारावतावपि । अटीनवकघाती च शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥ ३ ॥
वृककाककपोतानां सारीतित्तिरघातकः । अन्तर्जले उभे सन्ध्ये प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥
गृध्रश्येनशशादीनामुलूकस्य च घातकः । अपक्वाशी दिनं तिष्ठेत्त्रिकालं मारुताशनः ॥ ५ ॥
वल्गुलीचटकानां च कोकिलाखञ्जरीटके । लाविकारक्तपक्षेषु शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥ ६ ॥
कारण्डवचकोराणां पिङ्गलाकुररस्य च । भारद्वाजादिकं हत्वा शिवं सम्पूज्य शुद्ध्यति ॥ ७ ॥
भेरुण्डचाषभासांश्च पारावतकपिञ्जलौ । पक्षिणां चैव सर्वेषामहोरात्रमभोजनम् ॥ ८ ॥
हत्वा मूषकमार्जारसर्पाऽजगरडुण्डुभान् । कृसरं भोजयेद्विप्रान् लोहदण्डं च दक्षिणाम् ॥ ९ ॥
शिशुमारं तथा गोधां हत्वा कूर्मं च शल्लकम् । वृन्ताकफलभक्षी वाप्यहोरात्रेण शुध्यति ॥ १० ॥
गजस्य च तुरङ्गस्य महिषोष्ट्रनिपातने । शुध्यते सप्तरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥ १२ ॥
कुरङ्गं वानरं सिंहं चित्रं व्याघ्रं च घातयेत् । शुध्यते स त्रिरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥ १३ ॥
मृगरोहिद्वराहाणामवेर्वस्तस्य घातकः । अफालकृष्टमश्नीयादहोरात्रमुपोष्य सः ॥ १४ ॥
एवं चतुष्पदानां च सर्वेषां वनचारिणाम् । अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥ १५ ॥
चाण्डालखातवापीषु पीत्वा सलिलमग्रतः । अज्ञानाच्चैकनक्तेन त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ २५ ॥
चाण्डालभाण्डसंस्पृष्टं पीत्वा कूपगतं जलम् । गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥ २६ ॥
चाण्डालघटसंस्थं तु यत्तोयं पिबति द्विजः । तत्क्षणात्क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २७ ॥
यदि न क्षिपते तोयं शरीरे यस्य जीर्यति । प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ २८ ॥
चरेत्सान्तपनं विप्रः प्राजापत्यमनन्तरः । तदर्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २९ ॥
भाण्डस्थमन्त्यजानां तु जलं दधि पयः पिबेत् । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव प्रमादतः ॥ ३० ॥
ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनां तु निष्कृतिः । शूद्रस्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तितः ॥ ३१ ॥
पुनर्लेपनखातेन होमजाप्येन शुध्यति । आधारेण च विप्राणां भूमिदोषो न विद्यते ॥ ४२ ॥
चाण्डालैः सह सम्पर्कं मासं मासार्द्धमेव वा । गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुध्यति ॥ ४३ ॥
रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीविनी । चातुर्वर्ण्यस्य तु गृहे त्वविज्ञाता तु तिष्ठति ॥ ४४ ॥
ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात्पूर्वोक्तस्यार्द्धमेव तु । गृहदाह न कुर्वीत शेषं सर्वं च कारयेत् ॥ ४५ ॥
गृहस्याभ्यन्तरं गच्छेच्चाण्डालो यदि कस्य चित् । तमागाराद्विनिःसार्य मृद्भाण्डं तु विसर्जयेत्॥४६॥
शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुध्यति । अच्छिद्रमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः ॥५१॥
प्रणम्य शिरसा ग्राह्यमग्निष्टोमफलं हि तत् । जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि ॥ ५२ ॥
सर्वं भवति निश्छिद्रं ब्राह्मणैरुपपादितम् । व्याधिव्यसनिनि श्रान्ते दुर्भिक्षे डामरे तथा ॥ ५३ ॥
ततोऽन्यथा भवेद्दोषस्तस्मान्नानुग्रहः स्मृतः । स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा ॥ ५६ ॥
कुर्वन्त्यनुग्रहं ये तु तत्पापं तेषु गच्छति । शरीरस्यात्यये प्राप्ते वदन्ति नियमं तु ये ॥ ५७ ॥
विप्रैः संपादितं यस्य सपूर्णं तस्य तत्फलम् । अन्नाद्ये कीटसंयुक्ते मक्षिकाकेशदूषिते ॥ ६४ ॥
तदन्तरा स्पृशेच्चापः तदन्नं भस्मना स्पृशेत् । भुञ्जानश्चैव यो विप्रो पादहस्तेन संस्पृशेत् ॥ ६५ ॥

स्वमुच्छिष्टमसौ भुंक्ते यो भुक्ते भुक्तभाजने । पादुकास्थो न भुञ्जीत पर्यङ्कस्थः स्थितोपि वा ॥ ६६ ॥
श्वानचाण्डालदृष्टू चैव भोजनं परिवर्जयेत् । यदन्न प्रतिषिद्धं स्यादन्नशुद्धिस्तथैव च ॥ ६७ ॥
वेदवेदाङ्गविद्भिर्धर्मशास्त्रानुपालकैः । प्रस्थाद्द्वात्रिंशतिर्द्रोणः स्मृतो द्विप्रस्थ आढकः ॥ ७० ॥
ततो द्रोणाऽढकस्यान्नं श्रुतिस्मृतिविदो विदुः । काकश्वानावलीढं तु गवा घ्रातं खरेण वा ॥ ७१ ॥
स्वल्पमन्नं त्यजेद्विप्रः शुद्धिर्द्रोणाढके भवेत् । अन्नस्योद्धृत्य तन्मात्रं यच्च लालाहतं भवेत् ॥ ७२॥
सुवर्णोदकमभ्युक्ष्य हुताशेनैव तापयेत् । हुताशनेन संस्पृष्टं सुवर्णसलिलेन च ॥ ७३ ॥
विप्राणां ब्रह्मघोषेण भोज्यं भवति तत्क्षणात् । स्नेहो वा गोरसो वापि तत्र शुद्धिः कथं भवेत् ॥७४ ॥
अल्पं परित्यजेत्तत्र स्नेहस्योत्पवनेन च । अनलज्वालया शुद्धिर्गोरसस्य विधीयते ॥ ७५ ॥

पाराशरस्मृति—७ अध्याय)

अथातो द्रव्यशुद्धिस्तु पराशरवचो यथा । दारवाणां तु पात्राणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ १ ॥
मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि । चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन च ॥ २ ॥
चरूणां स्रुक्स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा । भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति ॥ ३ ॥
रजसा शुध्यते नारी विकलं या न गच्छति । नदी वेगेन शुद्ध्येत लेपो यदि न दृश्यते ॥ ४ ॥
वापीकूपतडागेषु दूषितेषु कथंचन । उद्धृत्य वै कुम्भशतं पञ्चगव्येन शुध्यति ॥ ॥ ९ ॥
अस्तं गते यदा सूर्ये चाण्डालं पतितं स्त्रियम् । सूतिकां स्पृशते चैव कथं शुद्धिर्विधीयते ॥ ११ ॥
जातवेदं सुवर्णं च सोममार्गं विलोक्य च । ब्राह्मणानुमतश्चैव स्नानं कृत्वा विशुध्यति ॥ १२ ॥
उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा पुनः । उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ २२ ॥
अनुच्छिष्टेन शूद्रेण स्पर्शे स्नानं विधीयते । तेनोच्छिष्टेन संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २३ ॥
भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते । सुरामात्रेण संस्पृष्टं शुद्ध्यतेऽग्न्युपलेखनैः ॥ २४ ॥
गवाघ्रातानि कांस्यानि श्वकाकोपहतानि च । शुध्यन्ति दशभिः क्षारैः शूद्रोच्छिष्टानि यानि च २५
गण्डूषं पादशौचं च कृत्वा वै कांस्यभाजनं । षण्मासान्भुवि निक्षिप्य उद्धृत्य पुनराहरेत् ॥ २६ ॥
आयसेष्वायसानां च सीसस्याग्नौ विशोधनम् । दन्तमस्थि तथा शृङ्गरौप्यं सौवर्णभाजनम् ॥२७॥
मणिपात्राणि शंखश्चेत्येतान्प्रक्षालयेज्जलैः । पाषाणे तु पुनर्घर्षं एषा शुद्धिरुदाहृता ॥ २८ ॥
मृन्मये दहनाच्छुद्धिर्धान्यानां मार्जनादपि । वेणुवल्कलचीराणां क्षौमकार्पासवाससाम् ॥ २९ ॥
और्णनेत्रपटानां च प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते । मुञ्जोपस्करशूर्पाणां शणस्य फलचर्मणाम् ॥ ३० ॥
तृणकाष्ठस्य रज्जूनामुदकाभ्युक्षणं मतम् । तूलिकाद्युपधानानि रक्तवस्त्रादिकानि च ॥ ३१ ॥
रथ्याकर्दमतोयानि नावः पन्थास्तृणानि च ॥ ३५ ॥
मारुतार्केण शुद्ध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च । अदुष्टाः सन्ततधारा वातोद्धूताश्च रेणवः ॥ ३६ ॥
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन । क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते ॥ ३७ ॥

पाराशरस्मृति—८ अध्याय ।

कृत्वा पापं न गूहेत गूह्यमानं विवर्द्धते । स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा धर्मविद्भ्यो निवेदयेत् ॥ ६ ॥
अव्रता नाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् । सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥ १२ ॥
यद्वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममतद्विदः । तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄनधिगच्छति ॥ १३ ॥
अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः । प्रायश्चित्ती भवेत्पूतः किल्बिषं पर्षदि व्रजेत् ॥ १४॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः । ब्राह्मणास्त्वनधीयानास्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ २४॥
यथा पण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौरूषराफला । यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः ॥२६ ॥
चातुर्विद्यो विकल्पी च अङ्गविद्धर्मपाठकः । त्रयश्चाश्रमिणो मुख्याः पर्षदेषा दशावरा ॥ ३९ ॥
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा यस्तु प्राणान्परित्यजेत् । मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्य च ॥ ४३॥

पाराशरस्मृति—९ अध्याय ।

अंगुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रः प्रमाणतः । आर्द्रस्तु सपलाशश्च दण्ड इत्यभिधीयते ॥ १० ॥

पाराशरस्मृति-१० अध्याय।

एकैकं ह्रासयेद्ग्रासं कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत्। अमावास्यां न भुञ्जीत ह्येष चान्द्रायणे विधिः ॥ २ ॥
कुक्कुटाण्डप्रमाणं तु ग्रासं वै परिकल्पयेत्। अन्यथा जातदोषेण न धर्मो न च शुद्ध्यते ॥ ३ ॥
प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम्। गोद्वयं वस्त्रयुग्मं च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥ ४ ॥
चाण्डालीं वा श्वपाकीं वा अनुगच्छति यो द्विजः। त्रिरात्रमुपवासी च विप्राणामनुशासनात् ॥५॥
सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यत्रयं चरेत्। ब्रह्मकूर्चं ततः कृत्वा कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ॥ ६ ॥
गायत्रीं च जपेन्नित्यं दद्याद्गोमिथुनद्वयम्। विप्राय दक्षिणां दद्याच्छुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ७ ॥
गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोब्रवीत्। क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा चाण्डालीं गच्छतो यदि ॥८॥
प्राजापत्यद्वयं कुर्याद्दद्याद्गोमिथुनं तथा। श्वपाकीमथ चाण्डालीं शूद्रो वै यदि गच्छति ॥ ९ ॥
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं चतुर्गोमिथुनं ददेत्। मातरं यदि गच्छेत्तु भगिनीं स्वसुतां तथा ॥ १० ॥
एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीणि कृच्छ्राणि संचरेत्। चान्द्रायणत्रयं कुर्याच्छिश्नच्छेदेन शुध्यति ११॥
मातृष्वसृगमे चैव आत्ममेढ्रनिकृन्तनम्। अज्ञानेन तु यो गच्छेत्कुर्याच्चान्द्रायणद्वयम् ॥ १२ ॥
दशगोमिथुनं दद्याच्छुद्धिं पाराशरोब्रवीत्। पितृदारान्समारुह्य मातुराप्तां च भ्रातृजाम् ॥ १३ ॥
गुरुपत्नीं स्नुषां चैव भ्रातृभार्यां तथैव च। मातुलानीं सगोत्रां च प्राजापत्यत्रयं चरेत् ॥ १४ ॥
गोद्वयं दक्षिणां दत्त्वा मुच्यते नात्र संशयः। पशुवेश्यादिगमने महिष्युष्ट्रीं कपींस्तथा ॥ १५ ॥
खरीं च सूकरीं गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत्। गोगामी च त्रिरात्रेण गामेकां ब्राह्मणो ददेत् ॥१६॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥ २९ ॥

पाराशरस्मृति-११ अध्याय।

अमेध्यरेतो गोमांसं चाण्डालान्नमथापि वा। यदि भुक्तं तु विप्रेण कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् ॥ १ ॥
तथैवं क्षत्रियो वैश्यस्तदर्द्धन्तु समाचरेत्। शूद्रोऽप्येवं यदा भुङ्क्ते प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २ ॥
पञ्चगव्यं पिबेच्छूद्रो ब्रह्मकूर्चं पिबेद्द्विजः। एकद्वित्रिचतुर्गावो दद्याद्विप्राद्यनुक्रमात् ॥ ३ ॥
शूद्रान्नं सूतकस्यान्नमभोज्यस्यान्नमेव च। शङ्कितं प्रतिषिद्धान्नं पूर्वोच्छिष्टं तथैव च ॥ ४ ॥
यदि भुक्तं तु विप्रेण अज्ञानादापदा विना। ज्ञात्वा समाचरेत्कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्चं तु पावनम् ॥ ५ ॥
व्यालैर्नकुलमार्जारैरन्नमुच्छिष्टितं यदा ॥ तिलदर्भोदकैः प्रोक्ष्य शुध्यते नात्र संशयः ॥ ६ ॥
पीयूषं श्वेतलशुनं वृन्ताकफलगृञ्जने। पलाण्डुं वृक्षनिर्यासान्देवस्वं कवकानि च ॥ १० ॥
उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरमज्ञानाद्भक्षयेद्द्विजः। त्रिरात्रमुपवासेन पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ११ ॥
आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि। मनस्तापेन शुद्ध्येत द्रुपदां वा सकृज्जपेत् ॥ २१ ॥
दासनापितगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः। एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥ २२ ॥
वैश्यकन्यासमुद्भूतो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः। सद्यर्धिक इति ज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥ २५ ॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। निर्दिष्टं पञ्चगव्यं च पवित्रं पापशोधनम् ॥ २९ ॥
गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम्। पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया गृह्यते दधि ॥ ३० ॥
कपिलाया घृतं ग्राह्यं सर्वं कापिलमेव वा। मूत्रमेकपलं दद्यादङ्गुष्ठार्द्धं तु गोमयम् ॥ ३१ ॥
क्षीरं सप्तपलं दद्याद्दधि त्रिपलमुच्यते। घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् ॥ ३२ ॥
कूपे च पतितं दृष्ट्वा श्वशृगालौ च मर्कटम्। अस्थिचर्मादिपतिताः पीत्वामेध्या अपो द्विजः ॥४२॥
नारं तु कुणपं काकं विड्वराहं खरोष्ट्रकम्। गावयं सौप्रतीकं च मायूरं खाड्गकं तथा ॥ ४३ ॥
वैयाघ्रमार्क्षं सैंहं वा कूपे यदि निमज्जति। तडागस्यापि दुष्टस्य पीतं स्यादुदकं यदि ॥ ४४ ॥
प्रायश्चित्तं भवेत्पुंसः क्रमेणैतेन सर्वशः। विप्रः शुद्ध्येत्त्रिरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्वयात् ॥ ४५ ॥
एकाहेन तु वैश्यस्तु शूद्रो नक्तेन शुद्ध्यति। परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च ॥ ४६ ॥
सततं प्रातरुत्थाय परपाकरतस्तु सः। गृहस्थधर्मो यो विप्रो ददाति परिवर्जितम् ॥ ५० ॥
ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचः परिकीर्तितः। युगेयुगे तु ये धर्मास्तेषुतेषु च ये द्विजाः ॥ ५१ ॥
तेषां निन्दा न कर्त्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः। हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारं च गरीयसः ॥५२॥
स्नात्वा तिष्ठन्नहःशेषमभिवाद्य प्रसादयेत्। ताडयित्वा तृणेनापि कंठे बद्ध्वापि वाससा ॥ ५३ ॥

विवादेनापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् । अवगूर्य त्वहोरात्रं त्रिरात्रं क्षितिपातने ॥ ५४ ॥
अतिकृच्छ्रं च रुधिरे कृच्छ्रोऽभ्यन्तरशोणिते । नवाहमतिकृच्छ्री स्यात्पाणिपूरान्नभोजनः ॥ ५५ ॥
त्रिरात्रमुपवासः स्यादतिकृच्छ्रः स उच्यते । सर्वेषामेव पापानां संकरे समुपस्थिते ॥ ५६ ॥

पाराशरस्मृति–१२ अध्याय ।

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च । पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ २ ॥
अजिनं मेखला दण्डो भैक्षचर्याव्रतानि च । निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥ ३ ॥
स्नानानि पञ्च पुण्यानि कीर्तितानि मनीषिभिः । आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च ॥ ९ ॥
आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्य तु वारुणम् । आपोहिष्ठेति च ब्राह्मं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥१०॥
यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते । तत्र स्नात्वा तु गङ्गायां स्नातो भवति मानवः ॥ ११ ॥
शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकच्छशिखोपि वा । विना यज्ञोपवीतेन आचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १६॥
महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम् । प्रदोषपश्चिमौ यामौ दिनवत् स्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥
यः शूद्रया पाचयेन्नित्यं शूद्री च गृहमेधिनी । वर्जितः पितृदेवेभ्यो रौरवं याति स द्विजः ॥ ३३ ॥
मौनव्रतं समाश्रित्य आसीनो न वदेद् द्विजः । भुञ्जानो हि वदेद्यस्तु तदन्नं परिवर्जयेत् ॥ ३७ ॥
अर्द्धभुक्ते तु यो विप्रस्तस्मिन्पात्रे जलं पिबेत् । हतं दैवं च पित्र्यञ्च आत्मानं चोपघातयेत् ॥ ३८॥
भुञ्जानेषु तु विप्रेषु योऽग्रे पात्रं विमुञ्चति । स मूढः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नः स खलूच्यते ॥ ३९ ॥
भाजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः । न देवास्तृप्तिमायान्ति निराशाः पितरस्तथा॥४०॥
अस्नात्वा वै न भुञ्जीत द्विजश्चाग्निमपूज्य च । न पर्णपृष्ठे भुञ्जीत रात्रौ दीपं विना तथा ॥ ४१ ॥
गवां शतं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितम् । तत्क्षेत्रं दशगुणितं गोचर्म परिकीर्तितम् ॥ ४६ ॥
ब्रह्महत्यादिभिर्मर्त्यो मनोवाक्कायकर्मभिः । एतद्गोचर्मदानेन मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ४७ ॥
विद्यमानेषु हस्तेषु ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । तोयं पिबति वक्त्रेण श्वयोनौ जायते ध्रुवम् ॥ ५३ ॥
ऊर्ध्वोच्छिष्टमधोच्छिष्टमन्तरिक्षमृतौ तथा । कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत अशौचमरणे तथा ॥ ५९ ॥
कृच्छ्रं देव्ययुतं चैव प्राणायामशतद्वयम् । पुण्यतीर्थेनार्द्रशिराः स्नानं द्वादशसंख्यया ॥ ६० ॥
द्वियोजनं तीर्थयात्रा कृच्छ्रमेकं प्रकल्पितम् । गृहस्थः कामतः कुर्याद्रेतसः स्खलनं यदि ॥ ६१ ॥
सहस्रं तु जपेद्देव्याः प्राणायामैस्त्रिभिः सह । चतुर्विद्योपपन्नस्तु विधिवद्ब्रह्मघातके ॥ ६२ ॥
पराशरमतं तस्य सेतुबन्धस्य दर्शनात् । सवनस्थां स्त्रियं हत्वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥ ७२ ॥
सुरापश्च द्विजः कुर्यान्नदीं गत्वा समुद्रगाम् । चान्द्रायणे ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ ७३ ॥
अनडुत्सहितां गां च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् । सुरापानं सकृत्कृत्वा अग्निवर्णां सुरां पिबेत् ॥ ७४ ॥
स पावयेदिहात्मानमिह लोके परत्र च । अपहृत्य सुवर्णं तु ब्राह्मणस्य ततः स्वयम् ॥ ७५ ॥
गच्छेन्मुसलमादाय राजानं स्ववधाय तु । हतः शुद्धिमवाप्नोति राज्ञाऽसौ मुक्त एव च ॥ ७६ ॥
कामतस्तु कृतं यत्स्यान्नान्यथा वधमर्हति । आसनाच्छयनाद्यानात्सम्भाषात्सहभोजनात् ॥ ७७॥

(१३ क) बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—१ अध्याय ।

कृष्णो मृगश्चरेद्यत्र स्वभावेन महीतले । वसेत्तत्र द्विजातिस्तु शूद्रो यत्र तु तत्र तु ॥ ४१ ॥
हिमपर्वतविन्ध्याद्र्योर्विनशनप्रयागयोः । मध्ये तु पावनो देशो म्लेच्छदेशस्ततः परः ॥ ४२ ॥

बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र—२अध्याय–षट्कर्मणि स्नानविधि ।

दिवसस्य च रात्रेश्च सन्धिः सन्ध्येति गीयते । सोपास्या सद्भिर्यत्नात्स्यात्तैर्विश्वमुपासितम् ॥१०॥
मध्याह्नेऽपि च सन्धिः स्यात्पूर्वस्याह्नोऽपरस्य च । पूर्वाह्णाह्नोऽपराह्णश्च क्षपा चेति श्रुतिक्रमः ॥ ११॥
मान्त्रं पार्थिवमाग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च । वारुणं मानसं चेति सप्त स्नानान्यनुक्रमात् ॥ ८३ ॥
तत्र आपस्तु वै मान्त्रं मृदालम्भंतु पार्थिवम् । भस्मना स्नानमाग्नेयं गवां रेणुभिरानिलम् ॥ ८४ ॥
आतपे सति या वृष्टिस्तद्दिव्यं स्नानमुच्यते । बहिर्नद्यादिके स्नानं वारुणं तत्प्रकीर्तितम् ॥ ८५ ॥
यद्ध्यानं मनसा विष्णोर्मानसं कथ्यते बुधैः ॥ ८६ ॥
नापो मूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहनकर्मणा ॥ १०७ ॥

अभ्यङ्गाक्लिष्टधौते तु विद्वान्शुक्ले च वाससी । परिधाय मृदम्बुभ्यामूरू पादौ च मार्जयेत् ॥१९८॥
तद्वाससोरसंपत्तौ शाणक्षौमाविकानि तु । कुतपं योगपट्टं वा द्विवासास्तु यथा भवेत् ॥ १९९ ॥
कव्यवाहोऽनलः सोमो यमश्चैव तथार्यमा । अग्निष्वात्ताः सोमपाश्च तथा बर्हिषदोपि च ॥ १९० ॥
एते चान्ये च पितरः पूज्याः सर्वे प्रयत्नतः । एतैस्तु तर्पितैः सर्वैः पुरुषास्तर्पिता नृभिः ॥ १९१ ॥

बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र---२ अध्याय,जपविधि ।

गायत्रीं यो न जानाति ज्ञात्वोपास्ते न यो द्विजः । नामधारकमात्रोऽसौ न विप्रः शूद्र एव सः १३॥
स्फाटिकाब्जाक्षरुद्राक्षपुत्रजीवसमुद्भवैः । अक्षमाला प्रकर्तव्या प्रशस्ता चोत्तरोत्तरा ॥ ४१ ॥
अभावे त्वक्षमालायाः कुशग्रन्थ्याथ पाणिना । यथाकथञ्चिद्गणयेन्ससंख्यं तद्भवेद्यथा ॥ ४२ ॥

बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र---२ अध्याय,वर्णधर्मकथन ।

शुश्रूषा ब्राह्मणादीनां तदाज्ञापालनं तथा । एष धर्मः स्मृतः शूद्रे वाणिज्येन तु जीवनम् ॥ ९ ॥
लवणं मधु तैलं च दधि तक्रं घृतं पयः । न दुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात्सर्वस्य विक्रयम् ॥ १२ ॥

बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र--३ अध्याय,कृषिकर्मआदि ।

अष्टमी कामभोगेन षष्ठी तैलोपभोगतः । कुहूश्च दन्तकाष्ठेन हिनस्त्यासप्तम कुलम् ॥ ४३ ॥
खलयज्ञं प्रवक्ष्यामि यत्कुर्वाणा द्विजातयः । विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः स्वर्गौकस्त्वमवाप्नुयुः ॥ १०९ ॥
चतुर्दिक्षु खले कुर्यात्प्रोक्तामतिघनां वृतिम् । सैकद्वारपिधानां च विदध्याच्चैव सर्वतः ॥ ११० ॥
खरोष्ट्राजोरणांस्तत्र विशतोप्यनिवारयेत् । श्वसूकरशृगालादीन्काकोलूककपोतकान् ॥ १११ ॥
त्रिसन्ध्यं प्रोक्षणं कुर्यादानीतान्युक्षणाम्बुभिः । रक्षां च भस्मना कुर्याज्जलधाराभिरक्षणम् ॥११२॥
त्रिसन्ध्यमर्चयेत्सीतां पाराशरमृषिं स्मरन् । प्रेतभूतादिनामानि न वदेत्खलमध्यगः ॥ ११३ ॥
सूतिकागृहवत्तत्र कर्त्तव्यं परिरक्षणम् । हरन्त्यरक्षितं यस्माद्राक्षसाः सर्वमेव हि ॥ ११४ ॥
प्रशस्तदिनपूर्वाह्णे नापराह्णे न सन्ध्ययोः । धान्योन्मानं प्रकुर्वीत सीतापूजनपूर्वकम् ॥ ११५ ॥
यजेत्खले तु भिक्षाभिः काले रौहिण एव हि । तत्र भक्त्या प्रदत्तं यद्भवेत्सर्वं तदक्षयम् ॥ ११६ ॥
खलयज्ञे दक्षिणैषा ब्रह्मणा निर्मिता पुरा । भागधेयमयीं कृत्वा तां गृह्णन्त्विह मामिकाम् ॥११७॥
शतक्रत्वादयो देवाः पितरः सोमपादयः । सनकादिमनुष्याश्च ये चान्ये दक्षिणाशिनः ॥ ११८ ॥
एतदुद्दिश्य विप्रेभ्यः प्रदद्यात्प्रथमं हली । अन्येषामर्थिनां पश्चात्कारुकाणां ततः परम् ॥ ११९ ॥
दीनानामप्यनाथानां कुष्ठिनां कुशरीरिणाम् । क्लीबान्धबधिरादीनां सर्वेषामपि दीयते ॥ १२० ॥
वर्णानां पतितानां च ददद्भूतानि तर्पयेत् । चाण्डालांश्च श्वपाकांश्च प्रीत्या तूच्चावचानि च ॥१२१॥
ये केचिदागतास्तत्र पूज्यास्तेऽतिथिवद्द्विजाः । स्तोकशः सीरिभिः सर्वैर्वर्णिभिर्गृहमेधिभिः ॥१२२॥
दत्त्वा तु मधुरां वाचं क्रमात्तेऽथ विसर्जिताः । तत्प्रवेश्यासनं गेहे श्राद्धमाभ्युदयं श्रयेत ॥ १२३ ॥

बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र--४ अध्याय ।

जात्यादिगुणयुक्ताय पुंस्त्वे सति वराय च । कन्यालंकृत्य दीयेत विवाहो वैधसः स्मृतः ॥ ३ ॥
रेतो मज्जति यस्याप्सु मूत्रं च ह्रादि फेनिलम् । स्यात्पुमाँल्लक्षणैरेतैर्विपरीतस्तु षण्ढकः ॥ ४ ॥
या यज्ञैर्वर्तमाने तु ऋत्विजे कर्मकुर्वते । कन्यालंकृत्य दीयेत विवाहः स तु दैविकः ॥ ५ ॥
वराय गुणयुक्ताय विदुषे सदृशाय च । कन्या गोद्वयमादाय दीयेतार्षः स उच्यते ॥ ६ ॥
कन्या चैव वरश्चोभौ स्वेच्छया धर्मचारिणौ । स्यातामिति हि यत्रोक्त्वादानं कायविधिस्त्वयम्॥७॥
एतावद्देहि मे द्रव्यमित्युक्त्वा प्राग्वराय च । यत्र कन्या प्रदीयेत स वै दैत्यविधिः स्मृतः ॥ ८ ॥
यत्रान्योन्याभिलाषेण उभयोर्वरकन्ययोः । ततस्तु यो विवाहः स्याद्गान्धर्वः प्रथितस्तु सः ॥ ९ ॥
युद्धे हत्वा बलात्कन्यां यत्राच्छिद्यापहृत्य च । ऊह्यते स तु विद्वद्भिर्विवाहो राक्षसः स्मृतः ॥ १०॥
सुषुप्ता वा प्रमत्ता वा छलात्कन्या प्रगृह्यते । सर्वेभ्यः स तु पापिष्ठः पैशाचः प्रथितोऽष्टमः ॥ ११ ॥
शौचं वाचं च मेध्यत्वं सोमगन्धर्वपावकाः । ददुस्तासां वरानेतांस्तस्मान्मेध्यतराः स्त्रियः ॥ ६२ ॥
सामाह सूक्तवमित्यार्यैदेवैर्न्यस्ता नृणां तनौ । अर्धकाया नराणां ताः स्त्रीणां नातः पृथग्व्रतम्॥६५॥
न दिवापि स्त्रियं गच्छेदिच्छंस्तादिच्छयापि च । न पर्वसु न सन्ध्यासु नर्तौ रात्रिचतुष्टये ॥ ६६ ॥

द्वादशाब्दं व्रतं धार्यं षडब्दं वा श्रुतिं प्रति। अधीत्याथोत्सृजेत्तद्वै दत्त्वा तु गुरवे वरम् ॥ १६३ ॥
यत्र सुस्नातकाः प्रोक्ता व्रतविद्योपसेविनः। विद्यां समाप्य यः स्नायाद्विद्यास्नातक उच्यते॥१७४॥
समाप्य च व्रतं यस्तु व्रतस्नातक उच्यते। यज्ञं समाप्य यः स्नाति सिद्धिनाम्ना स उच्यते ॥१६५॥
न गतिर्मूर्खदानेन न तारोऽम्भसि वाश्मनाम्। तस्मात्तस्य न दातव्यं सह दात्रा स मज्जति ॥२१६॥
यथा भस्म तथा मूर्खो विद्वान्प्रज्वलिताग्निवत्। होतव्यं च समृद्धेऽग्नौ जुहुयात्को नु भस्मनि॥२१७॥
यथा शूद्रस्तथा मूर्खः शूद्रस्यैव च भस्मवत्। शूद्रेण सह संवेशं दानं मूर्खे च वर्जयेत् ॥ २१८ ॥
न विद्या न तपो यस्य आदत्ते च प्रतिग्रहम्। आददानस्त्वनाचारो दातारमपि मज्जयेत् ॥ २२१ ॥
तिलान्स्वर्णं च गां भूमिमविद्वानाददाति यः। भस्मीभवति सोऽह्नाय दातुः स्यादफलं च तत्॥२२२॥
हस्तिकृष्णाजिनाद्यास्तु गर्हिता ये प्रतिग्रहाः। सद्विप्रास्तान्न गृह्णीयुर्गृह्णन्तस्तु पतन्ति ते ॥ २२५ ॥
कृष्णाजिनप्रतिग्राही हयानां शुक्रविक्रयी। नवश्राद्धेषु यो भोक्ता न भूयः पुरुषो भवेत् ॥ २२६ ॥
अनूचोऽपि निराचाराः प्रतिवेश्मनिवासिनः। अन्यत्र हव्यकव्याभ्यां भोज्याः स्युरुत्सवादिषु२३१॥
विशुद्धान्वयसंभूतो निवृत्तो मद्यमांसतः। द्विजभक्तो वणिग्वृत्तिः स सच्छूद्रः प्रकीर्तितः ॥ ३०७ ॥
कृत्वा च विधिना श्राद्धं पश्चात्तत्स्वयमश्नुते। नाद्यादविधिना मांसं मृत्युकालेऽपि धर्मवित्॥३१९॥
भक्षयेन्नरके तिष्ठत्पशुरोमसमाः समाः। गृहस्थोऽपि हि यो नाद्यात्पिशितं तु कथंचन ॥ ३२० ॥
स साक्षात्साधुभिः प्रोक्तो योगी च ब्रह्मलोकगः। न स्वयं तु पशुं हन्याच्छ्राद्धकालेऽप्युपस्थिते ॥
क्रव्याद्भिः सारमेयाद्यैर्हतं पश्वादिकं हरेत्। इदं शाकवदिच्छन्ति पवित्रं मुनिसत्तमाः ॥ ३२२ ॥
एकोऽब्दशतमश्वेन यजेत पशुना द्विजः। नान्यस्तु मांसमश्नाति स्वर्गप्राप्तिस्तयोः समा ॥ ३२५ ॥

बृहत्पाराशरीय- ५ अध्याय।

काणः पौनर्भवो रोगी पिशुनो वृद्धिजीवकः। कृतघ्नो मत्सरी क्रूरो मित्रध्रुक्कुनखी गदी ॥ ५ ॥
वृद्धो प्रजननः श्वित्री श्यावदन्तावकीर्णिनः। हीनाङ्गश्चातिरिक्ताङ्गो विक्लवः परिविन्दकः ॥ ६ ॥
क्लीबाभिशस्तवाग्दुष्टभृतकाध्यापकास्तथा। कन्यादूषी वणिग्वृत्तिर्विनाग्निः सोमविक्रयी ॥ ७ ॥
भार्याजितोऽनपत्यश्च कुण्डाशी कुण्डगोलकौ। पित्रादित्यागकृत्स्तेनो वृषलीपतितज्ञकाः ॥ ८ ॥
अनुक्तवृत्तिस्त्वज्ञातः परपूर्वापतिस्तथा। अजापालो माहिषकः कर्मदुष्टाश्च निन्दिताः ॥ ९ ॥
योऽसत्प्रतिग्रहग्राही नित्यं यश्च प्रतिग्रही। ग्रहसूचकदूतौ च पितृकार्येषु वर्जिताः ॥ १० ॥
प्रेतस्पृक्तैलनिर्णेक्ता बहुयाजकयाचकौ। बकक्राकबिडालाश्च शूद्रवृत्तिश्च गर्हितः ॥ ११ ॥
वाग्दुष्टो बालदुष्टो वा नित्यमप्रियवाक्च यः। आसक्तो द्यूतकामादावतिवाक्चैव दूषितः ॥ १२ ॥
निराचाराश्च ये विप्राः पितृमातृविवर्जिताः। विद्वांसोऽपि न तेऽभ्यर्च्याः पितृश्राद्धेषु मानवैः ॥ १३ ॥
अपुत्रस्य पितृव्यस्य तत्पुत्रो भ्रातृजो भवेत्। स एव तस्य कुर्वीत पिण्डदानोदकक्रियाम् ॥ ४३ ॥
श्राद्धं पत्यापि कार्यं स्यादपुत्रायाश्च योषितः। तस्यापि हि तया कार्यमेकत्वं हि तयोर्यतः ॥ ४५ ॥
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य कुर्वीत स ज्येष्ठोऽप्यनुजस्य च। दैवहीनं तु तत्कुर्यादिति धर्मविदब्रवीत् ॥ ४६ ॥
पितुः पुत्रेण कर्तव्याः पिण्डदानोदकक्रियाः। पुत्राभावे तु पत्न्यापि तदभावे सहोदरैः ॥ ४७ ॥
सोमसदोऽग्निष्वात्ताश्च तथा बर्हिषदोऽपि च। सोमपाश्च तथा विद्वंस्तथैव च हविर्भुजः ॥ १६५ ॥
आज्यपाश्च तथा वत्सस्तथा ह्यन्ये सुकालिनः। एते चान्येऽपि पितरः पूज्याः सर्वे द्विजाग्रजैः॥१६६॥

बृहत्पाराशरीय-६ अध्याय।

दानोद्वाहेष्टिसंग्रामे देशविप्लवकादिषु। सद्यः शौचं द्विजातीनां सूतकाशौचयोरपि ॥ १० ॥
दातॄणां व्रतिनामेके कवयः सत्रिणामपि। सद्यः शौचमदोषाणामूचुर्धर्मविदः कलौ ॥ ११ ॥
दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च विपत्काल उपस्थिते। उपसर्गमृते चापि सद्यः शौचं विधीयते ॥ १८ ॥
अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहंति द्विजातयः। पदे पदे यज्ञफलमनुपूर्वं लभन्ति ते ॥ २५ ॥
अशुचित्वं न तेषां तु पापं वा शुभकारिणाम्। जलावगाहनात्तेषां सद्यः शुद्धिः प्रकीर्तिता ॥ २६ ॥
असगोत्रमसंबन्धं प्रेतभूतं तथा द्विजम्। ऊढ्वा दग्ध्वा द्विजाः सर्वे स्नानात्ते शुचयः स्मृताः ॥ २७॥
हतः शूरो विपद्येत शत्रुभिर्यत्र कुत्र चित्। स मुक्तो यतिवत्सद्यः प्रविशन्परवेश्मसि ॥ २९ ॥
संन्यासी संस्थितो योगी सम्मुखे यो रणे हतः। सूर्यमण्डलभेत्ताराविति प्राहुर्मनीषिणः ॥ ३० ॥

विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके । पूर्वसङ्कल्पितानर्थान्भोज्यांस्तानब्रवीन्मनुः ॥ ४९ ॥
सर्पेण शृंगिणा वापि जलेन वह्निना तथा ॥ ५० ॥
न स्नानादौ विपन्नस्य तथा चैवात्मघातिनः । अर्वाग्वै हायनादग्निं नैव दद्यान्मृतस्य च ॥ ५१ ॥
किन्तु तान्निखनेद्भूमौ कुर्यान्नैवोदकक्रियाः । सर्पादिप्राप्तमृत्यूनां वह्निदाहादिकाः क्रियाः ॥
षण्मासे तु गते कार्या मुनिः प्राह पराशरः ॥ ५२ ॥

मेषाजघ्नो वृषं दद्यात्प्रत्येकं शुद्धये द्विजः । मनीषिणो वदन्त्येनां निष्कृतिं प्राणिनां वधे ॥ १६१॥
क्रौंचसारसहंसादिशिखिचक्राह्वकुक्कुटान् । शुकटिट्टिभसंघघ्नो नक्ताशी बकहा शुचिः ॥ १६२ ॥
मेषं च शशकं गोधां हत्वा कूर्मं च शल्लकम् । वार्त्ताकं गृञ्जनं जग्ध्वाऽहोरात्रोपोषणाच्छुचिः १६६॥
विना यज्ञोपवीतेन भोजनं कुरुते यदि । अथ मूत्रपुरीषे वा रेतःसेचनमेव वा ॥ २८८ ॥
त्रिरात्रोपोषितो विप्रः पादकृच्छ्रं तु भूमिपः । अहोरात्रोषितो वैश्यः शुद्धिरेषा पुरातनी ॥ २८९ ॥
आत्मस्त्री निजबालश्च आत्मवृद्धस्तथैव च । आत्मनः शुचयः सर्वे परेषामशुचीनि तु ॥ २९९ ॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु संग्रामे जलसंप्लवे । पलायने तथारण्ये स्पर्शदोषो न विद्यते ॥ २९७ ॥
पद्माश्मलोहफलकाष्ठचर्मभाण्डस्थले वा स्वयमेव शौचम् । पुंसां निशास्वध्वनि निःसखानां स्त्रीणां च शुद्धिर्विहिता सदापि ॥ ३०१ ॥
पर्युषितं चिरस्थं च भोज्यं स्नेहसमन्वितम् । यवगोधूमावस्नेहौ ततो गोरसविक्रियाः ॥ ३१७ ॥
आमं मांसं घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च फलसम्भवाः।म्लेच्छभाण्डस्थिता दूष्या निष्क्रान्तौ शुचयःस्मृताः३२१

बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र-८ अध्याय ।

अनुलिप्ते महीपृष्ठे वस्त्राजिनसमावृते । धर्मज्ञाः केचिदिच्छन्ति कुतपे च तिलास्तृते ॥ ९२ ॥
आस्तीर्य त्वाविकं भूमौ तत्र कृष्णाजिनं पुनः । तिलांस्तु प्रक्षिपेत्कृष्णांस्तत्राढकचतुष्टयम् ॥ ९३ ॥
कुर्यादुत्तरतोऽभ्यर्णे आढकेन तु वत्सकम् । सर्वैरत्नैरलंकुर्यात्सौरभेयीं सवत्सकाम् ॥ ९४ ॥
आस्यं गुडमयं तस्याः सास्ना सूत्रमयी तथा । ताम्रपृष्ठेक्षुपादा च कार्या मुक्ताफलेक्षणा ॥ ९५ ॥
प्रशस्तपत्रश्रवणा फलदन्तवती तथा । शुभस्रङ्मयलांगूला नवनीतस्तनान्विता ॥ ९६ ॥
नारङ्गैर्बीजपूरैश्च तथा वै नारिकेलकैः । बदराम्रकपित्थैश्च मणिमुक्ताफलार्चिता ॥ ९७ ॥
सितवस्त्रयुगच्छन्ना शतपत्रप्रपूजिता । धेनुमीदृग्विधां कृत्वा श्रद्धया परयान्वितः ॥ ९८ ॥
कांस्योपदोहनां दद्यात्केशवः प्रीयतामिति । कुर्याच्च गृष्टिवद्विद्वानिमामप्युत्तरामुखीम् ॥ ९९ ॥
सम्यगुच्चार्य विधिना दत्त्वैतेन द्विजोत्तमाः । सर्वपापैः स्वयं मुक्तः पितरं च पितामहम् ॥ ६० ॥
प्रपितामहं तथा पूर्वपुरुषाणां चतुष्टयम् । पुत्रपौत्रमधस्ताच्च तेषां चैव चतुष्टयम् ॥ ६१ ॥
दशहस्तैर्भवेद्दशश्चतुर्भिस्तैस्तु विस्तरे । दैर्घ्येपि दशभिर्वंशैर्गोचर्म परिकीर्तितम् ॥ १७५ ॥
पञ्चगुञ्जा भवेन्माषः कर्षः षोडशभिश्च तैः । तैश्चतुर्भिः पलं प्रोक्तं तौल्यमानं पुरातनैः ॥ ३०५ ॥
भद्रं नरैकहस्ताभिः प्रसृतिभिश्चतसृभिः । मानकैतैश्चतुर्भिश्च सेतिकेति निगीयते ॥ ३०६ ॥
ताभिश्चतसृभिः प्रस्थश्चतुर्भिराढकस्तथा । द्रोणैश्चतुर्भिस्तैरुक्तो धान्यमानमिति स्मृतम् ॥ ३०७ ॥
तिलप्रसृतिभिर्भाण्डं चतुर्भिर्यत्प्रपूर्यते । तैश्चतुर्भिश्च कर्षश्च तैश्चतुर्भिश्च वै पलम् ॥ ३०८ ॥
परेदंतैश्चतुर्भिः स्याच्छूीपाटी तच्चतुष्टयम् । करटं तिसृभिस्ताभिश्चतुर्भिस्तैर्घटः स्मृतः ॥ ३०९ ॥
संनिहत्य तडागानि पुष्करिण्यश्च दीर्घिकाः । तथा कूपाश्च वाप्यश्च कर्तव्या गृहमेधिभिः ॥ ३६९ ॥
पिबन्ति सर्वसत्त्वानि तृषार्तान्यम्भसामिह । वर्षाणि बिन्दुतुल्यानि तत्कर्ता दिवमावसेत् ॥ ३६८॥
उपकुर्वन्ति यावन्ति गण्डूषाणि क्रियासु च । कुर्वतां स्नानशौचादि तथैवाचाक्षतामपि ॥ ३६९ ॥
तावत्संख्यानि विप्राणां लक्षाणि दिवि मोदते । स्वर्गे अब्दसमा वासः सेव्यमानोप्सरोगणैः॥३७०॥
अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दशचिञ्चिणीकम्। कपित्थबिल्वामलकीत्रयं चःपञ्चाम्रवापी-नरकं न याति ॥ ३७५ ॥ खादन्ति यावन्ति फलानि वृक्षात्क्षुद्रह्विदग्धा नरपक्षिसङ्घाः । तावन्ति वर्षाणि वसन्ति नाके वृक्षैकवापी त्रिदशौघसेव्याः ॥३७६ ॥ यावन्ति पुष्पाणि महीरुहाणां दिवौ-कसां मूर्ध्नि भूतले वा । पिबन्ति तावन्ति च वत्सराणां शतानि नाके रमते गवापि ॥ ३७७ ॥

बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–१० अध्याय, राजधर्म।

शुचीन्प्राज्ञान्स्वधर्मज्ञान्विप्रान्मुद्राकराहितान्। लेखकानपि कायस्थाँल्लेख्यकृत्यविचक्षणान्॥ १०॥
पीड्यमानां प्रजां रक्षेत्कायस्थैश्चाटुतस्करैः। धान्यैक्षुतृणतोयैस्तु संपन्नं परमण्डलम्॥ २४॥

बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–१० अध्याय, वानप्रस्थधर्म।

अथ विप्रो वनं गच्छेद्विना वा सह भार्यया। जितेन्द्रियो वसेत्तत्र नित्यं श्रौताग्निकर्मकृत्॥ १॥
वन्यैर्मुन्यशनैर्मेध्यैः श्यामनीवारकङ्गुभिः। कन्दमूलफलैः शाकैः स्नेहैश्च फलसम्भवैः॥ २॥
सायं प्रातश्च जुहुयात्त्रिकालं स्नानमाचरेत्। चर्मचीवरवासाः स्यात् श्मश्रुलोमजटाधरः॥ ३॥
न किञ्चित्प्रतिगृह्णीयात्स्वाध्यायं नित्यमाचरेत्। सर्वसत्त्वहितोपेतो दान्तश्चाध्यात्मचिन्तकः॥ ५॥
एकाहिकं तु कुर्वीत मासिकं वाथ सञ्चयम्। षाण्मासिकं चाब्दिकं वा यज्ञार्थं च वने वसन्॥ ७॥
चान्द्रकृच्छ्रपराकाद्यैः पक्षमासोपवासकैः। त्रिरात्रैरेकरात्रैश्च आश्रमस्थः क्षिपेद्बुधः॥ ९॥
योगाभ्यासरतो नित्यं स्थानासनविहारवान्। हेमन्तग्रीष्मवर्षासु जलाग्न्याकाशमाश्रयेत्॥ ११॥
दन्तोलूखलिको वापि कालपक्वभुगेव वा। स्याद्वाश्मकुट्टको विप्रः फलस्नेहैश्च कर्मकृत्॥ १२॥
शत्रौ मित्रे समः शान्तस्तथैव सुखदुःखयोः। समदृष्टिश्च सर्वेषु न वसेद्दूरं वनम्॥ १३॥
म्लेच्छव्याप्तानि सर्वाणि वनानि स्युः कलौ युगे। न भूपाः शासितारश्च ग्रामोपान्ते वसेदतः॥१४॥
अष्टौ भुञ्जीत वा ग्रासान्ग्रामादाहृत्य यत्नवान्। वासनासंक्षयं गच्छेदनिलाशः प्रागुदीचिकः॥२४॥
आश्रमत्रयधर्मान्प्राक्चरित्वान्ते द्विजास्ततः। द्वयस्य वा ततः पश्चाच्चतुर्थाश्रममाचरेत्॥ २६॥
द्विजोत्तमो यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः। उपरामस्तथाक्षाणां क्षैण्यं कामस्य सद्द्विजः॥ २७॥
समीक्ष्य पुत्रं पौत्रं वा दृष्ट्वा वा दुहितुः सुतम्। अधीत्य विधिवद्वेदान्कृत्वा यागान्विधानतः॥ २८॥
निश्चयं मनसः कृत्वा चतुर्थाश्रममाविशेत्। प्राजापत्यां विधायेष्टिं वनाद्वा सद्मनोपि वा॥ २९॥
किञ्चिद्वेदं समास्थाय तेन धर्मेण वर्त्तयेत्। वाङ्मनःकायदण्डाश्च तथा सत्त्वादयो गुणाः॥ ३१॥
त्रयोऽपि नियता यस्य स त्रिदण्डीति कथ्यते॥ ३२॥
सदैव प्राणसंरोधः सदैवाध्यात्मचिन्तनम्। मृद्वेणुदार्वलाब्वश्ममयं पात्रं यतेः स्मृतम्॥ ३७॥
आत्मान्ययोः समानत्वमजस्रं चात्मचिन्तनम्। यतिभिस्त्रिभिरेकत्वं द्वाभ्यां पञ्चभिरेव वा॥ ४०॥
न स्थातव्यं कदाचित्स्यात्तिष्ठन्तो नाशमाप्नुयुः। बहुत्वे यत्र भिक्षूणां वार्तास्तत्र विचित्रिकाः॥४१॥
स्नेहपैशुन्यमात्सर्यं भिक्षूणां नृपतेरपि। तस्मादेकान्तशीलेन भवितव्यं तपोऽर्थिना॥ ४२॥
ब्रह्मण्यात्मनि गोमायौ शुनौ म्लेच्छे च तुल्यदृक्॥ ४९॥

बृहत्परा०–१० अध्याय, ब्रह्मचारी आदि ४ भेदकथन।

कृषिगोरक्षवाणिज्यैः कुर्वन्सर्वा क्रियां द्विजः। विहितैरात्मविद्यैश्च वार्तावृत्तिः स उच्यते॥ १०॥
चतुर्भेदः परिव्राट् स्यात्कुटीचरबहूदकौ। हंसः परमहंसश्च वक्ष्यन्ते ते पृथक् पृथक्॥ २०॥
पुत्रस्य भ्रातृपुत्रस्य भ्रातृदौहित्रयोरपि। तदुपान्तकुटीस्थो यः स भैक्ष्यवृत्तिभुग्द्विजः॥ २१॥
प्रातिचार्यकृतः सोपि यो वासः पूतवारिपः। कन्थात्रिदण्डभृच्छान्त आत्मज्ञः स कुटीचरः॥२२॥
ज्ञेयो बहूदको नाम यः पवित्रितपादुकः। शिखासनोपवीतानि धातुकाषायवस्त्रभृत्॥ २३॥
साधुवृत्तिर्द्विजौकस्सु भिक्षाभागात्मचिन्तकः॥ बहूदकस्त्वयं ज्ञेयो यः परिव्राट्त्रिदण्डभृत्॥ २४॥
एकदण्डधरा हंसाः शिखोपवीतधारिणः। वार्याधारकराः शान्ता भूतानामभयप्रदाः॥ २५॥
वसन्त्येकक्षपां ग्रामे नगरे पञ्चशर्वरीः। कर्शयन्तो व्रतैर्देहमात्मध्यानरताः सदा॥ २६॥
एकदण्डधरा मुण्डाः कन्थाकौपीनवाससः। अव्यक्तलिङ्गिनो व्यक्ताः सर्वदैव च मौनिनः॥ २७॥
शिखादिरहिताः शान्ता उन्मत्तवेषधारिणः। भग्नशून्यामरौकस्सु वासिनो ब्रह्मचिन्तकाः॥ २८॥

(१४) व्यासस्मृति–१ अध्याय।

यत्र यत्र स्वभावेन कृष्णसारो मृगः सदा। चरते तत्र वेदोक्तो धर्मो भवितुमर्हति॥ ३॥
श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते। तत्र श्रौतं प्रमाणं तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा॥ ४॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्त्रयो वर्णा द्विजातयः। श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तधर्मयोग्यास्तु नेतरे॥ ५॥

शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति । वेदमन्त्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना ॥ ६ ॥
विप्रवद्विप्रविन्नासु क्षत्रविन्नासु क्षत्रवत् । जातकर्माणि कुर्वीत ततः शूद्रासु शूद्रवत् ॥ ७ ॥
वैश्यासु विप्रक्षत्राभ्यां ततः शूद्रासु शूद्रवत् । अधमादुत्तमायास्तु जातः शूद्राधमः स्मृतः ॥ ८ ॥
ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चाण्डालो धर्मवर्जितः । कुमारीसंभवस्त्वेकः सगोत्रायां द्वितीयकः ॥ ९ ॥
ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चाण्डालस्त्रिविधः स्मृतः ॥ १० ॥
तस्य प्राप्तव्रतस्यायं कालः स्याद्द्विगुणाधिकः । वेदव्रतच्युतो व्रात्यः स व्रात्यस्तोममर्हति ॥ २० ॥
द्वे जन्मनी द्विजातीनां मातुः स्यात्प्रथमं तयोः । द्वितीयं छन्दसां मातुर्ग्रहणाद्विधिवद्गुरोः ॥२१॥
उपनीतो गुरुकुले वसेन्नित्यं समाहितः । बिभृयाद्दण्डकौपीनोपवीताजिनमेखलाः ॥ २३ ॥
नापक्षिप्तोऽपि भाषेत नाव्रजेत्ताडितोऽपि वा । विद्वेषमथ पैशुन्यं हिंसनं चार्कवीक्षणम् ॥ २७ ॥
तौर्य्यत्रिकानृतोन्मादपरिवादानलंक्रियाम् । अञ्जनोद्वर्त्तनादर्शस्रग्विलेपं न योषितः ॥ २८ ॥
वृथाटनमसन्तोषं ब्रह्मचारी विवर्जयेत् । ईषच्चलितमध्याह्नेऽनुज्ञातो गुरुणा स्वयम् ॥ २९ ॥
नान्यद्भिक्षितमाद्याद्यादापन्नो द्रविणादिकम् । अनिन्द्यामन्त्रितः श्राद्धे पैत्रेद्याद्गुरुचोदितः ॥३२ ॥
एकान्नमप्यविरोधे व्रतानां प्रथमाश्रमी । भुक्त्वा गुरुमुपासीत कृत्वा संधुक्षणादिकम् ॥ ३३ ॥
तस्मादहरहर्वेदमनध्यायमृते पठेत् । यदङ्गं तदनध्याये गुरुर्वचनमाचरेत् ॥ ३८ ॥
यस्तूपनयनादेतदामृत्योर्व्रतमाचरेत् । स नैष्ठिको ब्रह्मचारी ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४० ॥
उपकुर्वाणको यस्तु द्विजः षड्विंशवार्षिकः । केशान्तकर्मणा तत्र यथोक्तचरितव्रतः ॥ ४१ ॥
समाप्य वेदान्वेदौ वा वेदं वा प्रसभं द्विजः । स्नायति गुर्वनुज्ञातः प्रवृत्तोदितदक्षिणः ॥ ४२ ॥

व्यासस्मृति–२ अध्याय ।

एवं स्नातकतां प्राप्तो द्वितीयाश्रमकाङ्क्षया । प्रतीक्षेत विवाहार्थमनिन्द्यान्वयसंभवाम् ॥ १ ॥
अरोगादुष्टवंशोत्थामशुल्कादानदूषिताम् । सवर्णामसमानार्षाममातृपितृगोत्रजाम् ॥ २ ॥
अनन्यपूर्विकां लघ्वीं शुभलक्षणसंयुताम् । धृताधोवसनां गौरीं विख्यातदशपूरुषाम् ॥ ३ ॥
ख्यातनाम्नः पुत्रवतः सदाचारवतः सतः । दातुमिच्छोर्दुहितरं प्राप्य धर्मेण चोद्वहेत् ॥ ४ ॥
ब्राह्मोद्वाहविधानेन तदभावे परो विधिः । दातव्यैषा सदृक्षाय वयोविद्यान्वयादिभिः ॥ ५ ॥
पितृतत्पितृभ्रातृषु पितृव्यज्ञातृमातृषु । पूर्वाभावे परो दद्यात्सर्वाभावे स्वयं व्रजेत् ॥ ६ ॥
यदि सा दातृवैकल्याद्रजः पश्येत्कुमारिका । भ्रूणहत्याश्च यावत्यः पतितः स्यात्तदप्रदः ॥ ७ ॥
न तु शूद्रां द्विजः कश्चिन्नाधमः पूर्ववर्णजाम् । नानावर्णासु भार्यासु सवर्णा सहचारिणी ॥ ११ ॥
धर्माधर्म्येषु धर्मिष्ठा ज्येष्ठा तस्य स्वजातिषु । पाटितोऽयं द्विजः पूर्वमेकदेहः स्वयम्भुवा ॥ १२ ॥
कृतशौचा पुनः कर्म पूर्ववच्च समाचरेत् । रजोदर्शनतो यास्स्यू रात्रयः षोडशर्तवः ॥ ४१ ॥
ततः पुंबीजमक्लिष्टं शुद्धे क्षेत्रे प्ररोहति । चतस्रश्चादिमा रात्रीः पर्ववच्च विवर्जयेत् ॥ ४२ ॥
गच्छेद्युग्मासु रात्रीषु पौष्णपित्र्यर्क्षराक्षसान् । प्रच्छादितादित्यपथे पुमान्गच्छेत्स्वयोषितः ॥ ४३ ॥
क्षमालंकृदवाप्नोति पुत्रं पूजितलक्षणम् । ऋतुकालेऽभिगम्यैवं ब्रह्मचर्ये व्यवस्थितः ॥ ४४ ॥
गच्छन्नपि यथाकामं न दुष्टः स्यादनन्यकृत् । भ्रूणहत्यामवाप्नोति ऋतौ भार्यापराङ्मुखः ॥ ४५ ॥
विवर्णा दीनवदना देहसंस्कारवर्जिता ॥ ५१ ॥
पतिव्रता निराहारा शोष्यते प्रोषिते पतौ ॥ ५२ ॥
जीवन्ती चेत्त्यक्तकेशा तपसा शोधयेद्वपुः । सर्वावस्थासु नारीणां न युक्तं स्यादरक्षणम् ॥ ५३ ॥
तदेवानुक्रमात्कार्यं पितृभर्तृसुतादिभिः । जाताः सुरक्षिता वा ये पुत्रपौत्रप्रपौत्रकाः ॥ ५४ ॥

व्यासस्मृति– ३ अध्याय ।

आगतं दूरतः श्रान्तं भोक्तुकाममकिञ्चनम् । दृष्ट्वा सम्मुखमभ्येत्य सत्कृत्य प्रश्रयार्च्चनैः ॥ ३८ ॥
विवाह्यस्नातकक्ष्माभृदाचार्यसुहृदृत्विजः । अर्घ्या भवन्ति धर्मेण प्रतिवर्षं गृहागताः ॥ ४१ ॥
गर्भिण्यातुरभृत्येषु बालवृद्धातुरादिषु । बुभुक्षितेषु भुञ्जानो गृहस्थोऽश्नाति किल्बिषम् ॥ ४५ ॥
शूद्राभिशस्तवार्धुष्या वाग्दुष्टक्रूरतस्कराः । कुद्धापविद्धबद्धोग्रवधबन्धनजीविनः ॥ ४७ ॥
ब्राह्मणस्य सुखं क्षेत्रं निष्कर्करमकंटकम् । वापयेत्तत्र बीजानि सा कृषिः सार्वकामिकी ॥ ४८ ॥

यस्य गेहे सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः। कव्यानि चैव पितरः किम्भूतमधिकं ततः ॥ ५४ ॥
अमृतं ब्राह्मणान्नेन दारिद्र्यं क्षत्रियस्य च। वैश्यान्नेन तु शूद्रत्वं शूद्रान्नान्नरकं व्रजेत् ॥ ५६ ॥
यस्य शूद्रा पचेन्नित्यं शूद्रा वा गृहमेधिनी। वर्जितः पितृदेवैस्तु रौरवं याति स द्विजः ॥ ५८ ॥
निर्दशासन्धिसम्बन्धिवत्सवन्तीपयांसि च। पलाण्डुं श्वेतवृन्ताकं रक्तमूलकमेव च ॥ ६० ॥
गृञ्जनारुणवृक्षासृग्जन्तुगर्भफलानि च। अकालकुसुमादीनि द्विजो जग्ध्वैन्दवं चरेत् ॥ ६१ ॥

व्यासस्मृति–४ अध्याय।

अनाहूतेषु यद्दत्तं यच्च दत्तमयाचितम्। भविष्यति युगस्यान्तस्तस्यान्तो न भविष्यति ॥ २६ ॥
देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च। कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ३४ ॥
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते। ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ ३५ ॥
सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत्। भोजने चैव दाने च हन्यात्त्रिपुरुषं कुलम् ॥ ३६ ॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः। यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ ३७ ॥
ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपश्च निर्जलः। यश्च विप्रोनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ ३८ ॥
ब्रह्मबीजसमुत्पन्नो मन्त्रसंस्कारवर्जितः। जातिमात्रोपजीवी च स भवेद्ब्राह्मणः समः ॥ ४१ ॥
गर्भाधानादिभिर्मन्त्रैर्वेदोपनयनेन च। नाध्यापयति नाधीते स भवेद्ब्राह्मणब्रुवः ॥ ४२ ॥
अग्निहोत्री तपस्वी च वेदमध्यापयेच्च यः। सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ ४३ ॥
मीमांसते च यो वेदान् षड्भिरङ्गैः सविस्तरैः। इतिहासपुराणानि स भवेद्वेदपारगः ॥ ४५ ॥
शैलूषशौण्डिकोन्नद्धोन्मत्तव्रात्यव्रतच्युताः। नग्ननास्तिकनिर्लज्जपिशुनव्यसनान्विताः ॥ ४८ ॥
कन्दर्पस्त्रीजिता नार्यः परवादकृता नराः। अनीशाः कीर्तिमन्तोऽपि राजदेवस्वहारकाः ॥ ४९ ॥
शयनासनसंसर्गव्रतकर्मादिदूषिताः। अश्रद्दधानाः पतिता भ्रष्टाचारादयश्च ये ॥ ५० ॥
अभोज्यान्नाः स्युरन्नादो यस्य यः स्यात्स तत्समः। नापितान्वयमित्रार्द्धसीरिणो दासगोपकाः ॥
शूद्राणामप्यमीषान्तु भुक्त्वान्नं नैव दुष्यति। धर्मेणान्योन्यभोज्यान्ना द्विजास्तु विदितान्वयाः ॥५२॥

(१९) शंखस्मृति–१ अध्याय।

यजनं याजनं दानं तथैवाध्यापनक्रिया। प्रतिग्रहं चाध्ययनं विप्रकर्माणि निर्दिशेत् ॥ २ ॥
दानं चाध्ययनं चैव यजनं च यथाविधि। क्षत्रियस्य च वैश्यस्य कर्मेदं परिकीर्त्तितम् ॥ ३ ॥
क्षत्रियस्य विशेषेण प्रजानां परिपालनम्। कृषिगोरक्षवाणिज्यं विशश्च परिकीर्त्तितम् ॥ ४ ॥
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा सर्वशिल्पानि वाप्यथ। क्षमा सत्यं दमः शौचं सर्वेषामविशेषतः ॥ ५ ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः। तेषां जन्म द्वितीयं तु विज्ञेयं मौञ्जिबन्धनात् ॥ ६ ॥
आचार्यस्तु पिता प्रोक्तः सावित्री जननी तथा। ब्राह्मणक्षत्रियविशां मौञ्जीबन्धनजन्मनि ॥ ७ ॥
वृत्त्या शूद्रसमास्तावद्विज्ञेयास्ते विचक्षणैः। यावद्वेदेन जायन्ते द्विजा ज्ञेयास्ततः परम् ॥ ८ ॥

शंखस्मृति–२ अध्याय।

गर्भस्य स्फुटताज्ञानं निषेकः परिकीर्त्तितः। पुरा तु स्पन्दनात्कार्यं पुंसवनं विचक्षणैः ॥ १ ॥
षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तो जाते वै जातकर्म च। आशौचे च व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते ॥ २ ॥
नामधेयं च कर्त्तव्यं वर्णानां च समाक्षरम्। माङ्गल्यं ब्राह्मणस्योक्तं क्षत्रियस्य बलान्वितम् ॥ ३ ॥
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्। शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु ॥ ४ ॥
धनान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं चान्त्यजन्मनः। चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं बालस्यादित्यदर्शनम् ॥ ५ ॥
षष्ठेन्नप्राशनं मासि चूडा कार्या यथाकुलम्। गर्भाष्टमेऽब्दे कर्त्तव्यं ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥ ६ ॥
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः। षोडशाब्दानि विप्रस्य राजन्यस्य द्विविंशतिः ॥ ७ ॥
विंशतिः सचतुष्का तु वैश्यस्य परिकीर्त्तिता। नातिवर्तेत सावित्री अत ऊर्ध्वं निवर्तते ॥ ८ ॥
विज्ञातव्यास्त्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः। सावित्रीपतिता व्रात्याः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ ९ ॥

शङ्खस्मृति–३ अध्याय।

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः। आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च ॥ १ ॥

स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति । भृतकाध्यापको यस्तु उपाध्यायः स उच्यते ॥ २ ॥
ब्रह्मावसाने प्रारम्भे प्रणवं च प्रकीर्तयेत् । अनध्यायेष्वध्ययनं वर्जयेच्च प्रयत्नतः ॥ ६ ॥
चतुर्दशीं पञ्चदशीमष्टमीं राहुसूतकम् । उल्कापातं महीकम्पमाशौचग्रामविप्लवम् ॥ ७ ॥
इन्द्रप्रयाणं श्रुतं सर्वसङ्घातनिस्वनम् । वाद्यकोलाहलं युद्धमनध्यायान्विवर्जयेत् ॥ ८ ॥
नाधीयीताभियुक्तोपि यानगो न च नौगतः । देवायतनवल्मीकश्मशानशवसन्निधौ ॥ ९ ॥

शङ्खस्मृति-४ अध्याय ।

विन्देत विधिवद्भार्यामसमानार्षगोत्रजाम् । मातृतः पञ्चमीं वापि पितृतस्त्वथ सप्तमीम् ॥ १ ॥
संप्रार्थितः प्रयत्नेन ब्राह्मस्तु परिकीर्तितः । यज्ञस्थायर्त्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम् ॥ ४ ॥
प्रार्थितः संप्रदानेन प्राजापत्यः प्रकीर्तितः । आसुरो द्रविणादानाद्गान्धर्वः समयान्मिथः ॥ ५ ॥
राक्षसो युद्धहरणात्पैशाच्यः कन्यकाछलात् । तिस्रस्तु भार्या विप्राय द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु ॥ ६ ॥
एकैव भार्या वैश्यस्य तथा शूद्रस्य कीर्तिता । ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या विप्रभार्याः प्रकीर्तिताः ॥७॥
क्षत्रिया चैव वैश्या च क्षत्रियस्य विधीयते । वैश्या च भार्या वैश्यस्य शूद्रा शूद्रस्य कीर्तिता ॥ ८॥
आपद्यपि न कर्तव्या शूद्रा भार्या द्विजन्मना । तस्यां तस्य प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ ९ ॥
सपिण्डीकरणे चार्हेन्न च शूद्रः कथञ्चन । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शूद्रां भार्यां विवर्जयेत् ॥ १३ ॥
पाणिर्ग्राह्यस्सवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम् । वैश्या प्रतोदमादद्याद्वेदने त्वग्रजन्मनः ॥ १४ ॥

शङ्खस्मृति-५ अध्याय ।

पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्लीपेषण्युपस्करः । कण्डनी चोदकुम्भश्च तस्य पापस्य शान्तये ॥ १ ॥
पञ्च यज्ञविधानं तु गृही नित्यं न हापयेत् । पञ्चयज्ञविधानेन तत्पापं तस्य नश्यति ॥ २ ॥
देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञस्तथैव च । ब्रह्मयज्ञो नृयज्ञश्च पञ्चयज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥
होमो दैवो बलिर्भौतः पित्र्यः पिण्डक्रिया स्मृतः । स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञश्च नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ४ ॥
वानप्रस्थो ब्रह्मचारी यतिश्चैव तथा द्विजः । गृहस्थस्य प्रसादेन जीवन्त्येते यथाविधि ॥ ५ ॥
गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तपते तपः । ददाति च गृहस्थश्च तस्माच्छ्रेयान् गृहाश्रमी ॥ ६ ॥
यथा भर्ता प्रभुः स्त्रीणां वर्णानां ब्राह्मणो यथा । अतिथिस्तद्वदेवास्य गृहस्थस्य प्रभुः स्मृतः ॥ ७ ॥
न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्वह्निशुश्रूषया तथा । गृही स्वर्गमवाप्नोति यथा चातिथिपूजनात् ॥ १३ ॥
यजेत पशुबन्धैश्च चातुर्मास्यैस्तथैव च । त्रैवार्षिकाधिकान्नस्तु पिबेत्सोममतन्द्रितः ॥ १६ ॥
इष्टिं वैश्वानरीं कुर्यात्तथा चाल्पधनो द्विजः । न भिक्षेत धनं शूद्रात्सर्वं दद्याच्च भिक्षितम् ॥ १७ ॥

शङ्खस्मृति-६ अध्याय ।

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः । अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ १ ॥
पुत्रेषु दारान्निक्षिप्य तया वानुगतो वनम् । अग्नीनुपचरेन्नित्यं वन्यमाहारमाहरेत् ॥ २ ॥
यदाहारो भवेत्तेन पूजयेत्पितृदेवताः । तेनैव पूजयेन्नित्यमतिथिं समुपागतम् ॥ ३ ॥
ग्रामादाहृत्य वाश्नीयादष्टौ ग्रासान्समाहितः । स्वाध्यायं च तथा कुर्याज्जटाश्च बिभृयात्तथा ॥ ४ ॥
तपसा शोषयेन्नित्यं स्वयं चैव कलेवरम् । आर्द्रवासास्तु हेमन्ते ग्रीष्मे पञ्चतपास्तथा ॥ ५ ॥
प्रावृष्याकाशशायी च नक्ताशी च सदा भवेत् । चतुर्थकालिको वा स्यात्षष्ठकालिक एव वा ॥ ६॥
कृच्छ्रैर्वापि नयेत्कालं ब्रह्मचर्यं च पालयेत् । एवं नीत्वा वने कालं द्विजो ब्रह्माश्रमी भवेत् ॥ ७ ॥

शङ्खस्मृति-७ अध्याय ।

कृत्वेष्टिं विधिवत्पश्चात्सर्ववेदसदक्षिणाम् । आत्मन्यग्नीन्समारोप्य द्विजो ब्रह्माश्रमी भवेत् ॥ १ ॥
विधूमे न्यस्तमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने । अतीते पात्रसम्पाते नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत् ॥ २ ॥
सप्तागारांश्चरेद्भैक्ष्यं भिक्षितं नानुभिक्षयेत् । न व्यथेच्च तथाऽलाभे यथालब्धेन वर्तयेत् ॥ ३ ॥
न स्वादयेत्तथैवान्नं नाश्नीयात्कस्यचिद्गृहे । मृन्मयालाबुपात्राणि यतीनां च विनिर्दिशेत् ॥ ४ ॥
तेषां संमार्जनाच्छुद्धिरद्भिश्चैव प्रकीर्तिता । कौपीनाच्छादनं वासो बिभृयादव्यथश्चरन् ॥ ५ ॥
शून्यागारनिकेतः स्याद्यत्रसायंगृहो मुनिः । दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत ॥ ६ ॥

सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् । सर्वभूतसमो मैत्रः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ ७ ॥
ध्यानयोगरतो भिक्षुः प्राप्नोति परमां गतिम् । जन्मना यस्तु निर्मुक्तो मरणेन तथैव च ॥ ८ ॥
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् । सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ॥ १२ ॥
त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते । मनसः संयमस्तज्ज्ञैर्धारणेति निगद्यते ॥ १३ ॥
संहारश्चेन्द्रियाणां च प्रत्याहारः प्रकीर्तितः । हृदिस्थध्यानयोगेन देवदेवस्य दर्शनम् ॥ १४ ॥
ध्यानं प्रोक्तं प्रवक्ष्यामि ध्यानयोगमतः परम् । हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः॥१५॥

शङ्खस्मृति–८ अध्याय।

अस्नातः पुरुषोनर्हो जप्याग्निहवनादिषु । प्रातःस्नानं तदर्थं च नित्यस्नानं प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥
चण्डालशवपूयाद्यं स्पृष्ट्वा स्नानं रजस्वलाम् । स्नानानर्हस्तु यः स्नाति स्नानं नैमित्तिकं च तत् ॥३॥
पुष्यस्नानादिकं स्नानं दैवज्ञविधिचोदितम् । तद्धि काम्यं समुद्दिष्टं नाकामस्तत्प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥
जप्तुः कामः पवित्राणि अर्चिष्यन्देवतान्पितॄन् । स्नानं समाचरेद्यस्तु क्रियाङ्गं तत्प्रकीर्तितम् ॥५॥
मलापकर्षणार्थाय स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् । मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तस्य नान्यथा ॥ ६ ॥
सरित्सु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च । क्रियास्नानं समुद्दिष्टं स्नानं तत्र महाक्रिया ॥ ७ ॥

शङ्खस्मृति–१० अध्याय।

अतः परं प्रवक्ष्यामि शुभामाचमनक्रियाम् । कार्यं कनिष्ठिकामूले तीर्थमुक्तं मनीषिभिः ॥ १ ॥
अङ्गुष्ठमूले च तथा प्राजापत्यं विचक्षणैः । अङ्गुल्यग्रे स्मृतं दैवं पित्र्यं तर्जनिमूलके ॥ २ ॥
विना यज्ञोपवीतेन तथा मुक्तशिखो द्विजः । अप्रक्षालितपादस्तु आचान्तोप्यशुचिर्भवेत् ॥ १४ ॥

शंखस्मृति–१२ अध्याय।

सुवर्णमणिमुक्तास्फटिकपद्माक्षरुद्राक्षपुत्रजीवकानामन्यतममादाय मालां कुर्यात् ॥ ५ ॥ कुशग्रन्थिं कृत्वा वामहस्तोपयमैर्वा गणयेत् ॥ ६ ॥

शंखस्मृति–१४ अध्याय।

ब्राह्मणान्न परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् । पित्र्ये कर्मणि संप्राप्ते युक्तमाहुः परीक्षणम् ॥ १ ॥
षडङ्गविन्त्रिसुपर्णो बह्वृचो ज्येष्ठसामगः । त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निर्ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ५ ॥
ब्रह्मदेयानुसन्तानो ब्रह्मदेयाप्रदायकः । ब्रह्मदेयापतिर्यश्च ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ६ ॥
ऋग्यजुःपारगो यश्च साम्नां यश्चापि पारगः । अथर्वाङ्गिरसोध्येता ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ७ ॥
नित्यं योगरतो विद्वान्समलोष्टाश्मकाञ्चनः । ध्यानशीलो हि यो विद्वान्ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥८॥
द्वौ दैवे प्राङ्मुखौ त्रींश्च पित्र्ये वोदङ्मुखांस्तथा । भोजयेद्विविधान्विप्रानेकैकमुभयत्र वा ॥ ९ ॥
भोजयेदथवाप्येकं ब्राह्मणं पंक्तिपावनम् । दैवे कृत्वा तु नैवेद्यं पश्चाद्वह्नौ तु तत्क्षिपेत् ॥ १० ॥
उग्रगन्धान्यगन्धानि चैत्यवृक्षभवानि च । पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च ॥ १५ ॥
तोयोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः । ऊर्णासूत्रं प्रदातव्यं कार्पासमथवा नवम् ॥ १६ ॥
दशां विवर्जयेत्प्राज्ञो यद्यप्यहतवस्त्रजाम् । घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः ॥ १७ ॥
धूपार्थं गुग्गुलं दद्याद्घृतयुक्तमधूत्कटम् । चन्दनं च तथा दद्यात्पिष्ट्वा च कुंकुमं शुभम् ॥ १८ ॥
भूतृणं सरसं शिग्रुं पालकं सिन्धुकं तथा । कूष्माण्डालाबुवार्ताककोविदारांश्च वर्जयेत् ॥ १९ ॥
पिप्पलीं मरिचं चैव तथा वै पिण्डमूलकम् । कृतं च लवणं सर्वं वंशाग्रं तु विवर्जयेत् ॥ २० ॥
राजमाषान्मसूरांश्च कोद्रवान्कोरदूषकान् । लोहितान्वृक्षनिर्यासान्छ्राद्धकर्मणि वर्जयेत् ॥ २१ ॥
आम्रमामलकीमिक्षुमृद्वीकादधिदाडिमान् । विदार्यश्चैव रम्भाद्या दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नतः ॥ २२ ॥
धानालाजे मधुयुते सक्तूञ्शर्करया तथा । दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन शृङ्गाटकबिसेतकान् ॥ २३ ॥
म्लेच्छदेशे तथा रात्रौ सन्ध्यायां च विशेषतः । न श्राद्धमाचरेत्प्राज्ञो म्लेच्छदेशे न च व्रजेत् ॥३०॥
हस्तिच्छायासु यद्दत्तं यद्दत्तं राहुदर्शने । विषुवत्ययने चैव सर्वमानन्त्यमुच्यते ॥ ३१ ॥
प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् । प्राप्य श्राद्धं प्रकर्त्तव्यं मधुना पायसेन वा ॥ ३२ ॥
प्रजां पुष्टिं यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा । नृणां श्राद्धैः सदा प्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः॥३३॥

शंखस्मृति-१५ अध्याय।

जनने मरणे चैव सपिण्डानां द्विजोत्तम। त्र्यहाच्छुद्धिमवाप्नोति योऽग्निवेदसमन्वितः॥ १॥
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्ध्यति। अजातदन्तबाले तु सद्यःशौचं विधीयते॥ ४॥
अहोरात्रात्तथा शुद्धिर्बाले त्वकृतचूडके। तथैवानुपनीते तु त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः॥ ५॥
पितृवेश्मनि या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता। तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचिदपि शाम्यति॥८॥
देशान्तरगतः श्रुत्वा कुल्यानां मरणोद्भवौ। यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत्॥ ११॥
अतीते दशरात्रे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्। तथा संवत्सरेऽतीते स्नात एव विशुद्ध्यति॥ १२॥
अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च। परपूर्वासु च स्त्रीषु त्र्यहाच्छुद्धिरिहेष्यते॥ १३॥
मातामहे व्यतीते तु आचार्ये च तथा मृते। गृहे दत्तासु कन्यासु मृतासु तु त्र्यहस्तथा॥ १४॥
निवासराजनि प्रेते जाते दौहित्रके गृहे। आचार्यपत्नीपुत्रेषु प्रेतेषु दिवसेन च॥ १५॥
एकरात्रं त्रिरात्रं च षड्रात्रं मासमेव च। शूद्रे सपिण्डे वर्णानामाशौचं क्रमशः स्मृतम्॥ १७॥
त्रिरात्रमथ षड्रात्रं पक्षं मासं तथैव च। वैश्ये सपिण्डे वर्णानामाशौचं क्रमशः स्मृतम्॥ १८॥
सपिण्डे क्षत्रिये शुद्धिः षड्रात्रं ब्राह्मणस्य तु। वर्णानां परिशिष्टानां द्वादशाहं विनिर्दिशेत्॥ १९॥
सपिण्डे ब्राह्मणे वर्णाः सर्वे एवाविशेषतः। दशरात्रेण शुध्येयुरित्याह भगवान्यमः॥ २०॥
भृग्वग्न्यनशनाम्भोभिर्मृतानामात्मघातिनाम्। पतितानां च नाशौचं शस्त्रविद्युद्धताश्च ये॥ २१॥
यतिव्रतिब्रह्मचारिनृपकारुकदीक्षिताः। नाशौचभाजः कथिता राजाज्ञाकारिणश्च ये॥ २२॥

शंखस्मृति-१६ अध्याय।

मृन्मयं भाजनं सर्वं पुनः पाकेन शुद्ध्यति। मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा ष्ठीवनैः पूयशोणितैः॥ १॥
संस्पृष्टं नैव शुद्ध्येत पुनः पाकेन मृन्मयम्। एतैरेव तथा स्पृष्टं ताम्रसौवर्णराजतम्॥ २॥
शुद्ध्यत्यावर्तितं पश्चादन्यथा केवलाम्भसा। अम्लोदकेन ताम्रस्य सीसस्य त्रपुणस्तथा॥ ३॥
क्षारेण शुद्धिः कांस्यस्य लोहस्य च विनिर्दिशेत्। मुक्तामणिप्रवालानां शुद्धिः प्रक्षालनेन तु॥ ४॥
अब्जानां चैव भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च। शाकमूलफलानां च विदलानां तथैव च॥ ५॥
मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि। उष्णाम्भसा तथा शुद्धिं सस्नेहानां विनिर्दिशेत्॥ ६॥
मार्जनाद्वेश्मनां शुद्धिः क्षितेः शोधस्तु तत्क्षणात्। संमार्जितेन तोयेन वाससां शुद्धिरिष्यते॥ ८॥
बहूनां प्रोक्षणाच्छुद्धिर्धान्यादीनां विनिर्दिशेत्। प्रोक्षणात्संहतानां च दारवाणां च तक्षणात्॥ ९॥
सिद्धार्थकानां कल्केन शृङ्गदन्तमयस्य च। गोवालैः फलपात्राणामस्थ्नां शृङ्गवतां तथा॥ ११॥
प्रोक्षणात्कथिता शुद्धिरित्याह भगवान्यमः। भूमिस्थमुदकं शुद्धं शुचि तोयं शिलागतम्॥ १२॥
वर्णगन्धरसैर्दुष्टैर्वर्जितं यदि तद्भवेत्। शुद्धं नदीगतं तोयं सर्वदैव तथा करः॥ १३॥
शुद्धं प्रसारितं पण्यं शुद्धे चाजाश्वयोर्मुखे। मुखवर्जं तु गौः शुद्धा मार्जारश्चाश्रमं शुचिः॥ १४॥
शय्या भार्या शिशुर्वस्त्रमुपवीतं कमण्डलुः। आत्मनः कथितं शुद्धं न शुद्धं हि परस्य च॥ १५॥
नारीणां चैव वत्सानां शकुनीनां शुनां मुखम्। रात्रौ प्रस्रवणे वृक्षे मृगयायां सदा शुचिः॥ १६॥
शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला। दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेहनि शुध्यति॥ १७॥
रथ्यामाक्रम्य वाचामेद्वासो विपरिधाय च। कृत्वा मूत्रं पुरीषं च लेपगन्धापहं द्विजः॥ २०॥
उद्धृतेनाम्भसा शौचं मृदा चैव समाचरेत्। मेहने मृत्तिकाः सप्त लिङ्गे द्वे परिकीर्तिते॥ २१॥
एकस्मिन्विंशतिर्हस्ते द्वे ज्ञेये च चतुर्दश। तिस्रस्तु मृतिका ज्ञेयाः कृत्वा नखविशोधनम्॥ २२॥
तिस्रस्तु पादयोर्ज्ञेयाः शौचकामस्य सर्वदा। शौचमेतद्गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम्॥ २३॥
त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम्। मृत्तिका च विनिर्दिष्टा त्रिपर्वं पूर्यते यया॥ २४॥

शंखस्मृति-१७ अध्याय।

नित्यं त्रिषवणस्नायी कृत्वा पर्णकुटीं वने। अधःशायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः॥ १॥
ग्रामं विशेच्च भिक्षार्थं स्वकर्म परिकीर्तयन्। एककालं समश्नीयाद्वर्षे तु द्वादशे गते॥ २॥
यागस्थं क्षत्रियं हत्वा वैश्यं हत्वा च याजकम्। एतदेव व्रतं कुर्यादात्रेयीविनिषूदकः॥ ४॥
कूटसाक्ष्यं तथैवोक्त्वा निक्षेपमपहृत्य च। एतदेव व्रतं कुर्यात्त्यक्त्वा च शरणागतम्॥ ५॥

आहिताग्नेः स्त्रियं हत्वा मित्रं हत्वा तथैव च। हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् ॥ ६ ॥
हत्वा द्विजं तथा सर्पजलेशयविलेशयान्। सप्तरात्रं तथा कुर्याद्व्रतं ब्रह्महणस्तथा ॥ ११ ॥
अनस्थ्नां शकटं हत्वा अस्थ्नां दशशतं तथा। ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यात्पूर्णं संवत्सरं नरः ॥ १२ ॥
गोजाश्वस्यापहरणे मणीनां रजतस्य च। जलापहरणे चैव कुर्यात्संवत्सरं व्रतम् ॥ १५ ॥
तिलानां धान्यवस्त्राणां मद्यानामामिषस्य च। संवत्सरार्द्धं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ॥ १६ ॥
तृणेक्षुकाष्ठतक्राणां रसानामपहारकः। मासमेकं व्रतं कुर्याद्दन्तानां सर्पिषां तथा ॥ १७ ॥
लवणानां गुडानां च मूलानां कुसुमस्य च। मासार्द्धं तु व्रतं कुर्यादेतदेव समाहितः ॥ १८ ॥
लोहानां वैदलानां च सूत्राणां चर्मणां तथा। एकरात्रं व्रतं कुर्यादेतदेव समाहितः ॥ १९ ॥
भुक्त्वा पलाण्डुं लशुनं मद्यं च कवकानि च। नारं मलं तथा मांसं विड्वराहं खरं तथा ॥ २० ॥
गौधेयकुञ्जरोष्ट्रं च सर्वं पाञ्चनखं तथा। क्रव्यादं कुक्कुटं ग्राम्यं कुर्यात्संवत्सरं व्रतम् ॥ २१ ॥
भक्ष्याः पञ्चनखास्त्वेते गोधाकच्छपशल्लकाः। खड्गश्च शशकश्चैव तान्हत्वा च चरेद्व्रतम् ॥ २२ ॥
हंसं मद्गुरकं काकं काकोलं खञ्जरीटकम्। मत्स्यादांश्च तथा मत्स्यान्बलाकं शुकसारिके ॥ २३ ॥
चक्रवाकं प्लवं कोकं मण्डूकं भुजगं तथा। मासमेकं व्रतं कुर्यादेतच्चैव न भक्षयेत् ॥ २४ ॥
जलेचरांश्च जलजान्मुखाग्रनखविष्किरान्। रक्तपादाञ्जालपादान्सप्ताहं व्रतमाचरेत् ॥ २६ ॥
तित्तिरिं च मयूरं च लावकं च कपिञ्जलम्। वार्ध्रीणसं वर्त्तकं च भक्षानाह यमस्तथा ॥ २७ ॥
भुक्त्वा चोभयतोदन्तस्तथैकशफदंष्ट्रिणः। तथा भुक्त्वा तु मांसं वै मासार्द्धं व्रतमाचरेत् ॥ २८ ॥
स्वयं मृतं वृथा मांसं माहिषं त्वाजमेव च। गोश्च क्षीरं विवत्सायाः सन्धिन्याश्च तथा पयः ॥ २९॥
सन्धिन्यमेध्यं भक्षित्वा पक्षं तु व्रतमाचरेत्। क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः ॥ ३० ॥
सप्तरात्रं व्रतं कुर्याद्यदेतत्परिकीर्तितम्। लोहितान्वृक्षनिर्यासान्व्रश्चनप्रभवांस्तथा ॥ ३१ ॥
शूद्रान्नं ब्राह्मणो भुक्त्वा तथा रङ्गावतारिणः। चिकित्सकस्य क्षुद्रस्य तथा स्त्रीमृगजीविनः ॥ ३६॥
मौञ्जिकान्नं सूतिकान्नं भुक्त्वा मासं व्रतं चरेत्। शूद्रस्य सततं भुक्त्वा षण्मासान्व्रतमाचरेत् ॥४०॥
मद्यभाण्डगताः पीत्वा सप्तरात्रं व्रतं चरेत्। शूद्रोच्छिष्टाशने मासं पक्षमेकं तथा विशः ॥ ४३ ॥
क्षत्रियस्य तु सप्ताहं ब्राह्मणस्य तथा दिनम्। अग्रश्राद्धाशने विद्वान्मासमेकं व्रती भवेत् ॥ ४४ ॥
परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविन्दति। व्रतं संवत्सरं कुर्युर्दातृयाजकपञ्चमाः ॥ ४५ ॥
काकोच्छिष्टं गवाघ्रातं भुक्त्वा पक्षं व्रती भवेत्। दूषितं केशकीटैश्च मूषिकालाङ्गलेन च ॥ ४६ ॥
मक्षिकामशकेनापि त्रिरात्रं तु व्रती भवेत्। वृथा कृसरसंयावपायसापूपशष्कुलीः ॥ ४७ ॥
कुशैः प्रमृज्य पादौ च दिनमेकं व्रती भवेत्। नीलीवस्त्रं परीधाय भुक्त्वा स्नानार्हणस्तथा ॥ ५० ॥
त्रिरात्रं च व्रतं कुर्याच्छित्त्वा गुल्मलतास्तथा। अध्यास्य शयनं यानमासनं पादुके तथा ॥ ५१ ॥
क्षत्रियस्तु रणे दत्त्वा पृष्ठं प्राणपरायणः। संवत्सरं व्रतं कुर्याच्छित्त्वा वृक्षं फलप्रदम् ॥ ५३ ॥
दिवा च मैथुनं गत्वा स्नात्वा नग्नस्तथाम्भसि। नग्नां परस्त्रियं दृष्ट्वा दिनमेकं व्रती भवेत् ॥ ५४ ॥
क्षिप्त्वाग्नावशुचिद्रव्यं तदेवाम्भसि मानवः। मासमेकं व्रतं कुर्यादुपक्रुश्य तथा गुरुम् ॥ ५५ ॥
हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारं च गरीयसः। दिनमेकं व्रतं कुर्यात्प्रयतः सुसमाहितः ॥ ६० ॥
प्रेतस्य प्रेतकार्याणि अकृत्वा धनहारकः। वर्णानां यद्व्रतं प्रोक्तं तद्व्रतं प्रयतश्चरेत् ॥ ६१ ॥

शंखस्मृति—१८ अध्याय।

त्र्यहं सायं त्र्यहं प्रातस्त्र्यहमद्यादयाचितम्। त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्व्रतम् ॥ ३ ॥
त्र्यहमुष्णं पिबेत्तोयं त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत्। त्र्यहमुष्णं पयः पीत्वा वायुभक्षस्त्र्यहं भवेत् ॥ ४ ॥
तप्तकृच्छ्रं विजानीयाच्छीतैः शीतमुदाहृतम्। द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥ ५ ॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥ ८ ॥
एतत्तु त्र्यहमभ्यस्तं महासान्तपनं स्मृतम्। पिण्याकं वाऽऽमतक्राम्बुसक्तूनां प्रतिवासरम् ॥ ९ ॥
उपवासान्तराभ्यासात्तुलापुरुष उच्यते। गोपुरीषाशनो भूत्वा मासं नित्यं समाहितः ॥ १० ॥
व्रतं तु यावकं कुर्यात् सर्वपापापनुत्तये। ग्रासं चन्द्रकलावृद्ध्या प्राश्नीयाद्वर्द्धयन्सदा ॥ ११ ॥
ह्रासयेच्च कलावृद्ध्या व्रतं चान्द्रायणं चरन्। मुण्डस्त्रिषवणस्नायी अधःशायी जितेन्द्रियः ॥ १२ ॥

स्त्रीशूद्रपतितानां च वर्जयेत्परिभाषणम्। पवित्राणि जपेच्छक्त्या जुहुयाच्चैव शक्तितः ॥ १३ ॥
अयं विधिः स विज्ञेयः सर्वकृच्छ्रेषु सर्वदा। पापात्मानस्तु पापेभ्यः कृच्छ्रैः सन्तारिता नराः॥१४॥

(१५ क)लघुशंखस्मृति।

यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति पुरुषस्य च। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ७ ॥
एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्य ते वृषः। मुच्यते प्रेतलोकाच्च स्वर्गलोकं च गच्छति ॥ ९ ॥
त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते। प्राप्ते चैकादशदिने पार्वणं तु विधीयते ॥ १८ ॥
मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः। द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तु पितुः पितुः ॥ २१ ॥
अथ चेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पंक्तिदूषणैः। अदोषं तं यमः प्राह पंक्तिपावन एव सः ॥ २२ ॥
मृन्मयेषु च पात्रेषु श्राद्धं भोजयते द्विजः। अन्नदाताऽपहर्ता च भोक्ता च नरकं व्रजेत् ॥ २५ ॥
हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणव्यञ्जनादयः। दातारं नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुंक्ते च किल्बिषम् ॥ २६ ॥
आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते। भोक्ता विष्ठासमं भुंक्ते दाता च नरकं व्रजेत् ॥ २७ ॥
पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम्। दानं प्रतिग्रहो होमः श्राद्धं भुक्त्वाऽष्ट वर्जयेत् ॥ २९ ॥
चाण्डालघटमध्यस्थं यस्तोयं पिबति द्विजः। तत्क्षणात्क्षय (क्षिप) ते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत्॥४३
यदि न क्षिपते तोयं शरीरे यस्य जीर्यति। प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥ ४४ ॥
चरेत्सान्तपनं विप्रः प्राजापत्यं तु क्षत्रियः। तदर्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ ४५ ॥
एकं च बहुभिः कैश्चिद्दैवाद्व्यापादितं क्वचित्। कृच्छ्रपादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक् ॥ ५४ ॥
एकपादं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत्। योक्त्रे च पादहीनं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने ॥ ५५ ॥
रोमाणि प्रथमे पादे द्वितीये श्मश्रुघातनम्। तृतीये तु शिखा धार्या सशिखं तु निपातने ॥ ५६ ॥
केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं व्रतमाचरेत्। द्विगुणव्रते समादिष्टे द्विगुणा दक्षिणा भवेत् ॥ ५७ ॥
राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः। अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ५८ ॥
यन्त्रिते गोचिकित्सायां मूढगर्भविमोचने। यत्ने कृते विपद्येत प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ६० ॥
औषधं स्नेहमाहारं दत्तं गोब्राह्मणाय च। यदि काचिद्विपत्तिः स्यात्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ६१ ॥
आममांसं घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च फलसम्भवाः। म्लेच्छभाण्डस्थिता ह्येते निष्क्रान्ताः शुचयः स्मृताः६७
दिवा कपित्थच्छायासु रात्रौ दधिशमीषु च। धात्रीफलेषु सप्तम्यामलक्ष्मीर्वसते सदा ॥ ६८ ॥
अर्धवासास्तु यः कुर्याज्जपहोमक्रिया द्विजः। तत्सर्वं राक्षसं विद्याद्बहिर्जानु च यत्कृतम् ॥ ७० ॥

(१६) लिखितस्मृति।

इष्टापूर्ते तु कर्त्तव्ये ब्राह्मणेन प्रयत्नतः। इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १ ॥
एकाहमपि कर्त्तव्यं भूमिष्ठमुदकं शुभम्। कुलानि तारयेत्सप्त यत्र गौर्वितृषी भवेत् ॥ २ ॥
भूमिदानेन ये लोका गोदानेन च कीर्त्तिताः। ताँल्लोकान्प्राप्नुयान्मर्त्यः पादपानां प्ररोपणे ॥ ३ ॥
वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च। पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्तफलमश्नुते ॥ ४ ॥
अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम्। आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते ॥ ५ ॥
इष्टापूर्तौ द्विजातीनां सामान्यौ धर्म उच्यते। अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके ॥ ६ ॥
यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ७ ॥
एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः। मुच्यते प्रेतलोकात्तु पितृलोकं स गच्छति ॥ ९ ॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत्। यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ १० ॥
वाराणस्यां प्रविष्टस्तु कदाचिन्निष्क्रमेद्यदि। हसन्ति तस्य भूतानि अन्योन्यं करताडनैः ॥ ११ ॥
गयाशिरे तु यत्किंचिन्नाम्ना पिण्डन्तु निर्वपेत्। नरकस्थो दिवं याति स्वर्गस्थो मोक्षमाप्नुयात् १२॥
लोहितो यस्तु वर्णेन शंखवर्णखुरस्तथा। लाङ्गूलशिरसोश्चैव स वै नीलवृषः स्मृतः ॥ १४ ॥
नवश्राद्धं त्रिपक्षे च द्वादशस्वेव मासिकम्। षण्मासं चाब्दिकं चैव श्राद्धान्येतानि षोडश ॥ १५ ॥
यस्यैतानि न कुर्वीत एकोद्दिष्टानि षोडश। पिशाचत्वं स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥ १६ ॥
यस्य संवत्सरादर्वाक्सपिण्डीकरणं स्मृतम्। प्रत्यहं तस्योदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजः ॥ २३ ॥
पत्या चैकेन कर्त्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः। पितामह्यापि तत्तास्मिन्सत्येवन्तु क्षयेऽहनि ॥ २४ ॥

तस्यां सत्यां प्रकर्तव्यं तस्याः श्वश्रेति निश्चितम् । विवाहे चैव निर्वृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु ॥ २५ ॥
एकत्वं सा गता भर्त्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके । स्वगोत्राद्भ्रश्यते नारी उद्वाहात्सप्तमे पदे ॥ २६ ॥
भर्तृगोत्रेण कर्तव्या दानपिण्डोदकक्रियाः ॥ २७ ॥
यस्यास्तु न भवेद् भ्राता न विज्ञायेत वा पिता । नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया ॥ ५१ ॥
अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् । अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविष्यति५२॥
मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः । द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयन्तत्पितुः पितुः ॥ ५३ ॥
मृन्मयेषु च पात्रेषु श्राद्धे यो भोजयेत्पितॄन् । अन्नदाता पुरोधाश्च भोक्ता च नरकं व्रजेत् ॥ ५४ ॥
अलाभे मृन्मयं दद्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः । घृतेन प्रोक्षणं कार्यं मृदः पात्रं पवित्रकम् ॥ ५५ ॥
पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम् । दानं प्रतिग्रहो होमं श्राद्धभुक्त्वष्ट वर्जयेत् ॥ ५८ ॥
अध्वगामी भवेदश्वः पुनर्भोक्ता च वायसः । कर्मकृज्जायते दासः स्त्रीगामी सूकरः स्मृतः ॥ ५९ ॥
चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा । पक्षत्रये तु कृच्छ्रं स्यात्षण्मासे कृच्छ्रमेव च ॥ ६२ ॥
ऊनाब्दिके द्विरात्रं स्यादेकाहः पुनराब्दिके । शावे मासस्तु भुक्त्वा वा पादकृच्छ्रं विधीयते ॥ ६३ ॥
सर्पविप्रहतानां च शृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः । आत्मनस्त्यागिनां चैव श्राद्धमेषां न कारयेत् ॥ ६४ ॥
गोभिर्हतं तथोद्बद्धं ब्राह्मणेन तु घातितम् । तं स्पृशन्ति च ये विप्रा गोजाश्वाश्च भवन्ति ते ॥ ६५ ॥
अग्निदाता तथा चान्ये पाशच्छेदकराश्च ये । तप्तकृच्छ्रेण शुध्यन्ति मनुराह प्रजापतिः ॥ ६६ ॥
पतितान्नं यदा भुंक्ते भुक्ते चाण्डालवेश्मनि । स मासार्द्धं चरेद्वारि मासं कामकृते न तु ॥ ७० ॥
कुब्जवामनषण्ढेषु गद्गदेषु जडेषु च । जात्यन्धे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥ ७५ ॥
क्लीबे देशान्तरस्थे च पतिते व्रजितेपि वा । योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥ ७६ ॥
चाण्डालस्पृष्टभाण्डस्थं यत्तोयं पिबति द्विजः । तत्क्षणात्क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ८० ॥
यदि वोत्क्षिप्यते तोयं शरीरे तस्य जीर्यति । प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ ८१ ॥
चरेत्सान्तपनं विप्रः प्राजापत्यं तु क्षत्रियः । तदर्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रे तु दापयेत् ॥ ८२ ॥
रजस्वला यदा स्पृष्टा शुना सूकरवायसैः । उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ८३ ॥
शावसूतक उत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत् । शावेन शुध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी ॥ ८६ ॥
षष्ठेन शुद्ध्यत्येकाहं पञ्चमे द्व्यहमेव तु । चतुर्थे सप्तरात्रं स्यात्त्रिपुरुषं दशमेऽहनि ॥ ८७ ॥
आमं मांसं घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च फलसंभवाः । अन्त्यभाण्डस्थिता ह्येते निष्क्रान्ताः शुचयः स्मृताः॥
दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधि च सक्तुषु । धात्रीफलेषु सर्वत्र अलक्ष्मीर्वसते सदा ॥ ९१ ॥
यत्रयत्र च सङ्कीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः । तत्रतत्र तिलैर्होमं गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ ९२ ॥

(१६ क) शंखलिखितस्मृति ।

परान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योऽधिगच्छति । यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रं प्रवर्तते ॥ १५ ॥
परान्नं परवस्त्रं च परयानं परस्त्रियः । परवेश्मनि वासश्च शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ १७ ॥
आहिताग्निस्तु यो विप्रो मत्स्यमांसानि भोजयेत् । कालरूपी कृष्णसर्पो जायते ब्रह्मराक्षसः ॥ १८॥

(१७) दक्षस्मृति–१ अध्याय ।

द्विविधो ब्रह्मचारी तु स्मृतः शास्त्रमनीषिभिः । उपकुर्वाणकस्त्वाद्यो द्वितीयो नैष्ठिकः स्मृतः ॥८ ॥

दक्षस्मृति–२ अध्याय ।

समित्पुष्पकुशादीनां द्वितीये समुदाहृतः । तृतीये चैव भागे तु पोष्यवर्गार्थसाधनम् ॥ ३१ ॥
माता पिता गुरुर्भार्या प्रजादीनः समाश्रितः । अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥ ३२॥
ज्ञातिर्बन्धुजनः क्षीणस्तथानाथः समाश्रितः । अन्योऽपि धनमुक्तस्य पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥ ३३ ॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं स्नानमुच्यते । तेषां मध्ये तु यन्नित्यं तत्पुनर्भिद्यते त्रिधा ॥ ४० ॥
मलापकर्षणं पश्चान्मन्त्रवत्तु जले स्मृतम् । सन्ध्यास्नानमुभाभ्यां तु स्नानभेदाः प्रकीर्तिताः ॥४१॥

दक्षस्मृति–३ अध्याय ।

दाने फलविशेषः स्याद्विशेषाद्यत्न एव हि । सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥ २६ ॥
सहस्रगुणमाचार्ये त्वनन्तं वेदपारगे । विधिहीने यथाऽपात्रे यो ददा प्रतिग्रहम् ॥ २७ ॥

दक्षस्मृति–४ अध्याय ।

दरिद्रं व्याधितं चैव भर्तारं यावमन्यते ॥ १६ ॥
शुनी गृध्री च मकरी जायते सा पुनः पुनः ॥ १७ ॥

दक्षस्मृति–५ अध्याय ।

एका लिङ्गे गुदे तिस्रो दश वामकरे तथा । उभयोः सप्त दातव्या मृदस्तिस्रस्तु पादयोः ॥ ५ ॥
गृहस्थे शौचमाख्यातं त्रिष्वन्येषु क्रमेण तु । द्विगुणं त्रिगुणं चैव चतुर्थस्य चतुर्गुणम् ॥ ६ ॥
अर्द्धप्रसृतिमात्रा तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता । द्वितीया च तृतीया च तदर्द्धं परिकीर्तिता ॥ ७ ॥

दक्षस्मृति–६ अध्याय ।

राजर्त्विग्दीक्षितानाञ्च बाले देशान्तरे तथा । व्रतिनां सत्रिणाञ्चैव सद्यः शौचं विधीयते ॥ ९ ॥
सूतके मृतके चैव तथा च मृतसूतके । एतत्संहतशौचानां मृताशौचेन शुध्यति ॥ १२ ॥
दानं च विधिना देयमशुभात्तारकं हि तत् । मृतकान्ते मृतो यस्तु सूतकान्ते च सूतकम् ॥ १४ ॥
एतत्संहतशौचानां पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति । उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते ॥ १५ ॥
चतुर्थेहनि कर्त्तव्यमस्थिसञ्चयनं द्विजैः । ततः सञ्चयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ॥ १६ ॥
स्वस्थकाले त्विदं सर्वमशौचं परिकीर्तितम् । आपद्गतस्य सर्वस्य सूतकेपि न सूतकम् ॥ १८ ॥
यज्ञे प्रवर्तमाने तु जायेताथ म्रियेत वा । पूर्वसङ्कल्पिते कार्ये न दोषस्तत्र विद्यते ॥ १९ ॥
यज्ञकाले विवाहे च देवयागे तथैव च । हूयमाने तथा चाग्नौ नाशौचं नापि सूतकम् ॥ २० ॥

दक्षस्मृति–७ अध्याय ।

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा । तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते ॥ २ ॥
त्यक्त्वा विषयभोगांस्तु मनो निश्चलताङ्गतम् । आत्मशक्तिस्वरूपेण समाधिः परिकीर्तितः ॥२२॥
ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेदष्टधा रक्षणं पृथक् । स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥ ३१ ॥
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च । एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ३२ ॥

(१८) गौतमस्मृति–१ अध्याय ।

उपनयनं ब्राह्मणस्याष्टमे नवमे पञ्चमे वा काम्यं गर्भादिः संख्यावर्षाणां तद्द्वितीयं जन्म ॥ ३ ॥ आषोडशाद्ब्राह्मणस्यापतिता सावित्री द्वाविंशते राजन्यस्य द्व्यधिकाया वैश्यस्य ॥ ६ ॥ मौञ्जी ज्यामौर्वीसौत्र्यो मेखलाः क्रमेण कृष्णरुरुवस्ताजिनानि वासांसि शाणक्षौमचीरकुतपाः सर्वेषां कार्पासं चाविकृतम् ॥ ७ ॥ काषायमप्येके ॥ ८ ॥ वार्क्षं ब्राह्मणस्य माञ्जिष्ठहारिद्रे इतरयोः ॥ ९ ॥ बैल्वपालाशौ दण्डौ ॥ १० ॥ आश्वत्थपैलवौ शेषे ॥ ११ ॥ यज्ञिया वा सर्वेषाम् ॥ १२ ॥ अपीडिता यूपचक्राः सवल्कला मूर्द्धललाटनासाग्रप्रमाणा मुण्डजटिलशिखाजटाश्च ॥ १३ ॥ द्रव्यशुद्धिः परिमार्जनप्रदाहतक्षणनिर्णेजनानि तैजसमार्त्तिकदारवतान्तवानाम् ॥ १५ ॥ तैजसवदुपलमणिशङ्खशुक्तीनां दारुवदस्थिभूम्योरावपनं च भूमेश्चैलवद्रज्जुविदलचर्मणामुत्सर्गो वात्यन्तोपहतानाम् ॥ १६ ॥ दन्तश्लिष्टेषु दन्तवदन्यत्र जिह्वाभिमर्शनात्प्राक्च्युतेरित्येके ॥ २० ॥ च्युतेरास्रावविद्यान्निगिरन्नेव तच्छुचिः ॥ २१ ॥ न मुख्या विप्रुष उच्छिष्टं कुर्वन्ति ताश्चेदङ्गे निपतन्ति ॥ २२ ॥

गौतमस्मृति–२ अध्याय ।

प्रागुपनयनात्कामचारवादभक्षोऽहुतोऽब्रह्मचारी यथोपपादमूत्रपुरीषो भवति नास्याचमनकल्पो विद्यतेऽन्यत्रापमार्जनप्रधावनावोक्षणेभ्यो न तदुपस्पर्शनादशौचं न त्वेनमग्निहवनबलिहरणयोर्नियुज्यान्न ब्रह्माभिव्याहारयेदन्यत्र स्वधानिनयनात् ॥ १ ॥ बहिः सन्ध्यार्थं चातिष्ठेत्पूर्वामासीनोत्तरां सज्योतिष्याज्योतिषो दर्शनाद्वाग्यतो नादित्यमीक्षेत ॥ ५ ॥ वर्जयेन्मधुमांसगन्धमाल्यदिवास्वप्नाञ्जनाभ्यञ्जनयानोपानच्छत्रकामक्रोधलोभमोहवाद्यवादनस्नानदन्तधावनहर्षनृत्यगीतपरिवादभयानि गुरुदर्शने कर्णप्रावृतावसक्थिकायाश्रयणपादप्रसारणानि निष्ठीवितहसितविजृम्भितास्फोटनानि स्त्रीप्रेक्षणालम्भने मैथुनशङ्कायां द्यूतं हीनसेवामदत्तादानं हिंसामाचार्यतत्पुत्रस्त्री-

दीक्षितनामानि शुष्कां वाचं मद्यं नित्यं ब्राह्मणः ॥ ६ ॥ गुरुदर्शने चोत्तिष्ठेत्, गच्छन्तमनुव्रजेत्, कर्म विज्ञाप्याख्यायाऽहूताध्यायी युक्तः प्रियहितयोस्तद्भार्यापुत्रेषु चैवम् ॥ ११ ॥ नोच्छिष्टाशन-स्नपनप्रसाधनपादप्रक्षालनोन्मर्दनोपसंग्रहणानि ॥ १२ ॥ व्यवहारप्राप्तेन सार्ववर्णिकं भैक्षचरण-मभिशस्तपतितवर्जम् ॥ १६ ॥ आचार्यज्ञातिगुरुष्वेष्वलाभेऽन्यत्र ॥ १७ ॥ तेषां पूर्वं पूर्वं परि-हरन्निवेद्य गुरवेऽनुज्ञातो भुञ्जीत ॥ १८ ॥ द्वादशवर्षाण्येकैकवेदे ब्रह्मचर्यं चरेत् प्रतिद्वादशसु सर्वेषु ग्रहणान्तं वा ॥ २२ ॥

गौतमस्मृति—३ अध्याय।

तत्रोक्तं ब्रह्मचारिण आचार्याधीनत्वमात्रं गुरोः कर्मशेषेण जयेत्, गुर्वभावे तदपत्यवृत्तिस्तदभावे वृद्धे सब्रह्मचारिण्यग्नौ वा ॥ २ ॥ एवं वृत्तो ब्रह्मलोकमवाप्नोति जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥ कौपीना-च्छादनार्थं वासो बिभृयात् ॥ ७ ॥ प्रहीणमेके निर्णेजनाविप्रयुक्तम् ॥ ८ ॥ मुण्डः शिखी वा वर्जयेज्जीववधम् ॥ ११ ॥ वैखानसो वने मूलफलाशी तपःशीलः श्रावणकेनाग्निमाधायाग्राम्य-भोजी देवपितृमनुष्यभूतर्षिपूजकः सर्वातिथिप्रतिषिद्धवर्जं भैक्षमप्युपयुञ्जीत न फालकृष्टमधितिष्ठेत्, ग्रामं च न प्रविशेत्, जटिलश्चीराजिनवासा नातिसांवत्सरं भुञ्जीत ॥ १३ ॥

गौतमस्मृति—४ अध्याय।

गृहस्थः सदृशीं भार्यां विन्देतानन्यपूर्वां यवीयसीम् ॥ १ ॥ असमानप्रवरैर्विवाह ऊर्ध्वं सप्तमा-त्पितृबन्धुभ्यो बीजिनश्च मातृबन्धुभ्यः पञ्चमात् ॥ २ ॥ ब्राह्मो विद्याचारित्रबन्धुशीलसंपन्नाय दद्यादाच्छाद्यालंकृता संयोगमन्त्रः प्राजापत्ये सह धर्मं चरतामिति आर्षे गोमिथुनं कन्यावते दद्यादन्तर्वेद्यृत्विजे दानं दैवोऽलङ्कृत्येच्छन्त्याः स्वयं संयोगो गान्धर्वो वित्तेनानीतस्त्रीमता-मासुरः प्रसह्यादानाद्राक्षसोऽसंविज्ञानोपसङ्गमनात्पैशाचः ॥ ३ ॥ चत्वारो धर्म्याः प्रथमाः षडित्येके ॥ ४ ॥ ब्राह्मण्यजीजनत्पुत्रान् वर्णेभ्य आनुपूर्व्यात्, ब्राह्मणसूतमागधचाण्डालान् तेभ्य एव क्षत्रिया मूर्द्धाभिषिक्तक्षत्रियधीवरपुल्कसान्, तेभ्य एव वैश्या भृज्जकण्टकमाहिष्यवैश्यवै-देहान्, तेभ्य एव पारशवयवनकरणशूद्रान् शूद्रेत्येके ॥ ७ ॥ वर्णान्तरगमनमुत्कर्षापकर्षाभ्यां सप्तमेन पञ्चमेन चाचार्याः ॥ ८ ॥ सृष्ट्यन्तरजातानां च प्रतिलोमास्तु धर्महीनाः शूद्रायां चासमानायां च शूद्रात्पतितवृत्तिरन्त्यः पापिष्ठः ॥ ९ ॥ पुनन्ति साधवः पुत्रास्त्रिपौरुषानार्षाद्दश दैवाद्दशैव प्राजापत्याद्दश पूर्वान्दशापरानात्मानं च ब्राह्मीपुत्रा ब्राह्मीपुत्राः ॥ १० ॥

गौतमस्मृति—५ अध्याय।

समद्विगुणसाहस्रानन्त्यानि फलान्यब्राह्मणब्राह्मणश्रोत्रियवेदपारगेभ्यः ॥ ८ ॥ गुर्वर्थनिवेशौ-षधार्थवृत्तिक्षीणयक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसंयोगवैश्वजितेषु द्रव्यसंविभागो बहिर्वेदि भिक्षमाणेषु कृतान्न-मितरेषु ॥ ९ ॥ प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात् ॥ १० ॥

गौतमस्मृति—६ अध्याय।

स्वनाम प्रोच्याहमयमित्यभिवादोऽज्ञसमवाये स्त्रीपुंयोगेऽभिवादतोऽनियममेकेनाविप्रोष्य स्त्रीणाममा-तृपितृव्यभार्याभगिनीनां नोपसङ्ग्रहणं भ्रातृभार्याणां श्वश्र्वाश्च॥३॥ऋत्विक्श्वशुरपितृव्यमातुलानां यवीयसां प्रत्युत्थानमनभिवाद्यास्तथान्यः पौर्वः पौरोऽशीतिकावरः शूद्रोप्यपत्यसमेनावरोऽप्यार्यः शूद्रेण नाम चास्य वर्जयेद्राज्ञश्चाजपः प्रेष्यो भो भवन्निति वयस्यः समानेऽहनि जातो दशवर्षवृद्धः पौरः पञ्चभिः कलाभरः श्रोत्रियस्सदाचरणस्त्रिभिः राजन्यो वैश्यकर्मा विद्याहीनो दीक्षितस्य प्राक्क्रुर्यात् ॥ ४ ॥ वित्तबन्धुकर्मजातिविद्यावयांसि मान्यानि परबलीयांसि श्रुतन्तु सर्वेभ्यो गरीयस्तन्मूलत्वाद्धर्मस्य श्रुतेश्च ॥ ९ ॥

गौतमस्मृति—७ अध्याय।

आपत्कल्पो ब्राह्मणस्याब्राह्मणविद्योपयोगोऽनुगमनं शुश्रूषाऽऽसमाप्तेर्ब्राह्मणो गुरुर्याजनाध्यापन-प्रतिग्रहाः सर्वेषां पूर्वः पूर्वो गुरुस्तदभावे क्षत्रवृत्तिस्तदभावे वैश्यवृत्तिः ॥ १ ॥ तस्यापण्यंगन्धर-

सक्तुतान्नतिलशाणक्षौमाजिनानि रक्तनिर्णिक्ते वाससी क्षीरं च सविकारं मूलफलपुष्पौषधमधुमांसतृणोदकापथ्यानि पशवश्च हिंसासंयोगे पुरुषवशा कुमारीवेहतश्च नित्य भूमिव्रीहियवाजात्यश्वर्षभधेन्वनड्डुहश्चैके ॥ २ ॥

गौतमस्मृति–८ अध्याय ।

स एष बहुश्रुतो भवति लोकवेदवेदाङ्गविद् वाकोवाक्येतिहासपुराणकुशलस्तदपेक्षस्तद्वृत्तिश्चत्वारिंशतसंस्कारैः संस्कृतस्त्रिषु कर्मस्वभिरतः षट्सु वा समयाचारिकेष्वभिविनीतः षड्भिः परिहार्यो राज्ञा वध्यश्चावध्यश्चादण्ड्यश्चाबहिष्कार्यश्चापरिवाद्यश्चापरिहार्यश्चेति ॥ २ ॥ गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणान्नप्राशनचौडोपनयनं चत्वारि वेदव्रतानि स्नानं सहधर्मचारिणीसंयोगः पञ्चानां यज्ञानामनुष्ठानं देवपितृमनुष्यभूतब्रह्मणामेतेषां चाष्टकापार्वणश्राद्धश्रावण्याग्रहायणीचैत्र्याश्वयुजीति सप्तपाकयज्ञसंस्था अग्न्याधेयमग्निहोत्रदर्शपौर्णमासावाग्रयणं चातुर्मास्यनिरूढपशुबन्धसौत्रामणीति सप्त हविर्यज्ञसंस्था अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशी वाजपेयोऽतिरात्रोऽप्तोर्याम इति सप्त सोमसंस्था इत्येते चत्वारिंशत्संस्काराः ॥ ३ ॥

गौतमस्मृति–९ अध्याय ।

सविधिपूर्वं स्नात्वा भार्यामधिगम्य यथोक्तान् गृहस्थधर्मान्प्रयुञ्जान इमानि व्रतान्यनुकर्षेत् स्नातको नित्यं शुचिः सुगन्धः स्नानशीलः सति विभवे न जीर्णमलवद्वासाः स्यान्न रक्तमलवदन्यधृतं वा वासो बिभृयान्न स्रगुपानहौ निर्णिक्तमशक्तौ न रूढश्मश्रुरकस्मान्नाग्निमपश्च युगपद्धारयेन्नापो मध्येन संसृज्येन्नाञ्जलिना पिबेन्न तिष्ठन्नुद्धृतेनोदकेनाचामेन्न शूद्राशुच्येकपाण्यावर्जितेन न वाय्वग्निविप्रादित्यापोदेवतागाश्च प्रतिपश्यन् वा मूत्रपुरीषामेध्यान्युदस्येन्नैता देवताः प्रति पादौ प्रसारयेन्न पर्णलोष्टाश्मभिर्मूत्रपुरीषापकर्षणं कुर्यान्न भस्मकेशनखतुषकपालामेध्यान्यधितिष्ठेन्न म्लेच्छाशुच्यधार्मिकैः सह संभाषेत संभाष्य वा पुण्यकृतो मनसा ध्यायेद् ब्राह्मणेन वा सह संभाषेत ॥ १ ॥ अधेनुं धेनुभव्येति ब्रूयादभद्रं भद्रमिति कपालं भगालमिति मणिधनुरितन्द्रिधनुः ॥ २ ॥ गां धयन्तीं परस्मै नाचक्षीत न चैनांवारयेन्न मिथुनी भूत्वा शौचं प्रति विलम्बेत न च तस्मिञ्छयने स्वाध्यायमधीयीत न चापररात्रमधीत्य पुनः प्रतिसंविशेन्नाकल्पां नारीमभिरमयेन्न रजस्वलां न चैनां श्लिष्येन्न कन्यामग्निमुखोपधमनविगृह्यवादबहिर्गन्धमाल्यधारणपापीयसावलेखनभार्यासहभोजनाञ्जन्त्यवेक्षणकुद्वारप्रवेशनपादधावनसंदिग्धभोजननदीबाहुतरणवृक्षवृषमारोहणावरोहणप्राणव्यवस्थानि च वर्जयेन्न संदिग्धां नावमधिरोहेत् सर्वत एवात्मानं गोपायेन्न प्रावृत्य शिरोऽहनि पर्यटेत्, प्रावृत्य तु रात्रौ मूत्रोच्चारे च न भूमावनन्तर्द्धाय नाराद्रावसथान्न भस्मकरीषकृष्टच्छायापथिकाम्येषूभे मूत्रपुरीषे दिवा कुर्यादुदङ्मुखः–सन्ध्ययोश्च रात्रौ दक्षिणामुखः पालाशमासनं पादुक दन्तधावनमिति वर्जयेत् ॥ ३ ॥

गौतमस्मृति–१० अध्याय ।

द्विजातीनामध्ययनमिज्यादानं ब्राह्मणस्याधिकाः प्रवचनयाजनप्रतिग्रहाः पूर्वेषु नियमस्त्वाचार्यज्ञातिप्रियगुरुधनविद्याविनिमयेषु ब्राह्मणः संप्रदानमन्यत्र यथोक्तात् कृषिवाणिज्ये चास्वयंकृते कुसीदं च ॥ १ ॥ राज्ञोधिकं रक्षणं सर्वभूतानां न्याय्यदण्डत्वं बिभृयाद् ब्राह्मणान् श्रोत्रियान् निरुत्साहाश्चाब्राह्मणानकरांश्चोपकुर्वाणांश्च योगश्च विजये भये विशेषेण चर्या च रथधनुर्भ्यां संग्रामे संस्थानमनिवृत्तिश्च न दोषो हिंसायामाहवेऽन्यत्र व्यश्वसारथ्यायुधकृताञ्जलिप्रकीर्णकेशपराङ्मुखोपविष्टस्थलवृक्षाधिरूढदूतगोब्राह्मणवादिभ्यः क्षत्रियश्चेदन्यस्तमुपजीवेत्तद्वृत्तिः स्यात् जेतालभेत सांग्रामिकं वित्तं वाहनं तु राज्ञ उद्धारश्चापृथग् जयेऽन्यत्तु यथार्हं भाजयेद्राजा,राज्ञे बलिदानं कर्षकैर्दशममष्टमं षष्ठं वा पशुहिरण्ययोरप्येके पञ्चाशद्भागं विंशतिभागः शुल्कः पण्ये मूलफलपुष्पौषधमधुमांसतृणेन्धनानां षष्ठं तद्रक्षणधर्मित्वात्तेषु तु नित्ययुक्तः स्यादधिकेन वृत्तिः शिल्पिनो मासि मास्येकैकं कर्म कुर्युरेतेनात्मोपजीविनो व्याख्याताः, नौचक्रीवन्तश्च भक्तं तेभ्यो दद्यात्पण्यं वणिग्भिरर्घापचयेन देयम् । प्रणष्टमस्वामिकमधिगम्य राज्ञे प्रब्रूयुर्विख्याप्य राज्ञा संवत्सरं रक्ष्यमूर्ध्व-

अधिगन्तुश्चतुर्थं राज्ञः शेषं स्वामी रिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेषु ब्राह्मणस्याधिकं लब्ध क्षत्रियस्य विजितं निर्विष्टं वैश्यशूद्रयोर्निध्यधिगमो राजधनं न ब्राह्मणस्याभिरूपस्याब्राह्मणो व्याख्यातः षष्ठं लभेतेत्येके चौरहृतमुपजित्य यथास्थानं गमयेत् कोशाद्वा दद्याद्रक्ष्यं बालधनमाव्यवहारप्रापणाद्वासमावृत्तेर्वा ॥ २ ॥ वैश्यस्याधिकं कृषिवणिक्पाशुपाल्यकुसीदम् ॥ ३ ॥

गौतमस्मृति—११ अध्याय ।

राजा सर्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्जं साधुकारी स्यात्साधुवादी त्रय्यामान्वीक्षिक्यां चाभिविनीतः शुचिर्जितेन्द्रियो गुणवत्सहायोऽपायसंपन्नः समः प्रजासु स्याद्धितं चासां कुर्वीत, तमुपर्यासीनमधस्तादुपासीरन्नन्ये ब्राह्मणेभ्यस्तेऽप्येनं मन्येरन्, वर्णानाश्रमांश्च न्यायतोऽभिरक्षेच्चलतश्चैनान्स्वधर्मे एव स्थापयेद्धर्मस्थोंऽशभाग्भवतीति विज्ञायते । ब्राह्मणं च पुरो दधीत विद्याभिजनवाग्रूपवयःशीलसम्पन्नं न्यायवृत्तं तपस्विनं तत्प्रसूतः कर्माणि कुर्वीत, ब्रह्मप्रसूतं हि क्षत्रमृध्यते न व्यथत इति च विज्ञायते । यानि च दैवोत्पातचिन्तकाः प्रब्रूयुस्तान्याद्रियेत तदधीनमपि ह्येके, योगक्षेमं प्रतिजानते शान्तिपुण्याहस्वस्त्ययनायुष्यमङ्गलसंयुक्तान्याभ्युदयिकानि विद्वेषिणां संवलनमभिचारद्विषद्व्याधिसंयुक्तानि च शालाग्नौ कुर्याद् यथोक्तमृत्विजोऽन्यानि, तस्य व्यवहारो वेदो धर्मशास्त्राण्यङ्गान्युपवेदाः पुराणं देशजातिकुलधर्माश्चाम्नायैरविरुद्धाः प्रमाणं कर्षकवणिक्पशुपालकुसीदकारवः स्वेस्वे वर्गे तेभ्यो यथाधिकारमर्थान् प्रत्यवहृत्य धर्मव्यवस्थान्यायाधिगमे तर्कोऽभ्युपायस्तेनाभ्यूह्य यथास्थानं गमयेद्विप्रतिपत्तौ त्रयीविद्यावृद्धेभ्यः प्रत्यवहृत्य निष्ठां गमयेत्तथाह्यस्य निःश्रेयसं भवति, ब्रह्म क्षत्रेण संपृक्तं देवपितृमनुष्यान् धारयतीति विज्ञायते, दण्डो दमनादित्याहुस्तेनादान्तान् दमयेद्वर्णाश्रमाश्च स्वकर्मनिष्ठाः प्रेत्य कर्मफलमनुभूय ततः शेषेण विशिष्टदेशजातिकुलरूपायुःश्रुतवित्तवृत्तसुखमेधसो जन्म प्रतिपद्यन्ते, विष्वञ्चो विपरीता नश्यंति तानाचार्योपदेशो दण्डश्च पालयते तस्माद्राजाचार्यावनिन्द्यावनिन्द्यौ ॥ १ ॥

गौतमस्मृति—१२ अध्याय ।

शूद्रो द्विजातीनभिसन्ध्यायाभिहत्य च वाग्दण्डपारुष्याभ्यामङ्गेन मोच्योयेनोपहन्यादार्यस्त्र्यभिगमने लिङ्गोद्धारः स्वप्रहरणं च गोप्ता चेद्वधोऽधिकोऽथाहास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणमुदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेदे आसनशयनवाक्पथिषु समप्रेप्सुर्दण्ड्यः शतम् ॥ १ ॥ क्षत्रियो ब्राह्मणाक्रोशे दण्डपारुष्ये द्विगुणमध्यर्द्धं वैश्यो ब्राह्मणस्तु क्षत्रिये पञ्चाशत्तदर्धं वैश्ये न शूद्रे किंचित्, ब्राह्मणराजन्यवत् क्षत्रियवैश्यावष्टापाद्यं स्तेयकिल्विषं शूद्रस्य द्विगुणोत्तराणीतरेषां प्रतिवर्णं विदुषोऽतिक्रमे दण्डभूयस्त्वं फलहरितधान्यशाकादाने पञ्चकृष्णलमल्पे पशुपीडिते स्वामिदोषः पालसंयुक्ते तु तस्मिन् पथि क्षेत्रेऽनावृते पालक्षेत्रिकयोः पञ्चमाषा गवि षडुष्ट्रे खरेऽश्वमहिष्योर्दशाजाविषु द्वौ द्वौ सर्वविनाशे शतं, शिष्टाकरणे प्रतिषिद्धसेवायां च नित्यं चेलपिण्डादूर्ध्वं स्वहरणश्च, गोऽग्न्यर्थे तृणमेधान् वीरुद्वनस्पतीनां च पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरिवृतानां कुसीदवृद्धिर्धर्म्या विंशतिः पञ्चमाषको मासं नातिसांवत्सरीमेके चिरस्थाने द्वैगुण्यं प्रयोगस्य मुक्ताभिर्न वर्द्धते दित्सतोऽवरुद्धस्य च चक्रकालवृद्धिः कारिता कायिकाऽधिभोगाश्च कुसीदं पशूपजलोपक्षेत्रशतवाह्येषु नातिपञ्चगुणमजडापौगण्डधनं दशवर्षभुक्तं परैः सन्निधौ भोक्तुरश्रोत्रियप्रव्रजितराजन्यधर्मपुरुषैः पशुभूमिस्त्रीणामनतिभोगे रिक्थभाजि ऋणं प्रतिकुर्युः । प्रातिभाव्यवणिक्शुल्कमद्यद्यूतदण्डान्पुत्रानाध्याभवेयुः । निध्यं वाधियाचितावक्रीताधयो नष्टाः सर्वा न निन्दिता न पुरुषापराधेन, स्तेनः प्रकीर्णकेशो मुसली राजानमियात्कर्म्म चक्षाणः पूतो वधमोक्षाभ्यामघ्नन्नेनस्वी राजा न शारीरो ब्राह्मणदण्डः कर्मवियोगविख्यापनविवासनाङ्ककरणप्रवृत्तौ प्रायश्चित्ती स चौरसमः, सचिवो मतिपूर्वं प्रतिगृहीतोप्यधर्मसंयुक्ते पुरुषशक्त्यपराधानुबन्धविज्ञानाद्दण्डनियोगोऽनुज्ञानं वा वेदवित्समवायवचनात् ॥ २ ॥

गौतमस्मृति—१३ अध्याय ।

अनिबद्धैरपि वक्तव्यं पीडाकृते निबन्धः प्रमत्तोक्ते च साक्षिसभ्यराजकर्तृषु दोषो धर्मतन्त्रपीडायां शपथेनैके सत्यकर्मणा तद्देवराजब्राह्मणसंसदि स्यादब्राह्मणानां क्षुद्रपश्वनृते साक्षी दश हन्ति

गोऽश्वपुरुषभूमिषु दशगुणोत्तरान् सर्वं वा भूमौ हरणे नरको भूमिवदप्सु मैथुनसंयोगे च पशुवन्मधुसर्पिषोर्गोवद्वस्त्रहिरण्यधान्यब्रह्मसु यानेष्वश्ववन्मिथ्यावचने याप्यो दण्ड्यश्च साक्षी नानृतवचने दोषो जीवनं चेत्तदधीनं न तु पापीयसो जीवनं राजा प्राड्विवाको ब्राह्मणो वा शास्त्रवित् । प्राड्विवाको मध्यो भवेत्, संवत्सरं प्रतीक्षेत प्रतिभार्या धेन्वनडुत्स्त्रीप्रजनसंयुक्तेषु शीघ्रमात्ययिके च सर्वधर्मेभ्यो गरीयः प्राड्विवाके सत्यवचनं सत्यवचनम् ॥ २ ॥

गौतमस्मृति–१४ अध्याय ।

शावमाशौचं दशरात्रमनृत्विग्दीक्षितब्रह्मचारिणां सपिण्डानामेकादशरात्रं क्षत्रियस्य द्वादशरात्रं वैश्यस्यार्द्धमासमेकमासं शूद्रस्य तच्चेदन्तः पुनरापतेत्तच्छेषेण शुद्ध्येरन्, रात्रिशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिर्गोब्राह्मणहतानामन्वक्ष राजक्रोधाच्च युद्धे प्रायोनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बन्धनप्रपतनैश्चेच्छतां पिण्डनिवृत्तिः सप्तमे पञ्चमे वा, जननेप्येवं मातापित्रोस्तन्मातुर्वा गर्भमाससमा रात्रीः स्रंसने गर्भस्य त्र्यहं श्रुत्वा चोर्ध्वं दशम्याः पक्षिण्यसपिण्डे योनिसम्बन्धे सहाध्यायिनि च सब्रह्मचारिण्येकाहं श्रोत्रिये चोपसंपन्ने प्रेतोपस्पर्शने दशरात्रमाशौचमभिसन्धाय चेदुक्तं वैश्यशूद्रयोरार्तवीर्वापूर्वयोश्च त्र्यहं वाऽऽचार्यतत्पुत्रस्त्रीयाज्यशिष्येषु चैवमवरश्चेद्वर्णः पूर्वं वर्णमुपस्पृशेत् पूर्वो वाऽवरं तत्र शावोक्तमाशौचम्, पतितचाण्डालसूतिकोदक्याशवस्पृष्टितत्स्पृष्ट्युपस्पर्शने सचैलोदकोपस्पर्शनाच्छुध्येच्छवानुगमे च शुनश्च यदुपहन्यादित्येके, उदकदानं सपिण्डैः कृतचूडस्य तत्स्त्रीणां चानतिभोग एके प्रदत्तानामधःशय्यासनिनो ब्रह्मचारिणः सर्वे न मार्जयेरन्न मांसं भक्षयेयुरामदानात् प्रथमतृतीयपञ्चमसप्तमनवमेषूदकक्रिया वाससां च त्यागः, अन्त्ये त्वन्त्यानां दन्तजन्मादि मातापितृभ्यां तूष्णीं माता, बालदेशान्तरितप्रव्रजितासपिण्डानां सद्यः शौचं, राज्ञां च कार्यविरोधाद्ब्राह्मणस्य च स्वाध्यायानिवृत्त्यर्थं स्वाध्यायनिवृत्त्यर्थम् ॥ १ ॥

गौतमस्मृति–१५ अध्याय ।

अथ श्राद्धममावास्यायां पितृभ्यो दद्यात्, पञ्चमिप्रभृति वापरपक्षस्य यथाश्राद्धं सर्वस्मिन्वा द्रव्यदेशब्राह्मणसन्निधाने वा कालनियमः शक्तितः प्रकर्षे गुणसंस्कारविधिरन्नस्य नवावरान् भोजयेदयुजो यथोत्साहं वा ब्राह्मणान् श्रोत्रियान् वा गुरूपवयःशीलसंपन्नान् युवभ्यो दानं प्रथममेके पितृवन्न च तेन मित्रकर्म कुर्यात्, पुत्राभावे सपिण्डा मातृसपिण्डाः शिष्याश्च दद्युस्तदभावे ऋत्विगाचार्यौ॥१॥ सद्यःश्राद्धी शूद्रातल्पगस्तत्पुत्ररोषे मासं नयति पितॄंस्तस्मात्तदहर्ब्रह्मचारी स्यात्, श्वचाण्डालपतितावेक्षणे दुष्टं तस्मात् परिश्रिते दद्यात्, तिलैर्वा विकिरेत्, पङ्क्तिपावनो वा शमयेत्, पंक्तिपावनः षडङ्गविज्ज्येष्ठसामगस्त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णः पञ्चाग्निः स्नातको मन्त्रब्राह्मणविद्धर्मज्ञो ब्रह्मदेयानुसन्तान इति हविःषु चैवं दुर्वलादीन् श्राद्ध एवैके श्राद्ध एवैके ॥ ४ ॥

गौतमस्मृति–१६ अध्याय ।

श्रवणादिवार्षिकं प्रौष्ठपदीं वोपाकृत्याधीयीत छन्दांस्यर्धपञ्चमासान् पञ्चदक्षिणायनं वा ब्रह्मचार्युत्सृष्टलोमा न मांसं भुञ्जीत द्वैमास्यो वा नियमो नाधीयीत वायौ दिवा पांसुहरे कर्णश्राविणि नक्तं वाणभेरीमृदङ्गगर्जार्त्तशब्देषु च श्वशृगालगर्दभसंह्रादे लोहितेन्द्रधनुर्नीहारेष्वभ्रदर्शने चापर्त्तौ मूत्रित उच्चरिते निशासन्ध्योदकेषु वर्षति चैके वलीकसन्तान आचार्यपरिवेषणे ज्योतिषोश्च भीतो यानस्थः शयानः प्रौढपादः श्मशानग्रामान्तमहापथाशौचेषु पूतिगन्धांतःशवदिवाकीर्तिशूद्रसन्निधाने सूतके चोद्गारे ऋग्यजुषं च सामशब्दे यावदाकालिकानिर्घातभूमिकम्पराहुदर्शनोल्कास्तनयित्नुवर्षविद्युतः प्रादुष्कृताग्निष्वनृतौ विद्युति नक्तं चापररात्रात् त्रिभागादिप्रवृत्तौ सर्वमुल्का विद्युत्समस्मित्येकेषाम् ॥ १ ॥ स्तनयित्नुपराह्णेऽपि प्रदोषे सर्वं नक्तमर्द्धरात्रादहश्चेत्सज्योतिर्विषयस्थे च राज्ञि प्रेते विप्रोष्य चान्योन्येन सह संकुलोपाहितवेदसमाप्तिच्छर्दिश्राद्धमनुष्ययज्ञभोजनेष्वहोरात्रममावास्यायां च द्व्यहं वा कार्तिकीफाल्गुन्याषाढी पौर्णमासी तिस्रोऽष्टकास्त्रिरात्रमन्त्यामेके अभितो वार्षिकं सर्वैर्वर्षविद्युत्स्तनयित्नुसन्निपाते प्रस्यन्दिन्यूर्ध्वं भोजनादुत्सवे प्राधीतस्य च निशायां चतुर्मुहूर्त्तं नित्यमेके नगरे मानसमप्यशुचिश्राद्धिनामाकालिकमकृतान्नश्राद्धिकसंयोगेऽपि प्रतिविद्यं च यावत्स्मरन्ति यावत्स्मरन्ति ॥ २ ॥

गौतमस्मृति–१७ अध्याय।

प्रशस्तानां स्वकर्मसु द्विजातीनां ब्राह्मणो भुञ्जीत, प्रतिगृह्णीयाच्चैधोदकयवसमूलफलमध्वभयाभ्युद्यतशय्यासनावसथयानपयोदधिधानाशफरीप्रियंगुस्रङ्मार्गशाकान्यप्रणोद्यानि सर्वेषां पितृदेवगुरुभृत्यभरणे चान्यवृत्तिश्चेन्नोत्तरेण शूद्रात्, पशुपालक्षेत्रकर्षककुलसङ्गतकारयितृपरिचारकाभोज्यान्ना-वणिक् चाशिल्पी, नित्यमभोज्यं केशकीटावपन्नं रजस्वलाकृष्णशकुनिपदोपहतं भ्रूणघ्नावेक्षितं गवोपघ्रातं भावदुष्टं शुक्तं केवलमदधि पुनः सिद्धं पर्युषितमशाकभक्ष्यस्नेहमांसमधून्युत्सृष्टपुंश्चल्यभिशस्तानपदेश्यदण्डिकतक्षकदर्यबन्धनिकचिकित्सकमृगयुर्वायूच्छिष्टभोजिगणविद्विषाणामपाङ्क्तानां प्रागदुर्बलात् वृथान्नानि च मनोत्थापनव्यपेतानि समासमाभ्यां विषमसमे पूजान्तरानर्चितश्च गोश्च क्षीरमनिर्दशायाः सूतके चाजामहिष्योश्च नित्यमाविकमपेयमौष्ट्रमैकशफं च स्यन्दिनीयमसूसन्धिनीनां च याश्च व्यपेतवत्साः पञ्चनखाश्चाशल्यकशशकश्वाविद्गोधाखड्गकच्छपा उभयतोदत्केशलोमैकशफकलविङ्कप्लवचक्रवाकहंसाः काककङ्कगृध्रश्येना जलजा रक्तपादतुण्डा ग्राम्यकुक्कुटसूकरौ धेन्वनडुहौ चापन्नदावसन्नवृथामांसानि किसलयक्याकुलसूननिर्यासलोहिता व्रश्चनाः श्वनिहतदारुवकबलाका शुकटिट्टिभमान्धातृनक्तञ्चरा अभक्ष्याः ॥ १ ॥ न भक्ष्याः प्रतुदा विकिरा जालपादा मत्स्याश्चाविकृता वध्याश्च धर्मार्थेऽव्यालहतादृष्टदोषवाक्प्रशस्तान्यभ्युक्ष्योपयुञ्जीतोपयुञ्जीत ॥ २ ॥

गौतमस्मृति–१८ अध्याय।

अस्वतन्त्रा धर्मे स्त्री नातिचरेद्भर्त्तारं वाक्चक्षुःकर्मसंयताऽपतिरपत्यलिप्सुर्देवराद्गुरुप्रसूतान्नर्तुमतीयात्पिण्डगोत्रऋषिसंबन्धिभ्यो योनिमात्राद्वा, नादेवरादित्येके, नातिद्वितीयं, जनयितुरपत्यं समयादन्यत्र जीवतश्च क्षेत्रे परस्मात्तस्य द्वयोर्वा रक्षणाद्भर्त्तुरेव नष्टे भर्त्तरि षाड्वार्षिकं क्षपणं श्रूयमाणेऽभिगमनं प्रव्रजिते तु निवृत्तिः प्रसङ्गात् तस्य द्वादश वर्षाणि ब्राह्मणस्य विद्यासंबन्धभ्रातरि चैवं ज्यायसि यवीयान् कन्याग्न्युपयमनेषु षडित्येके त्रीन्कुमार्यृतूनतीत्य स्वयं युज्येतानिन्दितेनोत्सृज्य पित्र्यानलङ्कारान् प्रदानं प्रागृतोरप्रयच्छन् दोषी प्राग्वाससः प्रतिपत्तेरित्येके द्रव्यदानं विवाहसिद्ध्यर्थं धर्मतन्त्रप्रसङ्गे च शूद्रादन्यत्रापि शूद्राद्बहुपशोर्हीनकर्मणः शतगोरनाहिताग्नेः सहस्रगोर्वा सोमपात्सप्तमीं चाभुक्त्वाऽनिचयायाप्यहीनकर्मभ्य आचक्षीत राज्ञा पृष्टस्तेन हि भर्तव्यः श्रुतशीलसंपन्नश्चेद्धर्मतन्त्रपीडायां तस्याकरणेऽदोषोऽदोषः ॥ १ ॥

गौतमस्मृति–१९ अध्याय।

तस्य निष्क्रयणानि जपस्तपो होम उपवासो दानमुपनिषदो वेदान्ताः सर्वच्छन्दःसु संहितामधून्यघमर्षणमथर्वशिरोरुद्राः पुरुषसूक्तं राजनरौहिणे सामनी बृहद्रथन्तरे पुरुषगतिर्महानाम्न्यो महावैराजं महादिवाकीर्त्यं ज्येष्ठसाम्नामन्यतमद्बहिष्पवमानं कूष्माण्डानि पावमान्यः सावित्री चेति पावनानि ॥ २ ॥

ब्रह्मचर्यं सत्यवचनं सवनेषूदकोपस्पर्शनमार्द्रवस्त्रताऽधःशायितानाशक इति तपांसि ॥ ५ ॥

गौतमस्मृति–२० अध्याय।

अथ चतुःषष्टिषु यातनास्थानेषु दुःखान्यनुभूय तत्रेमानि लक्षणानि भवन्ति। ब्रह्महार्द्रकुष्ठी, सुरापः श्यावदन्तो, गुरुतल्पगः पंगुः, स्वर्णहारी कुनखी, श्वित्री वस्त्रापहारी, दर्दुरी तेजोपहारी, मण्डली स्नेहापहारी, क्षयी तथा अजीर्णवानन्नापहारी, ज्ञानापहारी मूकः, प्रतिहन्ता गुरोरपस्मारी, गोघ्नो जात्यन्धः, पिशुनः पूतिनासः, पूतिवक्त्रस्तु सूचकः, शूद्राध्यापकः श्वपाकस्त्रपुसीसचामरविक्रयी मद्यप एकशफविक्रयी मृगव्याधः कुण्डाशी, भृतकश्चैलिको वा नक्षत्री चार्बुदी नास्तिको रङ्गोपजीव्यभक्ष्यभक्षी गण्डरी ब्रह्मपुरुषतस्कराणां देशिकः पिण्डितः षण्ढो महापथिको गण्डिकश्चाण्डाली पुक्कसी गोष्ववकीर्णी मध्वामेही धर्मपत्नीषु स्यान्मैथुनप्रवर्तकः खल्वाटसगोत्रसमयस्त्र्यभिगामी श्लीपदी पितृमातृभगिनीस्त्र्यभिगाम्यावीजितस्तेषां कुब्जकुण्ठमण्डव्याधितव्यङ्गदरिद्राल्पायुषोऽल्पबुद्धयश्चण्डपण्डशैलूषतस्करपरपुरुषप्रेष्यपरकर्मकराः खल्वाटवक्राङ्गसंकीर्णाः क्रूरक-

र्माणः कर्मशश्चान्यथाश्चोपपद्यन्ते तस्मात्कर्तव्यमेवेह प्रायश्चित्तं विशुद्धैर्लक्षणैर्जायन्ते धर्मस्य धारणादिति धर्मस्य धारणादिति ॥ १ ॥

गौतमस्मृति—२१ अध्याय ।

त्यजेत्पितरं राजघातकं शूद्रयाजकं वेदविप्लावकं भ्रूणहनं यश्चान्त्यावसायिभिः सह संवसेदन्त्यावसायिन्या वा तस्य विद्यागुरून्योनिसम्बन्धांश्च सन्निपात्य सर्वाण्युदकादीनि प्रेतकर्माणि कुर्युः पात्रं चास्य विपर्यस्येयुः ॥ १ ॥ दासः कर्मकरो वाऽवकरादमेध्यपात्रमानीय दासीघटात् पूरयित्वा दक्षिणाभिमुखः पदा विपर्यस्येदमुमनुदकं करोमीति नामग्राहं तं सर्वेऽन्वालभेरन् प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा विद्यागुरवो योनिसम्बन्धाश्च वीक्षेरन्नप उपस्पृश्य ग्रामं प्रविशन्ति ॥ २ ॥ अत ऊर्ध्वं तेन संभाष्य तिष्ठेदेकरात्रं जपन्सावित्रीमज्ञानपूर्वं ज्ञानपूर्वं चेत्त्रिरात्रम् ॥ ३ ॥ यस्तु प्रायश्चित्तेन शुध्येत्तस्मिन् शुद्धे शातकुम्भमयं पात्रं पुण्यतमाद्ध्रदात्पूरयित्वा स्रवन्तीभ्यो वा तत एनमप उपस्पर्शयेयुः ॥४ ॥ अथास्मै तत्पात्रं दद्युस्तत्संप्रतिगृह्य जपेत् ओं शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तं शिवमन्तरिक्षम् । यो रोचनस्तमिह गृह्णामीत्येतैर्यजुर्भिस्तरत्समन्दीभिः पावमानीभिः कूष्माण्डैश्चाज्यं जुहुयाद्धिरण्यं ब्राह्मणाय वा दद्याद्गामाचार्याय ॥ ५ ॥

गौतमस्मृति—२२ अध्याय ।

ब्रह्महसुरापगुरुतल्पगमातृपितृयोनिसंबन्धगस्तेननास्तिकानिन्दितकर्माभ्यासिपतितात्याग्यपतितत्यागिनः पतिताः पातकसंयाजकाश्च तैश्चाब्दं समाचरन् ॥ १ ॥

गौतमस्मृति—२३ अध्याय ।

प्रायश्चित्तमग्नौ सक्तिर्ब्रह्मघ्नस्त्रिरवच्छादितस्य लक्ष्यं वा स्याज्जन्ये शस्त्रभृताम् ॥ १ ॥ खट्वाङ्गकपालपाणिर्वा द्वादशसंवत्सरान् ब्रह्मचारी भैक्षाय ग्रामं प्रविशेत् स्वकर्माचक्षाणः पथोऽपक्रामेत्संदर्शनादार्यस्य स्थानासनाभ्यां विहरन् सवनेषूदकोपस्पर्शी शुध्येत्, प्राणलाभे वा तन्निमित्ते ब्राह्मणस्य द्रव्यापचये वा त्र्यवरं प्रतिरोद्धाऽश्वमेधावभृथे वान्ययज्ञेऽप्यग्निष्टुदन्तश्चोत्सृष्टश्चेद्ब्राह्मणवधे ॥ २ ॥ हत्वाप्यात्रेयीं चैव गर्भे चाविज्ञाते ॥ ३ ॥ ब्राह्मणस्य राजन्यवधे षड्वार्षिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्यमृषभैकसहस्राश्च गा दद्यात् ॥४॥ वैश्ये त्रैवार्षिकमृषभैकशताश्च गा दद्यात् ॥ ५ ॥ शूद्रे संवत्सरमृषभैकादशाश्च गा दद्यादनात्रेय्यां चैवं गां च ॥६ ॥ शूद्रवन्मण्डूकनकुलकाकाव्यश्वहरमूषिकाश्च ॥ ७ ॥ हिंसासु चास्थिमतां सहस्रं हत्वाऽनस्थितामनुडुद्भारं च ॥ ८ ॥ अपि वाऽस्थिमतानेकैकस्मिन् किंचित् किंचिद्दद्यात् ॥ ९ ॥ षण्ढे च पलालभारः सीसमाषकश्च वराहे घृतघटः सर्पे लोहदण्डः ब्रह्मबन्ध्वां च ललनायां जीवोबैजिकेन किंचित् तल्पान्नधनलाभवधेषु पृथग्वर्षाणि द्वे परदारे त्रीणि श्रोत्रियस्य द्रव्यलाभे चोत्सर्गो यथास्थानं वा गमयेत् प्रतिषिद्धमनःसंयोगे सहस्रवाक् चेदग्न्युत्सादिनिराकृत्युपपातकेषु चैवं स्त्री चातिचारिणी गुप्ता पिण्डं तु लभेताप्यमानुषीषु गोवर्जं स्त्रीकृते कूष्माण्डैर्घृतहोमो घृतहोमः ॥ १० ॥

गौतमस्मृति—२४ अध्याय ।

सुरापस्य ब्राह्मणस्योष्णामासिञ्चेयुः सुरामास्ये मृतः शुद्धचेदमत्या पाने पयोघृतमुदकं वायुं प्रति त्र्यहं तप्तानि सकृच्छ्रस्ततोऽस्य संस्कारः ॥ १ ॥ मूत्रपुरीषरेतसां च प्राशने श्वापदोष्ट्रखराणां चाङ्गस्य ग्रामकुक्कुटशूकरयोश्च गन्धाघ्राणे सुरापस्य प्राणायामो घृतप्राशनं च पूर्वैश्च दष्टस्य॥२॥ तल्पे लोहशयने गुरुतल्पगः शयीत सूर्मीं ज्वलन्तीं वाश्लिष्येल्लिङ्गं वा सवृषणमुत्कृत्याञ्जलावाधाय दक्षिणाप्रतीचिं दिशं व्रजेदजिह्ममाशरीरनिपातान्मृतः शुध्येत् ॥ ३ ॥ सखिसयोनिसगोत्राशिष्यभार्यासु स्नुषायां गवि च गुरुतल्पसमोऽवकर इत्येके, श्वभिः खादयेद्राजा निहीनवर्णगमने स्त्रियं प्रकाशं पुमांसं घातयेद्यथोक्तं वा गर्दभेनावकर्णी निर्ऋतिं चतुष्पथे यजेत्तस्याजिनमूर्ध्ववालं परिधाय लोहितपात्रः सप्तगृहान् भैक्षं चरेत्कर्माचक्षाणः संवत्सरेण शुध्येत् ॥ ४ ॥

गौतमस्मृति—२७ अध्याय ।

अथातः कृच्छ्रान् व्याख्यास्यामो हविष्यान्प्रातराशान् भुक्त्वा तिस्रो रात्रीर्नाश्नीयादथापरं त्र्यहं

नक्तं भुञ्जीत, अथापरं त्र्यहं न कंचन याचेदथापरं त्र्यहमुपवसेत्तिष्ठेदहनि रात्रावासीत क्षिप्रकामः सत्यं वदेदनार्यैर्न सम्भाषेत रौरवयौधाजिने नित्यं प्रयुञ्जीतानुसवनमुदकोपस्पर्शनमापोहिष्ठेति तिसृभिः पवित्रवतीभिर्मार्जयेत्, हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इत्यष्टाभिः ॥१॥ अथोदकतर्पणम् । ॐनमो हमाय मोहमाय संहमाय धुन्वते तपसाय पुनर्वसवे नमो नमो मौञ्ज्यायोर्म्याय वसुविन्दाय सर्वविन्दाय नमो नमः पाराय सुपाराय महापाराय पारयिष्णवे नमो नमो रुद्राय पशुपतये महते देवाय त्र्यम्बकायैकचराधिपतये हराय शर्वायेशानायोग्राय वज्रिणे घृणिने कपर्दिने नमो नमः सूर्यायादित्याय नमो नमो नीलग्रीवाय शितिकण्ठाय नमो नमः कृष्णाय पिङ्गलाय नमो नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय वृद्धायेन्द्राय हरिकेशायोर्ध्वरेतसे नमो नमः सत्याय पावकाय वर्णाय नमो नमः कामाय कामरूपिणे नमो नमो दीप्ताय दीप्तरूपिणे नमो नमस्तीक्ष्णाय तीक्ष्णरूपिणे नमो नमः सौम्याय सुपुरुषाय महापुरुषाय मध्यमपुरुषायोत्तमपुरुषाय नमो नमो ब्रह्मचारिणे नमो नमश्चन्द्रललाटाय नमो नमः कृत्तिवाससे पिनाकहस्ताय नमो नम इति ॥ २ ॥ एतदेवादित्योपस्थानमेता एवाज्याहुतयो द्वादशरात्रस्यान्ते चरुं श्रपयित्वैताभ्यो देवताभ्यो जुहुयात् । अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा, इन्द्राग्निभ्यामिन्द्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे प्रजापतयेऽग्नये स्विष्टकृत इति ॥ ३ ॥ ततो ब्राह्मणतर्पणम् ॥ ४ ॥ एतेनैवातिकृच्छ्रो व्याख्यातो यावत्सकृदाददीत तावदश्नीयादब्भक्षस्तृतीयः सकृच्छ्रातिकृच्छ्रः ॥ ५ ॥

गौतमस्मृति—२८ अध्याय ।

अथातश्चान्द्रायणं तस्योक्तो विधिः कृच्छ्रे वपनं व्रतं चरेत् श्वोभूतां पौर्णमासीमुपवसेत् आप्यायस्व, संते पयांसि, नवो नव, इति चैताभिस्तर्पणमाज्यहोमो हविषश्चानुमन्त्रणमुपस्थानं चन्द्रमसो यद्देवादेवहेलनमिति चतसृभिराज्यं जुहुयात्, देवकृतस्येति चान्ते समिद्भिः—ओंभूर्भुवः स्वस्तपः सत्यं, यशः, श्रीरूपं गोरोजस्तेजः पुरुषो धर्मः शिवशिव इत्येतैर्ग्रासानुमन्त्रणं प्रतिमन्त्रं मनसा नमः स्वाहेति वा, सर्वं ग्रासप्रमाणमास्याविकारेण चरुभैक्षसक्तुकणयावकशाकपयोदधिघृतमूलफलोदकानि हवींष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तानि पौर्णमास्यां पञ्चदशग्रासान् भुक्त्वैकापचयेनापरपक्षमश्नीयादमावास्यायामुपोष्यैकोपचयेन पूर्वपक्षं विपरीतमेषाम् ॥ १ ॥ एष चान्द्रायणो मासो मासमेकमाप्त्वा विपापो विपाप्मा सर्वमेनो हन्ति द्वितीयमाप्त्वा दशपूर्वान्दशावरानात्मानं चैकविंशं पङ्क्तीश्च पुनाति संवत्सरमाप्त्वा चन्द्रमसः सलोकतामाप्नोत्याप्नोति ॥२॥

गौतमस्मृति—२९ अध्याय ।

ऊर्ध्वं पितुः पुत्रा रिक्थं भजेरन् निवृत्ते रजसि मातुर्जीवति चेच्छति सर्वं वा पूर्वजस्येतरान्बिभृयात् पितृवत् ॥१॥ विभागे तु धर्मवृद्धिर्विंशतिभागो ज्येष्ठस्य मिथुनमुभयतोदद्युक्तो रथो गोवृषः काणखोरकूटखञ्जमध्यमस्यानेकश्चेदविर्धान्यायसी गृहमनोयुक्तं चतुष्पदां चैकैकं यवीयसः समं चेतरत् सर्व द्व्यंशी वा पूर्वजः स्यादेकैकमितरेषामेकैकं वा धनरूपं काम्यं पूर्वः पूर्वो लभेत दशतः पशूनां नैकशफो नैकशफानां वृषभोऽधिको ज्येष्ठस्य ऋषभषोडशाज्ज्यैष्ठिने यस्य समं वा ज्यैष्ठिने येन यवीयसां प्रतिमातृ वा स्ववर्गे भागविशेषं पितोत्सृजेत् ॥२॥ पुत्रिकामनपत्योऽग्निं प्रजापतिं चेष्ट्वाऽस्मदर्थमपत्यमिति संवाद्याभिसन्धिमात्रात्पुत्रिकेत्येकेषां तत्संशयान्नोपयच्छेदभ्रातृकाम् ॥ ३ ॥ पिण्डगोत्रर्षिसंबन्धा रिक्थं भजेरन् स्त्री चानपत्यस्य बीजं वा लिप्सेद्देवरवत्यन्यतो जातमभागम् ॥ ४ ॥ पुत्रा औरसक्षेत्रजदत्तकृत्रिमगूढोत्पन्नापविद्धा रिक्थभाजः कानीनसहोढपौनर्भवपुत्रिकापुत्रस्वयंदत्तक्रीता गोत्रभाजश्चतुर्थांशिनश्चौरसाद्यभावे ब्राह्मणस्य राजन्या पुत्रो ज्येष्ठो गुणसंपन्नस्तुल्यांशभाग् ज्येष्ठांशहीनमन्यद् राजन्यावैश्यापुत्रसमवाये स यथा ब्राह्मणीपुत्रेण क्षत्रियाच्चेच्छूद्रापुत्रोऽप्यनपत्यस्य शुश्रूषुश्चेल्लभेत वृत्तिमूलमन्तेवासिविधिना सवर्णापुत्रोऽप्यन्यायवृत्तो न लभेतैकेषां ब्राह्मणस्याऽनपत्यस्य श्रोत्रिया रिक्थं भजेरन् राजेतरेषां जडक्लीबौ भर्तव्यावपत्यं जडस्य भागार्हं शूद्रापुत्रवत्प्रतिलोमास्तूदकयोगक्षेमकृतान्नेष्वविभागः स्त्रीषु च संयुक्तास्वनाज्ञाते दशावरैः शिष्टैरूहवद्भिरलुब्धैः प्रशस्तं कार्यम् ॥ ५ ॥ चत्वारश्चतुर्णां पारगा वेदानां प्रागुत्तमास्त्रय आश्रमिणः पृथग्धर्मविदस्त्रय एतान् दशावरान् परिषदित्याचक्षते, असम्भवे त्वेतेषां श्रोत्रियो

वेदविच्छिष्टो विमतिपत्तौ यदाह यतोऽयमप्रभवो भूतानां हिंसानुग्रहयोगेषु धर्मिणां विशेषेण स्वर्गं लोकं धर्मविदाप्नोति ज्ञानाभिनिवेशाभ्यामिति धर्मो धर्मः ॥ १० ॥

(१९) शातातपस्मृति ।

ब्राह्मणं हत्वा तस्य शिरः कपालमादाय तीर्थान्तरं संचरेदात्मनः पापकीर्तनं कुर्वन्द्वादशाब्दे विशुध्यति ॥ २ ॥ ब्राह्मणसुवर्णराजसंनिधानात्सोमपानेन शुद्धिः स्यात् ॥५॥ नकुलभोजने लशुनपलाण्डुगृञ्जनभक्षणे तप्तकृच्छ्रम् ॥९॥ उष्ट्रीखरीमानुषीक्षीरपाने पुनरुपनयनं कृच्छ्रं च ॥ १० ॥ शूद्रोच्छिष्टभोजने त्रिरात्रम् ॥ ११ ॥ सुराभाण्डोदकपाने छर्दनं घृतप्राशनमहोरात्रं च ॥ १२ ॥ अनुदकमूत्रपुरीषकरणे श्वकाकस्पर्शने सचैलस्नानं महाव्याहृतिमाचरेत् ॥ १३ ॥ अग्नेरुत्सादने मांसस्पर्थे(स्पर्शे) काकश्वानमण्डूकमूषकदर्दुरनकुलादीन्हत्वा यानि चान्यानि भूतानि एषामनुक्रमायश्चित्तेषु वधं कृत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १६॥ अग्न्युत्सादने कृच्छ्रम् ॥ २२ ॥ कन्यादूषणेऽर्धपादम् ॥ २३ ॥

विवाहयेन्न सगोत्रां समानप्रवरां तथा । तस्याः (कथञ्चित्) संबन्धेऽ(प्य)तिकृच्छ्रं चरेद्द्विजः ॥३२॥
नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् । नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ ३५ ॥
यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता । नोपयच्छेत तां कन्यां पुत्रिकाधर्मशङ्कया ॥ ३६ ॥
दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ ३९ ॥
परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते । सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥ ४० ॥
प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पण्डित एव च । वैश्वदेवे तु सम्प्राप्तः सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥ ५३॥
अनिमित्तमनाहूतं देशकालमुपस्थितम् । अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वसङ्गतः ॥ ५५ ॥
यावन्मात्राशनो वा स्याद्भुताशी स्नातको द्विजः । तस्यान्नस्य चतुर्भागं हन्तकारं विदुर्बुधाः ॥ ५६ ॥
ग्रासमात्रं भवेद्भिक्षा पुष्कलं तु चतुर्गुणम् । पुष्कलानि च चत्वारि हन्तकारो विधीयते ॥ ५७ ॥
हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणव्यञ्जनादयः । दातारं नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुञ्जीत किल्बिषम् ॥ ७१ ॥
आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपनीयते । भोक्ता विष्ठासमं भुंक्ते दाता च नरकं व्रजेत् ॥ ७२ ॥
दन्तधावनमंगुल्या प्रत्यक्षलवणं च यत् । मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांसभक्षणैः ॥ ७३ ॥
अन्यतो वसते मूर्खो दूरेणापि बहुश्रुतः । बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥ ७६ ॥
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते । ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ ७७ ॥
संनिकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् । भोजने चैव दाने च दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ ७८ ॥
वेदविद्याव्रतस्नाते श्रोत्रिये गृहमागते । मोदन्त्योषधयः सर्वा यास्यामः परमां गतिम् ॥ ८३ ॥
न वाशौचे परिभ्रष्टे विप्रे वेदविवर्जिते । दीयमानं रुदत्यन्नं किं मया दुष्कृतं कृतम् ॥ ८४ ॥
यावतो ग्रसते पिण्डान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् । तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तान्स्थूलानयोगुडान् ॥ ८६ ॥
मधुमांससुरासोमं लाक्षालवणमेव च । एतेषां विक्रयेणैव द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ ८७ ॥
रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राहोरन्यत्र दर्शनात् । सन्ध्ययोरुभयोश्चैव न कुर्वीत कदा च न ॥ ९४ ॥
यावदुष्णं भवेदन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः । पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ १०३ ॥
हविर्गुणा न वक्तव्या न यावत्पितरोऽर्चिताः । पितृभिस्तर्पितैस्त (त्व)स्य वक्तव्यं शोभनं हविः ॥१०४
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रं कुतपस्तिलाः । त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति सत्यमक्रोधमार्जवम् ॥ १०७॥
दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभवति भास्करः । स कालः कुतपो ज्ञेयः पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ १०९ ॥
गणान्नं गणिकान्नं च यच्चान्नं बहुयाचितम् । नारीप्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ११६ ॥
अज्ञानाद्भुञ्जते विप्राः सूतके मृतकेऽपि च । गायत्र्यष्टसहस्रेण शुध्यते शूद्रसूतके ॥ १२१ ॥
वैश्यस्य सूतके भुक्त्वा गायत्र्याः पञ्चभिः शुचिः । सूतके क्षत्रियस्यैतद्विंशतिः शतमुच्यते ॥१२२॥
सत्रिणां दीक्षितानां च यतीनां ब्रह्मचारिणाम् । एतेषां सूतकं नास्ति कर्म कुर्वन्ति ऋत्विजः॥१२३
अग्न्यगारे गवां गोष्ठे देवतानां च संनिधौ । आहारे जपकाले च पादुकां च विवर्जयेत् ॥१२६॥
शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा अप्सु मुक्तशिखोऽपि वा । अकृत्वा पादशौचं तु आचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् १२७

यातुधानाः पिशाचाश्च राक्षसाः क्रूरकर्मिणः । हरन्ते रसमन्नस्य मण्डलेन विवर्जितम् ॥ १३१ ॥
ब्राह्मणस्य चतुष्कोणं त्रिकोणं क्षत्रियस्य च । वैश्यस्य मण्डलं प्रोक्तं शूद्रस्य प्रोक्षणं स्मृतम् ॥१३३॥
दन्तलग्ने फले मूले भुक्तशेषानुलेपने । ताम्बूले चेक्षुखण्डे च नोच्छिष्टो भवति द्विजः ॥ १३४ ॥
न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नाऽऽतुरो न महानिशि । न वासोभिः सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये ॥ १३५ ॥
बहूनामेकलग्नानां यद्येकोऽप्यशुचिर्भवेत् । अशौचं तस्य मात्रस्य नेतरेषां कदा च न ॥ १३८ ॥
ऋतुमतीं तु यो भार्यां संनिधौ नोपगच्छति । तस्या रजांसि तन्मासं पितरस्तस्य शेरते ॥१४४ ॥
अर्वाक् षोडश विज्ञेया नाड्यः पश्चाच्च षोडश । कालः पुण्योऽर्कसंक्रान्त्यां विद्वद्भिः परिकीर्तितः१४६
ब्रह्मकूर्चं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् । अनादिष्टेषु सर्वेषु ब्रह्मकूर्चं विधीयते ॥ १५६ ॥
नदीप्रस्रवणे तीर्थे ह्रदे चान्तर्जलेऽपि वा । धौतवासा विशुद्धात्मा जपेच्चैव जितेन्द्रियः ॥ १५७ ॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । निर्दिष्टं पञ्चगव्यं च पवित्रं कायशोधनम् ॥ १५८ ॥
गोमूत्रैकपलं दद्यादर्धांगुष्ठेन गोमयम् । क्षीरं सप्तपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् ॥ १५९ ॥
गायत्र्याऽऽगृह्य गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् । आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि॥१६०॥
तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् । ब्रह्मकूर्चं भवेदेवमापोहिष्ठेति ऋग्जपेत् ॥ १६१ ॥
मध्यमेन पलाशेन पद्मपत्रेण वा पिबेत् । अथवा ताम्रपात्रेण ब्रह्मपात्रेण वा द्विजः ॥ १६२ ॥
अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा इरावती इदं विष्णुः । मानस्तोके गायत्रीं च जुहुयात् ॥ १६३ ॥
प्रजापतेनत्वदेतान्यन्य इत्यालोड्य प्रणवेन पिबेत् ॥ १६४ ॥
आहृत्य प्रणवेनैव उद्धृत्य प्रणवेन च । आलोड्य प्रणवेनैव पिबेच्च प्रणवेन च ॥ १६५ ॥
एतद्द्विजनिमित्तं हि सर्वपापप्रणाशनम् । पलं कोष्ठगतं सर्वं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥ १६६ ॥
धर्मशास्त्रं समारूढो वेदखड्गधरो द्विजः । विद्वान्स्वयं तु यद्ब्रूयात्स धर्मः परमः स्मृतः ॥ १७१ ॥

(१९ क) दूसरी शातातपस्मृति–१ अध्याय ।

दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डं निवर्तनम् । दश तान्येव गोचर्म दत्त्वा स्वर्गे महीयते ॥ १५ ॥

(१९ ख) वृद्धशातातपस्मृति ।

नदीतीरेषु गोष्ठेषु पुण्येष्वायतनेषु च । तत्र गत्वा शुचौ देशे ब्रह्मकूर्चं समाचरेत् ॥ २ ॥
पालाशं पद्मपत्रं वा ताम्रं वाऽथ हिरण्मयम् । तत्र भुङ्क्ते व्रती नित्यं तत्पात्रं समुदाहृतम् ॥ ३ ॥
गायत्र्या चैव गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् । आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ॥ ४ ॥
तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् । चतुर्दशीमुपोष्यैवं योऽमावास्यां समाचरेत् ॥ ५ ॥
गोमूत्रकं पलं दद्यादङ्गुष्ठार्धं तु गोमयम् । क्षीरं सप्तपलं दद्याद्दध्नस्त्रिपलमेव च ॥ ६ ॥
आज्यमेकपलं प्रोक्तं पलमेकं कुशोदकम् । एवं क्रमेण कर्तव्यं पञ्चगव्यं यथाविधि ॥ ७ ॥
सप्तपर्णाः शुभा दर्भा अच्छिन्नाग्राः समायताः । समुद्धृतैस्तैर्होतव्यं देवताभ्यो यथाविधि ॥ ८ ॥
अग्नये सोमायेति इरावतीदं विष्णुरिति । विष्णोर्नुकं शुमित्रिया नः सुजानातकस्तथा ॥ ९ ॥
एतासां देवताहुतीनां हुतशेषं तु यः पिबेत् । आलोड्य प्रणवेनैव निर्मथ्य प्रणवेन तु ॥ १० ॥
उद्धृत्य प्रणवेनैव पिबेच्च प्रणवेन तु । एवं कुर्वन्ब्रह्मकूर्चं मासे मासे च वै द्विजः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा जायते नात्र संशयः ॥ ११ ॥
यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम् । ब्रह्मकूर्चो दहेत्पापं प्रदीप्ताग्निरिवेन्धनम् ॥ १२ ॥
भोजनस्य तु काले च योऽशुचिर्भवति द्विजः । भूमौ निक्षिप्य तं ग्रासं स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात् १६॥
रजस्वले च द्वे नार्यावन्योन्यं स्पृशतो यदि । सुवर्णपञ्चगव्येन स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ २० ॥
अनधीत्य धर्मशास्त्रं प्रायश्चित्तं ददाति यः । प्रायश्चित्ती भवेत्पूतस्तत्पापं पर्षदं व्रजेत् ॥ ३० ॥
अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियतेऽग्न्युदकादिभिः । तस्याशौचं विधातव्यं कर्तव्या चोदकक्रिया ॥ ३२ ॥
शोधितानां तु पात्राणां यद्येकमुपहन्यते । तावन्मात्रस्य तच्छौचं नेतरेषामिति स्थितिः ॥ ३६ ॥
पिण्याकाचामतक्राम्बुसक्तवः प्रतिवासरम् । एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रः सौम्योऽयमुच्यते ॥ ३७ ॥
एषामेव त्रिरभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम् । तुलापुरुष इत्येष ज्ञेयः पञ्चदशाहिकः ॥ ३८ ॥
मृताहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् । प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहनि ॥ ४० ॥

पात्रे तु मृन्मये यस्तु श्राद्धे वै भोजयेद्द्विजान् । अन्नदाता पुरो धाता भोक्ता च नरकं व्रजेत् ॥ ९० ॥
श्राद्धे भुक्त्वा य उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति । स गच्छेन्नरकं घोरं तिर्यग्योनौ च जायते ॥ ९१ ॥
आसनारूढपादो वा वस्त्रार्धप्रावृतोऽपि वा । मुखेन फूत्कृतं भुङ्क्ते भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ९२ ॥
कुमारप्रसवे नाड्यामच्छिन्नायां गुडघृतहिरण्यवस्त्रप्रावरणप्रतिग्रहे न दोषः स्यात्तदहनीत्येके ॥९९॥

(२०) वसिष्ठस्मृति—१ अध्याय ।

श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मः ॥ ३ ॥ आर्यावर्तः प्रागादर्शात् प्रत्यक्कालकवनादुदक् पारियात्राद्दक्षिणेन हिमवत उत्तरेण विन्ध्यस्य ॥ ७ ॥ तस्मिन्देशे ये धर्मा ये चाचारास्ते सर्वे प्रत्येतव्याः ॥ ८ ॥ न त्वन्ये प्रतिलोमकल्पधर्माणः ॥ ९ ॥ गंगायमुनयोरन्तरेऽप्येके ॥ ११ ॥ यावद्वा कृष्णमृगो विचरति तावद्ब्रह्मवर्चसमित्यन्ये ॥ १२ ॥ अथापि भाल्लविनो निदाने गाथामुदाहरन्ति ॥ १३ ॥ पश्चात्सिन्धुर्विहरिणी सूर्यस्योदयनं पुरः । यावत्कृष्णोऽभिधावति तावद्वै ब्रह्मवर्चसम् ॥ १४ ॥ गोमिथुनेन चाऽऽर्षः ॥ ३२ ॥

वसिष्ठस्मृति—२ अध्याय ।

चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः ॥ १ ॥ त्रयो वर्णा द्विजातयो ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः ॥ २॥ तेषां मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जीबन्धने ॥३॥ तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ॥४॥ न ह्यस्य विद्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् । वृत्त्या शूद्रसमो ज्ञेयो यावद्वेदे न जायत इति ॥१२॥ अन्यत्रौदककर्मस्वधापितृसंयुक्तेभ्यः ॥१३ ॥ षट् कर्माणि ब्राह्मणस्य ॥१९ ॥ अध्ययनमध्याप यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति ॥ २० ॥ त्रीणि राजन्यस्य ॥ २१ ॥ अध्ययनं यजनं दानं च शस्त्रेण च प्रजापालनं स्वधर्मस्तेन जीवेत् ॥ २२ ॥ एतान्येव त्रीणि वैश्यस्य, कृषिवाणिज्यं पाशुपाल्यं कुसीदं च ॥ २३ ॥ एतेषां परिचर्या शूद्रस्य ॥२४॥ वैश्यजीविकामास्थाय पण्येन जीवन्तोऽश्मलवणमणिशाणकौशेयक्षौमाजिनानि च तान्तवं रक्तं सर्वं च कृतान्नं पुष्पमूलफलानि च गन्धरसा उदकं चौषधीनां रसः सोमश्च शस्त्रं विषं मांसं च क्षीरं च साविकारमयस्त्रपुजतुसीसं च ॥ २९॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ३४ ॥ भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः । कृमीभूतः श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति । इति ॥ ३५ ॥ तस्मात्साण्डाभ्यां मनस्योताभ्यां प्राक्प्रातराशात्कर्षी स्यात् ॥ ३७ ॥ निदाघेऽपः प्रयच्छेत् ॥ ३८ ॥ नातिपीडयं लाङ्गलं प्रवीरवत्सुशेवं सोमपित्सरु तदुद्वपति गामविं चाजानश्वानश्वतरखरोष्ट्रांश्च प्रफर्व्यं च पीवरीं प्रस्थावद्रथवाहनमिति ॥ ३९ ॥ लाङ्गलं प्रवीरवद्वीरवत्सु मनुष्यवदनडुद्वत् सुशेवं कल्याणनासिकं कल्याणी ह्यस्य नासिकानासिकयोद्वपति दूरेऽपविद्ध्यति, सोमपित्सरु सोमो ह्यस्य प्राप्नोति तत्सरु तदुद्वपति गाश्चाविश्चाजानश्वानश्वतरखरोष्ट्रांश्च प्रफर्व्यं च पीवरीं दर्शनीयां कल्याणीं च प्रथमयुवतीम् ॥ ४० ॥ कथं हि लांगलमुद्वपेदन्यत्र धान्यविक्रयात् ॥ ४१ ॥
ब्राह्मणराजन्यौ वार्धुषान्नं नाद्याताम् ॥ ४४ ॥
समर्घं धान्यमुद्धृत्य महार्घं यः प्रयच्छति । स वै वार्धुषिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥
वृद्धींश्च भ्रूणहत्यांश्च तुलया समतोलयत् । अतिष्ठद्भ्रूणहा कोट्यां वार्धुषिर्न व्यकम्पत ॥ ४६ ॥
कामं वा परिलुप्तकृत्याय पापीयसे दद्याताम् ॥ ४७ ॥ द्विगुणं हिरण्यं त्रिगुणं धान्यम् ॥ ४८ ॥
धान्येनैव रसा व्याख्याताः ॥ ४९ ॥ पुष्पमूलफलानि च ॥ ५० ॥ तुलावृतमष्टगुणम् ॥ ५१ ॥
राजाऽनुमतभावेन द्रव्यवृद्धिं विनाशयेत् । पुना राजाभिषेकेण द्रव्यवृद्धिं च वर्जयेत् ॥ ५३ ॥
द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पञ्चकं च शतं स्मृतम्। मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥ ५४ ॥
वसिष्ठवचनप्रोक्तां वृद्धिं वार्धुषिके शृणु । पञ्चमाषांस्तु विंशत्या एवं धर्मो न हीयते ॥ इति ॥ ५५ ॥

वसिष्ठस्मृति—३ अध्याय ।

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् । स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ ३ ॥
अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः । तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥ ५ ॥
चत्वारोऽपि त्रयो वापि यद्ब्रूयुर्वेदपारगाः । स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः ॥ ६ ॥

अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् । सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥ ७ ॥
यं वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममतद्विदः । तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄनधिगच्छति ॥ ८ ॥
यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चैव बहुश्रुतः । बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥ १० ॥
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति मूर्खे वेदविवर्जिते । ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ ११ ॥
यश्च काष्ठमयो हस्ती यश्च चर्ममयो मृगः । यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ १२ ॥
विद्वद्भोज्यान्यविद्वांसो येषु राष्ट्रेषु भुञ्जते । तान्यनावृष्टिमृच्छन्ति महद्वा जायते भयम् ॥ १३ ॥
अप्रज्ञायमानं वित्तं योऽधिगच्छेद्राजा तद्धरेदधिगन्त्रे षष्ठमंशं प्रदाय ॥ १४ ॥
अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिनः ॥ १९ ॥
आततायिनमायान्तमपि वेदान्तपारगम् । जिघांसन्तं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥ २० ॥
त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णवांश्चतुर्मेधा वाजसनेयी षडङ्गविद्ब्रह्मदेयानुसन्तानश्छन्दोगो ज्येष्ठसामगो मन्त्रब्राह्मणवित्यः स्वधर्मानधीते यस्य दशपुरुषं मातृपितृवंशः श्रोत्रियो विज्ञायते विद्वांसः स्नातकाश्च ते पंक्तिपावना भवन्ति ॥ २२ ॥
चातुर्विद्यो विकल्पी च अंगविद्धर्मपाठकः । आश्रमस्थास्त्रयो मुख्याः परिषत्स्याद्दशावरा॥ २३ ॥
आत्मत्राणे वर्णसंकरे वा ब्राह्मणवैश्यौ शस्त्रमाददीयाताम् ॥ २६ ॥ अंगुष्ठमूलस्योत्तरतो रेखा ब्राह्मं तीर्थं तेन त्रिराचामेदशब्दवद्भिः परिमृज्यात् ॥ २९ ॥ हृदयङ्गमाभिरद्भिरबुद्बुदाभिरफेनाभिर्ब्राह्मणः कण्ठगाभिः क्षत्रियः शुचिः ॥ ३३ ॥ वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु स्त्रीशूद्रौ स्पृष्टाभिरेव च ॥ ३४ ॥
दन्तवद्दन्तसक्तेषु यच्चान्तर्मुखे भवेत् । आचान्तस्यावशिष्टं स्यान्निगिरन्नेव तच्छुचिः ॥ ४० ॥
परानथाऽऽचामयतः पादौ या विप्रुषो गताः । भूम्यास्तास्तु समाः प्रोक्तास्ताभिर्नोच्छिष्टभाग्भवेत्॥४१
प्रसारितं च यत्पण्यं ये दोषाः स्त्रीमुखेषु च । मशकैर्मक्षिकाभिश्च नीली येनोपहन्यते ॥ ४५ ॥
क्षितिस्थाश्चैव या आपो गवां तृप्तिकराश्च याः ।: परिसंख्याय तान्सर्वाञ्छुचीनाह प्रजापतिः ॥४६॥
तैजसमृन्मयदारवतान्तवानां भस्मपरिमार्जनप्रदाहतक्षणनिर्णेजनानि ॥ ४८ ॥ तैजसवदुपलमणीनां मणिवच्छङ्खशुक्तीनां दारुवदस्न्थां रज्जुविदलचर्मणा चैलवच्छौचम् ॥ ४९ ॥ गोवालैः फलमयानां गौरसर्षपकल्केन क्षौमजानाम् ॥ ५० ॥ भूम्यास्तु संमार्जनप्रोक्षणोपलेपनोल्लेखनैर्यथास्थानं दोषविषेषात्प्राजापत्यमुपैति ॥ ५१ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ५२ ॥
खननाद्दहनाद्वर्षाद्गोभिराक्रमणादपि । चतुर्भिः शुध्यते भूमिः पञ्चमाच्चोपलेपनात् ॥ ५३ ॥
रजसा शुध्यते नारी नदी वेगेन शुध्यति । भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति ॥ ५४ ॥
मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा श्लेष्मपूयाश्रुशोणितैः । संस्पृष्टं नैव शुध्येत पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ ५५ ॥
अद्भिरेव काञ्चनं पूयते तथा राजतम् ॥ ५७ ॥ अङ्गुल्यग्रे मानुषम् ॥ ५९ ॥ पाणिमध्य आग्नेयम् ॥ ६० ॥ प्रदेशिन्यङ्गुष्ठयोरन्तरा पित्र्यम् ॥ ६१ ॥

वसिष्ठस्मृति-४ अध्याय।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥ इति निगमो भवति ॥ २ ॥ सर्वेषां सत्यमक्रोधो दानमहिंसा प्रजननं च ॥ ४॥ मरणात्प्रभृति दिवसगणना सपिण्डता तु सप्तपुरुषं विज्ञायते॥१७॥ अप्रत्तानां स्त्रीणां त्रिपुरुषं त्रिदिनं विज्ञायते ॥१८॥
नाशौचं सूतके पुंसः संसर्गं चेन्न गच्छति । रजस्तत्राशुचि ज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यते ॥ २१ ॥
तच्चेदन्तः पुनरापतेच्छेषेण शुध्येरन् ॥ २२ ॥ रात्रिशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः ॥ २३ ॥
ब्राह्मणो दशरात्रेण पक्षमात्रेण भूमिपः । वैश्यो विंशतिरात्रेण शूद्रो मासेन शुध्यति ॥ २४ ॥
ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सपिण्डानां त्रिरात्रमाशौचं सद्यः शौचमिति गौतमः ॥ २९ ॥

वसिष्ठस्मृति-५ अध्याय।

पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने । पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ ४ ॥
विज्ञायते हीन्द्रस्त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रं हत्वा पाप्मना गृहीतो महत्तमाधर्मसम्बद्धोऽहमित्येवमात्मानममन्यत तं सर्वाणि भूतान्यभ्याक्रोशन् भ्रूणहन्भ्रूणहन्निति सस्त्रिय उपाधावत् अस्यै मे ब्रह्महत्या-

ये तृतीयं भागं गृह्णीतेति गत्वैवमुवाच, ता अब्रुवन् किन्नोऽभूदिति, सोऽब्रवीद्वरं वृणीध्वमिति, ता अब्रुवन्नृतौ प्रजां विन्दामहा इति, काम मा विजानीमोऽलं भवाम इति (यथेच्छयाऽऽप्रसवकालात्पुरुषेण सह मैथुनभावेन संभवाम इति) एषोऽस्माकं वरस्तथेन्द्रेणोक्तास्ताः प्रतिजगृहुस्तृतीयं भ्रूणहत्यायाः ॥ ८ ॥ सैषा भ्रूणहत्या मासि मास्याविर्भवति ॥ ९ ॥

वसिष्ठस्मृति-६ अध्याय ।

उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः । रात्रौ कुर्याद्दक्षिणास्य एवं ह्यायुर्न हीयते ॥ १० ॥
प्रत्यग्निं प्रति सूर्यं च प्रति गां प्रति च द्विजम् । प्रति सोमोदकं सन्ध्यां प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥११॥
न नद्यां मेहनं कार्यं न भस्मनि न गोमये । न वा कृष्टे न मार्गे च नोप्ते क्षेत्रे न शाड्वले ॥१२ ॥
छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः । यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च ॥ १३ ॥
उद्धृताभिरद्भिः कार्यं कुर्यात्स्नानमनुद्धृताभिरपि ॥ १४ ॥
आहरेन्मृत्तिकां विप्रः कूलात्ससिकतां तथा । अन्तर्जले देवगृहे वल्मीके मूषिकस्थले ॥
कृतशौचावशिष्टा च न ग्राह्याः पञ्चमृत्तिकाः ॥ १५ ॥
एका लिङ्गे करे तिस्र उभाभ्यां द्वे तु मृत्तिके । पञ्चापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ॥१६॥
एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः । वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥ १७ ॥
अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्त वानप्रस्थस्य षोडश । द्वात्रिंशच्च गृहस्थस्य अमितं ब्रह्मचारिणः ॥ १८ ॥
आमपात्रे यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु । विनश्येत्पात्रदौर्बल्यात्तच्च पात्रं रसाश्च ते ॥ ३० ॥
एव गां च हिरण्यं च वस्त्रमश्वं महीतिलान् । अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति दारुवत् ॥ ३१ ॥
पारंपर्यागतो येषां वेदः सपरिबृंहणः । ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ ४० ॥

वसिष्ठस्मृति-७ अध्याय ।

संयतवाक्चतुर्थषष्ठाष्टमकालभोजी भैक्षमाचरेत ॥ ७ ॥ गुर्वधीनो जटिलः शिखाजटो वा गुरुं गच्छन्तमनुगच्छेत् ॥ ८ ॥

वसिष्ठस्मृति-८ अध्याय ।

गृहस्थो विनीतक्रोधहर्षो गुरुणाऽनुज्ञातः स्नात्वाऽसमानार्षामस्पृष्टमैथुनां यवीयसीं सदृशीं भार्यां विन्देत ॥ १ ॥ पञ्चमीं मातृबन्धुभ्यः सप्तमीं पितृबन्धुभ्यः ॥ २ ॥
एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः । अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ ७ ॥
नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं साङ्गतिकं तथा । काले प्राप्ते अकाले वा नास्यानश्नन्गृहे वसेत् ॥ ८ ॥
गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः । चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थस्तु विशिष्यते ॥ १४ ॥
यथा नदी नदाः सर्वे समुद्रे यान्ति संस्थितिम् । एवमाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्१५ ॥

वसिष्ठस्मृति-९ अध्याय ।

वानप्रस्थो जटिलश्चीराजिनवासा ग्रामं च न प्रविशेत् ॥ १ ॥ न फालकृष्टमधितिष्ठेत् ॥ २ ॥ अकृष्टं मूलफलं सञ्चिन्वीत, ऊर्ध्वरेताः क्षमाशयः ॥ ३ ॥ मूलफलभैक्षेणाऽऽश्रमागतमतिथिमभ्यर्चयेत् ॥ ४ ॥ दद्यादेव न प्रतिगृह्णीयात् ॥ ५ ॥ त्रिषवणमुदकमुपस्पृशेत् ॥६ ॥ श्रावणकेनाग्निमाधायाऽऽहिताग्निः स्याद्वृक्षमूलिकः ॥ ७ ॥ दद्याद्देवपितृमनुष्येभ्यः स गच्छेत्स्वर्गमानन्त्यमानन्त्यम् ॥ ९ ॥

वसिष्ठस्मृति-१० अध्याय ।

परिव्राजकः सर्वभूताभयदक्षिणां दत्त्वा प्रतिष्ठेत ॥ १ ॥ मुण्डोऽममोऽपरिग्रहः सप्तागाराण्यसङ्कल्पितानि चरेद्भैक्षं विधूमे सन्नमुसले ॥ ७॥ एकशाटीपरिवृतोऽजिनेन वा गोप्रलूनैस्तृणैर्वेष्टितशरीरः स्थण्डिलशाय्यनित्यां वसतिं वसेत्, ग्रामान्ते देवगृहे शून्यागारे वृक्षमूले वा मनसा ज्ञानमधीयमानः ॥ ८ ॥ अरण्यनित्यो न ग्राम्यपशूनां संदर्शने विहरेत् ॥ ९॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥१०॥ अरण्यनित्यस्य जितेन्द्रियस्य सर्वेन्द्रियप्रीतिनिवर्त्तकस्य । अध्यात्मचिन्तागतमानसस्य ध्रुवा ह्यनावृत्तिरुपेक्षकस्य ॥ ११ ॥

वसिष्ठस्मृति–११ अध्याय।

अपरपक्ष ऊर्ध्वं चतुर्थ्याः पितृभ्यो दद्यात्पूर्वेद्युर्ब्राह्मणान्सन्निपात्य यतीन् गृहस्थान् साधून् वा परिणतवयसोऽविकर्मस्थान् श्रोत्रियाञ्छिष्यानन्तेवासिनः शिष्यानपि गुणवतो भोजयेत् ॥ १४ ॥
अथ चेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूषणैः। अदूष्यन्तं यमः प्राह पङ्क्तिपावन एव सः ॥ १७ ॥
श्राद्धेनोद्वासनीयानि उच्छिष्टान्यादिनक्षयात्। श्च्योतन्ते हि सुधाधारास्ताः पिबन्त्यकृतोदकाः ॥१८॥
उच्छिष्टं न प्रमृज्यात्तु यावन्नास्तमितो रविः। क्षीरधारास्ततो यान्ति अक्षय्याः पङ्क्तिभागिनः॥१९॥
प्राक्संस्कारप्रमीतानां स्ववंश्यानामिति श्रुतिः। भागधेयं मनुः प्राह उच्छिष्टोच्छेषणे उभे ॥ २०॥
उच्छेषणं भूमिगतं विकिरँल्लेपसोदकम्। अन्नं प्रेतेषु विसृजेदप्रजानामनायुषाम् ॥ २१ ॥
द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा। भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्येत विस्तरे ॥ २४ ॥
सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदः। पञ्चैतान् विस्तरो हन्ति तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥२५॥
अपि वा भोजयेदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम्। श्रुतशीलोपसंपन्नं सर्वालक्षणवर्जितम् ॥ २६ ॥
यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र कथं भवेत्। अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य तु ॥ २७ ॥
देवतायतने कृत्वा ततः श्राद्धं प्रवर्त्तयेत्। प्रास्येदग्नौ तदन्नं तु दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे ॥ २८ ॥
यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः। तावद्धि पितरोऽश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥२९॥
हविर्गुणा न वक्तव्याः पितरोऽस्यवतर्पिताः। पितृभिस्तर्पितैः पश्चाद्वक्तव्यं शोभनं हविः ॥ ३० ॥
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः। त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम्॥३२॥
दिवसस्याष्टमे भागे मन्दी भवति भास्करः। स कालः कुतपो नाम पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ ३३ ॥
मधुमांसैश्च शाकैश्च पयसा पायसेन वा। एष नो दास्यति श्राद्धं वर्षासु च मघासु च ॥ ३७ ॥
श्रावण्याग्रहायण्योश्चान्वष्टक्यां च पितृभ्यो दद्याद्द्रव्यदेशब्राह्मणसन्निधाने वा, न कालनियमः ४०॥ विज्ञायते हि त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् ब्राह्मणो जायते इति ॥ ४२ ॥ यज्ञेन देवेभ्यः, प्रजया पितृभ्यो, ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्य इत्येष वाऽनृणो यज्वा यः पुत्री ब्रह्मचर्यवानिति ॥ ४३ ॥ गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयीत, गर्भैकादशेषु राजन्यं गर्भद्वादशेषु वैश्यम् ॥ ४४ ॥ केशसमितो ब्राह्मणस्य ललाटसंमितः क्षत्रियस्य घ्राणसंमितो वैश्यस्य ॥ ४६ ॥ मौञ्जी रशना ब्राह्मणस्य धनुर्ज्या क्षत्रियस्य शणतान्तवी वैश्यस्य ॥ ४७ ॥ कृष्णाजिनमुत्तरीयं ब्राह्मणस्य रौरवं क्षत्रियस्य गव्यं वस्ताजिनं वा वैश्यस्य ॥ ४८ ॥ शुक्लमहत वासो ब्राह्मणस्य माञ्जिष्ठं क्षत्रियस्य हारिद्रं कौशेयं वैश्यस्य सर्वेषां वा तान्तवमरक्तम् ॥ ४९ ॥ भवत्पूर्वां ब्राह्मणो भिक्षां याचेत भवन्मध्यां राजन्यो भवदन्त्यां वैश्यः ॥ ५० ॥ पतितसावित्रीक उद्दालकव्रतं चरेत् ॥ ५६ ॥ अश्वमेधावभृथं वा गच्छेत् ॥ ५८ ॥ व्रात्यस्तोमेन वा यजेद्वा यजेत् ॥ ५९ ॥

वसिष्ठस्मृति–१२ अध्याय।

अथातः स्नातकव्रतानि ॥ १ ॥ स न किंचिद्याचेतान्यत्र राजान्तेवासिभ्यः ॥ २ ॥ क्षुधापरीतस्तु किंचिदेव याचेत कृतमकृतं वा क्षेत्रं गामजाविकमन्ततो हिरण्यं धान्यमन्नं वा, न तु स्नातकः क्षुधाऽवसीदेदित्युपदेशः ॥ ३ ॥ परिवेष्टितशिरा भूमिमयज्ञियैस्तृणैरन्तर्धाय मूत्रपुरीषे कुर्यात् ॥ ॥ १० ॥ स्नातकानान्तु नित्यं स्यादन्तर्वासस्तथोत्तरम्। यज्ञोपवीते द्वे यष्टिः सोदकश्च कमण्डलुः ॥ १२ ॥ प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जति ॥ १५ ॥ तूष्णीं सांगुष्ठं कृत्स्नग्रासं ग्रसेत् ॥ १६॥ आपि नः श्वो विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयीरन्निति स्त्रीणामिन्द्रदत्तो वर इति ॥ २४ ॥ पालाशमासनं पादुके दन्तधावनमिति वर्जयेत् ॥ ३२ ॥ वैष्णवं दण्डं धारयेद्रुक्मकुण्डले च ॥ ३४ ॥ न बहिर्मालां धारयेदन्यत्र रुक्ममय्याः ॥ ३५ ॥

वसिष्ठस्मृति–१३ अध्याय।

अथातः स्वाध्यायोपाकर्म श्रावण्यां पौर्णमास्यां प्रौष्ठपद्यां वाऽग्निमुपसमाधाय कृताधानो जुहोति देवेभ्य ऋषिभ्यश्छन्दोभ्यश्चेति ॥ १ ॥ ब्राह्मणान्स्वास्तिवाच्य दधि प्राश्य ततोऽध्यायानुपाकुर्वीरन् ॥ २॥ अर्धपञ्चममासानर्द्धषष्ठान्वाऽत ऊर्द्धं शुक्लपक्षेष्वधीयीत कामं तु वेदाङ्गानि ॥३॥ तस्यानध्यायाः ॥ ४ ॥ सन्ध्यास्तमिते सन्ध्यास्वन्तःशवदिवाकीर्त्येषु नगरेषु कामं गोमयपर्यु-

षिते परिलिखिते वा श्मशानान्ते शयानस्य श्राद्धिकस्य ॥५॥ मानवं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति॥६॥
फलान्यापस्तिलाभक्ष्याण्यन्नान्यच्छ्राद्धिकं भवेत्। प्रतिगृह्याप्यनध्यायः पाण्यास्या ब्राह्मणाः स्मृताः ॥
धातवः पूतिगन्धप्रभृतावीरिणे वृक्षमारूढस्य नावि सेनायां च भुक्त्वा चाऽऽर्द्रपाणेर्वाणशब्दे चतुर्दश्याममावास्यायामष्टम्यामष्टकासु प्रसारितपादोपस्थकृतस्योपाश्रितस्य च गुरुसमीपे मैथुनव्यपेतायां वाससा मैथुनव्यपेतेनानिर्णिक्तेन ग्रामान्ते छर्दितस्य मूत्रितस्योच्चारितस्य ऋग्यजुषां च सामशब्दे वाऽजीर्णे निर्घाते भूमिचलने चन्द्रसूर्योपरागे दिङ्नादपर्वतनादकम्पपातेषूपलरुधिरपांशुवर्षेष्वाकालिकम् ॥ ८ ॥ उल्काविद्युत्समासे त्रिरात्रम् ॥ ९ ॥ उल्काविद्युत्सज्योतिषम् ॥ ॥ १० ॥ अपर्त्तावाकालिकमाचार्ये प्रेते त्रिरात्रमाचार्यपुत्रशिष्यभार्यास्वहोरात्रम् ॥ ११ ॥ ऋत्विग्योनिसंबन्धेषु च गुरोः पादोपसंग्रहणं कार्यम् ॥ १२ ॥ ऋत्विक्श्वशुरपितृव्यमातुलानवरवयसः प्रत्युत्थायाभिवदेत् ॥ १३ ॥ पतितः पिता त्याज्यो माता तु पुत्रे न पतति ॥ १५ ॥ उपाध्यायाद्दशाऽऽचार्य आचार्याणां शतं पिता। पितुर्दशशतं माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ १७ ॥ भार्याः पुत्राश्च शिष्याश्च संसृष्टाः पापकर्मभिः। परिभाष्य परित्याज्याः पतितो योऽन्यथा त्यजेत् ॥ १८ ॥ विद्या वित्तं वयः संबन्धः कर्म च मान्यम् ॥ २४ ॥ पूर्वः पूर्वो गरीयान् स्थविरबालातुरभारिकस्त्रीचक्रिवतां पन्थाः समागमे परस्मै देयः ॥ २५ ॥ राजस्नातकयोः समागमे राज्ञा स्नातकाय देयः ॥ २६ ॥ सर्वैरेव च वध्वा उह्यमानायै ॥ २७ ॥

वसिष्ठस्मृति–१४ अध्याय।

अथातो भोज्याभोज्यं च वर्णयिष्यामः ॥ १ ॥ चिकित्सकमृगयुपुंश्चलीदंभिकस्तेनाभिशस्तपण्डपतितानामन्नमभोज्यम् ॥ २॥ कदर्यदीक्षितबद्धातुरसोमविक्रयितक्षकरजकशौण्डिकसूचकवार्धुषिकचर्मावकृत्तानां शूद्रस्य चास्त्रभृतश्चोपपत्तेर्यश्चोपपत्तिं मन्यते, यश्च गृहान्दहेत् यश्च वधार्हं नोपहन्यात्, क्रौ भक्ष्यत इति ॥ ३ ॥ वाचाभिघुष्टं गणान्नं गणिकान्नं चेति ॥ ४ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ५ ॥
नाश्नन्ति श्ववतो देवा नाश्नन्ति वृषलीपतेः। भार्याजितस्य नाश्नन्ति यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ ६ ॥
गुरून् भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्नर्चिष्यन्देवतातिथीन्। सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः ॥ ९ ॥
यदशनं केशकीटोपहतं च ॥ १८ ॥ कामं तु केशकीटानुधृत्याद्भिः प्रोक्ष्य भस्मनाऽवकीर्य वाचा प्रशस्तमुपभुञ्जीत ॥ १९ ॥
त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन्। अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥ २१ ॥
देवद्रोण्यां विवाहेषु यज्ञेषु प्रकृतेषु च। काकैः श्वभिश्च संस्पृष्टमन्नं तन्न विसर्जयेत् ॥ २२ ॥
तस्मात्तदन्नमुत्सृत्य शेषं संस्कारमर्हति। द्रवाणां प्लावनेनैव घनानां प्रोक्षणेन तु ॥ २३ ॥
मार्जारमुखसंस्पृष्टं शुचिरेव हि तद्भवेत् ॥ २३ ॥
हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणव्यञ्जनानि च। दातारं नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुङ्क्ते च किल्बिषम् ॥२६॥
लशुनपलाण्डुकवकगृञ्जनश्लेष्मातवृक्षनिर्यासलोहितव्रश्चनाश्वश्वकाकावलीढशूद्रोच्छिष्टभोजनेषु कृच्छ्रातिकृच्छ् इतरेऽप्यन्यत्र मधुमांसफलकविकारैश्चग्राम्यपशुविषयः ॥ २८ ॥ सन्धिनीक्षीरमवत्साक्षीरं गोमहिष्यजानामनिर्दशाहानामन्तर्नाव्युदकमपूपधानाकरम्भसक्तुवटकतैलपायसशाकानि शुक्तानि वर्जयेत् अन्यांश्च क्षीरयवपिष्टविकारान् ॥ २९ ॥ श्वाविच्छल्लकशशकच्छपगोधाः पञ्चनखानां भक्ष्याः ॥ ३० ॥ खड्गे तु विवदन्त्यग्राम्यशूकरे च ॥ ३५ ॥ कलविङ्कप्लवहंसचक्रवाकभासवायसपारावतकुक्कुटसारङ्गपाण्डुकपोतक्रौञ्चक्रकरगृध्रश्येनबकबलाकमद्गुटिट्टिभमान्धातृनक्तञ्चरदार्वाघाटचटकरैलातकहारीतखञ्जरीटग्राम्यकुक्कुटशुकसारिकाकोकिलक्रव्यादा ग्रामचारिणश्च ग्रामचारिणश्चेति ॥ ३७॥

वसिष्ठस्मृति–१५ अध्याय।

तस्मिंश्चेत्प्रतिगृहीत औरसः पुत्र उत्पद्येत, चतुर्थभागभागीस्याद्दत्तकः ॥ ९ ॥ यदि नाभ्युदयिकेषु युक्तः स्याद्वेदविप्लविनः सव्येन पादेन प्रवृत्ताग्रान् दर्भान् लोहितान् वोपस्तीर्य पूर्णपात्रमस्मै निनयेत् ॥ १० ॥ नेतारं चास्य प्रकीर्णकेशा ज्ञातयोऽन्वालभेरन्नपसव्यं कृत्वा गृहेषु स्वैरमापद्येरन्नत ऊर्ध्वं तेन धर्मयेयुस्तद्धर्माणस्तं धर्मयन्तः ॥ ११ ॥ पतितानां तु चरितव्रतानां प्रत्युद्धारः ॥ १२ ॥

वसिष्ठस्मृति—१६ अध्याय।

राजमन्त्री सदःकार्याणि कुर्यात् ॥ २ ॥ द्वयोर्विवदमानयोर्न पक्षान्तरं गच्छेत् ॥ ३ ॥ यथासनमपराधो ह्यन्तेनापराधः ॥ ४ ॥
लिखितं साक्षिणो भुक्तिः प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम्। धनस्वीकरणं पूर्वं धनी धनमवाप्नुयात्,इति॥७॥
गृहक्षेत्रविरोधे सामन्तप्रत्ययः ॥ ९ ॥ सामन्तविरोधे लेख्यप्रत्ययः ॥ १० ॥ प्रत्यभिलेख्यविरोधे ग्रामनगरवृद्धश्रेणिप्रत्ययः ॥ ११ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ १२ ॥
पैतृकं क्रीतमाधेयमन्वाधेयं प्रतिग्रहम्। यज्ञादुपगमो वेणिस्तथा धूमशिखाष्टमी, इति ॥ १३ ॥
तत्र भुक्तानुभुक्तदशवर्षम् ॥ १४ ॥
आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः। राजस्वं श्रोत्रियद्रव्यं न राजाऽऽदातुमर्हति ॥ १६ ॥
श्रोत्रियो रूपवाञ्छीलवान् पुण्यवान् सत्यवान् साक्षिणः सर्वेषु सर्व एव वा ॥ २३ ॥
स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः। शूद्राणां सन्तः शूद्राश्च, अन्त्यानामन्त्ययोनयः २४
प्रातिभाव्यं वृथादानमाक्षिकं शौरिकं च यत्। दण्डशुल्कावशिष्टं च न पुत्रो दातुमर्हति, इति ॥२६॥
ब्रूहि साक्षिन्यथा तत्त्वं लम्बन्ते पितरस्तव। तव वाक्यमुदीक्षाणा उत्पतन्ति पतन्ति च ॥ २७ ॥
नग्नो मुण्डः कपाली च भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः। अन्धः शत्रुकुले गच्छेद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥ २८॥
पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते। शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ २९ ॥
उद्वाहकाले रतिसंप्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे। विप्रस्य चार्थे ह्यनृतं वदेयुः पञ्चानृतान्याहुरपातकानि।
स्वजनस्यार्थे यदि वार्थहेतोः पक्षाश्रयेणैव वदन्ति कार्यम्। ते शब्दवंशस्य कुलस्य पूर्वान् स्वर्गस्थितांस्तानपि पातयन्ति अपि पातयन्ति। इति ॥ ३२ ॥

वसिष्ठस्मृति—१७ अध्याय।

ऋणमस्मिन् सन्नयति अमृतत्वं च गच्छति। पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम् ॥ १ ॥
पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते। अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम् ॥ इति ॥५ ॥
बहूनामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्नरः। सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रवन्त इति श्रुतिः ॥ १० ॥
बह्वीनामेकपत्नीनामेका पुत्रवती यदि। सर्वास्तास्तेन पुत्रेण पुत्रवत्य इति श्रुतिः ॥ ११ ॥
स्वयमुत्पादितः स्वक्षेत्रे संस्कृतायां प्रथमः ॥ १३ ॥ तदलाभे नियुक्तायां क्षेत्रजो द्वितीयः ॥ १४ ॥
तृतीयः पुत्रिका विज्ञायते ॥ १५ ॥ अभ्रातृकां पुंसः पितॄनभ्येति प्रतीचीनं गच्छति पुत्रत्वम् ॥
॥ १६ ॥ तत्र श्लोकः ॥ १७ ॥
अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम्। अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति॥१८॥
पौनर्भवश्चतुर्थः ॥ १९ ॥ या कौमारं भर्त्तारमुत्सृज्यान्यैः सह चरित्वा तस्यैव कुटुम्बमाश्रयति सा पुनर्भूर्भवति ॥ २० ॥ या च क्लीबं पतितमुन्मत्तं वा भर्त्तारमुत्सृज्यान्यं पतिं विन्दते मृते वा सा पुनर्भूर्भवति ॥ २१ ॥ कानीनः पञ्चमः ॥ २२ ॥ या पितृगृहेऽसंस्कृता कामादुत्पादयेत्, मातामहस्य पुत्रो भवतीत्याहुः ॥ २३ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ २४ ॥
अप्रत्ता दुहिता यस्य पुत्रं विन्देत तुल्यतः। पुत्रो मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरेद्धनम्, इति ॥ २५ ॥
गृहे च गूढोत्पन्नः षष्ठः ॥ २६ ॥ इत्येते दायादा बान्धवास्त्रातारो महतो भयादित्याहुः ॥ २७ ॥
अथादायादबन्धूनां सहोढ एव प्रथमो या गर्भिणी संस्क्रियते तस्यां जातः सहोढः पुत्रो भवति ॥
॥ २८ ॥ दत्तको द्वितीयो यं मातापितरौ दद्याताम् ॥ २९ ॥ क्रीतस्तृतीयस्तच्छुनःशेपेन व्याख्यातम् ॥ ३० ॥ हरिश्चन्द्रो ह वै राजा सोऽजीगर्तस्य सौयवसेः पुत्रं चिक्राय ॥ ३१ ॥ स्वयं क्रीतवान्स्वयमुपागतश्चतुर्थः तच्छुनःशेपेन व्याख्यातम् ॥ ३२ ॥ अपविद्धः पञ्चमोयं मातापितृभ्यामपास्तं प्रतिगृह्णीयात् ॥ ३४ ॥ शूद्रापुत्र एव षष्ठो भवतीत्याहुः ॥ ३५ ॥ द्व्यंशं ज्येष्ठो हरेद्गवाश्वस्य चानुदशमम् ॥ ४० ॥ अजावयो गृहं च कनिष्ठस्य ॥ ४१ ॥ कार्ष्णायसं गृहोपकरणानि च मध्यमस्य ॥ ४२ ॥ कुमार्यृतुमती त्रीणि वर्षाण्युपासीतोर्ध्वं त्रिभ्यो वर्षेभ्यः पतिं विन्देत्तुल्यम् ॥ ५९ ॥ यस्य पूर्वेषां षण्णां न कश्चिद्दायादः स्यात् सपिण्डः पुत्रस्थानीया वा तस्य धनं विभजेरन् ॥ ७२ ॥ तेषामलाभ आचार्यान्तेवासिनौ हरेयाताम् ॥ ७३ ॥ तयोरलाभे राजा

हरेत् ॥ ७४ ॥ न तु ब्राह्मणस्य राजा हरेत् ॥ ७५ ॥ त्रैविद्यसाधुभ्यः संप्रयच्छेदिति ॥ ७८ ॥

वसिष्ठस्मृति–१८ अध्याय ।

शूद्रेण ब्राह्मण्यामुत्पन्नश्चाण्डालो भवतीत्याहुः । राजन्यायां वैणो वैश्यायामन्त्यावसायी ॥ १ ॥ राजन्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नः सूतो भवतीत्याहुः ॥३॥ एकान्तरद्व्यन्तरत्र्यन्तरानुजाता ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यैरम्बष्ठोग्रनिषादा भवन्ति ॥६॥ कृष्णवर्णा या रामा रमणायैव न धर्माय न धर्मायेति ॥१६॥

वसिष्ठस्मृति–१९ अध्याय ।

राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः । निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥३०॥ एनो राजानमृच्छति उत्सृजन्तं सकिल्बिषम् ॥ तं चेद्घातयते राजा हन्ति धर्मेण दुष्कृतम् इति ॥ ॥ ३१ ॥ नाघदोषोऽस्ति राज्ञां वै व्रतिनां न च सत्रिणाम् । ऐन्द्रं स्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा ॥ ३४ ॥

वसिष्ठस्मृति–२० अध्याय ।

अनभिसंधिकृते प्रायश्चित्तमपराधे ॥ १ ॥ अभिसन्धिकृतेऽप्येके ॥ २ ॥ परिवित्तिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत तां चैवोपयच्छेत् ॥ ८ ॥ अथ परिविविदानः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरित्वा तस्मै दत्त्वा पुनर्निविशेत तामेवोपयच्छेत् ॥९॥ ब्रह्मोज्झः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनरुपयुञ्जीत वेदमाचार्यात् ॥ १३ ॥ गुरुतल्पगः सवृषणं शिश्नमुत्कृत्याञ्जलावाधाय दक्षिणामुखो गच्छेत् ॥ १४ ॥ यत्रैव प्रतिहन्यात्तत्र तिष्ठेदाप्रलयम् ॥ १५ ॥ निष्कालको वा घृताभ्यक्तस्तप्तां सूर्मिं परिष्वजेन्मरणात्पूतो भवतीति विज्ञायते ॥ १६ ॥ आचार्यपुत्रशिष्यभार्यासु चैवम् ॥ १७॥ योनिषु च गुर्वीं सखीं गुरुसखीमपपात्रां पतितां च गत्वा कृच्छ्राब्दपादं चरेत् ॥ १८ ॥ एतदेवं च चाण्डालपतितान्नभोजनेषु ततः पुनरुपनयनं वपनादीनां तु निवृत्तिः ॥ १९ ॥ मत्या मद्यपाने त्वसुरायाश्चाज्ञाने कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ घृतं प्राश्य पुनः संस्कारश्च ॥ २२ ॥ मूत्रशकृच्छुक्राभ्यवहारेषु चैवम् ॥ २३ ॥ मद्यभाण्डे स्थिता आपो यदि कश्चिद्द्विजः पिबेत् । पद्मोदुम्बरबिल्वपलाशानामुदकं पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ २४ ॥ अभ्यासे तु सुरा या अग्निवर्णा तां द्विजः पिबेन्मरणात्पूतो भवतीति ॥ २५ ॥ भ्रूणहन वक्ष्यामो ब्राह्मणं हत्वा भ्रूणहा भवत्यविज्ञातं च गर्भमविज्ञाता हि गर्भाः पुंमांसो भवन्ति ॥ २६ ॥ एवं राजन्यं हत्वाऽष्टौ वर्षाणि चरेत् षड्वैश्यं त्रीणि शूद्रं ब्राह्मणीं चात्रेयीं हत्वा, सवनगतौ च राजन्यवैश्यौ ॥ ४१ ॥ आत्रेयीं वक्ष्यामो–रजस्वलामृतुस्नातामात्रेयीमाहुः ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणः सुवर्णहरणे प्रकीर्य केशान् राजानमभिधावेत् स्तेनोऽस्मि भोः शास्तु मां भवानिति तस्मै राजोदुम्बरं शस्त्रं दद्यात्तेनात्मानं प्रमापयेन्मरणात्पूतो भवतीति विज्ञायते ॥ ४५ ॥ निष्कालको वा घृताक्तो गोमयाग्निना पादप्रभृत्यात्मानमभिदाहयेन्मरणात्पूतो भवतीति विज्ञायते ॥४६॥ स्तेनः कुनखी भवति श्वित्री भवति ब्रह्महा । सुरापः श्यावदन्तस्तु दुश्चर्मा गुरुतल्पगः इति ॥४९ ॥

वसिष्ठस्मृति–२१ अध्याय ।

ब्राह्मणश्चेदप्रेक्षापूर्वं ब्राह्मणदारानभिगच्छेदनिवृत्तधर्मकर्मणः कृच्छ्रो निवृत्तधर्मकर्मणोऽतिकृच्छ्रः ॥ ॥ १७ ॥ एवं राजन्यवैश्ययोः ॥ १८ ॥

त्र्यहमुष्णं पिबेच्चापस्त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत् । त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षः परं त्र्यहम् ॥ २२ ॥

वसिष्ठस्मृति–२३ अध्याय ।

य आत्मत्यागाभिशस्तो भवति स पिण्डानां प्रेतकर्मच्छेदः ॥ ११ ॥ काष्ठलोष्टजलपाषाणशस्त्रविषरज्जुभिर्य आत्मानमवसादयति, स आत्महा भवति ॥ १२ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥१३॥ य आत्मत्यागिनः कुर्यात्स्नेहात् प्रेतक्रियां द्विजः । स तप्तकृच्छ्रसहितं चरेच्चान्द्रायणव्रतम् इति॥ १४॥ अहः प्रातरहर्नक्तमहरेकमयाचितम् । अहः पराकं तत्रैकमेवं चतुरहौ परौ ॥ ३७ ॥ अनुग्रहार्थं विप्राणां मनुर्धर्मभृतां वरः । बालवृद्धातुरेष्वेवं शिशुकृच्छ्रमुवाच ह ॥ ३८ ॥

मासस्य कृष्णपक्षादौ ग्रासानद्याच्चतुर्दश । ग्रासापचयभोजी स्यात्पक्षशेषं समापयेत् ॥ ४० ॥
एवं हि शुक्लपक्षादौ ग्रासमेकं तु भक्षयेत् । ग्रासोपचयभोजी स्यात्पक्षशेषं समापयेत् ॥ ४१ ॥

वसिष्ठस्मृति–२४ अध्याय ।

त्र्यहं प्रातस्तथा सायमयाचितं पराक इति कृच्छ्रः ॥ २ ॥ यावत्सकृदाददीत तावदश्नीयात्पूर्ववत्सोऽतिकृच्छ्रः ॥ ३ ॥ अब्भक्षः स कृच्छ्रातिकृच्छ्रः ॥ ४ ॥

वसिष्ठस्मृति–२६ अध्याय ।

क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः । धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपैर्होमैर्द्विजोत्तमः ॥ १७ ॥

वसिष्ठस्मृति–२७ अध्याय ।

शङ्कास्थाने समुत्पन्ने भोज्याभोज्यान्नसंज्ञके । आहारशुद्धिं वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ १०॥
अक्षारलवणां रूक्षां पिबेद्ब्राह्मीं सुवर्चलाम् । त्रिरात्रं शङ्खपुष्पीं च ब्राह्मणः पयसा सह ॥ ११ ॥
पालाशबिल्वपत्राणि कुशान्पद्मानुदुम्बरान् । क्वाथयित्वा पिबेदापस्त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥ १२ ॥

वसिष्ठस्मृति–२८ अध्याय ।

नाऽऽपोमूत्रपुरीषेण नाग्निर्दहनकर्मणा ॥ १ ॥
स्वयं विप्रतिपन्ना वा यदि वा विप्रवासिता । बलात्कारोपभुक्ता वा चोरहस्तगताऽपि वा ॥ २ ॥
न त्याज्या दूषिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते । पुष्पकालमुपासीत ऋतुकालेन शुध्यति ॥ ३ ॥
तासां सोमोऽददच्छौचं गन्धर्वः शिक्षितां गिरम् । अग्निश्च सर्वभक्षत्वं तस्मान्निष्कल्मषाः स्त्रियः॥६॥
त्रीणि स्त्रियः पातकानि लोके धर्मविदो विदुः । भर्तुर्वधो भ्रूणहत्या स्वस्य गर्भस्य पातनम् ॥ ७ ॥

(२० क) वृद्धवसिष्ठस्मृति ।

मासत्रये त्रिरात्रं स्यात् षण्मासे पक्षिणी तथा । अहस्तु नवमादर्वागूर्ध्वं स्नानेन शुध्यति (१) ।
स्पृष्टे रजस्वलेऽन्योन्यं सवर्णे त्वेकभर्तृके । कामादकामतो वापि सद्यः स्नानेन शुद्ध्यतः (२) ।

(२१) प्रजापतिस्मृति ।

ब्राह्मणः क्षत्रियविशां जीव्यवृत्तिं समाश्रयेत् । स्ववृत्तेरुपहानित्वान्न श्ववृत्तिं कदाचन ॥ ४७ ॥
वृषोत्सर्गस्य कर्तारो वर्जनीयाः सदैव हि । पितुर्गृहेषु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ॥ ८५ ॥
सा कन्या वृषली ज्ञेया तत्पतिर्वृषलीपतिः । महिषीत्युच्यते भार्या सा चैव व्यभिचारिणी ॥८६ ॥
तान्दोषान्क्षमते यस्तु स वै माहिषकः स्मृतः । अज्ञानादथवा लोभान्मोहाद्वाऽपि विशेषतः ॥ ८७॥
समर्घं योऽन्नमादाय महार्घं तु प्रयच्छति । स वै वार्धुषिको नाम अनर्हः सर्वकर्मसु ॥ ८८ ॥
लोहपात्रेषु यत्पक्वं तदन्नं काकमांसवत् । भुक्त्वा चान्द्रायणं कुर्याच्छ्राद्धे नान्येषु कर्मसु ॥ ११३ ॥
ताम्रपात्रे न गोक्षीरं पचेदन्नं न लोहजे । क्रमेण घृततैलाक्ते ताम्रलोहे न दुष्यतः ॥ ११४ ॥
श्यामाकान्कोद्रवान्कंगून्कलञ्जान्राजमाषकान् । निष्पावकान्कदम्बानि वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥१२६॥
कलिङ्गं चैव वृन्ताकं कूष्माण्डं रक्तनीलकम् । हस्तीमुण्डफलं वर्ज्यमलाबु च तुषाम्रकम् ॥ १२७॥
करीरजं कुमारीजं सार्षपं राजिकोद्भवम् । वर्ज्येत्पितृकार्येषु वल्लकौसुम्भपर्पटौ ॥ १२८ ॥
क्षीरं दधि घृतं तक्रमविच्छागसमुद्भवम् । माहिषं च दधि क्षीरं श्राद्धे वर्ज्यं प्रयत्नतः ॥ १२९ ॥
अतो माषान्नमेवैतन्मांसार्थे ब्रह्मणा कृतम् । पितरस्तेन तृप्यन्ति श्राद्धं कुर्यान्न तद्विना ॥ १५२ ॥
त्रिमुहूर्त्तस्तु प्रातः स्यात्तावानेव तु सङ्गवः । मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यादपराह्णस्तथैव च ॥ १५६ ॥
सायं तु त्रिमुहूर्त्तः स्यात्पञ्चधा काल उच्यते । अतोऽपराह्णः पूर्वेषां भोज्यकाल उदाहृतः ॥ १५७ ॥
मुहूर्त्तास्तत्र विज्ञेया दश पञ्च च सर्वदा । तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः ॥ १५९ ॥
विवृद्धा यत्र पुरतः कुतपस्पर्शिनी तिथिः । श्राद्धे सांवत्सराङ्के च निर्णयोऽयं कृतः सदा ॥ १६० ॥
सापिण्डे कालकामौ तौ वृद्धौ सत्यवसू स्मृतौ । यज्ञे च बहवः सन्ति श्राद्धे श्राद्धे पृथक्पृथक् १८०॥

(२२) देवलस्मृति ।

मृतसूते तु दासीनां पत्नीनां चानुलोमिनाम् । स्वामितुल्यं भवेच्छौचं मृते स्वामिनि यौनिकम् ॥६॥
असवर्णेन यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते । अशुद्धा सा भवेन्नारी यावच्छल्यं न मुञ्चति ॥ ५० ॥

विनिःसृते ततः शल्ये रजसो वाऽपि दर्शने । तदा सा शुध्यते नारी विमलं काञ्चनं यथा ॥ ५१ ॥
माता म्लेच्छत्वमागच्छेत्पितरो वा कथंचन । असूतकं च नष्टस्य देवलस्य वचो यथा ॥ ५९ ॥
मातरं च परित्यज्य पितरं च तथा सुतः । ततः पितामहं चैव शेषपिण्डं तु निर्वपेत् ॥ ६० ॥

(२२ क) देवलस्मृति ।

ऊर्णकौशेयकुतपपट्टक्षौमदुकूलजाः । अल्पशौचा भवंत्येते शोषणप्रोक्षणादिभिः (१) ।
तान्येवामेध्ययुक्तानि क्षालयेच्छोधनैः स्वकैः । धान्यकल्कैस्तु फलजैः रसैः क्षारानुगैरपि (२) ।
मानुषास्थिवसां विष्ठामार्तवं मूत्ररेतसी । मज्जानं शोणितं स्पृष्ट्वा परस्य स्नानमाचरेत् (३) ।
तान्येव स्वानि संस्पृश्य प्रक्षाल्याचम्य शुद्ध्यति (४) ।
पूर्वाह्णे दैविकं कर्म अपराह्णे तु पैतृकम् । एकोद्दिष्टं तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् (५) ।
दशमेहनि सम्प्राप्ते स्नानं ग्रामाद्बहिर्भवेत् । तत्र त्याज्यानि वासांसि केशश्मश्रुनखानि च (६) ।
काषायी मुण्डस्त्रिदण्डी कमण्डलुपवित्रपादुकासनकन्थामात्रः (७) ।
चाण्डालकूपभाण्डस्थमज्ञानादुदकं पिबेत् । स तु त्र्यहेण शुद्ध्येत शूद्रस्त्वेकेन शुद्ध्यति (८) ।

(२३) गोभिलस्मृति-१ प्रपाठक ।

त्रिवृदूर्ध्ववृतं कार्यं तन्तुत्रयमधोवृतम् । त्रिवृत्तच्चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते ॥ २ ॥
पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम् । तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलम्बं नचोच्छ्रितम् ॥ ३ ॥
यत्रोपदिश्यते कर्म कर्तुरङ्गं न तूच्यते । दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः ॥ ८ ॥
यत्र दिङ्नियमो न स्याज्जपहोमादिकर्मसु । तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐन्द्रीसौम्यापराजिताः ॥ ९ ॥
तिष्ठन्नासीनः प्रह्वो वा नियमो यत्र नेदृशः । तदासीनेन कर्त्तव्यं न प्रह्वेण न तिष्ठता ॥ १० ॥
दाराधिगमनाधाने यः कुर्यादग्रजाग्रिमः । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ ७० ॥
परिवित्तिपरिवेत्तारौ नरकं गच्छतो ध्रुवम् । अपि चीर्णप्रायश्चित्तौ पादोनफलभागिनौ ॥ ७१ ॥
देशान्तरस्थक्लीबैकवृषणानसहोदरान् । वेश्यातिसक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः ॥ ७२ ॥
जडमूकान्धबधिरकुब्जवामनकुण्ठकान् । अतिवृद्धानभार्यांश्च कृषिसक्तान्नृपस्य च ॥ ७३ ॥
धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतोऽकारिणस्तथा । कुलटोन्मत्तचौरांश्च परिविन्दन्न दुष्यति ॥ ७४ ॥
धनवार्धुषिकं राजसेवकं कर्मकं तथा । प्रोषितं च प्रतीक्षेत वर्षत्रयमपि त्वरन् ॥ ७५ ॥
प्रोषितं यद्यशृण्वानस्त्वब्दादन्ते समाचरेत् । आगते तु पुनस्तस्मिन्पादं वा शुद्धये चरेत् ॥ ७६ ॥
सूर्येऽस्तशैलमप्राप्ते षट्त्रिंशद्भिः सदाऽङ्गुलैः । प्रादुष्करणमग्नीनां प्रातर्भासां च दर्शनात् ॥ १२२ ॥
हस्तादूर्ध्वं रविर्यावद्गिरिं हित्वा न गच्छति । तावद्धोमविधिः पुण्यो नापोऽभ्युदितहोमिनाम् ॥ १२३॥
यावत्सम्यङ्न भासन्ते नभस्यृक्षाणि सर्वतः । न च लोहितमापैति तावत्सायं न हूयते ॥ १२४ ॥
रजो नीहारधूमाभ्रवृक्षाग्रान्तरिते रवौ । सन्ध्यामुद्दिश्य जुहुयाद्धूतमस्य न लुप्यते ॥ १२५ ॥
न कुर्यात्क्षिप्रहोमेषु द्विजः परिसमूहनम् । वैरूपाक्षं च न जपेत्प्रपदं च विवर्जयेत् ॥ १२६ ॥
पर्युक्षणं तु सर्वत्र कर्तव्यमुदितेऽन्विति । अन्ते च वामदेव्यस्य गानं कुर्यादृचैर्चिषा ॥ १२७ ॥
अहोमकेष्वपि भवेद्यथोक्तं चन्द्रदर्शने । वामदेव्यं गणेष्वन्ते बल्यन्ते वैश्वदेविके ॥ १२८ ॥
येष्वधस्तरणाम्नानं न तेषु स्तरणं भवेत् । एककार्यार्थसाध्यत्वात्परिधीनपि वर्जयेत् ॥ १२९ ॥
बहिः पर्युक्षणं चैव वामदेव्यजपं तथा । कृत्वाऽऽहुतीषु सर्वासु त्रिकमेतन्न विद्यते ॥ १३० ॥
हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु व्रीहयः स्मृताः । माषकोद्रवगौरादि सर्वलाभे विवर्जयेत् ॥ १३१ ॥

पाण्याहुतिर्द्वादशपर्वपूरिका कंसादिनाचेत्स्रुवपूरमात्रिका ।
दैवेन तीर्थेन च हूयते हविःस्वङ्गारिणि स्वर्चिषि तच्च पावके ॥ १३२ ॥

योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः । मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्च स जायते ॥ १३३ ॥
तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कदाचन । आरोग्यमिच्छताऽऽयुश्च श्रियमात्यन्तिकीं पराम्॥१३४॥
होतव्ये च हुते चैव पाणिशूर्पास्यदर्विभिः । न कुर्यादग्निधमनं कुर्याद्वा व्यजनादिना ॥ १३५ ॥
मुखेनैके धमन्त्यग्निं मुखाद्ध्येषोऽध्यजायत । नाग्निं मुखेनेति च यल्लौकिके योजयन्ति तत् ॥१३६॥
नारदाद्युक्तवार्क्षं यदष्टाङ्गुलमपाटितम् । सत्वचन्दन्तकाष्ठं स्यात्तदग्रेण प्रधावयेत् ॥ १३८ ॥

उत्थाय नेत्रे प्रक्षाल्य शुचिर्भूत्वा समाहितः। परिजप्य च मन्त्रेण भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ १३९ ॥
आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजां पशून्वसूनि च। ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥ १४० ॥
मासद्वयं श्रावणादि सर्वा नद्यो रजस्वलाः। तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः ॥ १४१ ॥
धनुःसहस्राण्यष्टौ तु तोयं यासां न विद्यते। न ता नदीशब्दवाच्या गर्तास्ते परिकीर्त्तिताः ॥ १४२ ॥
उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते ॥ १४३ ॥
वेदाश्छन्दांसि सर्वाणि ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः। जलार्थिनोऽथ पितरो मरीच्याद्यास्त्वथर्षयः॥१४४॥
उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्नानार्थं ब्रह्मवादिनः। यियासूननुगच्छन्ति संहृष्टाश्च शरीरिणः ॥ १४५ ॥
समागमस्तु यत्रैषां तत्र हत्यादयो मलाः। नूनं सर्वे क्षयं यान्ति:किमुतैकं नदीरजः ॥ १४६ ॥
स्वर्धुन्यम्भःसमानि स्युः सर्वाण्यम्भांसि भूतले। कूपस्थान्यपि सोमार्कग्रहणे नात्र संशयः ॥ १५० ॥

गोभिलस्मृति–२ प्रपाठक।

भूयस्त्वं ब्रुवते तत्र कृच्छ्राच्छ्रेयो ह्यवाप्यत। तिष्ठेदुदयनात्पूर्वां मध्यमामपि शक्तितः ॥ १४ ॥
आसीतास्तमयाच्चान्त्यां सन्ध्यां पूर्वत्रिकं जपेत्। एतत्सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यत्र तिष्ठति॥ १५॥
यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते। सन्ध्यालोपाच्च चकितः स्नानशीलस्तु यः सदा ॥१६॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो बलिर्भूतनृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ २७ ॥
श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात्पित्र्योर्बलिरथापि वा। यश्च श्रुतिजपः प्रोक्तो ब्रह्मयज्ञः स चोच्यते ॥२८॥
इतरेभ्यस्ततो देयादेष दानविधिः परः। संनिकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् ॥ ६६ ॥
यद्ददाति तमुल्लंघ्य तत्स्तेयेन स युज्यते। यस्य चास्ति गृहे मूर्खो दूरस्थश्च गुणान्वितः ॥ ६७ ॥
गुणान्विताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः। ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ॥ ६८ ॥
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते। आज्यस्थाली च कर्तव्या तैजसद्रव्यसम्भवा ॥ ६९ ॥
श्रोत्रियं सुभगां गां वा साग्निमग्निचितं यथा। प्रातरुत्थाय यः पश्येदापद्भ्यः स प्रमुच्यते ॥१६३॥
पापिष्ठं दुर्भगामन्त्यं नग्नमुत्कृत्तनासिकम्। प्रातरुत्थाय यः पश्येत्स कलि उपयुज्यते ॥ १६५ ॥
पतिमुल्लङ्घ्य मोहात्स्त्री कं कं न नरकं व्रजेत्। कृच्छ्रान्मानुषतां प्राप्य किं किं दुःखं न पश्यति१६६
पतिशुश्रूषयैव स्त्री सर्वांल्लोकान्समश्नुते। दिवः पुनरिहाऽऽयाता सुखानामम्बुधिर्भवेत् ॥ १६७ ॥

गोभिलस्मृति–३ प्रपाठक।

दाहयित्वाऽग्निभिर्भार्यां सदृशीं पूर्वसंस्थिताम्। पात्रैश्चाथाग्निमादध्यात्कृतदारोऽविलम्बितः ॥ ५ ॥
एवं वृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम्। दाहयित्वाऽग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ ६ ॥
द्वितीयां चैव यः पत्नीं दहेद्वैतानिकाग्निभिः। जीवन्त्यां प्रथमायान्तु ब्रह्मघ्नेन समं हि तत् ॥ ७ ॥
यो दहेदग्निहोत्रेण स्वेन भार्यां कथञ्चन। स स्त्री संपद्यते तेन भार्या चास्य पुमान्भवेत् ॥ ११ ॥
मान्या चेन्म्रियते पूर्वं भार्या पतिविमानिता। त्रीणि जन्मानि सा पुंस्त्वं पुरुषः स्त्रीत्वमर्हति ॥१३ ॥
सूतके कर्मणां त्यागः सन्ध्यादीनां विधीयते। होमः श्रौतस्तु कर्तव्यः शुष्कान्नेनापि वा फलैः ६०
न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वकं क्वचित्। न दीक्षिण्यात्परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन् ॥६४ ॥
पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित्। आशौचं कर्मणोऽन्ते स्यात्त्र्यहं वा ब्रह्मचारिणः॥६५॥
श्राद्धमग्निमतः कार्यं दाहादेकादशेऽहनि। प्रत्याब्दिकं प्रकुर्वीत प्रमीताहनि सर्वदा ॥ ६६ ॥
द्वादशप्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिके तथा। सपिण्डीकरणं चैव एतद्वै श्राद्धषोडशम् ॥ ६७ ॥
एकाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः। न्यूना संवत्सराच्चैव स्यातां षाण्मासिके तथा॥६८॥
सशिखं वपनं कार्यमास्नानब्रह्मचारिणाम्। आशरीरविमोक्षाय ब्रह्मचर्यं न चेद्भवेत् ॥ ८९ ॥
वपनं नास्य कर्त्तव्यमर्वागौदनिकव्रतात्। व्रतिनो वत्सरं यावत्षण्मासानिति गौतमः ॥ ९० ॥
अक्षतास्तु यवाः प्रोक्ता भृष्टा धाना भवन्ति ते। भृष्टास्तु व्रीहयो लाजा घटाः पण्डिक उच्यते१३३

(२४) लघ्वाश्वलायनस्मृति–१ आचारप्रकरणम्।

एका लिङ्गे करे तिस्रः करयोर्मृद्द्वयं गुदे। पञ्च वामे दश प्रोक्ताः करे सप्ताथ हस्तयोः ॥ १० ॥
एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः। वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतेश्चैव चतुर्गुणम् ॥ ११ ॥

स्वपादं पाणिना विप्रो वामेन क्षालयेत्सदा । शौचे दक्षिणपादं तु पश्चात्सव्यं करावुभौ ॥ १२ ॥
शौचं विना सदाऽन्यत्र सव्यं प्रक्षाल्य दक्षिणम् । एवमेवाऽऽत्मनः पादौ परस्याऽऽदौ तु दक्षिणम् १३
गण्डूषैः शोधयेदास्यमाचामेद्दन्तधावनम् । काष्ठैः पर्णैस्तृणैर्वाऽपि केचित्पर्णैः सदा तृणैः ॥ १४ ॥
नवमी द्वादशी नन्दा पर्व चार्कमुपोषणम् । श्राद्धाहं च परित्यज्य दन्तधावनमाचरेत् ॥ १५ ॥
आचम्याथ द्विजः स्नायान्नद्यां वा देवनिर्मिते । तीर्थे सरोवरे चैव कूपे वा द्विजनिर्मिते ॥ १६ ॥
अशक्तश्चेज्जलस्नाने मन्त्रस्नानं समाचरेत् । आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैस्त्रिभिश्चानुक्रमेण तु ॥ २३ ॥
परिधाने सितं शस्तं वासः प्रावरणे तथा । पट्टकूलं तथालाभे ब्राह्मणस्य विधीयते ॥ २८ ॥
आविकं त्रसरं चैव परिधाने परित्यजेत् । शस्तं प्रावरणे प्रोक्तं स्पर्शदोषो न हि द्वयोः ॥ २९ ॥
कालद्वये यदा होमं द्विजः कर्तुं न शक्यते । सायमाज्याहुतिं चैव जुहुयात्प्रातराहुतिम् ॥ ६५ ॥
सायंकाले समस्तं स्यादाज्याहुतिचतुष्टयम् । हुत्वा कुर्यादुपस्थानं समस्येत्यग्निसूर्ययोः ॥ ६६ ॥
होमश्चेत्पुरतः काले प्राप्तः स्यात्काल उत्तरः । हुत्वा व्याहृतिभिश्चाऽऽज्यं कुर्याद्धोमद्वयं च हि ॥६७॥
विच्छिन्नवह्निसन्धानमपराह्णे विधीयते । सायमौपासनं कुर्यादस्तादुपरि भास्वतः ॥ ६८ ॥
नैव गच्छेद्विना भार्यां सीमामुल्लङ्घ्य योऽग्निमान् । यत्र तिष्ठति वै भार्या तत्र होमो विधीयते ॥६९॥
गत्वा भार्यां विना होमं सीमामुल्लङ्घ्य यो द्विजः । कुरुते तत्र चेन्मोहाद्धुतं तस्य वृथा भवेत्॥७०॥
यथा जातोऽग्निमान्विप्रस्तन्निवासालये सदा । तस्या एवानुचारेण होमस्तत्र विधीयते ॥ ७१ ॥
धर्मानुचारिणी भार्या सवर्णा यत्र तिष्ठति । कुर्यात्तत्राग्निहोत्रादि प्रवदन्ति महर्षयः ॥ ७२ ॥
माता पिता गुरुर्भार्या पुत्रः शिष्यस्तथैव च । अभ्यागतोऽतिथिश्चैव पोष्यवर्ग इति स्मृतः ॥ ७४ ॥
स्पृशेदुच्छिष्टमुच्छिष्टः श्वानं शूद्रमथापि च । उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्यं पिबेच्छुचिः ॥ १६२ ॥
श्वानं शूद्रं तथोच्छिष्टमनुच्छिष्टो न संस्पृशेत् । मोहाद्विप्रः स्पृशेद्यस्तु स्नानं तस्य विधीयते ॥१६३॥
उच्छिष्टस्पर्शने चैव भुञ्जानश्च भवेद्यदि । पात्रस्थं चापि वाऽश्नीयादन्नं पात्रस्थितं च यत् ॥ १६८ ॥
गायत्र्या संस्कृतं चान्नं न त्यजेदभिमन्त्रितम् । गृहीतं चेत्पुनश्चाद्याद्गायत्रीं च शतं जपेत् ॥१६९॥
अन्नं पर्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसञ्चितम् । अस्नेहा अपि गोधूमा यवगोरसविक्रियाः ॥ १७० ॥
ब्राह्मणो नैव भुञ्जीयाद्दुहितुरन्नं कदाचन । अज्ञानाद्यदि भुञ्जीत रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ १७५ ॥
ततः स्वपेद्यथाकामं न कदाचिदुदक्शिराः । एतावन्नैत्यकं कर्म प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १८५ ॥

लघ्वाश्वलायनस्मृति-१२ उपाकर्मप्रकरणम् ।

श्रवणे स्यादुपाकर्म हस्ते वा श्रावणस्य तु । नो चेद्भाद्रपदे वाऽपि कुर्याच्छिष्यैर्गुरुः सह ॥ १ ॥
ग्रहदोषादुपाकर्म प्रथमं न भवेद्यदि । उक्तकालेऽथवाऽऽषाढे कुर्याच्छरदि वाऽपि वा ॥ २ ॥
अकाले नैव तत्कुर्यादुपाकर्म कथंचन । अकृत्वा नोद्वहेत्कन्यां मोहाच्चेत्पतितो भवेत् ॥ ३ ॥

लघ्वाश्वलायनस्मृति-१४ गोदानादित्रयप्रकरणम् ।

कृत्वा तु स्नातकः पश्येत्समावर्तनकं भवेत् । समाग्ने प्रत्यृचं हुत्वा समिधश्च दशस्वयम् ॥ ६ ॥
स्पृष्ट्वा पादौ नमस्कुर्याद्गुरोर्दस्वेति तत्फलम् । न नक्तमिति चानुज्ञा लब्धस्तेन यथोदितम् ॥ ७ ॥
ततः स्विष्टकृतं कृत्वा होमशेषं समापयेत् । लभेदाज्ञां विवाहार्थं गुरुर्निर्मुच्य मेखलाम् ॥ ८ ॥

लघ्वाश्वलायनस्मृति-१५ विवाहप्रकरणम् ।

कुलजां सुमुखीं स्वङ्गीं सुवासां च मनोहराम् । सुनेत्रां सुभगां कन्यां निरीक्ष्य वरयेद्बुधः ॥ २ ॥
स्नातकाय सुशीलाय कुलोत्तमभवाय च । दद्याद्वेदविदे कन्यामुचिताय वराय च ॥ ३ ॥
मधुनाऽऽज्येन वा युक्तं मधुपर्काभिधं दधि । दध्यलाभे पयो ग्राह्यं मध्वलाभे तु वै गुडः ॥ ५ ॥
निदध्यात्तं नवे कांस्ये तस्योपरि पिधाय च । वेष्टयेद्विष्टरेणैव मधुपर्कं तदुच्यते ॥ ६ ॥
यावत्सप्तपदीमध्ये विवाहो नैव सिध्यति । सद्योऽतो होममिच्छन्ति सन्तः सायमुपासनम् ॥ ६० ॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु दैवे पित्र्ये च कर्मणि । प्रारब्धे सूतकं नास्ति प्रवदन्ति महर्षयः ॥ ७२ ॥
प्रारम्भकर्मणश्चैव क्रियाप्रारम्भकस्य च । क्रियावसानपर्यन्तं न तस्याशौचमिष्यते ॥ ७३ ॥
प्रारम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पे व्रतसत्रयोः । नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥ ७४ ॥
ऊढाया दुहितुश्चान्नं नाद्याद्विप्रः कथञ्चन । अज्ञानाद्यदि भुञ्जीत नरकं प्रतिपद्यते ॥ ८० ॥

लघ्वाश्वलायनस्मृति–२० प्रेतकर्मविधिप्रकरणम् ।

भवेत्तदूर्ध्वमेकाहं तत्पश्चात्स्नानतः शुचिः । पित्रादयस्त्रयश्चैवं तथा तत्पूर्वजास्त्रयः ॥ ८२ ॥
सप्तमः स्यात्स्वयं चैव तत्सापिण्ड्यं बुधैः स्मृतम् । सापिण्ड्यं सोदकं चैव सगोत्रं तच्च वै क्रमात् ८३
एकैकं सप्तकं चैकं सापिण्ड्यकमुदाहृतम् ॥ ८४ ॥
दीक्षितस्याऽऽहिताग्नेश्च स्वाध्यायनिरतस्य च । वृतस्याऽऽमन्त्रितस्येह नाशौचं विद्यते क्वचित् ॥९०॥
संप्रक्षालितपात्रस्य श्राद्धे विप्रस्य चैव हि । गृहानुव्रजपर्यन्तं न तस्याशौचमिष्यते ॥ ९१ ॥

लघ्वाश्वलायनस्मृति–२१ लोके निन्द्यप्र० ।

माहिषी सोच्यते भार्या भगेनार्जति या धनम् । तस्यां यो जायते पुत्रो माहिषेयः सुतः स्मृतः ॥४॥
रजस्वला च या कन्या यदि स्यादविवाहिता । वृषलीवार्षलेयः स्याज्जातस्तस्यां स चैव हि ॥ ९ ॥
विधवायाः सुतश्चैव गोलकः कुण्ड इत्यथ । त्रयश्चैव हि निन्द्याः स्युः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ १३ ॥

लघ्वाश्वलायनस्मृति–२२ वर्णधर्मप्र० ।

उदक्यां शूतिकां चैव पतितं शवमन्त्यजम् । श्वकाकरासभान्स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥ १३ ॥
उच्छिष्टस्पर्शनं चेत्स्यादश्नतो याजकस्य च । अन्नं पात्रस्थमश्नीयान्नान्यद्द्यात्कथंचन ॥ १९ ॥
अनधीत्य द्विजो वेदानन्यत्र कुरुते श्रमम् । स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ २३ ॥

लघ्वाश्वलायनस्मृति–२४ श्राद्धोपयोगिप्रक० ।

दर्शाष्टका व्यतीपाता वैधृतिश्च महालयः । युगाश्च मनवः श्राद्धकालाः संक्रान्तयस्तथा ॥ २३ ॥
गजच्छायोपरागश्च षष्ठी या कपिला तथा । अर्धोदयादयश्चैव श्राद्धकालाः स्मृता बुधैः ॥ २४ ॥
संभूते च नवे धान्ये श्रोत्रिये गृहमागते । आचार्याः केचिदिच्छन्ति श्राद्धं तीर्थे च सर्वदा ॥२९॥

(२५) बौधायनस्मृति–१ प्रश्न १ अध्याय।

धर्मेणाधिगतो येषां वेदः सपरिबृंहणः । शिष्टास्तदनुमानज्ञाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ ६ ॥
चातुर्वैद्यो विकल्पी च अङ्गविद्धर्मपाठकः । आश्रमस्थास्त्रयो विप्राः पर्षदेषादशावरा ॥ ९ ॥
पञ्च वा स्युस्त्रयो वा स्युरेको वा स्यादनिन्दितः । प्रतिवक्ता तु धर्मस्य नेतरे तु सहस्रशः ॥ १० ॥
यथा दारुमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः । ब्राह्मणश्चानधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ ११ ॥
धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः । क्रीडार्थमपि यद्ब्रूयुः स धर्मः परमः स्मृतः ॥ १४ ॥
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् । सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥ १७ ॥
प्राग्विनशनात्प्रत्यक्कालकाद्वनाद्दक्षिणेन हिमवन्तमुदक्पारियात्रमेतदार्यावर्तं तस्मिन्य आचारः स प्रमाणम् ॥ २७ ॥ गङ्गायमुनयोरन्तरमित्येके ॥ २८ ॥ अथाप्यत्र भाल्लविनो गाथामुदाहरन्ति ॥ २९ ॥
पश्चात्सिन्धुर्विहरणी सूर्यस्योदयनं पुरः । यावत्कृष्णा विधावन्ति तावद्धि ब्रह्मवर्चसम् ॥ ३० ॥

बौधायनस्मृति–१ प्रश्न–२ अध्याय ।

वसन्तो ग्रीष्मः शरदित्यृतवो वर्णानुपूर्व्येण ॥ १० ॥ गायत्रीत्रिष्टुब्जगतीभिर्यथाक्रमम् ॥ ११ ॥ प्रसाधनोत्सादनस्नापनोच्छिष्टभोजनानीति गुरोः ॥ ३४ ॥ उच्छिष्टवर्जनं तत्पुत्रेऽनूचाने वा ॥ ॥ ३५ ॥ प्रसाधनोत्सादनस्नापनवर्जनं च तत्पत्न्याम् ॥ ३६ ॥ अब्राह्मणादध्ययनमापदि ॥ ४०॥ शुश्रूषाऽनुव्रज्या च यावदध्ययनम् ॥ ४१ ॥ तयोस्तदेव पावनम् ॥ ४२ ॥ ऋत्विक्श्वशुरपितृव्यमातुलानां तु यवीयसां प्रत्युत्थायाभिभाषणम् ॥ ४४ ॥ प्रत्यभिवादमिति कात्यः ॥ ४५ ॥ शिशावाङ्गिरसे दर्शनात् ॥ ४६ ॥
धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषावाऽपि तद्विधा । विद्यया सह मर्त्तव्यं न चैनामूषरे वपेत् ॥ ४८ ॥
अग्निरिव कक्षं दहति ब्रह्मपृष्टमनादृतम् । तस्माद्वै शक्यं न ब्रूयाद्ब्रह्ममानमकुर्वतामिति ॥ ४९ ॥

बौधायनस्मृति–१प्र०–५अध्याय।

अंगुष्ठाग्रं पित्र्यम् ॥ १६ ॥ अंगुल्यग्रं दैवम् ॥ १७ ॥ अंगुलिमूलमार्षम् ॥ १८ ॥ तैजसानामुच्छिष्टानां गोशकृन्मृद्भस्मभिः परिमार्जनमन्यतमेन वा ॥ ३४ ॥ ताम्ररजतसुवर्णानामम्ले = ३५॥

दारवाणां तक्षणम् ॥ ३७ ॥ कुतपानामरिष्टैः ॥ ४१ ॥ और्णानामादित्येन ॥ ४२ ॥ क्षौमाणां गौरसर्षपकल्केन ॥ ४३ ॥ तैजसवदुपलमणीनाम् ॥ ४६ ॥ दारुवदस्थ्नाम् ॥ ४७ ॥ क्षौमवच्छंखशृङ्गशुक्तिदन्तानाम् पयसा वा ॥ ४८ ॥ चक्षुर्घ्राणानुकूल्याद्वा मूत्रपुरीषासृक्शुक्रकुणपस्पृष्टानां पूर्वोक्तानामन्यतमेन त्रिःसप्तकृत्वः परिमार्जनम् ॥ ४९ ॥ अतैजसानामेवंभूतानामुत्सर्गः ॥ ५० ॥
नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्यं यच्च प्रसारितम् । ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति श्रुतिः॥५६॥
वत्सः प्रस्रवणे मेध्यः शकुनिः फलशातने । स्त्रियश्च रतिसंसर्गे श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥ ५७ ॥
आकराः शुचयः सर्वे वर्जयित्वा सुराकरम् । अदूष्याः सततधारा वातोद्धूताश्च रेणवः ॥ ५८ ॥
अमेध्येषु च ये वृक्षा उप्ताः पुष्पफलोपगाः । तेषामपि न दुष्यन्ति पुष्पाणि च फलानि च ॥५९॥
आत्मशय्यासनं वस्त्रं जायापत्यं कमण्डलुः । शुचीन्यात्मन एतानि परेषामशुचीनि तु ॥ ६१ ॥
खलक्षेत्रेषु यद्धान्यं कूपवापीषु यज्जलम् । अभोज्यादपि तद्भोज्यं यच्च गोष्ठगतं पयः ॥ ६३ ॥
त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् । अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥ ६४॥
आपः पवित्रं भूमिगता गोतृप्तिर्यासु जायते । अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः ॥ ६५ ॥
शूद्राणामार्याधिष्ठितानामर्धमासि मासि वा वपनमार्यवदाचमनकल्पः ॥ ८९ ॥
यः समर्घमृणं गृह्य महार्घं संप्रयोजयेत् । स वै वार्धुषिको नाम सर्वधर्मेषु गर्हितः ॥ ९३ ॥
वृद्धिं च भ्रूणहत्यां च तुलयासमतोलयत् । अतिष्ठद्भ्रूणहा कोट्यां वार्धुषिः समकम्पत ॥ ९४ ॥
स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान् । न तैरुच्छिष्टभावः स्यात्तुल्यास्ते भूमिगैः सहेति १०५
आसप्तमासादादन्तजननाद्वोदकोपस्पर्शनम् । पिण्डोदकक्रिया प्रेते नात्रिवर्षे विधीयते ॥ १०९ ॥
लोकसंग्रहणार्थं हि तदमन्त्राः स्त्रियो मताः । स्त्रीणां कृतविवाहानां त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः१११
अपि च प्रपितामहः पितामहः पिता स्वयं सोदर्या भ्रातरः सवर्णायाः पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रस्तत्पुत्रवर्ज्यं तेषां च पुत्रपौत्रमविभक्तदायं सपिण्डानाचक्षते ॥ ११३ ॥ विभक्तदायानपि सकुल्याना चक्षते ॥ ११४ ॥ सपिण्डाभावे सकुल्यः ॥ ११६ ॥ तदभावे पिताऽऽचार्योऽन्तेवास्यृत्विग्वा हरेत् ॥ ११७ ॥ तदभावे राजा तत्स्वं त्रैविद्यवृद्धेभ्यः संप्रयच्छेत् ॥ ११८ ॥
गर्भस्रावे गर्भमाससंमिता रात्रयः स्त्रीणाम् ॥ १३६ ॥

बौधायनस्मृति-१ प्र०-६ अध्याय ।

अग्न्याधाने क्षौमाणि वासांसि तेषामलाभे कार्पासिकान्यौर्णानि वा भवन्ति ॥ ११ ॥ मूत्रपुरीषलोहितरेतःप्रभृत्युपहतानां मृदाऽद्भिरिति प्रक्षालनम् ॥ १२ ॥ असंस्कृतायां भूमौ न्यस्तानां तृणानां प्रक्षालनम् ॥ २२ ॥ परोक्षोपहतानामभ्युक्षणम् ॥ २३ ॥ एवं क्षुद्रसमिधाम् ॥ २४ ॥ महतां काष्ठानामुपघाते प्रक्षाल्यावशोषणम् ॥ २५ ॥ बहूनां तु प्रोक्षणम् ॥ २६ ॥ मृन्मयानां पात्राणामुच्छिष्टसमन्वारब्धानामवकूलनम् ॥ ३४ ॥ उच्छिष्टलेपोपहतानां पुनर्दहनम् ॥ ३५ ॥ मूत्रपुरीषलोहितरेतःप्रभृत्युपहतानामुत्सर्गः ॥ ३६ ॥ मूत्रपुरीषलोहितरेतःप्रभृत्युपहतानां पुनः करणम् ॥ ३९ ॥ गोमूत्रे वा सप्तरात्रं परिशायनम् ॥ ४० ॥ महानद्यां वैवम् ॥ ४१ ॥

बौधायनस्मृति-१ प्रश्न-८ अध्याय ।

तेषां वर्णानुपूर्व्येण चतस्रो भार्या ब्राह्मणस्य ॥ २ ॥ तिस्रो राजन्यस्य ॥ ३ ॥ द्वे वैश्यस्य ॥ ४ ॥ एका शूद्रस्य ॥ ५ ॥ तासु पुत्राः सवर्णानन्तरासु सवर्णाः ॥ ६ ॥ निषादेन निषाद्यामापञ्चमाज्जातोऽपहन्ति शूद्रताम् ॥ १३ ॥ तमुपनयेत्षष्ठं याजयेत् ॥ १४ ॥ सप्तमो विकृतबीजः समबीजः सम इत्यकेषां संज्ञाः क्रमेण निपतन्ति ॥ १५ ॥

बौधायनस्मृति-१प्रश्न-९ अध्याय ।

ब्राह्मणात्क्षत्रियायां ब्राह्मणो वैश्यायामम्बष्ठः शूद्रायां निषादः ॥ ३ ॥ क्षत्रियाद्वैश्यायां क्षत्रियः शूद्रायामुग्रः ॥ ५ ॥ वैश्याच्छूद्रायां रथकारः ॥ ६ ॥ शूद्राद्वैश्यायां मागधः क्षत्रियायां क्षत्ता ब्राह्मण्यां चण्डालः ॥ ७ ॥ वैश्यात्क्षत्रियायामायोगवो ब्राह्मण्यां वैदेहकः ॥८॥ क्षत्रियाद्ब्राह्मण्यां सूतः ॥ ९ ॥ उग्राज्जातः क्षत्रियां श्वपाकः ॥ १२ ॥ वैदेहकादम्बष्ठायां वैणः ॥ १३ ॥ निषादाच्छूद्रायां पुक्कसः ॥ १४ ॥ शूद्रान्निषाद्यां कुक्कुटः ॥ १५ ॥

बौधायनस्मृति–१ प्रश्न-१० अध्याय।

क्षत्रे बलमध्ययनयजनदानशस्त्रकोशभूतरक्षणसंयुक्तं क्षत्रस्य वृद्ध्यै ॥ ३ ॥ अवध्यो वै ब्राह्मणः सर्वापराधेषु ॥ १८ ॥ ब्राह्मणस्य ब्रह्महत्यागुरुतल्पगमनसुवर्णस्तेयसुरापानेषु कुसिन्धभगसृगालसुराध्वजांस्तप्तेनायसा ललाटेऽङ्कयित्वा विषयान्निर्धमनम् ॥ १९ ॥ हंसभासबर्हिणचक्रवाकप्रचलाककाकोलूकमण्डूकडिड्डिकडेरिकाश्वबभ्रुनकुलादीनां वधे शूद्रवत् ॥ २८ ॥

पादो धर्मस्य कर्तारं पादो गच्छति साक्षिणम् । पादः सभासदः सर्वान्पादो राजानमृच्छति ॥३०॥
एतयोरन्तरा यत्तु सुकृतं दुष्कृतं भवेत् । तत्सर्वं राजगामि स्यादनृतं ब्रुवतस्तव ॥ ३३ ॥
त्रीनेव पितॄन्हन्ति त्रीनेव च पितामहान् । सप्तजातानजातांश्च साक्षी साक्ष्यं मृषा वदन् ॥ ३४ ॥
हिरण्यार्थेऽनृते हन्ति त्रीनेव च पितामहान् । पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ॥ ३५ ॥
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते । सर्वं भूम्यनृते हन्ति साक्षी साक्ष्यं मृषा वदन् ॥ ३६ ॥
चत्वारो वर्णाः पुत्रिणः साक्षिणः स्युरन्यत्र श्रोत्रियराजन्यप्रव्रजितमानुष्यहीनेभ्यः ॥ ३७ ॥

बौधायनस्मृति–१ प्रश्न-११ अध्याय।

श्रुतशीले विज्ञाय ब्रह्मचारिणेऽर्थिने दीयते स ब्राह्मः ॥ २ ॥ आच्छाद्यालंकृतया सह धर्मश्चर्यतामिति प्राजापत्यः ॥ ३ ॥ पूर्वां लाजाहुतिं हुत्वा गोमिथुनं कन्यावते दद्यात्स आर्षः ॥४॥ दक्षिणासु नीयमानास्वन्तर्वेद्यृत्विजे स दैवः ॥ ५ ॥ धनेनोपतोष्याऽऽसुरः ॥ ६ ॥ सकामेन सकामया मिथः संयोगो गान्धर्वः ॥ ७ ॥ प्रसह्य हरणाद्राक्षसः ॥ ८ ॥ सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वोपयच्छेदिति पैशाचः ॥ ९ ॥

शुल्केन ये प्रयच्छन्ति स्वसुतां लोभमोहिताः । आत्मविक्रयिणः पापा महाकिल्बिषकारकाः॥२१॥
पतन्ति नरके घोरे घ्नन्ति चाऽऽसप्तमं कुलम् । गमनागमनं चैव सर्वं शुल्को विधीयते ॥ २२ ॥
पौर्णमास्याष्टकामावास्याग्न्युत्पातभूमिकम्पश्मशानदेशपतिश्रोत्रियैकतीर्थ्यप्रयाणेष्वहोरात्रमनध्यायः ॥ २३ ॥ वाते पूतिगन्धे नीहारे च नृत्तगीतवादित्ररुदितसामशब्देषु तावन्तं कालम् ॥ २४ ॥ स्तनयित्नुवर्षविद्युत्सन्निपाते त्र्यहमनध्यायोऽन्यत्र वर्षाकालात् ॥ २५ ॥ वर्षाकालेऽपि वर्षवर्जमहोरात्रयोश्च तत्कालम् ॥ २६ ॥ पित्र्यप्रतिग्रहभोजनयोश्च तद्दिवसशेषम् ॥ २७ ॥ भोजनेष्वाजीर्णान्तम् ॥ २८ ॥

हन्त्यष्टमी उपाध्यायं हन्ति शिष्यं चतुर्दशी । हन्ति पञ्चदशी विद्यां तस्मात्पर्वणि वर्जयेत् ॥४३॥

बौधायनस्मृति–२ प्रश्न–१ अध्याय।

भ्रूणहा द्वादशसमाः ॥ २ ॥ कपाली खट्वाङ्गी गर्दभचर्मवासा अरण्यनिकेतनः श्मशाने ध्वजं शवशिरः कृत्वा कुटीं कारयेत्तामावसेत्सप्तागाराणि भैक्षं चरन्स्वकर्माऽऽचक्षाणस्तेन प्राणान्धारयेदलब्धोपवासः ॥ ३ ॥ अश्वमेधेन गोसवेनाग्निष्टुता वा यजेत अश्वमेधावभृथेवाऽऽत्मानं प्लावयेत् ॥ ४ ॥

अमत्या ब्राह्मणं हत्वा दुष्टो भवति धर्मतः । ऋषयो निष्कृतिं तस्य वदन्त्यमतिपूर्वके ॥ ६ ॥
मतिपूर्वं घ्नतस्तस्य निष्कृतिर्नोपलभ्यते । अपगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ॥ ७ ॥
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव लोहितस्य प्रवर्तने । तस्मान्नैवापगुरेत्त च कुर्वीत शोणितम् ॥ ८ ॥
नवसमा राजन्यस्य ॥ ९ ॥ तिस्रो वैश्यस्य ॥ १० ॥ संवत्सरं शूद्रस्य ॥ ११ ॥ स्त्रियाश्च ॥ १२॥ ब्राह्मणवदात्रेय्याः ॥ १३ ॥ गुरुतल्पगस्तप्ते लोहशयने शयीत ॥ १४ ॥ सूर्मिं वा ज्वलन्तीं श्लिष्येत् ॥ १५ ॥ लिङ्गं वा सवृषणं परिवास्याञ्जलावाधाय दक्षिणाप्रतीच्योर्दिशमन्तरेण गच्छेदानिपतनात् ॥१६॥ स्तेनः प्रकीर्यकेशान्सैधकं मुसलमादाय स्कन्धेन राजानं गच्छेदनेन मां जहीति तेनैनं हन्यात् ॥ १७ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ १८ ॥

स्कन्धेनाऽऽदाय मुसलं स्तेनो राजानमन्वियात् । अनेन शाधि मां राजन्क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥ १९॥
शासने वा विसर्गे वा स्तेनो मुच्येत किल्बिषात् । अशासनात्तु तद्राजा स्तेनादाप्नोति किल्बिषम् २०
सुरां पीत्वोष्णया कायं दहेत् ॥ २१ ॥ अमत्या पाने कृच्छ्राब्दपादं चरेत्पुनरुपनयनं च ॥ २२ ॥
अमत्या वारुणीं पीत्वा प्राश्य मूत्रपुरीषयोः । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः पुनः संस्कारमर्हति ॥ २५॥

सुराधाने तु यो भाण्डे अपः पर्युषिताः पिबेत् । शङ्खपुष्पीविपक्केन षडहं क्षीरेण वर्तयेत् ॥ २६॥ गुरुप्रयुक्तश्चेन्म्रियेत गुरुस्त्रीन्कृच्छ्रांश्चरेत् ॥ २७ ॥ ब्रह्मचारिणः शवकर्मणाव्रतावृत्तिरन्यत्र माता-पित्रोराचार्याच्च ॥ २९ ॥ सगोत्रां चेदमत्योपयच्छेद्भ्रातृवदेनां बिभृयात् ॥ ४६ ॥ प्रजाता चे-त्कृच्छ्राब्दपादं चरित्वा यन्म आत्मनो मिन्दाऽभूत्पुनरग्निश्चक्षुरदादिति एताभ्यो जुहुयात् ॥ ४७॥ परिवित्तः परिवेत्ता या चैनं परिविन्दति । सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥ ४८ ॥ परिवित्तिः परिवेत्ता दाता यश्चापि याजकः । कृच्छ्रद्वादशरात्रेण स्त्री त्रिरात्रेण शुध्यति ॥ ४९॥ भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः । श्वविष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह मज्जतीति ॥ ७६ ॥ पितॄन्वा एष विक्रीणीते यस्तिलान्विक्रीणीते ॥ ७७ ॥ प्राणान्वा एष विक्रीणीते यस्तण्डुलान्वि-क्रीणीते ॥७८॥ प्रातः सायमयाचितं पराक इति त्रयश्चतूरात्राः स एष स्त्रीबालवृद्धानां कृच्छ्रः ॥ ९२ ॥ अब्भक्षस्तृतीयः स कृच्छ्रातिकृच्छ्रः ॥ ९४ ॥

बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-२ अध्याय ।

दशानां वैकमुद्धरेज्ज्येष्ठः ॥ ६ ॥ सममितरे विभजेरन् ॥ ७ ॥ पितुरनुमत्या दायविभागः सति पितरि ॥ ८ ॥ चतुर्णां वर्णानां गोश्वाजावयो ज्येष्ठांशः ॥ ९ ॥ नानावर्णस्त्रीपुत्रसमवाये दायं दशांशान्कृत्वा चतुरस्त्रीन्द्वावेकमिति यथाक्रमं विभजेरन् ॥ १० ॥ सवर्णा पुत्रानन्तरा पुत्रयो-रनन्तरा पुत्रश्चेद्गुणवान्स ज्येष्ठांशं हरेत् ॥ १२ ॥ गुणवान् हि शेषाणां भर्ता भवति ॥ १३ ॥ सवर्णायां संस्कृतायां स्वयमुत्पादितमौरसं पुत्रं विद्यात् ॥ १४ ॥ अभ्युपगम्य दुहितरि जातं पुत्रिकापुत्रमन्यं दौहित्रम् ॥ १७ ॥ मृतस्य प्रसूतो यः क्लीवव्याधितयोर्वाऽन्येनानुमते स्वक्षेत्रे स क्षेत्रजः ॥ २० ॥ स एष द्विपिता द्विगोत्रश्च द्वयोरपि स्वधारिक्थभाग्भवति ॥ २१ ॥ मातापितृ-भ्यां दत्तोऽन्यतरेण वा योऽपत्यार्थे परिगृह्यते स दत्तः ॥ २४ ॥ सदृशं यं सकामं स्वयं कुर्यात्स कृत्रिमः ॥ २५ ॥ गृहे गूढोत्पन्नोऽन्तेज्ञातो गूढजः ॥ २६ ॥ मातापितृभ्यामुत्सृष्टोऽन्यतरेण वा योऽपत्यार्थे परिगृह्यते सोऽपविद्धः ॥ २७ ॥ असंस्कृतामनतिसृष्टां यामुपयच्छेत्तस्यां यो जातः स कानीनः ॥ २८ ॥ या गर्भिणी संस्क्रियते विज्ञाता वाऽविज्ञाता वा तस्यां यो जातः स सहोढः ॥ २९ ॥ मातापित्रोर्हस्तात्क्रीतोऽन्यतरेण वा योऽपत्यार्थे परिगृह्यते स क्रीतः ॥ ३० ॥ क्लीबं त्यक्त्वा पतितं वा याऽन्यं पतिं विन्देत्तस्यां पुनर्भ्वां यो जातः स पौनर्भवः ॥ ३१ ॥ माता-पितृविहीनो यः स्वयमात्मानं दद्यात्स स्वयंदत्तः ॥ ३२ ॥ द्विजातिप्रवराच्छूद्रायां जातो निषादः ॥ ३३ ॥ कामात्पारशव इति पुत्राः ॥ ३४ ॥

औरसं पुत्रिकापुत्रं क्षेत्रजं दत्तकृत्रिमौ । गूढजं चापविद्धं च रिक्थभाजः प्रचक्षते ॥ ३६ ॥
कानीनं च सहोढं च क्रीतं पौनर्भवं तथा । स्वयंदत्तं निषादं च गोत्रभाजः प्रचक्षते ॥ ३७ ॥
पतितामपि तु मातरं बिभृयादनभिभाषमाणः ॥ ४८ ॥

सोमः शौचं ददौ तासां गन्धर्वः शिक्षितां गिरम् । अग्निश्च सर्वभक्षत्वं तस्मान्निष्कल्मषाः स्त्रियः६४
अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत् । मृतप्रजां पञ्चदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम् ॥ ६५ ॥
मातुलपितृष्वसा भगिनी भागिनेयी स्नुषा मातुलानी सखी वधूरित्यगम्याः ॥ ७१॥ अगम्यानां गमने कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति प्रायश्चित्तिः ॥ ७२ ॥

चण्डालीं ब्राह्मणो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च । अज्ञानात्पतितो विप्रो ज्ञानात्तु समतां व्रजेत् ७५
पितुर्गुरोर्नरेन्द्रस्य भार्यां गत्वा प्रमादतः । गुरुतल्पी भवेत्तेन पूर्वोक्तस्तस्य निश्चय इति ॥ ७६ ॥
अध्यापनयाजनप्रतिग्रहैरशक्तः क्षत्रधर्मेण जीवेत्प्रत्यनन्तरत्वात् ॥ ७७ ॥
गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा वर्णानां वाऽपि सङ्करे । गृह्णीयातां विप्रविशौ शस्त्रं धर्मव्यपेक्षया ॥ ८० ॥

बौधायनस्मृति-२ प्रश्न-३ अध्याय ।

स्रवन्तीष्वनिरुद्धासु त्रयो वर्णा द्विजातयः । प्रातरुत्थाय कुर्वीरन्देवर्षिपितृतर्पणम् ॥ ६ ॥
निरुद्धासु न कुर्वीरन्नंशभाक्तत्र सेतुकृत् । तस्मात्परकृतान्सेतून्कूपांश्च परिवर्जयेत् ॥ ७ ॥
उद्धृत्य वाऽपि त्रीन्पिण्डान्कुर्यादापत्सु नो सदा । निरुद्धासु तु मृत्पिण्डान्कूपात्त्रीनब्घटां स्तथेति ९॥
अथ स्नातकव्रतानि ॥ १३ ॥ सायं प्रातर्यदशनीयं स्यात्तेनान्नेन वैश्वदेवं बलिमुपहृत्य ब्राह्मण-

क्षत्रियविट्शूद्रानभ्यागतानन्यथाशक्ति पूजयेत् ॥ १४ ॥ यदि बहूनां न शक्नुयादेकस्मै गुणवते दद्यात् ॥ १५ ॥ यो वा प्रथममुपगतः स्यात् ॥ १६ ॥ शूद्रश्चेदागतस्तं कर्मणि नियुञ्ज्यात् ॥ १७ ॥ श्रोत्रियाय वाऽग्रं दद्यात् ॥१८॥ ये नित्या भाक्तिकाः स्युस्तेषामनुपरोधेन संविभोगो विहितः ॥ १९ ॥ सुब्राह्मणश्रोत्रियवेदपारगेभ्यो गुर्वर्थनिवेशौषधार्थवृत्तिक्षीणयक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसंयोगवैश्वजितेषु द्रव्यसंविभागो यथाशक्ति कार्यो बहिर्वेदिभिक्षमाणेषु कृतान्नमितरेषु ॥२४॥ पालाशमासनं पादुके दन्तधावनमिति वर्जयेत् ॥ ३० ॥ वैणवं दण्डं धारयेत् ॥ ३३ ॥ रुक्मकुण्डले च ॥३४॥ पदा पादस्य प्रक्षालनमधिष्ठानं च वर्जयेत् ॥ ३५॥ न बहिर्मालां धारयेत् ॥ ३६॥ सूर्यमुदयास्तमये न निरीक्षेत ॥ ३७ ॥

अन्ने श्रितानि भूतानि अन्नं प्राणमिति श्रुतिः । तस्मादन्नं प्रदातव्यमन्नं हि परमं हविः ॥ ६८ ॥ हुतेन शाम्यते पापं हुतमन्नेन शाम्यति । अन्नं दक्षिणया शान्तिमुपयातीति नः श्रुतिः ॥ ६९ ॥

बौधायनस्मृति–२ प्रश्न–६ अध्याय ।

अरण्यं गत्वा शिखामुण्डः कौपीनाच्छादनः ॥ २२ ॥ काषायवासाः सन्नमुसले व्यङ्गारे निवृत्तशरावसंपाते भिक्षेत ॥ २४ ॥

बौधायनस्मृति–२ प्रश्न–७ अध्याय ।

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्यवासिनः । द्वात्रिंशतं गृहस्थस्यापरिमितं ब्रह्मचारिणः ॥ ३१ ॥
आहिताग्निरनड्वांश्च ब्रह्मचारी च ते त्रयः । अश्नन्त एव सिध्यन्ति नैषां सिद्धिरनश्नताम्ििति ॥३२॥
गृहस्थो ब्रह्मचारी वा योऽनश्नंस्तु तपश्चरेत् । प्राणाग्निहोत्रलोपेन अवकीर्णी भवेत्तु सः ॥ ३३ ॥
अन्यत्र प्रायश्चित्तात्प्रायश्चित्ते तदेव विधानम् ॥ ३४ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ३५ ॥
अन्तरा प्रातराशं च सायमाशं तथैव च । सदोपवासी भवति यो न भुङ्क्ते कदाचन ॥ ३६ ॥
प्राणाग्निहोत्रमन्त्रांस्तु निरुद्धे भोजने जपेत् । त्रेताग्निहोत्रमन्त्रांस्तु द्रव्यालाभे यथा जपेत् ॥ ३७ ॥

बौधायनस्मृति–२ प्रश्न–८ अध्याय ।

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा । भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्येत विस्तरे ॥ २९ ॥
सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसंपदम् । पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥ ३० ॥

बौधायनस्मृति–२ प्रश्न–९ अध्याय ।

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणाऽऽनन्त्यमश्नुते । अथ पुत्रस्य पौत्रेण नाकमेवाधिरोहतीति ॥ ७ ॥

बौधायनस्मृति–२ प्रश्न–१० अध्याय ।

अथातः संन्यासविधिं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥ सोऽत एव ब्रह्मचर्यवान् प्रव्रजतीत्येकेषाम् ॥ २ ॥
अथ शालीनयायावराणामनपत्यानाम् ॥ ३ ॥ विधुरो वा प्रजाः स्वधर्मे प्रतिष्ठाप्य वा ॥ ४ ॥
सप्तत्या ऊर्ध्वं संन्याससमुपदिशन्ति ॥ ५ ॥ वानप्रस्थस्य वा कर्म विरामे ॥ ६ ॥

अथ भैक्षचर्या ॥ ५७ ॥ ब्राह्मणानां शालीनयायावराणामप्रवृत्ते वैश्वदेवे भिक्षां लिप्सेत भवत्पूर्वां प्रचोदयेत् ॥ ५८ ॥ गोदोहमात्रमाकांक्षेत ॥ ५९ ॥ अथ भैक्षचर्यादुपावृत्य शुचौ देशे न्यस्य हस्ते पादान्प्रक्षाल्याऽऽदित्यस्याग्रं निवेदयेत् ॥ ६० ॥ उद्धुत्यं चित्रमिति ब्रह्मणे निवेदयते ब्रह्मजज्ञानमिति विज्ञायते ॥ ६१ ॥ आधानप्रभृतियजमान एवाग्नयो भवन्ति तस्य प्राणो गार्हपत्योऽपानोऽन्वाहार्यपचनो व्यान आहवनीय उदानसमानौ सभ्यावसथ्यौ पञ्च वा एतेग्नय आत्मस्था आत्मन्येव जुहोति स एष आत्मयज्ञ आत्मनिष्ठ आत्मप्रतिष्ठ आत्मानं क्षेमं नयतीति विज्ञायते ॥६२॥ भूतेभ्यो दयापूर्वं संविभज्य शेषमद्भिः संस्पृश्यौषधवत्प्राश्नीयात् ॥ ६३ ॥ प्राश्याप आचम्य ज्योतिष्मत्याऽऽदित्यमुपतिष्ठते–उद्वयं तमसस्परीति ॥ ३४ ॥ वाङ्म आसन्नसोः प्राण इति जपित्वा ॥ ६५ ॥

अयाचितमसंक्लृप्तमुपपन्नं यदृच्छया । आहारमात्रं भुञ्जीत केवलं प्राणयात्रिकम् ॥ ६६ ॥
अथाप्युदाहरन्ति ॥ ६७ ॥
अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्यवासिनः । द्वात्रिंशतं गृहस्थस्यापरिमितं ब्रह्मचारिणः ॥ ६८ ॥
भैक्षं वा सर्ववर्णेभ्य एकान्नं वा द्विजातिषु । अपि वा सर्ववर्णेभ्यो न चैकान्नं द्विजातिष्विति ॥६९॥

बौधायनस्मृति-३ प्रश्न-५ अध्याय ।

अथातः पवित्रातिपवित्रस्याघमर्षणस्य कल्पं व्याख्यास्यामः ॥ १॥ तीर्थं गत्वा स्नातः शुचिवासा उदकान्ते स्थण्डिलमुद्धृत्य सकृत्क्लिन्नेन वाससा सकृत्पूर्णेन पाणिनाऽऽदित्याभिमुखोऽघमर्षणं स्वाध्यायमधीयीत ॥ २ ॥ प्रातः शतं मध्याह्ने शतमपराह्णे शतमपरिमितं वा ॥ ३ ॥ उदितेषु नक्षत्रेषु प्रसृतयावकं प्राश्नीयात् ॥ ४ ॥ ज्ञानकृतेभ्योऽज्ञानकृतेभ्यश्चोपपातकेभ्यः सप्तरात्रात्प्रमुच्यते ॥ ५ ॥ द्वादशरात्राद्भ्रूणहननं गुरुतल्पगमनं सुवर्णस्तैन्यं सुरापानमिति च वर्जयित्वैकविंशतिरात्रात्तान्यपि तरति तान्यपि जयति ॥ ६ ॥

बौधायनस्मृति-३ प्रश्न-६ अध्याय ।

अपि वा गोनिष्क्रान्तानां यवानामेकविंशतिरात्रं पीत्वा गणान्पश्यति ॥ १६९ ॥
गणाधिपतिं पश्यति विद्यां पश्यति विद्याधिपतिं पश्यतीत्याह भगवान्बौधायनः ॥ २१ ॥

बौधायनस्मृति-३ प्रश्न ८ अध्याय ।

प्रथमायामपरपक्षस्य चतुर्दशग्रासान् ॥ २६ ॥ एवमेकापचयेनाऽमावास्यायाः ॥ २७ ॥ अमावास्यायां ग्रासो न विद्यते ॥ २८ ॥ प्रथमायां पूर्वपक्षस्यैको द्वौ द्वितीयस्याम् ॥ २९ ॥ एवमेकोपचये वाऽऽपौर्णमास्याः ॥ ३० ॥ पौर्णमास्यां स्थालीपाकस्य जुहोत्यग्नये या तिथिः स्यान्नक्षत्रेभ्यश्च स दैवतेभ्यः ॥ ३१ ॥ पुरस्ताच्छ्रोणाया अभिजितः स दैवतस्य हुत्वा गां ब्राह्मणेभ्यो दद्यात् ॥ ३२ ॥ तदेतच्चान्द्रायणं पिपीलिकामध्यं विपरीतं यवमध्यम् ॥ ३३ ॥

बौधायनस्मृति-४ प्रश्न-१ अध्याय ।

त्रीणि वर्षाण्यृतुमती कांक्षेत पितृशासनम् । ततश्चतुर्थे वर्षे तु विन्देत सदृशं पतिम् ॥
अविद्यमाने सदृशे गुणहीनमपि श्रयेत् ॥ ॥ १५ ॥
बलाच्चेत्प्रहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता । अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा ॥ १६ ॥
निसृष्टायां हुते वाऽपि यस्यै भर्ता म्रियेत सः । स चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागता सती ॥ १७॥
पौनर्भवेन विधिना पुनः संस्कारमर्हति ॥ १८॥
सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह । त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ ३० ॥

बौधायनस्मृति-४ प्रश्न-५अध्याय ।

प्राजापत्यो भवेत्कृच्छ्रो दिवा रात्रावयाचितम् । क्रमशो वायुभक्षश्च द्वादशाहं त्र्यहं त्र्यहम् ॥ ६ ॥
एकैकं ग्रासमश्नीयात्पूर्वोक्तेन त्र्यहं त्र्यहम् । वायुभक्षस्त्र्यहं चान्यदतिकृच्छ्रः स उच्यते ॥ ८ ॥
त्र्यहं त्र्यहं पिबेदुष्णं पयः सर्पिः कुशोदकम् । वायुभक्षस्त्र्यहं चान्यत्तप्तकृच्छ्रः स उच्यते ॥ १० ॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रः सान्तपनः स्मृतः ॥ ११॥
यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् । पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापप्रणाशनः ॥ १६ ॥
गोमूत्रादिभिरभ्यस्तमेकैकं तन्त्रिसप्तकम् । महासान्तपनं कृच्छ्रं वदन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ २१ ॥
चतुरः प्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रः समाहितः । चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं चरेत् ॥ १९ ॥
अष्टावष्टौ मासमेकं पिण्डान्मध्यंदिने स्थिते । नियतात्मा हविष्यस्य व्रतं चान्द्रायणं चरेत् ॥२० ॥
यथाकथंचित्पिण्डानां द्विजस्तिस्रस्त्वशीतयः । मासेनाश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् ॥२१॥
कणपिण्याकतक्राणि यवाचामोऽनिलाशनः । एकत्रिपञ्चसप्तेति पापघ्नोऽयं तुलापुमान् ॥ २३ ॥

(२६,) नारदस्मृति-१ विवादपद १ अध्याय ।

स चतुष्पाच्चतुःस्थानश्चतुःसाधन एव च । चतुर्हितश्चतुर्व्यापी चतुष्कारी च कीर्त्यते ॥ ९ ॥
अष्टांगोष्टादशपदः शतशाखस्तथैव च । त्रियोनिर्द्व्यभियोगश्च द्विद्वारो द्विगतिस्तथा ॥ १० ॥
धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम् । चतुष्पाद्व्यवहारोयमुत्तरः पूर्वबाधकः ॥ ११ ॥
तत्र सभ्ये स्थितो धर्मो व्यवहारस्तु साक्षिषु । चरित्रं पुस्तकरणे राजाज्ञायां तु शासनम् ॥ १२ ॥
सामाद्युपायसाध्यत्वाच्चतुःसाधन उच्यते । चतुर्णामाश्रमाणां च रक्षणात्स चतुर्हितः ॥ १३ ॥
कर्तॄनथो साक्षिणश्च सभ्यान् राजानमेव च । व्याप्नोति पादशो यस्माच्चतुर्व्यापी ततः स्मृतः॥१४॥

धर्मस्यार्थस्य यशसो लोकप्रीतेस्तथैव च । चतुर्णां करणादेषां चतुष्कारी प्रकीर्त्यते ॥ १५ ॥
राजसपुरुषः सभ्याः शास्त्रं गणकलेखकौ । हिरण्यमग्निरुदकमष्टाङ्गः स उदाहृतः ॥ १६ ॥
ऋणादानं ह्युपनिधिः संभूयोत्थानमेव च । दत्तस्य पुनरादानमशुश्रूषाभ्युपेत्य च ॥ १७ ॥
वेतनस्यानपाकर्म तथैवास्वामिविक्रयः । विक्रीयासंप्रदानं च क्रीत्वानुशय एव च ॥ १८ ॥
समयस्यानपाकर्म विवादः क्षेत्रजस्तथा । स्त्रीपुंसयोश्च सम्बन्धो दायभागोऽथ साहसम् ॥ १९ ॥
वाक्पारुष्यं तथैवोक्तं दण्डपारुष्यमेव च । द्यूतं प्रकीर्णकं चैवेत्यष्टादशपदः स्मृतः ॥ २० ॥
तेषामेव प्रभेदोऽन्यः शतमष्टोत्तरं स्मृतम् । क्रियाभेदान्मनुष्याणां शतशाखो निगद्यते ॥ २१ ॥
कामात्क्रोधाच्च लोभाच्च त्रिभ्यो यः संप्रवर्त्तते । त्रियोनिः कीर्त्यते तेन त्रयमेतद्विवादकृत् ॥ २२ ॥
ह्यभियोगस्तु विज्ञेयः शंका तत्त्वाभिदर्शनात् । शंका सदा असत्सङ्गात्तत्वं होढाभिदर्शनात् ॥ २३ ॥
पक्षद्वयाभिसम्बन्धाद्द्विद्वारः समुदाहृतः । पूर्ववादस्तयोः पक्षः प्रतिपक्षस्तदुत्तरम् ॥ २४ ॥
भूतच्छलानुसारित्वाद्द्विगतिः समुदाहृतः । भूतं तत्त्वार्थसंयुक्तं प्रमादाभिहितं छलम् ॥ २६ ॥
धर्मशास्त्रार्थशास्त्राभ्यामविरोधेन मार्गतः । समीक्षमाणो निपुणं व्यवहारगतिं नयेत् ॥ ३४ ॥
यत्र विप्रतिपत्तिः स्याद्धर्मशास्त्रार्थशास्त्रयोः । अर्थशास्त्रोक्तमुत्सृज्य धर्मशास्त्रोक्तमाचरेत् ॥ ३९ ॥
वक्तव्येऽर्थे ह्यतिष्ठन्तमुत्क्रामन्तं च तद्वचः । आसेधयेद्विवादार्थी यावदाह्वानदर्शनम् ॥ ४५ ॥
स्थानासेधः कालकृतः प्रवासात्कर्मणस्तथा । चतुर्विधः स्यादासेधो नासिद्धस्तं विलंघयेत् ॥ ४६ ॥

नारदस्मृति–१ विवादपद–२ अध्याय ।

व्यवहारेषु सर्वेषु नियोक्तव्या बहुश्रुताः । गुणवत्यपि नैकस्मिन्विश्वसेद्धि विचक्षणः ॥ ३ ॥
दश वा वेदशास्त्रज्ञास्त्रयो वा वेदपारगाः । यद्ब्रूयुः कार्यमुत्पन्नं स धर्माधर्मसाधनः ॥ ४ ॥
तत्प्रतिष्ठः स्मृतो धर्मो धर्ममूलश्च पार्थिवः । सह सद्भिरतो राजा व्यवहारान्विशोधयेत् ॥ ९ ॥
धर्मो विद्धो ह्यधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते । न चेद्विशल्यः क्रियते विद्धास्तत्र सभासदः ॥ १६ ॥
सभायां न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समंजसम् । अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्विषी ॥ १७ ॥
पादोऽधर्मस्य कर्त्तारं पादः साक्षिणमृच्छति । पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति ॥१९॥

नारदस्मृति–१ विवादपद–३ अध्याय ।

ऋणं देयमदेयं च येन यत्र यथा च यत् । दानग्रहणधर्माश्च ऋणादानमिति स्मृतम् ॥ १ ॥
वैशेषिकं धनं ज्ञेयं वैश्यस्यापि त्रिलक्षणम् ॥ ५६ ॥
कृषिगोरक्षवाणिज्यैः शूद्रस्यैभ्यस्त्वनुग्रहात् ॥ ५७ ॥
विपर्ययादधर्म्यं स्यान्न चेदापद्गरीयसी । आपत्स्वनन्तरा वृत्तिर्ब्राह्मणस्य विधीयते ॥ ५८ ॥
वैश्यवृत्तिस्ततश्चोक्ता न जघन्या कथंचन । न कथंचन कुर्वीत ब्राह्मणः कर्म वार्षलम् ॥ ५९ ॥
वृषलः कर्म वा ब्राह्मं पतनीये हि ते तयोः । उत्कृष्टं वापकृष्टं वा तयोः कर्म न विद्यते ॥ ६० ॥
मध्यमे कर्मणी हित्वा सर्वधारणे हिते । आपदं ब्राह्मणस्तीर्त्वा क्षत्रवृत्त्यर्जितैर्धनैः ॥ ६१ ॥
उत्सृजेत्क्षत्रवृत्तिं तां कृत्वा पावनमात्मनः । तस्यामेव तु यो मोहाद्ब्राह्मणो रमते सदा ॥ ६२ ॥
कांडपृष्ठश्च्युतो मार्गादपांक्तेयः प्रकीर्तितः । वैश्यवृत्त्या त्वविक्रेयं ब्राह्मणस्य पयो दधि ॥ ६३ ॥

नारदस्मृति–१ विवादपद–४ अध्याय ।

लिखितं साक्षिणो भुक्तिः प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम् । धनस्वीकरणं येन धनी धनमवाप्नुयात् ॥ २ ॥
यत्किंचिद्दशवर्षाणि संनिधौ प्रेक्षते धनी । भुज्यमानं परैस्तूष्णीं न स तल्लब्धुमर्हति ॥ ७ ॥
अजडश्चेदपोगण्डो विषये चास्य भुज्यते । भग्नं तद्व्यवहारेण भोक्ता तद्धनमर्हति ॥ ९ ॥
आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः । राजस्वं श्रोत्रियद्रव्यं नोपभोगेन जीर्यते ॥ १० ॥
प्रत्यक्षपरिभोगाच्च स्वामिनो द्विदशाः समाः । आध्यादीनपि जीर्यंते स्त्रीनरेन्द्रधनादृते ॥ ११ ॥
क्रियार्थादिषु सर्वेषु बलवत्युत्तरोत्तरा । प्रतिग्रहादिक्रीतेषु पूर्वा पूर्वा बलीयसी ॥ २७ ॥
कालिका कायिका चैव कारिता च तथा परा । चक्रवृद्धिश्च शास्त्रेषु तस्य वृद्धिश्चतुर्विधा ॥ २९ ॥
कायाविरोधिनी शश्वत्पणपादादिकायिका । प्रतिमासं स्रवन्ती या वृद्धिः सा कालिका स्मृता ३०॥
वृद्धिः सा कारिता नामाऽधमर्णेन स्वयं कृता । भिन्देदर्थपरीमाणं कालेनेहर्णिकस्य यत् ॥ ३१ ॥

वृद्धैरपि पुनर्वृद्धिश्चक्रवृद्धिरुदाहृता । ऋणानां सार्वभौमोयं विधिवृद्धिकरः स्मृतः ॥ ३२ ॥
देशाचारविधिस्त्वन्यो यत्रर्णमवतिष्ठते । हिरण्यवस्त्रधान्यानां वृद्धिर्द्वित्रिचतुर्गुणा ॥ ३३ ॥
रसस्याष्टगुणा वृद्धिः स्त्रीपशूनां च सन्ततिः । सूत्रकार्पासकिण्वानां त्रपुणः सीसकस्य च ॥ ३४ ॥
आयुधानां च सर्वेषां चर्मणस्ताम्रलोहयोः । अन्येषां चैव सर्वेषामिष्टकानां तथैव च ॥ ३५ ॥
अक्षय्या वृद्धिरेतेषां मनुराह प्रजापतिः । तैलानां चैव सर्वेषां मद्यानां मधुसर्पिषाम् ॥ ३६ ॥
वृद्धिरष्टगुणा ज्ञेया गुडस्य लवणस्य च । न वृद्धिः प्रीतिदत्तानां स्यादनाकारिता क्वचित् ॥ ३७ ॥
अनाकारितमप्यूर्ध्वं वत्सरार्द्धाद्विवर्द्धते । एष वृद्धिविधिः प्रोक्तः प्रीतिदत्तस्य धर्मतः ॥ ३८ ॥
वृद्धिस्तु योक्ता धान्यानां वार्धुषं तदुदाहृतम् । आपदं निस्तरेद्वैश्यः कामं वार्धुषि कर्मणा ॥ ३९ ॥
आपत्स्वपि हि कष्टासु ब्राह्मणः स्यान्न वार्धुषी । ब्राह्मणस्य तु यद्देयं सान्वयस्य न चास्ति सः॥४०॥
धनिकस्यैव वर्धेत तदृणं यत्र लेखितम् । विश्रम्भहेतू द्वावत्र प्रतिभूराधिरेव च ॥ ४५ ॥
लिखितं साक्षिणश्चेति प्रमाणं व्यक्तिकारके । उपस्थानाय दानाय प्रत्ययाय तथैव च ॥ ४६ ॥
त्रिविधः प्रतिभूर्दृष्टस्त्रिष्वेवार्थेषु सूरिभिः । निःक्षेपः प्रातिभाव्यं च ऋणशेषश्च यो भवेत् ॥ ४७ ॥
अर्थे विशेषिते ह्येषु धनिनश्छन्दतः क्रिया । यमर्थं प्रतिभूर्दद्याद्धनिकेनोपपीडितः ॥ ५१ ॥
ऋणिकस्तत्प्रतिभुवे द्विगुणं प्रतिदापयेत् । अधिक्रियत इत्याधिः स विज्ञेयो द्विलक्षणः ॥ ५२ ॥
कृतकालोपनेयश्च यावद्देयोद्यतस्तथा । स पुनर्द्विविधः प्रोक्तो गोप्यो भोग्यस्तथैव च ॥ ५३ ॥
उपचारस्तथैवास्य लाभहानिर्विपर्यये । प्रमादाद्धनिनस्तद्वदाधौ विकृतिमागते ॥ ५४ ॥
विनष्टे मूलनाशः स्याद्दैवराजभयादृते । रक्ष्यमाणोपि यत्राधिः कालेनेयादसारताम् ॥ ५५ ॥
आधिरन्योथवा कार्यो देयं वा धनिने धनम् । बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्यच्चावलेखितम् ॥ ५६ ॥
तत्प्रमाणं स्मृतं लेख्यमविलुप्तक्रमाक्षरम् । मत्ताभियुक्तस्त्रीबालबलात्कारकृत च यत् ॥ ६२ ॥
तदप्रमाणं लिखितं भीतोपाधिकृतं तथा । मृताः स्युः साक्षिणो यत्र धनिकर्णिकलेखकाः ॥ ६३ ॥
प्रमाणमेव लिखितं मृता यद्यपि साक्षिणः । आधिस्तु द्विविधः प्रोक्तो जंगमः स्थावरस्तथा ॥६५॥
सिद्धिरत्रोभयस्यास्य भोगो यद्यस्ति नान्यथा । दर्शितं प्रतिकालं यच्छ्रावितं स्मारितं तथा ॥ ६६ ॥
न लेख्यं सिद्धिमाप्नोति जीवत्स्वपि हि साक्षिषु । लेखे देशान्तरन्यस्ते दग्धे दुर्लिखिते हृते ॥ ६८ ॥
सतस्तत्कालकरणमसतो दृष्टिदर्शनम् । यस्मिन्स्यात्संशयो लेख्ये भूताभूतकृते क्वचित् ॥ ६९ ॥
तत्स्वहस्तक्रियाचिह्नयुक्तिप्राप्तिभिरुद्धरेत् । लेख्यं यच्चान्यनामाङ्कं हेत्वन्तरकृतं भवेत् ॥ ७० ॥

नारदस्मृति-१ विवादपद-५ अध्याय ।

एकादशविधः साक्षी शास्त्रे दृष्टो मनीषिभिः । कृतः पञ्चविधस्तेषां षड्विधोऽकृत उच्यते ॥ ३ ॥
लिखितः स्मारितश्चैव यदृच्छाभिज्ञ एव च । गूढश्चोत्तरसाक्षी च साक्षी पञ्चविधः कृतः ॥ ४ ॥
अकृतः षड्विधस्तेषां सूरिभिः परिकीर्तितः । त्रयः पुनरनिर्दिष्टाः साक्षिणः समुदाहृताः ॥ ५ ॥
ग्रामश्च प्राड्विवाकश्च राजा च व्यवहारिणाम् । कार्येष्वभ्यन्तरो यः स्यादर्थिनां प्रहितश्च यः ॥ ६ ॥
कुल्याः कुलविवादेषु भवेयुस्तेपि साक्षिणः । कुलीना ऋजवः शुद्धा जन्मतः कर्मतोर्थतः ॥ ७ ॥
तच्छ्रोतारः प्रमाणं तु प्रमाणं ह्युत्तरक्रिया । सुचिरेणापि कालेन लिखितं सिद्धिमाप्नुयात् ॥ २४ ॥
आत्मनैव लिखेज्जानन्नजानंस्तु न लेखयेत् । आष्टमाद्वत्सरात्सिद्धिः स्मारितस्येह साक्षिणः ॥२५॥
आपञ्चमात्तथा सिद्धिर्यदृच्छोपगतस्य च । आतृतीयात्तथा वर्षात्सिद्धिर्गूढस्य साक्षिणः ॥ २६ ॥
आसंवत्सरतः सिद्धिंवदन्त्युत्तरसाक्षिणः । अथवा कालनियमो न दृष्टः साक्षिणं प्रति ॥ २७ ॥
स्मृत्यपेक्षं हि साक्षित्वमाहुः शास्त्रविदो जनाः । यस्य नोपहता बुद्धिः स्मृतिः श्रोत्रं च नित्यशः ॥
सुदीर्घेणापि कालेन स साक्षी साक्ष्यमर्हति । असाक्षिप्रत्ययास्त्वन्ये षड्विवादाः प्रकीर्तिताः ॥२९ ॥
अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्षी यद्यनृतं वदेत् । लोभात्साहसं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु साहसम् ॥ ९६ ॥
भयाद्द्वे(द्वौ)मध्यमौ दण्डौ मैत्र्यात्पूर्वं चतुर्गुणम् । कामाद्दशगुणं प्रोक्तं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम्॥९७॥
तत्साम्ये शुचयो ग्राह्यास्तत्साम्ये शुचिमत्तराः । शुद्धिमत्साक्षिसाम्यं तु विवादे यत्र दृश्यते ॥ ९३॥
तदप्ययुक्तं विज्ञेयमेष साक्ष्यविधिः स्मृतः । प्रमादाद्धनिनो यत्र न स्याल्लेख्यं न साक्षिणः ॥ ९८ ॥
अर्थं चाऽपह्नुते वादी तत्रोक्तस्त्रिविधो विधिः । चोदना प्रतिकालं च युक्तिलेशस्तथैव च ॥ ९९ ॥
तृतीयः शपथः प्रोक्तस्तैरेनं साधयेत्क्रमात् । अभीक्ष्णं चोद्यमानो यः प्रतिहन्यान्न तद्वचः ॥ १००॥

नारदस्मृति—२ विवादपद ।

स्वद्रव्यं यत्र विश्रम्भान्निक्षिपत्यविशङ्कितः । निक्षेपो नाम तत्प्रोक्तं व्यवहारपदं बुधैः ॥ १ ॥
अन्यद्द्रव्यव्यवहितं द्रव्यमव्याहृतं च यत् । निक्षिप्यते परगृहे तदौपनिधिकं स्मृतम् ॥ २ ॥
स पुनर्द्विविधः प्रोक्तः साक्षिमानितरस्तथा । प्रतिदानं तथैवास्य प्रत्ययः स्याद्विपर्यये ॥ ३ ॥
यं चार्थं साधयेत्तेन निक्षेप्तुरननुज्ञया । तत्रापि दंड्यः स भवेत्तं च सोदयमावहेत् ॥ ५ ॥
ग्रहीतुः सह योऽर्थेन नष्टो नष्टः स दायिनः । दैवराजकृते तद्वच्चेत्तज्जिह्मकारितम् ॥ ७ ॥
एष एव विधिर्दृष्टो याचितान्वाहितेषु च । शिल्पिषूपनिधौ न्यासे प्रतिन्यासे तथैव च ॥ ८ ॥

नारदस्मृति—३ विवादपद ।

वणिक्प्रभृतयो यत्र कर्म सम्भूय कुर्वते । तत्संभूय समुत्थानं विवादपदमुच्यते ॥ १ ॥
प्रमादान्नाशितं दाप्यः प्रतिषिद्धकृतं च यत् । अनिर्दिष्टं च यः कुर्यात्सर्वैः संभूयकारिभिः ॥ ५ ॥
दैवतस्कारराजभ्यो व्यसने समुपस्थिते । यस्तत्स्वशक्त्या रक्षेत्तु तस्यांशो दशमः स्मृतः ॥ ६ ॥
ऋत्विग्याज्यमदुष्टं यं त्यजेदनपकारिणम् । अदुष्टं चर्त्विजं याज्यो विनेयौ तावुभावपि ॥ ९ ॥
ऋत्विक्तु त्रिविधो दृष्टः पूर्वजुष्टः स्वयं कृतः । यदृच्छया तु यः कुर्यादार्त्विज्यं प्रीतिपूर्वकम् ॥ १० ॥
क्रमागतेष्वेष धर्मो वृतेष्वृत्विक्षु च स्वयम् । याहच्छिके तु संयाज्ये तत्यागे नास्ति किल्बिषम् ११

नारदस्मृति—४ विवादपद ।

अन्वाहितं याचितकमाधिः साधारणं च यत् । निक्षेपः पुत्रदाराश्च सर्वस्वं चान्वये सति ॥ ४ ॥
कुटुम्बभरणाद्द्रव्यं यत्किंचिदतिरिच्यते । तद्देयमुपहन्त्याद्यद्दत्तं नाप्नुयात् ॥ ६ ॥

नारदस्मृति—५ विवादपद ।

शुभकर्मकरास्त्वेते चत्वारः समुदाहृताः । जघन्यकर्मभाजस्तु शेषदासास्त्रिपञ्चकाः ॥ २३ ॥

नारदस्मृति—६ विवादपद ।

भृतावनिश्चितायां तु दशभागं समाप्नुयुः । लाभगोबीजसस्यानां वणिग्गोपकृषीवलाः ॥ ३ ॥
कर्माकुर्वन् प्रतिश्रुत्य कार्यो दत्त्वा भृतिं बलात् । भृतिं गृहीत्वाकुर्वाणो द्विगुणो भृतिमावहेत् ॥५ ॥
कर्मारम्भन्तु यः कृत्वा सिद्धिं नैव तु कारयेत् । बलात्कारयितव्यः स्यादकुर्वन्दण्डमर्हति ॥ ६ ॥
अदत्त्वाकारयित्वा तु दंड्यान्याधिकं च न । दाप्यो भृतिश्चतुर्भागं सप्तमर्धपथे त्यजन् ॥ ७ ॥
अनयन्वाहकोऽप्येवं भृतिहानिमवाप्नुयात् । द्विगुणां तु भृतिं दाप्यः प्रस्थाने विघ्नमाचरन् ॥ ८ ॥
भाण्डं व्यसनमागच्छेद्यदि वाहकदोषतः । स दाप्यो यत्प्रनष्टं स्याद्दैवराजकृताद्दृते ॥ ९ ॥
गवां शताद्वत्सतरी धेनुः स्याद्द्विशताद्भृतिः । प्रतिसंवत्सरं गोपे सन्दोहश्चाष्टमेऽहनि ॥ १० ॥
नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहतं विषमे मृतम् । हीनं पुरुषकारेण पालायैव निपातयेत् ॥ १४ ॥

नारदस्मृति—७ विवादपद ।

निक्षिप्तं वा परद्रव्यं नष्टं लब्ध्वापहृत्य वा ॥ विक्रीयते समक्षं यद्विज्ञेयोऽस्वामिविक्रयः ॥ १ ॥
अस्वाम्यनुमताद्दासादसतश्च जनाद्रहः । हीनमूल्यमवेलायां क्रीतस्तद्दोषभाग्भवेत् ॥ ३ ॥

नारदस्मृति—८ विवादपद ।

विक्रीय पण्यं मूल्येन क्रेत्रे यन्न प्रदीयते । विक्रीयासंप्रदानं तद्विवादपदमुच्यते ॥ १॥

नारदस्मृति—९ विवादपद ।

क्रीत्वा मूल्येन यत्पण्यं क्रेता न बहु मन्यते । क्रीतानुशय इत्येतद्विवादपदमुच्यते ॥ १ ॥
क्रीत्वा मूल्येन यत्पण्यं दुष्क्रीतं मन्यते क्रयी । विक्रेतुः प्रतिदेयं तत्तस्मिन्नेवाह्न्यविक्षतम् ॥ २ ॥
द्वितीयेऽह्नि ददत्क्रेता मूल्यात्त्रिंशांशमावहेत् । द्विगुणं तु तृतीयेऽह्नि परतः क्रेतुरेव तत् ॥ ३ ॥
क्रेता पण्यं परीक्षेत प्राक्स्वयं गुणदोषतः । परीक्ष्याभिमतं क्रीतं विक्रेतुर्न भवेत्पुनः ॥ ४ ॥
त्र्यहाद्दोह्यं परीक्ष्येत पञ्चाहाद्वाह्यमेव तु । मणिमुक्ताप्रवालानां सप्ताहात्स्यात्परीक्षणम् ॥ ५ ॥
द्विपदामर्धमासात्स्यात्पुंसां तद्द्विगुणात्स्त्रियाः । दशाहात्सर्वबीजानामेकाहाल्लोहवाससाम् ॥ ६ ॥

नारदस्मृति-१० विवादपद ।

पाखण्डिनैगमादीनां स्थितिः समय उच्यते । समयस्यानपाकर्म तद्विवादपदं स्मृतम् ॥ १ ॥
पाखण्डिनैगमश्रेणीपूगव्रातगणादिषु । संरक्षेत्समयं राजा दुर्गे जनपदे तथा ॥ २ ॥

नारदस्मृति-११ विवादपद ।

क्षेत्रसीमाविवादेषु सामन्तेभ्यो विनिश्चयः । नगरग्रामगुणिनो ये च वृद्धतमा नराः ॥ २ ॥
ग्रामसीमासु च बहिर्ये स्युस्तत्कृषिजीविनः । गोपशाकुनिकव्याधा ये चान्ये वनजीविनः ॥ ३ ॥
समुन्नयेयुस्ते सीमां लक्षणैरुपलक्षिताम् । तुषाङ्गारकपालैश्च कूपैरायतनैर्द्रुमैः ॥ ४ ॥
अभिज्ञातैश्च वल्मीकस्थलनिम्नोन्नतादिभिः । केदारारामगार्गैश्च पुराणैः सेतुभिस्तथा ॥ ५ ॥
अथ चेदनृतं ब्रूयुः सामन्तास्तद्विनिश्चये । सर्वे पृथक्पृथग् दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम् ॥ ७ ॥
नैकः समुन्नयेत्सीमां नरः प्रत्ययवानपि । गुरुत्वादस्य धर्मस्य क्रियैषा बहुषु स्थिता ॥ ९ ॥
एकश्चेदुन्नयेत्सीमां सोपवासः समाहितः । रक्तमाल्याम्बरधरः क्षितिमारोप्य मूर्द्धनि ॥ १० ॥
यदा च न स्युर्ज्ञातारः सीमायां च न लक्षणम् । तदा राजा द्वयोः सीमामुन्नयेदिष्टतः स्वयम्॥११॥
उत्क्रम्य यत्र तु वृतिं सस्यघातो गवादिभिः । पालः शास्यो भवेत्तत्र न चेच्छक्त्या निवारयेत्॥२८॥
समूलसस्यघाते तु तत्स्वामी सममाप्नुयात् । वधेन पालो मुच्येत दण्डं स्वामिनि पातयेत् ॥ २९ ॥
गौः प्रसूता दशाहं च महोक्षो वाजिकुञ्जरौ । निवार्याः स्युः प्रयत्नेन तेषां स्वामी न दण्डभाक्॥३०॥
माषं गां दापयेद्दण्डं द्वौ माषौ महिषीं तथा । अजाविके सवत्से तु दण्डः स्यादर्द्धमाषकः ॥ ३१॥
अदण्ड्या हस्तिनोऽश्वाश्च प्रजापाला हि ते मताः।अदण्ड्यागन्तुकी गौश्च सूतिका वाभिसारिणी३२
या नष्टाः पालदोषेण गावः क्षेत्रं पराप्नुयुः । न तत्र गोमिनां दण्डः पालस्तं दण्डमर्हति ॥ ३९ ॥
एवं हि विनयः प्रोक्तो गोपैः सस्यार्द्धपातनात् । ग्रामोपान्ते च यत्क्षेत्रं विवीतान्ते महापथे ॥ ४० ॥
अनावृते चेत्तन्नाशे न पालस्य व्यतिक्रमः । पथि क्षेत्रे वृतिः कार्या यामुष्ट्रो नावलोकयेत् ॥ ४१ ॥
नालंघयेत्पशुर्वाश्वो न भिन्द्याद्यां च शूकरः । गृहक्षेत्रे च द्वे द्वे वासहेतू कुटुम्बिनाम् ॥ ४२ ॥

नारदस्मृति-१२ विवादपद ।

आसप्तमात्पञ्चमाद्वा बन्धुभ्यः पितृमातृतः । अविवाह्याः सगोत्राः स्युः समानप्रवरास्तथा ॥ ७ ॥
परीक्ष्यः पुरुषः पुंस्त्वे निजैरेवाङ्गलक्षणैः । पुमांश्चेदविकल्पेन स कन्यां लब्धुमर्हति ॥ ८ ॥
रेत उत्प्लवते नाप्सु ह्लादि मूत्रं च फेनिलम् । पुमान्स्याल्लक्षणैरेतैर्विपरीतैस्तु षण्ढकः ॥ १० ॥
अपत्यार्थं स्त्रियः सृष्टाः स्त्रीक्षेत्रं बीजिनो नराः । क्षेत्रं बीजवते देयं नाबीजी क्षेत्रमर्हति ॥ १९ ॥
पिता दद्यात्स्वयं कन्यां भ्राता वानुमते पितुः । पितामहो मातुलश्च सकुल्या बान्धवास्तथा ॥२०॥
माता त्वभावे सर्वेषां प्रकृतौ यदि वर्तते । तस्यामप्रकृतिस्थायां दद्युः कन्यां सनाभयः ॥ २१ ॥
सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते । सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् ॥ २८ ॥
ब्राह्मादिषु विवाहेषु पञ्चस्वेषु विधिः स्मृतः । गुणापेक्षं भवेद्दानमासुरादिषु च त्रिषु ॥ २९ ॥
कन्यायां दत्तशुल्कायां ज्यायांश्चेद्वर आव्रजेत् । धर्मार्थकामसंयुक्तं वाच्यं तत्रानृतं भवेत् ॥ ३० ॥
नादुष्टां दूषयेत्कन्यां नादुष्टं दूषयेद्वरम् । यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति ॥ ३१ ॥
अदुष्टश्चेद्वरो राज्ञा स दण्डस्तत्र चौरवत् । यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति ॥ ३३ ॥
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं पूर्वसाहसचोदितम् । अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः ॥ ३४ ॥
राक्षसोऽनवरस्तस्मात्पैशाचस्त्वष्टमः स्मृतः । सत्कृत्याहूय कन्यां तु दद्याद्ब्राह्मे त्वलंकृताम् ॥ ४० ॥
सह धर्मं चरेत्युक्त्वा प्राजापत्यो विधिः स्मृतः । वस्त्रगोमिथुनाभ्यां तु विवाहस्त्वार्ष उच्यते ॥४१॥
अन्तर्वेद्यां तु दैवं स्यादृत्विजे कर्मकुर्वते । इच्छन्तीमिच्छतः प्राहुर्गान्धर्वं नाम पञ्चमम् ॥ ४२ ॥
विवाहस्त्वासुरो ज्ञेयः शुल्कसंव्यवहारतः । प्रसह्य हरणादुक्तो विवाहो राक्षसस्तथा ॥ ४३ ॥
सुप्तप्रमत्तोपगमात्पैशाचस्त्वष्टमोऽधमः । एषां तु धर्म्याश्चत्वारो ब्राह्माद्याः समुदाहृताः ॥ ४४ ॥
साधारणः स्याद्गान्धर्वस्त्रयोऽधर्मास्ततः परे । परपूर्वाः स्त्रियस्त्वन्याः सप्त प्रोक्ता यथाक्रमम् ॥ ४५ ॥
पुनर्भूस्त्रिविधा तासां स्वैरिणी तु चतुर्विधा । कन्यैवाक्षतयोनिर्या पाणिग्रहणदूषिता ॥ ४६ ॥

पुनर्भूः प्रथमा प्रोक्ता पुनः संस्कारमर्हति । कौमारं पतिमुत्सृज्य या त्वन्यं पुरुषं श्रिता ॥ ४७ ॥
पुनः पत्युर्गृहमियात्सा द्वितीया प्रकीर्त्तिता । असत्सु देवरेषु स्त्री बान्धवैर्या प्रदीयते ॥ ४८ ॥
सवर्णाय सपिण्डाय सा तृतीया प्रकीर्त्तिता । स्त्री प्रसूताऽप्रसूता वा पत्यावेव तु जीवति ॥ ४९ ॥
कामात्समाश्रयेदन्यं प्रथमा स्वैरिणी तु सा । मृते भर्त्तरि संप्राप्तान्देवरादीनपास्य या ॥ ५० ॥
उपगच्छेत्परं कामात्सा द्वितीया प्रकीर्त्तिता । प्राप्ता देशाद्धनक्रीता क्षुत्पिपासातुरा च या ॥ ५१ ॥
तवाहमित्युपगता सा तृतीया प्रकीर्त्तिता । देशधर्मानपेक्ष्य स्त्री गुरुभिर्या प्रदीयते ॥ ५२ ॥
उत्पन्नसाहसान्यस्मै अन्त्या सा स्वैरिणी स्मृता । पुनर्भुवां विधिस्त्वेष स्वैरिणीनां प्रकीर्तितः॥५३॥
पूर्वा पूर्वा जघन्या सा श्रेयसी तूत्तरोत्तरा । अपत्यमुत्पादयितुस्तासां या शुल्कतो हृता ॥ ५४ ॥
न तत्र बीजिनो भागः क्षेत्रिकस्यैव तत्फलम् । ओघवाताहृतं बीजं क्षेत्रे यस्य प्ररोहति ॥ ५६ ॥
फलभुक्तस्य तत्क्षेत्री न बीजी फलभाग्भवेत् । महोक्षो जनयेद्वत्सान् यस्य गोषु व्रजे चरन् ॥ ५७ ॥
तस्य ते यस्य ता गावो मोघः स्कन्दितमार्षभम् । क्षेत्रियानुमतो बीजं यस्य क्षेत्रे समुप्यते ॥ ५८ ॥
तदपत्यं द्वयोरेव बीजिक्षेत्रिकयोर्मतम् । न स्यात्क्षेत्रं विना सस्यं न वा बीजं विनास्ति तत् ॥ ५९ ॥
स्थानसम्भाषणामोदास्त्रयः संग्रहणक्रमाः । नदीनां सङ्गमे तीर्थेष्वारामेषु वनेषु च ॥ ६३ ॥
स्त्रीपुंसौ यत्समीयातां तच्च संग्रहणं स्मृतम् । दूतीप्रस्थापनैर्वापि लेखसंप्रेषणैरपि ॥ ६४ ॥
अन्यैश्च विविधैर्दोषैर्ग्राह्यं संग्रहणं बुधैः । स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तथा ॥ ६५ ॥
परस्परस्यानुमतं सर्वं संग्रहणं स्मृतम् । उपकारक्रियाकेलिः स्पर्शो भूषणवाससाम् ॥ ६६ ॥
सह खट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम् । पाणौ यच्च निगृह्णीयाद्वेण्यां वस्त्राञ्चलेऽपि वा ॥ ६७ ॥
तिष्ठतिष्ठेति वा ब्रूयात्सर्वं संग्रहणं स्मृतम् । वस्त्रैस्संभरणैर्माल्यैः पानैर्भक्ष्यैस्तथैव च ॥ ६८ ॥
संप्रेष्यमाणैर्गन्धैश्च वेद्यं संग्रहणं बुधैः । दर्पाद्वा यदि वा मोहाच्छ्लाघया वा स्वयं वदेत् ॥ ६९ ॥
मयेयं भुक्तपूर्वेति तच्च संग्रहणं स्मृतम् । सजात्यतिशये पुंसां दण्ड उत्तमसाहसः ॥ ७० ॥
मध्यमस्त्वानुलोम्येन प्रातिलोम्ये प्रमापणम् । कन्यायामसकामायां द्व्यङ्गुलस्यावकर्त्तनम् ॥ ७१ ॥
उत्तमायां वधस्त्वेव सर्वस्वग्रहणं तथा । सकामायान्तु कन्यायां सङ्गमे नास्त्यतिक्रमः ॥ ७२ ॥
किंत्वलंकृत्य सत्कृत्य स एवैनां समुद्वहेत् । माता मातृष्वसा श्वश्रूर्मातुलानी पितृष्वसा ॥ ७३ ॥
शिश्नस्योत्कर्त्तनं तस्य नान्यो दण्डो विधीयते । पशुयोनौ प्रवृत्तः स विनेयः सदशं शतम् ॥ ७४ ॥
मध्यमं साहसं गोषु तदेवान्त्यावसायिषु । अगम्यागामिनं चास्ति दण्डो राज्ञा प्रचोदितः ॥ ७७ ॥
नियुक्ता गुरुभिर्गच्छेद्देवरं पुत्रकाम्यया । स च तां प्रतिपद्येत तथैवाऽपुत्रजन्मतः ॥ ८१ ॥
पुत्रे जाते निवर्तेत सङ्करः स्यादतोऽन्यथा । घृतेनाभ्यज्य गात्राणि तैलेनाऽविकृतेन वा ॥ ८२ ॥
न गच्छेद्गर्भिणीं निन्द्यामनियुक्तं च बन्धुभिः । अनियुक्ता तु या नारी देवराज्जनयेत्सुतम् ॥८४॥
जारजातमरिक्थीयं तमाहुर्ब्रह्मवादिनः । तथाऽनियुक्तो यो भार्यां यवीयाञ्ज्यायसो व्रजेत् ॥ ८५ ॥
यवीयसो वा यो ज्यायसुभौ तौ गुरुतल्पगौ । कुले तदवशिष्टे तु सन्तानार्थमकामतः ॥ ८६ ॥
बन्धुभिः सा नियोक्तव्या निर्बन्धुः स्वयमाश्रयेत् । नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ ॥ ९७ ॥
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते । अष्टौ वर्षाण्युदीक्षेत ब्राह्मणी प्रोषितं पतिम् ॥ ९८ ॥
अप्रसूता तु चत्वारि परतोन्यं समाश्रयेत् । क्षत्रिया षट् समास्तिष्ठेदप्रसूता समात्रयम् ॥ ९९ ॥
वैश्या प्रसूता चत्वारि द्वे वर्षे त्वितरा वसेत् । न शूद्रायाः स्मृतः काल एष प्रोषितयोषिताम् १००॥
जीवति श्रूयमाणे तु स्यादेष द्विगुणो विधिः । अप्रवृत्तौ तु भूतानां दृष्टिरेषा प्रजापते ॥ १०१ ॥
प्रातिलोम्येन यज्जन्म स ज्ञेयो वर्णसङ्करः । अनन्तरः स्मृतः पुत्रः पुत्र एकान्तरस्तथा ॥ १०३ ॥

नारदस्मृति–१३ विवादपद।

विभागोर्थस्य पित्र्यस्य पुत्रैर्यत्र प्रकल्प्यते । दायभाग इति प्रोक्तं तद्विवादपदं बुधैः ॥ १॥
पितर्यूर्ध्वं गते पुत्रा विभजेरन् धनं क्रमात् । मातुर्दुहितरोभावे दुहितॄणां तदन्वयः ॥ २ ॥
मातुर्निवृत्ते रजसि प्रत्तासु भगिनीषु च । निवृत्ते वापि रमणे पितर्युपरतस्पृहे ॥ ३ ॥
पितैव वा स्वयं पुत्रान्विभजेद्वयसि स्थिते । ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन यथा वास्य मतिर्भवेत् ॥ ४ ॥
बिभृयादिच्छतः सर्वान् ज्येष्ठो भ्राता पिता यथा । भ्राताशक्तः कनिष्ठो वा शक्त्यपेक्ष्याः कुले स्थिरः॥५

शौर्यभार्याधने चोभे यच्च विद्याधनं भवेत् । त्रीण्येतान्यविभाज्यानि प्रसादो यश्च पैतृकः ॥ ६ ॥
मात्रा च स्वधनं दत्तं यस्मै स्यात्प्रीतिपूर्वकम् । तस्याप्येष विधिर्दृष्टो मातापि हि यथा पिता ॥ ७ ॥
अध्यग्न्यध्यावाहनिकं भर्तृदायस्तथैव च । भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥ ८ ॥
स्त्रीधनं तदपत्यानां भर्तृगास्वप्रजासु तु । ब्राह्मादिषु चतुर्ष्वाहुः पितृगामीतरेषु च ॥ ९ ॥
कुटुम्बं बिभृयाद्भ्रातुर्यो विद्यामधिगच्छतः । भागं विद्याधनात्तस्मात्स लभेताश्रुतोपि सन् ॥ १० ॥
द्वावंशौ प्रतिपद्येत विभजन्नात्मनः पिता । समांशभागिनी माता पुत्राणां स्यान्मृते पतौ ॥ १२ ॥
ज्येष्ठायांशोधिको ज्ञेयः कनिष्ठायावरः स्मृतः । समांशभाजः शेषाः स्युरप्रत्ता भगिनी तथा ॥ १३ ॥
पित्रैव तु विभक्ता ये हीनाधिकसमैर्धनैः । तेषां स एव धर्मः स्यात्सर्वस्य हि पिता प्रभुः ॥ १५ ॥
व्याधितः कुपितश्चैव विषयासक्तमानसः । अन्यथाशास्त्रकारी च न विभागे पिता प्रभुः ॥ १६ ॥
कानीनश्च सहोढश्च गूढायां यश्च जायते । तेषां वोढा पिता ज्ञेयस्ते न भागहराः स्मृताः ॥ १७ ॥
अज्ञातपितृको यश्च कानीनोऽमृतमातृकः । मातामहाय दद्यात्स पिण्डं रिक्थं हरेत च ॥ १८ ॥
जाता ये त्वनियुक्तायामेकेन बहुभिस्तथा । अरिक्थभाजस्सर्वे स्युर्बीजिनामेव तत्सुताः ॥ १९ ॥
द्व्यामुष्यायणा दद्युर्द्वाभ्यां पिण्डोदके पृथक् । रिक्थादर्धं समादद्युर्बीजिक्षेत्रिकयोस्तथा ॥ २३ ॥
भ्रातॄणामप्रजाः प्रेयात्कश्चिच्चेत्प्रव्रजेत्तु वा । विभजेरन् धनं तस्य शेषास्तु स्त्रीधनं विना ॥ २५ ॥
भरणं चास्य कुर्वीरन् स्त्रीणामाजीवितक्षयात् । रक्षन्ति शय्यां भर्तुश्चेदाच्छिन्द्युरितरासु च ॥ २६ ॥
अस्वातन्त्र्यमतस्तासां प्रजापतिरकल्पयत् । पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ॥ ३० ॥
पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति । यच्छिष्टं पितृदायेभ्यो दत्त्वर्णं पैतृकञ्च यत् ॥ ३१ ॥
कुर्युर्यथेष्टं तत्सर्वमीशास्ते स्वधनस्य तु । ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरेद्धनम् ॥ ४३ ॥
संसृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजेरन्निति स्थितिः । औरसः क्षेत्रजश्चैव पुत्रिकापुत्र एव च ॥ ४४ ॥
कानीनश्च सहोढश्च गूढोत्पन्नस्तथैव च । पौनर्भवोपविद्धश्च लब्धः क्रीतः कृतस्तथा ॥ ४५ ॥
स्वयं चोपगतः पुत्रा द्वादशैत उदाहृताः । एषां षड् बन्धुदायादाः षडदायादबान्धवाः ॥ ४६ ॥
ज्यायसो ज्यायसोऽलाभे कनीयान् रिक्थमर्हति । पुत्राभावे तु दुहिता तुल्यसन्तानकारणात् ॥ ४९ ॥
पुत्रश्च दुहिता चोभौ पितुः सन्तानकारकौ । अभावे तु दुहितॄणां सकुल्या बान्धवास्ततः ॥ ५० ॥

नारदस्मृति—१४ विवादपद ।

सहसा क्रियते कर्म यत्किञ्चिद्बलदर्पितैः । तत्साहसमिति प्रोक्तं सहो बलमिहोच्यते ॥ १ ॥
तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं प्रथमं मध्यमं तथा । उत्तमं चेति शास्त्रेषु तस्योक्तं लक्षणं पृथक् ॥ ३ ॥
फलमूलोदकादीनां क्षेत्रोपकरणस्य च । भङ्गाक्षेपोपमर्दाद्यैः प्रथमं साहसं स्मृतम् ॥ ४ ॥
वासः पश्वन्नपानानां गृहोपकरणस्य च । एतेनैव प्रकारेण मध्यमं साहसं स्मृतम् ॥ ५ ॥
व्यापादो विषशस्त्राद्यैः परदाराभिमर्षणम् । प्राणोपरोधि यच्चान्यदुक्तमुत्तमसाहसम् ॥ ६ ॥
तस्य दण्डः क्रियापेक्षः प्रथमस्य शतावरः । मध्यमस्य तु शास्त्रज्ञैर्दृष्टः पञ्चशतावरः ॥ ७ ॥
उत्तमे साहसे दण्डः सहस्रावर इष्यते । वधः सर्वस्वहरणं पुरान्निर्वासनाङ्कने ॥ ८ ॥
तदङ्गच्छेद इत्युक्तो दण्ड उत्तमसाहसे ॥ ९ ॥
वधादृते ब्राह्मणस्य न वधं ब्राह्मणोऽर्हति । शिरसो मुण्डनं दण्डस्तस्य निर्वासनं पुरात् ॥ १० ॥
ललाटे चाभिशस्ताङ्कः प्रयाणं गर्दभेन च । स्यातां संव्यवहार्यौ तौ धृतदण्डौ तु पूर्वयोः ॥ ११ ॥
शङ्का त्वसज्जने कार्यादनायव्ययतस्तथा । भक्तावकाशदातारः स्तेनानां ये प्रसर्पताम् ॥ १९ ॥
शक्ताश्च य उपेक्षन्ते तेपि तद्दोषभागिनः । उत्क्रोशतां जनानां च ह्रियमाणे धने तथा ॥ २० ॥
श्रुत्वा येनाभिधावन्ति तेपि तद्दोषभागिनः । साहसेषु य एवोक्तास्त्रिषु दण्डो मनीषिभिः ॥ २१ ॥
नैवान्तरिक्षान्न दिवो न समुद्रान्न चान्यतः । दस्यवः सम्प्रवर्तन्ते तस्मादेवम्प्रकल्पयेत् ॥ २७ ॥
रात्रिसंचारिणो ये च बहिः कुर्युर्बहिश्चराः । स्तेनेष्वलभ्यमानेषु राजा दद्यात्स्वकाद्गृहात् ॥ २८ ॥
उपेक्षमाणो ह्येनस्वी धर्मादर्थाच्च हीयते ॥ २९ ॥

नारदस्मृति—१५ विवादपद ।

देशजातिकुलादीनामाक्रोशं न्यङ्गसंयुतम् । यद्वचः प्रतिकूलार्थं वाक्पारुष्यं तदुच्यते ॥ १ ॥

निष्ठुराश्लीलतीव्रत्वात्तदपि त्रिविधं स्मृतम् । गौरवानुक्रमात्तस्य दण्डोऽप्यत्र क्रमाद्गुरुः ॥ २ ॥
साक्षेपं निष्ठुरं ज्ञेयमश्लीलं न्यङ्गसंयुतम् । पातनीयैरुपक्रोशैस्तीव्रमाहुर्मनीषिणः ॥ ३ ॥
परगात्रेष्वभिद्रोहो हस्तपादायुधादिभिः । भस्मादीनामुपक्षेपैर्दण्डपारुष्यमुच्यते ॥ ४ ॥
तस्यापि दृष्टं त्रैविध्यं हीनमध्योत्तमं क्रमात् । अवगूरणनिःशंकपातनक्षतदर्शनैः ॥ ५ ॥
शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति । वैश्योऽप्यर्द्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति ॥ १५ ॥
पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने । वैश्ये स्यादर्द्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥ १६ ॥
समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे । वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ॥ १७ ॥
काणमप्यथवा खञ्जमन्यं वापि तथाविधम् । तथ्येनापि ब्रुवन्दण्ड्यो राज्ञा कार्षापणावरम् ॥ १८ ॥
नामजातिग्रहांस्त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः । निक्षेप्योऽयोमयः शंकुर्ज्वलन्नास्ये दशांगुलः ॥ २२ ॥
धर्मोपदेशं दर्पेण द्विजानामस्य कुर्वतः । तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥ २३ ॥
येनाङ्गेनावरो वर्णो ब्राह्मणस्यापराध्नुयात् । तदङ्गं तस्य छेत्तव्यमेवं शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ २४ ॥
सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः । कट्यां कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वास्यावकर्त्तयेत् ॥ २५ ॥
अवनिष्ठीवतो दर्पाद्द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः । अवमूत्रयतो शिश्नमवशर्द्धयतो गुदम् ॥ २६ ॥
केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदविचारयन् । पादयोर्नासिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च ॥ २७ ॥
त्वक्छेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः । मांसभेत्ता तु षण्निष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥ २८

नारदस्मृति—१६ विवादपद ।

अक्षवध्रशलाकाद्यैर्देवनं जिह्मकारितम् । पणक्रीडावयोभिश्च पदं द्यूतसमाह्वयम् ॥ १ ॥

(२७) सुमन्तुस्मृति ।

नित्यं भूमिव्रीहियवाजाव्यश्वर्षभधेन्वनडुहश्चैके ॥ १ ॥
यः पतितैः सह यौनमुख्यस्रौवानां सम्बन्धानामन्यतमं सम्बन्धं कुर्यात्स तस्याप्येतदेव प्रायश्चित्तम् ॥२॥
पञ्चाहे तु चरेत्कृच्छ्रं दशाहे तप्तकृच्छ्रकम् । पराकस्त्वर्धमासे स्यान्मासे चान्द्रायणं चरेत् ॥ ३ ॥
मासत्रये प्रकुर्वीत कृच्छ्रं चान्द्रायणोत्तरम् । षाण्मासिके तु संसर्गे कृच्छ्रं त्वब्दार्धमाचरेत् ॥ ४ ॥
संसर्गे त्वाब्दिके कुर्यादब्दं चान्द्रायणं नरः ॥ ५ ॥
लशुनपलाण्डुगृंजनकवकभक्षणे सावित्र्यष्टसहस्रेण मूर्ध्नि सम्पातान्नयेत् ॥ ६ ॥
एतान्येव व्याधितस्य भिषक्क्रियायामप्रतिषिद्धानि भवन्ति यानि चैवंप्रकाराणि तेष्वपि न दोषः ॥७॥
अप्स्वग्नौ वा मेहतस्तप्तकृच्छ्रम् ॥ ८ ॥

(२८) मार्कण्डेयस्मृति ।

प्रेतलोके तु वसतिर्नृणां वर्षं प्रकीर्तिता । क्षुत्तृष्णे प्रत्यहं तत्र भवेतां भृगुनन्दन ॥ १ ॥
उदक्या तु सवर्णा या स्पृष्टा चेत्स्यादुदक्यया । तस्मिन्नेवाहनि स्नात्वा शुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥२॥
द्विजान्कथञ्चिदुच्छिष्टान् रजस्या यदि संस्पृशेत् । अधोच्छिष्टे त्वहोरात्रमूर्ध्वोच्छिष्टे त्र्यहं क्षिपेत्॥३॥
अपांक्तेयस्य यः कश्चित् पंक्तौ भुंक्ते द्विजोत्तमः । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

(२९) प्रचेतास्मृति ।

एकोद्दिष्टं यतेर्नास्ति त्रिदण्डग्रहणादिह । सपिण्डीकरणाभावात्पार्वणं तस्य सर्वदा ॥ १ ॥
असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु ॥ २ ॥
मृते चर्त्विजि याज्ये च त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥
कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च । राजानो राजभृत्याश्च सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः ॥ ४ ॥
तथा लोहेन पात्रेण सुरापोऽग्निवर्णां सुरामायसेन पात्रेण ताम्रेण वा पिबेत् ॥ ५ ॥
सुरापगुरुतल्पगौ चीरवल्कलवाससौ ब्रह्महत्याव्रतं चरेताम् ॥ ६ ॥
अनृतुमतीं ब्राह्मणीं हत्वा कृच्छ्राब्दं षण्मासान्वेति । क्षत्रियां हत्वा षण्मासान्मासत्रयं वेति ॥
वैश्यां हत्वा मासत्रयं सार्धमासं वेति शूद्रां हत्वा सार्धमासं सार्द्धद्वाविंशत्यहानि वा ॥ ७ ॥

(३०) पितामहस्मृति ।

ब्राह्मणस्य घटो देयः क्षत्रियस्य हुताशनः। वैश्यस्य सलिलं प्रोक्तं विषं शूद्रस्य दापयेत् ॥ १ ॥
तुलितो यदि वर्द्धेत स शुद्धः स्यान्न संशयः । समो वा हीयमानो वा न स शुद्धो भवेन्नरः ॥ २ ॥
सप्तपिप्पलपत्राणि अक्षतान्सुमनो दधि । हस्तयोर्निक्षिपेत्तत्र सूत्रेणावेष्टनं तथा ॥ ३ ॥
स्थिरतोये निमज्जेत्तु न ग्राहिणि न चाल्पके । तृणशैवालरहिते जलौकामत्स्यवर्जिते ॥ ४ ॥
देवखातेषु यत्तोयं तस्मिन्कुर्याद्विशोधनम् । आहार्यं वर्जयेन्नित्यं शीघ्रगासु नदीषु च ॥ ५ ॥
आविशेत्सलिलं नित्यमूर्मिपंकविवर्जिते ॥ ६ ॥
घटोग्निरुदकं चैव विषं कोशस्तथैव च । तण्डुलाश्चैव दिव्यानि सप्तमस्तप्तमाषकः ॥ ७॥
शृंगिणो वत्सनाभस्य हिमजस्य विषस्य वा ॥ ८ ॥

(३१) मरीचिस्मृति ।

सूतके मृतके चैव त्रिरात्रं परपूर्वयोः । एकाहस्तु सपिण्डानां त्रिरात्रं यत्र वै पितुः ॥ १ ॥
ब्रह्मसूत्रं विना भुंक्ते विण्मूत्रं कुरुतेथ वा । गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ २ ॥
सर्वैरनुमतिं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् । द्रव्येण वाऽविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥ ३ ॥
आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः । अत ऊर्द्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् ॥ ४ ॥

(३२) जाबालिस्मृति ।

एकोदकानां तु त्र्यहो गोत्रजानामहः स्मृतम् । मातृबन्धौ गुरौ मित्रे मण्डलाधिपतौ तथा ॥ १ ॥
षण्णामेकैकमेतेषां त्रिरात्रमुपयोजयेत् । त्र्यहं चोपवसेदन्त्यं महासान्तपनं विदुः ॥ २ ॥
पिण्याकं सक्तवस्तक्रं चतुर्थेऽहन्यभोजनम् । वासो वै दक्षिणां दद्यात्सौम्योयं कृच्छ्र उच्यते ॥ ३ ॥
अतिकृच्छ्रं तप्तकृच्छ्रं पराकं वा तथैव च । गुराः शूद्रां सकृद्गत्वा बुद्ध्या विप्रः समाचरेत् ॥ ४ ॥

(३३) पैठीनसिस्मृति ।

विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि । न तत्र सूतकं तद्वत्कर्म यज्ञादि कारयेत् ॥ १ ॥
भक्ष्याभोज्यान्नस्यादरपूर्णपात्रहरणे त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चगव्याहारश्च ॥ २ ॥
पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोपि हि पुत्रकः । श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत् ॥ ३ ॥
अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौचं हि द्विजातिषु । दाहादग्निमतो विद्याद्विदेशस्थे मृते सति ॥ ४ ॥
अविखरोष्ट्रमानुषीक्षीरप्राशने तप्तकृच्छ्रः पुनरुपनयनं च अनिर्दशाहगोमहिषीक्षीरप्राशने षड्रात्रमभोजनम् । सर्वासां द्विस्तनीनां क्षीरपानेऽप्यजावर्ज्यमेतदेव ॥ ५ ॥

(३४) शौनकस्मृति ।

पुरुषस्य यानि पतननिमित्तानि स्त्रीणामपि तान्येव ब्राह्मणस्य हीनवर्णे सेवायामधिकं पतति ॥ १॥
प्रौष्ठपद्यामपरपक्षे मासि मासि चैवम् ॥ २ ॥

(३५) कण्वस्मृति ।

एकरात्रं वसेद्ग्रामे नगरे रात्रिपञ्चकम् । वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांस्तु चतुरो वसेत् ॥ १ ॥
मत्या गत्वा पुनर्भार्यां गुरोः क्षत्रसुतां द्विजः । अण्डाभ्यां रहितं लिङ्गमुत्कृत्य स मृतः शुचिः॥२॥

(३६) षट्त्रिंशत् मत ।

षण्ढं तु ब्राह्मणं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् । चान्द्रायणं वा कुर्वीत पराकद्वयमेव च ॥ १ ॥
वालाग्रमात्रेऽपहृते प्राणायामं समाचरेत् । लिक्षामात्रेपि च तथा प्राणायामत्रयं बुधः ॥ २ ॥
राजसर्षपमात्रे तु प्राणायामचतुष्टयम् । गायत्र्यष्टसहस्रं च जपेत्पापविशुद्धये ॥ ३ ॥
गौरसर्षपमात्रे च सावित्रीं वै दिनं जपेत् । यवमात्रे सुवर्णस्य प्रायश्चित्तं दिनद्वयम् ॥ ४ ॥
सुवर्णकृष्णलं ह्येकमपहृत्य द्विजोत्तमः । कुर्यात्सान्तपनं कृच्छ्रं तत्पापस्यापनुत्तये ॥ ५ ॥
अपहृत्य सुवर्णस्य माषमात्रं द्विजोत्तमः । गोमूत्रयावकाहारस्त्रिभिर्मासैर्विशुद्ध्यति ॥ ६ ॥
सुवर्णस्यापहरणे वत्सरं यावकी भवेत् । ऊर्ध्वं प्राणान्तिकं ज्ञेयमथवा ब्रह्महव्रतम् ॥ ७ ॥
पाद उत्पन्नमात्रे तु द्वौ पादौ दृढतां गते । पादोनं व्रतमुद्दिष्टं हत्वा गर्भमचेतनम् ॥ ८ ॥

अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णे गर्भे चेतःसमन्विते । द्विगुणं गोव्रतं कुर्यादेषा गोघ्न
पवित्रेष्टया विशुद्ध्यन्ति सर्वे घोराः प्रतिग्रहाः । ऐंदवेन मृगारेष्ट्या कदा
देव्या लक्षजपेनैव शुद्ध्यंते दुष्प्रतिग्रहात् ॥ ११ ॥

(३७) चतुर्विंशतिमत ।

गायत्र्यास्तु जपेत्कोटिं ब्रह्महत्यां व्यपोहति । लक्षाशीतिं जपेद्यस्तु सुरापाना
पुनाति हेमहर्तारं गायत्र्या लक्षसप्ततिः । गायत्र्या लक्षषष्ट्या तु मुच्यते गुरु
लघुदोषे त्वनादिष्टे प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ३ ॥
चतुर्थमाश्रमं गच्छेद्ब्रह्मविद्यापरायणः । एकदण्डी त्रिदण्डी वा सर्वसङ्गविवर्जि

(३८) उपमन्युस्मृति ।

शूद्रायां तु कामतोऽभ्यासे द्वादशवार्षिकम् ॥ १ ॥
पुनः शूद्रां गुरोर्गत्वा बुद्ध्या विप्रः समाहितः । ब्रह्मचर्यमदुष्टात्मा संचरेद्द्वादशाब्दिकम् ॥ २ ॥

(३९) कश्यपस्मृति ।

रजस्वला तु संस्पृष्टा ब्राह्मण्या ब्राह्मणी यदि । एकरात्रं निराहारा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ १ ॥
गां हत्वा तच्चर्मणा प्रावृतो मासं गोष्ठेशयस्त्रिषवणस्नायी नित्यं पञ्चगव्याहारः ॥ २ ॥
मासं पञ्चगव्येनेति षष्ठे काले पयोभक्षो वा गच्छन्तीष्वनुगच्छेत्तासु सुखोपविष्टासु चोपविशेन्नाति-
प्लवं गच्छेन्नातिविषमेणावतारयेन्नाल्पोदके पाययेदन्ते ब्राह्मणान्भोजयित्वा तिलधेनुं दद्यात् ॥३॥

(४०) लौगाक्षिस्मृति ।

गुरोर्भार्यां तु यो वैश्यां मत्या गच्छेत्पुनःपुनः । लिङ्गाग्रं छेदयित्वा तु ततः शुद्ध्येत्स किल्बिषात्१॥
क्षेमं पूर्तं योगमिष्टमित्याहुस्तत्त्वदर्शिनः । अविभाज्ये च ते प्रोक्ते शयनासनमेव च ॥ २ ॥

(४१) क्रतुस्मृति ।

शूद्रहस्तेन यो भुङ्क्ते पानीयं वा पिबेत्क्वचित् । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ १ ॥
पूर्वसङ्कल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति ॥ २ ॥
यस्तु भुङ्क्ते द्विजः कश्चिदुच्छिष्टायां कदाचन । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३ ॥

(४२) पुलस्त्यस्मृति ।

मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं मांसं क्षत्रियवैश्ययोः । मधुप्रधानं शूद्रस्य सर्वेषां चाविरोधि यत् ॥ १ ॥
रजस्वला यदा दष्टा शुना जम्बूकरासभैः । पञ्चरात्रं निराहारा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ २ ॥
ऊर्ध्वं तु द्विगुणं नाभेर्वक्त्रे तु त्रिगुणं तथा । चतुर्गुणं स्मृतं मूर्ध्नि दष्टेऽन्यत्राप्लुतिर्भवेत् ॥ ३ ॥
पानसं द्राक्षमाधूकं खार्जूरं तालमैक्षवम् । मधूत्थं सैरमारिष्टं मैरेयं नालिकेरजम् ॥ ४ ॥
समानानि विजानीयान्मद्यान्येकादशैव तु । द्वादशं तु सुरा मद्यं सर्वेषामधमं स्मृतम् ॥ ५ ॥

(४३) शाण्डिल्यस्मृति ।

अवकीर्णो द्विजो राजा वैश्यश्चापि खरेण तु । इष्ट्वा भैक्षाशिनो नित्यं शुद्ध्यंत्यब्दात्समाहिताः ॥१॥
वानप्रस्थो यतिश्चैव स्कन्दने सति कामतः । पराकत्रयसंयुक्तमवकीर्णव्रतं चरेत् ॥ २ ॥

कृष्णयजुर्वेदके मैत्रायणीशाखाका ।

मानवगृह्यसूत्र-१ पुरुष-१ खण्ड ।

यदेनमुपेयात्तदस्मै दद्याद्भूनां येन संयुक्तः ॥ ३ ॥ न स्नायादुदकं वाऽभ्यवेयान् ॥ १३ ॥
यदि स्नायाद्दण्ड इवाप्सु प्लवेत ॥ १४ ॥

मानवगृह्यसूत्र-१ पुरुष-२ खण्ड ।

आदेवोयातीति त्रिष्टुभं राजन्यस्य । युञ्जत इति जगतीं वैश्यस्य ॥ ३ ॥
एतेन धर्मेण द्वादशचतुर्विंशतिषट्त्रिंशतमष्टाचत्वारिंशतं वा वर्षाणि यो ब्राह्मणो राजन्यो वैश्यो वा
ब्रह्मचर्यं चरति मुण्डः शिखाजटः सर्वजटो वा मलजुरवलः कृशः स्नात्वा स सर्वं विन्दते यत्कि-
ञ्चिन्मनसेच्छतीति ॥ ६ ॥ एतेन धर्मेण साध्वधीते ॥ ७ ॥ आपोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाः
शुचय इति द्वाभ्यां स्नात्वाऽहते वाससी परिधत्ते ॥ ११ ॥ वस्व्यसि वसुमन्तं मा कुरु सौवर्च-
सायमातेजसे ब्रह्मवर्चसाय परिदधामीति परिदधाति ॥ १२ ॥ यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो
न रिष्यतः । एवं मे प्राणमाबिभ एवं मे प्राणमारिषः इत्याङ्क्ते ॥१३॥ हिरण्यमाबध्नीते ॥१४॥

(३०) पितामहस्मृति ।

ब्राह्मणस्य घटो देयः क्षत्रियस्य हुताशनः। वैश्यस्य सलिलं प्रोक्तं विषं शूद्रस्य दापयेत् ॥ १ ॥
तुलितो यदि वर्द्धेत स शुद्धः स्यान्न संशयः । समो वा हीयमानो वा न स शुद्धो भवेन्नरः ॥ २ ॥
सप्तपिप्पलपत्राणि अक्षतान्सुमनो दधि । हस्तयोर्निक्षिपेत्तत्र सूत्रेणावेष्टनं तथा ॥ ३ ॥
स्थिरतोये निमज्जेत्तु न ग्राहिणि न चाल्पके । तृणशैवालरहिते जलौकामत्स्यवर्जिते ॥ ४ ॥
देवखातेषु यत्तोयं तस्मिन्कुर्याद्विशोधनम् । आहार्यं वर्जयेन्नित्यं शीघ्रगासु नदीषु च ॥ ५ ॥
आविशेत्सलिलं नित्यमूर्मिपंकविवर्जिते ॥ ६ ॥
घटोऽग्निरुदकं चैव विषं कोशस्तथैव च । तण्डुलाश्चैव दिव्यानि सप्तमस्तप्तमाषकः ॥ ७॥
शृंगिणो वत्सनाभस्य हिमजस्य विषस्य वा ॥ ८ ॥

(३१) मरीचिस्मृति ।

सूतके मृतके चैव त्रिरात्रं परपूर्वयोः । एकाहस्तु सपिण्डानां त्रिरात्रं यत्र वै पितुः ॥ १ ॥
ब्रह्मसूत्रं विना भुंक्ते विण्मूत्रं कुरुतेथ वा । गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ २ ॥
सर्वैरनुमतिं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् । द्रव्येण चाऽविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥ ३ ॥
आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः । अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् ॥ ४ ॥

(३२) जाबालिस्मृति ।

एकोदकानां तु त्र्यहो गोत्रजानामहः स्मृतम् । मातृबन्धौ गुरौ मित्रे मण्डलाधिपतौ तथा ॥ १ ॥
षण्णामेकैकमेतेषां त्रिरात्रमुपयोजयेत् । त्र्यहं चोपवसेदन्त्यं महासान्तपनं विदुः ॥ २ ॥
पिण्याकं सक्तवस्तक्रं चतुर्थेऽहन्यभोजनम् । वासो वै दक्षिणां दद्यात्सौम्योयं कृच्छ्र उच्यते ॥ ३ ॥
अतिकृच्छ्रं तप्तकृच्छ्रं पराकं वा तथैव च । गुरोः शूद्रां सकृद्गत्वा बुद्ध्या विप्रः समाचरेत् ॥ ४ ॥

(३३) पैठीनसिस्मृति ।

विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि । न तत्र सूतकं तद्वत्कर्म यज्ञादि कारयेत् ॥ १ ॥
भक्ष्याभोज्यान्नस्योदरपूर्णपात्रहरणे त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चगव्याहारश्च ॥ २ ॥
पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोपि हि पुत्रकः । श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत् ॥ ३ ॥
अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौचं हि द्विजातिषु । दाहादग्निमतो विद्याद्विदेशस्थे मृते सति ॥ ४ ॥
अविखरोष्ट्रमानुषीक्षीरप्राशने तप्तकृच्छ्रः पुनरुपनयनं च अनिर्दशाहगोमहिषीक्षीरप्राशने षड्रात्रम-
भोजनम् । सर्वासां द्विस्तनीनां क्षीरपानेऽप्यजावर्ज्यमेतदेव ॥ ५ ॥

(३४) शौनकस्मृति ।

पुरुषस्य यानि पतननिमित्तानि स्त्रीणामपि तान्येव ब्राह्मणस्य हीनवर्ण सेवायामधिकं पतति ॥ १॥
प्रौष्ठपद्यामपरपक्षे मासि मासि चैवम् ॥ २ ॥

(३५) कण्वस्मृति ।

एकरात्रं वसेद्ग्रामे नगरे रात्रिपञ्चकम् । वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांस्तु चतुरो वसेत् ॥ १ ॥
मत्या गत्वा पुनर्भार्यां गुरोः क्षत्रसुतां द्विजः । अण्डाभ्यां रहितं लिङ्गमुत्कृत्य स मृतः शुचिः॥२॥

(३६) षट्त्रिंशत् मत ।

षण्ढं तु ब्राह्मणं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् । चान्द्रायणं वा कुर्वीत पराकद्वयमेव च ॥ १ ॥
वालाग्रमात्रेऽपहृते प्राणायामं समाचरेत् । लिक्षामात्रेपि च तथा प्राणायामत्रयं बुधः ॥ २ ॥
राजसर्षपमात्रे तु प्राणायामचतुष्टयम् । गायत्र्यष्टसहस्रं च जपेत्पापविशुद्धये ॥ ३ ॥
गौरसर्षपमात्रे च सावित्रीं वै दिनं जपेत् । यवमात्रे सुवर्णस्य प्रायश्चित्तं दिनद्वयम् ॥ ४ ॥
सुवर्णकृष्णलं ह्येकमपहृत्य द्विजोत्तमः । कुर्यात्सान्तपनं कृच्छ्रं तत्पापस्यापनुत्तये ॥ ५ ॥
अपहृत्य सुवर्णस्य माषमात्रं द्विजोत्तमः । गोमूत्रयावकाहारस्त्रिभिर्मासैर्विशुद्ध्यति ॥ ६ ॥
सुवर्णस्यापहरणे वत्सरं यावकी भवेत् । ऊर्ध्वं प्राणान्तिकं ज्ञेयमथवा ब्रह्महव्रतम् ॥ ७ ॥
पाद उत्पन्नमात्रे तु द्वौ पादौ दृढतां गते । पादोनं व्रतमुद्दिष्टं हत्वा गर्भमचेतनम् ॥ ८ ॥

अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णे गर्भे चेतःसमन्विते । द्विगुणं गोव्रतं कुर्यादेषा गोघ्नस्य निष्कृतिः ॥ ९ ॥
पवित्रेष्ट्या विशुद्ध्यन्ति सर्वे घोराः प्रतिग्रहाः । ऐंदवेन मृगारेष्ट्या कदाचिन्मित्रविन्दया ॥ १० ॥
देव्या लक्षजपेनैव शुद्ध्यंते दुष्प्रतिग्रहात् ॥ ११ ॥

(३७) चतुर्विंशतिमत ।

गायत्र्यास्तु जपेत्कोटिं ब्रह्महत्यां व्यपोहति । लक्षाशीतिं जपेद्यस्तु सुरापानाद्विमुच्यते ॥ १ ॥
पुनाति हेमहर्तारं गायत्र्या लक्षसप्ततिः । गायत्र्या लक्षषष्ट्या तु मुच्यते गुरुतल्पगः ॥ २ ॥
लघुदोषे त्वनादिष्ट प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ३ ॥
चतुर्थमाश्रमं गच्छेद्ब्रह्मविद्यापरायणः । एकदण्डी त्रिदण्डी वा सर्वसङ्गविवर्जितः ॥ ४ ॥

(३८) उपमन्युस्मृति ।

शूद्रायां तु कामतोऽभ्यासे द्वादशवार्षिकम् ॥ १ ॥
पुनः शूद्रां गुरोर्गत्वा बुद्ध्या विप्रः समाहितः । ब्रह्मचर्यमदुष्टात्मा संचरेद्द्वादशाब्दिकम् ॥ २ ॥

(३९) कश्यपस्मृति ।

रजस्वला तु संस्पृष्टा ब्राह्मण्या ब्राह्मणी यदि । एकरात्रं निराहारा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ १ ॥
गां हत्वा तच्चर्मणा प्रावृतो मासं गोष्ठेशयस्त्रिषवणस्नायी नित्यं पञ्चगव्याहारः ॥ २ ॥
मासं पञ्चगव्येनेति षष्ठे काले पयोभक्षो वा गच्छन्तीष्वनुगच्छेत्तासु सुखोपविष्टासु चोपविशेन्नाति-प्लवं गच्छेन्नातिविषमेणावतारयेन्नाल्पोदके पाययेदन्ते ब्राह्मणान्भोजयित्वा तिलधेनुं दद्यात् ॥३॥

(४०) लौगाक्षिस्मृति ।

गुरोर्भार्यां तु यो वेश्यां मत्या गच्छेत्पुनःपुनः । लिङ्गाग्रं छेदयित्वा तु ततः शुद्ध्येत्स किल्बिषात्॥१॥
क्षेमं पूर्तं योगमिष्टमित्याहुस्तत्त्वदर्शिनः । अविभाज्ये च ते प्रोक्ते शयनासनमेव च ॥ २ ॥

(४१) क्रतुस्मृति ।

शूद्रहस्तेन यो भुङ्क्ते पानीयं वा पिबेत्कचित् । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ १ ॥
पूर्वसङ्कल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति ॥ २ ॥
यस्तु भुङ्क्ते द्विजः कश्चिदुच्छिष्टायां कदाचन । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३ ॥

(४२) पुलस्त्यस्मृति ।

मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं मांसं क्षत्रियवैश्ययोः । मधुप्रधानं शूद्रस्य सर्वेषां चाविरोधि यत् ॥ १ ॥
रजस्वला यदा दष्टा शुना जम्बूकरासभैः । पञ्चरात्रं निराहारा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ २ ॥
ऊर्ध्वं तु द्विगुणं नाभेर्वक्त्रे तु त्रिगुणं तथा । चतुर्गुणं स्मृतं मूर्ध्नि दष्टेऽन्यत्राप्लुतिर्भवेत् ॥ ३ ॥
पानसं द्राक्षमाधूकं खार्जूरं तालमैक्षवम् । मधूत्थं सैरमारिष्टं मैरेयं नालिकेरजम् ॥ ४ ॥
समानानि विजानीयान्मद्यान्येकादशैव तु । द्वादशं तु सुरा मद्यं सर्वेषामधमं स्मृतम् ॥ ५ ॥

(४३) शाण्डिल्यस्मृति ।

अवकीर्णी द्विजो राजा वैश्यश्चापि खरेण तु । इष्ट्वा भैक्षाशिनो नित्यं शुद्ध्यंत्यब्दात्समाहिताः ॥१॥
वानप्रस्थो यतिश्चैव स्कन्दने सति कामतः । पराकत्रयसंयुक्तमवकीर्णव्रतं चरेत् ॥ २ ॥

कृष्णयजुर्वेदके मैत्रायणीशाखाका ।

मानवगृह्यसूत्र--१ पुरुष--१ खण्ड ।

यदेनमुपेयात्तदस्मै दद्याद्बहूनां येन संयुक्तः ॥ ३ ॥ न स्नायादुदकं वाऽभ्यवेयात् ॥ १३ ॥
यदि स्नायाद्दण्ड इवाप्सु प्लवेत ॥ १४ ॥

मानवगृह्यसूत्र--१ पुरुष--२ खण्ड ।

आदेवोयातीति त्रिष्टुभं राजन्यस्य । युञ्जत इति जगतीं वैश्यस्य ॥ ३ ॥
एतेन धर्मेण द्वादशचतुर्विंशतिषट्त्रिंशतमष्टाचत्वारिंशतं वा वर्षाणि यो ब्राह्मणो राजन्यो वैश्यो वा ब्रह्मचर्यं चरति मुण्डः शिखाजटः सर्वजटो वा मलजुरवलः कृशः स्नात्वा स सर्वं विन्दते यत्कि-ञ्चिन्मनसेच्छतीति ॥ ६ ॥ एतेन धर्मेण साध्वधीते ॥ ७ ॥ आपोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाः शुचय इति द्वाभ्यां स्नात्वाऽहते वाससी परिधत्ते ॥ ११ ॥ वस्त्यसि वसुमन्तं मा कुरु सौवर्च-सायमातेजसे ब्रह्मवर्चसाय परिदधामीति परिदधाति ॥ १२ ॥ यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः । एवं मे प्राणमाबिभ एवं मे प्राणमारिषः इत्याङ्क्ते ॥१३॥ हिरण्यमाबध्नीते ॥१४॥

छत्रं धारयते दण्डं मालां गन्धम् ॥ १५ ॥ प्रतिष्ठेस्थो दैवते द्यावापृथिवीमामासन्तासमित्यु-पानहौ ॥ १६ ॥ द्विवस्त्रोऽत ऊर्ध्वं भवति तस्माच्छोभनं वासो भर्तव्यमिति श्रुतिः ॥ १७ ॥ आमन्त्र्य गुरुन् गुरुवंधूश्च स्वान् गृहान्व्रजेत् ॥ १८ ॥

मानवगृह्यसूत्र—१ पुरुष—७ खण्ड ।

अथोपनिषदर्हाः । ब्रह्मचारी सुचरितो मेधावी कर्मकृद्धनदः प्रियो विद्यां विद्ययान्वेष्यन्॥१॥तानि तीर्थानि ब्रह्मणः ॥२॥ पञ्च विवाहकारकाणि भवन्ति वित्तं रूपं विद्या प्रज्ञा बान्धव इति ॥ ६ ॥ एकालाभे वित्तं विसृजेद्द्वितीयालाभे रूपं तृतीयालाभे विद्यां प्रज्ञायां बान्धव इति च विवहन्ते ॥७॥ बन्धुमतीं कन्यामस्पृष्टमैथुनामुपयच्छेत समानवर्णामसमानप्रवरां यवीयसीं नग्निकां श्रेष्ठाम् ॥ ८ ॥

मानवगृह्यसूत्र—१ पुरुष—९ खण्ड ।

षडर्घ्या भवन्त्यृत्विगाचार्यो विवाह्यो राजा स्नातकः प्रियश्चेति ॥ १ ॥ अप्राकरणिकान्वा परिसंवत्सरादर्हयन्ति ॥ २ ॥

मानवगृह्यसूत्र १ पुरुष—१४ खण्ड ।

संवत्सरं ब्रह्मचर्यं चरतो द्वादशरात्रं [त्रिरात्रमेकरात्रं] वा॥१४॥अथास्यै गृहान्विसृजेत्॥ १५ ॥ योक्त्रपाशं विषाय तौ संनिपातयेत् । अपश्यं त्वा तपसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम् ।इह प्रजामिह रयिं रराणः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकाम॥अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनूं ऋत्विये नाधमानाम् । उपमामुच्चायुवतिर्बभूयाः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥ प्रजापतिस्तन्वं मे जुषस्व त्वष्टा देवैः सह मा न इन्द्रः । विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः पुंसां बहूनां मातरौ स्याव ॥ अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः । अहं प्रजा अजनयं पृथिव्या अहं जनिभ्योऽअपरीषु पुत्रान् ॥ इति स्त्र्यादिव्यत्यासं जपति ॥ १६ ॥ करदिति भसदभिमृशति ॥ १७ ॥ जननी-त्युपजननम् ॥१८॥ बृहदितिजातं प्रतिष्ठितम् ॥१९॥ एतेन धर्मेण ऋतावृतौ संनिपातयेत् ॥ २०॥

मानवगृह्यसूत्र—१ पुरुष—१५ खण्ड ।

तृतीये गर्भमासे अरणी आहृत्य षष्ठेऽष्टमे वा । जयप्रभृतिभिर्हुत्वा पश्चादग्नेर्दर्भेष्वासीनायाः (पत्न्याः) सर्वान्प्रमुच्य केशान्नवनीतेनाभ्यज्य त्रिश्येतया शलल्या शमीशाखया च सपलाशया पुनः पत्नीमग्निरदादिति सीमन्तं करोति ॥ १ ॥

मानवगृह्यसूत्र—१ पुरुष—१६ खण्ड ।

अष्टमे गर्भमासे जयप्रभृतिभिर्हुत्वा फलैः स्नापयित्वा या ओषधय इत्यनुवाकेनाहतेन वाससा प्रच्छाद्य गन्धपुष्पैरलंकृत्य फलानि कण्ठे वै संसृज्याऽग्निं प्रदक्षिणं कुर्यात् ॥ १ ॥ प्रजां मे नर्यपाहीति मन्त्रेणोपस्थानं कृत्वा गुणवतो ब्राह्मणान्भोजयेत् ॥ २ ॥ फलानि दक्षिणां दद्यात् ॥ ३ ॥ ततः स्वस्त्ययनं च ॥ ४ ॥ यो गुरुस्तमर्हयेत् ॥ ५ ॥

मानवगृह्यसूत्र—१ पुरुष १७ खण्ड ।

पुत्रे जाते वरं ददाति ॥ १ ॥ अरणिभ्यामग्निं मथित्वा तस्मिन्नायुष्यहोमाञ्जुहोति ॥ २ ॥ अग्ने-रायुरसीत्यनुवाकेन प्रत्यृचं प्रतिपर्यायमेकविंशतिमाज्याहुतीर्जुहोति ॥ ३ ॥ आज्यशेषे दधिमध्व-पोहिरण्यशकलेनोपहत्य त्रिः प्राशयति ॥ ४ ॥ अश्माभव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव। वेदो वै पुत्रनामासि, स जीव शरदः शतम् ॥ इति प्रादेशेनाध्यधिपतिमुखं प्रदक्षिणं सर्वतोऽभ्युद्दिशति ॥ ५ ॥ पलाशस्य मध्यमपर्णं प्रवेष्ट्य तेनास्यकर्णयोर्जपेत् । भूस्ते ददामीति दक्षिणे । भुवस्ते ददामीति सव्ये । स्वस्ते ददामीति दक्षिणे । भूर्भुवः स्वस्ते ददामीति सव्ये ॥ ६ ॥ इषंपिन्वोर्जंपि-न्वेति स्तनौ प्रक्षाल्य प्रधापयेत् ॥ ७ ॥

मानवगृह्यसूत्र—१ पुरुष ८१ खण्ड ।

दशम्यां रात्र्यां पुत्रस्य नाम दध्यात् । घोषवदाद्यन्तरन्तस्थं द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा । त्र्यक्षरं दान्तं कुमारीणाम् ॥ १ ॥ तेनाभिवादयितुं, त्यक्त्वा पितुर्नामधेयं, यशस्यनामधेयं देवताश्रयं, नक्षत्रा-श्रयं देवतायाश्च प्रत्यक्षं प्रातिषिद्धम् ॥ २ ॥ स्नात्वा सह पुत्रोऽभ्युपैति ॥ ३ ॥ अथैनमभिमृ-शति अग्नेष्ट्वा तेजसा सूर्यस्य वर्चसा विश्वेषां त्वा देवानां क्रतुनाभिमृशामीति प्रक्षालितपाणिर्न-वनीतेनाभ्यज्याग्नौ प्रताप्य, ब्राह्मणाय प्रोच्याभिमृशेदिति श्रुतिः ॥ ४ ॥ वरकर्त्रे ददाति ॥ ५ ॥

मानवगृह्यसूत्र—१पुरुष१९ खण्ड ।

अथादित्यदर्शनम् ॥१॥ चतुर्थे मासि पयसि स्थालीपाकं श्रपयित्वा तस्य जुहोति ॥२॥ आदित्यः शुक्र उदगात्पुरस्तात्, हंसः शुचिषत्, यदेदेनमिति सूर्यस्य जुहोति॥३॥ उदुत्यंजातवेदसमित्येतयो-पस्थायादित्यस्याभिमुखं दर्शयेत् । नमस्ते अस्तु भगवन् शतरश्मे तमोनुद । जहि मे देव दौर्भाग्यं सौभाग्येन मां संयोजयस्व इति ॥ ४ ॥ अथ ब्राह्मणतर्पणम् ॥ ५ ॥ ऋषभो दक्षिणा ॥ ६ ॥

मानवगृह्यसूत्र—१ पुरुष २०—खण्ड ।

अथान्नप्राशनम्॥ १॥पञ्चमे षष्ठे वा मासि पयसि स्थालीपाकं श्रपयित्वा, स्नातमलंकृतमहतेन वाससा प्रच्छाद्याऽन्नपतेऽन्नस्यनोदेहीति हुत्वा, हिरण्येन प्राशयेदन्नात्परिस्रुत इत्यृचा ॥२॥ रत्नसुवर्णोपस्करा-ण्यायुधानि दर्शयेत्॥ ३॥यदिच्छेत्तदुपसंगृह्णीयात्॥४॥ततो ब्राह्मणभोजनम्॥५॥ वासो दक्षिणा॥६॥

मानवगृह्यसूत्र—१पुरुष २१ खण्ड ।

तृतीयस्य वर्षस्य भूयिष्ठे गते चूडाः कारयेत् । उदगयने ज्यौत्स्ने पुण्ये नक्षत्रेऽन्यत्र नवम्याः ॥१॥ जयप्रभृतिभिर्हुत्वा-उष्णेन वायुरुदकेनेद्यजमानस्यायुषा । सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे ॥ इत्युष्णा आपोऽभिमन्त्रयते ॥ २ ॥ अदितिः केशान्वपत्वापउन्दन्तु जीवसे । धारयतु प्रजापतिः पुनः पुनः स्वस्तये ॥ इत्यभ्युन्दन्ति ॥ ३ ॥ ओषधे त्रायस्वैनमिति दक्षिणस्मिन्केशान्ते दर्भम-न्तर्दधाति ॥४॥ स्वधिते मैनं हिंसीरिति क्षुरेणाभिनिदधाति ॥५॥ येनावपत्सविताक्षुरेण सोमस्य-राज्ञो वरुणस्य केशान् । तेन ब्राह्मणोव्वपत्वायुष्मानयं जरदष्टिरस्तु ॥ येन पूषाबृहस्पतेरिन्द्रस्य-चायुषेऽवपत् । तेन ते वपाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय जीवसे । येन भूयंश्चरत्ययं ज्योक्च पश्यति सूर्यः ।तेन ते वपाम्यायुषे सुश्लोयक्याय स्वस्तये ॥ इति तिसृभिस्त्रिः प्रवपति ॥ ६ ॥ यत्क्षुरेण वर्त्तयता सुते-जसा वांतर्वपसि केशान्॥शुन्धि शिरोमास्यायुः प्रमोषीः इति लौहायसं क्षुरं केशवापाय प्रयच्छति ॥ ७ ॥ मा ते केशाननुगाद्वर्च एतत्तथा धाता दधातु ते । तुभ्यमिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिः सविता वर्च आदधुः ॥ इति प्रवपतोऽनुमन्त्रयते ॥ ८ ॥ सुहृत्पारिग्राहं हरितगोशकृत्पिण्डे समवचिनोति ॥ ९ ॥ उप्त्वा य केशान्वरुणस्य राज्ञो बृहस्पतिः सविता विष्णुरग्निः । तेभ्यो निधानं महतं न विदन्नन्तराद्यावापृथिव्योरपस्युः ॥ इति प्रागुदीचो ह्रियमाणाननुमन्त्रयते ॥ १० ॥ अनिक्ते पत्न्या श्लेषयेदिति श्रुतिः ॥११॥ वरं कर्त्रे ददाति । पक्ष्मगुडं तिलपिञ्जलं च केशवापाय ॥ १२ ॥ एतेन तु कल्पेन षोडशे वर्षे गोदानम् । अग्निं वाध्येष्यमाणस्थमाग्निगोदानिकोमैत्राय-णिरिति श्रुतिः ॥१३ ॥ अदितिः श्मश्रु वपत्वित्युहनैं श्मश्रु प्रवपतिशुन्धिमुखमिति च ॥ १४ ॥

मानवगृह्यसूत्र—१ पुरुष—२२ खण्ड ।

सप्तमे नवमे वोपायनम् ॥ १ ॥ आगन्त्रासमगन्महि प्रथममर्तिं युयोतु नः । अरिष्टाः संचरेमहि स्वस्ति चरतादिशः । स्वस्त्यागृहेभ्यः ॥ इत्युप्तकेशेन स्नातेनाक्तेनाभ्यक्तेनालङ्कृतेन यज्ञोपवी-तिना समेत्य जपति॥२॥अथास्मै वासः प्रयच्छति । या अकृन्तन्या अतन्वन्या आवन्या अवाहरन् । याश्चग्नादेव्योऽन्तानभितोऽततनन्त । तास्त्वा देव्यो जरसे संव्ययन्त्वायुष्मन्निदं परिधत्स्व वासः ॥ इत्यहतं वासः परिधाप्यान्वारभ्याघारावाज्यभागौ हुत्वाऽऽज्यशेषे दध्यानीय—दधिक्राव्णोअकारिष-मिति दधिः त्रिः प्राश्नाति ॥ ३ ॥ को नामासीत्याह ॥४ ॥ नामधेये प्रोक्ते देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाम्यसाविति हस्तं गृह्णन्नाम गृह्णाति । प्राङ्-मुखस्य प्रत्यङ्मुख ऊर्ध्वस्तिष्ठन्नासीनस्य दक्षिणमुत्तानं दक्षिणेन नीचारिक्तमरिक्तेन—सविता ते हस्तमग्रहीदसावग्निराचार्यस्तवा देवसावितरेष ते ब्रह्मचारी त्वं गोपाय समावृतन् ॥ कस्य ब्रह्मचार्यसि । प्राणस्य ब्रह्मचार्यसि । कस्त्वा कमुपनयते । काय त्वा परिददामि । कस्मै त्वा परिददामि । भगाय त्वा परिददामि । अर्यम्णे त्वा परिददामि । सवित्रे त्वा परिददामि । सर-स्वत्यै त्वा परिददामि । इन्द्राग्निभ्यां त्वा परिददामि । विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि । सर्वे-भ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामीति परिददाति ॥ ५ ॥ ब्रह्मणो ग्रन्थिरसि स ते माविस्रसदिति हृदय-देशमारभ्य जपति । प्राणानां ग्रन्थिरसीति प्राणदेशम् ॥ ६ ॥ ऋतस्य गोप्त्री तपसस्तरुत्री घ्नती रक्षः सहमाना अरातीः । सा नः समन्तमभिपर्येहि भद्रे धर्त्तारस्ते सुभगे मेखले मा रिषाम ॥ इति मौञ्जीं पृथ्वीं त्रिगुणां मेखलामादत्ते ॥ ७ ॥ युवासुवासा इति मेखलां प्रदक्षिणं त्रिः परिव्ययति ॥ ८ ॥ पुंसस्त्रीन् ग्रन्थीन्बध्नाति ॥ ९ ॥ इयं दुरुक्तात्परिबाधमाना वर्णं पुराणं पुनती म आगात् । प्राणापानाभ्यां बलमाभजन्ती शिवा देवी सुभगे मेखले मारिषाम॥इति तस्मां

परिवीतायां जपति । मम व्रते ते हृदयं दधातु मम चित्तमनुचित्तन्ते अस्तु । ममवाचमेकव्रतो जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ इति ॥ १० ॥ यज्ञियवृक्षस्य दण्डं प्रादाय कृष्णाजिनं चादित्यमुपस्थापयति । अध्वनामध्वपते श्रेष्ठस्य स्वस्तस्याध्वनः पारमशीय । तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् । शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शत भूयश्च शरदः शतात् ॥ या मेधाऽप्सरःसु गन्धर्वेषु च यन्मनः । देवी या मानुषी मेधा सा मामाविश्वतादिहैव ॥ इति ॥ ११ ॥ अभिदक्षिणमानीयाऽग्नेः पश्चात्—एह्यश्मानमातिष्ठाश्मेव त्व स्थिरो भव । कृण्वन्तु विश्वेदेवा आयुष्टे शरदः शतम् । इति दक्षिणेन पादेनाश्मानमास्थापयति ॥ १२ ॥ पश्चादग्नेर्महदुपस्तीर्य सूपस्थलं कृत्वा प्राङासीनः प्रत्यङ्ङासीनायानुवाचयति । गायत्रीं सावित्रीमपि ह्येके त्रिष्टुभमपि ह्येके जगतीमोमित्युक्त्वा व्याहृतिभिश्च ॥ १३ ॥ तां त्रिरवगृह्णीयात्तां द्विरवकृत्य तां सकृत्समस्येत् । पादशोऽर्द्धर्चशः सर्वामन्तत ॥ १४ ॥ यत्तिसृणां प्रातरन्वाह । यद्द्वयोर्यदेकस्याः संवत्सरे द्वादशाहे षडहे त्र्यहे वा । तस्मात्सद्योऽनूच्येति श्रुतिः ॥ १५ ॥ वरं कर्त्रे ददाति कांस्यं वसनं च ॥ १६ ॥ यस्य तु मेधाकामः स्यात्पलाशं नवनीतेनाभ्यज्य तस्य छायायां वा वसेत्—सुश्रवः सुश्रवा असि । यथा त्वं सुश्रवः सुश्रवा असि एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु ॥ यथा त्वं देवानां वेदानां निधिपो असि । एवमहं मनुष्याणां वेदानां निधिपो भूयासम् ॥ १७ ॥ इति अधीते ह वा अयमेषां वेदानामेकं द्वौ त्रीन्सर्वान्वेति यमेवं विद्वांसमुपनयतीति श्रुतिः ॥ १८ ॥ व्याख्यातं ब्रह्मचर्यम् ॥ १९ ॥ अथ भैक्षं चरत मातरमेवाग्रे याश्चान्याः सुहृदो यावत्यो वा संनिहिताः स्युः ॥ २० ॥ आचार्याय भैक्षमुपकल्पयते । तेनानुज्ञातो भुञ्जीतेति श्रुतिः ॥ २१ ॥

मानवगृह्यसूत्र—२ पुरुष—३ खण्ड ।

अग्नये स्वाहेति सायं जुहोति प्रजापतय इति द्वितीयाम् ॥ १ ॥ सूर्याय स्वाहेति प्रातः । प्रजापतय इति द्वितीयाम् ॥ २ ॥ अग्नीषोमीयः स्थालीपाकः पौर्णमास्यामैन्द्राग्नोऽमावास्यायाम् । उभयत्र चाग्नेयः । आगन्तुः पूर्वः पौर्णमास्यामुत्तरोऽमावास्यायाम् ॥ ३ ॥ आश्वयुज्यां पौर्णमास्यां प्रातर्नित्येषु स्थालीपाकेषु स्थालीपाकमन्वायातयति ॥ ४ ॥ तस्याग्निं रुद्रं पशुपतिमीशानं त्र्यम्बकं शरदं पृषातकं गा इति यजति ॥ ५ ॥ दधिघृतमिश्रः पृषातकः । तस्यानो मित्रावरुणा प्रवाहवेति च हुत्वा । अम्भःस्थाम्भावो भक्षीयेति गाः प्राशापयति ॥ ६ ॥ अवसृष्टाश्च वसेयुः ॥ ७ ॥ ब्राह्मणान्घृतवद्भोजयेत् ॥ ८ ॥ नानिष्ट्वाग्रयणेन नवस्याश्नीयात् ॥ ९ ॥ पर्वण्याग्रयणं कुर्वीत । वसन्ते यवानां शरदि व्रीहीणाम् ॥ १० ॥ अग्रपाकस्य पयसि स्थालीपाकं श्रपयित्वा । तस्य जुहोति । सजूरग्नेन्द्राभ्यां स्वाहा । सजूर्विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । सजूर्द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा । सजूः सोमाय स्वाहेति ॥ ११ ॥ शरदि सोमाय श्यामाकानां वसन्ते वेणयवानाम् । उभयत्र वाज्येन ॥ १२ ॥ वत्सः प्रथमजो दक्षिणा ॥ १३ ॥ ब्राह्मण एव हविःशेषं भुञ्जीतेति श्रुतिः ॥ १४ ॥

मानवगृह्यसूत्र—२ पुरुष—८ खण्ड ।

तिस्रोऽष्टकाः ॥ १ ॥ ऊर्ध्वमाग्रहायण्याः प्राक्फाल्गुन्यास्तामिस्राणामष्टम्यः ॥ २ ॥

मानवगृह्यसूत्र—२ पुरुष—१२ खण्ड ।

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य सायं प्रातर्बलिं हरेत् ॥ १ ॥ अग्नीषोमौ धन्वन्तरिं विश्वान्देवान्प्रजापतिमग्निं स्विष्टकृतमित्येवं होमो विधीयते ॥ २ ॥ अथ बलिं हरत्यग्नये नमः सोमाय । धन्वन्तरये । विश्वेभ्यो देवेभ्यः । प्रजापतये अग्नये स्विष्टकृत इत्यग्न्यागार उत्तरामुत्तराम् ॥ ३ ॥ अद्भ्य इत्युदकुम्भसकाशे ॥ ४ ॥ ओषधिभ्य इत्योषधिभ्यो वनस्पतिभ्य इति मध्यमायां स्थूणायाम् ॥ ५ ॥ गृह्याभ्यो देवताभ्य इति गृहमध्ये ॥ ६ ॥ धर्मायाधर्मायेति द्वारे ॥ ७ ॥ मृत्यव आकाशायेत्याकाशे ॥ ८ ॥ अन्तर्गोष्ठायेत्यन्तर्गोष्ठे ॥ ९ ॥ बहिर्वैश्रवणायेति बहिः प्राचीम् ॥ १० ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्य इति वश्मान ॥ ११ ॥ इन्द्रायेन्द्रपुरुषेभ्य इति पुरस्तात् ॥ १२ ॥ यमाय यमपुरुषेभ्य इति दक्षिणतः ॥ १३ ॥ वरुणाय वरुणपुरुषेभ्य इति पश्चात् ॥ १४ ॥ सोमाय सोमपुरुषेभ्य इत्युत्तरतः ॥ १५ ॥ ब्रह्मणे ब्रह्मपुरुषेभ्य इति मध्ये ॥ १६ ॥ प्राचीमापातिकेभ्यः सम्पातिकेभ्य ऋक्षभ्यो यक्षेभ्यः पिपीलिकाभ्यः पिशाचेभ्योऽप्सरोभ्यो गन्धर्वेभ्यो गुह्यकेभ्यः शैलेभ्यः पन्नगेभ्यः ॥ १७ ॥ दिवाचारिभ्यो भूतेभ्य इति दिवा । नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्य इति नक्तम् ॥ १८ ॥ धन्वन्तरये धन्वन्तरितर्पणम् ॥ १९ ॥ अद्भिः संसृज्य पितृभ्यः स्वधेति शेषं दक्षिणाभूमौ निनयेत् ॥ २० ॥ पाणी प्रक्षाल्याचम्यातिथिं भोजयित्वाऽवशिष्टस्याश्नीयात् ॥ २१ ॥

॥ इति धर्मशास्त्रसंग्रहपरिशिष्ट समाप्त ॥

संज्ञाशब्दार्थ।

अण्डज–पक्षी, सर्प, घड़ियाल, मछली और कछुए तथा इसी प्रकारके अन्य स्थलचर और जलचर जीव अण्डज हैं–मनुस्मृति, १ अध्याय, ४४ श्लोक।

अग्नि–गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि और आहवनीयाग्नि, यही तीनों अग्नि श्रेष्ठ हैं मनुस्मृति, २ अ० २३१ श्लोक (सभ्याग्नि और आवसथ्याग्नि सहित पञ्चाग्नि होताहै आगे पञ्चाग्निमें लिखाहै)।

अतिथि–केवल एक रात अन्यके गृहमें वसनेवाले ब्राह्मणको अतिथि कहतेहैं; जिसकी अनित्य स्थिति है वही अतिथि कहाजाता है। जो ब्राह्मण एकही गांवका वसनेवाला है या परिहाससे जीविका करनेवाला है अथवा जिसके साथ भार्या या अग्नि है वह अतिथि नहीं समझाजाता–मनुस्मृति, ३ अध्याय, १०२। १०३ श्लोक वसिष्ठस्मृति, ८ अध्याय, ७–८ श्लोक और पाराशरस्मृति. १ अध्याय, ४२ श्लोक । गृहस्थप्रकरणमें देखिये।

अधमसाहस– २७० पणका अधमसाहस दण्ड कहलाता है–याज्ञवल्क्य, १ अध्याय, ३६६ श्लोक। २५० पणका प्रथमसाहस अर्थात् अधमसाहस होता है– मनुस्मृति, ८ अध्याय, १३८ श्लोक और वृहद्विष्णुस्मृति, ४ अध्याय, १४ श्लोक।

अनसूया–गुणवालेके गुणोंको नष्ट नहीं करना, अन्यके गुणोंकी बड़ाई करना और अन्यके दोषोंकी हंसी नहीं करना उसे अनसूया कहते हैं–अत्रिस्मृति, ३४ श्लोक।

अनायास–जिस शुभ या अशुभ कर्म करनेसे शरीरको दुःख हो उसको अत्यन्त नहीं करना उसे अनायास कहते हैं अत्रिस्मृति, ३७ श्लोक।

अस्पृहा–अकस्मात् प्राप्त सम्पूर्ण वस्तुआम सतोष करना और परकी स्त्रियोंकी इच्छा नहीं करना उसको अस्पृहा कहते हैं–अत्रिस्मृति, ३८ श्लोक।

अन्तेवासी–जिसको शिल्प सीखनेकी इच्छा होवे वह आचार्यसे रहनेके समयका निश्चय करके उसके गृहमें रह आचार्य उसको अपने घरसे भोजन देकर शिक्षा देवे, उससे दूसरा काम नहीं करावे। शिल्प सीखनेवाला शिल्प शिक्षा प्राप्त होजानक बाद भी जितने दिन आचार्यके घर रहनेका निश्चय किया होवे उतने दिनतक वहां रहे और शिल्प कार्य करनेसे जो धन मिल वह आचार्यको देवे। निश्चय कियेहुए समयमें शिल्प विद्या सीखकर गुरुको प्रदक्षिणा और यथाशक्ति सत्कार करके अन्तेवासी अपने घर जावे–नारदस्मृति, ५ विवादपद, १५–१६ और १८–१९ श्लोक याज्ञवल्क्यस्मृति, २ अध्याय, १८८ श्लोकमें प्रायः ऐसा है।

अन्त्यज–धोबी, चमार, नट, बंसफोर, कैवर्त, मेद (व्याध विशेष), और भील ये ७ जाति अन्त्यज कहलातेहैं–अत्रिस्मृति १९५—१९६ श्लोक, अङ्गिरास्मृति–३ श्लोक और यमस्मृति ३३ श्लोक।

अयाचित—जो वस्तु विना मांगे मिलजाय उसे अयाचित कहते हैं विष्णुस्मृति, ४ अध्याय, ११ श्लोक।

अष्टका—अगहन, पूस और माघके कृष्णपक्षकी तीन अष्टमीको अष्टका कहतेहैं–उशनस्मृति, ३ अध्याय, ७२ श्लोक। पूस, माघ, और फाल्गुनके कृष्णपक्षकी ३ अष्टमीको अष्टका कहतेहैं–मानवगृह्यसूत्र, २ पुरुष, ८ खण्ड, १–२ अङ्क।

अकृतअन्न—धान आदि (विनाकुटेहुए) अन्नको अकृत अन्न कहतेहैं—कात्यायनस्मृति, २४ खण्ड, ३ श्लोक।

अन्वाहार्यश्राद्ध—जिसकर्मके आदिमें श्राद्ध होताहै और अन्तमें दक्षिणा दीजातीहै और अमावस्याको दूसरा श्राद्ध होताहै उसे अन्वाहार्य कहतेहैं–कात्यायन, २७ खण्ड, १ श्लोक।

अक्षत–यवको अक्षत कहतेहैं–कात्यायन, २८ खण्ड, १ श्लोक।

अर्घ्य–अक्षत, फूल और दहीसे युक्त जल अर्घ्य कहलाता है, जिस अपने पूज्यको अर्घ्य देना हो उसकी अञ्जलीमें कांसेके पात्रसे अर्घ छोड़े–कात्यायनस्मृति, २९ खण्ड, १८–१९ श्लोक।

अपच–जो ब्राह्मण गृहस्थ धर्ममें रहकर किसीको कुछ नहीं देताहै धर्मतत्त्वके ज्ञाता ऋषियोंने उसको अपच कहाहै—पाराशरस्मृति, ११ अध्याय, ५०–५१ श्लोक।

अपराह्ण—पन्द्रह मुहूर्तका दिन होताहै,—उसमेंसे ३ मुहूर्त प्रातःकाल, ३ मुहूर्त सङ्गवकाल, ३ मुहूर्त मध्याह्नकाल, ३ मुहूर्त अपराह्नकाल और ३ मुहूर्त सायंकाल रहता है। इस भांति ५ प्रकारके काल होतेहैं (पांच प्रकारसे विभाग किये दिनके चौथे भागको अपराह्ण कहतेहैं) प्राजापतिस्मृति, १५६–१५७ श्लोक।

अग्रेदिधिपू–जब बड़ी बहिनके कुमारी रहनेपर छोटी बहिन विवाही जातीहै तब छोटी बहिन अग्रेदिधिपू और बड़ी बहिन दिधिपू कहलाती है देवलस्मृति–द्विजातिकी दोबार विवाहीहुई कन्याके पतिको अग्रेदिधिपू कहते हैं–अमरकोश, २ काण्ड, मनुष्यवर्ग, २३ श्लोक।

अघमर्षण–व्रतप्रकरणमें देखिये ।

आचार्य–जो ब्राह्मण शिष्यको जनेऊ देकर यज्ञविधि और उपनिषद्के सहित वेदोंको पढाता है उसको आचार्य कहतेहैं–मनुस्मृति, २ अध्याय, १४० श्लोक; याज्ञवल्क्य, १ अध्याय, ३४ श्लोक और व्यासस्मृति, ४ अध्याय, ४३ श्लोक ।

आद्यश्राद्ध–मरनेके ग्यारवें दिन (ब्राह्मणका) आद्यश्राद्ध होता है–याज्ञवल्क्यस्मृति, १ अध्याय, २५६ श्लोक और वृद्धशातातपस्मृति, ४० श्लोक ।

आततायी–तलवारसे मारनेके लिये, विष देनेके लिये, आग लगानेके लिये, शाप देनेके लिये, अभिचार द्वारा वध करनेके लिये चुगुली करके राजासे वध करानेके लिये और भार्या हरण करनेके लिये जो उद्यत होते हैं, इन्हीं ७ को आततायी कहतेहैं तथा यश, धन और धर्म हरण करनेवाले भी आततायी कहलाते हैं–वृहद्विष्णुस्मृति, ५ अध्याय–१८७–१८८ श्लोक । आगलगानेवाला, विषदेनेवाला, शस्त्र हाथमें लेकर मारनेकेलिये आनेवाला, धनहरण करनेवाला, खेत हरण करनेवाला और स्त्री हरण करनेवाला, ये ६ आततायी हैं–वसिष्ठस्मृति, ३ अध्याय, १९ श्लोक ।

आढक–१६ गण्डेके सेरसे ४ सेरका आढक होता है–विष्णुधर्मोत्तर और भविष्य पुराण ।

आग्नेयतीर्थ–हथेलीके बीचमें आग्नेयतीर्थ है–वसिष्ठस्मृति, ३ अध्याय, ६० अंक ।

आत्रेयी–रजस्वला होकर ऋतुस्नानकीहुई स्त्रीको आत्रेयी कहतेहैं–वसिष्ठस्मृति, २० अध्याय, ४२ अङ्क ।

इन्द्रिय–कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, गुदा, लिङ्ग, हाथ, पांव और वाक् यही १० इन्द्रिय हैं, इनमें प्रथमके ५ ज्ञानेन्द्रिय और गुदाआदि पिछले ५ कर्मेन्द्रिय हैं—मनुस्मृति, २ अध्याय, ९०—९१ श्लोक । मनको ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों कहते हैं–याज्ञवल्क्य, ३ अध्याय, ९२ श्लोक ।

इष्ट–अग्निहोत्र, तपस्या, सत्य, वेदोंकी रक्षा, अतिथिसत्कार और बलिवैश्वदेव इन्हें इष्ट कहतेहैं–अत्रिस्मृति ४४ श्लोक और लिखितस्मृति, ५ श्लोक ।

उद्भिज्ज—वृक्षआदिस्थावर उद्भिज्ज हैं, इनमेंसे अनेक बीजसे और अनेक रोपीहुई शाखासे उत्पन्न होतेहैं मनुस्मृति, १ अध्याय, ४६ श्लोक ।

उपाध्याय–जो लोग जीविकाकेलिये वेदका एक अंग अथवा वेदांग पढ़ातेहैं उन्हें उपाध्याय कहते हैं–मनुस्मृति–२ अध्याय, १४९ श्लोक । जो लोग वेदके एकदेशकी शिक्षा देते हैं वे उपाध्याय कहलाते हैं याज्ञवल्क्यस्मृति, १ अध्याय, ३५ श्लोक ।

उत्तमसाहस– एकहजार पणका उत्तमसाहस होता है–मनुस्मृति, ८ अध्याय, १३८ श्लोक और बृहद्विष्णुस्मृति, ४ अध्याय, १४ श्लोक । एकहजार अस्सी पणका उत्तमसाहस होताहै–याज्ञवल्क्यस्मृति, १ अध्याय, ३६६ श्लोक विष देने, शस्त्र आदिसे मारने और परकी स्त्रीसे दुष्ट व्यवहार करनेको तथा प्राण नाश करनेवाले अन्य कर्म करनेको उत्तमसाहस कहते हैं । उत्तमसाहसका दण्ड यथायोग्य १००० पण दण्ड लेना, वधकरना, सर्वस्व हरण करना, पुरसे निकाल देना, शरीरमें चिह्न दाग देना और अङ्ग काटना है–नारदस्मृति, १४ विवादपद, ६–८ और ९ श्लोक ।

उपनिधि–यदि कोई पेटारे आदि किसी बासनमें बन्द करके बिना गिनाये हुए द्रव्य रक्षाके लिये अन्य किसीके पास रखदेता है तो वह उपनिधि कहलाता है–याज्ञवल्क्य, २ अध्याय, ६६ श्लोक और नारदस्मृति, २ विवादपद २ श्लोक ।

उपकुर्वाणक–जो २६ वर्षका द्विज केशान्त संस्कारतक यथोक्त ब्रह्मचर्य व्रत करता है वह उपकुर्वाणक कहलाता है–व्यासस्मृति, १ अध्याय, ४१ श्लोक ॥

ऋत्विक्–जो ब्राह्मण अग्निस्थापन कार्य पाकयज्ञ और अग्निष्टोम आदि यज्ञ कराते हैं उनको ऋत्विक् कहते हैं मनुस्मृति २ अध्याय, १४३ श्लोक । जो ब्राह्मण यज्ञ कराते हैं उनको ऋत्विक् कहते हैं–याज्ञवल्क्य; १ अ० ३५ श्लोक ।

ऋणदान–देनेयोग्य अथवा नहीं देने योग्य ऋण किसी प्रकार धनग्रहणकी रीतिसे लिया जाय वह ऋणदान कहाता है–नारदस्मृति, १ विवादपद, ३ अ० १ श्लोक ।

एणमृग–कालेमृगको एण कहते हैं–कात्यायनस्मृति, २७ खण्ड, ११ श्लोक ।

ओषधी–जो (धान, गेहूं आदि) बहुत फूल फलोंसे युक्त होते हैं और फलके पक जानेपर सूख जाते हैं उन्हे ओषधी कहते हैं–मनुस्मृति, १ अध्याय, ४६ श्लोक । धान, साठी धान, मूंग, गेहूं, सरसों तिल और यव ये सप्त ओषधी हैं कात्यायनस्मृति, २६ खण्ड, १३ श्लोक ।

औदुम्बरायण–जो ब्रह्मचारी विवाह करके ६ मास अथवा १ वर्षतक स्त्रीका संग नहीं करता है घरमें रहते हुए भी उसको औदुम्बरायण कहते हैं–विष्णुस्मृति, १ अध्याय, २७ श्लोक ।

कला–अट्ठारह पलका एक काष्ठा और तीस काष्ठाका एक कला होता है–मनुस्मृति, १ अध्याय ६४ श्लोक।

कवक–भूमिमें उत्पन्न कवल (छत्राक) नहीं खाना चाहिये—मनुस्मृति, ६ अध्याय, १४ श्लोक।

कर्मेन्द्रिय– गुदा, लिङ्ग, हाथ, पांव और वाक्य या जीभ, ये ५ कर्मेन्द्रिय हैं–मनुस्मृति, २ अध्याय, ९०–९१ श्लोक और याज्ञवल्क्यस्मृति, ३ अध्याय, ९२ श्लोक।

कर्ष–५ गुञ्जाका १ माष और १६ माषका १ कर्ष होताहै–वृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र–८अध्याय,३०५श्लोक।

काष्ठा–१८ पलकी एक काष्ठा होती है– मनु, १ अध्याय, ६४ श्लोक।

कार्षापण–कर्षभर अर्थात् ८० रत्ती ताम्बेका कार्षापण तथा पण होता है,मनुस्मृति, ८ अध्याय,१३६ श्लोक और वृहद्विष्णुस्मृति, ४ अध्याय, १३ अङ्क। १६ पणको कार्षापण तथा कार्षिक कहते हैं–मेदिनी।

काम्यस्नान–पुष्य नक्षत्र आदिमें जो ज्योतिषके अनुसार स्नान किया जाताहै वह काम्य स्नान कहलाता है शंखस्मृति, ८ अध्याय, ४ श्लोक।

कायतीर्थ–कनिष्ठिका अंगुलीके मूलमें कायतीर्थ अर्थात् प्रजापति तीर्थ कहागया है–मनुस्मृति, २ अध्याय, ५९ श्लोक और शंखस्मृति, १० अध्याय, १ श्लोक।

कायिकावृद्धि–व्याजके बदलेमें शरीरसे काम लिया जाता है वह कायिका वृद्धि कहलाती है–नारदस्मृति, १ विवादपद, ४ अध्याय, ३० श्लोक।

कालिकावृद्धि–महीने महीने व्याज लिया जाता है वह कालिकावृद्धि कही जाती है–नारद, १ विवादपद ४ अ० ३० श्लोक।

कारितावृद्धि–जब ऋणी स्वयं स्वीकार करता है कि करारपर ऋण नहीं चुकादेंगे तब इतना अधिक व्याज देंगे तो वह कारितावृद्धि कहाती है–नारदस्मृति, १ विवादपद, ४ अध्याय, ३१ श्लोक।

कुण्ड–पतिके जीवित रहनेपर अन्य पुरुषसे उसकी स्त्रीमें जो पुत्र उत्पन्न होता है उसको कुण्ड कहते हैं–मनुस्मृति, ३ अध्याय, १७४ श्लोक और लघु आश्वलायनस्मृति, २१ श्लोक निन्द्यप्रकरण १३ श्लोक।

कुतप–दिनके आठवें भाग (८ वें मुहूर्त) में सूर्यका तेज मन्द होता है उस कालको कुतपकाल कहते हैं उससमय श्राद्ध करनेसे पितरोंकी अक्षय तृप्ति होतीहै–वसिष्ठस्मृति, ११ अध्याय, ३३ श्लोक, शातातप स्मृति, १०९ लोक और लघुहारीतस्मृति, ९९ श्लोक। सदा १५ मुहूर्तका दिन होताहै, उसका आठवां मुहूर्त कुतपकाल कहलाता है–प्रजापतिस्मृति, १५९ श्लोक। सातवें मुहूर्तके पीछे और नवें मुहूर्तके पहिले के समयको पण्डित लोग कुतपकाल कहते हैं–लघुहारीतस्मृति, १०९ श्लोक, ब्राह्मण, कम्बल, गौ, सूर्य, अग्नि, अतिथि, गुरु, तिल, कुशा और समय ये १० कुतप कहलाते हैं–लघुहारीतस्मृति, ९८ श्लोक।

कुम्भ–१६ पलका एक प्रस्थ, १६ प्रस्थका एक द्रोण और दो २ द्रोणका १ कुम्भ–भविष्य पुराण और वैद्यकपरिभाषा।

कृष्णल (रत्ती)–लोकव्यवहारमें ताम्बा रूपा और सोनाका परिमाण कहताहूं, झरोखेके छिद्रोंमें होकर आये हुए सूर्यके किरणोंमें जो सूक्ष्म धूलीकी कण दीख पडती है उसे त्रसरेणु कहते हैं, ८ त्रसरेणुका १ लिक्षा, ३ लिक्षाका एक राजसर्षप, ३ राजसर्षपका एक गौर सर्षप, ६ गौर सर्षपका एक मध्यम यव और ३ यवका एक कृष्णल (अर्थात् रत्ती) होता है–मनुस्मृति, ८ अध्याय १३१—१३४ श्लोक, याज्ञवल्क्य, १ अध्याय, ३६२–३६३ श्लोक और वृहद्विष्णुस्मृति, ४ अध्याय, १–६ अङ्क।

कृतअन्न—भात और सत्तूआदि (पकायेहुए तथा पीसेहुए) अन्नको कृतान्न कहतेहैं–कात्यायनस्मृति, २४ खण्ड, ३ श्लोक।

कृताकृतअन्न—चावलआदि (कूटेहुए) अन्नको कृताकृतअन्न कहतेहैं। कात्यायनस्मृति, २४ खण्ड, ३ श्लोक।

क्रियाङ्गस्नान–पवित्र मन्त्रोंके जपनेके लिये अथवा देवपितरोंकी पूजा करनेके लिये जो स्नान कियाजाता है उसको क्रियाङ्गस्नान कहते हैं–शङ्खस्मृति, ८ अध्याय, ५ श्लोक।

क्रियास्नान–सरित, देवखात, तीर्थ और नदीकास्नान क्रियास्नान कहाताहै–शंखस्मृति, ८ अध्याय, ७ श्लोक।

क्रीतानुशय–मूल्य देकर मालको खरीद करके जब वह पसन्द नहीं होताहै तब वह क्रीतानुशय नाम विवादपद कहलाता है–नारदस्मृति, ९ विवादपद, १ श्लोक।

खाण्डिक–घडेको खाण्डिक कहते हैं–कात्यायनस्मृति, २८ खण्ड, १ श्लोक और गोभिलस्मृति, ३ प्रपाठक १३३ श्लोक।

गुरु–जो ब्राह्मण गर्भाधान आदि संस्कारोंको विधिपूर्वक करके अन्नसे पालताहै वह गुरु कहलाता है—मनुस्मृति, २ अध्याय, १४२ श्लोक। जो गर्भाधान आदि कर्म करके वेद पढ़ाता है उसको गुरु कहतेहैं–याज्ञवल्क्यस्मृति, १ अध्याय, ३४ श्लोक।

गोलक—विधवा स्त्रीमें (विना नियोगके) अन्यपुरुषसे जो पुत्र उत्पन्न होताहै वह गोलक कहाता है मनुस्मृति, ३ अध्याय, १७४ श्लोक और लघुआश्वलायनस्मृति, २१ श्लोक निन्द्यप्रकरण, १३ श्लोक ।

गोत्रज–सब सपिण्डोंमें सात पीढ़ीतक गोत्रज होताहै उसको पिण्डदान, जलदान और मृत्युके अशौचका अधिकार है–अत्रिस्मृति, ८५ श्लोक ।

गोचरभूमि–दशहाथके दण्डसे तीस दण्डका निवर्तन और दश निवर्तनका एक गोचर्मभूमि होतीहै दूसरी शातातपस्मृति, १ अध्याय, १५ श्लोक और बृहस्पतिस्मृति, ८ श्लोक । १० हाथका एक बांस होता है–४ बांस चौडी और दश बांस लम्बी भूमिको गोचर्म कहतेहैं–बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र, ८ अध्याय, १७५ श्लोक । जितनी भूमिपर अपने बाल बछडे तथा बैलोंके साथ एक हजार गौ बिना बान्धीहुई टिक सकें उतनी भूमि को गोचर्म कहतेहैं–बृहस्पतिस्मृति, ९ श्लोक । जितनी भूमिपर एकहजार गौ और १० बैल बिनाबान्धे टिके उतनीभूमि–गोचर्मभूमि कहातीहै–पाराशरस्मृति, १२ अध्याय, ४६ श्लोक ।

घट–४ पूर्णतिल प्रसृतिका एक भाण्ड; ४ भाण्डका एक कर्ष, ४ कर्षका एक पल, ४ पलका एक परेद, ४ परेदका एक श्रीपाटी, ३ श्रीपाटीका एक करट और ४ करटका एक घट कहा गया है–बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र, ८ अध्याय ३०८–३०९ श्लोक ।

घातक–जीवके वध करनेकी अनुमति देनेवाला उसके अंगोंका विभागकरनेवाला, जीववधकरनेवाला, मांसमोललेनेवाला, मांस बेंचनेवाला, मांस रींधनेवाला, मांस परोसनेवाला, और मांस खानेवाला, ये सब घातक हैं–मनुस्मृति, ५ अध्याय, ५१ श्लोक और बृहद्विष्णुस्मृति ५१ अध्याय, ७४ श्लोक ।

चक्रवृद्धि–व्याजका व्याज लगानेको चक्रवृद्धि कहतेहैं–नारदस्मृति, १ विवाद पद, चार अध्याय ३२ श्लोक ।

चोरी–द्रव्यके स्वामीके पीछे द्रव्य हरण करनेको और धरोहर लेलेनेको चोरी कहतेहैं–मनुस्मृति, ८ अध्याय ३३२ श्लोक ।

जरायुज–जीवोंमें पशु, मृग, व्याल (सिंहादिक हिंसकजन्तु) दोनों ओर दांतवाले जीव, राक्षस, पिशाच और मनुष्य, जरायुज, (पिण्डज) हैं–मनुस्मृति, १ अध्याय, ४३ श्लोक ।

जितेन्द्रिय–जिस मनुष्यको प्रशंसा तथा निन्दा सुननेसे, कोमल वा कठोर वस्तु स्पर्श करनेसे, सुन्दर अथवा कुरूप वस्तुको देखनेसे, स्वादयुक्त या बेस्वाद युक्त पदार्थ भोजन करनेसे और गन्धयुक्त वा दुर्गन्धवस्तु सूंघनेसे हर्षविषाद नहीं होताहै उसको जितेन्द्रिय जानना चाहिये–मनुस्मृति, २ अध्याय, ९८ श्लोक ।

जीव–जो अन्तरात्मा सम्पूर्ण देहधारियोंके सङ्ग उत्पन्न होता है और जन्मलेनेपर सुखदुःख भोगताहै वह जीव कहाताहै–मनुस्मृति, १२ अध्याय, १३ श्लोक ।

तम्बलमृग–लालमृगको तम्बल कहतेहैं—कात्यायनस्मृति २७ खण्ड, ११ श्लोक ।

तप–जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी रहना, सत्य बोलना, त्रिकाल स्नान करना, भींगेहुए वस्त्र पहनना, भूमिपर सोना और भोजनका त्याग करना ये सब तप कहातेहैं–गौतमस्मृति, १९ अध्याय, ५ अङ्क ।

तीनगुण–सत्त्व, रज और तम ये ३ गुण हैं–मनुस्मृति, १२ अध्याय, २४ श्लोक ।

त्रिदण्डी–जिसकी बुद्धिमें वाणीका दण्ड, मनका दण्ड और कायका दण्ड स्थित है वह त्रिदण्डी कहाताहै । मनुस्मृति, १२ अध्याय, १० श्लोक ।

दशइन्द्रिय–कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, गुदा, लिंग, , पांव, और वाक् येही दश इन्द्रिय हैं; इनमें प्रथमके ५ ज्ञानेन्द्रिय और गुदा आदि पिछले पांच कर्मेन्द्रिय कहातेहैं–मनुस्मृति, २ अध्याय ९०–९१ श्लोक ।

दम–यदि कोई मनुष्य बाह्य अथवा मानसिक दुःख पहुंचावे तो उसके ऊपर न तो क्रोध करे और न उस को तंग करे इसीको दम कहते हैं–अत्रिस्मृति, ३९ श्लोक । इन्द्रिय दमनको दम कहतेहैं–बृहद्विष्णुस्मृति, ७२ अध्याय, २ अङ्क ।

दया–अन्यलोग, बन्धुवर्ग, मित्र अथवा वैरी शत्रुसे अपने आत्माके समान वर्ताव करे उसे दया कहतेहैं— अत्रिस्मृति, ४१ श्लोक ।

दण्ड–अंगूठेके पोरके समान मोटे, बाहुके समान लम्बे, पत्तों तथा अग्र भागके सहित काठको दण्ड कहते हैं–अङ्गिरास्मृति, २८ श्लोक । अंगूठेके समान मोटे, बाहुके समान लम्बे, ओदे और पत्तोंके सहित काठको गोदण्ड कहते हैं–यमस्मृति, ४१ श्लोक और पाराशरस्मृति, ९ अध्याय श्लोक ।

दण्डपारुष्य–अन्यके शरीरमें क्लेश पहुंचानेके लिये हाथ, पैर तथा शस्त्र चलाना अथवा शरीरपर भस्म आदि फेंकना इनको दण्ड पारुष्य कहते हैं–नारदस्मृति, १५ विवादपद, ४ श्लोक ।

दान–किञ्चित् प्राप्तिके होनेपर भी उसमेंसे थोडा थोडा प्रतिदिन प्रसन्न चित्तसे दूसरेको देते हैं वह दान कहलाता है–अत्रिस्मृति,४० श्लोक।

दायभाग–पिताके धनको पुत्र लोग बांट लेते हैं, पण्डित लोग उसको दायभाग विवादपद कहते हैं–नारदस्मृति, १३ विवादपद, १ श्लोक।

दिनरात–तीस मुहूर्तोंका एक दिनरात होती है–मनु, १ अध्याय, ६४ श्लोक।

दिधिषूपति–जो पुरुष धर्मपूर्वक नियुक्त होकर भी अपने मृत भाईकी भार्यामें नियुक्त धर्मके विरुद्ध आसक्त होता है वह दिधिषूपति कहलाता है–मनुस्मृति, ३ अध्याय, १७३ श्लोक।

दिधिषू–जब बड़ी बहिनके कुमारीरहनेपर छोटी बहिन विवाही जाती है तब छोटी बहिन अग्रेदिधिषू और बड़ी बहिन दिधिषू कहलाती है–देवलस्मृति। दो बार विवाही हुई स्त्रीको दिधिषू कहते हैं अमरकोश २ काण्ड मनुष्यवर्ग, २३ श्लोक।

देवतीर्थ–सब अंगुलियोंके अग्रभागका नाम देवतीर्थ है–मनुस्मृति, २ अध्याय,५९ श्लोक; याज्ञवल्क्यस्मृति,१ अध्याय १९ श्लोक और शंखस्मृति १० अध्याय; २ श्लोक।

देवयज्ञ–होम देवयज्ञ है–मनुस्मृति, ३ अध्याय, ७० श्लोक; याज्ञवल्क्य, १ अ०१०२ श्लोक; शंखस्मृति, ५ अध्याय, ४ श्लोक; कात्यायनस्मृति, १३ खण्ड, ३–४० श्लोक और गोभिलस्मृति, २ प्रपाठक, २७ २८ श्लोक।

द्रोण–एक हाथके ४ पसरसे भद्र, ४ भद्रसे सेतिका, ४सेतिकासे एक प्रस्थ और ४ प्रस्थसे एक द्रोण होता है, इस प्रकार धान्यमान कहा गया है–वृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र१८ अध्याय ३०६–३०७ श्लोक। १६ गण्डेके प्रस्थ (सेर) से १६ प्रस्थका द्रोण होता है–विष्णुधर्मोत्तर और भविष्यपुराण।

द्विज–ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये ३ वर्ण द्विज हैं–मनुस्मृति, १० अध्याय, ४ श्लोक और व्यासस्मृति, १ अध्याय, ५ श्लोक। यज्ञोपवीत संस्कार होनेसे मनुष्य द्विज कहाता है–अत्रिस्मृति, १३८ श्लोक।

द्यूत–जो खेल प्राण रहित (पाशे आदि) वस्तुओंसे खेली जाती है उसको द्यूत अर्थात् जूंआ कहते हैं–मनुस्मृति, ९ अध्याय २२३ श्लोक।

धरण–४ सुवर्णका एक पल और १० पलका एक धरण होता है–मनुस्मृति, ८ अध्याय, १३५ श्लोक २ कृष्णल (रत्ती) का एक रौप्यमाषा १६ रौप्यमाषाका एक रौप्य धरण होता है–मनुस्मृति, ८ अध्याय, १३५–१३६ श्लोक; याज्ञवल्क्यस्मृति, १ अध्याय, ३६४ श्लोक और वृहद्विष्णुस्मृति, ४ अध्याय ११–१२अंक

धर्म–वेद और धर्मशास्त्रमें विधान किये हुए कर्मोंको धर्म कहते हैं–वसिष्ठस्मृति, १ अध्याय, ३ अंक।

धारणा–संयमके जाननेवाले मनके रोकनेको धारणा करते हैं–शंखस्मृति, ७ अध्याय, १३ श्लोक।

ध्यान–हृदयमें ध्यानके योगसे ब्रह्मके दर्शनको ध्यान कहते हैं–शंखस्मृति, ७ अध्याय, १४–१५ श्लोक।

नरक २१–१ तामिस्र, २ लोहशङ्कु, ३ महानिरय, ४ शाल्मली, ५ रौरव, ६ कुडमल, ७ पूतिमृत्तिक, ८ कालसूत्रक, ९ संघात, १० लोहितोदक, ११ सविष, १२ संप्रपातन, १३ महानरक,१४ काकोल, १५ संजीवन, १६ महापथ १७ अवीचि, १८ अन्धतामिस्र,१९ कुम्भीपाक,२० असिपत्रवन और २१ तापन–याज्ञवल्क्यस्मृति, ३ अध्याय २२२–२२४ श्लोक।

नवश्राद्ध–पांचवें, नवें और ग्यारहवें दिन अयुग्म ब्राह्मणको भोजन करावे; इसीको पण्डितलोग नवश्राद्ध कहते हैं–उशनस्स्मृति, ७ अध्याय, १२ श्लोक। चौथे, पांचवें, नवें और ग्यारहवें दिन जन्तुओंको अन्न दिया जाता है उसीको नवश्राद्ध कहते हैं–लघुहारीतस्मृति, १०८ श्लोक।

निष्क–चार सुवर्णका एक निष्क होताहै–मनुस्मृति,८ अध्याय, १३७ श्लोक; याज्ञवल्क्यस्मृति, १ अध्याय ३६५ श्लोक और वृहद्विष्णुस्मृति, ४ अध्याय, १० अंक।

नियम–स्नान, मौन, उपवास, यज्ञ, वेदाध्ययन, लिङ्गेन्द्रियका निग्रह, गुरुकी सेवा, शौच, क्रोधका त्याग और प्रमादका त्याग, ये (१०) नियम हैं–याज्ञवल्क्यस्मृति, ३ अध्याय, ३१४श्लोक। शौच, यज्ञ, तप, दान, वेदाध्ययन, लिङ्गेन्द्रियका निग्रह, व्रत, मौन, उपवास और स्नान ये १० नियम हैं। अत्रिस्मृति ४९ श्लोक।

नित्यस्नान–जप और अग्निहोत्र करनेके लिये प्रातःकालका स्नान नित्यस्नान कहाता है। शंखस्मृति, ८ अध्याय, २ श्लोक।

निक्षेप–जब कोई मनुष्य विश्वास करके शंका रहित होकर किसीके पास (गिनाकरके) अपना द्रव्य रखदेताहै तब बुद्धिमान्लोग उसको निक्षेप नाम व्यवहार पद कहते हैं। नारदस्मृति, २ विवादपद १ श्लोक।

नीलवृषभ—जो बैल लाल रङ्गका है, उसकी पूंछका अग्रभाग पीला है और उसके खुर तथा सींग श्वेत हैं उसको नील वृषभ कहते हैं–बृहस्पतिस्मृति, २२ श्लोक। जो बैल लाल रङ्गका है और उसके खुर, पूंछ तथा सिर श्वेत हैं वह नील वृषभ कहाता है–लिखितस्मृति, १४ श्लोक।

नैष्ठिकब्रह्मचारी–जो ब्रह्मचारी प्रसन्न मनसे वेद पढते हुए गुरुके अधीन रहकर गुरुके हितकारी कार्यों को करतेहुए मरनेके समयतक गुरुके गृहमें रहताहै उसको नैष्ठिकब्रह्मचारी कहतेहैं–विष्णुस्मृति, १ अध्याय २४ श्लोक। जो मनुष्य यज्ञोपवीतसे लेकर अपनी मृत्यु पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत धारण करताहै वह नैष्ठिकब्रह्मचारी ब्रह्मसायुज्य पाताहै–व्यासस्मृति, १ अध्याय; ४० श्लोक। नैष्ठिकब्रह्मचारी आचार्यके समीप वसे, आचार्यके मरनेपर उनके पुत्रके अथवा उनकी पत्नीके पास वा उनके अग्निकी रक्षा करे—याज्ञवल्क्यस्मृति १ अध्याय ४९ श्लोक।

नैमित्तिकस्नान–चाण्डाल आदिके छूनेपर जो स्नान किया जाताहै वह नैमित्तिक स्नान कहाताहै–शंखस्मृति, ८ अध्याय, ३ श्लोक।

परिवेत्ता–जब बड़े भाईके क्वांरे रहतेहुए छोटा भाई विवाह करके अग्निहोत्र ग्रहण करताहै, तब छोटा भाई परिवेत्ता कहाता है–मनुस्मृति, ३ अध्याय, १७१ श्लोक। और शातातपस्मृति, ३९ श्लोक।

परिवित्ति–जब बड़े भाईके क्वांरे रहतेहुए छोटा भाई विवाह करके अग्निहोत्र ग्रहण करताहै तब बड़ाभाई परिवित्ति कहाजाताहै–मनुस्मृति, ३ अध्याय, १७१ श्लोक और शातातपस्मृति, ३९ श्लोक।

पल–अस्सी रत्तीका एक सुवर्ण और ४ सुवर्णका एक पल होताहै–मनुस्मृति, ८ अध्याय, १३४–१३५ श्लोक और बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–८ अध्याय, ३०५ श्लोक। अस्सी रत्तीका एक सुवर्ण और ४ अथवा ५ सुवर्णका एक पल होताहै–याज्ञवल्क्य, १ अध्याय, ३६३–३६४ श्लोक।

पण–कर्षभरताम्बेको कार्षापण तथा पण कहते हैं–मनुस्मृति, ८ अध्याय, १३६ श्लोक। कर्षभर ताम्बेका पण कहाताहै–याज्ञवल्क्यस्मृति, १ अध्याय, ३६५ श्लोक। कर्षभर तांबेका कार्षापण होता है–वृहद्विष्णुस्मृति, ४ अध्याय, १३ अंक, ८० रत्तीका १ कर्ष होता है–बृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र, ८ अध्याय, ३०५ श्लोक। इससे सिद्ध हुआ कि, ८० रत्तीके ताम्बेका, पैसा पण कहाता है, १०० पणका १॥–) होता है।

पञ्चगव्य–गोमूत्र, गोबर, दूध, दही घी, और कुशाका जल यह पापोंका नाशक पवित्र पञ्चगव्य कहाता है। कालीगौका गोमूत्र, श्वेतगौका गोबर, ताम्बेके रङ्गकी गौका दूध, लालगौका दही, कपिलागौका घी अथवा कपिलागौकाही सब लेकर पञ्चगव्य बनावे, १ पल गोमूत्र, आधे अंगूठे भर गोबर, ७ पल दूध, ३ पल दही, १ पल घी और १ पल कुशाका जल लेवे–पाराशरस्मृति, ११ अध्याय, २९–३३ श्लोक। शुक्ला गौका मूत्र, कालीगौका गोबर, लालगौका दूध, श्वेतगौका दही और कपिला (पीत) गौका घी लेकर पञ्चगव्य बनाना चाहिये–यमस्मृति ७१–७२ श्लोक। गोबरसे दूना गोमूत्र, चौगुना घी, आठगुना दूध, और आठगुना ही दही एकत्र करदेनेसे पञ्चगव्य बनताहै–अत्रिस्मृति, २९५–२९६ श्लोक।

पञ्चवायु–प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये पञ्चवायु हैं–बौधायनस्मृति, २ प्रश्न, १० अध्याय, ६२ अंक।

पञ्चअग्नि–गार्हपत्याग्नि, अन्वाहार्य (दक्षिणाग्नि), आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य, ये पांच अग्नि आत्मामें स्थित हैं–बौधायनस्मृति, २ प्रश्न १० अध्याय, ६२ अंक।

पञ्चयज्ञ–वेदपढ़ना पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ तर्पण करना पितृयज्ञ, होमकरना देवयज्ञ; बलिवैश्वदेव कर्म भूतयज्ञ और अतिथि सत्कार मनुष्ययज्ञ, यही पञ्चयज्ञ हैं–मनुस्मृति, ३ अध्याय, ७० श्लोक; याज्ञवल्क्य, १ अध्याय, १०२ श्लोक, शंखस्मृति, ५ अध्याय, ४ श्लोक; कात्यायनस्मृति, १३ खण्ड, ३–४ श्लोक और गोभिलस्मृति, ३ प्रपाठक, २७–२८ श्लोक।

पञ्चविषय–शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये ५ विषय हैं–मनुस्मृति, १२ अध्याय, ९८ श्लोक (इनको पञ्चतन्मात्रा भी कहते हैं)।

पाकयज्ञ–तीन अष्टकाओंके ३ पार्वण श्राद्ध, १ श्रावणीकर्म, १ आग्रहायणीयज्ञ, १ चैतकी पूर्णमासी का यज्ञ और १ आश्विनकी पूर्णमासीका यज्ञ ये ७ पाकयज्ञ कहाते हैं–गौतमस्मृति, ८ अध्याय, ३ अङ्क।

पितृतीर्थ–अंगूठेके पासकी तर्जनी अंगुली और अंगूठेके बीचकी अंगूठेकी जड़को पितृतीर्थ कहते हैं–मनुस्मृति, २ अध्याय, ५९ श्लोक, याज्ञवल्क्य, १ अध्याय, १९ श्लोक; शंखस्मृति, १० अध्याय; २ श्लोक और वसिष्ठस्मृति, ३ अध्याय ६१ अंक।

पितृयज्ञ–तर्पण पितृयज्ञ है–मनुस्मृति, ३ अध्याय, ७० श्लोक; याज्ञवल्क्य, १ अध्याय, १०२ श्लोक; शंखस्मृति, ५ अध्याय, ४ श्लोक; कात्यायन, १३ खण्ड, ३–४ श्लोक और गोभिलस्मृति, २ प्रपाठक; २७–२८ श्लोक।

पुत्रिका–अपुत्रक पुरुष जब, ऐसा नियम ठहराके कि इस कन्यासे जो पुत्र होगा वह मेरा श्राद्धादि कर्म करेगा, अपनी कन्या वरको देताहै तब वह कन्या "पुत्रिका" कहाती है–मनुस्मृति, ९ अध्याय, १२७

श्लोक, लिखितस्मृति, ५३ श्लोक; वसिष्ठस्मृति, १७ अध्याय, १८ श्लोक और गौतमस्मृति, २९ अध्याय ३ अंक। किसी आचार्यका मत है कि मनमें ऐसा मानकर कन्या देनेपर भी पुत्र हीन पुरुषकी कन्या "पुत्रिका" होजातीहै–गौतम, २९ अध्याय, ३ अंक।

पुरोहित–जो ब्राह्मण ज्योतिष जाननेवाला, शास्त्रज्ञ, अर्थशास्त्रमें कुशल और अथर्वाङ्गिरसमें निपुण हो राजा उसीको अपना पुरोहित बनावे–याज्ञवल्क्यस्मृति, १ अध्याय, ३१३ श्लोक।

पुष्कल–चारग्रास अन्नको पुष्कल कहतेहैं–शातातपस्मृति, ५७ श्लोक।

पूर्तकर्म–बावली, कूप, तड़ाग, देवमन्दिर और बाग निर्माण तथा अन्नदानको पूर्त कहते हैं–अत्रिस्मृति ४५, श्लोक। तड़ाग, बाग और पानीशालेको पूर्तकर्म कहतेहैं–यमस्मृति, ६९ श्लोक। टूटे हुए कूप; बावली तड़ाग, अथवा देवमन्दिरको बनवादेनेवाला पूर्तकर्मका फल पाताहै–यमस्मृति, ७० श्लोक और लिखितस्मृति, ४ श्लोक।

पोष्यवर्ग–माता, पिता; गुरू भार्या, सन्तान, दीन, समाश्रित (दासदासीआदि) अभ्यागत, अतिथि और अग्नि ये सब पोष्यवर्ग कहेगये हैं और धनवान् मनुष्योंके लिये जो जाति तथा बन्धु जनोंके बीच क्षीण अनाथ और समाश्रित हैं वे भी पोष्यवर्ग समझेजातेहैं–दक्षस्मृति, २ अध्याय; ३२–३३ श्लोक। माता, पिता गुरू, भार्या, पुत्र, शिष्य, अभ्यागत और अतिथि पोष्यवर्ग कहाते हैं–लघुआश्वलायनस्मृति १ आचारप्रकरण ७४ श्लोक।

प्रथमसाहस–२५० पणका प्रथमसाहस होताहै–मनुस्मृति; ८ अध्याय, १३८ श्लोक और वृहद्विष्णुस्मृति, ४ अध्याय, १४ श्लोक २७० पणका अधमसाहस अर्थात् प्रथमसाहस होता है–याज्ञवल्क्य, १ अध्याय ३६६ श्लोक; फल, मूल, जल आदि और खेतकी सामग्रीको भङ्ग, आक्षेप और उपमर्दन आदि करनेको प्रथमसाहस कहते हैं प्रथमसाहसका दण्ड एकसौ पण होगा–नारदस्मृति, १४ विवादपद ४ और ७ श्लोक।

प्रजापतितीर्थ–कनिष्ठा अंगुलीके मूल भागको प्रजापतितीर्थ (और कायतीर्थ कहतेहैं) याज्ञवल्क्यस्मृति, १ अध्याय, १९ श्लोक।

प्रस्थ–१६ पलका एक प्रस्थ होताहै–विष्णुधर्मोत्तर और भविष्यपुराण। १२ पलका एक प्रस्थ होताहै गोपथब्राह्मण।

प्रवृत्त–जो द्विज सम्पूर्णवेद, दो वेद अथवा एक वेद समाप्त करके गुरुकी आज्ञासे समावर्तन स्नान करके गुरुको दक्षिणा देकर अपने घर जाताहै उसको प्रवृत्त कहतेहैं–व्यासस्मृति, १ अध्याय, ४२ श्लोक।

प्रत्याहार–विषयोंसे इन्द्रियोंको हटानेको प्रत्याहार कहतेहैं–शंखस्मृति, ७ अध्याय, १४ श्लोक।

प्राणायाम–प्राणवायुको रोककर शिरोमंत्र (आपोज्योति इत्यादि,) ७ व्याहृति (भूर्भुवः आदि) और प्रणवसे युक्त गायत्रीको तीन बार जपे तो एक प्राणायाम होता है–याज्ञवल्क्यस्मृति, १ अध्याय, २३ श्लोक, अत्रिस्मृति, २९४–२९५ श्लोक, संवर्तस्मृति, २२६–२२७ श्लोक, बौधायनस्मृति, ४ प्रश्न १ अध्याय, ३० अंक और शंखस्मृति, ७ अध्याय, १२–१३ श्लोक।

प्राजापत्यतीर्थ–अंगूठेकी जड़को प्राजापत्यतीर्थ कहतेहैं–शंखस्मृति, १० अध्याय, २ श्लोक।

प्रातःकाल–१५ मुहूर्तका दिन होताहै उसमेंसे प्रथमके ३ मुहूर्तको प्रातःकाल कहते हैं–प्रजापतिस्मृति, १५६ श्लोक।

बकव्रती–जो द्विज अपनी नम्रता दिखानेके लिये पाखण्डसे नीचे दृष्टि रखताहै, किन्तु उसका अन्तःकरण स्वार्थसाधनसे पूर्ण है उस मूर्ख तथा वृथा नम्रता दिखानेवालेको बकव्रती कहते हैं क्योंकि उसका आचरण बगुलेके समान है–मनुस्मृति, ४ अध्याय, १९६ श्लोक और वृहद्विष्णुस्मृति, ९३ अध्याय, ९ श्लोक।

बहुश्रुत–जो ब्राह्मण लोक व्यवहार और वेद तथा वेदाङ्गोंको जानताहै वाक्य (प्रश्नोत्तररूप वैदिक ग्रन्थ) इतिहास और पुराण जाननेमें प्रवीण है, इन्हींकी अपेक्षा करनेवाला और इन्हींसे जीविका करनेवाला ४० संस्कारोंसे शुद्ध ❀ ३ कर्म (वेदपढ़ाना, यज्ञ कराना और दान देना) अथवा ६ कर्म (पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञकरना, यज्ञ कराना दान देना और दान लेना) में तत्पर और समयके अनुकूल नम्रताके सहित आचार विचारमें बर्त्ताव करनेवाला है उसको बहुश्रुत कहतेहैं–गौतमस्मृति, ८ अध्याय २ अंक।

❀ ४० संस्कारोंका वर्णन गृहस्थ प्रकरणमें है।

बिडालव्रती-जो द्विज लोगोंके जाननेके लिये पाखण्डसे धर्म करताहै, सदा लोभमें रत रहताहै, कपटवेष धारण करताहै, लोगोंको ठगताहै, परहिंसामें तत्पर रहताहै और द्वेषसे सबकी निन्दा किया करता है उसको बिडालव्रती कहतेहैं-मनुस्मृति, ४ अध्याय, १९५ श्लोक और बृहद्विष्णुस्मृति, ९३ अध्याय, ८ श्लोक।

ब्रह्मयज्ञ-वेदपढ़ना पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ है-मनुस्मृति, ३ अध्याय, ७० श्लोक; याज्ञवल्क्य, १ अध्याय, १०२ श्लोक; शङ्खस्मृति, ५ अध्याय, ४ श्लोक; कात्यायनस्मृति, १३ खण्ड, ३-४ श्लोक और गोभिलस्मृति, २ प्रपाठक, २७-२८ श्लोक।

ब्रह्मतीर्थ-अंगुष्ठके मूलभागको ब्रह्मतीर्थ कहते हैं—याज्ञवल्क्यस्मृति, १ अध्याय, १९ श्लोक।

ब्रह्मकूर्च-व्रतके प्रकरणमें देखिये।

ब्राह्मतीर्थ-अंगुष्ठके मूलके नीचेके भागको ब्राह्मतीर्थ कहतेहैं—मनुस्मृति, २ अध्याय, ५९ श्लोक। अंगुष्ठके मूलके उत्तरभागमें ब्राह्मतीर्थ कहागया है—वसिष्ठस्मृति, ३ अध्याय, २९ अंक।

ब्राह्मणब्रुव-जिसका गर्भाधान आदि संस्कार और वेदोक्त यज्ञोपवीत हुआहै; किन्तु वह पढता पढाता नहीं है उसको ब्राह्मणब्रुव कहतेहैं—व्यासस्मृति ४ अध्याय ४२ श्लोक।

व्रीहि-यवके समान गेहूं और व्रीहि (धान) के समान शालि (साठी धान) है कात्यायनस्मृति १५ खण्ड २१ श्लोक।

भिक्षुक-ब्रह्मचारी, संन्यासी विद्यार्थी, गुरूकी पालना करनेवाला; पथिक और वृत्तिसे हीन ये ६ भिक्षुक कहेजाते हैं अत्रिस्मृति, १६२ श्लोक।

भिक्षा-एक ग्रास अन्नको भिक्षा कहतेहैं-शातातपस्मृति, ५७ श्लोक।

भूतयज्ञ-बलिवैश्वदेवकर्म भूतयज्ञ है-मनुस्मृति, ३ अध्याय, ७० श्लोक; याज्ञवल्क्यस्मृति, १०२ श्लोक; शंखस्मृति, ५ अध्याय, ४ श्लोक; कात्यायन,१३खण्ड,३-४ श्लोक और गोभिलस्मृति,२प्रपाठक२७-२८श्लोक।

भूतात्मा-जो शरीर कार्योंको करताहै उसको बुद्धिमान्लोग भूतात्मा कहतेहैं-मनुस्मृति, १२ अध्याय, १२ श्लोक।

भ्रूणहत्या-ब्राह्मणको मारकर तथा ब्राह्मणीके अविज्ञात (पुत्र है या पुत्री ऐसा नहीं जानाहुआ) गर्भको गिराकर मनुष्य भ्रूणहत्यारा होताहै; क्योंकि अविज्ञात गर्भ पुरुष मानाजाता है-वसिष्ठस्मृति, २० अध्याय, २६ अंक।

मनुष्ययज्ञ-अतिथिसत्कार मनुष्ययज्ञ है-मनुस्मृति, ३ अध्याय, ७० श्लोक; याज्ञवल्क्यस्मृति, १ अध्याय, १०२ श्लोक, शंखस्मृति, ५ अध्याय, ४ श्लोक; कात्यायनस्मृति, १३ खण्ड, ३-४ श्लोक और गोभिलस्मृति, २ प्रपाठक, २७-२८ श्लोक।

मध्यमसाहस-पांचसौ पणका मध्यमसाहस होताहै-मनुस्मृति, ८ अध्याय,१३८ श्लोक और बृहद्विष्णुस्मृति, ४ अध्याय, १४ श्लोक। पांचसौ चालीस पणका मध्यमसाहस होताहै-याज्ञवल्क्यस्मृति, १ अध्याय, ३६६ श्लोक। वस्त्र, पशु, अन्न, जल, और गृहोपयोगी सामग्रीका भङ्ग, आक्षेप और उपमर्दन करनेको मध्यमसाहस कहतेहैं। मध्यमसाहसका दण्ड ५०० पण है-नारदस्मृति, १४ विवादपद, ५ और ७ श्लोक।

मङ्गल-प्रतिदिन उत्तम आचरण करे और निन्दित आचरणको त्याग देवे इसको धर्मवादी ऋषियोंने मङ्गल कहाहै-अत्रिस्मृति ३६ श्लोक।

मधुपर्क-दही और मधु मिलानेसे मधुपर्क बनताहै, अपने पूज्यको मधुपर्क देना हो तो कांसेके पात्रसे ढके हुए कांसेके पात्रमें मधुपर्क समर्पण करे-कात्यायनस्मृति, २९ खण्ड, १८-१९ श्लोक। मधु, घी और दहीको मिलाकर मधुपर्क बनाना चाहिये; यदि दही नहीं मिले तो उसके स्थानमें दूध और मधु नहीं मिले तो उसके स्थानमें गुड़ मिलावे; इनको नवीन कांसेके पात्र (कटोरी) में रखकर दूसरे कांसेके पात्रसे ढांपके सूतसे लपेटदेवे, इसीको मधुपर्क कहतेहैं-लघुआश्वलायनस्मृति, १५ विवाहप्रकरण, ५-६ श्लोक। (मानवगृह्यसूत्र-१ पुरुष-९ खण्डमें मधुपर्कका विधान विस्तारसे है)।

मलकर्षणस्नान-जो स्नान शरीरकी मैल दूर करनेके लिये उबटन आदि लगाकर कियाजाता है वह मलकर्षणस्नान कहाताहै-शंखस्मृति, ८ अध्याय, ६ श्लोक।

मनुष्यतीर्थ-अंगुलियोंके अग्रभागमें मनुष्यतीर्थ है-वसिष्ठस्मृति, ३ अध्याय, ५९ अंक।

महागुरु-माता, पिता और आचार्य; ये ३ मनुष्यके महागुरु हैं-बृहद्विष्णुस्मृति, ३१ अध्याय, १-२ अंक।

महानिशा-रातका दूसरा पहर और तीसरा पहर महानिशा कहाताहै-पाराशरस्मृति,१२अध्याय,२४ श्लोक।

महाव्याहृति-भूः भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, और सत्यम्।

मद्य-पानस, द्राक्ष, माधूक, खार्जूर, ताल, ऐक्षव, मधूत्थ, सैर, आरिष्ट, मैरेय, और नालिकेरज इन ११ मद्योंको समान जानो, बारहवां जो सुरा मद्य है उसको सबसे अधम कहा है-पुलस्त्यस्मृति (४—५)

मध्याह्नकाल-१५ मुहूर्तका दिन होताहै उसको ५ भागोंमें करनेसे तीसरे भागको अर्थात् सातवें मुहूर्त्तसे नवें मुहूर्ततकको मध्याह्नकाल कहते हैं-प्रजापतिस्मृति, १५६-१५७ श्लोक ।

महिषी-व्यभिचारिणीभार्याको महिषी कहते हैं-वृहद्यमस्मृति, ३ अध्याय, १७ श्लोक और प्रजापतिस्मृति ८६ श्लोक । जो भार्या भगसे अर्थात् व्यभिचार करके धन उपार्जन करती है वह महिषी कहलातीहै लघुआ-श्वलायनस्मृति, २१ लोके निन्द्यप्रकरण, ४ श्लोक ।

माहिषक-व्यभिचारिणीभार्याको महिषी और उसके दोषको सहन करनेवाले उसके पतिको माहिषक कहते हैं-वृहद्यमस्मृति, ३ अध्याय, १७ श्लोक और प्रजापतिस्मृति, ८६-८७ श्लोक ।

माष-पांचरत्ती भरका एक माष अर्थात् मासा होताहै-मनुस्मृति, ८ अध्याय, १३४ श्लोक; याज्ञवल्क्य-स्मृति, १ अध्याय, ३६३ श्लोक, वृहद्विष्णुस्मृति, ४ अध्याय, ६-७ अङ्क और बृहत्पाराशरीधर्मशास्त्र ८ अध्याय ३०५ श्लोक ।

मुहूर्त्त-१८ पलका एक काष्ठा, ३० काष्ठाकी एक कला, ३० कलाका एक मुहूर्त्त और ३० मुहूर्त्तकी एक दिनरात्रि होतीहै मनुस्मृति, १ अध्याय, ६४ श्लोक ।

मैथुन-स्त्रीका स्मरण करना, स्त्रीके अङ्गका वर्णन करना, स्त्रीके सङ्ग खेलना, स्त्रीको देखना, एकान्तमें स्त्री से बातें करना, स्त्रीसे मैथुन करनेका मनोरथ होना, स्त्रीसे मैथुन करनेका निश्चय करना और स्त्रीसे मैथुन करना यह ८ प्रकारका मैथुन बुद्धिमानोंने कहा है-दक्षस्मृति, ७ अध्याय ३१-३२ श्लोक ।

यम-ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा, दान, सत्य, अकुटिलता, अहिंसा, चोरीका त्याग, मधुरता और ज्ञानेन्द्रियोंका दमन ये (१०) यम कहते हैं याज्ञवल्क्यस्मृति, ३ अध्याय, ३१३ श्लोक । अक्रूरता, क्षमा, सत्य, अहिंसा, दान, नम्रता, प्रीति (स्नेह) प्रसन्नता, मधुरता और कोमलता ये १० यम हैं अत्रिस्मृति, ४८ श्लोक ।

याचित-अच्छा कहकर किसी पदार्थको लेनेको याचित कहते हैं-विष्णुस्मृति, ४ अध्याय, ११ श्लोक ।

योग-प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, तर्क और समाधि ये ६ जिसके अङ्ग हैं उसे योग कहते हैं दक्ष-स्मृति, ७ अध्याय, २ श्लोक ।

रुरुमृग-गौर मृगको रुरु कहते हैं-कात्यायनस्मृति, २७ खण्ड, ११ श्लोक ।

रौहिण-जिस मुहूर्तमें दो पहरके बाद सूर्यकी छाया आधा अंगुल पूर्वकी ओर पड़ती है उस मुहूर्तको रौहिण कहते हैं, उसी समय श्राद्ध करना चाहिये, लघुहारीतस्मृति, १११ श्लोक ।

लाजा-भुनेहुए व्रीहिको लाजा (लावा) कहते हैं कात्यायनस्मृति, २८ खण्ड, १ श्लोक और गोभिलस्मृति, ३ प्रपाठक, १३३ श्लोक ।

वनस्पति-जो विना फूल लगेही फलते हैं (वट, पीपल आदि) वे वनस्पति हैं-मनुस्मृति, १ अध्याय, ४७ श्लोक ।

वज्र-गोमूत्रमिलाहुआ तथा घीमें पकाहुआ यावक (यवका रस) वज्र कहाता है अत्रिस्मृति, १६१ श्लोक ।

वार्ता-कृषि गोरक्षा और वाणिज्य तथा द्विजकी अन्य विहित क्रियाको वार्तावृत्ति कहते हैं-बृहत्पाराशरीय-धर्मशास्त्र १० अ० ब्रह्मचारी आदिचतुष्टयभेदकथन, १० श्लोक ।

वार्धुषिक-जो (ब्राह्मण या क्षत्रिय) सस्ता अन्न लेकर उसको मंहगा करके देता है वह वार्धुषिक कहाताहै, वह ब्रह्मवादियोंमें निन्दित है वसिष्ठस्मृति—२ अध्याय, ४६ श्लोक, वृहद्यमस्मृति, ३ अध्याय, २३ श्लोक । बौधायनस्मृति, १ प्रश्न, ५ अध्याय, ९३ श्लोक और प्रजापतिस्मृति ८८ श्लोक । वार्धुषिक ब्राह्मण और वार्धुषिक क्षत्रियका अन्न नहीं खाना चाहिये-वसिष्ठस्मृति २ अध्याय, ४४ अंक ।

वार्षलेय—जब विना विवाहीहुई कन्या रजस्वला होतीहै तब उसको वृषली और (विवाह होनेपर) उससे उत्पन्न सन्तानको वार्षलेय कहते हैं लघुआश्वलायनस्मृति, २१ लोके निंद्यप्रकरण ५ श्लोक ।

वाक्पारुष्य—देश, जाति, कुल आदिके आक्षेप, व्यङ्गयुक्त वचन और अर्थके प्रतिकूल वचनको वाक्पा-रुष्य कहते हैं-नारदस्मृति, १५ विवादपद, १ श्लोक ।

विषय-गन्ध, रूप, रस, स्पर्श और शब्द, ये ५ विषय कहे जाते हैं याज्ञवल्क्यस्मृति, ३ अध्याय ९१ श्लोक ।

विप्र-वेदविद्या पढ़नेसे ब्राह्मण विप्र होता है-अत्रिस्मृति, १३९ श्लोक ।

विक्रीयासंप्रदान--वस्तुका दाम लेकर खरीददारको वस्तु नहीं दीजाय तो वह विक्रीयासंप्रदान विवादपद कहाताहै--नारदस्मृति, ८ विवादपद, १ श्लोक।

वृक्ष--जिनमें फूल तथा फल होते हैं वे दोनों प्रकारके पेड वृक्ष कहे जाते हैं--मनुस्मृति, १ अध्याय, ४७ श्लोक।

वृष-भगवान् धर्मको वृष कहतेहैं-मनुस्मृति, ८ अध्याय, १६ श्लोक।

वृषल-भगवान् धर्म वृष कहाताहै, उसको निवारण करनेवाले मनुष्यको देवतालोग वृषल कहतेहैं--मनुस्मृति, ८ अध्याय, १६ श्लोक।

वृषली-जो विना विवाहीहुई कन्या पिताके घर रजस्वला होतीहै उसको वृषली कहते हैं-प्रजापतिस्मृति, ८५ श्लोक और लघुआश्वलायनस्मृति, २१ लोके नियप्रकरण, ५ श्लोक।

वृषलीपति-जो विना विवाही कन्या अपने पिताके घर रजस्वला होतीहै उसको वृषली और उसके पतिको वृषलीपति कहते हैं-प्रजापतिस्मृति, ८५ श्लोक।

वेदवित्-ऋग्वेद, यजुर्वेद और विविधप्रकाके सामवेदके मन्त्रोंको त्रिवृत्वेद कहतेहैं, जो द्विज इन सबको जानताहै वह वेदवित् कहाताहै सब वेदोंका आदि, तीन अक्षर (अकार, उकार और मकार) वाला, तीनों वेदोंका अधिष्ठानभूत ओंकारको भी त्रिवृत्वेद कहतेहैं जो इसको भलीभांतिसे जानताहै वह भी वेदवित् कहलाता है-मनुस्मृति, ११ अध्याय, २६५-२६६ श्लोक। वेद और शास्त्र पढ़ेहुए और शास्त्रके अर्थको बतानेवाले ब्राह्मणको वेदवित् (वेदजाननेवाला) कहते हैं-अत्रिस्मृति, १३९-१४० श्लोक।

वेदपारग-जो (ब्राह्मण) विस्तारपूर्वक सम्पूर्ण वेद, ६ वेदाङ्ग, इतिहास और पुराणके विषयका निर्णय करताहै वह वेदपारग कहलाता है व्याससमृति, ४ अध्याय, ४५ श्लोक।

वेदाङ्ग-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष् ये ६ वेदांग हैं।

व्यसन-शिकार खेलना, जूआ खेलना दिनमें सोना, परकी निन्दा करना, स्त्रियोंमें आसक्त होना, मदिरा आदिमें प्रमत्त होना, नाचना, गाना बजाना और वृथा घूमना ये १० कामज व्यसन और चुगुली करना, दुःसाहस करना, द्रोह करना, ईर्षा करना, परके गुणोंमें दोषोंको प्रकट करना, अन्यायसे अन्यका द्रव्य लेलेना, कठोर वचन बोलना और ताड़ना करना ये ८ क्रोधजव्यसन हैं-मनुस्मृति, ७ अध्याय, ४७-४८ श्लोक।

व्यवहारपद-जो मनुष्य धर्मशास्त्र और आचारके विरुद्धमार्गसे दबायागया हो वह यदि राजाके पास जाकर विज्ञापन करे तो वह व्यवहारका पद होताहै-याज्ञवल्क्यस्मृति, २ अध्याय, ५ श्लोक।

व्रात्य-ब्राह्मणका जनेऊ १६ वर्षतक, क्षत्रियका २२ वर्षतक और वैश्यका जनेऊ २४ वर्षतक होसकता है; यदि इतने समयतक उनका उपनयन संस्कार न कियाजाय तो वे सावित्रीसे पतित हो साधु समाजमें निन्दित होतेहैं; इन्हें व्रात्य कहाजाता है-मनुस्मृति-२ अध्याय, ३८-३९ श्लोक, व्यासस्मृति-१ अध्याय-२० श्लोक; शंखस्मृति-२ अध्याय, ७-९ श्लोक और गौतमस्मृति--१ अध्याय-६ श्लोक।

शतमान-२ रत्तीका एक रौप्यमाष (रूपाकामासा), १६ रौप्यमाषका एक रौप्यधारण, जिसको पुराण भी कहतेहैं और १० धारणका एक रौप्य शतमान होताहै--मनुस्मृति, ८ अध्याय, १३५-१३७ श्लोक। २ रत्तीका एक रूप्यमाष (रूपाका मासा) १६ रूप्यमाषका एक रूप्यधारण और १० धारणका एक शतमान अथवा पल होताहै-याज्ञवल्क्यस्मृति, १ अध्याय, ३६४-३६५ श्लोक।

शिष्ट-जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य आदि धर्मसे युक्त होकर और वेदांग, धर्मशास्त्र आदिके सहित वेद पढ़के वेदके अर्थका उपदेश करताहै उसको शिष्ट ब्राह्मण कहतेहैं-मनुस्मृति, १२ अध्याय, १०९ श्लोक और बौधायनस्मृति, १ प्रश्न, १ अध्याय, ६ श्लोक। जिस ब्राह्मणके घर कुलपरम्परासे वेद, वेदांग आदि पढ़के वेदका उपदेश करनेकी परिपाटी चलीआती है वह शिष्टब्राह्मण कहाताहै-वसिष्ठस्मृति, ६ अध्याय, ४० श्लोक।

शौच-अभक्ष्य वस्तुओंका त्याग, अनिन्दित लोगोंका संग और उत्तम आचरणोंमें स्थिति शौच कहाताहै अत्रिस्मृति, ३५।

श्रुति-वेदको श्रुति कहतेहैं-मनुस्मृति, २ अध्याय, १० श्लोक।

श्रोत्रिय-ब्राह्मणके घर जन्मसे ब्राह्मणसंज्ञा होतीहै, संस्कारसे द्विज कहाताहै और वेदविद्या पढनेसे विप्र होताहै और इन तीनोंके होनेसे श्रोत्रिय कहलाताहै-अत्रिस्मृति, १३८-१३९ श्लोक।

समाह्वय-जो खेल प्राणी (मेढे, मुर्गे, घोडे आदि) द्वारा बाजीलगाकर खेलीजाती है उसको समाह्वय कहतेहैं-मनुस्मृति, ९ अध्याय, २२३ श्लोक।

सप्तऔषधी-धान, साठी चावल, मूंग, गेहूं, सरसों, तिल और यव इन सप्त औषधियोंको खानेसे विपद् दूर होतीहै-कात्यायनस्मृति, २६ खण्ड, १३ श्लोक।

समानोदक–जन्म और नामका ज्ञान नहीं रहनेपर अर्थात् जब यह नहीं जानपड़ता है कि इनका जन्म हमारे कुलमें है तब समानोदकभाव अर्थात् जल सम्बन्ध दूर होताहै–मनुस्मृति, ५ अध्याय; ६० श्लोक और उशनस्स्मृति–६ अध्याय–५२ श्लोक ।

सकुल्य–प्रपौत्रके पुत्र तथा पौत्र यदि धन बांटकर अलग रहते होंगे तो सकुल्य कहे जांयगे–बौधायनस्मृति–१ प्रश्न–५ अध्याय, ११३–११४ श्लोक ।

सन्ध्या–दिन और रात्रिके सन्धि (मेल) को सन्ध्या कहतेहैं और दिनके पूर्व भाग और अपरभागका सन्धि मध्याह्न भी सन्ध्या कहाताहै–बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र,–२ अध्याय, षट्कर्मणि स्नानविधि १०–११ श्लोक ।

समाधि–विषय भोगोंको त्यागकर आत्मशक्तिरूपसे मनकी स्थिरताको समाधि कहतेहैं–दक्षस्मृति—७ अध्याय–२२ श्लोक ।

समब्राह्मण–जो ब्राह्मण ब्राह्मणके वीर्यसे उत्पन्न हुआहै, किन्तु मन्त्रसंस्कारसे रहित होकर अपनेको ब्राह्मण कहके जीविका करताहै उसको समब्राह्मण–कहतेहैं–व्यासस्मृति, ४ अध्याय, ४१ श्लोक ।

सपिण्ड–सातवीं पीढीमें सपिण्डता दूर होजातीहै–मनुस्मृति, ५ अध्याय, ६० श्लोक और उशनस्स्मृति६ अध्याय–५२ श्लोक । एक वंशमें उत्पन्न ७ पीढियोंतक सपिण्डसंज्ञा होतीहै–अत्रिस्मृति–८५ श्लोक । पिता, पितामह, प्रपितामह, लेपभागी अर्थात् प्रपितामहका पिता, पितामह और प्रपितामह और जिससे गिनाजाताहै वह यही ७ पुरुष सपिण्डहैं उशनस्स्मृति, ६ अध्याय, ५३ श्लोक और लघुआश्वलायनस्मृति, २० प्रेतकर्मप्रकरण, ८२–८३ श्लोक । ७ पीढ़ीके मनुष्योंमें सपिण्डता मानी जातीहै–वसिष्ठस्मृति, ४ अध्याय, १७ अंक । प्रपितामह, पितामह, पिता स्वयं (आप) सहोदर भाई, सवर्णा स्त्रीके पुत्र पौत्र और प्रपौत्र ये सब सपिण्ड हैं बौधायनस्मृति, १ प्रश्न, ५ अध्याय, ११३ अंक । सपिण्ड, सोदक और सगोत्र इनको एक एकके क्रमसे एक एककी ७ पीढ़ीको सपिण्ड जानना चाहिये–लघुआश्वलायनस्मृति, २० प्रेतकर्मप्रकरण, ८३–८४ श्लोक ।

सङ्गवकाल–१५ मुहूर्तका दिन होताहै उसमें प्रातःकाल ३ मुहूर्त और उसके बाद संगवकाल ३ मुहूर्ततक रहताहै–प्रजापतिस्मृति, १५६ श्लोक ।

संभूयसमुत्थान–जब बहुतलोग मिलकरके वाणिज्य आदि कोई काम करतेहैं तब उसको संभूय समुत्थान विवादपद कहतेहैं–नारदस्मृति, ३ विवादपद, १ श्लोक ।

साहस–द्रव्यके स्वामीके सामने बलपूर्वक द्रव्यहरण करनेको साहस कहतेहैं मनुस्मृति, ८ अध्याय, ३३२ श्लोक; याज्ञवल्क्यस्मृति, २ अध्याय, २३४ श्लोक बलके अभिमानसे जो कुछ काम किये जाते हैं उसको साहस तथा सहकोबल कहतेहैं; वे प्रथम, मध्यम, और उत्तमके भेदसे ३ प्रकारके होते हैं तीनोंका लक्षण शास्त्रमें अलग अलग कहागया है फल, मूल, जल आदि और खेतकी सामग्रीको भङ्ग आक्षेप और उपमर्दन आदि करनेको प्रथम साहस कहतेहैं, वस्त्र, पशु, अन्न, यान और घरकी सामग्रीका भङ्गआक्षेप और उपमर्दन करनेको मध्यमसाहस कहतेहैं विषदेना शस्त्रआदिसे मारना, परकी स्त्रीसे दुष्टव्यवहार करना और अन्य जो प्राणके नाश करनेवाले कर्म हैं उनको उत्तमसाहस कहतेहैं नारदस्मृति, १४ विवादपद१और ३–६ श्लोक ।

सायंकाल–१५ मुहूर्त्तका दिन होता है, उसमें ३ मुहूर्त प्रातःकाल,३ मुहूर्त संगवकाल, ३ मुहूर्त मध्याह्नकाल, ३ मुहूर्त्त अपराह्नकाल और अन्तमें ३ मुहूर्त्त सायंकाल कहलाताहै–प्रजापतिस्मृति, १५६–१५७ श्लोक ।

सुवर्ण–५ रत्तीका एक मासा और १६ मासाका अर्थात् ८० रत्तीका एक सुवर्ण होताहै- मनुस्मृति, ८ अध्याय, १३४ श्लोक, याज्ञवल्क्यस्मृति, १ अध्याय, ३६३ श्लोक और बृहद्विष्णुस्मृति, ४ अध्याय, ६–९ अंक ।

सुरा–गुडसे बनीहुई, चावलके पिसानसे बनीहुई और मधुसे बनीहुई ये तीन प्रकारकी सुरा होतीहै मनुस्मृति ११ अध्याय ९५ श्लोक ।

सोमयज्ञ–अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम ये सात सोमयज्ञ कहाते हैं–गौतमस्मृति, ८ अध्याय, ३ अंक ।

स्थालीपाक–लघुआश्वलायनस्मृति, २ स्थालीपाकप्रकरणमें आर मानवगृह्यसूत्र, २ पुरुष २ खण्डमें स्थालीपाकका विधान है ।

स्नातक–जो (ब्राह्मण) ब्रह्मचर्य व्रत और विद्या समाप्त कर समावर्तन स्नान करके अपने घर आता है वह स्नातक कहाताहै, विद्याको समाप्त करके समावर्तनस्नान करनेवाला विद्यास्नातक और ब्रह्मचर्यव्रत समाप्तकर स्नान करनेवाला व्रतस्नातक कहाताहै–बृहत्पाराशरीयधर्मशास्त्र–४ अध्यायके १६४–१६५ श्लोक ।

स्मृति–धर्मशास्त्रको स्मृति कहतेहैं–मनुस्मृति, २ अध्याय, १० श्लोक ।

स्त्रीधन–स्त्रीधन ६ प्रकारका है. विवाहके होमके समयका मिलाहुआ, ससुरालमें जानेके समय मिलाहुआ-प्रीतिनिमित्तक स्वामीका दियाहुआ, भाईसे मिलाहुआ, मातासे मिलाहुआ और पिताका दियाहुआ

मनुस्मृति, ९ अध्याय, १९४ श्लोक । पिता, माता, पति और भाइसे मिलाहुआ,-विवाहके होमके समयका मिलाहुआ और दूसरी स्त्रीसे विवाह करनेके समय पतिका दियाहुआ 'धन' स्त्रीधन कहाताहै और बन्धुलोगोंका दिया हुआ, वरसे कन्याका मूल्य लियाहुआ तथा विवाहके बाद पतिके कुल और पिताके कुलसे मिलाहुआ धनभी स्त्रीधन कहाजाताहै-याज्ञवल्क्यस्मृति, २ अध्याय, १४७-१४८ श्लोक और वृहद्विष्णुस्मृति, १७ अध्याय; १८ अंक ।

स्वेदज-दंश, मच्छर, यूक, मक्खी, खटमल आदि स्वेदज जन्तु हैं-मनुस्मृति, १ अध्याय, ४५ श्लोक ।

हविष्-मुनियोंके अन्न (नीवारआदि) दूध, सोमरस, दुर्गंधआदिसे रहित मांस और विना बनाया हुआ सेन्धा आदि नोंन ये सब स्वाभाविक हवि कहातेहैं मनुस्मृति; ३ अध्याय, २५७ श्लोक ।

हविर्यज्ञ-श्रौतस्मार्त्त अग्नियोंका स्थापन, नित्यका अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमासयज्ञ, आग्रयणेष्टिक, चातुर्मासयज्ञ, निरूढपशुबन्धकर्म अर्थात् पशुयागकर्म और सौत्रामणीयज्ञ ये सातों हविर्यज्ञ अर्थात् चरुपुरोडाशादिसे होनेवाले यज्ञ कहातेहैं—गौतमस्मृति; ८ अध्याय ३ अंक ।

हन्तकार-भोजनके लिये जितना अन्न होम करनेवाला स्नातक द्विज बनाताहै उसके चतुर्थभागको पंडित लोग हन्तकार कहते हैं; एकग्रास अन्न भिक्षा, उसका चौगुना अन्न पुष्कल और ४ पुष्कल अन्न हन्तकार कहाता है-शातातपस्मृति, ५६-५७ श्लोक ।

क्षेत्रज्ञ-जो इस शरीरसे कार्य कराताहै उसे क्षेत्रज्ञ (परमात्मा) कहते हैं—मनुस्मृति, १२ अध्याय १२ श्लोक ।

ज्ञानेन्द्रिय-कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नासिका, ये ५ ज्ञानेन्द्रिय हैं-मनुस्मृति, २ अध्याय, ९०-९१ श्लोक और याज्ञवल्क्यस्मृति, ३ अध्याय, ९१ श्लोक ।

॥ इति सञ्ज्ञाशब्दार्थ ॥
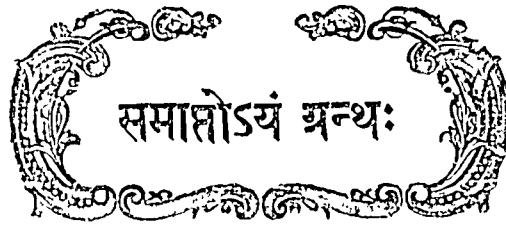
पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस-बंबई.